श्रीविद्या-साधना

(श्रीविद्या का साङ्गोपाङ्ग विवेचन)

डॉ० श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

महत्त्वपूर्ण तन्त्रशास्त्रीय प्रकाशन

* **तन्त्रसारः** (१-२ भाग) : परमहंस मिश्र
* **कुलार्णवतन्त्रम्** : परमहंस मिश्र
* **वर्णबीजप्रकाशः** : परमहंस मिश्र
* **तन्त्रालोकः** (१-५ भाग) : राधेश्याम चतुर्वेदी
* **स्वच्छन्दतन्त्रम्** (१-२ भाग) : राधेश्याम चतुर्वेदी
* **नेत्रतन्त्रम्** : राधेश्याम चतुर्वेदी
* **कामाख्यातन्त्रम्** : राधेश्याम चतुर्वेदी
* **रुद्रयामलम्** (१-२ भाग) : सुधाकर मालवीय
* **शारदातिलकम्** (१-२ भाग) : सुधाकर मालवीय
* **मन्त्रमहोदधिः** : सुधाकर मालवीय
* **लक्ष्मीतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण
* **तन्त्रराजतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण
* **त्रिपुरारहस्यम्** (१-२ भाग) : जगदीशचन्द्र मिश्र (ज्ञान एवं माहात्म्य खण्ड)
* **त्रिपुरार्णवतन्त्रम्** : जगदीशचन्द्र मिश्र
* **सर्वोल्लासतन्त्रम्** : एस० एन० खण्डेलवाल
* **नीलसरस्वतीतन्त्रम्** : एस० एन० खण्डेलवाल
* **भूतडामरतन्त्रम्** : एस० एन० खण्डेलवाल
* **सिद्धनागार्जुनतन्त्रम्** : एस० एन० खण्डेलवाल
* **अन्नदाकल्पतन्त्रम्** : एस० एन० खण्डेलवाल
* **गायत्रीमन्त्रार्थभास्करः** : गदाधर प्रसाद शर्मा
* **विज्ञानभैरवः** : बापूलाल आँजना
* **मन्त्र एवं मातृकाओं का रहस्य** : शिवशङ्कर अवस्थी
* **तन्त्रविज्ञान एवं साधना** : सीताराम चतुर्वेदी
* **पुरश्चर्यार्णवः** (मूलमात्रम्)
* **प्राणतोषिणी** (मूलमात्रम्)
* **श्रीदेवीरहस्यम्** (मूलमात्रम्)
* **बृहन्नीलतन्त्रम्** (मूलमात्रम्)
* **सप्तशतीसर्वस्वम्** : सरयू प्रसाद द्विवेदी

Text with English Translation—

* Kamakalavilasa : Dwivedi & Malviya
* Mahanirvana Tantra : M. N. Dutta
* The Shiva Samhita : S. C. Basu
* The Gheranda Samhita : S. C. Basu
* The Hatha Yoga Pradipika : P. Singh

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

३९१

श्रीविद्या-साधना

श्रीविद्या का साङ्गोपाङ्ग विवेचन

(प्रथम भाग : १-३ परिच्छेद)

लेखक

डॉ० श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

Dr. Shyama Kant Dwivedi

M.A. ,M.Ed.,

Ph.D., D. Litt.

Vyākarnāchārya

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक

© चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी-२२१००१

दूरभाष : २३३५२६३; २३३३४३१

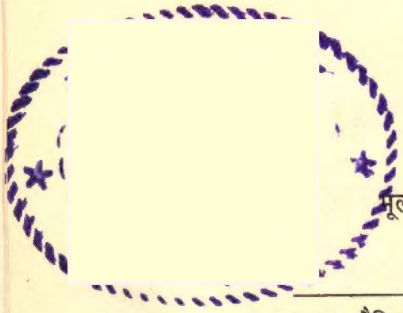

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण २००५ ई०

मूल्य : १२००.०० (१-२ भाग)

प्रकृत मौलिक ग्रन्थ के विषयक्रम, रेखाचित्र, चित्र आदि का सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा स्वायत्तीकृत है।

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू० ए०, जवाहरनगर, बंगलो रोड

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली-११०००७

दूरभाष : २३८५६३९१

❖

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बडौदा भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी-२२१००१

दूरभाष : २४२०४०४

अक्षर-संयोजक

मुकेश कम्प्यूटर्स, वाराणसी

मुद्रक

ए० के० लिथोग्राफर्स, दिल्ली

श्रीविद्या का निहितार्थ

'श्रीविद्या' वेदों की प्राचीनतम एवं गुह्यतम रहस्य विद्याओं में से अन्यतम विद्या है। यह सिद्धियों का रत्नाकर एवं मोक्ष का अन्यतम साधन है। 'श्रीविद्या' श्री की विद्या है। इसमें निहित 'श्री' शब्द 'शकार, रकार, ईकार एवं बिन्दु' का कल्पवृक्ष है। यही 'षोडशी कला' भी है और भगवती त्रिपुरसुन्दरी भी। लक्ष्मीधर ने ठीक ही कहा है—

'षोडशी कला शकार-रेफ-ईकार-बिन्द्वन्तो मन्त्रः। एतस्यैव बीजस्य नाम श्रीविद्येति। श्रीबीजात्मिका विद्या श्रीविद्येति रहस्यम्।'

श्रीविद्या 'चन्द्रविद्या' है, चन्द्रकला 'अमृतकला' है, भगवती कुण्डलिनी 'अमृतलहरी' हैं और वे 'श्रीस्वरूपा' (त्रिपुरसुन्दरीस्वरूपा) हैं।

दश महाविद्याओं में एक महाविद्या षोडशी या श्रीविद्या भी है। इसकी 'त्रिपुरसुन्दरी, राजराजेश्वरी, ललिता, कामेश्वरी, त्रिपुरा, महात्रिपुरसुन्दरी, सुभगा, बालत्रिपुरसुन्दरी' आदि अनेक नामों से पूजा की जाती है। आदि शङ्कराचार्य, भास्करराय, पुण्यानन्दनाथ आदि परमोपासक रहे हैं। पौराणिक परम्परा की दृष्टि से इसके द्वादश सम्प्रदाय और द्वादश उपासक हैं। इनका यन्त्र 'श्रीयन्त्र' कहलाता है। दश या अट्ठारह महाविद्याओं के दो कुल हैं। उनमें से एक 'काली-कुल' है और दूसरा 'श्रीकुल'। श्रीविद्या श्रीकुल से सम्बद्ध है। इस श्रीयन्त्र के मुख्यतः तीन सम्प्रदाय हैं— हयग्रीव सम्प्रदाय, आनन्दभैरव सम्प्रदाय और दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय। श्रीयन्त्र के अन्तरतम में जो 'बिन्दु' होता है, वही है— भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप, आसन एवं धाम। यही है— ब्रह्माण्ड, प्रकृत्यण्ड, मायाण्ड एवं शक्त्यण्ड का उद्भव-केन्द्र। भगवती का श्रीयन्त्र समस्त सृष्टि का रेखात्मक चित्र तो है ही; साथ ही यह अनन्त देवी-देवताओं, शक्तियों तथा समस्त रचनास्तरों, लोकों एवं आध्यात्मिक सूक्ष्म मण्डलों का भी निवासस्थान है। देवी एवं उनके यन्त्र की आराधना यद्यपि 'पशु, वीर एवं दिव्य' तीन भावों से की जा सकती है; किन्तु दिव्यभाव सर्वोत्तम होता है। शाक्तों के तीन सम्प्रदाय प्रमुख हैं— कौलमार्ग, मिश्रमार्ग एवं समयमार्ग। आदि शङ्कराचार्य समय-

मार्गी थे। समयमार्गी शाक्त वेदों, पुराणों, सदाचारों एवं विधि-निषेधों में आस्था रखते हैं; किन्तु कौल इस लक्ष्मणरेखा को नहीं मानते।

'समयाचार' श्रीविद्या की आन्तर पूजा का प्रतिपादक है— 'समयाचारो नाम आन्तरपूजारतिः।' 'परमशिव' के साथ 'शक्ति' का या 'समय' के साथ 'समया' का सामरस्य कराना ही समयाचारियों का परम लक्ष्य है।

श्री सम्प्रदाय अद्वैतवादी दर्शन में विश्वास रखता है; अतः 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की अनुभूति ही उनका काम्य है।

श्रीविद्या के साधनापथ में भक्ति, ज्ञान एवं योग तीनों स्वीकृत हैं। षट्-चक्र-वेधन के द्वारा मूलाधारस्थ कुलशक्ति को जागृत करके उसके वियुक्त प्रियतम 'अकुल' से उसका सम्मिलन कराना भी एक साधन-पथ है तथा 'ज्ञानोत्तरा भक्ति' के द्वारा (ज्ञान और भक्ति का सामञ्जस्य करके) विश्वात्मा (भगवती ललिता) का अपनी आत्मा के रूप में साक्षात्कार करना भी एक साधन-पथ है। ये दोनों पथ श्रीविद्या में स्वीकृत हैं। श्रीविद्या की साधना में 'बहिर्याग' से उत्कृष्टतर 'अन्तर्याग' का ही आत्मीकरण माना जाता है। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी समस्त प्राणियों की आत्मा हैं। वे विश्वातीत भी हैं और विश्व-मय भी। यथार्थतः तो वे 'कामेश्वर' भी हैं और 'कामेश्वरी' भी।

बैन्दवस्थान में सहस्रदल कमल है और उसमें भगवती की पूजा आदर्श पूजा है। चन्द्रमण्डल से विगलित अमृत से सिक्त श्रीचक्ररूपी त्रिपुरा की पुरी में पूजा करना ही यथार्थ पूजा है। बैन्दवपुर ही 'चिन्तामणि गृह' है। सामयिकों के मत में इसी चिन्तामणि गृह में या सहस्रदल कमल में भगवती की पूजा की जानी चाहिये; न कि बाह्य पीठ आदि पर। 'समयिनां मते समयस्य सादाख्यतत्त्वस्य सपर्या सहस्रदलकमल एव न तु बाह्ये पीठादौ' कहकर लक्ष्मीधर ने भी इसी तथ्य की पुष्टि की है।

प्राक्कथन

वैदिक विद्याओं में 'श्रीविद्या' सर्वोच्च विद्या है। इसी का अपर रूप 'गायत्री मन्त्र' में स्फुरित हुआ है। देव्युपनिषद् एवं अथर्ववेद-सौभाग्यखण्ड इस विद्या को रहस्यात्मक आवरण या प्रतीकात्मक शब्दावली में इस प्रकार प्रकट करता है—

[1]कामो योनिः कामकला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया चपुरुच्यैषा विश्वमाता दिविद्योम्।।

तैत्तिरीयारण्यक श्रुति में श्रीयन्त्र का भी उल्लेख किया गया है—

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गे लोको ज्योतिषावृतः।।

शङ्कराचार्य के चारो पीठों में प्रारम्भ से आज तक श्रीयन्त्र एवं श्रीविद्या की अनवरत रूप में उपासना चली आ रही है; क्योंकि आद्य शङ्कराचार्य शैव होते हुये भी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के परमोपासक थे। हयग्रीव, अगस्त्य, दत्तात्रेय, दुर्वासा, परशुराम, गौड़पाद, शङ्कराचार्य, भास्करराय, उमानन्दनाथ एवं अमृतानन्दनाथ आदि आचार्यों ने श्रीविद्या के प्रतिपादक ग्रन्थों का प्रणयन तो किया ही; पराभट्टारिका राजराजेश्वरी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी या भगवती ललिता की उपासना भी की।

उत्तर भारत में श्रीविद्या एवं श्रीविद्या-सम्प्रदाय के प्रचलन की तो बात ही क्या; यहाँ तो सामान्यतः लोगों को इनका नाम भी ज्ञात नहीं है। इस विद्या की रहस्यात्मकता, उच्च स्तरीयता, अतिशय क्लिष्टता एवं अगम्यता के कारण समस्त उत्तर भारत में इसका प्रचार-प्रसार अवरुद्ध ही रहा और प्रायः लोग श्रीविद्या के नाम से भी अनजान रहे।

भगवती राजराजेश्वरी ललिता देवी का नाम 'त्रिपुरा' भी है; क्योंकि—

त्रिमूर्त्तिसर्गाच्च पुराभवत्वात् त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्याः।
लये त्रिलोक्या अपि पूरणत्वात्प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम।।

सिद्धेश्वरीमत के अनुसार—

ब्रह्मा-विष्णु-महेशानैस्त्रिदेवैरर्चिता पुरा।
त्रिपुरेति तदा नाम कथितं दैवतैः पुरा।।

आचार्य भास्करराय की दृष्टि में 'त्रिपुरा' नाम की सार्थकता इसलिये है; क्योंकि—

---

१. 'अथर्वशीर्ष' में पाठान्तर : 'कामो योनिः कमला वज्रपाणि।'

'अथ त्रीणि पुराणि ब्रह्म-विष्णु-शिवशरीराणि यस्मिन् सः त्रिपुरः परशिवः, तस्य पुराणि सुन्दरी शक्तिः।'

ऋग्वेदीय त्रिपुरोपनिषद् के अनुसार 'त्रिपुरा' पद की सार्थकता निम्न तथ्यों के कारण है—

१. भगवत्ती त्रिपुरा तीन पुरों की अधीश्वरी हैं।
२. तीन पन्थ वाली हैं।
३. समस्त (त्रिलोक) एवं प्राणियों की जननी (जन्मदात्री) हैं।
४. वे 'अ-क-था' हैं।
५. वे अक्षरा हैं।
६. वे अजरा हैं।
७. वे पुराणी हैं।
८. वे देवों का अधिष्ठान हैं।

तिस्रः पुरस्त्रिप्रथा विश्वचर्षणी अत्राकथा अक्षरा सन्निविष्टा।
अधिष्ठायैनामजरा पुराणी महत्तरा महिमा देवतानाम्।।

'त्रिपुराविद्या' के ज्ञानाधिगम से साधक सिद्ध-संघ का अधिपति बन जाता है—

अथ वक्ष्ये परां विद्यां त्रिपुरामतिगोपिताम्।
यं ज्ञात्वा सिद्धिसन्धानामधिपो जायते नरः।। (शारदातिलक)

यह विद्या वाग्भवबीज, कामबीज एवं कामराजबीज के भेद से बीजत्रयात्मिका है—

वाग्भवं प्रथमं बीजं काम बीजं द्वितीयकम्।
तृतीयं कामराजाख्यं त्रिभिर्बीजैरितीरिता।। (शारदातिलक)

भगवती त्रिपुरा की 'पञ्चदशी विद्या' का परिचय इस प्रकार है—

पञ्चकूटात्मिका विद्या वेद्या त्रिपुरसुन्दरी।
ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्तिश्छन्दः पंक्तिः समीरितः।।

भगवती त्रिपुरा की उपासना वाममार्ग एवं दक्षिणमार्ग दोनों में प्रचलित है। आचार्य विद्यानन्द (अर्थ० में) कहते हैं कि इनकी प्रधान साधना दक्षिणमार्गानुष्ठिता है। आचार्य दीपकनाथ (त्रिपुरसुन्दरीदण्डक में) कहते हैं कि उनकी प्रधान साधना का मार्ग वाम-मार्ग है—'सुस्फुटं वाममार्गस्य सर्वोत्तमत्वं समुपदिश्यते।' इनमें वाममार्ग तो कौलमार्ग है और दक्षिणमार्ग समयमार्ग है। भगवती त्रिपुरा की उपासना कौलमार्ग, मिश्रमार्ग एवं समयमार्ग—तीनों में प्रचलित है।

दस महाविद्याओं में भगवती 'षोडशी' (महात्रिपुरसुन्दरी) तृतीया 'महाविद्या' हैं। दस महाविद्यायें निम्नाङ्कित हैं—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।।
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः।।

वामकेश्वरतन्त्र में इन्हीं भगवती त्रिपुरा देवी को 'त्रिविधा' कहा गया है, जो कि ज्ञान-शक्ति, क्रियाशक्ति एवं इच्छाशक्ति के रूपों में तथा त्रिदेवों के रूप में विभाजित है—

त्रिपुरा त्रिविधा देवी ब्रह्मविष्णवीशरूपिणी।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिरिच्छाशक्त्यात्मिका प्रिये।।

अन्त में मैं इस पुस्तक के वैचारिक केन्द्र में स्थित 'श्रीविद्या' की अधिष्ठात्री परदेवता के श्रीपादपद्मों में नमन करते हुये ऋषि दुर्वासा के शब्दों में निवेदन करना चाहता हूँ कि—

आताम्रार्कसहस्रदीप्तिपरमा सौन्दर्यसारैरलं
लोकातीतमहोदयैरुपयुता सर्वोपमागोचरैः।
नानानर्घ्यविभूषणैरगणितैर्जाज्वल्यमानाभितः
श्रीमातस्त्रिपुरारि सुन्दरि कुरु स्वान्ते निवासं मम।।

सीधी (म० प्र०) **श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'**
कार्त्तिकपूर्णिमा-२०६१

प्रस्तावना

भारतीय दर्शनों के आर्ष सूत्र-वाङ्मय पर दृष्टिपात किया जाय तो हमें उनमें तीन प्रकार की जिज्ञासायें दृष्टिगोचर होती हैं—

१. 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' (वेदान्तसूत्र) : बादरायण व्यास।

२. 'अथातो धर्मजिज्ञासा' (मीमांसासूत्र) : ऋषि जैमिनि।

३. 'अथातो शक्तिजिज्ञासा' (शक्तिसूत्र) : ऋषि हयग्रीव एवं ऋषि अगस्त्य।

उपर्युक्त तीनों सूत्रों की मानसपटल पर उपस्थिति होने के साथ ही यह स्पष्ट होता है कि जहाँ एक ओर बादरायण व्यास की जिज्ञासा का केन्द्र 'ब्रह्म' था तो दूसरी ओर ऋषि जैमिनि की जिज्ञासा का केन्द्र ब्रह्म न होकर 'धर्म' था। एक के ध्यान एवं उपासना का विषय निर्गुण, निराकार, निरञ्जन परात्पर सत्ता थी तो दूसरे के ध्यान एवं उपासना का विषय वेद एवं यज्ञ था। व्यास का 'वेदान्तदर्शन' यद्यपि निर्गुण परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करके उसके स्वरूप की मीमांसा करता रहा; किन्तु जैमिनि का 'मीमांसादर्शन' परमात्मा की सत्ता को अस्वीकार करते हुये स्वर्ग के साधनभूत वेद, धर्म, यज्ञ एवं यज्ञीय कर्म आदि की मीमांसा में रत रहा। एक की दृष्टि में विश्व के सृजन, पालन एवं संहार के लिये किसी परात्पर परमात्म सत्ता में विश्वास करना सर्वथा आवश्यक था, जबकि दूसरे को इन सृष्ट्यादिक व्यापारों के निष्पादन के लिये किसी भी परात्पर परमात्म सत्ता के अस्तित्व की आवश्यकता ही नहीं थी। इन दोनों ही दर्शनों की जिज्ञासाओं में किसी परात्पर, निरपेक्ष, सार्वभौम, नित्य एवं सर्वादिकारणभूता परा शक्ति के चिन्तन की कथमपि आवश्यकता नहीं थी। फलस्वरूप तान्त्रिकों ने वही कार्य किया, जिसे ब्रह्म-जिज्ञासुओं एवं धर्म-जिज्ञासुओं ने नहीं किया और इसीलिये उन तान्त्रिकों की जिज्ञासा का विषय परात्परा स्वातन्त्र्य शक्ति-समन्विता, अद्वितीया, सर्वादिकारणभूता, अजा, एका, ब्रह्मस्वरूपा एवं अवाङ्मनसगोचरा, अद्वैत महाशक्ति का अनुसन्धान बना; जिसके परिणामस्वरूप उनकी जिज्ञासा ने 'अथातो शक्तिजिज्ञासा' के रूप में आकार ग्रहण किया। इसी शक्ति को 'बह्वृचोपनिषद्' में कामकला, शृङ्गारकला, एका, सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी, परं ब्रह्म, आत्मा, ब्रह्मसंवित्ति, सच्चिदानन्दलहरी, चिन्मात्र, षोडशी, श्रीविद्या, सुन्दरी, बाला, अम्बिका, चामुण्डा, चण्डा, वाराही, सावित्री, सरस्वती, गायत्री और ब्रह्मानन्द कला कहा गया। 'भावनोपनिषद्' में इन्हें कामेश्वरी सदानन्दघना पूर्णा स्वात्मैक्यरूपा देवता एवं 'त्रिपुरातापिन्युपनिषद्' में भगवती त्रिपुरा, परमा विद्या, त्रिपुरा परमेश्वरी, त्रिपुरा शक्ति, महाकुण्डलिनी, कामाख्या, तुरीयरूपा, तुरीयातीता, सर्वोत्कटा, सर्वमन्त्रासनगता, पीठोपदेवतापरिवृता, सकलकलाव्यापिनी,

त्रिकूटा, त्रिपुरा, परमा माया, श्रेष्ठा, परा भगवती लक्ष्मी, परा वैष्णवी, चन्द्रमण्डलमध्यवर्तिनी चन्द्रकला, सप्तदशी, चैतन्यरूपिणी, सुन्दरी महामाया, सर्वसुभगा महाकुण्डलिनी, चित्कला एवं महात्रिपुरा आदि कहा गया। 'सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्' में इन्हें ही तुरीयरूपा, तुरीयातीता, सर्वोत्कटा, सर्वमन्त्रासनगता, पीठोपपीठ-देवतापरिवृता, चतुर्भुजा, श्रियं, हिरण्यवर्णा आदि कहा गया।

'त्रिपुरोपनिषद्' की उस 'एका स आसीत् प्रथमा सा', 'त्रिपुरातापिन्युपनिषद्' की 'सैवेयं भगवती त्रिपुरेति', 'बह्वृचोपनिषद्' की 'महात्रिपुरसुन्दरी, परब्रह्म, पञ्चदशाक्षरी महात्रिपुरसुन्दरी' एवं 'भावनोपनिषद्' की 'कुण्डलिनी ज्ञानशक्ति एवं इच्छाशक्तिर्महात्रिपुर-सुन्दरी' देवी एवं उनकी स्वात्मभूता 'श्रीविद्या' एवं 'श्रीचक्र' के स्वरूप की विवेचना ही शाक्तदर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय बना।

शाक्तदर्शन एवं शाक्तोपासना का आर्ष सूत्र है— 'अथातः शक्तिजिज्ञासा।'

ऋग्वेद की प्रथम ऋचा 'अग्निमीळे पुरोहितम्' से लेकर अथर्ववेद तक, संहिता से लेकर उपनिषद् तक, स्मृतियों से लेकर पुराणों तक, साङ्ख्य दर्शन से लेकर न्याय-वैशेषिक तक के समस्त दार्शनिक चिन्तनों में विश्व की आधारभूता परा सत्ता का विमर्शन पुरुषाकाररूप में ही किया गया है। कहीं उस सर्वानुस्यूत, सर्वाधार, सर्वव्याप्त, सर्वस्वरूप, सर्वाकार, सर्वात्मक एवं सर्वातीत परा सत्ता को 'ब्रह्म' कहा गया तो कहीं 'परमेश्वर'। कहीं उसे 'परमात्मा' कहा गया तो कहीं 'भगवान्'। कहीं 'परमशिव' कहा गया तो कहीं 'महाविष्णु'। प्रत्येक पुरुषाकार परा सत्ता के साथ उसकी शक्ति की भी कल्पना की गई और वही कल्पित शक्ति कहीं समवायिनी अभिन्न शक्ति के रूप में तो कहीं अचिन्त्य मायाशक्ति के रूप में, कहीं सत् रूप में तो कहीं असत् रूप में कल्पित की गई; लेकिन किसी ने भी उसे निरपेक्ष परात्पर परा सत्ता के रूप में कल्पित नहीं किया। वेदान्तसूत्रों की व्याख्या भी शक्तिवाद को मूल सिद्धान्त मान कर नहीं की गई।

यद्यपि वेदों में 'सरस्वती, ऊषा, अदिति, वाणी, रात्रि, गायत्री, सावित्री, राका, सिनीवाली, दुर्गा, त्रिपुरा, सुभगा, सुन्दरी, अम्बिका, चिति, श्रीविद्या, ललिता, श्री' आदि देवियों की परा शक्ति के रूप में कल्पना दृष्टिगोचर होती है; किन्तु दार्शनिक प्रस्थानों में 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' की भाँति 'अथातो शक्तिजिज्ञासा' के रूप में पृथक् दार्शनिक चिन्तन के रूप में उसे कोई स्थान नहीं मिला।

श्रीदेव्यथर्वशीर्ष (अथर्ववेद) में समस्त देवताओं द्वारा देवी से अपना परिचय देने के अनुरोध का उल्लेख है। सारे देवता पूछते हैं— हे महादेवी ! तुम कौन हो? : 'काऽसि त्वं महादेवीति'। देवी कहती हैं— 'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी, मत्तः प्रकृति-पुरुषात्मकं जगत्, शून्यञ्चाशून्यञ्च, अहमानन्दानानन्दौ, अहं विज्ञानाविज्ञाने, अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि, अहमखिलं जगत्, वेदोऽहमवेदोऽहम्, विद्याहमविद्याहम्, अजाहमन-जाहम्, अधश्चोर्ध्वञ्च तिर्यक्चाहम्।' आदि।

इन्हीं के विषय में देवताओं ने भी कहा कि— 'एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी। पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या। ..... सैष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्रस्वरूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतीषि। विश्वरूपिणी, अज्ञेया, अनन्ता, अलक्ष्या, अजा, एका, मन्त्राणां मातृका, शब्दानां ज्ञानरूपिणी, ज्ञानानां चिन्मयातीता, शून्यानां शून्यसाक्षिणी।'

इस प्रकार शक्ति (नारी) को परात्पर परब्रह्म के रूप में स्थान तो मिल गया; किन्तु शक्तिवाद की सुदृढ़ स्थापना तो त्रिपुरोपनिषद्, त्रिपुरातापिन्युपनिषद्, देव्युपनिषद्, भावनोपनिषद्, सरस्वतीरहस्योपनिषद्, सीतोपनिषद्, बह्वृचोपनिषद्, सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् आदि; अगस्त्य के शक्तिसूत्र, हयग्रीव के शाक्तदर्शनम्, दत्तात्रेय की दत्तसंहिता, परशुराम के परशुरामकल्पसूत्र, त्रिपुररहस्य, दुर्वासा के ललितास्तवरत्न, पराशम्भुस्तोत्र, त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र, सौभाग्यभास्कर, कालिकापुराण, देवीभागवतपुराण, ललितासहस्रनाम, सप्तशती, गौडपाद की सुभगोदयस्तुति, शङ्कराचार्य की सौन्दर्यलहरी, पुण्यानन्द के कामकलाविलास, अमृतानन्द एवं भास्कर के ग्रन्थों (दीपिका, सेतुबन्ध, वरिवस्यारहस्यम् आदि), अगस्त्य के शक्तिमहिम्नस्तोत्र एवं क्षेमराज के शक्तिसूत्र आदि ग्रन्थों के द्वारा ही हो पायी। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' की तरह 'अथातः शक्तिजिज्ञासा' प्रथम सूत्र के रूप में पहली बार हयग्रीव के 'शाक्तदर्शनम्' एवं अगस्त्य के 'शक्तिसूत्र' में ही अवस्थान प्राप्त कर सका।

यहाँ वही शक्ति जिज्ञास्य है, जो मन्त्रों में 'मातृका', शब्दों में 'ज्ञान', ज्ञानों में 'चिन्मयातीता' एवं शून्यों में 'शून्यसाक्षिणी' है। देव्युपनिषद् में कहा भी गया है—

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी।।[१]

यहाँ वही जिज्ञास्य है, जो कामकला, शृंगारकला, परा शक्ति, शाम्भवी विद्या, कादि विद्या, हादि विद्या, सादि विद्या तथा प्रत्यक् चितिस्वरूपा महात्रिपुरसुन्दरी है[२] जो षोडशी, श्रीविद्या, पञ्चदशाक्षरी, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी कहलाती है[३] जो इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति एवं कुण्डलिनी तथा महात्रिपुरसुन्दरी है[४] जो कामेश्वरी, सदानन्दघना, पूर्णा एवं स्वात्मैक्यरूपा देवता है।[५]

यहाँ वही शक्ति जिज्ञास्य है, जिसकी उपासना में 'इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक ब्रह्मग्रन्थिमत् रसतन्तु ब्रह्मनाडी' ब्रह्मसूत्र हैं, 'चिदग्निस्वरूपपरमानन्द शक्तिस्फुरण' ही वस्त्र है, 'चिच्चन्द्रमयी सर्वाङ्गस्रवण' ही स्नान है, 'रक्तशुक्लपदैकीकरण' ही पाद्य है, 'स्वच्छस्वपरिपूरणानुस्मरण' ही गन्ध है, 'सच्चिदुल्काऽकाशदेहो' दीप है और 'मूलाधारादाब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रादामूलाधारपर्यन्तं गतागत रूप' प्रादक्षिण्य है।[६] यह साधना का वह उच्चतम स्तर है—

---

१. देव्युपनिषत्
२. बह्वृचोपनिषत्
३. बह्वृचोपनिषत्
४. बह्वृचोपनिषत्
५. बह्वृचोपनिषत्
६. भावनोपनिषत्

● जहाँ निरोध, उत्पत्ति, बन्धन, साधना, मुमुक्षता, मुक्ति, बद्ध, साधक, मुमुक्षु एवं मुक्त की अवधारणा भी मिथ्या हो जाती है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता।।[१]

● जहाँ ज्ञान-विज्ञान-तत्पर योगी धान्यार्थी की भाँति समस्त बाह्याडम्बरों का 'पलाल' की भाँति त्याग कर देता है—

पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद् ग्रन्थमशेषतः।[२]

● जहाँ आन्तर पूजा ही यथार्थ पूजा होती है—

'अतः समयिनामैहिकामुष्मिकफलसाधनोपायः आन्तरपूजेति समयमततत्त्वम्।'

(लक्ष्मीधरा)

● जहाँ मन्त्रों का पुरश्चरण, जप, बाह्य होम, बाह्य पूजा के लिये कोई स्थान नहीं है और हृत्कमल एवं सहस्रार में पूजा ही यथार्थ पूजा है—

'समयिनां मन्त्रस्य पुरश्चरणं नास्ति, जपो नास्ति, बाह्यहोमोऽपि नास्ति, बाह्यपूजा-विधयो न सन्त्येव। हृत्कमल एव सर्वं यावदनुष्ठेयम्।'

● जहाँ बाह्य पूजा निषिद्ध है; सनत्कुमारसंहिता में कहा भी गया है—

बाह्यापूजा न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभिः।

● जहाँ मन्त्र-जप-जपाङ्ग, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, द्रष्टा-दृश्य-दर्शन, ध्याता-ध्यान-ध्येय, उपासक-उपासना-उपास्य, साधक-साधना-साध्य, देवता, ऋषि, छन्द, वर्ण, नाद, शून्य, अवस्था, मन्त्रार्थ, जगत्, ग्रह, नक्षत्र, चक्र, राशि, शक्तिचक्र, गुरु एवं भगवती महात्रिपुर-सुन्दरी के मध्य स्थित सारे द्वैत ध्वस्त होकर पूर्ण सामरस्य की अनुभूति होती है।

● जहाँ शिव और शक्ति, भक्त और भगवान्, कुल एवं अकुल, षट्चक्र एवं श्रीचक्र, श्रीचक्र एवं शरीर, शिवचक्र एवं शक्तिचक्र, मूलाधार एवं सहस्रार, कुण्डलिनी एवं महाकुण्डलिनी आदि सभी अपनी-अपनी भेदात्मकता का त्याग करके अद्वैतभावापन्न होकर एक हो जाते हैं।

● जहाँ समग्र, सार्वभौम, सर्वव्यापक एवं नित्य सामरस्य ही पूर्ण उपलब्धि होती है।

● जहाँ कर्म-ज्ञान-भक्ति-उपासना एवं योग अपने-अपने भेद-भाव का त्याग करके गंगा-जमुनी संगम में रूपान्तरित होकर एक हो जाते हैं।

यह 'श्रीविद्या' ब्राह्मीभाव, ब्रह्माद्वैत एवं पञ्चकृत्यकारी परमशिव की विमर्शस्वरूपा आत्मशक्ति की साधना की संदेशवाहिका है। यहाँ पहुँचकर ज्ञान एवं योग एक हो जाते

---

१. त्रिपुरातापिन्युपनिषत् २. त्रिपुरातापिन्युपनिषत्

हैं तथा यहाँ ज्ञान एवं योग का प्राधान्य होते हुये भी 'भक्ति' की मन्दाकिनी ही सर्वाधिक पूज्या है। आचार्य उत्पलदेव कहते हैं—

न योगो न तपो नार्चाक्रमः कोऽपि प्रणीयते।
अमाये शिवमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका प्रशस्यते।।[१]

यहाँ पहुँचकर ज्ञानमार्गी, केवलाद्वैतवेदान्ती आचार्य शंकर भी अपनी ब्रह्मरूपता की अस्मिता भूलकर कह उठते हैं—

सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवैवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो वै तरङ्गः न तारङ्गो वै समुद्रः।।

यहाँ जगत् ब्रह्म एवं जीव से भिन्न 'विवर्त' नहीं है; प्रत्युत यहाँ यह परा शक्तिस्वरूप है, ब्रह्माभिन्न है और 'परिणाम' है—

'शिवादिक्षित्यन्तरूपेण परिणमत इत्यर्थः। यथा क्षीरं दध्याकारेण परिणमते, तथा चिच्छक्तिरेव सर्वाकारेण परिणमते ..... चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः।[२]

आचार्य भास्कर अपने वरिवस्यारहस्यम् में कहते हैं—

'स्वाभिमतः परिणामवाद एव स्फुटीकृतः।'

आचार्य शंकर ने भी इसकी पुष्टि की है। शक्तिसूत्र की व्याख्या में आचार्य क्षेमराज ने जगत् को शिव एवं शिवा से अभिन्न माना है—

'स्वात्मदेवताया एव सर्वत्र कारणत्वम्, चिदेव भगवती ..... स्वच्छस्वतन्त्ररूपा ..... जगदात्मना स्फुरति ..... कार्यकारणभावः, विश्वशरीरः शिवभट्टारक एव, श्रीपरमशिवः स्वात्मैक्येन स्थितं नानावैचित्र्यसहस्रैः स्फुरति; जगतः प्रकाशात्म्येनावस्थानम्।'

जगत् दुःख नहीं है; प्रत्युत शिव को आह्लादित करने वाला एवं उनके द्वारा संरचित आह्लादकारी चित्र है—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छातूलिकयात्मनि।
स्वयमेव समालोक्य प्रीणाति भगवान् शिवः।।

अगस्त्यकृत शक्तिसूत्र के अनुसार तो मुक्ति की प्रक्रिया एवं उसका स्वरूप इस प्रकार है—

'प्रथमं प्रकृतिं मनसा विभाव्य तामपि स्वात्मनि स्वात्मानं तस्यां मिथो विलाप्य तत एकोऽवशिष्यते। मुक्तः शुद्धः पूर्णः प्रत्यगात्मैव भवति प्रत्यगात्मैव भवति।'[३]

शिवसूत्रविमर्शिनी (आचार्य क्षेमराज) के अनुसार तो बन्धन एवं मुक्ति का स्वरूप निम्नानुसार है—

'आत्मन्यनात्मताभिमानरूपाख्यातिलक्षणाज्ञानात्मकं ज्ञानं केवलं बन्धो, यावदानात्मनि शरीरादावात्मताभिमानात्मकमज्ञानमूलं ज्ञानमपि बन्ध एव। शिवाभेदाख्यात्यात्मका ज्ञानस्वभावो-

---

१. शिवस्तोत्रावली
२. योगिनीहृदयदीपिका : अमृतानन्द
३. शक्तिसूत्र

ऽपूर्णम्मन्यतात्मकाणवमलसतत्वसङ्कुचितज्ञानात्मा बन्धः।'[१]

प्रत्यभिज्ञा भी मुक्ति है।

यहाँ आसन, कम्बल आदि बाह्य वस्तु नहीं हैं। यहाँ ३६ तत्त्व ही 'आसन' हैं। इसीलिये योगिनीहृदय में कहा भी गया है—

षट्त्रिंशत्तत्त्वपर्यन्तमासनं परिकल्प्य च।

शाक्तदर्शन के अनुसार जगत् चिन्मय एवं आनन्दमय है।[२]

भगवती हैं तो एक; किन्तु क्रीड़ा-व्यापार में अनेक बन जाती हैं—

त्वमेव तासां रूपेण क्रीडसे विश्वमोहिनी।

एका सती भगवती परमार्थतोऽपि
सन्दृश्यसे बहुविधा ननु नर्वकीव।

जगत् शक्ति की क्रीड़ा है।

यहाँ माना गया है कि जगत् परमाणुओं से नहीं; बल्कि इच्छा-ज्ञान-क्रिया, परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी से उत्पन्न होने के कारण मूलतः परमाण्वात्मक न होकर मातृकात्मक एवं शक्त्यात्मक है।

यहाँ गुरु बाह्य विग्रह नहीं; प्रत्युत भगवती स्वयं गुरु हैं—

त्वामिच्छाविग्रहां देवी गुरुरूपां विभावयेत्।[३]

यहाँ परमशिव, जगत्, चक्र, श्रीविद्या एवं भगवती से तादात्म्य प्राप्त कर लेना ही 'मुक्ति' है।

वर्ण, पद, मन्त्र (शब्दाध्व) एवं कला, तत्त्व तथा भुवन (अर्थाध्व) से ही जगत् की उत्पत्ति होती है। शिव एवं शक्ति ही 'शब्द' एवं 'अर्थ' हैं। शाब्दी सृष्टि से ही आर्थी सृष्टि का उदय हुआ है। अतः शाक्तदर्शन वर्ण, मन्त्र, नाद आदि की विवेचना पर अधिक चिन्तन करता है। 'जगत्' शब्द का विवर्त है; अतः मूल तत्त्व तो 'शब्द' ही है। शब्दों की मूल चेतना परा, पश्यन्ती और मध्यमा वाक् में अन्तःगर्भित है और भगवती स्वयं ही परा-पश्यन्ती-मध्यमास्वरूपा वर्णात्मिका एवं मन्त्रात्मिका हैं। चूँकि मन्त्र एवं यन्त्र तथा श्रीविद्या एवं देवतातत्त्व मूलतः अभिन्न हैं; अतः अद्वैत से प्रारम्भ की जाने वाली यह शाक्तोपासना तभी चरितार्थ होती है, जबकि उपासक सभी के साथ अपना सामरस्य स्थापित कर सके। शाक्तोपासना 'शक्ति' की उपासना है, स्वात्मस्वरूपा भगवती ललिता का साक्षात्कार है तथा 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की अद्वैतानुभूति है।

---

१. क्षेमराज : शिवसूत्रविमर्शिनी
२. योगिनीहृदय
३. योगिनीहृदय-१९८

श्रीचक्र में स्थित सर्वानन्दमय 'बिन्दुचक्र' सहस्रार का प्रतीक है और नि:शेष विश्व एवं विश्व की नि:शेष सत्ताओं के उद्भव का केन्द्र है। यहीं कामेश्वर एवं कामेश्वरी सामरस्यावस्था में परस्पर लीन हैं। यही स्थान 'आदि दम्पति' का राजशौध है।

'श्रीविद्या' एक रहस्यविद्या है। 'श्रीयन्त्र' चक्राधिपति यन्त्र है। श्रीविद्या, श्रीचक्र, श्रीदेवी, जगत्, साधक एवं साधना में ऐकात्म्य की अनुभूति ही श्रीविद्योपासना का उद्देश्य है।

मैंने इस ग्रन्थ में उपासना के क्रमिक सोपानों का विवेचन नहीं किया है और न तो मैंने इस दृष्टि से ही इसे प्रणीत किया है कि इसके आलोक में प्रात:काल से चतुर्थ याम (चतुर्थ सन्ध्या)-पर्यन्त अनुष्ठीयमान, साधना-सोपानों पर आरूढ़ होकर उपासना-यात्रा यथाक्रम निष्पादित की जा सके। अन्य बहुत-से ऐसे ग्रन्थ हैं, जो कि एतदर्थ द्रष्टव्य हैं।

इस ग्रन्थ के प्रणयन में मेरा मुख्य उद्देश्य 'श्रीसम्प्रदाय, श्रीविद्या, भगवती महात्रिपुरसुन्दरी, मन्त्र, यन्त्र, श्रीयन्त्र, पीठ, देवता, ध्यान, भक्ति, भाव, पूजा, जप, न्यास, गुरु, दीक्षा' आदि तत्त्वों के मूल स्वरूप का उद्घाटन करना एवं उनमें अन्तर्निहित रहस्यात्मक बिन्दुओं की विवेचना करना है। इसमें दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना भी जान-बूझ कर छोड़ दी गई है और साथ ही श्रीविद्या, श्रीचक्र एवं श्रीदेवी (भगवती ललितादेवी) की साङ्गोपाङ्ग, क्रमिक उपासना के पृथुल कर्मकाण्डीय विधानों को भी चिन्तन का विषय नहीं बनाया गया है।

भगवती की उपासना के पूर्व उपासना के अङ्गों, उपाङ्गों, साधनों, अधिकारों, भावनात्मक स्तरों, मानसिक वृत्तियों एवं अपने आधिकारिक स्तरों का ज्ञान अत्यावश्यक है। इसी उद्देश्य को केन्द्र में रखकर मैंने इन बिन्दुओं पर सविस्तार प्रकाश डाला है। इसकी विवेचना इसलिये भी आवश्यक थी, क्योंकि श्रीसम्प्रदाय की उपासना में प्रयुक्त समस्त साधनतत्त्व अन्य उपासनाओं की तुलना में अधिक सूक्ष्म, रहस्यमय, प्रतीकात्मक, विशिष्टार्थगर्भित एवं अद्वैतात्मक है।

श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

विषयानुक्रमणिका

प्रथम परिच्छेद : अध्याय १-५

शाक्तमत एवं श्रीसम्प्रदाय

विषय	पृष्ठाङ्क
प्रथम अध्याय	७-२१
शाक्तसम्प्रदाय : एक विहङ्गमावलोकन	
श्रीविद्या एवं शक्त्युपासना की शाखायें	७
तान्त्रिक उपासना	८
तन्त्र : एक विहङ्गमावलोकन	८
तन्त्र या आगम की दृष्टियाँ	८
शाक्ततन्त्र के प्रमुख लक्षण	८
तन्त्र के विभिन्न प्रकार	८
तान्त्रिक सम्प्रदाय	९
शाक्तागम की प्रमुख विद्यायें	९
तन्त्र के सप्ताचार	९
तन्त्रशास्त्र में ज्ञान-भक्ति की दृष्टि	९
तन्त्र के भावत्रय	१०
तन्त्र में यजन के भेद	१०
तन्त्र के पादचतुष्टय	१०
तन्त्र या आगम के तत्त्व	१०
शैवागम के स्रोत	१०
तन्त्र के षट्कर्म	१०
तन्त्र का भोग-मोक्षसमन्वयवाद	१०
तन्त्र के पञ्च मकार	११
शाक्तागम के भेद	११
शाक्तोपासना के मुख्य केन्द्र	११
शाक्तों के मुख्य सम्प्रदाय	११
कौलसम्प्रदाय	११
पूर्वकौल एवं उत्तरकौल	११
श्रीविद्या के सम्प्रदाय	१२
श्रीविद्यागम की सन्तानें	१२
देश का वर्गीकरण	१२
शाक्तपूजा के प्रधान केन्द्र	१३
शाक्ततन्त्र के आचार्य और उनकी रचनायें	१३
शाक्तयुग	१५
काश्मीरी तान्त्रिकों के ग्रन्थ	१५
आम्नाय-विभाजन	१५
पूर्वाम्नाय	१६
पश्चिमाम्नाय	१६
उत्तराम्नाय	१६
दक्षिणाम्नाय	१६
अधाम्नाय	१६
ऊर्ध्वाम्नाय	१६
शाक्तमत और उसका आदिकाल	१७
रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का मत	१७
श्रीचक्र	१७
शक्ति के कामप्रधान रूप की विवेचना	१९
नवव्यूह	१९
कालव्यूह	२०
कुलव्यूह	२०
नामव्यूह	२०
ज्ञानव्यूह	२०
चित्तव्यूह	२०
नादव्यूह	२०
बिन्दुव्यूह	२०
कलाव्यूह	२०

विषय	पृष्ठाङ्क
जीवव्यूह	२०
अद्वैतवाद-तान्त्रिकों के मार्गत्रय	२१
आचार	२१
पञ्च मकार	२१
द्वितीय अध्याय	**२२-५८**
शाक्तमत एवं श्रीविद्या	
श्रीविद्या के सम्प्रदाय	२२
कौलमार्ग	२२
शाक्तमत और कौलाचार	२३
प्राचीन कौलसम्प्रदाय	२३
अन्य कौलसम्प्रदाय	२४
डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची का मत	२४
त्रिपुरोपासना के उपसम्प्रदाय	२५
त्रिकोण के भेद	२७
लक्ष्मीधर की दृष्टि में कौलमार्ग	२८
कुल, अकुल और कौल	२९
कुल की अन्य व्याख्यायें	३०
कुल का वंशानुगत अर्थ	३०
कुल का योगशास्त्रानुगत अर्थ	३०
कुल का दर्शनानुगत अर्थ	३०
ज्ञान की व्यापकता	३१
कुण्डलिनी शक्ति	३१
गुरुतत्त्व	३१
कुण्डलिनी के विभिन्न स्वरूप	३२
कुमारी कुण्डलिनी और उसका अवस्थान	३२
योषित् कुण्डलिनी और उसका यात्रापथ	३३
पतिव्रता कुण्डलिनी और यात्रापथ	३४
पतिव्रता कुण्डलिनी की लयभूमि	३५
श्रीचक्रक्रम	३६
कुण्डलिनी का स्वस्थान	३७
कुण्डलिनी-तत्त्व और शक्ति-जागरण	३७
कुमारी कुण्डलिनी	३७
योषित् कुण्डलिनी	३८
पतिव्रता कुण्डलिनी	३८
शक्तिकुण्डलिनी	३८
कुण्डलिनी	३९
विसर्ग	३९
श्रीविद्या-सम्प्रदाय का वर्णविज्ञान और उसका रहस्य	३९
वर्ण का शक्तित्व और शिवत्व	३९
कुण्डलिनी शक्ति और भगवती महात्रिपुरसुन्दरी	४१
पराकुण्डलिनी	४१
वर्णकुण्डलिनी	४१
प्राणकुण्डलिनी	४२
ऊर्ध्वकुण्डलिनी	४२
शक्तिकुण्डलिनी	४२
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का कुण्डलिनीस्वरूप	४५
वाग्देवता कुण्डलिनी का स्वरूप	४५
पञ्चमकारों के प्रतीकार्थ	४६
पञ्चमकारोपयोगविषयक भ्रामक दृष्टि का निराकरण	४८
पञ्चमकारों का प्रतीकात्मक उपयोग	४९
समस्त प्राणियों के प्रति आत्मीयता का भाव	५०
आगमसार	५०
वर्ण एवं आश्रमधर्म के अनुकूल पञ्चमकारों का उपयोग	५१
त्रिपुरा देवी के सङ्केतत्रय	५१
कौलाचार एवं समयाचार	५२
समयिमत	५४
भगवती का पूजा-विधान	५५
भगवती की पूजा के प्रकार	५५
साधना एवं पूजा के अन्य भेद	५५
परमशिव द्वारा अनुष्ठित देवी की नित्योदिता पूजा का स्वरूप	५६

विषय	पृष्ठाङ्क
परापूजा का स्वरूप	५६
सहस्रदल कमल की पूजा	५८
तृतीय अध्याय	**५९-८५**
शाक्तदर्शन : एक विहङ्गमावलोकन	
शाक्तदर्शन का दार्शनिक पक्ष एवं सृष्टि	५९
कामकला तत्त्व	५९
अहंतत्त्व	६०
अद्वैतवाद	६०
तत्त्व	६०
विमर्श	६१
शिव	६१
विश्व	६२
परम सत्ता	६२
सक्रिय परमशिव	६२
जगत् का स्रष्टा शिव और जगत् शिव का स्पन्द	६२
परमसत्ता में इच्छा-ज्ञान-क्रिया-स्वातन्त्र्य-चैतन्य-आनन्द का समावेश	६३
परमतत्त्व में शिव एवं शक्ति का सामरस्य	६३
परमशिव एवं विश्व का सम्बन्ध	६३
आदिशक्ति एवं परतत्त्व	६३
महालक्ष्मी का स्वरूप	६३
अवतारक्रम	६४
भगवती महालक्ष्मी	६४
आदिशक्ति	६४
अथर्वशीर्षोक्त आत्मशक्ति : श्रीमहाविद्या का स्वरूप	६४
महात्रिपुरसुन्दरी महाविद्या का स्वरूप	६५
योगनिद्रा : दशभुजी भगवती महाकाली	६५
अष्टादशभुजी महालक्ष्मी	६५
अष्टभुजी महासरस्वती	६५
चतुर्भुजी महालक्ष्मी	६५

विषय	पृष्ठाङ्क
भगवती का स्वरूप एवं उनका नाम	६६
चतुर्भुजी महाकाली	६६
दुर्गासप्तशती के प्रधान देवता	६८
जगत्	६८
जीवात्मा	७१
पुरुष और प्रकृतितत्त्व तथा शिव और शक्तितत्त्व	७३
शिव और शक्ति	७४
सृष्टि और उसका प्रयोजन : क्रीडा-लीला-चित्र-स्वेच्छा	७५
शैव सिद्धान्त, काश्मीरीय शैव दर्शन एवं अद्वैत वेदान्त	७६
सृष्टि का प्रयोजन : लीलावाद एवं अनुग्रह	७६
सृष्टि का प्रेरणा-केन्द्र	७७
लीलावाद एवं इच्छा-सृष्टिवाद	७८
शाक्त सम्प्रदाय की मुक्तिसम्बन्धिनी अवधारणा	७८
हयग्रीवप्रणीत शाक्तदर्शनम् की दृष्टि	७८
जीवन्मुक्ति	७९
हयग्रीव की मुक्तिसम्बन्धिनी दृष्टि	८०
प्रजापति का मत	८०
बादरी का मत	८१
शक्तिसूत्रं के अनुसार मुक्ति का स्वरूप	८३
आचार्य अगस्त्य की दृष्टि	८३
प्रत्यगात्मावस्थान ही मुक्ति	८४
ब्रह्मीभाव ही मुक्ति	८४
आत्मज्ञान ही मुक्ति	८४
चतुर्थ अध्याय	**८६-९२**
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप	
निर्गुण रूप	८६
पुरुष रूप	८६

विषय	पृष्ठाङ्क
नारी रूप	८६
भगवती के अन्य रूप	८७
श्रीविद्या की निरतिशय महत्ता	८७
श्रीविद्या का महत्त्व	८७
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप	८९
मुक्ति	९१
नाद एवं बिन्दु	९२
पञ्चम अध्याय	**९३-१०७**
श्रीविद्योपासना	
पन्द्रह तिथियों की देवी के नाम	९३
त्रिपुरसुन्दरी	९४
श्रीविद्या	९५
ऐक्यचतुष्टय	९५
चक्र एवं श्रीविद्यात्मक यन्त्र	९५
श्रीचक्र एवं श्रीविद्या में तदात्मकता	९५
श्रीविद्या के मन्त्राक्षर एवं उनका रहस्य	९५
श्रीविद्या का स्वरूप	९६
श्रीयन्त्र का स्वरूप	९६
श्रीयन्त्र की उत्पत्ति	९७
कुण्डलिनी और श्रीविद्या	९७
कूटत्रय का अर्थ	९८
गुरु का ध्यान	९९
श्रीविद्या के अंग	९९
शाक्तदर्शन के दर्शनिक विचार	९९
ह्रींकारत्रय	९९
स-क-ल	९९
श्रीविद्या के तीन खण्ड	१००
सुभगोदय की दृष्टि के अनुसार तिथियाँ, उनके नाम एवं कलायें	१००
तिथियों के नाम	१००
दर्शादि कलाओं का खण्डत्रय-विभाजन	१००
दर्शा आदि कलाओं का स्वरूप	१००
आग्नेय खण्ड की कलायें	१००
सौरखण्ड की कलायें	१०१
सौम्यखण्ड की कलायें	१०१
सादाख्या चन्द्रकला	१०२
बाह्य पूजा का खण्डन	१०२
श्रीविद्या का स्वरूप	१०३
श्रीचक्र का विभाजन	१०४
श्रीयन्त्र का विभाजन	१०४
श्रीचक्र एवं सत्यलोकादि लोकों में ऐक्य	१०४
श्रीचक्र एवं सुतल, वितल, पातालादि में ऐक्य	१०४
पिण्ड एवं श्रीचक्र में ऐक्य	१०४
श्रीविद्या मन्त्र एवं श्रीचक्र में ऐक्य	१०५
नाद-बिन्दु का ऐक्य	१०५
पिण्डस्थ चक्र एवं श्रीचक्र में ऐक्य	१०५
श्रीचक्र एवं त्रिपुरा के त्रिपुरात्व में अन्तःसम्बन्ध	१०६
श्रीचक्र का अर्चनक्रम	१०६
पिण्डस्थ चक्र एवं श्रीचक्र में ऐकात्म्य	१०६

द्वितीय परिच्छेद : अध्याय ६-१५

❁ देवतातत्त्व ❁

षष्ठ अध्याय	**११३-१६५**
श्रीविद्या में देवतातत्त्व	
अनुबन्धचतुष्टय	११३
देवता	११४
विमर्शदर्पण	११४
(अ) देवता तत्त्व	११४
देवताओं के तीन स्वरूप	११४
देवताओं के वर्ण	११५
'देवता' शब्द का अर्थ	११५
देवों की व्यापकता	११६

विषय	पृष्ठाङ्क
देवता का मूल स्वरूप	११७
देवता की परिभाषा	११७
देवताओं के प्रकार	११८
देवताओं के भेद	११८
आजानदेवता	११८
मर्त्य देवता	११९
अधिष्ठातृ देवता	११९
एकदेववाद	११९
वस्तुविभाग एवं देवविभाग	११९
छन्द	१२०
देवता	१२०
विनियोग	१२०
विष्णुपुराण की दृष्टि से देवता का स्वरूप	१२०
देवताओं के गण	१२१
देवताओं के मुख्य स्थान	१२१
देवता की उत्पत्ति	१२१
जप एवं देवता तथा नौ तत्त्व	१२१
मन्त्राधीनञ्च देवता	१२१
देवता की परिभाषा (कुलार्णवतन्त्र)	१२१
बीज और देवता	१२२
बीजसाधन	१२२
भगवत् सत्ता एवं गुरु में ऐकात्म्य	१२४
देवतास्वरूपिणी भगवती विमर्शशक्ति	१२४
मन्त्र और देवता में अभेद	१२४
देवता का स्थूल रूप	१२६
देवता का सूक्ष्म रूप	१२६
देवता का पर रूप	१२६
ऋषि	१२६
नवार्णमन्त्र	१२६
मातृकामन्त्र	१२६
रामरक्षास्तोत्र	१२६
देवी का कवच	१२६
अर्गलास्तोत्रमन्त्र	१२६
कीलकमन्त्र	१२६
श्रीसूक्तमन्त्र	१२७
श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रमालामन्त्र	१२७
मन्त्र-देवता और उनकी जपसंख्या	१२७
छन्द	१२७
ऋषि	१२७
काली देवी के मन्त्र	१२८
देवता के रूप	१२८
देवता के उपासनाभेद	१२८
भावनोपास्ति	१२८
वामकेश्वरतन्त्र की दृष्टि	१२९
देवता का चक्रस्वरूप	१२९
(आ) त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप	१२९
बैन्दवी कला और त्रिपुरसुन्दरी	१३०
भगवती त्रिपुरा	१३०
ब्रह्म की निष्क्रियावस्था : परा संवित् अवस्था	१३१
कामकलाविलास में पुण्यानन्द की दृष्टि	१३२
त्रिपुरभैरवी	१३३
षोडशी विज्ञान	१३६
अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि	१३७
सोलहवीं तुटि के भाग	१३९
शुक्ल पक्ष के दिनों के नाम	१३९
कृष्ण पक्ष के दिनों के नाम	१४०
दिनों की फलश्रुति	१४०
दर्शा	१४०
षोडशी	१४१
भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप : कामकलाविलास	१४२
महाबिन्दु और भगवती त्रिपुरसुन्दरी	१४२
कामबीज एवं त्रिपुराभैरवी	१४२
बीजत्रय	१४३
भगवती की नखशक्ति	१४४

विषय	पृष्ठाङ्क
भगवती की उँगलियों के नख एवं भगवान् के दशावतार	१४४
दशावतारों का भगवती के साथ तादात्म्य	१४४
भगवती का कूटस्वरूप	१४५
भगवती का मन्त्रस्वरूप	१४५
महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान	१४५
ललितासहस्रनाम की दृष्टि	१४६
षोडशी	१४८
त्रिमूर्त्ति	१४८
त्र्यक्षरी	१४९
चिदेकरसरूपिणी	१४९
महात्रिपुरसुन्दरी के तीन रूप	१४९
(इ) दशमहाविद्या एवं त्रिपुरसुन्दरी	१४९
दशमहाविद्याओं के नामों में मतभेद	१५०
कालीकुल और श्रीकुल	१५१
काली के भेद	१५१
काश्मीरप्रचलित दश विद्या	१५२
सृष्टिकाली	१५२
रक्तकालिका	१५२
कामकलाविद्या का महत्त्व	१५३
महात्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप	१५३
भद्रकाली के भेद	१५३
कालीकुल	१५४
श्रीकुल	१५४
दश एवं अष्टादश महाविद्या	१५४
षोडशी, त्रिपुरभैरवी एवं अन्य महाविद्याओं का आविर्भाव	१५५
शक्ति का निरपेक्ष स्वतन्त्र रूप	१५६
कठोर रूप	१५७
सौम्य रूप	१५७
भुवनेश्वरी	१५७
महाविद्याओं के प्राकट्य का अन्य वृत्तान्त	१५७
१. कालिकापुराण	१५७
२. दुर्गासप्तशती	१५८
३. नारदपाञ्चरात्र	१५८
जगन्निर्मात्री भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप-विस्तार	१५८
दक्षिणामूर्त्तिस्तोत्र और त्रिपुरासिद्धान्त	१५९
त्रिपुरासिद्धान्त	१६०
त्रिपुरासिद्धान्त एवं प्रत्यभिज्ञा का अन्तस्सम्बन्ध	१६१
चन्द्रमा और त्रिपुरसुन्दरी	१६३
षोडशी कला और सुन्दरी	१६४
मन्त्र, चक्र एवं देवता की एकात्मता	१६५
सप्तम अध्याय	**१६६-२०५**
भगवती त्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप	
१. ब्रह्मवैवर्तपुराण की दृष्टि से महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप	१६७
भगवती के विभिन्न स्वरूपों का वर्गीकरण	१६८
भगवती की शक्तियों के व्यापार	१६८
२. भगवती का मालिनी स्वरूप	१६८
वर्णमाला के दो स्वरूप	१६९
उत्तरमालाक्रम सृष्टि	१६९
परात्रिंशिकाक्रम	१६९
उत्तरमालिनी वर्णमाला और मूलतत्त्व	१६९
उत्तरमालिनीक्रम	१७०
परात्रिंशिका की दृष्टि	१७०
मालिनीरूप शब्द से जगतरूप अर्थ की सृष्टि का क्रम	१७०
सच्चिदानन्द, परमशिवस्वरूप अ-अ-क्ष	१७१
भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही जगत्	१७२
भगवती शम्भु का शरीर	१७२
३. महात्रिपुरसुन्दरी का सगुण-साकार एवं निर्गुण-निराकार स्वरूप	१७२

विषय	पृष्ठाङ्क
ललितासहस्रनाम की दृष्टि से भगवती के विभिन्न स्वरूप	१७२
४. त्रिपुरारहस्य में भगवती त्रिपुर-सुन्दरी का स्वरूप	१७६
५. आचार्य भास्करराय की दृष्टि और भगवती त्रिपुरसुन्दरी	१७७
स्थूल रूप	१७८
सूक्ष्म रूप	१७८
पर रूप	१७८
६. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी : सच्चिदानन्दलहरी	१७९
महात्रिपुरसुन्दरी की ब्रह्मात्मकता एवं आनन्दात्मकता	१७९
आनन्दात्मिका विद्या	१८०
आनन्द और उनकी तुलनात्मक श्रेणियाँ	१८०
७. प्रपञ्चनिर्मात्री के रूप में भगवती त्रिपुरसुन्दरी	१८१
शिव-शक्तियोग सृष्टि	१८२
तान्त्रिक आचार्य गौडपाद की दृष्टि	१८२
माण्डूक्योपनिषद् की दृष्टि	१८३
शक्ति ही ब्रह्म	१८३
आचार्य क्षेमराज की दृष्टि	१८४
८. त्रिपुरसुन्दरी शब्दात्मिका-वर्णात्मिका नादात्मिका एवं मन्त्रात्मिका	१८५
भगवती त्रिपुरा, नाद एवं मन्त्र	१८५
९. नादात्मक एवं मातृकात्मक रूप में महात्रिपुरसुन्दरी	१८९
वर्णों का स्वरूप एवं शक्ति के साथ उनका तादात्म्य	१९०
१०. भगवती त्रिपुरसुन्दरी का श्रीचक्रात्मक स्वरूप	१९१
बिन्दुचक्र	१९१
आचार्य भास्करराय की दृष्टि	१९१
पथत्रय	१९२
सालोक्य का पथ	१९२
कैवल्य का पथ	१९२
सामीप्य-सारूप्य-सायुज्य का पथ	१९२
बिन्दुचक्र	१९२
अकथा	१९३
अक्षरा	१९३
त्रिकोण और वसुकोण	१९४
सृष्टिक्रम	१९४
संहारक्रम	१९४
सृष्टिचक्र : वृत्तत्रयविशिष्ट पद्मद्वय	१९६
भूगृहात्मक नवम चक्र	१९७
भगवती का पञ्चभूतात्मक एवं चक्रात्मक स्वरूप	१९८
११. महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप (भावनोपनिषद्)	१९८
भगवती का कुण्डलिनी-स्वरूप और मातृकात्मक स्वरूप	१९९
१२. भगवती त्रिपुरसुन्दरी की सर्वदेव्यात्मकता	२००
१३. भगवती त्रिपुरा का काम-कलात्मक स्वरूप	२०१
कामकला	२०१
कामकला का स्वरूप	२०२
काम एवं कला की अभिन्नता	२०४
अद्वैतवाद	२०५
अष्टम अध्याय	**२०६-२२६**
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वस्वरूप (सौन्दर्यलहरी के आलोक में)	
१. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का कुण्डलिनी-स्वरूप	२०६
२. भगवती का चक्रात्मक स्वरूप	२०६

विषय	पृष्ठाङ्क
३. भगवती का श्रीचक्रात्मक स्वरूप	२०८
४. भगवती का सहस्रारात्मक स्वरूप	२०९
५. भगवती का तत्त्वात्मक एवं शक्त्यात्मक स्वरूप	२०९
सर्वशक्तिवाद	२१०
भगवती का परमशक्त्यात्मक स्वरूप	२१३
६. भगवती का विश्वात्मक स्वरूप	२१४
शक्तिपरिणामवाद	२१५
७. भगवती का मातृस्वरूप	२१५
८. भगवती का विश्वोद्धारक एवं विद्यास्वरूप	२१६
९. भगवती का कामकलास्वरूप	२१७
१०. भगवती का मन्त्रात्मक या श्रीविद्यात्मक स्वरूप	२१७
'ह्रीं' बीज देवी प्रणव एकाक्षर ब्रह्म	२१८
श्रीचक्र एवं श्रीविद्या में भगवती की अनुस्यूतता	२१८
११. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के दो विशेष स्वरूप	२१८
भगवती का सगुण स्वरूप	२२०
भगवती का साकार एवं विग्रहस्वरूप	२२०
भगवती का षट्चक्रात्मक शरीर	२२१
भगवती का षट्चक्रात्मक रूप	२२१
भगवती का किरीट	२२२
भगवती के केश	२२२
भगवती की माँग	२२२
भगवती के घुँघुराले बाल	२२२
भगवती का ललाट	२२२
भगवती की भृकुटी	२२२
भगवती के नेत्र	२२२
१२. भगवती का सौन्दर्यात्मक एवं विभूत्यात्मक स्वरूप	२२२
भगवती के नेत्र	२२४
भगवती की कनपटी	२२४
भगवती का मुख	२२४
भगवती के कानों के कर्णपुष्प	२२४
भगवती की नासिका	२२४
भगवती के ओष्ठ	२२५
भगवती का गला	२२५
भगवती की नाभि	२२५
१३. भगवती का करुणात्मक स्वरूप	२२५
नवम अध्याय	**२२७**
बह्वृचोपनिषद् में महात्रिपुरसुन्दरी का चिच्छक्ति का स्वरूप	
१. भगवती का सर्वसृजनात्मक पक्ष	२२७
२. भगवती का परस्वरूप एवं विद्यास्वरूप	२२७
३. भगवती का आत्मरूप, सच्चिदानन्दरूप, चिन्मात्रस्वरूप, परब्रह्मस्वरूप तथा सोऽहं एवं महाविद्या आदि स्वरूप	२२७
दशम अध्याय	**२२८-२३२**
भगवती त्रिपुरसुन्दरी का सूक्ष्म स्वरूप	
मन्त्रमय भगवती	२२८
भगवती का सूक्ष्मतम स्वरूप (कुण्डलिनी-स्वरूप)	२२९
भगवती का स्वरूप	२२९
भगवती कुलकुण्डलिनी के विविध रूप	२३०
कुण्डलिनी एवं श्रीविद्या का रहस्यार्थ	२३०
श्रीविद्या का रहस्यार्थ	२३१
कुण्डलिनी ही भगवती त्रिपुरा	२३१
एकादश अध्याय	**२३३-२३४**
सङ्केतपद्धति में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप	
शक्तित्रयात्मक भगवती	२३३

विषय	पृष्ठाङ्क
भगवती का मुख	२३३
कामेश्वरी के आयुध	२३३
भगवती का पर्यङ्क	२३४
भगवती का गृह एवं आसन	२३४
श्रीविद्या के लीलाविग्रह	२३४
आत्मशक्ति श्रीविद्या के विभिन्न रूप	२३४
भगवती का शरीर	२३४
द्वादश अध्याय	**२३५**
त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में भगवती त्रिपुरा का स्वरूप	
त्रयोदश अध्याय	**२३६**
त्रिपुरोपनिषद् में भगवती त्रिपुरा का स्वरूप	
चतुर्दश अध्याय	**२३७-२३९**
बह्वृचोपनिषद् में वर्णित भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप	
१. चिच्छक्ति का स्वरूप	२३७
२. शक्त्यात्मक एवं विद्यात्मक स्वरूप	२३७
३. प्रत्यक् चिति स्वरूप	२३७
४. सर्वात्मक स्वरूप	२३८
५. त्रिपुरसुन्दरी की ब्रह्मरूपता	२३८
६. त्रिपुरसुन्दरी की सच्चिदानन्दरूपता	२३८
७. त्रिपुरसुन्दरी की समस्त आकारों में विद्यमानता	२३८
सर्वं खल्विदं महात्रिपुरसुन्दरी	२३८
८. एकमात्र सत्य वस्तु तथा अद्वितीय अखण्ड परब्रह्म के रूप में स्थित महात्रिपुरसुन्दरी	२३९
९. महात्रिपुरसुन्दरी : प्रत्येक जीव की ब्रह्मस्वरूप आत्मा के रूप में	२३९
१०. महात्रिपुरसुन्दरी का अनेक शक्तियों के रूप में अवस्थान	२३९

विषय	पृष्ठाङ्क
पञ्चदश अध्याय	**२४०-२७४**
त्रिपुरसुन्दरी का वाक्चतुष्टयात्मक स्वरूप	
१. परा वाक् का स्वरूप	२४०
सुभगोदयवासना	२४१
व्याकरणागम की दृष्टि	२४१
वाणी के भेद	२४२
पश्यन्ती	२४२
भगवती : परा वाक् की भूमि	२४२
परात्रिंशिका की दृष्टि	२४३
बिन्दु (शिव)	२४४
शङ्कराचार्य की दृष्टि	२४४
परावाक् का स्वरूप	२४४
वाक्चतुष्टय	२४५
वाक् तत्त्व	२४५
प्रकाशांश	२४६
विमर्शांश	२४६
शिवांश-शक्त्यंश का सामरस्य और परा शक्ति का नाम	२४६
कामकलाविलास की दृष्टि	२४७
परा वाक् की भावना के प्रकारत्रय	२४७
अवस्थायें (चेतन तत्त्व के पाँच स्तर)	२४८
शब्दों के स्तर	२४८
वाक्तत्त्व के चार भेद	२४९
परा वाक्	२४९
पश्यन्ती वाक्	२५२
मध्यमा वाक्	२५२
वैखरी वाक्	२५२
आचार्य सोमानन्द एवं अभिनवगुप्त के मत में प्रतीयमान वैषम्य	२५५
पश्यन्ती के भेद	२५६
स्थूल पश्यन्ती	२५६
सूक्ष्म पश्यन्ती	२५६

विषय	पृष्ठाङ्क
पर पश्यन्ती	२५६
मध्यमा : विशेष स्पन्द	२५६
वाणियों का स्थान	२५८
श्रीचक्र में शक्तियों की स्थिति	२५८
एका परा	२५८
तदन्या परा	२५८
मध्यमा	२५९
वैखरी वाक् एवं मध्यमा	२५९
प्रकाशांश विमर्शांश	२६०
तन्त्रसद्भाव की दृष्टि	२६१
नव नाद	२६१
हंसोपनिषद् और नाद के भेद	२६१
स्वच्छन्दतन्त्र और नाद के भेद	२६२
सोमानन्दपाद की दृष्टि	२६३
विमर्श शक्ति और परा-पश्यन्ती आदि वाणियाँ	२६४
नादव्यूह और शब्दवृत्तियाँ	२६४
मध्यमा वाक्	२६५
मध्यमा के भेद	२६६
नटनानन्द द्वारा उल्लिखित नादों के प्रकार	२६६
नवनादमयी सूक्ष्मा का स्वरूप	२६६
स्वात्माराम मुनीन्द्रप्रोक्त नादों के प्रकार	२६७
सुषुम्णा में प्राणों के लय से आविर्भूत अनाहत नादों के प्रकार	२६७
नादक्रम	२६७
शिवसंहिताप्रोक्त नादविधान एवं नादक्रम	२६८
अवस्थाद्वय	२६८
घटावस्था	२६८
परिचयावस्था	२६८
निष्पत्त्यवस्था	२६९
वैखरी वाक्	२६९
वाक्तत्त्व एवं श्रीचक्र में सामरस्य	२६९
अन्य प्रकार के सामरस्य का अभेद	२७०
शब्द की जागरावस्था	२७०
ईक्षण	२७१
ईक्षण के सम्बन्ध में भास्करराय की दृष्टि	२७१
भृङ्गाट वपु	२७२
वैखरी और पञ्चदशी मन्त्र	२७३
सुन्दरी के तीन रूप	२७३
पञ्चदशाक्षरी विद्या	२७४

तृतीय परिच्छेद : अध्याय १६-२२

❁ मन्त्रतत्त्व ❁

षोडश अध्याय — श्रीविद्या एवं मन्त्रतत्त्व	२७९-३२३
शून्यभावना	२८०
नादभावना	२८०
(अ) मन्त्रतत्त्व	२८०
तान्त्रिकों की दृष्टि	२८१
मन्त्रतत्त्व की तात्त्विक दृष्टि एवं उसका तात्त्विक स्वरूप	२८१
मन्त्र और उसके जप की साधना का फलितार्थ	२८२
(आ) मन्त्र-विज्ञान	२८८
शब्दब्रह्म, बिन्दु, महामाया एवं मन्त्र	२८८
मन एवं मन्त्र की मात्रायें	२८९
मन्त्र की मात्रायें	२८९
मन्त्र और मन	२९०
शाब्दी वृत्तियाँ और मन्त्र	२९०
मध्यमा, पश्यन्ती एवं परा	२९०
शब्द के प्रकार और मन्त्र	२९०
मूल मन्त्र का स्वरूप	२९१
बिन्दु-क्षोभ	२९२

विषय	पृष्ठाङ्क
बिन्दु या महामाया तथा शब्द	२९१
परमात्मा और बिन्दु महामाया	२९२
परा वाक् की परा शक्ति	२९३
मन्त्र ही शक्तिसाधना	२९३
शब्दावस्थायें	२९३
मन्त्र ही सृष्टि का आदि, मध्य एवं अन्त	२९५
शब्दब्रह्म और मन्त्र	२९६
सृष्टिक्रम एवं लयक्रम	२९६
प्राणात्मक बीजों से मन्त्र की उत्पत्ति	२९६
योगबीज	२९७
मन्त्र : मन की मात्राओं को क्षीणतर करते जाने का विधान	२९८
मन्त्र : आत्मा की रश्मियाँ	२९८
मन्त्रसाधना : शक्तिसाधना	२९९
शक्ति के रूप	३०१
शक्ति के परिणाम	३०२
विचार और मन्त्र : एक शक्ति के विभिन्न रूप	३०३
मन्त्र और देवता का सम्बन्ध	३०३
मन्त्र और देवता : वाच्य-वाचकसम्बन्ध	३०४
मन्त्राक्षर और देवता के अङ्गों का सम्बन्ध	३०५
मन्त्र और कुण्डलिनी	३०५
मन्त्र और नाद	३०५
मन्त्र और जीव	३०६
मन्त्र और देवता	३०६
(इ) श्रीविद्या	३०६
षोडशाक्षरी विद्या की अवर्णनीय महत्ता	३०७
भगवती के विश्वमय एवं विश्वातीत स्वरूप	३०८
मन्त्र एवं यन्त्र में सामरस्य	३०९
भगवती त्रिपुरसुन्दरी का विश्वात्मक रूप	३०९
श्रीविद्या की रसात्मकता	३१०
(ई) श्रीविद्या या पञ्चदशी मन्त्र	३१०
श्री	३१०
विद्या	३१०
विद्या का मान्त्रिक स्वरूप	३११
श्रीविद्या के मन्त्रावयव	३११
भगवती के पञ्चदशी मन्त्र के खण्ड	३१२
ध्यातव्य बिन्दु	३१२
श्रीविद्या के सम्प्रदाय	३१५
श्रीविद्या और उसके मन्त्राक्षर	३१५
तन्त्रराजतन्त्र : एक विहङ्गमावलोकन	३१५
कादिमत	३१६
त्रिकोण	३१६
पूजा के प्रकार	३१७
अद्वैतभावना	३१७
श्रीसम्प्रदाय	३१८
श्रीविद्या के सम्प्रदाय	३१९
प्रागैतिहासिक युग एवं तत्कालीन आचार्य	३१९
कामराजसन्तानक्रम	३१९
लोपामुद्रासन्तानक्रम	३१९
ऐतिहासिक युग के आचार्य	३२१
श्रीयन्त्र और श्रीविद्या	३२२
दश महाविद्यायें	३२२
श्रीविद्या के द्वादश सम्प्रदाय	३२३
दश महाविद्याओं में प्रधान विद्यायें	३२३
नादतत्त्व एवं श्रीविद्या का अन्तस्सम्बन्ध	३२३
सप्तदश अध्याय — त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में प्रतिपादित द्वादश विद्यायें	**३२४-३४२**
श्रीचक्र एवं मन्त्र में ऐकात्म्य	३२५
श्रीविद्या : पञ्चदशाक्षरी विद्या : द्वादश विद्यायें	३२५
द्वादश विद्याओं का संघटन तन्त्र	३२६
पञ्चदशी मन्त्र और चक्र	३२८
कुण्डलिनी खण्ड एवं पञ्चदशाक्षरी मन्त्र के कूट	३२८

विषय	पृष्ठाङ्क
श्रीविद्या के खण्ड	३२९
श्रीविद्या और उसके पचास वर्ण	३२९
पौर्णमासी एवं अमावस्या का स्वरूप	३३०
ध्यान एवं उपासना-विधानक्रम	३३०
श्रीविद्या में समस्त मातृकाओं का अन्तर्भाव	३३३
ऐक्यचतुष्टय	३३३
श्रीविद्या में वर्णमाला के वर्णों का अन्तर्भाव	३३३
कला, यन्त्र एवं मन्त्र की एकता	३३४
दर्शाद्या पूर्णिमान्त कलायें	३३४
अधिदेवता	३३५
अधिष्ठान देवता	३३५
आग्नेय खण्ड	३३५
सौर खण्ड	३३५
चान्द्र खण्ड	३३६
तैत्तिरीय ब्राह्मण की दृष्टि में श्रीविद्या	३३७
उपासनाहेतु प्रशस्त एवं निषिद्ध तिथियाँ	३३८
श्रीविद्या और कामदेव	३३८
श्रीविद्या एवं महात्रिपुरसुन्दरी की अभिन्नता	३३९
गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या	३४०
गायत्री मन्त्र	३४०
श्रीविद्या का महत्त्व	३४०
श्रीविद्या एवं जगत् में तादात्म्य	३४२
अष्टादश अध्याय	**३४३-३४५**
श्रीविद्या का स्वरूप	
विमर्श शक्ति और श्रीविद्या	३४३
गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या का तादात्म्य	३४३
एकोनविंश अध्याय	**३४६-३५८**
श्रीविद्या के विभिन्न अङ्ग	
बाह्य अङ्ग	३४६
आन्तरिक अङ्ग	३४६
बाह्याडम्बरजन्य अङ्ग एवं उपासना	३४६
अन्तरङ्ग	३४६
बहिरङ्ग	३४७
अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग साधनों या अङ्गों में वरीयताक्रम	३४८
गुरुतत्त्व	३४८
श्रीविद्या एवं श्रीविद्योपासना के अंग	३४९
आन्तरिक साधनों की श्रेष्ठता	३५०
बाह्याडम्बरों का खण्डन	३५०
अन्तर्मुखी साधकों की साधना	३५०
जड़ लोगों की साधना	३५०
कामकला एवं मन्त्र	३५०
बाह्यांगों की विवेचना	३५०
मातृका और श्रीविद्या	३५१
वर्ण एवं शक्ति में सम्बन्ध	३५२
परा वाक्, मातृका, पराहन्ता, विमर्श एवं ललिताभट्टारिका	३५२
शक्ति एवं वर्ण	३५२
मातृका के भेद	३५३
वर्णों का वर्ण	३५५
मन्त्र, ऋषि, छन्द, देवता तथा विनियोग	३५५
मन्त्र और विद्या	३५६
मन्त्रजप के अंग	३५६
जप के सप्तांग	३५६
व्याहृति या प्रणव	३५७
यन्त्र	३५७
बीज	३५७
जप के अंगभूत तत्त्व	३५८
विंश अध्याय	**३५९-३८२**
श्रीविद्या का स्वरूप : गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या	
गायत्री और पञ्चदशी श्रीविद्या	३५९
गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या में तादात्म्य	३५९

विषय	पृष्ठाङ्क
पञ्चदशाक्षरी श्रीविद्या एवं गायत्री	३६०
शक्तित्रय एवं कूटत्रय	३६५
पञ्चदशी विद्या की सर्वात्मकता	३६६
३६ तत्त्व	३६८
श्रीविद्या का विविध स्वरूप	३६८
बिन्दु की उत्पत्ति	३७०
देवी एवं गुरु के शरीर में अभेद	३७०
माता-विद्या-चक्र-स्वगुरु एवं स्वयं में अभेद	३७०
कुण्डलिनी, श्रीविद्या, ललिता एवं साधक में ऐकात्म्य	३७०
अद्वैतभावना का ग्रहण	३७०
श्रीविद्या एवं तन्निहित अर्थों में अभिन्नता	३७०
देवी के समस्त नाम, एक नाम तथा सम्पूर्ण नाम एवं नाम के एकांश में अभिन्नता	३७१
श्रीविद्या एवं कुण्डलिनी में एकात्मकता	३७३
कामकूट एवं गायत्री का समन्वय	३७५
शक्तिकूट एवं गायत्री का समन्वय	३७६
पञ्चदशी विद्या की अन्तर्निहित शक्तियाँ	३७६
ऋग्वेदीय नासदीय सूत्र में निहित बीजमन्त्र	३७७
श्रीविद्योपासना के अंग	३७८
कूटत्रय का व्यष्टि-समष्टि भेद से चतुर्धा भिन्न स्वरूप	३८०
श्रीविद्या (पञ्चदशी मन्त्र) का जप-काल	३८१
जप के अंग	३८१
एकविंश अध्याय ३८३-३९६	
श्रीविद्या और कूटत्रय	
भास्करराय द्वारा प्रस्तुत श्रीविद्या का परिचय	३८४
मनोन्मनी	३८५
वर्णों का काल-मान	३८५
वाग्भवकूट	३८६
कामराजकूट	३८६
शक्तिकूट	३८६
हृल्लेखा का स्वरूप	३८६
नाद	३८७
बिन्दु	३८७
अर्धमात्रा	३८७
हींगत नव नाद	३८८
नादसञ्चरण की क्रियाओं के विभिन्न चरण	३८९
अर्धचन्द्र	३८९
निरोधिका या रोधिनी	३८९
नाद और नादान्त	३८९
ह्रीं में अवस्थित नादनवक	३८९
ह्रीं एवं नादनवक	३९०
नाद की अनुभूति	३९१
मात्राकाल का विवरण और श्रीविद्या	३९१
मात्रा	३९१
मात्राओं का आरोहात्मक सूक्ष्म क्रम	३९२
वर्ण और उच्चारणस्थान तथा उच्चारणप्रयत्न	३९३
वर्णों के उच्चारणस्थान	३९३
वर्णोच्चारण में बाह्य प्रयत्न	३९३
वर्णोच्चारण में आभ्यन्तर प्रयत्न	३९३
कूटत्रय में मन्त्र का जपकाल	३९४
कूटत्रय (५८ वर्ण)	३९४
मन्त्राक्षरों का उत्पत्तिस्थान एवं यत्न	३९५
जागरण	३९६
स्वप्नावस्था	३९६
सुषुप्ति की अवस्था	३९६
तुरीयावस्था	३९६
तुरीयातीतावस्था	३९६

विषय	पृष्ठाङ्क
द्वाविंश अध्याय	**३९७-४२२**
जपतत्त्व	
सप्तविषुव	३९७
नाद का अन्त और तत्त्वबोध	४००
परमपद	४००
पाँच अवस्थायें	४००
हृल्लेखा के अंग	४०१
अवस्थाओं के स्वरूप	४०१
जप के भेद	४०१
मन्त्रावयवों का रहस्य	४०२
जप	४०२
उच्चारणगत कालतत्त्व	४०३
अनुभव-स्थान	४०३
मन्त्रजप और अर्थभावन	४०४
मन्त्रार्थों के भेद	४०४
श्रीविद्या के १५ अर्थ क्यों?	४०४
योगिनीहृदयप्रतिपादित अर्थ-प्रकार	४०५
पञ्चदशी विद्या की जपांग-स्वरूप अवस्थायें	४०८
पञ्चदशी विद्या-मन्त्र, मात्रा और उसका रहस्य	४०९
मात्रा और उच्चारणकाल	४१०
नाद की अवस्थायें (श्रूयमाणता के आधार पर)	४११
प्रणवस्वरूप महायन्त्र और उसके १२ अवयव	४११
शून्य	४११
नाद की अवस्थायें	४११
मात्रा	४१२
मात्रा और उसका रहस्य	४१२
मात्रा और मन्त्र	४१२
बिन्दु	४१३
अर्धचन्द्र एवं रोधिनी की कलायें	४१४
नादों का उच्चारणकाल	४१४
नाद और वर्ण	४१५
ह्रीं के १२ अवयव	४१५
नौ नाद	४१६
पञ्चदशी मन्त्रजपचिह्न	४१६
पञ्चदशी में स्थित वर्ण	४१६
ॐकार की एकादश कलायें	४१७
प्राथमिक तीन भूमियाँ : अ-उ-म	४१९
प्रणव	४२०
प्रणव के अंग	४२०
मात्राओं के विवरण का सारांश	४२१

चतुर्थ परिच्छेद : अध्याय २३-३३

✪ यन्त्रतत्त्व ✪

त्रयोविंश अध्याय	**४२७-४३७**
यन्त्रतत्त्व	
यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र	४२७
केन्द्रीयकरण	४२७
यन्त्र के अंग	४२७
रूप और यन्त्र	४२८
यन्त्र का व्युत्पत्त्यात्मक अर्थ	४२९
चक्र, केन्द्र एवं यन्त्र	४३०
परमयन्त्र	४३२
यन्त्रों के विभिन्न प्रकार	४३३
बिन्दु एवं शक्तिकूट या मूल यन्त्र	४३५
यन्त्र का शाब्दिक अर्थ	४३५
यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र	४३६
मन्त्र के विभिन्न तत्त्व	४३७
यन्त्रसाधना की आवश्यकता	४३७
चतुर्विंश अध्याय	**४३८-४६२**
श्रीयन्त्र	
श्रीयन्त्र का अर्थ	४३८

विषय	पृष्ठाङ्क
श्री का अर्थ	४३८
श्री की विश्रमण अवस्था	४३९
मातृका के खण्डत्रय	४४०
श्रीचक्र	४४०
मर्मस्थान	४४०
सन्धिस्थान	४४०
नवयोनिचक्र	४४०
श्रीचक्र के विभिन्न चक्र	४४१
आभ्यन्तर दश कोण	४४१
श्रीचक्र का आविर्भव	४४१
श्रीचक्र का स्वरूप	४४२
यन्त्र के अंग	४४२
श्रीचक्र के आवरण	४४३
मूल चैतन्य के दो पक्ष	४४३
बाह्य दिदृक्षा की उत्तरोत्तर उत्कटता	४४३
श्रीचक्र एवं पिण्डस्थ यौगिक चक्रों का तादात्म्य	४४६
कौलमत	४४६
नव चक्र एवं उनमें अधिष्ठित शक्तियाँ और उनका तादात्म्य	४४७
षट्चक्रों एवं श्रीयन्त्र के नौ चक्रों में तादात्म्य	४४८
षट्चक्रों एवं श्रीचक्र के नौ चक्रों में तादात्म्य का विवरण	४५२
श्रीयन्त्र में गुरुतत्त्व	४५७
नाड़ीयोग एवं चक्र	४५९
चतुर्दशार के देवता	४६०
बहिर्दशार के देवता	४६०
शक्त्यष्टक	४६०
अष्ट शक्तियाँ	४६०
षोडश शक्तियाँ	४६०
अणिमादिक सिद्धियाँ	४६०
पञ्चबाण	४६०
त्रिकोणाग्र देवता	४६०
अधिदेवता	४६०
श्रीचक्र	४६१
नवरत्नद्वीप	४६१
कल्पतरु	४६१
उद्यान	४६१
षड् ऋतुयें	४६१
पीठ	४६१
इच्छाशक्ति	४६१
होता	४६१
अर्घ्य	४६१
हवि	४६१
श्रीचक्र का पूजन	४६१
कुण्डलिनी	४६१
श्रीचक्र का निर्माण	४६२
पञ्चविंश अध्याय — श्रीचक्र : श्रीयन्त्र : के नवयोन्यात्मक अवयव	**४६३-४७७**
महाबिन्दु	४६३
बिन्दु	४६३
त्रिकोण	४६३
अष्टकोण	४६३
अन्तर्दशार	४६३
बहिर्दशार	४६४
चतुर्दशार	४६४
अष्टदल	४६५
षोडश दल	४६५
भूपुर	४६५
श्रीयन्त्र का आविर्भाव	४६६
श्रीयन्त्र के प्रादुर्भाव की दार्शनिक दृष्टि	४६७
शान्ता और श्रीचक्र का आविर्भाव	४६७
श्रीचक्र का शिव-शक्तिचक्रात्मक आविर्भाव	४६८
श्रीचक्र का निर्माण	४६९

विषय	पृष्ठाङ्क
संहारक्रम के श्रीयन्त्र का स्वरूप	४७०
सृष्टिक्रम के श्रीयन्त्र का स्वरूप	४७०
मातृका एवं तत्त्वों का सम्बन्ध	४७१
वाग्देवता	४७१
सर्वज्ञादि दश देवता	४७१
महाबिन्दु में सबका अन्तर्भाव	४७१
बिन्दु	४७२
चक्र	४७२
श्रीयन्त्र = त्रिपुरात्मक	४७२
श्रीयन्त्र = त्रिखण्डात्मक	४७३
श्रीयन्त्र शरीरयन्त्र के समतुल्य	४७३
श्रीचक्र = त्रितयात्मक रूपों में	४७३
पिण्ड में सहस्रार	४७३
मन्त्र और चक्र में तादात्म्य	४७४
परमशिव	४७४
अहम्	४७४
स्वात्मविश्रान्ति	४७५
विश्वातीत एवं तत्त्वातीत अवस्था	४७५
आत्मविश्रान्ति एवं शुद्ध अहं	४७६
षड्विंश अध्याय	**४७८-५१६**
श्रीयन्त्र और उसका स्वरूप	
सृष्टिक्रम के अनुसार निर्मित श्रीचक्र	४७८
संहारक्रम के अनुसार निर्मित श्रीचक्र	४७८
९ चक्र : शम्भु की ९ मूल प्रकृतियाँ	४७९
चक्रों के नाम एवं अधिष्ठात्री देवी	४७९
सर्वानन्दमय चक्र	४८०
बिन्दु एवं महाबिन्दु	४८१
श्रीचक्र एवं देवी का अन्तस्सम्बन्ध	४८२
बिन्दुचक्र (पूर्णाहन्ता या शिवभाव)	४८२
पूर्णाहन्ता	४८२
महाबिन्दु और बिन्दु	४८३
सर्वसिद्धिप्रदचक्र	४८४
प्रकृतिसम्बन्धिनी विभिन्न दृष्टियाँ	४८४
त्रिकोणचक्र	४८५
विवर्तवाद	४८५
विमर्श के बिन्द्वाकार से सृष्टि	४८५
त्रिकोणात्मक सृष्टि	४८६
रव : शब्दब्रह्म	४८६
परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी का श्रवण-अधिकार	४८७
बिन्दुरूप परावाक् की सर्वकारणरूपता	४८८
शक्ति के तीन रूप	४८८
बिन्दु से त्रिकोण	४८९
महात्रिकोण एवं वाक्चतुष्टय	४९१
महात्रिकोण (महायोनि)	४९१
यन्त्र और पीठ	४९२
महात्रिकोण एवं पीठ	४९३
पीठतत्त्व	४९३
बिन्दु से महाबिन्दु की यात्रा	४९३
महाबिन्दु	४९३
महाबिन्दु एवं मानवपिण्ड के चक्र	४९३
परम बिन्दु का दशधा विभाजन	४९४
सहस्रारस्थ बिन्दु का अभिव्यक्ति-क्रम	४९४
परमबिन्दु और उसकी चक्रात्मक सृष्टि	४९४
मणिपूर चक्र का जन्म	४९४
अनाहत चक्र का जन्म	४९४
विशुद्धाख्य चक्र का जन्म	४९४
आज्ञाचक्र का जन्म	४९५
सर्वानन्दमय बिन्दुचक्र	४९६
अष्टार चक्र	४९६
अन्तर्दशार चक्र	४९६
बहिर्दशार चक्र	४९७
चतुर्दशार चक्र	४९७
अष्टदल चक्र	४९७
षोडशार चक्र	४९७
भूपुर	४९७
श्रीयन्त्र की उपासना के मुख्य प्रकार	४९७

विषय	पृष्ठाङ्क
षट्चक्र-श्रीचक्र-अवस्थापञ्चक-श्रीविद्या-पीठ-वर्ण-शक्ति-नाथ-कूट-लिङ्ग आदि का सामरस्यात्मक अन्तःसम्बन्ध	४९८
अक्षरों में तत्त्वों का समावेश तथा चक्रों से सम्बन्ध	५००
अष्टार (नवयोन्यात्मक) चक्र	५०१
प्रमातृपुर	५०२
श्रीचक्र में स्थित त्रिपुटिचक्र	५०३
श्रीचक्र की योनि	५०३
शिवतत्त्व के १० गुप्त भुवन	५०४
शक्तितत्त्व के गुप्त भुवन	५०४
शान्तितत्त्व के १८ गुप्त भुवन	५०५
बिन्दु	५०६
श्रीविद्या एवं श्रीचक्र की एकता	५११
अन्तर्दशार : सर्वरक्षाकर चक्र	५१२
बहिर्दशार : सर्वार्थसाधक चक्र	५१३
चतुर्दशार चक्र	५१४
अष्टदल और षोडश दल	५१४
भूपुर	५१५
सप्तविंश अध्याय **श्रीचक्र : एक स्वरूपात्मक विवेचन**	**५१७-५३१**
चन्द्रबिम्ब ही श्रीचक्र	५१७
श्रीचक्र और उसका कैलासप्रस्तार	५१८
श्रीचक्र और उसका भूप्रस्तार	५१९
श्रीचक्र की उत्पत्ति एवं उसका संघटन	५१९
भगवती के चरणकमलों की स्थिति	५२१
श्रीचक्र और कला विद्या	५२१
श्रीचक्र के साथ पञ्चदशी मन्त्र एवं वर्णमाला का सामरस्य	५२३
श्रीचक्र एवं पञ्चदशी मन्त्र में ऐकात्म्य	५२४
अष्टाविंश अध्याय **त्रिपुरातापिन्युपनिषत्प्रोक्त नवात्मक चक्रस्वरूप**	**५३२-५३४**
श्रीचक्र का अनुलोमक्रम	५३२
प्रतिलोमक्रम से चक्रों की स्थिति और उनका स्वरूप	५३३
एकोनत्रिंश अध्याय **श्रीचक्र और उसका रहस्यात्मक पक्ष**	**५३५-५४१**
शरीर एवं श्रीचक्र में अभिन्नता	५३५
श्रीचक्र की पूजा	५३५
दश सिद्धियाँ : त्रैलोक्यमोहन चक्र	५३६
सर्वाशापरिपूरक चक्र	५३६
सर्वसंक्षोभण चक्र	५३६
चतुर्दशार चक्र	५३६
बहिर्दशार चक्र	५३७
सर्वरक्षाकर अन्तर्दशार चक्र	५३७
सर्वरोगहर अष्टार चक्र	५३७
सर्वसिद्धिप्रद चक्र	५३८
तिथियों एवं नित्याओं में अभिन्नता	५३८
नित्याओं का जगत् एवं स्वस्वरूप के साथ अभिन्नता	५३९
पिता-माता का रहस्यात्मक स्वरूप	५४०
पुरुषार्थचतुष्टय का स्वरूप	५४०
त्रिंश अध्याय **मानवशरीर और श्रीयन्त्र**	**५४२-५४३**
श्रीचक्र एवं शरीरचक्रों में ऐक्य	५४२
एकत्रिंश अध्याय **मन्त्र-यन्त्र तथा चक्रों का अन्तस्सम्बन्ध**	**५४४-५४७**
ऐक्य के प्रकार	५४४
मातृका त्रिपुरा	५४४
श्रीचक्र में बिन्दु का स्थान	५४७
द्वात्रिंश अध्याय **श्रीचक्र का अर्चन**	**५४८-५५३**
दक्षिणामूर्त्ति सम्प्रदाय	५४८
अर्चनाक्रम	५४८

विषय	पृष्ठाङ्क
हयग्रीव एवं आनन्दभैरव सम्प्रदाय	५४८
श्रीचक्रार्चन	५४९
अर्चन की भावना के प्रकार	५४९
अधिकारभेद से भावना के भेद	५४९
बिन्दु और त्रिकोण	५५१
श्रीचक्रार्चन के प्रमुख रूप	५५२
बाह्य पूजा का क्रम	५५२
श्रीयन्त्र की आभ्यन्तर पूजा	५५२
त्रयस्त्रिंश अध्याय	**५५४-५६१**
श्रीयन्त्र का महत्त्व	
श्रीयन्त्र की सर्वात्मकता	५५६
श्रीचक्रराज एवं उपासक में अभेद	५५६
सर्वोत्पादक श्रीचक्रराज	५५६
मानवशरीर के रूप में श्रीचक्र	५५७
श्रीचक्र की शरीरावयवों एवं पिण्डस्थ चक्रों में स्थिति	५६०

पञ्चम परिच्छेद : अध्याय ३४-४७

✪ उपासनातत्त्व ✪

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना	५६७
चतुस्त्रिंश अध्याय	**५६९-५७५**
पूजातत्त्व : एक दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण	
विज्ञानभैरव की दृष्टि	५६९
सङ्केतपद्धति का मत	५६९
अभिनवगुप्त का मत	५६९
उत्पल की दृष्टि	५६९
भट्टनारायण का मत	५६९
विज्ञानभैरव का प्रश्नोत्तर	५७०
प्रभाकौल का मत	५७०
कुलार्णवतन्त्र की दृष्टि	५७३
पञ्चत्रिंश अध्याय	**५७६-५८८**
भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना	
भगवती का स्थूल रूप	५७६
भगवती का सूक्ष्म रूप	५७७
भगवती का पर रूप	५७७
त्रिपुरोपासना के विभिन्न मत	५७७
आन्तर और बाह्य पूजा	५७७
देव्योपासना और उसके अंग	५७९
वरिवस्यारहस्यम् में आन्तरिक एवं बाह्य अंग	५७९
ऋषि-छन्द-देवता आदि के ज्ञान की महत्ता	५८०
कौलावली-प्रोक्त अन्तर्यजन-विधान	५८१
न्यास-विधान	५८४
तान्त्रिक पूजा-विधान	५८४
बहिर्यजन-विधान	५८५
यन्त्र की स्थापना	५८६
भगवती की उपासना की विविध पद्धतियाँ	५८७
बहिर्याग	५८७
देवता के तीन रूप	५८८
साधना के तीन रूप	५८८
श्रीविद्या के अन्तरङ्गावयव	५८८
क्रियोपासना	५८८
श्रीविद्या के बहिरङ्ग अवयव	५८८
सुन्दरी की उपासना	५८८
षट्त्रिंश अध्याय	**५८९-५९३**
भगवती त्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप और उनकी उपासना	
सूक्ष्मरूपात्मक उपासना-विधि	५९०
लोपामुद्रा विद्या	५९१
लोपामुद्रा विद्या के मूल त्रिक	५९१

विषय	पृष्ठाङ्क
महात्रिपुरसुन्दरी और षोडशी कला	५९३
सप्तत्रिंश अध्याय ५९४-६०४	
भगवती त्रिपुरसुन्दरी की पूजा का आदर्श स्वरूप	
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की त्रिविधोपासना	५९५
परा पूजा का स्वरूप	५९९
शाक्त परम्परा में भगवती की पूजा के स्थान	६०१
भगवती और उपासना	६०२
महात्रिपुरसुन्दरी और आत्मा	६०३
तिथियाँ और कलायें	६०३
अष्टात्रिंश अध्याय ६०५-६१२	
जप और ध्यान तथा समयमत	
शुक्ल पक्ष के दिनों के नाम	६०५
कृष्ण पक्ष के दिनों के नाम	६०५
शक्ति के भेद	६११
चक्रों में श्रीविद्या की अनुस्यूतता	६११
प्रथम कूट	६१२
प्रथम कूट में हल्लेखान्तर्गत कामकला	६१२
गुरु एवं देवता	६१२
एकोनचत्वारिंश अध्याय ६१३-६२०	
भगवती त्रिपुरा की बहिर्यागात्मक उपासना	
भगवती की स्थूलोपासना	६१३
वाममार्गी एवं कौल	६१४
त्रिपुरा के सगुण ध्यान का यागरूप में आत्मीकरण	६१५
शक्ति एवं शक्तिमान में ऐकात्म्य	६१५
शिव एवं शक्ति में भेद	६१६
उपासना द्वारा विश्वरूपत्व-प्राप्ति की प्रक्रिया	६१७

विषय	पृष्ठाङ्क
चत्वारिंश अध्याय ६२१-६२६	
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की सरलतमा पूजा	
ललितासहस्रनाम के अनुसार भगवती का पूजन-विधान	६२१
ललितासहस्रनाम महास्तोत्र का परिचय	६२१
सहस्रनाम के पाठ की विभिन्न विधियाँ	६२२
स्तोत्रपाठ एवं पूजनहेतु विशिष्ट तिथियाँ एवं दिन	६२३
सहस्रनामस्तोत्र के पुरश्चरण की विधि	६२५
श्रीप्राप्त्यर्थ प्रयोग	६२५
ललितासहस्रनाम में उपदिष्ट पूजाविधि एवं पूजोपकरण	६२५
विष उतारने एवं नारी-वशीकरण के प्रसङ्ग में	६२६
एकचत्वारिंश अध्याय ६२७-६२९	
भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना : दास्यभाव	
ज्ञानार्णव में अन्तर्यागात्मक उपासना-दृष्टि	६२७
द्वाचत्वारिंश अध्याय ६३०-६४८	
भावनोपनिषदोक्त भावनाप्रधान भगवती-पूजा	
भावनोपनिषदोक्त पूजा का फल	६३०
होमविषयक भावनोपनिषद्-दृष्टि	६३२
विज्ञानभैरव की दृष्टि	६३२
स्वच्छन्दतन्त्र की दृष्टि	६३२
योगिनीहृदयदीपिका की दृष्टि	६३२
उपचार	६३५
तन्त्रराजतन्त्र की दृष्टि	६३५
आत्मपूजोपनिषद् के अनुसार मानसोपचार	६३८
सन्त कबीरदास की दृष्टि	६३९

विषय	पृष्ठाङ्क
भगवती त्रिपुरसुन्दरी के पञ्चपुष्पबाण	६४१
धनुष	६४१
पाश	६४१
अंकुश	६४१
भगवान् कामेश्वर का स्वरूप	६४२
भगवती ललिता का स्वरूप	६४२
विमर्श एवं लौहित्य का स्वरूप	६४३
सिद्धि का स्वरूप	६४३
जीवन्मुक्ति	६४३
ऋतुओं का स्वरूप	६४४
मुद्रा का स्वरूप	६४४
ज्ञानशक्ति का स्वरूप	६४५
इच्छाशक्ति का स्वरूप	६४५
मूलाधार में नाड़ियों का स्थितिक्रम	६४५
गुरुतत्त्व	६४६
देह का स्वरूप	६४८
कल्पवृक्ष का स्वरूप	६४८
त्रिचत्वारिंश अध्याय	**६४९-६७५**
महात्रिपुरसुन्दरी का पूजा-विधान एवं पूजाफल	
भगवती की भक्त्युपासना	६४९
पूजा का उद्देश्य देव-तादात्म्य	६५०
समयमार्ग	६५०
बिन्दुस्थान	६५१
समया	६५१
पञ्चविध साम्य	६५१
कौलदर्शन और समयदर्शन में दृष्टि-वैषम्य	६५२
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना के सम्प्रदाय	६५२
ऐक्यचतुष्टय	६५३
भगवती का समाराधन	६५३
देवी का स्थूल स्वरूप	६५४
देवी की सपर्या-विधि	६५५
देवी का आन्तर पूजन	६५६
आन्तर पूजा के विधान की अपरिहार्यता	६५६
पूजा की प्रतीकात्मिका दृष्टि	६५६
जीवन्मुक्ति	६५७
भजन और मुक्ति	६५७
वृत्तत्रय	६५९
भगवती की सपर्या	६५९
बिन्दुस्वरूप का विवेचन	६६०
मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान का सर्वोत्पादकत्व	६६१
परमबिन्दु या कारणबिन्दु	६६१
चक्रों की गणना	६६४
मूल दल	६६५
दस दल	६६५
सहस्रार एवं श्रीयन्त्र में ऐक्य	६६६
बिन्दुतत्त्व का त्रिधा विभाजन	६६७
धारणात्मक भजन का स्वरूप	६६८
शंकराचार्य की उपासना-दृष्टि	६६९
आचार्य शङ्कर और कुण्डलिनी	६७०
पूजा-विधान	६७०
सामयिकसम्मत पूजा की विशेषतायें	६७२
चतुश्चत्वारिंश अध्याय	**६७६-६८१**
श्रीदेवी का मन्दिर और उसका पूजन-विधान	
महात्रिपुरसुन्दरी एवं तारा के नित्य धाम में साम्य	६७७
भगवती के मन्दिर की पूजा	६७८
ललिता और पञ्च ब्रह्म में तादात्म्य	६७८
मन्दिरपूजा का विधान	६८०
भगवती का पूजन	६८०
भगवती की चौंसठ उपचारों से पूजा का विधान	६८१

विषय	पृष्ठाङ्क
पञ्चचत्वारिंश अध्याय — मातृकाभेदतन्त्र के अनुसार त्रिपुरसुन्दरी-सपर्या	६८२-६८५
षट्चत्वारिंश अध्याय — योगसाधनात्मक भगवत्युपासना	६८६-६९०
सप्तचत्वारिंश अध्याय — हवनादि तत्त्व और भगवती की उपासना	६९१-६९२

षष्ठ परिच्छेद : अध्याय ४८-६३

✪ उपासना के मुख्य अंग और उनका यथार्थ स्वरूप ✪

अष्टाचत्वारिंश अध्याय — पूजातत्त्व और त्रिपुरोपासना	६९९-७०५
आचार्य महेश्वरानन्द की दृष्टि	६९९
षट्त्रिंशोपचारानुगत भगवत्युपासना	७०१
श्रीचक्र में भगवती त्रिपुरसुन्दरी की पूजा	७०१
परापूजा	७०३
मध्यमा या परापर पूजा	७०४
अपरा पूजा	७०४
अभिनवगुप्त की दृष्टि	७०५
एकोनपञ्चाशत् अध्याय — देवतातत्त्व और त्रिपुरोपासना	७०६-७११
तुरीया वह्नि-सूर्य-चन्द्र-तूर्य कुण्डलिनी का ध्यान	७०९
पूजाकाल	७०९
पूजा के प्रकार	७०९
पञ्चाशत् अध्याय — गुरुतत्त्व और त्रिपुरोपासना	७१२-७२४
शाक्तदृष्टि में गुरुतत्त्व	७१२
मन्त्र, मन्त्रेश्वर एवं मन्त्रमहेश्वर के रूप में गुरुतत्त्व	७१३
विश्वगुरु परम शिव और गुरुपादुका	७१४
गुरुतत्त्व	७१६
गुरु की महत्ता का रहस्य	७१६
गुरुओं की श्रेणी	७१७
परमात्मा ही सर्वोच्च वास्तविक गुरु	७१८
अकल्पित या सांसिद्धिक गुरु	७१८
अकल्पित कल्पक गुरु	७१८
कल्पित गुरु	७१९
कल्पिताकल्पित गुरु	७१९
ज्ञानी गुरु	७१९
योगवाशिष्ठ का मत	७१९
नवचक्रेश्वरतन्त्र का मत	७१९
गुरुओं के भेद-प्रभेद	७२०
गुरु का सर्वातिशायित्व एवं उसका कारण	७२०
स्पन्दसूत्रकार की दृष्टि	७२१
गुरु की सर्वोच्च महिमा का कारण	७२२
ग्रन्थ का ग्रन्थकार भी गुरु है	७२३
भास्करराय की दृष्टि	७२४
एकपञ्चाशत् अध्याय — दीक्षातत्त्व और त्रिपुरोपासना	७२५-७४१
दीक्षा के भेद	७२५
ज्ञान-दीक्षा के भेद	७२६
दीक्षितों के भेद	७२६
श्रेष्ठता का उत्तरोत्तर क्रम	७२६
सप्तविध दीक्षा	७२७
क्रियावती दीक्षा के प्रकारान्तर से अन्य भेद	७२७
शैवमत में वेधदीक्षा	७२७

विषय	पृष्ठाङ्क
साधकों के भेद	७२८
पुत्र या समयी	७२८
दीक्षा : दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण	७२९
दीक्षा के भेद	७३१
समयी दीक्षा	७३१
योगदीक्षा (साधना दीक्षा)	७३१
शिवधर्मिणी, लोकधर्मिणी एवं मोक्षदीक्षा	७३४
क्रिया-दीक्षा	७३५
पुत्रक की कलादीक्षा : कलादीक्षा	७३६
क्रियादीक्षा : शिवत्वयोजन	७३७
शून्य प्रशमन की साधना	७३७
दीक्षा के प्रकार	७३८
समयदीक्षा	७३८
विशेष दीक्षा	७३९
परात्रिंशिका में दीक्षा की दृष्टि	७३९
निर्वाणदीक्षा	७३९
भौतिक दीक्षा एवं नैष्ठिक दीक्षा	७४०
तन्त्रसमाम्नाय में मुक्ति के भेद	७४१
द्वापञ्चाशत् अध्याय ७४२-७५४ प्राणतत्त्व, प्राणसाधना एवं त्रिपुरोपासना	
प्राण और मन का सम्बन्ध	७४२
प्राण-साधना के परिणाम	७४३
प्राण के भेद	७४४
प्राणशक्ति एवं प्राणकुण्डलिनी	७४४
प्राणस्पन्द का कारण	७४४
प्राणसञ्चार का स्थान	७४५
प्राणस्पन्द की उत्पत्ति	७४५
प्राण का महत्त्व	७४५
प्राण और विषुव	७४९
प्राणाध्वा (कालाध्वा)	७५१
प्राणोच्चार का विज्ञान एवं प्राण-प्रशमन	७५१
शून्य-प्रशमन	७५२
प्राणायाम	७५३
प्राणायाम की सार्थकता एवं उसकी लक्ष्मण रेखा	७५४
त्रयःपञ्चाशत् अध्याय ७५५-७५९ मन्त्रतत्त्व, मन्त्रसाधना और त्रिपुरोपासना	
स्वात्मसंवित् का उल्लास : मन्त्र	७५५
संवित् देवी : मन्त्र	७५५
नाद का उल्लास : मन्त्र	७५५
मन्त्रानुसन्धायक की अवस्थायें एवं मन्त्र	७५६
मन्त्रजप के स्थान	७५८
भगवती का वर्णात्मक एवं मन्त्रात्मक स्वरूप तथा सृष्टि-विधान	७५८
वर्णों का मन्त्रों के साथ सम्बन्ध	७५९
मन्त्र एवं जप-साधना का प्रयोजन	७५९
चतुःपञ्चाशत् अध्याय ७६०-७८० जपतत्त्व, जप-साधना और त्रिपुरोपासना	
जप के भेद	७६१
जप : एक दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण	७६१
मन्त्र का स्वभाव, स्वरूप एवं तदनुरूप उनका जपक्रम	७६५
मन्त्र का उदय	७६६
मन्त्र का लय	७६६
जप का स्वरूप	७६८
मन्त्र जप वर्ण एवं भगवती का अन्तःसम्बन्ध	७६९
जप एवं अर्थभावन	७६९
जप के अंग	७७२
त्रिविधात्मक मन्त्र-जप	७७३
विभिन्न प्रकार के जपों के विभिन्न फल	७७३

विषय	पृष्ठाङ्क
जपांग : विषुव	७७४
त्रैपुर दर्शन में जप के लक्षण	७७४
बीजमन्त्र के अवयव	७७५
न्यासों के प्रकार और उनका परिचय	७७५
सत्ता के दो स्तर	७७७
परमात्मा की दो शक्तियाँ	७७७
जप	७७७
आन्तर जप (आभ्यन्तर मन्त्रोपासना)	७७७
प्रणवरूप मूल मन्त्र के अंग	७७८
मन्त्रसाधना के अवयव	७७८
मन्त्रसाधना	७७९
आसन के प्रकार	७८०
पञ्चपञ्चाशत् अध्याय ध्यानतत्त्व, ध्यान-साधना और त्रिपुरोपासना	**७८१-७९२**
ध्यान का स्वरूप	७८१
ध्यान के प्रकार	७८१
स्थूल ध्यान, ज्योतिर्ध्यान एवं सूक्ष्म ध्यान	७८५
ध्यानत्रय की उत्कृष्टता का क्रम	७८६
शिवसंहिता की यौगिक ध्यान-प्रक्रिया या राजयोग	७८६
हृत्पद्म में भगवती का ध्यान	७९०
सुधासिन्धु में भगवती का ध्यान	७९०
सूर्यमण्डल में भगवती का ध्यान	७९१
चन्द्रमण्डल में भगवती का ध्यान	७९१
पिण्डस्थ चक्रों में, कुण्डलिनीस्वरूप में, अवतारोत्पादिका के रूप में एवं कूटत्रय एवं कामकला के रूप में भगवती का ध्यान	७९२
षट्पञ्चाशत् अध्याय न्यासविद्या और त्रिपुरोपासना	**७९३-८०३**
न्यास : सोऽहमस्मि की साधना	७९३
न्यास : देवतादात्म्य की साधना	७९३
न्यास : अद्वैतभाव की भावना	७९५
न्यास की आवश्यकता	७९५
न्यास : अद्वैतभाव की साधना	७९५
न्यास : देवोऽहं एवं विश्वतोऽहं की अनुभूत्यात्मक साधना	७९६
कतिपय न्यासों के उदाहरण	७९६
वैष्णवपद्धति के अनुसार अन्तर्मातृका न्यास	७९७
बहिर्मातृका न्यास	७९८
संहारमातृका न्यास	७९९
अङ्गवक्त्रन्यास	८०१
न्यासपञ्चक का द्वितीय न्यास	८०२
त्रितत्त्वन्यास	८०२
अघोराष्टक न्यास	८०२
शिवसद्भाव न्यास	८०२
जीवन्यास	८०२
ऋषिन्यास	८०३
न्यासक्रिया का फल	८०३
सप्तपञ्चाशत् अध्याय पीठतत्त्व और त्रिपुरोपासना	**८०४-८२७**
बाह्य एवं आन्तर पीठों में तादात्म्य	८०५
पीठ, शरीर एवं श्रीचक्र में तादात्म्यभाव	८०५
पीठन्यास तत्त्व	८०६
पीठ की उत्पत्ति	८०७
पीठ : देवयोनियों का अधिष्ठान	८०७
पीठ के आविर्भाव की पद्धति	८०७
पीठ के प्रकार	८०८
पीठशुद्धि और उसके उपाय	८०८
पञ्चधा पीठ	८०८
पीठतत्त्व का रहस्य	८०९
कामरूप पीठ	८०९
पूर्णगिरि पीठ	८०९
जालन्धर पीठ	८१०

विषय	पृष्ठाङ्क
उड्डीयान पीठ	८११
वाक्तत्त्व और महात्रिकोण	८११
तन्त्राम्नाय-सम्बद्ध पीठचतुष्टय	८१२
विद्या, मन्त्र, ज्ञानादिक पीठ	८१३
देह के बाहर स्थित पीठ	८१४
देह के भीतर स्थित पीठ	८१४
पीठचतुष्टय और उनका स्वरूप	८१६
पीठों का महाभूतों एवं चक्रों से सम्बन्ध	८१७
पीठस्थ एवं पिण्डस्थ ज्योति-लिङ्गों का स्वस्वरूप	८१९
परलिंग	८१९
परिणामवाद	८२१
षट्चक्रों में शिव-शक्तियोग	८२२
इक्यावन पीठों का इतिहास	८२३
छायासती और इक्यावन पीठ	८२३
पीठ-संख्या	८२३
पीठों का देवी से सम्बन्ध	८२६
अष्टापञ्चाशत् अध्याय	**८२८-८३५**
भावतत्त्व और त्रिपुरोपासना	
भावतत्त्व एवं भावना	८२८
महाभाव एवं भावतत्त्व	८२८
भावों के भेद	८२८
साधना में अधिकारभेद	८२९
भावों में पौर्वापर्यक्रम-विधान	८२९
पशुभाव	८३०
वीरभाव	८३१
दिव्यभाव	८३२
दास्यभक्ति की प्रधानता	८३४
एकोनषष्टि अध्याय	**८३६-८६२**
भक्तितत्त्व और त्रिपुरोपासना	
भक्ति-साधना	८३७
भक्ति का स्वरूप और त्रिपुरासिद्धान्त	८३८
ज्ञान-भक्ति-सामञ्जस्य	८४०
अनुभवसूत्र में अद्वैत भक्ति की दृष्टि	८४४
भक्ति : शक्ति की साधना	८४६
महाभाव एवं भक्ति	८४७
रागात्मिका एवं रागानुगा भक्ति	८४७
भक्ति : अन्तःकरण की विशेष वृत्ति	८४७
साध्य भक्ति एवं साधन भक्ति	८४८
साधन भक्ति एवं साध्य भक्ति	८४९
ह्लादिनी शक्ति और भक्ति	८५०
रसों के भेद	८५३
भक्ति की व्याख्या	८५४
भक्ति और ब्रह्मविद्या में भेद	८५४
भक्ति की परिभाषा	८५४
द्रवीभाव के दो रूप	८५४
भावना	८५५
द्रवीभाव के अन्य रूप	८५५
भक्ति और रस का अन्तःसम्बन्ध	८५६
प्रेमभक्ति के प्रेम की विशेषतायें	८५७
प्रेमरूपा भक्ति के भेद	८५८
साधन भक्ति एवं साध्य भक्ति	८५८
भक्ति के विभिन्न प्रकार	८६१
रूपगोस्वामी का भक्ति का विभाजन	८६१
वोपदेवकृत भक्ति का विभाजन	८६१
नारदभक्तिसूत्रविहित भक्ति के प्रकार	८६२
षष्टि अध्याय	**८६३-८६५**
मनस्तत्त्व, ज्ञानतत्त्व और ज्ञान-साधना	
एकषष्टि अध्याय	**८६६-८६८**
शाक्तदर्शन में ज्ञान का स्वरूप	
द्वाषष्टि अध्याय	**८६९-८७६**
शाक्तदर्शन में प्रतिपादित योग-साधना	
ब्रह्मरन्ध्र के नीचे स्थित षट्चक्रों में बीजमन्त्रों का ध्यान	८७३
चक्र और उसके गुण	८७३
चक्र और उसके देवता, नाद एवं संख्या	८७४

विषय	पृष्ठाङ्क
समाधि	८७४
तन्त्र के प्रति नव्य दृष्टि	८७५
शाक्त सम्प्रदाय के गुरु	८७६
त्रिषष्टि अध्याय	**८७७-८८१**
हयग्रीव-प्रतिपादित शाक्तदर्शन में योगस्वरूप की नव्य दृष्टि	
चित्तवृत्तियों के सम्बन्ध में पतञ्जलि का मत	८७८
पञ्चश्रेणी में विभक्त वृत्तियाँ	८७८
आचार्य हयग्रीवोक्त वृत्ति-विभाजन	८७८
नाड़ीयोग	८७८
कुण्डलिनी शक्ति	८७९
प्राण-सञ्चार एवं प्राणविज्ञान	८७९
प्राणायाम	८८०
क्रम-व्युत्क्रम	८८०

चित्रानुक्रमणी

विषय	पृष्ठाङ्क
अर्द्धनारीश्वर	४
तन्त्र में गुरुतत्त्व	११
कुमारी कुण्डलिनी	३२
योषित् कुण्डलिनी	३३
पतिव्रता कुण्डलिनी	३४
पतिव्रता कुण्डलिनी की लयभूमि	३५
श्रीचक्र	३६
ब्रह्म के दो रूप	४०
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का कुण्डलिनी एवं वाक्चतुष्टयात्मक स्वरूप	४५
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप	८८
भगवती का नादस्वरूप	८८
भगवती का मन्त्रात्मक स्वरूप	८८
भगवती का श्रीचक्रात्मक स्वरूप	८८
भगवान् कामेश्वर एवं कामेश्वरी का संयुक्त सामरस्यात्मक स्वरूप	८८
भगवती का सूक्ष्म स्वरूप	८९
त्रिपुरसुन्दरी एवं पञ्चमुखी महादेव	११०
शम्भु का शरीर	१४९
त्रिपुरासिद्धान्त और कुण्डलिनी-तत्त्व	१५९
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप	१६५
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का अन्यतम रूप	१६६
सच्चिदानन्द परमशिवस्वरूप	१७१
भगवती का स्वरूप	२०१
भगवती त्रिपुरसुन्दरी का मातृचक्रात्मक (वाक्तत्त्वात्मक) स्वरूप	२४१
शब्दों के स्तर	२४८
महामन्त्र : ॐ	२७६
शक्ति के रूप : वाणी और मन्त्र	३०१
गायत्री और श्रीविद्या	३४४
द्वादशान्त षट्चक्र, अमृत एवं वर्णों का पारस्परिक सम्बन्ध	३५४
कामकला का रूप	३६२
श्रीविद्या (पञ्चदशाक्षरी मन्त्र)	३८२
कूटत्रय	३८३
तत्त्वद्वय	३८४
श्रीयन्त्र : सृष्टिक्रमानुसार	४२४
श्रीयन्त्र : संहारक्रमानुसार	४२४
वाक्तत्त्व	४४५
मूलाधार चक्र	४४९
स्वाधिष्ठान चक्र	४५०
मणिपूरक चक्र	४५१
अनाहत चक्र	४५३
विशुद्धि चक्र	४५४
आज्ञाचक्र	४५५
श्रीयन्त्र	४५६
कुण्डलिनी	४५७
सहस्रार चक्र	४५८
श्रीचक्र का निर्माण	४६९
श्रीचक्र	४७०
बैन्दवगृह	४९५
उपासना का स्वरूप	५६४
पिण्डस्थ चक्रों का रचनातन्त्र	६६३
मूल चक्र	६६४
उपासना के मुख्य अङ्ग और उनका यथार्थ स्वरूप	६९४

श्रीविद्या-साधना

✪ चेतावनी ✪

पाठकों से निवेदन है कि ग्रन्थ को मात्र पढ़कर ही किसी
प्रकार का तान्त्रिक प्रयोग न करें; उसके लिये
सुयोग्य गुरु की अनुज्ञा आवश्यक होती है।

स्वयम्भू प्रयोग करने पर दुष्परिणाम भी हो सकते हैं।

सर्वचिन्तां परित्यज्य दिनमेकं परीक्षयेत्।
यदि न स्यात्प्रत्ययस्तत्र तदा मेतन्मृषा वचा॥

समस्त चिन्ताओं का त्याग करके मात्र एक दिन साधना का परीक्षणात्मक अभ्यास कीजिए, फिर भी आपको विश्वास न हो तो समझियेगा कि मेरा कथन मिथ्या है।

(नारोपाकृत 'सेकोद्देश टीका' एवं गोरक्षनाथकृत 'अमरौघप्रबोध')

प्रथम परिच्छेद

(अध्याय : १-५)

शाक्त मत एवं श्रीसम्प्रदाय

* शाक्तमत एवं श्रीसम्प्रदाय *

अर्द्धनारीश्वर

॥ श्रीः ॥

प्रथम परिच्छेद

शाक्त मत एवं श्रीसम्प्रदाय

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
शिवापदाम्भोजयुगार्चकाणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।।

(रुद्रयामलतन्त्र)

न गुरोरधिकं शास्त्रं न गुरोरधिकं तपः।
न गुरोरधिकं मन्त्रं न गुरोरधिकं फलम्।।
न गुरोरधिका देवी न गुरोरधिकः शिवः।
न गुरोरधिका मुक्तिर्न गुरोरधिको जपः।। (गुरुगीता)

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः सन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति।। (सौन्दर्यलहरी)

अतस्ते कौलास्ते भगवतिदृढप्राकृतजनाः
इति प्राहुः प्राज्ञाः कुलसमयमार्गद्वयविदः।
महान्तः सेवन्ते सकलजननीं बैन्दवगृहे
शिवाकारां नित्याममृतक्षरिकामैन्दवकलाम्।।

(गौड़पादाचार्य : सुभगोदयस्तुति)

भोगो योगायते सम्यक् पातकं सुकृतायते।
मोक्षायते च संसारः कुलधर्मे कुलेश्वरि।। (कुलार्णवतन्त्र)

▼

प्रथम अध्याय

शाक्त सम्प्रदाय : एक विहंगमावलोकन

श्रीविद्या एवं शक्त्युपासना की शाखायें— शाक्तोपासना के अनेक सम्प्रदाय हैं और उसी के अन्तर्गत श्रीसम्प्रदाय भी एक है। भावनोपनिषद्, देवीपञ्चस्तवी, सौन्दर्य-लहरी, ललितासहस्रनाम आदि ग्रन्थ श्रीविद्या के उच्चस्तरीय ग्रन्थ हैं। इस विद्या का तन्त्र या आगमों में बड़े ही विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। तन्त्रोपासना की विकृतियों ने जब साधनाओं को कलंकित कर दिया, तब इनको परिष्कृत करके तथा वैदिक सिद्धान्तों एवं वैदिक आचारों को स्वीकार करके ऋषियों ने तन्त्र के शुद्धतम रूप को प्रस्तुत किया और वह शुद्धतम रूप 'श्रीविद्या' के नाम से प्रख्यात हुआ।

तान्त्रिक पूजा के अनेक प्रकार हैं। प्रत्येक प्रकार या भेद का नामकरण उपास्य के स्वरूप के आधार पर हुआ है; यथा— 'शैव सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदाय, गाणपत्य सम्प्रदाय, सौर सम्प्रदाय, शाक्त सम्प्रदाय' आदि। मुख्यतया यह तान्त्रिक उपासना तीन भागों में विभक्त हुई, जो निम्नांकित हैं— शैव, वैष्णव एवं शाक्त।

शाक्तोपासना का विकास मुख्यत: श्रीविद्या के रूप में हुआ। यह शाक्तोपासना भी दो शाखाओं में विभाजित हो गई। शक्त्युपासना की एक विधि (या शाखा) बाह्याचारों, बाह्योपकरणों एवं स्थूल पूजा का आश्रय ले कर प्रवृत्त हुई एवं दूसरी परा शक्ति के ध्यान, आन्तर पूजा एवं भावप्राधान्य का आश्रय लेकर प्रवृत्त हुई। बाह्याचारोन्मुखी यह शाक्तोपासना मुख्यत: ६४ तन्त्रों में निहित है, जो कि वेदबाह्य है एवं अन्तरोन्मुखी शक्त्युपासना शुभागमपञ्चक में विहित है। 'शुभागमपञ्चक' वशिष्ठ, सनक, शुक, सनन्दन एव सनत्कुमार के नाम पर विख्यात ५ संहिताओं में निहित है। इसे ही 'समयमार्ग' कहते हैं, जो कि वैदिक अनुशासन, वैदिक शिक्षा एवं वैदिक आचार पर आधारित है। शक्त्युपासना की प्रथम शाखा वेदवाह्य है, इसे ही 'कौलमार्ग' के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार शक्त्युपासना की मुख्यत: दो शाखायें या दो मत हैं—

शक्त्युपासना (शाक्त सम्प्रदाय)— कौलमार्ग एवं समयमार्ग।

आचार्य लक्ष्मीधर एवं भास्कर राय ने अपनी अनुभूत्यात्मक एवं वैदुष्यपूर्ण मार्मिक व्याख्याओं द्वारा श्रीविद्योपासना के क्षेत्र में फैलायी गयी विकृतियों का खण्डन करके श्रीविद्या के वास्तविक एवं वैदिक पक्ष का प्रस्तुतीकरण करते हुए श्रीविद्या का उद्धार किया।

आचार्य लक्ष्मीधर ने श्रीविद्या के सन्दर्भ में व्यक्त शांकर दृष्टि से भी अपना यत्किञ्चित् मत-वैभिन्य प्रकट किया है। आचार्य लक्ष्मीधर एवं आचार्य भास्कर की स्थापनाओं एवं मौलिक दृष्टियों ने श्रीविद्या को अपने विशुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित कर दिया।

'श्रीविद्या' की साधना एवं सिद्धान्त से अनभिज्ञ उपासकों ने उसे अत्यन्त ही विकृत स्वरूप में प्रस्तुत किया था; अत: उसका शुद्धिकरण इन्हीं आचार्यों द्वारा किया गया। 'श्रीविद्या' योग का उच्चतम स्वरूप, विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेम तथा गम्भीर एवं रहस्यात्मक 'परज्ञान' का मूर्तिमान रूप है। शंकराचार्य ने इसके परमाराध्य को 'सुन्दर' के रूप में देखकर ही अपने ग्रन्थ का नाम 'सौन्दर्यलहरी' रक्खा है।

तान्त्रिक उपासना की विभिन्न शैलियाँ हैं—

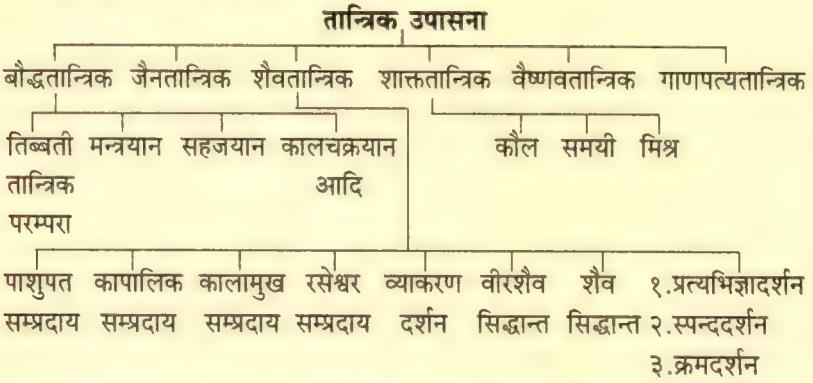

तन्त्र : एक विहंगमावलोकन

तन्त्र या आगम की दृष्टियाँ— जितनी भी आगमिक या तान्त्रिक दृष्टियाँ हैं, उन्हें तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है— द्वैत, अद्वैत एवं द्वैताद्वैत।

शाक्ततन्त्र के प्रमुख लक्षण— आचार्य सोमानन्दपाद ने 'शाक्तविज्ञान' नामक ग्रन्थ में शाक्तविज्ञान के निम्न लक्षण बतलाये हैं—

१. स्थान	६. उत्थापन	१०. अन्तावस्था
२. प्रवेश	७. बोधन	११. विश्राम
३. रूप	८. चक्रविश्राम	१२. परिणाम
४. लक्ष	९. भूमिकागमन	१३. आगमन
५. लक्षण		

कुलार्णवतन्त्र में—

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
मम तत्त्वं विजानन्तो द्वैताद्वैतविवर्जितम्।।

कहकर 'कौलमार्ग' को द्वैताद्वैतविवर्जित मत प्रतिपादित किया गया है।

तन्त्र के विभिन्न प्रकार— तान्त्रिक दृष्टियों एवं दर्शनों के आधार पर तन्त्र के विभिन्न प्रकार हैं; यथा—

१. शैवतन्त्र ३. वैष्णवतन्त्र ५. जैनतन्त्र
२. शाक्ततन्त्र ४. बौद्धतन्त्र

तान्त्रिक सम्प्रदाय— शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध एवं जैन तान्त्रिक सम्प्रदाय प्रसिद्ध सम्प्रदाय-भेद हैं। प्राचीन साहित्य में शैव, माहेश्वर या तान्त्रिक सम्प्रदायों के रूप में निम्न प्रकार प्रसिद्ध हैं—

१. कुलमार्ग (कौलमार्ग) ६. महाव्रतमत ७. जंगममत ८. कारुणिक (कारुक) मत ९. कालानलमत १०. कालामुखमत ११. भैरवमत १२. वाममत १३. भट्टमत १४. नन्दिकेश्वरमत १५. रसेश्वरमत १६. सिद्धान्तमत (शैव) १७. सिद्धान्तमत (रौद्र)
२. पाशुपतमत
३. लाकुलमत
४. कापालिकमत
५. सौममत

त्रिपुरासिद्धान्तप्रतिपाद्य श्रीविद्या के १२ उपासक एवं उनके सम्प्रदाय निम्न हैं—

१. मनु ५. मन्मथ ९. इन्द्र
२. चन्द्र ६. अगस्त्य १०. स्कन्द
३. कुबेर ७. अग्नि ११. शिव
४. लोपामुद्रा ८. सूर्य १२. दुर्वासा (क्रोधभट्टारक)

कौल सम्प्रदाय के दो भेद हैं— पूर्वकौल एवं उत्तरकौल।

'समयाचार' के अनुयायी शंकराचार्य हैं। उनका आगम 'शुभागमपञ्चक' कहलाता है।

शाक्तागम की प्रमुख विद्यायें— दो विद्यायें प्रख्यात हैं— कामराजविद्या (कादि विद्या) एवं लोपामुद्रा विद्या (हादि विद्या)। इन्हें ही कामराजसन्तान एवं लोपामुद्रा-सन्तान भी कहते हैं।

तन्त्र के सप्ताचार (विश्वसारतन्त्र)— तन्त्रशास्त्र में 'सप्ताचारों' का वर्णन किया गया है, जो कि निम्नवत् है—

१. वेदाचार ४. सिद्धान्ताचार ६. वामाचार
२. वैष्णवाचार ५. कौलाचार ७. दक्षिणाचार
३. शैवाचार

तन्त्रशास्त्र में ज्ञान-भक्ति की दृष्टि : (ज्ञान-भक्ति समन्वय)—

द्वैतं मोहाय बोधात्प्राक् प्राप्ते बोधे मनीषया।
भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।।
जाते समरसानन्दे द्वैतमप्यमृतोपमम्।
मित्रयोरिव दम्पत्योर्जीवात्मपरमात्मनोः।।

(बोधसार-३२.४२.४३)

तन्त्र के भावत्रय— अधिकारियों को ध्यान में रखकर तन्त्रशास्त्र ने तान्त्रिक साधना में साधकों की तीन कोटियाँ एवं तीन भावों का विधान किया है[१]—

१. 'पशु'– पशुभाव (भेदभाव)
२. 'वीर'– वीरभाव (भेदाभेदभाव)
३. 'दिव्य'– दिव्यभाव (अभेदभाव)

तन्त्र में यजन के भेद— अधिकारियों को दृष्टिगत कर आचार्यों ने तान्त्रिक यजनों के दो प्रकार निर्धारित किये हैं— बहिर्याग एवं अन्तर्याग।

तन्त्र के पादचतुष्टय— तन्त्रशास्त्र के चार पाद हैं—

१. ज्ञानपाद	३. क्रियापाद
२. योगपाद	४. चर्यापाद

तन्त्र के आगम— इसके तीन भेद हैं— शैवागम, शाक्तागम एवं वैष्णवागम। (जैनतन्त्र, बौद्धतन्त्र)।

तन्त्र या आगम के तत्त्व— द्वैत शैवागम 'त्रिरत्न' मानते हैं— शिव, शक्ति एवं बिन्दु। काश्मीरीय शैवतन्त्र के अनुसार ३६ तत्त्व हैं, फिर भी अद्वैतवाद है।

शैवागम के स्रोत— शिव का सद्योजात मुख (पाँच शिवागम), वामदेवमुख (पाँच शिवागम), अघोरमुख (पाँच रुद्रागम), ईशानमुख (पाँच रुद्रागम), तत्पुरुष मुख (पाँच रुद्रागम)।

इन २८ आगमों के १९८ विभाग हैं। 'रौद्रागम' = द्वैत-अद्वैत दृष्टि। 'शैवागम' = अद्वैत दृष्टि को अंगीकृत नहीं किया गया है।

तन्त्र के षट् कर्म— तन्त्रशास्त्र में अभिचार कर्मों के अन्तर्गत षट् कर्मों का विधान है, जो कि निम्न है—

१. मारण	३. उच्चाटन	५. स्तम्भन
२. मोहन	४. वशीकरण	६. द्वेषण

कहा भी है— शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटनं तथा।
मारणं तानि संशन्ति षट्कर्माणि मनीषिणः।। (उड्डीशतन्त्र)

तन्त्र का भोग-मोक्षसमन्वयवाद— तन्त्र में राग-विराग या भोग-मोक्ष में समन्वय स्थापित किया गया है—

योगी चेन्नैव भोगी स्याद् भोगी चेन्नैव योगवित्।
भोगयोगात्मकं कौलं तस्मात् सर्वाधिकः प्रिये।
मोक्षायते च संसारः कुलधर्मः कुलेश्वरि !।। (कुलार्णवतन्त्र)

---

१. बहुजापात्तथा होमात्कायक्लेशात्तु विस्तरैः।
न भावेन विना चैव तन्त्रमन्त्राः फलप्रदा।। (कौलावली तन्त्र)

तन्त्र के पञ्च मकार— ये पञ्च मकार निम्न हैं—

मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रां मैथुनमेव च।
मकारपञ्चकं कृत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।

शाक्तागम के भेद— शाक्तागम के ३ भेद हैं— सात्त्विक, राजस और तामस। क्रमशः सात्त्विक आगम = तन्त्र, राजस आगम = यामल एवं तामस आगम = डामर कहलाते हैं।

शाक्तोपासना के मुख्य केन्द्र— शाक्तागम की अनुवर्तन करने वाली उपासना के तीन मुख्य केन्द्र भी हैं, जो कि निम्न हैं—

काश्मीर, काञ्ची एवं कामाख्या। इनमें से काश्मीर और काञ्ची 'श्रीविद्या' के केन्द्र हैं तथा कामाख्या 'कौलमत' का केन्द्र है।

शाक्तों के मुख्य सम्प्रदाय— शाक्त तान्त्रिकों के तीन प्रमुख मार्ग हैं, जो कि निम्नवत् हैं— कौलमार्ग, मिश्रमार्ग एवं समयमार्ग।

'सम्मोहनतन्त्र' के अनुसार शाक्त सम्प्रदाय ९ आम्नायों एवं ४ सम्प्रदायों में विभक्त था। ये सम्प्रदाय निम्नांकित हैं— केरल, काश्मीर, गौड़ एवं विलास।

कौल सम्प्रदाय— चक्रपूजा का शाक्त सम्प्रदाय में अत्यधिक महत्त्व है। इस पूजा की दृष्टि से शाक्तों के मुख्यतः दो वर्ग हैं— कौलिक और समयी। कौलिकों के भी दो वर्ग हैं— पूर्वकौल एवं उत्तरकौल। पूर्वकौल स्त्रीरूप की काल्पनिक पूजा करते हैं, किन्तु उत्तरकौल जीवित सुन्दरी के मांसल योनि की प्रत्यक्ष पूजा करते हैं। कौल पञ्चमकारों— मदिरा, मांस, मधु, मत्स्य एवं मैथुन— को अपनी उपास्या देवी को समर्पित करते हैं और तदनन्तर उसे प्रसादरूप में स्वयं भी ग्रहण करते हैं। यही कही जाती है— 'पञ्चमकारोपासना'।

तन्त्र में गुरुतत्त्व

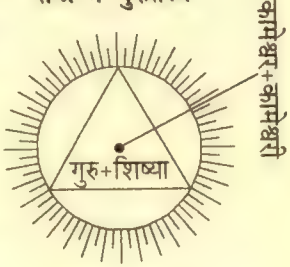

गुरु एवं शिष्या दोनों त्रिकोणबिन्दु में अपृथक् रूप में रहते हैं।

पूर्वकौल एवं उत्तरकौल— पूर्वकौल एवं उत्तरकौल— दोनों ही त्रिपुरसुन्दरी की पूजा करते हैं।[१] भैरवीचक्र के प्रारम्भ होने पर वर्णभेद नहीं रहता, किन्तु भैरवीचक्र के समाप्त होने पर पुनः वर्णभेद मान्य हो जाने के कारण सभी पृथक्-पृथक् वर्ण के हो जाते हैं। उपांगललिता की भी पूजा की जाती है। इसका पूजन-समय आश्विन शुक्ल पक्ष की पञ्चमी और ललिता की पूजा प्रथम दिनों में सम्पन्न हो जाती है। वैसे उपांग ललिता की पूजा वैधव्य-निवारणार्थ की जाती है।

---

१. वेदादिभ्यः परं शैवं शैवाद्वामं च दक्षिणम्।
दक्षिणाच्च परं कौलं कौलात्परतरं न हि।। (तन्त्रालोक)

श्रीविद्या के सम्प्रदाय— श्रीविद्या के द्वादश सम्प्रदाय हैं—

१. मनुसम्प्रदाय	५. मन्मथसम्प्रदाय	९. इन्द्रसम्प्रदाय
२. चन्द्रसम्प्रदाय	६. अगस्त्यसम्प्रदाय	१०. स्कन्दसम्प्रदाय
३. कुबेरसम्प्रदाय	७. अग्निसम्प्रदाय	११. शिवसम्प्रदाय
४. लोपामुद्रासम्प्रदाय	८. सूर्यसम्प्रदाय	१२. क्रोधभट्टारकसम्प्रदाय

कहा भी गया है—

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः।।

त्रिपुरासिद्धान्तप्रतिपाद्य श्रीविद्या के ये ही द्वादश उपासक हैं।

इन सम्प्रदायों में चौथा एवं पाँचवाँ सम्प्रदाय (कादिविद्या : कामराजविद्या एवं लोपामुद्रा विद्या : हादिविद्या) एवं मन्मथसम्प्रदाय तथा लोपामुद्रा सम्प्रदाय ही सम्प्रति प्रचलित है।

त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य खण्ड में कामदेव के द्वारा घोर तप करके श्रीविद्यादेवी द्वारा वर प्राप्त करने की कथा वर्णित है। 'लोपामुद्रा' ऋग्वेद की अन्यतम ऋषि हैं (ऋग्वेद : १.१७९.१-२)। ये ऋषि अगस्त्य की भार्या भी थीं। इन्होंने श्रीविद्या की आराधना करके सिद्धि प्राप्त की थी। जिस मन्त्र की साधना द्वारा इन्होंने सिद्धि प्राप्त की, उसका ही नाम है— लोपामुद्रा विद्या एवं हादिविद्या।

'कामकलाविलास' में कहा गया है कि श्रीविद्यारत्नागम में दो सन्तानें हैं—

श्रीविद्यागम की सन्तानें

कामराजसन्तान लोपामुद्रासन्तान

दश महाविद्याओं में तृतीय विद्या 'षोडशी महाविद्या' ही है। शंकराचार्य के सभी मठों में आज भी 'श्रीयन्त्र' एवं 'श्रीविद्या' की पूजा की जाती है।

देश का वर्गीकरण— तान्त्रिकों ने भौगोलिक दृष्टि से भारत एवं एशिया महाद्वीप को तीन भागों में विभाजित किया है—

१. विष्णुक्रान्ता = भारत का उत्तरपूर्वीय प्रदेश (विन्ध्य से लेकर चट्टग्राम तक)।

२. रथक्रान्ता = विन्ध्य से महाचीन (तिब्बत) तक का प्रदेश।

३. अश्वक्रान्ता = (मतभेद है) शाक्तमंगल तन्त्र के अनुसार विन्ध्य से लेकर दक्षिण समुद्रपर्यन्त के समस्त प्रदेश एवं 'महासिद्धिसार' के अनुसार करतोया नदी से जावा तक का समस्त प्रदेश।

इन तीनों क्रान्ताओं में ६४ प्रकार के तन्त्र प्रचलित हैं।

शाक्त पूजा के प्रधान केन्द्र

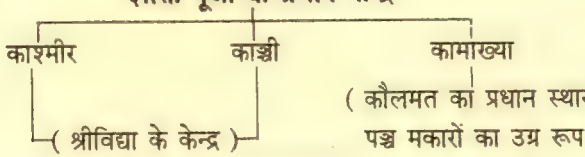

काशी में इन तीनों ही सिद्धान्तों का समन्वय है।

शाक्ततन्त्रों का सम्बन्ध अथर्ववेद के सौभाग्यकाण्ड से माना जाता है। ऋग्वेद एवं यजुर्वेद से सम्बद्ध तान्त्रिक उपनिषद् भी हैं। तान्त्रिक उपनिषदों में प्रसिद्ध तन्त्र निम्नांकित हैं—

कौलोपनिषद्, त्रिपुरामहोपनिषद्, भावनोपनिषद्, बह्वृचोपनिषद्, अरुणोपनिषद्, अद्वैतभावनोपनिषद्, कालिका एवं तारा उपनिषद् आदि। पुराणों में देवीभागवत, कालिका, मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड पुराण आदि प्रसिद्ध हैं।

तान्त्रिक आचार्य

शाक्ततन्त्र के आचार्य एवं उनकी रचनायें[1]— श्रीदत्तात्रेय के त्रिपुरातत्त्व से सम्बद्ध 'अष्टादशसाहस्री' एवं 'दत्तसंहिता' दुर्बोध थी; अतः उस पर परशुराम ने ५० खण्डों एवं ६००० सूत्रों में एक ग्रन्थ लिखा। हारितायन सुमेधा ने इसे भी संक्षिप्त करके 'परशुरामकल्पसूत्र' लिखा। 'अगस्त्य' ने 'शक्तिसूत्र' (११३ सूत्रों में) लिखा। दुर्वासा-रचित 'शक्तिमहिम्नसूत्र' आज भी प्राप्त है। आचार्य गौड़पाद (श्रीविद्या के महान उपासक) ने 'सुभगोदयस्तोत्र' लिखा। 'श्रीविद्यारत्नसूत्र' भी उन्हीं की रचना है। आचार्य शंकर (श्रीविद्या के बहुत बड़े उपासक) ने 'सौन्दर्यलहरी' एवं 'ललितात्रिशतीभाष्य' लिखा। लक्ष्मीधर की लक्ष्मीधरा टीका 'समयमार्ग' के रहस्यों को प्रकट करने वाली श्री सम्प्रदाय की उत्कृष्ट टीका है।

---

१. **शैवमत की नादक्रमात्मिका कुल-परम्परा**— आयातिक्रम अर्थात् जिस क्रम से शास्त्र आविर्भूत हुआ—

प्रथम परम्परा— भैरव → भैरवी → लाकुल → अनन्त → गहनेश → ब्रह्मा → इन्द्र → बृहस्पति।

इस परम्परा में ९ गुरु एवं ९ करोड़ मन्त्र हैं।

द्वितीय परम्परा— भैरव → भैरवी → स्वच्छन्द → लाकुल → अणुराट् (अनन्त) → गहनेश → ब्रह्मा → शक्र → गुरु।

इस परम्परा में आगे दक्ष, वामन, भार्गव, वासुकि, रावण, विभीषण, राम, लक्ष्मण आदि शास्ता हैं।

तृतीय परम्परा— दक्ष → चण्ड → हरिश्चन्द्र → प्रमथ भीम → शकुनि → सुमति → नन्द → कृष्ण।

अभिनवगुप्त द्वारा स्वीकृत परम्परा— लक्ष्मण → सिद्धगण → दानव → गुह्यक →

पुण्यानन्दनाथ ने 'कामकलाविलास' एवं नटनानन्दनाथ ने उस पर 'चिद्वल्ली' टीका लिखी। 'योगिनीहृदय' एवं अमृतानन्दनाथ की 'योगिनीहृदयदीपिका' टीका एवं भास्कर राय का 'सेतुबन्ध' (योगिनीहृदय की टीका) तथा 'वरिवस्यारहस्यम्' एवं 'ललितासहस्रनाम' पर लिखा गया भाष्य– 'सौभाग्यभास्कर' उच्च कोटि के ग्रन्थ हैं। भास्कर राय ने कौल, त्रिपुरा और 'भावना उपनिषद्' पर भी टीकायें लिखी। भास्कर के शिष्य उमानन्दनाथ ने 'नित्योत्सव' लिखा। रामेश्वसूरि ने 'सौभाग्यसुधोदय' (परशुरामकल्पसूत्र की टीका) लिखा। कौलमत के आचार्यों में पूर्णानन्द ने 'षट्चक्रनिरूपणम्' तथा 'श्रीतत्त्वचिन्तामणि' लिखा। इन्होंने अन्य ग्रन्थ भी लिखे; यथा— 'श्यामारहस्य, शाक्तक्रम, तत्त्वानन्दतरंगिणी।' सर्वानन्द का 'सर्वोल्लास' अत्यन्त ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

शाक्तों की प्रयोगपद्धति के निरूपणार्थ निम्न ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—

१. योगिनी तन्त्र	६. हरगौरी तन्त्र	११. सर्वोल्लास तन्त्र
२. वाराही तन्त्र	७. शाक्तिसंगम तन्त्र	१२. महानिर्वाण तन्त्र
३. कात्यायनी तन्त्र	८. लक्ष्मी तन्त्र	१३. कुलार्णव तन्त्र
४. मरीचि तन्त्र	९. सम्मोहन तन्त्र	१४. निरुत्तर तन्त्र
५. डामर तन्त्र	१०. नेत्र तन्त्र	

शाक्तमत के प्रमुख व्याख्यान-ग्रन्थ मुख्यत: निम्न हैं—

योगीजन → राजा। राजाओं द्वारा शास्त्र जब नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये, तब श्रीकण्ठ की आज्ञा से सिद्ध शैवों का अवतरण हुआ। इनमें त्र्यम्बक, आमर्दक एवं श्रीनाथ त्रिकदर्शनानुयायी अद्वैतवाद के समर्थक हुये। वसुगुप्त, सोमानन्द, कल्लट, उत्पल, रामकण्ठ, क्षेमराज, अभिनवगुप्त, भास्कर आदि आचार्य इसी परम्परा एवं अद्वैतवाद के प्रतिपादक आचार्य हैं।

श्रीकण्ठ की आज्ञा से त्र्यम्बक, आमर्दक एवं श्रीनाथ नामक शैवाचार्यों ने अद्वयवाद, द्वैतवाद एवं द्वयाद्वयवाद का प्रवर्त्तन एवं प्रतिपादन किया। इनमें त्र्यम्बक की वंशपरम्परा प्रवर्द्धित हुई। आमर्दक की पुत्री का वंशक्रम चला। वह सन्तान 'अर्धत्रैयम्बक' रूप से प्रतिष्ठित हुई। इस प्रकार तीन के स्थान पर साढ़े तीन वंशपरम्परा चली। साढ़े तीन मठिकायें हुईं— श्रीसन्तति, आमर्दक, त्रैयम्बक एवं अर्द्धत्रैयम्बक। श्रीकण्ठनाथ ने अद्वयवादी शैवशास्त्र का प्रवर्त्तन किया। त्र्यम्बक अद्वैतवादी परम्परा के प्रवर्त्तक श्रीकण्ठ के पुत्र हैं। आमर्दक द्वैतवादी परम्परा के प्रवर्त्तक थे। त्रैयम्बक सन्तति त्र्यम्बकपरम्परा को संकेतित करता है।

शिवशासन (शैवमत) के उच्छिन्न होने पर श्रीकण्ठ ने कैलास पर्वत पर भ्रमण करते समय दुर्वासा को शैवशासन की रक्षा करने हेतु आदिष्ट किया था—

कैलासाद्रौ भ्रमन्देवो मूर्त्या श्रीकण्ठरूपया । अनुग्रहायावतीर्णश्चोदयामास भूतले ।।
मुनिं दुर्वाससं नाम भगवानूर्ध्वरेतसम् । नोच्छिद्यते यथाशास्त्रं रहस्यं कुरु तादृशम् ।।
तत: स भगवान्देवादादेशं प्राप्य यत्नत: । ससर्ज मानसं पुत्रं त्र्यम्बकादित्यनामकम् ।।
श्रीमच्छ्रीकण्ठनाथाज्ञावशात्सिद्धा अवातरन् । त्र्यम्बकामर्दकाभिख्यश्रीनाथा अद्वये द्वये ।।

१. परात्रिंशिका
२. मालिनीविजय
३. संवित्सिद्धि
४. तन्त्रराज तन्त्र
५. तन्त्रसार
६. तन्त्रवटधानिका
७. षट्त्रिंशत्तत्त्वसन्दोह
८. विज्ञानभैरव
९. स्पन्दसन्दोह
१०. शिवसूत्रविमर्शिनी
११. स्पन्दकारिका
१२. त्रिपुरारहस्य
१३. योगिनीहृदय
१४. महार्थमञ्जरी
१५. वामकेश्वर तन्त्र
१६. मातृकाचक्रविवेक
१७. शक्तितत्त्वविमर्शिनी
१८. समयमत—
१. वसिष्ठसंहिता
२. सनकसंहिता
३. शुकसंहिता
४. सनन्दनसंहिता
५. सनत्कुमारसंहिता

काश्मीरी शैव भी शाक्त ही हैं।

शाक्त युग

फर्कुहर ने The Religious Qest of India (पृ०-१६७) में लिखा है कि शाक्त-युग ५०० ई० से ९०० ई० तक है। फर्कुहर के मतानुसार कुब्जिकातन्त्र ७वीं सदी का है और यामल साहित्य (ब्रह्मयामल, 'विष्णुयामल', रुद्रयामल, लक्ष्मीयामल, उमायामल, स्कन्दयामल, गणेशयामल आदि) ९०० से १३५० ईसा के मध्य के हैं। कौलोपनिषद, परशुरामकल्पसूत्र, त्रिपुरातापनीय, त्रिपुरषट्चक्र, भावना उपनिषद्, 'देवी उपनिषद्' एवं शारदातिलक आदि भी इसी युग की रचनायें हैं। इसी युग में वाम मार्ग के विपरीत दक्षिण मार्ग की प्रवृत्ति बढ़ी। आज अधिकतर मन्दिरों में दक्षिणपन्थी शाक्तमत का ही प्रभाव है। १३वीं शताब्दी के बाद से वैदिक आचारों की ओर उन्मुखता एवं शाक्त धर्म में सुधार बढ़ा और शंकराचार्य ने वाममार्गी के स्थान पर दक्षिणमार्गी साधना प्रच-लित की। लक्ष्मीधर (सम्भवत: १२६८-१३७९ ई०) ने सुधारवाद का शंखनाद किया और 'सौन्दर्यलहरी' की अपनी टीका में कौल, मिश्र एवं समय— इन तीन मार्गों का उल्लेख करते हुये समयमत के तन्त्रों को ही शुद्ध तन्त्र घोषित किया। 'कौलमार्ग' वामा-चारी तान्त्रिक पद्धति है। इनमें भोग से मुक्ति प्राप्त करने की दृष्टि स्वीकृत है और 'मिश्रमार्ग' में भोग एवं मुक्ति— दोनों का ही विधान स्वीकृत है। ये लौकिक सिद्धि एवं पारलौकिक सिद्धि— दोनों पर ही बल देते हैं। चन्द्रकला, ज्योत्स्नावती, कलानिधि आदि इनके आठ मार्ग हैं।

काश्मीरी तान्त्रिकों के ग्रन्थ— तन्त्रालोक, प्रत्यभिज्ञासूत्र, महार्थमञ्जरी, स्पन्दकारिका, मालिनीविजय, तन्त्रसार आदि श्रीविद्या (त्रिपुरसुन्दरी) के प्रतिपादक ग्रन्थ माने जाते हैं।

आम्नाय-विभाजन

भगवान् शिव के ६ मुखों से तन्त्रों का आविर्भाव हुआ है और उन्हीं शिवमुखों से देवी-देवताओं का भी आविर्भाव हुआ है; यथा—

आम्नाय— शिव के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व एवं अधोमुख से उत्पन्न।

१. पूर्वाम्नाय (मन्त्रयोग एवं सृष्टिरूप पूर्वाम्नाय से)— भुवनेश्वरी, त्रिपुरा, ललिता, पद्मा, शूलिनी, सरस्वती, त्वरिता, नित्या, अन्नपूर्णा, महालक्ष्मी आदि देवियाँ।

२. पश्चिमाम्नाय (कर्मयोग एवं संहाररूप पश्चिमाम्नाय से)— गोपाल, कृष्ण, नारायण, वासुदेव, नृसिंह, वामन, वराह, रामचन्द्र, अग्नि, यम, सूर्य, हनुमान आदि।

३. उत्तराम्नाय (ज्ञानयोग एवं अनुग्रहरूप उत्तराम्नाय से)— महाकाली, गुह्यकाली, श्मशानकाली, भद्रकाली आदि।

४. दक्षिणाम्नाय (भक्तियोग एवं स्थितिरूप दक्षिणाम्नाय से)— प्रसाद सदाशिव, वटुक, मञ्जुघोष (बौद्धदेवता), भैरव आदि देवता।

५. अधाम्नाय— देवस्थान, आसन, माला, नैवेद्य, बलिदान, साधना, पुरश्चरण, मन्त्रसिद्धि आदि।[१]

६. ऊर्ध्वाम्नाय— (क) कौलमत (कौलों के मत से)।
(ख) समयमत (समयमार्गियों के मत से)।

शाक्तमत पर प्रकाश डालने वाले विदेशी विद्वानों में ग्लैस्नैल, कोनो, जिमर, हापकिंस, विलियम वार्ड, विल्सन, मोनियर विलियम्स, बार्थ, विलियम क्रुक, विंटरनिट्ज, पाइने एवं आर्थर एवेलान या सर जान वुडरफ़ आदि प्रसिद्ध माने जाते हैं।

हापकिंस, विलियम वार्ड, विलसन, मोनियर विलियम्स, वार्थ, विलियम क्रुक आदि शाक्तमत के निन्दक थे; क्योंकि उन्होंने तन्त्र के वामाचार की दृष्टि से ही तन्त्र को देखा था, न कि समग्र दृष्टि से।

'परशुरामकल्पसूत्र' ने आम्नायों की नूतन व्याख्या प्रस्तुत करके इन्हें 'सृष्टिरूप'– मन्त्रयोगात्मक, 'स्थितिरूप'— भक्तियोगात्मक, 'संहाररूप'— कर्मयोगात्मक, 'अनुग्रहरूप'— ज्ञानयोगात्मक, गुप्ताम्नाय— सहजावस्थात्मक बतलाया है।

१. पूर्वाम्नाय = अज्ञानावस्था। 'पापोऽहं पाकर्माऽहं' की मानसिकता। आराध्य को स्वामी एवं अपने को दास मानना।

२. दक्षिणाम्नाय = ज्ञान की भूमिका का प्रारम्भ बिन्दु— प्रस्थानबिन्दु।

३. पश्चिमाम्नाय = ज्ञान की उत्तरार्द्ध अवस्था। उपासक-उपास्य में अभेद-प्रतिपत्ति की भावना।

४. उत्तराम्नाय = ज्ञान की पूर्णता की स्थिति।

५. ऊर्ध्वाम्नाय = ज्ञान-भूमिका की पराकाष्ठा (साधक का इस स्तर पर स्वयं सच्चिदानन्द बन जाना)।[२]

---

१. जान वुडरफ़— 'शक्ति ऐण्ड शाक्ताज़'।

२. प्रत्यभिज्ञादर्शन एवं शाक्तदर्शन— दोनों ही अद्वैतवादी हैं तथा दोनों ही के अनुसार शिव-शक्ति का सामरस्य ही अद्वय परमेश्वर या परब्रह्म है :

शाक्तमत और उसका आदिकाल

रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का मत— भण्डारकर महोदय का कथन है कि मैंने आरम्भ से गृह्यसूत्रों तक वैदिक साहित्य की परीक्षा की, किन्तु मुझे कहीं भी शक्ति-सम्पन्न किसी देवी का उल्लेख नहीं मिला। रुद्राणी, भवानी जैसे कुछ नाम अवश्य मिलते हैं, किन्तु वे व्युत्पन्नमात्र हैं। इनसे किसी शक्तिसम्पन्न स्वतन्त्र देवी के अस्तित्व का ज्ञान नहीं होता। उमा भी एक देव की पत्नी ही हैं और प्रभाव में अपने पति से ऊपर नहीं है;[१] किन्तु महाभारत (भीष्म-पर्व, अध्याय-२३) में कृष्ण के परामर्श पर अर्जुन दुर्गा की स्तुति करते हैं और भावी युद्ध में विजयार्थ उनसे प्रार्थना करते हैं। निष्कर्ष यह कि इस समय के पूर्व ही दुर्गा एक शक्तिसम्पन्न देवी हो चुकी थीं। उनकी स्तुति में उनको इन नामों से पुकारा गया है— कुमारी, काली, कपाली, महाकाली, चण्डी, कात्यायनी, कराला, विजया, कौशिकी, उमा एवं कान्तारवासिनी।

महाभारत के विराट पर्व (अध्याय-६) में युधिष्ठिर ने देवी की स्तुति की है। सम्भवत: यह प्रक्षिप्त अंश है। ये महिषासुरमर्दिनी हैं और सुरा, मांस तथा पशुओं में अनुरक्त हैं। वे यशोदागर्भसम्भूता हैं। कंस के द्वारा पत्थर पर पटकी जाने पर वे स्वर्ग चली गईं। वे नारायण की प्रियतमा एवं वासुदेव की भगिनी हैं और विन्ध्याचल पर्वत पर स्थायी रूप से निवास करती हैं।

हरिवंश पुराण (श्लोक-३२-३६) में विष्णु के पाताललोक जाकर कालरूपिणी निद्रा से यशोदा की पुत्री बनने के अनुरोध का उल्लेख आता है। उन देवी ने कहा कि मैं 'कौशिकी' के नाम से अवतरित होऊँगी, विन्ध्याचल पर स्थायी रूप से रहूँगी, शुम्भ-निशुम्भ का वध करूँगी तथा पशु-बलि से पूजित होऊँगी। यहीं आप्या (दुर्गा) की स्तुति भी उद्धृत की गई है, जिसमें उन्हें सुरा एवं मांस की अनुरागिणी तथा शबरों, पुलिन्दों, बर्बरों एवं अन्य वन्य जातियों की देवी के रूप में चित्रित किया गया है।

मार्कण्डेय पुराण (अध्याय-८२) के अनुसार 'महिषासुरमर्दिनी' देवी शिव, विष्णु, ब्रह्मा एवं विभिन्न देवों के प्रचण्ड तेज से निर्मित हुई थीं। उन्हें 'चण्डी' एवं 'अम्बिका' कहा गया है। श्रीचक्र देवी का स्थूल शरीर है।[२]

श्रीचक्र— श्रीचक्र-स्थित वृत्तत्रय रक्त, शुक्ल एवं मिश्र— बिन्दुत्रय के तेजस्वरूप हैं। ये ही भगवती त्रिपुरसुन्दरी के नेत्रत्रय हैं। 'रक्तबिन्दु' अग्निस्वरूप, 'श्वेतबिन्दु' सोम-स्वरूप, एवं मिश्रबिन्दु सूर्यस्वरूप है। भूपुरत्रय में आदि, कादि, त्रिखण्डा मातृका है।

शिवशक्तिरिति ह्येकं तत्त्वमाहुर्मनीषिण:।

१. रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर— 'वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत'।

२. श्रीचक्र श्रीविद्या-सम्प्रदाय की अत्यन्त रहस्यमयी आध्यात्मिक तथा रेखाचित्रात्मक विश्व-कल्पना है।

यहाँ पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी— तीन वाणियाँ हैं। परा वाक् की दो गतियाँ हैं—

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के चरणों से प्रसृत करोड़ों रश्मियों से अनन्त ब्रह्माण्डों का जन्म 'पदविक्षेप' है।

'क्रमोदय' के दो रूप हैं— औघत्रय (गुरुत्रय का समूहवर्ग) एवं नवावरणस्थ। समस्त शक्तियाँ भगवती के चरणों का ही प्रसार हैं।

श्रीचक्र भगवती के 'एकोऽहं बहु स्याम' का ही परिणाम है। यह इच्छा ही उन्हें चक्र के रूप में परिणत कर देती है। भगवती के श्रीविग्रह की परिणतियाँ ही समस्त आवरण-शक्तियाँ हैं। भगवती के हाथ में स्थित 'अंकुश' ज्ञानशक्ति,'धनुष-बाण' क्रिया-शक्ति, 'पाश' स्नेह, 'अंकुश' ज्ञान, 'बाण' पञ्चतन्मात्रायें एवं 'धनुष' मन है।

'भूपुर' की प्रथम रेखा में संक्षोभिणी आदि ९ मुद्रायें स्थित हैं। भूपुर की मध्य रेखा में भगवती की त्वचा आदि धातुयें एवं अष्टम सम्पूर्ण विग्रह (ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं के रूप में) स्थित है। भूपुर की अन्तिम रेखा में अणिमा आदि ८ सिद्धियाँ हठ-योग आदि आठ विद्याओं के रूप में स्थित हैं। 'पञ्चदशी' मन्त्र भगवती का अपना सूक्ष्म शरीर है। 'मूलाधार' में नादस्वरूप परावाक् शक्ति का प्रथमावतार है। परावाक् यद्यपि मूलाधार में है, तथापि वही नाभि में पश्यन्ती, हृदय में मध्यमा एवं मुख में वैखरी बन-कर स्थित है। 'चक्रराज' भगवती का स्थूल रूप एवं 'मन्त्र' सूक्ष्म स्वरूप है। आनन्द की जिस क्षुद्र मात्रा से विश्व के प्राणी जीवित हैं, उस परमानन्द-परिपूर्ण परम तत्त्व का अहं-भाव (अहंकारात्मक ज्ञान) परमानन्दस्वरूपा त्रिपुरा हैं। आदि गुरु परमशिव से अभिन्न हैं। काम-कलात्मक जो 'हार्द बिन्दु' है, वह उनका अधिष्ठान है। इसी बिन्दु में आदि दम्पति, ओघत्रय एवं गुरुमण्डल स्थित है। यह बिन्दु ही निष्कल, निराकार परम तत्त्व का प्रथमावतार है। 'श्रीचक्र' भगवती का शरीर एवं 'बिन्दु' ही प्राण है। जब विमर्श शक्ति द्वारा बिन्दु में स्पन्दन क्रिया होती है तब परा शक्ति का आधा भाग 'कामेश्वरी' एवं आधा भाग 'कामेश्वर' के रूप में व्यक्त होता है। एक तत्त्व ही अपने को पति-पत्नी रूप में विभाजित कर लेता है। गुरु 'कामेश्वर' शिष्या 'कामेश्वरी' से अभिन्न हैं। दोनों तत्त्व इसी 'बिन्दु' में अविनाभाव से रहते हैं। स्पष्ट है कि गुरु, आत्मा, कामेश्वर एवं कामेश्वरी अभिन्न हैं। त्रिकोण के मध्य में स्थित 'उड्डीयान पीठ' श्रीपीठ है। यहाँ ज्ञानप्रदाता श्रीगुरु-देव 'शिव' हैं और शिष्या 'कामेश्वरी' हैं। इनका नाम है— श्रीचर्यानन्दनाथ। सत्य-युग के आरम्भ में भगवान् परमशिव ने श्रीविद्याक्रम का उपदेश भगवती कामेश्वरी को दिया था और तभी से यह त्रिपुरा सम्प्रदाय भूतल में प्रचलित है।

शुम्भ-निशुम्भ से पीड़ित देवगण हिमालय पर्वत पर देवी की स्तुति करते हैं। गंगा में स्नान करने हेतु जाती हुई पार्वती के शरीर से शिवा (अम्बिका) का आविर्भाव होता है और वे कहती हैं कि शुम्भ-निशुम्भ के वध के लिए प्रार्थना करने वाले हे देवों ! जिसकी तुम स्तुति कर रहे हो, वह मैं ही हूँ। पार्वती के कोश से उद्भूत होने के कारण

वे 'कौशकी' कहलाईं। पार्वती के शरीर से अम्बिका के निकलने पर पार्वती का शरीर कृष्ण वर्ण का हो गया; अत: कृष्ण वर्ण का होने के कारण उनका नाम 'कालिका' पड़ा। शुम्भ-निशुम्भ के द्वारा उन पर आक्रमण कर देने से उनका मस्तक कृष्ण वर्ण का हो गया और उससे नरमुण्ड, व्याघ्रचर्म एवं खट्वांग धारण की हुईं करालमुखी 'काली' निकलीं। उन्होंने चण्ड-मुण्ड का वध किया; अत: अम्बिका ने उनका नाम 'चामुण्डा' रख दिया। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही एवं नारसिंही तथा ऐन्द्री— ये सप्त शक्तियाँ उनकी विभूति कही गई हैं। देवी कहती हैं कि मैं वैवस्वत मन्वन्तर में पुन: 'विन्ध्यवासिनी' देवी का रूप धारण करके शुम्भ-निशुम्भ का वध करूँगी। वे अपने नन्द-सुता, शाकम्भरी, भीमा, भ्रामरी आदि के रूप में अवतार लेने की भविष्यवाणी भी करती हैं।

(पार्वती → अम्बिका या शिवा = कौशिकी। कृष्णवर्णा पार्वती → कालिका (मस्तक से काली = चामुण्डा) विभिन्न नामों से युक्त ये देवियाँ एक ही देवी के रूपान्तरमात्र हैं। सर्वप्रथम हमें 'उमा' के दर्शन होते हैं, जो कि देवों की रक्षिका हैं। ये शिव की पत्नी भी हैं। फिर हमें 'हैमवती' एवं 'पार्वती' के नाम मिलते हैं। ये सभी उमा के ही विशेषण हैं।

इसके बाद वनों एवं विन्ध्य पर्वत पर निवास करने वाली देवियों के नाम मिलते हैं, जो कि पशुओं एवं मनुष्यों की बलि ग्रहण करती हैं तथा सुरा, मांसादिक ग्रहण करती हैं। ये उग्र देवियाँ हैं तथा पुलिन्द, शबर, बर्बर आदि वन्य जातियों की पूज्या हैं। अग्नि की ७ महाजिह्वाओं में दो 'काली' एवं 'कराली' कहलाती हैं। शक्ति की भावना का योग होने पर उन्हें इच्छा-ज्ञान-क्रिया-सृजन-मोह आदि के प्रतीक के रूप में कल्पित किया गया। शक्ति की भावना के प्रभाव से हमें देवी के तीन रूप मिलते हैं—

१. सौम्य रूप (सामान्यतया पूज्य रूप),
२. प्रचण्ड रूप (कापालिक एवं कालामुखों द्वारा विशेषत: पूज्य) एवं
३. कामप्रधान रूप (शाक्तों द्वारा पूज्य)।

शक्ति के कामप्रधान रूप की विवेचना— इस सम्प्रदाय में देवी के नाम 'आनन्द-भैरवी, त्रिपुरसुन्दरी, ललिता' आदि हैं। उक्त देवी का गृह सुरम्य है। देवी का धाम कल्प-वृक्ष से परिवृत्त सुधासिन्धु में नीप या कदम्बवृक्षों से घिरा हुआ एक मणिमण्डित मण्डप है। इस मण्डप में ही 'चिन्तामणि गृह' स्थित है।

इसी में त्रिपुरसुन्दरी ईशानी निवास करती हैं। क्रमश: शिव, सदाशिव और महेशान उनके मञ्च, पर्यंक एवं उपबर्हण हैं तथा ब्रह्मदेव, हरि, रुद्र एवं महेश्वर मञ्च के पाये हैं। यहाँ देवी को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है।

नव व्यूह

आनन्दभैरव या महाभैरव नौ व्यूहों की आत्मा है या वे स्वयं हीनौ व्यूहों से निर्मित हैं। नौ व्यूह निम्नाकित हैं— कालव्यूह, कुलव्यूह, नामव्यूह, ज्ञानव्यूह और चित्तव्यूह (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, महत्)।

महाभैरव ही देवी की आत्मा हैं। देवी भी नौ व्यूहों की आत्मा हैं या उनसे निर्मित हैं। अत: दोनों एक या अभिन्न हैं। जब उनमें सामरस्य होता है तब यह सृष्टि आरम्भ होती है। सृष्टि में 'महाभैरवी' एवं 'संहार' में महाभैरव प्रधान हैं।[१]

नव व्यूहात्मक होने के कारण महाभैरव को 'नवात्मा' कहा जाता है। नव व्यूहों का विवरण निम्नानुसार है—

कालव्यूह— निमेषादिक सूक्ष्म काल से लेकर कल्पान्त तक के सभी काल इसमें अन्तर्भुक्त हैं। सूर्य एवं चन्द्र काल के ज्ञापक हैं; अत: वे भी इसी के अन्तर्गत हैं।

कुलव्यूह— इसके भीतर नील-पीतादिक सभी रूप आ जाते हैं।

नामव्यूह— इसमें संज्ञास्कन्ध अर्थात् नामों के सभी प्रभेद समाविष्ट हैं।

ज्ञानव्यूह (विज्ञान स्कन्ध)— विज्ञान स्कन्ध के दो भाग हैं— सभाग और विभाग। सभाग = सविकल्पक ज्ञान एवं विभाग = निर्विकल्पक ज्ञान[२]।

चित्तव्यूह— इसमें अहंकार पञ्चस्कन्ध अन्तर्भुक्त है, जो निम्नवत् है— अहंकार, चित्त, बुद्धि, महत् एवं मन।

नादव्यूह— राग, इच्छा, कृति आदि प्रयत्नस्कन्ध एवं मातृकाओं में परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी 'नादव्यूह' में सम्मिलित हैं। प्रयत्नस्कन्ध से माया, शुद्ध विद्या, महेश्वर एवं सदाशिव भी रागादि के कारण होने से इस व्यूह के ही अन्तर्गत हैं।

बिन्दुव्यूह— मूलाधारादिक षट् चक्रों का समूह ही 'बिन्दुव्यूह' है।

कलाव्यूह— 'अ' से लेकर 'ज्ञ' पर्यन्त ५० वर्णों का समूह ही 'कलाव्यूह' कहलाता है।

जीवव्यूह— भोक्तृस्कन्ध, भोक्तासमूह ही 'जीवव्यूह' कहा जाता है।

नव व्यूह (नव व्यूहात्मक = आनन्दभैरव-आनन्दभैरवी)

भोक्ता	भोग	भोग्य
(जीवव्यूह)	(ज्ञानव्यूह)	(अन्य शेष व्यूह)

आनन्दभैरव ९ युक्तों से युक्त हैं। भगवती आनन्दभैरवी आनन्दभैरव से अपृथक् हैं। आनन्दभैरवी भी नवव्यूहात्मिका हैं।

वामा, ज्येष्ठा, रौद्री और अम्बिका— ये ४ शक्तियाँ दो-दो प्रकार की हैं और इन आठ शक्तियों से युक्त भगवती नवात्मिका हैं। नवात्मक आनन्दभैरव जब नवात्मिका आनन्दभैरवी के साथ नृत्यरत होते हैं, तभी सृष्टि होती है। प्राणियों के ऊपर अनुग्रहशील होने पर ही वे नृत्य में रत होते हैं। महाभैरव का नृत्य 'ताण्डव' एवं भगवती का नृत्य 'लास्य' कहलाता है। उत्तरकौल → 'पुरुष' से असम्पृक्त प्रधान ही जगत् की उत्पादिका है।

उत्तरकौलों का मत है कि जगत् की सृष्टि में शिव की कोई भूमिका नहीं है। संहार

---

१. रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर— 'वैष्णव,शैव और अन्य धार्मिक मत'।

२. लक्ष्मीधर— 'लक्ष्मीधरा'।

के समय भी शिव नहीं, स्वयं शक्ति ही समस्त जगत् को अपने में लीन कर लेती है। इसीलिए इसे 'आधारकुण्डलिनी' कहा जाता है।

मिश्रमार्ग में चन्द्रकला, ज्योत्स्नावती, कलानिधि, कुलार्णव आदि तन्त्र-ग्रन्थ स्वीकृत हैं। इन तन्त्रों में अभ्युदय (जागतिक लौकिक उन्नति) एवं निःश्रेयस् (मोक्षदात्री ब्रह्मविद्या की प्राप्ति)— दोनों का विधान है। इसमें कौलमार्ग एवं समयमार्ग दोनों का सम्मिश्रण है, इसीलिए इस मार्ग को 'मिश्रमार्ग' कहा गया है।

अद्वैतवाद— तान्त्रिकों के मार्गत्रय— कौल मिश्र एवं समय में कौलमार्ग वामाचारी है। कौलमार्ग में महामाया, संवर, ब्रह्मयामल, रुद्रयामल आदि ६४ मान्य तन्त्रग्रन्थ हैं। मत्स्येन्द्र, गोरक्ष आदि नाथों का इसी कौलमार्ग से सम्बन्ध था। कौलमार्ग में अद्वैतवाद सिद्धान्त, साधना एवं आचार तीनों में सञ्चरित किये जाते रहने के लिए सतत् प्रयास किया जाता रहा; इसीलिए समत्व भाव को भी वरेण्य मानकर 'भावचूड़ामणि' में कहा गया कि कर्दम (कीचड़) एवं चन्दन, पुत्र एवं शत्रु, श्मशान एवं भवन, काञ्चन एवं तृण में कोई भेद नहीं है; बल्कि सर्वत्र समभाव है—

कर्दमे चन्दनेऽभिन्नं पुत्रं शत्रौ तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि ! तथैव काञ्चने तृणे।
न भेदो यस्य देवेशि ! स कौलः परिकीर्तितः।।

आचार— इसी समभाव द्रष्टा का नाम है— कौल। कौलों के आचार को 'कौलाचार' कहा जाता है। यह वामाचारनिष्ठ हैं। तन्त्र में कुल ७ आचार माने जाते हैं— वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, शाक्ताचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। तन्त्र में सर्वोच्च आचार के रूप में कौलाचार ही प्रतिष्ठित है, क्योंकि यह अद्वैतवादनिष्ठ है और समत्ववादी है।

कौलमार्गी कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करके उसका सम्बन्ध सहस्रार चक्र में स्थित शिव से स्थापित करता है। स्वच्छन्दतन्त्र में कहा भी गया है—

कुलशक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते।
कुलेऽकुलस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयते।।

कुल (शक्ति) + अकुल (शिव) का सम्बन्ध ही है— कौल।

पञ्च मकार— कौलमार्ग में पञ्च मकारोपासना भी स्वीकृत है। ये पञ्च मकार निम्नलिखित हैं—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रां मैथुनमेव च।
मकारपञ्चकं प्राहुर्योगिनां मुक्तिदायकम्।।

द्वितीय अध्याय

शाक्त सम्प्रदाय एवं श्रीविद्या[1]

आम्नायों मे ऊर्ध्वाम्नाय प्रमुख है। कौल कहते हैं कि 'ऊर्ध्वाम्नाय' कौलाचार में गृहीत है। लेकिन समयमार्गी कहते हैं कि यह आम्नाय 'समयमत' से सम्बद्ध है। आम्नाय पाँच हैं—

१. पूर्वाम्नाय ३. दक्षिणाम्नाय ५. अधाम्नाय
२. पश्चिमाम्नाय ४. उत्तराम्नाय

कुलार्णवतन्त्र में ऊर्ध्वाम्नाय की प्रशंसा की गई है।

भगवान् शिव के मुखपञ्चक से उपर्युक्त ५ आम्नायों का आविर्भाव हुआ है— शिव के पूर्व मुख से 'पूर्वाम्नाय', शिव के पश्चिमाभिमुख से 'पश्चिमाम्नाय', शिव के उत्तराभिमुख मुख से 'उत्तराम्नाय', शिव के दक्षिणवर्ती मुख से 'दक्षिणाम्नाय' और गुप्त मुख से 'अधाम्नाय'।

श्रीविद्या के सम्प्रदाय— शाक्तसम्प्रदाय तान्त्रिक सम्प्रदाय है। तन्त्रों को तीन विभागों में विभाजित किया गया है— विष्णुक्रान्त, रथक्रान्त और अश्वक्रान्त। प्रत्येक विभाग में ६४ तन्त्र सम्मिलित हैं। तान्त्रिक पूजक भी मुख्यत: तीन वर्गों में विभक्त हैं— शैव, शाक्त और वैष्णव।

सम्मोहन तन्त्र (अध्याय-५) के अनुसार शाक्तों के नौ आम्नाय एवं चार सम्प्रदाय हैं। ये सम्प्रदाय निम्नांकित हैं— केरल, काश्मीर, गौड़ और विलास।

आन्तरिक एवं बाह्य उपासना के आधार पर इनके भी दो-दो भेद हैं।

आजकल बंगाल और आसाम में शाक्तमत का अधिक प्रचार-प्रसार है। बंगाल में दुर्गापूजा और आसाम में देवी कामाख्या की पूजा अधिक प्रचलित है।

आचार-विचार की दृष्टि से शाक्तों के तीन वर्ग हैं— कौल, समयी और मिश्र।

श्रीसम्प्रदाय की कौलशाखा के अनुवर्ती अभिनवगुप्तपाद एवं भास्कर राय दोनों हैं; किन्तु समयमार्ग के उपासक लक्ष्मीधर हैं। शंकराचार्य को दृष्टि कौल और समयी दोनों है।

कौलमार्ग— अयं तु परम: कौलमार्ग: सम्यङ्महेश्वरि !।
असिधाराव्रतसमो मनोनिग्रहहेतुक:।
स्थिरचित्तस्य सुलभ: सकलस्तूर्णसिद्धिद:।। (परशुराम तन्त्र)

---

१. हजारों और करोड़ों वाक्यों एवं करोड़ों जिह्वाओं से भी षोडशाक्षरी श्रीविद्या की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। इतनी महत्ता है इस श्रीविद्या की—
वाक्यकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि। वर्णितुं नैव शक्येऽहं श्रीविद्याषोडशाक्षरीम्।।
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का नाम भी श्रीविद्या एवं श्रीषोडशाक्षरीविद्या है । ललितासहस्रनाम में कहा भी गया है—
आत्मविद्या महाविद्या श्रीविद्या कामसेविता। श्रीषोडशाक्षरीविद्या त्रिकूटा कामकोटिका।।

अर्थात् यही श्रेष्ठ कौलमार्ग है। इसकी साधना तलवार पर चलने के समान दुष्कर है। यह साधना मन को वशीभूत करने के लिए है। यह स्थिर चित्त वालों के लिए सुलभ एवं अस्थिर चित्त वालों के लिए दुर्लभ है। इसमें सफल होने पर शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है।

शाक्तमत में 'कौल सम्प्रदाय' एवं 'कौलाचार' का विशेष महत्त्व रहा है। आचारों में कौलाचार अवधूत मार्ग में भी माना गया है।

शाक्तमत और कौलाचार (अन्त:सम्बन्ध)

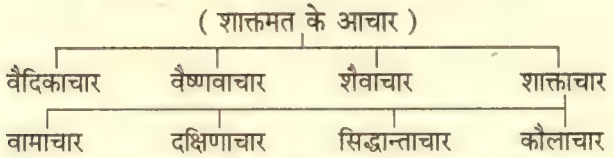

इस प्रकार तन्त्र सम्प्रदाय में कुल सात आचार प्रसिद्ध हैं—

१. वेदाचार
२. वैष्णवाचार
३. शैवाचार
४. शाक्ताचार
५. वामाचार
६. सिद्धान्ताचार
७. कौलाचार

षट्साम्भवरहस्य नामक ग्रन्थ में कौलाचार को श्रेष्ठतम आचार के रूप में स्वीकार किया गया है। महत्ता की दृष्टि से इन आचारों का उत्तरोत्तर क्रम इस प्रकार है—

वैदिक आचार से श्रेष्ठ 'वैष्णवाचार', दक्षिणाचार से श्रेष्ठ 'गाणपत्य आचार', गाणपत्य आचार से श्रेष्ठतर 'सौर आचार', सौर आचार से श्रेष्ठतर 'शैवाचार', शैवाचार से श्रेष्ठतर 'शाक्ताचार', शाक्ताचारों में भी क्रमश: वामाचार से श्रेष्ठतर 'दक्षिणाचार' और दक्षिणाचार से श्रेष्ठतर है— 'कौलाचार'। यह कौलाचार ही श्रेष्ठतम आचार है। गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह के अनुसार समस्त शाक्ततन्त्रों को नाथसम्प्रदाय का अनुवर्ती स्वीकार किया गया है। तान्त्रिक समाम्नाय में कौल या अवधूत मत को श्रेष्ठतम मत कहा गया है। तान्त्रिकों का श्रेष्ठतम आचार कौलाचार को ही अवधूतमार्ग स्वीकार करके नाथों ने इसे अपना मत माना है— 'अस्माकं मतं त्ववधूतमेव।'[१]

प्राचीन कौल सम्प्रदाय— मत्स्येन्द्रनाथ ने कौलज्ञाननिर्णय के चौदहवें पटल में अनेकानेक कौल सम्प्रदायों का उल्लेख किया है, जो निम्नांकित हैं—

१. रामकूपादि कौल
२. वृषणोत्थकौलिक
३. वह्निकौल
४. कौल सद्भाव
५. पदोत्तिष्ठ कौल

---

१. गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह— १. पूर्वाम्नाय = सृष्टिरूप मन्त्रयोग, २. दक्षिणाम्नाय = स्थितिरूप भक्तियोग। ३. पश्चिमाम्नाय = संहाररूप कर्मयोग। ४. उत्तराम्नाय = अनुग्रहरूप ज्ञानयोग।

प्रबोधचन्द्र बागची महोदय ने कौलज्ञाननिर्णय की भूमिका में इन सभी कौलशाखाओं को कौल सम्प्रदाय स्वीकार किया है। डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने 'नाथ सम्प्रदाय' के पृष्ठ-६० पर इन्हें सम्प्रदाय के स्थान पर 'सिद्धि' कहते हैं। इनमें मन्त्र, प्राणायाम और चक्रध्यान की आवश्यकता नहीं पड़ती, लेकिन फिर भी ये सिद्धियाँ प्रदान करते हैं।

अन्य कौल सम्प्रदाय— 'कौलज्ञाननिर्णय' के सोलहवें पटल में निम्न सम्प्रदायों का उल्लेख किया गया है— १. कौलज्ञान, २. महत्कौल, ३. सिद्धामृत कौल, ४. मत्स्योदर कौल = (क) सतयुग : 'कौलज्ञान', (ख) त्रेतायुग : 'महत्कौल', (ग) द्वापर युग : 'सिद्धामृत' और (घ) कलियुग : 'मत्स्योदर कौल'।

भक्तियुक्ताः समत्वेन सर्वे शृण्वन्तु कौलिकम्।।
महाकौलात् सिद्धकौलं सिद्धकौलात् मसादरम्।
चतुर्युगविभागेन अवतारं चोदितं मया।।
ज्ञानादौ निर्णितिः कौलं द्वितीये महत्संज्ञकम्।
तृतीये सिद्धामृतं नाम कलौ मत्स्योदरं प्रिये।।
ये चास्मिन्निर्गता देवि ! वर्णयिष्यामि तेऽखिलम्।
एतस्माद्योगिनीकौलात् नाम्ना ज्ञानस्य निर्णितौ।।

महाकौल सम्प्रदाय के अनन्तर सिद्धकौल एवं सिद्धकौल के बाद मत्स्योदर कौल सम्प्रदाय का अविर्भाव हुआ।

शिव ने चार युगों में चार बार अवतार ग्रहण किया और इन सभी अवतारों में भिन्न-भिन्न कौल सम्प्रदायों का प्रवर्तन किया।

चारों युगों में शिव-प्रवर्तित चार कौल सम्प्रदाय निम्न हैं—

१. कौलज्ञान : आदि युग
२. सिद्धकौल : त्रेतायुग
३. सिद्धामृत कौल : द्वापर युग
४. मत्स्योदर कौल : कलियुग

मत्स्योदर सम्प्रदाय से विनिर्गत कौलमत है— 'योगिनी कौल।'

कौलज्ञाननिर्णय के इक्कीसवें पटल में अनेक कौलमतों का उल्लेख किया गया है।

डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची का मत— मत्स्येन्द्रनाथ 'सिद्ध' या 'सिद्धामृत मत' के अनुयायी थे। मत्स्येन्द्र ने स्वयं एक कौलमार्ग का प्रवर्तन किया, जिसका नाम है— 'योगिनी कौलमार्ग'। मत्स्येन्द्रप्रवर्तित कौलज्ञान कामरूप की योगिनियों के घर-घर में विद्यमान था। कामरूप की योगिनियों के घर में पूर्व से विद्यमान इसी कौलमार्ग का सन्धान करके मत्स्येन्द्रनाथ ने इन्हें संकलित किया था—

तस्य मध्ये इमं नाथ सारभूतं समुद्धृतम्।
कामरूपे इदं शास्त्रं योगिनीनां गृहे गृहे।।

मत्स्येन्द्रनाथ पहले सिद्ध या सिद्धामृत मार्ग के अनुवर्ती थे, किन्तु इसके उपरान्त वे कामरूप में वाममार्गी साधना करने लगे और वहीं से उन्होंने 'कौलज्ञान' का उद्धार किया। उनकी पुस्तक का नाम है— 'कौलज्ञाननिर्णय'। अत: संकेत यह मिलता है कि सम्प्रदाय का नाम 'कौलज्ञान' रहा होगा।

'सिद्धमत' कौल सम्प्रदाय का वह मार्ग है, जो ब्रह्मचर्य पर आश्रित था और जिसमें नारी-संसर्ग पूर्णत: निषिद्ध था। मत्स्येन्द्र पहले इसी के अनुवर्ती थे और इसी का त्याग करके वे कामरूप में विद्यमान 'कौलज्ञान' के अनुवर्ती बन गए थे तथा बाद में इसका भी त्याग करके पुन: 'सिद्धमत' के अनुयायी बन गए।

अघोरशिवाचार्य ने मृगेन्द्रवृत्तिदीपिका के विद्यापाद में कहा है कि 'हिरण्यगर्भकपिल-मत्स्येन्द्रादयो वेदसाङ्ख्यकौलादितन्त्राणाम्' अर्थात् हिरण्यगर्भ वेद के, कपिल सांख्य के एवं मत्स्येन्द्रनाथ कौलमार्ग के प्रवर्तक हैं।

आचार्य अभिनवगुप्तपाद ने 'तन्त्रालोक' में मत्स्येन्द्रनाथ को 'सकलकुलशास्त्रावतारक' के रूप में नमन किया है। उन्होंने इन्हें 'मच्छन्दविभु' कहा है। कौल दर्शन के सम्प्रदायों में 'नाथ'-नामान्त अनेक आचार्य हुए हैं। कौल सम्प्रदाय से ही सौभाग्यविद्या सम्प्रदाय का प्रवर्तन हुआ। इसमें अनेक 'आनन्दनाथ'-नामान्त आचार्य उत्पन्न हुए और उन्होंने भी ललिता मन्त्र को देशभेदात्मक माना।

आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी में 'तवाज्ञाचक्रस्थ' इत्यादि श्लोकषट्क द्वारा सामयिक मत का निरूपण करने के अनन्तर कौलमत का भी निरूपण किया है। कौलमत के दो प्रकार हैं।

त्रिपुरोपासना के उपसम्प्रदाय

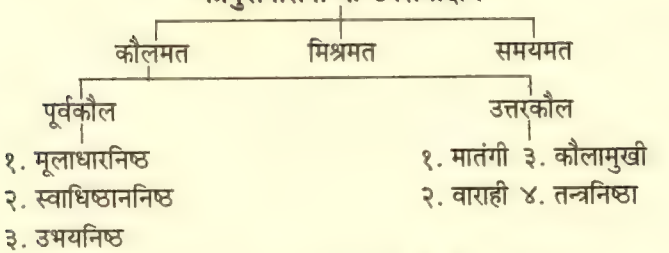

आचार्य लक्ष्मीधर के अनुसार आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी के—

१. शरीरं त्वं शम्भोश्शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं
तवात्मानं मन्ये भगवति नवात्मानमनघम्। (श्लोक-३४)

२. मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्। (श्लोक-३५)

—इन दोनों श्लोकों में 'कौलमत' का प्रतिपादन किया है।

योनि के दो प्रकार हैं। एक तो श्रीचक्रस्थित नवयोनि-मध्यवर्तिनी योनि है और दूसरी सुन्दरी तरुणी की प्रत्यक्षभूता योनि होती है। 'पूर्वकौल' श्रीचक्र में स्थित नवयोनि-मध्यगत योनि को भूर्ज-हेमपट्ट-वस्त्र-पीठ आदि पर अंकित करके उसकी पूजा करते हैं— 'श्रीचक्रस्थितनवयोनिमध्यगतयोनिं भूर्जहेमपट्टवस्त्रपीठादौ लिखिता पूर्वकौलाः पूजयन्ति।'

'उत्तरकौल' तरुणी के प्रत्यक्ष योनि की पूजा करते हैं।

कौलमत में 'त्रिकोण' ही बिन्दुस्थान है और वही बिन्दु वहाँ पूजित होता है— 'अत्र कौलमते त्रिकोणमेव बिन्दुस्थानम्। स एव बिन्दुः तत्र आराध्यः।'

अतः कौल त्रिकोण में ही नित्य 'बिन्दु' की उपासना करते हैं— 'अतएव कौलाः त्रिकोणे बिन्दुं नित्यं समर्चयन्ति।'

यह योनि दो प्रकार की होती है।

जिस त्रिकोण की 'कौल' पूजा करते हैं, वह दो प्रकार का है—

१. श्रीचक्रान्तर्गत नवयोनिमध्यवर्तिनी योनि।

२. सुन्दरी नारी की प्रत्यक्ष मांसल योनि।

कौलों की समाराधित दोनों योनियाँ बाह्य हैं। इसीलिए कौल आधारचक्र की पूजा करते हैं। यहाँ अवस्थित कुण्डलिनी शक्ति 'कौलिनी' कही जाती है। त्रिकोणपूजक कौलों की वही उपास्या है।

यह 'कुण्डलिनी' शक्ति बिन्दुरूपिणी है और कौलों द्वारा उसकी निद्रावस्था में ही पूजा की जाती है, क्योंकि वह मूलाधार चक्र में निद्रास्वभावा है। कौलों की यह पूजा 'तामिस्रपूजा' है।

जैसे ही कुण्डलिनी प्रबुद्ध होती है, कौल तत्क्षण मुक्त हो जाते हैं और क्योंकि कौलों की यह मुक्ति क्षणिक होती है, इसीलिए कहा भी गया है—

'अतएव क्षणमुक्ताः कौला इति व्यवहारः।'

कौल मतावलम्बी भी वामाचारियों की भाँति मांस, मधु, मत्स्य आदि स्थूल द्रव्यों के द्वारा समाराधना करते हैं।

कौल प्रत्यक्ष त्रिकोण में बिन्दुस्थान (मन्मथच्छत्र) की पूजा करते हैं।

कौल अधोमुखी त्रिकोण (अधोमुख छत्र) की पूजा करते हैं।

दिगम्बर क्षपणक आदि स्त्री को उत्तान करके उसके ऊर्ध्व त्रिकोण की पूजा करते हैं।

आधारचक्र एवं स्वाधिष्ठानचक्र 'तामिस्रलोक' हैं। यहाँ कौलों का ही अधिकार है, क्योंकि 'समयी' यहाँ आराधना नहीं किया करते। इसके विपरीत समयमत में भगवती की आराधना आधार— स्वाधिष्ठान में न की जाकर 'सहस्रकमल' में ही की जाती है।

कौलों द्वारा त्रिकोण में 'आनन्दभैरवी' एवं 'आनन्दभैरव' की पूजा की जाती है। साधक उससे तादात्म्य स्थापित किये रहते हैं। अतएव कौलबिन्दुपूजा के अवसर पर

भैरवाकार अर्थात् दिगम्बरत्व धारण करके स्त्री-पुरुष दोनों एक साथ पूजा करते हैं। गुरु ही स्वयं भगवती एवं भगवान् दोनों होता है।[१]

'सर्वानन्दमय' चक्र के 'त्रिकोण' में जो श्रीपीठ (उड्डीयान पीठ) है, उसमें भगवान् कामेश्वर एवं कामेश्वरी बिन्दुरूप में अपृथक् रूप से गुरु एवं शिष्य के रूप में अवस्थित हैं।

सहस्रारावस्थित परमशिव हृत्पद्मस्थ जीवात्मा एवं मूलाधारस्थ कुण्डलिनी परम ज्ञातव्य तत्त्व हैं। जीवात्मा परमशिव से तो चैतन्य ग्रहण करता है, किन्तु कुण्डलिनी से शक्ति प्राप्त करता है। इसीलिए कुण्डलिनी को 'जीवशक्ति' कहा गया है।

योगसाधनाओं से कुण्डलिनी को निद्रा से जागृत करके मेरुदण्ड में स्थित सुषुम्नानाड़ी के मार्ग से सहस्रारचक्र में अवस्थित 'परमशिव' तक ले जाना ही कौल-साधकों का प्रधान लक्ष्य होता है। वहीं शिव-शक्ति का मिलन होता है। शिव-शक्ति का यह सामरस्य ही 'परमानन्द' कहलाता है। परमानन्द की इस उच्चोपलब्धि के अनन्तर कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

त्रिकोण के भेद— त्रिकोणस्वरूप मूलाधार चक्र में 'बिन्दु' का अवस्थान है। कौल-साधक इसी त्रिकोण को 'बिन्दुस्थान' स्वीकार करते हैं। यह त्रिकोणस्थ बिन्दु ही कौलों का उपास्य है। कौलमतावलम्बी त्रिकोणावस्थित बिन्दु की ही उपासना करते हैं। यह 'त्रिकोण' दो प्रकार का होता है। श्रीचक्र की ९ योनियों में से मध्यवर्ती योनि ही प्रथम त्रिकोण है और सुन्दरी तरुणी की प्रत्यक्ष योनि द्वितीय त्रिकोण है।

द्वितीय त्रिकोण (नारी की प्रत्यक्ष योनि) की पूजा मात्र उत्तरकौल करते हैं। समस्त कौल 'मूलाधार चक्र' की उपासना करते हैं। मूलाधारस्थिता कुण्डलिनी शक्ति को अपने कुल की प्रधान उपास्या मानने के कारण कौल इसे 'कौलिनी' कहते हैं। कौलिनी त्रिकोणोपासकों की आराध्या है। बिन्दुस्वरूपा यह 'कुलकुण्डलिनी' शक्ति निद्रावस्था में पूजनीया है। कुण्डलिनी के जागरण होने को कौल 'मोक्ष' मानते हैं। 'क्षणमुक्ताः कौलाः' कहकर समयमार्गियों ने इनकी मुक्ति को शाश्वत नहीं, बल्कि क्षणिक माना है।

पूर्वकौल यह मान्यता रखते हैं कि आनन्दभैरवी ही 'शक्ति' है। आनन्दभैरवी शिव (आनन्दभैरव) का शरीर है। सूर्य एवं चन्द्र इनके स्तन हैं तथा नवात्मक शम्भु इनकी आत्मा हैं। शम्भु (आनन्दभैरव) नवव्यूहात्मक हैं ।

आनन्दभैरव एवं आनन्दभैरवी दोनों प्रधान (शेषी) एवं गौण (शेष) हैं। सृष्टिकाल

---

१. 'गुरुतत्त्व' योगिनीहृदय में इस प्रकार बताया गया है—

त्वामिच्छाविग्रहां देवीं गुरुरूपां विभावयेत्।
त्वन्मयस्य गुरोः शेषं निवेद्यात्मनि योजयेत्।।

यह भी कहा गया है कि—

स्वप्रकाशशिवमूर्त्तिरिकिका तद्विमर्शतनुरेकिका तयोः।
सामरस्यवपुरिष्यते पदा पादुका परशिवात्मनोः गुरोः।।

में 'आनन्दभैरवी' शेषी या प्रधान रहती हैं, किन्तु संहारकाल में 'शिव' प्रधान रहते हैं अर्थात्—

क. सृष्टि-काल = आनन्दभैरवी प्रधान किन्तु आनन्दभैरव गौण।

ख. संहार-काल = आनन्दभैरव प्रधान, किन्तु आनन्दभैरवी गौण।

इस नवव्यूहात्मकता के कारण ही आनन्दभैरव (महाभैरव) को 'नवात्मा' की संज्ञा दी गई है।

ललिता-मन्त्र के दश भेद प्राचीन काल से चले आ रहे हैं, जिनके सम्बन्ध में ब्रह्माण्ड-पुराण (४.३८.८-१०) में इस प्रकार कहा गया है—

तेभ्योऽपि ललितामन्त्रा दशभेदविभेदिताः।
वै तेषु द्वौ मनुराजौ तु वरिष्ठौ विन्ध्यमर्दन।।

लोपामुद्रा कामराज इति ख्यातिमुपागतौ।
हादिस्तु लोपामुद्रा स्यात्कामराजस्तु कादिका।।

ज्ञानार्णवतन्त्र (द्वादश पटल) में विद्या के १२ भेद वर्णित हैं। ज्ञानार्णव की व्याख्या-पद्धति में शंकरानन्दनाथ ने 'सुन्दरी महोदय' में बारह विद्याओं का उल्लेख किया है। वहाँ उन्होंने लोपामुद्रा को 'हादिविद्या' और कामराजोपासिता विद्या को 'कादिविद्या' के अभिधान से उल्लिखित किया है। पुण्यानन्दनाथ और अमृतानन्दनाथ 'हादिविद्या' के अनुयायी थे तथा भास्कर राय 'कादिविद्या' सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

यह सौभाग्य विद्या सम्प्रदायपरम्परा बहुकालव्यापिनी एवं बहुशाखान्विता है।

गुरुतत्त्व को शाक्त साधना एवं शैव-शाक्त दर्शन में अचिन्त्य महिमान्वित माना गया है। भावनोपनिषद् में तो प्रथम सूत्र गुरु के विषय में ही है— 'श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः।'

तन्त्रराजतन्त्र में कहा गया है कि गुरु ही आद्या शक्ति है— विमर्शमयी शक्ति है और 'आद्या' (सर्वकारणभूता) शक्ति है—

गुरुराद्या भवेच्छक्तिः सा विमर्शमयी मता। नवत्वं तस्य देहस्य रन्ध्रत्वेनावभासते।।

शिवसूत्र में भी कहा गया है कि—

गुरुरेव परा शक्तिरीश्वरानुग्रहात्मिका। अवकाशप्रदानेन सैव यायादुपायताम्।
अकृत्रिमाह मामर्शस्वरूपाद्यन्तवेदनात्। परमेष्ठिसमत्वेन परमोपायता गुरोः।।

'कौलमार्ग' वामाचारी तान्त्रिकों का मार्ग है।

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि में कौलमार्ग— आचार्य लक्ष्मीधर ने शाक्तों के तीन सम्प्रदायों का उल्लेख किया है, जो कि कुलमार्ग या कौलमार्ग, मिश्रकमार्ग और समय-मार्ग के नाम से जाने जाते हैं। इन तीनों मार्गों में से केवल 'समयमार्ग' को ही उन्होंने ग्राह्य स्वीकार किया है तथा शेष दोनों मार्गों— 'कौलमार्ग' एवं 'मिश्रमार्ग' को त्याज्य माना है।

सौन्दर्यलहरी के इकतीसवें श्लोक की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि—

चन्द्रकलाविद्याष्टक कौल एवं समय— दोनों मार्गों का प्रतिपादन करने वाला है, अत

यह 'मिश्रकमार्ग' का प्रतिपादक है। इनके अनुवर्ती ही 'मिश्रकमार्गी' हैं।

चौसठ तन्त्रों का अनुवर्तन करने वाले शाक्त 'कौलमार्गी' हैं।

शुभागमपञ्चक को मानने वाले शाक्त 'समयमार्गी' हैं।

इनमें से मिश्रमार्ग एवं कौलमार्ग त्याज्य है—

मिश्रकं कौलमार्गं च परित्याज्यं हि शाङ्करी।

ईश्वरवचनात् मिश्रकमतं कौलमार्गं च परित्याज्यम्।[१]

कौलमार्ग एवं कौलमत कौलों द्वारा स्वीकृत मार्ग एवं मत हैं—

कौलैः मृग्यते अवलम्ब्यत इति कौलमार्गः कौलमतम्।[२]

कुल, अकुल और कौल

शिवसंहिता (श्लोक-५५) के अनुसार 'कुल' परमेश्वर का नाम है—

चित्तवृत्तिर्यदा लीना कुलाख्ये परमेश्वरे।।

शिवसंहिता में ही कहा गया है की 'कुल' कुण्डलिनी शक्ति का नाम है—

अत्र कुण्डलिनी शक्तिर्लयं याति कुलाभिधा।
तदा चतुर्विधा सृष्टिर्लयते परमात्मनि।।

सौभाग्यभास्कर में कहा गया है कि 'कुल' कुण्डलिनी शक्ति का एवं 'अकुल' शिव का नाम है। कुल से अकुल का सम्बन्ध-स्थापन ही 'कौलमार्ग' है—

कुलं शक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते ।
कुलेऽकुलस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयते ।।

अकुल (परमशिव) और कुल (शक्ति) को मिलाकर समरस बनाना ही कौल-साधना का लक्ष्य है तथा कुल एवं अकुल का सामरस्य (समरसत्व) ही 'कौलज्ञान' है।

सिद्धसिद्धान्तसंग्रह (४.१२-१३) में कहा गया है कि चूँकि शक्ति निखिल विश्व की उद्भाविका एवं प्रपञ्च-प्रवर्तिका है; अतः विश्वरूपी कुल की प्रसवित्री होने के कारण इसी शक्ति को 'कुल' कहा जाता है—

सा चापरम्परा शक्तिराज्ञेशस्यापरं कुलम्।
प्रपञ्चस्य समस्तस्य जगद्रूपप्रवर्तनात्।।

वर्ण, गोत्र आदि से रहित होने एवं अनन्य, अखण्ड, अद्वय, अविनश्वर, अनिर्धर्मक एवं अनंग होने के कारण ही शक्तिमान शिव को 'अकुल' कहा जाता है—

वर्णगोत्रादिराहित्यादेक एवाकुलं मतम्।
अनन्त्वादखण्डत्वादद्वयत्वादनाशनात् ।
निर्धर्मत्वादनङ्गत्वादकुलं स्यान्निरन्तरम्।।

---

१. लक्ष्मीधर : सौन्दर्यलहरी टीका : 'लक्ष्मीधरा'— श्लो. ३१।

२. लक्ष्मीधरा : श्लोक- ३१।

कुल की अन्य व्याख्यायें— 'कुल' शब्द के निम्न रहस्यार्थ हैं—

१. वंशानुगत। २. योगानुगत। ३. दर्शनानुगत।

'कुल' का वंशानुगत अर्थ— कुल या वंश दो प्रकार के होते हैं— बिन्द्वात्मक और नादात्मक। 'बिन्दुक्रम' से सम्बद्ध 'कुल' स्थूल शरीर को जन्म देने वाले माता-पिता से सम्बद्ध है और 'नादक्रम' से सम्बद्ध 'कुल' गुरुपरम्परा से सम्बद्ध है। इसी प्रकार सृष्टि भी द्विविधात्मिका है— 'बिन्दुरूपा' और 'नादरूपा'। परमशिव से लेकर अपने दीक्षागुरु तक चली आ रही गुरुपरम्परा ही 'विद्याक्रम' है और इससे सम्बद्ध कुल ही वास्तविक 'कुल' है। इस विद्याक्रमानुगत 'कुल' के अनुयायी ही 'कौल' हैं।

'कुल' का योगशास्त्रानुगत अर्थ— आचार्य भास्कर राय ने 'सौभाग्य-भास्कर' (ललितासहस्रनाम की टीका) में 'कुल' शब्द की विशद विवेचना करते हुए इसके अनेक अर्थ दिये हैं; यथा—

१. कुल = सजातीय समूह (कुलस्य सजातीयसमूहस्य)—

'सजातीयैः कुलं यूथम्।'　　(कोश)

२. कुल = परमशिव से स्वगुरुपर्यन्त गुरुपरम्परा—

'परमशिवादि स्वगुरुपर्यन्तो वंशो वा कुलम्।'

३. 'सङ्ख्या वंश्येन'— इस पाणिनिसूत्र के अनुसार 'वंश' के दो प्रकार हैं— विद्यया एवं जन्मना : 'नादक्रम' एवं 'बिन्दुक्रम'।

'आचार' या 'कुल' (महाभाष्य)।

४. कुल = आचार— 'न कुलं कुलमित्याहुराचारकुलमुच्यते।'

५. कुल = सुषुम्ना मार्ग— 'सुषुम्नामार्गो वा कुलम्।'

६. योगपरक अर्थ— भास्कर राय कहते हैं कि 'कुल' का अर्थ है— मूलाधार चक्र। 'कु' अर्थात् पृथ्वीतत्त्व में 'ल' अर्थात् लीन होना। जिस चक्र में पृथ्वी तत्त्व लीन है, वह चक्र ही है— 'मूलाधार चक्र।' 'कु पृथ्वीतत्त्वं लीयते यस्मिंस्तदाधारचक्रम्।'

चूँकि सुषुम्ना नाड़ी मूलाधार चक्रस्थ 'कन्द' से निःसृत होती है और इसी पश्चिम पथ से कुण्डलिनी देवी यात्रा करती हुई 'अकुल' शिव तक जाती है; अतः सुषुम्ना नाड़ी को भी 'कुल' अभिधान प्राप्त है।

७. सिद्धसिद्धान्तसंग्रह (४.३०) में निखिल सृष्टि को ही 'कुल' की आख्या प्रदान कर दी गई है; क्योंकि 'कुण्डलिनी' सृष्टिरूपा है एवं सृष्टि कुण्डलिनी का स्थूल विकास है। कहा भी गया है— 'सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता।'

'कुल' शब्द का दर्शनानुगत अर्थ— विश्व के समस्त पदार्थ तीन भागों में विभक्त हैं— ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय। ज्ञाता = ज्ञान का कर्ता। ज्ञेय = ज्ञान का विषय। ज्ञान = जानने की क्रिया।

संसार के समस्त पदार्थ ज्ञाता के ज्ञान के विषय हैं। 'मैं' ज्ञान का कर्ता है। 'मैं जानता हूँ'— यह जानने की क्रिया 'ज्ञान' है और 'मैं घट को जानता हूँ'— इसमें 'घट' मुझ ज्ञाता के ज्ञान का विषय है।

'ज्ञान' की व्यापकता— 'ज्ञान' समवाय सम्बन्ध से 'ज्ञाता' में व्याप्त है। यही 'ज्ञान' विषयत्व के सम्बन्ध से 'ज्ञेय' में व्याप्त है और यही 'ज्ञान' तादात्म्य सम्बन्ध से 'ज्ञान' की क्रिया में व्याप्त है।

घट को जानने के लिए तो ज्ञान की आवश्यकता है, किन्तु स्वप्रकाश ज्ञान को जानने के लिए किसी अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि ज्ञान स्वप्रकाश है। अत: उसके प्रकाशन के लिए परप्रकाश की आवश्यकता नहीं है। सुदीप्त दीपक को दीप्त करने के लिए अन्य दीपक की आवश्यकता नहीं पड़ती। जगत् ज्ञाता, ज्ञेय एवं ज्ञान की समष्टि है। इस त्रिपुटीगत जगत् के समस्त पदार्थ ज्ञान की दृष्टि से सजातीय हैं; इसीलिए समस्त जगत् भी 'कुल' है। इस कुलज्ञान के ज्ञाता ही 'कौल' हैं और कौलों का ज्ञान ही कौलज्ञान है। निखिल विश्व के समस्त वैश्विक पदार्थों का त्रिपुटीभाव से अवबोध होना ही 'कौलज्ञान' है।

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' कहकर श्रुति भी ब्रह्म को ज्ञानस्वरूप स्वीकार करती है। जगत् भी ब्रह्ममय है— 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। ज्ञाता भी यथार्थत: ब्रह्म ही है— 'अहं ब्रह्मास्मि'। यह अद्वैत-ज्ञान ही 'कौलज्ञान' है और इस ज्ञान के साधक ही 'कौल' है।[१]

कुण्डलिनी शक्ति

शाक्त-साधना के मेरुदण्ड कुण्डलिनी के जागरण के विना आत्मसिद्धि सम्भव नहीं है। गुरुतत्त्व को शरीर के नव रन्ध्रों में व्याप्त माना गया है—

'तेन नवरन्ध्ररूपो देह:।' (भावनोपनिषद्-२)

'देहरन्ध्रनवत्वेन गुरोर्नवत्वं भासत। स्वदेहगतनवरन्ध्राणि नव नाथा इति यावत्।' (भास्कर)

गुरुतत्त्व— मालिनीतन्त्र में कहा गया है कि गुरु भगवत्स्वरूप है—

स गुरु: मत्सम: प्रोक्तो मन्त्रवीर्यप्रकाशक:।
आदिमान्यविहीनास्तु मन्त्रा: स्यु: शरदभ्रवत्।
गुरोर्लक्षणमेतावदादिमान्त्यं निवेदयेत्।।

भास्कर राय गुरु को पारिभाषित करते हुए भावनोपनिषद्भाष्य में कहते हैं— 'ईश्वरानुग्रहवशेन जायमानो विवेक एव सर्वसंशयभेदनेन मन्त्रवीर्यप्रकाशनेन तात्त्विकपदार्थानामवकाशप्रदानाद्विमर्शपदाभिधेयो गुरु:।'

---

१. कौलमार्गरहस्य : नाथसम्प्रदाय।

कुण्डलिनी के विभिन्न स्वरूप

कुमारी कुण्डलिनी और उसका अवस्थान

'कुण्डलिनीशक्तेरवस्थात्रयं विद्यते। यस्मिन् चक्रे कुमारी कौमारावस्थामापन्ना प्रथमं सुप्तोत्थिता मन्द्रयते मन्द्रस्वरं करोति, कुण्डलिन्याः सर्पात्मकत्वात्। सर्पो हि सुप्तोत्थाने मन्द्रस्वरं करोति।' (लक्ष्मीधर)

कुमारी कुण्डलिनी

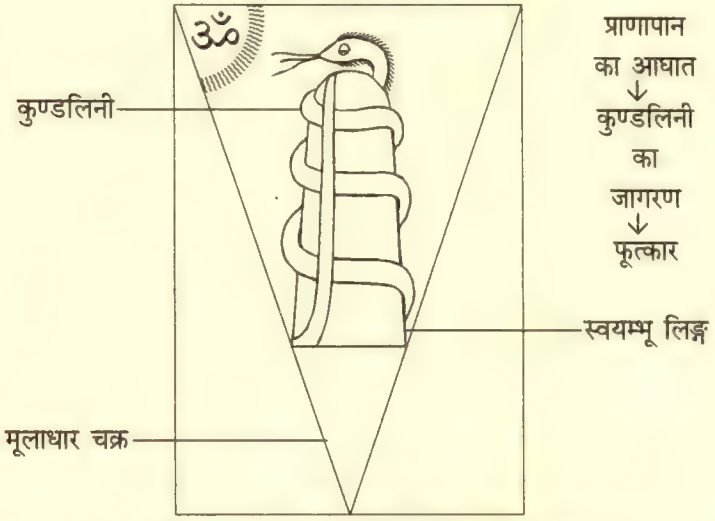

यत्कुमारी मन्द्रयते यद्योषित्पतिव्रता। अरिष्टं यत्किञ्च क्रियते अग्निस्तदनुवेधति। (वेद)

ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिताम्।
चित्कलां यां कुण्डलिनीं तेजोरूपां जगन्मयीम्।। (यामल)

मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटिसमप्रभाम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिद्रवां प्रिये।
बिसतन्तुस्वरूपां तां बिन्दुत्रिवलयां प्रिये।। (ज्ञानार्णवतन्त्र)

शक्तिः कुण्डलिनीति या तु गदिता आईम् संज्ञा जगत्रिर्माणे। सततोद्यतां प्रविलसत् सौदामिनीसन्निभाम्। शङ्खावर्तनिभां प्रसुप्तभुजगाकाराम्। (त्रिपुरासारसमुच्चय)

देहमध्ये ब्रह्मनाडी सुषुम्ना सूर्यरूपिणी पूर्णचन्द्राभा वर्तते। सा तु मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रगामिनी भवति। तन्मध्ये तडित्कोटिसमानकान्त्या मृणालसूत्रवत्सूक्ष्माङ्गी कुण्डलिनीति प्रसिद्धाऽस्ति। तां दृष्ट्वा मनसैव नरः सर्वपापविनाशद्वारा मुक्तो भवति। (अद्वयतारकोपनिषद्)

भ्रूमध्ये सच्चिदानन्दतेजःकूटरूपं तारकं ब्रह्म। तदुपायलक्ष्यत्रयावलोकनम्। मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं सुषुम्ना सूर्याभा। मृणालतन्तुसूक्ष्मा कुण्डलिनी। तत्र तमोनिवृत्तिः। तद्दर्शनात् सर्वपापनिवृत्तिः। (मण्डलब्राह्मणोपनिषद्-प्रथम ब्राह्मण)

योषित् कुण्डलिनी और उसका यात्रापथ

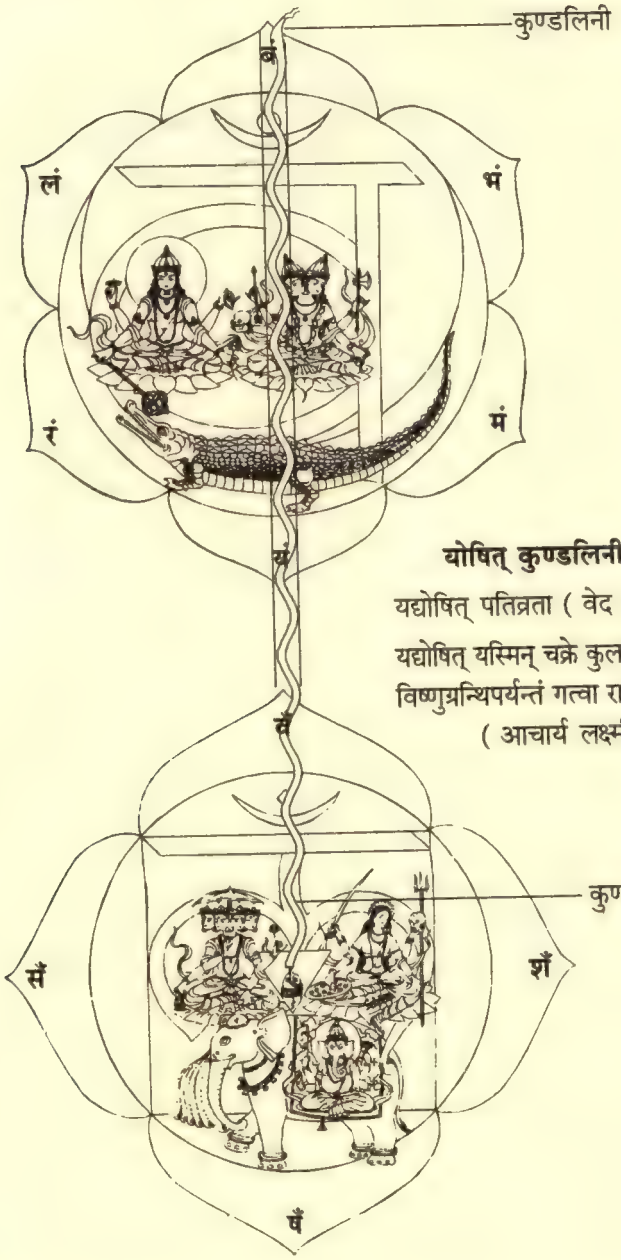

योषित् कुण्डलिनी

यद्योषित् पतिव्रता (वेद)।

यद्योषित् यस्मिन् चक्रे कुलयोषित्
विष्णुग्रन्थिपर्यन्तं गत्वा रातीति।
(आचार्य लक्ष्मीधर)

पतिव्रता कुण्डलिनी और यात्रा-पथ— **पतिव्रता कुण्डलिनी**

यद्यस्मिन् चक्रे पतिव्रता पत्या सदाशिवेन सार्धं सहस्रदलकमले विहरमाणा। (लक्ष्मीधर)

यद्योषित्पतिव्रता (वेद)।

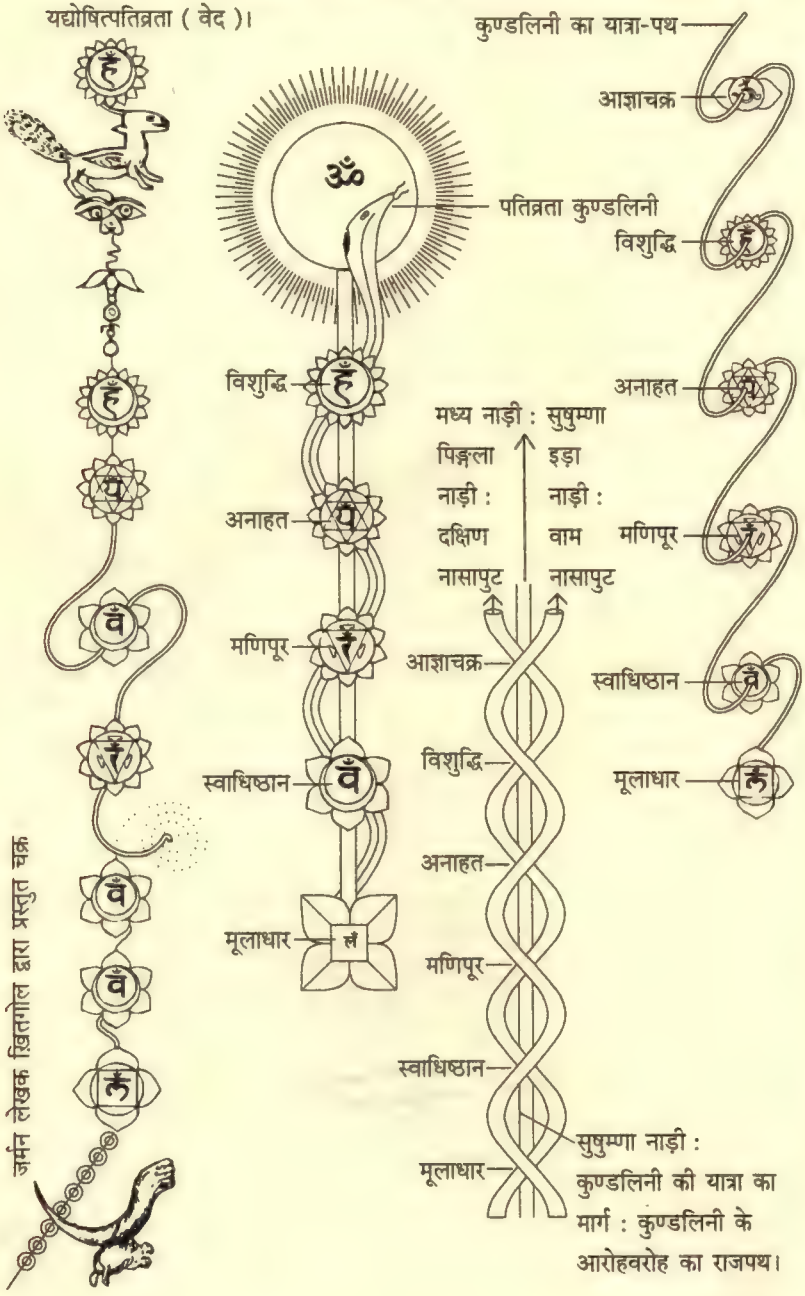

पतिव्रता कुण्डलिनी की लयभूमि— **सहस्रारचक्रम्** (सहस्रदलपद्म)

बैदवस्थाने सहस्रारे सुधासिन्धुमध्ये मणिद्वीपे चिन्तामणिगृहे। (लक्ष्मीधर)

पतिव्रता कुण्डलिनी का लयस्थान
(पतिव्रता कुण्डलिनी का परम धाम)

समयमते चतुष्कोण-मध्यगते बिन्दुः।
(आचार्य लक्ष्मीधर)

कुलयोषित्कुलं त्यक्त्वा परं पुरुषमेति सा।

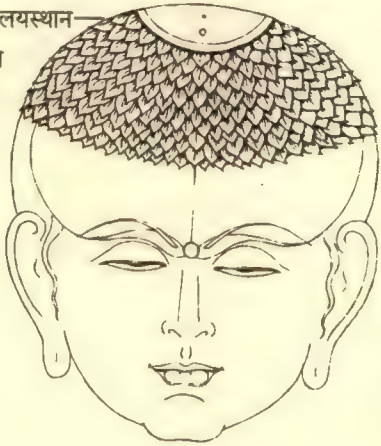

△ शिवलिङ्ग = शिव का प्रतीक।
○ शालिग्राम = विष्णु का प्रतीक।
△ त्रिकोण = शक्ति का प्रतीक।

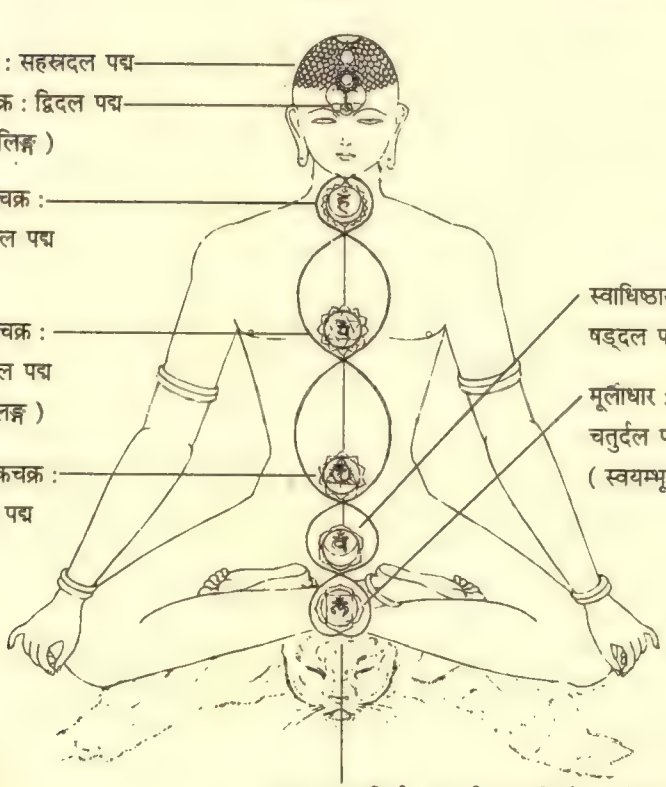

सुषुप्त कुण्डलिनी : कुमारी कुण्डलिनी का निवास-स्थान

कौलमत के अनुसार : **श्रीयन्त्र** : कौलाचार के अनुसार

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः।।

विश्वसर्जनस्वरूप एवं आत्मनिष्ठ अपनी स्फुरत्ता का दर्शन → **श्रीचक्र**।

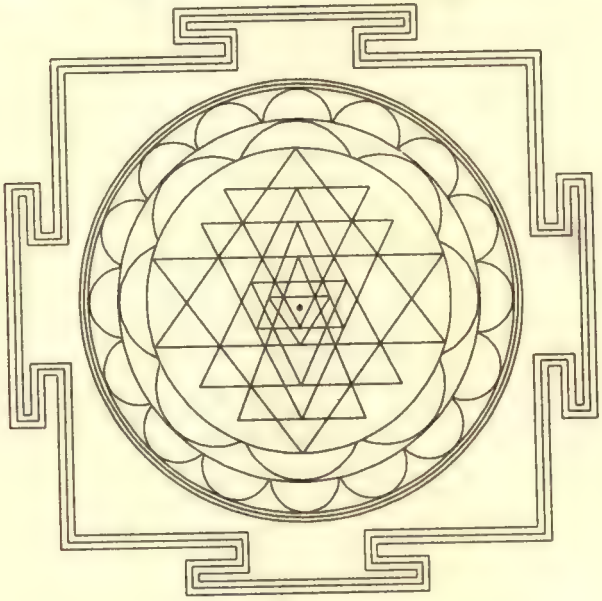

श्रीचक्रक्रम

१. सृष्टिक्रम— नवयोन्यादि पृथिव्यन्त सृष्टिक्रम है।
२. संहारक्रम— पृथिव्यादि नवयोन्यन्त संहारक्रम है।

इन दोनों की समष्टि 'त्रिपुराचक्र' है। अतः श्रीचक्र सृष्टि-प्रलयरूप भी है।

● कौलमत में श्रीचक्र का संहारक्रम के अनुसार एवं समयमत में सृष्टिक्रम के अनुसार लेखन होता है।

● कौलमतानुसार चार अधोमुखी त्रिकोण शिवचक्र हैं और पाँच ऊर्ध्वमुखी चक्र शक्तिचक्र हैं। (श्रीचक्र के मध्य-स्थित बिन्दु को ही सुधासिन्धु माना जाता है)।

● पाँच शक्ति एवं चार वह्नि (शिवचक्र) के संयोग से ही श्रीचक्र की उत्पत्ति होती है—

तच्छक्तिपञ्चकं सृष्ट्या लयेनाग्निचतुष्टयम्।
पञ्चशक्ति-चतुर्वह्नि-संयोगात् चक्रसम्भवः।।

● सृष्टि : पाँच त्रिकोण : शक्ति (अधोमुखी); संहार : चार त्रिकोण : शिव (ऊर्ध्वमुखी) = ९ योनि = धर्माधर्म, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा, जीव, ग्राह्य प्रमा। इसीलिये श्रीचक्र नवयोन्यत्मक है।

कौलचक्रे त्रिकोणमध्यगते बिन्दुः, समयचक्रे चतुष्कोणमध्यगतो बिन्दुः।

इसी महाचक्र में महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा हुआ करती है। इसी में ९ शक्तियाँ भी स्थित हैं।

वामकेश्वर तन्त्र में भी कहा गया है—

तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी।
शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्।
तदुद्भूतामृतस्यन्दिपरमानन्दनन्दिता ।
कुलयोषित्कुलं त्यक्त्वा परं वर्षणमेत्य सा।। (भैरव यामल)

इसमें 'शिवार्कमण्डल' के 'शिवा' का अर्थ है— कुण्डलिनी। कुण्डलिनी शक्ति अर्कमण्डल हृदयकमल के ऊपर स्थित सूर्यमण्डल का भेदन करके, अर्कमण्डल के ऊपर स्थित ब्रह्मद्वार को आच्छादित करके सहस्रदल कमल में स्थित इन्दुमण्डल को डसती है और उसे द्रवीभूत कर देती है; अत: कुलयोषित् कुण्डलिनी शक्ति कुल (कुलमार्ग = सुषुम्ना मार्ग) का त्याग करके और 'इन्दुमण्डल' में स्थित रहकर ७२ हजार नाड़ियों में अमृत की उत्कृष्ट वर्षा करती है। वही कुण्डलिनी पुन: अपने स्थान— स्वाधिष्ठान में आकर शयन करती है।[१]

कुण्डलिनी का स्वस्थान— आधारचक्र के मध्य-स्थित सुषिर के अन्तर्गत बिसतन्तु-निभा कुण्डलिनी का निवास है—

'आधारकन्दमध्यस्थितसुषिरमध्ये बिसतन्तुनिभा तत्र कुण्डलिनी शक्ति: वर्तते।'

'सा कुण्डलिनी पुन: स्वस्थानमेत्य स्वाधिष्ठानं प्राप्य स्वपिति।'

इन दो कथनों द्वारा लक्ष्मीधर ने कुण्डलिनी का स्वगृह एक स्थान पर तो स्वाधिष्ठान बताया, किन्तु दूसरे स्थान पर मूलाधार चक्र बताया— ऐसा क्यों?

कुण्डलिनी तत्त्व और शक्ति-जागरण

शाक्त साधना एवं शाक्त दर्शन का मुख्य लक्ष्य है— सुषुप्त शक्ति का जागरण। चूँकि शक्ति के जागृत होने के पूर्व मुक्ति सम्भव नहीं है; अत: शाक्त सम्प्रदाय की समस्त शाखाओं में शक्तिजागरण की साधना प्रधान है।

'कुलशक्ति' पाताल लोक में अवस्थित है और 'अकुल' तत्त्व मुक्तिलोक में। कुल-शक्ति (कुण्डलिनी) अकुल (शिव) की प्रियतमा है; किन्तु अनन्त काल से अपने प्रियतम से वियुक्त है और साधक का लक्ष्य है— इस वियुक्त दम्पति का मिलन कराना। गोरक्षनाथ ने 'पाताल की गंगा' को ब्रह्माण्ड में चढ़ाने का जो उपदेश दिया है, वह पाताल की गंगा कुण्डलिनी ही है। गोरखनाथ कहते हैं—

'पाताल की गंगा ब्रह्मंड चढाइबा, तहाँ बिमल जल पीया।'

कुमारी कुण्डलिनी— कुण्डलिनी शक्ति की तीन अवस्थायें हैं— 'कुण्डलिनी-शक्तेरवस्थात्रयं विद्यते'। कुण्डलिनी शक्ति की 'कुमारी अवस्था' वह है, जिस अवस्था में वह कुमारी (कौमारावस्था में स्थित) रहती है और सोकर उठने पर प्रथमत: मन्द्र स्वर

१. लक्ष्मीधरा।

में ध्वनि करती है। यह ध्वनि सर्प होने के कारण सोकर उठने पर करती है; क्योंकि प्रत्येक सर्प सोकर उठने पर मन्द्र स्वर ध्वनित करता है— 'यस्मिन् चक्रे कुमारी कौमारावस्थापन्ना प्रथमं सुप्तोत्थिता मन्द्रयते मन्द्रस्वरं करोति, कुण्डलिन्या सर्पात्मकत्वात्। सर्पो हि सुप्तोत्थाने मन्द्रस्वरं करोति, तद्वदित्यर्थः।[१]

यत्कुमारी मन्द्रयते यद्योषिद्यत्पतिव्रता।
अरिष्टं यत्किञ्च अग्निस्तदनुवेधति।।[२]

योषित् कुण्डलिनी— जब कुण्डलिनी विष्णुग्रन्थिपर्यन्त जाकर ध्वनि करती है तब उसे 'योषित् कुण्डलिनी' कहते हैं— 'यद्योषित यस्मिन् चक्रे कुलयोषित् विष्णुग्रन्थिपर्यन्तं गत्वा रातीति शेषः।'

कुलयोषित् कुलं त्यक्त्वा राति विष्णोः प्रभेदने। (सनत्कुमार)

पतिव्रता कुण्डलिनी[३]— जब कुण्डलिनी अपने पति सदाशिव के साथ सहस्रदल कमल में विहार करती है तब उसे 'पतिव्रता कुण्डलिनी' कहते हैं— यद्यस्मिन् चक्रे पतिव्रता पत्या सदाशिवेन सार्धसहस्रदलकमले विहरमाणा।

यह कुण्डलिनी जो अरिष्ट (अमृतास्वादरूप शुभ उपलब्धि) प्राप्त करती है, उसे प्राप्त कराने में स्वाधिष्ठान चक्रगत अग्नि उसकी सहायता करती है। अभ्यासवश वायु के द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करके अग्निशिखा से अनुविद्ध चन्द्रमण्डल से पीयूषधारा चूने लगती है और इसे पीकर २५ तत्त्वों से अतीत यह परमेश्वरी सहस्रार चक्र में विहार करती है।

शक्तिकुण्डलिनी

'अ' नाम की पराशक्ति ही 'अमा' एवं 'सप्तदशी कला' है। यह तिरोधान से मुक्त होने के कारण नित्योदित है। यही 'अमृत कला' है। षोडश कलाओं की यही उद्भाविका है। प्रमाता, प्रमेय एवं प्रमाण तीनों 'अमा कला' से एकीभूत (अभिन्न) हैं। जब 'अमा कला' विसर्गहीन हो जाती है (जब वह बहिर्मुखी नहीं रहती) तब उसकी आख्या होती है— 'शक्ति कुण्डलिनी'। यह प्रसुप्त, सर्पाकार, स्वात्मविश्रान्त 'परासंवित्' है। 'विसर्ग'

---

१. लक्ष्मीधरा (श्लोक-११) २. लक्ष्मीधरा (श्लोक-११)

३. कुण्डलिनी के कुमारी, योषित, पतिव्रता आदि स्वरूप गौडपादाचार्य ने भी कहा है—

कुमारी यन्मन्द्रं ध्वनति च ततो योषिदपरा।
कुलं त्यक्त्वा रौति स्फुटति च महाकालभुजगा।।
ततः पातिव्रत्यं भजति दहराकाशकमले।
सुखासीना योषा भवसि भवसीत्काररसिका।।

—शाक्ताचार्य गौड़पाद दहराकाश में स्थित पतिव्रता कुण्डलिनी की साधना एवं साक्षात्कार करने का परामर्श देते हैं।

के दो प्रान्तों में दो कुण्डलिनियाँ हैं, जो कि निम्न हैं—

कुण्डलिनी

आदि कोटि में स्थित	अन्त कोटि में
कुण्डलिनी = 'प्राण कुण्डलिनी' (बहिर्मुखी, कारणभूता संवित्) प्रथमतः प्राण के रूप में ही उन्मिषित होती है— 'संवित् प्राक् प्राणे परिणता।'	स्थित = स्वात्म विश्रान्त, अन्तर्मुखी परा संवित् = 'परा कुण्डलिनी'

विसर्ग

आणव विसर्ग	शाक्त विसर्ग	शाम्भव विसर्ग
(भेदप्रधान स्थूल सृष्टि) 'स्थूल विसर्ग' (संकुचित ज्ञान वाले चित्त का विसर्ग) बहिर्मुखावस्था।	(भेदाभेदप्रधानप्रधान सूक्ष्म सृष्टि) चित्त का सम्बोध। इस अवस्था में चित्त अपने निष्कल रूप में आत्मसमर्पणार्थ प्रस्तुत रहता है। 'इसके अखण्ड प्रकाश में समस्त विश्व की आहुति हो रही है।' ऐसी अनुभूति होती है। यही अवस्था है— 'शक्ति की अवस्था'।	(अभेदात्मक सूक्ष्मातिसूक्ष्म सृष्टि) इस शैव विसर्ग में न भेद रहता है। न भेदाभेद, न विश्व रहता है, न उसकी अनुभूति। चित्त प्रलीन रहता है और मात्र संवित् तत्त्व रहता है।

'विसर्ग शक्ति' खण्डविहीन एकीभूत प्रकाश की परा शक्ति है। यह 'परप्रमाता' के साथ अभिन्न रूप से अवस्थित रहती है। इसे इच्छातत्त्व की दृष्टि से देखा जाय तो यही 'कामकला' भी है।

'कामकला' अर्थात् तात्त्विक सृष्टि की प्रथमावस्था। यही इच्छा बहिर्मुखी होने पर 'विसर्ग' कहलाती है।

'कुण्डलिनी' का अपरपर्याय है— आधारशक्ति। इसका जागरण चैतन्यसम्पादन है। इसका चैतन्य-सम्पादन करने से यह निरालम्ब होकर शुद्ध चित्स्वरूप में स्थित हो जाती है। कुण्डलिनी के आधारशून्य होते ही संसार की समस्त वस्तुयें निराधार हो जाती हैं।

कुण्डलिनी जब प्रबुद्ध होने पर चिन्मयत्व आयत्त करती है, तब समस्त विश्व भी चैतन्य रूप धारण करता है। कुण्डलिनी का जागरण एवं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की अनुभूति अभिन्न है। यही है— पूर्णाद्वैत और तन्त्रशास्त्र का 'पूर्णाहन्ता'।

श्रीविद्या सम्प्रदाय का वर्ण-विज्ञान और उसका रहस्य

वर्ण का शक्तित्व और शिवत्व— शाक्त उपासना शत-प्रतिशत 'शक्ति' की उपासना है। शाक्तों ने 'मन्त्र' को भगवती त्रिपुरसुन्दरी का सूक्ष्म स्वरूप कहा और मन्त्रों के तथा वर्णमाला के समस्त वर्णों एवं मातृकाओं को 'शक्ति' का अवतार— शक्ति की

ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति— शक्ति का नादात्मक रूकार एवं भगवती का सूक्ष्म शरीर कहा। शाक्तों ने यह भी माना कि प्रत्येक मातृका एवं वर्ण की अपनी-अपनी विशिष्ट शक्ति भी है और वर्णों की ये सभी व्यष्टि शक्तियाँ 'पराशक्ति' में मिलकर महात्रिपुरसुन्दरी-स्वरूप हो जाती हैं। 'अ' वर्णमाला का प्रथमाक्षर एवं 'ह' अन्तिमाक्षर है। 'अ' शिव है और 'ह' शक्ति; अतः सभी वर्ण शिव एवं शक्ति हैं। इसीलिये कहा भी गया है—

सर्वे वर्णात्मकाः मन्त्राः ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये।

'नाद' चित् शक्ति का स्वरूप है और प्रत्येक वर्ण के मूल में चेतन नाद तत्त्व मणिमाला में सूत्रवत् पिरोया हुआ है—

एको नादात्मको वर्णः सर्वनादविभागवान्।
सोऽनस्तमितरूपत्वादनाहत इतीरितः।।

शब्द या वर्ण को 'ब्रह्म' कहा गया है—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दमक्षरसंज्ञितम्।

या— अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।

शब्द ही रूपान्तरित होकर पदार्थ बन जाता है। वाक्यपदीय में कहा भी गया है—

विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।

'शब्द' का परिणाम ही 'जगत्' है, ये ही ३६ तत्त्व हैं एवं इसका विस्तार ही समस्त सृष्टि है। सारी सत्ताये शब्द के ही रूपान्तर हैं और शब्द 'शक्ति' का रूपान्तर है। अतः सब कुछ 'शक्ति' ही है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी स्वयमेव 'शब्दब्रह्म' है—

शब्दब्रह्ममयी स्वच्छा देवी त्रिपुरसुन्दरी।

समस्त मन्त्र वर्णात्मक और शक्त्यात्मक हैं। शक्ति ही मातृका (वर्ण) है और वही शिवात्मिका भी है—

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रा ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका।।

वर्ण या मातृकायें परम तेज से समन्वित हैं और उन्होंने आब्रह्म भुवनपर्यन्त सभी को व्याप्त कर रक्खा है—

या सा तु मातृका लोके परतेजःसमन्विता।
तया व्याप्तमिदं सर्वं आब्रह्मभुवनात्मकम्।।

वाक् एवं उसके अर्थ दोनों ही शिव-शक्तिमय हैं—

वागर्थौ नित्ययुतौ परस्परं शक्तिशिवमयावेतौ।

श्रीविद्या (मन्त्र) एवं देवता (भगवती त्रिपुरसुन्दरी) में रञ्चमात्र भी भेद नहीं है।

कामकलाविलास में कहा भी गया है—

विद्यादैवतयोरपि न भेदलेशोऽस्ति वेद्यवेदकयोः।

भगवती स्वयं मातृका हैं—

विश्वं व्याप्य निजात्मनाहमहमित्युज्जृम्भसे मातृके। (दुर्वासा)

'श्रीविद्या' (मन्त्र) भी भगवती का ही स्वरूप है—

विद्यापि तादृगात्मा सूक्ष्मा सा त्रिपुरसुन्दरी देवी। (कामकलाविलास)

पञ्चदशाक्षरी मन्त्र स्वयं देवी त्रिपुरसुन्दरी ही हैं, अन्य कोई नहीं—

अहं पञ्चाक्षरस्साक्षात्त्वं तु पञ्चदशाक्षरी। (चिदम्बररहस्य)

मन्त्र में 'वाच्य' एवं 'वाचक' दो शक्तियाँ रहती हैं। वाच्य शक्ति मन्त्र की आत्मा है। यह ज्योतिर्मयी है। 'शब्दब्रह्म' ही परा वाक् है और परा वाक् तथा शब्दब्रह्म दोनों ही 'शक्ति' के रूप हैं। शक्ति सबका उपादान कारण है। मन्त्रों (वर्णों) की जीवभूता शक्ति 'विमर्श शक्ति' है, जो परमशिव से अभिन्न है—

मन्त्राणां जीवभूता तु या स्मृता शक्तिरव्यया।
तया हीना वरारोहे निष्फला शरदभ्रवत्।।
(शिवसूत्रविमर्शिनी)

वर्णात्मक मन्त्र 'मन्त्र' नहीं, प्रत्युत वर्णों में निहित शक्ति ही मन्त्र है; उसमें निहित नाद का उल्लास ही मन्त्र है—

वर्णात्मको न मन्त्रो नादोल्लासो भवेन्मन्त्रः। (महार्थमञ्जरी)

(भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का रूप = शब्द का चरम रूप = परा वाक्। ईक्षणात्मक मातृका = पश्यन्ती वाक्। मातृका का हृदयस्थ सूक्ष्म स्वरूप = मध्यमा वाक्। नववर्ग-वती स्थूल मातृका = भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्थूल मातृका शरीर है।)

कुण्डलिनी शक्ति और भगवती महात्रिपुरसुन्दरी

त्वां व्यापिनीति सुमना इति कुण्डलीति।

'कुण्डलिनी शक्ति' वर्णशरीरात्मिका है। वर्ण और नाद ही उसका शरीर है। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी कुण्डलिनी ही हैं।

पराकुण्डलिनी— 'नाद' से ही सम्पूर्ण विश्व का सृजन होता है। नाद ही प्राण एवं जीवनी शक्ति है। यही अनन्त विश्व को गर्भ में धारण करके प्रसुप्त सर्पाकार में रहता है। जब वह विश्व को गर्भ में धारण करके स्थित रहता है, तब इसे 'परा कुण्ड-लिनी' कहते हैं।

वर्णकुण्डलिनी— जब परा कुण्डलिनी का नादात्मक रूप में स्फुरण होता है, तब इसे 'वर्णकुण्डलिनी' कहते हैं।

प्राणकुण्डलिनी— जब यह नादरूप भी गम्भीर सुषुप्ति में लीन हो जाता है, तब इसे 'प्राणकुण्डलिनी' कहते हैं। यह प्राण ही 'हंस' है। हकार विमर्शन रूप से हान (त्याग) करता है और सकार विमर्श रूप से समादान (ग्रहण) करता है। त्याग एवं ग्रहण ही इसका स्वभाव है। यही नादात्मक हंस का नित्योच्चारण है।

ऊर्ध्व कुण्डलिनी— ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्व में ऊर्ध्व कुण्डलिनी स्थित है। उसका स्वरूप प्रसुप्त भुजंगी के समान है और वही सकल भुवनों का आधार है। यही 'ऊर्ध्व कुण्डलिनी' शक्ति अपनी स्वरूपात्मक भित्ति पर समग्र विश्व का स्फुरण करती है। इसी कुण्डलिनी शक्ति से शक्तितत्त्व का आरम्भ होता है। समग्र भुवनों एवं तत्त्वों का मुख्याधार यही कुण्डलिनी शक्ति है।

शक्ति कुण्डलिनी— माया के ऊपर शक्ति का सञ्चार होता है। इसके नीचे 'शक्ति कुण्डलिनी' का स्थान है। माया शक्ति ही नाद-बिन्दु एवं अनन्त विश्व के आकार में स्फुरित होती है। 'शक्ति कुण्डलिनी' के गर्भ में समग्र विश्व अवस्थित रहता है।

जब 'अमाकला' विसर्गहीन हो जाती है अर्थात् जब वह बहिरुन्मुख नहीं रह जाती, तब उसका नाम— 'शक्ति कुण्डलिनी' हो जाता है। यही प्रसुप्त, भुजंगाकार, स्वात्ममात्र विश्रान्त 'परासंवित्' है।

विसर्ग के दो प्रान्तों में दो कुण्डलिनियाँ हैं। आदि कोटि में जो कुण्डलिनी है, उसका नाम है— 'प्राणकुण्डलिनी'; क्योंकि बहिरुन्मुख 'कारण संवित्' प्रथमतः प्राण के रूप में प्रकट होती है। जो अन्त कोटि में कुण्डलिनी है, उसका नाम है— 'परा कुण्डलिनी'। यह स्वात्मविश्रान्त परासंवित् है; जो कि अन्तरुन्मुख है।

महामाया का ही नामान्तर है— कुण्डलिनी शक्ति। परा शक्ति ही कुण्डलिनी[१] है और उसके विविध विकासात्मक चरण या सोपान हैं—

---

१. इस कुण्डलिनी शक्ति को 'यामल' में चित्कला भी कहा गया है—

ध्यायेत्कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिताम्।
चित्कलां यां कुण्डलिनीं तेजोरूपां जगन्मयीम्।।

'महानिर्वाणतन्त्र' में कुण्डलिनी को 'परब्रह्म' भी कहा गया है—

ॐ नमस्ते परमं ब्रह्म कुण्डलिनीस्वरूपिणे।
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सद्रूपाय नमो नमः।।

'देवीभागवत' पुराण में इसे 'सच्चिदानन्दरूपिणी' एवं 'प्राणाग्नि' कहा गया है—

महाकुण्डलिनीरूपे सच्चिदानन्दरूपिणी।
प्राणाग्निहोत्रविद्ये ते नमो दीपशिखात्मिके।।

'त्रिपुरातापित्युपनिषद्' में त्रिपुरा को 'महाकुण्डलिनी' भी कहा गया है—

त्रिपुरा शक्तिराद्येयं त्रिपुरा परमेश्वरी।
महाकुण्डलिनी देवी जातवेदसमण्डलम्।।

या सा शक्तिः परा सूक्ष्मा निराकारेति कीर्तिता।
हृद्बिन्दुं वेष्टयित्वा तु सुषुप्ता भुजगाकृतिः।।

तत्र सुप्तो महायोगी न किञ्चिन्मन्यते यमी।
चन्द्रार्कानिलनक्षत्रैर्भुवनानि चतुर्दश।।

व्याप्तोदरे तु सा देवी विषवन्मूढतां गता।
प्रबुद्धा सा निनादेन परेण ज्ञानरूपिणी।।

मथिता चोदरस्थेन बन्धनादपि वह्निना।
तावद्वै भ्रमयोगेन मन्थनं शक्तिविग्रहे।।

भेदात्तु प्रथमोत्पन्नाद् बिन्दुर्नादत्वमीयते।
समुत्थिता यथा तेन कालसूक्ष्मा तु कुण्डली।।

चतुष्कलमयो बिन्दुः शक्तेश्चोत्तरगः प्रभुः।
मध्यमन्थनयोगेन ऋजुत्वं जायते प्रिये।।

ज्येष्ठा शक्तिः स्मृता सा तु बिन्दुद्वयसुमध्यमा।
बिन्दुनादत्वमायाता रेखयाऽमृतकुण्डली।।

लाकिनी नाम सा ज्ञेया उभौ बिन्दू यथागतौ।
त्रिपदा सा समाख्याता रौद्री नाम्ना तु गीयते।।

रोधिनी सा समुद्दिष्टा मोक्षमार्गनिरोधनात्।
शशाङ्कशकलाकारा अम्बिका चार्धचन्द्रिका।।

एकैवेत्थं परा शक्तिः त्रिधा सा तु प्रजायते।
आभ्यो युक्ता विविक्ताभ्यः सञ्जातो नववर्गकः।।
नवधा च स्मृता सा तु नववर्गोपलक्षिता।। (चिद्वल्ली)

परमेश्वर की बोधरूपा शक्ति विश्व को गर्भ में धारण करके अपने 'परा कुण्डलिनी' स्वरूप में स्थित है। जब वह विमर्शात्मिका होने के कारण नादात्मिका स्वरूप में अवतरित होती है, तब उसे 'वर्णकुण्डलिनी' कहते हैं। यह विश्वगर्भा कुण्डलिनी शक्ति सुषुप्ता सर्पिणी के समान है। यह स्वभावतः अपने नादात्मक या विमर्शात्मक स्वरूप का त्याग करके प्राणात्मक स्वरूप को ग्रहण किए हुये है। यह 'वर्णकुण्डलिनी' के स्वरूप को दबाकर 'प्राणकुण्डलिनी' के रूप में अवतरित होती है। प्राण ही 'हंस' है, जो कि स्वभावतः ऊर्ध्वाधः सञ्चरण करता है। इसके इस सञ्चरण से हकार एवं सकार के विमर्शरूप में उसकी प्रतीति होती है। 'ह' त्यागपक्ष है और 'स' ग्रहणपक्ष है। यह नादरूपी हंस का स्वाभाविक उच्चार ही स्फुट 'वर्णोच्चार' है। यही वर्णोच्चार योगियों के भ्रूमध्य में 'बिन्दु' के रूप में अनुभव में आता है। भ्रूमध्य का यह बिन्दु 'अ' 'उ' 'म'

(अकार = जाग्रतावस्था, उकार = स्वप्नावस्था, मकार = सुषुप्त्यवस्था) को मिलाकर उन्हें एकाकार करके ज्योतिर्मय ज्ञान के रूप में उदित होता है। अ, उ, म— तीनों को मिलाकर या एकाकार कर देने से जो अविभाज्य ज्योतिर्मय ज्ञान उदित होता है, उसी की आख्या है— 'बिन्दु'। यह तीनों मात्राओं (अ, उ, म = जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त अवस्थाओं) की अविभक्त एवं ज्योतिर्मय ज्ञानावस्था है। बिन्दुरूप ईश्वर का स्थान भ्रूमध्य में है। 'ब्रह्मा'— हृदय, 'विष्णु'— कण्ठ एवं 'रुद्र'— तालुमध्य में रहते हैं। सदाशिव ललाट से मूर्धापर्यन्त रहते हैं। 'शिव' की अंगभूता शक्ति 'व्यापिनी' एवं 'समना' मूर्धा के मध्य से ऊर्ध्व देश में है। बिन्दु अर्धचन्द्र एवं निरोधिका तक एवं नाद नादान्त तक व्याप्त है। आनन्दमयी स्पर्शानुभूति के बाद शक्ति एवं निर्विषयक मननमात्र का अनुभव होने के बाद 'समना' का त्याग हो जाता है। 'उन्मना' परमेश्वर की समवायिनी शक्ति है।

चित् शक्ति अकुल की आदि शक्ति कुलशक्ति ही है, जिसे 'कुलकुण्डलिनी'[१] भी कहते हैं। यह 'विसर्ग शक्ति' का ही सूक्ष्मतम स्वरूप है। इसी शक्ति से निखिल विश्व स्फुरित होता है।

---

१. **गोरक्षनाथ की दृष्टि**— यद्यपि कुण्डलिनी स्वरूपत: एक ही है, तथापि स्थान एवं स्थूल-सूक्ष्मभेद की दृष्टि से उसके तीन भेद किये गये हैं— अध:कुण्डलिनी, मध्यशक्ति कुण्डलिनी और ऊर्ध्वशक्ति कुण्डलिनी—

मूलाधार चक्र में स्थित कुण्डलिनी = अध:शक्तिकुण्डलिनी
मणिपूर चक्र में स्थित कुण्डलिनी = मध्यशक्ति कुण्डलिनी
सहस्रदल चक्र में स्थित कुण्डलिनी = ऊर्ध्वशक्ति कुण्डलिनी।

१. मध्यशक्तिप्रबोधेन अध:शक्तिनिकुञ्जनादूर्ध्वशक्तिनिपातेन प्राप्त्यते परमं पदम्।
२. एकैव सा मध्योर्ध्वाध:प्रभेदेन त्रिधा भिन्ना शक्तिरभिधीयते।
३. बाह्येन्द्रियव्यापारनानाचिन्तामया सैवाध:शक्तिरित्युच्यते। (सि० सि० पद्धति)

कुण्डलिनी के दो भेद हैं— अप्रबुद्ध और प्रबुद्ध (सि० सि० प०)।

गोरक्षनाथ की दृष्टि— कुण्डलिनी प्रबुद्धा अप्रबुद्धा चेति द्विधा।
अप्रबुद्धा कुण्डलिनी = मूलाधार में स्थित एवं कुटिलस्वभावा।
प्रबुद्धा कुण्डलिनी = ऊर्ध्वगामिनी (सहस्रारस्था) = बन्धन, विनाशिनी, मुक्तिदा।
'अप्रबुद्धेति कुटिलस्वभावा कुण्डलिनी ख्याता। सैव योगिनां तत्तदविलसितविकाराणां निवारणोद्यमस्वरूपा कुण्डलिन्यूर्ध्वगामिनी प्रसिद्धा भवति।'

स्थूल कुण्डलिनी और सूक्ष्म कुण्डलिनी—
स्थूल कुण्डलिनी— साकार स्थूल।
सूक्ष्म कुण्डलिनी— निराकार, संवित्स्वरूपा।।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का कुण्डलिनी-स्वरूप

वाग्देवता कुण्डलिनी का स्वरूप

भगवती कुण्डलिनी वर्णविग्रहा एवं नादात्मा हैं। वे मन्त्रमयी हैं। वाग्देवता के अंग वर्ण-(शब्द)-मय हैं। यह वर्णतनु हैं। समस्त वर्ण अग्नीषोमात्मक हैं।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का कुण्डलिनी एवं वाक्चतुष्टयात्मक स्वरूप

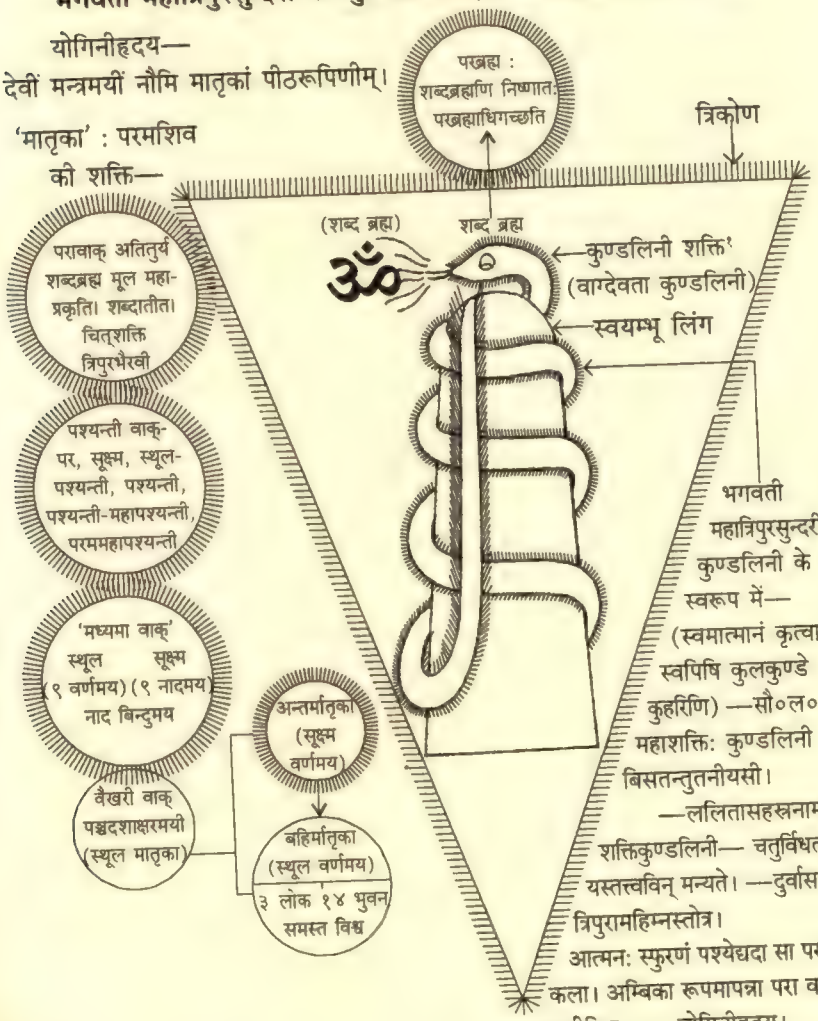

---

१. भगवती ललिता (महात्रिपुरसुन्दरी) वाग्देवता हैं, वे वाणी के चारो रूप हैं— वे परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी चारो हैं—

चिच्छक्तिरेव पराख्या चैतन्याभासविशिष्टतया प्रकाशिता माया निष्पन्दा परा वाक्।
(पदार्थादर्श)

एका परा इति सत्त्वरजस्तमोगुणसाम्यरूपा। (लक्ष्मीधरा)

परावाक् = चिति शक्ति। परमात्मा की अघटन घटनापटीयसी स्वातन्त्र्य शक्ति = 'महासत्ता'= परमेश्वर का 'हृदयसार' = विमर्शशक्ति 'त्रिपुरसुन्दरी।'

प्रकृतिः निश्चला परा वाग्रूपिणी परप्रणवात्मिका कुण्डलिनी शक्तिः।
(प्रपञ्चसारतन्त्रविवरण)

प्रपञ्चसारविवरण— बैन्दव तत्त्वरूप शब्दब्रह्म से भी ऊपर तत्त्व संज्ञा नामक परा वाक् है। शब्दब्रह्म— शब्दत्व + ब्रह्मत्व।

वाणी के भेद : पद्मपाद : ७ प्रकार— १. शून्य, २. संवित्, ३. सूक्ष्मा, ४. परा, ५. पश्यन्ती, ६. मध्यमा, ७. वैखरी। परा वाक् शब्द की चरमावस्था है।

अभिनवगुप्त ने पश्यन्ती का महापश्यन्ती और परममहापश्यन्ती रूप भी माना है।

परा वाक् = शुद्ध प्रकृति। मूल महाप्रकृति। 'प्रतिभादेवी'। परा वाक् नित्य है।

प्रत्येक वर्ण एक शक्ति है। सोमानन्द के अनुसार पश्यन्ती ज्ञानशक्ति है एवं अभिनवगुप्त के अनुसार इच्छाशक्ति है। मातृका के पर रूप में इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया तीनों शक्तियाँ स्थित हैं। अभिनवगुप्त एवं भर्तृहरि मध्यमा का पर रूप भी मानते हैं। तन्त्रालोक में मध्यमा के तीन भेद वर्णित हैं— स्थूल, सूक्ष्म और पर। पद्मपाद के मत में पश्यन्ती नादमयी है। शारदातिलक के अनुसार मध्यमा नादमय है। आचार्य पद्मपाद के मत से मध्यमा बिन्दुमय है।

पञ्च मकारों के प्रतीकार्थ

पञ्च मकारों के प्रतीकार्थ भी ग्रहण किए गए हैं; यथा—

१. मद्य = सहस्रदल कमल के चन्द्रमा से क्षरित मधुरूप अमृत।

परा प्रत्यक् चितीरूपा पश्यन्ती पर देवता।
मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका।। (ललितासहस्रनाम)

भवगती मूलमन्त्रात्मिका भी हैं— 'मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा सर्वेश्वरी सर्वमयी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी।'

वे नादरूपा भी है— 'नारायणी नादरूपा नामरूपविवर्जिता।' (ललितासहस्रनाम)

वे मातृकावर्णरूपिणी भी हैं— 'माध्वीपानालसा मत्ता मातृकावर्णरूपिणी।'

वे विद्यास्वरूपा भी हैं— 'विमर्शरूपिणी विद्या ।' (ललितासहस्रनाम)

वे भाषारूपा भी हैं— 'भाषारूपा बृहत्सेना।'

वे वर्णस्वरूपा भी हैं— 'उदारकीर्तिरुद्दामवैभवा वर्णरूपिणी।'

वे नादात्मिका हैं— 'नैष्कर्म्या नादरूपिणी।' (ललितासहस्रनाम)

२. मांस = ज्ञानरूपी तलवार से पुण्य-पापरूप पशु के वध से निर्मल किया गया मन।

३. मत्स्य = गंगा-यमुना (इड़ा-पिङ्गला) में प्रवहमान श्वास-प्रश्वासरूप मत्स्य।

४. मुद्रा = असत्संग का परित्याग।

५. मैथुन = कुण्डलिनी शक्ति का सहस्रारस्थ शिव के साथ मिलन। यह आचार एवं मार्ग योगप्रधान है।

कल्पसूत्र में इस सम्बन्ध में कहा भी गया है—

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे व्यवस्थितम्।
तस्याभिव्यञ्जकाः पञ्च मकारास्तैरर्थार्चनम्।।

१. मदिरा— ब्रह्मस्थानसरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्डतृप्तिप्रदा
या शुभ्रांशुकलासुधाविगलिता सा पानयोग्या सुरा।
सा हाला पिबतामनर्थकलदा श्रीदिव्यभावाश्रिता
यामित्वा मुनयः परार्थकुशला निर्वाणमुक्तिङ्गताः।।

२. मांस— कामक्रोधसुलोभमोहपशुकांश्छित्वा विवेकासिना
मांसं निर्विषयं परात्मसुखदं खादन्ति तेषां बुधाः।
ते विज्ञानपरा धरातलसुरास्ते पुण्यवन्तो नरा
नाश्नीयात्पशुमांसमात्मविमतेर्हिंसापरं सज्जनः।।

३. मीन— अहङ्कारो दम्भो मदपिशुनतामत्सरद्विषः
षडेतान्मीनान् वै विषयहरजालेन विधृतान्।
पचन् सद्विद्याग्नौ द्यनियमितकृतिर्धीवरकृतिः
सदा खादेत्सर्वत्र च जलचराणां तु पिशितम्।।

४. मुद्रा— आशा-तृष्णा-जुगुप्सा-भय-विशद-घृणा-मान-लज्जा-प्रकोपाः
ब्रह्माग्नावष्टमुद्राः परसुकृतिजनः पाच्यमानाः समन्तात्।
नित्यं सम्भक्षयेत्तानवहितमनसा दिव्यभावानुरागी
योऽसौ ब्रह्माण्डभाण्डे पशुहतिविमुखो रुद्रतुल्यो महात्मा।।

५. मैथुन— या नाडी सूक्ष्मरूपा परमपदगता सेवनीया सुषुम्णा
सा कान्तालिङ्गनार्हा न मनुजरमणी सुन्दरी वारयोषित्।
कुर्याच्चन्द्रार्कयोगे युगपवनगते मैथुनं नैव योनौ
योगीन्द्रो विश्ववन्द्यः सुखमयभवने तां परिष्वज्य नित्यम्।।

अथवा

१. मद्य— यदुक्तं परमं ब्रह्म निर्विकारं निरञ्जनम्।
तस्मिन् प्रमदनज्ञानं तन्मद्यं परिकीर्तितम्।।

२. मांस— माशब्दाद्रसना ज्ञेया तदंशान् रसना प्रिये।
सदा यो भक्षयेद्देवि ! स एव मांससाधकः।।

३. मत्स्य— गङ्गायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद्यस्तु स भवेन्मत्स्यसाधकः।।

अथवा

मत्समानं सर्वमूले सुखदुःखमिदं प्रिये।
इति यत्सात्त्विकं ज्ञानं तन्मत्स्यः परिकीर्तितः।।

४. मुद्रा— सहस्रारे महापद्मे कर्णिकामुद्रितश्चरेत्।
आत्मा तत्रैव देवेशि ! केवलः पारदोपमः।।

सूर्यकोटिप्रतीकाशः चन्द्रकोटिसुशीतलः।
अतीव कमनीयश्च महाकुण्डलिनीयुतः।
यस्य ज्ञानोदयस्तत्र मुद्रासाधक उच्यते।।

* * * * *

सत्सङ्गेन भवेन्मुक्तिरसत्सङ्गेषु बन्धनम्।
असत्सङ्गमुद्रणं यत्तु तन्मुद्रा परिकीर्तिता।।

५. मैथुन— रेकस्तु कुङ्कुमाभास कुण्डमध्ये व्यवस्थितः।
मकारश्च बिन्दुरूपः महायोनौ स्थितः प्रिये।।

अकारहंसमारूह्य एकता च यदा भवेत्।
तदा जातो महानन्दो ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्।।

* * * * *

कुलकुण्डलिनी शक्तिः देहिनी देहधारिणी।
तथा शिवस्य संयोगो मैथुनं परिकीर्तितम्।।

'मा' = वाक्संयमी— 'मांससाधक'। कुम्भक प्राणायामपरायण = 'मत्स्यसाधक'। सात्त्विक ज्ञान = 'मत्स्य'। सहस्रदल महापद्म में मुद्रित कर्णिका के भीतर पारदवत् आत्मा का कुण्डलिनी से संयुक्त होने का ज्ञान = 'मुद्रासाधक'। कुसंग-त्याग = 'मुद्रा'। ब्रह्मविषयक प्रमदन ज्ञान = 'मद्य'।

पञ्चमकारोपयोगविषयक भ्रामक दृष्टि का निराकरण

तान्त्रिक साधना मात्र आभिजात्य वर्ग या कुलीनों के लिए नहीं; अपितु मुख्यतः समाज के सबसे निचले, उपेक्षित एवं पददलित लोगों को आध्यात्मिक साधना में सत्पात्रता एवं अधिकार प्रदान करने के उद्देश्य से उपदिष्ट हुई थी; अतः इस वर्ग के आचार-विचार, खान-पान आदि सभी को ध्यान में रखकर साधनोपायों का भी इनसे

सामञ्जस्य स्थापित किया गया था; किन्तु ये सम्पूर्ण तन्त्रोक्त विधान सभी वर्गों के लिए अनिवार्य नहीं थे। मांस खाने वाले, मदिरा का सेवन करने वाले, बलि चढ़ाने वाले एवं वन्य जीवन के अभ्यस्त गोंड़, भील, सन्थाल, कोल आदि जातियों के लिए पूर्ण दक्षिण-मार्गी आचार की शिक्षा तो व्यर्थ ही हो जाती; अतः उनको भी साधना-समाज में स्थान दिलाने के लिए तन्त्र ने उनके आचार-विचार से सम्बद्ध साधना-पद्धति का प्रवर्तन करके पञ्च मकारों के सेवन की छूट दे दी; किन्तु इसे सभी वर्णों के लिए न तो शुभ माना गया और न ही अनिवार्य। पञ्च मकारों की व्याख्या एवं उसका उपयोग तीन प्रकार से विहित स्वीकार किया गया—

१. वन्य जीवन-याजन करने वाले एवं समाज के आपन्न, पददलित एवं आचार-विचार आदि के ज्ञान से शून्य तथा श्रेष्ठ समाज द्वारा त्याज्य निम्नतम वर्ग के लिये अभिधेयार्थ में पञ्च मकारों का उपयोग।

२. उच्च वर्ग के लिए अपनी वर्णव्यवस्थागत धर्मानुसार।

३. उच्च अधिकारियों के लिए प्रतीकात्मक अर्थ के अनुसार।

पञ्च मकारों का प्रयोग एवं उपयोग मोक्षदायक माना गया है—

मद्यमांसश्च मीनश्च मुद्रामैथुनमेव च।
मकारपञ्चकं प्राहुर्योगिनां मुक्तिदायकम्।।

पञ्च मकारों का प्रतीकात्मक उपयोग— इन पञ्च मकारों को प्रतीकात्मक उपयोग करने का उपदेश भी है; यथा—

मैथुन— सहस्रारोपरि बिन्दौ कुण्डल्या मेलनं शिवे।
मैथुनं परमं द्रव्यं यतीनां परिकीर्तितम्।।

मद्य— व्योमपङ्कजनिष्यन्दसुधापानरतो भवेत्।
मद्यपानमिदं प्रोक्तमितरे मद्यपायिनः।।

ब्रह्मस्थानसरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्डतृप्तिप्रदा।
या शुभ्रांशुकलासुधाविगलिता सा पानयोग्या सुरा।।

मीन— मानसादीन्द्रियगुणं संयम्यात्मनि योजयेत्।
स मीनाशी भवेद्देवि ! इतरे प्राणहिंसकाः।।

मुद्रा— आशा-तृष्णा-जुगुप्सा-भय-विषय-मान-लज्जाप्रकोपाः।
ब्रह्माग्नावष्टमुद्रा परसुकृतिजनः पच्यमानः समन्तात्।।

मैथुन— या नाड़ी सूक्ष्मरूपा परमपदगता सेवनीया सुषुम्णा
सा कान्तालिङ्गनार्हा न मनुज-रमणी-सुन्दरी-वारयोषित्।
कुर्याच्चन्द्रार्कयोगे युगपवनगते मैथुनं नैव योनौ
योगीन्द्रो विश्ववन्द्यः सुखमयभवने तां परिष्वज्य नित्यम्।।

'महानिर्वाणतन्त्र' ७-११० पञ्च मकार अग्नि-वायु-जल-पृथ्वी-आकाश हैं।

'कौलतन्त्र' 'मद्य' कोई पेय पदार्थ नहीं; प्रत्युत योगसाधना द्वारा भौतिक जगत् के सुख-दु:खों का विस्मरण एवं परम तत्त्व का अनवरत चिन्तन है। कर्मफल के बन्धन से मुक्त होना ही 'मांसभक्षण' है।

समस्त प्राणियों के प्रति आत्मीयता का भाव— मत्स्य, राग, काम-क्रोधादि दोषों से मुक्त रहना एवं मूलाधार-स्थित कुण्डलिनी शक्ति का सहस्रार में शिव के साथ सामरस्य ही मैथुन है।

आगमसार— सहस्रदल कमल से नि:सृत सोमसुधा ही मद्य है।
पुण्य-पाप जैसे कर्मफलों से मुक्त रहना मांस है।

इड़ा-पिङ्गला नाड़ियों में श्वास-प्रश्वास के रूप में प्रवाहित वायु एवं प्राणायाम के अवसर पर कुम्भक क्रिया करना ही मत्स्य है।

असत् के संग का त्याग ही मुद्रा है।

सहस्रार में शिव के साथ कुण्डलिनी का महामिलन ही मैथुन है।

ज्ञानरूपी खड्ग से पाप-पुण्यरूपी पशुओं का वध करके चित्त को परम तत्त्व में लीन कर देना ही मांसभक्षण है।

आशा, तृष्णा, जुगुप्सा आदि अष्ट पाशों को ब्रह्माग्नि में भस्म कर देना ही मुद्रा है।

अपने मन एवं इन्द्रियों को संयमित करके उन्हें आत्मतत्त्व में नियोजित करना ही मत्स्यभक्षण है।

चन्द्रमा एवं सूर्यरूपिणी इड़ा-पिंगला नाड़ियों के मध्य स्थित सूक्ष्मा सुषुम्णा का सेवन ही मैथुन है, न कि किसी रमणी के साथ आलिंगन।

मद्यं मांसं तथा मत्स्यं देव्यास्तु विनिवेदयेत्।　　(गो० ह०)

साधकों के जो तीन प्रकार— पशु, वीर एवं दिव्य हैं, उन सभी के लिए साधना-द्रव्यों के उपयोग का भिन्न-भिन्न विधान है—

१. पशुसाधकों के लिए पञ्च तत्त्वों का— 'अनुकल्प रूप' उपदिष्ट है।
२. वीरसाधकों के लिए पञ्च तत्त्वों का— 'प्रत्यक्ष रूप' उपदिष्ट है।
३. दिव्यसाधकों के लिए पञ्च तत्त्वों का— 'दिव्य रूप' उपदिष्ट है।

प्रत्यक्षोपयोगी वीर भी भ्रष्ट नहीं होता; प्रत्युत वही हो सकता है, जो निम्न लक्षणों वाला है—

जितेन्द्रिय: सत्यवादी नित्यानुष्ठानतत्पर:।
कामादिवलिदानश्च स वीर इति गीयते।।

बौद्ध साधिका लक्ष्मीकरा ने कहा था कि बन्धन एवं मुक्ति— दोनों के मार्ग एक ही हैं; केवल दृष्टिमात्र का भेद है; अत:—

येनैव बध्यते जन्तुस्तेनैव हि विमुच्यते।।

वर्ण एवं आश्रम धर्म के अनुकूल पञ्च मकारों का उपयोग— कुलचूड़ामणि तन्त्र में कहा गया है कि प्रत्येक वर्ण के लिए इन पञ्च मकारों के पृथक्-पृथक् स्वरूपों की कल्पना की गई है। यथा—

१. ब्राह्मणों के लिए 'मद्य' का उपयोग दूध के रूप में विहित है।

२. क्षत्रियों के लिए 'मद्य' का उपयोग घृत के रूप में विहित है।

३. वैश्यों के लिए 'मद्य' का उपयोग शहद के रूप में विहित है।

४. शूद्रों के लिए 'मद्य' का उपयोग चावलनिर्मित पेयरूप में विहित है।

महानिर्वाणतन्त्र (५,२३-२४) में कहा गया है कि पञ्च तत्त्वोपासना के विना शक्ति-साधना निष्फल एवं निरर्थक है। शिलाखण्ड पर वपित बीज की भाँति शक्तिसाधना विना पञ्चतत्त्व-साधना के निरर्थक है; किन्तु ये पञ्चतत्त्व क्षिति-जल-पावक-समीर एवं गगन हैं।

भैरवीतन्त्र में भी उपदेश दिया गया है कि—

क्षीरेण ब्राह्मणैस्तर्प्या घृतेन नृपवंशजैः।
माक्षिकैर्वैश्यवर्णैस्तु आसवैः शूद्रजातिभिः।।

ब्राह्मणों के लिए— क्षीर, क्षत्रियों के लिए— घृत, वैश्यों के लिए— मधु और शूद्रों के लिए— आसव के उपयोग का विधान है।

कुलचूड़ामणि में भी कहा गया है कि—

यत्रावश्यं विनिर्दिष्टं मदिरादानपूजनम्।
ब्राह्मणास्ताम्रपात्रे तु मधु मद्यं प्रकल्पयेत्।।

ब्राह्मणों को मदिरा के स्थान पर ताम्रपात्र में मधु रखकर उसे ही मद्य मान कर शाक्तोक्त विधान की पूर्ति करनी चाहिए। ज्ञानार्णवतन्त्र में ठीक ही कहा गया है कि—

वर्णानुक्रमभेदेन द्रव्यभेदाः भवन्ति वै।

अर्थात् वर्णों के अनुक्रम से ही शास्त्रों में द्रव्यों के भेद निर्दिष्ट हैं; इसीलिये महाकालसंहिता में भी कहा गया है—

द्रव्येण सात्त्विकेनैव ब्राह्मणः पूजयेच्छिवाम्।

अर्थात् ब्राह्मणों को चाहिए कि वे सात्त्विक द्रव्यों से ही शक्ति की पूजा करें।

समयी इन पञ्च मकारात्मक द्रव्यों का पञ्च मकारोपासना या पञ्च मकारोपयोग के नाम पर कथमपि प्रयोग नहीं करते; बल्कि इन द्रव्यों को हेय एवं वर्जित मानते हैं।

त्रिपुरा देवी[1] के संकेतत्रय

चक्रसंकेत मन्त्रसंकेत पूजासंकेत

१. त्रिपुरा शक्ति ने ही सृष्टि-विधान के द्वारा जगत् को ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय के रूप में कल्पित किया है। ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातृरूप त्रिपुटीकृत जगत् की पुरोवर्तिनी आदिभूता होने के

योगिनीहृदय में भगवती त्रिपुरा के ये ही तीन संकेत (रहस्यात्मक स्वरूप) बताए गए हैं—

चक्रसङ्केतको मन्त्रपूजासङ्केतकौ तथा।
त्रिविधस्त्रिपुरादेव्याः सङ्केतः परमेश्वरि।।

अमृतानन्द योगी कहते हैं कि प्रकाशविमर्शसामरस्यरूपिणी परा देवी के ये ही तीन संकेत हैं। धामत्रय, तत्त्वत्रय, पीठत्रय, लिंगत्रय एवं मातृकात्रय आदि अनेक त्रय समष्टियाँ हैं— 'त्रिभ्योऽपि पुरा या विद्यते सा त्रिपुरादेवी।' जो इसे नहीं जानता, वह त्रिपुरा का 'परमाज्ञाधर' नहीं हो सकता। योगिनीहृदय में कहा भी है—

यावदेतन्न जानाति सङ्केतत्रयमुत्तमम्।
न तावत्त्रिपुराचक्रे परमाज्ञाधरो भवेत्।।

संकेतत्रय के ज्ञान से साधक ब्रह्म बन जाता है— सङ्केतत्रयज्ञाने ब्रह्म भवति।

16396

कौलाचार

कुलाचार में बाह्यपूजा का विधान है— कुलाचारो नाम बाह्यपूजारतिरिति रहस्यम्।

वियच्चक्र की पूजा :'कौलपूजा': बाह्याकाशज पूजा स्वीकृत है। यह पूजा बाह्याकाशावकाश में पीठ, भूर्जपत्र, शुद्ध पट, हेम-रजत आदि के पट्टतल पर लिखकर की जाती है। इसे ही 'कौलपूजा' कहा जाता है। (श्लोक-८)

श्रीचक्र के अधोमुख चार त्रिकोण शिवात्मक हैं तथा ऊर्ध्वमुख पाँच त्रिकोण शक्त्यात्मक हैं।

कौलमार्ग में नव त्रिकोणात्मक चक्र का लेखन संहारक्रम से किया जाता है।

'कौलमतेन संहारक्रमेण नवयोनिचक्रलेखने

समयाचार

समयाचार में आन्तर पूजा का विधान है[१]— समयाचारो नाम आन्तरपूजारतिः।

वियच्चक्र की पूजा :'समयपूजा': दहराकाशज पूजा स्वीकृत है। यहाँ हृदयावकाश (दहराकाश) में श्रीचक्र की पूजा का विधान है। इसे समयी 'समयपूजा' कहते हैं। (श्लोक-८)

सामयिकों के मत में समय या 'सादाख्य तत्त्व' की सपर्या 'सहस्रदल' में ही विधेय (अनुष्ठेय) है; न कि पीठादिक बाह्य वस्तुओं पर। कौल पीठादिक बाह्य वस्तुओं पर पूजा किया करते हैं।

'समयमार्ग' में सृष्टिक्रम स्वीकृत है।

कारण ही यह शक्ति 'त्रिपुरा' कही जाती है—
त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या ज्ञानादितः प्रिये।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका।
कवलीकृतनिःशेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी।
तस्यां परिणातायान्तु न कश्चित्पर इष्यते।। (वाम० तन्त्र०)

१. लक्ष्मीधर : 'लक्ष्मीधरा', पृ० २२।

ऊर्ध्वाधोमुखतया अवस्थितेः प्रभिन्नत्व ज्ञेयम्।'[१]

'कौलमत' में संहारक्रम स्वीकृत है।

'कौलचक्र' में बिन्दु त्रिकोण के मध्य में होता है।[२]

कौलचक्र में कोणसंख्या नहीं होती, क्योंकि वह नवत्रिकोणात्मक होता है।

६४ विद्याओं के अन्तर्भूत 'चन्द्रज्ञान विद्या' में १६ नित्यायें प्रधानतया प्रतिपादित हैं। उनका प्रतिपादक तन्त्र ही 'कौलमार्ग' है, किन्तु सामयिकों का मार्ग तो 'समयमार्ग' है, जो उनके मार्ग से भिन्न है।

सामयिकों का 'समयमार्ग' ६४ तन्त्रों पर आधारित नहीं है, प्रत्युत शुभागमपञ्चक पर आश्रित है, जो कि निम्न हैं—

१. वासिष्ठसंहिता ३. शुकसंहिता
२. सनकसंहिता ५. सनत्कुमारसंहिता।

समयमार्ग की उपासना में 'समयाचार' के उपर्युक्त पाँच ग्रन्थ ही मान्य हैं, किन्तु 'कौलमार्ग' में नहीं।

'समयाचारोनाम आन्तरपूजारतिः।' समयाचारी अमावास्या को पूजन नहीं करते, लेकिन कौलों को यह प्रतिषेध मान्य नहीं है—

यदा चामावास्या भवति नहि पूजा समयिनाम्।
(गौड़पाद)

'समयमत' में श्रीचक्र ऊर्ध्वमुख लिखे जाते हैं— 'अस्मिन् चक्रे त्रिकोणमूर्ध्वमुखं लेखनीयम्।'

नौ त्रिकोणों के मेलन में मर्मसन्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

जो जीवन्मुक्त, योगीश्वर समयी संसारयात्रा का अनुवर्तन करते हुए एवं 'सादाख्य तत्त्व' का ध्यान करते हुए साधना करते हैं, उन आत्मैकप्रवण समयी साधकों की सपर्या का स्वरूप निम्नांकित प्रकार का हुआ करता है—

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्म विलसितम्।।

जो समयी योगीश्वर विजन गुहान्तर में बद्ध पद्मासन होकर तथा इन्द्रियों का निग्रह करके सादाख्य तत्त्व के ध्यान में एकनिष्ठ रहते हैं, उनके लिए वक्ष्यमाण चतुर्विध एवं षड्विध ऐक्यानुसन्धान (देवी के साथ भक्त का ऐक्यानुसन्धान) ही सपर्या या पूजा है।

आचार्य शंकर 'सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्।' कहकर इसी प्रकार की सपर्या का विधान करते हैं।

'चन्द्रज्ञान विद्या' में देवी के ध्यान का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
पाशांकुशधनुर्बाणान् धारयन्तीं प्रपूजयेत्।।

श्रीचक्र का उद्धार— सबसे ऊर्ध्व में अष्ट दल पद्म, फिर षोडशदल पद्म, फिर मेखलात्रय, फिर चतुर्द्वारयुक्त भूपुर।

---

१. 'कौलमतानुसारेण अधोमुखानि चत्वारि त्रिकोणानि शिवात्मकानि ऊर्ध्वमुखानि पञ्च त्रिकोणानि शक्त्यात्मकानि। कौलमते संहारक्रमेण लेखने नवत्रिकोणात्मकं श्रीचक्रम्।' (लक्ष्मीधरा)

२. कौलचक्रे त्रिकोणमध्यगतो बिन्दुः।

समयिमत— त्रिकोणादि षट्चक्रों के रूप में परिणत हो जाते हैं, अर्थात् श्रीचक्र के विभिन्न त्रिकोण आन्तर षट्चक्रों से सम्बद्ध हैं या तादात्म्य भाव से एकीकृत हैं। इनमें श्रीचक्र का त्रिकोण 'बैन्दवस्थान' है।

तीन त्रिकोणों द्वारा अष्टकोण के निर्माण में त्रिकोण से ही बिन्दुस्थान का निर्माण होता है। वह चतुष्कोण ही है। वह सहस्रकमल के भीतर स्थित 'चन्द्रमण्डल' है। इसी चतुष्कोण के मध्य बैन्दवस्थान 'सुधासिन्धु' या 'सरघा' स्थित है। यह चतुष्कोणमध्यस्थित बिन्दुस्थान भी बाह्य पूजा ही है; फिर तरुणी के त्रिकोण की पूजा की तो बात ही क्या? इसलिए समयमतावलम्बियों की पूजा तो सहस्रकमल में समया एवं समय की पूजा है।

क. 'एतच्चतुष्कोणमध्यं बिन्दुस्थानमिति बाह्यपूजा तरुणी-त्रिकोणपूजा च दूरत एव निरस्या।।'

ख. 'समयिनां सहस्रकमले समयाया: समयस्य च शम्भो: पूजा।'[१]

'समया' वह होती है, जो शिव के साथ पञ्चविध साम्य रखती हो (समयानाम शम्भुना साम्यं पञ्चविधं याति समया)। यह समयत्व शम्भु का भी होता है।

पञ्चविध साम्य— १. अधिष्ठानसाम्य, २. अवस्थासाम्य, ३. अनुष्ठानसाम्य, ४. रूप-साम्य और ५. नामसाम्य। पञ्चविध साम्य यही है।

१. 'तवाधारे' (सौन्दर्यलहरी) में 'अधिष्ठानसाम्य' है, क्योंकि दोनों का अधिष्ठान आधारचक्र है।

२. 'जनकजननी मज्जगदिदम्' (सौन्दर्यलहरी) में 'अनुष्ठानसाम्य' है, क्योंकि उत्पादन क्रिया में दोनों का व्याप्रियमाणत्व है।

३. 'लास्यताण्डव' (सौन्दर्यलहरी) में 'अवस्थानसाम्य' है, क्योंकि इसमें अवस्थान को लास्य ताण्डव द्वारा प्रतिपादित किया गया है। लास्य एवं ताण्डव (नृत्य की दृष्टि से देखने पर) दोनों नृत्य होने के कारण एक ही हैं।

४. 'आरुण्य' (सौन्दर्यलहरी) वाले श्लोक में 'आरुण्य' शब्द द्वारा 'रूपसाम्य' प्रतिष्ठित किया गया है, क्योंकि दोनों में आरुण्य है; अत: रूपसाम्य है। तन्त्रान्तर में कहा भी कहा गया है—

जपाकुसुमसङ्काशौ मदघूर्णितलोचनौ।
जगत: पितरौ वन्दे भैरवीभैरवात्मकौ।।

५. 'नवात्मानं' (सौन्दर्यलहरी) में 'रूपसाम्य' एवं 'नामसाम्य' दोनों प्रतिष्ठित हैं।

६. 'तटित्त्वन्तम्' (सौन्दर्यलहरी) वाले श्लोक में 'तटित्वान्' 'तटित्त्वती' में नाम-साम्य एवं रूपसाम्य दोनों है।

७. 'मणिपूरैकशरणं' (सौन्दर्यलहरी) शब्दप्रयोग 'अधिष्ठानसाम्य' का द्योतक है।

---

१. लक्ष्मीधरा।

८. 'स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुषम्' (सौन्दर्यलहरी) में 'वर्षन्तं' शब्द प्रावृषेण्य के कारण अवस्थानसाम्य का द्योतक है।

९. 'तव स्वाधिष्ठाने' (सौन्दर्यलहरी) में 'स्वाधिष्ठाने' 'अधिष्ठानसाम्य' का सूचक है।

१०. 'महतीं' (सौन्दर्यलहरी) महासंवर्तात्मक रूप-नामसाम्य का द्योतक है। स्वाधिष्ठानगताग्निसंश्रयण में अवस्थानसाम्य है।

११. 'लोकान् दहति' (सौन्दर्यलहरी) 'अनुष्ठानसाम्य' का प्रतिपादक है।

१२. अनाहत चक्र में अनाहत अधिष्ठान है; अत: यहाँ 'अधिष्ठानसाम्य' है।

१३. हुतभुक्कणिका रूप से रूपसाम्य, 'नामसाम्य' दोनों प्रतिपादित हैं।

१४. 'निवातदीप' (सौन्दर्यलहरी) 'अवस्थानसाम्य' का द्योतक है।

१५. 'विशुद्धिचक्रमधिष्ठानम्' (सौन्दर्यलहरी) 'अधिष्ठानसाम्य' सूचित करता है।

१६. 'शुद्धस्फटिकविशदं' (सौन्दर्यलहरी) 'रूपसाम्य' द्योतित करता है।

१७. 'व्योमजनकं' (सौन्दर्यलहरी) 'अनुष्ठानसाम्य' द्योतित करता है।

१८. 'शिवं सेवे' (सौन्दर्यलहरी) 'नामसाम्य' प्रतिपादित करता है।

१९. 'शशिकिरणसारूप्यसरणे:' (सौन्दर्यलहरी) 'अवस्थानसाम्य' द्योतित करता है।

२०. 'तवाज्ञाचक्रस्थं' (सौन्दर्यलहरी) 'अधिष्ठानसाम्य' द्योतित करता है।[1]

इसी प्रकार 'तपनशशिकोटिद्युतिधरम्' (सौन्दर्यलहरी) में 'रूपसाम्य', 'परं शम्भुं' (सौन्दर्यलहरी) में 'नामसाम्य' और 'यमाराध्यन् भक्त्या' (सौन्दर्यलहरी) में 'अवस्थानसाम्य' है। यह साम्यपञ्चक मुक्तिप्रद है।[2]

भगवती का पूजा-विधान— भगवती की पूजा के तीन प्रकार हैं—

भगवती की पूजा के प्रकार

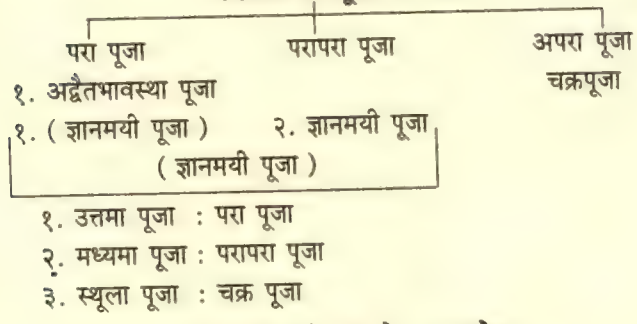

१. उत्तमा पूजा : परा पूजा
२. मध्यमा पूजा : परापरा पूजा
३. स्थूला पूजा : चक्र पूजा

साधना एवं पूजा के अन्य भेद

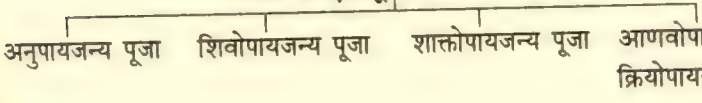

---

१. लक्ष्मीधरा (श्लोक ४१) २. लक्ष्मीधरा

चूँकि भगवती सभी की आत्मा हैं; अतः आत्मपूजा भी उनकी ही पूजा है। 'भगवती आत्मा हैं' इस सम्बन्ध में भावनोपनिषद् में कहा भी गया है—

स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा।
लौहित्यं तद्विमर्शः स्यादुपास्तिरिति भावना।।

इसी प्रकार 'दीक्षा' का विधान भी त्रिविधात्मक है—

त्रिविधा सा भवेद्दीक्षा प्रथमा आणवीपरा।
शाक्तेयी शाम्भवी चेति सद्यो मुक्तिप्रदायिनी।।

परमशिव द्वारा अनुष्ठित देवी की नित्योदिता पूजा का स्वरूप— भगवान् शिव देवी की तीन प्रकार से नित्य पूजा करते हैं—

भगवान् परम शिव परमेश्वरी से कहते हैं कि हे भगवति ! आपकी पूजा के तीन भेद हैं, जिनका स्वरूप निम्नांकित है—

तव नित्योदिता पूजा त्रिभिर्भेदैर्व्यवस्थिता।
परा चाप्यपरा गौरी तृतीया च परापरा।।

'प्रथमा' द्वैतभावस्था सर्वप्रवरगोचरा।
'द्वितीया' चक्रपूजा च सदा निष्पाद्यते मया।
एवं ज्ञानमये देवी 'तृतीया' च परापरा।।

'उत्तमा' च परा ज्ञेया विधानं शृणु साम्प्रतम्।

परापूजा का स्वरूप—

महापद्मवनान्तस्थां कारणानन्दविग्रहाम्।
तदङ्कोपाश्रयां देवी वाग्भवे गुरुपादुकाम्।।

आप्यायितजगद्रूपां परमामृतवर्षिणीम्।
सञ्चिन्त्य परमाद्वैतभावनामदघूर्णितः।।

दहनान्तर-सम्पर्क-नादालोकन-तत्परः ।
विकल्पसत्यसङ्कल्पविमुखोऽन्तर्मुखस्सदा ।।

चित्कल्लोलाभिललितसङ्कोचस्त्वतिसुन्दरः।
इन्द्रियप्रीणनैर्द्रव्यैर्विहितस्वात्मपूजाकः ।
न्यासं निवर्तयेद्देवि ! षोढान्यासपुरस्सरम्।। आदि।

द्वितीया 'चक्रपूजा' सदा निष्पाद्यते मया।

परमशिव ने स्वयमेव बाह्यवर्ती वरिवस्या करने का विधान सम्मानित करके और स्वयमेव इसे निष्पादित करके चक्रपूजा की प्रशंसा की है।[१]

---

१. चिद्वल्ली : नटनानन्दनाथ।

'समयमत' में समय (सादाख्य तत्त्व) की सपर्या केवल सहस्रदल कमल में होती है, बाह्यवर्ती पीठादिक पर नहीं— 'समयिनां मते समयस्य सादाख्यतत्त्वस्य सपर्या सहस्रदलकमल एव, न तु बाह्ये पीठादौ।।'[१]

जो-जो 'समयी' योगीश्वर होते हैं, वे जीवन्मुक्त महापुरुष संसारयात्रानुवर्ती रहकर भी सादाख्यतत्त्वानुशीलन में तत्पर, आत्मैकप्रवण रहते हैं तथा 'जपो जल्पश्शिल्पम्' ही उनकी सपर्या-पद्धति होती है।

ये योगीश्वर समयी विजन गुहान्तर में या बद्धपद्मासन होकर, इन्द्रियों का निग्रह करके तथा सादाख्यतत्त्वैकनिष्ठ होकर जीवन व्यतीत करते हैं; साथ ही चतुर्विध एवं षड्विध ऐक्यानुसन्धान के द्वारा भगवती के साथ एकाकार होकर रहते हैं और यही उनकी पूजा होती है— 'चतुर्विधषड्विधैक्यानुसन्धानमेव भगवत्याः सपर्या इति उक्तं भवति।'

समयी-साधकों को बाह्य पूजा का कष्ट नहीं उठाना पड़ता— 'बाह्यपूजायां तत्क्रियाकलापे च तत्सम्पादनायां च क्लेशो नास्ति।।'

हाँ भगवती की बाह्य पूजा का विधान शास्त्रों में पाया जाता है; यथा—

सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणान् धारयन्तीं प्रपूजयेत्।।[२]

किन्तु यह समयैकदेशिमत है।[३] सौन्दर्यलहरी में कहा भी गया है—

तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरम्।
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता।। आदि।

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि उक्त श्लोक में आया 'तवाज्ञाचक्रस्थं' वाक्य में आगत 'चक्र' शब्द साधक के भ्रूमध्यान्तरगत श्रीचक्रान्तरगत शिवचक्रचतुष्टय के लिए आया है, न कि 'द्विदलपद्म' के लिए।

यहाँ स्वाधिष्ठान के आगे अग्निमण्डल, अनाहत चक्र के आगे सूर्यमण्डल एवं आज्ञा चक्र के आगे चन्द्रमण्डल की विद्यमानता का प्रतिपादन किया गया है। अग्नि, सूर्य एवं चन्द्र की किरणें, जो तीन सौ साठ हैं, आधारचक्र आदि आज्ञाचक्रपर्यन्त परिभ्रमण करती हैं। आज्ञाचक्र में स्थित चन्द्रमा भी समयमत में ध्येय नहीं है; क्योंकि श्रीचक्रात्मक चन्द्रमा तो सहस्रकमल में स्थित है और वही सामयिकों की पूजा का विधान है।

आज्ञाचक्रस्थित चन्द्र से अन्य ही सहस्रकमलस्थित चन्द्र है, जो कि श्रीचक्रात्मक है, नित्यकल है और उपास्य है।[४]

भगवती की पूजा सहस्रदल में तो होती ही है, किन्तु उन्हें वहाँ से उतार कर और

१. सौन्दर्यलहरी (लक्ष्मीधरा)
२. चन्द्रज्ञान विद्या।
३. लक्ष्मीधरा
४. लक्ष्मीधरा

हृदयकमल में स्थापित करके भी पूजा की जाती है—

'भवतीं सहस्रदलकमलात् अवरोप्य हृत्कमले संस्थाप्य।'[१]

पुरश्चरणात्मक क्रिया में 'संवित् कमल' में त्रिकोण को आरोपित करके (सहस्रदल-कमल के वैन्दव स्थान में स्थित कामेश्वरी को संवित् कमल में प्रतिष्ठित करके) पुरश्चरण करना भी समयिमत का एक रहस्यात्मक पक्ष है।[२]

(पुरश्चरणात्मकक्रियायां संवित्कमले त्रिकोणमारोप्य सहस्रकमलात् वैन्दवस्थानस्थां कामेश्वरीमवरोप्य पुरश्चरणं कार्यमिति समयिमतरहस्यमिति आचार्याणां आशय इति।)

'शिवाग्नौ जुह्वन्तः' (सौन्दर्यलहरी : श्लोक-३३) कहकर शंकराचार्य ने जिस हवन का विधान किया है, वह भी बाह्य नहीं है; क्योंकि यह हवन शिवाग्नि में करना है। 'त्रिकोण' (वैन्दवस्थान) में स्वाधिष्ठानाग्नि को निक्षिप्त करके, पाशांकुश से निरुद्ध करके अग्नि का जो जातकर्मादिक षोडश संस्कार किया जाता है, उसे ही 'शिवाग्नि' कहते हैं।[३]

सहस्रदल कमल की पूजा

समयपूजक ही समयी कहलाते हैं— 'समयपूजकाः समयिनः।'

इन समयी-साधकों की सपर्या-विधि में षट्चक्रपूजा का विधान नहीं है; प्रत्युत समयमत में मात्र सहस्रदल कमल की पूजा ही स्वीकृत है— 'तेषां षट्चक्रपूजा न नियता', अपितु 'सहस्रदल कमल' की पूजा ही पूजा है।'

---

१. लक्ष्मीधरा
२. लक्ष्मीधरा
३. लक्ष्मीधरा

तृतीय अध्याय

शाक्तदर्शन एक विहंगमावलोकन

शाक्त दर्शन का दार्शनिक पक्ष एवं सृष्टि— शाक्तों का विधि-विधान शाम्भव दर्शन पर आधारित है। शाक्त दर्शन के सिद्धान्त निम्नांकित हैं—

'शिव' एवं 'शक्ति' आद्य तत्त्व हैं। इनमें 'शिव' प्रकाशस्वरूप है और 'शक्ति' विमर्श-स्वरूप एवं स्फूर्तिस्वरूप। प्रकाश विमर्श में प्रविष्ट होता है और वह 'बिन्दु' का रूप धारण कर लेता है। 'शक्ति' शिव (प्रकाश) में प्रविष्ट होती है; फलस्वरूप 'बिन्दु' संवर्द्धित होता है। परिणामतः उससे 'नाद' (नारी तत्त्व) का आविर्भाव होता है।

क. 'प्रकाश' (शिव) का 'विमर्श' (शक्ति) में प्रवेश— बिन्दु।

ख. 'विमर्श' (शक्ति) का 'प्रकाश' (शिव) में अनुप्रवेश— 'बिन्दु' का संवर्धन— 'नाद' का आविर्भाव।

ग. बिन्दु एवं नाद मिलकर 'मिश्रबिन्दु' बन जाते हैं। मिश्रबिन्दु = नर-नारी शक्तियों का योग =काम।

घ. श्वेतबिन्दु (पुरुष), रक्तबिन्दु (नारी) = पुरुष-नारी तत्त्व के प्रतीक हैं।

ङ. श्वेतबिन्दु, रक्तबिन्दु एवं मिश्रबिन्दु मिलकर एक हो जाते हैं और संयक्त बिन्दु बन जाते हैं।

कामकला तत्त्व— श्वेत + रक्त + मिश्र बिन्दु मिलकर एकीकृत हो जाने पर— 'कामकला'। बिन्दुत्रय का सामरस्य (एकीकरण) ही 'कामकला' कहलाता है। यहाँ शक्तिचतुष्टय का सामरस्य है।

क. मूल बिन्दु = विश्व का मूलोपादान।

ख. नाद = जिसके आधार पर बिन्दु-संवर्द्धन से जन्म लेने वाले तत्त्वों का नामकरण होता है। यद्यपि बिन्दु एवं नाद दोनों में उत्कट प्रेम होता है तथापि सृष्टि का आरम्भ नहीं हो पाता। ये मात्र वाक् एवं अर्थ के उपादान होते हैं।

ग. इनके साथ (बिन्दु + नाद के साथ) 'श्वेत पुरुषबिन्दु' एवं 'रक्त स्त्रीबिन्दु'— दो उत्पादक शक्तियों का योग होता है। निष्कर्ष—

मूलबिन्दु, नाद, श्वेत पुरुषबिन्दु, एवं रक्त नारीबिन्दु— ये चारो ही तत्त्व मिलकर 'कामकला' का निर्माण करते हैं।

'कामकला'— वागर्थमय सृष्टि।

कतिपय प्रमाण यह भी प्रतिपादित करते हैं कि—

क. जब नारीतत्त्व प्रथम बार 'बिन्दु' में प्रविष्ट होता है तब 'नाद' के साथ 'हार्ध-कला' नामक नव्य तत्त्व विकसित होता है।

ख. ग्रन्थान्तर के अनुसार— उच्चतमा देवी तो 'कामकला' है।

१. सूर्य (संयुक्त बिन्दु) कामकला का मुख है।
२. अग्नि एवं चन्द्रमा (रक्त एवं श्वेत बिन्दु) कामकला के स्तनद्वय हैं।
३. हार्धकला कामकला की योनि है।
४. हार्धकला = योनि ही सृष्टि करने वाली एवं सृष्टि का आरम्भ है।
५. यह सर्वदेवोपरि शक्ति ही 'परा, ललिता, भट्टारिका एवं त्रिपुरसुन्दरी' कहलाती है।

अहंतत्त्व— शिव 'अ' एवं शक्ति 'ह' है। 'ह' अर्धकला-संयुक्त है। अ + ह = 'अहं' (अ से ह तक की समस्त वर्णमाला की समष्टि एवं 'मैं')।

नारीतत्त्व या योनि 'ह' के आकार का अर्धभाग है। अर्धकला या 'ह' शिव के प्रतीक 'अ' से मिलकर कामकला या त्रिपुरसुन्दरी का प्रतीकात्मक रूप है और शिव + शक्ति के संयोग का परिणाम है। वह 'अहं' से युक्त भी है और 'अहं' कहलाती भी है। परिणामत: उसकी नि:शेष सृष्टि अहंकार से युक्त है।

अद्वैतवाद— समस्त आत्मायें त्रिपुरसुन्दरी की रूपमात्र हैं। जब ये आत्मायें देवी-चक्रों के साथ कामकला विद्या एवं ज्ञान का अभ्यास कर लेती हैं तो 'त्रिपुरसुन्दरी' हो जाती हैं। 'अहं' के 'अ' एवं 'ह' के मध्य सम्पूर्ण वाक् निहित है।

त्रिपुरसुन्दरी = समस्त अर्थ, एवं अर्थ के व्यञ्जक समस्त शब्द। इसीलिए त्रिपुरसुन्दरी 'परा' कहलाती है।

तत्त्व

शाक्त दर्शन के मत में मूल तत्त्व छत्तीस हैं। परम तत्त्व परा शक्ति है। काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैव सिद्धान्त— दोनों छत्तीस तत्त्व मानते हैं। न्यायशास्त्र सोलह, सांख्य पच्चीस, वैशेषिक छ: या सात, अद्वैत वेदान्त एक, द्वैतवादी वेदान्त दो एवं विशिष्टाद्वैतवादी वेदान्त तीन तत्त्व मानते हैं, किन्तु त्रिक दर्शन छत्तीस तत्त्व मानता है।

कश्मीरीय शैवमत मानता है कि ३६ तत्त्व 'परमशिव' की अभिव्यक्तियाँ हैं— उनके आभास हैं (शिव अपने को ३६ तत्त्वों के रूप में अभिव्यक्त करता है और उसकी षट्त्रिंशदात्मक अभिव्यक्ति ही जगत् है— सृष्टि है)। ये सभी आभास शिव से अभिन्न हैं— चेतन हैं— चेतन का आभास होने के कारण ये चेतन आभास हैं और माया के विकासात्मक विभिन्न रूप हैं। इनका शिव से जो सम्बन्ध है, उसका आधार है— शक्ति। शुद्धाध्वा का सृजन (शिवतत्त्व से विद्यातत्त्व) शिव द्वारा (विना माया के) स्वयं प्रत्यक्षत: किया जाता है और इसका संस्पर्श माया नहीं करती। 'शैवसिद्धान्त' के मत में शुद्धाध्वा की सृष्टि शुद्ध माया द्वारा निष्पादित की जाती है। यहाँ तक मलों का स्पर्श नहीं होता। निष्कर्ष यह है कि—

क. 'शुद्धाध्वा' की सृष्टि— माया का कोई प्रभाव नहीं (का० शैव दर्शन)।

—'शुद्धाध्वा' की सृष्टि 'शुद्ध माया' द्वारा की जाती है, किन्तु यह सृष्टि मलों से असंस्पृष्ट है (शैव सिद्धान्त)।

ख. सदाशिव एवं ईश्वर— महेश्वर एवं सद्विद्या—

१. सदाशिव तत्त्व में— इच्छाशक्ति का प्राधान्य है (का० शै० द०)।

२. सदाशिव तत्त्व में— ज्ञान एवं क्रियाशक्ति की साम्यावस्था है (शैवसिद्धान्त)।

३. ईश्वर तत्त्व में— ज्ञानशक्ति का प्राधान्य है (का० शै० द०)।

४. ईश्वर तत्त्व में— ज्ञान और इच्छाशक्ति पर क्रियाशक्ति का प्राधान्य रहता है (शैवसिद्धान्त)।

५. सद्विद्या तत्त्व में— क्रियाशक्ति का प्राधान्य होता है (का० शै० द०)।

६. सद्विद्या तत्त्व में— क्रिया और इच्छाशक्ति पर ज्ञान का प्राधान्य रहता है (शैव सिद्धान्त)।

७. माया तत्त्व— विकासक्रम में षष्ठस्थानीय है (का० शै० द०)।

८. माया तत्त्व— यह किसी का विकास नहीं, नित्य सत्ता है; अपनी सत्ता के लिए पराश्रित नहीं, स्वाश्रित है (शै० सि०)।

९. माया— शिव की यह परिग्रह शक्ति मोह एवं भ्रमात्मक ज्ञान का कारण है; माया विभ्रम द्वारा बन्धन उत्पन्न करती है। (काश्मीरीय शैव दर्शन)।

१०. माया अपने विभ्रमों के द्वारा बन्धनों को दूर करने के उपायों का सृजन करती है (शैवसिद्धान्त)।

'शैवसिद्धान्त' तीन तत्त्वों को नित्य मानता है। काश्मीरीय दर्शन केवल एक तत्त्व ही मानता है।

विमर्श— परमशिव की 'स्वातन्त्र्य शक्ति' ही 'विमर्श' है। 'प्रकाश' की शक्ति की ही आख्या 'विमर्श' है। हकार ही विमर्श है—

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।
हकारोऽन्त्यकुलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः।।

शिव— कोई भी ऐसी अवस्था है ही नहीं; जो शिव नहीं है—

'न साऽवस्था न यः शिवः।'

विश्व भगवान् का शरीर है— 'भगवान् विश्वशरीरः।' (शक्तिसूत्र)

'विमर्श' प्रकाश का स्वभाव है, उसका धर्म है, उसकी शक्ति है या उसका निर्मल दर्पण है। नटनानन्द 'चिद्वल्ली' में कहते हैं कि जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-लय का मूलभूत कारण एवं अकृत्रिम अहम्भाव का परामर्श ही 'विमर्श' है—

जगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतुभूताकृत्रिमाहम्भावपरामर्शो विमर्शः।

नागानन्द ने विमर्श को दूसरी दृष्टि से देखकर कहा कि विमर्श विश्वाकार, विश्व-

प्रकाश एवं विश्वोपसंहार द्वारा विमर्श कहलाता है या अकृत्रिम अहं स्फुरण के रूप में विमर्श की आख्या पाता है—

विमर्शो नाम विश्वाकारेण वा विश्वप्रकाशेन वा विश्वोपसंहारेण वा अकृत्रिमोऽहमिति स्फुरणम्।

विश्व— शिव की आत्मा (शिव के स्वरूप) से विश्व अभिन्न है— श्रीपरमशिवः स्वात्मैक्येन स्थितं विश्वं; एवं भगवान् विश्वशरीरः। विश्वशरीरः शिवभट्टारक एव।

परम सत्ता (ब्रह्म या परम शिव)— शाक्त दृष्टि से सर्वोपरि सत्ता शक्ति है। शैवों के मत में परम सत्ता या शिव अद्वितीय है— इस बात को अद्वैत वेदान्त, शैव सिद्धान्त एवं काश्मीरीय शैव दर्शन तीनों ही स्वीकार करते हैं; किन्तु अद्वैत वेदान्त यह स्वीकार करता है कि ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता ही नहीं है, शैवसिद्धान्त यह मानता है कि शिव के समान अन्य कोई नहीं है (यद्यपि शिव के अतिरिक्त दो अन्य नित्य सत्तायें हैं अवश्य) तथा काश्मीरीय शैव दर्शन यह मानता है कि शिव के अतिरिक्त अन्य कोई उससे पृथक् सत्ता नहीं है, जीव और जगत्— ये शिव के ही रूप हैं, मिथ्या नहीं हैं।

परमशिव सक्रिय है (ब्रह्म की भाँति निष्क्रिय नहीं)— शक्ति भी सक्रिय है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार जगत् का स्रष्टा ब्रह्म नहीं है, प्रत्युत माया है; क्योंकि ब्रह्म निष्क्रिय है। उसमें क्रिया मानना उसे अपूर्ण सिद्ध करना होगा। कोई भी क्रिया किसी ईहा से सम्बद्ध होती है, किन्तु ब्रह्म निरीह है— निराकांक्ष है— अकाम है। काश्मीरीय शैव दर्शन के अनुसार जगत् (सृष्टि) शिव का कर्म या कार्य नहीं, स्पन्द है— क्रिया है— उसकी स्फुरत्ता है। वेदान्त में मान्य क्रिया की अवधारणा काश्मीरीय शैव दर्शन की अवधारणा से पृथक् है। वेदान्त की क्रिया सायास, सप्रयोजन, सकाम, अभीष्ट-सम्पादक एवं इच्छापूर्ति का साधन है; अतः वह निरीह ब्रह्म में रह ही नहीं सकती, किन्तु परमशिव में समवेत क्रिया इच्छापूर्ति का साधन या कामना-निष्पादक नहीं, प्रत्युत परमशिव का स्वाभाविक धर्म है— स्वभाव है— स्वात्मानन्द-स्फुरण है— एक आनन्द-क्रीड़ा है। जिस प्रकार एक बालक किसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर नहीं खेलता, उसी प्रकार परमशिव किसी कामना की पूर्ति के लिए क्रिया नहीं करता। सृजनरूप क्रिया किसी कामना की पूर्ति के लिए निष्पादित नहीं की जाती, प्रत्युत आनन्दानुभूति के लिए की जाती है। इस सृष्टिरूप क्रिया में शिव का कोई प्रयोजन निहित नहीं है।

जगत् का स्रष्टा शिव है और जगत् शिव का स्पन्द है— शिव पञ्चकृत्यकारी है; अतः वह जगत् का स्रष्टा है। ब्रह्म में क्रिया की सत्ता न रहने से वह निष्क्रिय, शक्ति-व्यतिरिक्त, तटस्थ एवं आत्म-चेतना-विमुक्त है, जबकि शिव आत्म-चेतना-संवलित, शक्तिसमवेत स्रष्टा, सक्रिय एवं शक्तिस्वरूप है। शिव और शक्ति में चन्द्रमा एवं चन्द्रिका की भाँति अभेद है। क्रिया शिव की अपनी शक्ति है। शैवसिद्धान्त में भी परमात्मा को

जगत् का स्रष्टा माना गया है, किन्तु वहाँ सृष्टि परमात्मा से पृथक् है; लेकिन काश्मीरीय शैव दर्शन में सृष्टि या जगत् शिवरूप है।

परमसत्ता में इच्छा-ज्ञान-क्रिया-स्वातन्त्र्य-चैतन्य-आनन्द का समावेश है— काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैव सिद्धान्त दोनों मानते हैं कि परमसत्ता में इच्छा, ज्ञान, क्रिया, स्वातन्त्र्य, चैतन्य एवं आनन्द आदि गुण सन्निविष्ट हैं। अद्वैत वेदान्त ब्रह्म में गुण, क्रिया, इच्छा आदि स्वीकार नहीं करता।

चिति शक्ति की अवधारणा शिवाद्वैत एवं शाक्ताद्वैत दोनों दर्शनों में एक ही है। शाक्त दर्शन में भी शिव-शक्ति के अभिन्नत्व, अखण्डत्व एवं अद्वयत्व का प्रतिपादन किया गया है। शक्तिसूत्र (प्र० ह०) में 'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः' कहकर इसी शक्ति को विश्वमूल स्वीकार किया गया है। वेदान्त के ब्रह्म एवं शाक्तों के परम शिव में यह भेद है कि परमशिव शक्तिमय है (ब्रह्म की भाँति शक्तिशून्य नहीं)। परमशिव भी पञ्च-कृत्यकर्ता है, वेदान्तियों के ब्रह्म की भाँति निष्क्रिय नहीं है।

शैव एवं शाक्त दोनों आगमों में ३६ तत्त्व माने गये हैं। परशुराम कल्पसूत्र में कहा गया है कि 'षट्त्रिंशत्तत्त्वानि विश्वः' (१.४) अर्थात् विश्व इन्हीं ३६ तत्त्वों से युक्त है। ये ३६ तत्त्व तीन वर्गों में विभाजित हैं—

१. आत्मतत्त्व (पृथ्वी से माया तत्त्व तक)।
२. विद्यातत्त्व (शुद्ध विद्या। ईश्वर। सदाशिव)।
३. शिवतत्त्व (शक्ति-शिव)।

परम तत्त्व में शिव एवं शक्ति का सामरस्य है— परम तत्त्व शिव-शक्ति-सामरस्यपूर्ण है; इसे काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैवसिद्धान्त दोनों मानते हैं; किन्तु वेदान्ती ब्रह्म में इस सामरस्य को स्वीकार नहीं करते।

परम शिव एवं विश्व का सम्बन्ध— विश्व परमात्मा से अभिन्न है— 'श्रीपरम-शिवः स्वात्मैक्येन स्थितं विश्वम्', 'भगवान् विश्वशरीरः' 'विश्वशरीरः शिवभट्टारक एव' (प्रत्यभिज्ञाहृदयम्)।

आदि शक्ति एवं परतत्त्व— मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशती की दृष्टि से समस्त देवियों का मूल, समस्त शक्तियों का अधिष्ठान एवं सर्वेश्वरी मात्र महालक्ष्मी हैं। वे ही आदिशक्ति एवं परतत्त्व हैं।

महालक्ष्मी का स्वरूप (वैकृतिक रहस्य)—

सर्वदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूतामितप्रभा।
त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी।।

श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला।
रक्तमध्या रक्तपादा नीलजङ्घोरुरुन्मदा।।

सुचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा।
चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी।।

अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधः करक्रमात्।।

अवतारक्रम

चतुर्भुजा महालक्ष्मी (मूल प्रकृति)

चतुर्भुजा महाकाली → शंकर-सरस्वती | ब्रह्मा और लक्ष्मी | चतुर्भुजा महासरस्वती → विष्णु और गौरी

भगवती महालक्ष्मी— देवी के समस्त अवतारों की प्रकृति महालक्ष्मी ही हैं। वे समस्त प्रपञ्च का आदि कारण हैं। वे गुणत्रय की साम्यावस्था हैं। वे स्थूल-सूक्ष्म, दृश्या-दृश्य एवं व्यक्ताव्यक्त समस्त प्रपञ्च का कारण हैं। वे अस्ति-भाति-प्रिय-नाम एवं रूप हैं। वे सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिस्वरूप, सर्वोच्च शक्ति एवं नित्य हैं। वे सच्चिदान्द परमेश्वरी हैं। वे साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण, व्यक्त-अव्यक्त एवं सर्वरूप हैं। वे सर्वसत्त्वमयी, सर्वसत्त्वाधीश्वरी, महामाया एवं सर्वेश्वरी हैं। वे परा शक्ति हैं। वे ही सत्, चित्, आनन्द, सत्य, ज्ञान एवं सम्पूर्ण ऐश्वर्य हैं। उनका स्वरूप इस प्रकार है—

ॐअक्षस्रक्परशुं गदेषु कुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च कर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्राननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्।।[1]

आदि शक्ति— देवी की नौ मूर्तियाँ : नव दुर्गा—

१. शैलपुत्री	४. कूष्माण्डा	७. कालरात्रि
२. ब्रह्मचारिणी	५. स्कन्दमाता	८. महागौरी
३. चन्द्रघण्टा	६. कात्यायनी	९. सिद्धिदात्री

अथर्वशीर्षोक्त[2] आत्मशक्ति : श्रीमहाविद्या (ब्रह्म) का स्वरूप—

१. प्रकृति-पुरुष। समस्त दृश्य जगत्।
२. शून्याशून्य। वेदावेद।
३. विज्ञानाविज्ञान। आनन्दानन्द। विद्याविद्या।
४. ब्रह्माब्रह्म। अजानजा। ऊपर-नीचे। अगल-बगल।
५. पञ्चीकृत-अपञ्चीकृत महाभूत। रुद्र-वसु। आदित्य-विश्वेदेव। मित्र-वरुण।
६. सोम-त्वष्टा-पूषा-भग। त्रिदेव। जगदीश्वरी। गुणसाम्या। विष्णुशक्ति। स्कन्दमाता। देवमाता।

१. दुर्गासप्तशती (मध्यम चरित्र)। २. एषाऽत्मशक्तिः 'एषा श्रीमहाविद्या'।

७. मूलविद्या–पञ्चदशाक्षरी मन्त्र : 'कामो योनिः कमला विश्वमाता दिवि द्योम' स्वरूप ।
८. प्रजापति।

महात्रिपुरसुन्दरी महाविद्या का स्वरूप— वही भगवती ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, विश्वेदेव, यातुधान, असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष, सिद्ध, त्रिगुण, त्रिदेव, ग्रह, नक्षत्र, काल आदि सभी हैं।

१. योगनिद्रा : दशभुजी भगवती महाकाली (मार्कण्डेय पुराण : प्रथम चरित्र)— भगवती के दश हाथों में धृत अस्त्र इस प्रकार हैं—

१. खड्ग	३. गदा	५. धनुष	७. शूल	९. मस्तक
२. चक्र	४. बाण	६. परिघ	८. भुशुण्डि	१०. शंख

२. अष्टादशभुजी महालक्ष्मी (मार्क० पुराण : मध्यम चरित्र)— अष्टादश-भुजी भगवती महालक्ष्मी के द्वारा अट्ठारह हाथों में धारण किये गये अस्त्र निम्नवत् हैं—

१. अक्षमाला	६. पद्म	११. खड्ग	१६. शूल
२. परशु	७. धनुष	१२. ढ़ाल (चर्म)	१७.पाश
३. गदा	८. कुण्डिका	१३. जलज (शंख)	१८.चक्र
४. बाण	९. दण्ड	१४. घण्टा	

३. अष्टभुजी महासरस्वती (मार्क० पुराण : उत्तर चरित्र)— आठ भुजाओं वाली भगवती महासरस्वती के हाथों में धारित आठ अस्त्र निम्नवत् हैं—

१. घण्टा	३. हल	५. मूसल	७. धनुष
२. शूल	४. शंख	६. चक्र	८. बाण

चतुर्भुजी महालक्ष्मी (प्राधानिक रहस्य के अनुसार)

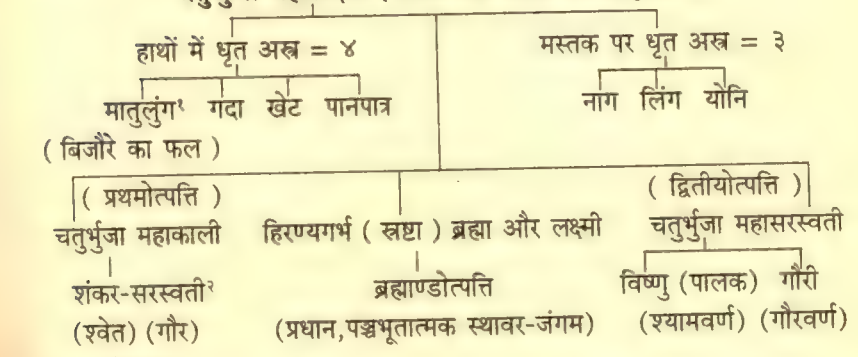

१. भुवनेश्वरी संहिता के अनुसार मातुलुंग— कर्मराशि, गदा– क्रियाशक्ति, खेट– ज्ञानशक्ति, पानपात्र– सच्चिदानन्दमय स्वरूप में स्थिति (तुरीय वृत्ति) का सूचक है। नाग- काल का, योनि– प्रकृति का एवं लिंग– पुरुष का सूचक है। महालक्ष्मी- प्रकृति, पुरुष एवं काल का अधिष्ठान।
२. सरस्वती के नाम— त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा।

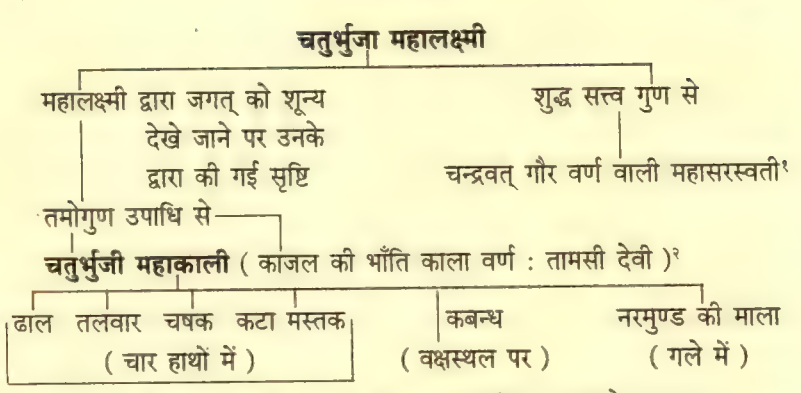

भगवती का स्वरूप एवं उनका नाम— प्राधानिक रहस्य के अनुसार—

१. महालक्ष्मीर्महाराज सर्वसत्त्वमयीश्वरी।
निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत्।।

२. नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित्।।

(एक नाम से उनको नहीं पुकारा जा सकता। उनके अनेक नाम हैं; अतः (महामाया, चिति आदि) नामान्तरों से इनको पुकारा जाना चाहिए।)

अष्टभुजी सरस्वती— (पार्वती के शरीर से प्रकट) → शुम्भ का वध

गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया।
साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी।।१४।।
दधौ चाष्टभुजा बाणमुसले शूलचक्रभृत्।
शङ्खं घण्टां लाङ्गलञ्च कार्मुकं वसुधाधिप।।१५।।
(वैकृतिकरहस्य)

चतुर्भुजा 'महालक्ष्मी' के किस हाथ में कौन-सा आयुध है; इस सन्दर्भ में मतभेद है। इस दिशा में मुख्यतः दो मत हैं— रेणुकामाहात्म्य का मत और प्रथम चरित्र एवं उत्तर चरित्र में वर्णित महाकाली-महासरस्वती का वर्णनसम्बन्धी मत। रेणुकामाहात्म्य के अनुसार—

१. दाहिनी ओर के नीचे के हाथ में पानपात्र एवं ऊपर के हाथ में गदा।
२. बायीं ओर के ऊपर के हाथ में खेट तथा नीचे के हाथ में श्रीफल।

वैकृतिकरहस्य के अनुसार (दक्षिणाधः करक्रमात्)—

---

१. महासरस्वती के नाम— महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भा, धीश्वरी (बुद्धिस्वामिनी)।

२. महाकाली (तामसी देवी) के नाम— महामाया, महाकाली, महामारी, क्षुधा, तृषा, निद्रा, तृष्णा, एकवीरा, कालरात्रि, दुरत्यया।

१. दाहिनी ओर के निचले हाथ में मातुलुंग एवं ऊपर वाले हाथ में गदा।
२. बायीं ओर के ऊपर वाले हाथ में खेट एवं नीचे वाले हाथ में पानपात्र।

चतुर्भुजा महालक्ष्मी

(महाकाली की चार भुजा एवं महासरस्वती की चार भुजा)

तमोगुण से (महाकाली) सत्त्वगुण से (महासरस्वती)

सप्तशती (प्रथम, उत्तर चरित्र) में वर्णित महाकाली-महासरस्वती— महाकाली की दश भुजायें एवं महासरस्वती की आठ भुजायें।

वैकृतिकरहस्य के अनुसार महाकाली का स्वरूप इस प्रकार है— १० मुख, १० भुजायें, १० पैर, कज्जल वर्ण और ३० नेत्र। उनके द्वारा अपने हाथों में धारण किये गये आयुध हैं— खड्ग, बाण, गदा, शूल, चक्र, शंख, भुशुण्डि, परिघ, धनुष एवं रक्तरंजित कटा सिर। कहा भी गया है—

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा।
विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया।।

स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपापि भूमिप।
रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः।।

खड्गबाणगदाशूलचक्रशङ्खभुशुण्डिभृत् ।
परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ।।

एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया।
आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम्।।

महालक्ष्मी का स्वरूप निरूपित करते हुये वैकृतिकरहस्य कहता है कि—

अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधः करक्रमात्।।

अक्षमाला च कमलं बाणोऽग्निः कुलिशं गदा।
चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा च पाशकः।।

शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं पानपात्रं कमण्डलुः।
अलंकृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम्।।

सर्वदेवीमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप।।

मूर्तिरहस्य के अनुसार देवी की अंगभूता शक्तियाँ छः हैं— नन्दा, रक्तदन्तिका, शाकम्भरी, भीमा, दुर्गा और भ्रामरी।

दुर्गासप्तशती (मार्कण्डेय पुराण) के प्रधान देवता[१]

महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती

जगत्— शाक्तों की दृष्टि में 'जगत्' भगवती का अपना ही विराट् स्वरूप है। आगमिक परम्परा के विविध दर्शनों की प्रमुख विशेषता यह रही है कि वे जगत् को भावात्मक दृष्टि से देखते हैं। वैदिक परम्परा का प्रमुख दर्शन अद्वैत दर्शन है, जो कि जगत् के प्रति निषेधात्मक दृष्टि रखता है। 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति, ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' की दृष्टि रखने एवं एकमात्र परम सत्ता का ही अस्तित्व मानने के कारण अद्वैतवादी दर्शनों के सामने यह समस्या थी कि वे जगत् को सत्य कैसे मानें। जगत् का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार करने पर 'एको ब्रह्म' को मानना सम्भव नहीं था, क्योंकि इसके कारण परा सत्ता एवं जगत् में भेद मानना पड़ता, जो कि द्वैतवाद की पुष्टि करता और परा सत्ता मात्र को ही सत्य मानने की अद्वैत दृष्टि बाधित होती। अद्वैत वेदान्त जगत् का निषेध करते हुए उसे मिथ्या कहता है— जगन्मिथ्या अर्थात् 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'।

काश्मीरीय शैव दर्शन और उसकी प्रत्यभिज्ञा, क्रम एवं स्पन्द आदि समस्त शाखायें जगत् को भावात्मक दृष्टि से देखती हैं और उसे सत्य मानती हैं। द्वैतवादी शैव सिद्धान्त भी जगत् के प्रति भावात्मक दृष्टि रखते हुए उसे सत्य मानता है। दोनों में अन्तर यह है कि काश्मीरीय शैव दर्शन जगत् को 'आभास' मानता है, जबकि शैवसिद्धान्त उसे आभास नहीं; प्रत्युत 'पृथक् स्वतन्त्र' सत्ता मानता है।

काश्मीरीय शैव दर्शन आभासवादी (Idealistic) है, किन्तु शैवसिद्धान्त यथार्थवादी (Realistic) है। कश्मीरीय शैव दर्शन एकमात्र परम सत्ता (परमात्मा) का ही स्वतन्त्र अस्तित्व मानकर जगत् को उस सत्ता का आभास कहकर जगत् के प्रति भावात्मक दृष्टि की पुष्टि कर सकता है, किन्तु शैवसिद्धान्त ऐसा नहीं कर सकता; क्योंकि वह द्वैतवादी है।

अद्वैतवादी दर्शन जगत् का निषेध करता है, किन्तु काश्मीरीय शैव दर्शन जगत् को शिवरूप मानता है। शैव सिद्धान्त भी जगत् को सत् एवं शिवस्वरूप मानता है, किन्तु काश्मीरीय शैव दर्शन की भाँति उसे 'आभास' नहीं मानता। अद्वैत वेदान्त एवं काश्मीरीय शैव दर्शन दोनों जगत् को 'आभास' मानते हैं, किन्तु काश्मीरीय शैव दर्शन उसे 'सत्याभास' एवं अद्वैत वेदान्त उसे 'मिथ्याभास' मानता है। अद्वैत दर्शन जगत् को 'मिथ्या' एवं 'बन्धन का कारण' तथा 'मायात्मक' मानता है; जबकि काश्मीरीय शैव दर्शन उसे 'सत्य' एवं 'लीला' मानता है। वेदान्त भी 'लोकवत्तु लीला कैवल्यम्' कहकर 'लीलावाद' का ही समर्थन करता है, किन्तु उसकी लीलासम्बन्धी दृष्टि काश्मीरीय शैव दर्शन के विपरीत है।

१. ॐ अस्य श्रीसप्तशतीरहस्यत्रयस्य नारायण ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वत्यो देवता

शाक्त दर्शन जगत् को एक 'चित्र' या 'क्रीड़ा' मानता है— 'एष देवोऽनया देव्या नित्यं क्रीडारसोत्सुकः। जगच्चित्रं समालिख्य'।

काश्मीरीय शैव दर्शन जगत् को 'चेतन' (चेतन शिव से आभासित होने के कारण) या 'शिव का चेतनाभास' मानता है, किन्तु शैव सिद्धान्त उसे 'जड़' मानता है, क्योंकि जड़ माया (कारण) का कार्य भी जड़ तो रहेगा ही।

अद्वैत वेदान्त में जगत् को 'बन्धन' माना गया है, किन्तु काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैव सिद्धान्त में जगत् बन्धन या बन्धन का कारण नहीं माना जाता; बल्कि बन्धन के कारण अन्य तत्त्व हैं; यथा— काश्मीरीय शैव दर्शन में 'पञ्चकञ्चुक' एवं शैवसिद्धान्त में 'आणवमल।'

अद्वैत वेदान्त में जगत् एक 'अध्यारोप' है, वह ब्रह्म में पृथक् सत्ता का एक मिथ्या आरोपण है— आवरण है— विक्षेप है; अतः अग्राह्य है, त्याज्य है; किन्तु काश्मीरीय शैव दर्शन में जगत् को अपनी सत्ता से पृथक् समझना ही अज्ञान एवं बन्धन है। शैव-सिद्धान्त में भी जगत् को मुक्ति का साधन स्वीकार किया गया है। अतः वेदान्त की भाँति ही जगत् को त्याज्य नहीं माना गया है। काश्मीरीय शैव दर्शन जगत् को 'शिव का आभास' मानकर भी उसे सत्य मानता है तथा शैवसिद्धान्त उसे शिव से पृथक् मानकर भी सत्य मानता है।

काश्मीरीय शैव दर्शन के अनुसार जगत् को शिव से पृथक् मानने पर इसका ज्ञान होना भी सम्भव नहीं हो सकता। काश्मीरीय शैव दर्शन में आत्मा से पृथक् किसी भी अनात्म पदार्थ की सत्ता ही स्वीकार नहीं की गयी है।

अद्वैत वेदान्त में जगत् हेय एवं महत्त्वहीन माना जाता है, किन्तु काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैवसिद्धान्त में उसे महत्त्वपूर्ण एवं सोद्देश्य माना जाता है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार जगत् 'रज्जु में सर्प की भ्रान्ति' है; अतः जगत् का ब्रह्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। सत्यस्वरूप ब्रह्म असत् जगत् से सम्बद्ध कैसे हो सकता है?

काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैवसिद्धान्त दोनों जगत् को शिव से सम्बद्ध मानते हैं। दोनों में जगत् का शिव के साथ अद्वैत सम्बन्ध होना स्वीकृत है। शिव का 'आभास' होने एवं शिव से अभिन्न होने के कारण अद्वैतवादी शैव दर्शन में जगत् का एवं शिव का अद्वैत सम्बन्ध स्वीकार किया गया है। शैवसिद्धान्त मानता है कि यद्यपि शिव एवं जगत् में नित्य द्वैत है (दोनों भिन्न हैं); तथापि शिव की शक्ति जगत् की प्रत्येक सत्ता में विद्यमान है; अतः वह अपनी शक्ति की अन्तर्भूतता के कारण प्रत्येक जागतिक सत्ता या जगत् के साथ अद्वैत सम्बन्ध से जुड़ा हुआ है।

काश्मीरीय शैव दर्शन के अनुसार जगत् शिव की स्वाभिव्यक्ति है। शिव ही जगत् के रूप में अभिव्यक्त हो जाता है; अतः जगत् शिवमय है। चूँकि शिव अपनी आनन्दाप्ति

के लिए ही सृष्टि करता है, इसीलिए जगत् आनन्दस्वरूप है। जगत् शिव के आनन्द या भोग की वस्तु है।

शैवसिद्धान्त की दृष्टि में शिव जगत् का सृजन करता है और जगत् भोग की वस्तु होते हुये भी मात्र आनन्दाप्ति के लिए नहीं; प्रत्युत आत्मा के लिए एक साधन है, न कि साध्य। जगत् के अनुभव आत्मा के मल का परिपाक करते हैं और उससे मोक्षाप्ति होती है। जगत् काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैव सिद्धान्त दोनों में ग्राह्य है, निषेध्य नहीं। ग्राह्य इसलिए है कि काश्मीरीय शैव दर्शन की दृष्टि में वह शिवस्वरूप है और शैव सिद्धान्त की दृष्टि से इसलिए ग्राह्य है, क्योंकि वह आत्मा के लक्ष्य का साधन है।

शैव सिद्धान्त की दृष्टि में जगत् शिव से भिन्न है। काश्मीरीय शैव दर्शन में शिव एवं जगत् का तात्त्विक अद्वैत मान्य है। शैव सिद्धान्त में शिव एवं जगत् का सम्बन्ध अद्वैतपूर्ण है। भक्तिभावना एवं ज्ञान दोनों में मान्य है।

चूँकि शिव जगत् से परे भी है; अत: वह जगत् शिव का आभास है। शैव सिद्धान्त में शिव जगत् से भिन्न है। दोनों में शिव जगत् में समाहित है।

काश्मीरीय शैव दर्शन के अनुसार शिव जगत् में अन्तर्निहित है, क्योंकि जगत् शिव का आभास है; अत: शिव के जगत् में अन्तर्निहित न होने पर जगत् का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। शैव सिद्धान्त के अनुसार शिव जगत् में इसलिये व्याप्त है, क्योंकि शिव आत्माओं से प्रेम करता है।

जगत् का उपादान कोई अन्य नहीं, स्वयं शिव ही है; क्योंकि वह जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। शैव सिद्धान्ती शिव को जगत् का 'उपादान कारण' मानने से इन्कार करते हैं; क्योंकि जगत् का 'उपादान' माया है। शिव से जगत् को अभिन्न मानने के प्रयोजन से काश्मीरीय शैव दार्शनिक शिव को ही उपादान मानते हैं। काश्मीरीय शैव दर्शन की दृष्टि के अनुसार शिव के ही जगत् का उपादान होने के फलस्वरूप जगत् शिव की बाह्याभिव्यक्ति है। शैव सिद्धान्त भक्तिभाव को, तो काश्मीरीय शैव दर्शन ज्ञानमीमांसा को प्रधानता देता है। शैव सिद्धान्त के अनुसार शिव जगत् का नियन्त्रक है, स्वामी है, किन्तु जगत् नहीं है और केवल निमित्त कारण है, न कि उपादान कारण।

काश्मीरीय शैव दर्शन का शिव अपने अनुग्रह के द्वारा दूसरों को नहीं; बल्कि अपने-आपको ही अनुगृहीत करता है तथा अपने को ही मोक्ष प्रदान करता है। मोक्ष भी उसकी अपनी ही 'लीला' है। जगत् एवं उसकी सृष्टि शिव का सहज कर्म है, उसका 'अनुग्रह' ही उसका सहज कर्म है। वही अपने अनुग्रह द्वारा 'शिव' भी बन जाता है तथा चाहता है तो अपने को भुलाकर 'जीव' भी बन जाता है। जगत् की सृष्टि का प्रयोजन कोई और नहीं है; प्रत्युत यह स्वयं अपने लिए है। शैव सिद्धान्त की सृष्टि एवं जगत्— दोनों ही सोद्देश्य है, क्योंकि सृष्टि द्वारा जीव को मुक्ति प्राप्ति होती है। आत्मा के मोक्ष के लिए

ही शिव सृष्टि करता है। शिव प्रेमस्वरूप है; अत: आत्माओं के कष्टों को सहन नहीं कर सकता; इसीलिये आनन्दाप्ति हेतु वह आत्माओं को शरीर एवं जगत् प्रदान करता है। शैव सिद्धान्त का शिव प्रतिक्षण अनुग्रह करता रहता है।

काश्मीरीय शैव दर्शन का शिव आत्मरमण, आत्मविनोद एवं आनन्द के सहजोच्छलन के लिए सृष्टि करता है; अत: उसकी सृष्टि निरुद्देश्य है, जबकि शैवसिद्धान्त का शिव जीवों के प्रति प्रेम एवं उनकी मुक्ति के लिए सृष्टि करता है; अत: उसके द्वारा की गयी सृष्टि या तो आनन्दविलास है; या तो वह मोक्ष, अनुकम्पा, शक्तिपात एवं आत्माओं के कल्याण के लिए की गयी एक रचना है।

जगत् शक्ति का 'परिणाम' है। अमृतानन्द 'दीपिका' में कहते हैं कि जिस प्रकार दूध का रूपान्तरण दही होता है, उसी प्रकार परा सत्ता का 'परिणाम' जगत् है— 'अत एव शिवादिक्षित्यन्तरूपेण परिणमत इत्यर्थ:, यथा क्षीरं दध्याकारेण परिणमते तथा चिच्छक्तिरेव सर्वाकारेण परिणमते'। तदुक्तं प्रत्यभिज्ञायाम्— 'चिति: स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतु:'। इस सिद्धान्त को 'परिणामवाद' कहते हैं। भास्कर भी 'परिणामवाद' के पक्षधर हैं। वे कहते हैं— 'विवर्तवादं वेदान्तिसम्मतं परिणामवादी तान्त्रिको दूषयति। त्वयि परिणतायाम्' (सौन्दर्यलहरी) में तो 'परिणामवाद' शांकरमत के अनुसार भी प्रतिपादित है— 'त्वयि परिणतायाम्' इति स्वाभिमत: परिणामवाद एव स्फुटीकृत:'। आचार्य शंकर भी कहते हैं— 'तस्यां परिणतायां तु न कश्चित् पर इष्यते'। इससे भी 'परिणामवाद' की ही पुष्टि की गई है।

जीवात्मा— शैवसिद्धान्त, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत एवं द्वैत वेदान्त की दृष्टि में जीवात्मा एवं शिव दोनों आत्मस्वरूप होते हुए भी पृथक्-पृथक् हैं। यही बात न्याय, वैशेषिक, साङ्ख्य एवं मीमांसा भी मानता है। जैनी भी आत्माओं के द्वैत को स्वीकार करते हैं।

अद्वैत वेदान्त और काश्मीरीय शैव दर्शन अद्वैतवादी होने के कारण परम सत्ता एवं जीवात्माओं में तात्त्विक अभेद, पारमार्थिक एकात्मता एवं अद्वैत मानते हैं। जहाँ अद्वैत वेदान्त 'यद् दृष्टं तन्नष्टम्' की दृष्टि होने के कारण जीव एवं जगत् को तुच्छ मान कर उसके प्रति उदासीन रहता है, वहीं अद्वैतवादी काश्मीरीय शैव एवं द्वैतवादी शैवसिद्धान्ती जगत् के प्रति आकर्षण, प्रेम एवं उल्लासात्मक दृष्टि रखते हैं; क्योंकि जहाँ काश्मीरीय शैव दर्शन में मोक्ष की अवस्था में भी सांसारिक क्रियायें करना सम्भव माना जाता है, वहीं शैव सिद्धान्त में जगत् को जीवों के उद्धार का सोपान माना जाता है।

काश्मीरीय शैव दर्शन में जीव एवं शिव तत्त्वत: अभिन्न माने जाते हैं। अद्वैत वेदान्त की भी यही दृष्टि है— 'जीवो ब्रह्मैव नापर:'। इस प्रकार दोनों ही शिव एवं आत्मा में अद्वैत मानते हैं। शैव सिद्धान्त द्वैतवादी होते हुए भी दोनों में व्यापक-व्याप्य सम्बन्ध द्वारा अद्वैतवाद स्वीकार करता है। अशेष विश्व की समस्त आत्माओं में दूध में

स्थित घृत की भाँति शिव व्याप्त है। शैवसिद्धान्त मानता है कि यद्यपि तात्त्विक दृष्टि से जीव एवं शिव नित्य एवं भिन्न तत्त्व हैं, तथापि शिव समस्त आत्माओं में व्याप्त होकर उनसे अपना अद्वैत सम्बन्ध सदा बनाये रखता है। दोनों के अद्वैत की व्याख्या भी भिन्न-भिन्न है।

अद्वैतवादी काश्मीरी शैव मानते हैं कि परमशिव आनन्दविलास, जगन्नाट्य या आत्मविनोद के लिए अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति द्वारा अणुत्व धारण करके स्वेच्छा से जीव (जीवात्मा) बन जाता है। इसके अनुसार शिव एवं आत्मा में विशुद्ध अद्वैत है। अद्वैत की यही दृष्टि शांकर वेदान्त की भी है।

अपनी स्वेच्छा से बन्धन के आच्छादन को ग्रहण करने वाला यह शिव परम शिव से अभिन्न है, किन्तु 'पञ्चकञ्चुकों' से अपने को आबद्ध करके 'जगन्नाट्य' में अभिनय करने वाला यह शिव बाद में अपने शिवत्व (सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञातृत्व, पूर्ण परितृप्ति, सर्व-व्यापकत्व आदि शक्तियों) को भूल जाता है और 'मित, अणु या जीवात्मा' कहा जाने लगता है। शिव से तत्त्वत: अभिन्न होने पर भी वह व्यवहारत: भिन्न हो जाता है। चूँकि इस स्थिति में भी आत्मा और परम शिव में तात्त्विक अभेद बना रहता है; अत: दोनों में तात्त्विक अद्वैत सम्बन्ध है।

जीव इच्छा, ज्ञान, क्रिया, चेतना, शक्ति, व्यापकत्व आदि की अनन्त शक्तियों से वञ्चित होकर अल्पज्ञत्व, अल्पकृतित्व, अल्पतृप्तित्व, अल्पव्यापकत्व एवं अल्पशक्तित्व आदि के कारण संकुचित हो जाता है। 'पञ्चकञ्चुक' का पाश उसे शुद्ध शिवत्व से च्युत करके आबद्ध 'जीव' बना देता है। इन सबके होने पर भी शिव का इन आत्माओं के साथ तादात्म्य एवं ऐकात्म्य तो बना ही रहता है। इस प्रकार तात्त्विक दृष्टि से दोनों में ही अद्वैत स्थित रहता है।

यदि कर्मों की दृष्टि से विचार किया जाय तो अद्वैतवादी शैव एवं शैवसिद्धान्ती दोनों ही जीवों में कर्मस्वातन्त्र्य एवं अपने कर्मों के लिए स्वयं के दायित्व को स्वीकार करते हैं। काश्मीरीय शैवों के विपरीत शैव सिद्धान्ती यह मानते हैं कि जीवों की सृष्टि कर्म करने के लिए ही होती है; किन्तु अद्वैतवादी शैव यह नहीं मानते। काश्मीरीय शैव दर्शन के अनुसार मूलत: तो शिव एवं आत्मा में कोई भेद नहीं है, किन्तु शिव द्वारा अपनी स्वेच्छा से मायोपहित जीवस्वरूप ग्रहण करने पर शिव एवं आत्मा में भिन्नता आ जाती है, क्योंकि आत्मा इस स्थिति में अपने वास्तविक स्वरूप का विस्मरण कर देती है। शिव की इस बन्धनावस्था में मुक्ति हेतु उसे भक्तिसाधना करने का विधान है, जिसे काश्मीरीय शैव दर्शन स्वीकार करता है। शिव की भक्ति से शिवानुग्रह प्राप्त होता है और उससे आत्मा को स्वस्वरूप की प्रत्यभिज्ञा हो जाती है। इससे जीव शिव बन जाता है। काश्मीरीय शैव दर्शन में 'ज्ञानोत्तरा भक्ति' का भी विधान है। ज्ञानोदय होने पर 'अद्वैत भक्ति' शैवी लीला का स्वरूप ग्रहण कर लेती है।

शैवसिद्धान्त के अनुसार यद्यपि शिव एवं आत्मा दोनों ही नित्य तत्त्व हैं, तथापि जीवात्मा ससीम है; जबकि 'शिव' असीम हैं। आत्मा 'आणव मल' से आबद्ध है; अतः स्वस्वरूप से अनभिज्ञ है। वह अपने मोक्ष हेतु शिवाश्रित है और शिवानुग्रह से स्वरूपज्ञान प्राप्त कर लेता है। 'ज्ञान' साधन है और 'भक्ति' साध्य है; अतः साधना की उच्चतम अवस्था में भी वर्तमान रहती है। 'आणव मल' से मुक्ति केवल शिवानुग्रहसाध्य है। आत्मा के दो भेद हैं— मित और अमित। अजड़प्रमातृसिद्धि में उत्पलदेवाचार्य ने कहा भी है—

द्विधा स एष एवात्मा मितोऽपरिमितस्तथा।
प्राणादिना निरुद्धोऽणुः परमात्मा त्वखण्डितः।।

पुरुष और प्रकृति तत्त्व तथा शिव और शक्तितत्त्व

परम शिव ही स्वेच्छया 'पुरुषतत्त्व' के रूप में अवभासित होता है। अपने वास्तविक शिवस्वरूप का विस्मरण कर देने के कारण ही वह 'पुरुषतत्त्व' कहलाने लगता है। (काश्मीरीय शैव दर्शन)

माया के पञ्चकञ्चुकों से आच्छादित होने से उत्पन्न अज्ञान के कारण ही शिव 'पुरुष' बन जाता है। (काश्मीरीय शैव दर्शन)

आत्मा जब पञ्चकञ्चुकों से संसृष्ट आवरण को ग्रहण कर लेता है तब वही आत्मा पुरुषतत्त्व कहा जाने लगता है। (शैवसिद्धान्त)

पुरुष अपने पारमार्थिक एवं तात्त्विक रूप में शिव ही है। (काश्मीरीय शैवदर्शन)

'पुरुष' तात्त्विक दृष्टि से शिव नहीं, केवल आत्मा है। (शैवसिद्धान्त)

सांख्य दर्शन के पुरुषतत्त्व से इसकी तुलना की जाय तो दोनों में पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगत होती है। सांख्य दर्शन की भाँति शैव-शाक्त दर्शन का शिव एवं शक्ति नहीं है। यहाँ शिव पञ्चकृत्यकारी है और शक्ति चेतन है; प्रकृति की भाँति जड़ एवं अस्वतन्त्र नहीं है।

'पुरुष' निष्क्रिय एवं उदासीन है। (सांख्य)

'पुरुष' सक्रिय तथा आसक्त है। (काश्मीरीय शैव दर्शन, शैवसिद्धान्त)

'पुरुष' अपने अज्ञान के कारण बन्धन में पड़ा है तथा अपनी विमुक्ति हेतु प्रकृति पर आश्रित है। प्रकृति ही उसे बन्धन एवं मोक्ष दोनों प्रदान करती है। पुरुष-प्रकृति का संयोग ही इसीलिए हुआ है। सांख्यकारिका में कहा भी गया है—

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पंग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः।।

सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष अपने मोक्ष के लिए कुछ नहीं कर सकता; क्योंकि वह निष्क्रिय एवं उदासीन है। शाक्त दर्शन का 'शिव' सक्रिय है। वेदान्त एवं सांख्य के

'ब्रह्म' एवं 'पुरुष' की भाँति वह निष्क्रिय नहीं है।

'पुरुष' अपने मोक्ष के लिए स्वयं अध्यवसाय एवं प्रयत्न करता है। मोक्ष के लिए 'पुरुष' शिव पर निर्भर अवश्य है, किन्तु एतदर्थ कर्म करने का स्वातन्त्र्य तो उसे प्राप्त है ही। (काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैवसिद्धान्त)

प्रकृति स्वतन्त्र है। वह पुरुष से पृथक् है। 'पुरुष' और 'प्रकृति' दोनों अनादि हैं, किन्तु 'प्रकृति' पुरुष के अधीन नहीं है। दोनों नित्य तत्त्व हैं। 'प्रकृति' किसी का भी विकास या परिणाम (संसृष्ट तत्त्व) नहीं है। 'प्रकृति' ही समस्त तत्त्वों के प्रादुर्भाव एवं विकास का मूल कारण है। (सांख्य दर्शन)

'प्रकृति' सृष्टि का मूल कारण नहीं है और सृष्टि-विकास के ३६ तत्त्वों में से प्रकृति भी एक तत्त्व है। (शैवसिद्धान्त, काश्मीरीय शैव दर्शन)

शाक्त दर्शन में सांख्य का पुरुष मान्य नहीं है; बल्कि शाक्त दर्शन में 'शिव-शक्ति' ही मूल तत्त्व हैं।

सृष्टि का मूल कारण प्रकृति नहीं, शिव है। (काश्मीरीय शैव दर्शन)
सृष्टि का मूल कारण प्रकृति नहीं, माया है। (शैवसिद्धान्त)
प्रकृति गुणों की साम्यावस्था है। (सांख्यदर्शन)
प्रकृति गुणों का कारण है। (शैवसिद्धान्त)

शाक्तों की दृष्टि में 'महामाया' 'माया' एवं 'प्रकृति' तथा 'शक्ति' अभिन्न हैं; ये एक ही 'परा शक्ति' की विभिन्न अवस्थायें हैं।

ईश्वरादि की सहायता के विना ही सृष्टि होती है, किन्तु गुणों में विक्षोभ होने पर। (सांख्यदर्शन)

'प्रकृति' शिव की प्रेरणा से ही सृष्टि का विकास करती है।
(काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैवसिद्धान्त)

सांख्यदर्शन, काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैवसिद्धान्त तीनों में ही प्रकृत्योत्तर तत्त्वों का स्वरूप एवं विकास स्वीकार्य है। इस विषय में मतभेद नहीं है।

शिव और शक्ति— 'शक्ति' शिव की स्वसमवायिनी एवं अभिन्न परा शक्ति है। शिव अर्थात् 'परमशिव' पब्रह्म तत्त्व है। यह यौगिक एवं तान्त्रिक दृष्टि से 'सामरस्यापन्नावस्था' में महाबिन्दुस्वरूप में 'सहस्रार' में अवस्थित है। शिव और शक्ति उसकी 'सकलावस्था' है। 'परमशिव' एवं उसकी 'पराशक्ति' निष्कल है। 'शिव' प्रकाशस्वरूप है और उसकी 'शक्ति' विमर्शस्वरूप है। कामकलाविलास में कहा भी गया है—

सकलभुवनोदयस्थितिलयमयलीलाविनोदनोद्युक्तः।
अन्तर्लीनविमर्शः पातु महेशः प्रकाशमात्रतनुः।।

शिव एवं शक्ति अभिन्न हैं—

न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।
शिवाभिन्ना परा शक्तिः सर्वकर्मशरीरिणी।।

जगत् शिव-शक्ति की लीला है—

नामरूपविभागं च या करोति स्वलीलया।

जगत् शिव द्वारा अपनी आत्मा के फलक पर स्वेच्छा तूलिका से निर्मित 'चित्र' है—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छातूलिकयात्मनि।

सृष्टि और उसका प्रयोजन : क्रीडा-लीला-चित्र-स्वेच्छा— कश्मीरी अद्वैतवाद परम तत्त्व द्वारा ही सृष्टि-विधान किया जाना स्वीकार करता है, किन्तु शांकर अद्वैत ब्रह्म में क्रिया न मानने के कारण ब्रह्म को स्रष्टा नहीं, अपितु माया को स्रष्टा माना जाता है। एक ओर काश्मीरीय शैवाद्वैतवाद सृष्टि को 'आभासवाद' की नींव पर स्थित मानता है तो दूसरी ओर शैवसिद्धान्त (सांख्यों की भाँति) 'सत्कार्यवाद' पर। सृष्टि-प्रतिपादन की दोनों की दृष्टियाँ भिन्न-भिन्न हैं। शाक्त दर्शन सृष्टि को लीला, क्रीड़ा, विनोद या आत्म-भित्ति पर स्वेच्छा-तूलिका से निर्मित चित्र मानता है।

'कारण-कार्यवाद' (Cause and effect = Causation theory) की दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो 'शिव' सृष्टि का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। शांकर अद्वैत का ब्रह्म भी अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। 'शिव' विश्व का मूल कारण है और वह अपनी स्वसमवेत शक्ति के माध्यम से सृष्टि-प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका का निर्वहन करता है। शैवसिद्धान्त शिव को 'उपादानकारण' नहीं मानता, अपितु मात्र 'निमित्तकारण' मानता है।

शैवसिद्धान्त मानता है कि सृष्टि (जगत्) का मूल उपादान तथा 'उपादान कारण' माया है और शिव मात्र 'निमित्तकारण' है। चेतन शिव से अचेतन जगत् की सृष्टि सम्भव नहीं है; अतः 'शिव' जगत् एवं सृष्टि का उपादान कारण नहीं हो सकता। काश्मीरीय शैव दर्शन मानता है कि 'परमशिव' अपनी इच्छाशक्ति द्वारा अपने ही स्वरूप में स्थित पदार्थों या पदार्थों के संघात जगत् को विना किसी बाह्य उपादान की अपेक्षा किये प्रकट कर देता है। उसकी इच्छामात्र से ही सृष्टि हो जाती है— 'जगत्' बन जाता है। 'स्वभित्तौ विश्व-मुन्मीलयति' कहकर 'शक्तिसूत्र' भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है।

शैव सिद्धान्त की मान्यता है कि शिव अपनी शक्ति द्वारा माया को सञ्चालित करके मायाशक्ति द्वारा जगत् की रचना करता है, किन्तु काश्मीरीय शैव दर्शन की मान्यता है कि शिव किसी की रचना या सृजन नहीं करता; क्योंकि उसके अतिरिक्त कोई अन्य है ही नहीं तो वह सृष्टि किसकी करेगा। 'शिव' अपने भीतर स्थित स्वस्वरूपात्मक, अपने

से अभिन्न जगत् को अन्दर से बाहर प्रकट कर देता है। उसके द्वारा अपनी शक्ति का बाह्याभास (बाह्याभिव्यक्ति) ही सृजन, सृष्टि एवं जगत् है तथा इसका निगरण ही प्रलय एवं संहार है। यह सृष्टि एवं प्रलय नहीं है; प्रत्युत शिव का 'उन्मेष-निमेष' है— 'यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयौ'। काश्मीरीय शैव दर्शन सृष्टि या जगत् को शिव की सांकल्पिक सृष्टि (Ideation) मानता है।

शैवसिद्धान्त, काश्मीरीय शैव दर्शन एवं अद्वैत वेदान्त— तीनों मानते हैं कि परा सत्ता परिवर्तनशील नहीं है; अपितु नित्य है, एक है, सर्वोच्च है, आद्यन्तशून्य है, सच्चिदानन्दस्वरूप है, अक्षय एवं शाश्वत है। वह अमर्त्य एवं अद्वितीय है तथा सर्व-शक्तिशाली, अनन्त और असीम है।

परा सत्ता अपरिवर्त्य क्यों है? इस सम्बन्ध में काश्मीरीय दर्शन कहता है कि 'सृष्टि' शिव की कल्पना है। अतः कल्पनाओं का परिवर्तन कल्पना करने वाले का परिवर्तन तो नहीं कर सकता। वेदान्त कहता है कि ब्रह्म परिवर्तनशील जगत् का कर्ता ही नहीं है। अतः जगत् के साथ उसके भी परिवर्तित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। शैवसिद्धान्त मानता है कि चूँकि शिव उपादान कारण न होकर, मात्र निमित्तकारण है और वह केवल शक्ति के माध्यम से ही जगत् से सम्बन्ध स्थापित करता है; अतः वह 'विश्वमय' एवं 'विश्वा-तीत' दोनों होने के कारण जगत् के विकारों, मालिन्यों एवं दोषों से प्रभावित नहीं होता।

सृष्टि का प्रयोजन : लीलावाद एवं अनुग्रह

सृष्टि के प्रयोजन की दृष्टि से काश्मीरीय शैव दर्शन, शैवसिद्धान्त आदि दार्शनिक सम्प्रदायों में मतभेद है। काश्मीरीय शैव दर्शन के अनुसार 'सृष्टि' शिव की लीला है। शिव 'लीला' के लिए ही सृष्टि करता है। शैवसिद्धान्त के अनुसार शिव आत्माओं के कल्याण एवं उनकी मुक्ति हेतु सृष्टि करता है।

काश्मीरीय शैव दर्शन सृष्टि को किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया गया कोई समारम्भ नहीं मानता। उसके अनुसार सृष्टि निष्प्रयोजन है। शिव स्वात्मोल्लास, स्वानन्दाभि-व्यक्ति, आत्मानन्दोच्छलन के लिए सृष्टि करता है। सृष्टि और प्रलय अर्थात् 'सृजन' और 'संहार' शिव का स्वभाव है। जिस प्रकार स्वभाव कभी भी सोद्देश्य नहीं होता, बल्कि सत्ता का अभिन्न अंग होता है, उसी प्रकार सृष्टि-प्रलय अर्थात् सर्जन एवं संहार भी शिव की स्वभावाभिव्यक्तियाँ हैं। 'सृष्टि' शिव की आनन्दक्रीड़ा है, लीलाविलास है। सृष्टि निराकांक्ष, आनन्दकन्द शिव के आत्मविनोद की मधुर क्रीड़ा है। शिव का अपने लिए सृष्टि करना भी सम्भव नहीं है, क्योंकि शिव स्वयं में अपूर्ण तो है नहीं कि वह अपनी कमी को पूरा करने के लिए सृष्टि करता।

शैव सिद्धान्त मानता है कि चूँकि अपने आनन्द, अपने कल्याण एवं अपनी मुक्ति के लिए आत्माओं को शिव की आवश्यकता है; अतः कल्याणस्वरूप शिव इन अनन्त

भटकती, बन्धनग्रस्त एवं माया से सन्त्रस्त तथा मल-परिबद्ध आत्माओं के कल्याण, उनकी मुक्ति एवं उनके प्रति अपने करुणाजन्य वात्सल्य के लिये सृष्टि करता है। यही सृष्टि का उद्देश्य है। अद्वैतवादी शैव दर्शन में सृष्टि शिव के आत्मविनोद का परिणाम है तो शैव सिद्धान्त में प्रेम का।

सृष्टि का प्रेरणा-केन्द्र— सृष्टि करने के लिये कौन-सी प्रेरणा प्रभविष्णु होती है? सृजन का मूल उत्स क्या है? सृष्टि क्यों की जाती है?— इन सभी प्रश्नों का उत्तर विभिन्न दार्शनिकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से दिया है। शाक्त दर्शन इसका मूल तत्त्व आत्म-विनोद, स्वभाव, स्वेच्छा, लीला, क्रीड़ा एवं चित्र-सृजन को मानता है।

शैवसिद्धान्त इसका मूल उत्स प्रेम या करुणा को मानता है। यह प्रेम, करुणा या अनुग्रह ही सृष्टि के मूल में निहित है। शिव आत्माओं से प्रेम रखने के कारण सृष्टि करता है।

काश्मीरीय शैवमत सृष्टि की व्याख्या 'स्वातन्त्र्यवाद' के आधार पर करता है। शिव सृष्टि करने, न करने एवं अन्यथा करने आदि सभी में समर्थ है।

शैवसिद्धान्ती मानते हैं कि जगत् अपने मूल रूप में माया के गर्भ में रहता है और शिवेच्छा से व्यक्त होता है। यह शिवेच्छा की मान्यता तो शैवसिद्धान्तियों को भी 'स्वातन्त्र्यवाद' के निकट ला देती है, किन्तु वे सृष्टि की व्याख्या शिव के अनुग्रह एवं प्रेम के सिद्धान्त के आधार पर करते हैं। प्रेम में भी स्वातन्त्र्य तो निहित है ही, क्योंकि प्रेमजन्य कार्य करने के लिए प्रेमी बाध्य नहीं होता। काश्मीरीय शैव दर्शन आभासवादी है। शिव स्वतन्त्र, शक्तिसंवलित, विश्वमय, विश्वोत्तीर्ण, इच्छा-ज्ञान-क्रियारूप एवं चेतन है।

काश्मीरीय शैव दर्शन में ज्ञान के प्रति विशेषाग्रह है। इसका लक्ष्य है— शिवज्ञान की प्राप्ति और शैव सिद्धान्त में शिव के सामीप्य के प्रति विशेषाग्रह है; अत: शिवभक्ति इसका प्रधान साधन है। शिव की प्रत्येक क्रिया प्रेम के कारण है, जबकि काश्मीरीय शैव दर्शन में शिव की प्रत्येक क्रिया 'लीला' है।

योगिनीहृदय में कहा गया है कि षट्त्रिंशदात्म जगत् एक उल्लेख (चित्र) है। इसे भगवती स्वेच्छा-तूलिका से आत्मभित्ति पर निर्मित करती है—

स्वेच्छाविश्वमयोल्लेखखचितं विश्वरूपकम्।
चैतन्यमात्मनो रूपं निसर्गानन्दसुन्दरम्।।

इसी भाव को अन्यत्र भी प्रस्तुत किया गया है—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छातूलिकयात्मनि।
स्वयमेव समालोक्य प्रीणति भगवान् शिव:।।

जगत एक क्रीडा है। स्पन्दकारिका में कहा भी गया है—

इति वा यस्य संवित्तिः क्रीड़ात्वेनाखिलं जगत्।
स पश्यन् सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः।।

इन तीनों उदाहरणों में चित्र या क्रीड़ा का जो उदाहरण दिया गया है, उसका उद्देश्य क्या है? उसका उद्देश्य है— आत्मानन्द या आनन्दलीला। इसीलिए कहा गया है कि 'इसे देखकर भगवान् शिव प्रसन्न हो उठते हैं। सृष्टि का उद्देश्य भी यही आत्मतुष्टि या आत्मानन्द है।

लीलावाद एवं इच्छा सृष्टिवाद— रहस्यगुरुओं ने कहा है कि चिदात्मा अपने अन्दर स्थित एवं अपने से अभिन्न जगत् को अपनी इच्छा (स्वेच्छा) के कारण बाहर प्रकट कर देता है और बाहर प्रकट वही विस्तार 'जगत्' कहलाता है; अतः सृष्टि का उद्देश्य या प्रयोजन तो कोई है ही नहीं। सृष्टि तो लीलामात्र है—

१. चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद्बहिः।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्।।

२. अतएव ईश्वरस्य जगत्सृष्ट्यादिकं लीलामात्रम्; न प्रयोजनमस्ति।।
(चिद्वल्ली : नटनानन्द)

३. स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति। (प्रतिज्ञाहृदयसूत्र)

४. स्वेच्छयैव जगत्सर्वं निगिरत्युद्गिरत्यपि।

५. यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च।

६. इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिः।

७. जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छातूलिकयात्मनि।

८. हृदयस्थापि लोकानामदृश्या मोहनात्मिका।
नामरूपविभागं च या करोति स्वलीलया।।

९. सकलभुवनोदयस्थितिलयमयलीलाविनोदनोद्युक्तः।। (कामकलाविलास)

शाक्त सम्प्रदाय की मुक्तिसम्बन्धिनी अवधारणा
(The Shakta Conception of Mukti)

आचार्य क्षेमराज अपने शक्तिसूत्र (प्रत्यभिज्ञाहृदयम्) में कहते हैं कि 'विकल्पक्षय, शक्तिसंकोच, विकास, वाहच्छेद, आदि-अन्त कोटि के परिशीलन' द्वारा 'मध्य के विकास' से चिदानन्द की प्राप्ति होती है और यह चिदानन्दलाभ ही परमयोगियों का समावेश, समापत्ति एवं समाधि है— 'मध्यविकासाच्चिदानन्दलाभः, स एव परमयोगिनः समावेश-समपत्त्यादिपर्यायः समाधिः'।

हयग्रीवप्रणीत शाक्तदर्शनम् की दृष्टि— विशुद्ध सत्त्व से निर्मित 'मणिद्वीप' या

'चिन्तामणि द्वीप' की प्राप्ति ही शाक्त साधकों की 'मुक्ति' है। भगवती भुवनसुन्दरी का अनन्य एवं प्रगाढ़ ध्यान करते हुए 'तत्त्वमसि' एवं 'अहं ब्रह्मास्मि' के अपरोक्षानुभूतिस्वरूप ज्ञान के द्वारा ही यह मुक्ति प्राप्त होती है अर्थात् साभासा भुवनसुन्दरी के स्वस्वरूप में साधक के मन का पूर्ण लय ही मुक्ति है। साधक यह मुक्ति प्राप्त करके संसारचक्र (Cycle of rebirth and creation) से मुक्त हो जाता है, दुःखों से मुक्ति पा जाता है और 'समाधि' के द्वारा पूर्णत्व प्राप्त कर लेता है। यह पूर्णत्व की सम्प्राप्ति उस समाधिमात्र के द्वारा सम्भव हो पाती है, जिसमें साधक का मन निर्भासा शक्ति (Absolute power) में पूर्णतः लय हो जाता है।

सूत्रकार ने कहा है कि मूल अविद्या के नाश द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है—

मूलाविद्यानाशद्वारा ब्रह्मप्राप्तिर्मुक्तिः।

उपनिषदों में प्रतिपादित मुक्ति की अवधारणा से शाक्तों की मुक्तिसम्बन्धिनी अवधारणा में भिन्नता यह है कि—

शाक्तों की 'निर्भासा मुक्ति' में चित् तत्त्व (चैतन्य शक्ति) अभिव्यक्त नहीं होती, जबकि औपनिषदिक मुक्ति की अवधारणा में साधक की आत्मा चेतनस्वभाव है; अतः इसमें चैतन्य अभिव्यक्त रहता है। 'निर्भासा मुक्ति' में शक्ति की प्रकृति (स्वस्वरूप = स्वभाव) न तो अनुभविता (संवेदक) है और न ही असंवेदक। यह मुक्ति की अवधारणा शून्यवादी बौद्धों के 'निर्वाण' से साम्य रखती है। बौद्ध कहते हैं कि निर्वाण शून्यात्मक है। इसे 'निःशेष पूर्णता की अवस्था' भी कह सकते हैं, जिसे उपनिषदों में इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।[१]

जीवन्मुक्ति— आचार्य क्षेमराज द्वारा शक्तिसूत्र में मुक्ति को 'जीवन्मुक्ति' का पर्याय स्वीकार करके कहा गया है कि 'चिदानन्दलाभे देहादिषु चैत्यमानेष्वपि चिदैकात्म्य-प्रतिपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्तिः' अर्थात् चिदानन्द की प्राप्ति के अनन्तर देहादिक के अनुभूत होने पर भी चित् शक्ति के साथ एकात्मता-प्रतिपत्ति की दृढता ही 'जीवन्मुक्ति' है।

विश्व के साथ अभिन्नतारूप समावेशात्मक चिदानन्द के उपलब्ध होने पर 'व्युत्थान दशा' में केंचुल की भाँति देह प्राण नील एवं सुख आदि के आभासित रहने पर भी जिस अभेदापत्ति के संस्कार-बल से उद्दीप्त अविचल चिदैक्य प्रथित होता है, वही 'जीवन्मुक्ति' है। स्पन्दकारिका में कहा गया है कि समग्र जगत् मेरा ही स्वरूप है। इस प्रथा का जिसको ज्ञान है, वह सारे जगत् को क्रीड़ा के समान देखता हुआ सतत् योगयुक्त होने

---

१. महामहोपाध्याय काशीनाथ वासुदेव अभ्यंकर— शाक्तदर्शनम् की भूमिका।

से 'जीवन्मुक्त' कहलाता है।[१]

आचार्य हयग्रीव की मुक्तिसम्बन्धिनी दृष्टि— आचार्य हयग्रीव अपने शाक्त-दर्शनम् में मोक्ष (मुक्ति) के विषय में निम्न दृष्टियाँ प्रस्तुत करते हैं—

क. दुःखस्वरूप संसरणचक्र का अन्त ही 'मोक्ष' है— 'जन्ममरणादिदुःखरूपसंसृतिनाशो मोक्षः।' (५.४.१)

अर्थात् जन्म एवं मृत्यु आदि दुःखरूप संसृति का ध्वंस ही मोक्ष है। भाव यह है कि जन्म से मृत्युपर्यन्त जीवन की समस्त अवस्थायें, दशायें एवं समस्त व्यापार मात्र दुःखमय हैं और यही संसरणचक्र भी है। अतः इसका आत्यन्तिक क्षय ही 'मोक्ष' है।

यह कथन बौद्धों के 'दुःखं अरिय सच्चं' का तथा जन्मचक्र की द्वादश शृंखलाओं तथा उनके आत्यन्तिक ध्वंसस्वरूप निर्वाण का स्मारक है।

ख. 'मूलाविद्या' के नाश के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होना ही 'मुक्ति' है। आचार्य हयग्रीव कहते भी हैं— 'मूलाविद्यानाशद्वारा ब्रह्मप्राप्तिर्मुक्तिः।' (५.१.८)

ग. आत्मा को शक्तिस्वरूप अनुभव करना या जानना ही 'मुक्ति' है। आचार्य हयग्रीव कहते हैं कि जो साधक देहत्रय (स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर) से अतीत आत्मा को शक्तिस्वरूप जानता है, उसे 'मुक्त' कहते हैं— 'देहत्रयातीतमात्मानं शक्तिरूपतया ज्ञाता मुक्तः।' (५.१.२०)

घ. मणिद्वीपवास ही 'मुक्ति' है— 'मणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः।[२]' (९.३.१९)

प्रजापति का मत— ब्रह्मलोक में वास करना ही 'मुक्ति' है और यह मुक्ति ब्रह्मज्ञान

---

१. इति वा यस्य संवित्तिः क्रीड़ात्वेनाखिलं जगत्।
स पश्यन् सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः।। (स्पन्दकारिका)

२. भगवती का निवास मणिद्वीप में है; अतः उनके लोक की प्राप्ति ही मुक्ति है। भैरवयामल में इस मणिद्वीप का परिचय इस प्रकार दिया गया है—

बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यः सुरद्रुमाः।
तत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्डपम्।।
तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे।।
अतिरम्यतरे तत्र कशिपुश्च सदाशिवः।
भूतकाश्च चतुष्पादा महेन्द्रश्च पतद्ग्रहः।
तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी।।
शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलीम्।
तदुद्भूतामृतस्यन्दि परमानन्दनन्दिता।।

से ही प्राप्त होती है, न कि शक्तिलोक में निवास करने से—

'न शक्तिलोकवासो मुक्तिः।' (९.१.१)

'ब्रह्मलोकवासैव मुक्तिरिति प्रजापतिः।' (९.२.२)

बादरि का मत— 'मणिद्वीप' में निवास करने से मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती और 'भुवनेश्वरी' साभासा माया हैं—

'न मुक्तिर्मणिद्वीपवासः।' (९.३.१)

'भुवनेश्वरी साभासा माया।' (९.३.२)

जैसे प्रलय के समय समस्त जीव प्रकृति में लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार मणिद्वीपवासी भी—

'प्रलये जीवाः प्रकृतिङ्गताः। तन्मणिद्वीपगाः।' (९.३.७-८)

'न तेन मुक्तिरिति बादरिः।' (९.३.११)

हयग्रीव ने उक्त दोनों मतों का खण्डन करके यही प्रतिपादित किया कि सर्वलोक-मणिद्वीपवास ही मुक्ति है—

'सर्वलोकमणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः।' (९.४.१४)

'मणिद्वीप' क्या है? इस विषय में आचार्य हयग्रीव कहते हैं कि कार्येश्वर तो ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र हैं और उनका लोक 'ब्रह्मलोक' है, किन्तु कारणेश लोक तो मात्र 'मणिद्वीप' ही है, जो कि ब्रह्मलोक से भिन्न है। कार्येशों का लोक = ब्रह्मलोक। कारणेश लोक = मणिद्वीप। कहा भी है—

'कार्येश्वरा ब्रह्मविष्णुरुद्राः।' (९.२.१३)

'कारणेशलोको मणिद्वीपम्।' (९.२.१४)

'पतनं ब्रह्मलोकात्, न क्वचिन्मणिद्वीपात्।' (९.२.१७-१८)

आशय यह है कि 'ब्रह्मलोक' से भी पतन होता है, किन्तु 'मणिद्वीप' से नहीं। आचार्य हयग्रीव यह भी कहते हैं— 'सर्वलोको मणिद्वीपम्। सर्वे लोका यस्यां संस्काररूपेण प्रकृत्यात्मकास्तन्मयः सर्वलोकः। तत्रेश्वरी परा शक्तिः।' (८.४.१-३)

अर्थात् सर्वलोक के नाम से जो ब्रह्मलोक विख्यात है, वस्तुतः वह सर्वलोक तो 'मणिद्वीप' ही है। समस्त लोक गुणत्रयात्मक प्रकृति के रूप में संस्काररूप से इसी मणिद्वीप में रहते हैं। यहीं भगवती परा शक्ति भी निवास करती है।[१]

---

१. शङ्कराचार्य सौन्दर्यलहरी में कहते हैं कि भगवती त्रिपुरसुन्दरी सुधासिन्धु के मध्य स्थित मणिद्वीप के चिन्तामणिगृह के शिवाकार मञ्च पर आसीन हैं—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।

'शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्' (भैरवयामल) में 'शिवा' शब्द कुण्डलिनी

गर्ग का भी यह मत है कि 'चिन्तामणि द्वीप' में निवास मुक्ति नहीं है; किन्तु आचार्य हयग्रीव ने गर्ग के मत का भी प्रत्याख्यान करते हुए प्रतिपादित किया है कि चिन्तामणि द्वीप (मणिद्वीप) में निवास करना ही मुक्ति है।

पूर्वपक्ष— 'प्रपञ्चत्रयवासनायुक्तमणिद्वीपवासो न मुक्तिरिति गर्गः।' (१०.३.१७)

गर्ग 'मणिद्वीप' में प्रपञ्चत्रय की वासना का विस्तार देखते हैं।

गाणपत्य सम्प्रदायवादी चिन्तामणि गृह को ही 'चिन्तामणि द्वीप' मानते हैं— 'चिन्तामणिगृह एव चिन्तामणिद्वीपमिति गाणपाः।' (१०.४.१)

किन्तु वे कहते हैं कि उसमें प्रपञ्चत्रय-वासना स्थित है और कारणप्रपञ्च की दो आदि वासनाओं से रहित हो जाना ही 'मुक्ति' है। आचार्य हयग्रीव इसका भी प्रत्याख्यान करते हुए कहते हैं कि 'मणिद्वीप' आनन्दस्वरूप है और इस मणिद्वीप में निवास करना ही मुक्ति है— 'तदानन्दं मणिद्वीप एव।' (१०.४.१५)

अतो मणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः।' (१०.४.१८)

'निर्वाणदीक्षिता परोक्षज्ञानी मुक्तः।' (१५.४.१) कहकर सूत्रकार ने 'निर्वाणदीक्षा' को भी मुक्ति का एक साधन स्वीकार किया है। उन्होंने कहा है कि निर्वाण-दीक्षित साधक राजयोगी होते हैं। राजयोग-साधना मुक्ति-साधना का उत्तम मार्ग है।

हयग्रीवमार्ग ब्रह्मविद्या का मार्ग है, अद्वैतपरायण मार्ग है— 'अद्वैतं ब्रह्मविद्यामार्गमेव।' (१७.३.१६)। इसके अनुसार आत्मातिरिक्त सब कुछ मिथ्या है। ज्ञान के पूर्व भी आत्मा मात्र ब्रह्म ही तो था। उसका देह से कोई तादात्म्य नहीं है और वह सदा मुक्त है; क्योंकि आत्मा एवं ब्रह्म में कोई भिन्नता है ही नहीं। कहा भी है—

'आत्मातिरिक्तमिदं मिथ्या।' (७.२०.१७)

'ज्ञानात्पूर्वमपि आत्मा ब्रह्म।' (७.२.१९)

'न भेदो ब्रह्मात्मनोः।' (७.२.२२)

मणिद्वीप कारणलोक है— 'कारणलोको मणिद्वीपम्।' (१.४.८) और सबका कारण स्वयं शक्ति है; अतः 'कारणं शक्तिरेवेति हयग्रीवः।' (३.२.९) 'कारणं शक्तिः। भुवनेश्वरी।' (४.१.१ एवं ४.१.२)[१]

का बोधक है। लक्ष्मीधर कहते भी हैं— 'शिवा नाम शक्तिः कुण्डलिनी, अर्कमण्डलं हृत्कमलोपरि स्थितं भित्वा भिन्नं कृत्वा, अर्कमण्डलोपरि स्थितं ब्रह्मद्वारं पिधाय इन्दुमण्डलं दशति'।

१. मणिद्वीप में स्थित भगवती के स्वरूप का ध्यान-विधान भी किया गया है और उन्हीं का ध्यानयोगसहित जप करने का भी उपदेश दिया गया है—

सुधाब्धौ नन्दनोद्याने रत्नमण्डपमध्यगाम् । बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहां त्रिलोचनाम् ।।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां श्रियम् । ध्यात्वा च हृद्गतं चक्रं व्रतस्थः परमेश्वरीम् ।
पूर्वोक्तध्यानयोगेन चिन्तयन् जपमाचरेत् ।।

अद्वैतावस्थान के ही मुक्ति होने के कारण मुक्ति का साधन जो ज्ञान है वह भी अद्वैतात्मक है— 'जीवेशाभेदबोधकं ज्ञानम्।' (५.४.२) अर्थात् जीव एवं ईश्वर में अभेद की अनुभूति या अवबोध ही 'ज्ञान' है। ज्ञान के विना कोई सिद्धि (मुक्ति आदि) प्राप्य नहीं है— 'न सिद्धिर्ज्ञानं विना।' (७.१.११) तथा अद्वैतावस्थान समाधिस्थ साधक ही ज्ञानी है।

निर्विकल्पक समाधि में अवस्थित ज्ञानी सिद्ध ही मुक्त है—

'निर्विकल्पसमाधिपरो ज्ञानी सिद्धो मुक्तः।' (१०.१.२)

इस ज्ञान के लिए भेदनाश आवश्यक है; क्योंकि अभेदभावनास्वरूप ज्ञान तभी प्राप्य है, जब— 'अभेदभावनाद्भेदनाशः।' (७.४.२३)

शाक्तज्ञानियों के लिए अपना मुक्तिस्वरूप परमगेहमात्र 'चिन्तामणिगृह' है— 'शाक्त-ज्ञानिनश्चिन्तामणिगेहम्।' (१०.२.१०)

क्योंकि यहीं उनकी परमाराध्या भगवती पराशक्ति निवास करती हैं—'चिन्तामणि-गृहान्तःस्था तेन शक्तिः।' (१०.२.१०) 'चिन्तामणिगेहः शक्तेः।' (१०.३.१)

ज्ञान के द्वारा ही मुक्ति मिलती है तो ज्ञानी कौन है— 'अद्वैतावस्थानसमाधिस्थो ज्ञानी।' अर्थात् अद्वैतावस्था में अवस्थित समाधिमग्न योगी ही 'ज्ञानी' है। सविकल्प समाधि के बाद निर्विकल्प समाधि होती है। इस निर्विकल्प समाधि में स्थित योगी ही 'सिद्ध' एवं 'मुक्त' कहलाता है— 'सविकल्पान्निर्विकल्पम्, तत्सिद्धो मुक्तः।' (१३.२.२०-२१)

समाधि को मुक्ति का पर्याय क्यों माना गया? इसलिये कि हयग्रीव विद्या अद्वैतात्मक ब्रह्मविद्या है, जीव-परमात्मा में ऐक्यानुसन्धान की विद्या है और 'समाधि' भी वही है—

'ऐक्यानुसन्धानं समाधिः।' (१५.१.३३)
'ऐक्यभावनं समाधिः।' (१५.१.२३)
'इयं हयग्रीवविद्या ब्रह्मैक्यदायिनी।' (१८.१४.२४)
'अद्वैतं ब्रह्मविद्यामार्गमेव।' (१७.३.१६)

ब्रह्मविद्या द्वैपायन-प्रणीत है और शाक्तदर्शन भी उसी के अन्तर्गत है (१८.२.२६-२७)। हयग्रीव अपने दर्शन को शाक्त दर्शन कहते हैं— 'हयग्रीवविद्या शाक्तसिद्धान्त-दर्शनमिति।' (१५.३.२६)

ब्रह्ममीमांसा एवं शाक्तदर्शन का अपृथक् सम्बन्ध है— 'ब्रह्ममीमांसा द्वैपायनेन। २६' 'तदन्तर्गतानि शाक्तदर्शनादीनि।' (१८.२.२७)

'शक्तिसूत्रम्' के अनुसार मुक्ति का स्वरूप

आचार्य अगस्त्य की दृष्टि— आचार्य हयग्रीव की भाँति ही आचार्य अगस्त्य ने भी दुःखध्वंस को परम पुरुषार्थ मानते हुये सर्वदुःखोपरम को मोक्ष स्वीकार किया है।

समस्त दुःखों का उपशम ही परम श्रेयस्कर 'मोक्ष' है। आचार्य अगस्त्य कहते हैं— 'सर्वदुःखोपरमः श्रेयान् मोक्षः।' (२.५३)

प्रत्यगात्मावस्थान ही मुक्ति है— आचार्य अगस्त्य कहते हैं कि पहले प्रकृति को और फिर अपने को आत्मस्वरूप में लय करके जब द्वैतभाव से अद्वैतभाव में अवस्थान होता है तब अकेला एक तत्त्व ही शेष रह जाता है और वहाँ दो के लिए कोई स्थान शेष नहीं रह जाता; इसी अद्वैतावस्थान में साधक प्रत्यगात्मस्वरूप स्थिति में प्रत्यगात्मा शुद्ध, पूर्ण एवं मुक्त होकर अवस्थान करता है। वह शुद्ध, पूर्ण, प्रत्यगात्मा एवं मुक्त हो जाता है—

१. 'प्रथमं प्रकृतिं मनसा विभाव्य तामपि स्वात्मनि स्वात्मानं तस्यां मिथो विलाप्य तत एकोऽवशिष्यते।' (३.५३)

२. 'मुक्तः शुद्धः पूर्णः प्रत्यगात्मैव भवति।' (३.५४)

यह प्रत्यगात्मावस्थान ही मुक्ति है।

'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' कहकर योगसूत्रकार पतञ्जलि ने भी आत्मावस्थान को ही मुक्ति माना था।

ब्रह्मीभाव ही मुक्ति है— आचार्य अगस्त्य कहते हैं कि संसार-सागर से मुक्ति पाने वाले मुक्त पुरुष का लक्षण यह है कि वह मुक्त एवं ब्रह्म हो जाता है—

१. यत्प्रसादाज्जीवन्मुक्तो जीवः परं ब्रह्मैव भवति। (२.३८)

२. नित्यमुक्तः पूर्णो भवति। (२-४२)

३. स वै ब्रह्मभूयाय कल्पते ब्रह्मभूयाय कल्पत इति। (२.१२६)

यह मुक्ति ही 'जीवन्मुक्ति' है। (२.३४,२.३८)

आत्मज्ञान ही मुक्ति है— आचार्य अगस्त्य कहते हैं कि जो आत्मवित् हो जाता है, वह मुक्त होकर संसार-सागर से तर जाता है—

'विदित्वैवं तरति, य आत्मवित्।' (शक्तिसूत्र-२.१-२)

अविद्या के क्षय से प्रकृति शक्ति में लीन हो जाती है; अतः शक्ति एवं साधक दोनों ब्रह्म ही कहलाने लगते हैं— 'अविद्याक्षयेण ब्रह्माभिधेयम्।' (२.७)

इस मुक्ति के सहायक तत्त्वों में धर्म की भी भूमिका है— 'अधर्मान्बन्धः।' (१.११८) 'धर्मो निवृत्तौ' (२.११९)।

अर्थात् अधर्म से बन्धन होता है और धर्म से बन्धनमुक्ति होती है। 'विदित्वैवं तरति' (२.१) के द्वारा आचार्य अगस्त्य ज्ञान को मुक्ति का प्रधान साधन स्वीकार करते हैं। 'धर्मान्मोक्षोऽधर्मान्बन्धः' (३.३) कहकर वे धार्मिक कार्यों की महनीयता को भी स्वीकार करते हैं; जबकि अन्य दार्शनिक पुण्यापुण्य, धर्माधर्म सभी के त्याग को मुक्ति का मार्ग मानते हैं। बन्धन एवं मोक्ष का कारण प्रकृति भी है—

'प्रकृतिर्द्विधा।' (३.१) 'सा बन्धमोक्षयोर्हेतुः।' (३.२)

इस दृष्टि पर सांख्य दर्शन का पूर्ण प्रभाव है।

त्रिक दर्शन 'जीवन्मुक्ति' को, प्रत्यभिज्ञा दर्शन 'प्रत्यभिज्ञा' को, पतञ्जलि 'स्वरूपावस्थान' को, सांख्य 'कैवल्य' को, नाथयोगी 'पिण्डपदसमरसीकरण' को, आचार्य लक्ष्मीधर 'सायुज्य' को एवं शंकराचार्य 'अद्वैतभाव' या 'धारणा' को मुक्ति मानते हैं।

'धारणा' क्या है? इस पर आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि धारणाओं की संख्या ३६० है— 'धारणा नाम वायोः कमलेषु नादकलाभ्यां निरोधः। स च षट्कमलेषु षोढा सप्तमे समयशब्दाभिलप्येन सार्धं सप्तविधः। एकैकस्मिन् कमले पञ्चाशदिति षष्ट्युत्तरत्रिशतं धारणा।'

धारणा पिण्डस्थ कमलों में नादकला के द्वारा वायु का निरोध करना है। इसके ३६० भेद हैं।

धारणा का फल क्या है? आधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरक-अनाहत-विशुद्धाख्यादि चक्रों में यथाक्रम मति-स्मृति-बुद्धि-प्रज्ञा-मेधा-प्रतिभा-संविद्रूप निष्पत्ति ही 'धारणा' का फल है। भगवत्पाद ने धारणा से जीवन्मुक्ति प्राप्त होने की पुष्टि की है— 'धारणा परिज्ञानान्मुक्तिः।'[१]

शंकराचार्य ने सौन्दर्यलहरी में कहा है—

परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान्।

भजन के दो भेद हैं— षट्चक्रात्मक भजन (षट्चक्रसेवात्मक) एवं धारणात्मक।

१. आधारस्वाधिष्ठान— तामिस्रलोक है; अतः उपास्य नहीं है।

२. मणिपूरप्रभृति सहस्र कमलपर्यन्त ५ चक्र पूज्य हैं।

३. मणिपूरचक्र की उपासना— 'सार्ष्टिरूपा मुक्ति' (सार्ष्टिनाम देव्याः पूरः समीपे पुरान्तरं निर्माय सेवां कुर्वाणस्य अवस्थितिः)।

४. संवित्कमलपूजा— 'सालोक्य मुक्ति' (सालोक्यंनाम देव्याः पट्टणे निवासः)।

५. विशुद्धि चक्र की उपासना— 'सामीप्य मुक्ति' (सामीप्यंनाम अङ्गसेवकत्वम्)।

६. आज्ञाचक्रोपासना— 'सारूप्य मुक्ति' (सारूप्यं नाम समानरूपत्वम्)।

इनमें से सारूप्य मुक्ति ही यथार्थ मुक्ति है।[२]

▼

---

१. लक्ष्मीधरा।

२. लक्ष्मीधरा— परं तु सायुज्यात्मिकैव शाश्वती मुक्तिः सहस्रकमलोपासकानामेवेति।

चतुर्थ अध्याय

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप

वैसे तो भगवती के तो अनन्त एवं अचिन्त्य रूप हैं, तथापि उन्हें वर्गीकृत करके प्रस्तुत किया जाय तो उनके निम्न तीन रूप मुख्य दृष्टिगोचर होते हैं—

१. निर्गुण रूप[१]— भगवती का एक चक्रात्मक रूप भी है, जो कि श्रीचक्र के रूप में प्रतिष्ठित है। श्रीचक्र का महत्त्व इतना है कि हजारों एवं करोड़ों तीर्थस्नान करने पर भी जो फल प्राप्त नहीं होता, उतना मात्र 'श्रीचक्र' का पादोदक लेने से ही प्राप्त हो जाता है। कहा भी गया है—

'तीर्थस्नानसहस्रकोटिफलदं श्रीचक्रपादोदकम्।'

२. पुरुष रूप— भगवती के पुरुष रूप का विवेचन विभिन्न पुराणों में इस प्रकार किया गया है—

पुंरूपं वा स्मरेद्देवीं स्त्रीरूपं वा विचिन्तयेत्।
अथवा निष्कलं ध्यायेत्सच्चिदानन्दलक्षणम्।।
ममैव पौरुषं रूपं गोपिकाजनमोहनम्।। (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

कदाचिल्ललितादेवी धृतश्रीकृष्णविग्रहा।
वेणुनादविनोदेन मोहयत्यखिलं जगत्।।
अहं च वासुदेवाख्यो नित्यं कामकलात्मकः।
अहञ्च ललितादेवी पुंरूपा कृष्णविग्रहा।।
आवयोरन्तरं नास्ति सत्यं सत्यं हि नारद।
इदं वृन्दावनं नाम रहस्यं मम वै गृहम्।। (पद्मपुराण)

सहस्रमूर्धानमनन्तशक्तिं सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम्।
शयानमब्धौ ललिते तवैव नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम्।।

३. नारी रूप— भगवती के नारीरूप का विवेचन इस प्रकार प्राप्त होता है—

न मातुः परमस्ति दैवतम्।
अपराधपरम्परावृतं न हि माता समुपेक्षते सुतम्।
सरोजं त्वत्पादौ जननि जयतश्चित्रमिह किम्।

---

१. श्रीविद्या का स्वरूप : वरिवस्यारहस्य में भास्कर राय कहते हैं—
नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपाऽस्यम् वर्तते शक्तिः। तद्विज्ञानार्थमेव चतुर्दश विद्या स्थानानि तेष्वपि सारभूता वेदाः। तेष्वपि गायत्री, तस्या रूपं द्वितयम्।
तत्रैकं स्पष्टं द्वितीयं परं गोपनीयं श्रीविद्यारूपम्।।

कदा काले मातः कथय कलितालक्तकरसम्।

उपर्युक्त स्वरूप के अतिरिक्त भगवती के अन्य रूप भी हैं; यथा—

भगवती के अन्य रूप

स्थूलरूप	सूक्ष्मरूप	पररूप
(कायिकी– श्रीचक्ररूप)	(वाचिकी– जपरूप, मन्त्ररूप, श्रीविद्यारूप)	(मानसी– (भावनोपनिषद् भावना के अनुरूप रूप)

श्रीविद्या की निरतिशय महत्ता— कोई भी मनुष्य अपने उसी अन्तिम जन्म में 'श्रीविद्या' का उपासक बन पाता है, जब उसकी मुक्ति का काल आता है—

'चरमे जन्मनि यथा श्रीविद्योपासको भवेत्।'

इतना ही नहीं— 'यस्य नो पश्चिमं जन्म यदि वा शङ्करः स्वयम्।
तेनैव लभ्यते विद्या श्रीमत्पञ्चदशाक्षरी।।'

यह 'श्रीविद्या' ही आत्मविद्या एवं ब्रह्मविद्या है और सच्चिदानन्दरूपिणी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ही इसका यथार्थ स्वरूप हैं। उन भगवती के तीन रूप हैं— मन्त्रात्मक (श्रीविद्या) यन्त्रात्मक (श्रीयन्त्र) विग्रहात्मक (शरीरावयवों से युक्त)। कहा भी गया है—

'मन्त्रात्मकं रूपं पञ्चदशी षोडशी महाषोडशी।'

'षोडशी' तो अवर्णनीया है; अतः करोड़ों वाक्यों एवं करोड़ों जिह्वाओं से भी उनका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है—

'वाक्यकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि।
वर्णितुं नैव शक्येऽहं श्रीविद्या षोडशाक्षरीम्।।

एकोच्चारेण देवेशि ! वाजपेयस्य कोटयः।
अश्वमेधसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा।।

काश्यादितीर्थयात्राः स्युः सार्धकोटित्रयान्विताः।
तुलां नार्हन्ति देवेशि ! नात्र कार्या विचारणा।।

अपि प्रियतमं देयं सुतदारधनादिकम्।
राज्यं देयं शिरो देयं न देया षोडशाक्षरी।।'

श्रीविद्या का महत्त्व— सैकड़ों यज्ञ करने से जो पुण्यार्जन होता है, वह एक क्षण में ही 'श्रीचक्र' के दर्शनमात्र से प्राप्त हो जाता है—

सम्यक् शतं क्रतून् कृत्वा यत्फलं समवाप्नुयात्।
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्।।

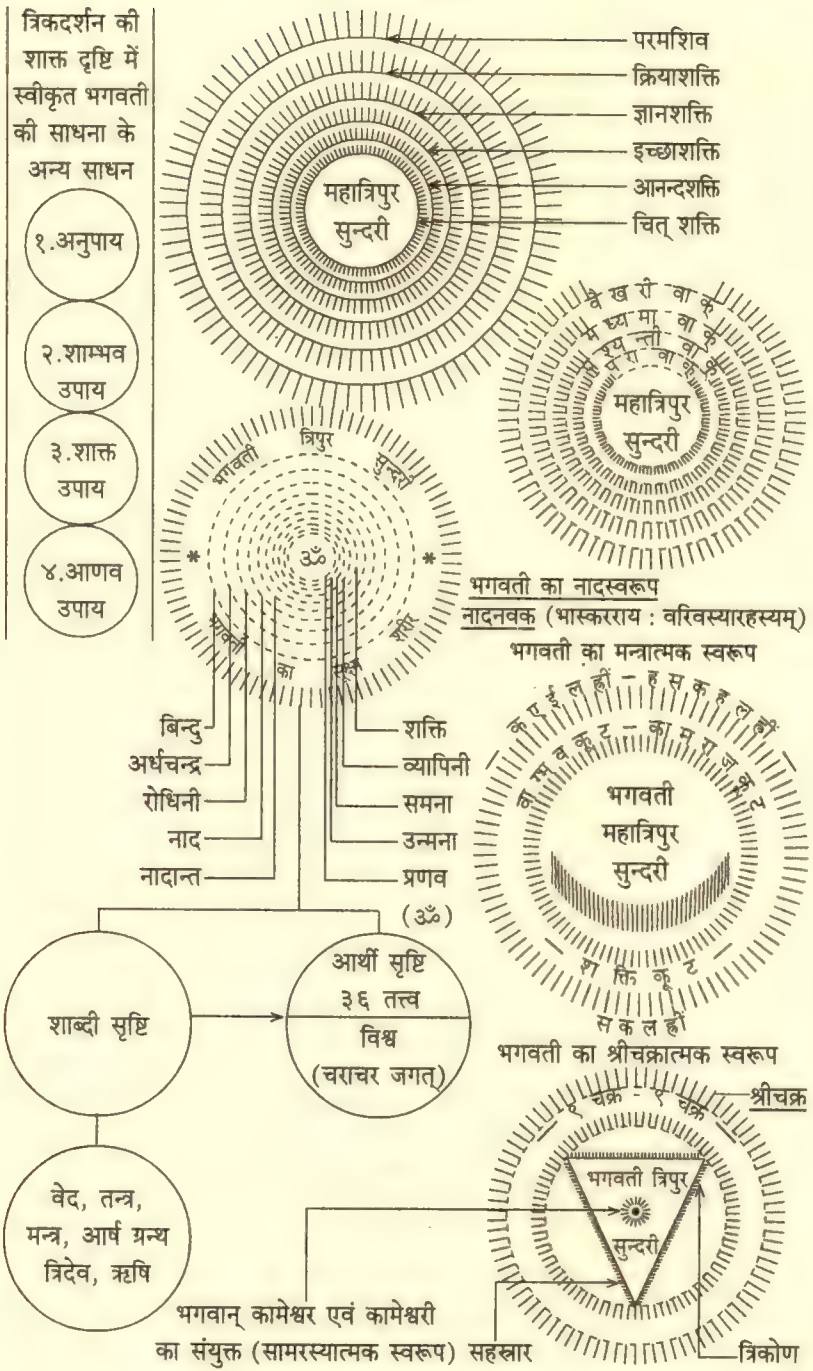
त्रिकदर्शन की शाक्त दृष्टि में स्वीकृत भगवती की साधना के अन्य साधन
१.अनुपाय
२.शाम्भव उपाय
३.शाक्त उपाय
४.आणव उपाय
परमशिव
क्रियाशक्ति
ज्ञानशक्ति
इच्छाशक्ति
आनन्दशक्ति
चित् शक्ति
महात्रिपुर सुन्दरी
वैखरी वाक्
मध्यमा वाक्
पश्यन्ती वाक्
परा वाक्
महात्रिपुर सुन्दरी
भगवती त्रिपुर सुन्दरी
ॐ
भगवती का नादस्वरूप
नादनवक (भास्करराय : वरिवस्यारहस्यम्)
भगवती का मन्त्रात्मक स्वरूप
बिन्दु
अर्धचन्द्र
रोधिनी
नाद
नादान्त
शक्ति
व्यापिनी
समना
उन्मना
प्रणव
(ॐ)
भगवती महात्रिपुर सुन्दरी
शक्ति कूटं
सकलह्रीं
भगवती का श्रीचक्रात्मक स्वरूप
शाब्दी सृष्टि
आर्थी सृष्टि
३६ तत्त्व
विश्व
(चराचर जगत्)
वेद, तन्त्र, मन्त्र, आर्ष ग्रन्थ त्रिदेव, ऋषि
श्रीचक्र
चक्र - २
चक्र - १
भगवती त्रिपुर सुन्दरी
भगवान् कामेश्वर एवं कामेश्वरी का संयुक्त (सामरस्यात्मक स्वरूप) सहस्रार
त्रिकोण

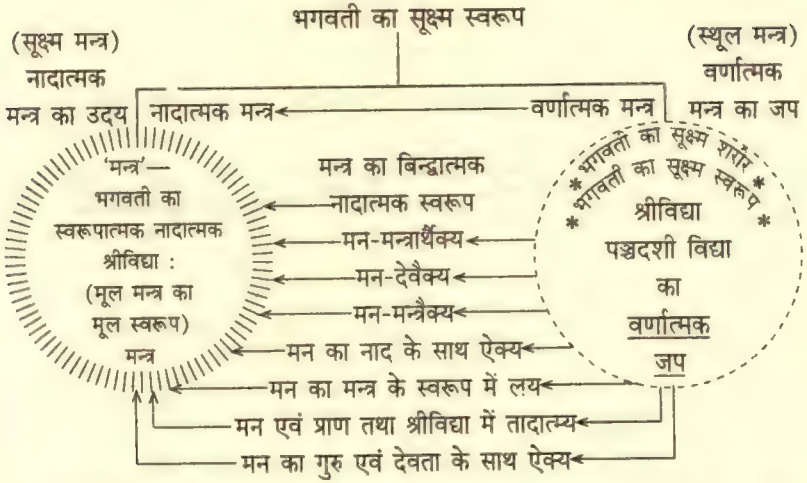

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप— भगवती त्रिपुरा आत्मतत्त्व हैं, शक्तितत्त्व हैं, विद्यातत्त्व हैं, श्रीचक्र हैं, समस्त जीव-जगत् हैं। 'नित्याषोडशिकार्णव' में उन्हें गणेश, नक्षत्र, योगिनी, राशि, मातृका एवं पीठ सभी कुछ कहा गया है—

'गणेश-ग्रह-नक्षत्र-योगिनीं राशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम्।।'

भगवती त्रिपुरसुन्दरी माता, श्रीविद्या, स्वगुरु एवं साधक से अभिन्न हैं। चक्र एवं देवता में अभिन्नता है। नित्या षोडशिकार्णव में कहा भी गया है—

'चक्रस्यापि महेश्या न भेदलेशोऽपि भाव्यते विबुधैः।
संस्थिताऽत्र महाचक्रे महात्रिपुरसुन्दरी।।'

श्रीविद्या एवं श्रीसम्प्रदाय में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ही प्राणतत्त्व हैं। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ही—

'देवता' हैं — देवता ललितातुल्या यथा नास्ति घटोद्भवा।
'तत्त्व' का अर्थ हैं — तत्त्वाधिका तत्त्वमयी तत्त्वमर्थस्वरूपिणी।
'विश्वमाता' हैं — विश्वमाता जगद्धात्री विशालाक्षी विरागिणी।
'नाद' हैं — वीरगोष्ठीप्रिया वीरा नैष्कर्म्या नादरूपिणी।[१]

---

१. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी नाद हैं; आहत नाद, अनाहत नाद, ध्वनि, शब्द, ओंकार, १० नाद, परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी, मन्त्र, भारती, वाणी, अक्षर, मातृका, वर्ण आदि सभी कुछ हैं और इन सबके मूल केन्द्रबिन्दु का स्वरूप भी वही हैं। वे ही परा वाक् एवं शब्दब्रह्म भी हैं एवं वे ही इच्छा-ज्ञान-क्रिया भी हैं।
त्रिकोण = योनि। बिन्दु = शिव। जगत् की उत्पत्ति इसी त्रिकोण एवं बिन्दु से हुई है। बिन्दु शक्त्यात्मक है।

'वर्ण' हैं	—	उदारकीर्तिरुद्दामवैभवा वर्णरूपिणी।[१]
'मन्त्रसार' हैं	—	छन्दःसारा शास्त्रसारा मन्त्रसारा तलोदरी।
'परम सत्य' हैं	—	सत्यव्रता सत्यरूपा सर्वान्तर्यामिणी सती।
'परम ज्योति' हैं	—	परं ज्योतिः परं धाम परमाणुः परात्परा।
'प्राण' हैं	—	प्रत्यग्रूपा पराकाशा प्राणदा प्राणरूपिणी।
'मुक्ति' हैं	—	मिथ्याजगदधिष्ठाना मुक्तिदा मुक्तिरूपिणी।
'प्रेम' हैं	—	चित्कलानन्दकलिका प्रेमरूपा प्रियङ्करी।
'गुरुमण्डल' हैं	—	सम्प्रदायेश्वरी साध्वी गुरुमण्डलरूपिणी।
'सच्चिदानन्द परमात्मा' हैं	—	सर्वार्थदात्री सावित्री सच्चिदानन्दरूपिणी।
'ब्रह्मात्मैक्य' हैं	—	अन्नदा वसुदा वृद्धा ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपिणी।
'ब्रह्मानन्द' हैं	—	वृहती ब्राह्मणी ब्राह्मी ब्रह्मानन्दा बलिप्रिया।
'भाषा' हैं	—	भाषारूपा वृहत्सेना भावाभावविवर्जिता।
'राजराजेश्वरी' हैं	—	राजराजेश्वरी राज्यदायिनी राज्यवल्लभा।
'सम्प्रदाय की ईश्वरी' हैं	—	सम्प्रदायेश्वरी साध्वी गुरुमण्डलरूपिणी।
'शक्तित्रय' हैं	—	इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिस्वरूपिणी।
'विश्वगर्भा' हैं	—	विश्वगर्भा स्वर्णगर्भा वरदा वागधीश्वरी।
'सत्यानन्द' हैं	—	सर्ववेदान्तसंवेद्या सत्यानन्दस्वरूपिणी।
'ज्ञान का विग्रह' हैं	—	ध्यानगम्या परिच्छेद्या ज्ञानदा ज्ञानविग्रहा।
'श्रीमाता' एवं 'श्रीमहाराज्ञी' हैं	—	'श्रीमाता श्रीमहाराज्ञी श्रीमत्सिंहासनेश्वरी।'

परम शिव = परब्रह्म = सर्वातीतावस्था। परमशिव = विश्वोत्तीर्ण। परमशिव— प्रकाश एवं विमर्श। प्रकाश = अम्बिका शक्ति। विमर्श = शान्ता शक्ति। इनका सामरस्य— इच्छा (वामा), ज्ञान (ज्येष्ठा), क्रिया (रौद्री) = पूर्ण गिरिपीठ, जालन्धर पीठ, उड्डीयान पीठ = पश्यन्ती वाक्, मध्यमा वाक् एवं वैखरी वाक्। ॐकारस्वरूप त्रिपुरा—

अ (पश्यन्ती) = सृष्टि, 'वामा' इच्छा।

उ (मध्यमा) = रक्षा-पालन, 'ज्येष्ठा' ज्ञान।

म (वैखरी) = नाश-प्रलय, 'रौद्री' क्रिया।

= ॐ— अ, उ, म।

१. चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि बिन्दुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति चतुर्थी वाचो मनुष्याः वदन्ति।।
कहकर वेद में जिन चार वाणियों का उल्लेख किया गया है, उनमें तीन नादात्मक हैं— परा, पश्यन्ती एवं मध्यमा और चतुर्थ वाक् वैखरी है, जिसे मनुष्य बोलते हैं। भगवती त्रिपुरसुन्दरी चारो वाणियों का समष्टिस्वरूप हैं। वे समस्त नादों, वाणियों, मातृकाओं, मन्त्रों, वर्णों आदि की महासमष्टि एवं उनकी मूर्ति हैं।

'शुद्ध विद्या' हैं — 'शुद्धविद्याङ्कुराकारा।'
'मूल मन्त्र' हैं — 'मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा।'
'कुण्डलिनी' हैं — 'महाशक्तिः कुण्डलिनी बिसतन्तुतनीयसी।'
'समस्त मन्त्रों का स्वरूप' हैं — 'सर्वेश्वरी सर्वमयी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी।'
'समस्त यन्त्रों का स्वरूप' हैं — 'सर्वयन्त्रात्मिका सर्वतन्त्ररूपा मनोन्मनी।'
भगवती गुरु हैं — 'त्वामिच्छाविग्रहां देवीं गुरुरूपां विभावयेत्।
त्वन्मयस्य गुरोः शेषं निवेद्यात्मनि योजयेत्।।'

भगवती 'व्यापिनी, सुमना, कुण्डली, कामिनी, कमला, ललिता' आदि सभी कुछ हैं। चर्चास्तव में कहा भी गया है—

'त्वां व्यापिनीति सुमना इति कुण्डलीति।
त्वां कामिनीति कमलेति कलावतीति।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमाः।।'

भगवती ही शिव एवं शक्ति दोनो हैं। वही आत्मा भी हैं। वही दीक्षा भी हैं। साथ ही वही विद्या एवं अविद्या भी हैं—

'शिवस्त्वं शक्तिस्त्वं त्वमसि समया त्वं समयिनी।
त्वमात्मा त्वं दीक्षा त्वमयमणिमादिर्गुणगणः।।
सकलजननीस्तव ।।'

गुरु ही आद्या शक्ति है। तन्त्रराज एवं शिवसूत्र में कहा भी गया है—

'गुरुराद्या भवेच्छक्तिः सा विमर्शमयी मता।
नवत्वं तस्य देहस्य रन्ध्रत्वेनावभासते।।'
'गुरुरेव परा शक्तिरीश्वरानुग्रहात्मिका।'

मुक्ति— भगवती त्रिपुरसुन्दरी का सम्यक् ज्ञान ही मुक्ति का स्रोत है— 'विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपा।'

मुक्ति का क्या स्वरूप है? 'जीवन्मुक्ति'। प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में 'जीवन्मुक्ति' को ही मुक्ति का पर्याय माना गया है। जीवन्मुक्ति क्या है? इस सन्दर्भ में कहा गया है कि 'चिदैकात्म्य-प्रतिपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्तिः।'

इस सम्प्रदाय में शक्ति के साथ एकात्मता या स्वरूपबोध ही मुक्ति है— 'सम्यक् स्वरूपज्ञानात् यतो मुक्तिः। असम्यक् तु संसारः (प्रत्यभिज्ञाहृदयम्)। 'जीवन्मुक्ति' ही यथार्थ मुक्ति है। चित् शक्ति के साथ एकात्मता-प्रतिपत्ति की दृढ़ता ही 'जीवन्मुक्ति' है।

श्रीसम्प्रदाय में श्रीविद्या (पञ्चदशी मन्त्र), श्रीयन्त्र एवं श्रीदेवी (महात्रिपुरसुन्दरी) प्रधान हैं।

श्रीयन्त्र, श्रीविद्या एवं श्रीदेवी में ऐक्य या समरसता-स्थापन ही साधना व्यापार की सर्वोच्च उपलब्धि है।

नाद एवं बिन्दु— १. नाद के साथ बिन्दु का, २. बिन्दु के साथ कला का ३. कला के साथ नाद का, ४. इन तीनों का परस्पर ऐक्य और ५. कला के साथ नाद का ऐक्य। इस प्रकार छः प्रकार के ऐक्य हैं। 'षोढ़ैक्य' तो भगवती की यथार्थ सपर्या ही है। षोढ़ा ऐक्य के अनुसन्धान के अनन्तर दशभुजा भगवती श्रीविद्या मणिपूरक चक्र में प्रत्यक्ष दृष्टिगत होती है। उसका साक्षात्कार ही यथार्थ सपर्या है। सपर्या क्या है? इस सन्दर्भ में लक्ष्मीधर कहते भी हैं— 'ऐक्यानुसन्धानमेव सपर्येति।'

'नाद' = श्रीचक्र। 'बिन्दु' = मूलाधारादि षट्चक्र। 'बिन्दु' = जगत् की उत्पत्ति-लय का कारण एवं शिव का शक्तिविशेष है। बिन्दु एक है, किन्तु वही सहस्र कमलान्त चतुर्द्वारात्मक कर्णिकामध्यगत चतुष्कोणात्मक शक्ति तत्त्व है। उसके मध्य स्थित शिवतत्त्व ही 'नाद' है। उसके ४ प्रकार हैं। दोनों में कलात्मकता है। उनका मेलन नाद-बिन्दु-कलातीत है। एक ही बिन्दु दस प्रकार से विभाजित हो जाता है—

'दशधा भिद्यते बिन्दुरेका एव परात्मकः।
चतुर्धाऽधारकमले षोढाऽधिष्ठानपङ्कजे।।'
'उभयाकाररूपत्वादितरेषां तदात्मता।'

शैव-शाक्त सम्प्रदाय में अद्वैत सामरस्यावस्था ही 'मुक्ति' है। शिव एवं जीव में अभेद ही परमोपलब्धि है। इस ज्ञान को ही मुक्ति कहते हैं एवं इसके अज्ञान को बन्धन कहते हैं। प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में कहा भी गया है— 'शिवजीवयोरभेद एव उक्तः। एतत्तत्त्व-परिज्ञानमेव मुक्तिः। एतत्तत्त्वापरिज्ञानमेव च बन्धः।'

पञ्चम अध्याय

श्रीविद्योपासना

सनत्कुमारसंहिता में बाह्य पूजा का प्रतिषेध करते हुए इस प्रकार कहा गया है—

'बाह्यपूजा न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभिः।
सा क्षुद्रफलदा नृणां ऐहिकार्थैकसाधनात्।।

बाह्यपूजारताः कौलाः क्षपणाश्च कपालिकाः।
दिगम्बराश्चेतिहासा वामकास्तन्त्रवादिनः।।

आन्तराराधनपरा वैदिका ब्रह्मवादिनः।
जीवन्मुक्ताश्चरन्त्येते त्रिषु लोकेषु सर्वदा।।'

श्रीविद्या भगवती त्रिपुरा का सूक्ष्म शरीर है। श्रीविद्या 'श्री' है। 'षोड़शी कला' में शकार, रेफ, ईकार एवं बिन्दु है। 'श्रीं' मन्त्र है। इसी बीज का नाम है— श्रीविद्या। लक्ष्मीधर सौन्दर्यलहरी की व्याख्या में कहते हैं— 'षोड़शी कला नाम शकार-रेफ-ईकार-बिन्द्वतो मन्त्रः। एतस्यैव बीजस्य नाम श्रीविद्येति। श्रीबीजात्मिका विद्या श्रीविद्येति रहस्यम्।' (लक्ष्मीधरा)। ककारादिक वर्ण षोड़श नित्याओं की प्रकृति के हैं— 'एवं षोड़शनित्यानां प्रकृतिभूताः ककारादयः।'

चान्द्रकलायें	तिथियाँ	देवी का नाम (कला का नाम)	सर्वानुस्यूत कला
प्रथमा	प्रतिपदा	त्रिपुरसुन्दरी कला	
द्वितीया	द्वितीया	कामेश्वरी कला	
तृतीया	तृतीया	भगमालिनी कला	
चतुर्थी	चतुर्थी	नित्यक्लिन्ना कला	समस्त विधियों
पञ्चमी	पञ्चमी	भेरुण्डा कला	में उपास्या कला =
षष्ठी	षष्ठी	वह्निवासिनी कला	चिद्रूपा षोड़शी कला
सप्तमी	सप्तमी	महावज्रेश्वरी कला	
अष्टमी	अष्टमी	रौद्री कला	
नवमी	नवमी	त्वरिता कला	
दशमी	दशमी	कुलसुन्दरी कला	
एकादशी	एकादशी	नीलपताका कला	
द्वादशी	द्वादशी	विजया कला	
त्रयोदशी	त्रयोदशी	सर्वमंगला कला	
चतुर्दशी	चतुर्दशी	ज्वाला कला	
पञ्चदशी	पञ्चदशी	मालिनी कला	

प्रतिपदा तिथि की अधिष्ठात्री कला 'त्रिपुरसुन्दरी' चिद्रूपात्मिका नहीं है; क्योंकि उसका चिद्रूपात्मिका मूल विद्या से पृथक् रूप से अनुष्ठान किया जाता है। इस दिशा में मन्त्रभेद भी है। इन षोड़श नित्याओं का, जो कि चन्द्रकलात्मिका हैं, 'विशुद्धिचक्र' (षोड़शार) में स्थान है। उसके नीचे स्थित द्वादशार (संवित् कमल) में द्वादश सूर्य-मण्डल प्रादक्षिण्य क्रम से परिक्रमा या भ्रमण करते हैं। इन द्वादश सूर्यों का बारहों मासों पर अधिकार है। सनत्कुमारसंहिता में कहा गया है कि सूर्य एवं 'चन्द्रमा' देवयान-पितृयानात्मक इड़ा-पिंगला मार्ग से अहोरात्र सञ्चरण करते हैं। चन्द्रमा वामनाड़ी मार्ग से सञ्चरण करता हुआ ७२००० नाड़ियों के मार्ग को अमृत से सिञ्चित करता है। 'सूर्य' दक्षिण नाड़िमार्ग द्वारा तदुत्थित अमृतबिन्दुओं का उपाहरण करता है। जब सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों का 'आधारचक्र' में समावेश होता है तब अमावस्या तिथि उत्पन्न होती है। पुन: उससे कृष्णपक्ष की तिथियाँ उत्पन्न होती हैं। अतएव 'कुण्डलिनी शक्ति' आधारकुण्ड में सूर्यकिरण के सम्पर्क के कारण विलीन चन्द्रमण्डल के मध्य गलते (स्रवित होते) हुये पीयूष से परिपूरित (तृप्त) होकर सोती है। कुण्डलिनी की यह सुषुप्ति की अवस्था ही 'कृष्णपक्ष' कहलाती है—

'स्वापावस्थैव कृष्णपक्ष इत्युच्यते।'[१]

जब योगी समाहित चित्त होकर चन्द्रस्थान में चन्द्रमा को एवं सूर्यस्थान में सूर्य को वायु के द्वारा निरुद्ध करने में सक्षम हो जाता है तब सूर्य-चन्द्र अमृताहरण में अशक्त हो जाते हैं और कुण्डलिनी निराहार रहने के कारण क्रोधित होकर जग उठती है और चन्द्रमा को डसती है। उससे चन्द्रमा से अमृतपात होता है। उससे वह 'आज्ञाचक्र' पर स्थित 'चन्द्रमण्डल' को आप्लावित करती है और पीयूषप्रवाहों से वह समस्त शरीर को आप्लावित करती है। फिर आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमा की पन्द्रह कलायें अपने अधोवर्ती विशुद्धिचक्र का आश्रय लेकर विवर्तन करती हैं।

त्रिपुरसुन्दरी— सहस्रदल कमल के मध्य स्थित 'चन्द्रमण्डल' को 'बैन्दवस्थान' कहते हैं। उसकी चिन्मयी एवं आनन्दरूपा कला ही 'आत्मा' कहलाती है। वही त्रिपुर-सुन्दरी भी कहलाती है— 'सहस्रदलकमलान्तस्थितश्चन्द्रमण्डलं बैन्दवस्थानम्। तत्कला चिन्मयी आनन्दरूपा आत्मेति गीयते। सैव त्रिपुरसुन्दरी।'

समस्त शुक्लपक्ष की तिथियाँ पौर्णमासी हैं— 'सर्वा: शुक्लपक्षतिथय: पौर्णमासी-संज्ञका:।' इसीलिये योगी लोग मात्र शुक्लपक्ष की तिथियों में ही कुण्डलिनी का उद्बोधन करने में सफल हो पाते हैं। समस्त कृष्णपक्ष की तिथियाँ 'अमावास्या' में अन्तर्भुक्त हैं। एक ही अमावास्या कृष्णपक्ष कही जाती है; इसीलिए 'मूलाधार' को 'अन्धतामिस्र' कहा गया है।

---

१. लक्ष्मीधरा

श्रीविद्या— 'सादाख्या कला' का अपरपर्याय ही 'श्रीविद्या' है। लक्ष्मीधर ने अपनी लक्ष्मीधरा में कहा भी है—

'सादाख्या कला श्रीविद्यापरपर्याया नादबिन्दुकलातीता।'

ककारादि लकारान्त शब्दों को 'कला' कहना गौण है; क्योंकि सारे 'व्यञ्जन' स्वरों के अंग हैं और कलायें स्वरप्रधान हैं।

१६ स्वर, क से त तक के १६ वर्ण और थ से स तक के १६ वर्ण अर्थात् षोडश त्रिक षोड़श नित्याओं में अन्तर्भुक्त हैं। 'हकार' आकाशबीज है और बैन्दवाकाश में निलीन है। 'ळकार' अन्त:स्थ में अन्तर्भूत है। 'क्षकार' ककार और षकार का समुच्चय है। क से स तक के समस्त वर्ण स्वरसहित नित्याओं में अन्तर्भूत हैं। अ से क्ष पर्यन्त शब्दों की समष्टि ही 'अक्षमाला' कही जाती है। अत: क्षकार से (क्ष = क + ष। क से ष तक के सभी वर्ण) समस्त वर्णों का ग्रहण हो जाता है। लक्ष्मीधरा में कहा भी गया है— 'क्षकारेण सर्वा मातृका: संगृहीता भवन्ति।'

अत: अन्तिम खण्ड 'स क ल ह्रीं' है। ककार एवं लकार के योग से 'कला' शब्द निष्पन्न हुआ है। क + ष = 'क्ष'। इस प्रकार क्ष से समस्त मातृकाओं एवं मन्त्र से भी समस्त मातृकाओं का ग्रहण होता है।

ऐक्यचतुष्टय

षोडश नित्यायें— श्रीविद्या के षोडश वर्णों से युक्त हैं।
षोडश वर्ण— ५० वर्णों से युक्त हैं।
५० वर्ण— सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि कला से युक्त हैं।
सूर्य-चन्द्र-अग्नि— खण्डत्रय से युक्त हैं।

इसी प्रकार चक्रों एवं मन्त्रों में भी ऐक्य है।

चक्र एवं श्रीविद्यात्मक मन्त्र— 'एवं चक्रमन्त्रयोरपि।' (लक्ष्मीधरा)।

श्रीचक्र एवं श्रीविद्या में तदात्मकता

श्रीविद्या के मन्त्राक्षर और उनका रहस्य—

- श्रीविद्या मन्त्र के तीन ककार सकल, प्रलयाकल एवं विज्ञानाकल के वाचक हैं।
- बिन्दुत्रय रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव के वाचक हैं।
- तीनों नाद शान्ति, शक्ति एवं शम्भु के वाचक हैं।
- जगत् एवं विद्या में ऐक्य है; जैसे कि ब्रह्म एवं जगत् में अभेद है—

  'ब्रह्मणि जगतो जगति च विद्याभेदस्तु सम्प्रदायार्थ:।'

- दीक्षागुरु और परमशिव में अभेद है।
- अपने एवं परमशिव में अभेद है।

● देवीं गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम्।
मन्त्रमयीं नौमि मातृकापीठरूपिणीम्।।

● माता गणेशी है; क्योंकि इच्छा-ज्ञान-क्रिया, गुणत्रय और अग्नि-सोम-सूर्य—इन नौ के संयोग के कारण 'ग्रहरूपिणी' है।

● माता तेजोमयी अपने मरीचिरूप आवरण देवताओं की स्वामिनी होने के कारण 'गणेशी' है।

● माता १० इन्द्रियों, ४ अन्त:करणों, १० ऐन्द्रिय विषयों, प्रकृति, पुरुष, गुण-तत्त्वों के योग से २७ संख्या वाली 'नक्षत्ररूपिणी' है।

● माता योगिनी है। वह १६, १२, १०, ४, २ संख्या वाले अ, क, ड, ब, व, ह अक्षरों से आरम्भ होने वाली छ: आकिनियों से घटित विग्रह वाली 'योगिनी' कहलाती है।

● माता राशिस्वरूपा है। नाग, कूर्म आदि ५, प्राणादि ५ एवं जीवात्मा तथा परमात्मा के साथ १२ संख्या वाली माता 'राशिस्वरूपिणी' है।

श्रीविद्या का स्वरूप

● श्रीविद्या गणेशरूपिणी है; क्योंकि यह अ, क, थ वर्गों से आरम्भ होने वाले क्रमश: शक्तिकूट, कामराजकूट एवं वाग्भवकूटों के १६ वर्णों एवं परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीरूप वाक्चतुष्टय द्वारा घटित होती है।

● ३ बिन्दुओं, ३ नादों एवं ३ कूटों के शेषांशों से घटित होने के कारण विद्या 'ग्रहस्वरूपा' है। व्यञ्जनों से १० अक्षरों के पृथक् न होने से २७ अक्षरों वाली यह (विद्या) 'नक्षत्ररूपिणी' भी है।

● ३ ह्रीं और उससे भिन्न ३ कूटों के योग से विद्या 'योगिनीरूपा' भी है।

● तीनों ह्रीं एवं पूर्ववर्ती 'ल' वर्णों के योग से घटित होने के कारण श्रीविद्या 'राशिरूपा' भी है।

● विद्या एवं देवी के सारूप्य के कारण विद्या एवं देवी में अभेद है।

● विद्या 'ग्रहरूपा' है। रेखाओं, दलों एवं कोणों के गणों द्वारा घटित होने के कारण विद्या का गणेशत्व एवं नव चक्रों से निर्मित होने के कारण इसका ग्रहत्व सिद्ध है।

● ३ वृत्तों, ३ भूगृहरेखाओं एवं १४ कोणों तथा सात अन्य चक्रों की पृथक्-पृथक् गणना द्वारा इसका 'नक्षत्रत्व' भी सिद्ध है।

श्रीयन्त्र का स्वरूप

● स्थिति एवं संहारनामक २ चक्र, २ पद्म, २ अन्य वृत्त तथा एक भूगृह आदि ६ के योग से श्रीचक्र 'योगिनीरूप' है।

● ५ शक्ति, ४ अग्नि, १ बिन्दु एवं १ वृत्त तथा एक भूगृह आदि १२ के योग से श्रीचक्र 'राशिरूप' है।

● श्रीविद्या के अक्षरों द्वारा निर्मित होने के कारण चक्र इससे अभिन्न है। मातृका के वर्णों की संख्या के बराबर ५१ पीठ हैं। ५५ पीठ भी हैं।

● बिन्दु की उत्पत्ति ३ ककारों और ३ इकारों से हुई है।

श्रीयन्त्र की उत्पत्ति

सर्वरक्षाकार, सर्वार्थसाधक एवं सर्वसौभाग्यदायक— क्रमशः दो हकारों एवं एकार से आगे के दो चक्र (सर्वसंक्षोभण एवं सर्वाशापरिपूरक), दो सकारों से (चतुरस्र) त्रैलोक्यमोहन चक्र २ लकारों से उत्पन्न हुए हैं।

● अभेद-भावना की दृढ़ता के कारण अपना गुरु उक्त तीनों विद्या, देवता एवं श्रीचक्र से अभिन्न है। अतः वह गणेशादिमय होता है। शिष्य स्वयं भी तद्रूप हो जाता है।

● माता, विद्या, चक्र, स्वगुरु एवं स्वयं— इन पाँचों में अभेद है। कहा भी है— 'इत्थं माता-विद्या-चक्र-स्वगुरुः स्वयञ्चेति पञ्चानामपि भेदाभावो मन्त्रस्य कौलिकार्थोऽयम्।'

कुण्डलिनी और श्रीविद्या

● सूर्य की तपिनी आदि १२, चन्द्रमा की अमृत आदि १६ एवं अग्नि की १० कलाओं से युक्त ५० वर्णों से अभिन्न देह वाली मृणालतन्तुवत् क्षीणकाय विद्युत् के समान भासित कुलीन कुण्डलिनी मूलाधार चक्र की कर्णिका में विद्यमान त्रिकोण के ऊपर से मूलाधार, अनाहत एवं आज्ञाचक्रों में विद्यमान अग्नि, सूर्य एवं सोममण्डलों का उद्भेदन करती है।

उपर्युक्त आकाशगत चन्द्रमण्डल के केन्द्र में अकुल कुण्डलिनी से मिलती हुई एवं अमृतपूर का स्रवण करती हुई स्वयं भी सुखपूर्वक शयन करती है। यह कुण्डलिनी साक्षात् श्रीविद्या एवं महात्रिपुरसुन्दरी से अभिन्न है। इससे अपने को अभिन्न देखना ही श्रीविद्या का रहस्यार्थ है—

साक्षाद्विद्यैवैषा न ततो भिन्ना जगन्माता।
अस्याः स्वाभिन्नत्वं श्रीविद्याया रहस्यार्थः।।

● वाणी, मन एवं इन्द्रियों द्वारा अगम्य ३६ तत्त्वों से आतीत महत्तम एवं सूक्ष्मतम, व्योम से भी ऊपर स्थित, विश्वाभिन्न, चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म में अपने-आपको ब्रह्म के साथ अभेद की प्राप्ति हेतु नियुक्त करना चाहिये; यही श्रीविद्या का 'महत्तत्त्वार्थ' है।

● वाग्भव कूट — माता का किरीट से कण्ठ
  कामराज कूट — कण्ठ से कटि
  शक्ति कूट — कण्ठ से पादाग्र
  ] त्रिपुरसुन्दरी का शरीर

'वाक्कामशक्तिकूटैकरवयवशो विग्रहो मातुः।
प्रतिपाद्योऽत्राकण्ठादामध्यादा च पादाग्रात्।।'

● प्रथम कूट के ६ वर्ण, जिनके अन्त में 'र' है, क्रमशः ब्रह्मा = भारती, विष्णु = लक्ष्मी और रुद्र = पार्वती के द्योतक हैं।

● प्रत्येक अक्षर में शक्ति है और अक्षरों के साथ वामा-इच्छा एवं अन्य शक्तियों में अभेद है। यही 'शाक्तार्थ' है—

'अन्वयितव्योऽक्षरशः शक्तेः शाक्तैर्विभाव्यत्वात्।'

● क, ह, ल और स का अर्थ शक्ति है। 'ह्रीं' का अर्थ है— शिव-शक्ति का सामरस्यरूप परब्रह्म।

तीनों कूटों में से प्रत्येक का अर्थ है— 'शिव एवं शक्ति के सामरस्य के कारण ब्रह्म ही शिव एवं शक्ति दोनों है।' यही श्रीविद्या का 'सामरस्यार्थ' है।

'ककार' का अर्थ है— प्रकाश। 'एकार' का अर्थ है— अध्ययन का साधन बुद्धि। 'क + ए' (दोनों का सम्मिलित) अर्थ है— प्रकाशिका बुद्धि। 'ई' का अर्थ है— व्याप्ति। 'क' = कामिनी आदि काम्य विषय। 'ह' का अर्थ है— भोगसाधनों की प्राप्ति। 'ईकार' का अर्थ है— सभी दिशाओं में प्रकाशित होने के कारण कीर्ति। 'म' का अर्थ है— ल + ई का प्रजनन। 'वाग्भव कूट' का अर्थ है— सूक्ष्म बुद्धि की विस्तृत व्याप्ति। 'कामराज कूट' का अर्थ है— शौर्य, धन, नारी एवं कीर्ति का आधिक्य।

कूटत्रय का अर्थ

वाग्भव कूट	कामराजकूट
१. सूक्ष्म बुद्धि की विस्तृत व्याप्ति।	१. शौर्य-धन-नारी एवं कीर्ति का आधिक्य।
क=ब्रह्मा, ए=विष्णु, अ=ईश।	विधि, हरि एवं रुद्र द्वारा ब्रह्म के स्तुत्य
प्रथम कूट = ऋग्वेदात्मक।	होने में हेतु हसत्व + कहल-
द्वितीय कूट = यजुर्वेदात्मक।	त्व- ये दोनों ही हैं।
तृतीय कूट = सामवेदात्मक।	द्वितीय कूट का अर्थ हुआ—
'ह स क' का अर्थ = हँसता हुआ मुख।	ब्रह्म अति आनन्दस्वरूप एवं चिद्रूप है।
'ह स'= आनन्द। 'क'= सूर्य। 'ह'=चन्द्रमा।	
'क' एवं 'ह'= सूर्य एवं चन्द्र। 'ल'= नेत्र।	
'कहल'= सूर्य एवं चन्द्रमारूप नेत्रों वाला।	

सृष्टि-स्थिति-संहार के अधिष्ठाता विधि, हरि एवं शिव के वाचक हैं— ककार, एकार एवं अकार। ये सृष्टि आदि के कार्य में लाक्षणिक अर्थ रखते हैं।

ईकार = ईश्वरवाची। डकार = सदाशिव। (तिरोधान एवं अनुग्रह)। 'ह स'= आनन्द। 'क'= सत्य। 'ह'= अनन्त। 'ल'= ज्ञान। तृतीय कूट = ब्रह्म एवं जीव का तादात्म्य। 'स क ल'= जीव। (जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति— ३ कलायें हैं)।

शक्तिबीज 'ह्रीं'= ब्रह्म। तृतीय कूट के 'स क ल' का अर्थ है— 'यह सब ब्रह्म है।' जीव एवं ब्रह्म के स्वरूप का लाक्षणिक वाक्यों द्वारा वर्णन करके उनका अभेद स्थिर किया गया। यही महावाक्यार्थ है।

श्रीविद्या के अंग (उपासनांग)

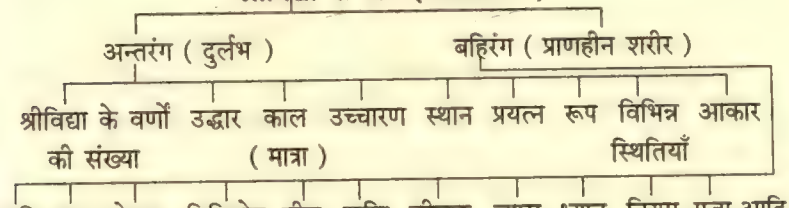

कामकला बीज → मूलमन्त्र का विकास।

गुरुनाद— विना गुरु के अपनी बुद्धिमात्र से उत्पन्न यह विद्या अपनी कन्या की भाँति पाप को जन्म देती है— 'निजबुद्धिमात्रजन्या पापं कन्या यथा स्वीया।'

गुरु का ध्यान— सहस्रार पद्म की कर्णिका के मध्यगत त्रिकोण रेखा 'अ-क-थ' से युक्त हैं, उनके कोणों में ह-ल-क्ष त्रिभुज के कोणों पर गुरु समासीन है। भगवती त्रिपुर-सुन्दरी का स्वरूप क्या है? उनका ध्यान कैसे किया जाय? ऐसी जिज्ञासा होने पर उनका स्वरूप निम्नानुसार बताया गया है—

आब्रह्माण्डपिपीलिकान्ततनुभत्सूज्जृम्भमाणा स्फुटम्
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभासकतया सर्वत्र या दीव्यति।
सा देवी जगदम्बिका भगवती श्रीराजराजेश्वरी
श्रीविद्या करुणानिधिः शुभकरी भूयात्सदा श्रेयसे।।

शाक्त दर्शन के दार्शनिक विचार

ह्रींकारत्रय— ह्रींकारत्रय एवं श्रीबीज शिवचक्रचतुष्टयात्मक त्रिकोण में बिन्दुरूप से अन्तर्भूत है।

स क ल— स-क-ल— ये तीन श्रीविद्या के मन्त्राक्षर (मातृका) अक्षमालात्मिका हैं और यथायोग्य चक्र में अन्तर्भूत हैं।

सुभगोदय की दृष्टि के अनुसार श्रीचक्र एवं श्रीविद्या मन्त्र में ऐक्य स्थापित है—

क. चार अन्तःस्थ और चार ऊष्म— ये आठ वर्ण अष्टकोणात्मक हैं।

ख. कादि-मान्त पाँच वर्गों को छोड़कर शेष वर्ण 'दशारयुग्म' में अन्तर्भूत हैं।

ग. पञ्चवर्गात्मक वर्ण अनुस्वाररूप में 'बिन्दु' में अन्तर्भूत है।

पूर्णोदयमत के अनुसार कला, यन्त्र एवं मन्त्र में ऐक्य है। श्रीचक्र के तीन खण्ड हैं। इसी प्रकार मन्त्र (श्रीविद्या) के भी तीन खण्ड हैं; जो कि निम्नवत् हैं—

इन्दुखण्ड	भानुखण्ड	आग्नेय खण्ड
चन्द्रमा की १६ कलायें इन्दुखण्ड में अन्तर्भूत हैं। यह इन्दुखण्ड इन्द्वात्मक यन्त्रखण्ड में अन्तर्भूत है।	सूर्य की २४ कलायें भानु खण्ड में अन्तर्भूत हैं, वह खण्ड यन्त्रखण्ड में अन्तर्भूत है।	अग्नि की १० कलायें हैं। ये आग्नेय खण्ड में अन्तर्भूत हैं। यह आग्नेय खण्ड यन्त्रखण्ड में अन्तर्भूत है।

सुभगोदय की दृष्टि के अनुसार तिथियाँ, उनके नाम एवं कलायें— सुभगोदय में तिथियाँ, उनके नाम और कलाओं का विवेचन करते हुए इस प्रकार कहा गया है—

दर्शाद्या: पूर्णिमान्ताश्च कला: पञ्चदशैव तु।
षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।।

दर्शाद्या: अर्थात् 'दर्शा' से 'पूर्णिमा' तक की समस्त तिथियाँ। दर्शा = अमावस्यानन्तर भाविनी प्रतिपत्कला। चूँकि यह बहुत थोड़ी दिखती है; अत: इसका नाम है—दर्शा (ईषद्दर्शनात् दर्शा)।

तिथियों के नाम— दर्शा, दृष्टा, दर्शता, विश्वरूपा, सुदर्शना, आप्यायमाना, आप्यायमाना, आप्याया, सूनृता, इरा, आपूर्यमाणा, आपूर्यमाणा, पूरयन्ती, पूर्णा, पौर्णमासी (दर्शाद्या: पूर्णिमान्ताश्च तिथय:।)।

१. पन्द्रह (तिथिरूप) कलाओं के अधिदेवता यथाक्रम पन्द्रह 'नित्यायें' हैं।

२. सोलहवीं कला 'षोडशी' चिद्रूपात्मिका कला है और सादाख्य तत्त्वस्वरूपा है, उसका कोई अधिदेवान्तर नहीं है; क्योंकि षोडशी स्वयमेव सभी की अधिदेवता हैं। इन सभी नित्याओं का अभिमानिनी देवता एकमात्र 'कामदेव' है तथा अधिष्ठानदेवता भी एक ही है और वह है— कामेश्वरी।

३. मूलविद्यागत पन्द्रह वर्णों की दर्शा आदि कलायें नित्या कला आदि की विग्रहान्तरमात्र हैं।

दर्शादि कलाओं का खण्डत्रय-विभाजन

आग्नेय खण्ड	सौरखण्ड	चान्द्र खण्ड
दर्शा, दृष्टा, दर्शता, विश्वरूपा, सुदर्शना।	आप्यायमाना, आप्यायमाना, आप्याया, सुनृता, इरा।	आपूर्यमाणा, आपूर्यमाणा, पूरयन्ती, पूर्णा, पौर्णमासी।

इन कलाओं का नित्याओं से ऐक्य है।

दर्शा आदि कलाओं का स्वरूप

आग्नेय खण्ड : (पञ्चतत्त्वात्मक) कलायें—

१. दर्शा कला = शिवतत्त्वात्मिका

२. दृष्टा कला = शक्तितत्त्वात्मिका
३. दर्शता कला = मायातत्त्वात्मिका
४. विश्वरूपा कला = शुद्धविद्यातत्त्वात्मिका
५. सुदर्शना कला = जलतत्त्वात्मिका

यह आग्नेय खण्ड क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर— इन पाँच महाभूतों से सम्बद्ध है। जैसा कि लक्ष्मीधर ने कहा भी है— 'पञ्चतत्त्वात्मकं खण्डमाग्नेयम्।'

इस 'अग्निखण्ड' के अधिदेवता अग्निदेव हैं। कामदेव सर्वत्र अधिदेवता हैं और कामेश्वरी सर्वत्र अधिष्ठात्री हैं।

सौरखण्ड : कलायें—

१. आप्यायमाना कला = तेजस्तत्त्वात्मिका
२. आप्यायमाना कला = वायुतत्त्वात्मिका
३. आप्याया कला = मनस्तत्त्वात्मिका
४. सूनृता कला = पृथ्वीतत्त्वात्मिका
५. इरा कला = आकाशतत्त्वात्मिका
६. आपूर्यमाणाकला = विद्यातत्त्वात्मिका

सौरखण्ड का देवता— सूर्य।
सर्वत्र देवता— कामदेव।
सर्वत्र अधिष्ठात्री देवी— कामेश्वरी।

आपूर्यमाणा कला का 'चन्द्रखण्ड' में स्थित रहने पर भी 'सौरखण्ड' में ही अन्तर्भाव है। इरा एवं आपूर्यमाणा में ऐक्य है।

सौम्यखण्ड (चान्द्र खण्ड) : कलायें—

१. आपूर्यमाणा कला = महेश्वरतत्त्वात्मिका
२. पूरयन्ती कला = परतत्त्वात्मिका
३. पूर्णा कला = आत्मतत्त्वात्मिका
४. पौर्णमासी कला = सदाशिवतत्त्वात्मिका

सौम्य खण्ड का अधिदेवता— सोम।
सर्वत्र देवता— कामदेव।
सर्वत्र अधिष्ठात्री— कामेश्वरी।

नित्या कला सादाख्य तत्त्वात्मिका है। ये सभी कलायें विशुद्धि चक्र— षोडशार में प्रागादि क्रम से १६ दिशाओं में परिभ्रमण करती हैं।

आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमण्डल की १६ कलायें हैं। वे 'षोडशार' की १५ कलाओं में परिभ्रमण करती हैं। (लक्ष्मीधरा)

षोडशी कला का अवस्थान सहस्रदल कमल में है— 'षोडश्या: कलाया: सहस्र-दलकमल एवावस्थानं, तत्रावस्थिताया: नित्याया: कलाया: प्रभापटलं षोडशारे स्फुरन्ति।'[१]

इस प्रकार १५ नित्याओं के समुदायात्मक मन्त्र का १५ तिथियों में अनुष्ठान विहित है। पृथक् नित्यानुष्ठान प्रतिदिन पृथक्-पृथक् नियत है।

सादाख्या चन्द्रकला—

'इयं वाव सरघा' (तै० ब्रा० ३.१०.१०)
'तस्या अग्निरेव सारघं मधु' (तै० ब्रा०)
'ता मधुकृत:' (तै० ब्रा०)
'सरघा वत मधुस्यन्दिनी।'

श्रीचक्रात्मक चन्द्र भी 'सरघा' है— अमृतस्यन्द है।

बाह्यपूजा का खण्डन

'नैतमृषिं विदित्वा नगरं प्रविशेत्' अर्थात् श्रीचक्रात्मक नगर में प्रवेश नहीं करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि बाह्यपूजा नहीं करनी चाहिये—

'एनमृषिं मन्मथं विदित्वा नगरं श्रीचक्रात्मकं न प्रविशेत्, ऋषिज्ञानपूर्वकं श्रीचक्रा-त्मकं न पूजयेत्। बाह्यपूजां न कुर्यात् इति निषेधविधि:। बाह्यपूजायामेव ऋषिछन्दप्रभृति-ज्ञानपूर्वकत्वम्। आन्तरपूजायां तादात्म्यानुसन्धानात्मिकायां ऋष्यादिज्ञानं नास्त्येव। उपयोगस्तु दूरत एव।'[२]

---

१. लक्ष्मीधरा २. लक्ष्मीधरा

श्रीविद्या का स्वरूप (श्रीविद्या एवं गायत्री मन्त्र में एकता)

वाग्भव कूट (प्रथम कूट)

क

क = कामेश्वरशिव, ब्रह्म, कं ब्रह्म कामयते कामी जायते स एव निरञ्जनोऽकामत्वेनोज्जृम्भते कामोऽभिधीयते। कामः ककार व्याप्नोति।

गायत्रीमन्त्र की समतुल्यता

तत् = ब्रह्म। ॐ तत् सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः। तदिति ब्रह्म शाश्वतम्।

अकार + हकार= शिव + शक्ति। स्फुरण + प्रकाश बिन्दु = सिसृक्षायुक्त ब्रह्म शक्ति को देखकर बिन्दु रूप धारण करता है। जिसमें शक्ति रक्तबिन्दु के रूप में प्रवेश करती है।

ए

ए= कामेश्वरी त्रिकोणा शक्तिरेकाकारेण महाभगेन प्रसूते तस्मादेकार एव गृह्यते। यदेकादशमाधारं बीजं कोणत्रयात्मकम्। ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगदद्यापि दृश्यते। (वा० के० त०)

गायत्री मन्त्र की समतुल्यता

सवितुर्वरेण्यम्- सविता= प्राणिप्रसवकारण योनि। षूञ् प्राणिप्रसवे, सविता प्राणिनः सूते= जगज्जननी कामेश्वरी देवी।

हकाराद्व्योमसम्भूतं ककारात्तु प्रभञ्जनः। रेफादग्निः सकाराच्च जलतत्त्वस्य सम्भवः। लकारात्पृथिवी जाता तस्माद्विश्वमयी च सा।

ई

ई=आप्तवान् तस्माद्भर्गो देवस्य धीत्येवमीकारः (श्रुति)।

गायत्रीमन्त्र की समतुल्यता

भर्गो देवस्य धी। (सर्वन्तर्यामी सर्वपोषक) भर्गः= सर्वान्तर्यामी सर्वाधार शिव। धरो धीत्येवं धार्यते। (श्रुति)

ल

ल = पृथ्वी। ल= पृथ्वी बीज।

गायत्री मन्त्र= धीमहि= महीं = पृथ्वी, धियो यो नः प्रचोदयात्।

ह्रीं

ह्रीं = (माया)

गायत्री के चतुर्थ चरण के समतुल्य परोरजसे साव दोम = रज से परे = निर्मल, निर्गुण, त्रिगुणातीत।

कामराज कूट (द्वितीय कूट)

ह स क

(गायत्री मन्त्र तत्सवितुः वरेण्यम् की समतुल्यता) सकार= सविता। क = वरेण्य।

चारो प्रकारों के स्पर्श = ३ काम कलाओं एवं तृतीय ईकार से उत्पन्न है।

ह ल ह्रीं

(गायत्री के भर्गो देवस्य धी के समतुल्य) हकाराक्षरं शिवरूपम्।

श्रीविद्या के १५ वर्ण= पञ्चभूतों के ५, ४, ३, २, १ गुणों के प्रतिनिधि हैं।

शक्तिकूट (तृतीय कूट)

स क

१. तत्सवितुः वरेण्यम्।
२. भर्गो देवस्य धी के समतुल्य।

ल ह्रीं

ह, क, र, स, ल = वर्णों से श्रीविद्या पञ्चभूतों को जन्म देती है, अतः पञ्चभूतमयी है।

कूटत्रय

ब्रह्मा + भारती	हरि + क्षिति	शिव + अपर्णा
(वामा + इच्छा)	(ज्येष्ठा + ज्ञाना)	(रौद्री + क्रिया)

इनकी ३ समष्टियाँ— शान्ता एवं अम्बिका रूप में ३ ईकारों द्वारा जानी जाती हैं।

गायत्री एवं श्रीविद्या के प्रथम कूट का अर्थ— सर्वजगत् सिसृक्षारूपकामनावान् कामेश्वरः जग-त्कारणरूपा कामेश्वरी, शिवः सर्वान्तर्यामी सर्वाधारः पञ्चमहाभूताद्यात्मना परिणतः परवस्तुमात्रविषयकनिर्विकल्पकज्ञानजनको निरञ्जनो निर्गुणो वेदैर्लक्षणया गम्यः शक्त्या त्वगम्यो ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मा परतत्त्वमिति। (भास्करराय : वरिवस्यारहस्यम्)

विमर्शांश— इच्छा-ज्ञान-क्रिया = भारती, पृथ्वी, रुद्राणी।

प्रकाशांश— वामा, ज्येष्ठा, रौद्री। ३ शक्तियाँ : ब्रह्मा, विष्णु रुद्र = पुरुषरूप। उनकी समष्टि = शान्तात्मिका शक्ति (तुरीया)।

श्रीचक्र का विभाजन

शक्तिचक्र (त्रिकोण-अष्टकोण-दशारद्वय-चतुर्दशार)

शिवचक्र (बिन्द्वष्टदलकमल-षोडशदलकमल-चतुरस्रत्रय)

'चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि।'

'चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।'

श्रीयन्त्र का विभाजन

सृष्टिचक्र	स्थितिचक्र	संहारचक्र
(भूपुर-त्रिवृत्त-षोडशदल-अष्टदल का समूह)	(चतुर्दशार-बहिर्दशार-अन्तर्दशार का समूह)	(अष्टार-त्रिकोणबिन्दुओं का समवायात्मक समूह)

श्रीचक्र एवं सत्यलोकादि लोकों में ऐक्य

श्रीचक्र	लोक	श्रीचक्र	लोक
१. बिन्दुचक्र	सत्यलोक	५. बहिर्दशार	स्वर्लोक
२. त्रिकोण	तपःलोक	६. चतुर्दशार	भुवर्लोक
३. अष्टकोण	जनलोक	७. प्रथम वृत्त	भूलोक
४. अन्तर्दशार	महर्लोक		

श्रीचक्र एवं सुतल, वितल, पातालादि में ऐक्य

श्रीचक्र	लोक	श्रीचक्र	लोक
१. अष्टदल	अतल	५. भूपुर की प्रथम रेखा	महातल
२. अष्टदल का बहिर्वृत्त	वितल	६. भूपुर की द्वितीय रेखा	रसातल
३. षोडशदल कमल	सुतल	७. भूपुर की तृतीय रेखा	पाताल
४. वृत्तत्रय	तलातल		

पिण्ड एवं श्रीचक्र में ऐक्य

शरीरांग	श्रीचक्र	शरीरांग	श्रीचक्र
१. ब्रह्मरन्ध्र	बिन्दु	८. नाभि	अष्टदल
२. मस्तक	त्रिकोण	९. कटि	अष्टदल-बहिर्वृत्त
३. ललाट	अष्टकोण	१०. स्वाधिष्ठान	षोडशदल
४. भ्रूमध्य	अन्तर्दशार	११. मूलाधार	बहिस्त्रिवृत्त
५. कण्ठ	बहिर्दशार	१२. जानु	भूपुर की प्रथम रेखा
६. हृदय	अन्तर्दशार	१३. जंघा	भूपुर की द्वितीय रेखा
७. कुक्षि	वृत्त	१४. पैर	भूपुर की तृतीय रेखा

श्रीविद्या मन्त्र एवं श्रीचक्र में ऐक्य

मन्त्र	यन्त्र	मन्त्र	यन्त्र
लकार	भूपुर	ककार	अष्टार
सकार	षोडशदल	अर्धचन्द्र	त्रिकोण
हकार	अष्टमूर्त्यात्मक अष्टदल	नादरूप अर्धमात्रा	त्रिकोणयोनि
एकार	चतुर्दशार	बिन्दु	बिन्दुचक्र
(भुवनेश्वरी)			
एकार	दशावतारात्मक	मन्त्रगत 'लं'	कामेश्वरस्वरूपात्मक
बहिर्दशार		पृथ्वीतल	
ह्रल्लेखागत	अन्तर्दशायें	मन्त्रगत सकार	चन्द्र-नक्षत्र-ग्रह-राशि
रकार			आदि का उद्भव

सहस्रदल कमल सहस्रदल कर्णिकायुक्त है। इस कमल के १००० दल हैं।

बैन्दव स्थान कर्णिका के मध्य चतुर्द्वारोपेत है— 'एवं प्रासादन्यायेन श्रीचक्रस्य कमलानां चैक्यमनुसन्धेयम्।'

नाद-बिन्दु का ऐक्य

पिण्डस्थ चक्र एवं श्रीचक्र में ऐक्य

नाद— 'नादोनाम श्रीचक्रम्।' **बिन्दु**— बिन्दुर्नाम षट्कमलम्। (सौभाग्यभास्कर)

पिण्डस्थ चक्र	दल	कर्णिका के कोण		श्रीचक्र
आधार चक्र	४	त्रिकोणात्मिका		त्रिकोण
स्वाधिष्ठान चक्र	६	अष्टकोणात्मिका		अष्टकोण
मणिपूर चक्र	१०	दशकोणात्मिका	शक्तिचक्र	दशार (प्रथम)
अनाहत चक्र	१२	द्वितीय दशकोणात्मिका।	ऐक्य	दशार (द्वितीय)
विशुद्धि चक्र	१६	चतुर्दश कोणात्मिका		चतुर्दशार
आज्ञा चक्र	०२	अष्टकोण+षोडशकोण= द्विधा कर्णिका।		शिवचक्रचतुष्टय

'तत्त्वमसि' महावाक्य में 'तत्' शब्द का अर्थ निर्गुण ब्रह्म अर्थात् महाकामेश्वर है और 'त्वं' शब्द संविद्रूप, साक्षी, कूटस्थ महाकामेश्वरी है तथा दोनों का अभेदात्मक सामरस्य ही 'तत्त्वमसि' का रहस्यार्थ है। यह ज्ञाता-ज्ञेय, अहन्ता-इदन्ता, प्रकाश-विमर्श में अभेद का भी बोधक है। आकाश के बीज 'हं' एवं भुवनेश्वरीबीज ईकार से १४ भुवनों की उत्पत्ति हुई है। 'एकार' विष्णु के दशावतार एवं वैष्णवी शक्ति से एकाकार है। 'रं' बीज परम ज्योतिर्मयी परा शक्ति का वाचक है। 'ककार' सर्वेच्छाप्रदायिनी कामदा शक्ति का द्योतक है। 'अर्धचन्द्र' विश्वयोनि एवं 'बिन्दु' महाकामेश्वरी का द्योतक है। 'बिन्दु' सर्वानन्दमय चक्र या ब्रह्म है। वहाँ महाकामेश्वर एवं महाकामेश्वरी का निवास है।

पिण्ड में जो मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धाख्य, आज्ञा आदि चक्र हैं; वे सभी श्रीचक्र में अन्तर्भूत हैं। परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी वाक् भी श्रीचक्र एवं श्रीविद्या में अन्तर्भूत हैं।

भूपुर, वृत्त एवं त्रिकोण गुणत्रय, कालत्रय, अवस्थात्रय एवं लोकत्रय के बोधक माने जाते हैं। बिन्दु तुरीय एवं तुरीयातीत के बोधक हैं। चूँकि पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड में भी एकता है; अत: 'श्रीचक्र' का ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड दोनों से ऐक्य है। प्रणवस्वरूप 'शब्दब्रह्म' भी श्रीचक्र का ही प्रतीक है। इस दृष्टि से प्रणव के अ, उ एवं म मन्त्राक्षर अवस्था, वाक् के ४-४ रूपों एवं श्रीचक्र के सृष्टि, स्थिति, संहार एवं अनाख्या— ४ रूपों से एकाकार है और सभी का श्रीचक्र के इन्हीं चार स्वरूपों में अन्तर्भाव है।

श्रीचक्र एवं त्रिपुरा के त्रिपुरात्व में अन्त:सम्बन्ध— बिन्दु से आरम्भ करके अष्टदल = सृष्टिचक्र तक, 'चतुर्दशार' से आरम्भ करके 'अन्तर्दशार' तक और अष्टार से आरम्भ करके बिन्दुपर्यन्त संहारचक्र है। चक्र के ३ भाग हैं और त्रिपुरा भी त्रयात्मिका हैं।

श्रीचक्र का अर्चन क्रम— श्रीचक्र के अर्चनक्रम में दो सम्प्रदायों की पृथक्-पृथक् दृष्टियाँ हैं— दक्षिणामूर्ति और हयग्रीव। हयग्रीव-आनन्दभैरव सम्प्रदाय में स्थिति-क्रम में बिन्दु-त्रिकोण-कामेश्वरी आदि नित्या, गुरुपंक्ति का पूजन एवं फिर भूपुर से आरम्भ करके क्रमश: अष्टार-त्रिकोण आदि का पूजन होता है। अन्य पूजन दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय के अनुसार ही है।

अर्चनक्रम

दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय के अनुसार	'हयग्रीव' आनन्दभैरव सम्प्रदाय के अनुसार
१. बिन्दु से आरम्भ करके भूपुरपर्यन्त अर्चनाक्रम— सृष्टिक्रम में।	
२. भूपुर से आरम्भ करके अष्टारपर्यन्त, पुन: बिन्दु से चतुर्दशार तक— स्थितिक्रम में।	
३. भूपुर से आरम्भ करके बिन्दुपर्यन्त अर्चन— संहारक्रम में।	

पिण्डस्थ चक्र एवं श्रीचक्र में ऐकात्म्य

चन्द्रबिम्ब श्रीचक्र है— 'चन्द्रबिम्बं श्रीचक्रम्' (लक्ष्मीधरा)। कला ही 'सादाख्या' है। नादबिन्दु कलात्मक और श्रीचक्र त्रिखण्डात्मक है। सादाख्या कला श्रीविद्या का अपर पर्याय है तथा नादबिन्दु कलातीत है।

भावनोपनिषद् में कहा गया है कि 'नवचक्ररूपं श्रीचक्रम्'। श्रीचक्र को 'शिवयोर्वपु:' (शिव एवं शक्ति का शरीर) भी कहा गया है; क्योंकि शिवचक्र एवं शक्तिचक्र के संयोग से ही श्रीचक्र का निर्माण हुआ है। पिण्डस्थ चक्र एवं श्रीचक्र में सामरस्य है—

पिण्डस्थ चक्र	चक्र का स्तर	श्रीचक्र के अंगभूत चक्र
१. मूलाधारचक्र	अन्धतामिश्र : अन्धतामिश्र लोक।	त्रिकोण
२. स्वाधिष्ठानचक्र	सूर्य की किरणों के सम्पर्क में आने के कारण : मिश्रलोक।	अष्टकोण
३. मणिपूरकचक्र	अग्नि स्थान में रहने पर भी वहाँ जल के स्थित रहने से सूर्यकिरणों के प्रतिबिम्ब के कारण : मिश्रकलोक।	दशार (प्रथम दशार)
४. अनाहतचक्र	ज्योतिर्लोक।	द्वितीय दशार
५. अनाहतचक्रपर्यन्त	ज्योतिस्तमोमिश्रक लोक है— 'ज्योतिस्तमो लोकः'।	
६. विशुद्धिचक्र	चान्द्र लोक।	चतुर्दशार
७. आज्ञाचक्र	चन्द्रस्थान में रहने के कारण यह सुधालोक है। चूँकि यहाँ दोनों ही लोकों से सूर्य की किरणों का सम्पर्क है; अतः यहाँ चाँदनी नहीं है। यह है— सुधालोक।	शिवचक्रचतुष्टय (आज्ञाचक्र में १६हवीं कला का प्रतिफलन १५कलायें हैं।)
८. सहस्रदल कमल	यह ज्योत्स्नामय लोक है। यहाँ स्थित चन्द्रमा नित्य कलाओं से युक्त चन्द्रमा है।	बिन्दुस्थान चतुरस्र

आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमण्डल में सोलह कलायें हैं। (सुभगोदय)

१५ कलाओं का षोडशार में परिभ्रमण होता रहता है। सोलहवीं कला का अवस्थान सहस्रदल कमल में है। वहाँ स्थित नित्याओं (कलाओं) का प्रभामण्डल षोड़शार में स्फुरित होता रहता है (लक्ष्मीधरा) = ज्योत्स्नामय लोक।

श्रीचक्ररूप चन्द्रबिम्ब में केवल एक ही कला है और वह है— 'परमा कला'। सभी मिलकर १६ कलायें हो जाती हैं। लक्ष्मीधरा में कहा भी गया है—

षोडशेन्दोः कला भानोः द्विर्द्वादश दशानले।
सा पञ्चाशत्कला ज्ञेया मातृका चक्ररूपिणी।।

१५ कलायें ५० वर्णों से युक्त हैं। ये पञ्चदशाक्षरी मन्त्र में अन्तर्भूत हैं—

'एताः पञ्चाशत्कलाः पञ्चाशद्वर्णात्मकाः पञ्चदशाक्षरीमन्त्रेऽन्तर्भूताः।'

यथा श्रीविद्या के आदि वर्ण 'क' तथा अन्तिम वर्ण 'ल' प्रत्याहृत होकर उनके मध्यवर्ती सभी वर्णों के ग्राहक बन जाते हैं। यह लकार, एकार पूर्ववर्ती अकार से प्रत्याहृत होकर ५० वर्णों का ग्राहक बन चारो अनुस्वार बिन्दु के लक्षक हैं। ऊपर स्थित बिन्दु नाद का लक्षक है। (लक्ष्मीधरा)

द्वितीय परिच्छेद

(अध्याय : ६-१५)

देवता-तत्त्व

राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी

पञ्चमुखी महादेव

॥ श्रीः ॥

द्वितीय परिच्छेद

देवता-तत्त्व

स्फुटशिवशक्तिसमागमबीजाङ्कुररूपिणी परा शक्तिः।
अणुतररूपानुत्तरविमर्शलिपिलक्ष्यविग्रहा भाति।।

सा जयति शक्तिराद्या निजसुखमयनित्यनिरूपमाकारा।
भाविचराचरबीजं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्शः।।

(कामकलाविलास)

बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यः सुरद्रुमाः।
तत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्डपम्।।

तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे।।

सुधासिन्धुमध्ये मणिद्वीपरम्ये सुकल्पद्रुमाकल्पकादम्बसंस्थे।
स्फुरत्स्वर्णसिंहासने रत्नपीठे भवाङ्के निषण्णां भजाम्यन्नपूर्णाम्।।

त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या जाता महेश्वरी।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका।
कवलीकृत-निश्शेष-तत्त्वग्रामस्वरूपिणी।। (वामकेश्वरतन्त्र)

तन्मयीं परमानन्दनन्दितां स्पन्दरूपिणीम्।
निसर्गसुन्दरीं देवीं ज्ञात्वा स्वैरमुपासते।।

(योगिनीहृदयम्)

सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी। त्वञ्चाहञ्च सर्वं विश्वं सर्वदेवता। इतरत्सर्वं महात्रिपुरसुन्दरी। सत्यमेकं ललिताऽऽख्यं वस्तु तदद्वितीयमखण्डार्थं परं ब्रह्म।

सैवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा। अत एषा ब्रह्मसंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्याऽद्वितीया ब्रह्मसंवित्तिः सच्चिदानन्दलहरी बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति।

यदस्ति सन्मात्रम्। यद्भाति चिन्मात्रम्। यत्प्रियमानन्दम्। तदेतत् सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी।

सैव पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तरवभासयन्ती देशकालवस्त्वन्तरासङ्गात् महात्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक् चितिः।

(बह्वृचोपनिषद्)

नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्तिः।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति।।

(वरिवस्यारहस्यम्)

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता।
सा सा सर्वेश्वरी देवी स सर्वोऽपि महेश्वरः।। (चतुश्शती)

षष्ठ अध्याय

श्रीविद्या में देवता तत्त्व

भगवत्योपासना में स्तोत्रादि का जो पाठ किया जाता है, उसके कई अंग हैं; यथा—

१. ऋषि	३. देवता	५. कीलक
२. छन्द	४. शक्ति	६. विनियोग

इन सभी में प्रमुख अंग या तत्त्व 'देवता' है।

श्रीविद्यामत में 'भगवती महात्रिपुरसुन्दरी' ही 'देवता' हैं। ललितासहस्रनाम के अनुसार उनका स्वरूप इस प्रकार है—

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुर-
त्तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीतवक्षोरुहाम्।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थरक्तचरणां ध्यायेत्परामम्बिकाम्।।

ललितासहस्रनामस्तोत्र के पाठ में छन्दादि अंगों का देवता के साथ इस प्रकार सन्निवेश है—

१. अस्य श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रमालामन्त्रस्य वशिन्यादिवाग्देवता ऋषयः।
२. अनुष्टुप् छन्दः।
३. श्रीललिता परमेश्वरी देवता।
४. श्रीमद्वाग्भवकूटेति बीजम्।
५. मध्यकूटेति शक्तिः।
६. शक्तिकूटेति कीलकम्।
७. श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीप्रसादसिद्धिद्वारा चिन्तितफलावाप्त्यर्थे जपे विनियोगः।

योगिनीहृदय के टीकाकार अमृतानन्द अपनी टीका 'दीपिका' में कहते हैं कि भगवती के चक्रसङ्केत, मन्त्रसङ्केत एवं पूजासङ्केत की मीमांसा करने वाले योगिनीहृदय का अनुबन्धचतुष्टय इस प्रकार है—

अनुबन्धचतुष्टय

अधिकारी	विषय	प्रयोजन	सम्बन्ध
मुमुक्षुरधिकारी	स्वसंविद् देवताविषयः	मोक्षः प्रयोजनम्	प्रतिपाद्य-प्रतिपादक-भावः सम्बन्धः

सेतुबन्ध (योगिनीहृदय की टीका : श्लोक— १,४१-४३) में भास्कर राय कहते हैं कि—

देवता

इच्छा, ज्ञान,	वामा, ज्येष्ठा,	परा, पश्यन्ती,	'चतस्रो देवता'
क्रिया, शान्ता	रौद्री, अम्बिका	मध्यमा, वैखरी	(भास्कर राय)

कामकलाविलास में शक्ति (देवता) को 'विमर्श' आख्या दी गई है और उन्हें 'दर्पण' कहा गया है।

विमर्शदर्पण (देवता)

परशिवरविकरनिकरे प्रतिफलति विमर्शदर्पणे विशदे।
प्रतिरुचिरुचिरे कुड्ये चित्तमये निविशते महाबिन्दुः।।

अर्थात् 'विमर्श' एक दर्पण है, जिसमें परमशिव अपनी अभिज्ञा हेतु अपना मुख देखता है। प्रकाशैकस्वभाव 'परशिवभट्टारकरूप' सूर्य की रश्मियों के पुञ्ज का विमर्श-रूपी स्वच्छ मुकुर में प्रतिफलन होने से प्रतिप्रकाश द्वारा सुरम्य चित्तरूपी दीवार पर 'महाबिन्दु' प्रकाशित होता है।

देवता श्रीविद्यास्वरूपा है। कामकलाविलास (११) में कहा गया है कि जिस प्रकार प्रकाश-विमर्शात्मक बिन्दुद्वय में कोई भेद नहीं है, उसी प्रकार 'विद्या' एवं 'देवता' में भी कोई भेद नहीं है—

बिन्दुद्वितयं यद्वदभेदविहीनं परस्परं तद्वत्।
विद्यादैवतयोरपि न भेदलेशोऽस्ति वेद्यवेदकयोः।।

भगवती श्रीचक्र में संवित्ति रूप से निवास करती है—

चक्रे संवित्तिरूपा च महात्रिपुरसुन्दरी। (यो. ह.-३.१६६)

(अ) देवता तत्त्व

'देवृ देवने', 'दिवि प्रीणने', 'दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्न-कान्तिगतिषु' और 'दिवु परिकूजने' धातुओं से पचाद्यच् प्रत्यय लगकर 'देव' शब्द व्युत्पन्न होता है। देव शब्द से स्वार्थे तल् (५.४.२७) और स्वार्थे प्रज्ञाद्यण् (५.४.३८) का संयोग होने पर 'देवता' शब्द निष्पन्न होता है। देवता शब्द में देवता शब्दघटक सभी धातुओं के अर्थों का सन्निवेश हुआ है। प्रसन्न करना, प्रकाश करना, खेलना, विजयेच्छा— ये सभी धात्वर्थ देवता के द्योतक हैं।

शुक्ल यजुर्वेद 'वाजसनेय माध्यन्दिन संहिता' के मन्त्रों में 'अग्निर्देवता, वातो देवता' मन्त्र द्वारा अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा आदि 'देवता' शब्द से सम्बोधित किये गये हैं।

देवताओं के तीन स्वरूप— देवता के तीन रूप हैं— आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक। उदाहरणार्थ अग्नि देवता को लें—

क. आधिभौतिक अग्नि देवता— भौतिक अग्नि।

ख. आध्यात्मिक अग्नि देवता— बुद्धि, उदान, चक्षु, पाद आदि।

बुद्धिरुदानयोगेन चक्षुर्द्वारा रूपगुणः पादाधिष्ठितोऽग्नौ तिष्ठदग्निस्तिष्ठति।
(त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद्)

ग. आधिदैविक अग्निदेवता— आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक अग्नि की अद्भुत शक्ति पर नियन्त्रण रखने के लिए भगवान् ने आधिदैविक अग्नि देवता को नियुक्त किया है; किन्तु ये सभी भगवान् के भय से नियन्त्रित एवं शक्तिमान हैं। कठोपनिषद् (२.३.३) मे कहा भी गया है—

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः।।

देवताओं के वर्ण

क्षत्रिय वर्ण के देवता (शासक देवता)— इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि।

ब्राह्मण वर्ण के देवता— अग्नि।

वैश्य वर्ण के देवता— धन के देवता— अष्टवसु।

शूद्र वर्ण के देवता— पूषा।

चन्द्रमा = ब्राह्मण वर्ण का देवता : 'सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा' (वेद का मन्त्रभाग)। देवजातियाँ दश हैं— विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध और भूत।

परम देवता केवल एक है— 'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः, स सुपर्णो गरुत्मान्, एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।'

परमात्मा सर्वदेवमय है।

समस्त विश्व आधिदैविक, आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक रूप में विभक्त है। आधिदैविक जगत् में देवता का आधिपत्य है। देवताओं के शरीर होते हैं। मीमांसा दर्शन की एक साम्प्रदायिक दृष्टि यह भी है कि देवताओं का विग्रह नहीं होता, बल्कि वे 'शब्दमय' होते हैं। शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के 'देवताधिकरण' में पर्याप्त प्रकाश डाला है। शंकराचार्य का कथन है कि देवताओं का विग्रह होता है, अन्यथा उन्हें ब्रह्मविद्या प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त नहीं हो पाता; जबकि इन्द्र सौ वर्षों तक प्रजापति के पास ब्रह्मविद्या के प्राप्त्यर्थ ब्रह्मचर्यपूर्वक रहे एवं वरुण के पुत्र भृगु ने वरुण से ब्रह्मज्ञान-प्राप्त्यर्थ निवेदन किया था। (छा०- ८.११.३, तै०- ३.१)

देवता शब्द का अर्थ है— 'जायमानो वै जायते, सर्वाभ्य एताभ्य एव देवताभ्यः' (ऐतरेय)। देवता विश्व का उपादान कारण है।

निरुक्तकार यास्क कहते हैं कि 'दानाद् देवः', 'यो देवः सा देवता।' इस प्रकार स्पष्ट है कि देवता ब्रह्माण्ड एवं ब्रह्माण्डान्तर्गत वस्तुओं की सृष्टि हेतु अपने-अपने अंशों का दान करते हैं; इसीलिए वे 'देव' या देवता' कहलाते हैं।

देवताओं का दान अतुल्य है; जैसे कि वायु का दान—
आक्सीजन, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान आदि दश वायु का दान।

अग्नि का दान— ताप, बड़वानल, महानसाग्नि, जठराग्नि आदि।

यदि ताप नहीं होता तो ब्रह्माण्ड सिकुड़कर नष्ट हो जाता। शीत → सिकुड़न (Contraction) ताप → (Expansion)। अग्नि का अभाव → ब्रह्माण्ड का सिकुड़न → विनाश आदि आदि।

'प्राण वाव देवता:।' देवता सृष्टि के प्राण हैं। देवतारूप प्राण सात हैं— ऋषि प्राण, पितरप्राण, देवप्राण, असुरप्राण, गन्धर्वप्राण, मानवप्राण और पशुप्राण। इनमें से स्वयम्भू-मण्डल का प्राण 'ऋषिप्राण', परमेष्ठिमण्डल का प्राण 'पितरप्राण', सौरप्राण 'देवप्राण', चन्द्रमाप्राण 'गन्धर्वप्राण' और पृथ्वी का प्राण 'असुरप्राण' है। आगम की भाषा में जो शक्ति है, वही वेदों की भाषा में 'प्राण' या 'देवता तत्त्व' है। पदार्थ प्राणों का ग्राम है। पदार्थ यदि 'शक्तिग्राम' है तो 'प्राणग्राम' भी है।

साधक देवस्वरूप बनने की दृष्टि से ही देवोपासना करता है—
'इन्द्र ! ओजिष्ठ। ओजिष्ठस्त्वं देवेषु असि, ओजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम्' (यजु: ८.३९) अर्थात् हे इन्द्र ! तुम जिस प्रकार देवों में अति तेजस्वी हो, उसी प्रकार मैं भी मर्त्यों में ओजस्वी हो जाऊँ।— यही देवोपासना का चरम लक्ष्य है।

देवों की व्यापकता— सूतसंहिता (४.७.२४-२८) के अनुसार—

१. समस्त प्राणियों का शरीर देवतामय ही है।

२. सम्यग् ज्ञानवानों के शरीर में सभी देवता प्रत्यगात्म रूप से स्फुरित होते हैं।

३. सन्मार्ग में स्थित कर्मनिष्ठ वैदिकों के विशुद्ध शरीर में देवता देवतारूप में स्फुरित होते हैं।

४. वेदों में अनधिकृत तान्त्रिकों के मलिन मन्दसत्त्वात्मक शरीर में देवता मन्द स्फुरण के साथ स्फुरित होते हैं।

५. प्राकृतों के जीवन में देवता तिरोभूत रहते हैं—

सम्यग्ज्ञानवतां देहे देवता सकला अमू:।
प्रत्यगात्मतया भान्ति देवतारूपतोऽपि च।।

वेदमार्गैकनिष्ठानां विशुद्धानां तु विग्रहे।
देवतारूपतो भान्ति द्विजा न प्रत्यगात्मना।।

तान्त्रिकाणां शरीरे तु देवता: सकला अमू:।
वर्तन्ते न प्रकाशन्ते द्विजेन्द्रा: शुद्ध्यभावत:।।

यथाजातजनानां तु शरीरे सर्वदेवता:।
तिरोभूततया नित्यं वर्तन्ते मुनिसत्तमा:।।

अतश्च भोगमोक्षार्थी शरीरं देवतामयम्।
स्वकीयं परकीयं च पूजयेत्तु विशेषतः।।
(सूतसंहिता-४.७.२४-२८)

सभी का शरीर देवतामय है— 'शरीरं देवतामयम्।'

१. सम्यक् ज्ञानियों के शरीर में देवता प्रत्यगात्मतया स्फुरित होता है।
२. वेदमार्गैकनिष्ठ विशुद्ध शरीर में देवता देवतारूपतया स्फुरित होता है।
३. शुद्धिभावरहित तान्त्रिकों के शरीर में देवता का मन्द स्फुरण होता है।
४. प्राकृतजनों के शरीर में देवता तिरोहित रहता है।

देवता का मूल स्वरूप— 'देवता' मन्त्रशक्ति का स्थूल स्वरूप है, जो प्रलयकाल में समग्र जगत् को अपने में लीन करके स्वात्मानन्द सुख में आनन्दित रहता है या प्रकाशित होता है और वही परमशिव देवता है—'यः सर्वोपरमे काले सर्वान् आत्मनि उपसंहृत्य स्वात्मानन्दसुखे मोदते प्रकाशते वा स देवः।'

देवता की परिभाषा

'महर्षि यास्क' के अनुसार देवता शब्द का निर्वचन—

१. 'देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा' अर्थात् दान, दीपन या द्योतन करने के कारण देवता कहा जाता है।

२. 'द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता।' (निरुक्त-७.४.१५) अर्थात् 'द्युलोक' में निवास करने के कारण उसे 'देवता' कहा जाता है।

'दिव्यतीति देवः' अर्थात् जो प्रकाशित होता है वह देवता है।

'प्रकाशलक्षणा देवाः।' (महाभारत, आश्वमेधिक पर्व-४३.२१)
'एको देव इति प्राण इति स ब्रह्म।' (बृहदारण्यक-३.९.९)
'आत्मा देवः' (गौडपादीय मा० कारिका-१२)

देवता तो एक ही है— प्राण, आत्मा या ब्रह्म। इसी एक देवता को कोई 'अग्नि', कोई 'प्रजापति', कोई 'इन्द्र' एवं कोई 'ब्रह्म' कहता है। मनुस्मृति (१२.१२२-१२३) में कहा भी गया है—

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्।।

एक ही देवता अग्नि, जल, ओषधि, वनस्पति एवं समस्त विश्व में व्याप्त तथा अनुप्रविष्ट है। श्वेताश्वतरोपनिषद् (२.१७) कहता है—

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः।।

महर्षि यास्क ने निरुक्त के दैवतकाण्ड में देवों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत करके प्रस्तुत किया है। इस प्रकार केवल तीन देवों को ही यथार्थ देवता माना गया है, जो कि अग्नि, वायु और इन्द्र हैं—

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। (निरुक्त-७.२.५)
अग्निर्वै सर्वेषां देवानामात्मा। (शतपथब्रा०-१४.३.२५)
अग्निर्वै सर्वा देवताः। (ऐतरेय ब्रा०-१.१.२.३)

किन्तु मूल में तो एक ही सत्ता है—

महाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते। (निरुक्त-७.१)

दा, दीप, और द्युत् धातु से निष्पन्न 'देवता' शब्द दान, दीपन एवं द्योतन के समस्त ऐश्वर्यों से मण्डित है। जो कुछ परमात्मा में है, वह सब कुछ हममें भी है; केवल मात्रामात्र का भेद है—

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।
योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहम्।
पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

जायमानो वै जायते सर्वाभ्य एताभ्य एव देवताभ्यः।

यदि साधक देवतामय बन जाता है तो सर्वमय एवं भगवन्मय बन जायेगा।

देवताओं के भेद— देवताओं की संख्या तैंतीस कोटि कही गयी है। 'कोटि' शब्द अनन्त अर्थ का वाचक है। मैत्रायणी संहिता, काण्वसंहिता एवं निरुक्त में देवों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार है— 'अग्निः पृथ्वीस्थानः', 'वायुर्वा इन्द्रो वा मध्यमस्थानः' एवं 'सूर्यो द्युस्थानः'।

अग्नि 'पार्थिव' देवता है और इस अग्नि के अंशरूप सभी अग्नियाँ भी पार्थिव देवता हैं। वायु एवं सूर्य के अंशरूप जितने देवता हैं, वे सभी 'अन्तरिक्ष' देवता हैं। देवयोनियाँ सात हैं; इस सन्दर्भ में अमरकोष का निम्न वचन द्रष्टव्य है—

विद्याधराप्सरो यक्ष रक्षोगन्धर्वकिन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः।।

देवताओं के प्रकार

आजानदेवता मर्त्यदेवता अधिष्ठातृदेवता

आजानदेवता— ये महासर्ग से महाप्रलयपर्यन्त एक कल्प तक रहने वाले देवता होते हैं। इनके दो वर्ग हैं—

क. ईश्वर कोटि के देवता शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य और विष्णु; ये पाँचों देवता

एवं ईश्वर दोनों हैं और ये पाँचों ही ईश्वरकोटिक हैं।

ख. साधारण देवता : इन्द्र, वरुण, मरुत्, रुद्र, आदित्य, वसु आदि हैं।

मर्त्य देवता— जो मानव यज्ञादि सुकृत करके स्वर्ग में पहुँचते हैं और पुण्य क्षीण होने पर लौट आते हैं, वे मर्त्यलोक के देवता कहलाते हैं; कहा भी गया है—

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालम्।
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।।

अधिष्ठातृदेवता— सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई स्वामी होता है और वही होता है— अधिष्ठाता देवता। नक्षत्र, तिथि, वार, मास, वर्ष, युग, चन्द्र, सूर्य, वार, मास, समुद्र, पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश, शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि के अधिष्ठातृ देवता 'आजानदेवता' भी बनते हैं।

परम देवता तो केवल एक है और वही अनेक रूप धारण कर लेता है—

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते। (बृहदारण्यक-२-५.१९)

देवोपासना का फल भी सुनिश्चित है; यथा— सुन्दर लोकों की प्राप्ति और इह लोक में धन-धान्य की प्राप्ति । विष्णुधर्मोत्तरपुराण में कहा भी गया है—

नित्यं नराणां सुरपूजकानां लोका मनोज्ञाः सुलभा भवन्ति।
लोके तथाऽस्मिन् धनधान्ययुक्ताः समृद्धिभाजश्च नरा भवन्ति।।

एक ही देवता सर्वरूप हो गया है— 'सोऽकामयत, बहुस्यां प्रजायेयेति' (तै.उ.- २.६)

एकदेववाद

शाकल्य ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया कि 'देवता कितने हैं?' तब याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि 'तीन हजार तीन सौ छः देवता हैं।' शाकल्य द्वारा पुनः प्रश्न करने पर याज्ञवल्क्य ने कहा कि 'तैंतीस देवता हैं'— अड़तीस वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, इन्द्र एवं प्रजापति। पुनः याज्ञवल्क्य ने कहा कि 'छः देवता हैं, तीन देवता हैं, दो देवता हैं, डेढ़ देवता हैं, एक देवता हैं' (बृहदारण्यक उपनिषद्-३.९.१)।

निष्कर्ष— बहुदेववादी हिन्दू धर्म एकदेववादी (एकेश्वरवादी) है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।
(श्वेताश्वतरोपनिषद्-६.११)

त्वमानन्दमयस्त्वं ब्रह्ममयं त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।
(गणपति उपनिषद्)

'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति, सर्वं खल्विदं ब्रह्म।'

वस्तु-विभाग एवं देव-विभाग— ऋषियों ने संसार के समस्त पदार्थों (वस्तुओं)

को तीन भाग में वर्गीकृत किया, जो निम्नानुसार है—

आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक। देवों के भी ये तीन रूप हैं। नेत्रेन्द्रिय का विषय अधिभूत है। नेत्रेन्द्रिय अध्यात्म है। सूर्य अधिदेव हैं। सूर्यादि ग्रहों के अग्नि, जल, कार्तिकेय, विष्णु, इन्द्र, शची एवं ब्रह्मा अधिदेवता हैं। यज्ञभाग लेने वाले देवता भी देवता हैं। मन्त्रों के भी देवता हैं। पञ्चभूतों के भी देवता हैं; जैसे कि आकाश के विष्णु, वायु के सूर्य, अग्नि की देवी दुर्गा, जल के गणेश, पृथ्वी के शंकर। ये देवता परमेश्वर के नित्य स्वरूप हैं।

छन्द— जिस प्रणाली के द्वारा जिस छन्द से जिस भाव का कम्पन उत्पन्न करके उद्देश्य सिद्ध होता है, वह उस निर्दिष्ट साधन-प्रणाली का 'छन्द' होता है।

देवता— 'दिव्' धातु से द्योतन एवं क्रीडा अर्थ व्यक्त होता है। इसी धातु से 'देवता' शब्द व्युत्पन्न हुआ है।

प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों में विभिन्न स्तरों पर चैतन्य परमात्मा किस प्रकार प्रकाशित और लीलारत है— यह देवतातत्त्व के अन्तर्गत है। भगवत् चैतन्य के विभिन्न प्रतिविम्ब या विभूति, विभिन्न भाव के लीलाभाव का नाम 'देवता' है।

विनियोग— कौन साधना किस भाव से अनुष्ठित हुई एवं उससे क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ? यही विनियोगतत्त्व का विषय है।

जो व्यक्ति ऋषि, छन्द, देवता, योग आदि को विना जाने हुये अध्यापन या जप करता है, वह पापी हो जाता है—

अविदित्वा ऋषिं छन्दो देवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेद् जपेद्वापि पापीयान् जायते तु सः।।

(बृहद्देवता-८.१३६)

मान लीजिये कि हम देवता के स्वरूप को नहीं जानते तो उसके स्वधर्म, स्वलक्षण, शक्ति एवं स्वभाव के रूप में उसके दान, दीपन, विजय, क्रीडा, द्योतन आदि स्वरूप को कैसे जान पायेंगे? उसके विविध स्वरूप हैं—

'यतो दीप्यति क्रीडति सर्गादिभिः, विजिगीषतेऽसुरादीन्, व्यवहरति सर्वभूतेषु, आत्मतया द्योतते, स्तूयते स्तुत्यैः, सर्वत्र गच्छति तस्माद्देवः; 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः' (श्वेताश्वतर-६.११) इति मन्त्रवर्णात्।' (विष्णुसहस्रनाम : ५४वाँ श्लोक : शाङ्करभाष्य)

विष्णुपुराण की दृष्टि से देवता का स्वरूप— इस दृष्टि से देवता समस्त मनु, सप्तर्षि, मनुपुत्र एवं इन्द्र भगवान् विष्णु की विभूति है—

सर्वे च देवा मनवः समस्ताः सप्तर्षयो ये मनुसूनवश्च।
इन्द्रश्च योऽयं त्रिदशेशभूतो विष्णोरशेषास्तु विभूतयस्ताः।।

(विष्णुपुराण-३.१.४६)

देवताओं के गण— इनके नौ गण हैं— आदित्य, तुषित, विश्वेदेव, साध्य, आभास्वर, मरुत्, महाराजिक, रुद्र और वसु। (शब्दरत्नावली)

देवताओं के मुख्य स्थान— इनके मुख्य स्थान तीन हैं— द्युस्थानीय, अन्तरिक्ष-स्थानीय और पृथ्वीस्थानीय।

देवता की उत्पत्ति— देवता की उत्पत्ति 'बीजतत्त्व' से होती है—

देवताया: शरीरं तु बीजादुत्पद्यते ध्रुवम्। (यामल; शा.त.-९.९६)

जप एवं देवता तथा नौ तत्त्व (अन्तस्सम्बन्ध)— कामधेनुतन्त्र में कहा गया है कि नौ तत्त्वों को जाने बिना जप निरर्थक है। ये नौ तत्त्व निम्नांकित हैं और उनमें प्रथम तत्त्व देवतत्त्व है—

देवतत्त्वं प्राणतत्त्वं बिन्दुतत्त्वं च सुन्दरि।
ज्ञानतत्त्वं शक्तितत्त्वं योनितत्त्वं तथैव च।।
नवतत्त्वमिदं प्रोक्तं कामधेनुमतं प्रिये।।(शाक्ता. त.-९.८७)

देवताओं की उत्पत्ति ककार से हुई है—

सर्वासां देवतानां च ककारं मूलमेव च। (शाक्ता. त.-९.५७)

ककार से ही सबकी उत्पत्ति हुई है—

काकारात् सर्वमुत्पन्नं कामकैवल्यमेव च। (शाक्ता. त.-९.५६)

ककार 'कादिविद्या' या 'पञ्चदशाक्षरी श्रीविद्या' का प्रथमाक्षर है।

मन्त्राधीनञ्च देवता— देवता मन्त्र के अधीन हुआ करते हैं; क्योंकि देवताओं का सूक्ष्म रूप मन्त्ररूप एवं मन्त्र का स्थूल रूप देवता हुआ करता है। सूक्ष्मस्तरीय मन्त्र की डोर से स्थूलस्तरीय देवतारूपी पतंग तो पकड़ में आ ही जायेगी। देवता मन्त्राधीन हैं। देवता मन्त्रमय हैं— 'मन्त्रा एव तु देवता:' (मेरुतन्त्र)। उपासकों के कार्यनिष्पादनार्थ भले ही वे विभिन्न रूप क्यों न धारण कर लें, किन्तु उनका मूल स्वरूप मन्त्रस्वरूप ही है।

'मन्त्र' ध्वनिरूप हैं और (अ से ज्ञपर्यन्त) समस्त ध्वनियाँ शक्तिरूप हैं। प्रत्येक अक्षर में स्वतन्त्र शक्ति होती है। भिन्न-भिन्न अक्षरों के संयोग से भिन्न-भिन्न शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं।

किस उद्देश्य के पूर्त्यर्थ किस-किस ध्वनि (मातृका) का मिश्रण किया जाय और किन-किन अधिकारियों को दिया जाय, इसका सम्यक् ज्ञान मात्र ऋषियों को ही था। देवता 'मातृका' की शक्तियाँ हैं।

देवता मन्त्रसाधना का सर्वोच्च तत्त्व है। वही तो साधना के केन्द्र में रहता है। उसके नाम की साधना ही तो मन्त्रसाधना है। उसका नाम ही 'मन्त्र' है।

देवता की परिभाषा— कुलार्णवतन्त्र में कहा गया है—

देहमास्थाय भक्तानां वरदानाच्च पार्वति।
तापत्रयादिशमनाद्देवता परिकीर्तिता।।

देवता भक्तों के शरीर में निवास करता है। भक्तों को वरदान देकर उनका अभीष्ट पूरा करता है एवं तापत्रय (आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक) का शमन करता है। इसीलिए इसे देवता कहते हैं। देवता तत्त्व संवित् स्वरूप होता है—

स्वसंवित्त्रिपुरा देवी लौहित्यं तद्विमर्शनम्। (योगिनीहृदयम्, पृ०-३०२)

बीज और देवता— प्रत्येक चक्र में पृथक्-पृथक् तत्त्व एवं उनके 'बीजमन्त्र' होते हैं। 'बीजमन्त्र' तत्त्वों के बीज हैं। तत्त्व बीजों से उत्पन्न होते हैं और उसी में विलीन हो जाते हैं। जो मातृका स्थूलतः उच्चरित होती है, उसके सूक्ष्म रूप को जो शक्ति उत्पन्न एवं चालित करती है, वही उन तत्त्वों का कारण है। जैसे कि 'मणिपूर चक्र' का तत्त्व अग्नि है और बीजमन्त्र 'र' है। अग्नि जिन शक्तियों का सम्मिलित बाह्य रूप है, उन्हीं शक्तियों से जो सूक्ष्म शब्द निर्मित होता है, उसी का स्थूल (वैखरी) शब्दरूप 'रं' अक्षर है। (बीजमन्त्र → तत्त्व। यथा— 'रं' (बीजमन्त्र) → अग्नितत्त्व)।

बीज से ही देवता का प्रादुर्भाव होता है—

तस्माद्बीजात् समाकृष्य देवतारूपमुद्भवम्।(काम. ११ पटल)
तस्माद्बीजाद्वरारोहे देवता जायते ध्रुवम्।(काम. ११ पटल)
बीजात्तु जायते विष्णुरवतारवरः प्रिये।
बीजात्तु जायते रामो बीजात् कृष्णः प्रजायते।।
स्थावरं जङ्गमं देवि ! सर्वं बीजात् प्रजायते।।(काम. १३ पटल)
साक्षात् श्री प्रकृतिर्देवि बीजरूपा सनातनी।(काम. १३ पटल)
बीजात्तु जायते देवि रामकृष्णादयश्च ये।
ते सर्वे चञ्चलापाङ्गि बीजात्तु जायते ध्रुवम्।।(काम. १३ पटल)

बीजसाधन— पहले बीज का जप करना चाहिए और बाद में बीज का ध्यान करना चाहिये—

प्रजपेत् प्रथमं बीजं बीजध्यानं ततः परम्।
एतत्तु प्रथमं बीजसाधनं दुर्लभं प्रिये।।(काम. १३ पटल)
भावयेन्मन्त्रबीजानि यस्य या इष्टदेवता।
भावयेत् प्रथमं बीजं वराटोपरि पार्वति।
दशधा दशधा देवि प्रजपेद्बीजमुत्तमम्।।(काम. १३ पटल)
बीजमध्ये तु ध्यायेदिष्टं सुलोचने।
तस्माद्बीजाद्वरारोहे देवता जायते ध्रुवम्।।(काम. १३ पटल)

शक्तिर्वा विष्णुदेवो वा शिवो वा सूर्य एव वा।
बीजादुत्पाद्यते देवि परब्रह्म निरञ्जनम्।
बीजध्यानं विना देवि ! कथमुत्पद्यते हरिः?
सदाशिवो महादेवः कथमुत्पद्यते स्वयम्।
सदाशिवस्य जननी बीजरूपा सनातनी।।
(कामधेनुतन्त्र, पटल १३[१])

इसीलिए कहा गया है कि—
सर्वेषां चैव बीजानामेवं ध्यानं समाचरेत्।। (काम० तन्त्र-१३)

देवतातत्त्व में साधक के भीतर-बाहर के समस्त देहादिक तत्त्वों द्वारा भगवत् चैतन्य को पूर्णतया परिणत करके उस साधक जीव को पुरुषोत्तम में परिणत किया जा सकता है। इसमें इसका रहस्य एवं इसकी सम्भावना अन्तर्निहित है। समस्त तत्त्वों में भगवत् चैतन्य को प्रस्फुटित करना, उपलब्ध करना एवं देवमय हो जाना— यह भी देवतातत्त्व का निहितार्थ है। भगवत् चैतन्य प्रकृति के समस्त स्तरों में प्रतिबिम्बित होकर किस प्रकार प्रकाशित है— लीला कर रहा है— इसका समावेश भी देवता तत्त्व में है।

'देवो भूत्वा यजेद्देवम्' के अनुसार साधक का स्वयं देवता बनकर अपूर्णता से पूर्णता के स्तर पर आरूढ होना भी 'देवता तत्त्व' का निहितार्थ है। 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की अनुभूति भी देवता तत्त्व का व्यंग्यार्थ है। देवता का साक्षात्कार करना एवं देवमय बनना, देव में लय हो जाना एवं स्वयं देवस्वरूप हो जाना— ये सभी 'देवता तत्त्व' के निहितार्थ हैं।

मन्त्र के अंग (प्रणव) के भीतर भगवान् के 'विश्वमय' एवं 'विश्वातीत' दोनों पक्ष सन्निहित हैं। मन्त्र के अंगीभूत बीजतत्त्व से ज्ञात होता है कि हमारा प्रकृत स्वरूप क्या है? हमारा भगवान् के साथ क्या सम्बन्ध है? भगवान् ने सृष्टि का उद्देश्य क्या नियत किया है? हमारे भीतर अन्तर्निहित कौन-कौन-सी शक्तियाँ हैं?

मन्त्र का जप इस प्रकार किया जाना चाहिये कि मन्त्र का देवता स्वयमेव आने के लिए बाध्य हो जाय। शुद्ध मन्त्र का शुद्ध उच्चारण किये जाने पर मन्त्र जागृत होकर अभीष्ट पदार्थ को खींचकर सामने ला सकता है। शब्द के उच्चारण का जो स्तर होगा, वह उसी स्तर तक पहुँचता है। देवता का नाम ही है— मन्त्र। जिस नाम के पुकारने से देवता आविर्भूत होकर अभीष्ट-पूर्ति करता है, वही देवता का आविर्भाव है। मन्त्र चिच्छक्ति का प्रकाश है— 'मन्त्राश्चिन्मरीचयः'। 'मन्त्र' चैतन्य की घनीभूत मूर्ति या देवता का आत्म-प्रकाश है। 'बीज' ही मूल मन्त्र है। मन्त्र और देवता अभिन्न हैं।

भगवती गुरु भी हैं; अतः देवी एवं गुरु में अभिन्नता है। चतुःशती में कहा भी गया है—

---

१. बीजादुत्पद्यते देवो देवी वा कमलेक्षणे।। (कामधेनु०, २१वाँ पटल)

निष्कलतत्त्वे शिवे बुद्ध्वा तद्रूपत्वं गुरोरपि।
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।।

(श्वेताश्वतरोपनिषत्)

गुरु के शरीर में स्वयं भगवान् स्थित होकर गुरुत्व के दायित्व का निर्वाह करते हैं और दीक्षा देते हैं।

भगवत् सत्ता एवं गुरु में ऐकात्म्य

शिव एव सदा साक्षादास्थाय गुरुविग्रहम्।
दीक्षां करोति विश्वात्मा शम्भुशक्त्यनुवेधतः।।

अर्थात् गुरु के शरीर में भगवान् शिव ही गुरुत्व का दायित्व निभाते हैं।

देवतास्वरूपिणी भगवती विमर्श शक्ति है— 'विमर्श' क्या है?

जगत की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का हेतुभूत अकृत्रिम अहंभाव परामर्श ही विमर्श है— 'जगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतुभूताकृत्रिमाहम्भावपरामर्शो विमर्शः'। (नटनानन्द)

विमर्शो नाम विश्वाकारेण वा, विश्वप्रकाशेन वा, विश्वोपसंहारेण वाऽकृत्रि-मोऽहमिति स्फुरणम्। तस्यां तल्लीनत्वंनाम अन्तर्मुखत्वम्। (नागानन्द)

(अन्तर्लीनोऽन्तर्मुखीभूतो) विमर्शः पूर्णाहम्भावना।

विमर्शः प्रपञ्चः। (नटनानन्द)

माहेश्वरतन्त्र (नारदपाञ्चरात्र— पटल-३०.३६) में कहा गया है कि परानन्दविग्रह भगवान् का शरीर शब्दनिर्मित है अर्थात् मन्त्र ही देवता है— 'शाब्दं वपुः परानन्दवपुषः परमेश्वरि'।

मन्त्र और देवता में अभेद— मन्त्र 'वाचक' है और देवता 'वाच्य' है। यदि वाचक वाच्य का सन्धान न कर सके या न करा सके तो वाचक की उपयोगिता ही क्या है? यदि 'शरीर' शब्द से शरीर पदार्थ का बोध ही न हो तो 'शरीर' शब्द की सार्थकता ही क्या है? योगसूत्रकार पतञ्जलि ने 'तस्य वाचकः हि प्रणवः' कहकर महामन्त्र को वाचक एवं परमात्मा को वाच्य कहते हुए मन्त्र एवं परमात्मा में वाच्य-वाचक सम्बन्ध माना है। पतञ्जलि ने 'वैखरी वाक्' को वाचक नहीं कहा; क्योंकि वैखरी वाक् 'जड़' है, जबकि परमात्मा चेतन है। मन्त्र में चैतन्य का आधान करके ही परमचेतन (परमात्मा) तक पहुँचा जा सकता है। यदि 'मन्त्र' मन्त्र के वाच्य देवता का साक्षात्कार न करा सके तो मन्त्र की सार्थकता ही क्या है?

तान्त्रिक पद्धति 'अहं देवी न चान्योऽस्मि, शिवोऽहं, सोऽहम्' के सिद्धान्त में विश्वास रखते हुये साधना के निम्नतम स्तर पर भी (न्यास के माध्यम से) मन्त्राक्षरों का साधक के शरीरांगों के साथ तादात्म्य स्थापित करती है। 'करन्यास', 'हृदयादिन्यास'

एवं 'अक्षरन्यास' का यही कार्य है। 'दिङ्न्यास' साधक के चतुर्दिक प्रसृत दशों दिशाओं के साथ मन्त्राक्षरों का तादात्म्य स्थापित करके साधक को अपनी दशों दिशाओं में मन्त्राक्षरों के व्याप्त होने का अनुभव कराता है या उसे मन्त्राक्षरों के सागर में डुबकी लगाने का बोध कराता है। ऋष्यादिन्यास साधक को ऋषि, देवता, छन्द, बीज, शक्ति एवं कीलक के साथ तादात्म्य प्राप्त कराने का प्रयास करता है। 'कवच' साधक के प्रत्येक शरीरांग के साथ किसी न किसी देवी-देवता का सम्बन्ध बताकर उस पर उस अंग की रक्षा करने का दायित्व निश्चित करता है। 'कीलक' साधक के समस्त 'स्व' (अहन्ता) को देवता की वस्तु घोषित करके अपनी समस्त अहन्ता एवं ममता को देवता में लय करने का मार्ग निर्दिष्ट करते हुये उससे तादात्म्य स्थापित कराता है। 'दान-प्रतिग्रहण' की पद्धति अपनी व्यष्टि अहन्ता को समष्टि अहन्ता (देवता) में लय करके क्षुद्र से विराट् बनने का ही एक आयोजन है।

साधक जिस भौतिक माला से जप करता है, तान्त्रिक उसे भी भौतिक एवं जड़ न मानकर चतुर्वर्ग-प्रदायिनी, सिद्धि-दायिनी, सर्वशक्तिस्वरूपिणी 'महामाया' मानकर शक्ति (माला) के माध्यम से 'शक्ति' (देवता) तक पहुँचने की साधना करता है और माला को शक्ति मानकर उससे प्रार्थना करता है—

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धदा भव।।

साधक को अपनी साधना को भी अपनी वस्तु न मानकर उसे देवी की वस्तु समझ-कर उसे ही समर्पित करना पड़ता है; इसीलिए मन्त्रजप को देवी के बाँयें हाथ में समर्पित करने का विधान है। अपनी अहन्ता को देवी में लय करते हुये अपने शरीरांगों को देवी का मन्दिर मानते हुये देवी एवं उनके मन्त्राक्षरों से अपना तादात्म्य स्थापित करते हुये तथा दशों दिशाओं में देवी के मन्त्राक्षरों की महाव्याप्ति का अनुभव करते हुये 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' के अनुभव को अपना परम लक्ष्य स्थिर करते हुये साधक 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' को ही चरितार्थ करता है।

देवताओं के शरीर का आविर्भाव 'बीज' से होता है; अतः उनकी आत्मा देवरूप होती है—

देवतायाः शरीरं हि बीजादुत्पद्यते ध्रुवम्।
अतएव हि तस्यात्मा देवरूपो न संशयः।।

(निर्वाणतन्त्र, पटल-१२)

निर्वाणतन्त्र के अनुसार देवता अपने-अपने सुदूरस्थ लोकों में ही विराजमान नहीं रहते और न तो विद्यायें ही अन्य लोकमात्र में स्थित हैं; प्रत्युत ये सभी हमारे शरीर में ही विद्यमान हैं। ज्ञानसङ्कलिनी तन्त्र कहता भी है—

देहस्थाः सर्वविद्याश्च देहस्थाः सर्वदेवताः।
देहस्थाः सर्वतीर्थानि गुरुवाक्येन लभ्यते।।
काष्ठमध्ये यथा वह्निः पुष्पे गन्धः पयोऽमृतम्।
देहमध्ये तथा देवः पुण्यपापविवर्जितः।।

आचार्य भास्कर राय ने 'त्रिपुरामहोपनिषद्' की अपनी टीका में कहा है कि देवता के तीन रूप होते हैं— स्थूल, सूक्ष्म एवं पर।

देवता का स्थूल रूप— सम्बद्ध देवता के निर्दिष्ट ध्यान में उल्लिखित रूप ही देवता का स्थूल रूप है।

देवता का सूक्ष्म रूप— देवता का सूक्ष्म रूप उसके मूलमन्त्र में निहित रहता है।

देवता का पर रूप— यह रूप उपासनात्मक होता है।

आचार्य भास्कर कहते हैं कि देवता के उक्त तीनों रूपों के अनुसार ही उनकी साधना के भी तीन प्रकार हैं— बहिर्याग, जप और अन्तर्याग। भावनोपनिषद के अपने भाष्य में वे कहते हैं कि भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना के तीन भेद हैं— स्थूल, सूक्ष्म एवं पर; तथा इसी के अनुरूप भगवती की उपास्तिरूपा क्रियायें भी त्रिविधात्मिका होती हैं— कायिकी, वाचिकी एवं मानसी।

ऋषि-छन्द-देवता-विनियोग— प्रत्येक मन्त्र के ये अंग हैं।

ऋषि— ऋषि उस मन्त्र के द्रष्टा होते हैं— 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः'; किन्तु वे मन्त्र-स्रष्टा नहीं होते— 'स्मारका न तु कारकाः।'

नवार्णमन्त्र— ऋषि— ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र। छन्द— गायत्री, उष्णिग्, अनुष्टुप्। देवता— महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती। बीज— ऐं। शक्ति— ह्रीं। कीलक— क्रीं। विनियोग— महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती की प्रीति।

मातृकामन्त्र— ऋषि— ब्रह्मा। छन्द— गायत्री। देवता— सरस्वती। बीज— हल। शक्ति— स्वर। कीलक— क्लीं। विनियोग— मातृकान्यास।

रामरक्षास्तोत्रमन्त्र— ऋषि— बुध-कौशिक। देवता— रामचन्द्र। छन्द— अनुष्टुप्। शक्ति— सीता। कीलक— हनुमान्। विनियोग— श्रीरामचन्द्र की प्रीति हेतु।

देवी का कवच— ऋषि— ब्रह्मा। छन्द— अनुष्टुप्। देवता— चामुण्डा। बीज— 'अङ्गन्यासोक्तमातरो'। देवता— दिग्बन्ध देवता। विनियोग— श्री जगदम्बा के प्रीत्यर्थ।

अर्गलास्तोत्रमन्त्र— ऋषि— विष्णु। छन्द— अनुष्टुप्। देवता— श्रीमहालक्ष्मी। विनियोग— श्रीजगदम्बा की प्रीति।

कीलकमन्त्र— ऋषि— शिव। छन्द— अनुष्टुप्। देवता— महासरस्वती। विनियोग— श्रीजगदम्बा की प्रीति।

श्रीसूक्तमन्त्र— ऋषि— इन्दिरा, आनन्द, कर्दम, चिक्लीत। प्रथम मन्त्र की ऋषि— इन्दिरा। द्रष्टा— (१४ मन्त्रों के द्रष्टा) आनन्द, कर्दम, चिक्लीत (इन्दिरा या लक्ष्मी के पुत्र)। छन्द— हिरण्यगर्भ, 'हिरण्यवर्णां' इत्यादि तीन ऋचाओं के छन्द— अनुष्टुप्। 'कांसोस्मिताम्' का छन्द— बृहती। अग्रिम ऋचाओं के छन्द— त्रिष्टुप्। अगले आठ मन्त्रों के छन्द— प्रस्तारपंक्ति। देवता— श्री और अग्नि। बीज— हिरण्य-वर्णाम्। शक्ति— कांसोस्मिताम्।

श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रमालामन्त्र— ऋषि— श्री वशिन्यादि वाग्देवता। छन्द— अनुष्टुप्। देवता— श्रीललिताम्बा। बीज— क ए ई ल ह्रीं। शक्ति— सकल ह्रीं। कीलक— ह स क ह ल ह्रीं। विनियोग— ललिताम्बाप्रीत्यर्थ।

कतिपय मन्त्र	देवता	मन्त्र	जप-संख्या
१. श्रीदक्षिणामूर्ति	दक्षिणामूर्ति	ॐ ह्रीं दक्षिणामूर्तये तुभ्यं वटमूलनिवासिने। ध्यानैकनिरताङ्गाय नमो रुद्राय शम्भवे ॐ ह्रीं।।	३,२०,०००
२. पञ्चमुख महादेव	महादेव	ॐ ह्रौं	५,००,०००
३. श्रीमहाकालि-महा-लक्ष्मी-महासरस्वती	उक्त तीन देवियाँ	ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।	९,००,०००
४. श्रीलक्ष्मीदेवी	श्रीलक्ष्मी	ॐ ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं	१२,००,०००
५. महासरस्वती देवी	श्रीसरस्वती	ॐ ह्रीं हसौं सरस्वत्यै नमः	१२,००,०००
६. श्रीकाली	श्रीकाली	ॐ क्लीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा।	२,००,०००

ऋषियों ने अपनी साधना-शक्ति से मन्त्र की साधन-प्रणालियों का आविष्कार किया है।

छन्द— जिस प्रणाली के द्वारा जिस छन्द से जिस भाव का कम्पन उत्पन्न करके उद्देश्य सिद्ध किया गया है, वही छन्द उस निर्दिष्ट साधन-प्रणाली का 'छन्द' निश्चित किया गया है; इसी कारण भिन्न-भिन्न मन्त्रों के भिन्न-भिन्न छन्द हैं।

ऋषि— जीव अनन्त हैं और उनके लक्ष्य एवं उनको साकार रूप देने के उपाय भी अनन्त हैं। इन्हीं असंख्य उद्देश्य-सिद्धियों के लिये अनन्त साधन-प्रणालियाँ हैं। जिस साधक ने जिस उद्देश्य से जिस साधन-प्रणाली द्वारा सिद्धिलाभ किया है, वह उस निर्दिष्ट तत्त्व का एवं निर्दिष्ट साधन-प्रणाली का ऋषि है।

एक ही देवता (इष्टदेव) के अनेक मन्त्र होते हैं; यथा—

काली देवी के मन्त्र— क्रीं; ह्रीं; क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा; क्रीं क्रीं फट् स्वाहा; ऐं नमः क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा; क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणकालिके स्वाहा; क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणकालिके फट्; क्रीं क्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं स्वाहा; क्रीं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा; क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा; क्रीं स्वाहा; क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ स्वाहा इत्यादि।

देवता के रूप

देवता का स्थूल रूप	देवता का सूक्ष्म रूप	देवता का पर रूप
(ध्यान-विधान में वर्णित)	(मन्त्ररूप)	(उपासनात्मक)

देवता के उपासना-भेद

प्रथम उपासनाभेद[1]			द्वितीय उपासनाभेद[2]		
बहिर्याग	जप	अन्तर्याग	देवता का	देवता का	देवता का
स्थूल देवता	सूक्ष्म देवता	पर देवता	स्थूल रूप	सूक्ष्म रूप	पर रूप
के लिये	के लिये	के लिये	कायिकी	वाचिकी	मानसी
			उपासना	उपासना	उपासना

आचार्य भास्कर राय कहते हैं कि यद्यपि बहिर्याग-जप-अन्तर्याग के संघटक तत्त्व परस्पर एक-दूसरे में अन्तर्भूत या अनुप्रविष्ट हैं तथापि प्राचुर्य एवं प्राधान्य को ध्यान में रखकर कायिकी-वाचिकी-मानसी आदि उपासना-विधियों को पृथक्-पृथक् मानकर उनको वर्गीकृत किया गया है।[3]

भावनोपास्ति— भास्कर राय कहते हैं कि अथर्वनामा वेदपुरुष ने योगियों के प्रति अनुकम्पा दिखाने हेतु एक तृतीय उपासना-पद्धति का प्रवर्तन किया है, जिसका नाम है— भावना। भावनोपनिषद में सद्गुरु के पररूपत्व को लक्ष्य में रखकर ही प्रथम सूत्र— 'श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः' रखा गया है और इस उपनिषद के अन्त में 'भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति' (भावनो०-३४) सूत्र जान-बूझकर (भावनाविधि की अपूर्व विधि के माहात्म्य के प्रदर्शनार्थ) रखा गया है। उपासना की यह विधि भावार्थरूपा, अर्थभावना-करणीभूता एवं पररूपात्मिका है। पररूपभावना की ही इसमें प्रधानता है। यद्यपि भावना द्विलक्षणा है— कादिमतगर्भित और कौलमतगर्भित; तथापि भावनोपनिषद में कादिमत का ही प्रतिपादन किया गया है। कादिमत में अन्तश्चक्रभावना का प्रतिपादन किया गया है। भावनोपनिषद में स्पष्टतः कहा गया है—

'कादिमतेनान्तश्चक्रभावनाः प्रतिपादिताः' (३५)।

'य एवं वेद सोऽथर्वाशिरोऽधीते' (३६)।

१. त्रिपुरामहोपनिषद्भाष्य (भास्कर राय)

२. भावनोपनिषद्भाष्य (भास्कर राय)

३. भास्करः 'भावनोपनिषदः' भास्कर टीका

वामकेश्वरतन्त्र की दृष्टि— वामकेश्वरतन्त्र में भगवती के अन्य रूपों के साथ-साथ उनके आनन्दस्वरूप का भी वर्णन किया गया है और उन्हें परमानन्दरूपिणी एवं नित्यानन्द घन भी कहा गया है— 'प्रणमामि महादेवीं परमानन्दरूपिणीम्। नित्यानन्दघनं परम्'।

शिव एवं देवी (भगवती) दोनों स्वरूपतः अभिन्न हैं—

न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।।

शिवाभिन्ना परा शक्तिः सर्वकर्मशरीरिणी।
वामादीच्छादिभेदेन मिथुनत्रयतां गता।।

देवता का चक्रस्वरूप—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्मं मन्वश्रनागदलसंयुतषोडशारम्।
वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः।।
(त्रिपुरतापिन्युपनिषत्)

(आ) भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप

त्रिपुरा पद की व्याख्या करते हुए भास्कर राय 'सौभाग्यभास्कर' में कहते हैं— 'त्रयात्मकं पुरं भूपुरं मण्डलकोण रेखामन्त्रादिसमूहो वा यस्याः सा त्रिपुरा'। कालिकापुराण में भी कहा गया है—

त्रिकोणं मण्डलं चास्या भूपुरं च त्रिरेखकम्।
मन्त्रोऽपि त्र्यक्षरः प्रोक्तस्तथा रूपत्रयं पुनः।
त्रिविधा कुण्डली शक्तिस्त्रिदेवानां च सृष्टये।
सर्वत्रयं त्रयं यस्मात्तस्मात्तु त्रिपुरामता।।

परम शिव की आदि सिसृक्षास्वरूपा त्रिपुरा देवी ज्ञातृ-ज्ञेय-ज्ञानरूप त्रिपुटीकृत जगत् की आद्य उद्भाविका हैं और इस त्रय के उत्पादन के कारण भी उनका नाम त्रिपुरा है।

जीवों के अदृष्ट के कारण एवं उनके कर्मफलों का परिपाक होने के उद्देश्य से प्रलयकालोपरान्त शिव में सिसृक्षा आविर्भूत होती है अर्थात् परमशिव में अव्यक्त भाव से लीन उनकी स्वाभिन्ना शक्ति सिसृक्षा के रूप में व्यक्त होती है। यह सिसृक्षारूपा आद्या शक्ति ही 'त्रिपुरा' कहलाती है। 'त्रिपुरा' आद्या परमा शक्ति है। इसी की अभिव्यक्ति— इच्छा, ज्ञान, क्रिया के रूप में भी होती है। यही त्रैलोक्योत्पादिका है। यही प्रलयकाल में निःशेष जगत् एवं उसके भूलभूत संघटक तत्त्वग्राम को कवलीकृत करके स्थित रहती है—

त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या ज्ञानादितः प्रिये।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका।।

कवलीकृत-निःशेष-तत्त्वग्राम-स्वरूपिणी।
तस्यां परिणतायान्तु न कश्चित्पर इष्यते।।

'परमशिव' की आत्मभूता 'परा शक्ति' ने ही सृष्टि द्वारा जगत् को ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय के रूप में कल्पित किया है। ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयरूप त्रिपुटी से जगत् को रूपायित करके अवस्थित रहने के कारण इस आधा शक्ति को 'त्रिपुरा' कहा गया है। मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने कौलमत में त्रिपुरा के नाम से ही इस परमाद्या शक्ति का उल्लेख किया है। वामकेश्वरतन्त्र (४-५) में कहा गया है कि जगत् रूप में अभिव्यक्त होने के लिए इस आद्या शक्ति को परमशिव की भी आवश्यकता नहीं होती। ठीक भी है; क्योंकि शक्ति प्रलयकाल में छत्तीस तत्त्वों के स्वरूप वाले जगत् को अपने में लीन करके अव्यक्तावस्था में अवस्थित रहती है। शिव की सिसृक्षा ही 'शक्ति' है और सिसृक्षारूपा शक्ति ही 'सृष्टि' है। शक्ति ही जगत् का कारण है। परमशिव तो निर्गुण एवं निरञ्जन हैं। उनमें सिसृक्षा का आविर्भाव होने पर दो तत्त्वों का आविर्भाव होता है— सिसृक्षारूपी उपाधि से उपहित सगुण शिव और सृष्टिस्वरूपिणी शक्ति। इस त्रिपुरा शक्ति के विना शिव भी कुछ नहीं कर सकते। शक्ति छत्तीस तत्त्वों के रूप वाले जगत् को अपने में लीन करके स्थित रहती है और स्वयं सृष्टिरूपा है; अत: उसे सृष्टि के लिए दूसरे की अपेक्षा क्यों होगी?

बैन्दवी कला और त्रिपुरसुन्दरी— 'सहस्रदल कमल' के भीतर स्थित चन्द्रमण्डल ही 'बैन्दवस्थान' है और उसकी चिन्मयी एवं आनन्दरूपात्मिका कला ही आत्मा एवं 'त्रिपुरसुन्दरी' कहलाती है— सहस्रदलकमलान्तस्थितचन्द्रमण्डलं बैन्दवस्थानम्। तत्कला चिन्मयी आनन्द-रूपा आत्मेति गीयते। सैव त्रिपुरसुन्दरी।[१]

भगवती नादबिन्दु एवं कला से अतीत हैं—'एवं नादबिन्दुकलातीता भगवती।'

भगवती नादातीत तत्त्व है— 'नादातीततत्त्वं तु त्रिपुरसुन्दर्यादिशब्दाभिधेयम्।'

'दर्शी' दृष्टा, दर्शता इत्यादि के पर्याय हैं— 'क ए ई ल ह्रीं'। इनसे भी युक्त हैं भगवती।

पञ्चदशवर्णात्मकषष्ट्युत्तरत्रिशतसङ्ख्यापरिगणितमहाकालात्मक, पञ्चदशकलातीता सादाख्या श्रीविद्यापरपर्याया चित्कलाशब्दवाच्या ब्रह्मविद्यापर्याया भगवती नादबिन्दुकलातीत भागवत तत्त्व है।[२]

भगवती त्रिपुरा

सच्चिदानन्द परब्रह्म को इच्छा हुई कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ (एकोऽहं बहु स्याम)। यही उसकी इच्छा का 'प्रथम स्पन्द' है। ज्ञान से 'इच्छा' हुई और इच्छा न 'क्रिया' का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार ज्ञान-इच्छा-क्रिया का क्रम प्रारम्भ हो गया। समस्त जगत् इसी ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया का त्रिपुटीकृत रूप है। समस्त आगम इस त्रिपुटीकरण करने वाली शक्ति को ही 'त्रिपुरा' कहते हैं। यह सृष्टि को भी तीन चरणों में प्रादुर्भूत करती है—

आसीच्छक्तिस्ततो नादस्तस्माद्बिन्दुसमुद्भवः।

परमात्मा में सिसृक्षारूप जो 'इच्छा' हुई, वही उपनिषदों का 'एजन' है। यही शाक्त

१. लक्ष्मीधरा २. लक्ष्मीधरा

शैव परम्परा का 'स्पन्द' है। शब्द या नाद एक कम्पन का मूर्त रूप है। शिव की यह सिसृक्षारूप इच्छा ही 'नाद' है। 'सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्' से सृष्टि हुई।

सचिदानन्द विभव सकल परमेश्वर → शक्ति → नाद → बिन्दु। प्रथम स्पन्द = नाद, इच्छा = नाद, क्रिया = बिन्दु।

सकल परमात्मा की इस शक्ति का नाम है— ज्ञानशक्ति।

ज्ञानशक्ति = बीज, इच्छाशक्ति = नाद, क्रियाशक्ति = बिन्दु। आधिदैविक दृष्टि से ये ही हैं— ब्रह्मा, विष्णु और शिव।

नाद = गति। बिन्दु = स्थिति। गति + स्थिति का विलास = जगत्। ॐ = अ + उ + म। ॐ— विश्वसृष्टि।

तन्त्रशास्त्र की मान्यता है कि—

सृष्टि का विकास 'निष्कल परमशिव तत्त्वा-तीतावस्थासीना परासंवित्' या 'निष्कल ब्रह्म' से नहीं होती; प्रत्युत सकल परमेश्वर से होती है।

'निष्कल ब्रह्म' तत्त्वातीत, अनिर्वचनीय एवं तुरीयातीत तत्त्व है। इस अवस्था में उसकी शक्ति उसी में लीन रहती है। 'निष्कल ब्रह्म' अपने-आपको देखता रहता है। ब्रह्म (परमशिव) का यह ईक्षण उसमें 'अहं' के प्रकाश का उदय करता है और उसके साथ ही उसमें 'अस्मि' के विमर्श का भी उदय होता है; अत: 'अहमस्मि' का उदय होता है।

ब्रह्म की निष्क्रियावस्था : परा संवित् अवस्था

प्रकाश — विमर्श

(निष्कल ब्रह्म का सकल बन जाना)

शिव-शक्तिसंयोग

निष्क्रिय ब्रह्म का सक्रिय स्वरूप में अवतरण।

(निष्क्रय तत्त्व को सक्रिय बनने हेतु शिव + शक्ति का संयोग अपरिहार्य है।)

अहमस्मि का उदय

अहं — अस्मि

(प्रकाश : शिवतत्त्व) (विमर्शतत्त्व)

शक्ति-शिव मिलन

जगत् की सृष्टि

निष्क्रिय परासंवित् → ईक्षण → प्रकाश → विमर्श → प्रकाश-विमर्श का मिलन → निस्पन्द में स्पन्दन। प्रथम स्पन्द = शिवतत्त्व।

शिव + शक्ति का संयोग
या शिव + शक्ति सम्बन्ध
या उन्मना + समना शक्ति
की सन्धि अवस्था
या शिव + शक्ति की संयुक्तावस्था

नाद

इच्छास्वरूपिणी (शिव में नित्य समवेता शक्ति) = जगत् का बीज।

यदयमनुत्तरमूर्तिर्निजेच्छयाखिलमिदं जगत्स्रष्टुम्।
पस्पन्दे स स्पन्द: प्रथम: शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञै:।। (तत्त्वसन्दोह)

शिव में समवेत यह इच्छाशक्ति ही जगत् का बीज है—

इच्छा सैव स्वच्छा सन्ततसमवायिनी सती शक्तिः।
सचराचरस्य जगतो बीजं निखिलस्य निजनिलीनस्य।।

(ष० त० सं०)

शिव + शक्ति (सांख्य में पुरुष + प्रकृति के समतुल्य)।

संयुक्त नाद = 'सादाख्य तत्त्व'। निष्कल ब्रह्म की शक्ति = 'उन्मना', अहं (प्रकाश) एवं अस्मि (विमर्श) का तादात्म्य— अव्यक्त नाद। उन्मना शक्ति द्वारा सृजन आरम्भ करते ही इस शक्ति का रूपान्तरण समना शक्ति के रूप में हो जाता है। सकल परमेश्वर → शक्ति → नाद → बिन्दु → सृष्टि का आरम्भ।

पर दशा में इच्छा, ज्ञान एवं क्रियारूप, सूक्ष्म दशा में वामा, ज्येष्ठा एवं रौद्रीरूप एवं स्थूल दशा में ब्रह्मा, विष्णु एवं ईश— इन विभागों द्वारा तीनों पुरों या सृष्टि-स्थिति-संहार के आपूरक तत्त्वों में अनुगत होने के कारण भगवती को 'त्रिपुरा' कहते हैं।

त्रैलोक्य की उत्पादिका माता होने के कारण उन्हें 'मातृका' एवं 'अम्बिका' कहा जाता है।

चिदानन्दैकघन परमशिव से प्रस्फुटित तथा उनसे समवेत होने के कारण उसी आद्या शक्ति को 'परमाशक्ति' कहा जाता है। सम्पूर्ण 'शक्तिचक्र' की एकमात्र आश्रय होने, नियत नाम द्वारा निर्दिष्ट न हो सकने के कारण 'अनाख्य' कहलाती है। वही परा शक्ति सृष्टि की मूल विधायिका, सृष्टि का आदि कारण शक्तिचक्र को भी जन्म देने वाली आदि शक्ति होने के कारण 'आद्या शक्ति' कही जाती है।

वही स्वभावतः उदित होने तथा प्रत्यवमर्शात्मक होने के कारण 'परा वाक्' एवं 'चिति' कही जाती है। स्वातन्त्र्य स्वभाव, अन्यापेक्षारहित होने के कारण वही परमात्मा की 'स्वातन्त्र्य शक्ति' कही जाती है। वही जगत् का आद्य स्फुरण होने के कारण एवं सृष्टि के प्रत्येक जड़-चेतन वस्तुओं में सूक्ष्मतम कम्पन एवं स्फुरण होने के कारण स्फुरत्ता कहलाती है। चूँकि वह देशकालातीत सर्वोच्च सत्ता है; अतः उसे 'महासत्ता' कहा जाता है। चूँकि वह सारों का भी सार है— सारतम है; अतः उसे 'सार' भी कहा गया है। परमेष्ठी एवं जगत् का उर होने के कारण उसे 'हृदय' भी कहा जाता है। चैतन्य-स्वरूपा, चैतन्य-स्वभावा, चैतन्यरसात्मिका होने एवं विश्व के जड़-चेतन सभी पदार्थों में सुषुप्त एवं जाग्रत चेतना के रूप में अवस्थित होने कारण उसे 'चिति' भी कहा गया है— 'चितिः प्रत्यवम-र्शात्मा परा वाक् एव।'

महात्रिपुरसुन्दरी जगत् का बीज एवं परमशिव का दर्पण हैं।

कामकलाविलास में पुण्यानन्द की दृष्टि— पुण्यानन्द कहते हैं कि भगवती भविष्य में उत्पन्न होने वाले (वर्तमान में लयीभूत) जगत् का बीज हैं और परमशिव का (आत्म-प्रत्यभिज्ञा या स्वरूप-साक्षात्कार) के लिए निर्मल दर्पण हैं— 'भाविचराचरबीजं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्शः।'

महात्रिपुरसुन्दरी प्रकाशामर्शरूपिणी, विश्वात्मिका एवं विश्वोत्तीर्णा परापरमयी शक्ति एवं जगत् की आत्मा हैं। चिदानन्दवासना में कहा गया है—

विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां प्रकाशामर्शरूपिणीम्।
परापरमयीं देवीमात्मत्वेन विशाम्यहम्।।

अर्थात् भगवती विश्वात्मिका, विश्वातीता एवं आत्मा हैं।

भगवती षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मा एवं विद्या है—

षट् त्रिंशत्तत्त्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या।

'विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां हृदयं परमेशितुः' कथन द्वारा भगवती का शिवहृदय होना भी पुष्ट होता है।

त्रिपुरभैरवी— क्षीयमाण विश्व के अधिष्ठान दक्षिणामूर्ति कालभैरव हैं। उनकी शक्ति ही 'त्रिपुरभैरवी' हैं। वे उदित हो रहे सहस्रों सूर्यों के समान अरुण कान्तिवाली और क्षौमाम्बरधारिणी एवं नरमुण्डमालाधारिणी हैं। रक्त से उनके पयोधर लिप्त हैं। वे त्रिनेत्री हैं और हिमांशु किरीट धारण किए हुये, हाथ में जपवटी, विद्या, वर एवं अभयमुद्रा धारण किये हुये हैं। वे सतत् मन्दसुस्मिता हैं।

'त्रिपुरा' शब्द तीन पुरों की शासिका की आख्या है। 'त्रिपुरा' शब्द की अनेक प्रकार से व्याख्या की गई है; यथा—

१. तिसृभ्यो मूर्तिभ्यः पुरातनत्वात् त्रिपुरा।

२. मूर्तित्रयस्यापि पुरातनत्वात्तदम्बिकायास्त्रिपुरेति नामेति।

३. तत्त्वत्रयेण भिदा इति त्रिपुरा। अर्थात् एक ब्रह्म तत्त्वत्रय द्वारा तीन रूपों में भिन्न-भिन्न हो जाता है; अतः उसे त्रिपुरा कहते हैं—

एकमेव ब्रह्म तत्त्वत्रयेण भिद्यतेत्यर्थः। (सौभाग्यभास्कर)

४. नाडीत्रयं तु त्रिपुरा सुषुम्णा पिङ्गला इडा।

५. मनोबुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतम्।

अतः इनकी स्वामिनी होने के कारण भी देवी की आख्या त्रिपुरा है।

६. कालिका पुराण में कहा गया है कि 'त्रिकोणं मण्डलं चास्या' अर्थात् जिसके तीन मण्डल हों, उसे त्रिपुरा कहते हैं।

७. सर्वं त्रयं त्रयं यस्मात्तस्मात्तु त्रिपुरा मता।

जिसमें सब कुछ तीन-तीन की संख्या में विद्यमान हो; यथा— वेदत्रयी, गुणत्रय, देवत्रय, तीन कूट, इच्छा-ज्ञान-क्रिया— तीन शक्तियाँ, भूत-वर्तमान-भविष्य— काल-त्रय, लोकत्रय आदि; वे ही भगवती त्रिपुरा हैं—

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा-
स्त्रैलोक्यं त्रिपुरी त्रिपुष्करमथ त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः।

यत्किञ्चिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गात्मकं
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः।।

'लघुस्तव' के चतुर्थ पटल में 'त्रिपुरा परमा शक्तिः' से आरम्भ करके 'त्रिपुराख्याति-मागते' के अन्त तक त्रिपुरा की इसी तरह अनेक व्याख्यायें की गयी हैं।

आचार्य भासुरानन्द ने सौभाग्यभास्कर में 'त्रिपुरा' शब्द की अनेक प्रकार से व्याख्यायें प्रस्तुत की हैं—

१. 'त्रिभिर्जगद्भिर्वन्द्या' अर्थात् जो तीनों लोकों द्वारा वन्द्य हो, वह 'त्रिपुरा' है।

२. 'त्रयो जगद्वन्द्या यस्या वा' अर्थात् जिसके तीनों लोक वन्दनीय हैं, वे ही हैं— त्रिपुरा भगवती।

३. धौम्यवचनानुसार— 'त्रिमूर्तिस्तु त्रिवर्षा स्यात्।'

४. 'रक्तशुक्लमिश्रात्मकवर्णमूर्तित्रयरूपा वा' अर्थात् रक्त, शुक्ल एवं मिश्र— मूर्तित्रय वाली होने से देवी का नाम 'त्रिमूर्ति' या 'त्रिपुरा' है।

५. देवी को 'त्रिवर्णा' भी कहा गया है, क्योंकि—

त्रिवर्णा च कुमारी सा कृष्णा शुक्ला च पीतिका।
उवाच भगवद् दृष्टेर्येन जातास्मि सत्तमा।।

६. भिन्न-भिन्न मन्त्रों का उद्धार उन-उन रूपों में तन्त्रों में वर्णित हैं और वे भी तीन हैं— ब्रह्मादिदेवमूर्तित्रय, वामादि शक्तित्रय और इच्छा-ज्ञान-क्रिया शक्तिमूर्तित्रय के रूप में। वराहपुराण में भी कहा गया है—

एवमुक्त्वा स्वयं ब्रह्मा वीक्षाञ्चक्रे पिनाकिनम्।
नारायणं च मनसा सस्मार परमेश्वरः।।

ततो नारायणो देवो द्वाभ्यां मध्ये व्यवस्थितः।
एकीभूय ततस्ते तु ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वराः।।

परस्परं सूक्ष्मदृष्ट्या वीक्षां चक्रुर्मुदान्विताः।
ततस्तेषां त्रिधा दृष्टिर्भूता वै समजायत।।

भगवती को षोडशी भी कहा गया है।

भगवती त्रिपुरा संवित्स्वरूपा हैं और उनका जो लौहित्य वर्ण है, वह उनके विमर्श का प्रतीक है—

स्वसंवित्त्रिपुरा देवी लौहित्यं तद्विमर्शनम्।

षोडशी कला 'श्री' है— 'षोडशी कला नाम शकार-रेफ-ईकार-बिन्द्वन्तो मन्त्रः श्रीः'। इसी बीज का नाम है— 'श्रीविद्या'। जो श्रीबीज से युक्त है, वह विद्या ही श्रीविद्या है— 'श्रीबीजात्मिका विद्या श्रीविद्येति रहस्यम्' (लक्ष्मीधरा)। भगवती संवित्ति हैं। सिद्ध-सिद्धान्तपद्धति में चन्द्रमा की सोलह कलाओं का उल्लेख किया गया है, जो निम्नांकित है—

१. उल्लोला	५. तरंगिणी	९. लहरी	१३. प्रवाहा
२. कल्लोलिनी	६. शोषिणी	१०. लोला	१४. सौम्या
३. उच्चलन्ती	७. लम्पटा	११. लेलिहाना	१५. प्रसन्नता
४. उन्मादिनी	८. प्रवृत्ति	१२. प्रसरन्ती	१६. प्लवन्ती

'एवं चन्द्रस्य षोडश कला। सप्तदशी कलानिवृत्तिः साऽमृता कला।'

भगवती त्रिपुरसुन्दरी को भी 'षोडशी' कहा गया है। सुन्दरी (महात्रिपुरसुन्दरी) के उपासक भगवती की उपासना चन्द्रमा के रूप में करते हैं। चन्द्रमा की सोलह कलायें हैं। सभी कलायें नित्य हैं। इसीलिये भगवती को इन कलाओं की समष्टि के रूप में 'नित्य षोडशिका' कहकर भक्त उनकी उपासना करते हैं। पन्द्रह कलाओं का उदय एवं अस्त दोनों होता है, ह्रास-वृद्धि दोनों होती है; किन्तु सोलहवीं की नहीं होती। वही 'अमृता' नाम की कला है। इसी 'षोडशी चान्द्रकला' को वैयाकरण 'पश्यन्ती वाक्' कहते हैं। दर्शन शास्त्र में इसे 'आत्मा' कहा गया है। मन्त्रशास्त्र में इसे 'मन्त्र' या 'देवता का स्वरूप' कहा गया है। जिसे हम पूर्णचन्द्र कहते हैं, वह ह्रास-वृद्धिपरक होने के कारण पूर्णचन्द्र नहीं है; पूर्णचन्द्र में ह्रास-वृद्धि का अभाव है। 'षोडशी कला' में यही पूर्णता विद्यमान है; क्योंकि वह नित्योदिता, अमृतस्वरूपा एवं अखण्डा है। वही है— ललिता या महात्रिपुर-सुन्दरी। यही परा कला चिदेकरसा श्रीविद्या है। पन्द्रह कलायें (प्रतिपदा आदि तिथियाँ) नित्य होने पर भी ह्रास-वृद्धिस्वभावा हैं; किन्तु षोडशी कला नित्य ज्योत्स्नामयी एवं सहस्रदल कमलस्थ, नित्य कलामयी एवं श्रीचक्रात्मक चन्द्रविम्ब है। इसीलिये सुभगोदय में कहा भी गया है—

षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।

भगवती उपासक के समक्ष नित्य षोडशवर्षीया सुन्दरी के रूप में रहती हैं। गौडीय सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण नित्य षोडशवर्षीय रूप में (एक किशोररूप में) भावनीय हैं—

नित्यं किशोर एवासौ भगवानन्तकान्तकः।

श्रीरूपगोस्वामी ने 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में इसी स्वरूप का उल्लेख किया है— 'आषोडशाच्च कैशोरम्'। श्रीकृष्णा एवं ललिता को एक ही माना गया है—

कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्णविग्रहा।
वंशीनादसमारम्भादकरोद्विवशं जगत्।।

मन्त्र के तीन कूट एवं पन्द्रह अक्षर हैं। सोलहवाँ अक्षर गुरुमुख से गृहीत करने पर मन्त्र 'षोडशी मन्त्र' बन जाता है।

१. भगवती का मुख— वाग्भव कूट : आग्नेय।
२. भगवती का कटिप्रदेश— कामकलाकूट : सौर।
३. भगवती के कटि के नीचे का भाग— शक्तिकूट : चान्द्र।

द्वितीय एवं तृतीय कूट के मध्य में स्थित हल्लेखा— विष्णुग्रन्थि।

चतुर्थ पाद एकाक्षरी लक्ष्मीबीज है, जो कि गुरुमुखैकगम्य है। इसे 'चन्द्रकला' कहते हैं। इसके एवं तृतीय शक्तिकूट के मध्य हल्लेखा 'ब्रह्मग्रन्थि' है।

षोडशी विज्ञान— सोलह अक्षरों का यह मन्त्र षोडशी विद्या के नाम से प्रख्यात है। सोलह अक्षर सोलह नित्यायें हैं।

अन्तिम एकाक्षरी लक्ष्मी बीज ही 'नित्या' है। वह 'पराकला' है और उसके कारण ही समस्त विद्या 'श्रीविद्या' कहलाती है। यह पराकला, शुद्ध चिति शक्तिस्वरूपा एवं सहस्रार में स्थित सोलहवीं चान्द्रकला है और विशुद्धचक्र के सोलह पत्रों पर प्रतिबिम्बित रहती है। प्रथम कला का प्रकाश पूर्व से आरब्ध होकर सोलहवीं कला के ईशान पूर्व कोण के पत्र पर स्थित है। सोलहवीं कला के अधीन ही अन्य कलायें भी घटती-बढ़ती रहती हैं; अत: वे स्वतन्त्र नही हैं; जबकि 'षोडशी' स्वतन्त्र है। शुक्ल एवं कृष्णपक्ष की तिथियाँ, पूर्णिमा एवं अमावास्यासमेत सोलह चान्द्र कलायें हैं। ये कलायें शुक्लपक्ष में सूर्य के योग से उदित होती हैं और कृष्णपक्ष में सूर्य में ही अस्त हो जाती हैं।

१. प्रथम कला शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को उदित होकर कृष्णपक्ष की प्रतिपदा में अस्त हो जाती है।

२. द्वितीय कला शुक्लपक्ष की द्वितीया तिथि को उदित होकर कृष्णपक्ष की द्वितीया तिथि में अस्त हो जाती है।

३. इसी प्रकार अन्य कलायें भी उदित होकर अस्त हो जाती हैं।

४. पूर्णिमा की पूर्ण कला अमावास्या में अस्त हो जाती है।

५. अमावस्या की तिथि में पूर्णिमा की कला का अस्त हो जाने पर जो 'चान्द्र कला' शेष रह जाती है वही सोलहवीं 'नित्या कला' है; क्योंकि चन्द्रमा का वही वास्तविक बिम्ब प्रत्येक कला में सूर्य के प्रकाश से घटती-घटती कलाओं के रूप में चमका करता है।

६. शुद्ध 'चिति शक्ति' की पन्द्रह कलायें 'पञ्चदशी' के पन्द्रह अक्षरों से सम्बद्ध हैं और सोलहवीं कला शुद्ध चिति शक्ति 'निर्विकल्प' समाधि में आसीन महात्रिपुरसुन्दरी है। चन्द्र का बिम्ब सदा एकरस, वृद्धि-ह्रासशून्य एवं समरस रहता है; अत: प्रत्येक कला को सोलहवीं कला का ही अंग समझना चाहिये। प्रत्येक कला का पूजन एवं ध्यान उस कला की सम्बन्धित तिथि में सोलहवीं कलासहित किया जाता है।

जब कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार में आरोहण करती है तब चन्द्रमण्डल में छिद्र कर देती है और उस छिद्र से पीयूष स्रवित होने लगता है एवं आज्ञाचक्र को अमृतमय कर देता है। उससे वहाँ पर चन्द्रमा की समस्त कलायें नित्य चमकने लगती हैं और उनका नाम 'नित्या' कहलाने लगता है। फिर ये कलायें विशुद्ध चक्र पर उतर कर सोलह

पंखुड़ियों पर प्रकाशित हो उठती हैं। सहस्रार के मध्य में स्थित चन्द्रमण्डल को 'बैन्दवस्थान' कहते हैं। यह शुद्ध चिति शक्ति की आनन्दमयी कला का स्थान है। इसी को 'श्री' या 'महात्रिपुरसुन्दरी' कहते हैं।

पञ्चदशी के पन्द्रह अक्षर पन्द्रह तिथियों से सम्बद्ध हैं। षोडशी का सोलहवाँ अक्षर चितिस्वरूपा अमावास्या या 'निर्विकल्प समाधि' है। 'श्रीविद्या' त्रिपुरास्वरूप है और त्रिपुरा देवी के दो पक्ष हैं— संवित्ति और विमर्श। कहा भी है—

'स्वसंवित्त्रिपुरादेवी लौहित्यं तद्विमर्शनम्।'

उनका लौहित्य वर्ण उनके 'विमर्श' का प्रतीक है; अत: विमर्श 'श्रीविद्या' का प्राण-तत्त्व है।

चन्द्रमा की षोडशी कला अमृतस्वरूपा एवं बिन्दुस्वरूपा है। वास्तविक पूर्णिमा 'षोडशी' है, पञ्चदशी नहीं; क्योंकि षोडशी में ह्रास-वृद्धि नहीं है। बिन्दु में पन्द्रह कलायें तो हैं; किन्तु एक कला, जिसे 'अमृतकला' या 'षोडशी' कहते हैं, नहीं है।

आनन्द ही अमृत है। चन्द्रकला से उसका उन्मेष होता है। बौद्धदर्शन के अनुसार बोधिचित्त के 'अवधूती मार्ग' से ऊर्ध्वारोहण करने पर अनेकविध आनन्दों का उन्मेष होता है। षोडश कलात्मक चन्द्रमा की प्रथम पाँच कलाओं से 'धर्मचक्र' में परमानन्द का आविर्भाव होता है और मध्य की पाँच कलाओं और अन्तिम पाँच कलाओं से अन्य प्रकार के दो आनन्दों का आविर्भाव होता है। अमृतानामक षोडशी कला महासुख चक्र में सहजानन्दरूप में अनुभूत होती है। यही 'अमृतकला' मानवकलेवर को अमरता प्रदान करती है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी षोडशकलात्मिका हैं। 'वासनासुभगोदय' में कहा भी गया है—

दर्शाद्या पूर्णिमान्ताद्या: कला: पञ्चदशैव तु।
षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।।

चन्द्रमण्डल में 'सादाख्या कला' वृद्धि-ह्रासरहित मात्र एक ही कला है; अन्य जो पन्द्रह कलायें हैं वे वृद्धि-क्षयोपेता हैं। भगवती इसी 'सादाख्या कला' का स्वरूप हैं और यह चिद्रूपा कला एवं त्रिपुरसुन्दरी अभिन्न हैं। सौभाग्यभास्कर में भास्कर राय कहते हैं—

'चन्द्रमण्डले हि सादाख्या कलावृद्धिह्रासरहितैका। अन्या: पञ्चदश यातायात-भागिन्य:। तदभिन्नाया: श्रीदेव्या अपि चिद्रूपा कला त्रिपुरसुन्दरी पदवाच्यैका।'

अन्य जितनी भी कलायें हैं वे परिवर्तनशील हैं। उनमें से ही एक कला षोडशी है, जिसके कारण ही श्रीविद्या का नाम 'श्रीविद्या' पड़ा। वह श्रीविद्या गुरुमुखैकगम्या है। आचार्य भास्कर राय ने सौभाग्यभास्कर में इसकी पुष्टि इन शब्दों में की है—

'अन्यास्तु कामेश्वर्यादिचित्रान्तास्तिथिभेदेन विपरिवर्तमाना:। तदभिन्नायां पञ्चदश्याम-प्येकमक्षरं गुरुमुखैकवेद्यं चिद्रूपं यद्वशादस्या: श्रीविद्येति संज्ञा। अन्यानि च पञ्चदशाक्षराणि सर्वैरुपासकै: श्रूयमाणानि नित्या स्वरूपाणि। एवं चन्द्रमण्डल देवी पञ्चदशी नामैक्यमिति

तत्तत्कलाक्षराणामप्यैक्यमेव; अतएव पञ्चदशसङ्ख्यानां तिथीनामक्षराणामपि त्रिखण्डत्वं यथा— 'नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा' इति त्रिरावृत्तेन भेदेन वाग्भवादिकूटभेदेन च। अतएव खण्डत्रयेणैव तैत्तिरीया: शुक्लपक्षरात्रीणां पञ्चदशानां नामान्यामनन्ति। 'दर्शा दृष्टा दर्शना विश्वरूपा सुदर्शना आप्यायमानाप्यायमानाप्याय सूनृतेरापूर्यमाणा पूरयन्ती पूर्णा पौर्णमासी'– इति।[१]

अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि— आचार्य अभिनवगुप्तपाद श्रीतन्त्रालोक (षष्ठाह्निक) में कहते हैं कि चन्द्रमा से पीयूष सतत् स्रवित होता रहता है। यह दो प्रकार का होता है—

क. प्रत्यक्ष ज्योतिश्चक्रदृष्ट चन्द्रमा की कलाओं के रूप में। पूर्णिमा से (अमावास्या के पूर्व चतुर्दशी तक) इसे देवता पीते रहते हैं। करण देवियाँ श्वास में भी पीती रहती हैं।

ख. अतिनिर्मल शुद्ध 'अप्' तत्त्व रूप में। पन्द्रह कलाओं को ही देवता पी सकते हैं; अत: यह प्रतिदिन घटते-घटते अमावास्या के दिन समाप्त हो जाता है। पञ्चदशी (श्लोक-८) में कहा भी गया है—

यस्मिन् सोम: सुरपितृनरैरन्वहं पीयमान:।
क्षीण: क्षीण: प्रविशति ..... ।।

देवों, पितरों और मनुष्यों द्वारा चन्द्र का प्रतिदिन पान किया जाता है और क्षीण होता हुआ अन्तत: अमा के आक्रोश में समा जाता है।

यह 'अमा कला' शेष रहने वाली सोलहवीं 'षोडशी कला' है। यह गुहा के भीतरी भाग में सुरक्षित है। इसी में पन्द्रहों कलायें आवास बना लेती हैं। फिर इसी से पूर्णिमा तक बढ़ती रहती है। इसी आवास के कारण इसे 'अमावास्या' कहते हैं। आचार्य अभिनव गुप्त कहते भी हैं—

अमृतं चन्द्ररूपेण द्विधा षोडशधा पुन:।।
पिबन्ति च सुरा: सर्वे दशपञ्चपरा: कला:।
अमा शेषगुहान्त:स्थामावास्या विश्वतर्पिणी।।

चन्द्रमा की कलाओं के क्रमश: क्षीण होने का यही कारण है। 'अमा कला' सूक्ष्म अप् तत्त्वरूपा है। इसीलिये सूर्य भी उसको सोख नहीं पाता। विश्व को आप्यायित करने वाली वही आप्यायनी कला 'षोडशी' कही जाती है, जो कि कभी भी क्षीण नहीं होती—

एवं कला: पञ्चदश क्षीयन्ते शशिन: क्रमात्।
आप्यायिन्यमृताब्रूपतादात्म्यात्षोडशी न तु।।

आचार्य जयरथ 'विवेक' में कहते हैं कि— अमा कला ही शेष रहने वाली षोडशी कला है।, यह गुहा के भीतर सुरक्षित रहती है।, पन्द्रहों कलाओं की यही आवासस्थली है।, यह अक्षीण, अपीत, नित्य एवं एकरस है—

१. भास्कर राय : सौभाग्यभास्कर, श्लोक- ११३ 'ललितासहस्रनाम'

'अमाख्या षोडशी पुनः कला सुराद्युपसंहृतकला पञ्चदशकावशिष्टस्वभावत्वाच्छेषरूपा; अतएव गुहान्तरितस्थितं वस्तु सुरक्षिततत्त्वादक्षीणं स्यात्तथैवेयमपीत्यर्थः। यतः सा विश्वस्य पञ्चदशकलाक्रोडीकारितयाऽऽप्यायकारिणी।'

सोलहवीं तुटि के भाग— आमावस्या भाग, प्रातिपद भाग। दोनों के मध्य में एक बिन्दु ऐसा भी है जहाँ तिथि की कल्पना सम्भव नहीं है। 'अमा कला' के परिवेश में चन्द्रमा पूरी तरह सूर्य में लीन हो जाता है और इसके कारण गर्म होकर अमृतमधु का स्राव करने लगता है।

'वासनासुभगोदय' के अनुसार दर्शा, दृष्टा, दर्शिता, विश्वरूपा, सुदर्शना, आप्यायमाना, आप्यायमाना, आप्याया, सूनृता, इरा, आपूर्यमाणा, आपूर्यमाणा, पूर्णायन्ती, पूर्णा एवं पूर्णमासी— ये पन्द्रह कलाओं के नाम हैं। शुक्लपक्षीय तिथियों की अधिष्ठात्री देवियाँ श्रीचक्रस्थ पन्द्रह नित्यायें हैं। सोलहवीं नित्या चिद्रूपात्मिका है और सदाशिवरूपा होने के कारण सबकी अधिष्ठात्री 'अमावास्या' तिथिरूपा है। वह स्वयं नित्याओं के रूप में प्रकाशित होने के कारण सभी की अधिष्ठात्री देवता है। 'पञ्चदशी' के पन्द्रह अक्षर ही पन्द्रह नित्यायें हैं। सोलहवीं कला 'श्री' है। उपर्युक्त पन्द्रह कलायें तीन खण्डों में विभक्त हैं—

१. पाँच कलायें— अग्नि।
२. पाँच कलायें— सूर्य।
३. पाँच कलायें— सोम।

सोलहवीं कला उपर्युक्त पन्द्रहों कलाओं से अतीत है और यह 'मधुकरी' है—

'इयं वाव सरघा।' (तैत्ति० ब्रा०-३.१०.१०)

सरघा = मधुमक्खी। ये रात में अमृत का निर्माण करती हैं। योगी भी दिन में नहीं; बल्कि रात्रि में ही 'कुण्डलिनी' का जागरण करते हैं। 'श्री' के उपासक भी शुक्लपक्ष की रात्रियों में ही अनुष्ठान करते हैं।

इन सोलह नित्याओं का स्थान विशुद्ध चक्र में है। 'चिति शक्ति' का शुद्ध स्वरूप सहस्रार में है, जिसकी कि ये सभी कलायें हैं। चूँकि कृष्णपक्ष की निशाओं का समावेश अमावास्या में होता है; अतः वे सब निषिद्ध हैं। चूँकि दिन में अमृत का स्राव होता है, इसीलिये दिन में कुण्डलिनी का प्रबोध निषिद्ध है।

शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष के दिनों के नाम निम्नांकित हैं—

शुक्लपक्ष के दिनों के नाम—

१. संज्ञानम्	६. संकल्पमानम्	१०. क्लृपम्	१४. सम्भूतम्
२. विज्ञानम्	७. प्रकल्पमानम्	११. श्रेयो	१५. भूतम्
३. प्रज्ञानम्	८. उपकल्पमान	१२. वसीव	
४+५. जानदभिजनत्	९. उपक्लृपम्	१३. आयत्	

कृष्णपक्ष के दिनों के नाम—

१. प्रस्तुतम्	६. शक्रम्	११. अरुणम
२. विष्टुतम्	७. अमृतम्	१२. भानुमन
३. संस्तुतम्	८. तेजस्वि	१३. मरीचिमद
४. कल्याणम्	९. तेजः	१४. अभितपत्
५. विश्वरूपम्	१०. समिद्धम्	१५. तपस्वत्

इसकी फलश्रुति—

स यो ह वा एता मधुकृतश्च मधुवृषांश्च वेद।
कुर्वन्ति हास्यैता अग्नौ मधु।
नास्येष्टापूर्तं धयन्ति अथ यो न वेद न हास्यैता।
अग्नौ मधु कुर्वन्ति धयन्त्यस्येष्टापूर्तम्।।

(तैत्तिरीय ब्रा०-३.१०.१)

दर्शा = शुक्ल प्रतिपदा

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से पूर्णमासी तक पन्द्रह कलायें होती हैं और ये पञ्चदशी के पन्द्रह अक्षरों के समतुल्य हैं। ये पन्द्रह कलायें नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा के भेद से तथा वाग्भव, कामकला एवं शक्तिकूट के त्रिरावृत्त भेद से वृद्धि करती हैं।

द्वितीय कूट में छः अक्षर और 'शान्तिकूट' में चार अक्षर होने के कारण पञ्चदशी के पाँच-पाँच अक्षरों से तीन खण्ड हैं।

'कामराज कूट' की अन्तिम 'हल्लेखा' एकादशी होती है और दशमी से विद्धा होने के कारण उसे दशमी कला के ही अन्तर्गत मानना चाहिये; किन्तु उसका योग 'शक्तिकूट' के प्रथमाक्षर के साथ (जो द्वादशी है) तृतीय खण्ड की प्रतिपूर्ति करता है।

'उपोष्या द्वादशी शुद्धा' नियमानुसार द्वादशी ही एकादशी मानी जानी चाहिये एवं दोनों कूटों का योग मान लेना चाहिये। उन्नेय भूमिका में यही भावना स्वीकरणीय है। इस प्रकार भावना करने से प्रथम कूट को अधः सहस्रार से उत्थित करके अनाहत चक्र में उसका विलीनीकरण होता है। द्वितीय कूट को अनाहत चक्र से उठाकर उसका 'निरोधिका' में विलीनीकरण एवं तृतीय को 'निरोधिका' से उठाकर उसका 'व्यापिका' में विलीनीकरण होता है। 'निरोधिका' से 'नाद' तक एकादशी का द्वादशी में एवं नीचे अर्धचन्द्रिका से दशमी में संक्रमण होता है।

'पञ्चदशाक्षरी मन्त्र' के तीनों कूटों के पाँच-पाँच अक्षरों के तीन खण्ड करने से प्रथम, छठवाँ एवं ग्यारहवाँ अक्षर 'नन्दा'; दूसरा, सातवाँ एवं बारहवाँ अक्षर 'भद्रा'; तीसरा, आठवाँ एवं तेरहवाँ अक्षर 'जया'; चौथा, नवाँ एवं चौदहवाँ अक्षर 'रिक्ता' तथा पाँचवाँ, दसवाँ एवं पन्द्रहवाँ अक्षर 'पूर्णा' स्वीकरणीय है।

ऐसी स्थिति में 'पञ्चदशी मन्त्र' का वाग्भव कूटरूपी मुख, जो अधोमुख है— शक्तिकूटरूपी कटि प्रदेश का ऊर्ध्वमुखी भाग सीधा ऊर्ध्वमुख हो जाता है।

द्वितीय प्रकार की भावना में विशुद्ध चक्र के सोलह पत्रों पर पूर्व से अग्नि, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर एवं ईशान दिशाओं में क्रमानुसार सोलह अक्षरों की भावना की जाती है। ये सोम कलाओं की भाँति चमकते हैं; जो कि सहस्रार चक्र की पूर्ण कला के बिम्ब से आज्ञाचक्र पर होती हुई नीचे के विशुद्ध चक्र पर प्रतिबिम्बित होती है। इस प्रकार चिति शक्ति का सम्बन्ध सोलह नित्या कलाओं से, उनका सम्बन्ध मन्त्र से, मन्त्र का सम्बन्ध 'सुषुम्ना' से, सुषुम्ना का सम्बन्ध 'मातृका' से, मातृका का सम्बन्ध 'इडा-पिंगला' से एवं उनका सम्बन्ध तत्सम्बद्ध 'सूर्य', अग्नि एवं 'चन्द्र' से है।

पञ्चदशी मन्त्र के पन्द्रह अक्षरों का सम्बन्ध पन्द्रह तिथियों से है और षोडशी का सोलहवाँ अक्षर चितिरूपात्मिका अमावास्या (निर्विकल्प समाधि) है।

दशमीविद्धा एकादशी उपोष्या नहीं होती; प्रत्युत द्वादशीविद्धा होनी चाहिये, अन्यथा शुद्ध द्वादशी ही उपोष्या माननी चाहिये। यही क्रम मन्त्र के जप एवं न्यास में भी मानना चाहिये।

मूलाधार से लेकर आज्ञाचक्र के ऊपर 'निरोधिका' तक 'दशमी' रहती है। निरोधिका पर एकादशी आती है और उसके ऊपर 'नाद' पर 'द्वादशी' का स्थान है। नीचे के चक्रों का सम्बन्ध पाँच कर्मेन्द्रियों से है और 'आज्ञा' से 'अर्धेन्दु' तक पाँच ज्ञानेन्द्रियों के स्थान हैं अर्थात् दश तिथियों एवं दश अक्षरों का सम्बन्ध दश इन्द्रियों से रहता है।

मन 'एकादशी' है। उसका योग जब तक इन्द्रियों से बना रहता है, तब तक वह उपोष्या नहीं होती (ब्रह्मबहिर्मुख रहती है)। बुद्धि को 'द्वादशी', चित्त को 'त्रयोदशी', अहंकार को 'चतुर्दशी' और महत्तत्त्व को 'पूर्णिमा' मानना चाहिये। 'अमावास्या' निर्विकल्प स्थिति है। अव्यक्त कामेश्वरी है। उसे चितिस्वरूपा ज्ञानाग्नि से शुद्ध करना चाहिये।

मन की मात्रा जितनी ही क्षीण होती जाती है, काल का स्पर्श उतना ही कम होता जाता है। क्षीयमाण मन मात्र 'समना' तक रहता है, उसके बाद नहीं। 'बिन्दु' पूर्णिमा है, उसके बाद ही कृष्णपक्ष उदित होता है। समना कृष्ण चतुर्दशी एवं उन्मना अमावास्या है। समना में मन नहीं; अपितु संस्कार है। 'असम्प्रज्ञात समाधि' में चित्त वृत्तिरूप से नहीं रहकर संस्काररूप से रहता है।

षोडशी— 'बिन्दु' को 'पूर्णिमा' कहा तो गया है, किन्तु वह यथार्थ में पूर्णिमा नहीं है। यथार्थ 'पूर्णिमा' तो पञ्चदशी नहीं; बल्कि 'षोडशी' है। यथार्थ पूर्णिमा होने पर तो वह नित्य अक्षुण्ण रहती और कृष्णपक्ष आता ही नहीं; जबकि कृष्णपक्ष ही कालग्रास है। 'बिन्दु' में पन्द्रह कलायें तो हैं; किन्तु एक कला नहीं है। उसमें षोडशी कला 'अमृत कला' नहीं है। 'उन्मना' में पन्द्रह कलायें नहीं हैं; अपितु उसमें गुप्त कला 'षोडशी' का

आभास है। षोडशी के न रहने पर ही कालचक्र का आवर्तन होता है— षोडशी रहती तो अमावास्या के बाद शुक्लपक्ष नहीं रहता। षोडशकल पुरुष में 'अमृतकला' है और यही यथार्थ 'अमाकला' है। शेष पन्द्रह कलायें तो कालसंस्पृष्ट हैं।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप : कामकलाविलास

कौलक्रमानुयायी पुण्यानन्द 'कामकलाविलास' में कहते हैं कि माता, मान, मेय या ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय की त्रिपुटी ही तीनों 'पुर' हैं, जिनकी स्वामिनी 'त्रिपुरा' देवी हैं और इन त्रिपुटियों में तत्त्व केवल एक ही है। जिसने इस एकत्व का अनुभव कर लिया, वह साक्षात् महात्रिपुरसुन्दरी है—

माता मानं मेयं बिन्दुत्रयभिन्नबीजरूपाणि
धामत्रयपीठत्रयशक्तित्रयभेदभावितान्यपि च।
तेषु क्रमेण लिङ्गत्रितयं तद्वच्च मातृकात्रितयम्
इत्थं त्रितयपुरी या तुरीयपीठादिभेदिनी विद्या।।

इति कामकलाविद्यादेवी चक्रक्रमात्मिका सेयम्।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपः।।

महाबिन्दु और भगवती त्रिपुरसुन्दरी— प्राणापान की गति जिस स्थान पर उत्पन्न होती है और जहाँ जाकर रुक जाती है, उसे 'द्वादशान्त' कहते हैं। 'शिवद्वादशान्त' और 'शक्तिद्वादशान्त' (बाह्य + आन्तर)— ये दो द्वादशान्त हैं।

'नेत्रतन्त्र' की टीका में क्षेमराज एवं 'तन्त्रालोक' की टीका में जयरथ ने 'द्वादशान्त' पद का अर्थ इस प्रकार किया है— 'शिखाग्र में स्थित ऊर्ध्व द्वादशान्त'। यह द्वादश आधारों के अन्त में है। निर्विकल्प योगी द्वादशान्त के ऊपर परमाकाश या महाबिन्दु में— अनुत्तर शून्य में लय होकर पूर्णत्व प्राप्त कर लेता है; यह परमाकाश ही महाबिन्दु है। आज्ञा तक का स्तर = 'सकल'; उन्मना तक का स्तर = 'सकलनिष्कल'; एवं महाबिन्दु = निष्कल माना जाता है। इसी निष्कल स्वरूप में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी निवास करती हैं। इसकी शक्ति के विना शिव भी शव हो जाता है। इसे ही 'पराशक्ति' एवं 'शैवीमुख' कहा गया है। इस 'निष्कल पराशक्ति' की शक्ति से शिवस्वरूप अभिव्यक्त हो पाता है—

समना चोन्मना चेति द्वादशान्ते स्थिताः प्रिये।
मूलकुण्डलिनीरूपे मध्यमे च ततः पुनः।।
(योगिनीहृदय-३.१७४)

कामबीज एवं त्रिपुराभैरवी— जिस स्थान पर 'कुण्डलिनी देवी' अधिष्ठित हैं उस 'योनिमण्डल' में बन्धूक के पुष्प के समान 'कामबीज' स्थित है, जो कि स्वच्छ स्वर्ण के समान कान्तिमान है—

तत्र बन्धूकपुष्पाभं कामबीजं प्रकीर्तितम्। (शिवसंहिता-५.६०)

इसी बीज में सुषुम्णा नाड़ी जुड़ी हुई है—

सुषुम्णापि च संश्लिष्टा बीजं तत्र वरं स्थितम्।। (शिवसंहिता)

यह बीज शरच्चन्द्र के समान, सूर्यकोटिप्रतीकाश एवं चन्द्रकोटिसुशीतल है। यह तेजत्रय से संवलित है। तेज, सूर्य एवं चन्द्रमा— तीनों के मिलने से इसे त्रिपुराभैरवी कहा गया है—

सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्।
एतत्त्रयं मिलित्वैव देवी त्रिपुरभैरवी।। (शिवसंहिता)

यह 'कामबीज' अग्नि की शिखा के समान रूप वाला है। इसी में योनिस्थित परम-तेजोरूप 'स्वयम्भू लिंग' स्थित है। तेज (अग्नि), सूर्य एवं चन्द्रमा (लं खं ठं) तीनों एकाश्रित होकर कामबीजनामक मूलाधारस्थित यह बीज 'त्रिपुराभैरवी' के नाम से प्रसिद्ध है—

कुलाभिधं सुवर्णाभं स्वयम्भूलिङ्गसङ्गतम्
द्विरण्डी यत्र सिद्धोऽस्ति डाकिनी यत्र देवता।
तत्पद्ममध्यगा योनिस्तत्र कुण्डलिनी स्थिता
तस्या ऊर्ध्वे स्फुरत्तेजः कामबीजं भ्रमन्मतम्।। (शिवसंहिता)

मूलाधारोऽस्ति यत्पद्मं चतुर्दलसमन्वितम्।
तन्मध्ये वाग्भवं बीज विस्फुरन्तं तडित्प्रभम्।।
हृदये कामबीजं तु बन्धूककुसुमप्रभम्।। (शिवसंहिता)

अनुष्ठाने कृते धीमान् पूर्वसेवा कृता भवेत्।
ततो ददाति कामान् वै देवी त्रिपुरभैरवी।। (शिवसंहिता)

बीजत्रय—

१. मूलाधार पद्म के मध्य में— 'वाग्भवबीज'
२. हृदय में बन्धूककुसुम की भाँति— 'कामबीज'
३. आचाचक्र में चन्द्रकोटिप्रतीकाश— 'शक्तिबीज' (शिवसंहिता)

१. मूलाधारोऽस्ति यत्पद्मं चतुर्दलसमन्वितम्।
तन्मध्ये वाग्भवं बीजं विस्फुरन्तं तडित्प्रभम्।।

२. हृदये कामबीजं तु बन्धूककुसुमप्रभम्।
३. आज्ञारविन्दे शक्त्याख्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम्।
४. बीजत्रयमिदङ्गोप्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।

क. वाग्भव बीज = तडित्प्रभ : मूलाधार के पद्म में।
ख. काम बीज = बन्धूककुसुमप्रभ : हृदय में।
ग. शक्ति बीज = चन्द्रकोटिसमप्रभ : आज्ञाचक्र में।

षटचक्रनिरूपण में कहा गया है—

वज्राख्या वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिकामध्यसंस्थं
कोणं तत्त्रैपुराख्यं तडिदिव विलसत्कोमलं कामरूपम्।
कन्दर्पो नाम वायुर्निवसति सततं तस्य मध्ये समन्तात्
जीवेशो बन्धुजीवप्रकरमभिहसन् कोटिसूर्यप्रकाशः।

भगवती की नखशक्ति

भगवती की उँगलियों के नख एवं भगवान् के दशावतार—

कराङ्गुलिनखोत्पन्ननारायणदशाकृतिः। (ललितासहस्रनाम-३२.४०)

सर्वोपरि महाशक्ति ललिताम्बा के करनख की एक-एक कला से एक-एक अवतार का आविर्भाव हुआ है; यथा—

१. उनके दक्षिण करांगुष्ठ के नख से → मत्स्यावतार → शंखासुरवध एवं वेदों की रक्षा।

२. उनके हाथ की तर्जनी के नख से → कूर्मावतार → मन्दराचल को पीठ पर उठाया और देवासुर कार्य सम्पन्न।

३. उनकी मध्यमा के नख से → वराहावतार → पृथ्वी को अपने दाढ़ से उठाकर उसे पाताल से नीचे लाये और हिरण्याक्ष का वध किया।

४. अनामिका के नख से → नृसिंहावतार → हिरण्यकशिपु का वध तथा प्रह्लाद की रक्षा।

५. कनिष्ठा के नख से → वामनावतार → तीन पग में तीनों लोक नाप कर बलि को राक्षसों के सहित पाताल भेज दिया।

६. वामाङ्गुष्ठ नख → परशुरामावतार → इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार।

७. वामहस्त की तर्जनी नख → रामावतार → रावण का वध।

८. वामहस्त की मध्यमा का नख → कृष्णावतार → कंसवध, गोपलीला, गोपीलीला, महाभारत के रण में भूमिका।

९. वामहस्त की अनामिका का नख → बौद्धावतार।

१०. वामहस्त की कनिष्ठिका का नख → कलि में अश्वावतार → स्वरखुराघात द्वारा पृथ्वी का समतलीकरण।[१]

दशावतारों का भगवती के साथ तादात्म्य[२]—

१. बगलामुखी = कूर्मावतार
२. धूमावती = वराहावतार
३. छिन्नमस्ता = नृसिंहावतार
४. भुवनेश्वरी = वामनावतार

---

१. शक्ति अंक (४३२) २. तोडलतन्त्र।

५. त्रिपुरा = जामदग्न्यवतार ८. दुर्गा = कल्कि अवतार
६. भैरवी = बलभद्रावतार ९. भगवती काली = कृष्णावतार
७. महालक्ष्मी = बुद्धावतार १०. मातंगी = रामावतार

तारादेवी नीलरूपा बगला कूर्ममूर्तिका।
धूमावती वराहः स्याच्छिन्नमस्ता नृसिंहिका।।
भुवनेश्वरी वामनः स्यान्मातङ्गी राममूर्तिका।
त्रिपुरा जामदग्न्यः स्याद्बलभद्रस्तु भैरवी।।
महालक्ष्मीर्भवेद्बुद्धो दुर्गा स्यात्कल्किरूपिणी।
स्वयं भगवती काली कृष्णमूर्तिः समुद्भवा।।
इति ते कथितं देव्यवतारं दशमेव हि।।

भगवती का कूटस्वरूप

श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा ।
कण्ठाधःकटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी।
शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिणी ।। (ललितासहस्रनाम)

वे मूलमन्त्रात्मिका भी हैं— 'मूलमन्त्रात्मिका सर्वमन्त्रस्वरूपिणी।'

भगवती का मन्त्रस्वरूप

मुख	कटि	अधोभाग
(वाग्भवकूट)	(कामराजकूट)	(शक्तिकूट)

भगवती का रथ = श्रीयन्त्र— चक्रराजरूढ़ा, गेयचक्ररथारूढा। (ललितासहस्रनाम)

दाँत = 'शुद्धविद्या'— शुद्धविद्याङ्कुराकारद्विजपंक्तिद्वयोज्ज्वला। (ललितासहस्रनाम)

भगवती का स्वरूप

महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान— त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में कहा गया है कि भगवती का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये कि वह महात्रिपुरसुन्दरी कामाख्यास्वरूपा, तुरीयरूपा, तुरीयातीत, सर्वोत्कटा, सर्वमन्त्रासनगता, पीठोपपीठदेवतापरिवृता, सकलकलाव्यापिनी देवता, सामोदा, सापरागा, सहृदया, सामृता, सदोदिता, परा विद्या, त्रिकूटा, त्रिपुरा, परमा माया, श्रेष्ठा, परा वैष्णवी, हृदयकमलकर्णिकासंस्थिता, परा, भगवती लक्ष्मी, माया, सदोदिता, महावश्यकरी, मदनोन्मादनकारिणी, धनुर्बाणधारिणी, वाग्विजृम्भिणी, चन्द्रमण्डल-मध्यवर्तिनी, चन्द्रकला, सप्तदशी, महानित्योपस्थिता, पाशांकुशमनोज्ञपाणिपल्लवा, समुद्यद-र्कनिभा, त्रिनेत्रा, महालक्ष्मी, त्रिकूटाख्या, स्मितमुखी, सुन्दरी, महामाया, सर्वसुभगा, महा-कुण्डलिनी, त्रिपीठमध्यवर्तिनी, अकथादिपीठसमासीना, परा भैरवी, चित्कला महात्रिपुरा हैं—

'कामाख्यां तुरीयरूपां तुरीयातीतां सर्वोत्कटां सर्वमन्त्रासनगतां पीठोपपीठदेवतापरिवृतां सकलकलाव्यापिनी देवतां सामोदां सपरागां सहृदयां सामृतां सकलां सेन्द्रियां सदोदितां परां विद्यां स्पष्टीकृत्वा हृदये निधाय विज्ञायानिलयं गमयित्वा त्रिकूटां त्रिपुरां परमां मायां श्रेष्ठां परां वैष्णवीं सन्निधाय हृदयकमलकर्णिकायां परां भगवतीं लक्ष्मीं मायां सदोदितां महावश्यकरीं मदनोन्मादकारिणीं धनुर्बाणधारिणीं वाग्विजृम्भिणीं चन्द्रमण्डलमध्यवर्तिनीं चन्द्रकलां सप्तदशीं महानित्योपस्थितां पाशाङ्कुशमनोज्ञपाणिपल्लवां समुद्यदर्कनिभां त्रिनेत्रां विचिन्त्य देवीं महालक्ष्मीं सर्वलक्ष्मीमयीं सर्वलक्षणसम्पन्नां हृदये चैतन्यरूपिणीं, निरञ्जनां त्रिकूटाख्यां स्मितमुखीं सुन्दरीं महामायां सर्वसुभगां महाकुण्डलिनीं त्रिपीठमध्यवर्तिनीम-कथादिश्रीपीठे परां भैरवीं चित्कलां महात्रिपुरां देवीं ध्यायेन्महाध्यानयोगेनेयमेवं वेदेति महो-पनिषत्।'

ललितासहस्रनाम की दृष्टि— ललितासहस्रनाम के अन्त में भगवती महात्रिपुर सुन्दरी का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

श्रीचक्रराजनिलया श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।
श्रीशिवाशिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बिका।।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी बिन्दु, त्रिकोणादि नव योनियों से निर्मित उस 'श्रीचक्र' में निवास करती हैं, जो शिव एवं शक्ति दोनों का शरीर है। जिस प्रकार जीव शरीर में निवास करता है, उसी प्रकार भगवती 'श्रीचक्र' में निवास करती हैं।

भगवती श्रीमत् अर्थात् श्रीयुक्त हैं और त्रिपुरसुन्दर (परमशिव) की भार्या हैं। वे त्रिपुरात्मिका हैं। त्रिपुर (परमशिव) वे शिव हैं, जिनका शरीर ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रस्वरूप तीन पुरों से निर्मित है। कालिकापुराण में कहा गया है कि प्रधान की इच्छा से शिव का शरीर तीन रूप वाला बन गया। महेश्वर का ऊर्ध्व भाग पञ्चमुखी ब्रह्मा बन गया, मध्य भाग नीलवर्णी एवं एकमुखी विष्णु बन गया तथा निम्न भाग पञ्चमुखी, चतुर्भुजी श्वेता-भ्रवर्ण रुद्र बन गया।

चूँकि शिव में ये तीन 'पुर' हैं; अतः वे 'त्रिपुर' कहलाते हैं। उन त्रिपुर से युक्त रहने वाली होने के कारण ही भगवती 'त्रिपुरा' या 'त्रिपुरसुन्दरी' कहलाती हैं।

भगवती सामरस्यस्वरूपा हैं— श्रीशिवाशिवशक्त्यैक्यरूपिणी हैं। श्रीशिव (श्रीयुक्त शिव, दिव्य एवं दैवीय शिव) = भगवान् (भग = ऐश्वर्य, श्री = ऐश्वर्य) = ऐश्वर्य-वान् शिव। भगवती का स्वरूप ऐश्वर्यवान् शिव एवं श्रीसंयुक्ता त्रिपुरा ललिता देवी का सामरस्य है।

'वायवीय साम' में कहा गया है कि शिव की इच्छा से 'परा शक्ति' शिवतत्त्व के साथ ऐकात्म्य प्राप्त करती है; फिर वह शक्ति सृष्टि-काल में अपने को उसी प्रकार व्यक्त करती है, जिस प्रकार तिल से तैल। 'सामरस्य' का अर्थ है— सर्वोच्च, परम, चरम साम्य

अर्थात् पूर्ण ऐकात्म्य। 'सौरसाम' में कहा गया है— 'शक्ति, जो कि ब्रह्म से पृथक् है, वह यथार्थत: ब्रह्म से भिन्न नहीं है; अत: अज्ञजन ही उसे ब्रह्म से भिन्न मानते हैं, किन्तु दोनों में भिन्नता खोज पाना असम्भव है; अत: शक्ति एवं शक्तिमान में कोई भिन्नता नहीं है। 'वाल्मीकीय रामायण' भी इसी की पुष्टि करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार केवल एक वायु की ही गति है, केवल एक ही 'उड्डीयान पीठ' है एवं केवल एक ही व्यक्त 'चित् शक्ति' है उसी प्रकार केवल एक ही 'सामरस्य' है और वह है— शिव एवं शक्ति का सामरस्य।

'शिवशक्त्यैक्य' इस भाव को भी बोधित करता है कि शिवचक्र (शिव) एवं शक्ति-चक्र (शक्ति) का सामरस्य ही भगवती का अद्वैत रूप है। इसका अर्थ यह हुआ कि 'शिवचक्र' एवं 'शक्तिचक्र' से निर्मित विराट् 'श्रीचक्र' एवं उसमें निहित अनन्त ब्रह्माण्डात्मक विश्व (पिण्ड, ब्रह्माण्ड, प्रकृत्यण्ड, शक्त्यण्ड, शिवाण्ड आदि) के स्वरूप वाली वे भगवती विश्वरूपात्मिका हैं।

ब्राह्मपुराण में ठीक ही कहा गया है कि बिन्दु में अष्टार एवं अष्टदल पद्म का सामरस्य आवश्यक है। जो श्रीचक्र में शिवसम्बद्ध चक्रों एवं शक्तिसम्बद्ध चक्रों के सम्बन्ध को जानता है, वही ज्ञानी है।

हंसनामक मन्त्र में शिव एवं शक्ति दोनों का सामरस्य है। 'स' शक्ति है और बीज है— 'ह'। शिव की शक्ति 'स' है तथा 'ह' बीजशक्ति 'विद्याशक्ति' है अर्थात् शिव है; अत: सर्वोच्च मन्त्र शिव एवं शक्ति दोनों हैं, दोनों का सामरस्य है।

विरूपाक्षपञ्चाशिका में कहा गया है कि 'धूमावती' निरावृत्त होती है। 'भास्वती' प्रकट होती है, 'स्पन्द' उत्प्रेरित करती है, 'विभ्वी' सर्वत्र व्याप्त होती है एवं 'ह्लादशक्ति' पोषण करती है। धूमावती शक्ति 'पृथ्वी', ह्लादशक्ति 'जल', भास्वती 'अग्नि', स्कन्द 'वायु' एवं विभ्वी 'आकाश' से सम्बन्ध रखती है; अत: समस्त विश्व शक्ति के द्वारा ही व्याप्त है। भगवती को 'ललिता' इसलिये कहा गया है, क्योंकि 'लोकानतीत्य ललते, ललिता तेन सोच्यते' अर्थात् लोकों या भावों से परे होती हुई लोकों या भावों को सुन्दर बनाने या उन्हें अव्यक्त से व्यक्त करने के कारण ही महाविद्या पराम्बा को 'ललिता' कहा गया है। चूँकि भगवती में सारे भाव सुन्दर हैं, उनका आकार, आयुध, द्वीप, स्वरूप, धाम एवं स्वभावादि सभी कुछ सुन्दर है; अत: वे 'सुन्दरी' कहलाती हैं और उन्हें 'त्रिपुरसुन्दरी' या 'सुन्दरी' भी कहा गया है। वे जगन्माता हैं; अत: उन्हें 'ललिताम्बिका' भी कहा गया है। भगवती सामरस्यस्वरूपा होने के कारण 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' का, श्रीचक्रराज-निलया होने के कारण 'विश्वस्वरूपा' होने का, शिवाशिवशक्त्यैक्यरूपिणी होने के कारण 'सामरस्यवाद' एवं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का, श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी होने के कारण समस्त ऐश्वर्यों, त्रिदेवों एवं समस्त सौन्दर्यों का, ललिता होने के कारण जगत् के समस्त लालित्यों (शुभों, कल्याणों, अभ्युदय-नि:श्रेयसों, श्रेय:प्रेयों) का एवं अम्बिका होने के कारण समस्त छत्तीस तत्त्वों, समस्त शक्तियों, समस्त षट्त्रिंशदात्मक जगत्, जगद्रचना,

सृष्टि की उद्भाविका एवं जगन्मातृत्व का बोध कराती हैं और तत्स्वरूपा हैं।

षोडशी— दश महाविद्याओं में एक महाविद्या 'षोडशी' भी है। इनमें षोडश कलायें पूर्णतया विकसित हैं; इसीलिये इन्हें 'षोडशी' कहा जाता है। 'षोडशी' माहेश्वरी शक्ति की सबसे अधिक मनोहर श्रीविग्रह वाली सिद्ध विद्यादेवी हैं। षोडशाक्षर मन्त्र वाली उन देवी की अंगकान्ति उदीयमान सूर्यमण्डल के प्रकाश के समान है। उनकी चार भुजायें और तीन नेत्र हैं। शान्त मुद्रा में लेटे हुये 'सदाशिव' के ऊपर स्थित कमल के आसन पर विराजिता षोडशी देवी के चारो हाथों में पाश, अंकुश, धनुष एवं बाण शोभायमान है। षोडशी कला सच्चिदानन्दरूपिणी है। त्रिपुरसुन्दरी षोडशकलात्मिका हैं। वासनासुभगोदय में कहा भी गया है—

दर्शाद्या पूर्णिमान्ताद्याः कलाः पञ्चदशैव तु।
षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।।

चन्द्रमण्डल में 'सादाख्या' वृद्धि-ह्रासरहित कला है, किन्तु अन्य पन्द्रह कलायें ह्रास-वृद्धियुक्त हैं। भासुरानन्दनन्द 'सौभाग्यभास्कर' में कहते हैं— 'चन्द्रमण्डले हि सादाख्या कलावृद्धिह्रासरहितैका। अन्याः पञ्चदश यातायातभागिन्यः।'

चिद्रूपा कला एवं महात्रिपुरसुन्दरी अभिन्न हैं; सौभाग्यभास्कर में कहा भी गया है— 'तदभिन्नायाः श्रीदेव्या अपि चिद्रूपा कला त्रिपुरसुन्दरीपदवाच्यैका।'[1]

त्रिमूर्ति— ललितासहस्रनाम में भगवती को त्रिपुरा, त्रिजगद्वन्द्या, त्रिमूर्ति और त्रिदशेश्वरी भी कहा गया है—

त्रिपुरा त्रिजगद्वन्द्या त्रिमूर्तिस्त्रिदशेश्वरी।

'त्रिमूर्तित्व' है क्या? वाराहपुराण में कहा गया है—

अन्यच्च कारणं देवि ! यद्वक्ष्यामि शृणुष्व तत्।
सितरक्तकृष्णवर्णैस्त्रिवर्णासि वरानने।।

मूर्तित्रयं तदा देवैरकरोत्त्रिविद्या तनुम्।
सितां रक्तां तथा कृष्णां त्रिमूर्तित्वं जगाम ह।।

इसी प्रकार ब्राह्मी, वैष्णवी, रौद्री (शक्तित्रय) का श्वेत मन्दिर, नीलपर्वत आदि में तपश्चर्या का वर्णन किया गया है और त्रिमूर्तित्व की पुष्टि भी की गई है—

एषा त्रिमूर्तिरुद्दिष्टा नयसिद्धान्तगामिनी।
एषा श्वेतपरा शक्तिः सात्त्विकी बालसंस्थितिः।।

एषैव रक्ता रजसि वैष्णवी परिकीर्तिता।
एषैव कृष्णा तमसि रौद्री देवी प्रकीर्तिता।।

---

१. कलायें : दर्शा दृष्टा दर्शना विश्वरूपा सुदर्शना आप्यायमानाप्यायमानाप्यायसूनृतेरापूर्यमाणा पूरयन्ती पूर्णा पौर्णमासी।

परमात्मा यथा देव एक एव त्रिधा स्थितः।
प्रयोजनवशाच्छक्तिरेकैव त्रिविधा भवेत्।।

त्र्यक्षरी— भगवती को 'त्र्यक्षरी' भी कहा गया है; ललितासहस्रनाम कहता है कि— 'त्र्यक्षरी दिव्यगन्धाढ्या।' अक्षरत्रय का समाहार ही तो त्र्यक्षरी है— 'त्रयाणामक्षराणां वाक्कामशक्तिबीजात्मकानां समाहारः।'

वामकेश्वरतन्त्र में कहा भी गया है—

वागीश्वरी ज्ञानशक्तिर्वाग्भवे मोक्षरूपिणी।
कामराजे क्रियाशक्तिः कामेशी कामरूपिणी।।

शक्तिबीजे परा शक्तिरिच्छैव शिवरूपिणी।
एवं देवी त्र्यक्षरी तु महात्रिपुरसुन्दरी।।

गौड़पाद ने भी कहा है—

त्र्यक्षरी शुद्धविद्या कुमारी च।।
तदेतत्त्र्यक्षरं हृदयं तदेतत्त्र्यक्षरं सत्यम्। (बृहदारण्यक)

चिदेकरसरूपिणी— भगवती महात्रिपुरसुन्दरी को चितिस्तत्पदलक्ष्यार्था, चिदेकरसरूपिणी आदि भी कहा गया है; क्योंकि वही 'चिति शक्ति' हैं। शक्तिसूत्र में भी उन्हें 'चिति' ही कहा गया है— 'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः।'

पञ्चपादिका में भी इस आख्या की पुष्टि की गई है— 'आनन्दो विषयानुभवो नित्यत्वं चेति सन्ति धर्मा अपृथक्त्वेऽपि चैतन्यात् पृथगिवावभासन्त।'

महावासिष्ठ में भी कहा गया है— 'सैषा चितिरिति प्रोक्ता जीवनाज्जीवितैषिणा।'

शिवसूत्र में 'चैतन्यमात्मा' कहकर भगवती को आत्मस्वरूप चैतन्य कहा गया है।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के तीन रूप

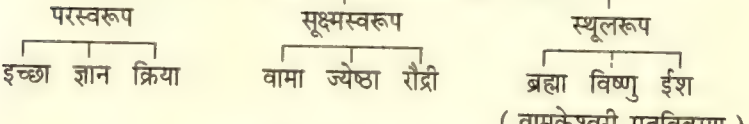

(वामकेश्वरी मतविवरण)

(इ) दश महाविद्या एवं त्रिपुरसुन्दरी

शम्भु का शरीर
महात्रिपुर सुन्दरी } 'शरीरं त्वंशम्भोः' (सौ० ल०— शंकराचार्य)

चामुण्डातन्त्र, श्रीमद्भागवत एवं मुण्डमालातन्त्र के प्रथम पटल में दश महाविद्याओं के नाम का इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।।
बगला सिद्धिविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धिविद्याः प्रकीर्तिताः।।

चामुण्डातन्त्र, तोडलतन्त्र एवं अन्य तन्त्रों में इन नामों में साम्य है। शक्तिसङ्गमतन्त्र में 'षोडशी' एवं 'कमलात्मिका' के स्थान पर 'रमा' एवं 'सुन्दरी' शब्दों का सन्निवेश किया गया है। मुण्डमालातन्त्र में सिद्धिविद्यास्थान में मातंगी देवी का उल्लेख किया गया है तो शक्तिसङ्गमतन्त्र में सिद्धिविद्या के रूप में 'भैरवी' का नामोल्लेख किया गया है। 'दश महाविद्यायें' निम्नवत् हैं—

१. काली	५. भैरवी	८. बगलामुखी
२. तारामहाविद्या	६. छिन्नमस्ता	९. धूमावती
३. षोडशी	७. सुन्दरी कमला	१०. मातंगी[१]
४. भुवनेश्वरी		

ये दश महाविद्यायें ही सिद्ध विद्यायें भी हैं। इन्हें 'सिद्धविद्या' इसलिये कहते हैं क्योंकि इनकी उपासना में नक्षत्रादिविचारणा, कालादिशोधन आदि का प्रतिबन्ध नहीं है—

नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति नक्षत्रादिविचारणा।
कालादिशोधनं नास्ति नारिभिन्नादिदूषणम्।।
सिद्धविद्यातया नात्र युगसेवापरिश्रमः।
नास्ति किञ्चिन्महादेवि! दुःखसाध्यं कदाचन।।

सिद्धाविचार, नक्षत्रचक्रादिविचार, कालादिशोधन एवं अरिमित्रादिविचार अन्य मन्त्रों की उपासना में आवश्यक होते हैं, किन्तु दश महाविद्याओं की उपासना में ये विचार उपेक्षणीय हैं। कलियुग में मन्त्रजप, पूजा आदि अन्य युगों की संख्या से चारगुना अधिक करने का विधान है; किन्तु 'दश महाविद्या' की उपासना में यह नियम भी लागू नहीं होते।

दश महाविद्याओं के नामों में मतभेद— जिस प्रकार विष्णु के अवतारी नामों की संख्या भिन्न-भिन्न पुराणों में भिन्न है— मतभेद है, उसी प्रकार दश महाविद्याओं में किसका-किसका नाम गृहीत किया जाय? इस विषय में भी मतभेद है। तन्त्रसारधृत मालिनी-विजयतन्त्र में महाविद्याओं के निम्न नाम हैं—

१. काली	५. छिन्नमस्ता	९. कामाख्यावासिनी
२. नीला तारा	६. वाग्वादिनी	१०. बाला त्रिपुरसुन्दरी
३. महादुर्गा	७. अन्नपूर्णा	११. मातङ्गी
४. त्वरिता	८. प्रत्यङ्गिरा	१२. शैलवासिनी कामाख्या

१. ये ही नाम श्रीमद्भागवत महापुराण में भी मिलते हैं। चामुण्डातन्त्र और मुण्डमाला तन्त्र में भी ये ही नाम मिलते हैं।

अथ वक्षाम्यहं या या महाविद्या महीतले।
दोषजालैरसंस्पृष्टास्ता: सर्वा हि फलै: सह।।

काली नीला महादुर्गा त्वरिता छिन्नमस्तका।
वाग्वादिनी चान्नपूर्णा तथा प्रत्यङ्गिरा पुन:।।

कामाख्यावासिनी बाला मातङ्गी शैलवासिनी।
इत्याद्या: सकला देव्य: कलौ पूर्णफलप्रदा।।

सिद्धमन्त्रतया नात्र युगसेवापरिश्रम:।
तथा चैता महाविद्या: कलिदोषान्न बाधिता।।

कालीकुल एवं श्रीकुल— किसी-किसी तन्त्रग्रन्थ में महाविद्याओं की संख्या अट्ठारह बतायी गई है। इन अट्ठारह महाविद्याओं के दो कुल हैं— 'कालीकुल' और 'श्रीकुल'। 'कालीकुल' में नौ विद्यायें अन्तर्भूत हैं, जो कि निम्नवत् हैं—

१. काली	४. भुवनेश्वरी	७. त्वरिता
२. तारा	५. महिषमर्दिनी	८. दुर्गा
३. छिन्नमस्ता	६. त्रिपुरा	९. प्रत्यङ्गिरा

काली तारा छिन्नमस्ता भुवना महिषमर्दिनी।
त्रिपुरा त्वरिता दुर्गा विद्या प्रत्यङ्गिरा तथा।।
कालीकुलं समाख्यातं श्रीकुलञ्च तत: परम्।।[1]

'श्रीकुल' में निम्न महाविद्याओं का अन्तर्भाव है—

१. सुन्दरी	४. बगला	७. मातंगी
२. भैरवी	५. कमला	८. स्वप्नावती
३. बाला	६. धूमावती	९. मधुमती

सुन्दरी भैरवी बाला बगला कमलाऽपि च।
धूमावती च मातङ्गी विद्या स्वप्नावती प्रिये।
मधुमती महाविद्या श्रीकुलं परिभाषितम्।।[2]

कालीमहाविद्या : काली के भेद

(एक ही संविद्रूपा काली के अनेक भेद)

१. दक्षिणा काली, महाकाली, भद्रकाली, श्मशानकाली, गुह्यकाली, कामकलाकाली, सिद्धिकाली, सिद्धिलक्ष्मी काली।[3]

२. डम्बरकाली, गहनेश्वरी, एकतारा, चण्डशावरी, वज्रवती, रक्षाकाली, इन्दीवरी काली, धनदा काली, रमन्या काली, ईशान काली, मन्त्रमाता।[4]

---

१. शाक्तदर्शनम्। २. शाक्तदर्शनम्। ३. पुरश्चर्यार्णवतन्त्र। ४. जयद्रथयामलतन्त्र।

३. स्पर्शमणि काली, चिन्तामणि काली, सिद्धि काली, विद्या राज्ञी, कामकलाकाली, हंसकाली, गुह्यकाली।[१]

भगवती काली महाविद्या के अन्य भेद भी हैं; जैसे कि निम्न बारह भेद—

१. सृष्टिकाली[२]	५. मृत्युकाली[६]	९. कालकाली[१०]
२. स्थितिकाली[३]	६. रुद्रकाली[७]	१०. भद्रकाली[११]
३. संहारकाली[४]	७. मार्तण्डी कालिका[८]	११. परमार्ककाली[१२]
४. यमकाली[५]	८. कालाग्नि रुद्रकाली (कालानल रुद्रकाली)[९]	१२. महाभैरव घोर-चण्डकाली[१३]

काश्मीरप्रचलित दश विद्या— काश्मीर के शैव-शाक्ततान्त्रिकों के साहित्य में दश विद्याओं का नामोल्लेख इस प्रकार किया गया है—

त्रिपुरा श्रीश्च वाग्देवी तारापि भुवनेश्वरी।
मातङ्गी शारिका राज्ञी मीडा ज्वालामुखी तथा।।

दश विद्या: स्वयं चैता भाषिता: कृत्तिवाससा।
एता दशैव षडन्या योजिता षोडशाक्षरी।।

दशविद्या भद्रकाली तुरी च छिन्नमस्तका।
दक्षिणा कालिका श्यामा कालरात्र्यपि सुन्दरि।।

एतासां मूलमन्त्रेण योजितैकाक्षरेण च।
ब्रह्मादिदैवतै: पूज्या विद्या श्रीषोडशाक्षरी।।

सृष्टिकाली— मन्त्रोदिता, आकाशरूपा, आकाशस्थिता, आकाशवर्जिता, सृष्टि-संहारकारिणी, विश्वविभवात्मिका कला, काल की कलना को ग्रास बनाने वाली, अव-भासनोन्मुखा, अनन्तभावराशिविमर्शिनी, संविद्देवी कालिका 'सृष्टिकाली' हैं। तन्त्रालोक में कहा भी गया है—

कौलार्णवानन्दघनोर्मिरूपामुन्मेषमेषोभयभाजमन्त: ।
निलीयते नीलकुलालये या तां सृष्टिकालीं सततं नमामि।।

रक्तकालिका— इन्द्रियातीत, निर्गुण, निराकार, विश्वरञ्जिनी, रञ्जिका, कलाकलित एवं मेय में आसक्त काली ही 'रक्तकाली' हैं, तन्त्रालोक में कहा भी गया है—

न चैषा चक्षुषा ग्राह्या न च सर्वेन्द्रियस्थिता।
निर्गुणा निरहङ्कारा रञ्जयेद्विश्वमण्डलम्।।
सा कला तु यदुत्पन्ना सा ज्ञेया रक्तकालिका।।

---

१. सम्मोहनतन्त्र।
२. श्रीपञ्चशतिक एवं श्रीक्रमस्तोत्र।
३. श्रीक्रमस्तोत्र।
४. श्रीक्रमस्तोत्र।
५. पञ्चशतिक।
६. पञ्चशतिक।
७. पञ्चशतिक।
८. श्रीक्रमस्तोत्र।
९. पञ्चशतिक, श्रीक्रमस्तोत्र।
१०. पञ्चशतिक।
११. पञ्चशतिक।
१२. श्रीक्रमस्तोत्र।
१३. श्रीक्रमस्तोत्र।

जैसा कि तन्त्रालोक (आ० ४) में उद्धृत किया गया है, सार्धशतिका में तेरह कालिकाओं का नामोल्लेख प्राप्त होता है, जो निम्नवत् है—

सृष्टिः स्थितिश्च संहारो रक्तकाली तथैव च।
स्वकाली यमकाली च मृत्युकाली तथैव च।।

रुद्रश्च परमार्कश्च मार्तण्डश्च ततः परः।
कालाग्निरुद्रकाली च महाकाल्यभिधा पुनः।।

महाभैरवशब्दश्च घोरशब्दस्ततः परः।
चण्डकालीपदं चान्ते त्रयोदश उदाहृताः।।

कामकलाविद्या का महत्त्व— भगवती महात्रिपुरसुन्दरी 'कामकला' हैं। जो उन्हें एवं उनके चक्रों के क्रम को जानता है, वह स्वयमेव महात्रिपुरसुन्दरी बन जाता है; जैसा कि कामकलाविलास (८) में कहा भी गया है—

इति कामकलाविद्या देवी चक्रमात्मिका सेयम्।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपः।।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप

कामकला, श्रीविद्या, श्रीचक्र, विश्वरूपा, विश्वातीता, प्रकाशामर्श, जगदात्मा, परमात्मा का हृदय, स्फुरत्ता, परमनित्यानन्दघन परमानन्द, परमा शक्ति, महासत्ता, स्पन्द, सार, शब्दब्रह्म, पञ्चदशाक्षरी विद्या, विमर्श— ये सभी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के स्वरूप हैं; जैसा कि कहा भी गया है—

सकलाद्या स्थिते हृद्ये कामराजकलात्मिके।
शब्दब्रह्ममयी स्वच्छा देवी त्रिपुरसुन्दरी।।

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।।

सा स्फुरत्ता महासत्ता सैषा सारतया प्रोक्ता।
प्रणमामि महादेवीं परमानन्दरूपिणीम्।।
नित्यानन्दघनं परम्.....।।

(वामकेश्वरतन्त्र)

विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां हृदयं परमेशितुः, त्वं तु पञ्चदशाक्षरी, विद्यापि तादृगात्मा सूक्ष्मा सा त्रिपुरसुन्दरी देवी। (कामकलाविलास)

विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां प्रकाशामर्शरूपिणीम्।
परापरमयीं देवीमात्मत्वेन विशाम्यहम्।।

(सच्चिदानन्दवासना)

भद्रकाली के भेद— तोडलतन्त्र में भद्रकाली के आठ भेद किये गये हैं, जो कि निम्नवत् हैं—

दक्षिणा काली, सिद्धकालिका, गुह्यकालिका, श्रीकालिका, भद्रकाली, चामुण्डा कालिका, श्मशानकालिका और महाकाली।

निरुत्तर तन्त्र (प्रथम पटल) में दो कुलों का उल्लेख किया गया है— कालीकुल और श्रीकुल। कालीकुल में दो भाव होते हैं— दिव्य और वीर तथा श्रीकुल में तीन भाव होते हैं— पशु, वीर एवं दिव्य। जैसा कि निरुत्तरतन्त्र में कहा भी गया है—

दिव्यभावैश्च वीरैश्च कालीकुलं विचिन्तयेत्।
श्रीकुलञ्च त्रिभिः सर्वैश्चिन्तयेत् कुलसुन्दरी।।

कुलद्वय की देवियों के नाम इस प्रकार हैं—

कालीकुल—

१. काली
२. तारा
३. रक्तकाली
४. भुवना
५. महिषमर्दिनी
६. त्रिपुटा
७. त्वरिता
८. दुर्गा
९. विद्या
१०. प्रत्यङ्गिरा

श्रीकुल—

१. सुन्दरी
२. भैरवी
३. बाला
४. बगला
५. कमला
६. धूमावती
७. मातंगी
८. विद्या
९. स्वप्नावती
१०. मधुमती
११. महाविद्या

काली तारा रक्तकाली भुवना महिषमर्दिनी।
त्रिपुटा त्वरिता दुर्गा विद्या प्रत्यङ्गिरा तथा।।

कालीकुलं समाख्यातं श्रीकुलं च ततः परम्।
सुन्दरी भैरवी बाला बगला कमलापि च।

धूमावती च मातङ्गी विद्या स्वप्नावती प्रिये।।
मधूमती महाविद्या श्रीकुलं परिभाषितम्।

दश एवं अष्टादश महाविद्या— निरुत्तरतन्त्र में ही 'दश महाविद्या' एवं 'अष्टादश' 'महाविद्या' का भी उल्लेख किया गया है, जो कि निम्नांकित हैं—

दश महाविद्या—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।।

बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः।।

अष्टादश महाविद्या—

१. काली	७. नित्या दुर्गा	१३. बगला
२. तारा	८. महिषमर्दिनी	१४. धूमावती
३. छिन्ना	९. त्वरिता	१५. कमला
४. मातंगी	१०. त्रिपुरा	१६. सरस्वती
५. भुवनेश्वरी	११. पुरा	१७. जयदुर्गा
६. अन्नपूर्णा	१२. भैरवी	१८. त्रिपुरसुन्दरी[१]

षोडशी, त्रिपुरभैरवी एवं अन्य महाविद्याओं का आविर्भाव— दश महाविद्याओं का सम्बन्ध मुख्यत: सती, शिवा और पार्वती से है। भागवत पुराण में इसकी कथा इस प्रकार है—

एक बार विश्वस्रष्टा के यज्ञ में जब समस्त ऋषि आसीन थे, उसी समय प्रजापति दक्ष उपस्थित हुये। उनको आता देखकर ऋषियों ने तो उठकर उनका अभिवादन किया; किन्तु समाधिमग्न शिव अपने आसन पर बैठे ही रह गये। यह देखकर प्रजापति दक्ष अत्यन्त कुपित हुये; फलस्वरूप शिव का तिरस्कार करते हुये उन्होंने यह शाप दे दिया कि तुम भविष्य में यज्ञभाग से सदैव वञ्चित रहा करोगे।

शिवविद्वेषाक्रान्त दक्ष ने एक शिवरहित यज्ञानुष्ठान किया; जिसमें शिव एवं सती दोनों को ही उन्होंने आमन्त्रित नहीं किया। उस यज्ञ में शिव एवं सती को छोड़कर सभी देवता एवं ऋषिगण आमन्त्रित किये गये थे। सती ने आकाशमार्ग से जाते हुये देवताओं की वार्त्ता से पिता द्वारा किये जा रहे यज्ञानुष्ठान के बारे में सुनकर उसे देखने हेतु जाने के लिये भगवान् शिव से अनुमति माँगी। शिव ने अनामन्त्रित होकर जाने में तिरस्कार एवं अपमान का अनुभव करने के कारण यह अनुमति नहीं दी, जिसके कारण सती व्याकुल होकर रोने लगी और उनका शरीर थरथर काँपने लगा। वे क्रोध के कारण शंकर जी को इस प्रकार देखने लगीं, मानो उन्हें भस्म ही कर देंगी— 'प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथु:' (भागवत)। वे शिवाज्ञा के साथ-साथ शिव का भी त्याग करके अपने पिता के घर चल दीं। पार्षद सती को वृषभराज पर आसीन कराकर सती के पीछे-पीछे सहस्रों की संख्या में चल पड़े।

यहाँ तक तो श्रीमद्भागवत की कथा एवं अन्य ग्रन्थों में साम्य है, किन्तु अन्य ग्रन्थों में यह भी लिखा है कि— शंकर के द्वारा दक्ष-यज्ञ में जाने की अनुमति न मिलने के कारण सती इतनी क्रुद्ध हुईं कि उन्होंने अपने महाक्रोध के कारण 'दश महाविद्या' का रूप धारण करके दशों दिशाओं को आच्छादित कर दिया और उसे देखकर भयभीत शिव भी विभ्रान्त हो गये।

---

१. अष्टादश महाविद्या तन्त्रादौ कथिता: प्रिये।

इन विद्याओं की उपासना में कालविशुद्धि, वार-तिथि-नक्षत्र-योग आदि का विचार निरर्थक है।

शक्ति का निरपेक्ष स्वतन्त्र रूप— बृहद्धर्मपुराण में कहा गया है कि दाक्षायणी (सती) ने उस समय महा घोररूप महाकाली का रूप धारण कर लिया, जिसे देखकर शिव भागने लगे—

ततः क्रुद्धा महाकाली घोररूपमकल्पयत्।
ततो भयेन भूतेशः पलायनपरोऽभवत्।।

शिव को भय से भागते देख सती ने कहा— मत ड़रो, मत भागो—

तं धावमानं गिरीशं दृष्ट्वा दाक्षायणी सती।
मा भैर्मा भैरिति गिरा मा पलायेत्युवाच सा।।

तथाप्येनं पलायन्तं न निवृत्तं विलोक्य ह।
दशमूर्तिर्वभौ देवो दश दिक्षु शिवेक्षिता।।

फिर भी जब शिव नहीं रुके तो सती ने उन्हें भागने से रोकने के लिये दशों दिशाओं में दश मूर्ति धारण करके उसे आच्छादित कर दिया। दक्षयज्ञ में जाने से पूर्व उन्होंने संकल्प भी लिया था—

ततोऽहं तत्र यास्यामि तदाज्ञापय वा न वा।
प्राप्स्यामि यज्ञभागं वा नाशयिष्यामि वा मखम्।। (भागवत-८)

शिव द्वारा यज्ञ में जाने की अनुमति न दिये जाने के कारण सती का शरीर क्रोध के वशीभूत होकर काला पड़ गया था तथा क्रोध के कारण अत्यन्त महाभयानक हो उठा था। वे गले में मुण्डमाला पहने थीं; उनकी जिह्वा बाहर निकली हुई थी और वे हुँकार कर रही थीं। उस समय उनका श्रीविग्रह करोड़ों मध्याह्नसूर्यों के समान दीप्तिमान हो रहा था और वे अट्टहास कर रही थीं। देवी के इसी विकराल महाभयानक रूप को देखकर शिव भाग चले। शिव को भागने से रोकने हेतु सती ने जिन दश रूपों को धारण किया, वे ही दश महाविद्यायें कही जाती हैं; उन 'दश महाविद्याओं' के नाम निम्नांकित हैं—

१. काली	६. त्रिपुरभैरवी
२. तारा	७. धूमावती
३. छिन्नमस्ता	८. बगलामुखी
४. षोडशी	९. मातंगी
५. भुवनेश्वरी	१०. कमला

इन दश महाविद्याओं में 'महाकाली' ही मूलरूपा एवं मुख्य हैं। उन्हीं के उग्र एवं सौम्य दो रूपों में अनेक रूप धारण करने वाली ये दश महाविद्यायें अन्तर्भूत हैं। 'महाकाली' के दशधा प्रधान रूपों को ही हम 'दश महाविद्या' कहते हैं।

सर्वविद्यापति शिव की ये दश महाविद्यायें अनेक रूपों में सम्पूजित एवं अनुष्ठित होने के अनन्तर भी दश रूप ही प्रधान हुये। ये समस्त रूप उपासना, मन्त्र एवं दीक्षाभेद

से भिन्न-भिन्न होते हुये भी मूलतः एक ही हैं। अधिकारभेद से पृथक्-पृथक् रूप एवं उपासनास्वरूप प्रचलित हैं। इनके दो रूप भी हैं—

कठोर रूप— काली, तारा, छिन्नमस्ता, बगला और धूमावती। ये सभी कठोर होते हुये भी करुणापूर्ण हैं।

सौम्य रूप— भुवनेश्वरी, षोडशी (ललिता), त्रिपुरभैरवी, मातंगी एवं कमला।

इन दश महाविद्याओं में 'काली' प्रथम विद्या है। तन्त्र में इनको ही अधिक प्रधानता भी दी गई है। वस्तुतः दश महाविद्यायें भी तो इन्हीं का रूप हैं। यद्यपि महासगुण होकर वे ही 'सुन्दरी' और महानिर्गुण होकर वे ही 'काली' कहलाती हैं; फिर भी तत्त्वतः तो सभी में साम्य ही है।

कादि और हादि विद्यायें भी एक ही श्रीविद्या (क्रमशः काली से प्रारम्भ होकर) की उपासना का विषय बनती हैं। इनमें से एक को 'संहारक्रम' तो दूसरे को 'सृष्टिक्रम' कहते हैं।

देवीभागवत आदि ग्रन्थों में शक्तिबीज या महालक्ष्मी को प्रधानता देकर 'हादिविद्या' के क्रम को स्वीकार किया गया है।

बृहन्नीलतन्त्र में काली के दो रूप दृष्टिगोचर होते हैं— रक्ता तथा कृष्णा। कृष्णा का नाम तो दक्षिणा है, जबकि रक्तवर्णा का नाम है— 'सुन्दरी'। जैसा कि कहा भी गया है—

विद्या हि द्विविधा प्रोक्ता कृष्णा-रक्ताप्रभेदतः।
कृष्णा तु दक्षिणा प्रोक्ता रक्ता तु सुन्दरी मता।।

दश महाविद्याओं की उपासना वस्तुतः सृष्टिक्रम की उपासना है। काली से कमला तक की यात्रा (दश महाविद्याओं की यात्रा) दश स्तरों में पूर्ण होती है। देवीभागवत के अनुसार— फलक 'सदाशिव' हैं। फलक या मञ्च के पाये 'ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र' एवं 'ईश्वर' हैं। मञ्चासीन शक्तियाँ— श्रीमञ्च पर 'भुवनेश्वरी' भुवनेश्वर के साथ विराजमान हैं और सात करोड़ 'मन्त्र' उनकी आराधना में निरत हैं।

भुवनेश्वरी— देवीभागवत के अनुसार मणिद्वीप की अधिष्ठात्री देवी ह्रल्लेखा (ह्रीं) मन्त्र की स्वरूपा शक्ति एवं सृष्टिक्रम में महालक्ष्मीरूपा आदि शक्ति भुवनेश्वरी प्रपञ्च का आदि कारण हैं। वे सर्वपोषिका हैं।

देवी का स्वरूप 'ह्रीं' बीजमन्त्र में नित्य विद्यमान है। देवीभागवत में कहा गया है कि 'ह्रीं' देवीप्रणव है। विश्वाधिष्ठान त्र्यम्बक सदाशिव की शक्ति ही भुवनेश्वरी हैं। ये सूर्यवत् कान्तिमती एवं त्रिनेत्रा हैं। ये ही सभी की शक्ति हैं।

महाविद्याओं के प्राकट्य का अन्य वृत्तान्त

१. कालिकापुराण— एक बार देवों ने हिमालय (मतंगमुनि के आश्रम) में जाकर 'महामाया' की स्तुति की। भगवती ने मतंग की वनिता बनकर देवों को दर्शन

दिया। उनके विग्रह से काले पर्वत की भाँति एक नारी का प्राकट्य हुआ। वे गाढ़े काजल के समान होने से 'काली' कहलायीं।

२. दुर्गासप्तशती— शुम्भ-निशुम्भ के उपद्रवों से व्यथित देवों ने हिमालय पर जाकर देवीसूक्त द्वारा देवी को प्रसन्न किया। गौरी देह से 'कौशिकी' का प्राकट्य हुआ, किन्तु 'कौशिकी' के आविर्भाव से पार्वती का शरीर कृष्ण वर्ण का हो गया; अत: वे 'काली' कहलायीं—

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाऽभूत्साऽपि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया।।

(दुर्गासप्तशती ५.८८)

काली को ही नीलरूपा होने से 'तारा' भी कहा गया। वे वाक् प्रदान करने में समर्थ हैं; अत: उनका नाम 'नीलसरस्वती' पड़ गया। भयानक विपदाओं से सन्तरण करने के कारण वे ही 'उग्रतारा' कहलायीं।

३. नारदपाञ्चरात्र— एक बार काली को पुन: गौरी बन जाने की उत्कण्ठा हुई। नारद ने उनसे शिव जी से विवाह का प्रस्ताव रक्खा तो वे क्रुद्ध हो गयीं; अत: उनके देह से एक अन्य शरीर— 'षोडशी' प्रकट हुईं और उसी से छायाविग्रह 'त्रिपुरभैरवी' प्रकट हुईं।

जगन्निर्मात्री भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप-विस्तार

१. ब्रह्मा
२. विष्णु
३. रुद्र
४. मरुद्गण
५. गन्धर्व-अप्सरा-किन्नर-यक्ष
६. भोग्य
७. समस्त सत्तायें
८. समस्त शाक्त
९. अण्डज
१०. स्वेदज
११. उद्भिज
१२. जरायुज
१३. स्थावर-जङ्गम
१४. मनुष्य

(बह्वृचोपनिषद्)

त्रिपुरासिद्धान्त और कुण्डलिनी तत्त्व

आत्मतत्त्व
↓
३१ तत्त्व
अमायीय वर्ण
↓
मायीय वर्ण
तत्त्व →
१. आत्मतत्त्व
२. विद्यातत्त्व
३. शिवतत्त्व
↓
१. शिवतत्त्व
२. शक्तितत्त्व
'षटत्रिंशत्तत्त्वानि विश्व'
(परशुरामकल्पसूत्र)

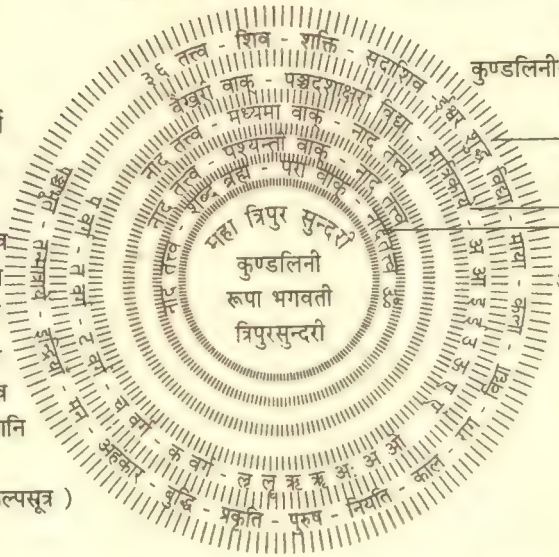

वर्णार्थरूपिणी
कुण्डलिनीस्वरूपा भगवती
महात्रिपुरसुन्दरी
आर्थी सृष्टि
शाब्दी सृष्टि
नव नाद'
अ-उ-म-बिन्दु
अर्धचन्द्र-रोधिनी
नाद-नादान्त
शक्ति-व्यापिका
समना उन्मना
विद्या तत्त्व-
१. सदाशिव
२. ईश्वर
३. शुद्ध विद्या

दक्षिणामूर्ति स्तोत्र और त्रिपुरासिद्धान्त— अद्वैतवादी वैयाकरणों की भाँति ही त्रिपुरासिद्धान्त के आचार्य भी अद्वैतवादी थे। त्रिपुरासिद्धान्त अत्यन्त कट्टर अद्वैतवादी है। इसके मतानुसार मूल तत्त्व महाशक्ति एक एवं अद्वितीय है। प्राचीन काल में विद्यमान अद्वैतवादी सिद्धान्तों— शून्याद्वैत, शब्दाद्वैत, शाक्ताद्वैत, ईश्वराद्वैत आदि विभिन्न अद्वैतवादी सिद्धान्तों— में से एक अद्वैतवादी सिद्धान्त त्रिपुरासिद्धान्त भी था।

शंकराचार्य शाक्तागम (विशेषत: त्रिपुरागम) के प्रधान आचार्य थे। दक्षिणामूर्ति संहिता, दक्षिणामूर्ति उपनिषद् आदि ग्रन्थ त्रिपुरा सम्प्रदाय के ग्रन्थ हैं। दक्षिणामूर्ति शब्द त्रिपुरा सम्प्रदाय का पद (शब्द) है। आचार्य सुरेश्वर ने भी दक्षिणामूर्तिस्तोत्र पर वार्त्तिक लिखा है।

दक्षिणामूर्तिस्तोत्र के प्रथम श्लोक में कहा गया है कि ज्ञानी की दृष्टि में विश्व स्वात्मगत तथा दर्पण में प्रतिविम्बित नगर के समान है अर्थात् विश्व अपने भीतर विद्यमान है, किन्तु माया के कारण बहिर्वत् प्रतीत होता है। प्रबोधकाल में (माया के नष्ट हो जाने पर) यह पुन: अपने अद्वय आत्मस्वरूप में ही दृष्टिगत होता है। यहाँ विश्व की सत्ता जड़ात्मिका नहीं; अपितु चिन्मयी है। यह 'स्वातन्त्र्य' का विलास है और आत्मारूपी भित्ति पर चित्ररूप में अंकित है। दक्षिणामूर्ति स्तोत्र के द्वितीय श्लोक में कहा गया है कि जगत् प्रादुर्भावप्राक् अवस्था (निर्विकल्पावस्था) में प्रतिष्ठित रहता है और भेदकल्पनाशून्य तथा मात्र शक्ति के रूप में अवस्थित रहता है। अंकुर अपने प्रादुर्भावप्राक् काल में बीजरूप में रहता है और यही स्थिति जगत् की भी है। जगत् उत्तर काल में माया के द्वारा देश-काल से कल्पित होने पर अनेक विचित्र आकारों में प्रतिभात होता है। महायोगी एवं

मायावी के समान केवल स्वेच्छा से वैचित्र्यमय विश्व का विजृम्भण करने वाले देव ही 'आत्मदेव' एवं 'गुरुदेव' हैं। प्रत्यभिज्ञा एवं त्रिपुरादर्शन— दोनों में ये ही दृष्टान्त दिये गये हैं। जगत् उपादान-निरपेक्ष इच्छाशक्तिमूलक है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन एवं त्रिपुरा सिद्धन्त का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आचार्य शंकर श्रीविद्या के उपासक थे। शृङ्गेरी मठ में उनके द्वारा स्थापित श्रीचक्र अद्यापि प्रतिष्ठित एवं पूजित है। शंकराचार्य के परम गुरु गौड़पादाचार्य ने श्रीविद्या के प्रतिपादनार्थ सुभगोदय की रचना की। इस सुभगोदय पर शांकरी टीका भी है और माधवाचार्य की व्याख्या भी। लक्ष्मीधर (पं० महादेव शास्त्री के अनुसार चौदहवीं शती, माधवाचार्य से परवर्ती एवं भास्कर के पूर्ववर्ती) ने कहा है कि इस पर शंकराचार्य ने टीका लिखी थी। ब्रह्मवादी शंकराचार्य आगमशास्त्र के पारदृश्वा विपश्चित थे।

त्रिपुरा सिद्धान्त— त्रिक दर्शन और शाक्त दर्शन दार्शनिक दृष्टि से समान रूप से पूर्णत: अद्वैतवादी है। 'त्रिक दर्शन' के छत्तीस तत्त्व शाक्त दर्शन में भी मान्य हैं। इन तत्त्वों से अतीत एक विश्वातीत पदार्थ भी है, जो कि विश्व को अतिक्रान्त करके उससे परे है। परिणामत यह तत्त्व 'विश्वमय' एवं 'विश्वातीत' दोनों है। विश्व क्या है? क्षिति से लेकर सदा-शिव तक के समस्त तत्त्वों की समष्टि ही विश्व है। विश्व शक्ति का उन्मेष है—

यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगत: प्रलयोदयौ।

'शिव' एवं 'शक्ति' चन्द्र-चन्द्रिका की भाँति अभिन्नतया स्थित हैं।

'शक्ति' ही अन्तर्मुखता की स्थिति में 'शिव' है और 'शिव' ही बहिर्मुख होने पर 'शक्ति' हैं अर्थात् शिव की बहिर्मुखता ही उसका शक्तित्व— शक्तिपक्ष है। अन्तर्मुख होना एवं बहिर्मुख हो जाना— ये दोनों पक्ष या भाव शाश्वतिक हैं।

शिवतत्त्व में शक्तिभाव एवं शक्ति में शिवभाव प्रधान है अर्थात् शक्तितत्त्व में शिव-भाव गौण एवं शक्तिभाव प्रधान है। जो तत्त्वातीतावस्था होती है, उसमें न शिव की प्रधानता है और न ही शक्ति की; प्रत्युत उसमें दोनों की ही साम्यावस्था है। यही है— 'शिव-शक्ति का सामरस्य'। इसी सामरस्य को शैव 'परमशिव' एवं शाक्तगण 'पराशक्ति' के नाम से पुकारते हैं। कामकलाविलास में कहा भी गया है—

सा जयति शक्तिराद्या निजसुखमयनित्यनिरूपमाकारा।
भावि चराचरबीजं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्श:।।

शाक्तमत के अनुसार शिव 'पराशक्ति' से उद्भूत होकर विश्वोन्मीलन करते हैं। प्रत्य-भिज्ञा दर्शन का शिव-शक्ति तत्त्व ही 'त्रिपुरामत' में 'कामेश्वर' एवं 'कामेश्वरी' नाम से विख्यात है। गौडीय वैष्णवमत में यही तत्त्व कृष्ण एवं राधा के नाम से प्रचलित है।

त्रिपुरसुन्दरी परमशिव का नारीकरण है; क्योंकि यदि 'परमशिव' शिव-शक्ति का साम-रस्य है तो त्रिपुरसुन्दरी 'कामेश्वर' एवं 'कामेश्वरी' का सामरस्य है अर्थात् त्रिपुरा-मत में कामेश्वर एवं कामेश्वरी के सामरस्यरूप को 'सुन्दरी' या 'त्रिपुरासुन्दरी' कहते हैं।

'त्रिपुरा' सच्चिदानन्दस्वरूपा, समरसा, समानाधिकरणवर्जिता 'ललिता देवी' हैं। इन्हें 'सर्ववेदान्ततात्पर्यभूमि' भी कहा गया है। निरतिशय सौन्दर्यविग्रह की मातृरूप से कल्पना करना एवं साधनाराज्य का एक निगूढ़ तत्त्व है। आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी में इसी सौन्दर्याढ्या ललितामूर्ति के निरतिशय सौन्दर्य का कवित्वात्मक एवं चामत्कारिक वर्णन किया है।

भगवती त्रिपुरासुन्दरी की उपासना चन्द्रमा के रूप में की जाती है। चन्द्रमा षोडश-कलामय होता है। इसकी सभी कलायें नित्य होती हैं। इसीलिए इन्हें समष्टि की दृष्टि से 'नित्या षोडशिका' कहते हैं; प्राथमिक पन्द्रह कलाओं का तो उदयास्त होता रहता है, किन्तु 'षोडशी कला' सदा नित्य है। इसी षोडशी कला का नाम 'अमृता कला' है। वैया-करण इसे 'पश्यन्ती वाक्' कहते हैं। महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरित के नान्दी में इसी वाग्देवतारूपा 'अमृतकला' की प्राप्ति हेतु प्रार्थना की है—

विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्।

यही षोडशी महात्रिपुरसुन्दरी ललिता देवी हैं। भगवती ललिता सौन्दर्य और आनन्द का अनन्त रत्नाकर हैं। ये अपने उपासकों के समक्ष केवल षोडशवर्षीया रूप में ही दर्शन देती हैं। गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के नित्य षोडशवर्षीय होने की मान्यता समतुल्य है। यह भी कहा गया है कि भगवती ललिता देवी ही पुरुषरूप धारण करके श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट होती हैं।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के 'परमशिव', त्रिपुरामत की 'षोडशी' एवं वैष्णवमत के 'कृष्ण' एक ही परमतत्त्व के भिन्न-भिन्न प्रतीक हैं, एक ही आनन्दनिकेतन सच्चिदानन्दविग्रह परतत्त्व के भिन्न-भिन्न रूप हैं।

वेदान्त में माया के अतीत जगत् का वर्णन नहीं किया गया है, किन्तु इस दर्शन में मायातीत महामाया शक्ति एवं उससे अनुशासित लोकों का वर्णन किया गया है। बैन्दवोपादान से निर्मित लोक एवं जीव दोनों की स्वीकृति इस दर्शन की द्वितीय विशेषता है। शक्ति में जड़त्व की अपसारणा करके उसमें चैतन्य का आधान इसकी तृतीय विशेषता है। 'शक्ति' चिदानन्दात्मिका है, शंकर की माया के समान जड़ नहीं है। इस दर्शन में अद्वैतभावना की स्थापना के साथ ही ज्ञान एवं भक्ति दोनों की स्वीकृति— दोनों में साम-रस्यस्थापना— इस दर्शन की अन्य विशेषता है।

त्रिपुरासिद्धान्त एवं प्रत्यभिज्ञामत का अन्तस्सम्बन्ध— प्रत्यभिज्ञाकारिका में उत्पलदेव कहते हैं—

चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद्बहिः।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्।।

अर्थात् सृष्टि शब्द का अभिप्राय है— अन्तःस्थित पदार्थ का बहिःप्रकाश। सभी पदार्थ चिदात्मा के अन्तःस्थित हैं; केवल इच्छावश कभी-कभी कुछ-कुछ बहिः प्रकाशित

होते हैं। यह 'बहि:प्रकाशन' शब्द ही सृष्टि का अर्थ है। इस प्रकार की सृष्टि में उपादान की अपेक्षा नहीं होती। 'इच्छाशक्ति' से ही वस्तु-निर्माण हो जाने के कारण यहाँ परमाणु की भी अपेक्षा नहीं होती। योगियों की सृष्टि इसी प्रकार की होती है। माधवाचार्य प्रत्यभिज्ञादर्शन में कहते हैं कि योगी अपनी इच्छा से परमाणुओं का संघटित करके ही सृष्टि करते हैं— यह मिथ्या विचार है; क्योंकि योगियों को परमाणुओं को उपादान के रूप में ग्रहण करने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती—

ईश्वरोऽनन्तशक्तित्वात् स्वतन्त्रोऽन्यानपेक्षत:।
स्वेच्छामात्रेण सकलं सृजत्यवती हन्ति च।।

संवित् स्वातन्त्र्यमयी है। उसमें इच्छा का उदय होते ही आत्मा के साथ अभिन्न रूप में स्थित पदार्थसमूह ज्ञेय रूप में अवभासित होने लगते हैं। जो 'अहंरूप' में द्रष्टा के साथ एकाकार था, वही 'इदं' के रूप में पृथक् भाव में परिस्फुट हो उठता है। विश्वरूप आभासवैचित्र्य का मूल चिदात्मा की 'स्वातन्त्र्य शक्ति' है। उपादाननिरपेक्ष 'इच्छाशक्ति' सृष्टि में पूर्ण समर्थ है। जैसे कि विश्वामित्र ने उपादानों के विना मात्र इच्छा से ही समस्त भोगसामग्रियों से युक्त स्वर्गलोक की रचना कर दी थी। यही है— योगिसृष्टि और यही ईश्वरसृष्टि भी है। यही इच्छाशक्ति कर्तुम्, अकर्तुम् एवं अन्यथाकर्तुम् सभी में समर्थ है। प्रत्यभिज्ञा एवं त्रिपुरासिद्धान्त दोनों में सैद्धान्तिक साम्य है। परमात्मा छत्तीस तत्त्वों की समष्टि है। वह विश्वात्मक भी है और विश्वातीत भी। आत्मा महेश्वर है। इसे वार्त्तिककार सुरेश्वर भी अपने वार्त्तिक (१०.६) में कहते हैं—

यदीयैश्वर्यविप्रुड्भिर्ब्रह्मविष्णुशिवादय: ।
ऐश्वर्यवन्तो भासन्ते स एवात्मा सदाशिव:।।

प्रत्यभिज्ञा एवं त्रिपुरासिद्धान्त में जो उपादाननिरपेक्ष सृष्टि की बात कही गई है, शांकर वेदान्त में उसे ही अभिन्ननिमित्तोपादान कहा गया है। शंकराचार्य कहते हैं कि ईश्वरत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्व एवं कर्तृत्व आदि वास्तविक नहीं हैं; अपितु अविद्याकृत, कल्पित एवं अयथार्थ हैं— 'तदेवमविद्यात्मकोपाधिपरिच्छेदापेक्षमेवेश्वरस्येश्वरत्वं सर्वज्ञत्वं सर्वशक्तित्वञ्च न परमार्थतो विद्ययापास्तसर्वोपाधिस्वरूप आत्मनीशित्रीशितव्यसर्वज्ञत्वादिव्यवहार उपपद्यते।' (वेदान्तसूत्रभाष्य-२.१.१४)

मुक्तावस्था में (विद्यालोक द्वारा अविद्यान्धकार तिरोहित होते ही) ईश्वरत्व नहीं रह जाता। चिदात्मा का ईश्वरत्व अविद्यामूलक है, स्वत:सिद्ध नहीं है। शंकराचार्य दक्षिणामूर्तिस्तोत्र में कहते हैं कि 'ईश्वरत्व' रहता है, सर्वात्मतास्वरूप 'महाविभूति' रहती है, 'पूर्णाहन्ता' रहती है; क्योंकि यह आत्मस्वरूप से पृथक् नहीं है। यह आत्मदेव का स्वभाव है, अविद्यात्मक नहीं है। सुरेश्वराचार्य भी कहते हैं—

ऐश्वर्यमीश्वरत्वं हि तस्य नास्ति पृथक् स्थिति:।
पुरुषे धावमानेऽपि छाया तमनुधावति।।

ईश्वरभाव एवं शुद्ध चैतन्यभाव पृथक्-पृथक् नहीं है। आत्मज्ञान होने के उपरान्त ऐश्वर्य की प्राप्ति स्वत: हो जाती है।[1]

प्रत्यभिज्ञा दर्शन, स्पन्द दर्शन एवं त्रिपुरामत में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनके आकर-ग्रन्थ समान हैं। उपासनापद्धति में भेद अवश्य है; लेकिन पद्धति के अन्तर को छोड़कर उनमें कोई तात्त्विक भेद नहीं है।

त्रिपुरासिद्धान्त के प्राचीन आचार्यों ने शिवसूत्र, प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी, तन्त्रालोकप्रभृति शैवग्रन्थों के प्रमाण उद्धृत किये हैं।

उत्पलदेव, क्षेमराज, अभिनवगुप्त, महेश्वरानन्दप्रभृति शैवाचार्यों ने योगिनीहृदय, कामकलाविलास, त्रिपुरासुन्दरी मन्दिर आदि ग्रन्थों को प्रमाण के रूप में उद्धृत किया है। 'त्रिकमत' एवं 'त्रिपुरामत' में पुष्कलसाम्य है।

परशुरामकल्पसूत्र, बिन्दुसूत्र, तन्त्रराजतन्त्र, त्रिपुरारहस्य, नित्याहृदय, वामकेश्वरतन्त्र, परमानन्दतन्त्र सौभाग्यरत्नाकर आदि त्रिपुरामत की रचनायें हैं। भास्करराय, रामेश्वर, लक्ष्मीधर, उमानन्दनाथ एवं अमृतानन्दनाथप्रभृति दर्शनिक इसके व्याख्याता हैं। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के साथ त्रिपुरासिद्धान्त के दार्शनिक अंश (ज्ञानकाण्ड) की पृथकता नहीं है।

दोनों ही मतों में छत्तीस तत्त्वों की मान्यता है। इससे परे तत्त्वातीत सत्ता भी है। संसार छत्तीस तत्त्वों की समष्टि है। तत्त्वातीत से ही तत्त्वों का आविर्भाव होता है। दोनों मूलत: अभिन्न हैं। परमसत्ता विश्वातीत तो है, किन्तु सर्वज्ञ है— विश्वात्मक है। सदोदित एवं तिरोभावशून्य शिव एवं शक्ति तत्त्व नित्य है।

पृथ्वी से शिव तत्त्वपर्यन्त चौंतीस तत्त्व विश्व है। सृष्टि 'शब्द सदाशिव' आदि तत्त्व-समूह का आविर्भाव है। आविर्भाव का बीजतत्त्व (जिससे विश्व सत्तावान है या सृष्टि का विकास होता है) शक्ति है। यह शक्ति शिवसमवेत रहती है।

'शिव' बहिर्मुख होने पर 'शक्ति' एवं 'शक्ति' अन्तर्मुख होने पर 'शिव' है। यह अन्त-र्मुखता-बहिर्मुखता नित्य है। परमेश्वर पञ्चकृत्यकारी है। शिवभाव में शक्तितत्त्व गौण एवं शिवतत्त्व प्रधान है; जबकि शक्तिभाव में शिवभाव गौण एवं शक्तिभाव प्रधान है।

जहाँ शिव-शक्ति समरस हैं— शिव एवं शक्ति दोनों में से किसी का भी प्राधान्य नहीं है— वहीं साम्यावस्था है। यह नित्यावस्था है। यही है— तत्त्वातीतावस्था। इसे ही सैंतीसवाँ तत्त्व भी कहा जाता है। यह अचिन्त्य एवं अकथ्य है। यही सभी का चरम लक्ष्य है। इसे ही शैवों का परमशिव, शाक्तों की परा शक्ति एवं वैष्णवों का भगवान् कहा गया है।

चन्द्रमा और त्रिपुरसुन्दरी— प्रत्यभिज्ञा शास्त्र में जिसे शक्ति एवं शिव कहते हैं, उसे ही त्रिपुरासिद्धान्त में कामेश्वरी एवं कामेश्वर कहते हैं। इन्हें ही गौडीय वैष्णव दर्शन में राधा और कृष्ण कहा गया है। त्रिपुरामत में चरम वस्तु सुन्दरी (त्रिपुरसुन्दरी) है। त्रिपुरसुन्दरी के आराधक इनकी उपासना चन्द्ररूप में करते हैं। चन्द्रमा की सोलह कलायें

१. मा. सं. और साधना।

हैं और ये सभी कलायें नित्य हैं। सम्मिलित भाव से इनको 'नित्यषोडशिका' भी कहते हैं। प्राथमिक पन्द्रह कलाओं का तो उदयास्त होता है, ह्रास एवं वृद्धि भी होती है, किन्तु सोलहवीं कला का ह्रास-वृद्धि कुछ भी नहीं होता। इसे ही 'अमृता चन्द्रकला' कहते हैं। वैयाकरण इस अमृता चन्द्रकला को 'पश्यन्ती वाक्' कहते हैं; दर्शनशास्त्र इसे 'आत्मा' कहता है। मन्त्रशास्त्र इसे मन्त्र या देवता कहता है। यही है— देवता का स्वरूप। सामान्य जनवर्ग में प्रसिद्ध पूर्ण चन्द्र वास्तविक पूर्ण चन्द्र नहीं है; क्योंकि वह उदय एवं क्षय के परिणामों से ग्रस्त है। पूर्ण चन्द्र न्यूनाधिक भाव से अभिशप्त नहीं है।

षोडशी कला और सुन्दरी— पूर्णता केवल 'षोडशी कला' में है। वह नित्योदित है। वह अमृतस्वरूप और अखण्ड है। यही चरम तत्त्व 'महात्रिपुरसुन्दरी ललिता देवी' है। वह सौन्दर्य और आनन्द का परमधाम है। यही परा कला, चिदेकरसा श्रीविद्या है। चन्द्रमा की पन्द्रहवीं कला नित्य तो है; किन्तु कालचक्र (प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया आदि कालखण्डों में विभाजित तिथिरूप हैं।) से सम्बद्ध है और आविर्भाव-तिरोभाव से ग्रस्त है। षोडशी कला नित्य ज्योत्स्नामय सहस्रदल कमल में स्थित नित्य कलासंयुक्त श्रीचक्रात्मक प्रतिविम्ब है। इसीलिए सुभगोदय में कहा भी गया है—

षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।

इसी कारण सुन्दरी अपने भक्तों के समक्ष नित्य ही षोडशवर्षीया रहती हैं। इसी प्रकार श्रीकृष्ण भी नित्य षोडशवर्षीय एवं नित्य किशोर हैं—

नित्यकिशोर एवाऽसौ भगवानन्तकान्तकः।

श्री रूपगोस्वामी भक्तिरसामृतसिन्धु (प्रथम लहरी, श्लोक-१५८) में कहते हैं— 'आषोडशाच्च कैशोरम्।' तन्त्रराजतन्त्र में कहा गया है कि ललिता एवं श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं है—

कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्णविग्रहा।
वंशीनादसमारम्भादकरोदविवशं जगत्।।

ललिता पुरुषरूप में श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट होती हैं।

जप-समर्पण का नियम यह है कि नारी देवता के बाँयें हाथ में एवं पुरुष देवता के दाँयें हाथ में समर्पित किया जाता है; किन्तु भगवती ललिता के दाहिने हाथ में ही जप समर्पित किया जाता है। निष्कर्ष यह कि भगवती ललिता नारी-पुरुष के लिङ्गभेद से परे हैं।

मूल ज्योति चिदात्मा, चन्द्रविम्ब, सूर्यविम्ब, मातृका, वर्ण, कला, शक्ति, रश्मिमाला, वर्णमाला या मातृकाचक्र का बहिर्विकास ही 'सृष्टि' एवं उसका अन्तःसंकोच ही 'प्रलय' है। आत्मस्फुरण की अवस्था में समग्र विश्व बीजरूप में (अस्फुटतया) आत्मसत्ता में विद्यमान रहता है। फिर शान्ता से इच्छाशक्ति का उदय होने पर अव्यक्त विश्वशक्ति के गर्भ से निःसृत होता है। इच्छाशक्ति वामाशक्ति से तादात्म्य प्राप्त करके पश्यन्ती वाक् का अभिधान ग्रहण करती है। फिर आविर्भूत होने वाली ज्ञानशक्ति का ज्येष्ठा शक्ति से अभिन्नतया

तादात्म्य प्राप्त होने पर वह मध्यमा वाक् का अभिधान ग्रहण करती है। तदुपरान्त क्रिया शक्ति रौद्री शक्ति के साथ ऐकात्म्य प्राप्त करके वैखरी वाक् का अभि-धान प्राप्त करती है। वाक् चतुष्टय मिलकर मूल त्रिकोण (महायोनि) का निर्माण करते हैं। त्रिकोण का केन्द्र है— परा वाक् (शान्ता और अम्बिका का सामरस्य)। यह नित्य स्पन्दमय है।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप

भगवती 'विश्वरूपा' हैं और विश्व अनन्तरूपात्मक है; अत: भगवती भी अनन्तरूपा-त्मिका हैं, तथापि शास्त्रों में उनके जिन विशिष्ट स्वरूपों का उल्लेख किया गया है, उन स्वरूपों में कतिपय स्वरूप निम्नांकित हैं—

विमर्शाख्या च सा देवी पाञ्चविध्यं समागता। (कामकलाविलास)

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीं राशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम्।।(नित्याषोडशिकार्णव)

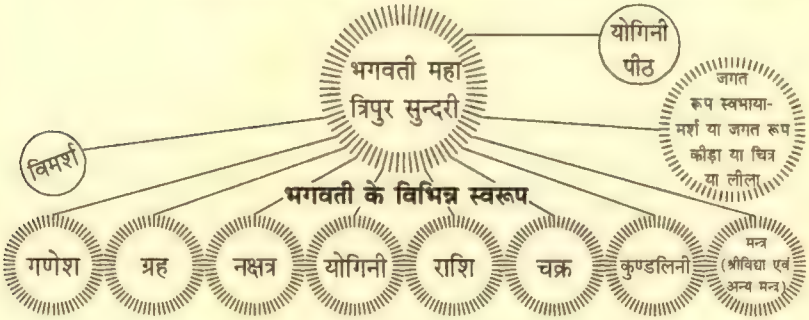

मन्त्र, चक्र एवं देवता की एकात्मता

१. इत्थं मन्त्रात्मकं चक्रं देवताया: परं वपु:। (योगिनीहृदयम्, मं. सं.५६)
२. गणेशत्वं महादेव्या: ससोमरविपावकै:। (योगिनीहृदयम्-२.५७)
३. ग्रहरूपा च सा देवी ज्ञानकर्मेन्द्रियैरपि। (योगिनीहृदयम्-२.५८)
४. नक्षत्रविग्रहा जाता योगिनीत्वमथोच्यते। (योगिनीहृदयम्-२.६०)
५. योगिनीरूपमास्थाय राजते विश्वविग्रहा। (योगिनीहृदयम्-२.६१)
६. जीवात्मा परमात्मा चेत्येते राशिस्वरूपिणी। (योगिनीहृदयम्-२.६३)
७. एवं विश्वप्रकारा च चक्ररूपा महेश्वरी। (योगिनाहृदयम्-२.६७)
८. विद्या कुण्डलिनीरूपा मण्डलत्रयभेदिनी।
तडित्कोटिनिभप्रख्या बिसतन्तुनिभाकृति।। (योगिनीहृदयम्-२.७१)
९. चक्रेश्वरी समायुक्तं नव चक्रं पुरोदितम्। (मन्त्रसङ्केत-८)
१०. विमर्शाख्या च सा देवी।

सप्तम अध्याय

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के अनन्त स्वरूप हैं; क्योंकि वह अनन्त पदार्थात्मक एवं षट्त्रिंशदात्मक जगत् भी है और उससे अतीत भी। वह 'विश्वमय' भी है और 'विश्वातीत' भी। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म 'शब्दब्रह्म' एवं 'परा वाक्' भी है और स्थूलतम 'वैखरी वाक्' भी। वह 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' है। वही प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण और प्रमा चारो है। वही वर्ण भी है और वर्णातीत भी; वही सादि भी है अनादि भी; वही स्थूल भी है और सूक्ष्म भी। उसके अनन्त रूप हैं— 'एकस्था सर्वभूतान्तरात्मा रूपो रूपो प्रतिरूपो बभूव।'

भगवती ही गुरु है—

कर्ताहर्न्पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वं गुरुः।
(दुर्वासा त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र)

वामकेश्वरतन्त्र में भी कहा गया है—

त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या जाता महेश्वरी।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका।
कवलीकृत-निश्शेष-तत्त्वग्राम-स्वरूपिणी।।

देवी चक्रात्मिका हैं; कामकलाविलास में कहा भी गया है—

इति कामकला विद्या देवीचक्रमात्मिका सेयम्।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपा।।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी त्रिकोणस्थ 'महाबिन्दु' में स्थित है; योगिनीहृदय (पूजासंकेत) में कहा भी गया है—

त्रिकोणस्थे महाबिन्दौ महात्रिपुरसुन्दरीम्।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का अन्यतम रूप

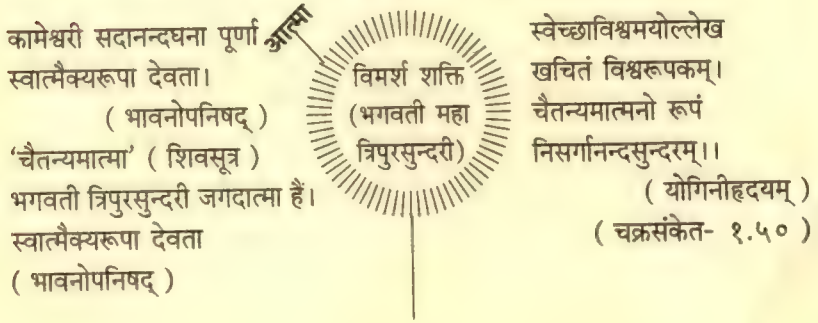

कामेश्वरी सदानन्दघना पूर्णा
स्वात्मैक्यरूपा देवता।
(भावनोपनिषद्)
'चैतन्यमात्मा' (शिवसूत्र)
भगवती त्रिपुरसुन्दरी जगदात्मा हैं।
स्वात्मैक्यरूपा देवता
(भावनोपनिषद्)

स्वेच्छाविश्वमयोल्लेख
खचितं विश्वरूपकम्।
चैतन्यमात्मनो रूपं
निसर्गानन्दसुन्दरम्।।
(योगिनीहृदयम्)
(चक्रसंकेत- १.५०)

अथ च आत्मा क:? इति जिज्ञासून् उपदेश्यन् प्रतिबोधयितुं, न शरीर-प्राण-बुद्धि-शून्यानि लौकिक-चार्वाक-वैदिक-योगाचार-माध्यमिका-द्यभ्युपगतानि आत्मा; अपितु यथोक्तं चैतन्यमेव। चैतन्यमुक्तं स एव आत्मा, स्वभाव: भावाभाव-रूपस्य विश्वस्य जगत:। चैतन्यं विश्वस्य स्वभाव:। शङ्करात्मकस्पन्दतत्त्वरूपं चैतन्यं सर्वदा स्वप्रकाशं परमार्थं सत् अस्ति इति। (क्षेमराज, शिवसूत्रविमर्शिनी, प्रथम उन्मेष-१.१)

आत्मा का स्वरूप तो चैतन्य है, किन्तु यह चैतन्य कौन है? = 'चैतन्यं चिद्विमर्श-शक्ति:' अर्थात् चैतन्य विमर्श शक्ति है। (अमृतानन्द, योगिनीहृदयटीका)

'शिवस्य प्रकाशात्मनो दीपस्य शक्तिविमर्शाख्यैव प्रभा, सा निर्विकल्पात्मना विश्वाकारा मेय-मातृ-प्रमा-प्रमाणभेदै: सङ्कुचद्रूपा।' (अमृतानन्द, यो० हृ० टीका)

विश्वाकारप्रथा षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मना परिणता विमर्शशक्ति:। (अमृतानन्द)

चैतन्यं विश्वस्य स्वभाव:। (आचार्य क्षेमराज)

१. ब्रह्मवैवर्तपुराण की दृष्टि से महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप

ललितासहस्रनाम में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के सहस्र नामों के माध्यम से उनके सम्पूर्ण स्वरूप को उद्घाटित करते हुये कहा गया है कि वे श्रीमाता हैं अर्थात् वे लक्ष्मी की जननी, श्री की जन्मदात्री, शब्दब्रह्म का बीज, ब्रह्मयोनि एवं विश्वबीज हैं।

भगवती ललिता 'श्रीमत् सिंहासनेश्वरी' हैं अर्थात् वे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं सदाशिव से निर्मित सिंहासन पर विराजमान इन समस्त देवों की स्वामिनी, ब्रह्माण्डीय प्रशासन-सिंहासन की राजराजेश्वरी, परम स्वामिनी पराभट्टारिका हैं।

भगवती चिदग्निकुण्डसम्भूता हैं अर्थात् संविदग्नि के कुण्ड से समुद्भूता 'समना' एवं 'उन्मना' शक्तियाँ हैं। संक्षेपशारीरककार ने इसी चित् शक्तिस्वरूप की पुष्टि करते हुये कहा है—

चिच्छक्ति: परमेश्वरस्य विमला चैतन्यमेवोच्यते।

ब्रह्माण्डपुराण में कहा गया है कि चिदग्नि कुण्ड में देवों ने मांस के स्थान पर अपने-अपने शरीर की आहुति दे दी थी, जिससे प्रसन्न होकर उसी चिदग्नि से एक चक्राकार महाज्योति का आविर्भाव हुआ और उसके मध्य से उदीयमान भास्कर की भाँति भगवती का प्राकट्य हुआ था। भगवती यही 'चिदग्निसम्भूता महाशक्ति' है।

भगवती 'मनोरूपेक्षुकोदण्डा पञ्चतन्मात्रसायका' हैं अर्थात् भगवती महात्रिपुरसुन्दरी रागरूपी पाश, क्रोधरूपी अंकुश, मनरूपी इक्षु एवं पञ्चतन्मात्ररूपी पञ्चबाण धारण की हुई हैं। इसी रूप में वे चतुर्बाहुसमन्विता हैं।

भगवती 'निजारुणप्रभापूरमज्जद् ब्रह्माण्डमण्डला' हैं। ललितासहस्रनाम भगवती ललिता को 'श्रीमाता' कहकर जगद्योनि के रूप में जिस प्रकार स्वीकार करता है, उसे ही हयग्रीव

का शाक्तदर्शनम् भी जननी, सर्वकारण, कारण आदि के रूप में स्वीकार करता है— शक्तिस्त्रिजननी (१.४.१), अतः कारणं शक्तिरेवेति हयग्रीवः (३.३.१), शक्तिरेव सर्वकारणमिति हयग्रीवः (३.४.२२), सृष्ट्यादिक्रीड़ासक्ता देवी जगत्सृष्टेः पूर्वमासीदिति (११.३.२), शिवादिकारणवाक्यैः शक्तिरेवेति हयग्रीवः (१२.२.१३)। अगस्त्य के शक्तिसूत्र में देवी को 'जगत् कर्त्री' कहा गया है— यत्कर्त्री (२)।

शक्तिसूत्र (अगस्त्यप्रणीत) में भगवती को माता-पिता दोनों कहा गया है— यन्माता-पितरौ (८९), मातरं नारदः (१०३)। इसी प्रकार ललितासहस्रनाम में भी देवी को 'श्रीमाता' ही कहा गया है।

भगवती के विभिन्न स्वरूपों का वर्गीकरण— ललितासहस्रनाम में भगवती के जो सहस्रनाम बताये गये हैं, उनका यदि वर्गीकरण किया जाय तो उनसे भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के स्वस्वरूप को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१. मूर्तिस्वरूप
२. मान्त्रिक (वर्णात्मक, मन्त्रात्मक एवं नादात्मक) स्वरूप
३. यान्त्रिक स्वरूप
४. स्वभावस्वरूप
५. शक्तिस्वरूप
६. विश्वात्मक स्वरूप
७. विश्वातीत स्वरूप
८. आत्मस्वरूप आदि

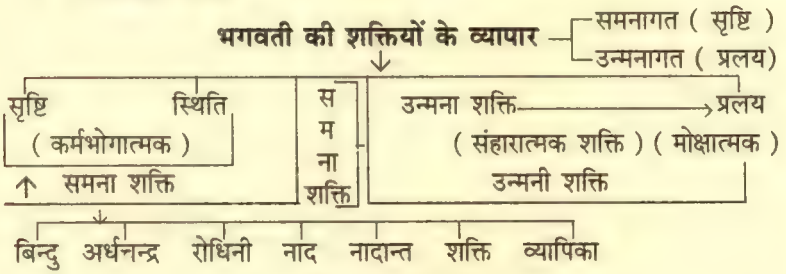

२. भगवती का मालिनी स्वरूप

ललितासहस्रनाम में भगवती को मालिनी कहा गया है—

मालिनी हंसिनी माता मलयाचलवासिनी। (९५)

वे वाग्वादिनी (७७), परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी (८१), सर्ववर्णोपशोभिता (१०९), मातृकावर्णरूपिनी (११६), भाषारूपा (१३३) और वैभवा वर्णरूपिणी (१५८) भी हैं।

वर्णमाला के दो स्वरूप

पूर्वमालिनी, मातृका, सिद्धा—(अकारादि क्षकारान्त सुसज्जित अक्षमाला) (स्वच्छन्द तन्त्र में प्रयुक्त) (प्रथम वर्ण 'अ' एवं अन्तिम वर्ण 'क्ष' = अक्ष = अक्षमाला)

स्वर + व्यञ्जन = (अ, आ आदि),
- स्पर्श (क से म),
- अन्तःस्थ (य र ल व),
- ऊष्म (श, ष, स, ह),

(पञ्च वर्गात्मक व्यञ्जन वर्ण)

उत्तरमालिनी (नादिकान्त वर्णमाला। 'न' वर्ण से 'क' वर्ण तक प्रसृत अक्रम रूप में अवस्थित) (मालिनीविजयोत्तर तन्त्र में प्रयुक्त) (प्रथम वर्ण 'न' एवं अन्तिम वर्ण 'क')

उत्तरमालिनी क्रम सृष्टि—

१. द से झ तक के वर्ण— जलादि प्रकृतिपर्यन्त तत्त्वों के वाचक।
२. छ से अ तक के वर्ण— पुरुष से मायापर्यन्त तत्त्वों के वाचक।
३. इ से घ तक के वर्ण— शुद्ध विद्या, ईश्वर एवं सदाशिव के वाचक।
४. ग से नपर्यन्त सोलह वर्ण— वर्णात्मक शिव के वाचक।

परात्रिंशिका क्रम (परात्रिंशिका की व्याख्या)—

१. अ से अ— पर्यन्त सोलह अक्षर— शिवतत्त्व के वाचक।
२. क से ङ— पृथिव्यादि पाँच महाभूतों के वाचक।
३. च से ञ— गन्धादिक पञ्चतन्मात्राओं के वाचक।
४. ट से ण— पादादि पाँच कर्मेन्द्रियों के वाचक।
५. त से न— प्राणादि पाँच ज्ञानेन्द्रियों के वाचक।
६. प से म— मन, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति एवं पुरुष के वाचक।
७. य से व— वायुप्रभृति राग, विद्या, कला एवं माया के वाचक।
८. श, ष, स, ह, क्ष— महामाया, विद्या, ईश्वर, सदाशिव एवं शक्ति के वाचक।

तन्त्रालोक एवं मातृकाचक्रविवेक में भी मातृकाओं पर प्रकाश डाला गया है।

उत्तरमालिनी वर्णमाला और मूलतत्त्व : अन्तर्सम्बन्ध

पृथ्वीतत्त्व = फ	जलतत्त्व = द	तेजस्तत्त्व = औ
वायुतत्त्व = ओ	आकाशतत्त्व = ऐ	पाँच तन्मात्रायें = ए, त, अं, श, म
ग्यारह इन्द्रियाँ बुद्धि एवं प्रकृति = अहंकार,		ह, अः, स, आ, ल, ज, प, ज, झ। क्ष, ष, ट, र,
पुरुष से मायातत्त्व = ठ, ढ, ड, य, भ, व, अः।		

शुद्ध विद्या = इ	ईश्वर = ङ	सदाशिव = ध
शिव = ग, ख, क, व, ऊ, उ, ण, ई, ध, च, थ, ऌ, ॠ, ऋ, न = सोलह वर्ण		

उत्तरमालिनी क्रम— न, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, थ, च, ध, ई, ण, उ, ऊ, ब, क, ख, ग, घ, ङ, इ, अ, व, भ, य, ड, ढ, ठ, झ, ज, र, ट, प, छ, ल, आ, स, अः, ह, ष, क्ष, म, श, अं, त, ए, ऐ, ओ, औ, द, फ।

परात्रिंशिका की दृष्टि—

१. अ से अनुस्वार तक = पन्द्रह तिथियाँ।

२. पन्द्रह स्वरों का विसर्ग के साथ योग = शिव तत्त्व = चिन्मात्र, चिद्रूप, विश्वबीजात्मक प्राण।

३. स्वर → व्यञ्जन। व्यञ्जन = शक्तितत्त्व, विना व्यञ्जनों के (शक्ति) के स्वर (शिव) सृष्टि होना सम्भव नहीं है।

स्वर = शिव। व्यञ्जन = शक्ति।

मालिनीरूप शब्द से जगतरूप अर्थ की सृष्टि का क्रम

(श्रीपरात्रिंशिका की दृष्टि)

१. पच्चीस तत्त्व : पृथ्वी से पुरुष तत्त्व—

क से म → पृथ्वी से पुरुष तत्त्व।

२. पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश तत्त्व—

क से ङ → पाँच महाभूत (पृथ्वी—आकाश)।

३. पञ्चतन्मात्रायें—

च से ञ → पाँच तन्मात्रायें (शब्द—गन्ध)।

४. कर्मेन्द्रियाँ—

ट से ण → पाँच कर्मेन्द्रियाँ।

५. ज्ञानेन्द्रियाँ—

त से न → पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ।

६. तत्त्वपञ्चक—

प से म → मन, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति, पुरुष।

७. राग, विद्या, कला, माया—

य, र, ल, व → मन, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति, पुरुष।

८. श से क्ष → महामाया शक्ति, शुद्धाविद्या, ईश्वर, सदाशिव।

सच्चिदानन्द, परमशिवस्वरूप अ-अ-क्ष

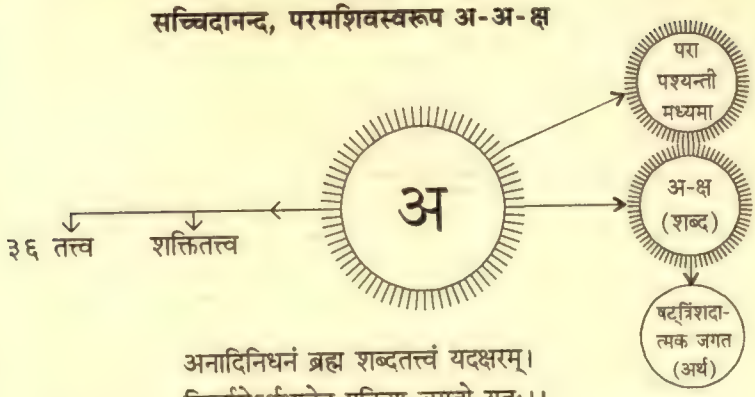

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।

परात्रिंशिका विवृत्ति में आचार्य अभिनवगुप्त ने वर्णों का तत्त्वों, इन्द्रियों, अन्तःकरण, तन्मात्राओं का अन्तस्सम्बन्ध स्पष्ट करते हुये उसका विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

१. अकारादिविसर्गान्तं शिवतत्त्वम्।
२. कादिङ्गान्तं धरादिनभोऽन्तं भूतपञ्चकम्।
३. चादिञान्तं गन्धादिशब्दान्तं तन्मात्रपञ्चकम्।
४. टादिणान्तं पादादिवागन्तं कर्माक्षपञ्चकम्।
५. तादिनान्तं प्राणादिश्रोत्रान्तं बुद्धिकरणपञ्चकम्।
६. पादिमान्तं मनोऽहङ्कारबुद्धिप्रकृतिपुरुषाख्यं पञ्चकम्।
७. वाय्वादिशब्दवाच्या यादयो वकान्तता रागविद्याकलामायाख्यानि तत्त्वानि आदि।

भगवती का जो मालिनी स्वरूप है, उसी मालिनी स्वरूपात्मक वर्णों से ही तो पञ्चदशी मन्त्र भी बना है; अतः मालिनी स्वरूप में पञ्चदशी मन्त्र भी अन्तर्भुक्त है; क्योंकि भगवती पञ्चदशी विद्या भी है—

आत्मविद्या महाविद्या श्रीविद्या कामसेविता। (ललितासहस्रनाम-११८)
विमर्शरूपिणी विद्या। (ललितासहस्रनाम-५५०)
मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा। (ललितासहस्रनाम-३६)
शुद्धविद्या। (ललितासहस्रनाम-१०) आदि

देव्युपनिषद् (१८) में भी कहा गया है— एषा श्रीमहाविद्या (१५)।

बह्वृचोपनिषद् में भी कहा गया है— सैषा परा शक्तिः। सैषा शाम्भवी विद्या कादि-विद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति (३), सैषा षोडशी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी (८), विद्यां त्रिपुरेशीम् (१०), त्रिपुरवासिनीं विद्यां त्रिपुरेश्वरीविद्यां, सर्वविद्येश्वरीं त्रिपुरां विद्याम् (११)।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही जगत् हैं— भगवती के विश्वमय स्वरूप को प्रतिपादित करते हुये आचार्य शंकर सौन्दर्यलहरी में कहते हैं कि भगवती भूमितत्त्व, जलतत्त्व, अग्नितत्त्व, वायुतत्त्व और आकाशतत्त्व तो हैं ही, लेकिन समष्टि रूप में तो वे ही पञ्च-भूतात्मक समस्त जगत् भी हैं; क्योंकि जगत् भगवती का परिणाममात्र है। इसी परिणाम-वाद की पुष्टि करते हुये आचार्य शंकर कहते हैं—

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि।

* * * * *

त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन विभृषे।

भगवती शम्भु का शरीर हैं— आचार्य शंकर अपने सौन्दर्यलहरी (३४) में ही पुनः कहते हैं कि 'शरीरं त्वं शम्भो' अर्थात् हे भगवती आनन्दभैरवी ! और भगवान् आनन्दभैरव का शरीर है।

३. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का सगुण-साकार एवं निर्गुण-निराकार स्वरूप

ललितासहस्रनाम की दृष्टि से भगवती के विभिन्न स्वरूप— ललितासहस्रनाम के माध्यम से भगवती त्रिपुरा के स्वरूप के प्रत्येक पक्ष को अनावृत किया गया है। उनके सगुण-साकार स्वरूप को उद्घाटित करने हेतु उनकी निम्न अभिधानों से स्तुति की गयी है, जो कि उनके स्वरूप की विशेषतायें हैं—

भगवती सहस्र उदयकालिक सूर्यों के सदृश आभा वाली (उद्यद्भानुसहस्राभा) हैं; वे वामकेशी (सुन्दर केश वाली), वामनयना, तरुणी, तनुमध्या, शृङ्गाररससम्पूर्णा, महाकामेशनयना, कुमुदाह्लादकौमुदी, शिवप्रिया, शिवमूर्ति, शिवाराध्या, शिवपरा, स्वप्रकाशा, नित्ययौवना, मदशालिनी, मदाघूर्णितरक्ताक्षी, मदपाटलगण्डभू, चन्दनद्रवदिग्धाङ्गा, चाम्पेय-कुसुमप्रिया, कुशला, कोमलाकारा, स्वस्तिमती, कान्ति, नन्दिनी, तेजोवती, त्रिनयना, लोलाक्षी, कामरूपिणी, मालिनी, सुमुखी, नलिनी, कालकण्ठी, सूक्ष्मरूपिणी, कान्तिमती, सुभ्रू, यशस्विनी, आरक्तवर्णा, त्रिलोचना, वदनैकसमन्विता, श्यामाभा, वदनद्वया, दंष्ट्रोज्ज्वला, अक्षमालादिधरा, रुधिरसंस्थिता, स्निग्धौदनप्रिया, वदनत्रयसंयुता, रक्तवर्णा, चतुर्वक्त्रमनोहरा, शूलाद्यायुधसम्पन्ना, गुड़ान्नप्रीतमानसा, मांसनिष्ठा, मधुप्रीता, पञ्चवक्त्रा, षडानना, हरि-द्रान्नैकरसिका, सर्वायुधधरा, सर्वतोमुखी, सर्वौदनप्रीतचित्ता, बन्धुरालका, ताम्बूलपूरित-मुखी, दाडिमीकुसुमप्रभा, मृगाक्षी, मोहिनी और चन्द्रनिभा हैं।

वे चतुर्भुजी हैं और राग के रूप में 'पाश', क्रोध के रूप में 'अंकुश', मन के रूप में 'इक्षुदण्ड' एवं पञ्चतन्मात्राओं के रूप में 'पाँच बाण' धारण की हुई हैं। वे अपनी रक्तिम कान्ति के प्रवाह से ओतप्रोत ब्रह्माण्डमण्डलस्वरूपा हैं। भगवती के 'केश' चम्पा, अशोक

एवं पुन्नाग के सुगन्धित पुष्पों से सुगन्धित हैं। कुरविन्द मणि एवं पद्मराग मणि की दीप्ति से उनका 'किरीट' सुशोभित है। उनका 'मस्तक' अष्टमी तिथि की चन्द्रमा से सुशोभित है। उनके चन्द्रसदृश मनोज्ञ मुखमण्डल पर कस्तूरी का टीका लगा हुआ है। उनका 'मुख' कामेश्वर के कल्याणमय भवन पर झूलते हुए तोरण के समान सुन्दर है। उनके 'नेत्र' अबाधगतिक एवं चञ्चल लक्ष्मीस्वरूपा मछलियों के समान हैं। उन देवी का 'नासादण्ड' अर्धविकसित चम्पापुष्प के समान है। देवी के 'नासाभूषण' ताराओं को लज्जित करने वाले एवं देदीप्यमान हैं। वे कदम्ब की मञ्जरी से रञ्जित कानों के ऊर्ध्व भाग के आभूषणों से सभी के मन को मुग्ध करने वाली हैं। उनके 'ताटङ्कयुगल' सूर्य एवं चन्द्र हैं। उनके 'कपोल द्वय' पद्मराग मणि से भी अधिक निर्मल एवं विम्बग्राहक हैं। उनके अधर एवं ओष्ठ नवीन मूँगे के सदृश आरक्त हैं। उनके द्वारा चर्वित कर्पूरयुक्त ताम्बूलों से समस्त दिशायें सुगन्धित हो रही हैं। वे अपने स्वतः सुन्दर वर्णात्मक शब्दध्वनि से श्रेष्ठ वीणा की मधुरता को भी तुच्छ बना रही हैं। उनका चिबुक (ठुड्डी) अनुपमेय है और उसकी अकल्पित शोभा से वे मण्डित हैं। कामेश्वर द्वारा ग्रथित सौभाग्यचिह्नसूत्र से भगवती का गला अत्यन्त सुशोभित है। स्वर्णकेयूरों को भुजाओं पर धारण करने से उनकी भुजायें अत्यन्त शोभायमान हैं। वे रत्नों एवं मुक्ताओं से जटित चिन्ताक हार गले में धारण की हुईं हैं। वे नाभिरूपी आलवाल (क्यारी) से निकली रोमावलीरूपी लता पर दो स्तनरूपी पुष्पों को धारण की हुईं हैं। वे रोम से भी सूक्ष्म कटि वाली हैं। उनकी कमर स्तनों के भार से टूटती हुईं-सी प्रतीत हो रही है; अतः उसे बचाने हेतु वे मानो त्रिवलीरूपी स्वर्णपत्र (कमर में) धारण की हुईं हैं। उनका कटिप्रदेश कुसुम्भपुष्प के समान आरक्त वस्त्र से शोभायमान है। उनके कटिप्रदेश में रत्नों की घण्टिकाओं से शोभित मेखला है। उनके नितम्बों की कोमलता एवं कमनीयता का बोध मात्र कामेश्वर को है अर्थात् अचिन्त्य है। उनके दोनों घुटने आरक्त मणि के किरीट के आकार के हैं। उनकी जंघायें इन्द्रगोप से खचित कामदेव के तरकस के समान हैं। उनके चरणयुगल की कमनीयता से कमनीय स्वयं भी लज्जित हो रहा है। उनके श्रीचरण गुञ्जार करने वाले, लाल रत्न-निर्मित नूपुरों से सुशोभित हैं। उनकी मन्थर गति मराली की भाँति है। वे अतुल्य एवं महान सौन्दर्यों की खजाना हैं। वे सर्वारुणा हैं, अनवद्याङ्गा हैं, स्वर्णाभरणभूषिता हैं और शिवकामेश्वराङ्कस्था हैं। उनकी आधीनता में ही स्वयं कामेश्वर भी रहते हैं। वे सुन्दर मेरु पर्वत के शिखर के मध्य भाग में निवास करती हैं। वे श्रीविद्या के 'श्रीनगर' की स्वामिनी हैं। वे चिन्तामणिनामक अतुल्य मणियों से निर्मित 'चिन्तामणिगृह' में निवास करती हैं। वे पाँच ब्रह्माओं से निर्मित आसन पर विराजमान रहती हैं। वे बड़े-बड़े कमलों के वन में निवास करती हैं। वे कदम्बवन की भी निवासिनी हैं। उनका निवास अमृत के सागर के मध्य में है। वे कामाक्षी— कमनीय नयनों वाली हैं या कामेश्वर एवं पराम्बा का 'विमर्श' हैं। वे शरच्चन्द्रनिभानना, नीलचिकुरा, चारुरूपा, चारुहासा, चारुचन्द्रकलाधरा, पद्मनयना, पद्मरागसमप्रभा, रम्या, राजीवलोचना, मत्ता, इन्द्रधनुःप्रभा, दरान्दोलितदीर्घाक्षी, दरहासो-ज्ज्वलन्मुखी,

गुणनिधि, दिव्यविग्रहा, दिव्यगन्धाढ्या, सिन्दुरतिलकाञ्चिता, गौरी, शोभना, सर्वमोहिनी, कोमलाङ्गी, त्र्यम्बका, सुभगा, शुद्धा, जपापुष्पनिभाकृति, द्युतिधरा, विश्वतोमुखी, कामरूपिणी, पाशहस्ता, मूर्तामूर्ता, मूलविग्रहरूपिणी, कनतकनकताटंका, मुग्धा, विद्रुमाभा, सौम्या, स्वस्था, सदाशिवकुटुम्बिनी, स्वभावमधुरा, सदातुष्टा, तरुणादित्यपाटला, दरस्मेरमुखाम्बुजा, विशालाक्षी, मानवती, व्योमकेशी, पञ्चप्रेतमञ्चाधिशायिनी, बाला, लीलाविनोदिनी, सुवेषाढ्या, सुवासिनी, आशोभना तो हैं ही; साथ ही वे षडध्वातीतरूपिणी भी हैं।

वे तत्त्वमयी, तत्त्वमर्थस्वरूपिणी, स्तोत्रप्रिया, विश्वमाता, परमोदा, शाश्वती, गुणातीता, लोकातीता, शान्त्यतीतकलात्मिका, अजा, त्रिपुरमालिनी, त्रिवर्गनिलया, त्रयी, अन्तर्मुख-समाराध्या, स्वात्मारामा, निरालम्बा, सुधाश्रुति, यजमानस्वरूपिणी, धर्माधारा, धनाध्यक्षा, विप्ररूपा, विप्रप्रिया, विश्वग्रासा, विष्णुरूपिणी, वैष्णवी, कूटस्था, कुलरूपिणी, नादरूपिणी, तत्त्वाधिका, इच्छाशक्ति-ज्ञानशक्ति-क्रियाशक्तिस्वरूपिणी, सर्वाधारा, सदसत् रूपिणी, योगदा, लीलाक्लृप्तब्रह्माण्डमण्डला, सुप्रतिष्ठा, वृद्धा, अन्नदा, निर्द्वैता, द्वैतवर्जिता, भाषा-रूपा, भावाभावविवर्जिता, राजराजेश्वरी, राज्यदायिनी, सावित्री, सच्चिदानन्दरूपिणी, सत्यसन्धा, राज्यलक्ष्मी, सर्वार्थदात्री, देशकालापरिच्छिन्ना, गुरुमण्डलरूपिणी, माया, चित्कला, आनन्दकलिका, स्वतन्त्रा, प्रेमरूपा, नटेश्वरी, मुक्तिरूपिणी, लज्जा, महेश्वरी, महाग्रासा, महाशना, महाकाली, सरस्वती, चण्डिका, विश्वधारिणी, यज्ञरूपा, विराड्रूपा, प्रत्यग्रूपा, पराकाशा, प्राणरूपिणी, प्राणदा, परापरा, सामरस्यपरायणा, कला, माला, कामधुक्, कला-निधि, काव्यकला, परंज्योति, परात्परा, परमाणु, पाशहन्त्री, सत्यव्रता, सत्यरूपा, सर्वान्त-र्यामिणी, सती, बहुरूपा, आज्ञा, सती, प्रतिष्ठा, प्राणेश्वरी, प्राणदात्री, मुक्तिनिलया, मन्त्र-सारा, शास्त्रसारा, ललिताम्बिका, शिवशक्त्यैक्यरूपिणी और श्रीचक्रराजनिलया हैं।

वे साधकों के अभीष्ट को पूर्ण करने वाली (कामदायिनी) हैं। उनकी स्तुति तो समस्त देवता एवं ऋषि भी किया करते हैं। वे भण्डासुर के वधार्थ अपनी सेना से समन्वित हैं।

वे सम्पत्ति प्रदान करने वाली तथा सुन्धुरव्रज (गजसमूह) रूपी विषयसमूह से संसेवित हैं। वे अश्वारूढ़ा हैं (महाविद्याओं में एक महाविद्या अश्वारूढ़ा भी है।) वे चक्रराजरूपी रथ पर आरूढ़ एवं सर्वायुधा-अलंकृता हैं। वे गीतिचक्र पर आसीन मन्त्रिणी श्यामला देवी से सेवित हैं। वे किरिचक्र पर आरूढ़ दण्डनाथ से भी सेवित हैं। वे ज्वालामाला के स्फुलिंगों के मध्य भी स्थित हैं। वे भण्डासुर की सेना के वधार्थ प्रस्तुत शक्तिसमूह के पराक्रम से आनन्दित हैं। वे पन्द्रह नित्या शक्तियों के पराक्रम के विस्तार को देखने के लिए उत्सुक भी हैं और भण्डासुर के पुत्रों के वध हेतु प्रस्तुता बाला विद्या के पराक्रम से आनन्दित भी हैं। वे अपनी मन्त्रिणी श्यामला देवी द्वारा विशुक्र दैत्य के वध से सन्तुष्ट दिखायी पड़ रही हैं। वे विषंग दैत्य का वध किये जाने के कारण वाराही देवी के पराक्रम से हर्षित हैं। उन्होंने अपने मुख से हस्तमुखी देव को प्रकट किया है।

वे भण्डासुर के शस्त्रों को नष्ट करनेवाली हैं। उन्होंने अपने हाथ की उँगलियों से विष्णु, मत्स्य आदि दशों अवतारों को जन्म दिया है। उन्होंने पाशुपतास्त्र के तेज से समस्त आसुरी सेना का ध्वंस कर डाला है। उन्होंने कामेश्वरास्त्र से भण्डासुरसहित उसकी पुरी को भी जला दिया है। उनके पराक्रम की स्तुति तो ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादिक देवता भी करते रहते हैं। उन्होंने शिव के तृतीय नेत्र से भस्म होने वाले काम को पुनः जीवित कर दिया है।

वे मन्त्रस्वरूपिणी होने के कारण महामहिमामय वाग्भवकूट मन्त्रस्वरूप मुख वाली हैं। वे कण्ठ से नीचे कटिपर्यन्त द्वितीयकूटस्वरूपा (कामकूटस्वरूपा) हैं। वे कटि से नीचे के भाग को शक्तिकूट के रूप में धारण करती हैं। वे 'कूटत्रयशरीरिणी' हैं— मूल 'कूटत्रयकलेवरा' हैं।

वे कुलामृतरसिका (अमृतरसिका) हैं। वे कुल (शास्त्र) के संकेतों (रहस्यों) की रक्षा करने वाली हैं। वे कुलाङ्गना हैं। वे कुलान्तःस्था, कौलिनी, अकुला, समयान्तःस्था और समयाचारतत्परा के साथ-साथ मूलाधारैकनिलया, ब्रह्मग्रन्थिविभेदिनी, मणिपूरान्तरुदिता, आज्ञाचक्रान्तरालस्था, रुद्रग्रन्थिविभेदिनी, सहस्राम्बुजारूढ़ा, सुधासाराभिवर्षिणी, तड़िल्लतासमरुचि, षट्चक्रोपरि संस्थिता, महाशक्ति, कुण्डलिनी, बिसतन्तुतनीयसी, भवानी, भावनागम्या, भवारण्यकुठारिका, भद्रप्रिया, भद्रमूर्ति, भक्तिप्रिया, भक्तिगम्या, भक्तिवश्या, भयापहा, शाम्भवी, शर्वाणी, शर्मदायिनी, शाङ्करी, श्रीकरी, साध्वी, शातोदरी, शान्तिमती, निरञ्जना, निर्लेपा, निर्मला, नित्या, निराकारा, निराकुला, निर्गुणा, निष्कला, शान्ता, निष्कामा, निरुपप्लवा, नित्यमुक्ता, निर्विकारा, निष्प्रपञ्चा, निराश्रया, नित्यशुद्धा, नित्यबुद्धा, निरवद्या (अनिन्द्या), निरन्तरा, निष्कारणा, निष्कलङ्का, निरुपाधि, निरीश्वरा (स्वामीरहित), नीरागा, रागमथिनी, निर्मदा, मदनाशिनी, निश्चिन्ता, निरहङ्कारा, निर्मोहा, मोहनाशिनी, निर्ममा, ममताहन्त्री, पापनाशिनी, निष्क्रोधा, क्रोधनाशिनी, लोभनाशिनी, संशयघ्नी, निर्भवा, भवनाशिनी, निर्विकल्पा, निर्भेदा, निराबाधा, भेदनाशिनी, निर्नाशा, निष्क्रिया, निष्परिग्रहा, निस्तुला, निरत्यया, दुर्गा, दुःखहन्त्री, सुखप्रदा, दुराचारशमिनी, सर्वज्ञा, सान्द्रकरुणा, सर्वशक्तिमयी, सर्वमङ्गला, सर्वेश्वरी और सर्वमयी भी हैं।

वे सर्वमन्त्रस्वरूपिणी, सर्वयन्त्रात्मिका, सर्वतन्त्ररूपा एवं मनोन्मनी हैं। वे माहेश्वरी महादेवी, महालक्ष्मी, मृडप्रिया (शिववल्लभा), महारूपा, महापूज्या, महामाया, महासत्त्वा, महाशक्ति, महारति, महाभोगा, महैश्वर्या, महावीर्या, महाबला, महासिद्धि, महायोगेश्वरेश्वरी, महातन्त्रा, महामन्त्रा, महायन्त्रा, महासना, महाभैरवपूजिता, महेश्वरमहाकल्पमहाताण्डवसाक्षिणी, महाकामेशमहिषी, महात्रिपुरसुन्दरी (प्रमातृ-प्रमाण-प्रमेयरूप पुरत्रय को अपने ज्ञान से सुन्दर बनाने वाली), चतुःषष्ट्युपचाराढ्या, चौंसठ कलाओं वाली, महाचतुःषष्टिकोटि योगिनियों से सेवित, मनुविद्या, चन्द्रविद्या, चन्द्रमण्डलमध्यगा, चराचरजगन्नाथा, चक्रराजनिकेतना, पार्वती, पञ्चप्रेतासनासीना, पञ्चब्रह्मस्वरूपिणी, चिन्मयी, परमानन्दा, विज्ञान-

घनरूपिणी, ध्यान-ध्यातृ-ध्येयरूपा, धर्माधर्मविवर्जिता, विश्वरूपा, जागरिणी, स्वपन्ती, तैजसात्मिका, सुप्ता, प्राज्ञात्मिका, तुर्या, सर्वावस्थाविवर्जिता, सृष्टिकर्त्री, ब्रह्मरूपा, गोविन्द-रूपिणी, रुद्ररूपा, संहारिणी, ईश्वरी, तिरोधानकरी, सदाशिवा, अनुग्रहदा, पञ्चकृत्यपरायणा, भानुमण्डलमध्यस्था, भैरवी, भगमालिनी, पद्मासना, भगवती, पद्मनाभसहोदरी (विष्णु की बहन), उन्मेषनिमेषोत्पन्नविपन्नभुवनावली, सहस्रशीर्षवदना, सहस्राक्षी, सहस्रपात्, आब्रह्मकीटजननी, वर्णाश्रमविधायिनी, निजाज्ञारूपनिगमा, पुण्यापुण्यफलप्रदा, पुरुषार्थप्रदा, पूर्णा, अनादिनिधना, नारायणी, अम्बिका, भुवनेश्वरी, नादरूपा, ह्रींकारी, राज्ञी, रमा, रामा, काम्या, कामलारूपा, कल्याणी, करुणारससागरा, कान्ता, वारुणीमदविह्वला, वरदा, विश्वाधिका, विधात्री, वेदजननी, विष्णुमाया, विजया, विमला, जगतीकन्दा, भक्तिमत-कल्पलतिका, पशुपाशविमोचिनी, संहृताशेषपाखण्डा, सदाचारप्रवर्तिका, तमोपहा, चिति, तत्पदलक्ष्यार्था, चिदेकरसरूपिणी, स्वात्मानन्दलवी-भूताब्रह्माद्यानन्दसन्तति, परा, प्रत्यक्, चिति, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी, भक्तमानसहंसिका, कामेश्वरप्राणनाड़ी, कृतज्ञा, जालन्धर-स्थिता, ओड्याणपीठनिलया, बिन्दुमण्डलवासिनी (परबिन्दुनिवासिनी), सद्यःप्रसादिनी, विश्वसाक्षिणी, षाड्गुण्यपरिपूरिता, नित्यक्लिन्ना (दयार्द्रा), नित्यषोडशिकारूपा, श्रीकण्ठा-र्धशरीरिणी, परमेश्वरी, मूलप्रकृति, अव्यक्ता, व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी, विद्याविद्यास्वरूपिणी, चिच्छक्ति, चेतनारूपा, जड़शक्ति, जड़ात्मिका, गायत्री, व्याहृति, सन्ध्या, तत्त्वासना, तुष्टि, पुष्टि, मति, धृति, शान्ति, विघ्ननाशिनी, माता, क्षोभिणी, वज्रेश्वरी, वामदेवी, सिद्धेश्वरी, सिद्धविद्या, सिद्धमाता, पशुलोकभयङ्करी, अनाहताब्जनिलया, मणिपूराब्जनिलया, आज्ञाचक्राब्जनिलया, सहस्रदलपद्मस्था, सर्ववर्णोपशोभिता, स्वाहा, स्वधा, मति, मेधा, श्रुति, स्मृति, बन्धमोचिनी, विद्या, मित्ररूपिणी, निखिलेश्वरी, परा शक्ति, परानिष्ठा, मातृका-वर्णरूपिणी, भक्तिनिधि, दयामूर्ति, आत्मविद्या, महाविद्या, श्रीविद्या, शिरःस्था, भालस्था, हृदयस्था, दहराकाशरूपिणी, आदिशक्ति, परमा, अनेककोटिब्रह्माण्डजननी, क्लींकारी, केवला, त्रिपुरा, त्र्यक्षरी, विश्वगर्भा, स्वर्णगर्भा, ध्यानगम्या, ज्ञानदा, ज्ञानविग्रहा, सर्व-वेदान्तसंवेद्या आदि हैं।

४. त्रिपुरारहस्य में भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप

त्रिपुरा दर्पण है। जगत् भगवती त्रिपुरा का कौतुकजन्य रङ्गमञ्च है। त्रिपुरारहस्य के ज्ञानखण्ड में कहा गया है कि केवल विशुद्ध चैतन्य ही सत्य है और वह भगवती त्रिपुरा हैं। इसी सत्य शक्ति को विष्णु, शिव आदि भी कहा गया है। भगवती त्रिपुरा अविभाज्य रूप में भगवान् शिव के साथ एकीभूत हैं। संसार भगवती की अभिव्यक्तिमात्र है। त्रिपुरा दर्पण हैं। इसी में निःशेष विश्व एवं जीवात्मा प्रतिविम्बित है। भगवती त्रिपुरा स्वतन्त्र सृजनशक्ति हैं और वे मात्र आनन्द एवं कौतुकहेतु सृष्टि करती हैं। वे ही अपने मायावी ताने-बाने से विश्व की रचना करती हैं और अपनी मायाशक्ति द्वारा जीवों को भ्रम में डालती हैं तथा बन्धन का कारण बनती हैं। वे ही गुरु के मार्गदर्शन में मुक्ति भी प्रदान करती हैं।

विशुद्ध चैतन्य की दृष्टि से जीवात्मा एवं ब्रह्म में ऐकात्म्य है और इस दृष्टि से इस ऐकात्म्य भाव के धरातल पर न कहीं सृष्टि है, न विनाश है, न बन्धन है और न ही कहीं मुक्ति है। सर्वत्र असीम शान्त पयोधि है, जहाँ पर हजारों तरंगें उठती-बैठती रहती हैं। बाह्य दृष्टि से ही जीवात्मा-परमात्मा में भेद है; तात्त्विक दृष्टि से नहीं। आत्मसाक्षात्कार की स्थिति उपलब्ध करने पर सम्पूर्ण जगत् आत्मा में घुल-मिल कर एक हो जायेगा। आत्मसाक्षात्कार द्वैतभाव को तिरोहित करने की प्रक्रिया है।

विश्व मूलत: चैतन्यप्रकाश या भगवती त्रिपुरा से अभिन्न है। जगत् से पलायन असार है; क्योंकि सर्वव्यापक भगवती त्रिपुरा से पृथक् कोई स्थिति है ही नहीं। भगवती त्रिपुरा की सत्ता सर्वत्र व्याप्त है। इसमें भिन्नत्व का बोध बन्धन है और अभिन्नत्व का बोध मुक्ति; क्योंकि भगवती त्रिपुरा के आन्तरिक एकत्व में खण्डत्व, पृथक्त्व एवं भिन्नत्व की कोई संभावना नहीं है। भिन्नत्व तो भगवती त्रिपुरा की सर्वव्यापी सृजन शक्ति में ही निहित होकर पूर्ण एकत्व की स्थिति ही सत्ता है।

जैसे दर्पण में प्रतिबिम्बित नगर की कोई यथार्थ सत्ता नहीं होने पर भी प्रतिबिम्ब में उसकी स्थिति है, उसी प्रकार विश्व की भी कोई यथार्थ सत्ता न होने पर भी उसकी चिदात्म स्थिति है। दर्पण में प्रतीत होने वाला नगर दर्पणरूप से है ही नहीं; अत: जगत् को अद्वैतचिदात्मस्वरूप से तो सत्य ही कहा गया है। जिस प्रकार दर्पणस्थ नगर यद्यपि सत्य नहीं है तथापि उसके प्रतिबिम्ब की भी सत्ता है, उसी प्रकार जगत् की भी कोई स्वत: स्वतन्त्र सत्ता नहीं है तथापि उसकी छाया (स्थिति) को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता।

सम्पूर्ण विश्व चैतन्य है। यही परम पूर्ण ज्ञान है। जिस प्रकार दर्पण में नगर के प्रतिबिम्ब का अनुभव होता है उसी प्रकार सर्वव्यापक चैतन्य में जगत् रूप एक वस्तु का स्वत: भास होता है। सर्वव्यापक चैतन्य की दृष्टि से न कोई साधक है और न ही कोई बन्धन या मुक्ति; अत: कहीं भी साधक एवं साधना का अस्तित्व ही नहीं है; बल्कि सर्वत्र अखण्ड अद्वैत चैतन्यस्वरूपा भगवती त्रिपुरा की ही व्यापकता, सत्ता, स्थिति एवं विद्य-मानता है। भगवती त्रिपुरा ही सम्पूर्ण ज्ञान एवं अज्ञान हैं; वही बन्धन, मुक्ति एवं साधना हैं। अत: मात्र त्रिपुरा को ही जान लेना सम्पूर्ण ज्ञान है। मात्र भगवती त्रिपुरा ही नम्य, प्रणम्य एवं उपास्य हैं।

विश्व का आधारभूत तत्त्व परम चैतन्यमात्र भगवती त्रिपुरा हैं। इन्हें ही ज्योतिसूर्य, विशुद्ध चेतना, सदोदित आत्मा एवं सनातन ज्योति कहा गया है।

५. आचार्य भास्कर्राय की दृष्टि और भगवती त्रिपुरसुन्दरी

आचार्य भास्कर्राय भावनोपनिषद् में कहते हैं कि श्रीत्रिपुरसुन्दरी के तीन भेद हैं— स्थूल, सूक्ष्म और पर। उपासनारूपा क्रिया भी त्रिविधात्मिका है— कायिकी, वाचिकी

एवं मानसी। बहिर्याग एवं जप आदि अन्तर्याग रूपों को, परस्पर संवलित होकर भी प्राधान्य-प्राचुर्य की दृष्टि से, कायिक, वाचिक एवं मानस— ये तीन नाम प्राप्त हो जाते हैं। इनमें आदिम दो रूप त्रिपुरतापिन्युपनिषद् में विस्तार से वर्णित हैं; किन्तु तृतीय— उपासनास्वरूप भावनोपनिषद् में अभिव्यक्त किया गया है, जो कि कायिक एवं वाचिक उपासनाओं की तुलना में अधिक रहस्यमय है और काल-चक्रान्तर्गत श्रीचक्र की भावनाख्या उपासना के रूप में व्यपदिष्ट हुआ है। अथर्वनामक वेदपुरुष ने योगियों की अनुजिघृक्षा के उद्देश्य से सद्गुरु को परस्वरूप स्वीकार करते हुये इसी भावनोपनिषद् का 'श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः' सूत्र से मङ्गलाचरण प्रस्तुत किया है और 'भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति' सूत्र से समापन किया है।[१]

भास्कर राय अपने भावनोपनिषद्भाष्य में कहते हैं कि यह भावना नामक उपासना की पद्धति 'भावना' के द्वारा 'जीवन्मुक्ति' का विधान करने के कारण एक अपूर्व विधि है— 'भावनया जीवन्मुक्तिं भावयेदिति विपरिणतं सदपूर्वो विधिः।'

यह विधि अर्थभावनाकरणीभूत, भावार्थरूप एवं पररूप की भावना से अन्वित होकर स्वर्गादि की भाँति उसके स्वरूप-निरूपणहेतु 'श्रीगुरुः' इत्यादि सूत्रों द्वारा उपबृंहित की गयी है।

यद्यपि यह भावना कादिमत-कौलमतभेद से दो लक्षणों से संवलित है तथापि भास्कर राय का कथन है कि मैं इसकी कादिमत की दृष्टि से ही विवेचना करुँगा। कादि-मत से अन्तश्चक्र भावना का प्रतिपादन करते हुए इस उपनिषद् का 'य एवं वेद' पदों द्वारा समापन किया गया है। त्रिपुरामहोपनिषद् की व्याख्या में भास्कर राय कहते हैं कि उपासना की दृष्टि से विचार करने पर देवताओं के तीन रूप होते हैं— स्थूल रूप, सूक्ष्मरूप और पररूप।

स्थूल रूप— उस सम्बद्ध देवता की ध्यान-पद्धति में जो रूप निरूपित किया जाता है, वही उसका स्थूल रूप होता है।

सूक्ष्म रूप— किसी भी देवता का जो स्वरूप उसके मूलमन्त्र में निहित होता है, वही उसका सूक्ष्म रूप होता है।

पर रूप— किसी भी देवता का जो उपासनात्मक रूप होता है, वही उसका पररूप होता है।

देवता के इन तीन रूपों के आधार पर ही देवताओं की साधना के भी तीन रूप माने गये हैं— बहिर्याग, जप एवं अन्तर्याग।

त्रिपुरामहोपनिषद् के आदि में मुख्य देवता— त्रिपुरा के स्वरूप की ही व्याख्या की गई है।[२]

---

१. आचार्य भास्कर राय : भावनोपनिषद भाष्य

२. भास्कर भाष्य (त्रिपुर महोपनिषद)

६. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी सच्चिदानन्दलहरी हैं

महात्रिपुर-सुन्दरी की ब्रह्मात्मकता एवं आनन्दात्मकता— बह्वृचोपनिषद् में कहा गया है कि भगवती 'भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्याऽद्वितीया ब्रह्मसंवित्ति सच्चिदानन्दलहरी' हैं— 'अत एषा ब्रह्मसंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्याऽद्वितीया ब्रह्मसंवित्तिः सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति।'

देव्युपनिषद् में भगवती कहती हैं— 'अहमानन्दा' अर्थात् 'मैं आनन्द हूँ।'

देवी साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी है— 'साऽब्रवीदहं ब्रह्मस्वरूपिणी।' यह भी देव्युपनिषद् में ही कहा गया है।

सत्यमेकं ललिताऽऽख्यं वस्तु तदद्वितीयमखण्डार्थं परं ब्रह्म। (बह्वृचोपनिषद्)

धूमावती सावित्री सरस्वती गायत्री ब्रह्मानन्दकलेति। (बह्वृचोपनिषद्)

ललितासहस्रनाम में उन्हें ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपिणी भी कहा गया है। साथ ही चिन्मयी परमानन्दा, ब्रह्माद्यानन्दसन्तति, स्वात्मानन्दा, ब्रह्मानन्दा, सच्चिदानन्दरूपिणी, सत्यानन्द-स्वरूपिणी एवं सुधासागरमध्यस्था आदि कहकर उन्हें अखण्ड एवं अनन्त आनन्द का परम केन्द्र भी कहा गया है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के आनन्द की इयत्ता एवं परिमाण क्या है?—

१. समस्त मानव जाति का	१०० आनन्द	= मानवगन्धर्वों का एक आनन्द
२. मानवगन्धर्वों के	१०० आनन्द	= देवगन्धर्वों का एक आनन्द
३. देवगन्धर्वों के	१०० आनन्द	= पितरों का एक आनन्द
४. पितरों के	१०० आनन्द	= आजानज देवों का एक आनन्द
५. आजानज देवों के	१०० आनन्द	= कर्मदेवों का एक आनन्द
६. कर्मदेवों के	१०० आनन्द	= देवताओं का एक आनन्द
७. देवताओं के	१०० आनन्द	= इन्द्र का एक आनन्द
८. इन्द्र के	१०० आनन्द	= बृहस्पति का एक आनन्द
९. बृहस्पति के	१०० आनन्द	= प्रजापति का एक आनन्द
१०. प्रजापति के	१०० आनन्द	= ब्रह्मा का एक आनन्द
		= हिरण्यगर्भ ब्रह्मा का एक आनन्द[१]

११. परब्रह्मस्वरूपिणी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का आनन्द क्या है? ब्रह्म है क्या? ब्रह्म आनन्द है। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा भी गया है—

'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।'

---

१. तैत्तिरीयोपनिषद्

तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि जो ब्रह्म आनन्दस्वरूप है उसके आनन्द की खोज करते-करते तो मन के सहित वाणी आदि समस्त इन्द्रियाँ वहाँ से लौट आती हैं; किन्तु उसके आनन्द की इयत्ता का सन्धान नहीं कर पातीं—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन।।

यही अचिन्त्य, अखण्ड एवं असीम आनन्द है— महात्रिपुरसुन्दरी का आनन्द। समस्त प्राणी इस पारमात्मिक आनन्द के किसी एक अंश को लेकर ही जीते है।[१] परमात्मा परानन्द है— 'सोऽयं हरिः परानन्दः।'

आनन्दात्मिक विद्या— 'भार्गवी' एवं 'वारुणी' विद्या आनन्दात्मिक विद्या है। वेदों में इस विद्या की सविस्तार व्याख्या की गई है। इसके अनुसार—

१. आनन्द ही ब्रह्म है।

२. आनन्द से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं।

३. आनन्द से ही समस्त प्राणी जीवित रहते हैं।

४. समस्त प्राणी इहलोक से प्रयाण करते हुए अन्त में आनन्द में ही लय हो जाते हैं— प्रविष्ट हो जाते हैं।

५ यह विद्या परमे व्योमन् में प्रतिष्ठित है।

६. जो इस विद्या को जानता है वह भी उस आनन्दस्वरूप परमे व्योमन् में प्रतिष्ठित हो जाता है।

आनन्द और उनकी तुलनात्मक श्रेणियाँ

सप्तद्वीपवती पृथ्वी के राजेन्द्रवन्दित निःसपत्न, निरामय, अव्याहतेन्द्रिय एवं सार्वभौम एक सम्राट के १०० आनन्द = १०० मनुष्यानन्द = एक गन्धर्वानन्द।

१०० गन्धर्वानन्द = एक पितरानन्द	१०० रुद्रानन्द = एक ईशानन्द
१०० पितरानन्द = एक उपदेवानन्द	१०० ईशानन्द = एक शैवानन्द
१०० उपदेवानन्द = एक देवानन्द	१०० शैवानन्द = एक प्रकृत्यानन्द
१०० देवानन्द = एक वैरच्यानन्द	१०० प्रकृत्यानन्द = एक पुरुषानन्द
१०० वैरच्यानन्द = एक वैष्णवानन्द	१०० पुरुषानन्द = एक अक्षरानन्द
१०० वैष्णवानन्द = एक रुद्रानन्द	१०० अक्षरानन्द = एक ब्रह्मानन्द

यही ब्रह्मानन्द भगवती त्रिपुरसुन्दरी का आनन्द है। समस्त विश्व इसी ब्रह्मानन्द का विस्तार एवं विभाजन है। यहाँ के समस्त आनन्द उसी एक ब्रह्मानन्द की करोड़वीं कला

---

१. आनन्द को ही ऋषियों ने ब्रह्म कहा है— 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।'

हैं। समस्त विश्व ब्रह्मानन्द की करोड़वीं कला से भी कम मात्रा में जीवित है और उसी आनन्द से अनुप्राणित है— 'ब्रह्मानन्दमयं विश्वं नानाभावो न विद्यते।'

माहेश्वरतन्त्र में कहा गया है कि नानात्व का प्रतिषेध कर देने पर मात्र आनन्द ही शेष रह जाता है— 'तत्प्रतीते निरासे तु परं ब्रह्मैव शिष्यते।'

आनन्द ही विश्व का रस है। रस (आनन्द) ही ब्रह्म है— रसो वै सः।

आनन्द परमात्मा की स्वरूपभूता एवं समवायिनी शक्ति है। ब्रह्म की शक्तियाँ हैं— चित्शक्ति, आनन्दशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, और क्रियाशक्ति।

चूँकि शक्ति एवं शक्तिमान अभिन्न हैं; अतः दोनों ही आनन्दस्वरूप हैं। जगत् उसी आनन्द शक्ति का विस्तार है। भगवान् विष्णु की आनन्द शक्ति 'आह्लादिनी शक्ति' एवं भगवान् परमशिव की आनन्द शक्ति 'आनन्द शक्ति' कहलाती है। भगवती त्रिपुरसुन्दरी को आचार्य शंकर ने भी अपने सौन्दर्यलहरी में 'आनन्दलहरी' ही कहा है—

१. भजन्ते त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।

तन्त्रशास्त्र भी उन्हें इसी विशेषण के साथ स्मरण करता है—

२. चिदानन्दमहाम्भोधिलहरीं ललितांकृतिम्।

३. चिदानन्दमयी सा हि सर्वकारणकारणा।।

४. नमो वेदान्तवेद्याय नित्यानन्दमयाय च।
निरञ्जनाय शुद्धाय सच्चिदानन्दचेतसे।।

प्राणियों की आनन्द की ओर भागदौड़ क्यों? आनन्द-सिन्धु का निवासी 'बिन्दु' सिन्धु से पृथक् होकर अपनी संकुचित सीमा में सिन्धु के पूर्वानुभूत अनन्त आनन्द को पाने की जब चेष्टा करता है, तब वह जगत् के क्षुद्र आनन्दांश में उसे प्राप्त नहीं कर पाता; अतः लगातार यावज्जीवन आनन्द की प्यास में मृग की भाँति दौड़ता रहता है। जागतिक विषयानन्द मूलतः आनन्द नहीं, आनन्दाभास है; अतः उसमें विशुद्ध, अक्षर, अखण्ड एवं अनन्त आनन्द कहाँ?

उपनिषदों ने परब्रह्म को एवं विश्व की परा सत्ता को 'आनन्द' की ही आख्या प्रदान की है। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा भी गया है— 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।'

आनन्द ही सृष्टि का मूल उत्स है। जगत् उसी आनन्द की सृष्टि है। जगत् की गतिमान चक्र की धुरी भी आनन्द ही है और उसका आधार है— 'सच्चिदानन्दब्रह्मस्वरूपिणी महात्रिपुरसुन्दरी।'

७. प्रपञ्चनिर्मात्री के रूप में भगवती त्रिपुरसुन्दरी

त्रिपुरातापिन्युपनिषद् (१.६) में भगवती त्रिपुरा के स्वरूप एवं त्रिपुरामहामनु की विवेचना करने के बाद ही कहा गया है कि समस्त प्रपञ्च की सृष्टि शिव-शक्ति के संयोग

से होती है। उसी संयोग से समस्त लोक, समस्त वेद, समस्त शास्त्र, समस्त पुराण, समस्त धर्मशास्त्र, समस्त चिकित्साशास्त्र और समस्त ज्योतिषशास्त्र उत्पन्न हुए हैं— 'तत्र लोकाः वेदाः शास्त्राणि पुराणानि धर्माणि वै चिकित्सितानि ज्योतींषि शिवशक्ति-योगादित्येवं घटना व्यापठ्यते।'

शिव-शक्तियोग-सृष्टि

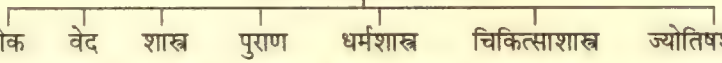

तान्त्रिक आचार्य गौड़पाद की दृष्टि— सृष्टि का उदय कैसे हुआ? इस दिशा में दार्शनिकों में मतभेद है। सृष्टि के मूल तत्त्व के विषय में मुख्यतः निम्न दृष्टियाँ हैं—

१. 'प्राण इति प्राणविदः'— प्राणोपासकों की दृष्टि में प्राणतत्त्व ही सृष्टि का मूल कारण है।

२. 'भूतानीति च तद्विदः'—भूतज्ञ चार्वाक आदि : पञ्चमहाभूत ही सृष्टि का मूल कारण है।

३. 'गुणा इति गुणविदः'— गुणज्ञ साङ्ख्यवादी प्रकृति के तीन गुणों को ही सृष्टि का मूल कारण मानते हैं।

४. 'तत्त्वानीति च तद्विदुः'— तत्त्वज्ञ आत्मा, अविद्या या शिव को ही सृष्टि का मूल कारण मानते हैं।

५. 'पादा इति पादविदः'— पादवेत्ता मानते हैं कि विश्व आदि पाद ही सम्पूर्ण सृष्टि के हेतु हैं।

इसी प्रकार—

६. विषया इति तद्विदः
७. लोका इति लोकविदः
८. देवा इति च तद्विदः
९. वेदा इति वेदविदः
१०. यज्ञा इति तद्विदः
११. भोक्तेति च भोक्तृविदः
१२. भोज्यमिति च तद्विदः
१३. सूक्ष्म इति सूक्ष्मविदः
१४. स्थूल इति च तद्विदः
१५. मूर्त इति मूर्तविदः
१६. अमूर्त इति च तद्विदः
१७. काल इति कालविदः
१८. दिश इति च तद्विदः
१९. वादा इति वादविदः
२०. भुवनानीति तद्विदः
२१. मन इति मनोविदः
२२. बुद्धिरिति च तद्विदः
२३. चित्तमिति चित्तविदः
२४. धर्माधर्मौ च तद्विदः
२५. षड्विंशक इत्येके
२६. षड्विंश इति चापरे
२७. एकत्रिंशक इत्याहुः
२८. अनन्त इति चापरे
२९. लोकांल्लोकविदः प्राहुः
३०. आश्रमा इति तद्विदुः
३१. स्त्रीपुंनपुंसकलैङ्गाः
३२. परापरमथापरे
३३. सृष्टिरिति सृष्टिविदः
३४. लय इति च तद्विदः
३५. स्थितिरिति स्थितिविदः

आदि सभी मतों के अन्त में आचार्य गौड़पाद अपना मत स्थापित करते हुए कहते हैं— 'सर्वे चेह तु सर्वदा' अर्थात् सभी वाद या मत आत्मतत्त्व में ही मूल तत्त्व की खोज करते हैं।

माण्डूक्योपनिषद् की दृष्टि— माण्डूक्योपनिषद् मानता है कि ॐ ही सब कुछ है। भूत्, भविष्यत् एवं वर्तमान ॐ की व्याख्यामात्र है। सब कुछ ॐकार ही है। यहाँ तक कि त्रिकालातीत पदार्थ भी मात्र ॐकार ही है। यह सब ब्रह्म ही है; यह आत्मा ही ब्रह्म है : ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्। तस्योपव्याख्यानं भूतं भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव।।१।। सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म।।२।।

शक्ति ही ब्रह्म है— शाक्त दार्शनिक प्रश्न करते हैं कि जिस 'विमर्श शक्ति' का अपना परिणमन ही जगत् है, अपना स्फुरण ही जगत् का प्रकाशन है एवं अपने विराट् रूप का संकुचन ही जगत् का संहार है, उस 'विमर्श शक्ति' के अतिरिक्त भला अन्य कौन जगत् का स्रष्टा हो सकता है? 'विमर्श' का अकृत्रिम अहंस्फुरण ही जगदाकार सृष्टि है, उसकी स्फुरत्ता ही जगत् की अभिव्यक्ति है और उसके अपने विराट् रूप का संकुचन ही जगत् का संहार है— 'विमर्शोनाम विश्वाकारेण, विश्वप्रकाशेन विश्वसंहारेण वा अकृत्रिमोऽह-मिति स्फुरणम्' अर्थात् जगत्, जगत् की उत्पत्ति एवं जगत् का प्रलय (संहार), सभी विमर्श शक्ति का अहंस्फुरणमात्र ही है।

वेदान्तसूत्र में 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा, जन्माद्यस्य यतः' के द्वारा जगत् की कारणता का केन्द्र जिस ब्रह्म में प्रतिपादित किया गया है, उसी को शाक्त 'शक्ति' कहते हैं और यह शक्ति ही ब्रह्म है। देव्युपनिषद् में एक प्रसङ्ग में आया है कि समस्त देवता देवी से जब उसका परिचय पूछते हैं तो वे कहती हैं—

- अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगच्छून्यं चाशून्यञ्च च।
- अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि। अहमखिलं जगत्। वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याऽहविद्याऽहम्। अजाऽहमनजाऽहम्।
- सैषाऽष्टौ वसवः। सैषैकादशरुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः, सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि कलाकाष्ठादिकालरूपिणी।
- मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
  ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी।।
- यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता।

सारांश यह कि शक्ति ही ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष, जगत्, शून्य, अशून्य, पञ्चभूत, वेद-अवेद, विद्या-अविद्या, अजा-अनजा, अष्ट वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, विश्वेदेव, सोमपा-असोमपा, यातुधान, असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष, सिद्ध, गुणत्रय, प्रजापति, इन्द्र, मनु, ग्रह, नक्षत्र, राशि, कला, काष्ठा एवं काल आदि सभी कुछ है।

बह्वृचोपनिषद् में भी कहा गया है कि प्राक् सृष्टिकाल में मूल सत्ता के रूप में पहले अकेली देवी ही थी और उसी ने जगत् का सृजन किया। वे ही 'कामकला' एवं 'शृङ्गार-कला' कहलाती हैं— 'ॐ देवी ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत। कामकलेति विज्ञायते। शृङ्गारकलेति विज्ञायते।'

उसी ने ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर, वादित्र देव, भोग्य एवं सभी को उत्पन्न किया। उसी ने अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, जरायुज आदि एवं सभी स्थावर-जङ्गम सत्ताओं को जन्म दिया— 'तस्या एव ब्रह्माऽजीजनत्। विष्णुरजीजनत्। रुद्रोऽजीजनत्। सर्वे मरुद्गणा अजीजनत्' आदि।

यह सृष्टिविधायिका शक्ति है कौन? इस प्रश्न के उत्तर में बह्वृचोपनिषद् कहता है कि वही यह 'परा शक्ति' है। वही यह 'शाम्भवी विद्या' एवं 'कादि विद्या' है। वही यह 'हादिविद्या' एवं 'सादिविद्या' है। वही यह महात्रिपुरसुन्दरी 'प्रत्यक् चिति' है—

- सैषा परा शक्तिः। सैषा शाम्भवी विद्या कादिविद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति।
- सैव पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तरवभासयन्ती देशकालवस्त्वन्तरासङ्गान्महा-त्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक् चिति।
- वही आत्मा भी है और वही ब्रह्मसंवित्ति भी है— 'सैवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा। अत एषा ब्रह्मसंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्याऽद्वितीया ब्रह्मसंवित्तिः सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी।'
- सैषा षोडशी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी।

जिसे आचार्य गौड़पाद एवं माण्डूक्य आदि उपनिषद् ने आत्मा कहा है, उसे ही भावनोपनिषद् में भी स्वात्मैक्यरूपा देवता कहा गया है।

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि— इसी सृष्टिनिर्मात्री शक्ति को आचार्य क्षेमराज ने शक्तिसूत्र (प्रत्यभिज्ञाहृदय) में विश्व-निर्माण में निरपेक्ष स्वतन्त्र चिति कहा है—

चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः।।१।।

इसकी व्याख्या में आचार्य क्षेमराज कहते हैं— 'विश्वस्य सदाशिवादेः भूम्यन्तस्य सिद्धौ, निष्पत्तौ, प्रकाशने स्थित्यात्मनि, परप्रमातृविश्रान्त्यात्मनि च संहारे, पराशक्तिरूपा चिति एव भगवती स्वतन्त्रा अनुत्तरविमर्शमयी शिवभट्टारिकाभिन्ना हेतुः कारणम्।'

अर्थात् सदाशिव से लेकर भूमिपर्यन्त विश्व की सिद्धिरूप निष्पत्ति (उत्पत्ति), स्थिति-रूप प्रकाशन एवं परप्रमाता में विश्रान्तिरूप संहार के लिए स्वतन्त्र, अनुत्तर विमर्शमयी, शिवभट्टारक से अभिन्न, परा शक्तिरूप भगवती चिति ही कारण है।

आचार्य क्षेमराज प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में कहते हैं कि— भगवती चित् (जो स्वच्छ एवं स्वतन्त्र है) भिन्न-भिन्न अनन्त संसारों के रूप में स्फुरित होती हैं— चिदेव भगवती स्वच्छस्वतन्त्ररूपा तत्तदनन्तजगदात्मना स्फुरति।

जगत् का जो प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय के रूप में प्रकाशन (अभिव्यक्ति) है, वह सब कुछ भगवती चिति शक्ति ही हैं और जगत् एवं जगद्विधायिनी शक्ति के मध्य यही कार्य-कारणभाव है, जिसे पारमार्थिक कार्य-कारणभाव कह सकते हैं— 'इत्येतावत्परमार्थोऽयं कार्यकारणभावः।'

बेचारा प्रमाण भला कहाँ तक उपयोगी एवं उपपन्न होगा? 'न प्रमाणवराकमुपयुक्तमुपपन्नं वा।'

यही चिति शक्ति स्वात्मारूप भित्ति में विश्व का उन्मीलन करती है— 'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति'।।२।।

जगत् प्रकाश के साथ एकात्म रूप से अवस्थित है— 'जगतः प्रकाशैकात्म्येनावस्थानमुक्तम्।'

चिति शक्ति ही ज्ञान, क्रिया, माया, गुणत्रय के रूप में स्फुरित होती है। आचार्य क्षेमराज शक्तिसूत्र में इसी का प्रतिपादन करते हैं— 'स्वातन्त्र्यात्मा चितिशक्तिरेव ज्ञान-क्रियामायाशक्तिरूपा पशुदशायां सङ्कोचप्रकर्षात् सत्त्वरजस्तमःस्वभावचित्तात्मतया स्फुरति।'

८. त्रिपुरसुन्दरी शब्दात्मिका, वर्णात्मिका, नादात्मिका एवं मन्त्रात्मिका

वरिवस्यारहस्यम् में भासुरानन्दनाथ (भास्करराय) कहते हैं कि जगत् नैसर्गिकी, स्फुरत्तात्मिका एवं विमर्शात्मिका शक्ति का परिणाम ही है— अर्थमयी सृष्टि, शब्दमयी सृष्टि एवं देहमयी सृष्टि—

सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा।
अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टिः।।

भगवती त्रिपुरा नाद एवं मन्त्र— योगिनीहृदय (१.६) में भगवती त्रिपुरा देवी के तीन संकेत बताये गये हैं— चक्रसङ्केत, मन्त्रसङ्केत एवं पूजासङ्केत। कहा भी है—

चक्रसङ्केतको मन्त्रपूजासङ्केतकौ तथा।
त्रिविधस्त्रिपुरादेव्यो सङ्केतः परमेश्वरि।।

नित्याषोडशिकार्णवनामक ग्रन्थ में भगवती के तीन रूप बताये गये हैं— स्थूल, सूक्ष्म और पर। भगवती का सूक्ष्म रूप मन्त्रात्मक माना गया है। 'शब्दमयी सृष्टि' एवं 'मन्त्र-संकेत' भी मन्त्रात्मक हैं—

त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या जातादितः प्रिये।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका।। (४.४)

'स्थूल रूप' = कलातत्त्वभुवनाभिधेयरूपार्थत्रिकम्।
'सूक्ष्म रूप' = वर्णपदमन्त्राभिधानरूपशब्दत्रिकम् ।। (ऋजुविमर्शिनी)

'पर रूप' = कवलीकृतनिश्शेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी ।
अस्यां परिणतायां तु न कश्चित्पर इष्यते।। (नित्या-४.५)

सांराश यह कि भगवती (शक्ति) का एक रूप 'मन्त्र' भी है। 'मन्त्र' शक्ति का नादात्मक, मातृकात्मक या वर्णात्मक सूक्ष्म स्वरूप है। जब भगवती नाद एवं वर्णों के रूप में अवतरित होती हैं तब उनके इस ध्वन्यात्मक या नादात्मक स्वरूप को 'मन्त्र' कहते हैं। जिस प्रकार बिन्दुरूप ज्योति में इच्छानुसार अर्थों का साक्षात्कार होता है (क्योंकि उसी में अर्थसमष्टि स्थित है), उसी प्रकार नाद में निखिल विश्व का, अनन्त वाचकों एवं अनन्त मन्त्रों का साक्षात्कार होता है। अत: कोई भी मन्त्र चेतन होने पर नाद की ही अवस्था में उपनीत हो जाता है। वाचकों की सहासमष्टिरूप से एकीभूत स्थिति का नाम है— नाद। बिन्दु एवं नाद जगत् के अनन्त वाच्य-वाचकों की एकीभूत समष्टि के द्योतक हैं। भ्रूमध्य के ऊर्ध्व में 'बिन्दु' का एवं उसके भी ऊर्ध्व में ब्रह्मरन्ध्र की सीमा के अन्त तक 'नाद' का अनुभव चलता रहता है। प्रत्येक पिण्डस्थ चक्र में जो वर्ण हैं, वे चिदग्नि के प्रभाव से विगलित होकर धारा के रूप में प्रवाहित होते हैं। प्रत्येक प्रवाह दूसरे वर्णों को अपने में विगलित करके मध्यबिन्दु की ओर चलता है। यही नाद का स्वरूप है। सृष्टि का उपादान बिन्दु है और शक्त्यात्मक बिन्दु ही 'बीज' है।

'बिन्दु' शिवात्मक है, 'बीज' शक्त्यात्मक है और बिन्दु एवं बीज दोनों के समवाय से उत्पन्न होने वाला तत्त्व 'नाद' कहलाता है—

बिन्दु: शिवात्मको बीज: शक्तिर्नादस्तयोर्मिथ:।
समवाय: समाख्यात: सर्वागमविशारदै:।।

सच्चिदानन्दविभव परमेश्वर → 'शक्ति' → नाद → बिन्दु।

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नाद: नादाद्बिन्दुसमुद्भव:।।

(बिन्दु का पुन: स्फुटन— बिन्दु, बीज, नाद।)

पराशक्तिसंयुक्त बिन्दु का अगला विकास बिन्दु, बीज एवं नाद के रूप में होता है—

परशक्तिमय: साक्षात् त्रिधाऽसौ भिद्यते पुन:।
बिन्दुनादौ बीजमिति तस्य भेदा: समीरिता:।।

योगशिखोपनिषद् (६.७०) 'बिन्दु नाद कला ब्रह्मन् विष्णु महेश देवता:'। विष्णु = बिन्दु। ब्रह्म = नाद। ईश (रुद्र) = कला। बिन्दु → रौद्री। नाद → ज्येष्ठा। बीज → वामा।

बीज = शक्त्यात्मिका कला। भास्कराय वरिवस्यारहस्यम् में कहते हैं कि बिन्दु, अर्धचन्द्रिका, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समनी, उन्मनी— सभी नौ स्तरों की समष्टि को नाद कहा जाता है— 'बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते।'

श्रीचक्र भी नाद, बिन्दु एवं कला के भेद से तीन प्रकार का माना जाता है।

पर शिव एवं परा शक्ति तो निस्पन्द एवं नि:शब्द हैं। नाद क्या है? "Nada is the first movement in the ideating cosmic consciouness leading it to

the Sound Brahman (शब्द ब्रह्म) whence all ideas, the language in which they are expressed (Shabda) and the objects (Artha) which they denote are derived "[१]

'बिन्दु' क्या है? यह अनुस्वार में स्थित एक गोल आकार है। मन्त्र की दृष्टि से 'बिन्दु' वह क्रियात्मक चैतन्य या शक्ति है, जो कि अपने को 'इदम्' (This) के रूप में पहचानती है। इसी समय शक्ति को घनीभूत कहा जाता है। भास्करराय सौभाग्य-भास्कर में कहते भी हैं— 'प्रलये सृज्यमानप्राणिकर्मणां परिपाकदशायां तादृशकर्माभिन्न-मायावच्छिन्नं ब्रह्म घनीभूतमित्युच्यते। स एव जगदङ्कुरः कन्दरूपत्वाद्बिन्दुपदेन व्यवह्रियते।'

प्रपञ्चसारतन्त्र में आचार्य शंकर का भी यही कथन है—

विचिकीर्षुर्घनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुताम्।

शक्ति बिन्दु से पृथक् होकर नाद को जन्म देती है। यह 'बिन्दु' की ही शब्दात्मिका वृत्ति है और इसके चार रूप हैं— परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। आचार्य शंकर ने इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

मूलाधारात्प्रथममुदितो यश्च भावः पराख्यः।
पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः।।
व्यक्ते वैखर्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्णा।
बद्धस्तस्माद्भवति पवने प्रेरिता वर्णसंज्ञा।।

१. वाणी— मूलाधार में = परा वाक् — मूलाधार चक्र में स्थित।
२. वाणी— नाभि देश में = पश्यन्ती वाक् — स्वाधिष्ठान चक्र में स्थित।
३. वाणी— हृदय में = मध्यमा वाक् — अनाहत चक्र में स्थित।
४. वाणी— मुख में = वैखरी वाक् — कोई चक्र नहीं।

शारदातिलक— सच्चिदानन्दविभव सकल परमेश्वर से शक्ति। (सकल शिव = शिवतत्त्व : सचिदानन्द परमेश्वर) → शक्तितत्त्व → नाद (सादाख्य तत्त्व) → बिन्दु (ईश्वर तत्त्व)। नाद + बिन्दु = शक्ति के विभिन्न पक्ष हैं, जिसमें शक्ति उद्योगावस्था एवं उच्छूना-वस्था में स्थित है। 'नाद' अभिव्यक्त शब्दों का कारणशरीर है।

परबिन्दु = शक्ति की घनावस्था है। यह चिद् घन है। यह स्वापृथक् (स्वाभिन्न) शक्ति से समवेत है और यह शक्ति भी चिद्रूपिणी है। इसमें समस्त प्रपञ्च एवं जीव भी अपृथक् रूप से स्थित है। इसे ही परमशिव कहा गया है। यही महाविष्णु एवं ब्रह्म-पुरुष है। इसका स्थान सत्यलोक है, जो कि मानवपिण्ड में 'सहस्रार' कहलाता है। शारदातिलक का कथन है कि यही 'परबिन्दु', जिसका सार 'परा शक्ति' है, अपने को तीन बिन्दुओं के रूप में विभाजित करता है— बिन्दु, नाद और बीज। इस बिन्दु को 'कार्य-बिन्दु' कहा

१. The Serpent Power (पृ. ३४)

गया है, जिससे इसे परबिन्दु से पृथक् किया जा सके। 'कारणबिन्दु' परबिन्दु कहलाता है। 'कार्यबिन्दु' शिव एवं शक्ति के बीज की प्रकृति है। मन्त्रशास्त्र की दृष्टि से कूट का प्रथमाक्षर ही 'बीज' है।[१] इस प्रकार मन्त्र 'क्रीं' में 'क' बीज है एवं 'र' तथा 'ई' शक्ति है। 'बीज' से ही रूप का निर्माण होता है— 'बीजेन मूर्तिकल्पना।'

'नाद' क्या है? यह है— शिव-शक्ति अर्थात् उन दोनों का पारस्परिक समवाय, योग या एकीकरण (एकता = सामरस्य)। प्रयोगसार यही प्रतिपादित करता है।

भगवती को नादरूपा, मन्त्रात्मिका, वर्णरूपिणी, सर्वमन्त्रस्वरूपिणी आदि कहा गया है। ललितासहस्रनाम (ब्रह्माण्डपुराण) कहता भी है—

- नारायणी नादरूपा नामरूपविवर्जिता।
- मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा।
- सर्वेश्वरी सर्वमयी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी।
- महातन्त्रा महामन्त्रा महायन्त्रा महासना।
- पराप्रत्यक्चितीरूपा पश्यन्ती परदेवता।
  मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका।।
- मालिनी हंसिनी माता मलयाचलवासिनी।
- सहस्रदलपद्मस्था सर्ववर्णोपशोभिता।
- माध्वीपानालसा मत्ता मातृका वर्णरूपिणी।
- आत्मविद्या महाविद्या श्रीविद्या कामसेविता।
  श्रीषोडशाक्षरी विद्या त्रिकूटा कामकोटिका।।
- विश्वगर्भा स्वर्णगर्भा वरदा वागधीश्वरी।
- भाषारूपा बृहत्सेना भावाभावविवर्जिता।
- छन्दःसारा शास्त्रसारा मन्त्रसारा तलोदरी।
  उदारकीर्त्तिरुद्दामवैभवा वर्णरूपिणी।।
- वीरगोष्ठप्रिया वीरा नैष्कर्म्या नादरूपिणी।

श्रीचक्र का नवमावरण 'बिन्दुचक्र' है। इसे ही 'सर्वानन्दमय चक्र' भी कहते हैं।

'बिन्दु' भगवान् कामेश्वर एवं भगवती कामेश्वरी का स्वारसिक सामरस्य है। 'बिन्दु' ही सर्वोच्च सत्ता है। इसी में समस्त विश्व बीजात्मना स्थित है। यह विश्वोत्तीर्ण है। इसमें समस्त रचनाशक्तियाँ एकत्रित होकर संस्थित हैं। इसी घनीभूत पुञ्ज को चिद्घन, अनुस्वार एवं 'परासंवित्' कहते हैं। अहं में स्थित 'अ' (शिव) एवं 'ह' (शक्ति) तत्त्वों की एकात्मता का सम्पादन 'बिन्दु' ही करता है। शक्ति बिन्दु से पृथक् होकर नाद का आविर्भाव करती है। 'नाद' के दो रूप हैं— ध्वन्यात्मक एवं वर्णात्मक।

---

१. कुलचूड़ामणि।

मूलाधार में ही 'परा वाक्' शक्ति का प्रथमावतार होता है। वही परा वाक् स्वाधिष्ठान में जाकर 'पश्यन्ती', हृदय में जाकर 'मध्यमा' एवं मुख में जाकर 'वैखरी' बन जाती है।

जब प्रकाशबिन्दु विमर्शबिन्दु में प्रविष्ट होता है तब 'बिन्दु' में उच्छूनता (Swelling) उत्पन्न होती है। तत्पश्चात् बिन्दु से 'नाद' उत्पन्न होता है। इसी नाद में समस्त तत्त्व स्थित है। नाद व्यक्त होकर त्रिकोण रूप धारण कर लेता है। बिन्दु शिव के नाद एवं शक्ति के बीज की प्रकृति का रूप है तथा नाद इन दोनों का एक सम्बन्ध है। राघव भट्ट कहते हैं कि नाद तीन दशाओं में स्थित है। नाद में ही गुणत्रय का निवास है, जो कि प्रकृति का आविर्भाव करते हैं।

जब तमोगुण की प्रधानता होती है तब नाद का स्वरूप 'ध्वन्यात्मकोऽव्यक्तनादः' हो जाता है— 'तमोगुणाधिक्येन केवलध्वन्यात्मकोऽव्यक्तनादः।' नाद यहाँ पर अव्यक्त रहता है। यहाँ नाद ध्वनिरूप में स्थित है। यही है— निबोधिका या बोधिनी।

जब रजोगुण प्रधान होता है तब इसे 'नाद' कहते हैं। इस स्थिति में वह 'रजाधिक्येन किञ्चिद्वर्णबन्धान्यासात्मकः' हो जाता है। इसमें वह ध्वनि स्थित है, जिसमें अक्षरों की संयुक्त दशा (जब प्रकाशबिन्दु विमर्शबिन्दु में प्रविष्ट होता है तब 'बिन्दु' में उच्छूनता (Combined in connected disposition of the letters) है।

जब सतोगुण प्रधान होता है तब नाद बिन्दु का रूप धारण कर लेता है— 'सत्त्वाधिक्येन बिन्दुरूपः।'

नाद, बिन्दु, निबोधिका, सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि कहलाते हैं। क्रिया = सूर्य। इच्छा = चन्द्रमा। ज्ञान = अग्नि।

९. नादात्मक एवं मातृकात्मक रूप में महात्रिपुरसुन्दरी

शक्ति 'स्पन्द' है। 'स्पन्द' एक कम्पनात्मक स्फुरण है। यह सिसृक्षु परमात्मा की इच्छा का रूपायन है।

नादात्मा शक्ति ही 'अ' से 'ह' तक के वर्णों के रूप में (स्थूल वाक् के रूप में) सृष्टि में सर्वत्र प्रसृत है। यह शक्ति ही वर्णों के माध्यम से सृष्टि बन गयी है। जगत् इसी नादात्मिका शक्ति का स्फार है।

शक्ति पचास मातृकाओं का समष्टिरूप है। वह अनेक विद्याओं का साकार विग्रह है। वह सर्ववर्णमयी, सर्वदेवमयी, नानाविद्यामयी एवं महाविद्यामयी है। कामधेनुतन्त्र (प्रथम पटल) में कहा भी गया है—

पञ्चाशन्मातृकां देवीं नानाविद्यामयीं सदा।
नानाविद्यामयीं देवीं महाविद्यामयीं तथा।।
सर्ववर्णमयीं देवीं सर्वदेवमयीं पराम्।
सर्वदेवमयीं सौम्यां ब्रह्माण्डजननीं पराम्।।

देवी वर्णमयी है और इन्हीं वर्णों से त्रिदेवों का भी आविर्भाव होता है—

वर्णात्तु जायते ब्रह्मा तथा विष्णुः प्रजायते।
रुद्रश्च जायते देवि ! जगत्संहारकारकः।।

देवी अकारादि क्षकारान्त मातृकाओं का विग्रह है—

अकारादि क्षकारान्ता मातृका बीजरूपिणी।।

यही शक्ति कुण्डलिनीरूपा भी है और समस्त मातृकाओं को धारण करके एवं तद्रूप होकर स्थित है—

वर्णरूपमयी देवी कुण्डली परदेवता।
अकारादि क्षकारान्तं स्वयं परमकुण्डली।।

वर्णों से चराचर जगत्, नाना शास्त्र, पुराण, इतिहास, वेद, स्मृति आदि सभी का आविर्भाव होता है—

सर्वं चराचरं विश्वं वर्णात्तु जायते ध्रुवम्।
नाना शास्त्रं पुराणं च इतिहासं च सुन्दरि।।
वेदं च स्मृतिशास्त्रं च अन्यानि यानि कानि च।
अक्षराज्जायते सर्वं परं ब्रह्म स्वयं शिवे।।

वर्णों का स्वरूप एवं शक्ति के साथ उनका तादात्म्य

१. आ = परमकुण्डली। शङ्खज्योतिर्मय, त्रिदेवात्मक एवं पञ्च प्राणमय।

२. इ = कुण्डली। परमानन्दात्मक, सुगन्धकुसुमच्छवि, हरिब्रह्मात्मक, सदाशिव एवं शक्ति से युक्त, परब्रह्मसमन्वित एवं गुरुब्रह्मात्मक।

३. ई = परमकुण्डली। त्रिदेवमय, पञ्चदेवमय, पीत विद्युल्लताकार, चतुर्ज्ञानमय एवं पञ्चप्राणमय।

४. उ = तारकुण्डलिनी। पञ्चदेवमय, पीतचम्पकसंकाश, पञ्च प्राणमय एवं चतुर्वर्ग-प्रदायक।

५. ऊ = दुर्लभ बीज। शङ्खकुन्दसमाकार परमकुण्डलीरूप, पञ्च प्राणमय, पञ्च देवमय, गुणत्रयात्मक, वर्ण— पीत-विद्युल्लता, सुख एवं पुरुषार्थचतुष्टयप्रदायक।

६. ऐ = महाकुण्डलिनी। देवत्रय एवं सदाशिवमय, पञ्च प्राणमय। कोटिचन्द्र-प्रतीकाश।

७. क = कुण्डलीत्रयसंयुत्।[१]

---

१. ककार का ध्यान-फल—

ककारध्यानमात्रेण सर्ववर्णं हि सिध्यति। ककारभावनाच्चैव सर्वासां भावना भवेत्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ककारं हृदि भावय।। (कामधेनु तन्त्र : पटल-१४)

८. ख = शङ्खकुन्दसमप्रभ। बिन्दुत्रयसमन्वित, गुणत्रय, पञ्च देव एवं त्रिशक्ति से युक्त।

९. ग = पञ्च देवात्मक। निर्गुण त्रिगुणोपेत, निरीह निर्मल, पञ्च प्राणमय, सर्वशक्त्यात्मक, अरुणादित्यसंकाश एवं कुण्डलीरूप।

१०. ज = मध्य कुण्डली। शरच्चन्द्रप्रतीकाश, त्रिगुणोपेत, पञ्च देवात्मक, पञ्च प्राणमय, त्रिशक्त्यात्मक एवं त्रिबिन्द्वात्मक।

११. स = परात्पर शक्तिबीज। कोटिविद्युल्लताकार, कुण्डलीत्रययुक्त, पञ्च देवमय, पञ्च प्राणमय, त्रिगुणात्मक एवं त्रिशक्त्यात्मक।

१२. ह = कुण्डलीत्रययुक्त। चतुर्वर्गप्रदायक, विद्युल्लतोपम, गुणत्रय एवं पञ्च देवों से युक्त तथा पञ्च प्राणात्मक।

१०. भगवती त्रिपुरसुन्दरी का श्रीचक्रात्मक स्वरूप

त्रिपुरोपनिषद् की दृष्टि— भगवती के तीन 'पुर' ही उनके तीन पथ हैं। वे विश्व के आकर्षण को धारण किए हुये हैं। वहीं 'अकथ' अक्षर सन्निविष्ट हैं। उसकी अधिष्ठातृ देवता अजरा, पुराणी एवं समस्त देवताओं की सर्वोच्च महिमा से मण्डित हैं। वे देवताओं की महत्तरा महिमा का अधिष्ठान हैं—

ॐ तिस्रः पुरस्त्रिपथा विश्वचर्षणी अत्राकथा अक्षराः सन्निविष्टाः।
अधिष्ठयैना अजरा पुराणी महत्तरा महिमा देवतानाम्।।

बिन्दुचक्र— इस छन्द में मध्यस्थ त्रिकोणाकृति सर्वसिद्धिप्रद आवरण को संकेतित किया गया है। तीनों भुजाओं पर सोलह-सोलह अक्षर स्थित हैं। ▽ इस त्रिकोण की ऊर्ध्व भुजा पर 'अ' से 'अः' तक के सोलह स्वर, दाहिनी ओर की भुजा पर 'क' से 'त' तक और तृतीय भुजा पर 'थ' से 'स' तक त था शेष 'ह', 'क्ष' एवं 'ल'— ये तीनों अक्षर तीनों कोणों पर स्थित हैं। इस क्रम के अनुसार 'लकार' नीचे के कोणों पर आता है। इसको 'अकथ' या 'गुरुचक्र' कहते हैं। इसका स्थान सहस्रार के मध्य ब्रह्मरन्ध्र में स्थित है। यह भगवती त्रिपुरा का पीठ है।

सौन्दर्यलहरी के आठवें श्लोक में कहा गया है कि यही शिवाकार मञ्च है—

शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयाम्
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।

आचार्य भास्करराय की दृष्टि— आचार्य भास्करराय अपने त्रिपुरोपनिषद्भाष्य में इस ऋचा की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

१. भगवती के तीन पुर हैं और वे उनकी अधीश्वरी हैं।

२. भगवती के तीन पथ हैं और पाँच प्रकार की मुक्तियाँ ही पन्थत्रय हैं— सालोक्य, कैवल्य, और सामीप्य-सारूप्य-सायुज्य।

पथत्रय

सालोक्य का पथ	कैवल्य का पथ	सामीप्य-सारूप्य एवं सायुज्य का पथ
(प्रथम पथ)	(द्वितीय पथ)	(तृतीय पथ)

क. सालोक्य का पथ— अपने आश्रमोक्त कर्मों का निष्पादन करते हुये ऊर्ध्वरिता रहकर अनुष्ठान करते हुये स्वस्वाभिमान से उपासना करना या अहंग्रहोपासना सालोक्य का पथ है।

ख. कैवल्य का पथ— ब्रह्मज्ञान या निर्गुणोपासना ही इसका पाथेय है।

ग. सामीप्य-सारूप्य-सायुज्य का पथ— भगवती की सेवा में उनके समीप रहकर उनकी उपासना करते-करते उनका स्वस्वरूप प्राप्त कर लेना एवं भगवती में लय हो जाना ही तृतीय पथ है।

—यही अर्थ है— 'त्रिपथा' पद का।

विश्वचर्षणी = समस्त प्राणियों की उत्पादिका। 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय, सोऽकामयत तपोऽकुरत, एकोऽहं बहु स्याम' आदि ऋचायें भी देवी के स्रष्टृत्व की पुष्टि करती हैं।

बिन्दुचक्र— 'स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च' भी भगवती की इच्छा-ज्ञान एवं क्रियाशक्ति की पुष्टि करता है। एक ही वृत्ति इच्छा-ज्ञान एवं क्रिया की समष्टि के रूप से शान्ता; पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी के समष्टि रूप से परा तथा वामा, ज्येष्ठा एवं रौद्री की समष्टिरूपा 'अम्बिका' कही जाती है और शान्तात्मिका देवता ही श्रीचक्र में स्थित बिन्दुचक्र है— 'प्रसृतं विश्वलहरीस्थानं मातृत्रयात्मकं बैन्दवं चक्रम्' (नित्याहृदय)। समस्त विश्व उसकी प्रजा है।

विष्णुपुराण के तृतीयांश में उक्त तीन मार्ग इस प्रकार बताये गये हैं—

उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम्।
पितृयाणः स वै पन्था वैश्वानरपथाद् बहिः।।

त्रिविध मार्ग होने के कारण तीन गन्तव्य पुरियाँ भी हैं। तीन पुरियों की प्राप्ति अभीष्ट होने से परदेवता को 'त्रिपुरा' कहा गया है—

पञ्चविध आत्मा त्रिविधात्मक भजन द्वारा ही 'त्रैपुर लोक' को प्राप्त करती है। जिसके तीन पथ हों, वह है— त्रिपुरा।

इस त्रिपुरात्मकता में भी एकता अनुस्यूत है। वह 'त्रिपुरा' क्यों कहलाती है? इस सन्दर्भ में कालिकापुराण में इस प्रकार कहा गया है—

त्रिकोणमण्डलं चास्या भूपुरञ्च त्रिरेखकम्।
मन्त्रोऽपि त्र्यक्षरः प्रोक्तस्तथा रूपत्रयं पुनः।।

त्रिविधा कुण्डलीशक्तिस्त्रिदेवानाञ्च सृष्टये।
सर्वं त्रयं त्रयं यस्मात्तस्मात्तु त्रिपुरा मता।।

भगवती त्रिपुरा शब्दसृष्टि एवं अर्थसृष्टि— दोनों की विधायिका हैं।

अकथा— जो अकारादि सोलह, ककारादि सोलह एवं थकारादि सोलह अक्षररूपों में सन्निविष्ट है।

क. 'अ' से 'अः' तक : १६ अक्षर।
ख. 'क' से 'त' तक : १६ अक्षर।
ग. 'थ' से 'स' तक : १६ अक्षर।[१]

('ह' का त्याग क्यों? क्योंकि वह विमर्शस्वरूप है। साथ ही क्ष, त्र, ज्ञ, संयुक्ताक्षर होने के कारण त्यक्त हुये; क्योंकि उनकी कोई निजी सत्ता है ही नहीं।)

अक्षरा— अक्षर वाली, क्षरण से शून्य = शाश्वत। अजरा— जरा से रहित।

'महत्तरा महिमा देवतानाम्' अर्थात् यही त्रिबिन्दुरूपा त्रिपुरा देवताओं की महत्तरा महिमा अधिष्ठान है।

'अत्राकथा अक्षरा सन्निविष्टा' पदावली यह भी संकेतित करती है कि वे भगवती केवल आर्थी सृष्टि ही नहीं; प्रत्युत शाब्दी सृष्टि की भी विधायिका हैं।

इस ऋचा के पूर्वार्द्ध में बिन्दुचक्र के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। प्रथम ऋचा है— तिस्र ..... देवतानाम्। इस ऋचा के पूर्वार्द्ध द्वारा 'बिन्दुचक्र' का स्वरूपालोचन किया गया है और उत्तरार्द्ध द्वारा अधिष्ठातृ उपास्य देवता का स्वरूपालोचन किया गया है।

ब्रह्मा-विष्णु महेशादिक देवता भी 'भगवती त्रिपुरा' की उपासना से ही महिमान्वित हुये हैं। अतः वे अखिल देवों की पूजनीया हैं; पद्मपुराण कहता भी है—

शम्भुः पूजयते देवीं मन्त्रशक्तिमयीं शुभाम्।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी ब्रह्मचक्राधिष्ठात्री हैं और वे ही परब्रह्म हैं—

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्यमयः कोशः स्वर्गो लोको ज्योतिषावृतः।
तस्मिन्हिरण्मये कोशे त्र्यक्षे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् तद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः।।

भूपुर से त्रिकोणपर्यन्त स्थित चक्राष्टक के ऊपर जो बिन्दुकोश अपने त्रितयात्मक रूप को अन्तर्भुक्त करके स्थित है, उसमें महद्भूत अक्ष है। उसकी बहिःपूजा सम्भव नहीं है; अतः उसे 'अक्ष' पद से निर्देशित किया गया है। उसका अनुभव केवल ब्रह्मवित् मात्र ही कर सकते हैं।

१. क्ष = क + ष। त्र = त + र। ळ ल से अभिन्न है और 'ह' कलारूप विमर्श है— हरार्णः कलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः। अतः ये शब्द गृहीत नहीं किये गये।

त्रिकोण और वसुकोण— नवयोन्यात्मक चक्र (त्रिकोण एवं वसुकोणसंवलित)— उपनिषद् की ऋचा कहती है कि वह नौ योनियों को, नौ चक्रों को, नौ योगों को एवं नौ योगिनियों को प्रकाशित करती है। वह स्योना (सुख का हेतु) है। वह नौ चक्र भूमियों, नौ मुद्राओं एवं नौ भद्राओं की अधीश्वरी है। उसने नौ योनियों एवं नौ चक्रों को धारण कर रक्खा है, जिनकी किरणें नौ भद्रा एवं नौ मुद्रा हैं।

सौन्दर्यलहरी के ग्यारहवें श्लोक में चार 'श्रीकण्ठ' एवं पाँच 'शिवयुवती'— इस प्रकार कुल नौ योनियाँ हैं। इन्हें वहाँ 'मूल प्रकृति' कहा गया है। नौ चक्र ही नौ आवरण हैं। प्रत्येक चक्र की एक-एक 'योगिनी' है और उनके नाम हैं— प्रकट, गुप्त, गुप्ततर, सम्प्रदाय, कुलोत्तीर्ण, निगर्भ, रहस्य, परा एवं परपरातिरहस्य योगिनी।

शंकराचार्य श्रीचक्र का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिर्पञ्चभिरपि
प्रसन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः।
त्रयश्चत्वारिंशद् वसुदलकलाश्रत्रिवलयैः
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरणकोणाः परिणताः।।

अर्थात् चार श्रीकण्ठों एवं पाँच शिवयुवतियों— इन नौ मूल प्रकृतियों से तुम्हारे रहने योग्य तैंतालीस 'त्रिकोण' बनते हैं, जो शम्भु के 'बिन्दुस्थान' से भिन्न हैं। वे तीन वृत्तों और तीन रेखाओं सहित आठ एवं सोलह दलों से युक्त हैं।

श्रीचक्र पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड दोनों का प्रतीक है। इसका निर्माण चार 'शिवचक्र' (श्रीकण्ठ) एवं पाँच 'शिवयुवती' (शक्तिचक्रों) अर्थात् 'शिवत्रिकोण' एवं 'शक्ति-त्रिकोण' से होता है।

सृष्टिक्रम— पाँच शक्तित्रिकोण ऊर्ध्वमुख और चार शिवत्रिकोण अधोमुखी रहते हैं।

संहारक्रम— शिवत्रिकोण ऊर्ध्वमुख एवं शक्तित्रिकोण अधोमुख रहते हैं।

शिव और शक्तित्रिकोणों का मुख सदैव एक-दूसरे के विपरीत क्रम में इस प्रकार रहता है—

प्रथम केन्द्रीय कोण (त्रिकोण) = इसके केन्द्र में शम्भु का स्थान है।

केन्द्रीय त्रिकोण (शम्भुस्थानीय त्रिकोण) को छोड़कर शेष त्रिकोण संख्या में बयालीस हैं। इसीलिये त्रयश्चत्वारिंशत् कहा गया है। प्रथम मध्य त्रिकोण के बाहर चतुर्दिक द्वितीय क्रम पर आठ कोण बनते हैं, जो 'अष्टकोण' कहलाते हैं। फिर तृतीय एवं चतुर्थ स्तर पर दश-दश कोण बनते हैं। उन्हें 'अन्तर्दशार' एवं 'बहिर्दशार' कहते हैं। उनके ऊपर चौदह कोण बनते हैं, जिन्हें चतुर्दशार कहते हैं। इस प्रकार इन सभी का योग— १ + ८ + १० + १० + १४ = ४३ होता है।

मध्य केन्द्रीय बिन्दु भगवान् शम्भु का अपना स्थान है, जो कि प्रकृतिस्वरूप नौ त्रिकोणों के योग से निर्मित पूर्ण चक्र से पृथक् है। उक्त तैंतालीस कोणों के चक्र के बाह्य देश में प्रथम वृत्त पर 'अष्टदल' पद्म एवं उसके बाहर द्वितीय वृत्त पर षोडशदल पद्म हैं। 'षोडशदल पद्म' तीन वृत्तों से परिवृत्त है। सबसे बाहर तीन रेखाओं से निर्मित 'चतुष्कोण' है, जिसे 'भूगृह' कहते हैं। 'भूगृह' की चारो भुजायें बराबर हैं और चारो दिशाओं में चार द्वार हैं।

छत्तीस तत्त्व सप्त धातुओं के साथ मिलकर तैंतालीस हो जाते हैं।

पाँच 'शिवयुवतियाँ' शान्त्यातीतादि पाँच कलायें हैं अथवा शक्ति, शुद्ध विद्या, माया, कला एवं अशुद्ध विद्या हैं।

चार 'श्रीकण्ठ' सदाख्य, महेश्वर, महत्तत्व, पुरुष (या जीव) है अथवा पुरुष, अव्यक्त, महत् और अहंकार है।

'श्रीचक्र' के नौ विभाग हैं। इनमें प्रथम बिन्दु है; शेष मध्यस्थ त्रिकोण आदि हैं। प्रत्येक विभाग को 'आवरण' कहते हैं। इसी चक्रीय विवेचना को स्पष्ट करते हुए त्रिपुरोपनिषद् में कहा गया है—

नवयोनीर्नव चक्राणि दीधिरे नवैव योगा नव योगिनीश्च।
नवानां चक्रे अधिनाथाः स्योना नव मुद्रा नव भद्रा महीनाम्।।

'बिन्दुचक्र' एक होकर भी त्रिरूपात्मक है। इसके तीन रूप हैं। 'शान्तात्व' के अवच्छेद से इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति— इन तीन शक्तियों (देवताओं) का मुख्यतः उल्लेख किया गया है और 'अम्बिकात्व' के अवच्छेद से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र + वामा, ज्येष्ठा, रौद्री का आविर्भाव दर्शाया गया है। साथ ही 'परातत्त्व' के अवच्छेद से पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी वाग्देवताओं का अथवा 'परदेवता' से त्रिपुरा का अधिष्ठान ग्रहण करके नौ योनियों का आविर्भाव दर्शाया गया है। ये नौ देवता ही नौ योनिचक्रों में परिणत हो गये हैं। दो शक्तित्रिकोण + एक वह्नित्रिकोण— नव योनिचक्र। प्रत्येक त्रिकोण में तीन रेखायें होती हैं। नौ कोणों की कल्पना के आधार पर ही नौ योगिनियों की धारणा है। नौ योगिनियाँ ही 'कोण' रूप से परिणत हैं।

एक ही श्रीचक्र में भूपुर से बिन्दुपर्यन्त एक के ऊपर क्रमशः नौ भूमिकायें हैं और उनकी अधिष्ठात्री 'त्रिपुरा' चक्रेश्वरी आदि नाम की नौ शक्तियाँ हैं। वे भी नौ योनियों में सूक्ष्मतः क्रमपूर्वक स्थित हैं। यहीं संक्षोभिणी आदि नौ मुद्रायें भी स्थित हैं। ये नौ मुद्रायें हैं— पुण्य, पाप, आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानात्मा, प्रमाता, प्रमेय एवं प्रमा। बिन्दु-त्रिकोण-वसुकोणात्मक— इन तीन चक्रों के स्वरूप वाले 'संहारचक्र' में ही सम्पूर्ण 'श्रीचक्र' सूक्ष्मात्मना स्थित है।

दशारद्वयमन्वश्ररूप स्थितिचक्र (ऋचा-३)

कहा गया है कि—

एका सा आसीत्प्रथमा सा नवासीदासोनविंशदासोनत्रिंशत्।
चत्वारिंशदथ तिस्रः समिधा उशतीरि व मातरो मा विशन्तु।।

वह प्रथमा— समस्त विश्व की कारणभूता 'शक्ति' एक थी। फिर बिन्दुचक्ररूप नवयोन्यात्मक हुई; फिर वह उन्नीस प्रकार की अर्थात् नव योनियों एवं बहिर्दशार के योग से उन्नीस प्रकार की हुई। फिर इन सबको मिलाकर वह उन्तीस प्रकार की हुई। फिर वह तैंतालीस प्रकार की हुई। वह माता कामना करती हुई की भाँति मेरे शरीर में प्रवेश करे (ये सब प्रज्ज्वलित कान्तियुक्त समिधासदृश तेजोमयी मातायें मेरे भीतर प्रवेश करें या मेरे शरीर में निवास करें)।

(१ → ९, ९ → १९, १९ → २९, २९ → ४३)

नौ योनियाँ → सूक्ष्म-स्थूल भूत दश → दश तन्मात्रायें → दश इन्द्रियाँ एवं चार अन्तःकरण = १४।[१]

ये सभी स्त्रीरूपात्मक होने के कारण योनिस्वरूप हुये। इन सबका तन्त्र में निम्न प्रकार से उल्लेख किया गया है—

भूततन्मात्रदशकप्रकाशालम्बनत्वतः।
द्विदशारस्फुरद्रूपम्..... ।।

समिधा = देदीप्यमान। 'देदीप्यमान माता शरीर में प्रवेश करे' अर्थात् जिस प्रकार गायें बछड़ों के समीप शीघ्रातिशीघ्र पहुँचने के लिये वेगपूर्वक आकर गोशाला में प्रविष्ट होती हैं, उसी प्रकार ये भी शरीर में प्रविष्ट हों। यह श्रुति 'चक्रन्यास विधि' की मूल ऋचा है। इन चक्रदेवताओं का अपने शरीर में न्यास करना होता है। कहा भी गया है—

योगिन्यो यास्तु ताः सर्वा गेहं कुर्वन्तु मे वपुः।
इति शक्तिन्यासमन्त्रलिङ्गसंवादात्तस्यापि मूलम्।।[२]

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के जो स्थूल एवं सूक्ष्म स्वरूप हैं, उनमें 'श्रीचक्र' भगवती का स्थूल शरीर है और 'श्रीविद्या' उनका सूक्ष्म शरीर है।

सृष्टिचक्र : वृत्तत्रयविशिष्ट पद्मद्वय

इस चतुर्थ ऋचा में कहा गया है कि पहले ऊर्ध्व ज्वालायुक्त प्रज्ज्वलित ज्योति तमोगुण हुई, विना जीर्ण हुये वह तिरछी फैली, वह 'रजोगुण' हुई और आनन्द एवं मोदप्रदायक चन्द्रमा की ज्योति वाला 'सत्त्व गुण' हुआ। ये तीनों क्रमशः अग्नि, सूर्य एवं सोम के मण्डलों का निर्माण करते हैं। भाव यह है कि प्रथमतः स्थितिचक्रोत्तर चक्रों में तमोगुणात्मक अग्निनामक ज्योतिर्मण्डल उत्पन्न हुआ। 'ऊर्ध्वं ज्वलत्' विशेषण उसकी अग्नि के ज्वालारूप को स्पष्ट करने के लिये प्रयुक्त किया गया है।

१. भास्कर : त्रिपुरोपनिषद् भाष्य। २. भास्कर राय : त्रिपुरोपनिषद् भाष्य।

तदुपरान्त तिर्यक् रूप से फैलने वाला 'ज्योतिर्मण्डल सूर्य' (रक्त वर्ण होने के कारण) रजोगुणप्रधान हुआ। वह अजर था। तदुपरान्त (आनन्दनम्) वैषयिक सुखोत्पादक चन्द्र ज्योतिर्मण्डल हुआ। ये तीनों मण्डल (अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल एवं चन्द्रमण्डल) माता को विभूषित करते हैं— उसकी श्री में वृद्धि करते हैं।[१]

चतुर्दशार के नीचे अष्टदल एवं षोडशदलात्मक दो चक्र विद्यमान हैं और ऊर्ध्व भाग में दो कर्णिका वृत्त एवं एक बाह्य वृत्त— इस प्रकार तीन वृत्त हैं।

'ज्येष्ठारूपं चतुष्कोणं वामारूपं भ्रमित्रयम्' श्लोकार्ध में 'भ्रमित्रय' पद की व्याख्यानुसार 'वृत्तत्रय' के अन्तरालद्वयवर्ती पद्मद्वय की लक्षणा से सिद्धि हो जाती है—

..... वृत्तत्रितयसंयुतम्।
सरोरुहद्वयं शाक्तैरग्नीषोमात्मकं प्रिये।।

जलती हुई अग्नि के ऊर्ध्व भाग में कज्जल का दर्शन होता है, जिससे कि उसका तमोगुणात्मक रूप सिद्ध होता है। सूर्य रजोगुणात्मक है और चन्द्रमा सत्त्वगुणात्मक है। 'आनन्द' पद सत्त्व गुण का बोधक है; क्योंकि सत्त्वाधिक्य से ब्रह्मानन्द की व्यञ्जना होती है। भाव यह है कि वृत्तत्रय के अन्तराल में विद्यमान पद्मद्वयविशिष्ट 'श्रीचक्र' ही कार्यक्षम है, केवल 'मन्वश्र' नहीं। मन्वश्र से लेकर बिन्दु तक की पूजा का जो निर्देश किया गया है, वह मात्र आपत्तिकाल के लिये है। इन्हीं विचारों को अभिव्यक्त करती है यह चतुर्थ ऋचा—

ऊर्ध्वज्वलज्ज्वलनज्योतिरग्ने तमो वै तिरश्चीनमजरं तद्रजोऽभूत्।
आनन्दघनं मोदनं ज्योतिरिन्दो रेता उ वै मण्डला मण्डयन्ति।।

भूगृहात्मक नवम चक्र

इस पाँचवीं ऋचा में नवम भूगृहात्मक चक्र की विवेचना की गई है। इस ऋचा में भी पाठभेद है—

यास्तिस्रो रेखाः सदनानि भूस्त्रीस्त्रिविष्टपास्त्रिगुणास्त्रिप्रकाराः।
एतत्त्रयं पूरकं पूरकाणां मन्त्री प्रथते मदनो मदन्या।।[२]

तिस्रश्च रेखाः सदनानि भूमेस्त्रिविष्टस्त्रिगुणास्त्रिप्रकाशाः।
एतत्पुरं पूरकं पूरकाणामत्र प्रथेते मदनो मदन्या।।[३]

यास्तिस्रो रेखाः सदनानि भूस्त्रीस्त्रिविष्टपास्त्रिगुणास्त्रिप्रकाराः।
एतत्त्रयं पूरकं पूरकाणां मन्त्रं प्रतते मदनो मदन्या।।[४]

जो तीन रेखायें हैं, वे तीन सदन (लोक) हैं, तीन प्राकार, तीन गुण हैं। इन तीन मण्डलों से निर्मित श्रीचक्र का कामेश्वरी मन्त्र द्वारा मदन मन्त्रीकरण करता है।

भूमि के सदन की तीन रेखायें हैं। वे ही भुवनरूपा हैं। वे त्रिगुणरूपा हैं। अग्नि,

१. भास्कर राय।
२. भास्करायप्रस्तुत पाठ।
३. विष्णुतीर्थप्रस्तुत पाठ।
४. आड्यार लाइब्रेरी।

सूर्य और चन्द्र— इन तीन वृत्तों के प्रकाश से प्रकाशित हैं। यह सपरिवार परदेवता का निवासस्थान चक्र भक्तों के मनोरथों का पूरक है। यह शिव, विष्णु आदि के मनोरथों का भी पूरक है। श्रीचक्र में कामेश्वर शिव (मदन) और शिवकामसुन्दरी (मदन्या) अपनी किरण-रूपी अणिमादिक द्वारा अनादि स्वरूप का विस्तार करती हुई विलास कर रही हैं (प्रथेते)।

कर्णिका के दो वृत्तों के अतिरिक्त पद्मद्वय के बाहर तीन वृत्त हैं। 'तिस्रश्च रेखा' पद इसी का बोधक है। ऐसा अर्थ न लेने पर कर्णिकाद्वय के ही अवशेष रहने से मण्डलत्रय का कथन असङ्गत हो जायेगा।

तन्त्रराजतन्त्र में 'मन्वश्र' के बाहर 'अष्टदल' कर्णिकावृत्त के अतिरिक्त मर्यादावृत्त का जो कथन है, उसका आधार यही श्रुति है। पुराणों एवं तन्त्रग्रन्थों में नामान्तरभेद से जो अन्य देवियों का नामोल्लेख किया गया है, वे सभी भगवती त्रिपुरा के ही नाम हैं।[१]

भगवती का पञ्चभूतात्मक एवं चक्रात्मक स्वरूप

आचार्य शंकर द्वारा सौन्दर्यलहरी (३५) में इस स्वरूप की स्फुट विवृत्ति की गई है। वे कहते हैं—

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि।
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवति ! भावेन बिभृषे।।

अर्थात् हे शिव की जाया भगवति ! तुम 'मनस्तत्त्व' हो (मन हो) एवं मन के स्थान 'आज्ञाचक्र' में स्थित हो। तुम 'आकाश' हो और उसके अधिष्ठान 'विशुद्धिचक्र' में स्थित हो। तुम 'वायु तत्त्व' हो और उसके अधिष्ठान 'अनाहतनामक' संविच्चक्र में स्थित हो। तुम 'अग्नि तत्त्व' हो और उसके अधिष्ठान 'स्वाधिष्ठानचक्र' में स्थित हो। तुम 'जल' 'तत्त्व' हो और उसके अधिष्ठान 'मणिपूरचक्र' में स्थित हो। तुम 'भूमि तत्त्व' हो और उसके अधिष्ठान 'मूलाधारचक्र' में स्थित हो। जगत् केवल तुम्हारा ही परिणाम है।

११. महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप (भावनोपनिषद् की दृष्टि में)

भावनोपनिषद् में विभिन्न शक्तियों का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

क. क्रियाशक्ति — क्रियाशक्ति पीठ है— 'क्रियाशक्तिः पीठम्।'

ख. ज्ञानशक्ति — कुण्डलिनी ज्ञानशक्ति है— 'कुण्डलिनी ज्ञानशक्तिर्गृहम्।'

ग. इच्छाशक्ति — महात्रिपुरसुन्दरी इच्छाशक्ति है— 'इच्छाशक्तिर्महात्रिपुरसुन्दरी।'

कामेश्वरी सदानन्दघना, पूर्णा, स्वात्मैक्यरूपा देवता है— 'तयोः कामेश्वरी सदानन्दघना पूर्णा स्वात्मैक्यरूपा देवता।'

---

१. भास्करराय : त्रिपुरोपनिषद्भाष्य।

भगवती का कुण्डलिनी स्वरूप और मातृकात्मक स्वरूप

महाविद्येश्वरी विद्या का स्वरूप 'कुण्डलिनी' ही है। त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में कहा भी गया है—

● त्रिपुरेश्वरीं जातवेदस इति जाते आद्यक्षरे मातृकाया: शिरसि बैन्दवममृतरूपिणीं कुण्डलिनीं त्रिकोणरूपिणीं चेति वाक्यार्थ:।

● हृदये चैतन्यरूपिणीं निरञ्जनां त्रिकूटाख्यां स्मितमुखीं सुन्दरीं महामायां सर्वसुभगां महाकुण्डलिनीं त्रिपीठमध्यवर्तिनीमकथादिश्रीपीठे परां भैरवीं महात्रिपुरां देवीं ध्यायेन् महाध्यानयोगेन।

● देवीं महालक्ष्मीं सर्वलक्ष्मीमयीं सर्वलक्षणसम्पन्नां हृदये चैतन्यरूपिणीं निरञ्जनां त्रिकूटाख्यां स्मितमुखीं सुन्दरीं महामायां सर्वसुभगां महाकुण्डलिनीं चित्कलां महात्रिपुरां देवीं ध्यायेन्महाध्यानयोगेन।

● भगवती कुण्डलिनी शक्ति ही महात्रिपुरसुन्दरी श्रीराजराजेश्वरी ललिताम्बिका हैं। योगशिखोपनिषद् में इस शक्ति को मनोन्मनी, महाशक्ति, चिदात्मा, चिच्छक्ति, कुण्डलिनी एवं अमृतात्मिका कहा गया है—

सुषुम्नायै कुण्डलिन्यै सुधायै चन्द्रमण्डलात्।
मनोन्मन्यै नमस्तुभ्यं महाशक्त्यै चिदात्मने।।

ब्रह्मरन्ध्रे महास्थाने वर्तते सततं शिवा।
चिच्छक्ति: परमा देवी मध्यमे सुप्रतिष्ठिता।।

● कुण्डलिनी जगन्मयी, चित्कला एवं तेजोरूपा स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिता शक्ति है—

ध्यायेत्कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिताम्।
चित्कलां यां कुण्डलिनीं तेजोरूपां जगन्मयीम्।। (यामल)

● भगवती कुण्डलिनी मातृकात्मिका है। यह शब्दब्रह्मस्वरूपा एवं वाक्चतुष्टयात्मिका— परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरीस्वरूपा है। 'श्रीविद्या' पञ्चदशाक्षरात्मक है। अक्षर मातृकारूप हैं। मातृकायें मूलत: 'परा वाक्' रूप हैं और 'परा वाक्' कुण्डलिनी ही है—

परया पश्यन्त्यापि च मध्यमया स्थूलवर्णरूपिण्या।
एताभिरेक पञ्चाशद्दशाक्षरात्मिका वैखरी जाता।।
(कामकलास्तव)

● कुण्डलिनी के तीन रूप हैं— कुमारी, योषित् और पतिव्रता

इनमें कुमारी एवं योषित् रूप तो मन्त्रात्मक, वर्णात्मक, ध्वन्यात्मक एवं नादात्मक है; किन्तु शिव के साथ सामरस्य प्राप्त कर लेने पर प्राप्त पतिव्रतास्वरूप तो 'समना' के परे होने के कारण 'नादातीत' अवस्था है।

शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमाम्।
ज्ञात्वेत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननीगर्भाऽर्भकत्वं नराः।।

१२. भगवती त्रिपुरसुन्दरी की सर्वदेव्यात्मकता

तारारहस्यम् नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि काली, परा, तारा एवं षोडशी आदि देवियों में कोई भेद नहीं है। ये ही महात्रिपुरसुन्दरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका अभेद-बुद्धि से पूजन एवं ध्यान करने वाला साधक तो स्वयं सदाशिव है। जो इनमें भेद मानता है, वह मूढ़ है—

यत्ते काली परा प्रोक्ता सा तारा परिकीर्तिता।
सैव श्रीषोडशी देवी महात्रिपुरसुन्दरी।
अभेदं भावयेद्यस्तु स मूढ़ोऽभून्महेश्वर।।

इनकी पूजा की भी एक विशेषता है। वह विशेषता निम्नांकित है—

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीतर्पणतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।।

पराशक्ति मात्र महात्रिपुरसुन्दरी ही है; जैसा कि ललितासहस्रनाम में कहा भी गया है—

पराशक्तिः परा निष्ठा प्रज्ञानघनरूपिणी।

पराशक्ति कौन है? इस विषय में कामिकागम में कहा गया है कि शरीर में—

क. त्वचा, रक्त, मांस, मेद और अस्थि धातुयें 'शक्तिमूलक' हैं।

ख. मज्जा, शुक्र प्राण एवं जीव धातुयें 'शिवमूलक' हैं।

ग. यह देह नौ धातुओं से निर्मित है और नवयोनिसमुद्भवा है; किन्तु एक दशवाँ धातु भी है और वही है— 'पराशक्ति'। कहा भी है—

त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिधातवः शक्तिमूलकाः।
मज्जशुक्रप्राणजीवधातवः शिवमूलकाः।।

नवधातुरयं देहो नवयोनिसमुद्भवः।
दशमी धातुरेकैव पराशक्तिरितीरिते।।

श्रुति में भी कहा गया है— 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।'

लिङ्गपुराण में भी कहा गया है—

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता।
सा सा विश्वेश्वरी देवी स स सर्वो महेश्वरः।।

शक्तिमन्तः पदार्था ये ते वै शर्वविभूतयः।
पदार्थशक्तयो या यास्तास्ता गौरी बिदुर्बुधाः।।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी 'मातृकावर्णरूपिणी' है। ललितासहस्रनाम में कहा भी गया है—

माध्वीपानालसा मत्ता मातृकावर्णरूपिणी।

ज्ञानार्णव में कहा गया है कि भगवती ललिता 'अक्षमाला' (वर्णमाला) है—

अक्षमालेति विख्याता मातृकावर्णरूपिणी।

भगवती का स्वरूप

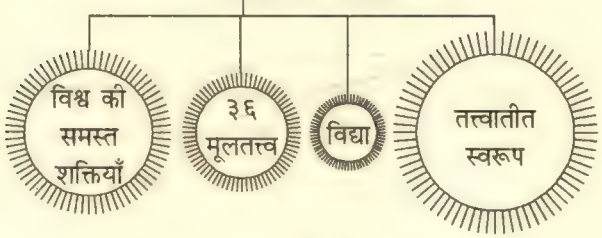

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता।
सा सा सर्वेश्वरी देवी स सर्वोऽपि महेश्वरः।।
सप्तत्रिंशत्तत्त्वभेदेन षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी।
तत्त्वातीतस्वरूपा च विद्यैषा भाव्यते सदा।। (चतुश्शती)

षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या। (कामकलाविलास)

विद्यापि तादृगात्मा सूक्ष्मा सा त्रिपुरसुन्दरी देवी। (कामकलाविलास)

१३. भगवती त्रिपुरा का कामकलात्मक स्वरूप

'त्रिपुरामहोपनिषद्' के अनुसार भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का अपर अभिधान 'कामकला' है। उनके दो मण्डल, दो स्तन, एक बिम्बमुख, तीन भूगृह (गुहासदन) हैं। व्यक्ति कामेश्वरात्मक, मन्मथकलासंवलित एवं अतिकमनीयस्वरूपा उन भगवती का ध्यान करता हुआ कामदेव के समान कमनीय बन जाता है।

अथवा जो गोल होने के कारण स्तनबिम्ब के सदृश एकमुखी हैं और जिनके निम्न प्रदेश में तीन गुहासदृश गृह बने हुये हैं, ऐसी 'कामरूपा कला' को यदि कोई सकामी मनुष्य अनुष्ठान में लाता है तो उसकी कामना पूर्ण होती है और वह स्वयं कामरूप हो जाता है। यहाँ 'कामबीज' की ओर संकेत किया गया है।

कोष के अनुसार 'बिम्ब' पद भी मण्डलवाचक है। अतः उपनिषद् की चौथी ऋचा में वर्णित तीन मण्डलों का ही यह विभाग है। उस ऋचा में भी वह्नि और सूर्यमण्डल ही 'स्तन' कहे गये हैं। पाठक्रम से (जैसे यहाँ 'अधः' पद से संकेतित है) उनके अनन्तर इन्दुविम्ब को मुख मानना चाहिये और फिर 'भूपुर' हकारार्द्ध है।

कामकला— तन्त्रों में 'कामकला' का रूप अनेक प्रकार से एवं क्लिष्ट रूप में निर्दिष्ट किया गया है। भगवान् आदिशंकराचार्य कहते हैं—

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो।
हकारार्द्धं ध्यायेत्.....।।

यहाँ 'बिम्ब' पद बिन्दुपरक होता हुआ बिन्द्वादिमन्वस्रान्त चक्रगणपरक है। 'मण्डलत्रयरूपं तु चक्रशक्त्यानलात्मकम्' इस सुन्दरी-श्लोक में 'मण्डल' पद दशारादि चक्र का वाचक है। अत: 'द्वामण्डला' पद अष्टदल एवं षोडशदल— इन दो चक्रों की ओर संकेत करता है। यहाँ अवयवत्रय का कथन किया गया है, जो कि समस्त अवयवों के उपलक्षण हैं। वस्तुत: शरीर के तीन ही अवयव हैं— शीर्षादि से घण्टिका तक, कण्ठादि से स्तनों तक और हृदय से सीवन्त तक। केश, पाणि, पाद आदि उन-उन अवयवों की शाखायें है। अत: सर्वचक्रस्वरूपा कामी अर्थात् कामेश्वरात्मक मन्मथ-सम्बन्धिनी कला, (चित्कला) को 'काम्यरूपाम्' अर्थात् कमनीयस्वरूपा स्वरूप को ध्यान का विषय बना कर उपासक 'कामरूप' (मन्मथस्वरूप) सुन्दर बन जाता है। यही नहीं, काम्य अर्थात् तीनों भुवनों के समस्त प्राणियों के द्वारा अभिलषित रूप को प्राप्त करता है। आचार्य भगवत्पाद (शंकराचार्य) ने कहा है—

ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम्।
स सद्य: संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु।
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम्।।

कामरूपत्व और काम्यत्व के पाने के अभिलाषी व्यक्तियों को 'कामकला' का ध्यान करना चाहिये। ध्यान ही क्रियारूप है अर्थात् ध्यानमात्र से ही फल की सिद्धि हो जाती है, किसी अन्य साधना की आवश्यकता नहीं होती। जिस प्रकार श्येन यज्ञादि में सौमिक अंगभूत है उसी प्रकार इसमें भी 'बहिर्याग' अंगभूत तो है; फिर भी अभाव होने पर 'बहिर्याग' के अतिरिक्त अनुष्ठान करने से भी फल की प्राप्ति होती है— यही भगवत् पाद का आशय है।

नित्याषोडशिकार्णव नामक ग्रन्थ में कहा गया है—

बिन्दुं सङ्कल्प्य वक्त्रं तु तदध:स्थं कुचद्वयम्।
तदर्ध: सपरार्द्धं तु चिन्तयेत्तदधोमुखम्।।

यज्ञ-प्रकरण में निर्दिष्ट विधि के अनुसार इस ध्यान के यज्ञात्मक पक्ष का भी स्मरण होता है। उस स्थिति में अन्नादि के कामना की पूर्ति करने वाले यज्ञों के समान फल के आकांक्षी इसका बहि:प्रयोग भी कर सकते हैं। अतएव भक्तिसूत्र में भगवत्स्मरण का निर्देश करके कहा भी गया है— 'बहिरन्तरस्तमुभयमवेष्टिवत्सर्वमिति।'

कामकला का स्वरूप— योगिनीहृदय (चक्रसङ्केत-१.२५) में कहा गया है—

ज्येष्ठा ज्ञानं क्रिया शेषमित्येवं त्रितयात्मकम्।
चक्रं कामकलारूपं प्रसारपरमार्थत:।।

'शक्ति' सिंघाड़े के समान त्रिकोण आकार धारण करती है। 'महाबिन्दु' प्रकाश है। त्रिकोणाकार नादशक्ति 'विमर्श' है। त्रिकोण के तीनों बिन्दु रक्त-शुक्ल-मिश्र तथा मध्य स्थित महाबिन्दु चारो बिन्दु मिलकर 'कामकला' के विग्रह को व्यक्त करते हैं।

'श्वेतबिन्दु' शिवात्मक है, 'रक्तबिन्दु' शक्त्यात्मक है। ये दोनों परस्पर (एक-दूसरे में) प्रविष्ट होते हैं। कभी 'शिवबिन्दु' का संकोच-प्रसार होता है तो कभी 'शक्तिबिन्दु' का। इसी स्थिति में प्रसार एवं संकोच के समय जगत् का निर्माण होता है। 'श्वेतबिन्दु' 'अर्थ' का एवं 'रक्तबिन्दु' 'शब्द' का रूप धारण करता है। ये दोनों बिन्दु परस्पर सम्प्रविष्ट भी हैं और परस्पर से पृथक् भी। रक्त एवं 'श्वेतबिन्दु' के समागम से तृतीय 'मिश्रबिन्दु' का आविर्भाव होता है। यही 'अहं' पद भी है। मिश्रबिन्दु 'सूर्यबिन्दु' है। यह बिन्दु कमनीय होने के कारण 'काम' कहा गया है। 'रक्तबिन्दु' 'अग्नि' एवं 'श्वेतबिन्दु' 'चन्द्र' कहलाते हैं। ये दोनों 'कला' कहलाते हैं। इस प्रकार मूल महाबिन्दु एवं त्रिकोण के तीनों बिन्दु 'काम-कला' के स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं। महाबिन्दु ही 'हार्दकला' है।

विमर्श शक्ति को अन्तर्गर्भित किये हुये निराकार अपनी विमर्श शक्ति में प्रविष्ट होकर बिन्दुरूप ग्रहण करता है। 'विमर्श शक्ति' पूर्णाहन्तास्वरूपिणी है और परमशिव तदन्तर्गत है। इस प्रकार शिव में शक्ति एवं शक्ति में शिव अन्तःप्रविष्ट हैं। विमर्श शक्ति जब 'महाबिन्दु' में प्रविष्ट होती है तब महाबिन्दु उच्छून होता है। यह अंकुरायमाण चने के बीज के समान फूलता है और उससे 'नादशक्ति' का आविर्भाव होता है। समस्त तत्त्व इसी शक्ति के गर्भ में अवस्थित हैं। शक्ति अनन्त तेजोमयी एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। महा-बिन्दु से निकलकर वह शक्ति सिंघाड़े के समान त्रिकोण आकार धारण करती है। महा-बिन्दु प्रकाश है और त्रिकोणाकार नादशक्ति ही 'विमर्श' है। त्रिकोण के ये तीनों बिन्दु— रक्त, शुक्ल, मिश्रबिन्दु के साथ मिलकर कामकला का रूप धारण करते हैं।

नटनानन्दनाथ चिद्वल्ली में कहते हैं— दहनो वह्निः। इन्दुः चन्द्रः। तावेव विग्रहावाकारौ ययोर्बिन्द्वोः तौ दहनेन्दुविग्रहौ बिन्दू। अयमर्थः— अग्नीषोमरूपिणी विमर्शशक्तिः। तदुभय-भूतकामेश्वराविनाभूता महात्रिपुर-सुन्दरी बिन्दुसमष्टिरूपा कामकला इत्युच्यते।

यह कामकला तत्त्व उपासनीया है—

शुक्रः शिवो रक्तशक्त्यां पराशाम्भववेधतः।
रक्तशाम्भवरूपेण परातत्त्वेन शक्तितः।।

रक्तः शिवः शुक्लशक्त्यां परशम्भ्वैक्यभावतः।
रक्तः शिवः शुक्लशक्त्यां सच्चिदानन्दलक्षणाम्।।

* * * * *

अग्रबिन्दुपरिकल्पिताननामन्यबिन्दुरचितस्तनद्वयीम् ।
नादबिन्दुरशनागुणास्पदां नौमि ते परशिवे परां कलाम्।।

मिहिरबिन्दुमुखीं तदधोल्लसच्छशिहुताशनबिन्दुयुगस्तनीम्।
सहपरार्धकलारशनास्पदां भजति नित्यमिमां परदेवताम्।।

ईकारोर्ध्वगतो बिन्दुर्मुखं भानुरधोगतौ।
स्तनौ दहनशीतांशू योनिर्हार्द्धकला भवेत्।।

स्वान्तर्गतानन्ताक्षरराशिमहामन्त्रमयी पूर्णाहन्तामयी प्रकाशानन्दसारा बिन्दुत्रयसमष्टि-भूतदिव्याक्षररूपिणी कामकलानाम महात्रिपुरसुन्दरी।

भगवती के इसी कामकलात्मक स्वरूप को त्रिपुरामहोपनिषद् में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

द्वा मण्डला द्वा स्तना बिम्बमेकं मुखं चाधस्त्रीणि गुहसदनानि।
कामी कलां काम्यरूपां विदित्वा नरो जायते कामरूपश्च काम्यः।।

कामकलाविलास में कहा गया है—

इति कामकला विद्या देवीचक्रात्मिका सेयम्।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपः।।

यही 'कामकला' महात्रिपुरसुन्दरी भी है और 'श्रीचक्र' उनका ही यन्त्रात्मक स्वरूप होने के कारण भगवती से अभिन्न है—

देवीचक्रक्रमात्मिकां देव्याः त्रिपुरसुन्दर्याः चक्रं श्रीचक्रम्। (चिद्वल्ली)

पूर्वोक्तमहाप्रबन्धेन व्याख्याता कामकला महात्रिपुरसुन्दरी। (चिद्वल्ली)

कामकला तत्त्व की अनेक प्रकार की व्याख्यायें मिलती हैं— 'कामकलायाः व्याख्या पूर्वैरुदाहताऽनेका।' पुण्यानन्दनाथ महात्मा 'श्रीचक्र' को बिन्दु का विकास मानते हुये कहते हैं कि 'कामकला' एक बिन्दु है— 'पुण्यानन्दमहात्मा कामकलारूपबिन्दुरूप-बिन्दुमुत्त्वा एवं बिन्दोर्विकसनरूपं श्रीचक्रं नाम वक्तुमुद्युङ्क्ते। (चिद्वल्ली)

'काम' और 'कला'— इन दोनों शब्दों पर पृथक् रूप से चिन्तन करें तो 'काम' का अर्थ है— 'परमशिव' और 'कला' का अर्थ है— 'विमर्श' : 'कामकलात्मा कामः प्रकाशैक-स्वभावः, अनुत्तराक्षरात्मा परमशिवः। कला त्वखिलवर्णान्त्यपरमहंसाक्षरमयी विमर्शविग्रहः।' इसी भाव को विस्तारपूर्वक कामकलाविलास में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

एवं कामकलात्मा त्रिबिन्दुतत्त्वस्वरूपवर्णमयी।
सेयं त्रिकोणरूपं याता त्रिगुणस्वरूपिणी माता।।

काम एवं कला की अभिन्नता— क्या 'काम' एवं 'कला' पृथक्-पृथक हैं? नहीं; स्वरूपतः ये दोनों अभिन्न हैं। एक ही परमात्मा अपने को स्त्री एवं पुरुष दोनों रूपों में विभक्त कर लेता है— 'परमात्मा हि स्वात्मानमेव स्त्रीपुंसमयं कृत्वा मिथुनरूपमापन्नो विहरते' (चिद्वल्ली)। कहा भी गया है— 'स एको नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमेत स द्वितीयमैच्छत् स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ सम्परिष्वक्तौ स इममात्मानं द्विधाऽपातयत। ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्।'

—'यदिदं किञ्चिन्मिथुनमापिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वं सृजति।'

इससे सिद्ध होता है कि स्वयं ब्रह्म भी मिथुन के रूप में विहरणशील होने की कामना करता है; अतः 'मिथुना-त्मना विहरणशीलं ब्रह्म' (चिद्वल्ली)।

अद्वैतवाद— वही अपने को गुरु एवं शिष्य के रूप में भी विभाजित कर लेता है। वही ब्रह्म 'प्रकाश' एवं 'विमर्श' के रूप में मिथुनीभूत हुआ और वह एक ही ब्रह्म 'गुरु' एवं 'शिष्य' के रूप में (द्विधा) प्रकट हो गया—

१. गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिवः।

२. तन्मिथुनं कामकामेश्वरीरूपं मित्रेशनाथ कामेश्वरी श्रीमदुड्डीशनाथ वज्रेश्वरी षष्ठीनाथ भगमालिनी। एवमादिमिथुनत्रयात्मना दिव्य-सिद्ध-मानवाद्यादिक्रमरूपेण विततं मिथुनत्रयं विस्तृतमित्यर्थः। (चिद्वल्ली)

परमात्मा स्वयमेव स्वात्मानं विभज्य कामकामेश्वरीरूपः गुरुशिष्यभावमापन्नः सकलतन्त्रं प्रवर्तयामास। (चिद्वल्ली)

उपनिषद् में कहा भी गया है—

स इममेवात्मानं द्विधाऽपातयत्। ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्। आत्मैवेदमग्र आसीत्। एक एव सोऽकामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेयेति। (चिद्वल्ली)

अष्टम अध्याय

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वस्वरूप

(सौन्दर्यलहरी के आलोक में)

१. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का कुण्डलिनी-स्वरूप

षट्चक्रवेधनात्मक एवं सहस्रारावरोहणात्मक सामरस्य का चित्रण करते हुये आचार्य शंकर कहते हैं कि हे भगवति ! तू पृथ्वीतत्त्व एवं जलतत्त्व को मूलाधार चक्र में, अग्नि-तत्त्व को मणिपूरक चक्र में, वायुतत्त्व को अनाहत चक्र में, आकाशतत्त्व को विशुद्ध चक्र में तथा मन को आज्ञा चक्र (भ्रूमध्य) में लय करके एवं इस प्रकार समस्त कुलपथ (शक्ति के आरोहावरोह के मार्ग) का वेध करके सहस्रदल पद्म में अपने पति के साथ एकान्त में विहार करती है—

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि।।

आचार्य हयग्रीव ने शाक्तदर्शनम् में भगवती के 'कुण्डलिनी' स्वरूप का भी उल्लेख किया है।

षट्चक्रवेधनात्मक एवं अवरोहणात्मक मूलाधारस्थ स्वरूपचित्रण करते हुये आचार्य शंकर कहते हैं कि अमृतधाराओं की वर्षा से, जो तेरे दोनों चरणों के मध्य टपकती है, प्रपञ्च को सिञ्चित करती हुई, फिर छहों आम्नायों से होती हुई या छहों चक्रों द्वारा सींचती हुई तू हे कुहरिणि ! अपनी भूमि पर उतरती हुई अपने-आपको सर्पिणी की भाँति सादे तीन कुण्डलों से आवेष्टित करके कुलकुण्ड में सोती है—

सुधाधाराऽसारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नाय महसा।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि।।

आचार्य हयग्रीव कहते हैं—

तत्रैव कुण्डलिनी शक्तिः कन्दोर्ध्वे कुण्डलिनी। (शाक्तदर्शनम्)

२. भगवती का चक्रात्मक स्वरूप

पिण्ड के समस्त चक्र भगवती के शरीरांग हैं। भगवती चक्रस्वरूपा हैं। आचार्य शंकर कहते हैं— हे देवि ! तेरे 'मूलाधार चक्र' में लास्यपरा 'समया देवी' के साथ

नवरसात्मक महाताण्डव करने वाले नटेश्वर 'नवात्मा शिव' जी का मैं चिन्तन करता हूँ। यह जगत् इन दोनों— जनक एवं जननी की अनुकम्पा से अपने को सनाथ मानता है।

भगवती मूलाधार चक्र में निवास करती है— 'मूलाधारैकनिलया।'

हे जननी ! तेरे 'स्वाधिष्ठान चक्र' में अग्नितत्त्व को अधिष्ठित करके 'संवर्ताग्नि' रहता है, उसकी एवं उस महती 'समयादेवी' की मैं स्तुति करता हूँ। जिस समय संवर्ताग्नि बड़ी क्रोधभरी दृष्टि से लोकों को भस्मीभूत करने लगती है उस समय भगवती 'समयादेवी' की दयार्द्र दृष्टि शीतल उपचार करती है।

हे देवि ! तेरे 'मणिपूर चक्र' की शरण में गये हुये श्याम मेघों के रूप धारण करने वाले जन की भी मैं सेवा करता हूँ, जिसमें अन्धकार की परिपन्थिनी शम्पा की ज्योति, आभरणजटित नाना रत्नों की चमक के सदृश इन्द्रधनुष का रूप धारण किए हुये है और जो (मेघ एवं जल) अग्नि एवं सूर्य के ताप से सन्तप्त त्रिभुवन पर (शीतल जल की) वर्षा कर रहे हैं।

भगवती 'मणिपूरक' में भी निवास करती है, उसमें प्रकट होती है और वहाँ 'विष्णु ग्रन्थि' का उद्भेदन करती है। ललितासहस्रनाम में कहा भी गया है—

मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रन्थिविभेदिनी।

आचार्य शंकर कहते हैं— मैं हृत्प्रदेश में विकसित 'संवित् पद्म' (अनाहत चक्र) से निःसृत मकरन्द के एकमात्र रसिक उस किसी अद्भुत हंसयुगल का (मैं) भजन करता हूँ, जो महान् पुरुषों के मनरूपी मानससरोवर में विहार करता है, जिसके (रहस्यात्मक) वार्तालाप का परिणाम ही अष्टदशात्मिका विद्यायें हैं और जो दोषों से रहित समस्त गुणों को इस प्रकार निकाल लेता है जैसे हंस जलमिश्रित दूध से निःशेष क्षीर को निकाल लेता है।

आचार्य शंकर कहते हैं— हे देवि ! मैं तेरे 'आज्ञाचक्र' में स्थित करोड़ों सूर्य-चन्द्रों के उत्कट तेज से युक्त 'परमशिव' की वन्दना करता हूँ, जिसका वाम पार्श्व पराचिति से एकीभूत है। जो मनुष्य उसकी भक्तिपूर्वक आराधना करता है वह उस प्रकाशमान लोक में निवास करता है, जो सूर्य-चन्द्र-अग्नि से अस्पृष्ट (अप्रभावित) है एवं समस्त आतंकों से मुक्त है या सूर्य-चन्द्रमा एवं अग्नि का विषय न होने के कारण उनके दुष्प्रभावों से प्रकाशित नहीं है।

भगवती 'आज्ञाचक्र' में निवास करती हैं और 'रुद्रग्रन्थि' का भेदन करती हैं। ललिता सहस्रनाम में कहा भी गया है—

आज्ञाचक्रान्तरालस्था रुद्रग्रन्थिविभेदिनी।

भगवती 'सहस्रारचक्र' में 'महाकुण्डलिनी' के रूप में परमबिन्दु को चतुर्दिक आच्छादित करके सामरस्यावस्था में वहाँ निवास करती है और वही उनका मुख्य निवास

या धाम है। वे वहाँ अपने पति के साथ एकान्त में विहार करती है। आचार्य शंकर कहते हैं—

मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथम्।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि।।

३. भगवती का श्रीचक्रात्मक स्वरूप

'श्रीचक्र' भगवती का यन्त्रात्मक स्वरूप है। श्रीचक्र को उनका आसन एवं शरीर दोनों कहा गया है। आचार्य शंकर कहते हैं— हे भगवति ! चतुष्टयात्मक 'श्रीकण्ठों' एवं पञ्चात्मक 'शक्तिचक्रों' (शिवयुवतियों) अर्थात् नवात्मक मूल प्रकृतियों के द्वारा तेरे निवास करने हेतु तैंतालीस त्रिकोण बनते हैं, जो शम्भु के 'बिन्दुस्थान' से भिन्न हैं। वे तीन वृत्तों, तीन रेखाओं एवं षोडश दलों से निर्मित हैं—

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि
प्रसन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः।
त्रयश्चत्वारिंशद वसुदलकलाश्रित्रिवलय-
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरण (भवन) कोणाः परिणताः।।

त्रिपुरतापिन्युपनिषद् में 'श्रीचक्र' के स्वरूप को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्मं मन्वश्रनागदलसंयुतषोडशारम्।
वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः।।

त्रिपुरतापिन्युपनिषद् में ही यह भी कहा गया है—

संक्रामन्ति वै सर्वाणि छन्दांसि चक्राराणि तदेव चक्रं श्रीचक्रम्।

इसी 'श्रीचक्र' के मध्य भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की यन्त्रात्मक पूजा की जाती है (बहिर्याग सम्पन्न हुआ करता है)। श्रीचक्र के नौ आवरण हैं— १. बिन्दु, २. त्रिकोण, ३. अष्टकोण, ४. अन्तर्दशार, ५. बहिर्दशार, ६. तीन चतुरस्रात्मक भूपुर—

आवरण	चक्र
क. प्रथमावरण	—त्रैलोक्यमोहन चक्र
ख. द्वितीयावरण	—सर्वाशापरिपूरक चक्र
ग. तृतीयावरण	—सर्वसंक्षोभण चक्र
घ. चतुर्थावरण	—सर्वसौभाग्यदायक चक्र
ङ. पञ्चमावरण	—सर्वार्थसाधक चक्र
च. षष्ठावरण	—सर्वरक्षाकर चक्र
छ. सप्तमावरण	—सर्वरोगहर चक्र
ज. अष्टमावरण	—सर्वसिद्धप्रद चक्र
झ. नवमावरण	—सर्वानन्दमय चक्र

शक्तिसूत्र में ऋषि अगस्त्य कहते हैं कि 'शरीर' ही श्रीचक्र है— 'शरीरं श्रीचक्रम्'

(४.२५)। श्रीचक्र कामेश्वर एवं कामेश्वरी का 'वपु' है— 'श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः।' सुभगोदयवासना में भी कहा गया है— 'शिवशक्तिमयं चक्रं विश्वाकारं भजाम्यहम्।'

भावनोपनिषद् में कहा गया है कि नवरन्ध्रात्मक एवं नवशक्तिमय देह से युक्त ही 'श्रीचक्र' है— 'नवरन्ध्रदेहो नवशक्तिमयं श्रीचक्रम्।'

श्रीचक्रपूजन का स्वरूप क्या है? इस सन्दर्भ में भावनोपनिषद् कहता है कि ज्ञातृ, ज्ञान एवं ज्ञेय में अभेदभावना ही श्रीचक्रपूजा है— 'ज्ञातृज्ञानज्ञेयनामभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम्।'

४. भगवती का सहस्रारात्मक स्वरूप

सहस्रारं बिन्दुर्भवति च ततो बैन्दवगृहम्।
तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषं स करणम्।।

ततो मूलाधाराद्द्वितयमभवत्तद्दशदलम्।
सहस्राराज्जातं तदिति दशधा बिन्दुरभवत्।।

कहकर आचार्य गौडपाद ने सुभगोदयस्तुति में कहा है कि 'सहस्रार' ही 'बिन्दु' बन जाता है। 'शक्ति' का निर्गुण स्वरूप बिन्दुरूप है। कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार में परमशिव से मिलकर बिन्दुरूपा बन जाती है और 'बैन्दवस्थान' में रहती है। शक्ति का यह रूप परमबिन्दु है। यहाँ शक्ति अभिन्न रूप से निवास करती है। आचार्य शंकर कहते हैं कि हे देवि ! महापुरुष तेरी विद्युत् रेखा जैसी सूक्ष्म सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि की त्रयात्मिका कला को छः कमलों के भी ऊपर कमलों के महावन (सहस्रदल पद्म) में 'मल' एवं 'माया' से विशुद्ध मन द्वारा देखते एवं परमानन्द की लहरों को धारण करते हैं—

तडिल्लेखातन्वीं तपनशशिवैश्वानरमयीं
निषण्णां षण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम्।
महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा
महान्तः पश्यन्ती दधति परमाह्लादलहरीम्।।

५. भगवती का तत्त्वात्मक एवं शक्त्यात्मक स्वरूप

आचार्य शंकर कहते हैं कि हे देवि ! पृथ्वीतत्त्व में छप्पन, जलतत्त्व में बावन, अग्नितत्त्व में बासठ, वायुतत्त्व में चौवन, आकाशतत्त्व में बहत्तर एवं मनस्तत्त्व में चौंसठ रश्मियों के ऊपर तेरे दोनों चरणकमल स्थित हैं—

क्षितौ षट्पञ्चाशद्द्विसमधिकपञ्चाशदुदके
हुताशे द्वाषष्टिश्चतुरधिकपञ्चाशदनिले।
दिवि द्विषट्त्रिंशन्मनसि च चतुःषष्टिरिति ये
मयूखास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुजयुगम्।।

'मणिपूर चक्र' की रश्मियाँ (अग्नितत्त्व की दश कलायें) धूम्रार्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, विस्फुल्लिंगी, सुश्रिया, सुरूपा, कपिला, हव्यवाहिनी और कव्यवाहिनी।

'अनाहतचक्र' की रश्मियाँ (सूर्य की बारह कलायें)— तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्ना, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी और क्षमा।

'विशुद्ध चक्र' की रश्मियाँ (चन्द्रमा की सोलह कलायें)— अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा और पूर्णामृता।

('मणिपूरचक्र' के नीचे स्थित) 'रुद्रग्रन्थि' की रश्मियाँ (रुद्र की दश कलायें)— तीक्ष्णा, रौद्री, भया, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, क्रोधिनी, क्रिया, उद्गारी और मृत्यु।

('अनाहतचक्र' के ऊपर स्थित) 'विष्णु ग्रन्थि' की रश्मियाँ (विष्णु की दस कलायें)— जरा, पालिनी, शान्ति, ईश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति एवं दीर्घा।

('आज्ञाचक्र' के ऊपर स्थित) 'ब्रह्मग्रन्थि' की रश्मियाँ (ब्रह्मा की दश कलायें)— सृष्टि, ऋद्धि, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, द्युति, स्थिरा, स्थिति और सिद्धि।

भगवती शक्ति के रूप में कुण्डलिनी शक्ति भी हैं। इसका उल्लेख हयग्रीवप्रणीत शाक्तदर्शनम् में इस प्रकार किया गया है—

ब्रह्मरन्ध्रमुखं स्वमुखेन समावेष्ट्य कन्दपार्श्वेषु निरुध्य संस्थिता कुण्डलिनी (१४.१.१); तत्रैव कुण्डलिनी शक्तिः (१३.४.१०); कन्दोर्ध्वे कुण्डलिनी (१३.४.१७)।

१. पृथ्वी की छप्पन किरणें— पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्रायें, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण, कला, प्रकृति, महत् और पुरुष। इनका योग अट्ठाइस होता है। ये ही शिव-शक्तिभेद से छप्पन हो जाते हैं।

२. जल की बावन किरणें— पाँच महाभूत, दश इन्द्रियाँ, दश उनके कार्य एवं मन। इनका योग है— छब्बीस। यही शिव-शक्तिभेद से बावन हो जाते हैं।

३. अग्नि की बासठ किरणें— पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्रायें, दश इन्द्रियाँ, दश उनके कार्य एवं मन। ये इकत्तीस ही शिव-शक्तिभेद से बासठ हो जाते हैं।

४. वायु की चौवन किरणें— पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्रायें, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण, कला, प्रकृति एवं पुरुष। ये सत्ताइस शिव-शक्तिभेद से चौवन होते हैं।

५. आकाश की बहत्तर किरणें— समस्त छत्तीस तत्त्व शिव-शक्तिभेद से बहत्तर हो जाते हैं।

६. मनस्तत्व की चौंसठ किरणें— प्रथम चार शुद्ध तत्त्व (शिव, शक्ति, सदाख्य, महेश्वर); शेष ३२ शिव— शिव-शक्तिभेद से योग चौंसठ होता है।

सर्वशक्तिवाद

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि– शक्तिसूत्रकार (प्रत्यभिज्ञाहृदय के प्रणेता क्षेमराज) कहते हैं—

भगवती 'चिति शक्ति' ही विश्व का वमन (बहिःप्रकाशन) करने के कारण या संसाररूप वाम— विपरीत आचरण करने से 'वामेश्वरी' का रूप ग्रहण करती हुई खेचरी, गोचरी, दिक्चरी एवं भूचरी, प्रमाता, अन्तःकरण, बाह्य करण एवं वस्तुस्वभाव रूप में स्फुरित होती है।

वही 'चिति शक्ति' ही 'पशुभूमिका' में शून्य पद ग्रहण करके पारमार्थिक 'चिद्गगनचरी' का स्वरूप छिपाकर किञ्चित्कर्तृत्वादिरूप कला आदि शक्त्यात्मक 'खेचरी' चक्ररूप में प्रकाशित होती है।

अभेदनिश्चयादि पारमार्थिक स्वरूप को छिपाकर भेद-निश्चय, भेदाभिमान तथा भेदकलनाप्रधान अन्तःकरणों की देवी 'गोचरी चक्र' के रूप में प्रकाशित होती है।

अभेदप्रथात्मक पारमार्थिक रूप को आवृत्त करके एवं भेदालोचन को प्राधान्य देकर बाह्य करणों की देवी के रूप में वही चिति शक्ति 'दिक्चरी चक्र' के रूप में उदित होती है।

वही चिति शक्ति पतिभूमिका में तो सर्वकर्तृत्वादि शक्तिरूप चिद्गगनचरी, अभेदनिश्चय आदि के स्वरूप वाली होकर 'गोचरी', अभेदालोचनाद्यात्मक 'दिक्चरी' एवं निजाङ्गस्वरूप अद्वैतप्रथा की सारभूत प्रमेयात्मक स्वरूपवाली होकर 'भूचरी' रूप से पतिहृदय को विकसित करती हुई स्फुरित होती है।

चिदात्मा परमेश्वर की अविनाशी एवं स्पन्दनगर्भा ऐसी कर्तृत्वशक्ति ही 'ऐश्वर्यशक्ति' है। वह शक्ति जब अपने स्वस्वरूप को छिपाकर 'पशुदशा' में प्राण, अपान एवं समान शक्ति की दशाओं— जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति; भूमियों, देह, प्राण एवं पुर्यष्टकात्मक कलाओं द्वारा व्यामोहित करती है तब उसी से जनित व्यामोहितता 'संसारित्व' कहलाता है।

जब ऐश्वर्य शक्ति 'मध्य धाम' (सुषुम्ना मार्ग) के उल्लासरूप 'उदान शक्ति' एवं विश्वव्याप्त सारभूत 'व्यानशक्ति' को, जिसे क्रमशः आनन्दघनरूप 'तुर्या दशा' एवं चिद्घनस्वरूप 'तुर्यातीत दशा' कहा जाता है, उन्मीलित करती है तब देहादि अवस्था में भी पतिदशात्मक 'जीवन्मुक्ति' उपलब्ध होती है।

चिति शक्ति ही संसार का ग्रास कर लेने के कारण 'अग्नि' कही जाती है। यही अवरोह पद या जीवदशा में भी 'स्वातन्त्र्य शक्ति' द्वारा नील, पीत आदि पदार्थों के इन्धन को आत्मसात् कर लेती है।

चिति ही देह, प्राण आदि आवरणों को निमज्जित करके स्वरूप को उन्मिषित करती हुई 'बल' कहलाती है। चित्त ही तत्त्व को जान लेने पर अन्तर्मुखी दशा में चेतन पद पर आरूढ होकर 'चिति' का रूप ग्रहण करता है।[१]

चित्प्रकाश से अभिन्न, नित्योदित, महामन्त्रात्मक, पूर्ण अहं विमर्शमयी जो परा

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्

वाक् शक्ति है, उसी के गर्भ में 'अ' से 'क्ष' तक समस्त वर्णरूप शक्तिचक्र स्थित है और वही परा वाक् शक्ति 'पश्यन्ती' एवं 'मध्यमा' के क्रम से ग्राहक भूमिका आभासित करती है।[१]

अभेद व्याप्ति को संकुचित करने पर अप्रतिहत 'स्वातन्त्र्यरूप इच्छाशक्ति' संकुचित होकर अपूर्णमन्यतात्मक 'आणवमल' के नाम से जानी जाती है।

जब 'ज्ञानशक्ति' संकुचित होकर भेददशा में सर्वज्ञता से अल्पज्ञत्व प्राप्त करती है और अन्तःकरण एवं ज्ञानेन्द्रियता की प्राप्तिसहित अत्यन्त संकोच ग्रहण करती है तो उसको देह आदि भिन्न-भिन्न वेद्यों का विकासस्वरूप 'मायीय मल' कहते हैं।

जब भेददशा में क्रियाशक्ति की सर्वकर्तृता शक्ति अल्पकर्तृत्व प्राप्त करती है तब कर्मेन्द्रियरूप संकोच को ग्रहण करके अत्यन्त परिमित हो जाती है तब उसे ही शुभाशुभ कर्ममय 'कार्ममल' कहा जाता है।[२]

जब सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञत्व, पूर्णत्व, नित्यत्व एवं व्यापकत्व शक्तियाँ संकुचित होकर कला, विद्या, राग, काल एवं नियतिरूप से भासित होती है तब इस प्रकार की आत्मा शक्तियों से दरिद्री होकर 'संसारी' कही जाती है, अन्यथा अपनी शक्ति की विकास दशा में वही 'शिव' है।

समस्त भूमिकाओं में एक ही चिति शक्ति या आत्मा व्याप्त है। उसी आत्मा की स्वातन्त्र्य शक्ति अपने प्रच्छादन एवं उन्मीलन के तारतम्य में क्षिति से शिवदशा तक (छत्तीस तत्त्वों में) व्याप्त है।[३]

स्वातन्त्र्यात्मा चिति शक्ति ही ज्ञान, क्रिया एवं मायारूप होकर पशुदशा में संकोच के प्रकर्ष से सत्त्व, रजस् एवं तमस् गुण तथा तन्मय चित्त के रूप में स्फुरित् होती है। अपने अंगभूत सांसारिक पदार्थों के विषय में पति (परमेश्वर) की जो ज्ञान, क्रिया एवं मायारूप तीन शक्तियाँ हैं, वे ही पशुदशा में सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण कही जाती हैं—

स्वाङ्गरूपेषु भावेषु पत्युर्ज्ञानं क्रिया च या।
मायातृतीये त एव पशोः सत्त्वं रजस्तमः।।

'स्वातन्त्र्यात्मा चितिशक्तिरेव ज्ञानक्रियामायाशक्तिरूपा पशुदशायां सङ्कोचप्रकर्षात् सत्त्वरजस्तमःस्वभावचित्तात्मतया स्फुरतीति श्रीप्रत्यभिज्ञायामुक्तम्।'[४]

चित्तनामक कोई अन्य पदार्थ नहीं है, अपितु भगवती चितिशक्ति ही 'चित्त' की आख्या प्राप्त की हुई हैं। जब वह 'चिति' अपने स्वरूप को छिपाकर संकोच का आलम्बन ग्रहण करती है तब उसकी दो प्रकार की गतियाँ हो जाती हैं— कभी उल्लसित संकोच को गौण करके चित्प्राधान्य को लेकर उल्लसित होती है तो कभी स्वाभाविक चित्प्राधान्यपक्ष में प्रकाशमात्र प्रधान होने पर विज्ञानकलरूपता विकसित होती है और प्रकाश तथा

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्
२. शक्तिसूत्र
३. शक्तिसूत्र
४. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (आचार्य क्षेमराज)

विमर्श— दोनों के प्राधान्य में विद्यातत्त्व में अवस्थित प्रमातृता प्राप्त होती है। प्रकाश एवं विमर्श के प्राधान्य में और अधिक संकोच के और क्षीण होने पर चितिशक्ति (आत्मा) ईश्वर, सदाशिव और अनाश्रित शिव कहलाता है। चित्त भी चित् शक्ति ही है; जैसा कि आचार्य क्षेमराज ने प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में कहा भी है—

चितिरेव चेतनपदावरूढ़ा चेत्यसङ्कोचिनी चित्तम्।

प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि समस्त छत्तीस तत्त्व भगवती चिति शक्ति का ही अपना विस्फार है। यही 'परा शक्ति' ही षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मक जगत् का आधार एवं कारण है— 'पराशक्तिरूपा चितिरेव भगवती स्वतन्त्रा अनुत्तर विमर्शमयी शिवभट्टारिकाभिन्ना हेतुः कारणम्; चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः।'

भगवती का परमशक्त्यात्मक स्वरूप— भगवती पराशक्ति है; कहा भी गया है—

'ब्रह्मरन्ध्रे परा शक्तिः' (शा० द० १३.२.१३;१३.२.१२.)
'विचित्रजगन्निर्माणादिसामर्थ्यरूपा शक्तिः' (१.२)
'शक्तिस्त्रिजननी' (शा० द० १.४.१.)
'चिद्योगाढ्या शक्तिः' इत्यादि। (शा० द० १.२.३)

आचार्य शंकर सौन्दर्यलहरी में कहते हैं कि भगवती इतनी बड़ी शक्ति है कि विष्णु, शिव एवं ब्रह्मा भी उनकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं; फिर भला पुण्यहीन मानव की तो बात ही क्या है—

अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरञ्चादिभिरपि
प्रशान्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति।।१।।

भगवान् शिव शक्ति की सहायता के विना सृष्टि करने की बात तो दूर रही, हिल भी नहीं सकते—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

भगवती के चरणकमल के छोटे-छोटे रजःकण को चुनकर ही ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं, शेषनाग बड़ी ही कठिनाई से अपने हजारों फणों पर उसे धारण कर पाता है तथा शिव उसे भस्म के रूप में अपने अंगों पर लगाते हैं।[1]

विष्णु ने भगवती की आराधना करके प्राप्त 'शक्ति' द्वारा मोहिनी का रूप धारण कर कामारि के मन को भी काम से दग्ध कर दिया था।[2] कामदेव में विश्वविजय करने की अपार 'शक्ति' भी भगवती द्वारा ही प्रदत्त है।[3]

भगवती की सौन्दर्य-शक्ति अपनी मधुरता में इतनी मादक है कि ब्रह्मा आदि कवीन्द्र

१. सौन्दर्यलहरी (२)
२. सौन्दर्यलहरी (५)
३. सौन्दर्यलहरी (६)

भी उसका वर्णन नहीं कर सकते और सौन्दर्य की विग्रह अप्सरायें भी भगवती के सौन्दर्य को देखकर इतना चकित रह जाती हैं कि ध्यान में ही सायुज्य प्राप्त कर लेती हैं।[१] भगवती का ध्यान करने से ही ध्याता में अपूर्व कवित्व शक्ति का उन्मेष हो जाता है[२] और अमृतवर्षिणी इन देवी का ध्याता ज्वरादिक कष्टों से पीड़ित अन्य व्यक्तियों को भी मात्र अपनी दृष्टि से ही स्वस्थ कर देता है।[३]

भगवती के चरणों की ब्रह्मा, विष्णु एवं इन्द्र भी अपने मुकुटों के प्रकाश से आरती उतारा करते हैं।[४] भगवती की चरण-पूजा से तीनों देवों की भी पूजा हो जाती है, इसीलिए भगवती के मणिमय पादपीठ के निकट अपने मुकुटों की शोभा बढ़ाने हेतु तीनों देवता हाथ जोड़े खड़े रहते हैं।[५] भगवती के कर्णफूलों की ही यह महिमा है कि (ब्रह्मा, इन्द्र आदि के कालकवलित होते रहने पर भी) हलाहलपायी कालकलना से मुक्त हैं।[६] 'भगवती' शम्भु का शरीर हैं तथा उनके 'स्तनद्वय' सूर्य एवं चन्द्र हैं।[७]

भगवती विश्वनिर्माण के उपादानभूत पाँच तत्त्व— क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर एवं मनस्वरूप भी हैं और उनकी परिणति के अतिरिक्त अन्य कुछ है भी नहीं—

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।[८]

ललितासहस्रनाम (१६८) में कहा गया है कि भगवती तत्त्वस्वरूपा हैं—

तत्त्वाधिका तत्त्वमयी तत्त्वमर्थस्वरूपिणी।

वे 'पराशक्ति' भी हैं— 'परा शक्तिः परा निष्ठा' (ल. स. ११६)। भगवती 'श्री-शिवाशिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बिका' (ल. स. १८२) हैं। वे शक्तिस्वरूपा हैं, इसीलिये उन्हें सर्वत्र ही इसी आख्या से सम्बोधित किया गया है। भगवती 'पराशक्ति' भी हैं— 'कारणं भुवनसुन्दरी पराशक्तिरिति' (२.४.१३), 'शक्तिरीश्वर इति हयग्रीवः' (शा. द. २.२.१७), 'शक्तिः स्वतन्त्रेति हयग्रीवः' (२.४.१६), 'अतः कारणं शक्ति-रेवेति हयग्रीवः' (शा. द. ३.३.९), 'कारणं शक्तिः' (शा. द. ४.१.१) आदि।

भगवती 'कुलकुण्डलिनी शक्ति' भी हैं— 'महाशक्तिः कुण्डलिनी'
(ललितासहस्रनाम)

६. भगवती का विश्वात्मक स्वरूप

आचार्य शंकर सौन्दर्यलहरी (३५) में कहते हैं कि समस्त जगत् भगवती का परिणाममात्र है और इस परिणाम के अतिरिक्त विश्व में अन्य कुछ है ही नहीं—

त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।[९]

---

१. सौन्दर्यलहरी- (१२)
२. सौन्दर्यलहरी- (१७)
३. सौन्दर्यलहरी- (२०)
४. सौन्दर्यलहरी- (२२)
५. सौन्दर्यलहरी- (२५)
६. सौन्दर्यलहरी- (२८)
७. सौन्दर्यलहरी- (३४)
८. सौन्दर्यलहरी- (३५)
९. सौन्दर्यलहरी- (३५)

शक्तिपरिणामवाद— भगवती अपने को विश्वशरीर के रूप में परिणत किये हुये हैं तथा उन्होंने अपने-आपको परिणत करने हेतु चिदानन्दाकार को विराट् देह के भाव द्वारा व्यक्त किया है। सौन्दर्यलहरी (३५) में कहा भी गया है—

त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दकारै शिवयुवतिभावेन विभृषे।।

मनस्तत्त्व का केन्द्र आज्ञाचक्र भी भगवती का अपना विशिष्ट स्वरूप है और विशुद्ध, अनाहत, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार भी १. 'तवाज्ञाचक्रस्थं' (३६), २. 'विशुद्धौ ते शुद्ध' (३७), ३. 'समुन्मीलितसंवित्कमल' (३८), ४. 'तव स्वाधिष्ठाने' (३९), ५. 'तव श्याममेघं कमपि मणिपूरैकशरणं' (४०), ६. 'तवाधारे मूले सह समयया लास्य परया' (४१) भगवती के अपने विशिष्ट शक्तिपीठ या दिव्यासन या दिव्यधाम हैं।

७. भगवती का मातृस्वरूप

आचार्य शंकर ने भगवती को मुख्यत: माता के रूप में स्मरण किया है। माता के दो रूप हैं— स्वमाता और जगन्माता। आचार्य शंकर ने भगवती के दोनों स्वरूपों को स्वीकार किया है—

१. वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननि सञ्चिन्तयति य:। (१७)
२. तमीडे संवर्तं जननि ! महतीं तां च समयाम्। (३९)
३. सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम्। (४१)
४. सखीषु स्मेरा ते मयि जननि दृष्टि: सकरुणा। (५१)
५. विलीयन्ते मातस्तव वदनताम्बूलकवला:। (६५)
६. समं देवि स्कन्दद्विपवदनपीतं स्तनयुगम्।
तवेदं न: खेदं हरतु सततं प्रस्नुतमुखम्।। (७२)
७. जनस्तां जानीते तव जननि रोमावलिरिति। (७६)
८. कृशे मध्ये किञ्चिज्जननि तव तद्भाति सुधियाम्। (७७)
९. ममाप्येतौ मात: शिरसि दयया धेहि चरणौ। (८४)
१०. सरोजं त्वत्पादौ जननि ! जयतश्चित्रमिह किम्। (८७)
११. कदा काले मात: कथय कलितालक्तकरसम्। (१००)
त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तव जननि वाचां स्तुतिरियम्।। (१०३)

स्त्रीसामान्ये मातृभाव: (शक्तिसूत्र-४.३४), मातरं नारद: (शक्तिसूत्र-१.१०३), यन्मातापितरौ (शक्तिसूत्र-१.८९), शक्तिस्त्रिजननी (शा. द.-१.४.१), श्रीमाता (ललिता-सहस्रनाम), मालिनी हंसिनी माता (ललितासहस्रनाम-९५), सिद्धमाता यशस्विनी (ललितासहस्रनाम-९७), निधिर्गोमाता (ललिता-सहस्रनाम-१२१), अनेककोटिब्रह्माण्ड जननी (ललितासहस्रनाम-१२४), ब्रह्माणी ब्रह्मजननी (ललितासहस्रनाम-१५५), वीरमाता (ललितासहस्रनाम-१५६), विश्वमाता जगद्धात्री (ललितासहस्रनाम-१७३)।

यही माता शक्ति, जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार का आधार है।

आचार्य भासुरानन्द की दृष्टि—

नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्तिः।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति।।[१]

जगत् इसी शक्ति का परिणाम है— 'सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा। अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टिः (१.५)। इयं सृष्टिः परब्रह्मपरिणाम इति ..... सा च सृष्टिर्द्वेधा अर्थमयी शब्दमयी चेति।' (वरिवस्यारहस्यम् : प्रकाशटीका)

८. भगवती का विश्वोद्धारक एवं विद्यास्वरूप

आचार्य शंकर कहते हैं कि हे भगवति ! तू अविद्या में पड़े हुये के हृदयान्धकार को निराकृत करने हेतु (ज्ञानरूपी) उद्दीपन करती है। तू जड़ मनुष्यों के लिए चैतन्यस्तबक से निःसृत मकरन्द के स्रोतों का निर्झर या निर्झरिणी है, दरिद्रों के लिए चिन्तामणियों की माला है और जन्म-मरणरूपी संसार-सागर में डूबे हुये लोगों के लिए विष्णु भगवान् के वराहावतार के दाँतों के सदृश उद्धार करने वाली है—

अविद्यानामन्तस्तिमिरमिहिरोद्दीपनकरी
जडानां चैतन्यस्तबकमकरन्दश्रुतिझरी।
दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ
निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपु वराहस्य भवती।।

आचार्य हयग्रीव शाक्तदर्शनम् (१७.४११) में कहते हैं कि भगवती भुवनसुन्दरी स्वयमेव 'ब्रह्मविद्या' हैं— 'एषा श्रीभुवनसुन्दरी ब्रह्मविद्या' (१.२.७)। इस विद्या का द्वितीय स्वरूप भी है और वह है— 'विद्यापञ्चदशी।'

बह्वृचोपनिषद् में भी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी, षोडशी, श्रीविद्या, सुन्दरी, बाला, अम्बिका आदि को अभिन्न कहा गया है— 'सैषा षोडशी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहा-त्रिपुरसुन्दरी।'

बालाऽम्बिकेति बगलेति वा मातङ्गीति स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति चामुण्डेति चण्डेति वाराहीति तिरस्करणीति राजमातङ्गीति वा शुकश्यामलेति वा लघुश्यामलेति वा अश्वारूढेति वा प्रत्यङ्गिरा धूमावती सावित्री सरस्वती गायत्री ब्रह्मानन्दकलेति।।८।।

सैषा पराशक्तिः सैषा शाम्भवी विद्या कादिविद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति वा रहस्यमोमों वाचि प्रतिष्ठा।।३।।

त्रिपुरतापनीय उपनिषद् में ही 'विद्यां त्रिपुरेशीं, त्रिपुरवासिनीं विद्यां, त्रिपुरेश्वरीं विद्यां' आदि पदों का भी प्रयोग किया गया है। कहा भी गया है—

विद्या समस्तास्तव देवि ! भेदाः।

---

१. वरिवस्यारहस्यम्।

९. भगवती का कामकलास्वरूप

आचार्य शंकर कहते हैं कि हे भगवति ! मुख को बिन्दु बनाकर एवं (तेरे) दोनों स्तनों को उनके नीचे दो बिन्दुओं के रूप में अंकित (चित्रित) करना चाहिये। उसके नीचे 'ह' एवं 'र' के अर्ध भाग का ध्यान करना चाहिये। हे हरमहिषि ! इस प्रकार जो तेरी 'कामकला' का ध्यान करता है, वह तुरन्त ही स्त्रियों के चित्त में क्षोभ उत्पन्न कर देता है। वह सूर्य एवं चन्द्ररूपी दो स्तनों वाले त्रिलोक को भी भ्रमित कर सकता है—

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो
हरार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम्।
स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम्।।१९।।

कामकला महात्रिपुरसुन्दरी ही तो है। कामकलाविलास में पुण्यानन्द ने इनका स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

इति कामकला विद्या देवीचक्रमात्मिका सेयम्।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपः।।८।।

नटनानन्दनाथ 'चिद्वल्ली' में कहते हैं कि बिन्दुसमष्टिरूपा एवं कामेश्वराविनाभूता महात्रिपुरसुन्दरी ही कामकला है— 'तदुभयभूतकामेश्वराविनाभूता महात्रिपुरसुन्दरी बिन्दुसमष्टिरूपा कामकलेत्युच्यते।'

१०. भगवती का मन्त्रात्मक (पञ्चदश्यात्मक) या श्रीविद्यात्मक स्वरूप

आचार्य शंकर ने भगवती के मन्त्रात्मक स्वरूप पर भी प्रकाश डाला है—

शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः।
अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम्।।३२।।

अर्थात् हे जननि ! शिव, शक्ति, काम क्षिति और रवि, शीतकरण (चन्द्र), स्मर (काम), हंस, चक्र, इसके पश्चात् परा (शक्ति), मार (काम) एवं हरि— इन तीनों के अन्त में तीन हृल्लेखायें जोड़कर तेरे नाम के अवयवस्वरूप अक्षरों का साधकजन भजन करते हैं।— यह हादि लोपामुद्रा का मन्त्र है।

स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मनो-
र्निधायैके नित्ये निरवधिमहाभोगरसिकाः।
भजन्ति त्वां चिन्तामणिगुणनिबद्धाक्षरलयाः
शिवाग्नौ जुह्वन्तः सुरभिघृतधाराहुतिशतः।।३३।।

अर्थात् हे नित्ये ! स्मर (काम), योनि (त्रिकोण) और लक्ष्मी— इन तीनों को तेरे मन्त्र के आदि (अक्षरों के स्थान) पर रखकर निरवधि महाभोग के रसिक तेरे कतिपय भक्त चिन्तामणियों से ग्रथित अक्षमाला पर मेरा भजन करते हैं और शिवा (त्रिकोण) अग्निहवनकुण्ड़ में सुरभि (गाय) के घृत की सैकड़ों धाराओं की आहुतियाँ देते हैं। —यह 'कादि मूलविद्या' का मन्त्र है। उपर्युक्त सभी तीनों कूटों के अन्त में 'ह्रीं' है। इस हल्लेखा का स्वरूप क्या है? यह स्पष्ट करना यहाँ आवश्यक है।

'ह्रीं' बीज देवी प्रणव एकाक्षर ब्रह्म— अथर्ववेद के देव्यथर्वशीर्ष में 'हल्लेखा' (ह्रींकार = देवीप्रणव) का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम्।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम्।।१८।।

तात्पर्य यह है कि वियत् + ईकार = (आकाश एवं ईकार) अर्थात् आकाश (ह्रं) एवं ईकार से युक्त, वीतिहोत्र (अग्नि) अर्थात् 'र' अर्धेन्दु (अर्धचन्द्र) अर्थात् से अलंकृत जो देवीबीज है, वह समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाला है।

इस प्रकार इस 'एकाक्षर ब्रह्म' (ह्रीं) का इसी प्रकार वे यति ध्यान करते हैं, जो निरतिशयानन्दपूर्ण एवं ज्ञान के सागर हैं—

एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्धचेतसः।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः।।१९।।

'हल्लेखा' को ही 'देवीप्रणव' भी कहते हैं। (ह् + र् + ई + ँ = ह्रीं), (आकाश + अग्नि = 'ह' + 'र'), (ई + ँ =)।

समस्त श्रीविद्या के अक्षरों में वर्ण (मात्रिका), नाद, संवित्ति एवं विमर्श के रूप में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ही निवास करती है—

(श्रीचक्र एवं श्रीविद्या दोनों में भगवती की अनुस्यूतता)

सर्वानन्दमये देवि ! परब्रह्मात्मके परे।
चक्रे संवित्तिरूपा च महात्रिपुरसुन्दरी।।

महाकामकलारूपा पीठविद्यादिसिद्धिदा।
महामुद्रामयी देवी पूज्या पञ्चदशात्मिका।।

तत्तत्तिथिमयी नित्या नवमी भैरवी परा।।
प्रतिचक्रं समुद्रास्तु चक्रसङ्केत चोदिताः।।

(योगिनीहृदय, पूजा संकेत)

११. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के दो विशेष स्वरूप

भगवती का परात्परात्मक स्वरूप— ब्राह्म, शैव, शाक्त एवं गाणेश पुराणों में

सर्वोच्च सत्ता के रूप में क्रमशः ब्रह्मा, शिव, शक्ति एवं गणेश को प्रतिष्ठित किया गया है। भगवती परात्पर हैं; क्योंकि समस्त शक्तियाँ उनकी सेविकायें हैं और पञ्च ब्रह्म उनके 'पञ्च प्रेतासन' के पाये एवं 'आस्तरण' हैं। उनकी आराधना स्वयं हरि, हर एवं ब्रह्मा सदा किया करते हैं। सौन्दर्यलहरी में कहा भी गया है—

अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि।

भगवती के चरणकमल में लगे रजःकण को चुनकर ब्रह्मा लोक-लोकान्तरों की रचना करते हैं। शेषनाग उस छोटे से रजःकण को अपने सहस्र फणों पर भी उठा पाने में कष्ट का अनुभव करते हैं; जबकि वह समस्त पृथ्वी को सहज ही उठाये हुये हैं। भगवान् हर उस रजःकण का भस्म बनाकर अपने अंगों पर आभूषण की भाँति लेप करते हैं।[१] वह परात्परा शक्ति है— 'पराशक्तिः परा निष्ठा' (११६), 'निस्त्रैगुण्या परापरा' (१५०), 'परं ज्योतिः परं धाम परमाणुः परात्परा' (१५३), 'लोकातीता गुणातीता सर्वातीता' (१७६), 'मूर्ताऽमूर्ता' (१५४), 'परा प्रत्यक् चितीरूपा पश्यन्ती परदेवता' (८१), 'विश्वाधिका' (७५), 'निरुपाधिर्निरीश्वरा' (४६), 'महाशक्तिः' (५४)।[२]

ब्रह्मा, विष्णु एवं इन्द्र आदि देवता अपने मुकुटों को भगवती के श्रीचरणों में रखकर उनकी पूजा करते हैं और इसे अपना गौरव मानते हैं।[३]

अथर्ववेदीय देव्यथर्वशीर्ष में भगवती देवताओं से कहती हैं कि मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ। प्रकृति-पुरुषात्मक सद्रूपासद्रूप जगत् मुझसे ही उत्पन्न हुआ है। मैं आनन्दानन्द, विज्ञानाविज्ञान, ब्रह्माब्रह्म, पञ्चीकृतापञ्चीकृत महाभूत तथा समस्त जगत् हूँ— 'अहमखिलं जगत्'। मैं वेदावेद, विद्याविद्या, अजानजा, नीचे-ऊपर एवं दो पार्श्व हूँ। मैं रुद्रों एवं वसुओं में सञ्चार करती हूँ। मैं आदित्यों एवं विश्वदेवों में रहा करती हूँ। मैं मित्र-वरुण, इन्द्र-अग्नि एवं दोनों अश्विनीकुमारों का भरण-पोषण करती हूँ। मैं सोम, त्वष्टा, पूषा एवं भग को धारण करती हूँ। मैं ही त्रैलोक्य को पादक्षेप से नापने वाले विष्णु, स्रष्टा ब्रह्मा एवं प्रजापति को धारण करती हूँ। मैं सम्पूर्ण जगत् की ईश्वरी हूँ। मैं आत्मस्वरूप पर आकाशादि की निर्मात्री हूँ। भगवती विश्वमाता हैं। वे आत्मशक्ति हैं। वे विश्वमोहिनी हैं। वे पाशांकुश बाणधरा हैं। वे श्रीमहाविद्या हैं। वे अष्ट वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, विश्वेदेव, असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष, सिद्ध, गुणत्रय, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र, प्रजापति, इन्द्र, मनु, ग्रह, नक्षत्र, तारा, कला, काष्ठा एवं काल हैं।

उनके स्वरूप को ब्रह्मादिक देवता भी नहीं जानते; अतः वे 'अज्ञेया' हैं। अन्तहीन होने से वे 'अनन्ता' हैं। लक्ष्य ज्ञात न होने से वे 'अलक्ष्या' हैं। वे अजा, एका, अज्ञेया, अनन्ता और नैका सभी कुछ हैं। वे समस्त मन्त्रों में मूलाक्षर रूप से रहने वाली मातृका हैं, शब्दों में ज्ञान रूप से रहने वाली, ज्ञानों में चिन्मयातीता, शून्यों में शून्यसाक्षिणी और दुर्गा है।[४]

१. सौन्दर्यलहरी, (श्लोक-१)
२. ललितासहस्रनाम।
३. सौन्दर्यलहरी।
४. अथर्वशीर्ष।

भगवती का सगुण स्वरूप— आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी में इसका स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

गतास्ते मञ्चत्वं द्रुहिण हरिरुद्रेश्वरभृतः।
शिवः स्वच्छच्छाया घटितकपटप्रच्छदपटः।।९२।।

ऐसे ही पञ्च प्रेतासनात्मक पर्यंक पर आसीन भगवती चिन्तामणि मणिद्वीप में, सुधासिन्धु के मध्य, कल्पवृक्षों की वाटिका में निवास करती हैं।[१]

भगवती का साकार एवं विग्रहस्वरूप— आचार्य शंकर ने इसी साकार स्वरूप का वर्णन करते हुये सौन्दर्यलहरी में कहा है—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।८।।

अर्थात् पीयूष के रत्नाकर के मध्य, कल्पवृक्षों की वाटिका से आच्छादित 'मणिद्वीप' में, नीपवृक्षों के उपवन के मध्य चिन्तामणियों से निर्मित शौध में, त्रिकोणाकारित महा-मञ्च पर 'परमशिव' के पर्यंक पर समासीन चिदानन्दलहरीस्वरूपा तेरा कोई विरले ही मनुष्य-जन भजन करते हैं और वे धन्य हैं।

भगवती के कटि पर कण-कण निनाद करने वाले घुँघुरुओं वाली मेखला बँधी है। उनके पीन पयोधर हाथी के बच्चे के मस्तकस्थ कुम्भ (गण्डस्थल) के समान हैं। उनका कटिप्रदेश अत्यन्त पतला है। वे शरद् ऋतु की पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान स्मरणीय मुख वाली हैं। वे अपने चारो हाथों में धनुष, बाण, पाश एवं अंकुश धारण किये हुये हैं।[२]

भगवती पञ्चप्रेतों पर आसीन हैं— 'पञ्चप्रेतमञ्चाधिशायिनी।'[३]

भगवती शम्भु का शरीर हैं और उनकी आत्मा शम्भु की आत्मा है—

शरीरं त्वं शम्भोः शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं
तवात्मानं मन्ये भगवति नवात्मानमनघम्।
अतः शेषः शेषीत्ययमुभयसाधारणतया
स्थितः सम्बन्धो वां समरस परानन्दपरयो।। (३४)

इस प्रकार भगवती 'पराशक्ति' एवं आनन्द का एक समरसरूप है। भगवती का परिणमन ही जगत् है और जगत् भगवती का शरीर है—

---

१. सौन्दर्यलहरी, (श्लोक-८,९२) ३. सौन्दर्यलहरी (७)
२. सौन्दर्यलहरी (८)

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारैः शिवयुवतिभावेन विभृषे।। (३५)

भगवती चिदानन्दाकार को विराट देह (जगत्) के रूप में परिणत किये हुये हैं। जगत् भगवती के चिदानन्द का विस्तार है।

भगवती का शरीर षट्चक्रात्मक है— कहा गया है कि तेरे आज्ञाचक्र में स्थित करोड़ों सूर्य-चन्द्र के तेज से युक्त परशिव की मैं वन्दना करता हूँ, जिसका वाम पार्श्व 'परा चिति' से एकीभूत है—

तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता।।[1]

'सुषुम्ना' में सभी चक्र 'चितिशक्ति' के ही विभिन्न केन्द्र होने के कारण भगवती के ही चक्र हैं—

सुषुम्नायै कुण्डलिन्यै सुधायै चन्द्रमण्डलात्।
मनोन्मन्यै नमस्तुभ्यं महाशक्त्यै चिदात्मने।।[2]

विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिकविशदं व्योमजनकं
शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यवसिताम्।[3]

विशुद्ध चक्र में कुण्डलिनी सोती है— 'सा कुण्डलिनी कण्ठोद्ध्वभागे सुप्ता चेद्योगिनां मुक्तये भवति।'[4]

तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतं
तमीडे संवर्तं जननि ! महती तां च समयाम्।[5]

ललितासहस्रनाम में भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया गया है—

१. मूलाधारैकनिलया ब्रह्मग्रन्थिविभेदिनी।
२. मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रन्थिविभेदिनी।
३. आज्ञाचक्रान्तरालस्था रुद्रग्रन्थिविभेदिनी।
४. सहस्राम्बुजारूढा सुधासाराभिवर्षिणी।

भगवती का षट्चक्रात्मक रूप— भगवती के मणिपूरक चक्रस्थ एवं मूलाधार चक्रस्थ होने के सम्बन्ध में सौन्दर्यलहरी में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है—

१. तव श्यामं मेघं कमपि मणिपूरैकशरणम्। (४०)
२. तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया। (४१)

---

१. सौन्दर्यलहरी (३६) ३. सौन्दर्यलहरी ५. सौन्दर्य लहरी (३९)
२. योगशिखोपनिषद् ४. शण्डिल्योपनिषद्

भगवती का किरीट— भगवती का किरीट इतना रमणीय है, मानो इन्द्रधनुष हो। वह तारागणरूपी मणियों से जटित है और चन्द्रमा के टुकड़ों से निर्मित नीड़सदृश मनोहर लगता है।[१]

भगवती के केश— भगवती के गम्भीर, मसृण, चिकने केशसमूह प्रस्फुटित इन्दीवरारण्यसदृश हैं। उसमें जो इन्द्रवाटिका के पुष्प ग्रन्थित हैं, वे मानो केशों की स्वभावज सुगन्ध से सुगन्धित होने हेतु केशों में आ गये हैं।[२]

भगवती की माँग— भगवती के मुखकमल की अरुणिमा ही उनके माँग की सिन्दूर-रेखा है, जो कि केशसमूहरूपी अन्धकार-किरणों को चीरती हुई उदयकालीन सूर्य की आरक्त रश्मि के समान है।[३]

भगवती के घुँघराले बाल— भगवती के घुँघराले बाल ऐसे लगते हैं, मानो वे बाल नहीं हैं; अपितु काले भौंरों की पंक्तियाँ हैं। इन भौरों की आभा से युक्त भगवती का मुख कमलों की श्री का भी परिहास-सा करता हुआ प्रतीत होता है। स्फटिकाभ दन्तावली से निःसृत परिमल पर कामारि शिवरूपी भ्रमर मदोन्मत्त है।[४]

भगवती का ललाट— लावण्य-कान्ति से विमल एवं सुदृप्त भगवती का ललाट ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह मुकुटजटित चन्द्रमा की वह द्वितीय कला है, जो कि एक-दूसरे पर उलटकर रक्खी होने से पूर्ण वृत्ताकार होकर पूर्ण चन्द्र के समान है, जो कि अमृत के लेप से (अन्य कला के जुड़ने के कारण) पौर्णमासी का पूर्ण चन्द्र बन गया है।[५]

भगवती की भृकुटी— भगवती की सुरम्या भृकुटी ऐसी प्रतीत होती है, मानो वह कामदेव के वाम हस्त में धृत धनुष हो और उसकी प्रत्यञ्चा भगवती के काले नेत्रों रूपी भ्रमरों से बनायी गई हो।[६]

भगवती के नेत्र— भगवती के दोनों रमणीक नेत्रद्वय इतने आकर्षक हैं, मानो उनमें दक्षिण नेत्र सूर्यात्मक होने के कारण दिन निर्मित करता है और वाम नेत्र चन्द्रात्मक होने के कारण रात्रि की सृष्टि करता है। तृतीय नेत्र ऐसा प्रतीत होता है, मानो किञ्चित् विकसित स्वर्णपद्मों की शोभा से मण्डित है और दिन तथा रात दोनों के मध्य रहने वाली सन्ध्या है।[७]

१२. भगवती का सौन्दर्यात्मक एवं विभूत्यात्मक स्वरूप

ललितासहस्रनाम में भगवती को निम्न सौन्दर्यसूचक विशेषणों से उपहित करके प्रस्तुत किया गया है—

१. सौन्दर्यलहरी (४२)
२. सौन्दर्यलहरी (४३)
३. सौन्दर्यलहरी (४४)
४. सौन्दर्यलहरी (४५)
५. सौन्दर्यलहरी (४६)
६. सौन्दर्यलहरी (४७)
७. सौन्दर्यलहरी (४८)

शृङ्गाररससम्पूर्णा (८२), नित्याषोडशिकारूपा (८५), सुमुखी नलिनी सुभ्रू: शोभना सुरनायिका (९३), निजारुणप्रभापूरमज्जद् ब्रह्माण्डमण्डला (३), अष्टमी चन्द्रविभ्राजदलिका स्थलशोभिता (५), वक्त्रलक्ष्मीपरिवाहचलन्मीनाभलोचना (६), मराली मन्दगमना महालावण्यशेवधि: (२०), ताटङ्कयुगलीभूततपनोडुपमण्डला (८), नाभ्यालवालरोमालिलताफलकुचद्वयी (१४), स्तनभारदलन्मध्यपट्टबन्धवलित्रया (१५), रत्नकिङ्किणिका रम्या रशनादामभूषिता (१६), नि:सीममहिमा नित्ययौवना मदशालिनी (९१), दाडिमी कुसुमप्रभा (११४), मृगाक्षी मोहिनी (११४), कनतकनकताटङ्का (१६१), स्वभावमधुरा (१६९), विशालक्षी (१७३), दरस्मेरमुखाम्बुजा (१७१), बन्धूककुसुमप्रख्या (१७७) और सुवेषाढ्या सुवासिनी (१७७)।

भगवती का सौन्दर्य अतुल्य है। ब्रह्माप्रभृति कवीन्द्र भी अपने कल्पनातिरेक शक्ति द्वारा भी उनके सौन्दर्य का वर्णन नहीं कर पाते। स्वर्ग की अप्सरायें तो भगवती के सौन्दर्य को देखकर मन्त्रमुग्ध होकर अपनी चेतना खो देती हैं; अत: सौन्दर्यदर्शन के रस में ध्यानस्थ हो जाती हैं। भगवती के अतुल्य सौन्दर्य को देखने से अप्सरायें शिवसायुज्य की प्राप्ति कर लेती हैं—

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुं
कवीन्द्र: कल्पन्ते कथमपि विरिञ्चिप्रभृतय:।
यदालोकौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसा
तपोभिर्दुष्प्रापामपि गिरिश सायुज्यपदवीम्।।१२।।

भगवती ही सुन्दर नहीं हैं, अपितु उनकी दृष्टि पड़ने पर वृद्ध एवं कुरूप भी ऐसे सुन्दर हो जाते हैं कि उन्हें देखकर नवयुवतियाँ अपनी सुध-बुध एवं लोक-लज्जा खोकर उनके पीछे-पीछे वस्त्रों की चिन्ता किये विना भी दौड़ पड़ती हैं।[१]

भगवती शारदपूर्णिमा की चन्द्रिका के समान शुभ्र हैं। वे द्वितीया के चन्द्रमा से युक्त जटाजूटरूपी किरीट धारण किये हुये हैं।[२] भगवती तरुण सूर्य की श्री (कान्ति) को धारण करके अपने शरीर की कान्ति से आकाश एवं पृथ्वी दोनों को अपनी अरुणिमा से मण्डित कर रही हैं।[३]

भगवती की महिमा (विभूतिपरक महिमा) यह है कि उनकी कृपा से ब्रह्मा सृष्टि, रुद्र प्रलय एवं सदाशिव कृपा करने की शक्ति पाते हैं।[४] भगवती के चरणों की पूजा करने से त्रिदेवों की भी पूजा हो जाती है; इसीलिये ये त्रिदेव भगवती के आसन के निकट हाथ जोड़े खड़े रहते हैं।[५]

भगवती की पवित्र दृष्टि ऐसी प्रतीत होती है, मानो वह पवित्र विशाला, कल्याणी,

१. सौन्दर्यलहरी (१३)
२. सौन्दर्यलहरी (१५)
३. सौन्दर्यलहरी (१८)
५. सौन्दर्यलहरी (२५)
४. सौन्दर्यलहरी (२४)

अयोध्या, मधुरा, भोगवतिका, अवन्तिका और विजया तीर्थ हो।[१]

भगवती के विस्तर पर बिछी चादर ऐसी प्रतीत होती है, मानो शृंगार रस शरीरी बनकर दृष्टि में कौतूहल उत्पन्न कर रहा है।[२]

भगवती के नेत्र— भगवती के लम्बे नेत्र कान तक ताने हुये कामदेव के बाणों की भाँति हैं, जो कि पंखों के स्थान पर पलकें धारण किये हुये हैं और उनका कटाक्ष उस तीक्ष्ण बाण के समान है, जिससे आहत होकर स्वयं कामारि का शान्त चित्त भी क्षुब्ध हो जाता है। ये मानो गुणत्रय को धारण किये हुये हैं, क्योंकि ये श्वेत, रक्त एवं कृष्ण हैं।[३]

(भगवती के दो नेत्र चन्द्र-सूर्यात्मक एवं आग्नेय हैं।) उनके नेत्र गंगा-यमुना एवं शोण का संगम हैं। उनके नेत्रों के खुलने से सृष्टि एवं बन्द होने से (उन्मेष-निमेष से) जगत् का प्रलय हो जाता है।

निमेषशून्य मछलियाँ पानी में सदैव इसलिये छिपी रहती हैं कि कहीं भगवती की आँखें उनके कानों से मछलियों की चुगली न कर दें। कुमुदिनी भी इसी भय से रात्रि में ही खिलती है, न कि दिन में।[४]

भगवती की कनपटी— भगवती की वक्र कनपटियाँ धनुष के कोणों के समान हैं। बाणों के समान मर्मभेदी (भगवती के) कटाक्ष कानों का अतिक्रमण करके अर्थात् कनपटी को लाँघकर आगे बढ़कर ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो भौंहों के धनुष पर कटाक्षरूपी बाण चढ़े हों।[५]

भगवती का मुख— भगवती का दिव्यतम एवं मनोज्ञ मुख ऐसा रमणीय प्रतीत होता है, मानो कपोलों पर प्रतिबिम्बित कर्णफूलों से अलंकृत मुख, मुख न हो; अपितु चार पहियों वाला कामदेव का रथ हो, जिस पर आरूढ़ होकर महावीर कामदेव सूर्य एवं चन्द्रमारूपी दो पहियों वाले पृथ्वीरूपी रथ पर युद्धार्थ सुसज्जित शंकर के विरुद्ध खड़े हों।[६]

भगवती के कानों के कर्णपुष्प— भगवती के कानों के कर्णफूल अपने निनाद से ऐसी प्रतीति कराते हैं, मानो वे ॐॐ का उच्चारण कर रहे हों।[७]

भगवती की नासिका— जिस प्रकार बाँस के भीतर मोती जन्म लेते हैं, उसी प्रकार भगवती के नासा-वंश से आने वाले निःश्वासों से मुक्तामणियों की माला बाहर निकलती हुई दृष्टिगत होती है।[८]

---

१. सौन्दर्यलहरी (४९)
२. शरीरी शृङ्गारो रस इव दृशां दोग्धि कुतुकम्। (सौन्दर्यलहरी-९८)
३. सौन्दर्यलहरी (५२)
४. सौन्दर्यलहरी (५६)
५. सौन्दर्यलहरी (५८)
६. सौन्दर्यलहरी (५९)
७. सौन्दर्यलहरी (६०)
८. सौन्दर्यलहरा (६१)

भगवती के ओष्ठ— भगवती के लाल ओष्ठ ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो मूँगे की लता में फल लग गये हों।

भगवती का गला— भगवती के गले में पड़ी रेखायें ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो वे राग की गति, गमक एवं गीत हों।

भगवती की नाभि— भगवती की नाभि के ऊपर उठने वाली रोमावली ऐसी प्रतीत होती है, मानो शिव के तृतीय नेत्र से जलते हुये कामदेव ने भगवती के नाभिरूपी सरोवर में गोता लगाया हो; जिसके कारण लतासदृश धुआँ निकल रहा हो।[१] भगवती की कटि पर दृष्टिगत एवं यमुना की चञ्चल तरंग के समान प्रतीयमान रोमावली ऐसी प्रतीत होती है, मानो भगवती के कुचकलशों से पिसकर आकाश में भगवती की नाभिरूपी बिल में सर्पिणी की भाँति प्रवेश कर रहा हो।[२] भगवती की नाभि ऐसी लगती है, मानो वह गंगा की स्थिर भँवर हो, रोमावलीरूपी लताओं का गमला हो, कामदेव के अग्नि का धारक हवनकुण्ड हो, रति की क्रीड़ास्थली हो या शिव को पाने हेतु तप करने की कोई गुफा हो।[३]

१३. भगवती का करुणात्मक स्वरूप

भगवती करुणावरुणालय है। वे दरिद्रों एवं अकिञ्चनों के लिये चिन्तामणियों की माला है—

दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ।[४]

भगवती की करुणा ही उनकी अमृतवर्षा का कारण है। वे अपने दोनों चरणों के मध्य से अमृत की वर्षा करती हैं और उसके द्वारा समस्त विश्व, षडाम्नाय एवं षट्चक्रों को अमृत से परिप्लावित करती हैं।[५] भगवती ब्रह्मस्वरूप में सृष्टिकर्त्री भी हैं और सदाशिवरूप में कृपा (अनुग्रहरूपा) भी हैं—

सृष्टिकर्त्री ब्रह्मरूपा सदाशिवानुग्रहदा (६४)।

वे कल्याणी एवं करुणारससागरा (७३), भक्तिमत् कल्पलतिका पशुपाशविमोचिनी (७८), तापत्रयाग्निसन्तप्तसमाह्लादनचन्द्रिका (७९), निर्वाणसुखदायिनी (८५), महनीया दयामूर्ति (११७), कैवल्यपददायिनी (१२५), मुक्तिदा मुक्तिरूपिणी (१४२), प्राणदा प्राणरूपिणी (१४९), प्राणदात्री (१५६), संसारपङ्कनिर्मग्नसमुद्धरणपण्डिता (१५६), कैवल्यपददायिनी (१७१), मङ्गलाकृतिः (१७२), वाञ्छितार्थप्रदायिनी (१८०), अव्याजकरुणामूर्ति (१८१) हैं।[६]

आचार्य शंकर कहते हैं कि हे भवानि ! तू मुझ दास पर भी अपनी करुणामयी दृष्टि

---

१. सौन्दर्यलहरी (७६)
२. सौन्दर्यलहरी (७७)
३. सौन्दर्यलहरी (७८)
४. सौन्दर्यलहरी (३)
५. सौन्दर्यलहरी (१०)
६. ललितासहस्रनाम

डाल। इतना कहते ही भगवती उसे 'सायुज्य मुक्ति' प्रदान कर देती हैं—

भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा।
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीम्।

जिस समय 'संवर्ताग्नि' बड़ी क्रोधभरी दृष्टि से निःशेष जगत् को भस्मीभूत करने लगती है, उस समय समया देवी की दयार्द्र दृष्टि अपनी कृपा से (करुणाभाव के कारण) उसकी रक्षा करती है—

दयार्द्राभिर्दृग्भिः शिशिरमुपचारं रचयति।[१]

१. सौन्दर्यलहरी (३९)

नवम अध्याय

बह्वृचोपनिषत् में महात्रिपुरसुन्दरी चिच्छक्ति का स्वरूप

यह इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

ॐ देवी ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत्।
कामकलेति विज्ञायते। शृङ्गारकलेति विज्ञायते।।

१. भगवती का सर्वसृजनात्मक पक्ष

क. सैव जगदण्डमसृजत।।१।।

ख. तस्या एव ब्रह्माऽजीजनत्, विष्णुरजीजनत्, रुद्रोऽजीजनत्, सर्वे मरुद्गणा अजीजनत्, गन्धर्वाप्सरसः किन्नरा वादित्रवादिनः समन्तादजीजनत्, भोग्यजीजनत्, सर्वमजीजनत्, सर्वं शाक्तमजीजनत्, अण्डजं स्वेदजमुद्भिज्जं जरायुजं यत्किञ्चैतत् प्राणि स्थावरजङ्गमं मनुष्यमजीजनत्।।२।।

२. भगवती का परस्वरूप एवं विद्यास्वरूप

बह्वृचोपनिषद् में ही भगवती के परस्वरूप, विद्यास्वरूप, पुरत्रयात्मक स्वरूप एवं प्रत्यक् चितिस्वरूप का भी वर्णन किया गया है, जो कि निम्नवत् है—

क. सैषा परा शक्तिः, सैषा शाम्भवी विद्या कादिविद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति वा रहस्यमोमों वाचि प्रतिष्ठा।।३।।

ख. सैषा पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तरवभासयन्ती देशकालवस्त्वन्तरासङ्गात् महात्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक् चिति।।४।।

३. भगवती का आत्मरूप, सच्चिदानन्दरूप, चिन्मात्रस्वरूप, परब्रह्मस्वरूप तथा सोऽहं एवं महाविद्या आदि स्वरूप

क. सैवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा। अत एषा ब्रह्मसंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्याऽद्वितीया ब्रह्मसंवित्तिः सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति। यदस्ति सन्मात्रम्। यद्भाति चिन्मात्रम्। यत् प्रियमानन्दम्। तदेतत् सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी। त्वं चाहं च सर्वं विश्वं सर्वदेवता। इतरत् सर्वं महात्रिपुरसुन्दरी। सत्यमेकं ललिताऽऽख्यं वस्तु तदद्वितीयमखण्डार्थं परं ब्रह्म।।५।।

ख. योऽहमस्मीति वा सोऽहमस्मीति वा योऽसौ सोऽहमस्मीति वा या भाव्यते सैषा षोडशी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी बालाऽम्बिकेति बगलेति वा मातङ्गीति स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति चामुण्डेति चण्डेति वराहीति तिरस्करिणीति राजमातङ्गीति वा शुकश्यामलेति वा लघुश्यामलेति वा अश्वारूढेति वा प्रत्यङ्गिरा धूमावती सावित्री सरस्वती गायत्री ब्रह्मानन्दकलेति।।८।।

▼

दशम अध्याय

भगवती त्रिपुरसुन्दरी का सूक्ष्म स्वरूप

मन्त्र त्राण करता है; अत: भगवती का मन्त्रात्मक स्वरूप मूलत: त्राणात्मक स्वरूप है। यह किससे किसकी रक्षा करता है? यह जापक के संसरणरूप भय का क्षय (विनाश) करके संसार से उसकी रक्षा करता है—

संसारक्षयकृत्त्राणधर्मतो मन्त्र उच्यते।

यह भगवती का सूक्ष्मस्वरूप है।

ललितासहस्रनाम के अनुसार भगवती के तीन रूप हैं 'त्रिमुर्तिस्त्रिदशेश्वरी'— स्थूल स्वरूप, सूक्ष्म स्वरूप एवं पर स्वरूप।

भगवती का त्राणात्मक स्वरूप = मन्त्रात्मक स्वरूप ललितासहस्रनाम में भगवती को १. मूलमन्त्रात्मिका, २. मूलकूटत्रयकलेवरा, ३. श्रीमद् वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा। कण्ठाध: कटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी। शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिणी। ४. सर्वमन्त्र-स्वरूपिणी, ५. महामन्त्रा, ६. मनुविद्या चन्द्रविद्या, ७. विद्यास्वरूपिणी, ८. विद्या, ९. महा-विद्या श्रीविद्या, १०. श्रीषोडशाक्षरी विद्या, ११. त्रिकूटा, १२. क्लींकारी, १३. त्र्यक्षरी, १४. मन्त्रसारा आदि कहा गया है।

भगवती का यह मन्त्रात्मक स्वरूप ही उनका सूक्ष्म स्वरूप है। उनका यह स्वरूप मूलत: त्राणात्मक स्वरूप है। 'मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा' (ललितासहस्रनाम-८७) कहकर भगवती के इसी स्वरूप को संकेतित किया गया है।

भास्करराय ने सौभाग्यभास्कर में कहा है कि 'कूटत्रयमेव कलेवरं सूक्ष्मं रूपा यस्या इति वा।'

भगवती मन्त्र हैं— 'मूलमन्त्रात्मिका' में प्रयुक्त 'मूल' शब्द 'पञ्चदशाक्षरी मन्त्र' को ही संकेतित करता है— मूलं पञ्चदशाक्षरी। यह पञ्चदशाक्षरी विद्या यहाँ 'मन्त्र' शब्द के साथ प्रयुक्त हुई है; क्योंकि उसकी मान्त्री शक्ति को भी संकेतित कर सके। भगवती 'मन्त्र' हैं।

मन्त्र का स्वरूप ही देवी का स्वरूप है। मन्त्र का स्वरूप क्या है? मन्त्र के मूलत: दो अर्थ हैं— मनन और त्राण। मन्त्र वह है, जो मनन किये जाने पर त्राण कर सके अर्थात् भगवती का मन्त्रात्मक स्वरूप उनका रक्षात्मक स्वरूप है:— 'मननात्त्रायत इति मन्त्र:' (सौभाग्यभास्कर)। भगवती मन्त्रात्मिका हैं अर्थात् मनन करने से साधक की रक्षा (त्राण) करना ही उनकी आत्मा (स्वरूप) है। फलितार्थ यह है कि वे मनन-त्राणस्वरूपा हैं:— 'मननात्त्रायत इति मन्त्र: आत्मास्वरूपं यस्या सा मूलमन्त्रात्मिका' (सौभाग्यभास्कर)। इस 'त्राण' का स्वरूप क्या है? इसका स्वरूप इस प्रकार है—

पूर्णाहन्तानुसन्ध्यात्मा स्फूर्जन्मननधर्मत:।
संसारक्षयकृत्त्राण: धर्मतो मन्त्र उच्यते।।

जो 'पूर्णाहन्ता' के साथ सतत् जप किये जाने पर (मनन किये जाने पर) साधक के संसार का विनाश करके उसका त्राण करता हो, वही 'मन्त्र' है। आचार्य भास्कर राय के मत से यहाँ 'मूल' शब्द 'कामकला' के लिए प्रयुक्त हुआ है। 'कूटत्रय' का तात्पर्य है— 'कामकला' के तीन भाग। कामकला का प्रथम भाग है— 'ऊर्ध्व बिन्दु।' उसका द्वितीय भाग है— नीचे का 'तिर्यक् बिन्दु' और उसका तृतीय भाग है— 'हार्दकला।'

सौभाग्यभास्कर (श्लोक-८७) के अनुसार ये ही तीन भाग पञ्चदशी के कूटत्रय हैं और ये ही भगवती के स्थूल शरीर के मुख, कटि एवं कटि के नीचे के भाग का निर्माण करते हैं—

१. विद्या कूटतया स्थूलरूपमुखाद्यवयवात्मना च परिणता इति सूक्ष्मतरम्।
२. कुण्डलिन्याख्यं सूक्ष्मतमं वररूपमपरम्।

भगवती का सूक्ष्मतम स्वरूप : कुण्डलिनी स्वरूप— भगवती के ब्रह्माण्डगत स्वरूप का वर्णन करके उनके सूक्ष्मतम स्वरूप 'कुण्डलिनी स्वरूप' का वर्णन किया गया है, जो कि पिण्डान्तर्गत है। इस प्रकार भगवती के अन्य स्वरूप इस प्रकार होंगे—

भगवती का स्वरूप

(समष्टिगत रूप)	(व्यष्टिगत रूप)
ब्रह्माण्डगत स्वरूप	पिण्डगत स्वरूप (कुण्डलिनी) सूक्ष्मतम स्वरूप

भगवती का यह कुण्डलिनी स्वरूप मूलाधार चक्र में सार्धत्रिवलयाकारित होकर एवं सुषुप्त यह 'कुलकुण्डलिनी' योनि से समुत्थित होकर छ: चक्रों एवं 'ग्रन्थित्रय' का भेदन करके एवं सहस्रार में पहुँचकर 'चन्द्रमण्डल' से अमृत-स्राव कराती है। कुण्डलिनी ही भगवती का सूक्ष्मतम स्वरूप है— 'कुण्डलिन्याख्यं सूक्ष्मतमं वररूपमपरम्।

भास्कर राय स्वयं निर्णय नहीं कर सके हैं कि कूटत्रय भगवती का स्थूल रूप है या सूक्ष्म रूप— 'मूलस्य कूटत्रयमेवोक्तरीत्या कलेवरं स्थूलरूपं यस्या:, कूटत्रयमेव कलेवरं सूक्ष्मं रूपं यस्या इति वा।'

इसी कुण्डलिनी शक्ति को ललितासहस्रनाम (२.४०) में भगवती का स्वरूप बताया गया है— 'महाशक्ति: कुण्डलिनी बिसतन्तुतनीयसी।' इसका पूर्ण स्वरूप इस प्रकार है—

तडिल्लतासमरुचि: षट्चक्रोपरि संस्थिता।
महाशक्ति: कुण्डलिनी बिसतन्तुतनीयसी।।

यह विद्युत् के समान दीप्ति या प्रकाश वाली है। यह छ: चक्रों के ऊपर अव-स्थित

है। यह महाशक्ति है और मृणालदण्ड के सूक्ष्म तन्तुओं की भाँति अतिसूक्ष्म है। इसके अनेक रूप हैं।

भगवती कुलकुण्डलिनी के विविध रूप

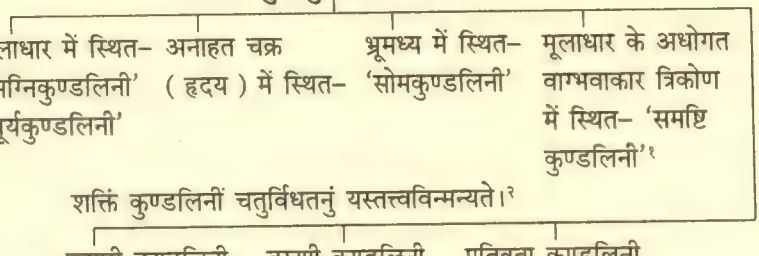

श्रुतियों में भी कुण्डलिनी के विविध रूपों का उल्लेख किया गया है—

यत्कुमारी मन्द्रयते यद्योषिद्यत्पतिव्रता।
अरिष्टं यत्किञ्च क्रियते अग्निस्तदनुवेधति।।

इसकी व्याख्या करते हुए आचार्य लक्ष्मीधर इस प्रकार कहते हैं—

१. कुण्डलिनी शक्तेरवस्थात्रयं विद्यते।

२. यस्मिन् चक्रे कुमारी— कौमारावस्थापन्ना प्रथमं सुप्तोत्थिता मन्द्रयते मन्द्रस्वरं करोति कुण्डलिन्याः सर्पात्मकत्वात्। सर्पो हि सुप्तोथाने मन्द्रस्वरं करोति, तद्वदित्यर्थः।

३. यद्योषित्— यस्मिन् चक्रे कुलयोषित् विष्णुग्रन्थिपर्यन्तं गत्वा रातीति शेषः। कुलयोषित् कुलं त्यक्त्वा राति विष्णोः प्रभेदने।

४. यत् यस्मिन् चक्रे पतिव्रता पत्या सदाशिवेन सार्धं सहस्रदलकमले विहरमाणा।

पञ्चदशी विद्या के 'ह्रीं' में स्थित उन्मना नाद ही कुण्डलिनी है। अमृतानन्द दीपिका में कहते हैं कि छत्तीस तत्वों के अवयवों के समान पचास अक्षरों से युक्त वैखर्यात्मिका शक्ति ही कुण्डलिनी है— 'षट्त्रिंशत्तत्त्वावयववत्पञ्चाशदक्षरमयवैखर्यात्मिका कुण्डलिनी-रूपा।' श्रीविद्या भी कुण्डलिनीरूपा ही है—

कुण्डलिनीरूपा तदभिन्ना विद्या श्रीविद्यैव।

कुण्डलिनी एवं श्रीविद्या का रहस्यार्थ— श्रीविद्या का रहस्यार्थ भी कुण्डलिनी-परक है[3]—

मूलाधारे तडिद्रूपे वाग्भवाकारतां गते।।
अष्टात्रिंशत्कलायुक्तपञ्चाशद्वर्णविग्रहा ।
विद्या कुण्डलिनीरूपा मण्डलत्रयभेदिनी।।

---

१. त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र पर नित्यानन्द की व्याख्या।

२. दुर्वासा : त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र।

३. योगिनीहृदयम्।

तडित्कोटिनिभप्रख्या बिसतन्तुनिभाकृतिः।
व्योमेन्दुमण्डलासक्ता सुधास्रोतःस्वरूपिणी।।
सदा व्याप्तजगत्कृत्स्ना सदानन्दस्वरूपिणी।
एषा स्वात्मेति बुद्धिस्तु रहस्यार्थो महेश्वरि!।।

शक्तिं कुण्डलिनी चतुर्विधतनुं यस्तत्त्वविन्मन्यते।

भास्करराय वरिवस्यारहस्यम् में कहते हैं कि सूर्य की तापिनी आदि बारह, चन्द्रमा की अमृत आदि सोलह एवं अग्नि की धूम्रार्चिरादि दश कलाओं से युक्त पचास वर्णों से अभिन्न देह वाली, मृणालतन्तु के समान क्षीणकलेवरा, विद्युत् के समान भासमाना कुलीना कुण्डलिनी मूलाधार की कर्णिका में विद्यमान त्रिकोण के ऊपर से मूलाधार चक्र, अनाहत चक्र एवं आज्ञा चक्रों में वर्तमान अग्नि, सूर्य एवं सोम मण्डलों का भेदन करती है।

श्रीविद्या का रहस्यार्थ— उपर्युक्त आकाशगत चन्द्रमण्डल के केन्द्र में 'अकुल कुण्डलिनी' से मिलती हुई एवं अमृतपूर का स्रवण करती हुई स्वयं सुखपूर्वक शयन करती है। यह कुण्डलिनी साक्षात् विद्या एवं माता से अभिन्न है। इससे अपने को अभिन्न देखना ही श्रीविद्या का 'रहस्यार्थ' है।

द्वादशषोडशदशभिस्तपनशशिदहनकलाभिराकीर्णैः।
पञ्चाशद्भिर्वर्णैरभिन्नदेहा कुलीनकुण्डलिनी।।१०३।।

बिसतन्वीतडिदाभा मूलाधारस्थपद्मशृङ्गारात्।
भित्वा मूलहृदाज्ञागतवह्निरवीन्दुमण्डलत्रितयम्।।१०४।।

व्योमनि चिच्छशिमण्डलमध्ये त्वकुलेन सङ्गम्य।
उभयाङ्गसङ्गजन्यं प्रवाहयन्ती सुधापूरम्।।१०५।।

स्वयमपि तत्पानवशान्मत्ता भूत्वा पुनश्च तेनैव।
मार्गेण परावृत्य स्वस्मिन् स्थाने सुखं स्वपिति।।१०६।।

साक्षाद्विद्यैवैषा न ततो भिन्ना जगन्माता।
अस्याः स्वाभिन्नत्वं श्रीविद्याया रहस्यार्थः।।१०७।।

प्रकाश में भी यही कहा गया है— 'ईदृश्याः कुण्डलिन्या मातुर्विद्यायाः स्वस्य चाभेद इति रहस्यरूपोऽप्रकाश्योऽर्थ इत्यर्थः।'

कुण्डलिनी ही भगवती त्रिपुरा है— चतुःशती शास्त्र में कुण्डलिनी का स्वरूप-विवेचन करते हुये कुण्डलिनी को त्रिपुरा से अभिन्न प्रतिपादित किया गया है—

यदोल्लसति शृङ्गारपीठे कुण्डलरूपिणी।
शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्।।
तदद्भुतमृतस्यन्द परमानन्दनन्दिता ।
कुलयोषित्कुलं त्यक्त्वा परं पुरुषमेति सा।।

निर्लक्षणं निर्गुणञ्च कुलरूपविवर्जितम्।
ततः स्वच्छन्दरूपा तु तद्विभ्राम्य जगत्प्रभुम्।।
तेन मार्गेण सन्तुष्टा पुनरेकाकिनी सती।
रमते सेयमव्यक्ता त्रिपुरा व्यक्तिमागता।।[१]

यही चिन्मयी कुण्डलिनी शक्ति स्वात्मा है। उसका आत्म स्वरूप में समावेश ही रहस्यार्थ है— 'एषा चिन्मयी कुण्डलिनी शक्तिः.....स्वात्मेति तदात्मतया समावेशो रहस्यार्थ इत्यर्थः।'[२]

१. दीपिका— अमृतानन्द
२. स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा।

एकादश अध्याय

संकेतपद्धति में

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप[1]

१. भगवती का मुख— वाग्भवकूटात्मक पञ्चदशी मन्त्र के प्रारम्भिक पाँच वर्ण।

२. कामेश्वरी के आयुध— क. राग- पाश, ख. क्रोध- अंकुश, ग. मन- इक्षुधनुष, घ. पञ्चविषय- पाँच पुष्पबाण (भावनोपनिषद्)

क. पाश- इच्छाशक्ति, ख. अंकुश- ज्ञानशक्ति, ग. धनुष- क्रियाशक्ति- चतुःशती।

इच्छाशक्तिमयं पाशं अङ्कुशं ज्ञानरूपिणम्।
क्रियाशक्तिमये बाणधनुषीं दधदुज्ज्वलम्।। (चतुःशती)

३. भगवती का पर्यङ्क— पञ्चप्रेतासन। पर्यङ्क के पाये एवं आस्तरण : ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव।

४. भगवती का गृह एवं आसन— नव योन्यात्मक श्रीचक्र (शिवचक्र, शक्तिचक्र)।

त्रिपुरा— शक्तित्रयात्मक होने से ही भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का नाम त्रिपुरा है।[2]

१. भगवती का मुख

वाग्भवकूटात्मक पंचदश मन्त्र के प्रारंभिक ५ वर्ण।

२. कामेश्वरी के आयुध

क. राग- 'पाश' ख. क्रोध- अंकुश ग. मन- इक्षु धनुष घ. पंचविषय- ५ पुष्प बाण (भावनोपनिषद)

क. पाश-इच्छाशक्ति ख. अंकुश- ज्ञान-शक्ति ग. धनुष- क्रियाशक्ति (चतुःशती)

इच्छा शक्ति मयं पाश अंकुशं ज्ञान-रूपिणम्। क्रियाशक्ति मये बाण धनुषी दधदुज्ज्वलम् (चतुःशती)

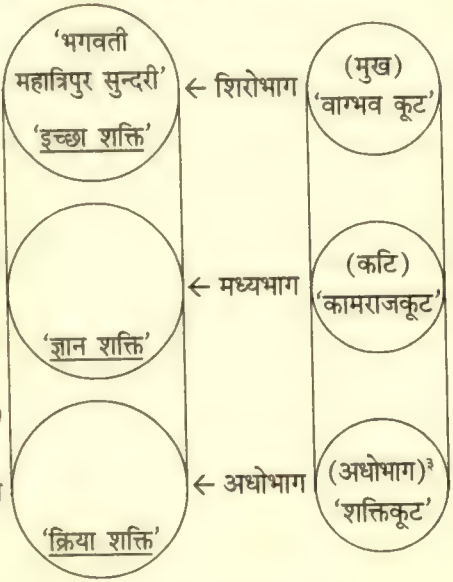

---

१. संकेतपद्धति, वामकेश्वर तन्त्र।

२. सं० प०, वाम० तन्त्र।

३. श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा।
कण्ठाधः कटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी।। आदि
(ललितासहस्रनाम)

३. भगवती का पर्यंक— (पञ्च प्रेतासन) पर्यक के पाये एवं आस्तरण-ब्रह्मा। विष्णु। रूद्र। ईश्वर। सदाशिव।।

४. भगवती का गृह एवं आसन— नव योनात्मक श्री चक्र (शिव चक्र, शक्तिचक्र)

श्रीविद्या के लीला-विग्रह

कुमारी त्रिरूपा गौरी रमा भारती काली चण्डिका दुर्गा ललिता[1]

आत्मशक्ति श्रीविद्या के विभिन्न रूप[2]

१. स्थूल रूप (करचरणादिक अवयवोपहित साकार मूर्तिमान रूप-उपासनायोग्य रूप-अधम रूप)

२. सूक्ष्म रूप (मन्त्रात्मक रूप। मन्त्रमयी देवता : मन्त्रावयवों में शरीरावयवों या मन्त्राक्षरों में शरीरांगों का कल्पनाप्रसूत आकार। समस्त मन्त्रों का मूलभूत मातृकासरस्वत्यात्मक रूप : मन्त्रात्मक रूप)। उपासनायोग्य रूप, मध्यम रूप।

३. पर रूप (ग्रासनात्मक रूप। 'चैतन्यमात्मनो रूपम्' आत्मशक्ति त्रिपुरा का चैतन्य ही स्वस्वरूप है।) उपासनायोग्य रूप, उत्तम रूप।

४. तुरीय रूप (उपासनातीत रूप : इन्द्रियातीत। अखण्डाहंतात्मक स्वरूप। योगिगम्य रूप। मुक्तगम्य स्वरूप। मन-वाणी-इन्द्रिय से अतीत रूप)।

भगवती का शरीर

स्थूल शरीर (श्रीचक्र) | सूक्ष्म शरीर (श्रीविद्या)

---

१. त्रिपुरारहस्य— माहात्म्य खण्ड, ब्रह्माण्ड पुराण— उत्तर खण्ड।

२. उपासनासौकर्यार्थ भगवती के तीन रूप एवं तुरीय रूप।

द्वादश अध्याय

त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में भगवती त्रिपुरा का स्वरूप

भगवती त्रिपुरा १. भू, २. भुवः, ३. स्व; १. स्वर्ग, २. भू एवं ३. पातालरूप त्रिपुर एवं ह्रींकारत्रय रूप में व्याप्त हैं; इसीलिये वे त्रिपुरा कही जाती हैं। उनका स्वरूप निम्नवत् है—

अथैतस्मिन्नन्तरे भगवान् प्राजापत्यं वैष्णवं विलयकारणं रूपमाश्रित्य त्रिपुराऽभिधा भगवतीत्येवमादिशक्त्या भूर्भुवःस्वस्त्रीणि स्वर्गभूपातालानि त्रिपुराणि हरमायाऽऽत्मकेन ह्रींकारेण हल्लेखाख्या भवती त्रिकूटावसाने निलये विलये धाम्नि महसा घोरेण व्याप्नोति। सैवेयं भगवती त्रिपुरेति व्यापठ्यते।

'त्रिपुरा' को 'शताक्षरी परमा विद्या त्रयीमयी साष्टार्णा त्रिपुरा परमेश्वरी' भी कहा गया है।

इन्हीं के विषय में पुनः कहा गया है कि ये आद्या शक्ति हैं। ये परमेश्वरी त्रिपुरा हैं, ये महाकुण्डलिनीरूपा भी हैं—

त्रिपुरा शक्तिराद्येयं त्रिपुरा परमेश्वरी।
महाकुण्डलिनी देवी जातवेदसमण्डलम्।।

त्रयोदश अध्याय
त्रिपुरोपनिषद् में
भगवती त्रिपुरा का स्वरूप

इसमें कहा गया है कि—

१. भगवती त्रिपुरा तीन पुरों वाली हैं।
२. वे त्रिपथा (मार्गत्रय वाली) हैं।
३. वे अकथा (सर्ववर्णरूपिणी) हैं।
४. वे ब्रह्मादिक का अधिष्ठान हैं।
५. वे अजरा एवं पुराणी हैं।
६. वे विश्वचर्षणी (समस्त प्राणियों की उत्पादिका) हैं।
७. वे शब्दसृष्टि के साथ-साथ अर्थसृष्टि की भी विधायिका हैं—

तिस्रः पुरस्त्रिपथा विश्वचर्षणी अत्राकथा अक्षरा सन्निविष्टा।
अधिष्ठायैनामजरा पुराणी महत्तरा महिमा देवतानाम्।।

चतुर्दश अध्याय

बह्वृचोपनिषद् में वर्णित भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप

१. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के चिच्छक्ति का स्वरूप

सृष्टि के आदि में मात्र अकेली एक देवी ही थी। उसी ने स्वाभिन्न जगत् रूपी अण्ड का सृजन किया। वह आदि देवी 'कामकला' कही जाती है। उसी को 'शृंगारकला' भी कहा गया है।[१]

उसी आद्या शक्ति भगवती महात्रिपुरसुन्दरी देवी ने ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, समस्त मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर, वादित्रवादी (गन्धर्वादि) तथा समस्त भोग्य पदार्थों, समस्त वस्तुओं, समस्त शास्त्रों एवं अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, जरायुज सत्ताओं तथा समस्त प्राणियों— स्थावर, जंगम आदि सभी को जन्म दिया।[२]

सारांश यह कि भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ब्रह्मा से लेकर स्थावरपर्यन्त समस्त जड़-चेतन पदार्थों एवं प्राणियों का आदिकारण हैं।

२. भगवती का शक्त्यात्मक एवं विद्यात्मक स्वरूप

भगवती शक्ति की दृष्टि से पराशक्ति है और विद्या की दृष्टि से शाम्भवी, कादि, हादि एवं सादि विद्या है[३]— 'सैषा परा शक्तिः। सैषा शाम्भवी विद्या कादिविद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति वा रहस्यमोमों वाचि प्रतिष्ठा।'

३. भगवती का प्रत्यक् चिति स्वरूप

भगवती त्रिपुरसुन्दरी पुरत्रय एवं शरीरत्रय— दोनों को व्याप्त करके स्थित हैं। वे ही बाह्य जगत् एवं अन्तर्जगत् को अवभासित करती हैं।

सभी को अवभासित करने पर भी वे भगवती त्रिपुरसुन्दरी देश, काल एवं वस्त्वन्तर

---

१. ॐ देवी ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत। कामकलेति विज्ञायते। शृङ्गारकलेति विज्ञायते।१। (बह्वृचोपनिषद्)

२. तस्या एव ब्रह्माऽजीजनत्। विष्णुरजीजनत्। रुद्रोऽजीजनत्। सर्वे मरुद्गणा अजीजनत्। गन्धर्वाप्सरसः किन्नरा वादित्रवादिनः समन्तादजीजनन्। भोग्यमजीजनत्। सर्वमजीजनत्। सर्वं शाक्तमजीजनत्। अण्डजं स्वेदजमुद्भिज्जं जरायुजं यत्किञ्चैतत् प्राणिस्थावरजङ्गमं मनुष्य-मजीजनत्।।२।। (बह्वृचोपनिषद्)

३. कादि विद्या = क ए ई ल ह्रीं
हादिविद्या = ह स क ह ल ह्रीं
सादिविद्या = स क ल ह्रीं
— कूटत्रय विद्यात्रय

से असंग हैं (निर्लिप्त हैं)।[१]

सारांश यह कि भगवती 'कादि, हादि, सादि' आदि विद्यायें तो हैं ही; साथ ही वे पुरत्रय एवं शरीरत्रय को व्याप्त करके स्थित, बाह्याभ्यन्तर को अवभासित करने वाली एवं देश-कालादि से अतीत प्रत्यक् चैतन्य भी हैं।

'रहस्यमोमों वाचि प्रतिष्ठा' वाक्य का निष्कर्ष यह है कि—

क. भगवती रहस्य हैं, अनधिकारियों के लिए परम गोप्य निर्विशेष ब्रह्म हैं, अविज्ञेय हैं, रहस्यात्मक हैं।

ख. तुरीय ॐकाररूपिणी होकर समस्त वाणियों में अर्थ (ब्रह्मरूप अर्थ) के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

४. भगवती त्रिपुरसुन्दरी का सर्वात्मक स्वरूप

भगवती समस्त प्राणियों की आत्मा हैं अर्थात् वे प्रत्येक प्राणी में आत्मा के रूप में स्थित हैं। उनके अतिरिक्त यदि किसी भी वस्त्वन्तर का अस्तित्व भासित होता है तो वह असत्, असत्य एवं अनात्मक है—

सैवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा।

५. भगवती त्रिपुरसुन्दरी की ब्रह्मरूपता

भगवती त्रिपुरसुन्दरी ब्रह्मसंवित्ति हैं। भावाभावकलाविनिर्मुक्ता, चिद्विद्या तथा अद्वितीया ब्रह्मसंवित्तिस्वरूपा सच्चिदानन्दलहरी हैं— 'अत एषा ब्रह्मसंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्या, अद्वितीया ब्रह्मसंवित्तिः सच्चिदा-नन्दलहरी।'

६. भगवती त्रिपुरसुन्दरी की सच्चिदानन्दरूपता

केवल भगवती ही सच्चिदानन्द-रूपिणी नहीं हैं; प्रत्युत विश्व में जो भी सन्मय है, चिन्मय है एवं आनन्दरूप है, वह सब भगवती का ही अपना रूप है— 'यदस्ति सन्मात्रम्। यद्भाति चिन्मात्रम्। यत्प्रियमानन्दम्। तदेतत्।'

७. भगवती त्रिपुरसुन्दरी की समस्त आकारों में विद्यमानता

भगवती त्रिपुरसुन्दरी जगत् के समस्त आकारों एवं सन्मय-चिन्मय तथा आनन्दमय सारे रूपों में विद्यमान हैं। सारे आकार एवं सारे रूप केवल महात्रिपुरसुन्दरी के ही आकार एवं रूप हैं—

१. सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी।

२. यदस्ति सन्मात्रं यद्भाति चिन्मात्रं यत्प्रियमानन्दं तदेतत् सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी।

सर्वं खल्विदं महात्रिपुरसुन्दरी— आत्मा, सत्, चित्, आनन्द, बाह्य, अन्तर,

---

१. सैव पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तरवभासयन्ती देशकालवस्त्वन्तरा-सङ्गान्महात्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक् चितिः।।४।। (बह्वृचोपनिषद्)

सन्मात्र, चिन्मात्र, आनन्दमात्र, सर्वाकार ही नहीं; प्रत्युत 'तुम' 'मैं' समस्त विश्व, समस्त देवता अर्थात् सब कुछ एवं इसके अतिरिक्त भी यदि कुछ हो तो वह भी **अर्थात् निःशेष** अस्तित्व एवं सत्तायें भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के ही अपने विभिन्न रूप हैं; क्योंकि वही तो बाहर एवं भीतर सर्वत्र सर्व रूप में प्रतिष्ठित हैं—

१. बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति। ३. त्वं चाहं च सर्वं विश्वं सर्वदेवता।
२. सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी। ४. इतरत् सर्वं महात्रिपुरसुन्दरी।

८. एकमात्र सत्य वस्तु तथा अद्वितीय, अखण्ड परब्रह्म के रूप में स्थित महात्रिपुरसुन्दरी

संसार में अकेला एक ही सत्य है और वह है— 'महात्रिपुरसुन्दरी।' इस विश्व में सद्वस्तु, अद्वितीय एवं अखण्ड ब्रह्म के रूप में केवल एक ही सत्ता है और वह है— 'महात्रिपुरसुन्दरी' : 'सत्यमेकं ललिताऽख्यं वस्तु तदद्वितीयमखण्डार्थं परं ब्रह्म।'

बह्वृचोपनिषद् में ही भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के साथ समस्त आत्माओं की एकरूपता का प्रतिपादन किया गया है और 'प्रत्यक् परचिदैक्यभावना' की पुष्टि की गई है।

९. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी : प्रत्येक जीव की ब्रह्मस्वरूप आत्मा के रूप में

बह्वृचोपनिषद् (७) में कहा गया है कि प्रत्येक साधक को चाहिये कि वह भगवती त्रिपुरा के साथ ऐकात्म्य स्थापित करके अपने को ब्रह्म, तत्त्व या आत्मा माने और इसके लिये वह भावना करे कि 'प्रज्ञानं ब्रह्मेति वा अहं ब्रह्माऽस्मीति वा भाष्यते। तत्त्वमसीत्येव सम्भाष्यते। अयमात्मा ब्रह्मेति वा अहं ब्रह्माऽस्मीति वा ब्रह्मैवाहमस्मीति वा।'

इसमें प्रत्यक्परचिदैक्य की पुष्टि करते हुये भगवती त्रिपुरा को ही एक ओर ब्रह्म एवं दूसरी ओर समस्त जीवों की आत्मा स्वीकार किया गया है।

१०. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का अनेक शक्तियों के रूप में अवस्थान

बह्वृचोपनिषद् (८) में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी को आत्मा, चितिशक्ति, ब्रह्म, प्रत्यक् चैतन्य, विद्या, सर्वदेवता, परा शक्ति, कामकला, शृंगारकला आदि के अतिरिक्त षोडशी, श्रीविद्या, पञ्चदशाक्षरी, बाला, अम्बिका, बगला, मातंगी, भुवनेश्वरी, कल्याणी, चामुण्डा, चण्डा, वाराही, तिरस्करिणी, राजमातंगी, शुकश्यामला, लघुश्यामला, अश्वारूढा, प्रत्यङ्गिरा, धूमावती, सावित्री, सरस्वती, गायत्री, ब्रह्मानन्दकला आदि भी कहा गया है—

'सैषा षोडशी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी बालाऽम्बिकेति बगलेति वा मातङ्गीति स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति चामुण्डेति चण्डेति, वाराहीति, तिरस्करिणीति राजमातङ्गीति वा शुकश्यामलेति वा लघुश्यामलेति वा अश्वारूढेति वा प्रत्यङ्गिरा धूमावती सावित्री सरस्वती गायत्री ब्रह्मानन्दकलेति।'

पञ्चदश अध्याय

त्रिपुरसुन्दरी का वाक्चतुष्टयात्मक स्वरूप

श्रुतियों के अनुसार वाणी के चार रूप हैं— परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी। श्रुति भी कहती है—

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणो यो मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति चतुर्थो वाचो मनुष्याः वदन्ति।।

ललितासहस्रनाम (१३२) में भगवती को परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरीरूपा कहा गया है—

परा प्रत्यक्चितिरूपा पश्यन्ती परदेवता।
मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका।।

१. परा वाक् का स्वरूप

भास्करराय सौभाग्यभास्कर में कहते हैं कि कारणबिन्द्वात्मक एवं अभिव्यक्त शब्दब्रह्म स्वप्रतिष्ठित एवं निस्पन्द स्वरूप में 'परावाक्' कहलाता है— 'कारणबिन्द्वात्मकमभिव्यक्तं शब्दब्रह्म स्वप्रतिष्ठतया निस्पन्दं तदेव च परा वागित्युच्यते।'

योगिनीहृदय (१.३६) में कहा गया गया है कि जब वह 'परमा कला' (विमर्श शक्ति) अपने (परशिव के) स्फुरण (पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी पर्यन्त) का साक्षात्कार करती है तब अम्बिकारूप प्राप्त करने पर 'परा वाक्' कहलाती है—

आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।
अम्बिकारूपमापन्ना परा वाक् समुदीरिता।।

सर्ववर्णाशभूत विमर्शरूपा कला (विमर्श शक्ति) जब अपना (परशिव का) स्फुरण (पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी क्रम से) देखने की इच्छा करती है तब वह परमा शान्तात्मिका होकर प्रकाशांश मात्रा वाली अम्बिका के साथ सामरस्य प्राप्त करके 'परा वाक्' कहलाती है। दीपिका में अमृतानन्द कहते भी हैं—

'कला विमर्शशक्तिः आत्मनः परशिवस्य स्फुरणं पश्यन्त्यादिक्रमेण वैखरीपर्यन्तं विमर्शनम्, पश्येद् द्रष्टुमिच्छेत्, तदा परमा शान्तात्मिका भूत्वा अम्बिकारूपमापन्ना प्रकाशांश-मात्राया अम्बिकायाः सामरस्यमापन्ना परा वाक् समुदीरिता परा मातृकोच्यते।'

परा वाक् शब्दब्रह्म है और शब्दब्रह्म देवी त्रिपुरसुन्दरी है—

शब्दब्रह्ममयी स्वच्छा देवी त्रिपुरसुन्दरी।

मध्यमा वाक्— अन्तःकरणं मनोबुद्ध्यहङ्कारलक्षणं मध्यभूमौ पुर्यष्टकात्मनि प्राणाधारे विश्रान्तं या विमर्शशक्तिं प्रेरयति सा मध्यमा वाक्। (ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी)

आचार्य अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि में 'परम महापश्यन्ती' ही 'परा वाक्' है। 'पश्यन्ती परा हि वाक्' कहकर सोमानन्द ने भी पश्यन्ती के पर रूप को परा वाक् माना है।

व्याकरणागम की दृष्टि— वाक्यपदीय में भर्तृहरि ने वाणी के तीन ही भेद स्वीकार किये हैं— पश्यन्ती, मध्यमा, एवं वैखरी।

वेद वाणी के चार भेद स्वीकार करता है— 'चतुर्थं वाचं मनुष्याः वदन्ति।' वाक्यपदीय में वाणी का पर रूप 'पश्यन्ती' माना गया है।

१. पद्मपादाचार्य ने प्रपञ्चसारतन्त्र की टीका में परा वाक् से भी सूक्ष्मतर वाणी का एक स्तर बताया है और वह है— सूक्ष्मा; 'सूक्ष्मा, परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी पञ्चपदी वाचम्।' उन्होंने वाणी को सप्तपदी भी कहा है, जिसके सात पद निम्नांकित हैं— शून्य, संवित्, सूक्ष्मा, परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। (३)

वाणी के भेद

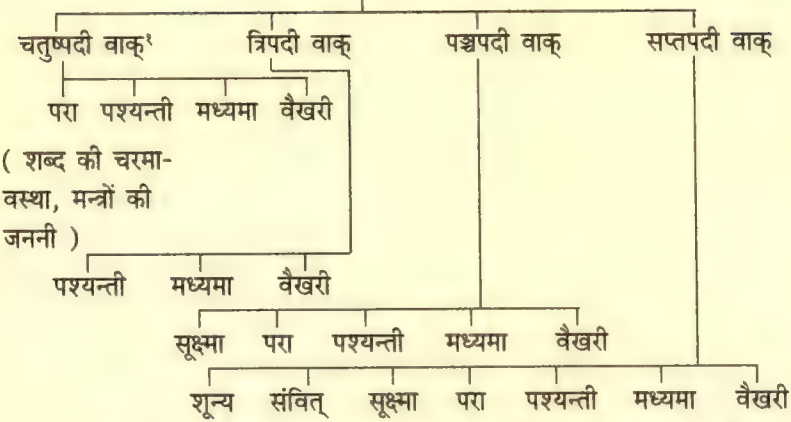

पश्यन्ती— कारणबिन्दुरूप 'शब्दब्रह्म' जब वायु से प्रेरित होकर नाभिदेश में जाकर विमर्शात्मक मन से संयुक्त होता है, तब उसे 'सामान्य स्पन्द' प्रकाशरूप कार्यबिन्दुस्वरूपा 'पश्यन्ती वाक्' की आख्या प्राप्त होती है। सौभाग्यभस्कर में कहा भी गया है— 'नाभि-पर्यन्तमागच्छता तेन पवनेनाभिव्यक्तं विमर्शरूपेण मनसा युक्तं सामान्यस्पन्दप्रकाश-रूपकार्यबिन्दुमयं सत् पश्यन्ती वागुच्यते।'

परात्रिंशिकाविवृत्ति की दृष्टि— 'औन्मुख्य' में इच्छा ही 'परा वाक्' है। ज्ञान शक्ति के औन्मुख्य में 'पश्यन्ती वाक्' है। क्रिया शक्ति के औन्मुख्य में 'मध्यमा' एवं उसके स्थितिलाभ में 'वैखरी वाक्' अस्तित्व में आती है। परा वाक् शिव से अभिन्न है—

परा भगवती संवित्प्रसरन्ती स्वरूपतः।
परेच्छा शक्तिरित्युक्ता भैरवस्याविभेदिनी।।

भगवती परा वाक् की भूमि हैं— 'भगवती परा वाग्भूमिः।' समस्त 'अर्थसृष्टि' शब्दसृष्टि पर ही आधृत है; यथा—

१. अकारादि-विसर्गान्तं शिवतत्त्वम्।
२. कादि-ङान्तं धरादि नभोऽन्तं भूतपञ्चकम्।
३. चादि-ञान्तं गन्धादिशब्दान्तं तन्मात्रपञ्चकम्।
४. टादि-णान्तं पादादिवागन्तं कर्माक्षपञ्चकम्।
५. तादि-नान्तं घ्राणादिश्रोत्रान्तं बुद्धिकरणपञ्चकम्।
६. पादि-मान्तं मनोऽहङ्कारबुद्धिप्रकृतिपुरुषाख्यं पञ्चकम्।
७. वाय्वादिशब्दवाच्या यादयो वकारान्ता राग-विद्या-कला-मायाख्यानि तत्त्वानि।[2]

---

१. परा भूर्जन्म पश्यन्ती वल्लीगुच्छसमुद्भवा।
मध्यमा सौरभा वैखर्यक्षमाला जयत्यसौ।। (कामकलाविलास)

२. अभिनवगुप्त : परात्रिंशिकाविवृत्ति

सारांश— आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन्निर्वृत्तचिद्वपुः।
अनिरुद्धेच्छाप्रसरः प्रसरविक्रियः शिवः।। (शिवदृष्टि)

समस्त तत्त्व (३६ तत्त्व) मात्र 'शाब्दी सृष्टि' के ही परिणमन हैं—

१. 'प-घ'— सादाख्ये नभः।
२. 'ख-ला-च-ङ' ईश्वरः।
३. इच्छैव शक्तिमयी शुद्धविद्या।
४. अनुत्तर एव स्वतन्त्रोऽहम्भावः 'अ' शिवाख्यो।
५. माया 'भ' शुद्धविद्या, रागः स्पर्शश्च 'यः' कालः पायुरहंकृच्च।
६. 'ड' नियतिः।
७. हस्तौ मनश्च ढकारः।
८. आनन्देन्द्रियं बुद्धिश्च 'ठः'।
९. पुमांश्च 'ञः'।
१०. धीरूपं नियतिश्च 'जः'।
११. अहंकृतं नियतिरूपं च 'रः'।
१२. मनः पादेन्द्रियं प्रकृतिश्च 'टः'।
१३. श्रोत्रं मनो हस्तश्च 'पः'।
१४. त्वग् रसः कालश्च 'ध-ल'।
१५. रसना आनन्दशक्तिः शैवी 'आ'।
१६. घ्राणं विद्या तेजश्च 'स'।
१७. वाग्विसर्गशक्तिश्च 'अः'। १९. पार्युर्माद्या वायुश्च 'ष'।
१८. करौ ईशो जलं च 'ह'। २०. आनन्देन्द्रियं सादाख्यं पृथिवी 'च, क्ष'।

इसी प्रकार— पादौ पुमान् शब्दश्च 'स' शब्दकलानभश्च 'श' स्पर्शः वैन्धवी शिवशक्तिः 'अं' रूपं नासिका त्वक् च 'त' रसः शिवशक्तिः 'सात्वी' ए 'गन्धः' सैव दीर्घः 'ऐ' नभः तथैव वायुतेजसी 'ओ' नेत्रे रसश्च 'औ' आपः अहंकृत पायुश्च 'द' पृथिवी 'फ'।[१]

परात्रिंशिका की दृष्टि— परात्रिंशिका में कहा गया है—

अथाद्यास्तिथयः सर्वे स्वरा बिन्द्ववसानगाः।
तदन्तः कालयोगेन सोमसूर्यौ प्रकीर्तितौ।।

पृथिव्यादीनि तत्त्वानि पुरुषान्तानि पञ्चसु।
क्रमात्कादिषु वर्गेषु मकारान्तेषु सुव्रते।।

वाय्वग्निसलिलेन्द्राणां धारणानां चतुष्टयम्।
तदूर्ध्वं शादिविख्यातं पुरस्ताद्ब्रह्मपञ्चकम्।।

---

१. परात्रिंशिकाविवृत्ति

अमूला तत्क्रमाज्ज्ञेया क्षान्ता सृष्टिरुदाहृता।
सर्वेषामेव मन्त्राणां विद्यानां च यशस्विनि।।

सोमानन्दपाद ने भी 'अकार' को 'शिव' एवं 'थकार' को 'शक्ति' कहा है—

अकारः शिव इत्युक्तस्थकारः शक्तिरुच्यते।

'पश्यन्ती' के ऊपर 'परा भूमि' है। 'परा वाक्' वह है जहाँ सब कुछ अभेदात्मक हो, अभेदात्मना विमर्शन भी है— 'पश्यन्त्युपरि परा भूमिः भगवती— यत्र सर्वमभेदेनैव भाति च विमृश्यते च।'

शंकराचार्य की दृष्टि— चिन्मात्र तत्त्व विचिकीर्षु होने के कारण घनीभूत होकर बिन्दु बन जाता है। वह बिन्दु काल के द्वारा भिद्यमान होने पर तीन भागों में विभाजित हो जाता है और 'बिन्दु', 'नाद' एवं 'बीज' कहलाता है। बिन्दु भिद्यमान होने पर अव्यक्तात्मक 'रव' बन जाता है और यह 'रव' शब्दब्रह्म कहलाता है। यही 'शब्दब्रह्म' 'परा वाक्' भी कहा जाता है—

विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुताम्।
कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा।।

स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते।
स बिन्दुनादबीजत्वभेदेन च निगद्यते।।

बिन्दोस्तस्माद्भिद्यमानाद्रवोऽव्यक्तात्मको भवेत्।
स रवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।। (प्र० तं०)

बिन्दु (शिव)

इच्छाशक्ति	ज्ञानशक्ति	क्रियाशक्ति
सदाशिव	ईश्वर	शुद्ध विद्या

परा वाक् का स्वरूप—

आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।
अम्बिकारूपमापन्ना परा वाक् समुदीरिता।। (योगिनीहृदय)

जब सर्ववर्णांशभूत विमर्शरूपा 'विमर्शशक्ति' या 'परमा कला' परशिव के स्फुरण (पश्यन्ती आदि क्रम से वैखरीपर्यन्त विमर्शन) को देखने की इच्छा करती है तब परमा शान्तात्मिका होकर अम्बिकारूपापन्ना (प्रकाशांश मात्रा वाली अम्बिका का सामरस्यापन्ना) 'परा वाक्' कहलाती है।

पश्यन्ती—

इच्छाज्ञानक्रियाशान्ताश्चैताश्चोत्तरावयवाः ।
व्यस्ताव्यस्ततदर्णद्वयमिदमेकादशात्मं पश्यन्ती।। (कामकलाविलास)

वाक्चतुष्टय—

परा भूजन्म पश्यन्ती वल्लीगुच्छसमुद्भवा।
मध्यमा सौरभा वैखर्यक्षमाला जयत्यसौ।।

'वैखरी वाक्' क्या है? इस विषय में चिद्वल्ली में नटनानन्द कहते हैं— 'सैव वैखरी-नाम अभिलपनरूपिणी पञ्चदशाक्षरराशिमयी सर्ववैदिकतान्त्रिकशब्दजालात्मिका शक्तिरुच्यते।।'

'इच्छाज्ञानक्रियाशक्तयस्तु पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीरूपा इति प्रपञ्चिता।'

'इच्छाशक्तिस्तथा ज्ञेया पश्यन्ती वपुषा स्थिता।[१]'

मध्यमा के दो रूप हैं; जैसा कि कामकलाविलास में कहा भी गया है—

द्विविधा हि मध्यमा सा सूक्ष्मा स्थूलाकृतिस्थिता सूक्ष्मा।
नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा च भूतलिप्याख्या।।

वाक् तत्त्व— अनन्त शक्तिपाद के 'वातूलनाथसूत्र' के अनुसार—

१. समस्त वाक्प्रवाह में शुद्ध स्वरों का प्रवाह स्थित है : 'सर्ववाक्प्रथासु निरावरणासु स्वरभूतिविजृम्भैव प्रथते सदैव इति निरूपयन्ति।'

२. निरवकाश संवित् तत्त्व से अनवरुद्ध, अविरत चार रूपों में वाणी का प्रवाह होता है।

३. उपर्युक्त स्वभाव से युक्त वाक्चतुष्टय के सृष्टि एवं संहारात्मक परम्परा के व्यक्ताव्यक्त स्फुरण में स्वर (उल्लासरूप विकासशील अनाहतहतोत्तीर्ण महानाद) ही प्रवाहित होता है। सविकल्प-निर्विकल्प संवित् से परे परमाकाश किसी साधन के आश्रय के विना स्वाभाविक रूप में प्रकाशित होता है और इस प्रकार वाक्चतुष्टयक्रम में गुरुमुख से नाना रूपों में प्रकटित वर्णसमूह के मध्य प्रत्येक वर्ण के अन्तर में अखण्डित वृत्ति से मूल स्वर का ही प्रवाह होता है। शक्तिपाद कहते हैं कि 'इति वाक्चतुष्टयोदयक्रमेण निरावरणस्वरोदयः सर्वत्र सर्वकालं स्फुरति।[२]'

वातूलनाथ सूत्रक्रमाङ्क सप्तम में भी इसी तथ्य की पुष्टि की गई है—

वाक्चतुष्टयोदयविरामप्रथासु स्वरः प्रथते।।

वाक्चतुष्टय— वाक्चतुष्टय के उदय एवं विराम की परम्परा या विस्तार में स्वर ही प्रवाहित होता है। वाणियाँ (वाक्चतुष्टय) चार हैं— परा वाक्, पश्यन्ती वाक्, मध्यमा वाक् और वैखरी वाक्।

परा वाक्— अनन्तशक्तिपाद वातूलनाथ सूत्रवृत्ति में कहते हैं कि आवरण, अवकाश एवं तरंगों से रहित परम शून्य आकाश में उच्छलनात्मक किञ्चित् सञ्चालन से प्रथम स्पन्द का आविर्भाव होता है, जो कि 'परा वाक्' के नाम से सम्बोधित है जिस प्रकार

१. चिद्वल्ली
२. वो० ना० (अष्टम सूत्र)

अण्डे के श्वेत एवं पीले रस में मयूर का वर्णवैचित्र्य अन्तर्निहित रहता है; उसी प्रकार वर्णों के रूपों का 'परा वाक्' के अन्त में सामरस्यात्मक एवं अभिन्नात्मक समावेश रहता है— 'निरावरणनिरवकाशोदयनिरुत्तरनिस्तरङ्गपरमनभसि उच्छलत्किञ्चिच्चलनात्मकप्रथमस्पन्द-विकासस्वभावा वर्णरचना मयूराण्डरसन्यायेन अद्वयमहासामरस्यतया अन्तर्धारयन्ती परेति प्रथिता।'

अर्थात् परा वाक्[१]— १. आवरणशून्य, २. अवकाशशून्य, ३. उदयशील, ४. निरुत्तर, ५. निस्तरंग— परम व्योम में १. उच्छलनात्मक, २. किञ्चित् चलनात्मक, ३. प्रथम-स्पन्द-स्वभाव, ४. वर्णरचना को मयूराण्डरसन्याय से स्वसंस्थित रखने वाला और इस प्रकार ५.अद्वयात्मक एवं महासामरस्यात्मक विधि से अपने अन्तर में वर्णों को निगूढ़तः रखने वाला प्रथम रहस्यात्मक तत्त्व 'वाक् तत्त्व' है।

जिस समय 'परा शक्ति' अपने स्फुरण को देखती है, उस समय वह अम्बिकारूप प्राप्त करके 'परा वाक्' कहलाती है—

आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।
अम्बिकारूपमापन्ना परा वाक् समुदीरिता।।

वामकेश्वरतन्त्र के अनुसार प्रकाश एव विमर्श के चार-चार अंश हैं—

प्रकाशांश— १. अम्बिका २. वामा ३. ज्येष्ठा ४. रौद्री।
विमर्शांश— १. शान्ता २. इच्छा ३. ज्ञान ४. क्रिया।

'अम्बिका' एवं 'शान्ता' की सामरस्यावस्था शान्ताभावापन्ना परा शक्ति 'परा वाक्' कहलाती है। यही आत्मस्फुरण की अवस्था है। आत्मस्फुरणावस्था में समग्र विश्व बीज-रूप में (अस्फुट रूप में) आत्मसत्ता में वर्तमान रहता है। फिर शान्ता से इच्छा का उदय होने पर वह अव्यक्त विश्वशक्ति के गर्भ से बाहर निकलता है। उस काल में इच्छा शक्ति वामा शक्ति के साथ तादात्म्य प्राप्त करती है और 'पश्यन्ती वाक्' कही जाती है। इसके उपरान्त ज्ञान शक्ति का आविर्भाव होता है। ज्ञान शक्ति ज्येष्ठा के साथ अभिन्नता प्राप्त करके 'मध्यमा वाक्' कहलाती है। ज्ञानोपरान्त क्रिया शक्ति रौद्री के साथ एकीकृत होकर 'वैखरी वाक्' कहलाने लगती है। निम्न चक्र से इसे स्पष्टतया समझा जा सकता है—

शिवांश	शक्त्यंश	सामरस्य	पराशक्ति का नाम
१. अम्बिका	+ शान्ता	सामरस्य →	परा वाक् (आत्मस्फुरण की अवस्था)
२. वामा	+ इच्छा शक्ति	सामरस्य →	पश्यन्ती वाक्
(शान्ता से इच्छा शक्ति का प्रादुर्भाव होता है।)			
३. ज्येष्ठा	+ ज्ञान शक्ति	सामरस्य →	मध्यमा वाक्
४. रौद्री	+ क्रिया शक्ति	सामरस्य →	वैखरी वाक्।

१. वा० ना०– अनन्तशक्तिपाद

यह वाक्चतुष्टय सम्मिलित होकर 'महायोनि' या △'मूलत्रिकोण' के रूप में परिणत होते हैं।

शान्ता (शक्त्यंश) एवं अम्बिका का सामरस्य (परा वाक्) इस मूल त्रिकोण का केन्द्रविन्दु है। यह नित्य स्पन्दमय है।

पश्यन्ती इस मूल त्रिकोण की वाम रेखा, वैखरी दक्षिण रेखा और मध्यमा इसकी आधार रेखा (Base line) है। मूल त्रिकोण के मध्य जो महाबिन्दु समासीन है, वही अभिन्नस्वरूप शिव-शक्ति का आसन है। इस त्रिकोण की उज्ज्वलता का कारण चित् कला का प्रभाव है। इसके बाहर क्रमविन्यास से १. शान्त्यतीत, २. शान्ति, ३. विद्या, ४. प्रतिष्ठा एवं ५. निवृत्ति का अवस्थान है। इनकी समष्टि ही जगत् है। भूपुर से महा-विन्दुपर्यन्त समस्त विश्व-प्रसार महाशक्ति का ही विकास है।

मध्य त्रिकोण विन्दु-विसर्ग से युक्त है। इसकी प्रत्येक रेखा पाँच स्वरों से युक्त है। १५ स्वरों वाले इस त्रिकोण का विन्दुस्थान विसर्ग (अः) कलाओं से आक्रान्त है।

कामकलाविलास की दृष्टि— परा वाक् सान्तरोहरूपात्मक है। 'सान्तरोहरूपा' का अर्थ है— 'अन्तरे अन्तःकरणे ऊहेन तर्केण सहितं रूपं यस्याः सा सान्तरोहरूपा। परानाम सान्तरोहरूपा।' इसीलिये कामकलाविलास की लक्ष्मीधरा टीका में कहा गया है कि 'या सान्तरोहरूपा परा महेशी परा नाम। कामकलाविलास में कहा गया है—

या सान्तरोहरूपा परा महेशी त्रिभाविताकारा।
स्पष्टा पश्यन्त्यादित्रिमातृकात्मा च चक्रतां याता।।

अर्थात् परा महेशी अवाङ्मनसगोचरा, सर्ववेदान्तैरपरिच्छेद्या, सर्वकारणभूता, शिवा-दिधरण्यन्ततत्त्वसङ्घातावि र्भावभूमिः महेश्वरी परा सर्वोत्कृष्टा है।[१]

यजुर्वेद में इसी का वर्णन इस प्रकार किया गया है— 'परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते।' इसी प्रकार इस परा शक्ति के विषय में श्रुति में पुनः कहा गया है कि 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्।'

आगम में भी कहा गया है—

स्वरूपज्योतिरेवान्त परा वागनपायिनी।
यस्यां दृष्टस्वरूपायामधिकारो निवर्तते।।

लघुभट्टारक में भी कहा गया है—

सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयते।

जो इस प्रकार के लक्षणों वाली है, वही है— 'पराशक्ति'।[२]

परा वाक् की भावना के प्रकारत्रय— परा वाक् की ही तीन प्रकार से भावना की जाती है, जो इस प्रकार है—

---

१. चिद्वल्ली २. चिद्वल्ली

१. पश्यन्ती, २. मध्यमा और ३. वैखरी।

परा महेशी त्रिभाविताकारा।
स्पष्टा पश्यन्त्यादि त्रिमातृकात्मा च चक्रतां याता।।

यदि चैतन्य एवं अवस्थाओं के धरातल पर विचार किया जाय तो चैतन्य एवं शब्द के धरातल या सोपान निम्न हैं—

अवस्थायें (चेतन तत्त्व के पाँच स्तर)

जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीय तुरीयातीत (अतितुर्य)

शब्दों के स्तर

जागर स्वप्न सुषुप्ति तुरीय (शब्दब्रह्म = परा वाक्)

तुरीय शब्द = शब्दब्रह्म → अतितुर्य (परब्रह्म)। परा वाक् → परब्रह्म।

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।

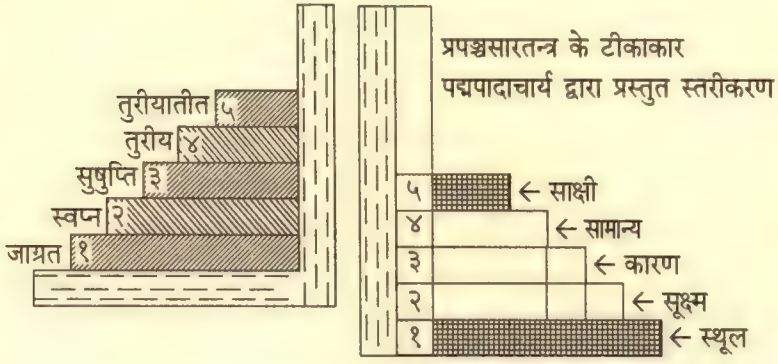

१. जागरावस्था — इन्द्रियदशकव्यवहृतिरूपा या जागरावस्था।
२. स्वप्नावस्था — अन्तःकरणचतुष्कव्यवहारः स्वाप्निकावस्था।
३. सुषुप्त्यवस्था — आन्तरवृत्तेर्लयतो लीनप्रायस्य जीवस्य वेदनमेव सुषुप्तिः।
४. तुरीयावस्था — तुर्यावस्था चिदभिव्यञ्जकनादस्य वेदनम्।
५. तुर्यातीतावस्था— आनन्दैकघनत्वं यद्वाचामपि न गोचरो नृणाम्।
तुर्यातीतावस्था सा नादान्तादिपञ्चके भाव्या।।
(वरिवस्यारहस्यम्)

महेश्वरानन्द की दृष्टि— गोरक्षनाथ (या महेश्वरानन्द) महार्थमञ्जरी (५०वीं गाथा) में कहते हैं—

१. क्रियामयी वाणी 'वैखरी' है।
२. ज्ञानमयी वाणी 'मध्यमा' है।
३. इच्छाशक्ति ही 'पश्यन्ती' है।
४. सर्वसमरस वृत्ति ही 'सूक्ष्मा' है।

→ वाक्चतुष्टय का स्वस्वरूप

वैखारिका नाम क्रिया ज्ञानमयी भवति मध्यमा वाक्।
इच्छा पुनः पश्यन्ती वाक् सूक्ष्मा सर्वासां समरसा वृत्तिः।।[1]

वाक् तत्त्व के चार भेद

१. सूक्ष्मा → २. पश्यन्ती → ३. मध्यमा → ४. वैखरी

वाक् तत्त्वं तावत् क्रमात् सूक्ष्मा पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरीति चतुर्धा भिद्यते।[2]

१. तालु आदि करणों के व्यापार में स्फुरित होने वाली वैखरी वाणी 'क्रिया शक्ति' कही जाती है (वैखरी वाक् एवं क्रिया शक्ति)।

२. बुद्धिवृत्ति द्वारा प्रवर्तित होने वाली वाणी ज्ञानमयी है और इसे 'मध्यमा' कहते हैं (मध्यमा वाक् एवं ज्ञान शक्ति)।

३. बाहर प्रसरित होने की इच्छा वाली होने के कारण इच्छामयी वाणी ही 'पश्यन्ती वाक्' है (पश्यन्ती वाक् एवं इच्छाशक्ति)।

४. परमेश्वरपरक एवं प्रत्यक् दृष्टि के स्वभाव वाली होने के कारण सर्वत्र एवं सबमें व्याप्त समरसवृत्ति ही 'सूक्ष्मा वाक्' या 'परा वाक्' कहलाती है।

परमेश्वर की उद्योगलक्षणा वृत्ति ही सूक्ष्म वृत्ति है। यह परमेश्वर के स्वरूप में अनुप्रविष्ट रहकर स्फुरित होती है। आत्मविमर्शरूप परा वाक् ही सर्वसमरस है। परा वाक्-मयी स्वात्मस्फुरत्ता ही 'मन्त्र' है।

उपर्युक्त सभी का विवेचन परिमल में महेश्वरानन्द द्वारा इस प्रकार किया गया है—

क. वैखरी वाक्— तत्र वैखरीति प्रसिद्धा वाक् ताल्वादिकरणव्यापारोपारूढस्फुरणतया क्रियाशक्तिरित्यध्यवसीयते।

ख. मध्यमा वाक्— मध्यमा च बुद्धिवृत्तिमात्रप्रवर्त्यमानत्वात् ज्ञानशक्तिः।

ग. पश्यन्ती वाक्— पश्यन्ती पुनरिच्छा, बहिःप्रसरणाभ्युपगमरूपत्वात्, तस्याः यतः परा वाक् पश्यन्तीति पश्यन्त्या व्युत्पत्तिः।

घ. सूक्ष्मा वाक्— सूक्ष्मा तु शिखण्ड्यण्डरसन्यायादुक्तवाक्त्रयशबलीभावस्वभावा प्रत्यग्द्रष्टुः परमेश्वरस्योद्योगलक्षणावृत्तिरित्याख्यायते।

परा वाक्— परा वाक् पुनस्तस्यैव परमेश्वरस्य स्वरूपमनुप्रविशन्ती परिस्फुरन्ती।

---

१. महेश्वरानन्द : महार्थमञ्जरी २. महेश्वरानन्द : परिमल

ऋजुविमर्शिनी में कहा गया है कि मातृका पर वागात्मा, अनाहत भट्टारकस्वरूप, शिवस्वरूप, षट्त्रिंशत्तत्त्वप्रसरण का कारण संवित् तत्त्व है— 'मातृकां परवागात्माऽनाहत-भट्टारकपरमशिवस्वरूपां षट्त्रिंशत्तत्त्वप्रसरणहेतुभूतां संविदमित्यर्थः।'

श्रीसंवित्स्तोत्र की दृष्टि— 'परा वाक्' वाक् तत्त्व का वह स्तर है जहाँ विश्व (कर्ता-कार्य, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय एवं द्रष्टा-दृश्य-दर्शन आदि) विभागों (विभाजनों) से मुक्त एवं मयूराण्डरसवत् एकात्मक एवं एकरस है। यहाँ परा शक्ति स्वप्रकाशनविमर्शात्मिकामात्र है—

त्वामुपासित गुरूत्तमाः परां वाचमाहुरविभक्तविश्वकम्।
स्वप्रकाशनविमर्शनात्मिकां वक्ति वागिति निरुक्तिमास्थिता।।

आचार्य महेश्वरानन्द की दृष्टि— इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति एवं क्रिया शक्ति— इस शक्तित्रितय का विस्तार ही समस्त वाग्विलास है— 'तस्मादिच्छादिशक्तित्रितयविस्तारात्मा सर्वोऽपि वाग्विलास इत्युक्तं भवति।'[१]

योगिनीहृदय की दृष्टि— इसमें कहा गया है कि—

१. इच्छाशक्ति ही पश्यन्ती का शरीर धारण करके स्थित है।

२. ज्ञानशक्ति ही (अपने तीनों रूपों में) 'मध्यमा वाक्' कही जाती है।

३. क्रिया शक्ति ही रौद्री रूपात्मिका शक्ति है। विश्व ही उसका शरीर है और यही वाक् तत्त्व के रूप में 'वैखरी' कही जाती है—

क. इच्छाशक्तिस्तथा सेयं पश्यन्तीवपुषा स्थिता।
ख. ज्ञानशक्तिस्त्रिधा प्रोक्ता मध्यमा वागुदीरिता।
ग. क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा।

अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि— आचार्य अभिनवगुप्तपाद तन्त्रालोक में कहते हैं—

प्राक्पश्यन्त्यथ मध्यान्या वैखरी चेति ता इमाः।
पराऽपरा परा देवी चरमा त्वपरात्मिका।।

इच्छादिशक्तित्रयमिदमेव निगद्यते।
एतत्प्राणित एवायं व्यवहारः प्रतायते।।

क. स्वात्मस्फुरत्ता— यह इच्छा-ज्ञान-क्रिया से संयुक्त है— 'इच्छादिस्वभावैव च स्वात्मस्फुरत्ता' (गोरक्षनाथ)।

ख. मन्त्र— इच्छादिस्वभावा एवं स्वात्मस्फुरत्तात्मिका अनुभूति ही मन्त्र है— 'तन्मयी च काचिदनुभूतिर्मन्त्रशब्दार्थ इति सर्वं सङ्गच्छते।'

संसार में ऐसा कोई प्रत्यय ही नहीं है, जिसके मूल में शब्द की भूमिका न हो— 'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।' इच्छा शक्ति ही अपने विभिन्न रूपों एवं विभिन्न चरणों के द्वारा 'पश्यन्ती' आदि वाणी एवं 'अर्थमयी सृष्टि' बन जाती है।

प्रकाशरूपात्मक आत्मा का प्राण विमर्शशक्ति ही है— 'ततश्च प्रकाशरूपस्यात्मनो

विमर्शशक्तिरेवानुप्राणनम्।'[१] यही शक्ति मन्त्र, जप, पूजा आदि भी है— 'सा च मन्त्र-जपपूजाद्यनेकशब्दव्यपदेश्या भवति।'[२]

परिमल में महेश्वरानन्द कहते हैं कि 'प्रकाशरूपस्यात्मनो विमर्शशक्तिरेवानु-प्राणनम्। सा च मन्त्रजपपूजाद्यनेकशब्दव्यपदेश्या भवति। केवलं तत्तद्द्वारमात्रमेव भेद इति।'

साम्बपञ्चाशती की दृष्टि— साम्बपञ्चाशती में कहा गया है—

या सा मित्रावरुणसदनादुच्चरन्तीं त्रिषष्टिं
वर्णानत्र प्रकटकरणैः प्राणसङ्गात् प्रसूते।
तां पश्यन्तीं प्रथममुदितां मध्यमां बुद्धिसंस्थां
वाचं वक्त्रे करणविशदां वैखरीं च प्रपद्ये।।

अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि— आचार्य अभिनव गुप्त परात्रिंशिकाविवृत्ति में कहते हैं कि इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति तथा उनके परिणमन— परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी नामक चतुर्धा विभक्त वाणियाँ परा शक्ति के ही विभिन्न रूप हैं—

१. 'अहमेव सा परा वाग्देवीरूपैव सर्ववाच्यवाचका विभक्ततया एवमुवाच' इति तात्पर्यम्।

२. सा च शक्तिः लोकानुग्रहविमर्शमयी प्रथमतः परामर्शमय्या पश्यन्त्या आसूत्रयिष्य-माणानन्तशक्तिशताविभिन्ना, प्रथमतरपरमहामन्त्रमय्यामदेशकालकलितायां संविदि निरूढा, तावत् पश्यन्त्युद्भविष्यदुक्तिप्रत्युत्तयविभागेनैव वर्तते।

३. सैव च सकलप्रमातृसंविदद्वयमती सततमेव वर्तमानरूपा, ततस्तु पश्यन्ती बोधसूत्रमात्रेण विमृशति।

४. प्रथम ज्ञानकाल में भेद-स्फुरण नहीं होता— 'नहि प्रथमज्ञानकाले भेदोऽत्र अस्फुरत्, यत्र वाच्यवाचकविशेषयोरभेदः।' (प्रथमावस्था : वाच्य-वाचक में अभेद)।

५. मध्यमा— मध्यमा वाक् में वाच्य-वाचक भेदामर्श है। मध्यमा सामानाधिकरण्य द्वारा विमर्शव्यापारा है— 'मध्यमा पुनः तयोरेव वाच्य-वाचकयोः भेदमादर्श्य सामानाधिकरण्येन विमर्शव्यापारा।'

६. वैखरी वाक्— यह भेदस्फुटात्मिका है— 'वैखरी तु तदुभयभेदस्फुटतामय्येव।'

७. परा वाक्— स्वसंवित्स्वरूपात्मिका यह शक्ति ही परा वाक् है— 'तावत् व्यवस्थायां स्वसंवित्सिद्धायां यैव परावाग्भूमिः।'

पश्यन्ती में भेदांश का आसूत्रण है— 'पश्यन्यां यत्र भेदांशस्यासूत्रणम्।'
मध्यमा में भेदावभास है— 'यत्र च मध्यमायां भेदावभासः।'
परा तो स्वयमेव संवित शक्ति है— 'परैव च संवित् देवी इत्युच्यते।'

---

१. परिमल।
२. सा च मन्त्रजपपूजाद्यनेकशब्दव्यपदेश्या भवति।

अभिनवगुप्त ने 'परा' भट्टारिका को इच्छा-ज्ञान-क्रिया से परे भी माना है। वे कहते हैं— 'एतच्छक्तिभेदत्रयोत्तीर्णा तच्छक्त्यविभागमयी संविद्भगवती भट्टारिका परा अभिधेयम्।'

विरूपाक्षपञ्चाशिका में परा वाक् को प्रत्यवमर्शात्मा, स्वरसवाहिनी, चिति शक्ति एवं पूर्णाहन्तात्मिका कहा गया है—

प्रत्यवमर्शात्माऽसौ चितिः स्वरसवाहिनी परा वाग्या।
आद्यन्तप्रत्याहतवर्णगणा सत्यहन्ता सा।।

पश्यन्ती वाक्— अनाहत नादस्वरूप में अवतरित वही 'परा वाक्' दृष्ट स्वभाव होने के कारण 'पश्यन्ती वाक्' के नाम से व्यपदिष्ट है। इसमें वटधानिका के समान समस्त वर्णसमूह अभिन्न रूप में अन्तर्निहित रहते हैं— 'सैव च अनाहतनादस्वरूपतामवाप्ता निर्विभागधर्मिणी समस्तवर्णोदयवटधानिकावदन्तर्धारयन्ती द्रष्टृस्वभावा पश्यन्तीति व्यपदेश्या।'[१]

मध्यमा वाक्— सङ्कल्पात्मक-विकल्पात्मक ज्ञानसमूह जब निश्यचात्मक बुद्धि भूमिका को प्राप्त करता है तब वही 'परा वाणी' सेम के बीज के समान वर्णसमूह को अपने अन्तः में धारण करती है। जिस प्रकार सेम की कली के बीज के दलों की पृथक्-पृथक् स्थिति होने पर भी छिलके से आवृत्त होने के कारण वह बाहर स्पष्टतः दृष्टिगोचर नहीं होती, उसी प्रकार वर्णों के निश्चयात्मक पृथक् स्वरूप का आविर्भाव प्रथमतः अन्तर में होता है और उसका बाहर संदर्शन नहीं हो पाता। वाणी के विकास की यही अवस्था 'मध्यमा' कही जाती है— 'सैव च सङ्कल्पविकल्पनिवहनिश्चयात्मबुद्धिभूमिं स्वीकृतवती वर्णपुञ्जं शिम्बिकाफलन्यायेन अन्तर्धारयन्ती मध्यमा इत्यभिहिता।'[२]

वैखरी वाक्— विकास की अन्तिम अवस्था में जब वही परा वाक् हृदय, कण्ठ, तालु आदि उच्चारणस्थानों (उच्चारणावयवों) से आहत होकर साधनक्रम से वर्णभेद को स्पष्टतः प्रकट करती है तब वह 'वैखरी वाक्' कहलाती है।

इस अवस्था में नाद का वर्णों के रूप में पूर्ण विकास हो जाता है तथा समस्त विश्व के ज्ञान-प्रवाह एवं वेद, शास्त्र आदि की अभिव्यञ्जना होती है। इस स्तर पर वाणी एवं वर्णों के वैभव की पूर्णाभिव्यक्ति प्रकट हो जाती है। इस प्रकार निरवकाश संवित् तत्त्व से अनवरुद्ध एवं अविरत चार स्वरूपों में वाणी का प्रवाह होता रहता है— 'सैव हृत्कण्ठ-ताल्वादिस्थानकरणक्रमेणाहता सती वर्णविभवमयश्लोकादिवत् भेदरूपं प्रकटयन्ती रूपादिसमस्तविश्वप्रथां च व्यक्ततामापादयन्ती 'वैखरी'त्युक्ता। इत्थं निरवकाशात् वाक्चतुष्टयमविरतनिरोधतया प्रथते।'[३]

---

१. श्री वातूलनाथ सूत्र वृत्ति (अनन्त शक्तिपाद)।
२. श्रीवातूलनाथसूत्रवृत्ति (अनन्तशक्तिपाद)।
३. श्रीवातूलनाथसूत्रवृत्ति (अनन्तशक्तिपाद)।

परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी के भेद से प्रत्येक वर्ण में अनाहत, हतोत्तीर्ण महानाद ही प्रवाहित हो रहा है। वर्णमाला का प्रथमाक्षर 'अ' शिवस्वरूप है, जबकि अन्तिम अक्षर 'ह' शक्तिस्वरूप है। इसी अकार के चार रूप हैं, जो कि परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी कहलाते हैं; यथा—

१. अ का हत रूप = जाग्रत् अवस्था = ज्येष्ठा शक्ति।
२. अ का अनाहत रूप = स्वप्न अवस्था = अम्बिका शक्ति।
३. अ का अनाहत-हत रूप = सुषुप्ति अवस्था = वामा शक्ति।
४. अ का अनाहत-हतोत्तीर्ण रूप = तुर्यावस्था = रौद्री शक्ति।[१]

पश्यन्ती को 'स्पष्टा' कहा गया है; क्योंकि परा की तुलना में यह अधिक स्पष्ट है— 'स्पष्टा पश्यन्त्याख्या त्रिमातृका चक्रतां याता।' यहाँ 'त्रिमातृका' पद त्रिखण्डात्मिका (त्रिखण्डयुक्ता) मातृका को संकेतित करता है। वह चक्राकार रूप में परिणत भी है, इसीलिए कहा गया है— 'चक्रता याता।' 'त्रिमातृका' का अर्थ है— 'पञ्चदशाक्षरी मन्त्र से युक्त'। लक्ष्मीधर कहते हैं— 'त्रिमातृका त्रिखण्डयुक्ता मातृका पञ्चदशाक्षरी तदात्मिका।[२]'

नटनानन्दनाथ चिद्वल्ली में कहते हैं— 'स्पष्टा पश्यन्त्यादित्रिमातृका, सेति स्पष्टा प्रथमोत्पन्नत्वेन विवक्षिता विषयिणी पश्यन्तीत्युच्यते।'

१. मध्यमा माषशमिका (उड़द की छीमी) की भाँति है।
२. पश्यन्ती वटधानिका (बीज) की भाँति है।
३. पश्यन्ती ईश्वरतत्त्व है। यही तन्त्र में 'कार्यबिन्दु' भी कही गई है।
४. पश्यन्ती प्रकाशांश 'वामा शक्ति' एवं विमर्शांश 'इच्छा शक्ति' की सन्तान है।

पराशक्ति अपने गर्भावस्थित बीजभावापन्न विश्व को जब बाह्य रूप में प्रसृत करने को उद्यत होती है तब उसे विश्ववमनकर्तृत्व के कारण 'वामा शक्ति' कहा जाता है। ब्राह्मी शक्ति का कार्य— सृष्टिव्यापार उसमें विद्यमान है। वामा महात्रिकोण वामरेखा का उपलक्षक है; अतः इसे अंकुशाकार भी कहा गया है।

५. वामा शक्ति एवं इच्छा शक्ति का समाहार ही पश्यन्ती है—

बीजभावस्थितं विश्वं स्फुटीकर्तुं यदोन्मुखी।
वामा विश्वस्य वमनादङ्कुशाकारतां गता।।
इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता।[३]

'ईक्षणात्मक पश्यन्ती' पश्यन्ती का वह स्वरूप है, जिसमें वह स्रष्टव्य पदार्थों को अपने संकल्प में देखती है— 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' (छान्दोग्य उपनिषद्-६.२.३)। वाक्य उसी ईक्षणप्रधान पश्यन्ती का बोधक है।

१. श्रीवातूलनाथसूत्रवृत्ति (अनन्तशक्तिपाद)।
२. लक्ष्मीधरा (सौन्दर्य लहरी की टीका)
३. योगिनीहृदय।

'उत्तीर्णा पश्यन्ती' पश्यन्ती का वह स्वरूप है, जिसमें वह समस्त जगत् को अपने में ही देखती हुई जगत् से उत्तीर्ण स्वरूप में बोधित होती है।

'पश्यन्ती' देखती है, इसीलिये यह 'पश्यन्ती' कहलाती है— 'पश्यतीति पश्यन्ती।'

आचार्य भास्कर की दृष्टि— सौभाग्यसुधोदय में पश्यन्ती को 'उत्तीर्णा' भी कहा गया है— 'पश्यति सर्वं स्वात्मनि करणानां सरणिमपि यदुत्तीर्णा। तेनेयं पश्यन्तीत्युत्तीर्णेत्यप्युदीर्यते माता।'

जब बिन्दुस्वरूप परमात्मा पवन-प्रेरित होकर नाभिदेश में पहुँचकर विमर्शात्मक मन से संयुक्त होता है तब उसे सामान्य स्पन्द प्रकाशरूप एवं कार्यबिन्दुमय 'पश्यन्ती वाक्' कहा जाता है। सौभाग्यभास्कर में भास्करराय इसी तथ्य की पुष्टि करते हुये कहते हैं— 'अथ तदेव नाभिपर्यन्तमागच्छता तेन पवनेनाभिव्यक्तं विमर्शरूपेण मनसा युक्तं सामान्यस्पन्दप्रकाशरूपकार्यबिन्दुमयं सत्पश्यन्ती वागुच्यते।'[१]

अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि— आचार्य अभिनवगुप्त ने पश्यन्ती के तीन भेद भी किये हैं— पश्यन्ती, महापश्यन्ती, एवं परममहापश्यन्ती।

१. परममहापश्यन्ती की दशा ही 'परा वाक्' है।

२. सदाशिवेश्वर की दशा ही 'महापश्यन्ती' है।

३. 'मैं घर से बाहर निकलता हूँ' आदि परामर्श माया के प्रमाता (जीव) से सम्बद्ध पश्यन्ती ही 'पश्यन्ती' है।

पश्यन्ती वाक् में देशगत एवं कालगत क्रमात्मकता का अभाव रहता है। इस स्तर का विमर्श निर्विकल्पात्मक होता है। यह अक्रम, अविभक्त, अन्तर्लीन, अस्फुट एवं प्रतिसंहृतक्रम होता है। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में पश्यन्ती को 'इच्छा शक्ति' भी कहा गया है।

भास्कर राय वरिवस्यारहस्यम् की टीका में कहते हैं कि मध्यमा वह वाक् है, जो कि न तो परा वाक् की भाँति अत्यन्त सूक्ष्म है और न ही वैखरी की भाँति अति स्थूल। इसीलिये इसे मध्यमा कहते हैं— 'नातिसूक्ष्मा परावन्नातिस्थूला वैखरीवदतो मध्यमाख्या।'

वैखरी वाक् किसे कहते हैं? इस पर भास्करराय 'प्रकाश' टीका में कहते हैं— 'अकटतपयशलाख्या वर्गनवकवती वैखर्याख्या मातृका जाता, वै निश्चयेन स्पष्टतरत्वात्। खं कर्णविवरवर्तिनभोरूपश्रोत्रेन्द्रियं राति गच्छति, तज्जन्यज्ञानविषयो भवति इति वैखरी।'

आचार्य भास्करराय सौभाग्यभास्कर में कहते हैं कि—

१. शब्दब्रह्मरूप बीज की अच्छूनावस्था 'परा वाक्' है।

२. शब्दब्रह्म की स्फुटितावस्था ही 'पश्यन्ती वाक्' है।

३. शब्दब्रह्म की मुकुलित अव्यक्तावस्थागत दलद्वय 'मध्यमा' है।

१. सौभाग्यभास्कर।

४. शब्दब्रह्म की प्रसृत एवं संसृष्ट मूल दलद्वय 'वैखरी' है।

'तत्र शब्दब्रह्मरूपस्य बीजस्योच्छूनतावस्था 'परा' स्फुटितावस्था 'पश्यन्ती' मुकुलिताव्यक्तं दलद्वयं 'मध्यमा' सम्यग् विकासेन प्रसृते मिथः संसृष्टमूलं दलद्वयं 'वैखरी।'

परा एवं पश्यन्ती के दो छोरों के मध्य में रहने के कारण ही मध्यमा वाक् को 'मध्यमा' कहा जाता है— 'मध्यमा परापश्यन्त्योः समरसावस्था।'

(चिद्वल्ली : नदनानन्द)

आचार्य सोमानन्द एवं अभिनवगुप्त के मत में प्रतीयमान वैषम्य

१. आचार्य सोमानन्द पश्यन्ती को ज्ञानशक्ति कहते हैं, जबकि अभिनवगुप्त इसे इच्छाशक्ति कहते हैं।

२. इच्छाशक्ति ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति की बीजावस्था है। जिज्ञासा (जानने की इच्छा) भी बोधस्वभावा ही होती है और इच्छाशक्ति ज्ञान एवं क्रियाशक्ति की आश्रयदाता भी है। इच्छाशक्ति में ज्ञेय पदार्थ का प्रकाशन भी सम्मिलित रहता है।

अभिनवगुप्त ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में कहते हैं—

१. 'इच्छाशक्तिर्ज्ञानक्रियाशक्त्योरनुग्राहिका इति' अर्थात् इच्छाशक्ति ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति की अनुग्राहिका है।

२. 'बुभुत्सा अपि बोधस्वभावैव, तस्य वस्तुनस्तत्र अवभासपरिपूर्णतया प्रकाशनात्' अर्थात् बुभुत्सा भी बोधस्वभाव ही है, क्योंकि यह वस्तु को अवभास के रूप में प्रकाशित करती है।

३. 'इच्छाशक्तिरूपेति दर्शयति कार्यचिकीर्षा इति' अर्थात् इच्छाशक्ति भी कार्यचिकीर्षा को गुप्त रूप से अपने में निहित रखती ही है; अतः ज्ञानशक्ति एवं इच्छाशक्ति मूलतः तादात्म्य रखते हैं। अतः दोनों आचार्यों के मत में विरोध नहीं मानना चाहिये।

भास्करराय वरिवस्यारहस्यम् की प्रकाश टीका में कहते हैं— 'ततः स्रष्टव्यपदार्थानालोचयति— 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' इति श्रुतेः। तादृशमीक्षणमेव प्रवृत्तिनिमित्तीकृत्य तस्यां पश्यन्तीति पदं प्रवर्तते।' अर्थात् परा सत्ता स्रष्टव्य पदार्थों का ईक्षण करती है। उसका वह ईक्षण ही प्रवृत्ति का निमित्त बनता है। ईक्षण, काम, तप, विचिकीर्षा आदि शब्द आचार्य की दृष्टि में समानार्थक हैं और पश्यन्ती के बोधक हैं।

राजानक जयरथ 'विवेक' में कहते हैं कि परा भगवती अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति के द्वारा जब बाह्य रूपों को अभिव्यक्त करना चाहती है तब उनकी संज्ञा 'पश्यन्ती' हो जाती है। यह विभागशून्या, वाच्य-वाचक क्रम से अतीता, अस्फुटा, चिज्ज्योतिप्रधाना एवं साक्षी या द्रष्टारूपात्मिका परा भगवती ही 'पश्यन्ती' है— 'सैव हि परमेश्वरी स्वस्वातन्त्र्यात् बहिरूपतामुल्लिलासयिषुर्वाच्य-वाचकक्रमानु-दयाद्विभागस्यास्फुटत्वाच्चिज्ज्योतिष एव प्राधान्यात् द्रष्टृरूपतया पश्यन्तीति शब्दव्यपदेश्या।'

पश्यन्ती के भेद— पश्यन्ती के तीन भेद प्रधान हैं— स्थूल पश्यन्ती, सूक्ष्म पश्यन्ती और पर पश्यन्ती।

१. स्थूल पश्यन्ती— षडज आदि सप्त स्वरों के संयोग या वर्गीकरणों (विभाजनों) से रहित होकर आलाप द्वारा आह्लाद उद्भूत करने वाली प्राथमिक नादमात्रस्वभावा पश्यन्ती ही स्थूल पश्यन्ती है—

तत्र या स्वरसन्दर्भसुभगा नादरूपिणी।।
सा स्थूला खलु पश्यन्ती वर्णाद्यप्रविभागतः।। (तन्त्रालोक)

२. सूक्ष्मा पश्यन्ती— जिगासा (गाने की इच्छा) का अनुसन्धान ही सूक्ष्मा पश्यन्ती है।

३. पर पश्यन्ती— उपाधिशून्या एवं परचिदात्मस्वरूपा पश्यन्ती ही पर पश्यन्ती है। आचार्य अभिनवगुप्त तन्त्रालोक (आह्निक-३) में कहते हैं—

अस्मिन् स्थूलत्रये यत्तदनुसन्धानमादिवत्।।

पृथक्-पृथक् तत्त्रितयं सूक्ष्ममित्यभिधीयते।
षडजं करोमि मधुरं वादयामि ब्रुवे वचः।।

पृथगेवानुसन्धानत्रयं संवेद्यते किल।
एतस्यापि त्रयस्याद्यं यद्रूपमनुपाधिमत्।।
तत्परं त्रितयं तत्र शिवः परचिदात्मकः।।

योगिनीहृदय में पश्यन्ती का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

बीजभावस्थितं विश्वं स्फुटीकर्तुं यदोन्मुखी।
वामा विश्वस्य वमनादङ्कुशाकारतां गता।।

इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता।।

अमृतानन्द कहते हैं कि जैसे बीज में वृक्ष अन्तर्निहित रहता है, उसी प्रकार ३६ तत्त्वों से निर्मित विश्व परारूप कारण में तन्मात्रा के रूप में स्थित रहता है। 'उत्पत्ति' का अर्थ है— कारण से कार्य की अभिव्यक्ति। गर्भ में स्थित सन्तान के बाहर निकलने के समान जब 'वामा' विश्व का वमन कर देती है। 'पश्यन्ती' का सम्बन्ध इच्छा-शक्ति से है। इच्छाशक्ति वामा शक्ति के साथ सामरस्यापन्ना होकर पश्यन्ती कहलाती है— 'इच्छाशक्ति-र्वामांशशक्तिसामरस्यमापन्ना पश्यन्तीरूपेण स्थिता।[१]'

मध्यमा : विशेष स्पन्द—

'तदेव शब्दब्रह्म तेनैव वायुना हृदयपर्यन्तमभिव्यज्यमानं निश्चयात्मिकया बुद्ध्या युक्तं विशेषस्पन्दप्रकाशरूपनादमयं सन्मध्यमावागित्युच्यते।'[२]

---

१. द्यीपिका-अमृतानन्द। २. सौभाग्यभास्कर।

मध्यमा वाक् का सम्बन्ध ज्ञानशक्ति से है—

१. इच्छाशक्ति— इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता।

२. ज्ञानशक्ति— ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा मध्यमा वागुदीरिता।[1]

ज्ञानशक्ति + ज्येष्ठा = मध्यमा वाक्।

३. क्रियाशक्ति का सम्बन्ध वैखरी वाक् से है। (योगिनीहृदय)

अमृतानन्द कहते हैं 'ऋजुरेखामयी अत्र शृङ्गाटाग्ररेखाकारा मध्यमा वागुदीरिता मध्यमामातृकात्वमापन्ना।'

मध्यमा के दो प्रकार हैं—

१. सूक्ष्मा मध्यमा : नवनादमयी।

२. स्थूला मध्यमा : नवनादमयी।

योगिनीहृदय में वैखरी का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

प्रत्यावृत्तिक्रमेणैवं शृङ्गाटवपुरुज्ज्वला।
क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा।।[2]

सौभाग्यभास्कर में भास्करराय कहते हैं— 'अथ तदेव (शब्दब्रह्म) वदनपर्यन्तं तेनैव वायुना कण्ठादिस्थानेष्वभिव्यज्यमानमकारादिवर्णरूपपरं श्रोत्रग्रहणयोग्यस्पष्टतरं प्रकाश-रूपबीजात्मकं सद्वैखरी वागुच्यते।'

'वैखरी विश्वविग्रहा।' भास्कर राय सौभाग्यभास्कर में कहते हैं—

'विशेषेण खर कठिनस्तस्येयं वैखरी सैव रूपं यस्याः। घनभावमापन्नेति यावत्। वै निश्चयेन खं कर्णविवरं राति गच्छतीति व्युत्पत्तिः। सौभाग्यसुधोदये कथिता— प्राणेन विखराख्येन प्रेरिता वैखरी पुनः।[3]'

योगिनीहृदय में वैखरी का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

ऋजुरेखामयी विश्वस्थितौ प्रथितविग्रहा।
तत्संहृतिदशायां तु वैन्दवं रूपमास्थिता।।

प्रत्यावृत्तिक्रमेणैव शृङ्गाटवपुरुज्ज्वला।
क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा।।

प्रपञ्चसारतन्त्र में आचार्य शंकर कहते हैं—

मूलाधारात् प्रथममुदितो यश्च भावः पराख्यः।
पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः।।

व्यक्ते वैखर्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्णा।
बद्धस्तस्माद्भवति पवने प्रेरिता वर्णसंज्ञा।।

---

१. योगिनी हृदय
२. सौभाग्य भास्कर
३. सौभाग्य भास्कर
४. प्रपञ्चसार तन्त्र

वाणियों का स्थान—

१. मूलाधार— परा वाक्
२. हृदय— पश्यन्ती
३. बुद्धि से संयुक्त होने पर— मध्यमा
४. कण्ठ— वैखरी।

कामकलाविलास की दृष्टि एवं लक्ष्मीधर का मत— मध्यमा' वाणी की तृतीय वृत्ति है। लक्ष्मीधर के मतानुसार इसका स्वरूप इस प्रकार है— 'मध्यमानाम परापश्यन्त्यो उच्चानुच्चावस्थात्मिका।[१]'

लक्ष्मीधर के अनुसार मध्यमा के दो रूप हैं— वामादि व्यष्टिरूपा (स्थूला) और वामादि समष्टिरूपा (सूक्ष्मा)।

वामादिक शक्तियों के चार भेद हैं— वामा, ज्येष्ठा, रौद्री एवं अम्बिका। ये चारो शक्तियाँ श्रीचक्र में अधोमुख एवं चतुर्योन्यात्मिका हैं तथा इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रिया-शक्ति, शान्ता शक्ति एवं परा शक्ति ऊर्ध्वमुख एवं शक्तियोन्यात्मिका हैं। इन्हीं नव व्यूहात्मिका शक्तियों से भगवती को 'नवात्मा' कहा गया है।

श्रीचक्र में शक्तियों की स्थिति[२]

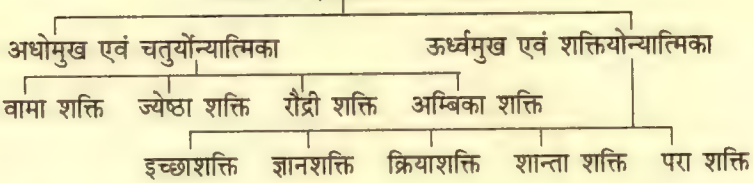

कामकलाविलास में कहा भी गया है—

एका परा तदन्या वामादिव्यष्टिमातृसृष्ट्यात्मा।
तेन नवात्मा माता जाता सा मध्यमाऽभिधानाभ्याम्।।

द्विविधा हि मध्यमा सा सूक्ष्मा स्थूलाकृतिः स्थिरा सूक्ष्मा,
नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा तु भूतलिप्याख्या।
आद्या कारणमन्या कार्यं त्वनयोर्यतस्ततो हेतोः,
सैवेयं न हि भेदस्तादात्म्यं हेतुहेतुमदभीष्टम्।।

१. एका परा— इन वाणियों में एक तो 'परा वाणी' है और वह गुणत्रय की समरसा-वस्था या साम्य स्थिति है— 'एका परेति सत्त्वरजस्तमोगुणसाम्यरूपा।'

२. तदन्या पश्यन्ती— यह वाणी (वाक्तत्त्व) 'पश्यन्ती' कहलाती है और अन्य-तर गुणवैषम्यरूप है। इस स्तर पर गुणसाम्य नहीं रहे जाता। परा = गुणत्रय की साम्या-वस्था, पश्यन्ती = गुणों की वैषम्यावस्था।[३]

---

१. लक्ष्मीधरा (सौन्दर्य लहरी की टीका)।
२. लक्ष्मीधर : लक्ष्मीधरा टीका (सौन्दर्य लहरी की टीका)।
३. लक्ष्मीधर : सौन्दर्य लहरी की टीका (लक्ष्मीधरा)।

३. मध्यमा— मध्यमा वाक् वामादि व्यष्टिरूपा एवं स्थूला है। ये वामादिक शक्तियाँ बैन्दव स्थान के दोनों ओर सम्पुट रूप से अवस्थित हैं। इसीलिये इन्हें 'व्यूह' शब्द से अभिहित किया गया है और इन्हें 'नवात्मा' भी कहा गया है।[१]

समष्टिरूपा मध्यमा परा शक्ति में अन्तर्भूत है। इसी कारण माता (मातृका) 'नवात्मा' कही जाती है और नवात्मक स्वरूप होकर उत्पन्न होती है। वही मध्यमा विभिन्न अभिधानों में व्यवहृत होकर दो प्रकार की कही जाती है— स्थूला एवं सूक्ष्मा।[२]

मध्यमा वाक् का सूक्ष्म स्वरूप स्थिर है। उसकी यह स्थिरावस्था तो मात्र समाधिगम्य है— 'स्थैर्यावस्थायां युक्तावस्थायामेव अवभास्या।'

स्थूल मध्यमा वाक् नौ नादों से युक्त है। 'नवनादमयी' कहे जाने का अर्थ यही है कि मध्यमा में नौ नाद अनुस्यूत हैं और वे नौ नाद हैं— अ, क, च, ट, त, प, य, श, क्ष। इसी को स्पष्ट करते हुये कहा भी है— 'नवनादाः अकचटतपयशक्षाः। '

ये सभी भिन्नजातीय हैं; क्योंकि स्वर (अ) एवं क च ट त प य श क्ष वर्ग परस्पर भिन्न-भिन्न प्रतीयमान हैं। इनमें 'आद्या कारणमन्या' अर्थात् इन वाणियों में पूर्ववर्ती वाणी परवर्ती वाणी का कारण है अर्थात् आद्या (सूक्ष्मा) मध्यमा परवर्ती स्थूलरूपा नववर्गात्मिका मध्यमा का कारण है। कहा भी है— 'आद्या सूक्ष्मारूपा मध्यमा कारणं स्थूलरूपायाः मध्यमायाः नववर्गात्मिकायाः (कार्यस्य)।'

सूक्ष्म एवं स्थूल मध्यमा में तत्त्वतः कोई भेद नहीं है—

'सैवेयं नहि भेदस्तादात्म्यं हेतुहेतुमदभीष्टम्।' (कामकलाविलास) मध्यमात्मिका चिच्छक्ति भी नवात्मा है; क्योंकि सर्वत्र अभेद है।

वैखरी वाक् एवं मध्यमा— वैखरी मातृकाओं का जो वासनात्मक सूक्ष्म रूप है, वही मध्यमा वाक् कहलाता है। वैखरी में वर्ण स्थूल होते हैं और मध्यमा वाक् में सूक्ष्म होते हैं।

मध्यमा वाक् हिरण्यगर्भ वर्ण हैं। इन्हें ही तान्त्रिक आचार्यों ने 'नाद' कहा है। शब्दब्रह्म वायु की सहायता से नाभि से हृदयपर्यन्त अभिव्यक्त होता हुआ निश्चयात्मिका बुद्धि से संवलित होकर विशेष स्पन्दात्मक प्रकाशस्वरूप एवं नादात्मक स्वरूप में 'मध्यमा वाक्' कहलाता है।

प्रकाशांश ज्येष्ठा शक्ति एवं विमर्शांश ज्ञानशक्ति की संयोगजन्य परिणति ही मध्यमा है। मध्यमा विष्णु के पर्याय 'ज्येष्ठा शक्ति' तथा विष्णु शक्ति पृथ्वी के पर्याय 'ज्ञान शक्ति' का संयोग है।

---

१. लक्ष्मीधरः लक्ष्मीधरा (सौन्दर्य लहरी की टीका)

२. लक्ष्मीधरः लक्ष्मीधरा (सौन्दर्य लहरी की टीका)

प्रकाशांश	विमर्शांश	
१. वामा शक्ति	१. इच्छा शक्ति	
२. ज्येष्ठा शक्ति +	२. ज्ञान शक्ति →	'मध्यमा वाक्'।
३. रौद्री शक्ति	३. क्रिया शक्ति	

क. प्रकाशस्यांशभूता वामाज्येष्ठारौद्रयः शक्तयस्तिस्रो ब्रह्मविष्णुरुद्राः पुंरूपाः। तत्समष्टि शान्तात्मिका शक्तिस्तुरीया।

ख. विमर्शस्यांशभूता इच्छाज्ञानक्रियाः।[१]

जो वाणियों का त्रिकोण △ बनता है, उस त्रिकोण की जो ऋजु रेखा है, उसे ही मध्यमा कहते हैं—

ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा मध्यमा वागुदीरिता।
ऋजुरेखामयी विश्वस्थितौ प्रथितविग्रहा।।[२]
मध्ये मा बुद्धिर्यस्याः सा मध्यमा।[३]

नटनानन्द चिद्वल्ली में कामकलाविलास के सत्ताइसवें श्लोक की व्याख्या करते हुए कहते हैं—

१. सूक्ष्मा मध्यमा नवनादमयी है और स्थूला मध्यमा नववर्गात्मा है।

२. अन्तर्मुखी योगी ही मध्यमा का साक्षात्कार कर सकते हैं, अन्य नहीं—

क. सा अन्तर्मुखपरमयोगिभिः दृश्या मध्यमा।

ख. तत्र सूक्ष्मा समाधिस्थलेन अनुभूयमाना।

ग. स्थूलाकृत्या पण्डितपामराभिलपनयोग्यवर्णावलया स्थिता सर्वदा वर्तमाना।

घ. वायु का कुम्भक प्राणायाम के द्वारा निरोध करके 'स्वाधिष्ठान' आदि कमलों का उद्भेदन करते हुये द्वादशान्तःस्थित महापंकज में स्थित 'परमशिव' के क्रोड़ में आरोहण करती हुई 'महामातृका कुण्डलिनी' अनेक प्रकार की नादात्मक ध्वनियाँ करती हुई सुनी जाती है और मित्रावरुण-सदन से शिवाङ्कपर्यन्त उपसर्पण करती हुई यह मातृकात्मिका शक्ति समाधिस्थ योगियों (महामाहेश्वर, समाधिस्थ योगियों) के द्वारा अपनी आत्मा के रूप में ग्रहण की जाती है। गुदा का अवष्टम्भन करके और आधार चक्र से वायु को उत्थापित करके तथा स्वाधिष्ठान की परिक्रमा करते हुये मणिपूरक चक्र में प्रवेश करके तथा अनाहत चक्र को अतिक्रान्त करके एवं विशुद्ध चक्र में प्राणों को निरुद्ध करके आज्ञा चक्र की ओर अग्रपद होती हुई तथा ब्रह्मरन्ध्र का ध्यान करती हुई और मूलाधार

---

१. वरिवस्यारहस्यम् (प्रकाश)
२. नित्याषोडशिकार्णव (६ विश्राम)
३. प्रपञ्चसारतन्त्र की व्याख्या : पद्मपादाचार्य।

से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त व्याप्त महाकुण्डलिनी का स्वरूप प्रारम्भ से अन्त तक नादात्मक रूप में ही अनुभूत होता है।

'स्थूलमध्यमा' नववर्गात्मा, अ-क-च-ट-त-प-य-शलात्मिका, स्थूला, सर्वव्यवहारविषयिणी कहलाती है।

तन्त्रसद्भाव की दृष्टि— समस्त मातृकायें परतेजसमन्वित हैं और उनके द्वारा समस्त भुवनों से ब्रह्म तक सभी व्याप्त हैं। इनमें नाद भी अनुस्यूत है—

या सा तु मातृका लोके परतेजस्समन्विता।
तया व्याप्तमिदं सर्वमाब्रह्मभुवनान्तरम्।।

तत्रस्थश्च यथा नादो व्यापितश्च सुरार्चिते।
अवर्णस्थो यथा वर्णा स्थितः सर्वगतः प्रिये।।

इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया शक्तियाँ ही तो पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी हैं— 'इच्छाज्ञानक्रियाशक्तयस्तु पश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपा इति प्रपञ्चिता।' चतुःशती में भी कहा गया है—

इच्छाशक्तिस्तथा ज्ञेया पश्यन्ती वपुषा स्थिता।

परा शक्ति ही विभक्त होकर नववर्गात्मिका बन जाती हैं—

आभ्यो युक्ता विविक्ताभ्यः सञ्जातो नववर्गकः।
नवधा च स्मृता या तु नववर्गोपलक्षिता।।

नव नादों से ही सूक्ष्म नववर्गात्मा 'स्थूल मध्यमा' (अ एवं क च ट त प य श लस्वरूप नववर्ग) का जन्म होता है।

नवनाद (सूक्ष्म मध्यमागत ९ नाद)

नववर्गात्मा स्थूल मध्यमा (सूक्ष्म नववर्ग)	स्थूल मध्यमा = सूक्ष्म नववर्ग-	स्थूल नववर्गात्मा या स्थूल वर्णात्मा वैखरी वाक् का जन्म।

वर्णमाला

सूक्ष्म (मध्यमा)	स्थूल (वैखरी)

हंसोपनिषद् और नाद के भेद

हंसोपनिषद्प्रोक्त नाद के निम्नांकित दस भेद हैं—

१. चिनि
२. चिनिचिनि
३. घण्टानाद
४. शंखनाद
५. तन्त्रीनाद
६. तालनाद
७. वेणुनाद
८. भेरीनाद
९. मृदंगनाद
१०. मेघनाद

नौ नादों का अनुभव हो जाने के बाद ही दसवें नाद का अभ्यास करना चाहिये। मन का उसमें लय हो जाने पर संकल्प-विकल्प नष्ट हो जाते हैं और गुणावगुण जल जाते हैं, तभी सदाशिव का साक्षात्कार होता है। वे शक्तिमय, सर्वव्यापक, स्वयंज्योति, शुद्ध, बुद्ध, नित्य, निरञ्जन एवं शान्त हैं।

जिन वामा, ज्येष्ठा, रौद्री के संयोग से वाणियों का उद्भव होता है, उनका स्वरूप इस प्रकार है—

वामा विश्वस्य वमनात् ज्येष्ठा शिवमयी यतः।
द्रावयित्री रुजं रौद्री दोग्ध्री चाखिलकर्मणाम्।।

अम्बिका स्फुरत्तात्मिका महासत्ता है— 'अम्बिका च सा स्फुरत्ता महासत्तेति।' वह सर्वातिशायी, परिपूर्णरूपा एवं स्वात्मस्फुरणावलोकनचतुरा है। चतुःशती में कहा भी गया है—

आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।
अम्बिकारूपमापन्ना परा वाक् समुदीरिता।।

शान्ता शक्ति तो निष्कल, निष्क्रिय, शान्ता, निरंकुशा एवं चिन्मयी शक्ति है— शान्ता च निष्कलं निष्क्रियं शान्तमित्यादिश्रुत्या निरङ्कुशा चिन्मयी शक्तिः (चिद्वल्ली)। अमृतानन्दनाथ ने भी कहा है— 'निरंशौ नादबिन्दू चेत्यत्र निरङ्कुशा शान्ता शक्तिः, शान्ताया निरंशत्वं चिद्रूपत्वादिति।'

मध्यमा— 'मध्यमा परापश्यन्त्योः समरसावस्था' (चिद्वल्ली)।

वामा— 'वामानाम स्वान्तःस्थितप्रपञ्चवमनाद्विश्वजनयित्रीत्यभिधीयते' (चिद्वल्ली)।

ज्येष्ठा— 'ज्येष्ठा सर्वमङ्गलकारिणी' (चिद्वल्ली)।

रौद्री— 'रौद्री सर्वरोगविद्राविणी' (चिद्वल्ली)।

अम्बिका— 'अम्बिका समस्तेष्टप्रदा शक्तिः' (चिद्वल्ली)।

पश्यन्ती— 'वामादिव्यष्टिमातृसृष्ट्यात्मावामादिशान्तान्तशक्तिनवकमयी यतस्तेन कारणेन सा माता पश्यन्ती नाम जननी।'

स्वच्छन्दतन्त्र और नाद के भेद

स्वच्छन्दतन्त्र में नाद के आठ भेद हैं—

१. घोष	३. स्वन	५. स्फोट	७. झाङ्कार
२. राव	४. शब्द	६. ध्वनि	८. ध्वंकृति।

नव नादों का अवस्थान कहाँ है? इस विषय में वरिवस्यारहस्यम् की प्रकाश टीका में इस प्रकार कहा गया है— 'ततो नवनादाः अविकृतशून्यादयो जाताः, तत्समष्टिश्च नाद-ध्वन्यादिपदवाच्या नातिसूक्ष्मा परावन्नातिस्थूला वैखरीवदतो मध्यमाख्या मातृका मध्यमा-

वयवरूपमविकृतशून्यस्पर्शनादध्वनिबिन्दुशक्तिबीजाक्षराख्यं नादनवकं मूलाधारादिषट्के नादे नादान्ते ब्रह्मरन्ध्रे च स्थितम्।'

भास्कर राय के अनुसार नव नादों की समष्टि ही 'मध्यमा' है। परा वाक् की भाँति सूक्ष्म एवं वैखरी की भाँति स्थूल— दोनों न होने के कारण (दोनों के मध्य में रहने के कारण) इसे 'मध्यमा वाक्' कहा जाता है।

मध्यमा के अन्य भेद— 'स्थूल मध्यमा, सूक्ष्म मध्यमा, पर मध्यमा एवं यत्तु चर्मावनद्धादि किञ्चित्तत्रैष यो ध्वनिः।'

स स्फुटास्फुटरूपत्वान्मध्यमा स्थूलरूपिणी।।

(तन्त्रालोक-३ आ०)

अर्थात् चमड़े से मढ़े मृदंगादि में कराघातजन्य ध्वनि स्थूल मध्यमा की ध्वनि होती है। स्फुटास्फुट होने से यही 'स्थूलरूपिणी मध्यमा' कही जाती है।

यह पश्यन्ती की तुलना में अधिक स्फुट एवं वैखरी की तुलना में अस्फुट होने के कारण स्फुटास्फुट है।

वादनेच्छा के अनुसन्धान को 'सूक्ष्म मध्यमा' कहते हैं। यह वाक् संवेदनात्मक मात्र होती है।

वादनेच्छारहित चिदात्मक स्वरूप ही 'पर मध्यमा' है।

सोमानन्दपाद की दृष्टि— शिवदृष्टि में वे कहते हैं कि शब्दब्रह्म अर्थप्रतिपादन की इच्छा से विवक्षोपहित होकर बिन्दुनामक प्राणापानात्मक वायु के क्रम से उल्लसित होने पर मध्यमा वाक् कहलाता है—

आस्ते विज्ञानरूपत्वे स शब्दोऽर्थविवक्षया।
मध्यमा कथ्यते सैव बिन्दुनादमरुत्क्रमात्।।

ब्राह्मणगीता के अनुसार—

केवलं बुद्ध्युपादानक्रमरूपानुपातिनी।
प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्तते।।

अर्थात् जो वाणी बुद्धिरूप उपादान वाली है, सूक्ष्म प्राणवृत्ति की अनुगामिनी है और अन्तःसन्निवेशयुक्त है तथा क्रम न होने पर भी क्रम को ग्रहण किये हुये के समान है, वही मध्यमा वाक् है। वाक्यपदीय की टीका में भी कहा गया है—

'मध्यमा त्वन्तःसन्निवेशिनी परिगृहीतक्रमेव बुद्धिमात्रोपादाना सूक्ष्मप्राणवृत्त्यनुगता।'

पञ्चतन्मात्रा, मन, बुद्धि एवं अहंकारस्वरूप पुर्यष्टक से युक्त प्राणशक्ति की आश्रयस्वरूपा सुषुम्ना नाड़ी में विश्रान्त मन, बुद्धि और अहंकारात्मक अन्तःकरण को जो विमर्श शक्ति प्रेरणा प्रदान करती है, वही मध्यमा वाक् है। उससे अनुप्रेरित होकर ही अन्तःकरण—

संकल्पन, निश्चयात्मक निर्धारण, अभिमनन एवं विकल्पन आदि अपने व्यापार में प्रवृत्त होता है। उस काल में वह विमर्शसंवलिता वाणी संकल्परूप ग्राह्य एवं संकल्पयितारूप ग्राहक भेदोपहित होकर स्फुटक्रम से उपरक्त होती है, तब चिन्तनस्वरूपा वह ज्ञानशक्ति एवं मध्यमा कही जाती है। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में इसी तथ्य को इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

'अन्तःकरणं मनोबुद्ध्यहङ्कारलक्षणं मध्यभूमौ पुर्यष्टकात्मनि प्राणाधारे विश्रान्तं या विमर्शशक्तिः प्रेरयति सा मध्यमा वाक्।'

'तत्प्रेरितं च तदन्तःकरणं सङ्कल्पने, निश्चये, अभिमनने च स्वस्मिन् व्यापारे विकल्पन-लक्षणे प्रवर्तते। तत्काले सा विमर्शमयी वाक् सङ्कल्प्यादिकं ग्राह्यं सङ्कल्पयित्रादिरूपं च ग्राहकं स्वेन अभिधानस्य 'इमं घटमहं सङ्कल्पयामि' इत्यादेर्वाचकस्य शब्दस्य शब्दस्य भेदेन स्फुटेन क्रमेण आभुंक्ते गाढं परामृशति यतस्ततांश्चिन्तनशब्दवाच्या मध्यभवत्वात् मध्यमा ज्ञानशक्तिरूपा।'

भास्कर राय सौभाग्यभास्कर में कहते हैं कि 'अथ तदेव शब्दब्रह्म तेनैव वायुना हृदयपर्यन्तमभिव्यज्यमानं निश्चयात्मिकया बुद्ध्या युक्तं विशेषस्पन्दप्रकाशरूपनादमयं सन् मध्यमा वागित्युच्यते।

मूलाधारात् प्रथममुदितो यश्च भावः पराख्यः।
पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः।।

विमर्श शक्ति और परा-पश्यन्ती आदि वाणियाँ— आचार्य जयरथ कहते हैं कि पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी के रूपों में स्वात्मचमत्कारमयी विमर्शशक्ति ही उल्लसित होती है— 'पश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपतया स्वात्मचमत्कारमयी विमर्शशक्तिरेव विजृम्भते।'

(तन्त्रालोक-१.२७०)

नादव्यूह और शब्दवृत्तियाँ— महाभैरव 'नवात्मा' कहे जाते हैं; क्योंकि वे नव-व्यूहात्मक हैं। उनके नव व्यूह निम्नांकित हैं—

१. कालव्यूह	४. ज्ञानव्यूह	७. बिन्दुव्यूह
२. कुलव्यूह	५. चित्तव्यूह	८. कलाव्यूह
३. नामव्यूह	६. नादव्यूह	९. जीवव्यूह

मातृका के चार रूप हैं—

१. परा वाक्	३. मध्यमा वाक्
२. पश्यन्ती वाक्	४. वैखरी वाक्

लक्ष्मीधर ने कहा भी है— 'मातृकायाः परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी इति चत्वारि रूपाणि।'

कामकलाविलास की दृष्टि से मध्यमा के दो भेद हैं— सूक्ष्मा मध्यमा,और स्थूला मध्यमा।

मध्यमा वाक्— पद्मपादाचार्य का कथन है कि मध्यमा वाक् बाह्यान्त:करणाद्यात्मिका, हिरण्यगर्भरूपिणी, बिन्दुतत्त्वमयी, नाभि से हृदयपर्यन्त अभिव्यक्त तथा विशेषस्पन्दरूपा, संकल्पादिस्वरूपा एवं बिन्दुमयी है— 'अथ बाह्यान्त:करणाद्यात्मिका हिरण्यगर्भरूपिणीं बिन्दु-तत्त्वमयीं नाभ्यादिहृदयान्ताभिव्यक्तिस्थानां विशेषस्पन्दसङ्कल्पादि-सत्तात्वात् मध्यमां वाचमाह।'

पद्मपादाचार्य मध्यमा की व्याख्या 'मध्ये स्थिता मध्यमा' कहकर भी करते हैं।

सौभाग्यभास्कर में भास्कर राय कहते हैं कि—

तदुक्तं पश्यन्तीव न केवलमुत्तीर्णा नापि वैखरीव बहि:।
स्फुटतरनिखिलावयवा वाग्रूपा मध्यमा तयोरस्मात्।।

अर्थात् मध्यमा वाक् न तो पश्यन्ती की भाँति केवल उत्तीर्णा है और न ही वैखरी की भाँति पूर्णतया बाह्यवर्ती और स्फुटतम रूप में पूर्णत: प्रकाशित है; प्रत्युत यह पश्यन्ती की अपेक्षा स्फुटतर है। आचार्य पद्मपाद के अनुसार मध्यमा वाक् बिन्दुमयी है तो आचार्य भास्कर राय इसे नादमयी स्वीकार करते हैं। सौभाग्यभास्कर में वे कहते हैं कि 'अथ तदेव शब्दब्रह्म तेनैव वायुना हृदयपर्यन्तमभिव्यज्यमानं निश्चयात्मिकया बुद्ध्या युक्तं विशेषस्पन्दप्रकाशरूपं नादमयं सन्मध्यमा वागित्युच्यते।'

राघवभट्ट के अनुसार मध्यमा वाक नादबिन्दुरूपिणी है, लेकिन अन्य आचार्य ने 'सैव हृत्पङ्कजं प्राप्य मध्यमा नादरूपिणी' कहकर इसका निरूपण किया है। राघवभट्ट ने शारदातिलक के प्रथम पटल के १०० वें श्लोक की व्याख्या में मध्यमा को नादबिन्दुमयी कहते हुये मध्यमा को नादरूपिणी मानने वाले किसी अन्य आचार्य के मत का भी उल्लेख किया है।

शारदातिलक में कहा गया है कि 'बिन्दुर्नादो बीजमिति तस्य भेदा: समीरिता:।' अर्थात् मध्यमा के तीन भेद हैं— बिन्दु, नाद एवं बीज। इनके उद्भव का क्रम इस प्रकार है—

आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुसमुद्भव:।

शक्ति के पूर्व विद्यमान थे— सच्चिदानन्दविभवसकलपरमेश्वर; कहा भी है—

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नाद: नादाद्बिन्दुसमुद्भव:।।

सच्चिदानन्द विभव सकल परमेश्वर → शक्ति → नाद → बिन्दु।

आचार्य पद्मपाद (प्र. सा. तन्त्र की टीका में) मध्यमा को बिन्द्वात्मक एवं पश्यन्ती को नादात्मक कहते हैं।

शारदातिलक में 'बिन्दुर्नादबीजमिति' के द्वारा बिन्दु, नाद एवं बीजरूप क्रम का उल्लेख किया गया है, जबकि दूसरी ओर 'आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुसमुद्भव:' के द्वारा शक्ति-नाद-बिन्दुरूप क्रम का निर्देश किया गया है और ऊपर बिन्दु नाद- बीज का क्रम है।

सामान्यतः पश्यन्ती को बिन्द्वात्मक और मध्यमा को नादात्मक माना गया है। हाँ, नाद एवं बिन्दु के भी दो रूप हैं— कारणस्वरूप नाद एवं कार्यस्वरूप नाद तथा कारणस्वरूप बिन्दु एवं कार्यस्वरूप बिन्दु।

'स बिन्दुर्भवति त्रिधा' कहकर राघवभट्ट ने बिन्दु को तीन प्रकार का स्वीकार किया है, लेकिन 'एतौ नादबिन्दू प्रथमोक्तनादबिन्दुभ्यामन्यौ तत्कार्यरूपौ ज्ञेयौ' वचन के द्वारा उन्होंने नाद एवं बिन्दु के दो रूप भी बताये हैं— कारणरूप नाद एवं कार्यरूप नाद तथा कारणरूप बिन्दु एवं कार्यरूप बिन्दु।

मध्यमा के भेद— पुण्यानन्द के अनुसार मध्यमा के दो भेद हैं— सूक्ष्मा मध्यमा (नवनादमयी) एवं स्थूला मध्यमा (अक्षरों के नव वर्गों से युक्त, भूतलिपि नाम वाली) कहा भी है—

द्विविधा हि मध्यमा सा सूक्ष्मा स्थूलाकृतिस्थिता सूक्ष्मा।
नावनादमयी स्थूला नववर्गात्मा तु भूतलिप्याख्या।।

इसी को स्पष्ट करते हुये वे कहते हैं— 'मध्यमानाम शक्तिर्द्विविधा द्विप्रकारा स्थूल-सूक्ष्मभावात्। तत्र सूक्ष्मा समाधिस्थलेन अनुभूयमाना (समाधिद्वारा अनुभवैकगम्या)। स्थूला-कृत्या पण्डितपामराभिलपनयोग्यवर्णावलया स्थिता सर्वदा वर्तमाना।' अर्थात् दूसरी स्थूला मध्यमा पण्डितों एवं पामरों द्वारा अभिलपन के योग्य एवं वर्णात्मिका है। इसीलिये मध्यमा को द्विस्वरूपा कहा गया है— 'एतदेव व्याचष्टे— सूक्ष्मा नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा इति।'

स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों मध्यमारूपों में तत्त्वतः कोई भेद न होकर अभेद ही है। इसीलिये कामकलाविलास (२८) में पुण्यानन्द कहते भी हैं—'सैवेयं न हि भेदः तादात्म्यं हेतुहेतुमतोर्दिष्टम्।'

नटनानन्द द्वारा उल्लिखित नादों के प्रकार— नटनानन्द ने सूक्ष्मा मध्यमा एवं नव नादों का निरूपण किया है, वे नव नाद निम्नवत् हैं—

१. चिणि	४. शंखनाद	७. वेणुनाद
२. चिणिचिणी	५. तन्त्रीनाद	८. भेरीनाद
३. घण्टानाद	६. तालनाद	९. मृदंगनाद

नवनादमयी सूक्ष्मा का स्वरूप— नटनानन्द के चिद्वल्ली में नादों के दस प्रकार बतलाये हैं; वे कहते हैं— 'नादं विभजते। स च दशविधः— 'चिणी'ति प्रथमः, 'चिणि-चिणी'ति द्वितीयः, 'घण्टानाद'स्तृतीयः, 'शङ्खनाद'श्चतुर्थः, पञ्चमस्'तन्त्रीनादः', षष्ठ-'स्तालनादः', सप्तमो 'वेणुनादः', अष्टमो 'भेरीनादः', नवमो 'मृदङ्गनादः', दशमो 'मेघनादः'। नवमं परित्यज्य दशमेवाभ्यसेत्। तस्मिन् विलीने मनसि गते सङ्कल्पे विकल्पे च दग्धे सदाशिवोऽहमिति परमहंसोपनिषत्। मूलाधारे दग्धे सदाशिवोऽहमिति परमहंसोपनिदः

मूलाधारे महेश्वरीत्यादिना च न वेदविधिगोचरमित्यन्तं नववर्गात्मा अ-क-ट-त-प-य-श-लात्मिका स्थूला सर्वव्यवहारविषयिणीत्युच्यते।'

स्वात्माराम मुनीन्द्रप्रोक्त नादों के प्रकार— स्वात्माराम मुनीन्द्र (हठयोगप्रदीपिका) ने नादतत्त्व का निरूपण करते हुये स्पष्ट किया है कि नाद की चार अवस्थायें हैं— आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति; जिनका विवरण निम्नवत् है—

१.	अनाहत क्वणक का नाद	नाद की आरम्भावस्था	ब्रह्मग्रन्थिभेदन।
२.	विमर्द एवं भेरी का नाद	नाद की घटावस्था	विष्णुग्रन्थिभेदन।
३.	मर्दल ध्वनिजन्य नाद	नाद की परिचयावस्था	
४.	वैणव नाद एवं वीणानाद	नाद की निष्पत्ति अवस्था	रुद्रग्रन्थिभेदन।

क्वणक नाद (आरम्भावस्था)— भेरी का नाद (घटावस्था)— मर्दल नाद (परिचयावस्था)— वैणव एव तन्त्री नाद— निष्पत्त्यवस्था (राजयोग)।

सुषम्ना में प्राणों के लय से आविर्भूत अनाहत नादों के प्रकार— स्वात्माराम मुनीन्द्र ने हठयोगप्रदीपिका में बारह नादों का क्रम इस प्रकार बतलाया है—

नादानुसन्धान जन्य नादक्रम

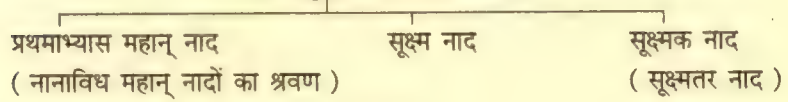

नादक्रम[1]

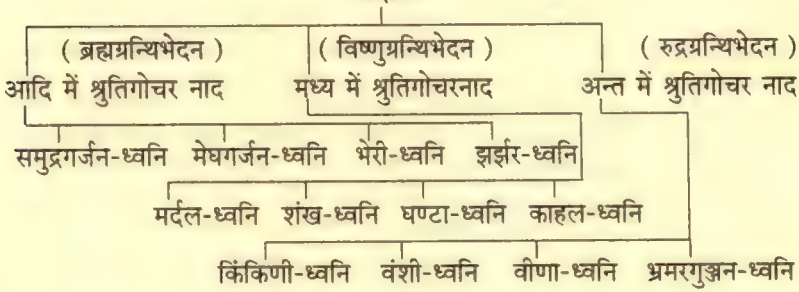

इसी को निरूपित करते हुये हठयोगप्रदीपिका में कहा भी गया है—

आदौ जलधिजीमूतभेरीझर्झरसम्भवाः।
मध्ये मर्दलशङ्खोत्था घण्टाकाहलजास्तथा।
अन्ते तु किङ्किणीवंशवीणाभ्रमरनिःस्वना।।

---

१. हठयोगप्रदीपिका

शिवसंहिताप्रोक्त नाद-विधान एवं नाद-क्रम

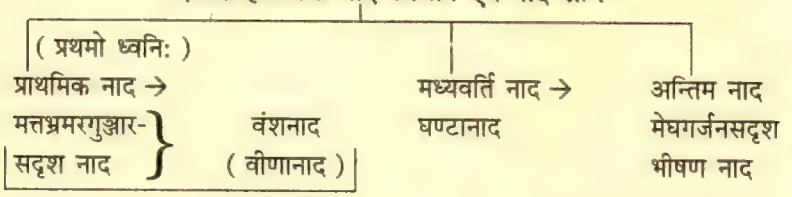

मत्तभृङ्गवेणुवीणासदृशः प्रथमो ध्वनिः।
घण्टानादसमः पश्चाद् ध्वनिर्मेघो रवोपमः।। (शिवसंहिता)

हठयोगप्रदीपिकानिर्दिष्ट विधान—

अवस्थाद्वय

आरम्भावस्था	घटावस्था
अनाहत चक्र में स्थित—	विशुद्धाख्य चक्र में स्थित—
१. ब्रह्मग्रन्थि का (प्राणायामाभ्यास से) भेदन— आनन्दाविर्भाव।	१. घटावस्था में प्राणवायु अपने साथ अपान, नाद एवं बिन्दु इन सभी को एकीकृत करके कण्ठ-स्थान में स्थित मध्यचक्र में पहुँच जाता है।
२. शून्यसम्भव (हृदयाकाशरूप शून्य में उत्पन्न)।	२. इसमें विष्णुग्रन्थि का भेदन होने के साथ-साथ परमानन्द का आविर्भाव होता है, जो कि ब्रह्मानन्द है।
३. विचित्रः क्वणको देहेऽनाहतः श्रूयते ध्वनिः। क्वणक— 'भूषणानान्तु शिञ्जितम्। निक्वाणो निक्वणः क्वाणः क्वणः क्वणनमित्यपि।' (अमरकोषः)	३. यहाँ कण्ठाकाश (अतिशून्य) में विमर्द एवं भेरीनाद श्रुतिगोचर होता है।

'शून्यसम्भवः' में शून्य का अर्थ हृदयाकाश ही क्यों ग्रहण किया जाता है? इसका तात्पर्य यह है कि हृदयाकाश का नाम 'शून्य' है, विशुद्धाकाश 'अतिशून्य' है और भृकुटि-मध्य का आकाश महाशून्य है। कहा भी है— 'हृदयाकाशविशुद्धाकाश-भ्रूमध्याकाशाः शून्यातिशून्यमहाशून्यशब्दैर्व्यवहियन्ते।' (ज्योत्स्ना : ब्रह्मानन्द)

घटावस्था— प्राणापानौ नादबिन्दू जीवात्मपरमात्मनोः।
मिलित्वा घटते यस्मात्तस्मात्स घट उच्यते।।

यह प्राणवायु, अपानवायु, नाद, बिन्दु, जीवात्मा एवं परमात्मा— इन सबों को मिलाकर घटित होती है, इसीलिये इसे 'घटावस्था' कहा जाता है।

परिचयावस्था— आज्ञाचक्र में स्थित—

१. भृकुटिद्वय के मध्य स्थित महाशून्य या भ्रूमध्याकाश में संयम करने से अणिमादिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

२. इस आकाश में मर्दल (ढोलक) की ध्वनि श्रुतिगोचर होती है।

३. इस अवस्था में प्राण भ्रूमध्य में पहुँच जाता है।

तृतीयां तु विज्ञेयो विहायो मर्दलध्वनिः (विहायः विहायसि = भ्रूमध्याकाश में)।

४. महाशून्यं तदा याति सर्वसिद्धिसमाश्रयम्।

५. चित्तानन्द के त्यागपूर्वक सहजानन्द का आविर्भाव (सहजानन्दसम्भवः)।

निष्पत्त्यवस्था— आज्ञाचक्र में स्थित रुद्रग्रन्थि का भेदन करके शर्वपीठ (ईश्वर के पीठ) में प्राणों के लीन करने से—

१. निष्पत्ति अवस्था में प्राण ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाता है।

२. ब्रह्मरन्ध्र में प्राण के प्रवेश करने पर वेणु एवं वीणा की ध्वनि के समान नाद श्रुतिगोचर होता है—

निष्पत्तौ वैणवः शब्दः क्वणद्वीणाक्वणो भवेत्। (हठयोगप्रदीपिका)

३. इस दशा में विषय एवं विषयी में ऐक्य हो जाता है; अतः यह दशा 'राजयोग' होती है।

वैखरी वाक्— नटनानन्द चिद्वल्ली में कहते हैं कि वैखरी वाक् परा वाक् का ही एक भावित रूप है, क्योंकि वह परा वाक् के त्रिभाविताकारा में से एक आकार है। उसका स्वरूप क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में चिद्वल्लीकार कहते हैं कि 'सैव वैखरी नाम अभिलपनरूपिणी पञ्चदशाक्षरराशिमयी सर्ववैदिकतान्त्रिकशब्दजालात्मिका शक्ति-रुच्यते।'

वाक् तत्त्व एवं श्रीचक्र में सामरस्य

'सुभगोदयवासना' के अनुसार—

१. परा वाक् = बीजोत्पादन की भूमि।

२. पश्यन्ती वाक् = गुच्छसमुद्भवा वल्ली।

३. मध्यमा वाक् = सौरभ (पुष्प का परिमल)।

४. वैखरी वाक् = अक्षमाला।

परा भूजन्म पश्यन्ती वल्ली गुच्छसमुद्भवा।
मध्यमा सौरभा वैखर्यक्षमाला जयत्यसौ।।

'कामकलाविलास' के अनुसार मातृकाओं एवं श्रीचक्र में सामरस्य है— चक्रतां याता।

चिदानन्दवासना के अनुसार—

विवक्षाव्यवसायोक्तिरूपा एतास्त्रिमातरः।
पश्यन्त्यादिमहादेव्याः स्वरूपा नात्र संशयः।।

परा को जो 'त्रिमातृकात्मिका' कहा गया है, उसकी तीन मातृकायें— पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी ही हैं।

श्रीचक्र त्रिखण्डात्मक है और परा वाक् त्रिमातृकात्मक है। इन दोनों में ऐक्य है—

'त्रिखण्डात्मकचक्रैक्यम्।' त्रिमातृकाओं एवं श्रीचक्र की त्रिखण्डात्मकता में सामरस्य है।

वाक्तत्त्व एवं श्रीचक्र में सामरस्य

'नटनानन्दनाथ' के अनुसार त्रैलोक्यमोहन, सर्वानन्दमय, बैन्दव आदि नव आवरणात्मक श्रीचक्र (जो कि भगवती सुन्दरी का अधिष्ठान है) और उसके अधिष्ठाव्य भगवती सुन्दरी में लेशमात्र भी भेद नहीं है; बल्कि उनमें सामरस्य है— 'चक्रस्य ..... सुन्दर्य-धिष्ठानभूतस्य महेश्याः तदाधिष्ठाव्याः सुन्दर्याश्च भेदलेशः ईशद्भेदोऽपि बुधैर्विशेषज्ञैः न भाव्यते नानुभूयते।'

उपनिषदों में इसका प्रमाण इस प्रकार है—

महत्तरा महिमा देवतानां नवयोनिर्नवचक्राणि दीधिरे। नवैव योगाः नवयोगिनीश्च नवानां चक्राणामधिनाथस्योनातवमुद्रानवभद्रामहीनं एका आसीत्, प्रथमा सा नवासीत्।

'वामकेश्वरतन्त्र' के अनुसार—

तच्छक्तिपञ्चकं सृष्ट्या लयेनाग्निचतुष्टयम्।
पञ्चशक्तिचतुर्वह्निसंयोगाच्चक्रसम्भवः ।।

एतच्चक्रावतारं तु कथयामि वरानने।
यथा सा परमा शक्तिः ..... ।।

से प्रारम्भ करके— 'चक्रं कामकलारूपप्रसारपरमार्थः' पर्यन्त वाक्यों द्वारा अभेदात्मकता का ही प्रतिपादन किया गया है।

'क्रोधभट्टारक' ने भी कहा है—

श्रीचक्रं श्रुतिमूलकोशमथितं संसारचक्रात्मकम्।

अन्य प्रकार के सामरस्य या अभेद

शब्द की जागरावस्था— शब्द का घोषात्मक एवं अघोषात्मक बाह्य व्यवहार ही उसकी जागरावस्था है। पर-श्रूयमाण शब्द सघोष एवं मात्र स्वयं-श्रुत या अघोष शब्द उपांशु हैं। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (अध्याय-१. वि०) में कहा गया है कि 'उपगताः स्व-समीपमेव प्रविष्टा अंशवः प्रसरा यस्य स उपांशुः।'

जागृतावस्था में सघोषात्मक एवं अघोषात्मक वाग्व्यापाररूप शब्दानुविद्धता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। इसे ही स्थूल शब्दवृत्ति या वैखरी वाक् कहते हैं।

विखर (शरीर) में समुद्भूत एवं शरीरेन्द्रियपर्यन्त चेष्टानिष्पादिका वाणी ही वैखरी वाक् है। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में कहा भी है— 'विखरः शरीरं, तत्र भवा तत्पर्यन्त-चेष्टासम्पादिका।'

'अभिनवगुप्तपादाचार्य' ने अपने तन्त्रालोक में वैखरी के तीन भेद किये हैं— स्थूल वैखरी, सूक्ष्म वैखरी एवं पर वैखरी।

स्फुट वर्णों के जन्म का जो कारण है, उसे स्थूल वैखरी कहते हैं; साथ ही पद, वाक्य आदि स्थूल वैखरी के कार्य हैं। तन्त्रालोक (तृ० आ०- श्लोक-२४६) में वे कहते भी हैं— 'या तु स्फुटानां वर्णनामुत्पत्तौ कारणं भवेत्' सा स्थूला वैखरी यस्या: कार्यं वाक्यादिभूयसा।।

अभिनवगुप्तपाद तन्त्रालोक (श्लोक-२४७) में कहते हैं कि विवक्षात्मक अनुसंधान को सूक्ष्म वैखरी कहते हैं। अनुपाधिमान चिदात्मक स्वरूप ही वैखरी वाक् का पर रूप है। वैखरी को 'क्रियाशक्ति' भी कहा गया है। यद्यपि अस्फुट क्रियाशक्ति अपनी बीजावस्था (परमा कला) में रहती है, किन्तु वह इस स्तर पर (वैखरी अवस्था में) स्फुट रूप ग्रहण करती है।

वैखरी का मूल मध्यमा एवं मध्यमा का मूल पश्यन्ती है, किन्तु पश्यन्ती का भी कोई मूल है और वह मूल शब्दवृत्ति है, परा वाक् है। वामकेश्वरतन्त्र के अनुसार परा वाक् जब स्वनिष्ठ स्फुरत्ता का ईक्षण करती है, तभी विश्वचक्र का उदय होता है। नित्याषोडशिकार्णव (६ वि०) में कहा भी गया है—

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः।।

इस परमा शक्ति का ईक्षण त्रिरूपात्मक है—

ईक्षण → इच्छा → ज्ञान→ क्रिया या **ईक्षण** = शक्तित्रयात्मक

इच्छाशक्ति ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति

भास्कर राय की दृष्टि— भास्कर राय सेतुबन्ध (टीका) में ईक्षण की व्याख्या करते हुये कहते हैं कि श्रुति में जो यह कहा गया है कि 'तदैक्षत बहु स्याम् प्रजायेय' इसमें 'ईक्षण' पद के साथ 'बहु स्याम्' शब्द का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि बहुत्व के आकार-ग्रहण के पूर्व ही बहुस्यां की वृत्ति में इच्छा-ज्ञान दोनों अनुस्यूत हैं अर्थात् परमात्मा के एक से बहुत होने की इच्छा में सूक्ष्म इच्छा, सूक्ष्म ज्ञान एवं सूक्ष्म क्रिया— तीनों ही अनुस्यूत हैं— 'वस्तुतस्तुं 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' इति श्रुतावीक्षणस्य बहुस्यामित्याकारकताप्रदर्शनात्राथमिकी वृत्तिरिच्छाज्ञानोभयरूपा।'[१]

आचार्य अभिनवगुप्त भी स्वीकार करते हैं कि क्रिया विमर्शात्मिका होती है और वह संवेदन का आश्रय लेने के कारण ज्ञान की पूँछ है।

'वैखरी वाक्' के सम्बन्ध में आचार्य अभिनवगुप्त ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (अ० १, वि० १) में इस प्रकार कहते हैं—

१. सा हि क्रिया मूलभूमौ संवेदनमेव अवलम्बते विमर्शरूपत्वात्।

१. सेतुबन्ध (भास्करराय)

२. तथैव परं प्रति जिज्ञापयिषुः प्राणे स्फुटीभूता वैखरी शरीरे तु स्पनदनरूपा क्रिया। इयति च सर्वत्र विमर्शरूपतैवानुगता। अतएव ज्ञानस्यैव क्रिया पुच्छभूता।

३. विमर्शरूपानधिकस्वभावा हि समस्ता क्रियेत्युक्तम्।

वैखरी वाक् को रौद्री शक्ति क्यों कहा जाता है? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि वैखरी वाक् स्थूल वाक्, कारणबिन्दु, कार्यबिन्दु, मूल नाद, अंकुर आदि स्तरों का अतिक्रमण करके अपने बिन्द्वात्मक स्वरूप में परावर्तनात्मक संहारावस्था की बोधिका है।

वैखरी वाक् है क्या? उसका मूल स्वरूप क्या है? इसका समाधान यह है कि वस्तुतः प्रकाशांशरूपा रौद्री एवं विमर्शांशरूपा क्रिया शक्ति का संयोग ही वैखरी वाक् है।

रौद्री + क्रिया शक्ति (प्रकाशांश + विमर्शांश) = वैखरी।

शृङ्गाट वपु— वैखरी वाक् के स्तर पर ही विश्वचक्रक त्रिकोण का आकार ग्रहण करने से वैखरी उज्ज्वल शृंगाट वपु (श्वेत सिंघाड़े का शरीर = सिंघाड़े के आकार वाली) कही गई है। योगिनीहृदय में कहा भी गया है—

तत्संहृतिदशायां तु बैन्दवं रूपमास्थिता।।
प्रत्यावृत्तिक्रमेणैव शृङ्गाटवपुरुज्ज्वला।
क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा।।

सौभाग्यभास्कर में भास्कर राय मखिन भी कहते हैं कि 'अथ तदेव वदनपर्यन्तं तेनैव वायुना कण्ठादिस्थानेष्वभिव्यज्यमानमकारादिवर्णरूपपरं श्रोत्रग्रहणयोग्यस्पष्टतर-प्रकाशरूपबीजात्मकं सद्वैखरी वागुच्यते।'

बिन्दु, नाद एवं बीज (चिन्मात्रतत्त्व के विचिकीर्षु होने के परिणामस्वरूप (घनी-भूत होने पर) बिन्द्वाकार ग्रहण करने पर काल द्वारा भिद्यमान होकर बिन्दु, नाद एवं बीज बन जाता है— शंकराचार्य की यही दृष्टि है) की त्रयी में वैखरी वाक् बीज है।

परा वाक्स्वरूप शब्दब्रह्म हृदय से मुखपर्यन्त (वायु के द्वारा कण्ठादि स्थानों में) अभिव्यक्त होकर अकारादि वर्णरूप ग्रहण करके श्रोत्रग्राह्य स्पष्टतर एवं प्रकाशस्वरूप बन कर स्थूल भाव ग्रहण कर लेता है। विराट् पुरुष एवं स्थूल वैखरी वाक् में तादात्म्य भी है। इसी विचार को आचार्य भास्कर राय ने सौभाग्यभास्कर में अपने शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

'ननु शब्दार्थयोस्तादात्म्यस्यैव शक्तिपदार्थत्वान्निर्गुणस्यापि ब्रह्मणः शब्दब्रह्माभिन्नत्वेन किमिति तत्र सत्यादिशब्दानां लक्षणेत्याशङ्क्य वैखर्यात्मकपदानां विराट्पुरुषेणैव सह तादात्म्येन शुद्धब्रह्मतादात्म्यं नास्त्यैवेति समाधित्सया वाचं विभजते।'

पद्मपादाचार्य ने प्रपञ्चसारतन्त्र की टीका में कहा है कि—

१. विशेषेण खरत्वात् वैखरी।

२. अथ विराड्रूपिणी बीजात्मिकां हृदयाद्यस्यान्तमभिव्यज्यमानां शब्दसामान्यात्मिकां वैखरीमाह वक्त्र इति।

आचार्य शंकर प्रपञ्चसारतन्त्र (द्वितीय पटल) में कहते हैं कि पवनप्रेरित वर्णसंघ मुख एवं उसके उच्चारण-स्थानों से अभिव्यक्त होने पर वैखरी कहा जाता है—

वक्त्रे वैखर्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्णा।
बद्धस्तस्माद्भवति पवनप्रेरितो वर्णसङ्घः।।

कामकलाविलास की टीका में कहा गया है कि वैखरी वाक् अभिलापात्मक है और वह पञ्चदशाक्षरराशिमय है तथा सम्पूर्ण वैदिक एवं लौकिक शब्दों की आत्मा है— 'वैखरी नाम अभिलापरूपिणी पञ्चदशाक्षरराशिमयी सर्ववैदिकलौकिकशब्दनात्मिका शक्तिरित्युच्यते।'

अभिलाप का अर्थ है— वर्णात्मक शब्द। अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं कि आन्तर शब्दात्मक सङ्कल्प ही 'अभिलाप' है— 'अभिलक्ष्यते आभिमुख्येन विषयिविषयपरवशतात्यागेन बोधस्वातन्त्र्ये शब्देन च विषयस्य तादात्म्यापादनेन व्यक्ततया प्रमातृसाक्षात्कारपर्यन्ततया उच्यते परामृश्यते येन सोऽभिलापः आन्तरशब्दलक्षणः सङ्कल्पः।'[1]

बौद्ध आचार्य धमकीर्ति की दृष्टि में अभिलाप बाह्य एवं चिन्तनसंवलित वाग्व्यापार है।

भर्तृहरि की दृष्टि में जब पदार्थस्वरूप शब्द के द्वारा एकीकृत जैसा प्रतीत होता है तब वह 'अभिजल्प' कहलाता है—

सोऽयमित्यभिसम्बन्धादूपमेकीकृतं यदा।
शब्दस्यार्थेन तं शब्दमभिजल्पं प्रचक्षते।।[2]

वैखरी और पञ्चदशी मन्त्र— चिद्वल्ली में आचार्य नटनानन्द ने वैखरी वाक् को पञ्चदशी मन्त्र से एकीभूत माना है। वैखरी वाक् तो वर्णमालारूपात्मक होने के कारण इक्यावन अक्षरों वाली है, किन्तु आचार्य भास्कर राय ने भी इसे पञ्चदशात्मक ही माना है। उनका कथन है कि भगवती त्रिपुरसुन्दरी के तीन रूप हैं, जो कि स्थूल, सूक्ष्म एवं पर के नाम से जाने जाते हैं। इन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है—

सुन्दरी के तीन रूप

स्थूल रूप	सूक्ष्म रूप	पर रूप
(कर-चरण आदि से युक्त साकार स्थूल रूप)	(भगवती का मन्त्रात्मक या मन्त्रमय स्वरूप)	(वासनारूपात्मक स्वरूप)

सूक्ष्म	सूक्ष्मतर	सूक्ष्मतम
पञ्चदशाक्षरी विद्या	कामकला	कुण्डलिनी शक्ति
१६ चान्द्र, २४ सौर एवं १० आग्नेय कलाओं से युक्त : ५० कलाओं रूपी मातृकाओं से युक्त।		

१. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी- वि. अ. २ वि० २।
२. वाक्यपदीयम्।

५० कलायें, ५० मातृकायें पञ्चदशाक्षरी मन्त्र में ही अन्तर्भूत है। १५ अक्षरों वाले पञ्चदशी मन्त्र से ५० मातृका वर्णों का भी ग्रहण हो जाता है।[१]

पञ्चदशाक्षरी विद्या

(खण्डत्रय)

सूर्यात्मक	अनलात्मक	सोमात्मक
सूर्यखण्ड	अग्निखण्ड	चन्द्रखण्ड
सौरखण्ड	आग्नेय खण्ड	सौम्य खण्ड

षोडशेन्दोः कला भानोः द्विर्द्वादश दशानले।
सा पञ्चाशत्कला ज्ञेया मातृकाचक्ररूपिणी।।

१. आचार्य पुण्यानन्द ने भी वैखरी वाक् को पञ्चदशाक्षरमयी कहा है।

तृतीय परिच्छेद

(अध्याय : १६-२२)

मन्त्रतत्त्व

* मन्त्रतत्त्व *

महामन्त्र : ॐ

॥ श्रीः ॥

तृतीय परिच्छेद

मन्त्र-तत्त्व

अहं पञ्चाक्षरस्साक्षात् त्वं तु पञ्चदशाक्षरी।। (चिदम्बररहस्यम्)

इति कामकला विद्या देवी चक्रक्रमात्मिका सेयम्।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपा।।
(कामकलाविलास)

मननात्त्राणधर्माऽसौ मन्त्रोऽयं परिकीर्तितः। (सङ्केतपद्धति)

शिवशक्तिसमायोगाज्जनितो मन्त्रराजकः।। (योगिनीहृदयम्)

सैषा षोडशी 'श्रीविद्या' पञ्चदशाक्षरी महात्रिपुरसुन्दरी बालाम्बिकेति बगलेति वा मातङ्गीति स्वयं वरकल्याणीति भुवनेश्वरीति चामुण्डेति चण्डेति वाराहीति तिरस्करिणीति राजमातङ्गीति वा शुकश्यामलेति वा लघुश्यामलेति वा अश्वारूढेति वा प्रत्यङ्गिरा-धूमावती-सावित्री-सरस्वती-गायत्री-ब्रह्मानन्दकलेति।। (भावनोपनिषत्)

सैषा परा शक्तिः। सैषा 'शाम्भवी विद्या कादिविद्ये'ति वा 'हादिविद्ये'ति वा 'सादिविद्ये'ति वा रहस्यमोमों वाचि प्रतिष्ठा।। (बह्वृचोपनिषत्)

एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा एषा श्रीमहाविद्या।।
(देव्युपनिषत्)

एतैर्मन्त्रैर्भगवतीं यजेत। ततो देवी प्रीता भवति स्वात्मानं दर्शयति। तस्माद्य एतै'र्मन्त्रैर्यजति स ब्रह्म पश्यति स सर्वं' पश्यति सोऽमृतत्वं स गच्छति।। (त्रिपुरातापिन्युपनिषत्)

चित्तं मन्त्रः। (शिवसूत्रम्)

चेत्यते विमृश्यते अनेन परं तत्त्वमिति चित्तम्, पूर्णस्फुरत्ता सतत्त्वप्रासाद-प्रणवादिविमर्शरूपं संवेदनम्, तदेव मन्त्र्यते गुप्तम्, अन्तर अभेदेन विमृश्यते परमेश्वररूपम् अनेन इति कृत्वा मन्त्रः। अतएव च पर'स्फुरत्तात्मकमननधर्मात्मता' भेदमय'संसारप्रशम-नात्मकत्राणधर्मता' च अस्य निरुच्यते।

अथ च मन्त्रदेवताविमर्शपरत्वेन प्राप्त तत्सामरस्यमाराधकचित्तमेव मन्त्रः।।
(शिवसूत्रविमर्शिनी : आचार्य क्षेमराज)

षोडश अध्याय
श्रीविद्या एवं मन्त्रतत्त्व

जिस मन्त्र की अधिष्ठात्री देवी कोई नारी होती है, उसे मन्त्र न कहकर 'विद्या' कहा जाता है। पञ्चदशी या पञ्चदशाक्षर मन्त्र की अधिष्ठात्री देवी त्रिपुरमहासुन्दरी हैं; अतः उनके मन्त्र को 'मन्त्र' न कहकर 'श्रीविद्या' कहा जाता है। चूँकि यह श्रीविद्यारूप मन्त्र भगवती का वर्णात्मक या मन्त्रात्मक सूक्ष्म स्वरूप है; अतः श्रीविद्या को महात्रिपुरसुन्दरी देवता का बोधक भी माना जाता है—

सा देवी जगदम्बिका भगवती श्रीराजराजेश्वरी।
श्रीविद्या करुणानिधिः शुभकरी भूयात्सदा श्रेयसे।।

वाक्यकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि।
वर्णितुं नैव शक्येऽहं श्रीविद्यां षोडशाक्षरीम्।।

इसे मन्त्र भी कहा गया है—

भूमिश्चन्द्रः शिवो माया शक्तिः कृष्णाध्वमादनौ।
अर्धचन्द्रश्च बिन्दुश्च नवार्णो मेरुरुच्यते।
महात्रिपुरसुन्दर्या मन्त्रा मेरुसमुद्भवाः।। (ज्ञानार्णवतन्त्रम्)

ऐक्येन नादमयताविभावनं मन्त्रविषुवाख्यम्। (१.४५)

श्रीविद्याकूटावयवेषु ककारादिषून्मनान्तेषु।। (१.४९)

षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या।।

श्रीविद्या की मन्त्रात्मकता का जो सूक्ष्म विवेचन किया गया है, वह अत्यन्त गुह्य एवं रहस्यमय है। वरिवस्यारहस्यम्, कामकलाविलास, भावनोपनिषद्, त्रिपुरोपनिषद्, त्रिपुरतापिन्युपनिषद् आदि श्रीविद्या के ग्रन्थों में मन्त्र को १. देवतात्मक, २. नादात्मक, ३. पञ्चभूतात्मक, ४. मातृकात्मक, ५. श्रीचक्रात्मक, ६. षट्चक्रात्मक, ७. अनन्त शक्तियों द्वारा शक्त्यात्मक, ८. अवस्थापञ्चात्मक, ९. पञ्चशून्यात्मक, १०. शिवशक्त्यात्मक, ११. षट्त्रिंशदात्मक, १२. विश्वात्मक, १३. विश्वातीत, १४. कामकलात्मक, १५. सर्वसामरस्यात्मक, १६. गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी, राशि, पीठ आदि से युक्त कहा गया है—

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम् ।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकापीठरूपिणीम्।।
(कामकलाविलास)

'नक्षत्ररूपिणी विद्यापि गणेशरूपिणी।' आदि।

शून्य-भावना

रेफ, बिन्दु, रोधिनी, नादान्त एवं व्यापिका को पाँच शून्य एवं उनका स्वरूप मयूरपंख के अर्धचन्द्र के समान विभावित करना चाहिये।

तृतीय कूट के रेफ में जाग्रतावस्था की भावना करनी चाहिये।
तृतीय कूट के हल्लेखा में स्वप्नावस्था की भावना करनी चाहिये।
तृतीय कूट के बिन्दु में सुषुप्ति की भावना करनी चाहिये।
नाद की अवस्था (चैतन्य की उदयकारिणी अवस्था) = तुरीयावस्था।
अर्धचन्द्र एवं आगे के तीन वर्ण = तुरीयावस्था।

आनन्दैकघन, वाण्यातीत अवस्था = तुर्यातीतावस्था। इसमें नादान्त आदि पाँच वर्णों की भावना करनी चाहिये। शून्यत्रय से परे महाशून्य है।

नादभावना

प्राण + आत्मा + मन का संयोग → 'प्राणविषुव।'

प्रथम कूट के नाद, अनाहत से ब्रह्मरन्ध्र तक व्याप्त नाद एवं चारो बीज तथा आत्मा की नादमयी विभावना → 'मन्त्रविषुव।'

मूलाधारोत्थ एवं ब्रह्मरन्ध्र तक व्याप्त नाद, जो कि षट्चक्रों की बारह ग्रन्थियों को सुषुम्ना के मार्ग से भेदित करता है— 'नाडी विषुव।'

ऐसे नाड़ीगत नाद एवं वर्णों का संयोग—

रेफ, कामकला (ई) बिन्दु से आरब्ध एवं ह्रीं के नादान्त तक व्याप्त सूक्ष्मतर नाद का शक्ति में विलय → 'प्रशान्तविषुव।'

शक्ति के साथ लीन नाद की भावना को समना में लीन करना → 'शक्तिविषुव।'

उक्त नाद की भावना उन्मनी में करना— नाद → तत्त्वज्ञान + शुद्ध चैतन्य की अभिव्यक्ति → 'कालविषुव।'

(अ) मन्त्रतत्त्व

सर्वोच्च मन्त्र मन्त्रराज है—

श्रीमन्त्रराजसदृशो यथा मन्त्रो न विद्यते। (ललितासहस्रनाम)

श्रीविद्यैव तु मन्त्राणाम्।

अर्थात् मन्त्रों में श्रीविद्या के समतुल्य कोई मन्त्र नहीं है।

क्या मन्त्र कतिपय विशिष्ट ध्वनियों के संघात हैं या विशिष्ट क्रम में संयोजित विशिष्ट वर्णों की समष्टि हैं? क्या वे यादृच्छिक वर्ण-समष्टि की यादृच्छिक संरचनायें हैं या अर्थहीन शब्दों की निरर्थक शब्द-योजनायें-मात्र हैं? ये प्रश्न एवं शंकायें केवल

नास्तिकों ने ही नहीं; अपितु विश्व के सर्वोच्च महासिद्धों, महान् सन्तों, तत्त्वविदों एवं धर्म-सुधारकों ने भी प्रस्तुत किये हैं। सन्त कबीरदास पूछते हैं कि 'यदि राम कहने-मात्र से ही समस्त संसारी प्राणियों का उद्धार हो जाता तो 'चीनी' (खाँड़) कहने से ही मुँह भी मीठा हो जाता, 'आग' कहने-मात्र से ही पैरों में जलन पैदा हो जाती और 'पानी' कहने-मात्र से ही प्यास बुझ जाती'—

रामा कह्यां दुनिया गति पावै, खाँड कह्यां मुख मीठा।
पावक कह्यां पाव जे दाझै जल कहि त्रिषा बुझाई।। आदि

तान्त्रिकों की दृष्टि— शैव, शाक्त एवं वैष्णव तान्त्रिकों ने भी इसी के समतुल्य प्रश्न उठाये हैं, क्योंकि वे साधना में बाह्याचार एवं प्रदर्शन के विरोधी थे। उन्होंने मन्त्रादिक की जो तात्त्विक व्याख्यायें की हैं, वे पूर्णतया तार्किक एवं वैज्ञानिक हैं। श्रीविद्यासम्प्रदाय में भी ये ही अभिनव व्याख्यायें एवं मौलिक स्थापनायें श्रेयस्कर मानी गई हैं।

मन्त्रतत्त्व की तात्त्विक दृष्टि एवं उसका तात्त्विक स्वरूप—

महेश्वरानन्द की दृष्टि— 'महार्थमञ्जरी' नामक अपने ग्रन्थ में महेश्वरानन्द ने मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार की है—

मणणमयी णिअविहवे णिअसंकोए मअम्मि ताणमई।
कवलिअवीसविअप्पा अणुभूई कावि मन्तसद्दत्थो।।४९।।

अर्थात् मन्त्र निजविभव में मननात्मक है, निजसंकोचात्मक अवस्था में त्राणात्मक है तथा यह 'कवलितविश्वकल्पानुभूति' है।

आचार्य महेश्वरानन्द कहते हैं कि मन्त्रानुसन्धायकों की दो अवस्थायें होती हैं— विभव एवं संकोच। विभव का अर्थ है— पूर्णाहम्भाव (पूर्णाहन्ता) का विकास और संकोच का अर्थ है— पाशावावस्था, अपूर्णत्वाभिमान। विश्व एवं विश्वोत्तर दोनों में सामरस्य की स्थापना करते हुये जो पूर्णाहम्भावभावनात्मक विकास किया जाता है, उसी पारमैश्वर्य को 'विभव' कहा जाता है। इसमें विभव तो स्वाभाविक है, किन्तु संकोच स्वारोपित है— ऐसी विवेक बुद्धि का मनन मन्त्र का कार्य है। मन्त्र दोनों क्षेत्रों में दो भिन्न-भिन्न कार्य करता है, एक में मनन एवं दूसरे में त्राण। प्रत्यभिज्ञाहृदय में कहा भी गया है— 'सङ्कोचो विचार्यमाणश्चिदैकात्म्येन प्रथमानत्वाच्चिन्मय एव। अन्यथा तु न किञ्चित्।' प्रपञ्च के समस्त विकल्पों को कवलित करके आत्मपरामर्श की अनुभूति करना ही 'मन्त्र' है ।

श्रीराजराजभट्टारक की दृष्टि— इस दृष्टि के अनुसार वर्णों के संयोजन से निर्मित मन्त्रों को ही 'मन्त्र' मानना अनुपपन्न है। नादोल्लास ही 'मन्त्र' है। जैसा कि कहा भी है—

वर्णात्मको न मन्त्रो दशभुजदेहो न पञ्चवदनोऽग्निः।
सङ्कल्पपूर्वकोटौ नादोल्लासो भवेन्मन्त्रः।।

स्तोत्रभट्टारक की दृष्टि— इसके अनुसार 'मन्त्र' का स्वरूप इस प्रकार है—

चिदग्निसंहारमरीचिमन्त्रः संविद्धिकल्पान् ग्लपयन्नुदेति।

श्रीक्रमकेलि की दृष्टि— इसके अनुसार स्वयं भगवती संवित् देवी ही 'मन्त्र' हैं—

सेयमेवंविधा भगवती संविद्देव्येव मन्त्रः।

भट्ट श्रीभूपतिराज की दृष्टि— चूँकि समस्त जगत् शक्ति की क्रोड़ में स्थित है; अतः देवी ही मन्त्र हैं—

सर्वक्रोड़ीकारेण स्थितत्वाद्देव्येव मन्त्रः।

मन्त्र और मन्त्री का तादात्म्यभाव ही मन्त्रसाधना का मूल है। इसी दृष्टि से कहा भी है—

पृथङ्मन्त्रः पृथङ्मन्त्री न सिद्ध्यति कदाचन।
ज्ञानमूलमिदं सर्वमन्यथा न प्रसिद्ध्यति।।

(महार्थमञ्जरी : स्वोपज्ञ परिमल)

'आचार्य महेश्वरानन्द' स्वोपज्ञ परिमल में कहते हैं कि स्वात्मसंवित्स्वरूप को ही मन्त्र का मुख्य शब्दार्थ मानना चाहिये— 'स्वात्मसंवित्स्वरूपस्यैव मन्त्रशब्दार्थत्वं मुख्यम्।' अक्षरसन्निवेश को 'मन्त्र' कहना मात्र उपचारदृष्टि है— 'अक्षरसन्निवेशेषु पुनरुपचारेणोच्यत इत्युक्तं भवति।' इसीलिए तो कहा भी है—

उच्चार्यमाणा ये मन्त्रा न मन्त्राश्चापि तान् विदुः।
मोहिता देवगन्धर्वा मिथ्याज्ञानेन गर्विताः।।

(महार्थमञ्जरी : स्वोपज्ञ परिमल)

अर्थात् जो मुख द्वारा उच्चारित वर्णसमष्टि 'मन्त्र' के नाम से प्रसिद्ध है, वस्तुतः वह 'मन्त्र' नहीं है। मन्त्रस्वरूप के मिथ्याज्ञानात्मक स्वरूप से तो देवता एवं गन्धर्व भी भ्रम में पड़े हुये हैं।

महेश्वरानन्द कहते हैं कि वैश्वात्म्यानुभूति ही 'मन्त्र' है; अतः समस्त वाग्व्यवहार और उसका परामर्श भी 'मन्त्र' ही है— 'मन्त्रस्य च वैश्वात्म्यानुभूतिरूपत्वात् सर्वोऽपि वाग्व्यवहारस्तत्परामर्शात्मतयैवोत्पद्यते।' 'जप' जनन-पालनस्वभाव है— 'जननपालनस्वभावतया हि जप इत्युच्यते।'

मन्त्र एवं जप में गुरु, देवता एवं मन्त्र की एकता प्रधान है— 'गुरुदेवतामनूनामैक्यं सम्भावयन् धिया शिष्यः।'

मन्त्र और उसके जप की साधना का फलितार्थ— मन्त्री या जापक का 'मन्त्र' एवं 'जप्य' के साथ एकीकरण है। मन्त्र की इस साधना के उच्चतर धरातल पर अनुभूतियों के अनेक सोपान हैं; यथा—

देवी, मन्त्र एवं जगत् में अभेद की अनुभूति (मन्त्र का भावार्थ)— 'तेनाम्बामनुजगतामभेद एवात्र भावार्थः।' (वरिवस्यारहस्यम्-७३)

ब्रह्म एवं जगत् तथा जगत् एवं श्रीविद्या में अभेद की अनुभूति (मन्त्र का सम्प्रदायार्थ)— 'ब्रह्मणि जगतो जगति च विद्याभेदस्तु सम्प्रदायार्थः।'

अपने दीक्षागुरु एवं परमशिव में तथा अपने एवं परमशिव में अभेद की अनुभूति (मन्त्र का निगर्भार्थ)— 'परमशिवे निष्कलता तदभिन्नत्वं स्वदेशिकेन्द्रस्य तत्करुणातः स्वस्मिन्नपि तदभेदो निगर्भार्थः।' (वरिवस्यारहस्यम्-८२)

परदेवता, विद्या, चक्रराज, श्रीगुरु एवं अपनी अभेदानुभूति (मन्त्र का कौलिकार्थ)— 'अथ परदेवतायाः विद्यायाश्चक्रराजस्य श्रीगुरोरात्मनश्चैक्यं कौलिकार्थः।'

(भास्करराय : वरिवस्या-रहस्यम् टीका)

इत्थं माता विद्या चक्रं स्वगुरुः स्वयं चेति।
पञ्चानामपि भेदाभावो मन्त्रस्य कौलिकार्थोऽयम्।।

भगवती कुण्डलिनी, श्रीविद्या, त्रिपुरा देवी एवं स्वयं में अभेदात्मकता की अनुभूति (मन्त्र का रहस्यार्थ)—

साक्षाद्विद्यैवैषा न ततो भिन्ना जगन्माता।
अस्याः स्वाभिन्नत्वं श्रीविद्याया रहस्यार्थः।

(वरिवस्यारहस्यम्-१०७)

कूटत्रयों में से प्रत्येक का अर्थ है— 'शिव एवं शक्ति के सामरस्य के कारण ब्रह्म ही शिव एवं शक्ति दोनों है'— इसकी अनुभूति (श्रीविद्या का सामरस्यार्थ)—'शिव-शक्तिसामरस्याद्विद्याया एष सामरस्यार्थः।।' (वरिवस्यारहस्यम्-१२०)

शाक्तों की अद्वैत-साधना अत्यन्त वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक नींव पर प्रतिष्ठित है। जिस प्रकार 'H_2O' (हाइड्रोजन के दो परमाणु एवं आक्सीजन का एक परमाणु मिला देने पर पानी का निर्माण हो जाता है) का गणितीय सूत्र सत्य है, उसी प्रकार भगवान् शिव का यह कथन भी सत्य है कि 'जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्न संशयः।' किन्तु जप तो मन्त्रों का किया जाता है और मन्त्र तो मात्र कतिपय वर्णों के संयोगमात्र हैं, फिर उनकी अनवरत आवृत्ति करने से यथाकाम फलों की निष्पत्ति कैसे सम्भव है?

महात्मा तुलसीदास की दृष्टि— तुलसीदास कहते हैं—

१. नाम और रूप— ये दोनों ईश्वर की दो उपाधियाँ हैं।

२. नाम के प्रभाव से ही भगवान् के रूप का साक्षात्कार हुआ करता है।

३. विना नाम के रूप का प्रत्यक्षीकरण भी निष्फल हुआ करता है।

४. नाम एवं रूप— दोनों की गति अकथ्य है। उनका रहस्यानुभव करने पर उनसे अतीव आह्लाद प्राप्त होता है, किन्तु उनकी आत्मनिहित शक्तियों एवं प्रभावों का वर्णन करना सम्भव नहीं है।

५. यदि बाह्य एवं आन्तर— दोनों जगतों को प्रकाशित करना हो तो अपनी जीभ-रूपी घर के देहरी-द्वार पर रामनामरूपी मणिदीप रखना चाहिये। इससे बाह्याभ्यन्तर दोनों प्रकाशित हो उठेंगे।

६. ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण— दोनों रूपों से श्रेष्ठतर भगवान् का नाम (मन्त्र) है ।

७. ब्रह्म से बढ़कर तो कोई नहीं है, किन्तु नाम तो ब्रह्म से भी बढ़कर है।

८. भगवान् का नाम लेते ही संसाररूपी दुस्तर समुद्र सूख जाता है।

९. महान तत्त्ववेत्ता, अप्रतिम दार्शनिक, सिद्धों के भी सिद्ध एवं महान् ज्ञानी शुकदेव, सनक, सनातन, सनन्दन एवं सनत्कुमार-जैसे सिद्ध योगी एवं महामुनि नाम की कृपा से ही ब्रह्मसुख का आनन्दोपभोग करते हैं। उनकी भी साधना का मूल सम्बल नाम (मन्त्र) की साधना है। यही बात आध्यात्मिक इतिहास के कीर्तिमान या युगपुरुष— ध्रुव, प्रह्लाद, नारद, हनुमान आदि के विषय में भी कही जा सकती है और परम यथार्थ तो यह है कि स्वयंब्रह्म राम भी अपने नाम के गुणों (महिमा) का वर्णन नहीं कर सकते—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।[१]

प्रश्न उठता है कि तोता भी तो राम-राम कहता रहता है तो क्या वह भी तर जाता है? कबीर कहते हैं—

नर कै सथि सुवा हरि बोले। हरि परताप न जानै।
जो कबहूँ उड़ि जाइ जँगल में। बहुरि न सुर तै आनै।

कबीर का प्रश्न— इसीलिये कबीर प्रश्न करते हैं कि— १. यदि 'राम' कहने से ही व्यक्ति संसारसागर से तर जाता तो 'चीनी' कहने से मुख मीठा हो जाता, 'आग' कहने से पाँव जल जाते, 'जल' कहने-मात्र से प्यास बुझ जाती और 'भोजन' कहने से भूख मिट जाती। यदि ऐसा हो सकता तभी 'राम'मात्र कहने से (नाम या मन्त्र का जप करने से) सारे लोग तर जाते; किन्तु ऐसा न तो होता है और न हो सकता है। अतः— २. मैं कहता हूँ कि पण्डित लोग नाम (मन्त्र) की इस महिमा के विषय में व्यर्थ में मिथ्या वादविवाद करते हैं—

पण्डित वाद वदन्ते झूठा।
रामा कह्यां दुनियां गति पावै, खाँड कह्यां मुख मीठा।
पावक कह्यां पाव जे जाझै, जल कहि त्रिषा बुझाई।
भोजन कह्यां भूख जे भाजै, तो सब कोइ तिरि जाई।।

(कबीरदास : कबीर, पृष्ठ-३२०)

तो क्या तुलसीदास जी ने नाम का जो महत्त्व बताया वह मिथ्या था? नहीं। तुलसीदास कहते हैं कि 'साधक तो वह है जो कि नाम में अपने को लयीभूत करके नाम का जप करता है और वह अणिमादिक सिद्धियाँ प्राप्त करके सिद्ध बन जाता है।'—

१. नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी।।

देखिअहीं रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम विहीना।।
नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी।।

राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ, जौं चाहसि उजिआर।।

उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम ते।

कहउँ नामु बड़ राम ते निज विचार अनुसार।
ब्रह्म राम ते नामु बड़ वरदायक वरदानि।।

नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं।।
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी।।
साधक नाम जपहिं लय लाऐं। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाए।।

अर्थात् तोतारटन्त 'राम' नाम की वह महिमा नहीं है, जो कि पहले बताई गई है। नामजप के साथ लय एवं भाव (प्रेम) आवश्यक है, किन्तु यदि प्रयास करने पर भी प्रेम (भाव) एवं लय उत्पन्न नहीं होता, लेकिन जप किया जाता रहता है तो वह जप भी भावमय ही मान लिया जाता है; क्योंकि विना भाव के नामजप का कृच्छ्र एवं प्रयत्नज प्रयास आरम्भ ही कैसे किया जायेगा? इसीलिये तुलसीदास जी ने कहा है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

तुलसीदास जिस राम (मन्त्र) का जप करते हैं वह शब्द नहीं है; प्रत्युत बीजात्मक शक्ति से संयुक्त अग्नि (रं) एवं चन्द्रमा (मं) के मणिकाञ्चन योग से निष्पन्न अचिन्त्य शक्तियों की समष्टि है—

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।।

तन्त्र में लिखा है कि 'रकारो अग्निबीजः स्यात् मकारश्चन्द्रबीजकः।' 'रं' अग्निबीज है और 'मं' चन्द्रबीज है। 'राम' (मन्त्र) अग्नि, सूर्य एवं चन्द्रमा की रहस्यात्मक शक्ति-समष्टि है।

सरोरुहवज्र की दृष्टि— यदि वैज्ञानिक संधान के विना एवं रहस्यात्मक तथ्यों की अभिज्ञता के विना मन्त्र का जप किया जाता है तो सरोरुहवज्र (बौद्धसिद्धसरहपा) उसे व्यर्थ मानते हैं। वे कहते हैं—

मन्त्रजाप करने से शान्ति कभी नहीं प्राप्त हो सकती। जो दीवार गिर चुकी क्या वह कभी उठ सकती है? क्या फल देखने-मात्र से ही उसकी गन्ध प्राप्त हो जाती है?

क्या वैद्य को देख लेने मात्र से रोग दूर हो सकता है—

मन्तह मन्ते स्सन्ति ण होइ। पडिल भित्ति कि उट्ठिअ होइ?
तरुकल दरिसणे णउ अगघाइ। वेज्ज देक्खि किं रोग पसाइ?
किन्तह किज्जइ मन्तह सेव्वं?

नानकदेव की दृष्टि— सिक्ख पन्थ के उद्भावक एवं संस्थापक गुरु नानकदेव तो कहते हैं कि मुझे भगवान् के नाम या मन्त्र में इतना विश्वास है कि—

यदि एक जीभ के स्थान पर मेरी लाख जीभें हो जायँ और लाख से बढ़कर बीस लाख जीभें हो जायँ तो भी मैं एक-एक जीभ से लाख-लाख बार एक परमात्मा का ही नाम जपूँगा—

इकदू जीभै लख होइ लख होवहि लख बीस।
लखु लखु गेडा आखीअहि एकु नामु जगदीस।। (जपुजी)

यदि मैं नाम का जप करूँ तभी जीवित रहूँ, किन्तु यदि मैं उसे भूल जाऊँ तो मर जाऊँ— 'आखा जीवा विसरै मरिजाउ।'

परमात्मा ही एकमात्र परम सत्य है और मात्र उसका नाम या मन्त्र ही परम सत्य है— 'साचा साहिबु साचै नाइ।'

धन्य है कागज, धन्य है वह लेखिनी, धन्य है वह मसिपात्र, धन्य है वह स्याही एवं धन्य है वह लेखक, जो परमात्मा के सत्य नाम का लेखन करता है—

धनु सु कागदु कमलधनु धनु भांडा धनु मसु।
धनु लेखारी नानका जिनि नामु लिखाइआ सचु।।

योगिराज ज्ञानेश्वर की दृष्टि— योगी होते हुए भी ज्ञानमार्गी ज्ञानेश्वर 'मन्त्र' एवं भगवन्नाम के प्रति अत्यन्त निष्ठावान हैं। वे 'हरिपाठ' नामक अपने मराठी ग्रन्थ में कहते हैं—

हरि का नाम-भजन ही स्वर्ग है और भजनानन्दी के लिए भजन (नाम-स्मरण) अणु-अणु में सर्वत्र व्याप्त है—

ज्ञानदेवा पाठ हरि हा वैकुण्ठ। भरला घनदाट हरि दिसे।।

आशुतोष (शिव) का प्रिय मन्त्र राम नाम है। उस 'राम' नाम का तू निरन्तर यथा-शक्ति जप कर। संसार का श्रेष्ठतम नाम मात्र हरिनाम (मन्त्र) है। जो इसे प्राप्त कर लेता है, उसे अज्ञान के केन्द्र द्वैत का बन्धन कभी बाधित नहीं करता। योगियों को उनकी श्रेष्ठतम कला में जो अमृतपान की अनुभूति होती है, वही आनन्दानुभूति वैष्णवों को हरिनाम (मन्त्र) के जप से होती है; साथ ही वह नाम परमात्मप्राप्ति का सबसे सुलभ साधन है—

रामकृष्ण वाचा भाव हा जिवाचा। आत्मा जो शिवाचा राम जप।।
एक तत्त्व नाम साधिती साधन। द्वैताचें बंधन न बाधिजे।।
नामामृत गोडी वैष्णवा लाधली। योगिया साधली जीवन कल।।
ज्ञानदेव म्हणे नाम हैं सुलभ। सर्वत्र दुर्लभ बिरला जाणें।।

भगवान् के नामोच्चारण से अनन्त पापों का क्षणमात्र में उसी प्रकार ध्वंस हो जाता है, जैसे कि अग्नि से सम्बन्ध होते ही तृण जल जाता है। निरन्तर जप करने वाला जापक हरिरूप हो जाता है। हरिनाम का उच्चारण ही अगाध 'मन्त्र' है—

हरिं उच्चारणीं अनंत पापराशी। जातील लयासी क्षणमात्रें।
तृण अग्निमेलें समरस झालें। तैसे नामें केलें जपां हरि।
हरि उच्चारण मन्त्र हा अगाध.....।।

समस्त शास्त्र एवं वेद यही कहते हैं कि श्री नारायण का नाम ही सार है। अत: तू उनका भजन कर; क्योंकि हरिभजन-शून्य जप-तप सभी व्यर्थ है—

वेदशास्त्र प्रमाण श्रुतीचें वचन। एक नारायण सार जपा।
जप तप कर्म हरी विण धर्म। वाउगाचि श्रम व्यर्थ जाय।।

नाम के सामने तो योग, याग, क्रिया, धर्म एवं अधर्म— सभी माया हैं। यज्ञ, याग, क्रिया, धर्म— ये सभी हरिरूप हैं। हरिस्मरण के विना अन्य नियम-धर्म कुछ है ही नहीं—

योगयाग धर्माधर्म माया। गेले ते विलया हरिपाठें।
ज्ञानदेवां यज्ञयाग क्रिया धर्म। हरि विण नेम नाहीं दुजा।।

हरिनामस्मरण के विना जीवन को व्यर्थ मान कर मैंने श्रीराम-कृष्ण के नामस्मरण का मार्ग स्वीकार कर लिया है—

ज्ञानदेवा जिणें नामें विण व्यर्थ। रामकृष्णी पंथ क्रमियेला।।

ज्ञानेश्वर कहते हैं कि. मैंने अपने गुरु 'निवृत्तिनाथ' से पूछा कि 'नाम' का क्या महत्त्व है तो उन्होंने कहा कि उसकी महिमा क्या बताऊँ? भगवन्नाम (मन्त्र) तो आकाश से भी अधिक विशाल है—

ज्ञानदेव पुसे निवृत्तीसी चाउ। गगनाहूनि वाउ नाम आहे।।

कबीर की दृष्टि— कबीर को नाम-जप (मन्त्र-जप) में अटल विश्वास था। वे कहते हैं कि 'नाम' में तो इतनी शक्ति है कि वेश्या एवं सदना कसाई भी तर गये—

जो जन नाम अमल रस चाखा, तर गई गनिका सदन कसाई।।

कबीर नाम को गले का हार मानते हैं—

पायो सतनाम गरे कै हरवा।

कबीर कहते हैं कि मैं तो राम के जप में इतना तन्मय हो गया हूँ कि मेरा मन ही राम बन गया है—

मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहि आहि।।

जो व्यक्ति राम नाम के मन्त्र का त्याग करके अन्य मन्त्र का जप करता है वह वेश्या के उस पुत्र के समान है, जो बार-बार प्रश्न करने पर भी इसका उत्तर नहीं प्राप्त कर पाता कि मैं अपना पिता किसे कहूँ—

राम पियारा छाडि कर करै आन का जाप।
बेस्वा केरा पूत ज्यूं कहै कौन सूँ बाप?

कबीर ने तो राम नाम का इतना जप किया कि उनके जीभ में छाले पड़ गये—

जीभडिआँ छाला पड्या नाम पुकारि पुकारि।

कबीर कहते हैं कि मेरे केवल दो ही साथी हैं— वैष्णव और नाम—

मेरे संगी दोइ जणां एक वैष्णों एक नाम।।

कबीरदास भारतीय योगियों, तान्त्रिकों, वैयाकरणों एवं मन्त्रशास्त्रियों की भाँति मन्त्र को 'नाद' (शब्दब्रह्म) मानते हुये शब्दसाधना करने का भी उपदेश देते हैं—

साधो शब्द-साधना कीजै।।

यह मन्त्र-जप की यौगिक-तान्त्रिकी दृष्टि है। इसीलिये कबीर यह अवश्य कहते है कि 'मन्त्र' जान लेने पर भी यदि मन्त्र का रहस्य न जाना जा सका तो मन्त्रजप का कोई लाभ नहीं है—

जब लग भेद न जाणिये राम कह्या तो काँइ।।

ऐसे जप से क्या लाभ?

(आ) मन्त्र-विज्ञान

क. शब्दब्रह्म, बिन्दु, महामाया एवं मन्त्र— शिवसूत्रकार ने कहा है कि चित्त ही 'मन्त्र' है— 'चित्तं मन्त्रः' एवं मन्त्र की उपासना ही मन्त्रोपासना है।

शब्दब्रह्म ही 'आदिमन्त्र' और 'महामन्त्र' है। इसे ही 'प्रणव' भी कहते हैं। शब्दब्रह्म (ॐकार) परमात्मा का नादात्मक स्वरूप है। परममन्त्र भी ॐ ही है। ब्रह्म के दो रूप हैं— शब्दब्रह्म (ॐ) और परब्रह्म। शब्दब्रह्म को अतिक्रान्त करके परब्रह्म तक पहुँचना ही साधना का लक्ष्य है। शब्दब्रह्म में है निष्णातता— परब्रह्म की प्राप्ति। ॐकार भी दो स्वरूपों वाला है— अमात्रक और समात्रक। पुनः अमात्रक भी अप्रमेय एवं अखण्ड तथा समात्रक शुद्ध एवं अशुद्ध के भेद से दो-दो स्वरूपों वाला होता है। शब्दब्रह्म ही 'परा वाक्' है ।

परमात्मा की दो शक्तियाँ हैं— चिद्रूपा एवं अचिद्रूपा। अचिद्रूपा शक्ति ही 'बिन्दु' है। यही 'महामाया' भी है। यही 'चिदाकाश' या 'कुण्डलिनी' है। यही परमात्मा की 'परिग्रह शक्ति' या 'उपादान शक्ति' भी है। चिद्रूपा शक्ति परमात्मा की 'समवायिनी शक्ति' है। परिग्रह शक्ति (परमेश्वर से भिन्न) या बिन्दु में क्षोभ होता है। क्षोभ → बिन्दु में तरंगों का उत्थान। यह तरंग (बिन्दु में उठी तरंग) ही 'ज्योति' और 'नाद' के रूप में बाहर प्रकटित होती है। नाद → वाक्। ज्योति → अर्थ।

'उन्मना' अशेष विश्व के अभेद-साक्षात्कार में स्फुरित होती है। भगवान् की स्वतन्त्रभूता, नित्यसमवेता स्वरूपाशक्ति 'उन्मना' उल्लासरूपिणी परा भक्ति है। 'महामाया' समना, विकल्प, इच्छाशक्ति, विशुद्धतम मन का स्वरूप है। इस अवस्था में मननात्मक बोध तो रहता है, पर उसमें कोई विषय नहीं रहता। यह मन्तव्यहीन अविकल्प है।

अविकल्प मन के द्वारा अविकल्पात्मक शुद्ध मन का भी त्याग करना आवश्यक है। एकाग्रता का पूर्ण प्रकर्ष प्राप्त होते ही शुद्ध मन भी परित्यक्त हो जाता है। मन की इच्छा-हीन अवस्था ही विशुद्ध कैवल्य दशा है।

'महामाया' माया से ऊपर स्थित है। 'महाशून्य' के उत्तरवर्ती भूमि में अर्थात् महाशून्य के बाद महामाया का दर्शन होता है। महामाया प्रणव की अन्तिम कला है। योगियों ने इसे ही मनस्वरूप या 'इच्छाशक्ति' कहा है। इसके बाद ही 'निष्कल परमपद' है, जिसमें ॐकार परब्रह्म के साथ अभिन्नतया अवस्थित है। महामाया के गर्भ में बिन्दु से समना-पर्यन्त समस्त मन्त्रावयव स्थित हैं। 'बिन्दु' से 'समना' तक सभी अंग 'आज्ञा' से 'सहस्रार' तक फैले हैं। यह मायातीत तो है, किन्तु महामाया भी विशुद्ध विकल्प से युक्त है। यह भी बन्धनप्रद है। महामाया शुद्ध राज्य है। इसे ही समना (मन्त्र की ग्यारहवीं अन्तिम कला) भी कहते हैं।

मन एवं मन्त्र की मात्रायें— मन्त्र की मात्राओं का विवरण इस प्रकार है—

माया जगत् में मन्त्र की मात्रायें छः हैं।

मायातीत पद में मन्त्र की मात्राओं का पूर्ण योग एक है।

स्पष्ट है कि मन्त्र की कुल मात्रायें ६ + १ = ७ हैं।

मन्त्र की मात्रायें

माया जगत् में मन्त्र की मात्रायें = ६

अकार = १ मात्रा उकार = २ मात्रा

मकार =३ मात्रा मात्राओं का योग = ६

मायातीत पद में मन्त्र की मात्रायें = १

बिन्दु अर्द्धचन्द्र निरोधिनी नाद

नादान्त शक्ति व्यापिनी समना

भाग्नांश इस प्रकार हैं—

१. बिन्दु—	१/२	मात्रा	१. अकार की मात्रा—	१
२. अर्धचन्द्र—	१/४	मात्रा	२. उकार की मात्रा—	२ — ६ मात्रायें
३. निरोधिनी—	१/८	मात्रा	३. मकार की मात्रा—	३
४. नाद—	१/१६	मात्रा	४. बिन्दु की मात्रा—	१/२
५. नादान्त—	१/३२	मात्रा	५. बिन्दु से समना तक के मात्रांशों को जोड देने पर १ मात्रा होती है।	
६. शक्ति—	१/६४	मात्रा	समस्त मात्राओं का योग = १ मात्रा।	
७. व्यापिनी—	१/१२८	मात्रा		
८. समना—	१/१२८	मात्रा		
९. उन्मना—				
मात्रायोग = १		**मात्रा**		

बिन्दु में क्षोभ → तरंगोत्पत्ति → १. ज्योति, २. नाद। नाद → वाक्तत्त्व। ज्योति → अर्थसमष्टि।

मन्त्र और मन— मात्रा से मात्राहीन में जाना ही मन्त्रसाधना है। इसीलिये मन्त्र के जप के अंगों में बिन्द्वादि— उन्मनान्त अवयवों में मन की मात्रा का सतत् न्यून होते जाना (मात्रांश-भग्नता) ही अभीष्ट है और इन अंगों में मात्रा-क्षीणता का क्रम भी है। ये ही मन की भी मात्रायें हैं। मन की जिस मात्रा से जगत् का अनुभव होता है, उसे एक मात्रा कहते हैं। १/२ मात्राओं में बिन्द्वादि उन्मनान्त ९ अवयव हैं। भग्नांश इस प्रकार हैं—

१. बिन्दु	१/२ मात्रा	५. नादान्त	१/३२ मात्रा
२. अर्धचन्द्र	१/४ मात्रा	६. शक्ति	१/६४ मात्रा
३. निरोधिनी	१/८ मात्रा	७. व्यापिनी	१/१२८ मात्रा
४. नाद	१/१६ मात्रा	८. समना	१/१२८ मात्रा

'समस्त मात्राओं का योग— १ मात्रा।'

शाब्दी वृत्तियाँ और मन्त्र— शब्द की चार वृत्तियाँ हैं— परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी। वैखरी वाक् शब्द का निम्नतम स्तर है। अत: ऐसा होने के कारण इस स्तर पर की गई मन्त्रोपासना यथार्थ मन्त्रोपासना नहीं होती; क्योंकि मन्त्र नादात्मा और चिद्रश्मिमय होते हैं, किन्तु वैखरी वाक् के स्तर पर न तो 'नाद' है और न ही 'चिद्रश्मिसम्पात'। अत: यहाँ मन्त्र-साधना यथार्थ स्वरूप में प्रारम्भ ही नहीं हो सकती। 'मध्यमा वाक्' के स्तर पर जो मन्त्रोपासना की जाती है, वही 'मन्त्रोपासना' पदवाच्य है। मध्यमा भूमि को मन्त्रमयी भूमि भी कहा गया है। मध्यमा वाक् मन्त्र के रूप में ही प्रकाशित होता है । स्मृति-परिशुद्धि के द्वारा सांकर्य-परिहार वैखरी वाक् से मध्यमा वाक् की भूमि में पदार्पण का मार्ग है।

मध्यमा, पश्यन्ती एवं परा— तीनों चिद्रश्मिमय एवं नादात्मक हैं। यहाँ के शब्द एवं अक्षर चैतन्ययुक्त हैं। शब्द की जो चार वृत्तियाँ हैं, उनमें परा, मध्यमा एवं पश्यन्ती— तीनों चेतन शब्दों के स्तर हैं और वैखरी जड़ शब्द का स्तर है। जड़ वाक् चेतन वाक् का साधन है— वैखरी वाक् मध्यमा, पश्यन्ती एवं परा वाक् तक पहुँचने का साधन है।

जड़ शब्द (वैखरी वाक्) चेतन शब्दों (मध्यमा, पश्यन्ती, परा) के राज्य में प्रवेश कराने का एक मार्ग है। चेतन शब्द आत्मा की ही अभिव्यक्तियाँ होने के कारण 'मन्त्र'पदवाच्य हैं, किन्तु वैखरी वाक् 'जड़'शब्दात्मक होने के कारण 'मन्त्र' पदवाच्य नहीं है।

शब्द के प्रकार और मन्त्र—

शब्द के प्रकार (स्थूल से सूक्ष्म)

वैखरी	मध्यमा	पश्यन्ती	परा
(जड़)	(चेतन)	(चेतन)	(चेतन)

जड़ के द्वारा चेतन तक पहुँचना सम्भव नहीं है। इसीलिए वैखरी स्तर के जड़भाव से साधना प्रारम्भ तो की जाती है, किन्तु उसे अतिक्रान्त करके चेतनभाव में प्रवेश करने के पूर्व मन्त्रसाधना प्रारम्भ नहीं होती।

मूल मन्त्र का स्वरूप— योगशिखोपनिषद् का मत है कि समस्त मन्त्रों का मूल होने, समस्त चक्रों के आधार (मूलाधार) से उत्पन्न होने एवं मूलस्वरूप लिंग धारण करने के कारण ही इसे 'मूलमन्त्र' कहते हैं—

मूलत्वात् सर्वमन्त्राणां मूलाधारसमुद्भवात्।
मूलस्वरूपलिङ्गत्वान्मूलमन्त्र इति स्मृतः।।

जिसकी मननशक्ति से पूर्णाहन्ताभाव का आत्मा से स्फुरण होता है, जिससे जीवभाव या संसार के दुःख से रक्षा की जाती हो, उसे 'मन्त्र' कहते हैं—

पूर्णाहन्ताऽनुसन्ध्यात्मा स्फूर्जन्मननधर्मतः।
संसारक्षयकृत्त्राणधर्मतो मन्त्र उच्यते।।

मनन से, चेतना लाने के कारण, मेरे रूप के ज्ञान का कारण होने के कारण और मेरी स्थितिभूमि होने के कारण (अर्थात् शब्दब्रह्मत्व होने से) इसे 'मन्त्र' कहा जाता है—

मननात् प्राणनाच्चैव मद्रूपस्यावबोधनात्।
मन्त्रमित्युच्यते ब्रह्मन्! मदधिष्ठानतोऽपि वा।।

भास्कर राय ने कामकलाक्षर को ही 'मूल मन्त्र' कहा है—

वस्तुतस्तु मूलमन्त्रशब्दाभ्यां कामकलाक्षरमुच्यते।

'मन्त्र' चित्तत्त्व की चेतन रश्मियाँ हैं—

मन्त्राश्चिन्मरीचयः।

मनन-त्राणधर्मात्मक होने के कारण भी इसे 'मन्त्र' कहते हैं।

कुलार्णवतन्त्र में कहा गया है—

मननात्तत्त्वरूपस्य देवस्यामिततेजसः।
त्रायते सर्वभयतस्तस्मान्मन्त्र इतीरितः।।

बिन्दु या महामाया तथा शब्द— भेदवादी तान्त्रिक आचार्य तीन रत्न मानते हैं— शिव, शक्ति और बिन्दु। ये तीन तत्त्व ही समस्त तत्त्वों के उपादान एवं अधिष्ठान हैं।

शुद्ध तत्त्वात्मक, कार्यात्मक शुद्ध जगत् का उपादान बिन्दु है और उसका कर्ता शिव एवं करण शक्ति है। अशुद्ध तत्त्वात्मक कार्यजगत् का आधार भी बिन्दु, कर्ता एवं करण शक्ति है।

बिन्दु का ही अपरपर्याय है— महामाया। यह बिन्दु ही शब्दब्रह्म, कुण्डलिनी, विद्याशक्ति, अनाहत और व्योम— भुवन एवं भोग्यादि के रूप में परिणत होकर शुद्ध जगत् की उत्पत्ति करता है।

बिन्दु-क्षोभ → १. शुद्ध देह, इन्द्रिय, भोग, भुवन : 'शुद्ध अध्वा' → २. शब्दोत्पत्ति।

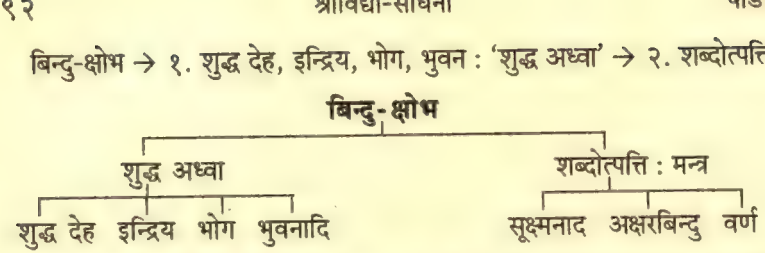

'सूक्ष्म नाद' अभिधेय बुद्धि का कारण एवं बिन्दु का प्रथम स्फार है— प्राथमिक प्रसार है और चिन्तनाविरहित है।

'अक्षरबिन्दु' सूक्ष्म नाद का कार्य है और परामर्शज्ञानस्वरूप है। यह मयूराण्डर-सन्यायवत् अचिन्त्य एवं अनिवर्चनीय है।

'वर्ण' आकाश एवं वायु के संयोग से उत्पन्न एवं श्रोत्रेन्द्रियग्राह्य ध्वनिसमष्टि वर्ण है।

कालोत्तरतन्त्र में स्थूल बिन्दु को 'शब्द', सूक्ष्म को 'चिन्तामय' एवं पर को 'चिन्ताशून्य' कहा गया है—

स्थूलं शब्द इति प्रोक्तं सूक्ष्मं चिन्तामयं भवेत्।
चिन्तया रहितं यत्तु तत्परं परिकीर्तितम्।।

बिन्दु जड़ अवश्य है, किन्तु शुद्ध है। इसे ही पाञ्चरात्र आदि में 'विशुद्ध सत्त्व' आदि कहा गया है।

परमात्मा और बिन्दु महामाया : अन्तस्सम्बन्ध

प्रथम मत— परमात्मा की दो शक्तियाँ हैं— समवायिनी एवं परिग्रहरूपा। समवायिनी शक्ति चिद्रूपिणी, विकारशून्या, नैसर्गिकी, अकृत्रिमा एवं अपरिणामिनी है। यही शिवसमवेता, शिवाभिन्ना 'शक्तितत्त्व' है। परिग्रह शक्ति अचेतन और परिणमन स्वभाव वाली है। इसी का नाम है— 'बिन्दु'।

बिन्दु के भी दो रूप हैं— शुद्ध और अशुद्ध। बिन्दु के शुद्ध रूप को ही 'महामाया' या 'बिन्दु' के नाम से जाना जाता है और बिन्दु का अशुद्ध रूप 'माया' कहलाता है। ये दोनों ही रूप नित्य हैं। मायोपरि तत्त्व शुद्ध अध्वा में स्थित रहता है—

महामाया → शुद्धाध्वा। माया → अशुद्धाध्वा।

द्वितीय मत— बिन्दु → शुद्धाध्वा, अशुद्धाध्वा।

महामाया (बिन्दु) की तीन अवस्थायें— परा, सूक्ष्मा, और स्थूला।

माया अनित्य है; जबकि प्रथम मत में माया भी नित्य है। माया कार्य है। बिन्दु-क्षोभ → शुद्ध जगत्, माया-क्षोभ → अशुद्ध जगत्।

बिन्दु की परावस्था ही महामाया, परामाया एवं कुण्डलिनी आदि है। यह परम कारण एवं नित्य है। सूक्ष्म एवं स्थूल बिन्दु कार्यरूप हैं; अत: अनित्य हैं। महामाया का

विक्षोभ → शुद्ध धाम, मन्त्रों (विद्याओं) एवं मन्त्रेश्वरों (विद्येश्वरों) के शरीर, इन्द्रिय की रचना। मायातीत सृष्टि → शुद्ध सृष्टि।

महामाया का द्वितीय रूप 'माया' है। माया रूपपरिणमन कला आदि तत्त्वसमष्टि का अविभक्त स्वरूप है। माया— समस्त अशुद्धाध्वा। 'महामाया' का तृतीय विकास 'प्रकृति' है, जो कि त्रिगुणरूपा है।

बिन्दु शिव-समवेत नहीं है। बिन्दु परिणामी एवं जड़ है। चिद्रूप परमात्मा से बिन्दु का समवाय सम्बन्ध नहीं है।

कतिपय भेदवादी तान्त्रिक परमात्मा के साथ बिन्दु का समवाय सम्बन्ध मानते भी थे (बिन्दुसमवायवादी थे); उनके मतानुसार परामात्मा की शक्तियाँ होती हैं—

दृक् शक्ति = ज्ञान शक्ति। एवं क्रियाशक्ति = कुण्डलिनी = बिन्दु।

माया बिन्दु से पृथक् है। यह शिवसमवेता भी नहीं है।

बिन्दु-क्षोभ → शुद्ध जगत्। माया-क्षोभ → अशुद्ध जगत्। अम्बा, ज्येष्ठा, रौद्री, वामा शक्तियाँ समस्त शक्तियों का कारण अवश्य हैं; परन्तु ये भी मातृका (शब्द) से सम्बद्ध हैं।

१. परा वाक् ही परा शक्ति— द्वैतमत में 'परा वाक्' बिन्दु की वृत्तिविशेष है। बिन्दु शुद्ध होने पर भी जड़ है। अद्वैतमत के अनुसार परा वाक् परमेश्वर की स्वतन्त्र शक्ति है। वह चिद्रूपा शक्ति है। परमात्मा की यह शक्ति अद्वैतमत में वाक्रूपा है। इसकी परावस्था 'पूर्णाहन्ता' है। इसका स्वरूप महामन्त्रात्मक है। इसके गर्भ में ही अकार से क्षकारपर्यन्त समस्त शक्तिचक्र स्थित है।

मन्त्र का (वाक् का) शक्ति से तादात्म्य सम्बन्ध है। वामकेश्वरतन्त्र के अनुसार—
प्रकाश (शिव) के ४ अंश हैं— अम्बिका, वामा, ज्येष्ठा, रौद्री।
विमर्श (शक्ति) के ४ अंश हैं— शान्ता, इच्छा, ज्ञान, क्रिया।

२. मन्त्रसाधना ही शक्तिसाधना— अम्बिका और शान्ता की सामरस्यावस्था में (शान्ताभावापन्ना) 'परा वाक्' नाम से परा शक्ति स्थित है। यह आत्मस्फुरण की अवस्था है—

आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।
अम्बिकारूपमापन्ना परा वाक् समुदीरिता।।

आत्मस्फुरण की अवस्था = समग्र विश्व बीजरूप में (अस्फुटरूप में) आत्मसत्ता में वर्तमान रहता है। शान्ता से इच्छा का उदय → अव्यक्त विश्व का उदय (विश्वशक्ति की कुक्षि में जगत् का जन्म)। तब इच्छाशक्ति का वामा शक्ति से तादात्म्यप्राप्ति → 'पश्यन्ती वाक्'। फिर ज्ञानशक्ति का आविर्भाव (ज्ञानशक्ति ज्येष्ठा के साथ एकाकार है और 'मध्यमा' के नाम से प्रसिद्ध है)।

जिस समय परा शक्ति अपने स्फुरण को देखती है, उस समय अम्बिकारूप प्राप्त करके 'परा वाक्' कहलाने लगती है। क्रिया शक्ति रौद्री शक्ति के साथ तादात्म्य प्राप्त करने पर 'वैखरी' कहलाने लगती है। सारांश यह है कि वाणी का प्रत्येक रूप और मन्त्र का प्रत्येक अंश शक्ति ही है— परा शक्ति का रूपान्तरमात्र है।

परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी परस्पर मिलकर 'मूल त्रिकोण' या 'महायोनि' का निर्माण करते हैं। शान्ता और अम्बिका का सामरस्य अर्थात् परा वाक् ही इस त्रिकोण का बिन्दु या केन्द्र है। मूल त्रिकोण या महायोनि और ४ वाणियाँ निम्नवत् हैं—

१. त्रिकोण का बिन्दु = केन्द्र = 'परा वाक्'।
२. त्रिकोण की वाम रेखा = 'पश्यन्ती'।
३. त्रिकोण की दक्षिण रेखा = 'वैखरी'।
४. त्रिकोण की सरल रेखा = 'मध्यमा'।

मन्त्र परा शक्ति की अचिन्त्य शक्तियों का केन्द्र है और देवीस्वरूप है। मन्त्र की साधना ही शक्ति की साधना है। शक्ति का उदय वैखरी में नहीं होता और मन्त्रोदय भी वैखरी स्तर पर नहीं होता।

वैखरी वाक् में चिदंश आच्छन्नप्राय रहता है; जबकि अन्य तीनों स्तरों पर उदग्र एवं उन्मिषित रहता है। वैखरी वाक् की भूमि में मनोमय, प्राणमय एवं अन्नमय कोशों की ओर आकर्षण रहता है। मन एवं प्राण की क्रिया से समन्वित स्थूल देह के प्रति आकर्षण होने से इस स्तर पर देहात्मबोध भी प्रबल रहता है।

मध्यमा के स्तर पर नादात्मक चिद्रश्मि नित्य रहती है। वैखरी वाक् के स्तर पर ये रश्मियाँ दृष्टिगत नहीं होतीं। वैखरी से इनके उन्मिषित होने पर ये उज्ज्वल आलोक के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं, किन्तु इनके साथ भी चिदनुसन्धान नहीं रहता।

मध्यमा भूमि में उत्थान के लिए गुरुशक्ति, स्वकीय प्रयत्न एवं जप— तीनों आवश्यक हैं।

१. वैखरी भूमि में लक्ष्य बाह्योन्मुख, निम्नाभिमुख या मूलाधारोन्मुख रहता है।
२. मध्यमा भूमि में लक्ष्य अन्तरोन्मुखी या ऊर्ध्वमुखी रहता है। अतः यह सहस्रारोन्मुखी या गुरुधामोन्मुखी रहता है।

भावना के साथ जप मध्यमा भूमि में प्रवेश का उत्कृष्ट साधन है।

मध्यमा = मध्यवर्ती : एक ओर वैखरी एवं दूसरी ओर पश्यन्ती और उनके मध्य में स्थित है— मध्यमा (व्यक्ताव्यक्त वाक्)।

१. पाशव वाक् 'वैखरी' (प्रारम्भ में)	२. मध्यमा (मध्य में स्थित)	३. दिव्य वाक् पश्यन्ती (अन्त में)	४. परदिव्य वाक् : परा वाक् (शब्दब्रह्म) (सबके अन्त में)

पाशव वाक् वैखरी वाक् है। इस लौकिक शब्द में चैतन्य रश्मि प्रच्छन्न रहती है, जबकि मध्यमा वाक् में यह प्रस्फुट रहती है।

शब्दावस्थायें

परा पश्यन्ती मध्यमा

१. स्फुटचैतन्यात्मिका
(प्रस्फुट चैतन्य से युक्त)
२. प्रस्फुट नादात्मता से युक्त
३. अनन्त आकाश में व्याप्त
४. मूलतः बीजात्मक
५. बीज बिन्दुरूपी केन्द्र में नित्यावस्थित रहता है।

शब्द : अव्यक्त एवं व्यक्ताव्यक्त

मध्यमा वाक्	पश्यन्ती वाक्	परा वाक्
(व्यक्ताव्यक्त के मध्य स्थित)	(अव्यक्त)	(अव्यक्त)

वैखरी

अस्फुटचैतन्यात्मिका
(प्रच्छन्न चिदंश भाववाली)
१. स्फुट
२. नादहीन
३. बाह्योन्मुखी
४. पाशव वाक् से सम्बद्ध
५. अनित्य
६. देहात्मभावोन्मुखी
७. मूलाधारोन्मुख
८. निम्नाभिमुखी
(वैखरी वाक्)

मन्त्र चिद्रश्मिमय है। वैखरी वाक् में चिद्भाव गुप्त रहने के कारण इसके वर्णों में मन्त्रमयता नहीं होती। मन्त्रात्मता से शून्य वैखरी वाक् भी मन्त्रमय चिद्रश्मि का वाचक होने के कारण मन्त्रमय मान ली जाती है— इसके अक्षरों से निर्मित स्थूल विद्या भी 'मन्त्र' मान लिया जाता है— 'मन्त्राश्चिन्मरीचयः। तद्वाचकत्वाद्वैखरीवर्णविलासभूतानां विद्यानां मननात्त्राणता।'

पश्यन्ती वाक्
(आत्मा की अमृत कला)
→ १. देवताओं का प्रकाशन
→ २. विष्णु के परम पद का भी दर्शन
→ कारणस्थ चैतन्य की स्फूर्ति देवस्वरूप।
→ ऋषित्व की प्राप्ति— ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।
←विन्देम देवतावाचममृतामात्मनः कलाम्।

परा वाक् = चिन्मय, परमाव्यक्त, ऊपर से नीचे तक सर्वत्र व्याप्त, समष्टि देवतात्मक। सहस्रार से मूलाधार तक प्रसृत।

३. मन्त्र ही सृष्टि का आदि, मध्य एवं अन्त— ॐकार से ही समस्त सृष्टि का उद्भव हुआ है, उसी में सृष्टि संस्थित है और लयोपरान्त उसी में चिरविश्रान्ति प्राप्त कर लेती है; अतः मन्त्र सृष्टि का आदि, मध्य एवं अन्त सभी कुछ है। मन्त्र विश्वमय, विश्वातीत एवं ब्रह्मस्वरूप है।

परमात्मा के दो रूप हैं— शब्दब्रह्म और परब्रह्म। इनमें से शब्दब्रह्म महामन्त्रात्मक है। यह शब्दब्रह्म ही अवरोहणक्रम में परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी बन जाता हैं। वैसे तो परा वाक् ही 'शब्दब्रह्म' है, किन्तु वाक् के रूप में उसे 'परा वाक्' कहना ही समीचीन होगा। वाणी के चार रूपों का उल्लेख वेदों में भी किया गया है—

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति चतुर्थो वाचो मनुष्याः वदन्ति।।

शब्दब्रह्म और मन्त्र— यदि 'मन्त्र' शब्दब्रह्मरूप आदि मन्त्र के ही प्रस्फुरण हैं और समस्त वर्णसमष्टि ब्रह्म का ही रूपान्तर है तो प्रत्येक मन्त्र अपने मूलस्वरूप में ब्रह्मात्मक, चिदात्मक, अनन्त शक्तिगर्भित, अविनश्वर, अनन्त देवी-देवताओं से युक्त, विश्वमय एवं विश्वातीत, शक्त्यात्मक, सच्चिदानन्द-रूपात्मक, नादात्मक, आत्मस्वरूप, नित्य, पञ्चविध कृत्यनिष्पादक, सृष्टि का मूल— आधार-स्थिति एवं लय का अधिष्ठान और अन्ततः परब्रह्म के साथ सामरस्य प्राप्त करके उसमें अभिन्नतया अवस्थित होने वाला तत्त्व होना चाहिए।

शास्त्रकारों ने इन लक्षणों एवं विशेषताओं को मन्त्र में स्थित पाया भी है।

शब्दब्रह्म की परा गति परब्रह्म में लय है; अतः प्रत्येक मन्त्र की भी परा गति परब्रह्म में लय ही होनी चाहिए, क्योंकि—

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।

प्रत्येक मन्त्र के आदि में ॐ लगाया जाता है। चूँकि ॐ परमात्मा का ध्वन्यात्मक (नादात्मक) स्वरूप है; अतः प्रत्येक मन्त्र अपने विशुद्ध स्वरूप में ध्वन्यात्मक एवं नादात्मक रूप में ही अवस्थित रहता है और अपनी इस अवस्था में वे शब्द-समष्टि नहीं; प्रत्युत ब्रह्म होते हैं।

सृष्टिक्रम एवं लयक्रम— दोनों में शब्दतत्त्व परात्पर तत्त्व है। वह पञ्चभूतों एवं पञ्चभूतात्मक सृष्टि का अधिष्ठान है; क्योंकि लयक्रम में— पृथ्वी का जल में, जल का अग्नि में, अग्नि का वायु में, वायु का आकाश में, आकाश का शब्द में, शब्द का शब्दतन्मात्रा में एवं शब्दतन्मात्रा का शब्दब्रह्म में लय हो जाता है; अतः सृष्टि की लय-प्रक्रिया में अन्तिम तत्त्व 'शब्दब्रह्म' ही शेष रहेगा और बाद में वह भी परब्रह्म के साथ तादात्म्य ग्रहण करके परब्रह्मस्वरूप हो जाएगा। सृष्टिक्रम में इसी शब्दब्रह्म से समस्त तन्मात्रायें, पञ्चभूत, त्रिगुण प्रकृति, महामाया, माया, प्रकृति एवं समस्त पिण्ड, ब्रह्माण्ड, प्रकृत्यण्ड, शिवाण्ड एवं शाक्ताण्डों की सृष्टि होती है। चूँकि शब्दब्रह्म ही जगत् का अधिष्ठान है; अतः विश्वमय भी है और चूँकि मन्त्र लयोपरान्त भी स्थित रहता है; अतः विश्वातीत भी है।

४. प्राणात्मक बीजों से मन्त्र की उत्पत्ति— मन्त्र हंसरूप या प्राणात्मक है। चूँकि

मन्त्र अपने मूल रूप में नादात्मक हैं और नाद प्राणात्मक है या प्राण की गति है; अत: मन्त्र प्राणात्मक हैं।प्राण का स्वाभाविक धर्म 'उच्चारण' है। इसकी द्विविधात्मक वृत्तियाँ हैं—

१. सामान्यस्पन्दात्मक एवं भेदहीन।

२. प्राणादि पञ्चभेदात्मक।

जो प्राणात्मक उच्चार है, उससे निरन्तर अव्यक्त ध्वनि स्फुरित होती रहती है। यह अखण्डात्मक उच्चार 'अनाहत नाद' पदवाच्य है। यह प्रत्येक प्राणी के हृदय में निरापद एवं अखण्ड रूप से प्रवहमान या गुञ्जरित रहता है। यह स्वाभाविक धर्म है। समस्त वर्ण इसी में विद्यमान रहते हैं; अत: यह वर्णों का उत्पत्ति-केन्द्र है।

अनाहत नाद समस्त वर्णों एवं ध्वनियों का केन्द्र है। अनाहत नाद स्वयं भी दो बीजों से उत्पन्न होता है। वे दो बीज निम्नांकित हैं—

१. सृष्टिबीज 'स' ┐ सोऽहं : 'हंस:' ┐ सकार
२. संहारबीज 'ह' ┘ अजपा जप ┘ हकार

इन दोनों बीजों का आश्रय लेकर ही नाद (मन्त्र) आविर्भूत होता है।

एक अहोरात्र में मनुष्य स्वाभाविक रूप से २१६०० श्वास-प्रश्वास की क्रीड़ा में निरत रहता है। 'हम्' ध्वनि करती हुई श्वास का निर्गमन 'प्रश्वास' एवं 'स' ध्वनि करती हुई श्वास का आन्तर प्रवेश 'नि:श्वास' कहलाता है।

हङ्कारेण बहिर्याति स:कारेण विशेत्पुन:।
हं वर्ण पूरके हय स:वर्ण रेचके वय।
अहर्निश करे जप हंस हंस बलिया।। (रामप्रसाद)

किन्तु यह कथन अशास्त्रीय है।

योगबीज—

गुरुवाक्यात् सुषुम्नायां विपरीतोऽभवज्जप:।
सोऽहं सोऽहमिति प्राप्तो मन्त्रयोग: स उच्यते।।

प्राणी श्वास-प्रश्वास के द्वारा 'हंस' मन्त्र (अजपा गायत्री) का अहर्निश जप करता रहता है। 'हंस' की गति रोककर इसे विपरीत रूप में 'सोऽहम्' गति में परिवर्तित करना ही मान्त्रिक साधना है। इससे 'इडा' एवं 'पिंगला' में सञ्चरित वायु की वक्र गति बन्द होकर सुषुम्णा में सरल गति से श्वाससञ्चार होने लगता है। ब्रह्ममार्ग सुषुम्णा में प्रवेशार्थ वायु एवं मन की ऊर्ध्व गति आवश्यक है। सरल गति अर्थात् गतिहीन अवस्था की प्राप्ति। प्राणापान व्यापार ही हंसमन्त्र है। 'प्राण' अपान को एवं 'अपान' प्राण को अपनी ओर खींचता है; किन्तु दोनों गतियाँ विपरीतगामी हैं— यही वैषम्य का कारण है। साम्यावस्था भंग होने से दोनों में विरुद्ध गति का उदय हुआ; किन्तु वे अनजाने ही साम्यभाव में प्रतिष्ठित होकर विरोध का त्याग करना चाहते हैं। जब तक यह साम्यभाव

अधिगत नहीं होगा, तबतक शान्ति कहाँ? योगी इन दोनों विरुद्ध गतियों में साम्यभाव स्थापित करना चाहता है ।

हकार = अपान का सञ्चार। सकार = प्राण का सञ्चार। हंसविद्या = प्राणापान-संयोग। अहं = जीवात्मा का सूचक। सः = शक्ति का वाचक। 'अहं ही सः है' = यही साधना का लक्ष्य है। (इसकी अनुभूति ही सारी साधनाओं का उद्देश्य है।) 'सः' प्राणरूप है। 'हं' अपान है। 'सः' एवं 'हम्'— मन्त्र के ये दो भाग प्राणापान वृत्ति से शरीर में निरन्तर सञ्चरित हैं। 'हंसः' में हकार पुरुष एवं सकार प्रकृति है। अतः 'हंसः' जगत् की अभिव्यक्ति भी है—

हकारः पुरुषः प्रोक्तः स इति प्रकृतिर्मता।
पुंप्रकृत्यात्मको हंसस्तदात्मकमिदं जगत्।।

अनाहत नाद की अभिव्यक्तिस्थान के दो बीज हैं— सृष्टिबीज 'स' एवं संहारबीज 'ह'। इन्हीं दोनों से 'नाद' निर्गत होता है; अतः नादरूप मन्त्र प्राणात्मक एवं हंसरूप है।

चिदाकाश का प्रथम स्पन्दन → प्राण के आदि मूल का उदय → अनाहत नादरूप 'हंसः' का उदय।

चिदाकाश का स्पन्दन भी स्वतःसिद्ध नहीं है। यह स्पन्दन भी परम पुरुष एवं परमा प्रकृति की योगावस्था से उद्भूत हुआ है।

'हं' परम पुरुष है। और 'सः' परमा प्रकृति। दोनों की संयोगावस्था है— 'हंसः'। 'प्राण' को संवित् का प्रथम परिणाम भी कहा गया है। श्वास-प्रश्वास की क्रीड़ा हंसरूपी प्राण-व्यापार का पर्याय है। हंकार = अनन्त की ओर गति। सःकार = अन्तःप्रवेश = देह में प्रत्यावर्तन। इस गमनागमन का नियामक 'परमहंस' है। यह जप ही 'अजपा मन्त्र' है। मन्त्र इसी अजपाजप या हंसमन्त्र का स्वरूप है और चूँकि यह प्राण के उच्चारात्मक सृष्टिबीज एवं संहारबीज की अभिव्यक्ति है; अतः नादात्मक मूल मन्त्र प्राणात्मक एवं हंसात्मक है और उसका आदर्श स्वरूप है— 'प्राणात्मक सोऽहं मन्त्र।'

मन्त्र मन की मात्राओं को क्षीणतर करते जाने का विधान— मन यदि एक मात्रा में स्थित हो जाय तो एकाग्र भूमि की प्रतिष्ठा होती है। एकाग्र भूमि में प्रतिष्ठित मन की मात्रा को पुनः तोड़ने पर उसका नाम होता है— 'अर्धमात्रा'। मन की मात्रा जितनी ही क्षीण होगी, चैतन्य और आनन्द उतना ही संवर्द्धित होता जायगा— चिदालोक बढ़ता जायगा— मनन एवं त्राण उतने ही अधिक सशक्त होते जायेंगे। यदि मन्त्र 'चिन्मरीचि' है तो चित् की मरीचियों में भी वृद्धि होती जायगी। अन्तिम अवस्था में मन इतना सूक्ष्म हो जाता है कि तब उसके रहने पर भी वह न रहने के समतुल्य रहता है। 'उन्मना' मन के क्षीणतम अवस्था में भी उन्मूलन का स्तर है।

मन्त्र आत्मा की रश्मियाँ— मन्त्रसाधना आत्मसाधना है; क्योंकि 'मन्त्राश्चिन्मरीचयः' अर्थात् मन्त्र आत्मा की रश्मियाँ हैं।

भास्कर राय एवं योगिनीहृदय की दृष्टि— ऋषियों द्वारा विशिष्ट शक्तिसम्पन्न वर्णों का विशिष्ट क्रम में विन्यस्त वर्णसमुदाय, अवस्था, शून्य, विषुव, चक्र एवं प्रत्येक वर्ण व उसकी समष्टि के अर्थ का चिन्तन जिसमें समाविष्ट हो, वही वर्णसंघटन जपात्मक 'मन्त्र' है। इसीलिए जप करते समय मन्त्रांग के रूप में इनका स्मरण आवश्यक होता है—

एवमवस्थाशून्यविषुवन्ति चक्राणि पञ्च षट् सप्त।
नव च मनोरर्थाश्च स्मरतोऽर्णोच्चारणं तु जपः।।

(वरिवस्यारहस्यम्)

मन्त्र अपने संघटक वर्णों के अभिधेयार्थ (शक्यार्थ) का ही व्यञ्जक नहीं है; प्रत्युत 'मन्त्र' वह शाब्दिक विशिष्ट आर्ष रचना है, जिसमें भावार्थ, सम्प्रदायार्थ, निगर्भार्थ, कौलिकार्थ, रहस्यार्थ, महातत्त्वार्थ, नामार्थ, शब्दरूपार्थ, नामैकदेशार्थ, शाक्तार्थ, सामरस्यार्थ, समस्तार्थ, सगुणार्थ एवं महावाक्यार्थ आदि दिव्य अर्थ अन्तर्गर्भित हैं। इसके साथ ही उसके यथार्थ स्वरूप की अभिव्यक्ति के लिए जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, तुरीयातीत अवस्थायें; मन्त्रविषुव, नाड़ीविषुव, प्रशान्तविषुव, शक्तिविषुव एवं तत्त्वविषुव; बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त शक्ति, व्यापिका, समना एवं उन्मनी ९ नाद; ९ चक्र एवं शून्य के साथ ही जगत्, मन्त्र, चक्र, गुरु, देवता आदि के साथ सामरस्य की अनुभूति भी आवश्यक है।

५. मन्त्रसाधना शक्तिसाधना— 'मन्त्र' जगदम्बिका का स्वस्वरूप है और इसीलिए कहा भी गया है— 'मन्त्राधीनाश्च देवता'। मन्त्र के भगवत्स्वरूप या शक्तिस्वरूप होने के कारण मन्त्रसाधना शक्तिसाधना है। इसीलिए तन्त्रसद्भाव में कहा गया है कि मन्त्र का प्राण या उसका जीवन तो शक्ति है; अतः जिस मन्त्रसाधना में शक्ति का अभाव हो— शक्ति-साधना नहीं हो, वह मन्त्रसाधना निष्फल है—

मन्त्राणां जीवभूता तु या स्मृता शक्तिरव्यया।
तया हीना वरारोहे निष्फलाः शरदभ्रवत्।।

शिवसूत्र में मन्त्र को 'शाक्तोपाय' स्वीकार किया गया है। 'शाक्तोपाय' में शक्ति मन्त्र-वीर्यस्फाररूपा होती है— 'तत्र शक्तिः मन्त्रवीर्यस्फाररूपा।'

आचार्य क्षेमराज ने शिवसूत्रविमर्शिनी में मन्त्र की इस प्रकार व्याख्या की है—

'चेत्यते विमृश्यते अनेन परं तत्त्वम् इति चित्तम्, पूर्णस्फुरत्तासतत्त्वप्रासादप्रणवादिविमर्शरूपं संवेदनम्, तदेव मन्त्र्यते गुप्तम्, अन्तर अभेदेन विमृश्यते परमेश्वररूपम् अनेन इति कृत्वा मन्त्रः।'

'अत एव च परस्फुरत्तात्मकमननधर्मात्मता, भेदमयसंसारप्रशमनात्मकत्राणधर्मता चास्य निरुच्यते।'

'अथ च मन्त्रदेवताविमर्शपरत्वेन प्राप्ततत्सामरस्यमाराधकचित्तमेव मन्त्रः।'

समस्त वर्ण मन्त्र हैं। सारे मन्त्र शक्तिस्वरूप हैं। शक्ति मातृकास्वरूप है; अत: शिवात्मिका भी है—

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मका: प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका।। (तन्त्रसद्भाव)

स्पन्दसूत्र (स्पन्दकारिका) में कहा गया है कि मन्त्र सर्वज्ञता आदि समस्त सिद्धियों एवं शक्तियों से ओतप्रोत हैं और शिवधर्मी हैं—

तयाक्रम्य बलं मन्त्रा: सर्वज्ञबलशालिन:।
प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिन:।।२६।।

तत्रैव सम्प्रलीयन्ते शान्तरूपा: निरञ्जना:।
सह साधकचित्तेन तेनैते शिवधर्मिण:।।२७।।

हंसपारमेश्वर का कथन है—

क. वर्णरूप मन्त्र पशुभाव में स्थित हैं।

ख. सुषुम्नामार्ग से उच्चारण करने पर वे मन्त्र पशुपति बन जाते हैं।

मन्त्र की दो अवस्थायें होती हैं— पशु अवस्था और पशुपति अवस्था। 'श्री वैहायसी' में कहा गया है कि 'नाद' शक्ति है; अत: मन्त्र के साथ उसका नादोर्ध्वध्वनिबोधित जप करना चाहिए; क्योंकि मन्त्रों में नाद शक्तिसूत्र में ग्रथित मनकों की भाँति होता है। वह शक्ति परम व्योम में निवास करती है और परमामृतमयी होती है। उक्त रीति से जप करने पर ही मन्त्र अपने स्वरूप को प्रकट करता है, अन्यथा प्रकट नहीं करता; बल्कि अपने को गुप्त रखता है।

'श्रीकालपरा' में कहा गया है कि शब्द नादात्मक हैं; अत: उनके साथ प्रत्यय एवं संवित् संलग्न रहना चाहिये। मन्त्रबोध के स्वरूप में स्थित संवित् अभिन्न है; अत: आत्म-बोध कराती है। उत्पलाचार्य 'स्पन्दप्रदीपिका' में कहते हैं कि चिच्छक्ति के बल का स्पर्श न होने से मन्त्र के वर्ण जड़ अक्षरमात्र बनकर रह जाते हैं। परम तत्त्व का बोध हो जाने पर मन्त्र किङ्कर बन जाते हैं। बीज, पिण्ड, पद एवं नाम को उत्पलाचार्य मन्त्र का मुख्य तत्त्व मानते हैं।

६. शक्ति के रूप : वाणी और मन्त्र—

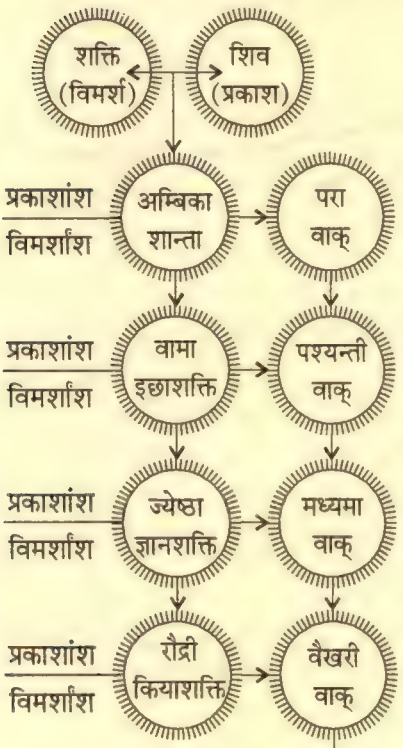

श्रीचक्र का प्रथम भाग—
वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका, परा

श्रीचक्र का द्वितीय भाग—
इच्छा, ज्ञान, क्रिया = ९ अंग।
ये ही श्रीचक्र के ९ त्रिकोण हैं।
यही त्रिकोण ९ चक्रों के रूप में परिणत हो जाता है।

चक्रों की नाद से एकता—

१. मूलाधार चक्र	परा वाक्	त्रिकोण
२. स्वाधिष्ठान चक्र	पश्यन्ती वाक्	अष्टार
३. मणिपूर चक्र	मध्यमा वाक्	दशारद्वय
४. विशुद्ध चक्र	वैखरी वाक्	चतुर्दशार
५. आज्ञा चक्र	नाद, नादान्त	शिव-चतुष्कोण
६. सहस्रार चक्र	नादबिन्दु कलातीत	परा संवित्

१. अम्बिका + शान्ता → परा वाक्।
२. वामा + इच्छाशक्ति → पश्यन्ती वाक्।
३. ज्येष्ठा + ज्ञानशक्ति → मध्यमा वाक्।
४. रौद्री + क्रियाशक्ति → वैखरी वाक्।

परा वाक्— आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।
अम्बिकारूपमापन्ना परा वाक् समुदीरिता।।

पश्यन्ती वाक्— इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता।

मध्यमा वाक्— ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा मध्यमा वागुदीरिता।
ऋजेरेखामयी अत्र शृङ्गाटाग्ररेखाकारा मध्यमा वागुदीरिता।।

वैखरी वाक्— क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा।

मन्त्र वर्णों की समष्टि नहीं है; प्रत्युत यह शक्ति का परिणमन है; अतः यह परा

शक्ति का एक विशिष्ट रूप है। इसीलिये भास्करराय मखिन ने वरिवस्यारहस्यम् (१.५) में कहा है कि परमात्मा की 'विमर्श शक्ति' ही चार रूपों में परिणत हो जाती है और उनमें एक परिणमन शब्दमय है।

शक्ति के परिणाम : परिणाम के भेद[1]

अर्थमयी	शब्दमयी	चक्रमयी	देहमयी
(शिवादिक्षित्यन्त षट्त्रिंशत्तत्त्वरूप)	(परा, पश्यन्ती मध्यमा वैखरी)	(बिन्द्वादि भूगृहान्ता)	(स्थूल, सूक्ष्म कारण आदि)

सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा।
अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टि:।।[2]

मन्त्र विश्वविज्ञान के मनन एवं संकटों से त्राण का एक विधान है। 'नारदपाञ्चरात्र' के अन्तर्गत 'माहेश्वरं तन्त्र' के ज्ञानखण्ड में कहा गया है कि जिसके द्वारा विश्वविज्ञान का मनन किया जाता है और संसार के संकटों से त्राण किया जाता हो, उसे 'मन्त्र' कहा जाता है—

मननं विश्वविज्ञानं त्राणं संसारसङ्कटात्।
यत: करोति संसिद्धो मन्त्र इत्युच्यते प्रिये।।

मन्त्र शब्द 'मन्' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है— विचार करना। 'मन्त्रि गुप्तभाषणे' (चु० प० से०) से घञ् प्रत्यय (३.३.१९-१८) लगाने पर 'मन्त्र' शब्द निष्पन्न होता है। मेदिनी कोष में इसके निम्न अर्थ बताये गए हैं—

मन्त्रो वेदविशेषे स्यादेवादीनां च साधने।
गुह्यवादेऽपि च पुमान्..... ।।

मन्त्र्यते अनेन इति मन्त्र:।

वर्णमाला के समस्त वर्ण पिण्डस्थ यौगिक केन्द्रों (चक्रों = पद्मों) के विभिन्न दलों पर स्थित हैं। प्रत्येक केन्द्र (पद्म) में केन्द्रीय तत्त्व का बीजमन्त्र भी स्थित है। चूँकि कुण्डलिनी ज्योतिर्मयी एवं मन्त्रमयी दोनों है; अत: उसको जागृत करने के लिये भी मन्त्र का प्रयोग करना पड़ता है। तन्त्रशास्त्र का अंगभूत यह मन्त्रतत्त्व इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसका स्वतन्त्र नाम ही 'मन्त्रशास्त्र' के रूप में प्रचलित हो गया अर्थात् मन्त्र साधना की एक विशिष्ट शाखा एवं विशिष्ट शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। 'वेध दीक्षा' में गुरु मन्त्र के द्वारा शिष्य में शक्ति स्थानान्तरित करता है।

मन्त्रों के द्वारा मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन, द्वेषण (आभिचारिक षट् कर्म), होम, तर्पण, प्रार्थना, आत्मसाधना, दीक्षा, कुण्डलिनी-जागरण, भक्ति, मन्त्र-योग, भगवत्पूजा आदि समस्त आध्यात्मिक एवं यौगिक-तान्त्रिक साधनायें निष्पन्न की जाती हैं।

१. वरिवस्यारहस्यम् —भास्कर राय। २. वरिवस्यारहस्यम् —भास्कर राय।

'मन्त्र' विचार-साधना का ही एक रूप है। विचार-साधना के रूप में पाश्चात्य देशों में पर-चित्त-ज्ञान (Thought reading), विचार-सम्प्रेषण (Thought transference), सम्मोहनजन्य निर्देश (Hypnotic suggestion), मेस्मेरिक शक्तिपात आदि प्रचलित हैं; किन्तु 'विचार-विज्ञान' अज्ञात है। यह विचार-विज्ञान ही 'मन्त्रविद्या' है। मन्त्र-विद्या कतिपय वर्णों का अविरत उच्चारणमात्र नहीं है; इसीलिये पतञ्जलि ने योगसूत्र में 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' कहकर इन विशिष्ट शब्दविन्यासों (मन्त्रों) के साथ अर्थभावन (विचार-प्रवाह, ध्येय का चिन्तन) भी आवश्यक माना था।

विचार एवं मन्त्र : एक शक्ति के विभिन्न रूप— भारतीय चिन्तन यह मानता है कि विचार भी एक शक्ति है। यह उतना ही सत्य एवं यथार्थ है, जितना कि बाह्य पदार्थ हैं। विश्वचेता अर्थात् विश्वसृष्टि का आदिविचारक परमात्मा विश्व की सृष्टि अपने विचारों में ही करता है अर्थात् उसके विचार-जगत् में ही यह पादार्थिक सम्पन्न जगत् उत्पन्न हो जाता है। उसकी सिसृक्षा ही सृष्टि है— उसका रचनात्मक विचार ही जगत् है— उसका चिन्तन ही जगत् का अनन्त विकास है।

७. मन्त्र और देवता का सम्बन्ध— मन्त्र देवता का शाब्दिक स्वरूप या शाब्दिक शरीर है और देवता मन्त्र का स्थूल तैजस स्वरूप या साकार विग्रह है।

'मन्त्र' और 'देवता' नाम और नामी हैं। 'मन्त्र' वाचक है और 'देवता' वाच्य है। 'मन्त्र' नाम है और 'देवता' नामी है। 'मन्त्र' शब्द है और 'देवता' उसका अर्थ है। नाम एक शाब्दिक सूत्र है, जिससे नामी पकड़ में आता है। 'देवता' का मूल स्वरूप उसका नाम है और उसका रूप इसी नाम के आधीन है; क्योंकि उसके विना उसके रूप का ज्ञान सम्भव नहीं है—

देखियहिं रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम विहीना।।
रूप विशेष नाम विनु जानें। करतलगत न परहिं पहिचाने।।

'जप' में जिस मन्त्र का उच्चारण किया जाता है या जिस देवता के नाम का जप किया जाता है, वह उस देवता का 'वाचक' होता है। 'नाम' या 'मन्त्र' शब्द है और 'देवता' उसका अर्थ है।

मन्त्र के जप के द्वारा देवता को जगाया जाता है। शाक्त साधक कहते हैं कि जप सुषुप्त (देवता) को जगाने की एक पद्धति है— देव-जागरण की प्रक्रिया है।

अधरोष्ठ 'शक्ति' है और उत्तरोष्ठ 'शिव' है। दोनों की टकराहट (संघर्ष) से मन्त्र के देवता का जन्म होता है; अतः देवता को साधक का पुत्र भी कहा गया है।

बीज से ही देवता के शरीर का जन्म होता है—

देवतायाः शरीरं तु बीजादुत्पद्यते ध्रुवम्।

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-९.९६)

ध्यान के द्वारा जिस रूप का साक्षात्कार होता है, वही 'मन्त्र' का अर्थ है—

ध्यानेन परमेशानि ! यद्रूपं समुपस्थितम्।
तदेव परमेशानि ! मन्त्रार्थं विद्धि पार्वति !।।

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-९.९७)

अर्थात् 'देवता' मन्त्र का अर्थ है। 'नाम' अभिधान है और 'देवता' अभिधेय है।

कामधेनु तन्त्र में जिन नव तत्त्वों का उल्लेख किया गया है, उनमें से एक तत्त्व देवतत्त्व भी है और वह प्रथम तत्त्व है—

देवतत्त्वं प्राणतत्त्वं बिन्दुतत्त्वं च सुन्दरि।
ज्ञानतत्त्वं शक्तितत्त्वं योनितत्त्वं तथैव च।।
नवतत्त्वमिदं प्रोक्तं कामधेनुमतं प्रिये।।

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-९.९७)

देवता कोई भौतिक पदार्थ नहीं है; प्रत्युत 'मन्त्र' का अर्थमात्र है— 'मन्त्रार्थं देवता-रूपं चिन्तनं परमेश्वरि।' क्योंकि मन्त्र एवं देवता में वाच्य-वाचकभाव है—

वाच्यवाचकभावेन अभेदो मन्त्रदेवयोः। (शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

जिस प्रकार वाच्य एवं वाचक में अभेद होता है, उसी प्रकार मन्त्र और देवता में भी अभेद होता है— 'अभेदं मन्त्रदेवयोः।' (शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

८. मन्त्र और देवता : वाचक-वाच्य सम्बन्ध— जब कोई 'घट' शब्द कहता है तब घटनामक पदार्थ का (मन में) भाव उत्पन्न होता है, तभी 'घट' शब्द की सार्थकता होती है, अन्यथा नहीं; क्योंकि घट एक शब्द है, जिसका उद्देश्य अपने अर्थ का बोध कराना है अर्थात् जिस प्रकार वाचक की चरितार्थता अपने वाच्य का बोध कराने में है, उसी प्रकार मन्त्र की चरितार्थता (शाब्दिक पुनरावृत्तिमात्र नहीं है) मन्त्रार्थ का बोध कराने में है। मन्त्र का अर्थ ही तो देवता है। अतः यदि मन्त्र अपने अर्थ (देवता) का साक्षात्कार कराने में समर्थ नहीं हुआ तो वह 'मन्त्र' नहीं; प्रत्युत वर्णों का समुच्चयमात्र है। इसीलिये कहा गया है कि मन्त्र के साथ मन्त्रार्थ (देवता) का ध्यान भी करना चाहिए—

आदौ ध्यानं ततो मन्त्रो ध्यानस्यान्ते मनुं जपेत्।
ध्यानमन्त्रसमायुक्तः शीघ्रं सिध्यति साधकः।।

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-९.१२)

यस्य यस्य च मन्त्रस्य उद्दिष्टा या च देवता।
चिन्तयित्वा तदाकारं मनसा जपमाचरेत्।।

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-९.१४)

क्योंकि मन्त्र वाचक है और देवता वाच्य है। वाचक के इस वाच्य-वाचकभाव का साक्षात्कार कर लेने पर भी देवता प्रसन्न हो उठता है; क्योंकि मन्त्र देवता का ही तो शाब्दिक प्रतीक है—

वाच्या हि देवता देवमन्त्रो हि वाचकः स्मृतः।
वाचकेऽपि च विज्ञाते वाच्य एव प्रसीदति।।
(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-९.२)

९. मन्त्राक्षर और देवता के अंगों का सम्बन्ध— मन्त्र के साथ मन्त्र के श्रोत्र, नेत्र, प्राण आदि जानने की अनिवार्यता का इसीलिये विधान किया गया है। जैसे कि 'काली मन्त्र' को लें—

१. श्रोत्र = बिन्दु, २. मुख = नाद, ३. हृदय = ककार, ४. नेत्र = वह्नि।[1]

श्यामा का— १. मस्तक = क्रींकार, २. नासिका = हुंकार, ३. कर्णयुगल = रींकार, ४. चिबुक = दकार, ५. दाँत = क्षिकार, ६. ओष्ठ= णेकार, ७. स्तनद्वय = काकार, ८. पृष्ठदेश = लिकार, ९. बाहु = केकार, १०. उदर = 'क्रींकार' = उदर (नाभि, नितम्ब, मस्तक, ललाट, नेत्रत्रय आदि सभी क्रींकार के प्रतीक हैं), ११. योनि = हंकार, उरुयुग्म, १२. पदद्वय = स्वा, १३. नख = हाकार।

ताराविद्या का— १. मुख = व्याहृति। प्रणव, २. लोचन = माया के नीचे का बिन्दु, ३. श्रोत्र = हसकार, ४. हृदय = दीर्घस्वर, ५. योनि, उदर = फट्कार, ६. स्तनद्वय = अकार, ७. पदयुग्म = रेफयुग्म, ८. भाललोचन = नकार, ९. भुजायें = नादयुग्म आदि।[2]

मन्त्र और कुण्डलिनी— कुण्डलिनी शक्ति जागृत् होकर चार रूपों में अभिव्यक्त होती है—

१. क्रियावती = आसन, प्राणायाम, मुद्रा, नृत्य, शारीरकम्पादिक।
२. कलावती = ३६ तत्त्वों के व्यतिरेक और शुद्धि-क्रियायें।
३. वर्णमयी = परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी एवं मन्त्रमयी।
४. वेधमयी = षट्चक्र एवं उनका वेधन।

इस प्रकार कुण्डलिनी का मन्त्र एवं वर्णों के साथ अपृथक् सम्बन्ध है।

मन्त्र और नाद— मन्त्र नादात्मा है। 'नाद' शक्ति का ध्वन्यात्मक रूप है। चूँकि मन्त्र नादात्मक हैं और नाद शक्ति के रूप हैं; अतः मन्त्र भी शक्ति के ही रूप हैं। नाद के दो रूप हैं—

१. आहत नाद— यथा संगीत के सप्त स्वर, वर्णमाला।

२. अनाहत नाद— योग में वर्णित एवं चक्रों में गुञ्जित अव्यक्त एवं अन + आहत नाद (यथा १० नाद)।

सच्चिदानन्द सकल परमेश्वर से 'शक्ति' का प्राकट्य होता है। शक्ति से 'नाद' का आविर्भाव होता है और नाद से 'बिन्दु' का आविर्भाव होता है।

---

१. शाक्तानन्दतरंगिणी। २. यामल, शाक्तानन्दतरंगिणी (९.३७-४०)।

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादाद्बिन्दुसमुद्भवः।।

समस्त वाक्यात्मक मन्त्र वेद, शास्त्र, पुराण, काव्य, भाषायें, सप्तस्वर, गाथायें सभी 'नाद' से उत्पन्न होती हैं। यह नादरूपा सरस्वती देवी समस्त प्राणियों की बुद्धि-गुहा में निवास करती है—

सर्वे वाक्यात्मका मन्त्रा वेदशास्त्राणि कृत्स्नशः।
पुराणानि च काव्यानि भाषाश्च विविधा अपि।।
सप्तस्वराश्च गाथाश्च सर्वे नादसमुद्भवाः।
एषा सरस्वती देवी सर्वभूतगुहाश्रया।।

(योगशिखोपनिषद्)

मन्त्र और जीव— मन्त्र शिव एवं शक्ति के रूप हैं। अजपा गायत्री के स्वयम्भू मन्त्र 'हंसः' को लीजिये। 'हं' शिव का एवं 'सः' शक्ति का वाचक है। 'हं' का वाच्य शिव एवं 'सः' का शक्ति है। यही विपरीत स्थिति में 'सोऽहं' मन्त्र बन जाता है। प्राणी शिवशक्त्यात्मक 'हंसः' मन्त्र का अखण्ड जप करता रहता है—

हंकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः।
हंसहंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।।

क. 'हंसः' मन्त्र = जीववाचक।
ख. 'सोऽहं मन्त्र = ब्रह्मात्मैक्यवा
} ह + स = हसौ। मन्त्र = प्रेतबीज।

उच्छ्वास → 'सः'। निःश्वास → 'हं'। बीजमन्त्र 'ह्रीं' को लें— ह = आकाश। र = स्पन्द। ई = शक्ति। अनुस्वार = ब्राह्म तेज।

मन्त्र और देवता— 'मन्त्राणां मातृका देवी' कहकर मन्त्रों की प्रत्येक मातृका (वर्ण) को देवी का साक्षात् रूप घोषित किया गया है। ललितासहस्रनाम में देवी को 'सर्वमन्त्रस्वरूपिणी' कहकर मन्त्र एवं देवी में तादात्म्य स्थापित किया गया है—

सर्वेश्वरी सर्वमयी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी।

(इ) श्रीविद्या

भगवती राजराजेश्वरी ही आत्मविद्या, महाविद्या, श्रीषोडशाक्षरी विद्या एवं श्रीविद्या है—

आत्मविद्या महाविद्या श्रीविद्या कामसेविता।
श्रीषोडशाक्षरी विद्या त्रिकूटा कामकोटिका।।

विमर्शस्वरूपा भगवती कोई अन्य नहीं, श्रीविद्या ही हैं—

विमर्शरूपिणी विद्या वियदादि जगत्प्रसूः। (ललितासहस्रनाम)

मन्त्रों में श्रेष्ठतमा विद्या 'श्रीविद्या' ही है— 'श्रीविद्यैव तु मन्त्राणां' और श्रीविद्या में भी श्रेष्ठतर 'कादि विद्या' है— 'तत्र कादिर्यथा परा।' (ललितासहस्रनाम)

षोडशाक्षरी विद्या की अवर्णनीय महत्ता— करोड़ों वाक्यों एवं करोड़ों जिह्वाओं से भी षोडशाक्षरी विद्या का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है—

वाक्यकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि।
वर्णितुं नैव शक्येऽहं श्रीविद्यां षोडशाक्षरीम्।।

समस्त विद्यायें भगवती के भेद ही तो हैं— 'विद्या समस्तास्तव देवि भेदाः।' सारी स्त्रियाँ भी देवी के रूप हैं— 'स्त्रियाः समस्ता सकला जगत्सु।'

सौभाग्यभास्कर में कहा गया है कि 'श्रीविद्या' का स्वरूप निम्नानुसार है—

कामराजाख्यमन्त्रान्ते श्रीबीजेन समन्विता।
षोडशाक्षरविद्येयं श्रीविद्येति प्रकीर्तिता।।

कामेश्वर एवं कामेश्वरी का एक बिन्दु में मिलन ही 'श्रीविद्या' है। मोक्ष का विधान करने वाली विद्या तो मात्र 'श्रीविद्या' ही है— 'मोक्षैकहेतुविद्या सा श्रीविद्या नात्र संशयः।'

शंकराचार्य ने कहा था कि ब्रह्मगतिप्रदा विद्या ही यथार्थ विद्या है— 'विद्या हि का? ब्रह्मगतिप्रदा या।'

भगवती ललिता ही वास्तविक 'विद्या' है— 'विद्याऽसि सा भगवती परमा हि देवी।' (सप्तशती-४.९)।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी 'श्रीविद्या' से अभिन्न हैं। इसी कारण भगवती को 'परमा विद्या' भी कहा गया है— 'सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।' (सप्तशती-२.७) और मुक्ति का कारण भी। विश्वमाता ही 'श्रीविद्या' है।

भगवती राजराजेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी ही 'श्रीविद्या' भी हैं; कहा गया है कि पिपीलिका से ब्रह्माण्डपर्यन्त स्थित समस्त जीवों की स्फुरणा या जृम्भण के रूप में स्थित जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति में भासक तत्त्व के रूप में अनुस्यूत करुणावरुणालय जगदम्बिका भगवती राजराजेश्वरी ही श्रीविद्या हैं—

आब्रह्माण्डपिपीलिकान्ततनुभृत् सूज्जृम्भमाणा स्फुटं
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभासकतया सर्वत्र या दीव्यति।
सा देवी जगदम्बिका भगवती श्रीराजराजेश्वरी
श्रीविद्या करुणानिधिः शुभकरी भूयात्सदा श्रेयसे।।

'श्रीविद्या' गुरुमुखैकगम्या है और इसकी उपासना सम्प्रदाय में दीक्षा लेने के बाद ही करनी चाहिए; क्योंकि पुस्तकस्था विद्या (मन्त्र) को देखकर जो उसका जप करता है, वह जीवितावस्था में ही चाण्डाल है और मृत्यूपरान्त वह कुत्ते की योनि में जन्म ग्रहण करता है—

पुस्तके लिखितान्मन्त्रान्दृष्ट्वा जपति यो नरः।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतः श्वा चाभिजायते।।

'श्रीविद्या' आदिविद्या है और विश्वमाता है। श्रीदेव्यथर्वशीर्ष में कहा भी गया है—

कामो योनि: कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वभ्रमिन्द्र:।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्चैषा विश्वमातादिविद्योम्।।

यही 'काम योनि' भी है : 'कामो योनि:।' सुन्दरी के विना सौन्दर्य कहाँ? सौन्दर्य के विना काम का विस्तार कहाँ? वह काम एवं सौन्दर्य दोनों की योनि है। यद्यपि कामारि ने काम को भस्म कर दिया था, तथपि 'सुन्दरी' ने उसे अनंग के रूप में पुन: जीवित कर दिया। 'श्रीविद्या' की उपासना करने वालों में मन्मथ भी एक हैं और उनका 'मन्मथ सम्प्रदाय' भी है ।

इसी श्रीविद्या मन्त्र से 'गायत्री मन्त्र' का भी आविर्भाव हुआ है। गायत्री मन्त्र का रहस्यात्मक एवं गुप्त स्वरूप 'पञ्चदशी विद्या' ही है।

विद्वान् वह नहीं कहलाता, जो शिल्पादिक ज्ञान का मर्मज्ञ है; प्रत्युत विद्वान् वह है, जो श्रीविद्या का रहस्यवित् हो तथा ज्ञान की सभी शाखायें विद्यायें नहीं हैं; प्रत्युत 'श्रीविद्या' ही विद्या है—

न शिल्पादिज्ञानयुक्ते विद्वत्शब्द: प्रयुज्यते।
मोक्षैकं हेतु विद्यावान् स वै विद्वानितीर्यते।
तस्माद्विद्या तु श्रीविद्या तद्विद्विद्वानितीर्यते।।

श्रीचक्रराज की अर्चना करने के अनन्तर पञ्चदशाक्षरी विद्या का जप करने का विधान है। ललितासहस्रनाम में कहा भी गया है— 'चक्राधिराजमभ्यर्च्य जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम्।'

भगवती का अपना नाम सिद्धविद्या, सिद्धमाता, विद्याऽविद्यास्वरूपिणी, सर्वमन्त्र-स्वरूपिणी, मातृकावर्णरूपिणी, त्रिकूटा (श्रीविद्या के कूटत्रय) एवं श्रीषोडशाक्षरी विद्या, आत्मविद्या, महाविद्या, श्रीविद्या भी है।

श्रीविद्या पञ्चभूतात्मिका, सर्वमातृकात्मा, तत्त्वस्वरूपा, षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी एवं तत्त्वा-तीता है।

श्रीविद्या के दो रूप हैं— विश्वमय एवं विश्वातीत।

भगवती के विश्वमय एवं विश्वातीत स्वरूप— योगिनीहृदय (मन्त्रसंकेत-३२, ३३, ३४) में उक्त तथ्यों की पुष्टि में कहा गया है—

व्याप्ता पञ्चदशार्णै: सा विद्या भूतगुणात्मिका।
पञ्चभिश्च तथा षड्भिश्चतुर्भिरपि चाक्षरै:।।३२।।

स्वरव्यञ्जनभेदेन सप्तत्रिंशत्प्रभेदिनी।
सप्तत्रिंशत्प्रभेदेन षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी।।३३।।

तत्त्वातीतस्वभावा च विद्यैषा भाव्यते सदा।।३४।।

कामकलाविलास में भी इसकी पुष्टि की गई है—

अज्व्यञ्जनबिन्दुत्रयसमष्टिभेदैर्विभाविताकारा ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या।।

ठीक भी है; क्योंकि—

मायान्तमात्मतत्त्वं विद्यातत्त्वं सदाशिवान्तं स्यात्।
शक्तिशिवौ शिवतत्त्वं तुरीयतत्त्वं समष्टिरेतेषाम्।।

'स्वात्मैव ललिता प्रोक्ता मनोज्ञा विश्वविग्रहा' कहकर भगवती को जो 'आत्मा' कहा गया है और उसे साधक की 'स्वात्मा' से अपृथक् कहकर देवता (श्रीविद्या) एवं उपासक के साथ तादात्म्यभाव स्थापित किया गया है, उसी की पुष्टि में महेश्वरानन्दनाथ 'महार्थमञ्जरी' में कहते हैं कि ज्ञाता और ज्ञेय की सामरस्यरूपा एकरसात्मिका संसृष्टि की अभिन्नता (अभेदता) ही 'शुद्धविद्या' का स्वस्वरूप है—

ज्ञाता स आत्मा ज्ञेयस्वभावश्च लोकव्यवहारः।
एकरसां संसृष्टिं यत्र गतौ सा खलु निस्तुषा विद्या।।१६।।

मन्त्र एवं यन्त्र में सामरस्य— लकार = भूपुर, सकार = षोडशदल, हकार = अष्टदल, भुवनेश्वरीरूप एकार = चतुर्दशार, एकार = दशावतारस्वरूप बहिर्दशार, हल्लेखागत रेफ = अन्तर्दशार, ककार = अष्टार, अर्धचन्द्र = त्रिकोण।

श्रीविद्यान्तर्गत लं बीज → पृथ्वी (वृक्ष, पहाड़, नगर, देश, समुद्र, नदी, ३६ तत्त्व आदि)। इसी में ५१ पीठ, समस्त तीर्थ।

मन्त्र → ग्रह, राशि, नक्षत्र, तारे आदि का आविर्भाव।

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम् ।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम्।।

आकाश के बीजरूप 'हं' एवं भुवनेश्वरी के बीजरूप 'ईकार' से चौदह भुवनों की उत्पत्ति होती है। विष्णुस्वरूप 'एकार' वैष्णवी शक्तिस्वरूप है। 'रं' बीजरूपात्मक 'रेफ' ज्योतिर्मयी परा शक्ति ही है। पञ्चदशी विद्या का 'ककार' सर्वार्थपूरिका, सर्वकामदा शक्ति का वाचक है। अर्धचन्द्र (◡̈) विश्वयोनि का वाचक है। बिन्दु (ं) महाकामेश्वरी का वाचक है। 'बिन्दु' ही ब्रह्माभिन्न सर्वानन्दमय चक्र का वाचक है। यहीं बिन्दु में महाकामेश्वरी एवं महाकामेश्वर दोनों का निवास है और दोनों में ऐक्य होने से सामरस्य भी है। यह सामरस्य ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान एवं इदन्ता तथा अहन्ता और प्रकाश तथा विमर्श की एकता का ज्ञापक है। सर्वानन्दमय चक्र ही 'उड्डीयान पीठ' है। उड्डीयान में निवास बिन्दु-मण्डल में निवास के समतुल्य है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी का विश्वात्मक रूप— भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही ३६ तत्त्व हैं, ३६ तत्त्वों से संघटित जगत् हैं एवं समस्त जागतिक सृष्टि त्रिपुरास्वरूपा है—

'सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता।' इसके अतिरिक्त विश्व की समस्त भौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक शक्तियाँ भगवती का ही अपना स्वस्वरूप हैं या आत्मविस्तार हैं।

विश्व में जिस-जिस पदार्थ की जो-जो शक्ति है, वह सभी सर्वेश्वरी भगवती देवी एवं सर्वेश्वर कामेश्वर का ही स्वरूप है—

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदीरिता।
सा सा सर्वेश्वरी देवी स स सर्वो महेश्वरः।। (मन्त्रसङ्केत-३.१)

श्रीविद्या की रसात्मकता (श्रीविद्या की रस एवं अमृत के साथ एकता)—

विद्यास्थैश्चन्द्रबीजैस्तु स्थूलसूक्ष्मो रसः स्मृतः।
सम्बन्धो विदितो लोके रसस्याऽप्यमृतस्य च।।
(योगिनीहृदय/मन्त्रसंकेत-४१)

(ई) श्रीविद्या या पञ्चदशी मन्त्र

श्री— 'श्री' शब्द लक्ष्मी का वाचक है। इसका बीजमन्त्र है— 'श्रीं'। श्री के निम्न अर्थ हैं—

१. 'श्रयति हरिमिति श्रीः' जो विष्णु को श्रेष्ठ बनाती है, वही 'श्री' है।
२. 'श्रीयते सर्वैरिति श्रीः' जो सभी तरह से श्रेष्ठ बनाती है, वह 'श्री' है।
३. 'श्रीयते सर्वः यया सा' जिससे सभी को श्रेष्ठता प्राप्त होती है, उसे 'श्री' कहते हैं ।

विद्या— 'विद्या' का स्वरूप क्या है? इस सम्बन्ध में दुर्गासप्तशती में इस प्रकार कहा गया है—

१. सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी। (२.७)
२. विद्याऽसि सा भगवती परमा हि देवी। (४.९)

परम मुक्ति की हेतुभूता सनातनी देवी ही विद्या है। अतः परम मुक्तिप्रदात्री श्री महात्रिपुरसुन्दरी ही 'श्रीविद्या' है। आचार्य शंकर कहते हैं— 'विद्या हि का? ब्रह्मगतिप्रदा या।' अर्थात् जो ब्रह्मगति प्रदान करती है, वही विद्या है। जो मुक्ति प्रदान करती है, वही विद्या है— 'सा विद्या या विमुक्तये।'

श्रीयुक्त विद्या ही 'श्रीविद्या' है। जो मोक्षैकहेतु विद्या है, वही 'श्रीविद्या' है— 'मोक्षैक-हेतु विद्या सा श्रीविद्या नात्र संशयः।' जो इस श्रीविद्या को जानता है, वही विद्वान् है और श्रीविद्या ही यथार्थ विद्या है—

न शिल्पादिज्ञानयुक्ते विद्वत् शब्दः प्रयुज्यते।
मोक्षैकहेतुविद्यावान् स वै विद्वानितीर्यते।
तस्माद्विद्या तु श्रीविद्या तत्तद्विद्वानितीर्यते।।

शिल्पादि विषयों के ज्ञाता को 'विद्वान्' नहीं कहा जा सकता। केवल मोक्षप्रदा विद्या 'श्रीविद्या' का साधक ही यथार्थ विद्वान् है और श्रीविद्या ही 'ब्रह्मविद्या' है।

जिस प्रकार राजराजेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी ललिता देवी शुद्धातिशुद्ध 'परा विद्या' हैं, उसी प्रकर मन्त्रों में उनका मन्त्रराज श्रीविद्या 'ब्रह्मविद्या' है। आदिविद्या विश्वमाता श्रीविद्या ही हैं। वही काम या कन्दर्प की योनि है। समस्त विद्याओं की नींव श्रीविद्या ही है। समस्त विद्यायें भगवती के ही विभिन्न भेद हैं और समस्त नारियाँ भी देवी के ही रूप हैं—

विद्या समस्तास्तव देवि ! भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।।

कामेश्वरी और कामेश्वर का एक बिन्दु में मिलन ही 'श्रीविद्या' है। शक्तिसाधना की परम्परा में मातृशक्ति को 'परा शक्ति' के रूप में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। नारी को 'श्री' भी कहा गया है—

स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन। (मनुस्मृति-६.२६)

'श्री' प्राप्त करने का साधन होने के कारण भी यह श्रीविद्या कहलाती है। त्रिपुर-सुन्दरी श्रीदेवी होने के कारण 'महालक्ष्मी' भी है।

विद्या का मान्त्रिक स्वरूप— महात्रिपुरसुन्दरी की श्रीविद्या का मान्त्रिक स्वरूप इस प्रकार है—

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्यैषा विश्वमातादिविद्योम्।।

सौभाग्यभास्कर में श्रीविद्या का स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—

कामराजाख्यमन्त्रान्ते श्रीबीजेन समन्विता।
षोडशाक्षरविद्येयं श्रीविद्येति प्रकीर्तिता।।

भास्करराय सौभाग्यभास्कर में कहते हैं कि षोडशाक्षरी विद्या ही श्रीविद्या है— 'षोडशाक्षरविद्येयं श्रीविद्येति प्रकीर्तिता, विद्यायाः = पञ्चदश्याः षोडश्या वा।' मूल विद्या पञ्चदशाक्षरी है; इसीलिए यह 'पञ्चदशी' भी कहलाती है।

यद्यपि 'श्री' लक्ष्मीवाचक है, किन्तु यह लक्ष्मी से स्वतन्त्र अर्थ भी रखता है; यथा— 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या।'

श्रीबीज से युक्त होने के कारण ही षोडशाक्षरी विद्या को 'श्रीविद्या' कहा जाता है और इसे ही 'पञ्चदशी' भी कहा जाता है— 'श्रीविद्या पञ्चदशीस्वरूपा' (भास्करराय)। श्रीविद्या आदि ब्रह्मविद्या है। इसका करोड़ों जिह्वाओं से भी वर्णन नहीं किया जा सकता—

वाक्यकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि।
वर्णितुं नैव शक्येऽहं श्रीविद्यां षोडशाक्षरीम्।।

श्रीविद्या के मन्त्रावयव

आचार्य शंकर सौन्दर्यलहरी (श्लोक-३२) में भगवती त्रिपुरसुन्दरी के मन्त्रावयवों का उल्लेख इस प्रकार करते हैं—

शिवश्शक्तिः कामः क्षितिरथ रविश्शीतकरणः।
स्मरो हंसश्शक्रस्तदनु च परामारहरयः।
अमी हल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिताः
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि ! नामावयवताम्।।

शिव (ककार), शक्ति (एकार), काम (ईकार), क्षिति (लकार), अथ (अवसान), रवि (हकार), शीतकिरण (सकार), हंस (हकार), शक्र (लकार), तदनु च (अवसान), परा (सकार), मार (ककार), हरि (लकार), अमी (१२ वर्ण), हल्लेखाभिः (ह्रींकारों द्वारा), तिसृभिः (त्रित्वविशिष्ट), अवसानेषु (विरामस्थान चतुष्क पञ्चक त्रिकों के ऊपर), घटित (योजित), भजन्ते (प्राप्त करते हैं); वर्णाः (ककारादिक शब्द), तव (आपका), जननि (हे जननी !), नामावयवता (त्रिपुरसुन्दरी मन्त्र के प्रतीक या अंग)।

(हे जननि ! शिवः शक्तिः कामः क्षितिः अथ रविः शीतकिरणः स्वरः हंसः शक्रः तदनु परामारहरयः इत्येते वर्णाः तिसृभिः हल्लेखाभिः अवसानेषु घटिताः ते वर्णाः तव नामावयवतां भजन्ते।)

भगवती के पञ्चदशी (पञ्चदशाक्षरी) मन्त्र के खण्ड—

१. आग्नेय खण्ड : शिव, शक्ति, काम, क्षिति = ४ वर्ण।

२. सौर खण्ड : रवि, शीतकिरण, स्मर, हंस, शक्र = ५ वर्ण।

(इन दोनों खण्डों के मध्य रुद्रग्रन्थिस्थानीय हल्लेखाबीज स्थित है।)

३. सौम्य खण्ड : परा, मार, हरि = ३ वर्ण।

(सौम्य एवं सौर खण्ड के मध्य विष्णुग्रन्थिस्थनीय भुवनेश्वरीबीज स्थित है।)

४. चन्द्रकला खण्ड : एकाक्षर तुरीय वर्ण।

(सौम्य खण्ड एवं चन्द्रकला खण्ड के मध्य ब्रह्मग्रन्थिस्थानीय हल्लेखाबीज स्थित है; चन्द्रकला खण्ड अप्रकाश्य है, केवल गुरु-प्राप्य है।) कहा भी गया है— 'त्रिखण्डो मातृका मन्त्रः सोमसूर्यानलात्मकः।' यहाँ अवरोहणक्रम का अनुवर्तन किया गया है।

त्रिखण्ड = १. सोम, सूर्य, अनल।
२. इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति।
३. जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति।
४. विश्व, तैजस, प्राज्ञ।
५. सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण।

ध्यातव्य बिन्दु— यद्यपि त्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र में १५ वर्ण हैं (मन्त्र पञ्चदशाक्षरी के रूप में प्रख्यात है); तथापि वर्णों की संख्या १६ है। आचार्य लक्ष्मीधर कहते भी हैं—

तथाहि त्रिपुरसन्दरीमन्त्रस्य षोडश वर्णाः अर्थात् मन्त्र के सोलह वर्ण हैं।

ते च षोडशवर्णाः षोडशनित्यातया स्थिताः अर्थात् ये सोलह वर्ण सोलह नित्याओं से युक्त हैं।

सोलह कलाओं को 'नित्य' इसलिये कहा गया है क्योंकि उनका 'चन्द्रकला' के रूप से साम्य है। यह कला एक 'परा कला' है और चिदेकरसा है— 'सा च परा कला चिदेकरसा।' इसी की छाया 'विशुद्धिचक्र' (षोडशार) में कलात्मता के रूप में भ्रमण करती है या सुशोभित होती है। वह प्रधान या प्रकृति हैं और पन्द्रह नित्यायें इसकी अंग हैं।

यद्यपि ककार आदि श्रूयमाण पन्द्रह वर्ण केवल सम्प्रदाय से ही ज्ञात हो सकते हैं, तथापि एक वर्ण षोडशकलात्मक है और वही प्रधानभूत है। यद्यपि 'षोडशी कला' गुरु-मुखमात्रैकगम्य, गुरूपदेशावगन्तव्य है, तथापि उसका यत्किञ्चित् व्याख्यान किया गया है।[१] इस कला का उपदेश अधिकारी को ही किया जाना चाहिये; अन्य को नहीं—

सच्छिष्यायोपदेष्टव्या गुरुभक्ताय सा कला।[२]

कामराज विद्या, जो कि १५ अक्षरों से संघटित है, द्विविध भेदात्मक है। उसके दो भेद हैं— शाक्त और शाम्भव। शाक्त 'कामराज विद्या' ऊर्ध्वाम्नाय से सम्बद्ध है और 'कीलक' के बन्धन से मुक्त है। शाम्भव कामराज विद्या पूर्वाम्नाय से सम्बद्ध है और सदोष है।

१५ अक्षरों से संघटित 'लोपामुद्रा विद्या' भी दो प्रकार की है— शाक्त लोपामुद्रा विद्या और शाम्भव लोपामुद्रा विद्या।

१५ अक्षरों से संघटित 'कादि विद्या' तन्त्रराज एवं त्रिपुरा उपनिषद् में प्रतिपादित है।

१५ अक्षरों से संघटित 'हादि विद्या' अनेक शाक्त उपनिषदों में प्रतिपादित है। बह्वृचोपनिषद् में शाम्भव विद्या के प्रसंग में कादि विद्या, हादि विद्या एवं सादि विद्या का विवेचन किया गया है। यह भी कहा गया है कि दुर्वासा १३ अक्षरों से संघटित हादि विद्या की उपासना करते थे। दुर्वासा ने 'ललितास्तवरत्न' एवं 'परशम्भुस्तोत्र' लिखा था। इनका अपरनाम 'क्रोधभट्टारक' था। क्रोधभट्टारक (दुर्वासा) ने 'महिम्नस्तोत्र' भी लिखा था, जिसमें भगवती त्रिपुरा की स्तुति है और जिस पर विद्यानन्दनाथ (श्रीनिवास भट्ट गोस्वामी) के शिष्य नित्यानन्दनाथ ने टीका भी लिखी थी।

कतिपय विद्वानों के मत में कादिमत में निम्न ग्रन्थ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं—

१. योगिनीहृदय
२. तन्त्रराजतन्त्र
३. मातृकार्णव
४. त्रिपुरार्णव

सुभगानन्दनाथ ने मनोरमा (तन्त्रराजतन्त्र की टीका) एवं भास्कर राय ने भावनोपनिषद् की टीका में इसे स्वीकार भी किया है। भास्कर राय ने योगिनीहृदय की हादि विद्यासम्मत व्याख्या को भी प्रामाणिक स्वीकार किया है।

१. लक्ष्मीधर : लक्ष्मीधरा।

२. केवल शिष्यों को उपदेश्य है, अन्य को नहीं। लक्ष्मीधर कहते हैं कि जो मेरी पुस्तक पढ़कर इसे जान पाये हों, वे मेरे ही शिष्य समझे जाने चाहिये। यह केवल मेरा ही अनुग्रह है।

भगवती की पूजा के जो तीन भेद— बहिर्याग (बाह्य पूजा), जप एवं अन्तर्याग (आन्तर पूजा) बताये गये हैं; यद्यपि ये विशिष्ट पद्धतियाँ अवश्य हैं, किन्तु पूर्णतया स्वतंत्र (Exclusive) नहीं हैं। त्रिपुरातापिनी उपनिषद् एवं अन्य उपनिषद् बहिर्याग एवं जप पर आधृत हैं; जबकि भावनोपनिषद् भावना (ध्यान) पर बल देता है। भावनोपनिषद् यह बताता है कि कालचक्र में स्थित श्रीचक्र का ध्यान किस पद्धति से किया जाना चहिये। अन्य ग्रन्थकारों ने इन ध्यानों (भावनाओं) के दो प्रकार को तन्त्रप्रतिपादित माना है— कादि मत के अनुसार भावना (ध्यान) और हादि मत के अनुसार भावना (ध्यान)।

अन्तर्याग का सिद्धान्त यह मानता है कि चक्रों को शरीर में स्थित मान कर उनकी नमस्या, पूजा या वरिवस्या अनुष्ठेय है । भले ही विभिन्न मार्ग विभिन्न पद्धतियाँ स्वीकार करें।

भावनोपनिषद् का मत है कि मानवशरीर को 'श्रीचक्र' के रूप में कल्पित करना चाहिये। भावनोपनिषद् कादिमत की दृष्टि से व्यवस्था देता है, कादिदृष्टि प्रस्तुत करता है। इस दिशा में 'नित्याहृदय' (योगिनीहृदय), 'तन्त्रराज' एवं 'बिन्दुसूत्र' द्रष्टव्य है। भावनोपनिषद् का मत है कि—

- मानवशरीर स्वयं एक 'श्रीचक्र' है; क्योंकि शरीर स्वात्मा की अभिव्यक्ति है।
- शरीर को आत्मा से पृथक् न माना जाय।
- समस्त बाह्य प्रपञ्च एवं मानवशरीर— ये दोनों आत्मा से अभिन्न (Non different) हैं।
- यह प्रापञ्चिक बाह्य रचना काल एवं देश पर आधृत है और यह देशकालजन्य है।

लक्ष्मीधर आदि आचार्यों का कथन है कि चन्द्रमा की 'दर्शा', 'दृष्टा' आदि कलायें अर्थात् प्रतिपदा से पूर्णिमा तक की पन्द्रह सौर तिथियाँ 'कामेश्वरी' से 'चित्रा'प्रभृति पन्द्रह 'नित्याओं' से अभिन्न हैं। सोलहवीं कला 'सादाख्या' स्वयं भगवती ललिता हैं और 'षोडशी कला' भगवती ललिता से अभिन्न है।

साधक को मानना चाहिये कि कालचक्र में जो कुछ भी दृष्टिगत होता है, वह सब कुछ वही है, जो कि श्रीचक्र में नित्याओं के रूप में दृष्टिगत होता है। तिथिचक्र (Wheel of time) सतत् नित्य घूम रहा है और उसके भीतर ही श्रीचक्र है। योगियों की दृष्टि से विचार किया जाय तो मनुष्य के द्वारा प्रतिदिन ली जाने वाली २१६०० श्वासें तिथियों से अभिन्न हैं।

इन दार्शनिकों ने 'काल' की भाँति ही 'देश' पर भी विचार किया है। पौराणिक सृष्टि-विज्ञान के अनुसार तो विश्व की संरचना-तन्त्र चौदह लोकों (जम्बूद्वीप से मधुरोद तक, जम्बूद्वीप से परे मेरु से परव्योम (मधुरोद से परे) तक प्रसृत है।

नित्यामण्डल इस प्रकार घूमता है कि प्रत्येक 'नित्या' अपनी वार्षिक यात्रा में किसी विशिष्ट देशीय विभाजन के सम्पर्क में आती है; अत: प्रथम वर्ष में नित्यायें मेरु से प्रारम्भ

करती हैं और सोलहवें दिन वे 'परव्योमन्' से प्रारम्भ करती हैं। यही है— 'देशचक्र'। योगिनीहृदय का स्वतन्त्र एवं विशिष्ट आन्तर पूजाविधान है। चिद्गगनचन्द्रिका, महार्थमञ्जरी एवं क्रमसम्प्रदाय के कुछ ग्रन्थ इस विषय पर प्रभूत प्रकाश डालते हैं।[१] विभिन्न विद्या-सम्प्रदायों, मतों का संक्षेपण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

श्रीविद्या के सम्प्रदाय

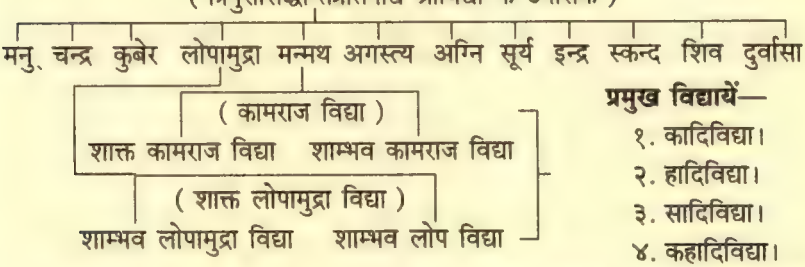

श्रीविद्या और उसके मन्त्राक्षर— श्रीविद्या आदि ब्रह्मविद्या है। मन्त्रों की दृष्टि से इस विद्या के मुख्यत: दो अंग हैं— कादि विद्या और हादि विद्या। कादि का 'क' एवं हादि का 'ह' (दोनों कूटों के प्रथमाक्षर) शिव एवं शक्ति के द्योतक हैं। इन्हीं के आधार पर सम्पूर्ण विद्यायें सिद्ध होती हैं। शक्ति के योग के विना शिव का अकेला अक्षर 'मन्त्र' नहीं बन सकता। तृतीयाक्षर 'सदाख्य तत्त्व', चतुर्थाक्षर 'महेश्वर' एवं पञ्चमाक्षर 'शुद्ध विद्या' का प्रतीक है। अक्षरद्वय के पश्चात् तृतीयाक्षर 'काम' का द्योतक है। फिर चतुर्थाक्षर 'शिव'-वाचक है, जिसका काम (ईक्षण = इच्छा) पृथ्वीपर्यन्त सर्वत्र व्याप्त है। पञ्चमाक्षर 'पृथ्वी'-वाचक है। इस प्रकार ईश्वर, जीव एवं विश्व का भेद दिखाने वाला द्वितीय कूट 'विद्या कला' को संकेतित करता है। तृतीय कूट 'शक्तिकूट' है, जो कि 'प्रतिष्ठा' एवं 'निवृत्ति' को संकेतित करता है।

सौन्दर्यलहरी के आदि में यह कथन कि 'शक्ति के योग से ही शिव सृष्टि करता है— शिव: शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त: प्रभवितुम्। न चेदेवं देवो न खलु कुशल: स्पन्दितुमपि।।' 'श्रीविद्या' का प्रतिपादन करता है। कादि के 'क' एवं हादि के 'ह' (शिव + शक्ति) के योग के विना अकेला शिव का अक्षर मन्त्र नहीं बना सकता— यह भी उसी तथ्य की पुष्टि करता है।

तन्त्रराजतन्त्र : एक विहङ्गमावलोकन

तन्त्रराजतन्त्र के तीन भाग हैं और प्रत्येक भाग (खण्ड) देवता के ध्यान एवं पूजा के विषय में स्वतन्त्र सिद्धान्त प्रतिपादित करता है। ये तीन भाग— कादि, हादि एवं कहादि सिद्धान्तों का पृथक्-पृथक् रूप से प्रतिपादन करते हैं। 'कहादि' को 'शक्तिसंगम' भी कहा जाता है।

१. डॉ. गोपीनाथ कविराज- योगिनीहृदय की भूमिका।

कादिमत— तन्त्रराज में कादिमत के प्रतिपादक ३६ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में १००-१०० श्लोक हैं।

'क' काली के बीजमन्त्र 'क्रीं' का आद्यक्षर है। 'ह' शिवबीज है। जब देवी शिव से प्रश्न करती हैं कि 'कादि क्या है?' (१०-७.८) तो भगवान् शिव कहते हैं कि 'तुम्हारा रूप ही कादि का अर्थ है— कादिसंज्ञा भवद्रूपा।' त्रिकोण देवी का रूप है। बंगाली एवं देवनागरी लिपि के प्राचीन स्वरूप में 'क' अक्षर बायें भाग में एक त्रिकोण बनाता था।

त्रिकोण— 'वर्णोद्धार' एवं 'कामधेनुतन्त्र' के अनुसार (शब्दकल्पद्रुम में उद्धृत) त्रिकोण की वाम रेखा रक्त वर्ण के ब्रह्मा हैं, दक्षिण रेखा श्वेत वर्ण के विष्णु हैं और आधार रेखा हरित वर्ण के रुद्र हैं। मात्रा श्वेतवर्णा साक्षात् देवी सरस्वती हैं। दक्षिण भाग में वक्राकार (अंकुशाकार) भाग विद्युदाभ कुण्डलिनी है। त्रिकोण का रिक्त स्थान श्वेत सुदर्शन है, जो कि लाखों चन्द्रों के प्रकाशतुल्य श्वेत है। उसके साथ कैवल्य-जननी काली हैं और कोणत्रय में ज्येष्ठा, वामा एवं रौद्री शक्तियाँ स्थित हैं। यन्त्रत्रिकोण 'योनि-मण्डल' कहलाता है, जो कि त्रिपुरा देवी का आसन है। वह ज्ञानात्मा है और उसकी चार कलायें हैं। ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया की समष्टि होने के कारण वह 'प्रकृति' है।

ककार से काम का आविर्भाव होता है। यह 'मूल प्रकृति' है।

१. वह समस्त वर्णों की मूल प्रकृति है।
२. वह स्फुरण की अक्षय शक्ति है।
३. वह समस्त देवताओं की जननी है।
४. वह महानिर्वाण की प्रदायिका है।

छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि 'कं ब्रह्म' ('क' ब्रह्म है)। यह वह शक्ति है, जो कि नव नाथों के द्वारा चारो ओर फैलायी जाकर (अर्थात् २ कर्ण, १ मुख, २ आँख, २ नासारन्ध्र एवं २ पायूपस्थ के द्वारा फैलायी जाकर) प्रत्येक कल्प में समस्त पृथ्वी में एवं कल्पान्त में अभिव्यक्त होती है। शिव-शक्ति अभिन्न हैं। जहाँ एक की पूजा होती है, वहाँ दूसरा भी पूजित होता है।

सम्मोहनतन्त्र में कहा गया है कि 'कादिमत' वह सिद्धान्त है, जिसमें कि मन्त्र 'क' से प्रारम्भ होता है। 'हादिमत' वह सिद्धान्त (मत) है, जिसमें मन्त्र 'ह' अक्षर से प्रारम्भ होता है। इसे 'हंसराज' भी कहते हैं। 'कहादिमत' कादि एवं हादि मन्त्रों का मिश्रण या योग है और उत्तराम्नायगोचर है। कहादिमत का सर्वोच्च तन्त्र 'कुलार्णवतन्त्र' है। यह ऊर्ध्वाम्नाय है।

कादिमत के तन्त्र (मनोरमा के अनुसार) ९ हैं—

१. सौन्दर्यलहरी	४. मातृक	७. बहुरूपाष्टक
२. नित्या षोडशिकार्णव	५. सम्मोहन	८. प्रस्तारचिन्तामणि
३. चन्द्रज्ञान	६. वामकेश्वर	९. मेरुप्रस्तार

भास्कर राय ने मनोरमा के इस निर्णय को प्रश्नवाचक चिह्न से चिह्नित किया है। वे 'सेतुबन्ध' में इस विचार की प्रामाणिकता के विरुद्ध तर्क भी प्रस्तुत करते हैं। भास्कर राय कहते हैं कि 'नित्याषोडशिका' वामकेश्वरतन्त्र का एक भाग है और 'सुन्दरी' या 'योगिनीहृदय' नित्याषोडशिका का एक भाग है। अत: ये तीनों एक तन्त्र का निर्माण करते हैं। वे सेतुबन्ध में यह भी कहते हैं कि 'बहुरूपाष्टक' एक तन्त्र नहीं है। 'सम्मोहनतन्त्र' को यदि उक्त ९ ग्रन्थों में परिगणित किया जाता है तो यह समीचीन नहीं है; क्योंकि यह वैष्णवतन्त्र है और इसमें ४०,००० श्लोक हैं। हाँ, इसके अतिरिक्त कोई अन्य सम्मोहनतन्त्र हो तो बात दूसरी है। सर जान वुडरफ़ का कथन है कि इस नाम का एक अन्य तन्त्रग्रन्थ है, जो कि नेपाल के पुस्तकालय में है और वह 'कादितन्त्र' माना जाता है।

कादितन्त्र शक्ति की उपासना को अनेक रूपों में स्वीकार करता है; यथा— स्थूल, सूक्ष्म, पर। साधक स्थूलोपासना से प्रारम्भ करता है और परोपासना तक पहुँचता है। साधना का लक्ष्य है— अद्वैत वेदान्त के सत्य की व्यावहारिक अनुभूति। सारांश यह कि भगवती ललिता (त्रिपुरसुन्दरी) के तीन रूप हैं— स्थूल, सूक्ष्म एवं पर तथा उसकी पूजा-पद्धति भी त्रिविधात्मिका है— कायिक, वाचिक एवं मानसिक। इसे ही बहिर्याग, अन्तर्याग एवं भावना कहा गया है।

पूजा के प्रकार

अन्तर्याग बहिर्याग भावना

यह तन्त्र तीनों रूपों का प्रतिपादन करता है, जिसकी सहायता से साधक गुरु की कृपा से अद्वैत सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ होता है।

अद्वैतभावना— 'गुरु' आद्या शक्ति या 'विमर्श' के साथ अभिन्न है और सभी का मूल कारण है। उसके शरीर की नवात्मकरूपता नौ रन्ध्रों द्वारा देखी जाती है—

गुरुराद्या भवेच्छक्ति: सा विमर्शमयी मता।
नवत्वं तस्य देहस्य रन्ध्रत्वेनावभासते।।

नौ गुरु इन्हीं नौ रूपों के प्रतिनिधि हैं। साधक का शरीर 'श्रीचक्र' ही है, जो कि ९ चक्रों से निर्मित है। श्रीचक्र की पूजा का उद्देश्य ज्ञाता (होता), ज्ञान (अर्घ्य) एवं ज्ञेय (हवि) के साथ अभेदभावना है—

ज्ञाता स्वात्मा भवेज्ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं हवि:स्थितम्।
श्रीचक्रपूजनं तेषामेकीकरणमीरीतम्।।

तन्त्रराजतन्त्र के वासनापटल में साधनापद्धति एवं श्रीचक्र के विभिन्न अंगों की विवेचना की गई है।

त्रिपुरातापिनी उपनिषद् कायिक एवं वाचिक कर्म का ही प्रतिपादन करता है; जबकि भावनोपनिषद् भावना (मानस कर्म) का प्रतिपादन करता है।

तन्त्रराजतन्त्र के वासनापटल का प्रारम्भ 'श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः' से होता है और यह 'भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति' सूत्र से समाप्त होता है।

शाक्तसाधना अद्वैतात्मिका होने के कारण 'साहं' (She I Am) या 'सोऽहं' या 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की साधना है। She I Am या He I Am (साऽहं या सोऽहं) 'अहं ब्रह्माऽस्मि' की औपनिषदिक अद्वैतानुभूति है।

तन्त्रशास्त्र मानवशरीर के प्रत्येक तत्त्व को दिव्य शक्ति मानता है और पूरे व्यक्तित्व को अनेक गतिमय (Dynamic) शक्तियों का समुच्चय मानता है। यह शास्त्र प्रत्येक देवता का अपना एक पृथक् यन्त्र, मन्त्र, बीज, वाहन, शक्ति, वर्ण, तत्त्व आदि मानता है। जैसे कि श्रीयन्त्र को भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना (पूजा) का विशिष्ट यन्त्र माना जाता है। यह चक्र नवयोन्यात्मक है। इसमें मूलतः नौ त्रिकोण हैं। ४ शिवत्रिकोण हैं और ५ शक्तित्रिकोण हैं।

नित्याहृदय, सुन्दरीहृदय या योगिनीहृदय की व्याख्या दो दृष्टियों से की गई है, जो निम्नांकित है—

१. अमृतानन्द नाथ : दीपिका : 'हादिमत' का प्रतिपादन (लोपामुद्रा विद्या)।

२. भास्कर राय : सेतुबन्ध : 'कादिमत' का प्रतिपादन (कामदेव विद्या)।

शाक्तों की परम्परागत उपासना का सम्बन्ध १२ उपासकों से है और ये ही 'श्रीविद्या' के १२ सम्प्रदाय कहलाते हैं; जो कि मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ, शिव, दुर्वासा आदि नाम से जाने जाते हैं। इनमें से और सम्प्रदाय तो नष्ट हो गये; केवल दो शेष रह गए—

१. लोपामुद्रा विद्या : लोपामुद्रा सम्प्रदाय : हादि मत : १५ वर्ण।

२. कामदेव विद्या : मन्मथ सम्प्रदाय : कादि मत : १५ वर्ण।

किन्तु आजकल मात्र कादिमत (मन्मथ विद्या) ही प्रचलित है। कामराजविद्या (कादिमत) के दो प्रकार हैं और हादिमत के भी दो प्रकार हैं—

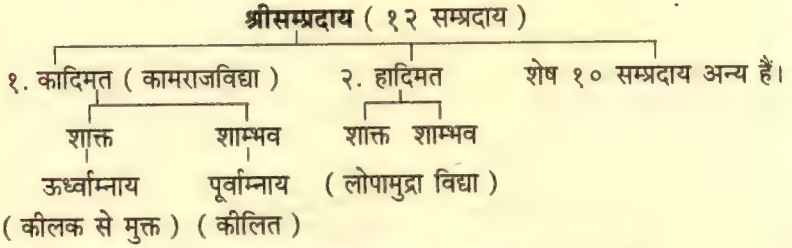

कादिमत तन्त्रराजतन्त्र एवं त्रिपुरा उपनिषद् द्वारा भी प्रतिपादित है।

मनु द्वारा उपासित विद्या : १८ अक्षर।

दुर्वासा द्वारा उपासित विद्या : १३ अक्षर।

चन्द्र एवं कुबेर द्वारा उपासित विद्या : २२ अक्षर।

(कहीं-कहीं इन्द्र एवं अग्नि के स्थान पर नन्दी एवं विष्णु का नाम पाया जाता है।)

कादिमत के प्रतिपादक प्रधान ग्रन्थ हैं— योगिनीहृदय, तन्त्रराजतन्त्र, मातृकार्णव एवं त्रिपुरार्णव। सुभगानन्दनाथ (तन्त्रराजतन्त्र पर टीका 'मनोरमा') एवं भास्कर राय (भावनोपनिषद् पर टीका) दोनों मानते हैं कि 'योगिनीहृदय कादिमत का ग्रन्थ' है, तथापि भास्कर ने वरिवस्यारहस्यम् में योगिनीहृदय को कादिमत का ग्रन्थ मान कर ही उसकी व्याख्या की है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी की पूजा के तीन प्रकार हैं— अन्तर्याग, बहिर्याग और जप।

त्रिपुरातापिनी उपनिषद् का प्रतिपादक : बहिर्याग और जप।

भावनोपनिषद् का प्रतिपादन : मात्र अन्तर्याग एवं भावना (ध्यान) का प्रतिपादक है।

श्रीविद्या के सम्प्रदाय— त्रिपुरासिद्धान्त के प्रतिपादक श्रीविद्या के द्वादश सम्प्रदाय हैं, जो कि निम्नांकित हैं—

प्रवर्तक	सम्प्रदाय	प्रवर्तक	सम्प्रदाय	प्रवर्तक	सम्प्रदाय	प्रवर्तक	सम्प्रदाय
मनु	मनु सम्प्रदाय	चन्द्र	चन्द्र सम्प्रदाय	कुबेर	कुबेर सम्प्रदाय	लोपामुद्रा	लोपामुद्रा सम्प्रदाय
मन्मथ	मन्मथ सम्प्रदाय	अगस्त्य	अगस्त्य सम्प्रदाय	अग्नि	अग्नि सम्प्रदाय	सूर्य	सूर्य सम्प्रदाय
इन्द्र	इन्द्र सम्प्रदाय	स्कन्द	स्कन्द सम्प्रदाय	शिव	शिव सम्प्रदाय	दुर्वासा (क्रोधभट्टारक)	दुर्वासा सम्प्रदाय

प्रागैतिहासिक युग एवं तत्कालीन आचार्य

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः।। — आद्य द्वादश आचार्य

कामकलाविलास के टीकाकार नटनानन्दनाथ (चिद्वल्ली) के अनुसार श्रीविद्यारत्नागम में मात्र दो सन्तानें हैं— कामराजसन्तान एवं लोपामुद्रासन्तान। कहा भी है—

इह श्रीविद्यारत्नागमे सन्तानद्वयमस्ति, कामराजसन्तानो लोपामुद्रासन्तानश्चेति।

कामराजसन्तानक्रम— 'कामराजसन्तानक्रमस्तु सकलविद्याऽनुसन्ध्यविच्छिन्न इति प्राचीनगुरवोऽप्याचक्षते।'

लोपामुद्रासन्तानक्रम— 'लोपामुद्रासन्तानक्रमस्तु विच्छिन्नतया प्रवर्तत इति वर्णयन्ति।'

विद्यायें	परिचय
१. कामराज विद्या 'कादि विद्या'	त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य खण्ड में एक आख्यान आता है कि कामदेव ने कठोर तपस्या करके श्रीविद्यादेवी को सन्तुष्ट करके अनेक दुर्लभ वर प्राप्त किये। कामराजविद्या ककारादि पञ्चदशवर्णात्मिका है, इसीलिये इसे 'कादि-विद्या' भी कहते हैं।
२. लोपामुद्रा विद्या 'हादि विद्या'	लोपामुद्रा का ऋग्वेद में भी उल्लेख आया है और वे ऋग्वेद की अन्यतमा ऋषि हैं (ऋग्वेद-१.१७९.१-२)। इस ऋषि के पति अगस्त्य हैं। लोपामुद्रा ने अत्यन्त कठोर तप करके और 'श्रीविद्या' की आराधना करके सिद्धि प्राप्त किया। जिस मन्त्र-साधना से उन्होंने सिद्धि प्राप्त किया, उसी का नाम है— 'लोपामुद्रा विद्या।' हकारादि पञ्चदशवर्णात्मिका यह विद्या 'हादि विद्या' भी कहलाती है।
३. अगस्त सम्प्रदाय	अगस्त्य श्रीविद्या के अन्यतम आचार्य हैं। उनके द्वारा प्रणीत 'शक्तिसूत्र' एक प्रख्यात ग्रन्थ है, जिसका आदिसूत्र 'अथातः शक्तिजिज्ञासा' है।
४. दुर्वासा सम्प्रदाय	दुर्वासा द्वारा प्रणीत सूत्रग्रन्थ प्राप्त नहीं होता। उनके द्वारा प्रणीत 'त्रिपुरामहिम्नस्तोत्रम्' तथा उसकी नित्यानन्दविरचित व्याख्या प्रकाशित है। रुद्रांश से समुत्पन्न होने के कारण दुर्वासा को 'क्रोधभट्टारक' भी कहते हैं। त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र की पुष्पिका में इन्हें 'सकलागमाचार्य' नाम से भी अभिहित किया गया है।

दत्तात्रेय एवं परशुराम भी श्रीविद्या सम्प्रदाय के अप्रतिम आचार्यों एवं सूत्रकारों में से एक हैं। दत्तात्रेय ने त्रिपुरातत्त्व के रहस्य के विवृत्त्यर्थ अष्टादशसाहस्री 'दत्तसंहिता' का प्रणयन किया था। परशुराम ने उसे संक्षिप्त कर ५०० खण्डों एवं ६ हजार सूत्रों में प्रस्तुत किया। तदुपरान्त हारितायन ने 'परशुरामकल्पसूत्र' को दस खण्डों में संक्षिप्त करके प्रस्तुत किया। त्रिपुरा देवी के उपासकों के सम्प्रदायों में परशुराम विशेषतया प्रख्यात थे। परशुराम ने दत्तात्रेय के समीप परमेश्वरी त्रिपुरा के माहात्म्य को सुनकर उनकी उपासना के रहस्य एवं पद्धति को जानने की उत्कण्ठा व्यक्त करने के उपरान्त वे स्वयं ही परमार्थसम्बन्धी समस्या के समाधान हेतु भगवान् दत्तात्रेय के समीप गये।

त्रेता युग में भगवान् रामचन्द्र से पराभूत होने से लज्जावनत होने के कारण दुःखी होकर परशुराम संवर्त ऋषि के पास गये, जहाँ सवर्त ऋषि ने परमार्थतत्त्वोपदेश द्वारा उनका शोक निवृत्त किया; किन्तु परशुराम संवर्तोपदिष्ट तत्त्वोपदेश के सारार्थ को हृदयङ्गम नहीं कर पाये। इसके उपरान्त उन्होंने दत्तात्रेय जी के पास जाकर संवर्त-तत्त्वोपदेश के रहस्य को समझाने हेतु निवेदन किया। दत्तात्रेय जी ने संवर्तकथित परमार्थ तत्त्व की व्याख्या करके उसे परशुराम जी को समझाया। यह समस्त प्रसंग त्रिपुरारहस्य के ज्ञानकाण्ड में विस्तारपूर्वक वर्णित है।

ऐतिहासिक युग के आचार्य

इतिहास-सम्मत युग में अनेक आचार्य हुये। इस इतिहासप्रमाणित युग में श्रीविद्या सम्प्रदाय में अनेक युगान्तरकारी महान् आचार्यों का प्रादुर्भाव हुआ; जिनमें गौड़पाद, शंकराचार्य, पुण्यानन्दनाथ, अमृतानन्दनाथ, भास्करराय, उमानन्दनाथ, रामेश्वर सूरिप्रभृति प्रमुख थे।

१. आचार्य गौडपाद— शंकराचार्य के परमगुरु (गुरु के गुरु) गौड़पादाचार्य का प्रादुर्भाव छठवीं-सातवीं शती के मध्य हुआ था। उनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थों में 'सुभगोदय स्तोत्र' एवं 'श्रीविद्यारत्नसूत्र' अधिक प्रख्यात है। शंकरारण्य ने श्रीविद्यारत्नसूत्र पर 'दीपिका' नामक टीका लिखी थी।

२. शंकराचार्य— इनका अविर्भाव सातवीं-आठवीं शती के मध्य हुआ था। इन्होंने 'श्रीविद्या' के उपास्य अद्वैत ज्ञान को प्राप्त किया था। इनकी 'सौन्दर्यलहरी' नामक रचना तथा 'ललितात्रिशतीभाष्य' में श्रीविद्यातत्त्व का पुष्कल विवेचन किया गया है। इनके 'सौन्दर्य-लहरी' एवं 'आनन्दलहरी' नामक स्तोत्र में अनुपमेय कवित्व तथा दार्शनिक दृष्टि का मणिकाञ्चन संयोग मिलता है। सौन्दर्यलहरी की 'लक्ष्मीधरा' टीका (१२६८-१३७९ ई०) अधिक प्रख्यात है।

स्वयं आदिशंकराचार्य जी ने शृंगेरी मठ में प्रधानोपास्य के रूप में 'श्रीविद्या' की स्थापना की थी। उनके द्वारा प्रतिष्ठित चारो पीठों में आज भी गुरुपरम्परा द्वारा श्रीविद्या की उपासना प्रचलित है।

३. पुण्यानन्दनाथ— पुण्यानन्दनाथ भी श्रीविद्या के उपासक आचार्य थे। उन्होंने 'कामकलाविलास' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। टीकाकार नटनानन्दनाथ ने उक्त ग्रन्थ पर 'चिद्वल्ली' नामक वैदुष्यपूर्ण टीका लिखी है। 'त्रिपुरासिद्धान्त' भी त्रिपुरासिद्धान्त का प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

४. अमृतानन्दनाथ— वामकेश्वरतन्त्र के एक अंश की व्याख्या 'योगिनीहृदयदीपिका' नाम से करके आचार्य अमृतानन्दनाथ ने श्रीसम्प्रदाय के सिद्धान्तों की सूक्ष्म व्याख्या की है।

५. भास्कर राय— भास्कर राय भी श्रीविद्या के अन्यतम आचार्य थे। ये श्रीविद्या के उपासक भी थे। १८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इनका आविर्भाव हुआ था। ये शाक्त दार्शनिक थे। इनका अपर नाम 'भासुरानन्दनाथ' था। इनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थ 'शाक्तदर्शन' के निगूढ़ तत्त्वों की अत्यन्त मार्मिक व्याख्या के लिये प्रसिद्ध हैं। वरिवस्यारहस्यम्, सौभाग्य-भास्कर, ललितासहस्रनामभाष्यम्, नित्याषोडशिकार्णव की टीका 'सेतुबन्ध', गुप्तवती (श्रीचण्डीटीका), कौल मत से सम्बद्ध 'कौलत्रिपुरा' आदि ग्रन्थ भास्कर राय के अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

६. उमानन्दनाथ— उमानन्दनाथ भास्करराय के प्रिय शिष्य थे। इनका आविर्भाव-

काल १७५५ खीष्टाब्द है। इन्होंने 'नित्योत्सवपद्धति' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की है।

७. रामेश्वर सूरि (रामेश्वर)— रामेश्वर भास्कर राय के प्रशिष्य थे। इनका आविर्भाव १८३१ खीष्टाब्द में हुआ था। इन्होंने परशुरामकल्पसूत्र की टीका 'सौभाग्य-सुधोदय' के अभिधान से की है। महाराष्ट्र एवं सुदूर दक्षिण भारत में अद्यापि भास्करराय का शिष्य-सम्प्रदाय वर्तमान है।

८. नित्यानन्द प्रभु— चैतन्य महाप्रभु के अभिन्नहृदय एवं अभिन्न सहयोगी तथा अवधूत संन्यासी श्री नित्यानन्दप्रभु श्रीविद्या के उपासक थे। इनके द्वारा आराधित, उपासित एवं पूजित 'श्रीविद्यायन्त्र' (श्रीचक्र) खड़दह में आज भी पूजा जाता है।

'त्रिपुरोपनिषद्' एवं 'त्रिपुरातापिन्युपनिषद्' वैदिक रचनायें हैं, जिनमें श्रीविद्या एवं उसकी उपासना का प्रतिपादन किया गया है। श्रीविद्या एवं उसकी उपासना वेद से ही तन्त्रशास्त्र में गृहीत हुई है।[१]

श्रीयन्त्र और श्रीविद्या

'श्रीयन्त्र' और 'श्रीविद्या' मूलत: अभिन्न हैं, तथापि व्यवहारत: भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होते हैं। श्रीयन्त्र भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्थूल शरीर है और श्रीविद्या उनका सूक्ष्म शरीर है। बिन्दुपीठ में स्थित पराभट्टारिका ऊर्ध्वमुख त्रिकोण के ऊर्ध्व बिन्दु में स्थित है। यही 'कामपीठ' है। इनके शिव की आख्या है— 'ऊर्ध्व देवनाथ', जो कि भगवती कामेश्वरी के साथ विराजमान हैं। ये त्रेता युग के गुरु हैं और 'वाग्भव पीठ' के अधिष्ठाता हैं। दक्षिण कोण में 'जालन्धर पीठ' है। इसके अधिष्ठाता श्री 'षष्ठदेव नाथ' हैं, जो अपनी शक्ति 'वज्रेश्वरी' के साथ आसीन हैं। ये 'कामराजबीज' के अधिष्ठाता और द्वापर युग के गुरु हैं। उत्तर कोण में 'पूर्णगिरि पीठ' पर 'मित्रदेवनाथ' स्थित हैं, जो कि भगमालिनी शक्ति से समन्वित हैं। ये 'शक्तिबीज' के अधिष्ठाता हैं। ये बालगुरु कलियुग के सम्प्रदायप्रवर्तक हैं। 'सर्वानन्दमय चक्र' बिन्द्वात्मक है। उस बिन्दु की अधीश्वरी (अधिष्ठात्री देवी) त्रिकोण के त्रिबिन्दु रूप में ही विकसित है। अत: बैन्दव चक्र ही 'प्राण' है। 'त्रिकोणचक्र' में भगवती कामेश्वरी द्वारा ७ दिव्यौघ, ४ सिद्धौघ एवं ८ मानवौघ गुरुओं का उदय हुआ। इनके द्वारा श्रीविद्या का सम्प्रदाय पृथ्वी पर अवतरित हुआ। इनके १२ उपासक प्रसिद्ध हैं। आजकल तो केवल 'कामराजसन्तान' ही अविच्छिन्नतया प्रचलित है, किन्तु पुण्यानन्दनाथ ने हादिविद्या— लोपामुद्राविद्या को स्वीकार किया है; तथापि उन्होंने कादिविद्या को भी उसके समकक्ष, समतुल्य माना है। सतयुग के गुरु 'चर्यानन्दनाथ' हैं और पीठ 'श्रीपीठ' है।

दश महाविद्यायें

काली तारा षोडशी भुवनेश्वरी भैरवी छिन्नमस्ता धूमावती बगला मातंगी कमला

इन्हें ही श्रीविद्या भी कहा गया है।

१. शाक्तदर्शनम्- चक्रेश्वर भट्टाचार्य

श्रीविद्या के द्वादश सम्प्रदाय

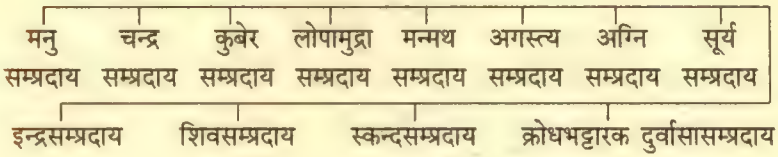

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः।।

इन दशों श्रीविद्योपासकों का अपना पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय था, किन्तु इनमें से अधिकांश सम्प्रदाय धीरे-धीरे विलुप्त हो गये।

नटनानन्दनाथ द्वारा कामकलाविलास की टीका 'चिद्वल्ली' में कथित दो सन्तानों (कामराजसन्तान एवं लोपामुद्रासन्तान) में भी कादि अर्थात् कामराजसन्तान की ही प्रधानता है। जैसा कि कहा भी गया है—

श्रीविद्यैव तु मन्त्राणां तत्र कादिर्यथा परा।

दश महाविद्याओं में 'षोडशी' नामक तृतीया विद्या ही 'श्रीविद्या' के नाम से प्रसिद्ध है।

दश महाविद्याओं में प्रधान विद्यायें

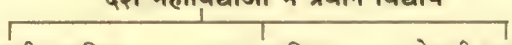

नाद एवं श्रीविद्या का भी अन्तःसम्बन्ध है।

नादतत्त्व एवं श्रीविद्या का अन्तःसम्बन्ध— स्वच्छन्दतन्त्र में कहा गया है कि—

१. समस्त मन्त्र वर्णों से बनते हैं।

२. वर्ण ध्वनियों से बनते हैं।

३. ध्वनियाँ नादों से बनती हैं।

४. मन्त्र नादों से बनते हैं। सम्पूर्ण मन्त्र नादों पर ही आश्रित हैं।

५. चूँकि नादोत्थान के विना मन्त्र की मन्त्रमयता यथार्थ नहीं रहती; अतः नाड्याधार 'नाद' ही मन्त्र का प्राणतत्त्व है और उसी से जगत् एवं श्रीविद्या— दोनों संघटित हैं।

६. भास्कर राय ने वरिवस्यारहस्यम् में 'नादनवक' को प्रमुख जपांग माना है—

नव च मनोरर्थांश्च स्मरतोऽर्णोच्चारणं तु जपः।।
बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते।।

७. स्वच्छन्दतन्त्र में कहा गया है कि—

नाड्याधारस्तु नादो वै भित्वा सर्वमिदं जगत्।
अधःशक्त्या विनिर्गत्य ऊर्ध्वशक्त्यवसानकः।।[१]

१. नाड्यां ब्रह्मबिले लीनस्त्वव्यक्तध्वनिलक्षणः। (स्वच्छन्दतन्त्र)

सप्तदश अध्याय

त्रिपुरातापिन्युपनिषत् (प्रथमोपनिषत्) में प्रतिपादित द्वादश विद्यायें

१. लोपामुद्राविद्या— एवमाद्यां विद्यामभिधायैतस्याः शक्तिकूटं शक्ति शिवाद्या। लोपामुद्रेयं द्वितीये धामनि।।२७।।

२. क्रोधमुनि विद्या— पूर्वेणैव मनुना बिन्दुहीना शक्तिभूतहल्लेखा क्रोधमुनिनाऽधिष्ठिता तृतीये धामनि।।२८।।

३. कौबेरी विद्या— पूर्वस्या एव विद्याया यद्वाग्भवकूटं तेनैव मानवीं चान्द्रीं कौबेरीं विद्यामाचक्षते।।२९।।

४. मानवी विद्या— मदनाधः शिवं वाग्भवम्, तदूर्ध्वं कामकलामयम्, शक्त्यूर्ध्वं शाक्तमिति मानवी विद्या चतुर्थे धामनि।।३०।।

५. चान्द्री विद्या— शिवशक्त्याख्यं वाग्भवं तदेवाधः शिवशक्त्याख्यमन्यत्तृतीयं चेयं चान्द्री विद्या पञ्चमे धामनि ध्येयेयम्।।३१।।

६. कौबेरी विद्या— चान्द्री कामाधः शिवाद्यकामा सैव कौबेरी षष्ठे धामनि व्याचक्षत इति य एवं वेद।।३२।।

७. आगस्त्य विद्या— हित्वेकारं तुरीयस्वरं सर्वादौ सूर्याचन्द्रमस्केन कामेश्वर्यै-वागस्त्यसंज्ञा सप्तमे धामनि।।३३।।

८. नन्दि विद्या— तृतीयमेतस्या एव पूर्वोक्तायाः कामाद्यं द्विधाऽधः कं मदनकलाऽऽद्यं शक्तिबीजं वाग्भवाद्यं तयोरर्धावशिरस्कं कृत्वा नन्दिविद्येयमष्टमे धामनि।।३४।।

९. प्रभाकरी विद्या— वाग्भवमागस्त्यं वागर्थकलामयं कामकलाऽभिधं सकलमायाशक्तिः प्रभाकरीविद्येयं नवमे धामनि।।३५।।

१०. षण्मुखी विद्या— पुनरागस्त्यं वाग्भवं शक्तिमन्मथशिवशक्तिमन्मथोर्वीमाया-कामकलालयं चन्द्रसूर्यानङ्गधूर्जटिमहिमायां तृतीयं षण्मुखीयं विद्या दशमे धामनि।।३६।।

११. परमशिव विद्या— विद्या प्रकाशितयाभूय एवागस्त्यविद्यां पठित्वा भूय एवेमा-मन्त्यमायां परमशिवविद्येयमेकादशे धामनि।।३७।।

१२. वैष्णवी विद्या— भूय एवागस्त्यं पठित्वा एतस्या एव वाग्भवं यद्धनजं कामकलाऽऽलयं च तत्सहजं कृत्वा लोपामुद्रायाः शक्तिकूटराजं पठित्वा वैष्णवी विद्या द्वादशे धामनि व्याचक्षत इति य एवं वेद।।३८।।[१]

१. त्रिपुरातापिन्युपनिषत् ।

श्रीचक्र एवं मन्त्र में ऐकात्म्य— श्रीचक्र भगवती त्रिपुरसुन्दरी का अपना शरीर है। योगिनीहृदय में इस तथ्य की पुष्टि करते हुये इस प्रकार कहा गया है—

इत्थं मन्त्रात्मकं चक्रं देवतायाः परं वपुः।। (मन्त्रसङ्केत-५६)

श्रीचक्र एवं श्रीविद्या नामक मन्त्र एकात्म हैं। इस प्रकार श्रीचक्र एवं श्रीविद्या मन्त्र में एकात्मता है। कहा भी है— 'इत्थं मन्त्रात्मकं चक्रम्।' सौभाग्यविद्या (श्रीविद्या) एवं श्रीचक्र तथा देवता के शरीर मूलतः एक ही हैं।

'चक्रं देवतायाः परममन्यद्वपुः' कहकर सेतुबन्ध में चक्र, मन्त्र एवं देवता की एकता प्रतिपादित की गई है, क्योंकि चक्र स्वयमेव 'श्रीविद्या' से एकाकार है।

श्रीविद्या : पञ्चदशाक्षरी विद्या : द्वादश विद्यायें

आदिविद्या— कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीम्।

कूटत्रय— क. आद्यखण्ड : वाग्भव कूट : 'कएईलह्रीम्'।
ख. कामकूट : कामकूट : 'हसकहलह्रीम्'।
ग. शक्तिकूट : शक्तिकूट : 'सकलह्रीम्'।

द्वादश विद्यायें—

१. शक्तिशिव विद्या— 'सक'।
२. लोपामुद्रा विद्या— 'हसकहलह्रीम्'।
३. क्रोधभट्टारक दुर्वासा मुनि विद्या— 'हसकहलह्रीम्'।
४. मानवी विद्या— 'हसकहलह्रीं कएईलह्रीं सकलह्रीम्'।
५. चान्द्री विद्या— 'हसकहलह्रीं कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं हसकलह्रीम्'।
६. कौबेरी विद्या— 'हसकहलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं हसकहलह्रीम्'।
७. अगस्त्य विद्या— 'हसकएलह्रीं हसहकहलह्रीं हससकलह्रीम्'।
८. नन्दिविद्या— 'हहसकहसकएलह्रीं हसहसकहलह्रीं, हससकलह्रीम्'।
९. प्रभाकरी विद्या— 'कएईलह्रीं हसकएलह्रीं हसहसकहलह्रीं हससकलह्रीं हसकहलह्रीं, सकलह्रीम्'।
१०. षण्मुखी विद्या— 'ह्रीं क्लीं हं सः क्लीं लं ह्रीं हसकहलह्रीं सोहं क्लीं हंसः ह्रीं हंसः सोहं हंसः'।
११. परमशिव विद्या— 'ह्रीं क्लीं हंसः क्लीं लं ह्रीं हसकहलह्रीं सोहं क्लीं हंसः ह्रीं इंसः सोहं हंसः हसकएलह्रीं हसहससकलह्रीं, हससकलह्रीम्'।
१२. वैष्णवी विद्या— 'हसकएलह्रीं हसहसकहलह्रीं हससकलह्रीं, कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं हसकहलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीम्'।

त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में वाग्भवकूट, कामकूट एवं शक्तिकूट अर्थात् समस्त कूट-त्रय को गायत्री मन्त्र से समन्वित किया गया है। इन विद्याओं के सम्प्रदायों के प्रवर्तक

आचार्य थे— मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ या कामदेव, शिव और दुर्वासा। इनमें से सभी के सम्प्रदाय कालान्तर में लुप्त हो गये। मात्र दो ही शेष रहे— कामदेव-सम्प्रदाय और लोपामुद्रासम्प्रदाय। इनमें भी आज कामदेवोपासिता विद्या एवं तत्सम्बद्ध सम्प्रदाय ही प्रचलित है।

मनु की विद्या १८ वर्णों से संघटित थी। चन्द्र एवं कुबेर की विद्या २२ वर्णों से संघटित थी। कहीं-कहीं इन्द्र एवं अग्नि के स्थान पर प्रवर्तकों के नामों में 'नन्दी' एवं 'विष्णु' का भी उल्लेख किया गया है।[१]

एक ही मूल मन्त्र के विभिन्न रूप एवं विभिन्न मन्त्र हैं, जैसे कि 'पञ्चदशाक्षरी विद्या'—

१. आदिविद्या—

क. वाग्भवकूट : कएईलह्रीं।

ख. कामकूट : हसकहलह्रीं।

ग. शक्तिकूट : सकलह्रीं।

कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं (आदिविद्या— कादि, हादि, सादि)

२. लोपामुद्रा विद्या— 'हसकहलह्रीं'।

३. क्रोधमुनि विद्या— 'हसकहलह्रीं'।

४. मानवी विद्या— 'हसकहलह्रीं कएईलह्रीं सकलह्रीं'।

५. कौबेरी विद्या— 'हसकहलह्रीं कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं सकलह्रीं हसकहलह्रीं'।

६. अगस्त्य विद्या— 'हसकएलह्रीं, हसहसकहलह्रीं, हससकलह्रीं'।

७. नन्दि विद्या— 'हहसकहसकएलह्रीं हसहसकहलह्रीं, हससकलह्रीं'।

८. षण्मुखी विद्या— 'ह्रीं क्लीं हं सः क्लीं लं ह्रीं हसकहलह्रीं सोऽहं क्लीं हंसः ह्रीं हंसः सोऽहं हंसः'।

९. प्रभाकरी विद्या— 'कएईलह्रीं, हसकएलह्रीं, हसहसकहलह्रीं, हससकलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं (सूर्यविद्या)।

१०. चान्द्री विद्या— 'हसकहलह्रीं, कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं'।

११. शक्तिशिवविद्या— 'स क'।

१२. वैष्णवी विद्या— 'हसकएलह्रीं, हसहसकहलह्रीं, हससकलह्रीं, कएलह्रीं, हसकहलह्रीं, कएलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं, हसकहलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं'।

१३. परमशिवविद्या— 'ह्रीं क्लीं हंसः, क्लीं लं ह्रीं, हसकहलह्रीं, सोऽहं क्लीं हंस, ह्रीं हंसः सोऽहं हंसः हसकएलह्रीं, हसहसकहलह्रीं, हससकलह्रीं'।

त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में लोपामुद्रा, कौबेरी, मानवी, आगस्त्य, चान्द्री, नन्दि, प्रभा-

---

१. गोपीनाथ कविराज : योगिनीहृदय की भूमिका।

करी, षण्मुखी, वैष्णवी, क्रोधमुनिविद्या एवं परमशिवविद्या का स्पष्टतः उल्लेख किया गया है तथा इन सभी विद्याओं के स्वरूप की व्याख्या भी की गई है। इन मन्त्रों में जो बीजाक्षर प्रयुक्त हुये हैं, उनके षण्मुखी विद्यान्तर्गत अर्थ निम्नांकित है—

'ह्रीं' = शक्तिबीज। 'क्रीं' = मन्मथबीज। 'हंस' = शिवशक्तिबीज।
'लं' = उर्वीबीज। 'ह्रीं' = मायाबीज। 'सोऽहं' = चन्द्रसूर्यबीज।
'क्लीं' = अनंगबीज। 'हं' = धूर्जटिबीज। 'स' = महिमाबीज। (षण्मुखी विद्या)

द्वादश विद्याओं का संघटनतन्त्र

चान्द्री विद्या— इस विद्या को चन्द्रोपासिता विद्या भी कहते हैं। इसके चार खण्ड हैं— हसकहलह्रीं, कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं और सकलह्रीं। आदि में शिवशक्त्यात्मक 'हादि लोपामुद्रा विद्या', फिर वाग्भवकूट 'कादि विद्या', फिर शिवशक्त्यात्मक 'सादि विद्या' के योजन से 'चान्द्री विद्या' का आविर्भाव होता है।

कौबेरी विद्या— कुबेर द्वारा उपासित इस विद्या के पाँच खण्ड हैं— हसकहलह्रीं, कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं और हसकहलह्रीं। यदि चान्द्री विद्या के चार खण्डों के साथ अन्त में शिवाद्यकामा 'हादिविद्या' (लोपामुद्रा विद्या) योजित कर दी जाती है तो 'कौबेरी विद्या' निर्मित हो जाती है और इसका साधक कुबेरतुल्य हो जाता है।

अगस्त्य विद्या— अगस्त्य द्वारा उपासित इस विद्या के तीन खण्ड हैं— हसक-एलह्रीं, हसहसकहलह्रीं और हससकलह्रीं। इन तीनों खण्डों में हादि 'लोपामुद्रा' योजित किये जाने पर 'अगस्त्य विद्या' का आविर्भाव होता है। इसके उपासना का फल है— स्वेप्सित कामनाओं की पूर्ति, निरवधिक ऐश्वर्यप्राप्ति और कामैश्वर्य की प्राप्ति।

नन्दिविद्या— नन्दी द्वारा उपासित यह विद्या तीन खण्डों में विभक्त है— हहसक-हसकएलह्रीं, हसहसकहलह्रीं और हससकलह्रीं।

प्रभाकरी विद्या— सूर्योपासित इस विद्या के सात खण्ड हैं— कएईलह्रीं, हसक-एलह्रीं, हसहस, कहलह्रीं, हससकलह्रीं, हसकहलह्रीं और सकलह्रीं। इसमें प्रारम्भ में वाग्भवकूट है। फिर आगस्त्य विद्या का प्रथम खण्ड है। तत्पश्चात् हादि सकलमायाशक्ति शक्तिकूट आदि को एकीकृत कर मन्त्र का आविर्भाव किया गया है।

षण्मुखी विद्या— यह विद्या कार्तिकेय द्वारा उपासिता विद्या है। इसका मन्त्र है— 'ह्रीं क्लीं हं सः क्लीं लं ह्रीं हसकहलह्रीं सोऽहं क्लीं हंसः ह्रीं हंसः सोऽहं हसः।' इसमें 'ह्रीं' शक्तिबीज है, 'क्लीं' मन्मथबीज है, 'हंसः' शिवशक्तिबीज है, 'क्रीं' मन्मथबीज है, 'लँ' पृथ्वी-बीज है, 'ह्रीं' मायाबीज है, 'हादि षडक्षर' कामकलालय हैं, 'सोऽहं' चन्द्र-सूर्यबीज है, 'क्लीं' अनंगबीज है, 'हं' धूर्जटिबीज है और 'सः' महिमाबीज है।

इसी प्रकार आगस्त्यविद्या, कौबेरी विद्या का हादिषट्क (कामकूट = लोपामुद्रा विद्या) एवं सादि शक्तिकूटराज के समन्वय से विष्णवोपासित 'वैष्णवी विद्या' का आविर्भाव होता है।

पञ्चदशी मन्त्र और चक्र

चक्र	मूला धारचक्र	स्वाधि-ष्ठानचक्र	मणिपूर चक्र	अनाहत चक्र	विशुद्ध चक्र	आज्ञा चक्र	सहस्रार चक्र	बिन्दु चन्द्र	अर्द्ध	रोधिनी	नाद
चिह्न वर्ण	क ए	ई ल	ह् र् ई	हसक	हल	ह्रीं सकल	ह्रीं	÷	◡	▽̆	०।०
चक्र	नादान्त	शक्ति	व्यापिका	समना	उन्मनी	महाबिन्दु					
चिह्न/ वर्ण	०v̆	। ००	▽̆ ०	० । ०	◡̆ ।	०।					

कुण्डलिनी खण्ड एवं पञ्चदशाक्षरी मन्त्र के कूट

कुण्डलिनी	खण्ड	कूट
१. अधः कुण्डलिनी	अग्निखण्ड	वाग्भव कूट
२. मध्य कुण्डलिनी	सूर्यखण्ड	कामराज कूट
३. ऊर्ध्व कुण्डलिनी	सोमखण्ड	शक्तिकूट
४. परा कुण्डलिनी	परा खण्ड	तूर्य कूट

चक्र एवं खण्ड

खण्ड	चक्र
अग्निखण्ड	मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र
सूर्यखण्ड	मणिपूर एवं अनाहत चक्र
सोमखण्ड	विशुद्ध एवं आज्ञा चक्र

'त्रिखण्डो मातृका मन्त्रः सोमसूर्यानलात्मकः।'

पञ्चदशाक्षरी विद्या सोमसूर्यानलात्मिका है[1]—

१. पञ्चदशी का आग्नेय खण्ड— शिव। शक्ति। काम। क्षिति।

२. पञ्चदशी का सौर खण्ड— रवि। शीतकिरण। स्मर। हंस। शक्र।

इन दोनों खण्डों के मध्य 'रुद्रग्रन्थि' स्थानीय हल्लेखाबीज है।

३. पञ्चदशी का सौम्य खण्ड— परा। मार। हरि।

---

१. शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः।
अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम्।। (सौन्दर्यलहरी-३२)

सौम्य एवं सौरखण्ड के मध्य 'विष्णुग्रन्थि' स्थानीय भुवनेश्वरीबीज स्थित है।

४. चन्द्रकला खण्ड— चतुर्थ एकाक्षर चन्द्रकला खण्ड है। सौम्य एवं चन्द्रकला खण्ड के मध्य 'ब्रह्मग्रन्थि' स्थानीय हल्लेखाबीज है। चन्द्रकला खण्ड गुप्त है. प्रकाश्य नहीं है।

आचार्य लक्ष्मीधर के अनुसार उपर्युक्त के अतिरिक्त श्रीविद्या के निम्न विभाग भी हो सकते हैं—

श्रीविद्या के खण्ड

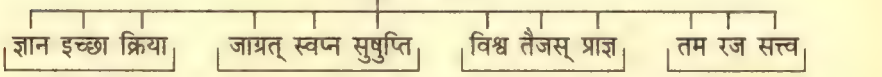

श्रीविद्या और उसके पचास वर्ण— 'श्री' षोडशी कला एवं 'रमाबीज' या 'श्रीविद्या' है। रमाबीजात्मक चन्द्रकलाक्षर से संयुक्त पञ्चदशाक्षरी विद्या में १६ चान्द्र कलायें, २४ सूर्य कलायें एवं अग्नि की १० कलायें भी आ जाती हैं (१६ + २४ + १० = ५०)। ये ५० कलायें ही मातृकावर्ण हैं, जो कि 'पञ्चदशाक्षरी विद्या' के अन्तर्भूत हैं—

षोडशेन्दोः कला भानोः द्विर्द्वादश दशानले।
सा पञ्चाशत्कला ज्ञेया मातृकाचक्ररूपिणी।।

श्रीविद्या के खण्डत्रय इस प्रकार हैं— 'क ए ई ल ह्रीं'; 'ह स क ह ल ह्रीं' और 'स क ल ह्रीं'।

'पञ्चदशाक्षरी विद्या' का उद्धार 'कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्यैषा विश्वमाता दिविद्योम्' (देव्यथर्वशीर्षोक्त) मन्त्र के द्वारा किया गया है। श्रीविद्या में सन्निविष्ट ककारादि वर्ण, षोडश स्वर एवं तिथिस्वरूप त्रिपुरसुन्दरी आदि नित्याओं (महात्रिपुरसुन्दरी, कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महाविद्येश्वरी (महावज्रेश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्या, नील- पताका, विजया, सर्वमंगला, ज्वालामालिनिका, चित्रा) के प्रकृतिभूत हैं।

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि— शिव, शक्ति इत्यादि शब्दों का आचार्य शंकर ने जो प्रयोग किया है, वह कहीं लक्षितलक्षणा, कहीं लक्षणा एवं कहीं ककारादि वर्णपर है। त्रिपुरसुन्दरीमत में १६ वर्ण हैं। वे १६ वर्ण षोडश नित्याओं में आत्मस्वरूपवत् स्थित हैं। १६हवीं कला का चन्द्रकलात्व रूप से साम्य होने के कारण नित्यात्व व्यपदेश है। वह परा कला तो चिदेकरसात्मिका है। उसकी छाया 'विशुद्धि चक्र' के 'षोडशार' में कला के रूप में स्थित है। वह प्रधान एवं प्रकृति है। इसकी अंगभूता १५ नित्यायें हैं।

'षोडशी कला' क्या है? इस प्रश्न पर आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं— 'षोडशी कला नाम शकार-रेफ-ईकार-बिन्द्वतो मन्त्रः। एतस्यैव बीजस्य नाम श्रीविद्या। श्रीबीजात्मिका विद्या श्रीविद्या इति रहस्यम्।'

ककारादिक वर्ण षोडश नित्याओं की प्रकृति हैं। वे षोडश नित्यायें शुक्ल प्रतिपदा

से आरम्भ करके पौर्णमासी-तिथिरूपा हैं और कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से अमावास्यान्त तिथिरूपा हैं। ये सभी 'चन्द्रकला' कहलाती हैं। चन्द्रकला ही प्रतिपदा आदि तिथियाँ हैं, यह ज्योतिषशास्त्र में भी प्रसिद्ध है—

प्रतिपन्नाम विज्ञेया चन्द्रस्य प्रथमा कला।
द्वितीयाद्या द्वितीयाद्याः पक्षयोश्शुक्लकृष्णयोः।

अर्थात् चन्द्रमा की प्रथमा कला का नाम 'प्रतिपदा' है। वह सूर्यमण्डल से निर्गत हुई है और कृष्णपक्ष में सूर्यमण्डल में प्रविष्ट हो जाती है। शुक्लपक्ष में सूर्यमण्डल से निर्गत द्वितीया कला को द्वितीया तिथि कहते हैं, जो कि कृष्णपक्ष की द्वितीया तिथि या द्वितीया कला में प्रविष्ट हो जाती है। यही क्रम सभी कलाओं एवं तिथियों का है।

पौर्णमासी एवं अमावस्या का स्वरूप— सूर्य एवं चन्द्रमा की १५ कलाओं का जहाँ व्यवधान होता है, वहाँ 'पौर्णमासी' होती है— 'पञ्चदशकलाव्यवधानं सूर्यचन्द्रयोर्यत्र सा पौर्णमासी।'

सूर्य एवं चन्द्रमा की १५हवीं कला में जहाँ सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों का अत्यन्त संयोग हो, वह 'अमावस्या' कहलाती है— 'पञ्चदश्यां कलायां सूर्यचन्द्रयोरत्यन्तसंयोगः सा अमावस्येति ज्ञेयम्।'

इसीलिये 'कौलमत' में चन्द्रकलात्मिका षोडश नित्याओं में प्रतिदिन केवल एक नित्या की पूजा की जाती है, किन्तु 'समयिमत' में सभी नित्याओं की पूजा की जाती है। 'षोडशी कला' का तो १५हों तिथियों में अनुष्ठान विहित है; क्योंकि उसमें १५हों कलायें अन्तर्भूत हैं। यही सम्प्रदायक्रम है।

ध्यान एवं उपासना-विधानक्रम

तिथि	शक्ति (नित्यायें)
प्रतिपदा	त्रिपुरसुन्दरी कला का ध्यान करना चाहिये।
द्वितीया	कामेश्वरी कला का ध्यान करना चाहिये।
तृतीया	भगमालिनी कला का ध्यान करना चाहिये।
चतुर्थी	नित्यक्लिन्ना कला का ध्यान करना चाहिये।
पञ्चमी	भेरुण्डा कला का ध्यान करना चाहिये।
षष्ठी	वह्निवासिनी कला का ध्यान करना चाहिये।
सप्तमी	महावज्रेश्वरी, महाविद्येश्वरी कला का ध्यान करना चाहिये।
अष्टमी	रौद्री कला का ध्यान करना चाहिये।
नवमी	त्वरिता कला का ध्यान करना चाहिये।
दशमी	कुलसुन्दरी कला का ध्यान करना चाहिये।
एकादशी	नीलपताका कला का ध्यान करना चाहिये।

द्वादशी	विजया कला का ध्यान करना चाहिये।
त्रयोदशी	सर्वमंगला कला का ध्यान करना चाहिये।
चतुर्दशी	ज्वाला कला का ध्यान करना चाहिये।
पञ्चदशी	मालिनी कला का ध्यान करना चाहिये।

समस्त तिथियों पर चिद्रूपा कला 'षोडशी' की उपासना की जानी चाहिये।

प्रतिपदा को जो त्रिपुरसुन्दरी 'नित्या' के नाम से उल्लिखित है, वह चिद्रूपात्मिका नहीं है। अतः चिद्रूपात्मिका मूल विद्या का पृथक् रूप से अनुष्ठान किया जाता है और इस दिशा में मन्त्रभेद भी है। वह मन्त्र प्रतिपदा तिथि को ही अनुष्ठेय है, द्वितीया तिथि को नहीं।

इन समस्त षोडश नित्याओं का स्थान 'विशुद्धि चक्र' एवं 'षोडशार' में है। वहाँ वे पूर्वादि क्रम से चक्र के कोणों में स्थित हैं। उसके नीचे स्थित द्वादशार 'संवित्कमल' में प्रादक्षिण्यक्रम से द्वादश सूर्य भ्रमण करते हैं। इन द्वादश आदित्यों का द्वादश मासों पर अधिकार है। ये सारी बातें सनत्कुमारसंहिता में निरूपित की गई हैं। यहाँ इनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

१. सूर्य एवं चन्द्र का देवयान-पितृयान से युक्त इडा-पिंगला मार्ग से अहर्निश सञ्चरण होता रहता है।

२. चन्द्रमा वाम नाड़ीमार्ग से सञ्चरण करते हुये ७२ हजार नाड़ीमार्ग को अमृत से आप्लावित करता है।

३. सूर्य दक्षिण नाड़ीमार्ग से सञ्चरण करता हुआ तदुत्क्षिप्त अमृतकणों को उपाहृत करता है।

४. जब चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों का 'आधारचक्र' में प्रवेश होता है, तब 'अमावस्या' तिथि उत्पन्न होती है। उनसे कृष्णपक्ष की तिथियाँ उत्पन्न होती हैं। अतएव कुण्डलिनी शक्ति आधारकुण्ड में सूर्यकिरण के सम्पर्क से विलीन चन्द्रमण्डल के मध्य से स्रवित पीयूष पीती है। उसकी स्वापावस्था ही 'कृष्णपक्ष' है (उसके सोने की दशा ही कृष्णपक्ष है)।

५. जब योगी समाहितचित्त होकर चन्द्रमा को चन्द्रस्थान में एवं सूर्य को सूर्यस्थान में वायु द्वारा निरुद्ध करने में सक्षम होता है, तब निरुद्ध किये हुये सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों अमृतसेचन एवं अमृत के आहरण में असमर्थ हो जाते हैं।

६. उस समय वायु से प्रेरित स्वाधिष्ठानवह्नि से शुष्कीभूत अमृतकुण्ड में निराहार कुण्डलिनी सोते से जगकर सर्प की भाँति फुफकारती हुई एवं ग्रन्थित्रय का भेदन करके सहस्रदल कमलवर्ती चन्द्रमण्डल को डस लेती है। उस दंशन से स्रवित पीयूषधारा आज्ञाचक्रोपरिस्थित चन्द्रमण्डल को आप्लावित करती है। उन स्रवित अमृत की धाराओं के द्वारा देह को भी आप्लावित करती है।

७. आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमा की कलायें १५ नित्यायें ही हैं। वे १५

नित्यायें अपने नीचे स्थित 'विशुद्धिचक्र' का आश्रय लेकर भ्रमण करती हैं। सहस्रदलकमल में स्थित चन्द्रमण्डल ही 'बैन्दवस्थान' है। उसकी कला चिन्मयी एवं आनन्दरूपा आत्मा है और वही 'त्रिपुरसुन्दरी' है।

८. योगीश्वरगण शुक्लपक्ष में कुण्डलिनी का जागरण करने में तो समर्थ हैं, किन्तु कृष्णपक्ष में नहीं। शुक्लपक्ष की समस्त तिथियाँ 'पौर्णमासी' कहलाती हैं— यही उनका नाम है। कृष्णपक्ष की समस्त तिथियाँ 'अमावस्या' में ही अन्तर्भुक्त हैं। इसीलिए एक अमावस्या ही समस्त कृष्णपक्ष का पर्याय है। अत:—

क. आधारचक्र 'अन्धतामिस्र' है।

ख. स्वाधिष्ठानचक्र सूर्यकिरणों के सम्पर्क से 'मिश्रलोक' है।

ग. मणिपूरचक्र अग्निस्थान होने पर भी वहाँ स्थित जल में सूर्यकिरण के प्रतिबिम्ब के कारण 'मिश्रलोक' है।

घ. अनाहत चक्र 'ज्योतिर्लोक' है। इस प्रकार अनाहत चक्रपर्यन्त चक्र ज्योति एवं तम के मिश्रण से मिश्रकलोक है।

ङ. विशुद्धि चक्र 'चान्द्रलोक' है।

च. आज्ञा चक्र चन्द्रस्थान होने के कारण 'सुधालोक' है। इन दोनों लोकों का सूर्य-किरणों से सम्पर्क होने के कारण यहाँ चन्द्रिका नहीं है।

सहस्रदल कमल 'ज्योत्स्नामय लोक' है। वहाँ स्थित चन्द्रमा नित्य कलायुक्त है। चन्द्रबिम्ब ही 'श्रीचक्र' है— 'चन्द्रबिम्बं श्रीचक्रम्।'

छ. कला 'सादाख्या' है।

ज. 'त्रिकोण' आधार चक्र है।

झ. 'अष्टकोण' स्वाधिष्ठान चक्र है।

ञ. 'दशार' मणिपूरक चक्र है।

ट. 'द्वितीय दशार' ही अनाहतचक्र है।

ठ. 'चतुर्दशार' ही विशुद्धि चक्र है।

ड. 'शिवचतुष्टय' ही आज्ञा चक्र है।

ढ. 'बिन्दुस्थान' चतुरस्र सहस्रदल कमल है।

ण. आज्ञाचक्र में स्थित चन्द्रमा में पन्द्रह कलायें हैं। उसमें षोडशी कला का प्रति-फलन भी है।

त. श्रीचक्ररूप चन्द्रबिम्ब में एक ही कला है और वही 'परमा कला' है। ये सभी मिलकर षोडश कलायें हैं; यथा—

षोडशेन्दो: कला भानो: द्विर्द्वादश दशानले।
सा पञ्चाशत्कला ज्ञेया मातृकाचक्ररूपिणी।।

थ. ये ५० कलायें पचास वर्णों से युक्त हैं और 'पञ्चदशाक्षरी मन्त्र' में अन्तर्भूत हैं। जिस प्रकार 'अल्' प्रत्याहार के भीतर 'अ' से 'ल्' तक के सारे वर्ण समाविष्ट हैं, उसी

प्रकार यही लकार एकारपरवर्ती अकार के द्वारा प्रत्याहृत होकर ५० वर्णों का ग्राहक है। इसी प्रत्याहारग्रहण से ५० वर्णों से युक्त मातृकाग्रहण में ककार एवं लकार दोनों का प्रत्याहारग्रहण का प्रयास किस उद्देश्य से?

उत्तर— ककारादि-लकारान्त शब्दों की 'कला' शब्दवाच्यता गौण है; क्योंकि व्यञ्जन स्वरों के अंग हैं। कलाओं (व्यञ्जनों) में स्वर की प्रधानता है— इस प्रकार गुणप्रधान भाव के प्रदर्शनार्थ इसमें दो प्रत्याहारों का आश्रय लिया गया है, जो कि सनत्कुमार आदि ऋषियों को अभीष्ट है और उन्होंने उनका संहिता में प्रतिपादन किया है।

चारो अनुस्वार बिन्दु का लक्षक है। अत: उस बिन्दु से तदुपरि प्रतीयमान 'नाद' संगृहीत है। इस प्रकार नाद-बिन्दु एवं कला से युक्त श्रीचक्र को 'त्रिखण्डात्मक' कहा गया है। 'सादाख्या' नाम्नी कला 'श्रीविद्या' की अपर पर्याय है और नाद बिन्दुकला से अतीत है। ये सभी षोडश नित्याओं में अन्तर्भूत हैं।

श्रीविद्या में समस्त मातृकाओं का अन्तर्भाव— १६ स्वर, कादि-तान्त १६ वर्ण— थादि-सान्त वर्ण १६ एवं यह षोडश त्रिक षोडश नित्याओं में अन्तर्भूत हैं। हकार, जो कि आकाश का बीज है, बैन्दवाकाश में विलीन है। लकार-अन्त:स्थ स्वान्तर्भूत होने पर भी ककार द्वारा प्रत्याहारार्थ पुन: गृहीत कर लिया गया है। क्षकार तो मात्र 'क' एवं 'ष' का समुदित रूपमात्र है। ककारादि-सान्त वर्ण तो षोडश नित्याओं में स्वरसहित अन्तर्भूत हैं।

अकार द्वारा प्रत्याहृत क्षकार 'अक्षमाला' कहलाता है। क्षकार के द्वारा समस्त मातृकायें संगृहीत होती हैं। इसी कारण अन्तिम खण्ड (स क ल ह्रीं) में ककार तथा लकार के योग से 'कला' शब्द की निष्पत्ति होती है। 'क' एवं 'ष' के योग से क्षकार निष्पन्न होता है। इस प्रकार इस मन्त्र से समस्त मातृकाओं का ग्रहण हो जाता है।

ऐक्यचतुष्टय— सारांश यह कि—

१. षोडश नित्याओं का मन्त्रगत षोडश वर्णों के साथ ऐकात्म्य।
२. षोडश वर्णों का पचास वर्णों के साथ ऐकात्म्य।
३. मन्त्रगत वर्णों का सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि के साथ ऐकात्म्य।
४. मन्त्रगत वर्णों का सूर्य-चन्द्र-अग्नि के रूप में त्रिखण्डत्व।

इस प्रकार 'ऐक्यचतुष्टय' सिद्ध होता है।

सुभगोदय का मत— इसी प्रकार 'चक्र' एवं 'मन्त्र' की भी एकात्मता है; क्योंकि ह्रींकार एवं श्रीबीज शिवचक्रचतुष्टयात्मक त्रिकोण में बिन्दुरूप से अन्तर्भूत है।

'स क ल'— इस मन्त्रगत वर्णत्रय से संगृहीत मातृका अक्षमालात्मिक है। दोनों मातृकायें चक्र में अन्तर्भूत हैं।

श्रीविद्या में वर्णमाला के वर्णों का अन्तर्भाव— अन्त:स्थचतुष्टय, ऊष्मचतुष्टय—

८ वर्ण 'श्रीचक्र' के अष्टकोणवत् हैं। कादिमावसान पञ्चवर्गीय वर्णों को छोड़कर शेष दोनों 'दशारों' में अन्तर्भूत हैं। पाँच वर्गों (कवर्ग, चवर्ग आदि) के अन्तिम पञ्चम वर्ण अनुस्वार-रूप से 'बिन्दु' के भीतर अन्तर्भूत हैं। 'चतुर्दशार' में १४ स्वर अन्तर्भूत हैं। अनुस्वार एवं विसर्ग का 'बिन्दु' के अन्दर अन्तर्भाव है। इसी प्रकार सुभगोदय ग्रन्थ के मतानुसार 'श्रीचक्र' एवं 'मन्त्र' में एकता प्रतिपादित की गई है।

कला, यन्त्र एवं मन्त्र की एकता— पूर्णोदय मत के अनुसार सोम-सूर्य-अनल से युक्त होने के कारण 'श्रीविद्या' त्रिखण्डात्मिका है। इस प्रकार 'मन्त्र' भी त्रिखण्डात्मक है। चन्द्रमा की १६ कलायें 'इन्दुखण्ड' में अन्तर्भूत हैं। वह इन्दुखण्ड द्वन्द्वात्मक 'यन्त्रखण्ड' में अन्तर्भूत हैं।

इसी प्रकार सूर्य की २४ कलायें 'भानुखण्ड' के अन्तर्गत अन्तर्भूत हैं। वह खण्ड 'यन्त्र' में अन्तर्भूत है और इस तरह दश आग्नेय कलायें 'आग्नेय खण्ड' में अन्तर्भूत हैं। वह खण्ड यन्त्र में 'आग्नेय खण्ड' में अन्तर्भूत है। इस प्रकार कला, यन्त्र एवं मन्त्र— तीनों में एकता प्रतिपादित होती है।

सुभगोदय में नित्याओं का स्वरूप इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है—

दर्शाद्याः पूर्णिमान्ताश्च कलाः पञ्चदशैव तु।
षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।।

इसका अर्थ यह हुआ कि 'दर्शा' से 'पूर्णिमापर्यन्त' समस्त १५ कालखण्ड 'तिथियाँ' कहे जाते हैं। ये 'दर्शा' आदि चन्द्रमा की कलाओं के नाम हैं। निष्कर्ष यह कि समस्त चान्द्र कलायें तिथियाँ हैं।

'दर्शा' अमावस्या तिथि के बाद आने वाली प्रतिपदा तिथि का अभिधान है— 'दर्शा नाम अमावास्यानन्तरभाविनी प्रतिपत्कला।' चूँकि वह स्वल्पांशगोचरा है; अतः ईशद्दर्शन के कारण उसे 'दर्शा' कहा गया है। 'दर्शाद्याः' का अर्थ है— 'दर्शा'नामक 'चान्द्र कला' जिसके आदि में हो।

पूर्णिमान्त अर्थात् पूर्णिमा जिसके अन्त में हो; आशय यह कि दर्शा से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त— 'दर्शाद्याः पूर्णिमान्ततिथयः।'

दर्शाद्या पूर्णिमान्त कलायें (श्रुतिनिर्दिष्ट आख्यायें)— 'दर्शा' से प्रारम्भ कर 'पूर्णिमा'पर्यन्त कलायें निम्नवत् हैं—

१. दर्शा	६. आप्यायमाना	११. आपूर्यमाणा
२. दृष्टा	७. आप्यायमाना	१२. आपूर्यमाणा पूरयन्ती
३. दर्शता	८. आप्याया	१३. पूर्णा
४. विश्वरूपा	९. सूनृता	१४. पौर्णमासी
५. सुदर्शना	१०. इरा	

अधिदेवता— दर्शा, दृष्टा, दर्शता आदि पन्द्रह कलाओं की अधिदेवता त्रिपुरसुन्दरी आदि नित्यायें हैं।

षोडशी कला चिद्रूपात्मिका है और सादाख्य तत्त्व है; अत: वह अधिदेवान्तर नहीं है, क्योंकि वह सभी कलाओं एवं अधिदेवताओं की भी अधिदेवता है। इन सभी नित्याओं की अभिमानिनी देवता कामदेव है— 'एतासां नित्यानां अभिमानिनी देवता कामदेव एक एव।' एक ही कामदेव इन सभी नित्याओं का देवता है।

अधिष्ठान देवता— अधिष्ठान देवता एक है और वह है— 'कामेश्वरी।' निष्कर्षत: मूल विद्यागत पन्द्रह वर्ण, दर्शादिक कलायें, नित्या कलायें आदि मात्र विग्रहान्तर हैं और तत्त्वत: भिन्न-भिन्न नहीं हैं; अत: दर्शा आदि कलाओं का भी त्रिखण्डात्मक होना सिद्ध हो गया। कलायें भी त्रिखण्डात्मिका हैं और वे खण्डत्रय हैं— आग्नेय खण्ड, सौरखण्ड एवं चान्द्र खण्ड। दर्शा, दृष्टा, दर्शता, विश्वरूपा और सुदर्शना 'आग्नेय खण्ड' है। आप्यायमाना, आप्यायमाना, आप्याया, सूनृता और इरा 'सौर खण्ड' है एवं आपूर्यमाणा, आपूर्यमाणा, पूरयन्ती, पूर्णा और पौर्णमासी 'चान्द्र खण्ड' है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुभगोदयमत के अनुसार निष्कर्षत: कलाओं और नित्याओं में ऐक्य है।

क. आग्नेय खण्ड : प्रथम खण्ड— यह खण्ड पञ्चतत्त्वात्मक है तथा अग्नितत्त्व ही यहाँ अधिदेवता है। कामदेव तीनों खण्डों के अधिदेवता हैं और कामेश्वरी तो सभी खण्डों की अधिष्ठात्री हैं। इसकी कलाओं का विवरण निम्नवत् है—

१. दर्शा कला — शिवतत्त्वात्मिका।
२. दृष्टा कला — शक्तितत्त्वात्मिका।
३. दर्शता कला — मायातत्त्वात्मिका।
४. विश्वरूपा कला — शुद्धविद्यातत्त्वात्मिका।
५. सुदर्शना कला — जलतत्त्वात्मिका।

ख. सौर खण्ड : द्वितीय खण्ड— इस खण्ड का देवता सूर्य है। कामदेव सभी खण्डों का देवता है एवं कामेश्वरी भी सभी खण्डों की अधिष्ठात्री देवता है। इसकी कलाओं का विवरण निम्नवत् है—

१. आप्यायमाना कला — तेजस्तत्त्वात्मिका।
२. आप्यायमाना कला — वायुतत्त्वात्मिका।
३. आप्याया कला — मनस्तत्त्वात्मिका।
४. सूनृता कला — पृथ्वीतत्त्वात्मिका।
५. इरा कला — आकाशतत्त्वात्मिका।
६. आपूर्यमाणा कला — विद्यातत्त्वात्मिका।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि आपूर्यमाणा कला तो 'चान्द्र खण्ड' के अन्तर्गत आती है, फिर आचार्य लक्ष्मीधर ने उसे 'सौर खण्ड' में परिगणित क्यों किया?

इसका समाधान यह है कि आपूर्यमाणा कला चन्द्रखण्डान्तर्गता होने पर भी सौर खण्ड में अन्तर्भूत है। 'इरा कला' एवं 'आपूर्यमाणा कला' में ऐक्य है।

ग. चान्द्र खण्ड : तृतीय खण्ड— इस खण्ड का अधिदेवता सोम है; इसीलिये इसे 'सौम्य खण्ड' के नाम से भी जाना जाता है। कामदेव सभी खण्डों के अधिदेवता हैं और कामेश्वरी सर्वत्र अधिष्ठात्री हैं। इसकी कलाओं का विवरण निम्नवत् है—

१. आपूर्यमाणा कला — महेश्वरतत्त्वात्मिका।
२. पूरयन्ती कला — परतत्त्वात्मिका।
३. पूर्णा कला — आत्मतत्त्वात्मिका।
४. पौर्णमासी कला — सदाशिवतत्त्वात्मिका।

'नित्या कला' सादाख्यतत्त्वात्मिका है।

ये सभी 'विशुद्धि चक्र' में 'षोडशार' में प्रागादि क्रम से सोलहों दिशाओं में भ्रमण करती हैं। यह समस्त विवरण सुभगोदय ग्रन्थ के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। संक्षिप्त रूप से सुभगोदय के मत को इस प्रकार समझा जा सकता है—

१. 'आज्ञाचक्र' के ऊपर चन्द्रमण्डल की सोलह कलायें स्थित हैं।
२. १५ कलायें 'षोडशार' में परिभ्रमण करती हैं।
३. षोडशी कला का 'सहस्रदलकमल' में अवस्थान है।
४. 'सहस्रदलकमल' में स्थित नित्या कलाओं का प्रभापटल 'षोडशार' में स्फुरित होता है।

आचार्य शंकर ने अपने सौन्दर्यलहरी में जो ३२वाँ श्लोक प्रस्तुत किया है, उसकी व्याख्या में भी ये ही निष्कर्ष समाविष्ट हैं। उपर्युक्त श्लोक निम्नवत् है—

शिवश्शक्तिः कामः क्षितिरथ रविश्शीतकिरणः
स्मरो हंसश्शक्रस्तदनु च परामारहरयः।
अमी हल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिताः
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम्।।

इस श्लोक में शिव, शक्ति, काम, क्षिति शब्दावली में—

१. शिव— 'क'	शिवतत्त्वात्मिका 'दर्शाख्या कला' त्रिपुरसुन्दरी का वाचक है। उसका प्रकृतिभूत 'ककार' लक्षित है।
२. शक्ति— 'ए'	शक्तितत्त्वात्मिका 'दृष्टा कला' द्वारा 'एकार' लक्षित है।
३. काम— 'ई'	काम देवता 'दर्शता कला' बोधित है। दर्शता कला द्वारा 'ईकार' लक्षित है।

४. क्षिति— 'ल'	'लकार: क्षितितत्त्वं' से क्षिति 'लकार' का बोधक है।
५. रवि— 'ह'	सूर्यखण्डात्मक होने के कारण 'रवि' शब्द 'हकार' का बोधक है।
६. शीतकिरण— 'स'	शीतकिरण अर्थात् चन्द्रमा। 'सकार: चन्द्रबीजं' के अनुसार शीतकिरण शब्द 'स' का बोधक है।
७. स्मर— 'क'	'स्मर' शब्द कामराजप्रकृतिभूत होने के कारण 'ककार' का लक्षक एवं स्मारक है।
८. हंस— 'ह'	'हंस' शब्द सूर्य का पर्यायवाची और हकाराधिपति है।
९. शक्र— 'ल'	'शक्र' इन्द्र का नाम है। 'लकार: इन्द्रबीजं' के अनुसार शक्र शब्द से 'लकार' लक्षित है।
१०. परा— 'स'	'परा' चन्द्रकला की बोधिका है। चन्द्रबीज सकार 'परा' शब्द का बोधक है।
११. मार— 'क'	मार (कामदेव) कामराजबीजप्रकृतिभूत 'ककार' का लक्षक है।
१२. हरि— 'ल'	'हरि' शब्द इन्द्र का बोधक है और इन्द्र लकारात्मक है; अत: इन्द्र 'ल' का बोधक है।

इस प्रकार उपर्युक्त श्लोकगत शिव, शक्ति आदि शब्द मन्त्रगत ककारादिक वर्णों के लक्षक हैं। ये लक्षितलक्षक हैं।

इस प्रकार पञ्चदश नित्याओं के समूहस्वरूप मन्त्र का १५ तिथियों में अनुष्ठान विहित है। पृथक् नित्यानुष्ठान प्रतिदिन के लिये पृथक् रूप से नियत है। सारांश यह कि— 'दर्शाद्या: पूर्णिमान्ताश्च कला: पञ्चदशैव तु।'

तैत्तिरीय ब्राह्मण की दृष्टि में श्रीविद्या— तैत्तिरीय शाखा के काठक में 'इयं वाव सरघा' (३.१०.१०) वाक्य दृष्टिगोचर होता है। यह चन्द्रकला सादाख्या सरघा की भाँति मधुस्यन्दिनी (अमृतस्यन्दिनी) है। निष्कर्ष यह कि श्रीचक्र का चन्द्रमा 'सरघा' है।

'तस्या अग्निरेव सारघं मधु' (तैत्तिरीय ब्राह्मण-३.१०.१०) अर्थात् उस सरघा का अग्निस्थान ही बैन्दव त्रिकोण सारघ (सरघोद्भूत) मधु है। यह इसलिये कि भगवती का धाम सुधासिन्धु है। उस सारघ मधु का उपचयापचयप्रकार क्या है? इस प्रश्न पर कहा गया है कि— 'या एता: पूर्वपक्षापरपक्षयो: रात्रय:।' 'पूर्वपक्षापरपक्षयो:' अर्थात् शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष की रात्रियाँ। 'ता मधुकृत:' (तैत्तिरीय ब्राह्मण-३.१०.१०) अर्थात् वे रात्रियाँ मधु का निर्माण करती हैं। यह तो लोकप्रसिद्ध ही है कि—

१. रात्रि में ही मधुमक्षिकायें मधु का संग्रह करती हैं।

२. रात्रि में ही चन्द्रकलारूपा 'श्रीविद्या' का अनुष्ठान किया जाता है; दिन में इसका अनुष्ठान नहीं किया जाता।

३. पूर्वपक्ष की रात्रियाँ दर्शादिपौर्णमास्यान्त हैं।

कृष्णपक्ष की रात्रियों के नाम क्या हैं? इस जिज्ञासा का समाधान करते हुये तैत्तिरीय ब्राह्मण (३.१०.१) में कहा गया है कि—

सुता सुन्वती प्रसुता सूयमानाऽभिषूयमाणा,
पीती प्रपा सम्पा तृप्तिस्तर्पयन्ती कान्ता।
काम्या कामजाताऽऽयुष्मती कामदुघा।।

शुक्लपक्ष के दिनों के नामों का निरूपण भी तैत्तिरीय ब्राह्मण में ही इस प्रकार किया गया है—

संज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं जानदभिजानत।
सङ्कल्पमानं प्रकल्पमानमुपकल्पमानमुपक्लृप्तम्।
क्लप्तमाश्रयो वसीय आयत् सम्भूतं भूतम्।।

इसी प्रकार कृष्णपक्ष के दिनों के नाम भी बताये गये हैं—

प्रस्तुतं विष्टुतं संस्तुतं कल्याणं विश्वरूपम्।
शुक्रममृतं तेजस्वि तेजः समिद्धमरुणम्।
भानुमन्मरीचिमदभितपत्तपस्वत् ।।

शुक्ल-कृष्णपक्ष के अहोरात्र के नाम जानने का दो फल हैं— बैन्दवस्थान में सुधा-प्राप्ति और इष्टापूर्त (वाञ्छितार्थ की प्राप्ति)।

निष्कर्ष यह कि १. चन्द्रकला विद्यानुष्ठान, मातृका एवं मन्त्र में ऐक्य-स्थापना, २. मन्त्र एवं चक्र में एकता, ३. चक्र एवं नित्याओं में ऐक्य तथा ४. नित्या एवं प्रतिपदादिक कलाओं में ऐक्य— यही 'समयीमत' है। इस अनुष्ठान में शुक्ल एवं कृष्णपक्ष तथा दिवस-रात्रि का विवेक आवश्यक है।

५. दर्शादिपौर्णमास्यान्त तिथियों (कलाओं) में चतुर्विध ऐक्य का अनुसन्धान स्पृहणीय है, न कि अमावस्या में।

उपासना हेतु प्रशस्त एवं निषिद्ध तिथियाँ— 'कृष्णपक्ष' शब्द अमावस्यापर है। अमावस्या की भाँति शुक्लपक्ष के दिनों में भी अनुष्ठान करना उचित है। सम्पूर्ण कृष्णपक्ष में नहीं; प्रत्युत अमावस्या के दिन उपासना का निषेध किया गया है। अमावस्या छोड़कर समस्त रात्रियों में (दिनों में नहीं) उपासना विहित है।

श्रीविद्या और कामदेव— आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि अनंग ने पञ्चाशत् वर्णात्मक (५० वर्णों वाले) षोडश नित्यात्मक, षोडश कलात्मक विद्यारत्न को अनेकों स्मृतियों, पुराणों एवं आगमों में विप्रकीर्ण देखा। फिर उन्होंने विप्रकीर्ण इस मन्त्र को गुम्फित कर डाला। उन्होंने ५० वर्णों को तीन भागों में विभाजित करके एवं उनके तीन खण्ड करके और उसमें त्रिपुरसुन्दरी आदि षोडश नित्याओं को अन्तर्भूत करके

प्रतिपदा आदि १६ तिथियों को भी वहीं अन्तर्भूत करके और वहीं सोम-सूर्य एवं अनल, ब्रह्मा-विष्णु एवं महेश, सत्त्व-रज एवं तम, जाग्रत्-स्वप्न एवं सुषुप्ति तथा सृष्टि-स्थिति एवं लय से उन्हें उपहित स्वीकार करके श्रीविद्यात्मक चतुर्थ खण्ड में १५ कलाओं को अन्तर्भूत करके भुवनेश्वरीप्रभृति नौ योगिनी विद्याओं के त्रिकों का एक-एक ह्रींकार में अन्तर्भाव करके सर्व-भूतात्मक, सर्वमन्त्रात्मक, सर्वतत्त्वात्मक, सर्वावस्थात्मक, सर्वदेवात्मक, सर्ववेदार्था-त्मक, सर्वशब्दात्मक, सर्वशक्त्यात्मक, त्रिगुणात्मक, त्रिखण्डात्मक, श्रीविद्या को सादाख्या-पर्यायात्मक, षड्विंशशिवशक्तिसम्पुटात्मक, त्रिगुणातीतात्मक भगवती से एकीकृत मानकर १५ वर्णों को मूल विद्या से गुम्फित कर दिया। उसके बाद स्यूत मन्त्रराज को ग्रीवा में पहन कर कामदेव ने ध्यानयोग द्वारा चिर काल तक उसकी पूजा की और उसके बाद चन्द्रकलामृता का स्वाद लिया। वही मन्मथ ऋषि इस मन्त्र के ऋषि हैं।

श्रीविद्या एवं महात्रिपुरसुन्दरी की अभिन्नता— श्रीविद्या आदि ब्रह्मविद्या है। उसके मुख्यतः दो स्वरूप (अंग) हैं— कादि विद्या और हादि विद्या। वैसे तो सादि एवं कहादि विद्या भी इसके ही रूप हैं, किन्तु श्रीविद्या के मुख्य भेद कादि एवं हादि ही माने जाते हैं। इनमें भी कादि विद्या का महत्त्व अधिक है। कादि एवं हादि विद्याओं के प्रथमाक्षर शिव एवं शक्ति के द्योतक हैं।

श्रीविद्या महात्रिपुरसुन्दरीस्वरूपा है; क्योंकि बह्वृचोपनिषद् के अन्त में श्रीविद्या को जहाँ 'पञ्चदशाक्षरी मन्त्र' के रूप में स्वीकार किया गया है; वहीं उसे षोडशी, श्रीविद्या, पञ्चदशाक्षरी, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी, बाला, अम्बिका, बगला, मातंगी, स्वयंवरकल्याणी, भुवनेश्वरी, चामुण्डा, चण्डा, वाराही, तिरस्करिणी, राजमातंगी, शुकश्यामला, लघुश्यामला, अश्वारूढा, प्रत्यंगिरा, धूमावती, सावित्री, सरस्वती, गायत्री एवं ब्रह्मानन्दकला से अभिन्न मानकर उसे उनका स्वरूप भी स्वीकार किया गया है— 'सैषा षोडशी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी बालाऽम्बिकेति बगलेति वा मातंगीति स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति, चामुण्डेति चण्डेति वाराहीति ..... धूमावती सावित्री सरस्वती गायत्री ब्रह्मानन्दकलेति।'

इसी परा चिच्छक्ति महात्रिपुरसुन्दरी को 'परा शक्ति' कहकर उसके पर्याय के रूप में एवं उसके स्वस्वरूप के रूप में शाम्भवी विद्या, कादि विद्या, हादि विद्या, सादि विद्या एवं ॐकार को भी प्रस्तुत किया गया है— 'सैषा परा शक्तिः। सैषा शाम्भवी विद्या कादिविद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति वा रहस्यमामों वाचि प्रतिष्ठा।'

देव्युपनिषद् में भी ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती दुर्गा को आत्मशक्ति, विश्वमोहिनी, पाशांकुशधनुर्बाणधरा के साथ-साथ 'श्रीमहाविद्या' भी कहा गया है— 'एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी पाशांकुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या।'

ब्रह्म के दो रूप हैं— शब्दब्रह्म और परब्रह्म। त्रिपुरातापिन्युपनिषद् (२०) में कहा भी गया है— 'द्वे ब्रह्मणी हि मन्तव्ये शब्दब्रह्मपरं च यत्।' वहीं पर 'शब्द ब्रह्म' से ही

'परब्रह्म' की प्राप्ति भी कही गयी है— 'शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।'

चूँकि 'मन्त्र' ब्रह्म का अपना शाब्दिक (वर्णात्मक, ध्वन्यात्मक) स्वरूप होता है; अतः यदि ॐ को 'शब्दब्रह्म' कहा जा सकता है तो प्रत्येक मन्त्र को भी शब्दब्रह्म का रूप कहा जा सकता है। अतः मन्त्रों को देवता के साथ अभिन्न मानकर उन्हें देवतास्वरूप प्रस्तुत किया गया हो तो अनुपपन्न भी नहीं है। सारांश यह कि श्रीविद्या अपने मूल स्वरूप में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी से अभिन्न है और इस प्रकार 'पञ्चदशाक्षरी' (श्रीविद्या-मन्त्र) एवं 'भगवती महात्रिपुरसुन्दरी' दोनों में मूलतः ऐकात्म्य है।

प्रत्येक देवता का मन्त्र अपने देवता से अभिन्न होता है। इसीलिये कहा भी गया है— 'मन्त्राधीनाश्च देवताः।'

त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में ही श्रीविद्या के लिये 'त्रिपुरा विद्या' (द्वि० उप०), 'विद्या' (प्र० उ०), 'महाविद्येश्वरी विद्या, सर्वरक्षाकरी विद्या, शक्तिशिवरूपिणी विद्या, त्रिपुर-वासिनी विद्या, त्रिपुरेश्वरी विद्या' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या— आचार्य भास्कर राय का कथन है कि गायत्री के जो दो रूप हैं, उनका स्वरूप इस प्रकार है—

गायत्री मन्त्र

प्रथम रूप	द्वितीय रूप
१. तत्सवितुर्वरेण्यम्	परोजसे सावदोम्[1]
२. भर्गो देवस्य धीमहि	(चतुर्थ चरण)
३. धियो यो नः प्रचोदयात्	(अस्पष्ट गायत्री)
(चरणत्रय) (स्पष्ट गायत्री)	(श्रीविद्या)

त्रिपुरामहामनु— तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् परो रजसेऽसावदोम्।।[2]

भास्करराय कहते हैं कि गायत्री के प्रथम तीन (प्राथमिक) चरण 'स्पष्ट गायत्री' के बोधक हैं— 'चरणत्रयं तत्सवितुरित्यादि स्पष्टम्।' चतुर्थ चरण 'परोजसे सावदोम्' 'अस्पष्ट गायत्री' का बोधक है और यह द्वितीय रूप ही 'श्रीविद्या' है— 'परं श्रीविद्याख्यं द्वितीयं रूपम्।'[3]

श्रीविद्या का महत्त्व— श्रीविद्या की व्यावर्तक विशेषतायें एवं उसका महत्त्व इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है—

१. वेदमाता गायत्री का भी सार श्रीविद्या है।

२. श्रीविद्या वैदिक मन्त्र है और वैदिक काल से चला आ रहा है।

---

१. त्रिपुरातापिन्युपनिषद्
२. त्रिपुरातापिन्युपनिषद्
३. वरिवस्यारहस्यम् (प्रथम अंश)

३. यह महात्रिपुरसुन्दरी का अपना ही मन्त्रात्मक या अक्षरात्मक स्वरूप है अर्थात् यह भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की अक्षरात्मक या मन्त्रात्मक स्वात्माभिव्यक्ति है।

४. श्रीविद्या के १५ अक्षरों की पृथक्-पृथक् अधिष्ठात्री देवियाँ हैं; अतः इसका प्रत्येक अक्षर शक्तिरूप है एवं समष्टिरूप में यह विद्या महात्रिपुरसुन्दरीस्वरूपा है।

५. समस्त विद्याओं में श्रीविद्या ही श्रेष्ठतमा है—

श्रीविद्यैव तु मन्त्राणां तत्र कादिर्यथा परा।

६. श्रीविद्या का विकास ही (दश महाविद्याओं की शेष) नौ विद्याओं में हुआ है । दश महाविद्यायें 'श्रीविद्या' का ही स्वविस्तार हैं।

दश महाविद्याओं में तृतीय 'महाविद्या' श्रीविद्या 'षोडशी' है, किन्तु इन दशों विद्याओं में भी प्रमुख विद्यायें तीन हैं— काली, तारा एवं षोडशी। इन तीनों विद्याओं में भी श्रेष्ठतर विद्या है— 'श्रीविद्या।' यही श्रीविद्या उक्त तीनों महाविद्याओं का मूल है। दश महाविद्याओं में (षोडशी को छोड़कर) शेष नौ महाविद्याओं का मूल भी यही है। (ग्रन्थ-गौरव-भय से इसे विस्तार से यहाँ नहीं समझाया जा रहा है।)

६. श्रीविद्योपासना भोग-मोक्ष दोनों प्रदान करती है। जहाँ भोग होता है, वहाँ मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती तथा जहाँ मोक्ष की प्राप्ति होती है वहाँ भोग की प्राप्ति नहीं होती; किन्तु भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना से दोनों फलों की एक साथ ही प्राप्ति होती है—

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।।

देव्युपनिषद् में भी कहा गया है कि यह 'श्रीमहाविद्या' भोग-मोक्ष दोनों प्रदान करती है—

तापापहारिणीं देवी भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्।
अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम्।।१९।।

७. भगवती त्रिपुरा की उपासना किसी अन्य देवता की उपासना नहीं है; बल्कि अपनी आत्मा की ही उपासना है; क्योंकि भगवती ललिता स्वात्मदेवता हैं—

स्वात्मैव ललिता प्रोक्ता मनोज्ञा विश्वविग्रहा।

प्रपञ्चसारतन्त्र की दृष्टि—

अथ प्रवक्ष्यामि सुदुर्लभाप्तिं विद्यां विशिष्टां त्रिपुराभिधानाम्।
या सा त्रिभेदाऽपि जगत्यवाप्तत्रिंशत्प्रकारा त्रिदशाभिवन्द्या।।१।।

त्रिमूर्तिसर्गाच्च पुराभवत्वात्त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्याः।
लये त्रिलोक्या अपि पूरणत्वात्प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम।।२।।

व्योमेन्दुवह्न्यधरबिन्दुभिरेकमन्यद्रक्ताच्छकेन्द्रशिखिभिः सरमार्धचन्द्रैः।
अन्यद्द्युशीतकरपावकमन्वमत्तैर्बीजैरमीभिरुदिता त्रिपुरेति विद्या।।३।।

आचार्य शंकर प्रपञ्चसारतन्त्र के नवम पटल में कहते हैं—

क. त्रिपुरा नाम वाली विशिष्ट विद्या प्राप्त कर पाना अत्यन्त दुर्लभ है।

ख. यह त्रिदशाभिवन्द्य (देव-नमस्कार्य) है, त्रिभेदात्मिका एवं त्रिंशत्प्रकारा (३० भेद वाली) है।

ग. पद्मपाद 'प्रपञ्चसारविवरण' में कहते हैं कि 'त्रैपुर मन्त्र' क्रियाप्रधान है।

घ. बीजत्रय की दृष्टि से इसके तीन भेद हैं, किन्तु तद्गत बीज एवं बिन्दु आदि की दृष्टि से इसके तीस भेद हैं। पारायणभेद से इसके अनन्त भेद हैं। कादि-हान्ताक्षरादिक की दृष्टि से इसके तीन सौ (३००) भेद हैं।

श्रीविद्या भगवती त्रिपुरसुन्दरी से पृथक् नहीं है और न ही विश्व से पृथक् है।

श्रीविद्या एवं जगत् में तादात्म्य— जगत् पञ्चभूतात्मक है और 'श्रीविद्या' भी पञ्चभूतात्मिका है। योगिनीहृदय में कहा गया है—

पञ्चभूतमयं विश्वं तन्मयी सा सदानघे।
तन्मयी मूलविद्या च तदद्य कथयामि ते।। (मन्त्रसंकेत-२८)

क्योंकि श्रीविद्या में स्थित वर्ण पञ्चभूतात्मक हैं—

हकराद् व्योमसम्भूतं ककारात्तु प्रभञ्जनः।
रेफादग्निः सकाराच्च जलतत्त्वस्य सम्भवः।। (मन्त्रसंकेत-२९)
लकारात्पृथिवी जाता तस्माद्विश्वमयी च सा।। (मन्त्रसंकेत-३०)

निष्कर्षतः 'श्रीविद्या' विश्वमयी है।

अष्टादश अध्याय

श्रीविद्या का स्वरूप

आचार्य भास्कर राय ने वरिवस्यारहस्यम् में कहा है कि गायत्री मन्त्र ही 'पञ्चदशाक्षरी' (पञ्चदशी) विद्या है।

आचार्य भास्कर श्रीविद्या के परिचय में प्रथमतः 'विमर्श शक्ति' की जगद्रूपता का प्रतिपादन करते हुये कहते हैं कि जगत् विमर्श शक्ति का ही परिणाम है और भगवती का विश्वात्मक परिणमन चार रूपों में होता है— अर्थमयी सृष्टि, शब्दमयी सृष्टि, चक्रमयी सृष्टि और देहमयी सृष्टि। इस चतुर्धा विभक्त सृष्टि के मूल में (उपादान कारण बन कर) वही 'विमर्श शक्ति' स्थित है, जो कि 'विश्वाकारेण विश्वप्रकाशेन विश्वसंहारेण अकृत्रिमाहम् इति विस्फुरणम्' स्वरूप में अवस्थित है।[१]

विमर्श शक्ति और श्रीविद्या— आचार्य भास्कर कहते हैं कि यदि ३६ मूल तत्त्वों एवं षट्त्रिंशदात्मक जगत् को तत्त्वतः जानना हो तो उसके मूलाधार परमतत्त्व शक्तितत्त्व को भी जानना आवश्यक होगा; क्योंकि जगत् का शब्दात्मक, चक्रात्मक, अर्थात्मक एवं देहात्मक समस्त विस्तार भगवती 'विमर्श शक्ति' का अपना अविकृत परिणमनमात्र ही है—

सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा।
अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टिः।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.५)

गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या का तादात्म्य— आचार्य भास्कर कहते हैं कि उस 'विमर्शशक्ति' के ज्ञान के लिये यद्यपि १४ विद्यायें हैं, किन्तु इन १४ विद्याओं में जो सारगर्भित विद्या है, वह तो मात्र वेद (श्रुतियाँ) ही है और श्रुतियों में भी जो सारभूत विद्या है, वह 'गायत्री' है—

तज्ज्ञानार्थमुपाया विद्या लोके चतुर्दश प्रोक्ताः।
तेष्वपि च सारभूता वेदास्तत्रापि गायत्री।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.६)

वेद की सारभूत विद्या— 'गायत्री' के निम्न तीन रूप हैं—

क. अस्पष्ट एवं परम (अत्यन्त) गोपनीय।

ख. कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या।।

इस ऋचा के द्वारा संकेतित अप्रकट गायत्री विद्या।

---

१. वरिवस्यारहस्यम्।

ग. तीसरा रूप है— सांकेतिक शब्दों से व्यवहृत एवं अप्रकट विद्या। यही 'श्रीविद्या' है, जिसे वेद भी निम्न ऋचा द्वारा सांकेतिक (प्रतीकात्मक) शब्दों के द्वारा अप्रकट शब्दों में ही व्यक्त करने का प्रयास करता है—

कामो योनिः कमलेत्येवं साङ्केतिकैः शब्दैः।
व्यवहरति न तु प्रकटं यां विद्यां वेदपुरुषोऽपि।।
(वरिवस्यारहस्यम्-१.८)

श्रीविद्या के इस अवतरण को रेखात्मक रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

गायत्री और श्रीविद्या

गायत्री एवं पञ्चदशी मन्त्र में अभिन्नता, एकरूपता एवं तादात्म्यता का प्रतिपादन वरिवस्यारहस्यम् के बहुत पूर्व स्वयं श्रुति (त्रिपुरतापिन्युपनिषद्) में ही किया जा चुका है; यथा—

१. भर्गो देवस्य धीमहीत्येवं व्याख्यास्यामः। धकारो धारणा। धियैव धार्यते भगवान् परमेश्वरः। भर्गो देवो मध्यवर्ति तुरीयमक्षरं साक्षात्तुरीयं सर्वं सर्वान्तरभूतं तुरीयाक्षरमीकारं पदानां मध्यवर्तीत्येवं व्याख्यातं भर्गोरूपं व्याचक्षते। तस्माद्भर्गो देवस्य धीत्येवमीकाराक्षरं गृह्यते।।१२।।

२. सवितुर्वरेण्यमिति षूङ् प्राणिप्रसवे सविता प्राणिनः सूते प्रसूते शक्तिः सूते। त्रिपुरा शक्तिराद्येयं त्रिपुरा परमेश्वरी।

३. त्रिकोणशक्तिरेकारेण महाभागेन प्रसूते। तस्मादेकार एव गृह्यते।

४. वरेण्यं श्रेष्ठं भजनीयमक्षरं नमस्कार्यम्। तस्माद्वरेण्यमेकाराक्षरं गृह्यत य एवं वेद ।

'पञ्चदशी विद्या' के तीनों कूटों (वाग्भव कूट, कामराज कूट एवं शक्तिकूट) का

गायत्री मन्त्र के साथ समन्वय करते हुये त्रिपुरतापनीयोपनिषद् में इन तीनों की गायत्री मन्त्र के साथ अभेदात्मकता स्थापित की गई है। त्रिपुरतापनीयोपनिषद् में सर्वप्रथम पञ्चदशी के 'वाग्भव कूट' एवं 'गायत्री मन्त्र' में समन्वय स्थापित किया गया है और कहा गया है कि 'परं गह्वरं व्याख्यास्याम:' अर्थात् परम गूढ़ार्थ की व्याख्या करूँगा। वह परम गूढ़ार्थ क्या है? महामन्त्र गायत्री के प्रथमाक्षर 'तत्' एवं 'पञ्चदशी विद्या' के आद्यक्षर 'क' (प्रथम खण्ड वाग्भव कूट के प्रथमाक्षर 'क') के अर्थों में एकता है— यही रहस्य है, गूढार्थ है। 'क' एवं 'तत्' ब्रह्म का सूचक है। वह निर्लक्षण, निरुपाधि, निरञ्जन परब्रह्म मूलाविद्याबीजांश के योग से ईश्वर बन कर 'स ईक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति' के माध्यम से उन्मीलित होता है, दृश्यत्वेन जगद्रूप में भासित होता है— 'देव उन्मीलते पश्यति विकासते चैतन्यभावं काम-यत इति स एको देव: शिवरूपी दृश्यत्वेन विकासते यतिषु यज्ञेषु योगिषु कामयते कामं जायते।'

निष्कर्षत: गायत्री मन्त्र और पञ्चदशी विद्या में एकात्मता है।

एकोनविंश अध्याय

श्रीविद्या के विभिन्न अंग

आचार्य भास्कर राय ने श्रीविद्या के दो अंग स्वीकार किये हैं— आन्तरिक एवं बाह्य। इनका सम्पूर्ण विवरण निम्नांकित है—

बाह्य अंग

ऋषि छन्द देवता विनियोग बीज शक्ति कीलक न्यास ध्यान नियम पूजा

आन्तरिक अंग

श्रीविद्या-वर्ण-संख्या उद्धार मात्रा उच्चारण स्थान प्रयत्न रूप विभिन्न स्थितियाँ अर्थ

विद्यावर्णेयतोद्धारः कालस्तदुच्चारः।
उत्पत्तिस्थानं तद्यत्नो रूपं स्थितिस्थानम्।। (२.१५९)

आकारः स्वं रूपं विभाव्यमर्थोऽन्तराङ्गाणि।
ऋषयश्छन्दोदैवतविनियोगा बीजशक्तिकीलानि।। (२.१६०)

न्यासा ध्यानं नियमाः पूजादीनि बहिरङ्गाणि।
बाह्यान्यङ्गानि पुनः प्रायो लोके प्रसिद्धकल्पानि।। (२.१७१)

दुर्लभमान्तरमङ्गं प्रायोऽन्तर्मुखजनैस्तदादृत्यम्।
तोषायैषा तेषामतः प्रदिष्टा रहस्यवरिवस्या।। (२.१६२)

बाह्याडम्बरजन्य अंग (साधन) एवं उपासना—

क. अन्तरंग— एतामुत्सृज्य जडैः क्रियमाणा बाह्याडम्बरोपास्तिः।
प्राणविहिनेव तनुर्विगलितसूत्रेव पुत्तलिका।। (२.१६३)

१. विद्यावर्णों की इयत्ता (संख्या)— श्रीविद्या (पञ्चदशी विद्या) में ५८ वर्ण हैं— प्रथम कूट में १८ वर्ण, द्वितीय कूट में २२ वर्ण एवं अन्तिम कूट में १८ वर्ण।

२. उद्धार— क्रोधीशः श्रीकण्ठारूढः कोणत्रयं लक्ष्मीः।
मांसमनुत्तररूढं वाग्भवकूटं प्रकीर्तितं प्रथमम्।।९।।

शिवहंसब्रह्मवियच्छक्राः प्रत्येकमक्षरारूढाः।
द्वितीयकं कथितं तत् कामराजाख्यम्।।१०।।

शिवतो वियतो मुक्तं तृतीयमिदमेव शक्तिकूटाख्यम्।
हल्लेखानां त्रितयं कूटत्रितयेऽपि योज्यमन्ते स्यात्।।

(श्रीकण्ठ = अ। क्रोधीश = क। कोणत्रययोनि = त्रिभुजात्मक ए। लक्ष्मी = ई।

अनुत्तर = अ। मांस = ल। शिव = ह्। हंस = स्। ब्रह्मा = क। वियत् = ह्। शक्र = ल्। अक्षर = अ। शिव = ह। वियत् = ह। हल्लेखा = ह्रीं।)

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या।।

(कामो + मातरिश्वा = 'ककार'। योनि = 'एकार'। कमला = 'ई'। तुरीय स्वर। वज्रपाणि = 'ल'। गुहाद्वय— माया + लज्जाबीज = 'हसेति सकलेति च स्वरूपम्। सकारो दीर्घः। एवं लकारोऽपि।' अभ्र = हकार।— 'एतादृशैः साङ्केतिकैः शब्दैर्व्यवहारादत्यन्त-गोपनीयत्वं समर्थितं भवति।'— शाङ्खायन श्रुति)।

३. काल— विद्या के अक्षरों का उच्चारण काल। 'कालस्त्रिलवोनैकत्रिंशन्मात्रात्मको विद्यायाः' अर्थात् (३१ मात्राओं में) ३ लव कम ३१ मात्राओं का काल ही 'श्रीविद्या' के मन्त्र का उच्चारणकाल है। उच्चारण— 'एकलवोनाः ऊनत्रिंशन्मात्रा उच्चारणस्य।' उच्चारण की मात्रा १ लव कम ३० मात्रा।। यही है— श्रीविद्या के वर्णों का उच्चारण।

४. उत्पत्तिस्थान— कण्ठ, कण्ठ-तालु आदि मुखस्थान।

५. यत्न— बाह्य यत्न एवं आन्तर यत्न ही 'यत्न' है।

६. रूप— प्रलयाग्निनिभं प्रथमं मूलाधारादनाहतं स्पृशति।
तस्मादाज्ञाचक्रं द्वितीयकूटं तु कोटिसूर्याभम्।।
तस्माल्ललाटमध्यं तार्तीयं कोटिचन्द्राभम्।
मालामणिवद्वर्णाः क्रमेण भाव्या उपर्युपरि।।

व्यष्टि-समष्टिभेद से स्वरूप।

७. स्थान— 'मूलाधार' से प्रारम्भ करके, 'अनाहत' से प्रारम्भ करके एवं 'आज्ञाचक्र' से प्रारम्भ करके— ये ३ स्थान (चक्रों के स्थान) बिन्द्वादिरहित कूटत्रय के हैं।

'सुषुम्णा' नामक नाडीमूलाग्र में २ 'सहस्रदल कमल' हैं। मध्य में ८ दलों वाले, ६ दलों वाले ३० कमलों का 'स्वच्छन्दसंग्रह' में सविस्तार वर्णन किया गया है। वहाँ गुदा से दो अंगुल ऊपर लिंग, नाभि, हृदय, कण्ठ, भ्रूमध्य में अर्थात् मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञानामक ४, ६, १०, १२, १६, २ दल एवं दो-दो ग्रन्थियों के मध्य संदष्ट 'चक्र'पदवाच्य अन्य ६ पद्म हैं।

८. अर्थ— गायत्री के कौलिकार्थ, महातत्त्वार्थ, रहस्यार्थ आदि १५ अर्थ हैं। ये अन्तरंग उपासकों के लिए अत्यावश्यक हैं— 'इमान्यन्तरङ्गत्वादुपासकानामत्यावश्यकानि' (भास्कर)।

ख. बहिरंग—

१. ऋषि— हयग्रीव, अगस्त्य आदि ऋषि।

२. **छन्द**— पंक्त्यादिक छन्द।

३. **दैवत**— भगवती त्रिपुरसुन्दरी।

४. **विनियोग**— इष्टार्थजनकत्व।

५. **बीज**— वाग्भव आदि।

६. **शक्ति**— परा आदि शक्तियाँ।

७. **कीलक**— कामराज आदि।

८. **न्यास**— ऋष्यादि न्यासजाल।

९. **ध्यान**— 'अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीम्' आदि।

१०. **नियम**— पुण्ड्र-इक्षु-दण्ड-भक्षण-वर्जन-संकल्पादिक।

११. **पूजा**— पात्र-आसन आदि शान्तिस्तवान्त पूजोपकरण, जो कि नित्यादिभेद से त्रिविधात्मक हैं, परादिभेद से त्रिविधात्मक हैं तथा केवलादिभेद से पञ्चविध हैं।

आदिना = होम-तर्पण आदि परिग्रह। ये बहिरंग होने पर भी आवश्यक हैं—'इमान्यन्तरङ्गत्वादुपासकानामत्यावश्यिकानि। एतानि बहिरङ्गत्वेनावश्यिकानि।'

अन्तरंग एवं बहिरंग साधनों या अंगों में वरीयताक्रम—

दुर्लभमान्तरमङ्गं प्रायो अन्तर्मुखजनैस्तदादृत्यम्।
तोषायैषा तेषामतः प्रदिष्टा रहस्यवरिवस्या।।

आन्तरिक अंग प्रायः दुर्लभ हैं। इनका अन्तर्मुखी उपासकों द्वारा समादर किया जाता है। उन्हीं की तुष्टि हेतु इस रहस्यवरिवस्या का प्रतिपादन किया गया है।

इनका त्याग करके जड़ लोगों के द्वारा जो बाह्याडम्बरों की उपासना की जाती है, वह प्राणहीन शरीर या सूत्रहीन पुत्तलिका की भाँति अग्राह्य एवं त्याज्य है।

कामकलाबीज से मूल मन्त्र का विकास होता है। मूल मन्त्र से शरीर के आन्तरिक एवं बाह्य विस्तार होते हैं। यद्यपि इन दोनों में साम्य है, तथापि अन्तरंग का प्राधान्य है—

बीजान्मूलं मूलात् क्षेत्रस्यान्तःस्थबाह्यविस्तारौ।
यद्यप्यनयोः साम्यं प्राधान्यमथापि चान्तराङ्गस्य।। (२.१६४)

('बीज' = धान्यादिक बीज के समान कामकलारूपात्मक बीज। 'मूलं' = वृक्षपाद (मन्त्र)। 'क्षेत्र' = शरीर (केदार)। दोनों में साम्य है, तथापि 'अन्तरङ्गनाशे बाह्याङ्गसहितवृक्षनाशः, बाह्याङ्गमात्रनाशेन वृक्षस्य न वान्तरङ्गस्य नाशः' (भास्कर)।

गुरुतत्त्व— सद्गुरु (पक्षान्तर में श्वसुर) के कुल से उसकी कृपा से प्राप्त यह विद्या समस्त कामनाओं की पूर्णता उत्पन्न करती है। विना गुरुकृपा के अपनी बुद्धिमात्र से उत्पन्न होने पर यह विद्या अपनी कन्या की भाँति पाप उत्पन्न करती है—

सद्गुरुकुलतः कृपया लब्धा कामानियं सूते।
निजबुद्धिमात्रजन्या पापं कन्या यथा स्वीया।। (भास्कर-२.१६५)

पारम्पर्यविहीना ये ज्ञानमात्रेण गर्विता:।
तेषां समयलोपेन विकुर्वन्ति मरीचय:।।

अन्त में भास्कर कहते हैं कि 'अकथ' आसन पर स्थित 'हलक्ष' त्रिभुज के कोणों पर वर्तमान मेरे ही आनन्द को मुझे देने वाले मेरे गुरुचरणों की नित्य जय हो—

अकथासनं हलक्षान्तरं समासाद्य मामकं ज्ञानम्।
मामकमेवानन्दं मह्यं ददतो जयन्ति गुरुचरणा:।।

(भास्कर-२.१६६)

श्रीविद्या एवं श्रीविद्योपासना के अंग— यद्यपि भास्कर राय ने वरिवस्यारहस्यम् के द्वितीय अंश में आन्तरिक एवं बाह्य अंगों का प्रस्तुतीकरण करते हुये यह सुस्पष्ट नहीं किया है कि ये (आन्तरिक एवं बाह्य अंग) श्रीविद्या के हैं या कि श्रीविद्या की उपासना के; तथापि उन्होंने अन्तरंगों के विवेचन में आन्तरिक अंगों को 'रहस्यवरिवस्या' कहा है—'तोषायैषा तेषामत: प्रदिष्टा रहस्यवरिवस्या' (२.१६२)। स्पष्ट है कि वे इन्हें 'श्रीविद्योपासना का ही अंग' मान कर चले हैं, किन्तु प्रश्न उठता है कि वे आन्तरिक अंगों को वरिवस्यारहस्यम् के प्रथम अंश में (श्रीविद्योपासना के अंग के रूप में नहीं; प्रत्युत) 'श्रीविद्या' (पञ्चदशी मन्त्र) के अंग के रूप में प्रस्तुत कर चुके हैं। श्लोक ७ में वे कह रहे हैं कि मैं अत्यन्त गोपनीय गायत्री— 'श्रीविद्या' के स्वरूप के विषय में प्रकाश ड़ाल रहा हूँ और 'वेदेषु चतुर्ष्वपि परमत्यन्तं गोपनीयतरम्'— ऐसा कहकर श्रीविद्या (पञ्चदशी मन्त्र) के उद्धार, उनके काल, उच्चारण, मात्रा, यत्न, वर्णसंख्या, उत्पत्तिस्थान आदि का वर्णन करने लगते हैं और 'प्रकाश' में स्पष्टत: कहते हैं— 'विद्यास्वरूपस्य काल:' अर्थात् श्रीविद्या के उच्चारण में इतने काल का प्रयोग होता है; अत: अन्तरंग उपासनांग नहीं, बल्कि श्रीविद्या के अंग ही सिद्ध होते हैं। अंग अंगी के निर्माणक तत्त्व होते हैं, उनके विना अंगी निर्मित ही नहीं हो सकता। अन्तरंग वे ही अंग हैं, किन्तु भास्कर राय ने जिन्हें बहिरंग कहा है, वे श्रीविद्या के निर्माणक स्वांगभूत अवयव नहीं हैं, क्योंकि उनके न रहने पर भी श्रीविद्या का निर्माण हो जाता है। वे श्रीविद्या की उपासना के अंग अवश्य कहे जा सकते हैं, किन्तु श्री भास्कर राय ने उन्हें गौण अंग माना है और अन्तरंग को प्रधान माना है— 'यद्यप्यनयो: साम्यं प्राधान्यमथापि चान्तरङ्गस्य' (१६४)।

इस विरोधाभास का कारण क्या है? इस समस्या का समाधान क्या है? शायद भास्कर राय यह कहना चाहते हैं कि बाह्यांगों को उपासना का मेरुदण्ड मानकर जो उपासना की जाती है, वह यथार्थ उपासना नहीं है; क्योंकि ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग, बीज, शक्ति, कीलक, न्यास, ध्यान, नियम एवं पूजा आदि बाह्यांगों को उपासना में सम्मिलित कर लेने पर भी यदि अन्तरंग (विद्या के वर्ण, उनकी संख्या, उद्धार, काल, उच्चारण, स्थान, प्रयत्न, रूप, विभिन्न स्थितियाँ, आकार एवं विभिन्न अर्थ) को सम्मिलित नहीं किया गया तो वह उपासना यथार्थ उपासना नहीं होगी; साथ

ही उपासना में बाह्यांगों का उतना महत्त्व नहीं होता, जितना कि अन्तरंग साधनों के ज्ञान एवं उनके स्वरूप पर ध्यान देकर उपासना में उनके उपयोग का महत्त्व होता है। वे आगे 'बाह्याडम्बरोपास्ति' की भी बात करते हैं और उसे प्राणहीन एवं सूत्रहीन कठपुतली मानते हैं, किन्तु वे बाह्याडम्बर किसे मानते हैं— इसका उन्होंने कोई उदाहरण नहीं दिया है। वे आन्तरिक अंग को दुर्लभ मानकर उसी के प्रयोजनार्थ 'रहस्यवरिवस्या' को प्रतिपादित करना अपना मुख्य लक्ष्य घोषित करते हैं— 'प्रदिष्टा रहस्यवरिवस्या' (२.१६१)।

आन्तरिक साधनों की श्रेष्ठता— श्रीविद्या के आन्तरिक अंग ही श्रेष्ठतर और दुर्लभ हैं, कहा भी है—

दुर्लभमान्तरमङ्गं प्रायोऽन्तर्मुखजनैस्तदादृत्यम्।

अन्तरंग साधनों का आत्मीकरण अन्तर्मुखी साधकों द्वारा बडे आदर के साथ किया गया है। आचार्य भास्कर राय का कथन है कि उन्हीं की तुष्टि के लिए 'वरिवस्यारहस्यम्' प्रदिष्ट हुई है।

बाह्याडम्बरों का खण्डन— श्रीविद्या की उपासना के मुख्य साधनांग आन्तरिक अंग हैं और इसमें प्रयुक्त बाह्याडम्बरोपासना प्राणहीन, शरीर एवं सूत्रहीन पुतली की भाँति है, जो कि निरर्थक है—

एतामुत्सृज्य जडैः क्रियमाणा बाह्याडम्बरोपास्तिः।
प्राणविहीनेव तनुर्विगलितसूत्रेव पुत्तलिका।।
(वरिवस्यारहस्यम्-२.१६३)

१. अन्तर्मुखी साधकों की साधना (मुख्य साधना)— यह साधना श्रीविद्या के आन्तरिक अंगों की साधना है—

दुर्लभमान्तरमङ्गं प्रायोऽन्तर्मुखजनैस्तदादृत्यम्।
तोषायैषा तेषामतः प्रदिष्टा रहस्यवरिवस्या।।

२. जड़ लोगों की साधना— बाह्याडम्बरोपासना = हेय साधना—

एतामुत्सृज्य जडैः क्रियमाणा बाह्याडम्बरोपास्तिः।

कामकला एवं मन्त्र (मन्त्रोत्पत्ति)— जिस प्रकार धान्य या बीज से वृक्ष उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार कामकलाबीज से मन्त्रों की उत्पत्ति होती है— 'बीजान्मूलं मूलात्' (वरिवस्यारहस्यम्-२.१६४)।

'बीजात् कामकलारूपाद्धान्यादिरूपाच्च मूलं वृक्षपादो मन्त्रश्च।' (प्रकाश)।

बाह्यांगों की विवेचना— 'ऋषि' = हयग्रीव, अगस्त्य आदि। 'छन्द' = पंक्त्यादिक। 'देवता' = त्रिपुरसुन्दरी। 'विनियोग' = इष्टार्थजनकत्व। 'बीज' = वाग्भव आदि। 'शक्ति' = परा आदि। 'कीलक' = कामराज आदि। 'न्यास' = ऋष्यादिन्यास। 'ध्यान' = अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीम् आदि। 'नियम' = पुण्ड्रेक्षुदण्डभक्षणवर्जनसंकल्पादि। 'पूजा' = पात्रासन

आदि शान्तिस्तवान्त त्रिविध— नित्यादिभेद से त्रिविध, परादिभेद से त्रिविध एवं केवलादिभेद से पञ्चविध। 'आदि' = होम-तर्पणादि परिग्रह।

ये सभी बहिरंग होने के कारण तदात्मक साधना के लिए उपयोगी होने से आवश्यक हैं— 'एतानि बहिरङ्गत्वेनावश्यकानि' (वरिवस्यारहस्यम्)।

मातृका और श्रीविद्या— श्रीविद्या का मेरुदण्ड तो मातृका ही है। मातृका श्रीविद्या के प्रत्येक वर्णों को भी कहा गया है। भास्कर राय कहते हैं—

यावन्मातृकमुदितान्येकसमेतानि पञ्चाशत्।
पीठानि पुनर्गणितान्येजापूकानि चत्वारि।। (२.९७)

'मातृका' निरपेक्ष एवं सर्वकर्त्री होने के कारण स्वतन्त्र है। यह अलुप्ता, क्रियाशक्तिरूपा, वर्णरूपा, स्फोटादिध्वनिनिरूपिणी, क्रियाशक्तिमहेश्वरी, सर्ववाङ्मयरूपिणी, अशुद्ध विश्वों की जननी, मन्त्ररूपा, 'अ' से 'क्ष' पर्यन्त ५० वर्णभट्टारकों के रूप में रूपायित, अज्ञात माता, मातृका कहलाने वाली, परमा, परमेश्वरी एवं घोष, राव, स्वन, शब्द, स्फोट, ध्वनि, झांकार एवं ध्वंकृति के आठ प्रकार के शब्दों में व्याप्त एवं शुद्धाशुद्ध दोनों संसारों की प्रसवित्री एवं अक्रमा-सक्रमा उभयरूपा है—

यदा स्वतन्त्रा लुप्ता सा क्रियाकरणरूपिणी।।
वर्णरूपाष्टभेदेन स्फोटादिध्वनिरूपिणी।
मातृका सा विनिर्दिष्टा क्रियाशक्तिर्महेश्वरी।

'मातृका शक्ति' ज्ञान के पर एवं अपर दोनों रूपों का आधार है। 'पर स्वरूप' अभेद-प्रथात्मक है और 'अपर स्वरूप' भेदप्रथात्मक ज्ञान है। 'पुरुष' और 'पशु' में अन्तर यह है कि—

अकारादि-क्षकारान्त शब्दसमूह से उद्भूत ब्राह्मी आदि शक्तियाँ पुरुषों का उपभोग करती हैं और परिणामत: पुरुष इन शक्तियों की ककार आदि कलाओं द्वारा स्वस्वभाव (स्वातन्त्र्य के वैभव) से स्खलित हो जाता है, उसका स्वस्वभाव विलुप्त हो जाता है और 'पशु' कहलाने लगता है।

पुरुष का स्वस्वरूप 'परामृत रस' है। इसी स्वस्वरूप से च्युत होने पर वह अपनी स्वतन्त्रता खोकर 'पशु' बन जाता है।

मातृका शक्ति वर्णात्मिका, शक्तिपुञ्ज, शिवमयी तथा ज्ञात होने पर मुक्तिदा एवं अज्ञात होने पर बन्धनप्रदा होती है।

स्पन्दकारिका की दृष्टि— स्पन्दकारिका उपर्युक्त भावों को ही इन वाक्यों द्वारा प्रस्तुत करती है—

शब्दराशिसमुत्थस्य शक्तिवर्गस्य भोग्यताम्।
कलाविलुप्तविभवो गत: सन् स पशु: स्मृत:।।४५।।

परामृतरसापायः तस्य यः प्रत्ययोद्भवः।
तेनास्वतन्त्रतामेति स च तन्मात्रगोचरः।।

स्वरूपावरणे चास्य शक्तयः सततोत्थिताः।
यतः शब्दानुवेधेन न विना प्रत्ययोद्भवः।।

सेयं क्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य पशुवर्तिनी।
बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका।।

दुर्वासा की दृष्टि— स्वदेहोत्पन्न ५० अक्षरों से उद्भूत अनेक धातुओं से विश्व को व्याप्त करके चिदात्मा के रूप से 'अहं'रूपात्मिका मातृका शक्ति ही विलास कर रही है—

विश्वं व्याप्य चिदात्मनाहमहमित्युज्जृम्भसे मातृके।

वर्ण एवं शक्ति में सम्बन्ध— 'तन्त्रसद्भाव' में कहा गया है—

सर्वे वर्णात्मकाः मन्त्राः ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका।।

या सा तु मातृका देवी परतेजःसमन्विता।
तया व्याप्तमिदं विश्वं सब्रह्मभुवनान्तकम्।।

परा वाक्, मातृका, पराहन्ता, विमर्श एवं ललिताभट्टारिका— स्फुरण से अन्वित, सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, ज्ञानरूप प्रकाश (ब्रह्म) का आनन्दांश ही 'पराहन्ता, विमर्श, परा ललिताभट्टारिका' है। शब्दसृष्टि के सूक्ष्म रूप को धारण करने वाली त्रिपुरसुन्दरी ही परा वाक् है। वरिवस्यारहस्यम् में कहा भी गया है—

'स्फुरणान्वयि ज्ञानमेव प्रकाशाभिधं ब्रह्म। तच्च सर्वज्ञत्व-सर्वेश्वरत्व-सर्वकर्तृत्व-पूर्णत्व-व्यापकत्वादिशक्तिसंवलितम्। तस्य चानन्दरूपांश एव स्फुरणं पराहन्ता-विमर्श-परालिता-भट्टारिका त्रिपुरसुन्दरी।'

शक्ति एवं वर्ण

मातृका

१. मात्रिकाद्य (अ) २. मातृकान्त (क्ष)

अकारादि-क्षकारान्त वर्ण : 'शक्ति'—

कलामण्डलमास्थाय शक्तिरूपं महेश्वरि।
ककारादिक्षकारान्ता वर्णास्तु शक्तिरूपिणः।।

वर्ण शक्ति के रूप हैं।

वर्णमाला 'अक्षमाला' है।

वह मातृकात्मिका अक्षमाला है—

अकारः प्रथमं देवि ! क्षकारोन्त्यस्ततः परम्।
अक्षमालेति विख्याता मातृका वर्णरूपिणी।। (परात्रिंशिका)

मातृका

१. 'विलोम मातृका' (प्रचलित मातृका का उल्टा (विपरीत) रूप ही विलोम मातृका है।)

२. 'अन्तर्मातृका' (चक्रों में मातृका वर्णों का क्रम से (साधकों द्वारा) किया गया न्यास अन्तर्मातृका कहा जाता है।)

३. 'बहिर्मातृका' (लिपिमयी मातृका देवी। इसमें अकारादि वर्णों द्वारा देवी के अंगों का निर्माण किया जाता है।)

मातृका के भेद

स्थूला मातृका	सूक्ष्मा मातृका	सूक्ष्मतरा मातृका	(मातृका च त्रिधा स्थूला
(वैखरी वाक्)	(मध्यमा वाक्)	(परा एवं पश्यन्ती)	सूक्ष्मा सूक्ष्मतरापि च।)
(वर्णमाला)		(सुसूक्ष्म मातृका)	(मध्यमा सूक्ष्म मातृका)

'सूतसंहिता' कहता है कि ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों से अचिन्त्य रूप वाला चिन्मय एवं शिवा-भिन्न वाणी का भी एक स्वरूप है, जो कि अचिन्त्य है—

वाचामगोचराकारो मातृकायास्तथा परः।
ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानामचिन्त्यः सूक्ष्मतावधिः।
चिन्मयः परचिद्रूपः शिवाभिन्नः स एव हि।।

वाणी का यही रूप 'परा वाक्' है। 'कारणकार्यबिन्द्वात्मिका परापश्यन्तीरूपा सूक्ष्मतरा मातृकोत्तमा' (तात्पर्यदीपिका)। 'मातृका का पररूप ही परा और पश्यन्ती से परे बिन्दुनादात्मक है' (सूतसंहिता की टीका : टीकाकार-माधवाचार्य)।

'मातृका' को भगवती कहा गया है और कहा गया है कि 'भगवती मातृका' ही समस्त वाच्यावाच्यात्मक जगत् के अद्वैत के भोगानन्द को प्रदान करने वाली शब्दराशि की विमर्शिनी है। मातृका 'मन्त्रमाता' है। यही बुद्धि में स्थित होने पर 'मध्यमा वाक्' कहलाने लगती है। मन्त्र, वेद, वाणी, शक्तिप्रचय एवं ३६ तत्त्वों के रूप में यह 'मातृका परम देवी' ही प्रकट होती है। वही मुख के उच्चारणस्थानों से (वायु की सहायता से) अभिव्यक्त होने पर 'वैखरी वाक्' कहलाती है—

मन्त्राणां मातृभूता च मातृका परमेश्वरी।
बुद्धिस्था मध्यमा भूत्वा विभक्ता बहुधा भवेत्।।
सा पुनः क्रमभेदेन महामन्त्रात्मना तथा।।

मन्त्रात्मना च वेदादिशब्दाकारेण च स्वतः।
सत्येतरेण शब्देनाप्याविर्भवति सुव्रताः।।

मातृका परमा देवी स्वपदाकारभेदिता।
वैखरीरूपतामेति करणैर्विशदा स्वयम्।।

(सूतसंहिता-१८-२१)

'माधवाचार्य' ने यज्ञवैभव खण्ड में परा, पश्यन्ती से परे एवं उसकी पूर्ववर्ती अवस्था का भी प्रतिपादन किया है— 'परापश्यन्त्याद्यवस्थातः प्राक् बिन्दुनादाद्यात्मकं यन्मातृकायाः सूक्ष्मं रूपम्।'

वर्ण अमृतपुत्र—

वर्ण

मन्त्रात्मक एवं अमृतात्मक
वर्णमाला की उर्ध्वप्रक्रिया।
ॐ → ५० मातृकायें।

('द्वादशान्त' षट् चक्र, अमृत
एवं
वर्णों का पारस्परिक सम्बन्ध)

(अमृत-बिन्दुओं की वर्णों
के रूप में परिणति)
= 'वर्ण' = अमृत-बिन्दु

मूलाधारात् स्फुरिततडिदाभाप्रभासूक्ष्मरूपो-
द्गच्छन्त्यामस्तकमणुतरा तेजसां मूलभूता।
सौषुम्णाध्वाचरणनिपुणा सा सवित्रानुविद्धा
ध्याता सद्योऽमृतमथ रवेः स्रावयेत्सार्धसोमात्।।

शिरसि निपतिता या बिन्दुधारा सुधायाः।
भवति लिपिमयी सा ताभिरङ्गं मुखाद्यम्।।

(तात्पर्यदीपिका)

आशय यह कि 'न विद्या मातृकापरा' मातृका से परे और कोई विद्या है ही नहीं; मातृकाओं की उत्पत्ति तो ॐकार से हुई है।

तात्पर्यदीपिका की दृष्टि है कि 'आधारादिषट्ककमलदलेषु पातिता द्वादशान्तस्थित-चन्द्रमण्डलात्सृता अमृतबिन्दवो अकारादिक्षकारान्तवर्णात्मना परिणताः।'

वर्णों का वर्ण (रंग)

१. सम्पूर्ण वर्णों का रंग श्वेत है। (एक मत)
२. प्रत्येक वर्ण का रंग पृथक्-पृथक् है। (कामधेनुतन्त्र एवं मातृकाविवेक)
३. 'सनत्कुमारसंहिता' का मत—
   क. अकारादि स्वरों का रंग धूम्र है।
   ख. 'क' से 'ठ' पर्यन्त वर्णों का रंग सिन्दूराभ है।
   ग. लकारादि पाँच वर्ण स्वर्णाभ हैं।
   घ. 'ह' एवं 'क्ष' का रंग तडित् के समान है।
४. 'तन्त्रान्तरमत'—
   क. स्वर स्फटिकवत् हैं।
   ख. स्पर्श वर्ण विद्रुमवत् हैं।
   ग. यकारादि ९ वर्ण पीत वर्ण के हैं।
   घ. क्षकार अरुण वर्ण का है।

अकाराद्याः स्वरा धूम्राः सिन्दूराभास्तु कादयः।
ठादिफान्ता गौरवर्णा अरुणाः पञ्च वादयः।
लकाराद्याः काञ्चनाभाः हकारान्त्यौ तडिन्निभौ।।
(सनत्कुमारसंहिता)

ङ. स्फटिकाभाः स्वराः प्रोक्ताः स्पर्शा विद्रुमसन्निभाः।
यादयो नव पीताः स्युः क्षकारस्त्वरुणो मतः।।

सर्वे वर्णाः शुक्ला इत्यपि क्वचित्।

च. समस्त वर्ण अग्नीषोमात्मक हैं— 'प्रपञ्चसारतन्त्र।'

समस्त वर्णभट्टारक (वर्ण) 'मन्त्र' हैं।

छ. समस्त वर्णों के दो भेद हैं— 'योनि' अर्थात् व्यञ्जन एवं 'बीज' अर्थात् स्वर। योनिवर्ण 'शक्ति' है एवं बीजवर्ण 'शिव' है।

मन्त्र, ऋषि, छन्द, देवता तथा विनियोग

मन्त्र— 'मकार' और 'त्रकार' अक्षरों से 'मन्त्र' शब्द बना है। 'मकार' का अर्थ है— मनन एवं 'त्रकार' का अर्थ है— बुद्धि। बुद्धिपूर्वक मानसिक व्यापार या बुद्धि एवं मानस

का संयोग करते हुये दैवाराधन करना ही 'मन्त्र' है। इस प्रकार मन्त्र के दो अवयव है— मकार = मानस एवं त्रकार = बुद्धि। जहाँ मानस (हृदयतत्त्व = भगवत्प्रेम, भगवद्भक्ति) एवं त्रकार (बुद्धि = तात्त्विक ज्ञान, प्रातिभ ज्ञान, सत्त्वपुरुषान्यताख्याति, पुरुष-प्रकृति-विवेक-सम्बद्ध आत्मज्ञान, शुद्ध बौद्धिक तात्त्विक ज्ञान) का जहाँ संयोग हो अर्थात् भक्ति एवं आत्मज्ञान का जहाँ सामरस्य हो, वही 'मन्त्र' है—

मकारं मानसं प्रोक्तं त्रकारं बुद्धिलक्षणम्।
बुद्धिमानससंयोगे मन्त्र इत्यभिधीयते।।

मन्त्र और विद्या— जो मनन किये जाने पर त्राण करे, वही 'मन्त्र' है— 'मननात् त्रायते इति मन्त्रः।' पुरुष देवता— शिव, गणेश, भैरव आदि के मन्त्रों को 'मन्त्र' कहते हैं, किन्तु शक्ति (दुर्गा, काली, भैरवी आदि नारी देवताओं) को 'विद्या' कहते हैं।

माहेश्वरतन्त्र के ज्ञानखण्ड में कहा गया है कि विश्वविज्ञान का मनन एवं संसार के संकटों से त्राण जिस प्रक्रिया के द्वारा साधित हो, वही 'मन्त्र' है—

मननं विश्वविज्ञानं त्राणं संसारसङ्कटात्।
यतः करोति संसिद्धो मन्त्र इत्युच्यते प्रिये।।

मन्त्रोपासना के अनिवार्य तत्त्वों में जप, ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग, मन्त्र के संस्कार आदि विधान अत्यावश्यक हैं। मन्त्रजप के भी विभिन्न अंग हैं, जिनका विवरण निम्नांकित है—

मन्त्रजप के अंग— ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग, बीज, कीलक, अंगन्यास आदि 'न्यास' और 'ध्यान' मन्त्रजप के मुख्य अंग हैं। इन अंगों के विना मन्त्रजप निरर्थक हो जाता है। इस सम्बन्ध में विभिन्न तन्त्रों में इस प्रकार बताया गया है—

ऋषिछन्दोऽपरिज्ञानान्न मन्त्रः फलदो भवेत्।
दौर्बल्यं याति मन्त्राणां विनियोगमजानताम्।। (गौतमीय तन्त्र)

ऋषिछन्दोदेवतानां विन्यासेन विना यदि।
करोति साधको यच्च तत्सर्वं विफलं भवेत्।।
(शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः।।
(गीतारहस्योद्धृत स्मृतिशास्त्र)

जप के सप्तांग— जप के मुख्यतः सात अंग हैं और वे हैं— ऋषि, छन्द, बीज, कीलक, शक्ति, अंगन्यास और ध्यान। कहा भी गया है—

ऋषिश्छन्दश्च बीजञ्च कीलकं शक्तिरेव च।
अङ्गन्यासस्तथा ध्यानं मन्त्राङ्गानां च सप्तकम्।।

वरिवस्यारहस्यम् के अनुसार जपांग-विधान इस प्रकार है— अवस्था, शून्य, विषुवत्, चक्रों का स्मरण, मन्त्राक्षर का उच्चारण और मन्त्रार्थचिन्तन अर्थात् देवता का ध्यान। कहा भी है—

एवमवस्थाशून्यविषुवन्ति चक्राणि पञ्च षट् सप्त।
नव च मनोरर्थाश्च स्मरतोऽर्णोच्चारणं तु जपः।। (१.५२)

देवता का शक्तिव्यूहात्मक नादात्मक स्वरूप ही 'मन्त्र' है। मन्त्र चेतन संवित् तत्त्व की रश्मि है— 'मन्त्राश्चिन्मरीचयः।' जिसके मनन से साधक का त्राण होता है, वह 'मन्त्र' है— 'मननात् त्रायते यस्मात्तस्मान्मन्त्र उदाहृतः।' मन्त्र में तीन तत्त्व निहित हैं— व्याहृति (प्रणव), बीज एवं देवता।

व्याहृति या प्रणव— इसे प्रायः प्रत्येक मन्त्र के आरम्भ में लगाया जाता है। यह 'शब्दब्रह्म' है। अ + उ + म् के योग से 'ओम्' बनता है, किन्तु लिखा जाता है— 'ॐ'। योगसूत्रकार पतञ्जलि इसे परमात्मा का वाचक कहते है— 'तस्य वाचकः प्रणवः।' यह सर्वव्यापी परमात्मा की एकाक्षरी नादाभिव्यक्ति है। इसमें 'शक्तिमान' और 'शक्ति' दोनों का निवास है। अ + उ + म् के रूप में त्रिदेव भी इसमें स्थित हैं; अतः इसमें सृष्टि, स्थिति एवं संहाररूप तीनों व्यापार सन्निहित हैं। यह निर्गुण (शब्दातीत) एवं निष्कल ब्रह्म की प्रथम व्यक्त अभिव्यक्ति है। यही सृष्टि का प्रथम 'नाद' है।

ॐ के अकार + उकार + मकार शक्तियों के द्योतक हैं। 'अर्द्धमात्रा' उपनिषदों के 'शान्तं शिवमद्वैतम्' की महिमा का प्रकाशक है— 'अर्द्धेन एकांशेन मीयन्ते परिच्छिद्यन्ते अनया इति अर्द्धमात्रा' अर्थात् जिसके अर्द्ध (एकांश) में जीव जगत् विवर्तित है— 'एकांशेन स्थितं जगत्' है— वही 'अर्द्धमात्रा' है। जगत् के समस्त रहस्य, भगवान् के 'विश्वमय' एवं 'विश्वातीत' दोनों रूप— सभी प्रणव के भीतर स्थित हैं। अकार + उकार + मकार के द्वारा हम स्थूल, सूक्ष्म एवं कारणतत्त्व का भेदन करके गुणातीत, अखण्ड, अद्वय एवं तत् तत्त्व के निकट पहुँचते हैं।

यन्त्र— जहाँ यह वैश्वी, अपरिमेय एवं विराट शक्ति बीजाकार रूप में नियन्त्रित होकर स्थित है और जहाँ से यह विश्वबीज प्रकट होता है, उस मूलाधार को हम 'यन्त्र' कहते हैं।

बीज— सम्पूर्ण विराट विस्तार को अपने भीतर केन्द्रित किये हुये एवं उपबृंहीकरण की असीम एवं अचिन्त्य शक्ति को अपने गर्भ में नियन्त्रित किये हुये जो अव्यक्त कारणा-वस्था है, वही 'बीज' है; यथा— न्यग्रोध वृक्ष का बीज (या पीपल का सूक्ष्म बीज)। इसी प्रकार मन्त्रों के बीज भी हैं; यथा— 'क, यं, रं, लं, वं, शं, षं, सं, क्लीं, ह्रीं, श्रीं' आदि।

प्रणव के भीतर तो भगवान् का 'विश्वमय' एवं 'विश्वातीत' रूप स्थित है। बीजतत्त्व यह

बताता है कि हमारा यथार्थ स्वरूप क्या है? हमारा परमात्मा से क्या सम्बन्ध है? हमारे विकास की सीमायें क्या हैं? भगवान् ने हमारे जन्म का उद्देश्य क्या निर्धारित किया है? हमारे भीतर कौन-कौन-सी शक्तियाँ अव्यक्त रूप में स्थित हैं? 'मन्त्र' शक्तिसञ्चार की एक प्रणाली है। यह नाम द्वारा नामी से ऐकात्म्य प्राप्त करने की पद्धति है।

मन्त्र के दो रूप हैं— 'पशु' एवं 'पशुपति' अर्थात् 'सिद्ध' एवं 'चेतन मन्त्र'। मन्त्र का पशुरूप ही मन्त्र का वर्णात्मक रूप है—

पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवला वर्णरूपिणः।

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-१०.६५)

इसीलिए कहा गया है कि मन्त्र में अक्षरबुद्धि रखकर किया गया सम्पूर्ण तप, पूजा एवं जप व्यर्थ हो जाता है।[१]

जप के अंगभूत तत्त्व— काधेनुतन्त्र के अनुसार जप के अंगभूत तत्त्व नव हैं— देवतत्त्व, प्राणतत्त्व, बिन्दुतत्त्व, ज्ञानतत्त्व, शक्तितत्त्व, योनितत्त्व आदि। शक्तानन्दतरङ्गिणी (९.८७) में कहा भी है—

देवतत्त्वं प्राणतत्त्वं बिन्दुतत्त्वं च सुन्दरि।
ज्ञानतत्त्वं शक्तितत्त्वं योनितत्त्वं तथैव च।।
नवतत्त्वमिदं प्रोक्तं कामधेनुमतं प्रिये।।

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-९.८७)

ये तत्त्व भी न्यास की भाँति ही साधक में शक्ति-सञ्चरण के साधन हैं।

▼

---

१. मन्त्रे चाक्षरबुद्धिः स्याद्गुरौ तु मानवः प्रिये।
देवतायाः वरारोहे प्रतिमाबुद्धिस्तु जायते।
किं तस्य जपपूजायां सर्वं व्यर्थं कदर्थनम्।। (कामधेनुतन्त्र)

विंश अध्याय

श्रीविद्या का स्वरूप : गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या

गायत्री और पञ्चदशी श्रीविद्या— वरिवस्यारहस्यम् में आचार्य भास्कर राय ने कहा है कि गायत्री मन्त्र ही 'पञ्चदशाक्षरी श्रीविद्या' है। प्रकाश की जो 'विमर्श शक्ति' है, वही परिणत होकर अर्थमयी, शब्दमयी, चक्रमयी एवं देहमयी सृष्टि बन गई। समस्त सृष्टि उपर्युक्त चार स्वरूपों में व्यक्त हुई है। इस चतुर्धा सृष्टि के मूल में भगवती 'विमर्श शक्ति' विद्यमान है। परमशिवरूप 'प्रकाश' की समवायिनी, स्वाभिन्ना, स्वाभाविकी एवं स्फुरणात्मिका, जो विमर्शरूपा शक्ति है, उसी की सहायता से शिव जगत् का सृजन, परिरक्षण (पालन, स्थिति) एवं संहार करते हैं। यह शक्ति विश्वाकारेण, विश्वप्रकाशेन, विश्वसंहारेण, 'अकृत्रिमाहमिति विस्फुरणम्' के रूप में स्थित है। यदि षट्त्रिंशदात्मक समस्त जगत् को जानना हो तो उसके मूल रूप 'विमर्श शक्ति' को जानना ही पड़ेगा—

सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा।
अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टिः।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.५)

गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या में तादात्म्य— उस 'विमर्श शक्ति' के ज्ञान के लिए चौदह विद्यायें प्रधान विद्यायें हैं, किन्तु उन १४ विद्याओं में भी जो सारगर्भित विद्या है, वह है— 'श्रुति'। श्रुतियों में भी जो सारभूत विद्या है, वह है— 'गायत्री'। कहा भी है—

तज्ज्ञानार्थमुपाया विद्या लोके चतुर्दश प्रोक्ताः।
तेष्वपि च सारभूता वेदास्तत्रापि गायत्री।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.६)

इस वेद के भी सारभूत तत्त्व गायत्री विद्या के दो रूप हैं, जिनमें से एक अस्पष्ट एवं परम गोपनीय है और दूसरा है—

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहां हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या।।

के माध्यम से संकेतित एवं अप्रकट गायत्री विद्या। यही सांकेतिक शब्दों से व्यवहृत एवं अप्रकट विद्या 'श्रीविद्या' है—

कामो योनिः कमलेत्येवं साङ्केतिकैः शब्दैः।
व्यवहरति न तु प्रकटं यां विद्यां वेदपुरुषोऽपि।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.८)

त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में पहले से ही गायत्री मन्त्र एवं पञ्चदशी मन्त्र में अभिन्नता, एकरूपता एवं तादात्म्यभाव का प्रतिपादन किया गया है।

वरिवस्यारहस्यम् के द्वितीय अंश में भास्कर राय ने गायत्री के उतने ही अर्थ किये हैं, जितने कि पञ्चदशी श्रीविद्या में अक्षर (१५ अक्षर) हैं—

पञ्चदशाक्षरी श्रीविद्या एवं गायत्री

१. गायत्री मन्त्र ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो-देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।	**२. पञ्चदशी विद्या** क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, सकल ह्रीं।
गायत्री मन्त्र— 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' 'तत्' = ब्रह्म। ('ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः', 'तदिति ब्रह्म शाश्वतम्' (श्रुतिः)	'क ए ई ल ह्रीं' 'क' = ब्रह्म। 'कं ब्रह्म' (श्रुतिः)।

तत् सवितुर्वरेण्यम्— 'तत्'

व्याख्या— उक्त मन्त्रांश में सर्वप्रथम शब्द 'तत्' आया है। तत् का अर्थ है— 'वह' अर्थात् ब्रह्म।

प्रमाण— 'ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मण-स्त्रिविधः स्मृतः।' अर्थात् ॐ, तत् एवं सत्— ये तीनों 'शब्दब्रह्म' के वाचक हैं। 'तदिति ब्रह्म शाश्वतम्'

सवितुर्वरेण्यम्—

कामयते स ककारः कामो ब्रह्मैव तत्पदस्यार्थः। सवितुर्वरेण्यमिति वै सवितुः श्रेष्ठं द्वितीय-वर्णार्थः।। (वरिवस्यारहस्यम्-६०)

'सवितुर्वरेण्यम्' पदद्वयेनापि जगद्योनित्वं लब्धम्। तेन च कामेश्वरीत्यर्थः। स एव चार्थः, एकारस्य तस्य त्रिकोणत्वात्।

सविता— 'भानुर्हंसः सहस्रांशुस्तपनः सविता रविः।' (अमरकोष) के अनुसार 'सविता' सूर्य का भी वाचक है, क्योंकि वह सर्वोत्पादक है ।

(सुवति। 'षू' प्रेरणे (तु० प० से०)।

'क ए ई ल ह्रीं' (वाग्भवकूट)

व्याख्या— पञ्चदशी मन्त्र में जो कामकूट का प्रथमाक्षर है, वह है 'क'। 'क' भी ब्रह्म का ही वाचक है और इस प्रकार गायत्री का 'तत्' एवं पञ्चदशी का 'क' समानार्थक है एवं ब्रह्म का वाचक है।

प्रमाण— 'कं ब्रह्म' (श्रुतिः), 'सोऽकामयत' (श्रुतिः), 'कामयते कामी जायते स एव निरञ्जनोऽकामत्वेनोज्जृभते ····कामोऽ-भिधीयते तत्परिभाषया कामः ककारं व्याप्नोति' (श्रुतिः)।

'क' = ब्रह्म। कामेश्वर।

'तस्मादीश्वरः कामोऽभिधीयते। तत्परिभाषया कामः ककारं व्याप्नोति। काम एवेदं तत्तदिति ककारो गृह्यते। तस्मात्तत्पदार्थ इति य एवं वेद' (त्रिपुरातापिन्युपनिषद्)।

भास्कर राय— 'कामयते स ककारः कामो ब्रह्मैव तत्पदस्यार्थः।' (वरिवस्यारहस्यम्)।

'कामो योनिः कामकला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाऽभ्रमिन्द्रः। पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमाताऽऽदिविद्या।'

(त्रिपुरोपनिषद्)

तृच् (पा० सू०-३.१.१३३) यत्तुसूयते सूते। 'स्वरतिसूतिसूयति' (पा० सू०-७.२.४४)

इस मन्त्रप्रसंग में (पञ्चदशी मन्त्र की दृष्टि से) 'सविता' कामेश्वरी का वाचक है।

'कामी कलां कामरूपां चिकित्वा नरो जायते कामरूपश्च काम्यः।' (त्रिपुरोपनिषद्)

'भगः शक्तिर्भगवान् काम ईशः' (त्रिपुरोपनिषद्)

सवितुर्वरेण्यम्—

सविता = 'सवितुर्वरेण्यमिति 'षूङ् प्राणि-प्रसवे' सविता प्राणिन सूते प्रसूते शक्तिः सूते ।' (त्रिपुरतापिन्युपनिषद्)

सविता = प्रणियों के प्रसव का आदि कारण। जगत् की योनि। समस्त प्राणियों का प्रसव करने के कारण ही वह वरेण्य (भजनीय, श्रेष्ठ, महनीय, पूज्य) है। वह जगद्योनि है। सविता = कामेश्वरी। सविता कामेश्वरी इत्यर्थः (भास्कर राय)।

ए— कामकूट का द्वितीयाक्षर 'ए' है।

'ए' कामेश्वरी का वाचक है। 'ए' त्रिकोण है; अतः जगद्योनि का द्योतक होने के कारण 'ए' कामेश्वरी का वाचक है। कहा भी गया है—

'त्रिकोणशक्तिरेकारेण महाभागेन प्रसूते तस्मादेकार एव गृह्यते।' (त्रिपुरतापिन्युपनिषद्)

यदेकादशमाधारं बीजं कोणत्रयात्मकम्।
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगद्यापि दृश्यते।।
(वामकेश्वरतन्त्र)

भर्गो देवस्य धीमहि—

सर्वान्तर्यामि दधद्भर्गो देवस्य धीमहि तुर्यार्थः । (वरिवस्यारहस्यम्-६१)

व्याख्या— भर्ग— सर्वाधार शिव। भृज् + घञ्। (शिव, ब्रह्मा, आदित्य तेज) इस सन्दर्भ में 'भर्ग' = शिव।

कृशानुरेताः सर्वज्ञो धूर्जटिर्नीललोहितः।
हरः स्मरहरो भर्गस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः।।
(अमरकोष)

(भृजी भर्जने (भ्वा० आ० से०) पचाद्यच् (पा० सू०-३.१.१३४) भृज्यते कामादयोऽनेनेति भर्गः।)

देव—

अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः।
सुपर्वाणः सुमनसस्त्रिदिवेशा दिवौकसः।।
(अमरकोष)

दिव्यन्तीति देवाः। पचादिषु (पा० सू०-

ई— 'ई' पञ्चदशी मन्त्र का तृतीय वर्ण है।

भर्गो देवस्य का जो अर्थ है, वही ईकार का भी अर्थ है— 'ईकारस्याप्येतावानर्थः' (वरिवस्यारहस्यम्)

'तस्माद्भर्गोदेवस्य धीत्येवमीकारः'(श्रुतिः)।

भास्करराय कहते हैं—

'भर्गोदेवस्य इत्याद्युपक्रम्य तुरीयमक्षरं सर्वान्तर्भूतम्।'

तुरीय अक्षर = चौथा अक्षर। 'अ आ इ ई'— 'अ' से प्रारम्भ करने पर 'ई' वर्ण चौथा (तुरीय) वर्ण होगा। मन्त्र की दृष्टि से 'ई' तृतीय वर्ण होगा— 'क ए ई'।

भास्करराय कहते हैं—

१. तुरीयाक्षरं पदानां मध्यवर्तित्वेन व्याख्या-तम्— 'तस्माद्भर्गोदेवस्य धीत्येवमीकारः।' (श्रुतिः)।

२. तुर्यार्थः, मन्त्रे तु तृतीयस्यापि

३.१.१३४) पाठादच्।

देवः सुरे घने राज्ञि देवमाख्यातमिन्द्रिये।
देवी कृताभिषेकायां तेजनीस्पृक्क्रयोरपि।।

देव = देवता, सर्वान्तर्यामी।

'सर्वान्तर्यामित्वं देवपदस्यार्थः।'
(वरिवस्यारहस्यम्)

'देवो मध्यवर्ती' (श्रुतिः)

धी— धत्त इति धीः। दधत्। जगदाधार इत्यर्थः। (वरिवस्याहस्यम्)

'धरो धीत्येवं धार्यते।' (श्रुतिः)

भर्गो देवः— सर्वान्तर्यामी, सर्वाधार शिव। (वरिवस्यारहस्यम्)

'ईकार' (पञ्चदशी मन्त्र के 'ई') का भी यही अर्थ है— 'सर्वान्तर्यामी सर्वाधारः शिव इति पर्यवसितम्। ईकारस्याप्येतावानर्थः।'
(वरिवस्यारहस्यम्)

ग. धीमहि = धी + महि— धी का अर्थ है— धारण करना। धीति धारणं विद्यते जडत्वधारणम्। (त्रिपुरतापिन्युपनिषद्)

'धकारो धारणा। धियैव धार्यते भगवान् परमेश्वरः' (त्रिपुरतापिन्युपनिषद्)। भर्गोदेवस्य धीत्येवमीकाराक्षरं गृह्यते।' गायत्री का 'भर्गोदेवस्य धी' = पञ्चदशी का 'ई'।

भर्गोदेवस्य धीमहीत्येवं व्याख्यास्यामः। धकारो धारणा। धियैव धार्यते भगवान् परमेश्वरः। भर्गोदेवो मध्यवर्ति तुरीयमक्षरं साक्षात्तुरीयं सर्वं सर्वान्तर्भूतं तुरीयाक्षरमीकारं पदानां मध्यवर्तीत्येव व्याख्यातं भर्गोरूपं व्याचक्षते। तस्माद्भर्गोदेवस्य धीत्येवमीकाराक्षरं गृह्यते।।
(त्रिपुरतापनीयोपनिषद्)

धी + महि— 'महीत्यस्य व्याख्यानं महत्त्वं जडत्वं काठिन्यं विद्यते, यस्मिन्नक्षरे तन्महि' मातृकाक्रमे तुरीयत्वादीकारस्यार्थः इत्यर्थः।।

सारांश यह कि पञ्चदशी मन्त्र में 'ई' वर्ण तृतीयाक्षर होने पर भी मातृकाक्रम (वर्णमाला-क्रम) में चतुर्थ वर्ण है, तथापि उसका अर्थ वही है।

'भर्गोदेवस्य धीम्' का जो अर्थ है, वही पञ्चदशी मन्त्र के 'ईकार' का भी है। 'ईकार'—

कामकला का रूप

कामकला = सूर्य

ईकारः परमेशानि स्वयं परमकुण्डली।
ब्रह्मविष्णुमयं वर्णं तथा रुद्रमयं तथा।।
पञ्चदेवमयं वर्णं पीतविद्युल्लताकृतिम्।
चतुर्ज्ञानमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा।।
(कामधेनुतन्त्र)

पारम्परिक व्याख्या— पारम्परिक व्याख्या में 'ईकार' मायावाचक भी है। माया १४ भुवनों की स्वामिनी है; अतः यह 'श्रीचक्र' के 'चतुर्दशार' का और शरीर में 'विशुद्ध चक्र' का द्योतक है—

इकारस्तु सदा माया भुवनानि चतुर्दश।
पालयन्ती परात्साच्चक्रकोणं भवेत् प्रिये।।
(ज्ञानार्णव)

प्रस्तुत प्रसंग में 'ई' भर्गोदेवस्य धी (गायत्री मन्त्र) का द्योतक है। धीमहि= धी + महि। 'धी' में 'ई' विद्यमान है।

अर्थात् जिसमें महत्त्व-जड़त्व-काठिन्य विद्यमान हो, वही है— 'मही' अर्थात् पृथ्वी (त्रिपुरतापिन्युपनिषद्)। यहाँ 'मही' का अर्थ है— पृथ्वीमण्डल।

भास्कर कहते हैं कि मही समस्त पञ्चभूतों का उपलक्षण है।

'महि' = पृथ्वी (मूल अर्थ)।

(गायत्री मन्त्र में प्रयुक्त 'महि' शब्द भी पृथिवी का वाचक है।)

मही पृथ्वी महत्त्वात् काठिन्याच्च। पञ्चभूतानामुपलक्षणमेतत्। (वरिवस्यारहस्यम्)

त्रिपुरतापनीयोपनिषद्— 'धीति धारणं विद्यते जडत्वधारणं महीति लकारः शिवाधस्तात्तु लकारार्थः स्पष्टमन्त्यमक्षरं परमं चैतन्यं धियो यो नः प्रचोदयात्।'

'पृथ्वी मही लकारस्तृतीयतुर्याङ्घ्रिबोधिका माया।' (द्वि०-६१)।

'ल' = पृथ्वी। पञ्चदशी मन्त्र में 'ल' वर्ण भी पृथ्वी का वाचक है— 'अयमेव च पृथिवीबीजस्य लकारस्यार्थः।'

(वरिवस्यारहस्यम्)

अर्थात् 'मही' शब्द का जो अर्थ है, वही अर्थ पृथ्वी के बीजमन्त्र 'लं' का भी है। पञ्चदशी मन्त्र में 'लं' प्रयुक्त न होकर 'ल' प्रयुक्त हुआ है, किन्तु 'ल' का अर्थ भी 'पृथ्वी' ही है।

'लकार' की व्याख्या करते हुये त्रिपुरतापनीयोपनिषद् में कहा गया है कि 'ल' ससागर, सपर्वत, ससप्तद्वीप, सकानन पृथ्वीमण्डल का द्योतक है—

'लकारः परं धाम। काठिन्याढ्यं ससागरं, सपर्वतं, ससप्तद्वीपं, सकाननमुज्ज्वलद्रूपं मण्डलमेवोक्तलकारेण। पृथ्वी देवी महीत्यनेन व्याचक्षते।' (१३)

सारांश— 'तत्' ('तत्सवितुर्वरेण्यं' का तत्) ब्रह्म का वाचक है— कामेश्वर का वाचक है।

तदिति ब्रह्म शाश्वतं परो भगवान् निर्लक्षणो निरञ्जनो निरुपाधिरहितो देव उन्मीलते पश्यति विकासते चैतन्यभावं कामयत इति स एको देवः शिवरूपी दृश्यत्वेन विकासते यतिषु यज्ञेषु योगिषु कामयते कामं जायते स एष निरञ्जनोऽकामत्वेनोज्जृम्भते अकचटतपयशान् सृजते। (त्रिपुरतापिन्युपनिषद्)

सारांश— 'क' (पञ्चदशी मन्त्र का प्रथमाक्षर) 'तस्मादीश्वरः कामोऽभिधीयते। तत्परिभाषया कामः ककारं व्याप्नोति। काम एवेदं तत्तदिति ककारो गृह्यते। तस्मात् तत्पदार्थ इति य एवं वेद।' 'क' = कामेश्वर। पञ्चदशी का 'काम' ही गायत्री का 'तत्' है। 'काम' ही पञ्चदशी का ककार है।

(त्रिपुरतापनीयोपनिषद्)

ईश्वरः कामोऽभिधीयते।

(त्रिपुरतापनीयोपनिषद्)

धियो यो नः प्रचोदयात्—

जो हम लोगों की बुद्धि-ध्यानादिरहित वस्तु में— निष्प्रपञ्च विषय में— प्रेरित करती है । अर्थात् परतत्त्वविषयक ज्ञान की जननी है। (वरिवस्यारहस्यम्)

त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में इसकी व्याख्या

सारांश—

गायत्री मन्त्र	पञ्चदशी मन्त्र
१.'तत्' (ब्रह्म)	'क' (ब्रह्म)
२.'तत्सवितुर्वरेण्यम्' 'सावित्री' प्राणिप्रसवित्री	'ए' त्रिपुरा

इस प्रकार की गई है— 'धियो यो नः प्रचोदयात्। परमात्मा सदाशिवः आदिभूतः परः स्थाणुभूतेन लकारेण ज्योतिर्लिङ्गमात्मानं धियो बुद्धयः परे वस्तुनि ध्यानेच्छारहिते निर्विकल्पके प्रचोदयात् प्रेरयेदित्युच्चाररहितं चेत् सैव चिन्तयित्वा भावयेदिति।' (१४)

सम्पूर्ण गायत्री का अर्थ

१. कामयते स ककारः कामो ब्रह्मैव तत्पद-स्यार्थः सवितुर्वरेण्यमिति वै सवितुः श्रेष्ठं द्वितीयवर्णार्थः। (वरिवस्यारहस्यम्)

२. सर्वान्तर्यामि दधद्भर्गो देवस्य धीति तुर्यार्थः। पृथ्वीमहीलकारस्तृतीयतुर्याङ्घ्रिबोधिका माया। (वरिवस्यारहस्यम्)

शंका और समाधान— यह शंका उठनी स्वाभाविक है कि गायत्री मन्त्र का आरम्भ तो 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं' से होता है, फिर 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' को ही गायत्री का प्रथम खण्ड मानकर (ॐ भूर्भुवः स्वः छोड़कर) पञ्चदशी से उसकी तुलना क्यों की गई? इसलिये की गई, क्योंकि त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में 'त्रिपुरामहामनुः' के नाम से गायत्री मन्त्र का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् परो रजसेऽसावदोम्।'

सारांशस्वरूप वरिवस्यारहस्यम् में भास्कर राय कहते हैं—

१. कामयते स ककारः कामो ब्रह्मैव तत्पदस्यार्थः। सवितुर्वरेण्यमिति वै सवितुः श्रेष्ठं द्वितीयवर्णार्थः (२.६०)।

२. सर्वान्तर्यामि दधद्भर्गो देवस्य धीति तुर्यार्थः पृथ्वीमहीलकारस्तृतीयतुर्याङ्घ्रिबोधिका माया। (२.६१)

(षूङ् प्राणिप्रसवे)	'एकार' त्रिकोण शक्ति कुण्डलिनी।
३. 'वरेण्यं' श्रेष्ठ, भजनीय, नमस्कार्य (त्रिपुरातापिन्युपनिषत्)	'ए' त्रिकोणशक्ति 'ए' (कुण्डलिनी शक्ति) के रूप में सभी कारणों का कारण है और जगत् का मूल कारण है; अतः वरेण्य या श्रेष्ठ भी है— भजनीय एव पूज्य है।
४. 'भर्गो देवस्य धी'	'ई'
५. 'मही'	'ल'

गायत्री मन्त्र एवं प्रथम कूट का अर्थ— भास्कर राय वरिवस्यारहस्यम् में कहते हैं— समस्त जगत् की सिसृक्षारूप कामना वाले कामेश्वर, जगत्कारणरूपी कामेश्वरी, सर्वान्तर्यामी एवं सर्वाधार शिव पञ्चभूत आदि के रूप में परिणत होकर परवस्तुमात्रविषयक निर्विकल्पक ज्ञान के जनक निरञ्जन, निर्गुण और वेदों के द्वारा प्रत्यक्ष नहीं, प्रत्युत लक्षणा शक्ति द्वारा ज्ञात (किन्तु शक्ति के द्वारा अगम्य) ब्रह्म-विष्णु-रुद्ररूप आत्मा वाले परतत्त्व हैं।

'क' एवं 'तत्'— श्रीविद्या के 'ककार' का अर्थ कामना करने वाला 'कामेश्वर' है। गायत्री मन्त्र का 'तत्' पद 'ब्रह्म' का वाचक है।

क. 'क ए ई ल ह्रीं' = 'क' कामेश्वर अर्थात् ब्रह्म (पञ्चदशी विद्या)।

ख. 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' = 'तत्' पद का अर्थ भी है— ब्रह्म (गायत्री मन्त्र)।

'ए' एवं 'सवितुर्वरेण्यम्'— पञ्चदशी विद्या का द्वितीय वर्ण है— 'ए' एवं गायत्री मन्त्र का द्वितीय पद है— 'सवितुर्वरेण्यम्'।

क. 'ए' (योनि, त्रिकोण) देवी का वाचक है। जगज्जननी कामेश्वरी।

ख. 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' के 'सविता' और 'वरेण्य' दोनों शब्द देवी के वाचक हैं ।

'ई' एवं 'भर्गो देवस्य धी'— 'ई' श्रीविद्या का अक्षर है। 'भर्गोदेवस्य धी' गायत्री मन्त्र का पद है। अर्थात् सर्वान्तर्यामी एवं सर्वपोषक शिव।

'ल ह्रीं' एवं गायत्री का चतुर्थ चरण— 'ल' श्रीविद्या का अक्षर। 'ल' अर्थात् पृथ्वी। 'ह्रीं' अर्थात् माया। ये दोनों गायत्री के चतुर्थ चरण का प्रतिनिधित्व करते हैं। भास्कर राय कहते हैं—

कामयते स ककारः कामो ब्रह्मैव तत्पदस्यार्थः।
तत्सवितुर्वरेण्यमिति वै सवितुः श्रेष्ठं द्वितीयवर्णार्थः।।६०।।

सर्वान्तर्यामि दधद्भर्गो देवस्य धीति तुर्यार्थः।
पृथ्वीमहीलकारस्तृतीयतुर्याङ्घ्रिबोधिका माया।।६१।।

'ह स क' एवं 'तत्सवितुर्वरेण्यम्'— द्वितीय कूट के 'ह स क'— इन तीन वर्णों द्वारा प्रथम तीन पदों (गायत्री मन्त्र के 'तत् सवितुः वरेण्यम्) का प्रतिनिधित्व किया जाता है। 'ह स क' 'तत् सवितुर्वरेण्यम्' के बोधक हैं।

'ह' एवं 'भर्गोदेवस्य धी'— श्रीविद्या का 'ह' वर्ण गायत्री मन्त्र के 'भर्गो देवस्य धी' का बोधक है।

'स' एवं 'क'— भास्कर राय कहते हैं— 'अत्र ह्याद्यायाः श्रीविद्याया एव ब्रह्मरूपत्वं गायत्र्यादिप्रतिपाद्यत्वं विद्याप्रतिपाद्यत्वादिकं च तदर्थव्याख्यानदर्शिनां स्पष्टम्। वस्तुतस्तु—

हयग्रीवब्रह्मविद्या वृत्रवधस्तथा।
गायत्र्या स समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः।।

तृतीय कूट के प्रथम दो वर्ण 'स' और 'क' उन्हीं ६ पदों एवं ६ वर्णों को बोधित करते हैं। इन दो (द्वितीय एवं तृतीय) कूटों के शेष वर्णों का उद्धार उपर्युक्त रीति से करना चाहिये। त्रिपुरोपनिषद् एवं भागवत में गायत्री विद्या का अर्थ यही किया गया है।

'शक्तित्रय' एवं 'कूटत्रय'— ब्रह्मा एवं भारती, जो कि 'वामा' एवं 'इच्छा' हैं, हरि एवं क्षिति, जो कि 'ज्येष्ठा' एवं 'ज्ञान' हैं तथा शिव एवं अपर्णा, जो कि 'रौद्री' एवं 'क्रिया' हैं— तीनों मिथुन क्रमशः तीनों कूटों के बोधक हैं। ३ कूट अर्थात् वामा-इच्छा (ब्रह्मा-भारती), ज्येष्ठा-ज्ञान (हरि-क्षिति) एवं रौद्री-क्रिया (शिव-शिवा) के बोधक हैं।

इनकी समष्टित्रय (पुरुष-नारीतत्त्व का संघात) 'शान्ता' एवं 'अम्बिका'रूप में इकारत्रय द्वारा जानी जाती है— 'एतत्समष्ट्यात्मवाच्यं शान्ताम्बिकात्मकम्' (२.६५)।

'प्रकाशांश' अर्थात् वामा, ज्येष्ठा, रौद्री। (शक्तित्रय अर्थात् ब्रह्म-विष्णु-रुद्ररूप देवत्रय) पुरुषरूप है। उनकी समष्टि 'शान्तात्मिका' तुरीया शक्ति है। विमर्शांश अर्थात् इच्छा, ज्ञान, क्रियानामक शक्तित्रय भार्यायें हैं। ये भारती, पृथिवी एवं रुद्राणीरूपा नारियाँ हैं। उनकी समष्टि 'अम्बिकात्मिका' तुरीया शक्ति है।

यहाँ प्रथम मिथुनत्रय ईकारविनिर्मुक्त कूटत्रय का बोधक है। ईकारों का अर्थ है— 'तुरीयमिथुन'।

शाक्तार्थ में एक ही कूट में रेफान्त वर्णषट्क का भी मिथुनत्रय अर्थ ही लिया गया है। योगिनीहृदय में कहा गया है—

अक्षरार्थो ही भावार्थः केवलः परमेश्वरी।
योगिनीभिस्तथा वीरैर्वीरेन्द्रैः सर्वदा प्रिये।
शिवशक्तिसमायोगाज्जनितो मन्त्रराजकः।।

अमृतानन्दनाथ कहते हैं कि भारती आदि योगिनियों, ब्रह्मा आदि वीरेन्द्रों एवं कूटत्रय-वाच्यभूत शिव-शक्तिसमष्टिरूप मिथुन से 'मन्त्रराज' एकारवाच्यभूत या उपलक्षित है। ब्रह्मादिक को श्रेष्ठ साधक होने के कारण 'वीरेन्द्र' कहा गया है।

सारांश यह है कि भारती आदि तीन योगिनी स्त्रियाँ, सकलादिक, ब्रह्मादिक साधक या वीरेन्द्रत्रय हल्लेखाविनिर्मुक्त कूटत्रय के बोधक हैं। हल्लेखा तो शिवशक्तिसामरस्यात्मक चतुर्थ मिथुन का बोधक है। 'ह्रींकार' को उभयात्मक कहा गया है। वाच्यभूत योगिनियों से जनित या युक्त जो है, वही 'मन्त्र' है— 'वाच्यभूतैर्योगिन्यादिभिर्जनितो युक्तो मन्त्र इत्यर्थः।'

पञ्चदशी विद्या की सर्वात्मकता— भारती, सकल एवं ब्रह्मा आदि से आरम्भ होने वाले तीनों 'त्रिक' माया (ह्रीं) से रहित तीन 'कूटों' के बोधक हैं। माया (ह्रींकार) चौथा मिथुन है, जो कि शिव-शक्ति का बोधक है।

यह विद्या सात अक्षरों वाली है, जिसमें वामा-इच्छा आदि ६ एवं ईकार आते हैं; जिन्हें तीन बार दुहराया जाता है। इस प्रकार यह इनके द्वारा व्यक्त शक्तियों से अभिन्न है।

'पर देवता' वामा आदि सात शक्तियों की समष्टि है। यह ३६ तत्त्वों वाली एवं किसी माने में इस मन्त्र से भिन्न नहीं है।

अकार एवं हकार, जो शिव एवं शक्तिस्वरूप हैं, जो शून्याकार वाले एवं परस्परा-श्लिष्ट हैं, स्फुरण एवं प्रकाशरूप हैं। साथ ही परब्रह्म से अभिन्न हैं।

विश्व की सिसृक्षा से युक्त ब्रह्म अपनी अर्धांगिनी शक्ति को देखता हुआ 'बिन्दु' का रूप धारण कर लेता है, जिसमें शक्ति 'रक्तबिन्दु' में प्रवेश करती है। हकार चैतन्य से

समन्वित बिन्दुओं का यह मिथुन 'विसर्ग' कहलाता है। इन सबकी मिश्रित समष्टि 'रवि' है, जिसे 'काम' भी कहते हैं। यह अकार-चैतन्ययुक्त है। यह 'अहं' पद चतुर्थ स्वर (ई) 'कामकला' आदि शब्दों द्वारा निर्दिश्यमान विद्या समस्त शब्दार्थ की सृष्टि का बीज है। इसी से यह विश्व अहन्तामय है। स्वतन्त्र मन्त्र में ही अन्तिम कूट के प्रथम एवं मध्य कूट के चौथे वर्ण के रूप में ये दोनों व्यक्त हैं। इस प्रकार देवी, मन्त्र एवं जगत् के अभेद का प्रतिपादन ही 'भावार्थ' है।

श्रीविद्या के वर्ण 'ह क र स ल' पञ्चभूतों के उत्पादक हैं। अतः यह श्रीविद्या पञ्चभूतमयी है। श्रीविद्या के १५ वर्ण पाँचों तत्त्वों के गुणों— शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के वाचक हैं। ये गुण आकाशादि भूतों में ५, ४, ३, २ एवं १ की संख्या में विद्यमान हैं—

व्याप्ता पञ्चदशार्णैः सा विद्या भूतगुणात्मिका।
पञ्चभिश्च तथा षड्भिश्चतुर्भिरपि चाक्षरैः।।

गुणों की उत्पत्ति वर्णों से होती है। इनकी संख्या इनके जनक वर्णों की संख्या के समतुल्य है। चारो प्रकार के स्पर्श तीन कामकलाओं एवं तृतीय 'ईकार' से उत्पन्न होते हैं। तीनों लोकों से सम्बद्ध होने के कारण 'लकार' भी मन्त्र में तीन बार आता है। जो-जो वर्ण जिनके-जिनके उत्पादक हैं, वे-वे उनके-उनके उत्पन्न अर्थ हैं।

सारांश यह कि लोकत्रय = लकारत्रय, वर्ण → गुण (प्रकृति के गुण), स्पर्श-चतुष्टय ३ कामकला + तृतीय ईकार → स्पर्श। ह क र स ल → ५ महाभूत। पञ्चदशी के १५ वर्ण = ५, ४, ३, २, १ संख्या वाले (पञ्चभूतों के गुणों की संख्या) १५ गुणों को उत्पन्न करते हैं (पृथ्वी के ५, जल के ४, अग्नि के ३, वायु के २ एवं आकाश का १ गुण = १५)।

पञ्चदशी मन्त्र में निहित ३ ककार 'सकल', 'प्रलयाकल' एवं 'विज्ञानाकल' के बोधक हैं। श्रीविद्या के १० अकार जीवसमूह के वाचक हैं। ११हवाँ स्वर 'ए'कार विद्या का प्राण एवं जीव का वाचक है। श्रीविद्या के बिन्दुत्रय रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव के वाचक हैं। श्रीविद्या के नादत्रय शान्ति, शक्ति एवं शम्भु के प्रतीक हैं।

श्रीविद्या के ३७ अक्षर ३६ तत्त्व एवं सैंतीसवाँ 'तत्त्वातीत' का प्रतीक है—

एवं सप्तत्रिंशत्सङ्ख्याकपदैर्महाविद्या।
षट्त्रिंशतत्त्वानां तत्त्वातीतस्य चाभिधात्रीयम्।।

स्वरव्यञ्जनभेदेन सप्तत्रिंशत्प्रभेदिनी।
सप्तत्रिंशत्प्रभेदेन षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी।
तत्त्वातीतस्वभावा च विद्येषा भाव्यते मया।।

तत्त्वातीत कौन है? षट्त्रिंशत् तत्त्वातीत ब्रह्म ही ३७वाँ तत्त्वातीत सत्ता है।

व्योमबीज ५, कामकला ४, चन्द्रबीज २, रेफ भूबीज क्रोधीश बिन्दु-नाद ३-३, श्रीकण्ठ १०, स्वर ११ = ३७।

३६ तत्त्व— शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या, माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति, पुरुष, प्रकृति, अहंकार, बुद्धि, मन, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, तेज, जल एवं पृथ्वी। (सौभाग्यसुधोदय में इनका उत्पत्तिक्रम देखें।)

१. शिवशक्ति = शुद्धविद्या प्रकृति = बिन्द्वार्थ है।
२. सदाशिवादिपुरुषान्त = ९ नाद हैं।
३. शब्दादिक, आकाशादिक, श्रोत्रादिक, वागादिक ५-५ = हकार।
४. अहंकारादित्रयं = ककारत्रय, श्रीकण्ठ।
५. एकादश स्वर = तत्त्वातीत पद। (भास्कर राय की दृष्टि में)

अज्व्यञ्जनबिन्दुत्रयसमष्टिभदैर्विभाविताकारा ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या।।

जिस प्रकार जन्य-जनक या कार्य-कारण (वाच्य-वाचक) में अभेद है, उसी प्रकार ब्रह्म एवं जगत् में अभेद है। इसी प्रकार जगत् एवं विद्या में भी अभेद है। इसे ही 'सम्प्रदायार्थ' कहते हैं। सर्वातिशायी सत्त्व परम शिव में एकात्मकता या अन्य पदार्थों की निष्कलता (अभाव) अपने दीक्षागुरु एवं परमशिव से अभेद एवं गुरुकृपा से अपने एवं परमशिव में अभेद-दर्शन ही 'निगर्भार्थ' है।

देवी ग्रहरूपा एवं नक्षत्ररूपा है— माता अनुपम तेजोमयी अपने मरीचिरूप आवरण देवताओं की स्वामिनी होने के कारण 'गणेशी' कही जाती है। इच्छादिक (इच्छा-ज्ञान-क्रिया) की समष्टिरूपा, तीनों गुणों से युक्त, अग्नि-सोम-सूर्यरूप नेत्र वाली (त्रिनेत्री) माता उक्त ९ के संयोग से 'ग्रहरूपा' कहलाती है।

१० इन्द्रियों, ४ अन्तःकरणों, १० विषयों, प्रकृति, पुरुष एवं गुणतत्त्वों के योग से माता २७ संख्या वाली 'नक्षत्ररूपिणी' कहलाती है।

श्रीविद्या का स्वरूप— नरपतिसंख्या (१६), रवि (१२), काष्ठा (१०), समुद्र (४) एवं दो संख्या वाले अ, क, ड, ब तथा व एवं ह अक्षरों से वेष्टित होने वाली ड, र, ल, क, स एवं ह से आरम्भ होने वाली ६ आकिनियों द्वारा घटित विग्रह वाली माता 'योगिनी' कही जाती है।

देवी विद्या राशिस्वरूपा है— नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय-५, प्राणापानादि ५ एवं जीवात्मा तथा परमात्मा के साथ १२ संख्या वाली यह जगन्माता 'राशिस्वरूपिणी' है।

देवी विद्या गणेशरूपिणी है— 'श्रीविद्या' गणेशरूपिणी भी है; क्योंकि यह अ, क, थ वर्गों से आरम्भ होने वाले क्रमशः शक्ति, कामराज एवं वाग्भव कूट के सोलह वर्णों तथा परा आदि वाक्चतुष्टय द्वारा घटित होती है।

भगवती ग्रहरूपिणी है— तीन बिन्दुओं, तीन नादों एवं तीन कूटों के शेषांशों द्वारा घटित होने के कारण यह 'श्रीविद्या' ग्रहरूपिणी है। उसी प्रकार व्यञ्जनों से दशाक्षरों के अपृथक् रहने से २७ अक्षरों वाली यह विद्या नक्षत्ररूपिणी है।

भगवती विद्या योगिनीरूपा एवं राशिरूपा है—

हल्लेखात्रयसम्भूतैस्तिथिसंख्यैस्तथाक्षरैः।
अन्यैर्द्वादशभिर्वर्णैरिषा नक्षत्ररूपिणी।।

तीन हल्लेखाओं (ह्रीं के त्रितय) तथा उससे भिन्न ३ कूटों के योग से यह श्रीविद्या योगिनीरूपा है। तीनों हल्लेखाओं एवं पूर्ववर्ती 'ल' वर्णों के योग से घटित होने के कारण श्रीविद्या राशिस्वरूपिणी है।

विद्या एवं देवी में अभेद— विद्या एवं देवी के सारूप्य के कारण विद्या एवं देवी में अभेद है । अतः उसका गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी एवं राशिस्वरूप पूर्णतया संगत है—

रेखादलकोणगणैर्घटनाच्चक्रे गणेशत्वम्।
त्रैलोक्यमोहनाद्यैर्नवभिश्चक्रैर्ग्रहत्वं च।।

श्रीविद्या ग्रहस्वरूपा है— रेखाओं, दलों एवं कणों के गणों द्वारा घटित होने के कारण इसका गणेशत्व तथा त्रैलोक्यमोहन आदि नवचक्रों द्वारा निर्मित होने के कारण इसका ग्रहत्व भी सिद्ध है।

श्रीविद्या नक्षत्ररूपा है— तीन वृत्तों, तीन भूगृहरेखाओं एवं १४ कोणों तथा सात अन्य चक्रों की पृथक्-पृथक् गणना के द्वारा श्रीविद्या नक्षत्रस्वरूपा है।

श्रीचक्र योगिनीरूप है— पालन (स्थिति) एवं संहृति नामक दो चक्र, दो पद्म एवं दो अन्य वृत्त तथा भूगृह आदि ६ के योग से यह श्रीचक्र योगिनीरूप है।

श्रीचक्र राशिरूप है— श्रीचक्र ५ शक्तियों, ४ अग्नियों, १ बिन्दु, १ वृत्त एवं १ भूगृह आदि के योग से १२ संख्या वाला होने से राशिरूप है।

श्रीचक्र एवं श्रीविद्या में अभेद— श्रीविद्या के अक्षरों द्वारा निर्मित होने के कारण श्रीचक्र श्रीविद्या से अभिन्न है— 'चक्रं विद्याक्षरैरेव जननात्तदभेदवत्।'

(वरिवस्यारहस्यम्-२.९६)

श्रीविद्या एवं पीठों में एकात्मता है— मातृका के वर्णों की संख्या के समतुल्य इक्यावन पीठ भी हैं। इनमें ही ओड्याण (ओ), जालन्धर (जा), पूर्णागिरि (पू०) एवं कामरूप (का०) नामक पीठ भी हैं।

गणप, ग्रह, भ आदि, जिनकी संख्या क्रमशः शशि (१), निधि (९), तारा (२७), ऋतु (६) तथा सूर्य (१२) है और इस प्रकार कुल ५५ पीठ हैं— 'मेलनतः पीठानि ज्ञेयान्येतेषु पञ्चपञ्चाशत्।'

बिन्दु की उत्पत्ति— 'बिन्दु' की उत्पत्ति तीन ककार एवं ईकार से हुई है। तदनन्तर दो चक्रों (सर्वसिद्धि-प्रद, सर्वरोगहर), हल्लाओं, फिर तीन चक्रों (सर्वरक्षाकर, सर्वार्थ-साधक, सर्वसौभाग्य-दायक) क्रमशः दो हकारों एवं एकार से आगे के दो चक्रों (सर्व-संक्षोभण एवं सर्वाशा-परिपूरक) एवं दो सकारों से तथा चतुरस्र (त्रैलोक्यचक्र) लकारों से उत्पन्न है।

गुरुतत्त्व— अभेद की भावना की 'दृढ़ता' के कारण अपना गुरु उक्त तीनों— देवता, विद्या एवं श्रीचक्र से अभिन्न होता है; अतः वह गणेशादिमय होता है, जिसकी अनुकम्पा से शिष्य स्वयं भी तद्रूप हो जाता है—

एतत्त्रितयाभिन्नः स्वगुरुस्तदभेदभवनाद्दार्ढ्यात्।
तेन गणेशादिमयस्तद्दयया च स्वयं तथारूपः।। (२.१०१)

देवी एवं गुरु के शरीर में अभेद— देवी एवं गुरु के देह में कोई अन्तर नहीं होता—

देव्या देहो यथा प्रोक्तो गुरुदेहस्तथैव च।
तत्प्रसादाच्च शिष्योऽपि तद्रूपः सन् प्रकाशते।।

माता, विद्या, चक्र, स्वगुरु एवं स्वयं में अभेद— जगन्माता ललिता, श्रीविद्या, श्रीचक्र, स्वगुरु एवं स्वयं में ऐकात्म्यभाव या एकीभूतता ही मन्त्र का 'कौलिकार्थ' है—

इत्थं माता विद्या चक्रं स्वगुरुः स्वयं चेति।
पञ्चानामपि भेदाभावो मन्त्रस्य कौलिकार्थोऽयम्।।

कुण्डलिनी, श्रीविद्या, भगवती ललिता एवं साधक में ऐकात्म्य— कुण्डलिनी साक्षात् विद्या एवं जगन्माता ललिता से अभिन्न है। उनसे अपने को अभिन्न देखना ही श्रीविद्या का 'रहस्यार्थ' है—

साक्षाद्विद्यैवैषा न ततो भिन्ना जगन्माता।
अस्याः स्वाभिन्नत्वं श्रीविद्यायाः रहस्यार्थः।। (२.१०७)

अद्वैतभावना का ग्रहण— वाणी, मन, इन्द्रियों द्वारा अगम्य ३६ तत्त्वों से परे, सबसे महान्, महान् से भी महत्तर, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम से सूक्ष्म, व्योम से भी ऊर्ध्ववर्ती, विश्वाभिन्न, चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म में अपने-आपको अभिन्न अनुभव करना ही 'महातत्त्वार्थ' है।

श्रीविद्या एवं तन्निहित अर्थों में अभिन्नता— श्रीविद्या स्वयं अपने स्वरूप में समवेत अक्षरार्थों से अभिन्न है। उसका स्वरूप उसका प्रत्येक अक्षर है। यही रहस्य श्रीविद्या का 'नामार्थ एवं शब्दरूपार्थ' है—

तत्तद्वर्णार्थेयं तत्तद्वर्णस्वरूपेयम्।
इति तु श्रीविद्याया नामार्थः शब्दरूपार्थ।। (२.११०)

देवी के समस्त नाम, एक नाम तथा सपूर्ण नाम एवं नाम के एकांश में अभिन्नता— भास्कर राय कहते हैं कि कल्याणी, एकाक्षरी, ईशित्री, ललिता आदि देवी के तीन सौ नाम हैं, किन्तु इन सभी तीन सौ मन्त्रों का तात्पर्य मन्त्र के आद्यक्षरों द्वारा व्यक्त होता है। नाम के एकदेश (अंश) के ग्रहण द्वारा समस्त नाम का ग्रहण हो जाता है। समस्त नाम का अर्थ नाम के एक अंश का अर्थ हुआ—

'नामैकदेशमात्रे नामग्रहणस्य', 'प्रोक्तो नामैकदेशार्थः।' (२.११२)

'शाक्तार्थ' के दो भेद हैं— अवयवार्थ एवं शक्तिसमूहार्थ।

वाक्, कामराज एवं शक्तिकूटों द्वारा अंगशः माता का विग्रह क्रमशः किरीट से कण्ठ, कण्ठ से कटि एवं कटि से पादाग्र तक प्रतिपादित होना चाहिये। भगवती का विग्रह किरीट से कण्ठ, कण्ठ से कटि एवं कटि से पादाग्र के रूप में ध्यान का आलम्बन बनना चाहिये।

प्रथम कूट के ६ वर्ग हैं, जिनके अन्त में रेफ है। क्रमश तीन मिथुनों— ब्रह्मा-भारती, विष्णु-लक्ष्मी एवं रुद्र-पार्वती के द्योतक हैं। उपर्युक्त ६ देवता कामकलायें 'ईकार' ही हैं, अन्य नहीं।

अन्य दो कूटों का भी यही अर्थ है। तथापि द्वितीय कूट के दूसरे 'ह' का सम्बन्ध तृतीय कूट के 'सकार' से करना चाहिये। शाक्तों की मान्यता के अनुसार प्रत्येक अक्षर में शक्ति है तथा अक्षरों एवं वामा, इच्छा एवं अन्य शक्तियों में अभेद है— यही 'शाक्तार्थ' है।

'क' एवं 'ह' तथा 'ल' एवं 'स' का अर्थ 'शक्ति' है। हल्लेखा (ह्रीं) का अर्थ शिव एवं शक्ति का सामरस्यरूप परब्रह्म है। उक्त तीनों कूटों में से प्रत्येक का अर्थ है— 'शिव एवं शक्ति के सामरस्य के कारण ब्रह्म ही शिव एवं शक्ति दोनों है'। यही विद्या का 'सामरस्यार्थ' है—

ब्रह्मैव शिवः शक्तिश्चेति प्रत्येककूटार्थः।
शिवशक्तिसामरस्याद्विद्याया एष सामरस्यार्थः।। (२.१२०)

कत्रय + हद्वय = शैव। शेष वर्ण = शाक्त।
ह्रींकार = शैव + शाक्त उभयात्मक।

कत्रयं हद्वयं चैव शैवो भागः प्रकीर्तितः।
शेषाणि शक्त्यक्षराणि ह्रींकार उभयात्मकः।।

'ककार' का अर्थ है— प्रकाश। 'एकार' (इङ् धातु) = अध्ययन का साधन बुद्धि। क + ए = प्रकाशिका बुद्धि, तृतीय वर्ण = 'ई' व्याप्ति।

'क' एवं 'ह' तथा 'ल' एवं 'स' का अर्थ है— 'शक्ति'। हल्लेखा (ह्रीं) का अर्थ शिव एवं शक्ति का सामरस्य परब्रह्म है। उस बुद्धि की अतिशयता लहरी है तथा उक्त अतिशयता का निर्माण मकार (•) का अर्थ है। हिंसार्थक 'हन्' धातु से निष्पन्न 'ह'

शत्रु के विनाश करने के कारण शौर्यात्मक है। भोगार्थक 'षो' या अभिषवार्थक 'षुञ्' धातु से निष्पन्न 'स' भोग के साधन 'धन' का वाचक है। इच्छार्थक 'कम्' धातु से निष्पन्न 'क' का अर्थ कामिनी आदि कामना के विषय हैं। गमनार्थक 'ओहाङ्' धातु से व्युत्पन्न 'ह' का अर्थ उक्त भोगसाधनों का गमन या प्राप्ति है। इन सभी की अतिशय प्राप्ति लहरी है, जिसके साथ 'ईकार' की सवर्णदीर्घ सन्धि हुई है। दीप्त्यर्थक 'ई' धातु से निष्पन्न 'ईकार' का अर्थ सभी दिशाओं में प्रकाशित होने के कारण कीर्ति है। 'मकार' का अर्थ इन (लहरी एवं ई) दोनों का प्रजनन है।

'वाग्भवकूट' का अर्थ सूक्ष्म बुद्धि की विस्तृत व्याप्ति है। 'कामराज कूट' का अर्थ शौर्य, धन, स्त्री एवं कीर्ति का आधिक्य है।

तृतीय कूट के 'स क ल' सम्यक् रूप से क्रिया-विपरिणाम लक्षित करते हैं। हरणार्थिका 'ह' धातु से निष्पन्न 'ह' का अर्थ समस्त जगत् की संहर्त्री है। उक्त 'ह' के साथ प्रश्लिष्ट सन्धिगत 'ई' वर्ण सृष्टि एवं स्थिति के कारणभूत प्रकाश का द्योतन करता है। अन्य शब्दों में 'ह्री' माता का बोधक है, जो हृदयाकाश में प्रकाश करती हुई समस्त दु:खों को दूर करती है। 'स क ल' वर्णों में समाप्त होने वाले पद के साथ ह्रीकार में कर्म-धारय समास करना चाहिये, जहाँ नादात्मक या संविदार्थक 'मकार' विशेष्य है।

सिद्ध पुरुषों द्वारा कथित उक्त मन्त्र के इस अर्थ के सम्बन्ध में धातु की अनेकार्थता, बहुलग्रहण, पृषोदरादि गण एवं ऑकृतिगण में पाठ, लक्ष्य के अनुसार उणादिसूत्र के विनियोग एवं छान्दस साहित्य में सभी शास्त्रीय विधियों के विकल्पित होने के कारण व्याकरणविषयक अनुमति का विधान है।

श्रीविद्या के 'समस्तार्थ' के अन्तर्गत अनेक पदों एवं गुणों का समस्त पुरुषार्थों के साधन का सारकथन है।

'क' ब्रह्मा, 'ए' विष्णु, 'अ' ईश और 'ईड्' पद स्तुत्यर्थक है। दो स्वरों के मध्य में स्थित 'ड' का 'ल' आदेश है। अत: प्रथम कूट ऋग्वेदात्मक, द्वितीय कूट यजुर्वेदात्मक एवं तृतीय कूट सामवेदात्मक सिद्ध होता है।

'ह्रीं' नामक विशेष्य है, जो ब्रह्म का वाचक है और नपुंसक लिंग है। यह ब्रह्म विधि, विष्णु एवं रुद्र द्वारा स्तुत्य है। यही 'प्रथम कूट' का अर्थ है।

प्रथम कूट का अर्थ—

१. प्रथम कूट ऋग्वेदात्मक है।

२. 'ह्रीं' नाम विशेष्य है, जो ब्रह्म का वाचक है और नपुंसक लिंग है।

३. यह ब्रह्म, विधि, विष्णु एवं रुद्र द्वारा स्तुत्य है।

द्वितीय कूट का अर्थ—

द्वितीय कूट यजुर्वेदात्मक है।

१. ककार के मुखवाची होने से 'ह सु क' का अर्थ है— हँसता हुआ मुख।

२. 'ह स' का अर्थ है— आनन्द।

३. 'क' का अर्थ है— सूर्य।

४. 'ह' का अर्थ है— चन्द्रमा।

५. 'क' एवं 'ह' = सूर्य एवं चन्द्र जिसके 'ल' नेत्र हैं, वह सूर्य-चन्द्र नेत्र वाला 'क ह ल' है।

६. प्रकाशक होने के कारण उसका चिद्रूपत्व स्पष्ट होता है।

७. विधि, हरि एवं रुद्र द्वारा 'ब्रह्म क' स्तुत्य होने में हेतु ये ही दोनों 'ह स त्व' एवं 'ह ल त्व' हैं।

८. अत: 'द्वितीय कूट' का अर्थ है— 'ब्रह्म अति असीम आनन्दस्वरूप एवं चिद्रूप है।'

तृतीय कूट का अर्थ—

तृतीय कूट सामवेदात्मक है।

१. समस्त कलाओं से युक्त ब्रह्म 'स क ल' है —यही 'तृतीय कूट' का अर्थ है। इस प्रकार समस्त गुणगण के कथन द्वारा विद्या का सगुण अर्थ है— 'सगुणार्थ' है।

२. 'ह' 'स' आनन्द, 'क' सत्य एवं 'ल' ज्ञान है। इस प्रकार तटस्थ एवं स्वरूप-लक्षणों के द्वारा ब्रह्म का निर्णय करके यह विद्या 'तृतीय कूट' के द्वारा ब्रह्म एवं जीव का तादात्म्य अभेद स्थित करती है।

३. 'स क ल' पद जीव का वाचक है, जिसकी जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति नामक तीन कलायें हैं। शक्तिबीज 'ह्रीं' ब्रह्म का वाचक है।

४. उक्त दोनों में सामानाधिकरण्य होने से उनके द्वारा लक्षित शुद्ध वस्तुयें अभिन्न हैं।

५. तृतीय कूट के 'स क ल' पदों का अभिप्राय है— 'यह सब ब्रह्म है'।

६. इस प्रकार जीव एवं ब्रह्म के स्वरूप का लाक्षणिक वाक्यों द्वारा वर्णन करके उनका अभेद स्थिर किया गया है।

समस्त कलाओं से युक्त ब्रह्म 'स क ल' है और यही 'तृतीय कूट' का अर्थ है।

'जीव और ब्रह्म में अभेद है'— यही है 'महावाक्यार्थ'।

श्रीविद्या और कुण्डलिनी में एकात्मता— योगिनीहृदय में इस एकात्मता की पुष्टि करते हुये कहा गया है कि—

विद्या कुण्डलिनीरूपा मण्डलत्रयभेदिनी।
तडित्कोटिनिभप्रख्या बिसतन्तुनिभाकृति:।।

(योगिनीहृदय : मन्त्रसंकेत-७१)

गायत्री मन्त्र	पञ्चदशी मन्त्र
परोरजसेऽसावदोम् गायत्री मन्त्र के चतुर्थ चरण की व्याख्या त्रिपुर-तापनीयोपनिषद् में इस प्रकार की गई है— 'परोरजसेऽसावदोमिति तदवस्थाने परज्योतिरमलं हृदि दैवतं चैतन्यं चिल्लिङ्गं हृदयागारवासिनी हल्लेखेत्यादिना स्पष्टं वाग्भवकूटं पञ्चाक्षरं पञ्चभूत-जनकं पञ्चकलामयं व्यापद्यत इति। य एवं वेद।' रज = धूल। गुणत्रय का उपलक्षण। परोरज = रज से पर (रज से अतीत) त्रिगुणातीत, निर्गुण, निरञ्जन। रज = कालुष्य। परोरज = निष्कलुष, निर्मल, अमल। 'परोरजास्ते पञ्चमः पादः' ऐसा प्रयोग प्राप्त होता है । रज = गुणत्रय, प्रकृति का उपलक्षण। 'सावदोम' : सवद + अवद (कथ्य-अकथ्य) शब्दबोध्य, शब्दाबोध्य। सावदोम = प्रणव— 'सवदोऽवदश्च यः प्रणवः।' (वरिवस्यारहस्यम्) प्रणव = अकार, उकार, मकार— ब्रह्मा, विष्णु, महेश। यही 'हल्लेखा' का भी अर्थ है।	**'ह्रीं'** (मायाबीज) 'ह्रीं' देवी का प्रणव माना जाता है। 'ॐ' एवं 'ह्रीं' दोनों समानार्थक हैं— 'प्रणवार्थः परतत्त्वमकारोकारमकारै-र्ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मकम्। एतावानप्यर्थो हल्लेखायाः।' (प्रकाश : भास्कर राय) 'सवद'= शाब्दी शक्ति से बोध्य। 'अवद' = शाब्दी शक्ति से अबोध्य। 'शक्यतावच्छेदकधर्मी।' चतुश्चरणा गायत्री एवं त्रिकूटात्मिका पञ्चदशी का इसी प्रकार समन्वय किया गया है— 'एवं चतुश्चरणायाः गायत्र्या-स्त्रिरावृत्ताया अर्थस्य प्रतिपादकं कूट-त्रयमिति……सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि। बुद्धिं या नः प्रचोदयात्।' (प्रकाश : भास्कर राय)

गायत्री मन्त्र	द्वितीय कूट : पञ्चदशी मन्त्र
१. तत् सवितुर्वरेण्यम्	'ह, स, क' (पञ्चदशी मन्त्र)
२. भर्गो देवस्य धी	'ह' (पञ्चदशी मन्त्र)
गायत्री मन्त्र	**तृतीय कूट : पञ्चदशी मन्त्र**
१. भर्गो देवस्य धी	'स, क' (पञ्चदशी मन्त्र)

द्वितीय एवं तृतीय कूटों के शेष वर्णों का भी उद्धार इसी रीति से करना चाहिये ।

त्रिपुरतापनीयोपनिषद् एवं देवीभागवत पुराण— दोनों में गायत्री विद्या की व्याख्या इसी प्रकार की गई है।

गायत्री मन्त्र	पञ्चदशी मन्त्र	गायत्री मन्त्र
१. 'तत्'	१. 'क' = ब्रह्म	सावदोम = ॐ (प्रणव)
२. 'सवितुर्वरेण्यं'	२. 'ए' = त्रिपुरा	सवद = प्रणव
३. 'भर्गो देवस्य धी'	३. 'ई' = सर्वान्तर्यामी, सर्वपोषक शिव	प्रणव = अकार, उकार, मकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश।
४. 'मही'	४. 'ल' = पृथ्वीमण्डल	सवद = कथनीय,
५. 'परो रजसेऽसावदोम्'	५. 'ह्रीं' मायाबीज,	अवद = अकथनीय।
(रज या धूल से परे निर्मल, निर्गुण, निरञ्जन, त्रिगुणातीत ('गुण' तीनों गुणों का उपलक्षक है।)	(हृदय) हृदयागार-वासिनी हल्लेखा (श्रुति)	शक्ति शक्ति की मर्यादा से बोध्य एवं अबोध्य— सवद + अवद।

यो नः अस्माकं धियः ध्यानेच्छारहिते निर्विकल्पे परमात्मनि प्रचोदयात्। तं ज्योतिर्लिङ्ग-मात्मानमनिवर्चनीयं ब्रह्माकारपरिणतचेतसा सोऽहमस्मीति भावयेत्।।

गायत्री एवं पञ्चदशी के समन्वय को त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

कामकूट एवं गायत्री का समन्वय

१. अथ तु परं कामकलाभूतं कामकूटमाहुः। तत्सवितुर्वरेण्यमित्यादि द्वात्रिंशदक्षरीं पठित्वा तदिति परमात्मा सदाशिवोक्षरं विमलं निरुपाधितादात्म्यप्रतिपादनेन हकाराक्षरं शिवरूपमनक्षरमक्षरं व्यालिख्यत इति तत्परागव्यावृत्तिमादाय शक्तिं दर्शयति।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.१६)

२. तत्सवितुरिति पूर्वेणाध्वना सूर्याश्चन्द्रिकां व्यालिख्य मूलादिब्रह्मरन्ध्रगं साक्षर-मद्वितीयमाचक्षत इत्याह भगवन्तं देवं शिवशक्त्यात्मकमेवोदितम्।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.१७)

३. शिवोऽयं परमं देवं शक्तिरेषा तु जीवजा।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हंसस्तत्पदमुच्यते।।

तस्मादुज्जृम्भते कामः कामान् कामः परः शिवः।
काणोंऽयं कामदेवोऽयं वरेण्यं भर्ग उच्यते।।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.१७-१९)

४. तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवः क्षीरं सेवनीयमक्षरं समधुघ्नमक्षरं परमात्मजीवात्मनो-

र्यागात् तदिति स्पष्टमक्षरं तृतीयं ह इति तदेव सदाशिव एव निष्कल्मषो द्यो देवोऽन्त्यमक्षरं व्याक्रियते परमं पदम्।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.२०)

५. धीति धारणं विद्यते जडत्वधारणं महीति लकार: शिवाधस्तात्तु लकारार्थ: स्पष्टमन्त्यक्षरं परमं चैतन्यं धियो यो न: प्रचोदयात्।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.२१)

६. परो रजसेऽसावदोमित्येवं कूटं कामकलाऽऽलयं षडध्वपरिवर्तको वैष्णवं परमं धामैति भगवांश्चैतस्माद्य एवं वेद।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.२२)

शक्तिकूट एवं गायत्री का समन्वय

१. अथैतस्मादपरं तृतीयं शक्तिकूटं प्रतिपद्यते द्वात्रिंशदक्षर्या गायत्र्या।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.२३)

२. तत्सवितुर्वरेण्यं तस्मादात्मन आकाश: आकाशाद्वायु: स्फुरते तदधीनं वरेण्यं समुदीयमानं सवितुर्वा योग्यो जीवात्मपरमात्मसमुद्भवस्तं प्रकाशशक्तिरूपं जीवाक्षरं स्पष्टमापद्यते ।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.२४)

३. भर्गो देवस्य धीत्यनेनाधाररूपशिवात्माक्षरं गण्यते महीत्यादिना शेषं काम्यं रमणीयं दृश्यं काम्यं रमणीयं शक्तिकूटं स्पष्टकृतमिति।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.२५)

फल— ४. एवं पञ्चदशाक्षरं त्रैपुरं योऽधीते स सर्वान् कामानवाप्नोति स सर्वान् भोगानवाप्नोति स सर्वान् लोकान् जयति स सर्वा वाचो विजृम्भयति स रुद्रत्वं प्राप्नोति स वैष्णवं धाम भित्वा परं ब्रह्म प्राप्नोति य एवं वेद।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.२६)

पञ्चदशी विद्या की अन्तर्निहित शक्तियाँ— पञ्चदशी विद्या के प्रत्येक अक्षर के अनुसार १५ शक्तियाँ हैं, जिनके नाम निम्नांकित हैं—

१. मदन्तिका	६. सिद्धिमत्ता	११. पुष्टा
२. मानिनी	७. लज्जा	१२. लक्ष्मी
३. मंगला	८. मति	१३. उमा
४. सुभागा	९. तुष्टि	१४. ललिता
५. सुन्दरी त्रिपुरा	१०. इष्टा	१५. लालपन्ती

ऋग्वेदीय त्रिपुरोपनिषत् में इन्हें इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—

मदन्तिका मानिनी मङ्गला च सुभागा च सा सुन्दरी सिद्धिमत्ता।
लज्जा मतिस्तुष्टिरिष्टा च पुष्टा लक्ष्मीरुमा ललिता लालपन्ती।।६।।

त्रिपुरोपनिषद् में ही पञ्चदशी मन्त्र को प्रस्तुत किया गया है, जो निम्नांकित है—

कामो योनिः कामकलावज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या।।८।।

व्याख्या— 'कामः' = ककार। 'योनिः' = एकार। 'कामकला' = ईकार आदि।

'नासदीय सूक्त' के अनुसार मन्त्रोद्धार द्वारा अनेक वैदिक ऋचाओं से अनेक मन्त्रों का उदय हुआ है।

ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त में निहित बीजमन्त्र— प्रवृत्तिमार्गियों को जो बीजक्रम अभीष्ट है, उसके अनुसार पराशक्ति का (माया-स्तर के ऊर्ध्व में स्थित होने के कारण) प्रथम मूल बीज है— 'ऐं'। सादाख्य स्पन्द में माया बीजात्मना अवस्थित है। अतः वहाँ मूल बीज 'ह्रीं' है। तपःपुञ्ज ईश्वर 'श्रीं' में अवस्थित है और सकाम ईश्वर कामबीज 'क्लीं' में अवस्थित है। सत् और असत् दोनों शक्तियाँ सकार होने के कारण 'सौः' बीज के अन्तर्गत समाविष्ट हैं। इस तरह ऐं, ह्रीं, श्रीं, क्लीं, सौः (ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः) मन्त्र का भी निर्माण हो जाने से दो मन्त्रों का निर्माण हो जाता है।

दूसरा मन्त्र-निर्माणक्रम

(ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त– अष्टक-८, अ०-७, मं०-१०, सूक्त-१२९)

नासदीयसूक्त	प्रतिनिधि मूल तत्त्व
१. 'पर'	ॐस्वरूप परमात्मा
२. 'तम'	माया पराशक्ति 'ह्रीं'
३. 'तप'	सादाख्य तत्त्व 'श्रीं'
४. 'एकम्'	ईश्वर का 'ऐं' स्वरूप
५. 'काम'	ईश्वर का 'क्लीं' स्वरूप
६. 'मनस्'	सत् मन अर्थात् 'शुद्ध विद्या'
७. 'रेत'	असत् रेतस् अशुद्ध विद्या

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यत्र परः किञ्चनाऽऽस।।
तम आसीत्तमसा गूल्लमग्रे
अप्रकेतमसलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्
तपसस्तन्महिनाऽजायकेतम्।।
कामस्तदग्रे सववर्ततधिमनसो
रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसतिनिरविन्दन् हृदि
प्रतीष्या कवयो मनीषाः।।

बीजमन्त्रों का यह उद्धवक्रम योगमार्गीय है। योगशिखोपनिषद् की समतुल्यता पर ध्यान दें—

महामाया महालक्ष्मीर्महादेवी सरस्वती।
आधारशक्तिरव्यक्ता यया विश्वं प्रवर्तते।।
(२.११.१२)

श्रीविद्योपासना के अंग— आचार्य भास्कर ने अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग के रूप में दो अंग बताये हैं। इनके समस्त अंग निम्नवत् हैं—

श्रीविद्या के अन्तरंग—

१. (श्रीविद्या के वर्णों की) संख्या
२. उद्धार (मन्त्र का उद्धार)
३. काल (मात्रा)
४. उच्चारण (वर्णों का उच्चारण)
५. स्थान (उत्पत्तिस्थान)
६. प्रयत्न (उच्चारणगत प्रयत्न)
७. विभिन्न स्थितियाँ
८. आकार
९. अर्थ

श्रीविद्या के बहिरङ्ग—

१. ऋषि
२. छन्द
३. देवता
४. विनियोग
५. बीज
६. शक्ति
७. कीलक
८. न्यास
९. ध्यान
१०. नियम
११. पूजा आदि।

१. विद्यावर्णेयत्तोद्धारः कालस्तदुच्चारः।
उत्पत्तिस्थानं तद्यत्नो रूपं स्थितिस्थानम्।।

२. आकारः स्वं रूपं विभाव्यमर्थोऽन्तरङ्गाणि।
ऋषयश्छन्दोदैवतविनियोगा बीजशक्तिकीलानि।।

३. न्यासा ध्यानं नियमाः पूजादीनि बहिरङ्गाणि।
बाह्यान्यङ्गानि पुनः प्रायो लोके प्रसिद्धकल्पानि।।[१]

सारांश—

१. वर्णसंख्या— विद्या में वर्णों की संख्या ५८ है—
विद्यायां वर्णेयत्ता अष्टपञ्चाशद्रूपा वर्णसंख्या।[२]

२. उद्धार— क्रोधीशः श्रीकण्ठारूढः कोणत्रयं लक्ष्मीः।
मांसमनुत्तररूढं वाग्भवकूटं प्रकीर्तितं प्रथमम्।।

शिवहंसब्रह्मवियच्छक्राः प्रत्येकमक्षरारूढाः।
द्वितीयकं कूटं कथितं तत्कामराजाख्यम्।।

शिवतो वियतो मुक्तं तृतीयमिदमेव शक्तिकूटाख्यम्।
हल्लेखानां त्रितयं कूटत्रितयेऽपि योज्यमन्ते स्यात्।।[३]

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या।।[४]

---

१. भास्कर राय : वरिवस्यारहस्यम्।
२. वरिवस्यारहस्यम्- प्रकाशटीका।
३. वरिवस्यारहस्यम्।
४. त्रिपुरोपनिषद, देव्युपनिषद।

३. काल या मात्रा— श्रीविद्या के प्रत्येक वर्ण के उच्चारण में कितनी मात्रायें लगती हैं। उसका विवरण ही काल या मात्रा है—

कालस्त्रिलवोनैकत्रिंशन्मात्रात्मको विद्यायाः।
एकलवोना उनत्रिंशन्मात्रा उच्चारणस्य।।[1]

४. उच्चारण— किस मन्त्राक्षर का कितनी मात्राओं द्वारा उच्चारण होता है, उसका विवरण ही उच्चारण पद से संकेतित किया गया है। उदाहरण—

.....बिन्दुरहितहल्लेखा मात्राकालयोच्चार्याः।
अन्येषा वर्णानां मात्राकालोऽर्धमात्रया सहितः।
बिन्दोरर्धं मात्रा परे परे चापि पूर्वपूर्वार्धाः।।

संहत्यैकलवोनो मात्राकालोऽस्य नादस्य।
एकादशवाक्कूटे सार्धा एकादशोदिता मध्ये।।

सार्धा अष्टौ शक्तावेकैकलवोनिता मात्राः।
संहत्यैकत्रिंशन्मात्रा मन्त्रे लवत्रयन्यूनाः।।

५. वर्णों का उत्पत्तिस्थान—

कण्ठे च कण्ठतालुनि तालुनि दन्तेषु मूर्ध्नि नासायाम्।
स्पृष्टविवाराद्यान्तरबाह्यैर्यत्नैस्तदक्षरोत्पत्तिः ।।

६. उच्चारण के लिये किये गये यत्न— १. बाह्य, २. आभ्यन्तर।

७. वर्णों का स्थितिस्थान एवं रूप (आकार)—

प्रलयाग्निनिभं प्रथमं मूलाधारादनाहतं स्पृशति।
तस्मादाज्ञाचक्रं द्वितीयकूटं तु कोटिसूर्याभम्।।

तस्माल्ललाटमध्यं तार्तीयं कोटिचन्द्राभम्।
मालामणिवद्वर्णाः क्रमेण भाव्या उपर्युपरि।।

तदुपरि गतोऽर्धचन्द्रोऽन्वर्थः कान्त्या तथाकृत्या।
अथ रोधिनी तदूर्ध्वं त्रिकोणरूपा च चन्द्रिकाकान्तिः।।

नादस्तु पद्मरागवदण्डद्वयमध्यवर्तिनीव सिरा।
नादान्तस्तांडदाभः सव्यस्थितबिन्दुयुक्तलाङ्गलवत्।।

तिर्यग्बिन्दुद्वितये वामोद्गच्छत्सिराकृतिः शक्तिः।
बिन्दूद्गच्छत्यश्राकारधरा व्यापिका प्रोक्ता।।

ऊर्ध्वाधोबिन्दुद्वयसंयुतरेखाकृतिः समना।
सैवोर्ध्वबिन्दुहीनोन्मना तदूर्ध्वं महाबिन्दुः।।

---

१. प्रकाश।

शक्त्यादीनां तु वपुर्द्वादशरविकान्तिपुञ्जाभम्।
इत्येवं वर्णानां स्थानं ज्ञात्वोच्चरेद्यत्नात्।।२७।।

नादः प्राथमिकस्तु द्वितीयकूटेन साकमुच्चार्यः।
द्वितीयकं नादं तार्तीयेनोच्चरेन्न पृथक्।।२८।।

बिन्द्वादिनवकयोस्तु प्राक्तनेटस्थयोरनयोः।
सम्मेलनेन शबलं तार्तीयीकं विभावयेत्कूटम्।।

बिन्द्वादिसमनान्तं क्रमेण तार्तीयमुच्चरेन्नादम्।
उन्मन्यन्तर्लीनं विभावयेदेतदुच्चरणम्।।३०।।

विद्यास्वरूप का कालमान बताकर भास्कर राय उच्चारणकाल का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

आद्ये दश मध्ये ताः सार्धास्तार्तीयकूटेऽष्टौ।
एलवोना उनत्रिंशन्मात्रा मनोर्जपे कालः।।३१।।

कूटत्रय का व्यष्टि-समष्टिभेद से चतुर्धा भिन्नस्वरूप— श्रीविद्या में व्यष्टि-समष्टिरूप से चार बीजों का अवस्थान है और वे हैं— सृष्टि, रक्षा, संहार एवं अनाख्या। ये चार बीज चार भिन्न-भिन्न स्वरूप वाले हैं। व्यष्टि एवं समष्टि के भेद से इस श्रीविद्या में चार बीज हैं— 'व्यष्टिसमष्टिविभेदादस्यां चत्वारि बीजानि।' ये निम्न हैं—

सृष्टिस्थितिसंहारानाख्यारूपाणि भावनीयानि।

पुट, धाम, तत्त्व, पीठ, अन्वय, मातृका आदि में चार बीजों की भावना व्यष्टि-समष्टिभेद से करनी चाहिये।

व्याख्या— 'अनाख्या' = तिरोधानानुग्रह की समष्टि तथा भगवती एवं भगवान् के पञ्चकृत्यों में औदासीन्यावलम्बनात्मक रूपावस्थानविशेष ही अनाख्या है। 'पुट' = पुटादि-षट्क। 'धाम' = धामसप्तक। 'पीठ' = कामरूप— पूर्णागिरि, जालन्धर, ओड्याण। 'अन्वय' = पूर्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय, दक्षिणाम्नाय। 'लिंग' = स्वयम्भू। बाण, इतर एवं पर लिंग। 'मातृका' = परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी। 'पुट' = ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय और उनका सामरस्य। 'चक्र' = अग्निचक्र, सूर्यचक्र, सोमचक्र, ब्रह्मचक्र। 'नाथ' = मित्रेशनाथ, षष्ठीशनाथ, उड्डीशनाथ, चर्यानन्दनाथ। 'दशा' = जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय। 'शक्ति' = वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, शान्ता। इच्छा-ज्ञान-क्रिया, अम्बिका।

कामेश्वरी— वज्रेश्वरी-भगमालिनी-महात्रिपुरसुन्दरी। 'आत्मा' = आत्मा-अन्तरात्मा-परमात्मा-ज्ञानात्मा। 'तत्त्व' = न्यायतत्त्व, आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व, शिवतत्त्व, सर्वतत्त्व।

पुट, धाम, तत्त्व, पीठ, अन्वय, लिंग, मातृका आदि में उक्त चारो बीजों (जिन्होंने कि सृष्टि, स्थिति, संहार एवं अनाख्या का रूप धारण कर रक्खा है) की व्यष्टि-समष्टिभेद से भावना करनी चाहिये। श्रीविद्या में से व्यष्टि एवं समष्टिरूप से (त्रिकूटों में

पृथक्-पृथक् रूपों द्वारा) सृष्टि-स्थिति-संहार एवं अनाख्यारूप वाले चार बीजों का प्रकटीकरण होता है।

श्रीविद्या (पञ्चदशी मन्त्र) का जप-काल—

१. प्रथम कूट में १० मात्रायें हैं।

२. द्वितीय कूट में १०-१/२ मात्रायें हैं।

३. तृतीय कूट में एक लव कम ८-१/२ मात्रायें हैं; अत: सब मिलाकर एक लव कम २९ मात्रा-काल में जप होना चाहिये।

आद्ये दश मध्ये ता: सार्धास्तार्तीयकूटेऽष्टौ।
एकलवोना उनत्रिंशन्मात्रा मनोर्जपे काल:।। (१.३१)

जप के अंग— भास्कर राय की दृष्टि में मन्त्रजप के छ: अंग हैं—

१. मन्त्रोच्चारण का स्मरण	४. विषुवों का स्मरण
२. अवस्थाओं का स्मरण	५. ५, ६, ७, ९ चक्रों का स्मरण
३. शून्यों का स्मरण	६. मन्त्रार्थ-चिन्तन (मन्त्रार्थों का चिन्तन)

एवमवस्थाशून्यविषुवन्ति चक्राणि पञ्च षट् सप्त।
नव च मनोरर्थाश्च स्मरतोऽर्णोच्चरणं तु जप:।। (१.५२)

अर्थात् मन्त्र के वर्णों का उच्चारण करते हुये अवस्थाओं, शून्यों, विषुवों एवं ५, ६, ७, ९ चक्रों का चिन्तन करते हुए मन्त्रार्थ-चिन्तन करना जप कहलाता है।

अवस्थाचतुष्टय एवं संख्याचतुष्टय, नादत्रय एवं चक्रत्रय (सकल, निष्कल, सकल-निष्कलरूप) तथा अकुल, सहस्रार, मूलाधिकारपञ्चक, सूक्ष्म जिह्वा, भ्रूमध्य, बिन्दुस्थान आदि ९ चक्र और इस प्रकार त्रैलोक्यमोहन आदि ९ चक्रों की भावना (बिन्दु से उन्मना तक भावन) एवं महाबिन्दु में ही भावनमन्त्र के अर्थ का अनुसन्धान करने वाली विद्या के ५८ वर्णों में बिन्द्वादिक ९ नादों का ग्रहण ही 'जप' है।

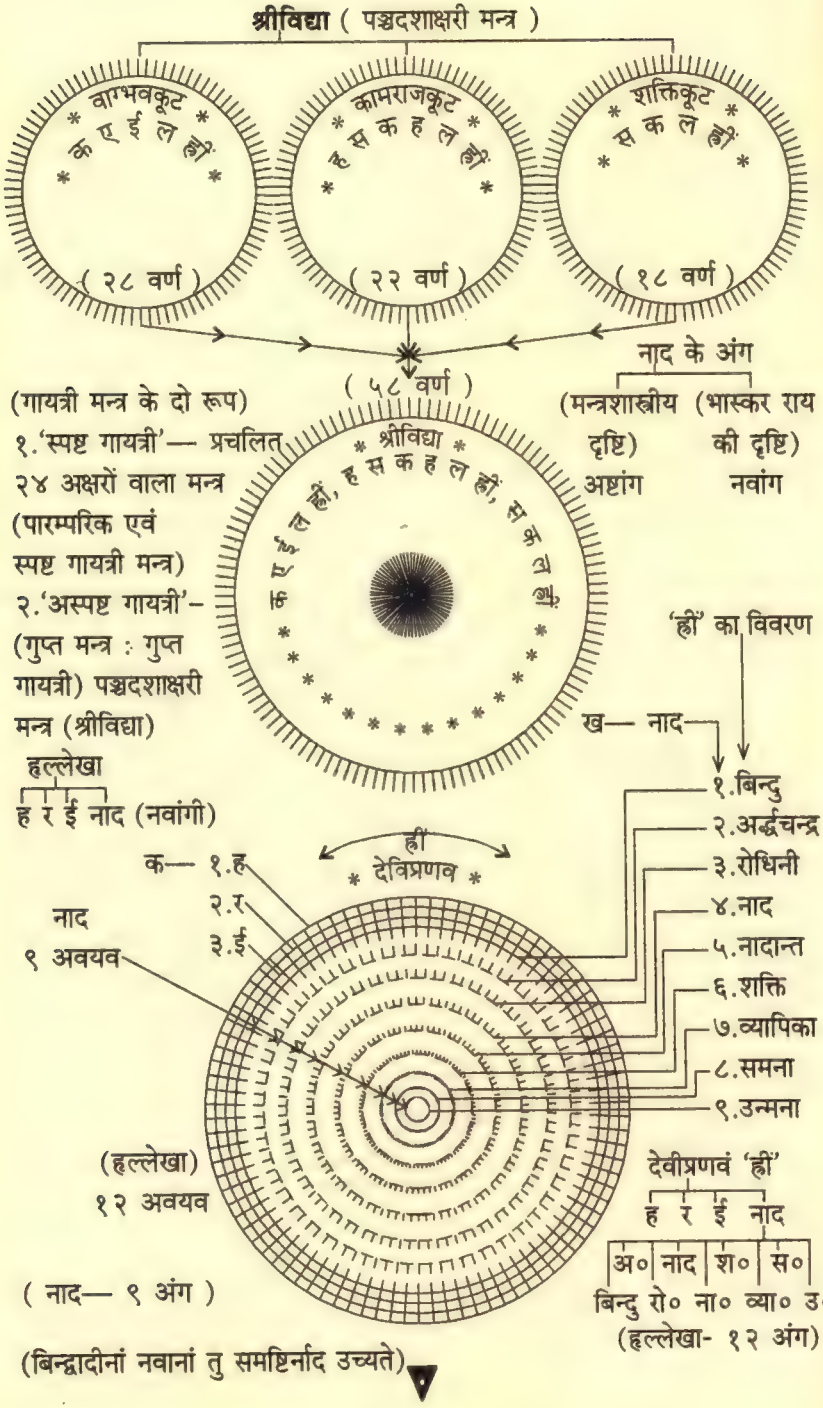
श्रीविद्या (पञ्चदशाक्षरी मन्त्र)
वाग्भवकूट
क ए ई ल ह्रीं
(२८ वर्ण)
कामराजकूट
ह स क ह ल ह्रीं
(२२ वर्ण)
शक्तिकूट
स क ल ह्रीं
(१८ वर्ण)
(५८ वर्ण)
नाद के अंग
(मन्त्रशास्त्रीय दृष्टि) अष्टांग
(भास्कर राय की दृष्टि) नवांग
(गायत्री मन्त्र के दो रूप)
१.'स्पष्ट गायत्री'— प्रचलित २४ अक्षरों वाला मन्त्र (पारम्परिक एवं स्पष्ट गायत्री मन्त्र)
२.'अस्पष्ट गायत्री'– (गुप्त मन्त्र : गुप्त गायत्री) पञ्चदशाक्षरी मन्त्र (श्रीविद्या)
श्रीविद्या
'ह्रीं' का विवरण
ख— नाद
१.बिन्दु
२.अर्द्धचन्द्र
३.रोधिनी
४.नाद
५.नादान्त
६.शक्ति
७.व्यापिका
८.समना
९.उन्मना
हल्लेखा
ह र ई नाद (नवांगी)
ह्रीं
देविप्रणव
क— १.ह
२.र
३.ई
नाद
९ अवयव
(हल्लेखा)
१२ अवयव
देवीप्रणवं 'ह्रीं'
ह र ई नाद
अ० नाद श० स०
बिन्दु रो० ना० व्या० उ०
(हल्लेखा- १२ अंग)
(नाद— ९ अंग)
(बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते)

एकविंश अध्याय

श्रीविद्या और कूटत्रय

'श्रीविद्या' कूटत्रय में विभाजित है। उसके कूटत्रय हैं— वाग्भवकूट, कामराजकूट एवं शक्तिकूट। इस कूटत्रय के स्वरूप को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

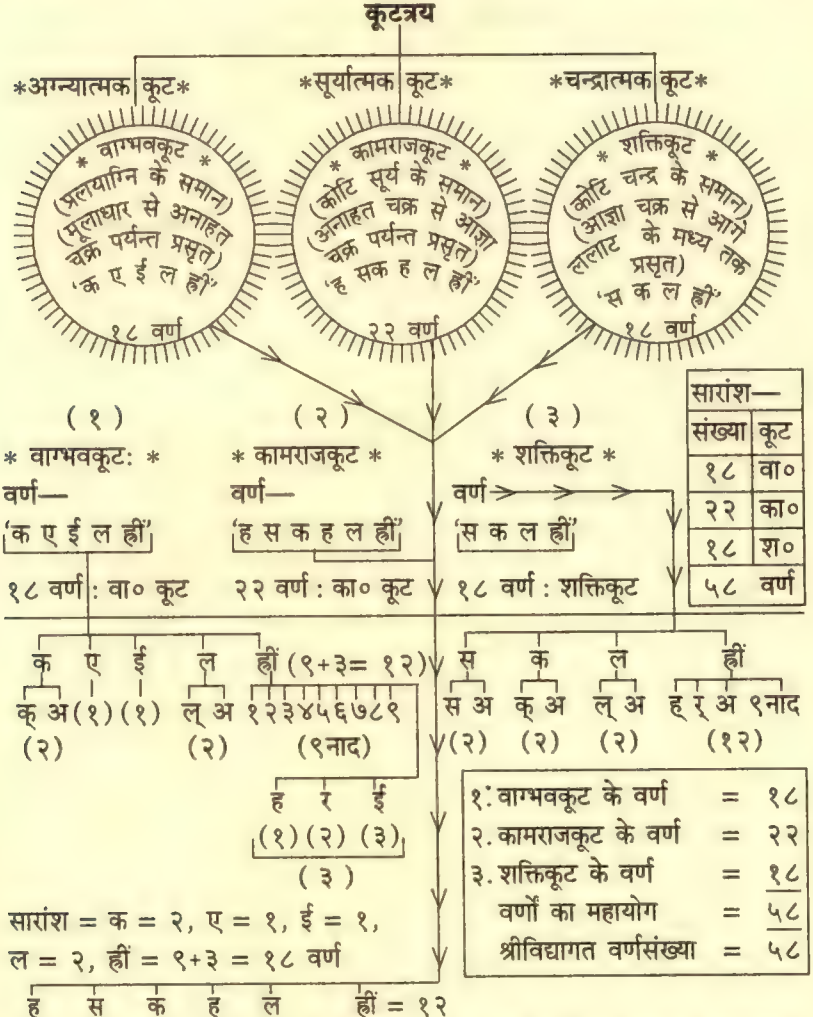

- प्रथमतृतीयकूटे अष्टादशवर्णात्मके। मध्यकूटन्तु चतुरधिकम्। संहत्याष्टपञ्चाशद्वर्णात्मिका विद्येति सिद्धम्।

भास्कर राय द्वारा प्रस्तुत श्रीविद्या का परिचय—

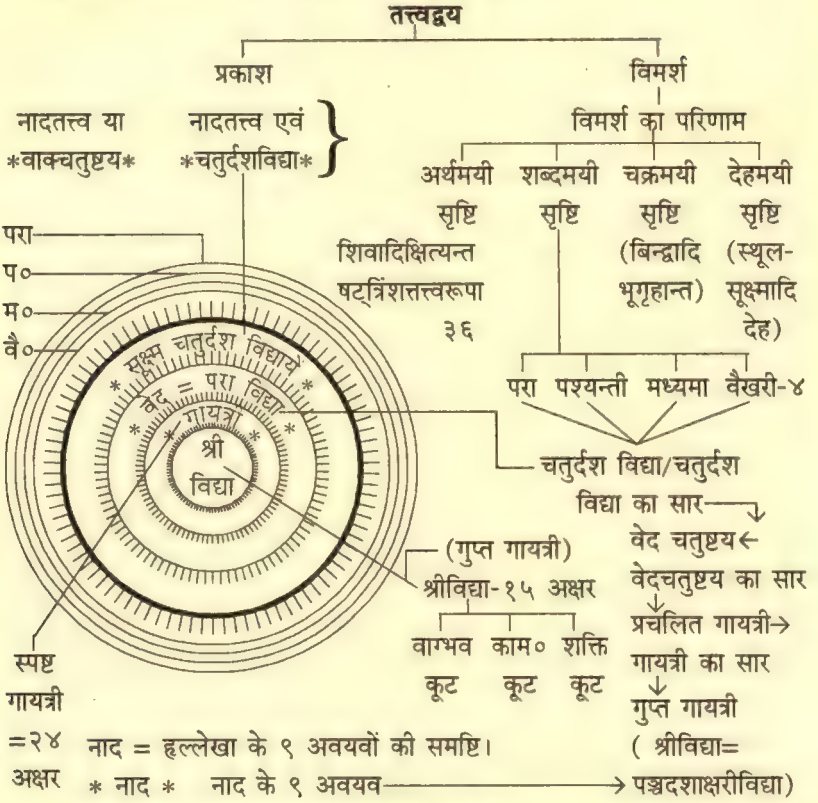

१. नाद— मूलाधार से उठने वाला नाद वर्णों के मध्य से होता हुआ सूत्र की भाँति प्रतीत होता है—

आधारोत्थितनादो गुण इव परिभाति वर्णमध्यगतः।

२. बिन्दु— बिन्दु भाल के मध्य वृत्ताकाररूप में दीप की भाँति देदीप्यमान रहता है—

मध्येकालं बिन्दुर्दीप इवाभाति वर्तुलाकारः।।

३. अर्द्धचन्द्र— बिन्दु के ऊपर अर्धचन्द्र दीप्ति एवं आकृति में अन्वर्थक (आकृति एवं कान्ति दोनों ही दृष्टियों से अर्धचन्द्रमा) के समान है—

तदुपरिगतोऽर्धचन्द्रोऽन्वर्थः कान्त्या तथाकृत्या।

४. रोधिनी— रोधिनी त्रिभुज के आकार की होती है, जो चन्द्रिका की कान्ति से समन्वित है—

अथ रोधिनी तदूर्ध्वं त्रिकोणरूपा च चन्द्रिकाकान्तिः।।

५. **नाद**— नाद पद्मराग की कान्ति वाला, दो अण्डों के मध्य वर्तमान सिरा (नाडिका) की भाँति विराजमान रहता है—

नादस्तु पद्मरागवदण्डद्वयमध्यवर्तिनीव सिरा।

६. **नादान्त**— बाईं ओर स्थित बिन्दु से युक्त विद्युत् के समान प्रकाशित होने वाला नादान्त हल की भाँति प्रतीत होता है—

नादान्तस्तडिदाभः सव्यस्थितबिन्दुयुक्तलाङ्गलवत्।।

७. **शक्ति**— शक्ति दो बिन्दुओं के बायें से उदित होने वाली सिरा की आकृति वाली होती है—

तिर्यग्बिन्दुद्वितये वामोद्गच्छत्सिराकृतिः शक्तिः।

८. **व्यापिका**— व्यापिका बिन्दु एवं उसके ऊपर त्रिकोण के समान आकृति वाली कही गई है—

बिन्दूद्गच्छत्यश्राकारधरा व्यापिका प्रोक्ता।।

९. **समना**— समना की आकृति रेखा के ऊपर-नीचे स्थित दो बिन्दुओं के समान होती है—

ऊर्ध्वाधोबिन्दुद्वयसंयुतरेखाकृतिः समना।

१०. **उन्मना**— ऊपर वाले बिन्दु के विना उपर्युक्त समना ही उन्मना है।

११. **महाबिन्दु**— इसके ऊपर महाबिन्दु की स्थिति है—

सैवोर्ध्वबिन्दुहीनोन्मना तदूर्ध्वं महाबिन्दुः।।

(वरिवस्यारहस्यम्)

मनोन्मनी— यह भी ध्यातव्य है कि अमृतानन्द ने 'शक्त्यादीनां च मात्रांशो मनोन्मन्यास्तथोन्मनी' की व्याख्या के प्रसंग में कहा है कि यहाँ 'मनोन्मनी' पद 'समना' का पर्याय है; अतः इसे इसी अर्थ में गृहीत करके शक्त्यादि तीनों की व्याख्या प्रस्तुत कर रहा हूँ।[१]

मात्रा— लघ्वक्षरस्य कालः। **गुरु**— तद्द्विगुणो गुर्वक्षरस्य।

वर्णों का काल-मान— 'पञ्चदशी मन्त्र'—

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या।।

काम (क), योनि (ए), कमला (ई), वज्रपाणि (ल), गुहा (ह्रीं), ह-स वर्ण, मातरिश्वा (क), अभ्र (ह), इन्द्र (ल), पुनः गुहा (ह्रीं), स-क-ल वर्ण एवं माया (ह्रीं)— यह सर्वात्मिका जगन्माता मूल विद्या है और वह ब्रह्मरूपिणी है।

'काम' और 'मातरिश्वा' दोनों ककार हैं। 'योनि' एकार है। 'कमला' तुरीय स्वर 'ई'

१. वरिवस्यारहस्यम् : भास्कर राय।

है। 'वज्रपाणि' लकार है। 'गुहाद्वय' एवं 'माया' लज्जाबीज (ह्रीं) है। 'हस' एवं 'स-क-ल' स्वरूप है।

वरिवस्यारहस्यम् में कहा गया है कि इन्हीं सांकेतिक शब्दों के व्यवहार द्वारा इस मन्त्र की अत्यधिक गोपनीयता प्रमाणित होती है।

१. वाग्भवकूट— प्रथम वाग्भव कूट में श्रीकण्ठ (अ) से युक्त क्रोधीश (क), कोणत्रय (त्रिभुज ए), लक्ष्मी (ई), अनुत्तर (अ) के साथ मांस (ल) आते हैं—

क्रोधीशः श्रीकण्ठारूढः कोणत्रयं लक्ष्मीः।
मासमनुत्तररूढं वाग्भवकूटं प्रकीर्तितं प्रथमम्।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.९)

२. कामराजकूट— इसमें शिव (ह), हंस (स), ब्रह्मा (क), वियत् (ह) एवं शक्र (ल) आते हैं। ये अक्षर (अ) के साथ हैं—

शिवहंसब्रह्मवियच्छक्राः प्रत्येकमक्षरारूढाः।
द्वितीयीकं कूटं कथितं तत्कामराजाख्यम्।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.१०)

३. शक्तिकूट— शिव (ह) एवं वियत् (ह) के विना उपर्युक्त कामराजकूट शक्ति-कूट कहा जाता है। प्रत्येक कूट के अन्त में एक-एक हल्लेखा (ह्रीं) जोड़ लेनी चाहिये—

शिवतो वियतो मुक्तं तृतीयमिदमेव शक्तिकूटाख्याम्।
हल्लेखानां त्रितयं कूटत्रितयेऽपि योज्यमन्ते स्यात्।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.११)

हल्लेखा का स्वरूप—

हल्लेखायाः स्वरूपं तु व्योमाग्निर्वामलोचना।
बिन्द्वर्धचन्द्ररोधिन्यो नादनादान्तशक्तयः।।१२।।
व्यापिकाः समनोन्मन्य इति द्वादशसंहतिः।
बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते।।१३।।

हल्लेखा के स्वरूप के अन्तर्गत व्योम (ह), अग्नि (र), वामलोचना (ई), बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना तथा उन्मना— ये बारह आते हैं। बिन्द्वादिक नव की समष्टि को 'नाद' कहा जाता है।

ह्रीं— 'ह्रीं' अर्थात् हल्लेखा स्वयं भगवती का स्वरूप है— 'ह्रींकारी ह्रीमती हृद्या' (ललितासहस्रनाम-७०.३००)। वे नादरूपा भी हैं— 'नारायणी नादरूपा' (७०.३००)। वे ह्रीं के अन्तर्गत अनुस्यूत अन्य नौ नाद भी हैं—'नैष्कर्म्या नादरूपिणी' (१६७)। 'नाद' भी भगवती का स्वस्वरूप है—

आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादाद्बिन्दुसमुद्भवः।

'परा वाक्' जीव को आत्मविस्मृत करके रखती है और जीव के हृदय में असंख्य विकल्पों की सृष्टि करती है। 'पश्यन्ती' भूमि में सर्वप्रथम ग्राह्य-ग्राहक और ग्रहीता की त्रिपुटी अस्पष्ट रूप से उदित होती है। परा वाक् से लेकर वैखरी वाक् तक शब्द का अवतरण होने पर 'वर्णात्मक' शब्द का उदय होता है। समस्त मातृकायें या वर्ण ही विकल्पों के उदय का कारण हैं। जब तक मूल में वर्ण को वर्णहीन अविच्छिन्न 'नाद'रूप में परिणत न किया जा सके एवं नाद को 'बिन्दु'रूप में प्रतिष्ठित न किया जा सके, तब तक विकल्पों का अन्त होना सम्भव नहीं है। बिन्दु 'परबिन्दु' के रूप में 'आज्ञाचक्र' के ऊपर नित्य विराजमान रहता है।

नाद— वर्णों को विगलित करके 'नाद'रूप में परिणत करने हेतु 'ताप' आवश्यक है। ताप या अग्नि वस्तुत: 'चिदग्नि' है। सुप्त कुण्डलिनी को जगाने से ही 'चिदग्नि' की प्राप्ति सम्भव है। उद्बुद्ध कुण्डलिनी के तेज के साथ अपने प्राण एवं मन को मिला देने पर मन, प्राण एवं कुण्डलिनी तीन न रहकर एक शक्ति के रूप में परिणत हो जाती हैं। मन को 'चन्द्र', प्राण को 'सूर्य' एवं वाक् शक्ति को 'अग्नि' मान लें तो ये तीनों शक्तियाँ एक शक्ति में परिणत होती हैं। उनके प्रभाव से चतुर्दल में स्थित चार वर्णमातृकायें विगलित होकर 'नाद' का रूप ग्रहण कर लेती हैं और ये चार नाद समष्टिरूप से अभिन्न नाद के आकार में 'मूलाधार' के केन्द्र में स्थित बिन्दु में पहुँच जाते हैं।

बिन्दु— मूलाधार का 'बिन्दु' सुषुम्णा द्वारा ऊपर उठता है और मूलाधार चक्र शून्य हो जाता है। इसी प्रकार स्वाधिष्ठान से आरम्भ करके आज्ञाचक्र तक सभी चक्रों में संस्कार-कार्य चलता है। अन्तत: षट्चक्रों की पचास मातृकायें नादरूप में परिणत होकर एवं छ: बिन्दुओं में परिणत होकर अन्त में एक बिन्दु में स्थित हो जाती हैं। यही 'बिन्दु' भ्रूमध्य में स्थित तृतीय नेत्ररूप बिन्दु है। इसका स्थान आज्ञाचक्र के ऊपर है। इसी के उन्मीलन को (नेत्रोन्मीलन को) आज्ञाचक्र का उन्मीलन कहते हैं।

षट्चक्रों में प्रत्येक चक्र में एक 'बिन्दु' है। वही उस चक्र का केन्द्र है। उस चक्र के अधिष्ठाता चक्रेश्वर उस बिन्दु पर अधिष्ठित रहते हैं। प्रत्येक चक्र का बहिरंग वर्णयुक्त है। उन्हें जाग्रत् कुण्डलिनीस्वरूपा चित् शक्ति द्वारा विगलित करके 'नाद' में परिणत कर सकने पर चक्रस्थ बिन्दु प्राप्त हो पाता है। ब्रह्मनाडी द्वारा उसकी ऊर्ध्व गति होती है। छहों चक्रों की बिन्दुप्राप्ति एवं बिन्दु की ऊर्ध्व गति से भौंहों के ऊर्ध्व में प्रज्ञाचक्षु का उन्मीलन होता है। इस नाद को अतिक्रान्त करके साधक जिस विकल्पशून्य विशुद्ध ज्योति को प्राप्त करता है, वही ज्योति 'बिन्दु' होता है।

अर्धमात्रा— मन की एक मात्रा में स्थिति होने पर 'एकाग्र भूमि' की प्रतिष्ठा होती है। इस स्थिति में सम्पूर्ण विश्व विलुप्त हो जाता है और एकमात्र अनन्त 'चिदाकाश' ही प्रकाशमान रहता है। चिदाकाश होने पर भी वह चिद्रूप में नहीं; बल्कि 'महाशून्य' के रूप में भासित होता है। एकाग्र भूमि में प्रतिष्ठित समग्र मन को तोड़ कर उसके दो टुकड़े करने होते हैं। इसी का नाम है— 'अर्धमात्रा।'

मन की मात्रा जितनी ही क्षीण से क्षीणतर होती जाती है, उतनी ही चैतन्य एवं उससे सम्बद्ध आनन्द की अधिकाधिक वृद्धि होती है। अन्तिमावस्था में मन इतना सूक्ष्म हो जाता है कि तब मन रहते हुये भी न रहने के बराबर रहता है। उस क्षीणतम मन का भी परित्याग करना पड़ता है और उस परित्याग को ही 'उत्सर्ग' एवं 'आत्मसमर्पण' कहते हैं। इस स्थिति में लेशमात्र भी मन नहीं रह जाता। इसी दशा का नाम है— 'चिदानन्दमय' 'दिव्यभूमि।' तत्पश्चात् जीव शिव से 'परमशिव' के रूप में अपने को प्रकट करता है और उसकी शक्ति होती है— 'उन्मना शक्ति' परा शक्ति।

हींगत नव नाद— मन 'बिन्दु' की अवस्था में पूर्ण चन्द्रबिम्ब के समान रहता है। तदुपरान्त 'अर्धमात्रा' से अर्धचन्द्र 'निरोधिका' का अतिक्रमण करके नादमण्डल में प्रवेश करके 'ब्रह्मरन्ध्र' के द्वार पर 'नादान्त' को पार करके 'शक्ति' का आश्रय लेकर व्यापिनीरूप 'महाशून्य' में प्रवेश करता है एवं उसके बाद 'समना' में पहुँचकर विकल्पहीन मन के द्वारा विकल्पहीन मन का भी त्याग कर देता है और तभी ब्रह्मविद्यास्वरूपा 'उन्मना शक्ति' का आविर्भाव होता है।

'एकाग्र भूमि' में चित्त ध्येय का अवलम्बन ज्ञेयरूप में करता है। चित्त स्वयं ही ज्ञान एवं ज्ञाता है। एकाग्र भूमि में ज्ञाता-ज्ञेय और ज्ञान अभिन्न रूप में प्रकट होते हैं। स्वच्छ चित में चिदालोक पड़ने पर प्रज्ञास्वरूप ज्योति का विकास होता है। एकाग्र भूमि से 'निरोध भूमि' एवं फिर 'निरोध वृत्ति' का भी निरोध एवं संस्कारों का भी निरोध करना पड़ता है। निरोध हो जाने पर वृत्ति एवं संस्कार दोनों विलुप्त हो जाते हैं।

जहाँ तक चञ्चल मन की गति है, वहाँ तक 'काल का राज्य' है। मन के एकाग्र होने पर स्थूल काल का अस्तित्व न रहकर सूक्ष्म काल ही अवशिष्ट रह जाता है। मात्राक्षय के साथ ही साथ काल के अंश भी क्षीण होते जाते हैं। अमात्र भूमि में ही काल का अवसान होता है। यही भगवद्धाम में प्रवेश है और यही है— मन से उन्मना की यात्रा का सारांश या मात्रा से अमात्रा की यात्रा।

मूलत: 'नाद' एक ही है और वह है— 'अनाहत नाद'। कहा भी है—

एको नादात्मको वर्ण: सर्ववर्णविभागवान्।
सोऽनस्तमितरूपत्वादनाहत इवोदित:।।

इस अनाहत नाद के मुख्य अभिव्यक्तिस्थान दो बीज हैं— सृष्टिबीज 'सकार' एवं संहारबीज 'हकार'। सकार + हकार → नाद। साधक का हृदय परिष्कृत हो और भगवन्नाम चैतन्यसम्पन्न करके शिष्य को प्रदान किया गया हो तो नादात्मक नाम अपने-आप चलता रहता है, उसे चलाना आवश्यक नहीं होता।

पूर्ण पश्यन्ती अवस्था में नाद श्रुतिगोचर नहीं होता। मन्त्रात्मक इष्टदेवता का साक्षात्कार षोडश कलाविशिष्ट आत्मा की 'षोडशी' या 'अमृतकला' की अभिव्यक्ति है।

जहाँ तक नाद की बात है, मन न रहने पर नाद नहीं रहता एवं नाद के न रहने पर

मन भी नहीं रहता। नाद-श्रवण एकाग्रावस्था की ज्ञानदशा में होता है। नाद-श्रवण-स्थगन निरोधावस्था है। नादश्रवण = एकाग्रावस्था।

नादश्रवण का स्थगन = निरोधावस्था। (मात्र संस्काररूप से मन रहता है, किन्तु संस्कार के भी न रहने पर चिन्मात्र शुद्ध आत्मा की स्वरूपस्थिति रहती है।)

अविभक्त वर्ण (परनाद) या परज्योति एक चिदात्मिका शक्ति है और यही पूर्णाहन्तास्वरूप 'परा वाक्' है।

'नाद' सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि है। 'नाद' ही विश्व का प्राण या जीवनी शक्ति है। यही अनन्त विश्व को गर्भ में धारण करके प्रसुप्त सर्प के रूप में अवस्थित रहता है। यही है— 'परम बीज।' विश्व को अपने गर्भ में धारण किये रहने तक इसका नाम है— 'परा कुण्डलिनी' और जब इसका नादात्मक रूप में स्फुरण होता है, तब इसे कहते हैं— 'वर्णकुण्डलिनी।' जब यह नाद भी सुषुप्ति में अवस्थित हो जाता है, तब इसे कहते हैं— 'प्राणकुण्डलिनी।' इस प्रकार स्पष्ट है कि नाद के तीन रूप हैं— परा कुण्डलिनी, वर्ण कुण्डलिनी एवं प्राण कुण्डलिनी।

नादसञ्चरण की क्रियाओं के विभिन्न चरण— १. अ-उ-म → २. भ्रूमध्य में बिन्दुरूप में परिणति : अ + उ + म का स्थूल + सूक्ष्म + कारणस्वस्वरूप में भेदमय अवस्थान 'बिन्दु' में अविभक्त एवं एकीभूत होकर अनुभूत होता है। योगियों की नौ भूमियों में (चिन्मय अनुभूतियों में) 'बिन्दु' प्रथम है। नौ भूमियाँ ही 'नव नाद' हैं।

'बिन्दु' का उच्चारणकाल 'अर्ध मात्रा' है। एक मात्रा से अर्ध मात्रा में प्रवेश अत्यन्त दुष्कर है। अर्ध मात्रा = एकाग्रता + निरोध का सन्धिस्थान। आज्ञाचक्र में 'एकाग्रता' का पूर्ण विकास होता है। बिन्दु की भूमि में जागतिक ज्ञान पूर्णतया विलुप्त नहीं होता। समाधिज प्रज्ञा से यह उत्कृष्टतरावस्था है। अर्ध मात्रा का ज्ञान चिन्मयानुभव है। पाँच शून्यों में प्रथम शून्य यही 'बिन्दु' है।

अर्द्धचन्द्र— बिन्दु के बाद आता है— 'अर्धचन्द्र।' इसकी मात्रा है— १/४। यह शून्य नहीं है। बिन्दु यदि पूर्ण चन्द्र है तो अर्धचन्द्र है, उसका अर्धांश। अर्धचन्द्र बिन्दु के ऊपर स्थित है।

निरोधिका या रोधिनी— यह तृतीय भूमि है। इसकी मात्रा है— १/८। समग्र विश्व के शासन का दायित्व जिन ब्रह्मा आदि पञ्च कारणों को दिया गया है, वे भी इस भूमि को अतिक्रान्त नहीं कर पाते। केवल योगी ही यहाँ तक पहुँच पाते हैं।

नाद और नादान्त— निरोधिका के बाद नाद एवं 'नाद' के बाद 'नादान्त' आते हैं। नाद की मात्रा है— १/१६ एवं नादान्त की मात्रा है— १/३२।

ह्रीं में अवस्थित नादनवक— नाद को चतुर्दिक आच्छादित करके असंख्य मन्त्र-मन्त्रेश्वर विद्यमान हैं। नाद का स्थान 'ब्रह्मरन्ध्र' के मुख में है। विशुद्ध चिति की धारा यहीं

से प्रारम्भ हुई है; अत: विशुद्ध, त्रिगुणातीत एवं चित्सम्पन्न शब्द की अनुभूति भी यहीं से होती है। 'नादान्त' शून्य है, तृतीय शून्य है। कोई-कोई आचार्य नाद-नादान्त को 'ईश्वर' मानते हैं। इस भूमि में नि:शेष वाचक वर्ण अभिन्न रूप में स्थित हैं। इसके बाद अनाहत ध्वनि (हंस) मस्तक में ध्वनित होती रहती है।

'नादान्त' नाड़ियों का आधार ब्रह्मविल में लीन है। इसने मोक्षद्वार को अवरुद्ध कर रक्खा है।

नादान्त के अनन्तर है— 'शक्तिस्थान' : षष्ठ चिद्भूमि। यह ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर स्थित है। शक्ति का ही नामान्तर है— 'ऊर्ध्व कुण्डलिनी।' यह विश्वाधार है। इसके केन्द्र में है— 'व्यापिनी कला।' शक्ति की मात्रा १/६४वीं है। शक्ति में ही आनन्द सत्ता की अनुभूति होती है और तदनन्तर ब्रह्म की सगुण शक्ति के आनन्द की अनुभूति होती है। शक्ति से उन्मनी तक की प्रत्येक भूमि का प्रकाश बारह सूर्यों के समान है। 'व्यापिनी' शून्यात्मक है, किन्तु शक्ति नहीं। शक्तितत्त्व ही 'अनाश्रित भुवन' या योगियों की 'निरालम्बपुरी' है। पृथ्वी पर्यन्त समस्त तत्त्व एवं समस्त भुवन शक्ति का ही विस्तार है। अनाश्रित भुवन के चतुर्दिक चार शक्तियाँ अवस्थित हैं और केन्द्र में स्थित है— 'अनाश्रिता शक्ति।' शिवरूप 'अनाश्रित देव' के क्रोड़ में अनाश्रिता शक्ति अवस्थित है।

व्यापिनी के ऊर्ध्व में स्थित है— 'समना।' यही परा शक्ति है। यह 'व्यापिनी' पद में अवस्थित 'अनाश्रित भुवन' के भी ऊर्ध्व में स्थित है। यही है— समस्त कारणों का महाकारण और समस्त अण्डों का मूलाधार। शिव इसी शक्ति में अवस्थित होकर समग्र जगत् की सृष्टि-रक्षा-संहार-निग्रह-अनुग्रह व्यापार निष्पादित करते हैं। 'व्यापिनी' की मात्रा १/१२८ है और समना की मात्रा १/२५६ है।

समना के ऊर्ध्व देश में स्थित है— 'उन्मना।' किसी-किसी आचार्य का मत है कि इसकी मात्रा १/५१२ है और अन्य आचार्यों की दृष्टि में यह अमात्रक होने के कारण मात्रा-शून्य है। अत: इसका कोई भी उच्चारण-काल है ही नहीं। यह मन की अतीतावस्था है। यहाँ नादात्मा 'शब्दब्रह्म' भी नहीं है। यही पञ्चम शून्य भी है। यही ९ नादों में नवाँ नाद है।

१/२५६ मात्रा को मन की सूक्ष्मतम मात्रा का उच्चारण माना गया है और 'लव' को काल की सूक्ष्मतम इकाई। उन्मना में न तो मन की क्रिया है और न ही उसका सन्धान। 'मन' ही तो पूर्ण चन्द्र है। मन के रहने पर ही काल का भय रहता है, इसके बाद नहीं। यहाँ काल का प्रवेश है ही नहीं।

ह्रीं एवं नादनवक— नाद एवं पश्यन्ती— बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका एवं उन्मना— यह नौ का समूह 'नाद' कहलाता है। यह नवांगी नाद 'ह्रीं' (हल्लेखा) का अंग है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही 'परा वाक्' हैं। वे ही 'मातृका' (माति तरति कायतीति मातृका) हैं। उसी निर्विकारा शक्ति में अनादि सिद्ध अदृष्ट के कारण स्वान्त:संहृत विश्व में सिसृक्षा उत्पन्न होती है और श्रष्टव्य पदार्थालोचनार्थ वह ईक्षण करती है— 'तदैक्षत बहु स्यां

प्रजायेय।' वही 'ईक्षण' प्रवृत्ति के निमित्त से भगवती में 'पश्यन्ती' का रूप ग्रहण करता है। वही 'पश्यन्ती' मातृका उत्तीर्ण होने के कारण 'उत्तीर्णा' भी कही जाती है। उसके अवयव 'वामा' आदि आठ शक्तियाँ हैं और वही व्यष्टि-समष्टिरूप से नौ रूपों में रूपायित होकर अविकृत शून्यादिक 'नव नाद' बन जाती हैं। उसकी समष्टि 'नादध्वनि' आदि पदवाच्य होकर 'मध्यमा' मातृका बन जाती है। मध्यमावयवस्वरूप, अविकृतशून्य स्पर्श नादध्वनि बिन्दु शक्ति बीजाक्षरस्वरूप नादनवक मूलाधार आदि षट् चक्रों के नाद, नादान्त एवं ब्रह्म-रन्ध्र में स्थित है। इसी नादनवक से क-च-ट-त-प-य-श आदि वर्गों एवं अक्षरों से 'वैखरी' मातृका का निर्माण होता है (वैखरी— वै निश्चयेन स्पष्टतरत्वात्खं कर्णविवरवर्ति-नभोरूपं श्रोत्रेन्द्रियं राति गच्छति तज्ज्ञानविषयो भवति इति वैखरी)। समस्त वर्णों में नाद अनुस्यूत हैं— 'वर्णेषु नादो अनुस्यूतः।'[१]

नाद की अनुभूति कहाँ और किस तरह होती है— जिस प्रकार परिणाम (घट) में परिणामी (मृतिका) दिखाई पड़ता है या पट (परिणाम) में तन्तु या तल दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार दो वर्णों के मध्य भाग में वर्ण का मूल शरीर स्थित रहता है, मणिद्वय के मध्यभाग में स्थित सूत्र की भाँति ही शुद्ध नाद का भान होता है— 'द्वयो-र्वर्णयोर्मध्यभागे मणिद्वयमध्यभागस्थशुद्धसूत्रवच्छुद्धनादस्य भानम्। वर्णशरीरान्तर्भागे तु पटाभेदेन संवलिततत्तुवद्धटान्तर्मृद्वच्च तत्तद्वर्णाभेदेनैव नादस्य भानम्।'[२]

'आधारोत्थित नादो गुण इव परिभाति वर्णमध्यगतः' अर्थात् 'नाद' मूलाधार चक्र से निकलकर समस्त वर्णों में उनके गुण (धर्म) की भाँति— माला में पिरोये गये सूत्र की भाँति— स्थित है। 'नाद' बिन्द्वादिनवक का समूह है— 'नादो बिन्द्वादिनवकम्' (वरिवस्या-रहस्यम्)। जो उत्कान्तमनस्का हो, वही है 'उन्मना'— 'उत्कान्तमनस्कत्वादुन्मना' (वरि-वस्यारहस्यम्)। 'व्यापिका' को स्पष्ट करते हुये वरिवस्यारहस्यम् में कहा गया है कि 'बिन्दुसंस्पृष्टाग्रकत्रिकोणाकारा व्यापिका। बिन्दुद्वयान्तरालस्थऋजुरेखामयी पुनः समना। इयं च ब्रह्मरन्ध्रसंस्थाना। इयमेव च 'मनोन्मनी' व्यवह्रियते।'

मात्राकाल का विवरण और श्रीविद्या—

१. श्रीविद्या का विभाजन तीन कूटों में किया गया है, जिसके निम्न नाम हैं—

क. 'वाग्भवकूट'— मन्त्र— क ए ई ल ह्रीं
ख. 'कामराजकूट'— मन्त्र— ह स क ह ल ह्रीं
ग. 'शक्तिकूट'— मन्त्र— स क ल ह्रीं

पञ्चदशी मन्त्र

पञ्चदशी मन्त्र का मूल स्रोत है— वेद : 'कामो योनिः कमला.. विश्वमातादिविद्या।'

मात्रा— शब्द के उच्चारणकाल को 'मात्रा' कहते हैं। एक मात्रा ह्रस्वोच्चारण है अर्थात् लघु अक्षर का उच्चारणकाल ही एक मात्रा है। गुरु अक्षर का मात्राकाल द्विमात्रिक है। सारांश यह कि लघ्वक्षर का मात्राकाल एक एवं दीर्घाक्षर का मात्राकाल दो मात्रा होता

---

१. भास्कर राय : वरिवस्यारहस्यम्। २. भास्कर राय : वरिवस्यारहस्यम्।

है। तीन मात्राकाल को 'प्लुत' कहते हैं और व्यञ्जन को 'अर्धमात्रा' कहते हैं—

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं त्वर्धमात्रकम्।।

'अ' = एक मात्रा। 'आ' = दो मात्रा। 'आऽऽ' = तीन मात्रा।
एक मात्रा = ह्रस्व : लघु। दो मात्रा = दीर्घ : गुरु।
तीन मात्रा = प्लुत। अर्धमात्रा = व्यञ्जन। यथा— क्, ख्, ग् आदि।

मात्राओं का आरोहात्मक सूक्ष्म क्रम (सूक्ष्म से सूक्ष्मतर क्रम)—

क. प्लुत = ३ मात्रायें। दीर्घ = २ मात्रायें। ह्रस्व = १ मात्रा।
व्यञ्जन (हलन्त) = अर्धमात्रा (३-२-१-१/२)।

ख. बिन्दु का १/२ काल = 'अर्धचन्द्र।' अर्धचन्द्र का १/२ काल = 'रोधिनी।' रोधिनी का १/२ काल = 'नाद।' नाद का १/२ काल = 'नादान्त।' नादान्त का १/२ काल = 'शक्ति।' शक्ति का १/२ काल = 'व्यापिका।' व्यापिका का १/२ काल = 'समना।' समना का १/२ काल = 'उन्मना।'

लव = काल का परमाणु 'लव' कहलाता है।

किसी कमल के फूल में सुई प्रविष्ट कराते समय प्रत्येक पंखुड़ी में सुई के प्रवेश करने में जो समय लगता है, उसको 'लव' कहते हैं अर्थात् एक पंखुड़ी में सुई के प्रवेश कराने के बाद दूसरी पंखुड़ी में सुई के प्रविष्ट होने के मध्य का समय ही 'लव' है—

नलिनीपत्रसंहत्या: सूक्ष्मसूच्यभिवेधने।
दले दले तु य: काल: स कालो लवसंज्ञित:।
अत: सूक्ष्मतम: कालो नोपलभ्यो भृगूद्वह।।

१ मात्रा = 'षट्पञ्चाशदुत्तरशतद्वयलवैरेका मात्रा' (वरिवस्यारहस्यम्)।

१ मात्रा = २५६ लव। बिन्दु = १२८ लव। अर्धचन्द्र = ६४ लव। रोधिनी = ३२ लव। नाद = १६ लव। नादान्त = ८ लव। शक्ति = ४ लव। व्यापिका = २ लव। समना = १ लव। वरिवस्यारहस्यम् में भास्कर राय कहते हैं कि उन्मना में कोई भी लवसंख्या नहीं है; क्योंकि उन्मना में काल है ही नहीं। योगिनीहृदय में उन्मना का काल भी दिया गया है और उसका काल बताया गया है— ५१२ हवाँ भाग (एक मात्रा का ५१२ हवाँ भाग)। अत: मात्रा का मान होगा ५१२ लवात्मक— 'मात्रास्वरूपं च द्वादशोत्तरपञ्चशतलवात्मकत्वमेव प्रतीयते।' (भास्कर राय)। किन्तु यह भी ध्यातव्य है कि 'देशकालानवच्छिन्नं तदूर्ध्वं परमं महत्।' इससे तो यही प्रतीत होता है कि काल का सञ्चार उन्मनी तक है और 'उन्मनी' के बाद ही इसका अन्त हो पाता है।

'चतु:षष्टिस्तदूर्ध्वं तु द्विगुणं द्विगुणं तत:' इस कथन के अनुसार उन्मना काल = ५१२ : 'द्वादशोत्तरपञ्चशततमो भाग उन्मनाकाल:।' मात्रास्वरूप : द्वादशोत्तरपंचशतलवात्मक। शक्ति = चतु:षष्टितम मात्राभाग। व्यापिका (द्विगुणित) = १२८।

वर्ण और उच्चारणस्थान तथा उच्चारणप्रयत्न—

१. 'अन्तःस्थ' — य, र, ल, व। स्पर्श— क से म तक।
२. 'ऊष्म' — श, ष, स, ह।
३. 'अल्पप्राण' — वर्गों के प्रथम-तृतीय-पञ्चम वर्ण तथा अन्तःस्थ।
४. 'महाप्राण' — वर्गों के द्वितीय एवं चतुर्थ तथा ऊष्म वर्ण।

(वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमाः यणश्चाल्पप्राणाः। वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः।)

वर्णों के उच्चारणस्थान—

१. 'अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः'	— अ, आ, विसर्ग, कवर्ग, ह	= कण्ठ।
२. 'इचुयशानां तालु'	— इ, ई, य, चवर्ग, श	= तालु।
३. 'ऋटुरषाणां मूर्धा'	— ऋ, ॠ, र, टवर्ग, ष	= मूर्धा।
४. 'ऌतुलसानां दन्ताः'	— ऌ, ल, तवर्ग, स	= दन्त।
५. 'उपूपध्मानीयानामोष्ठौ'	— उ, ऊ, उपध्मानीय, पवर्ग	= ओष्ठ।
६. 'ञमङणनानां नासिका'	— ञ, म, ङ, ण, न	= नासिका।
७.	ञ	= तालु+नासिका।
८.	ङ	= कण्ठ+नासिका।
९. 'एदैतोः कण्ठतालु'	— ए, ऐ	= कण्ठ+तालु।
१०. 'ओदौतोः कण्ठोष्ठम्'	— ओ, औ	= कण्ठ+ओष्ठ।
११. 'नासिकानुस्वारस्य'	— अनुस्वार	= नासिका।

वर्णोच्चारण में बाह्य प्रयत्न (११)—

१. विवार	४. नाद	७. अल्पप्राण	१०. अनुदात्त
२. संवार	५. घोष	८. महाप्राण	११. स्वरित्
३. श्वास	६. अघोष	९. उदात्त	

वर्णोच्चारण में आभ्यन्तर प्रयत्न (५)—

१. स्पृष्ट — स्पर्श वर्णों का उच्चारण प्रयत्न।
२. ईषत्स्पृष्ट — अन्तःस्थ वर्णों का उच्चारण प्रयत्न।
३. ईषद्विवृत — ऊष्म वर्णों का उच्चारण प्रयत्न।
४. विवृत — (ह्रस्व अ के अतिरिक्त शेष) स्वरों का उच्चारण प्रयत्न।
५. संवृत — केवल ह्रस्व अ का सिद्ध प्रयोग होने पर संवृत प्रयत्न, अन्यथा विवृत।

वर्गों के प्रथम द्वितीय वर्ण एवं श, ष, स (खर) का विवार, श्वास एवं अघोष प्रयत्न है।

शेष का संवार, नाद एवं घोष प्रयत्न है।

स्वरों का प्रयत्न— उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित्।

सवर्ण— एक ही स्थान से निकलने वाले एक ही आभ्यन्तर प्रयत्न वाले वर्ण 'सवर्ण' कहलाते हैं— 'तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् = ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं

यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात्।'

कूटत्रय में मन्त्र का जपकाल

प्रथम कूट (१० मात्रायें) | मध्यकूट (साढ़े १०-१/२ मात्रायें) | तृतीय कूट, (एक लव कम साढ़े आठ मात्रायें) } (वरिवस्यारहस्यम् श्लोक-३१)

१०+१०-१/२+८-१/२ = एक लव न्यून २९ मात्राकाल (जप का मात्राकाल)।

आद्ये दश मध्ये ताः सार्धास्तार्तीयकूटेऽष्टौ।
एकलवोना ऊनत्रिंशन्मात्रा मनुर्जपे कालः।।३१।।

कूटत्रय (५८ वर्ण)

वाग्भव कूट (१८ वर्ण) | कामराजकूट (२२ वर्ण) | शक्तिकूट (१८ वर्ण)

प्रथमेऽष्टादशवर्णा द्वाविंशतिरक्षराणि मध्ये स्युः। = १८+२२+१८= ५८

प्रथमेन तुल्यमन्त्यं सङ्घातेनाष्टपञ्चाशत्।। (वरिवस्यारहस्यम्-१४)

१. कामकला (ई) तथा त्रिकोण (ए) का द्विमात्रिक, बिन्दुशून्य हल्लेखा (ह्री) का त्रिमात्रिक (तीन मात्राकाल के बराबर) उच्चारण किया जाना चाहिये—

'ई' एवं 'ए' = द्विमात्रिक। 'ह्री' (बिन्दुशून्य हल्लेखा) = त्रिमात्रिक है।

२. अन्य वर्णों के उच्चारण का काल अर्धमात्रासहित मात्राकाल (डेढ़ मात्राकाल) एवं बिन्दु का अर्धमात्राकाल है।

३. उत्तरवर्ती वर्णों का उच्चारणकाल अपने पूर्ववर्ती का आधा होना चाहिये—

मात्राद्वितयोच्चार्या कामकला च त्रिकोणा च।
बिन्दुरहितहल्लेखा मात्राकालत्रयोच्चार्या।।१५।।

अन्येषां वर्णानां मात्राकालोऽर्धमात्रया सहितः।
बिन्दोरर्धं मात्रा परे परे चापि पूर्वपूर्वार्धाः।।१६।।

प्रथमेऽष्टादश वर्णा द्वाविंशतिरक्षराणि मध्ये स्युः।
प्रथमेन तुल्यमन्त्यं सङ्घातेनाष्टपञ्चाशत्।।१४।।

नाद का काल = मात्राकाल : एक लवशून्य।
वाक्कूट में = ११। कामराजकूट में = ११-१/२।
शक्तिकूट में = ८-१/२ (एक लव कम)।

संहत्यैकलवोनो मात्रा कालोऽस्य नादस्य।
एकादश वाक्कूटे सार्धा एकादशोदिता मध्ये।।१७।।

सार्धा अष्टौ शक्तावेकैकलवोनिता मात्राः।
संहत्यैकत्रिंशन्मात्रा मन्त्रे लवत्रयन्यूनाः।।१८।।

मन्त्राक्षरों का उत्पत्तिस्थान एवं यत्न—

१. तीन ककार— 'क' (ए ई ल ह्रीं), (ह स) 'क' (ह ल ह्रीं) (स) 'क' (ल ह्रीं) = ३ ककार।

२. दस अकार— क, ल, ह, स, क, ह, ल, स, क, ल (ये व्यञ्जन वर्ण, जो कि तीनों कूटों में आये हैं, उन सभी (व्यञ्जनों) में अकार संयुक्त है; अतः १० अकार हैं।)

३. पाँच हकार— वाग्भवकूट, कामराजकूट एवं शक्तिकूट के अन्त में लगे हुये 'ह्रीं' में ३ हकार तथा कामराजकूट के २ हकार = ५ हकार।

३ ककार + १० अकार + ५ हकार = 'कण्ठ'।

द्वितीयाक्षर = कण्ठ एवं तालु। ईकारचतुष्टय = 'ह्रीं' में स्थित ३ 'ई' एवं वाग्भवकूट का 'ई' = ४ ईकार = 'तालु'।

३ लकार एवं २ सकार = 'दन्त'। ३ रकार = 'ह्रीं' के ३ 'र' = 'मूर्द्धा'। बिन्द्वादिक नवकत्रय = 'नासिका' (स्पृष्ट)। ककार = 'स्पृष्ट यत्न'। अकार = 'संवृत'। ईकार + एकार = 'विवृत'। रेफ + लकार = 'ईषत् स्पृष्ट'। हकार + सकार = 'ईषत् विवृत'। बिन्द्वादिक = 'संवृततम'— ये आभ्यन्तर यत्न के अन्तर्गत हैं।

'ककार' = विवार + श्वास + घोष + अल्पप्राण। 'सकार' = महाप्राण + विवार। 'स्वर' = उदात्त। 'रेफ' + 'लकार' = संवार, नाद, घोष, अल्पप्राण। 'हकार' = संवारादित्रयात्मक + महाप्राण। 'बिन्द्वादि' = संवारादि चतुष्कवान। ये बाह्य प्रयत्न के अन्तर्गत हैं—

कण्ठे च कण्ठतालुनि तालुनि दन्तेषु मूर्ध्नि नासायाम्।
स्पृष्टविवाराद्यान्तरबाह्यैर्यत्नैस्तदक्षरोत्पत्तिः ।।१९।।

प्रथम कूट— मूलाधार से आरम्भ करके प्रलयाग्नि के समान भासित होने वाला 'प्रथम कूट' है। यह 'अनाहत' को स्पर्श करता है।

द्वितीय कूट— अनाहत चक्र से आगे कोटि सूर्य के समान आभा वाला 'द्वितीय कूट' है और यह 'आज्ञाचक्र' को स्पर्श करता है।

तृतीय कूट— आज्ञाचक्र से आगे ललाट के मध्य कोटि चन्द्र के समान आभा वाला 'तृतीय कूट' है।

उपर्युक्त तीनों कूटों के वर्णों को माला की मणियों के रूप में क्रमशः एक के ऊपर एक की भावना करनी चाहिये।

शक्त्यादि तीनों का स्वरूप द्वादश रवि की कान्तिपुञ्ज के समान देदीप्यमान होता है। इस प्रकार वर्णों के स्थान का ज्ञान कर यत्न (आभ्यन्तर एवं बाह्य) के अनुसार उच्चारण करना चाहिये।

प्रथम कूट के नाद का उच्चारण द्वितीय कूट के साथ करना चाहिये। इसी प्रकार द्वितीय कूट के नाद का उच्चारण तृतीय कूट के साथ करना चाहिये, पृथक् नहीं।

तृतीय कूट को प्रथम दोनों कूटों के बिन्दु आदि नवों के गण के सम्मेलन द्वारा चित्रित मानना चाहिये।

'बिन्दु' से आरम्भ कर क्रमशः 'समना' में समाप्त होने वाले तृतीय कूट के 'नाद' का उच्चारण करना चाहिये एवं 'उन्मनी' में अन्तर्लीन मानना चाहिये।

प्रथम (कूट) में दश मात्रायें, मध्य (कूट) में साढ़े दश मात्रायें एवं तृतीय (कूट) में एक लव कम साढ़े आठ; कुल मिलाकर एक लव न्यून उन्तीस मात्राकाल जप में होना चाहिये।

इस विद्या में तीनों कूटों को पृथक्-पृथक् (व्यष्टि) एवं एक साथ (समष्टि) चार बीजों का प्राकट्य होता है, जिनका सृष्टि-स्थिति-संहार और अनाख्या (नामरहित) रूप में चिन्तन करना चाहिये। चार विभिन्न रूपों में पुट, धाम, तत्त्व, पीठ, अन्वय, लिंग एवं मातृका आदि में इन चार बीजों की भावना व्यष्टि-समष्टि भेद से करनी चाहिये। तीनों ब्रह्मा आदि देवता और भारती आदि शक्तियाँ प्रत्येक अक्षर के स्वरूप हैं।

तीन कुण्डलिनियाँ, जिन्हें हल्लेखा के अन्तर्गत 'कामकला' (ई) की 'सपरार्धकला' भी कहा जाता है, से उत्पन्न होने वाले नादों को तीनों चक्रों के त्रिक में भावना करनी चाहिये।

१. जागरण— दश इन्द्रियों के गण की व्यवहाररूप जाग्रत् अवस्था में प्रकाशस्वरूप कारण तृतीय कूट का रेफ समझना चाहिये। तृतीय कूट का रेफ = 'जाग्रदवस्था'।

इन्द्रियदशकव्यवहृतिरूपा या जागरावस्था।
तत्र प्रकाशरूपो हेतुर्भाव्यस्तृतीयगे रेफे।।

२. स्वप्नावस्था— तृतीय कूट का 'ई'। अन्तःकरणचतुष्क के व्यवहाररूप स्वप्नावस्था का कारण प्रकाश है, उसे तृतीय कूट का हल्लेखा स्थित 'ईकार' (द्वारा वहाँ विद्यमान उस प्रकाश को) समझना चाहिये। द्वितीय कूट के लकार को भी वैसे ही समझना चाहिये।

३. सुषुप्ति की अवस्था— तृतीय कूट का 'बिन्दु'। तृतीय कूट के बिन्दु में सुषुप्ति की भावना करनी चाहिये, जो कि अन्तःकरण एवं जीव की सुषुप्तावस्था का कारण है—

वेदनमेव सुषुप्तिश्चिन्त्या तार्तीयबिन्दौ सा।

४. तुरीयावस्था— इसे ही 'नादावस्था' कहते हैं। चैतन्य को अभिव्यक्त करने वाले नाद की अवस्था को 'तुरीयावस्था' कहते हैं। इसकी भावना अर्द्धचन्द्र एवं आगे के तीन वर्णों तक करनी चाहिये।

५. तुरीयातीतावस्था— नादान्त आदि पाँच वर्ण परिपूर्ण आनन्दैकघन की अवस्था, जो व्यक्ति को वाणी द्वारा गोचर नहीं होती, 'तुरीयातींतावस्था' कहलाती है। इसकी भावना नादान्त आदि पाँच वर्णों में करनी चाहिये।

▼

द्वाविंश अध्याय

जपतत्त्व

आचार्य भास्कर ने जप के जो अंग स्वीकार किये हैं, वे हैं— १. अवस्था, २. शून्य, ३. विषुव, ४. चक्र एवं ५. मन्त्रार्थ-चिन्तन। इनमें 'विषुव' सात हैं।

सप्त विषुव

प्राणविषुव मन्त्रविषुव नाडीविषुव प्रशान्तविषुव शक्तिविषुव कालविषुव तत्त्वविषुव

१. प्राणविषुव— प्राण, आत्मा एवं मन के संयोग को ही 'प्राणविषुव' कहते हैं—

प्राणात्ममानसानां संयोगः प्राणविषुवाख्यः।। (१.४३)

आत्मा प्राणा मनश्चेत्येतेषामैक्यं प्राणविषुवसंज्ञमिति केचित्।

२. मन्त्रविषुव— आत्मा के रूप में भावना करना 'मन्त्रविषुव' है। प्रथम कूट के नाद एवं व्यष्टि-समष्टिभेद से अनाहत से आरम्भ करके ब्रह्मरन्ध्र तक उत्पन्न होने वाले नाद एवं चारो बीज तथा आत्मा के नादमय विभावना को 'मन्त्रविषुव' कहते हैं—

क. प्राण, आत्मा और मन का संयोग = 'प्राणविषुव'।

ख. नाद, चारो बीज एवं आत्मा की नादमय विभावना = 'मन्त्रविषुव'।

प्राथमिककूटनादे त्वनाहताद् ब्रह्मरन्ध्रान्ते।
व्यष्टिसमष्टिभेदाद्बीजचतुष्कस्य च स्वस्य।
ऐक्येन नादमयताविभावनं मन्त्रविषुवाख्यम्।।

प्राथमिक कूट के नाद में बीजचतुष्क की एकात्मकता या उसके साथ ऐक्य, अपनी आत्मा एवं 'आधारचक्र' से उत्थित नाद के साथ ऐक्य 'मन्त्रविषुव' है—

आधारोत्थितनादे तु लीनं बुद्ध्वात्मरूपकम्।
संयोगेन वियोगेन मन्त्राणानां महेश्वरि।
अनहताद्याधारान्तं नादात्मत्वविचिन्तनम्।
विषुवम् ..... ।।

३. नाडीविषुव— मूल मन्त्र के द्वारा ६ चक्रों एवं १२ ग्रन्थियों का भेदन होने पर मध्य नाड़ी (सुषुम्ना नाड़ी) में नादस्पर्श होता है। 'मूलाधार' से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त बीजशिखर-वर्ती नाद के उच्चारित होने पर 'नाड़ीविषुव' स्पर्श का उद्भव होता है।

मूलाधार चक्र से उठने वाले नाद के उच्चारण से ब्रह्मरन्ध्र तक षट् चक्रों की द्वादश ग्रन्थियों का सुषुम्ना के मार्ग से ही (ग्रन्थियों का) भेदन करते हुये भी नाड़ीनाद एवं वर्णों के संयोग को 'नाड़िका-विषुव' कहते हैं—

आधारोत्थितनादस्योच्चाराद् ब्रह्मरन्ध्रान्तम्।
षट्चक्राणां ग्रन्थीन् द्वादशभिन्दन् सुषुम्णयैव यथा।
नाडीनादार्णनां संयोगो नाडिकाविषुवम्।।(१.४५-४६)

मूलाधार चक्र से षट् चक्रों के मध्य— नीचे एवं ऊपर भिन्न-भिन्न ग्रन्थियाँ हैं। सब द्वादश ग्रन्थियाँ हैं। उनका भेदन करने पर सुषुम्णा नाड़ी मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त व्याप्त हो जाती है। उसी मार्ग से नाद का और वर्णपंक्ति का नाड़ीसंयोग की भावना के साथ उच्चारण करना 'नाड़ीविषुव' है— 'तेनैव मार्गेण नादस्य वर्णपंक्तेश्च नाडीसंयुक्तत्वेन भावनयोच्चारणं नाडीविषुवमित्यर्थः।'

मूलाधारोत्थित नाद के उच्चारण से ब्रह्मरंध्रान्त ६ चक्रों में स्थित द्वादश ग्रन्थियों का सुषुम्णा नाड़ी द्वारा किया गया भेदन तथा नाड़ी-नाद एवं वर्ण का संयोग ही 'नाड़ीविषुव' कहलाता है।

४. प्रशान्तविषुव— नादन्त तक मन्त्रावयवों की 'शक्ति' में लयभावना 'प्रशान्तविषुव' कहलाती है।

'रेफ' एवं 'कामकला' (ई) तथा 'बिन्दु' से आरम्भ करके 'ह्रीं' के 'नादान्त' तक एक सूक्ष्मतर नाद आविर्भूत होता है। इस सूक्ष्मतर नाद का शक्ति में विलय (या उसके साथ एकीभाव) ही 'प्रशान्तविषुव' कहलाता है—

रेफे कामकलार्णे हार्दकलायां च बिन्द्वादौ।
नादान्तावधि नादः सूक्ष्मतरो जरयते तत्र।।
शक्तेर्मध्ये तल्लयचिन्तनमुदितं प्रशान्तविषुवाख्यम्।।

तृतीय कूट में स्थित रेफादिक सातों स्थानों में, आधार चक्र से उत्पन्न नाद सूक्ष्मतर अवस्था में उपनीत हो जाता है और अभिघात के कारण उत्तरोत्तर क्षणों में 'कांस्य' एवं 'ताल' ध्वनियों (नादों) का आविर्भाव हो जाता है। वहाँ पर उस 'नाद' की 'शक्ति' में लयभावना 'प्रशान्तविषुव' कहलाती है— 'तस्य शक्तौ लयो भाव्यम्।'

५. शक्तिविषुव— 'शक्ति' के मध्य में स्थित नाद का 'समना'पर्यन्त चिन्तन 'शक्ति-विषुव' कहलाता है। 'शक्ति' के साथ लीन इस नाद की भावना 'समना' में लीन रूप में करनी चाहिये। इसे ही 'शक्तिविषुव' कहते हैं—

शक्त्यन्तर्गतनादं समनायां भावयेल्लीनम्।।

शक्तिस्थानादूर्ध्वं पुनरुज्जीवितस्य नादस्य सूक्ष्मतमस्य व्यापिकामुल्लङ्घ्य समनायां लयः शक्तिविषुवमित्यर्थः।।

अर्थात् 'शक्ति' के स्थान से पुनरुज्जीवित सूक्ष्मतम नाद का 'व्यापिका' का अतिक्रमण करके 'समना' में लय हो जाना ही 'शक्तिविषुव' कहलाता है।

'समना' तक ही 'काल' का राज्य या काल की सीमा है; किन्तु 'नाद' की सीमा काल से ऊपर भी है। कालातीत 'उन्मना' तक नाद के चिन्तन को 'कालविषुव' कहते हैं। 'उन्मना' कालातीत है, वहाँ तक काल नहीं पहुँच पाता। कालविषुव के बाद 'तत्त्वविषुव' आता है।

६. कालविषुव— उक्त नाद की भावना 'उन्मनी' में करने पर 'कालविषुव' की आख्या पाता है। कालातीत 'उन्मना' तक नाद का चिन्तन 'कालविषुव' कहलाता है। 'समना' के ऊर्ध्व में पुनरुज्जीवित अत्यन्त सूक्ष्मतम नाद का 'उन्मना' में लय 'कालविषुव' कहलाता है—

समनोर्ध्वं पुनरुज्जीवितस्यान्त्यन्तं सूक्ष्मतमस्य नादस्योन्मन्यां लयः कालविषुवमित्याह।

७. तत्त्वविषुव— 'ककार' से 'उन्मना' तक एवं 'अकुल' से 'उन्मना' तक के प्रदेशों में स्थित 'श्रीविद्या' के विभिन्न कूटों के अंगों को व्याप्त करते हुये समस्त ३१७ त्रुटियों एवं ३-१.२ निमेषों को व्याप्त करते हुये नाद की अनुभूति तत्त्वज्ञान का आविर्भाव करती है । यही शुद्ध चैतन्य की अभिव्यक्ति का मूल हेतु 'तत्त्वविषुव' कहलाता है—

श्रीविद्याकूटावयवेषु ककारादिषून्मनान्तेषु।
अकुलादिकोन्मनान्तप्रदेशसंस्थेषु सकलेषु।
अध्युष्टिनिमेषोत्तरसप्तदशाधिकत्रयत्रुटिभिः ।
उच्चरिते नादे सति तस्यान्ते तत्त्ववेदनं भवति।
तदिदं चैतन्याभिव्यक्तिनिदानं तु तत्त्वविषुवाख्यम् ।।

३२ पद्मों में अधस्तन दो पद्म एवं अकुल चरम पद्म है। अन्य 'कुलपद्म' है। यद्यपि मूलाधारनामक कुलपद्म से ही विद्याक्षरों का आरम्भ होता है तथापि चक्रराज की 'सकल' नामक भावना द्वारा अधस्तन सहस्रदल कमल से आरम्भ करके 'अकुले विषुसंज्ञे च' (योगिनी हृदय/चतुःशती) में उक्त दृष्टि के अनुसार कुलाकुल विद्याओं में अभेद होने के कारण 'श्रीविद्या' का भी वहीं से आरम्भ (तन्त्रों में) माना गया है।

'निमेष' नयनों के स्पन्दकाल को कहते हैं— 'निमेषो लोचनस्पन्दकालः'। इस निमेष का तीन हजारहवाँ अंश 'त्रुटि' कहलाता है—

स्वस्थे नरे समासीने यावत्स्पन्दति लोचनम्।
तस्य त्रिंशत्तमो भागस्तत्परः परिकीर्तितः।
तत्परस्य शतांशस्तु त्रुटिरित्यभिधीयते।।

निमेषो लोचनस्पन्दकालः। तस्य त्रिसहस्रतमोंऽशस्त्रुटिः।।

इस प्रकार १०८१७ (अयुतोत्तराष्टशतोत्तरसप्तदश) त्रुटिपर्यन्त विद्यावयवों के स्थान से संलग्नतापूर्वक नादोच्चारण करने पर 'तत्त्व' या 'स्वसंविद' के भेद का बोध होता है। उसका यह उच्चारण ही 'तत्त्वविषुव' है—

अयुतोत्तरशतोत्तरसप्तदशत्रुटिपर्यन्तं विद्यावयवस्थानसंलग्नतापूर्वकं नादोच्चारणे कृते

सति तत्त्वस्य स्वसंविदभेदस्य बोधो भवति। तदिदमुच्चारणं तत्त्वविषुवम्।।

आचार्य भास्कर ने जप के पाँच अंग स्वीकार किये हैं। वे हैं— मन्त्र के वर्णों का उच्चारण, १. मन्त्रोच्चारण के समय 'अवस्था' का चिन्तन, २. मन्त्रोच्चारण के समय 'शून्यों' का चिन्तन, ३. मन्त्रोच्चारण के समय 'विषुवों' का चिन्तन, ४. मन्त्रोच्चारण के समय ५, ६, ७ एवं ९ चक्रों का चिन्तन तथा ५. मन्त्रोच्चारण के समय मन्त्र के अर्थ का चिन्तन। कहा भी है—

एवमवस्थाशून्यविषुवन्ति चक्राणि पञ्च षट् सप्त।
नव च मनोरर्थांश्च स्मरतोऽर्णोच्चारणं तु जपः।।

नाद का अन्त और तत्त्वबोध— यद्यपि 'नाद' ही 'तत्त्व' (परम सत्य) का अभिव्यञ्जक है; किन्तु जब तक नाद का अन्त नहीं हो जाता, तब तक तत्त्वबोध नहीं होता । नादान्त शक्ति एवं समना तक कहीं भी 'नाद' का अन्त नहीं होता। शाक्त योगी तो 'उन्मना' में भी नाद का अन्त नहीं मानते। उन्मना के ऊपर अर्थात् उन्मना का भेदन करने के अनन्तर ही 'नाद' का लय हो जाता है। इसी सिद्धिभूमि में तत्त्वबोध या स्वात्म-साक्षात्कार होता है । इसीलिये 'तत्त्वविषुव' को ही चैतन्याभिव्यक्ति का स्थान माना गया है।

परमपद— चैतन्याभिव्यक्ति के बाद ही 'परम पद' है। परमपद ६ शून्य, ५ अवस्था, ७ विषुव के कोलाहल से अतीत एवं विश्व की परम विश्रान्तभूमि और परमानन्दस्वरूप है। यही है— 'परमशिव' की अवस्था। उन्मनापर्यन्त समस्त मन्त्रावयवों के १०८१७ बार उच्चारित होने पर ही 'नाद' का अन्त होता है और तदनन्तर 'तत्त्वज्ञान' का उदय होता है। इसके बाद ही 'परमपद' (परमशिवावस्था) की सम्प्राप्ति होती है।

पाँच अवस्थायें— जपांग के रूप में अवस्था-चिन्तन को भी एक अंग स्वीकार किया गया है। प्रणव के जो १२ अवयव हैं, उनमें प्राथमिक अंगों के रूप में १. जाग्रत् अवस्था, २. स्वप्नावस्था एवं ३. सुषुप्ति अवस्था (प्रणव के अकार, उकार एवं मकार के वाचक) को स्वीकार किया गया है और इन्हें 'अ', 'उ' एवं 'म' का प्रतिनिधि माना गया है।

इसके बाद जो बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका (व्यापिनी), समना एवं उन्मना के रूप में नादावस्थायें हैं, वे 'तुरीयावस्था' एवं 'तुरीयातीतावस्था' की वाचिका हैं।

बीजमन्त्र या प्रणव के ५ अंगों के रूप में ५ अवस्थायें

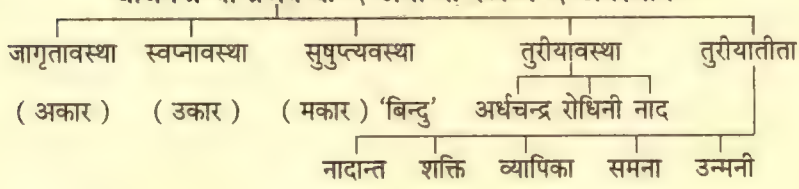

हल्लेखा के अंग

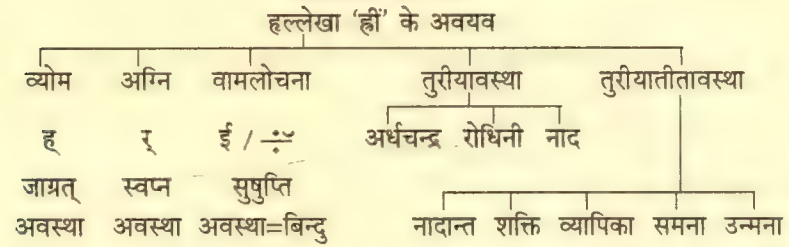

हल्लेखाया: स्वरूपं तु व्योमाग्निर्वामलोचना।
बिन्द्वर्धचन्द्ररोधिन्यो नादनादान्तशक्तय:।।
व्यापिकासमनोन्मन्य इति द्वादशसंहति:।
बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते।। (१.१२-१३)

अवस्थाओं का स्वरूप

१. जाग्रत् अवस्था— जिस अवस्था में दस इन्द्रियों द्वारा जागतिक व्यापार निष्पादित होता है, उसे 'जाग्रत् अवस्था' कहते हैं। इसका प्रकाश ही 'करण' है।

२. स्वप्नावस्था— जिस अवस्था में आन्तर चार प्रकार के करणों द्वारा व्यवहार की निष्पत्ति होती है, उसी का नाम है— 'स्वप्नावस्था'।

३. सुषुप्ति अवस्था— स्वप्न में विद्यमान अन्त:करण-वृत्ति का लय होने पर सब इन्द्रियों का उपरम जिस अवस्था में उदित होता है, उसका ही नाम है— 'सुषुप्ति'। सुषुप्ति की भावना का स्थान भ्रूमध्य में स्थित 'बिन्दु' में है। इस बिन्दु को हल्लेखा का 'ऊर्ध्वबिन्दु' जानना चाहिये।

४. तुरीयावस्था— स्वात्म-चैतन्य की अभिव्यक्ति के लिये नादाविर्भाव ही 'तुरीय' का स्वरूप है। अर्धचन्द्र, रोधिनी एवं नाद —इन मन्त्रावयवों में इसकी भावना करनी चाहिये।

५. तुरीयातीतावस्था— यह अवस्था परमानन्दस्वरूप है। यद्यपि यह मन और वाणी से अतीत है, तथापि मन एवं वाणी का आभास देह में अवस्थानकाल में अधिकारानुसार किसी-किसी को रह ही जाता है।

नादान्त से शक्ति, व्यापिनी और समना के बाद उन्मना तक तुरीयातीतावस्था व्याप्त रहती है। उन्मना के बाद किसी भी प्रकार की कोई अवस्था होती ही नहीं। 'हृदयजप' मध्यमा-मार्ग में प्रवेश का पर्याय है।

जप के भेद

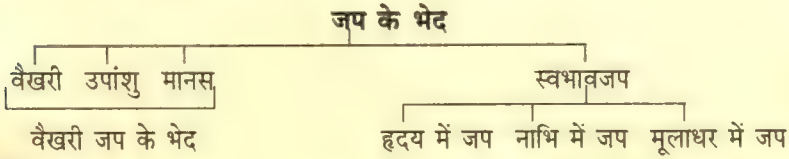

मन्त्रावयवों का रहस्य— मन्त्र के जप के अवयवभूत जो उच्चारण काल, नव नाद, पाँच अवस्था, छः शून्य, पाँच चक्र आदि हैं, उनकी जपक्रिया में व्यावहारिक उपयोगिता क्या है? जप तो इन्हीं अवयवों की समष्टि है—

एवमवस्थाशून्यविषुवन्ति चक्राणि पञ्च षट् सप्त।
नव च मनोरर्थाश्च स्मरतोऽर्णोच्चारणं तु जपः।।

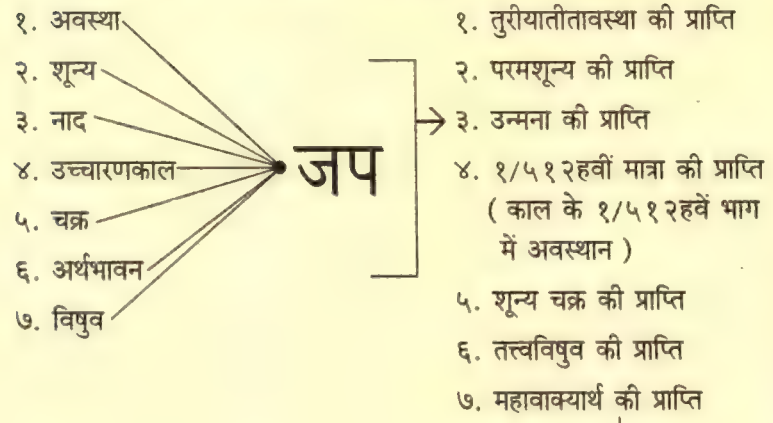

विषुव →

१. प्राण-आत्मा-मन का संयोग (प्रा० वि०)
२. नाद, बीजचतुष्टय एवं आत्मा में एकता स्थापित करके सभी में नाद की विभावना (मं० वि०)
३. १२ ग्रन्थियों का भेदन करने वाले नाड़ी-नाद एवं वर्णों का संयोग (ना० वि०)
४. सूक्ष्म नाद का शक्ति में विलय (प्र० वि०)
५. शक्ति में लयीभूत नाद का समना में विलय होने का चिन्तन (श० वि०)
६. समना में लयीभूत नाद की उन्मनी में विलयभूतता का अनुचिन्तन (का० वि०)
७. तदिदं चैतन्याभिव्यक्तिनिदानं तु—
क. तत्त्वविषुवाख्यम्।
ख. उच्चरिते नादे सति तस्यान्ते तत्त्ववेदनं भवति।

विषुवसाधना
→ तत्त्वविषुव
→ शुद्ध चैतन्य की अभिव्यक्ति
→ तत्त्ववेदन

विषुव-साधना की निष्पत्ति है— तत्त्वविषुव (तत्त्ववेदन, शुद्ध चैतन्य की अभिव्यक्ति)

१. अवस्था- साधना
२. शून्य- साधना
३. नाद- साधना
४. उच्चारण- साधना → **जप**
५. चक्र- साधना
६. विषुव- साधना
७. अर्थभावन- साधना
८. १/५१२हवीं काल-मात्रा में अवस्थान

	साधना	निष्पत्ति
१.	विषुव-साधन	'तत्त्वविषुव' तत्त्ववेदनरूप चैतन्य की अभिव्यक्ति।
२.	अवस्था-साधना	तुरीयातीतावस्था की प्राप्ति
३.	शून्य-साधना	परमशून्य (उन्मना) की प्राप्ति
४.	नाद-साधना	उन्मना की प्राप्ति। उन्मना से परमपद की प्राप्ति : परमशिवत्व की प्राप्ति। महाबिन्दु की प्राप्ति। शिव-शक्ति के नित्य सामरस्य की अवस्था की प्राप्ति।
५.	चक्र-साधना	सहस्रार या सहस्रदल पद्म की प्राप्ति = शिवभाव की प्राप्ति
६.	मन्त्रार्थ-चिन्तन-साधना	महावाक्यार्थ। 'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' 'अयमात्मा ब्रह्म'

उच्चारणगत कालतत्त्व— मन्त्रावयवों का काल अत्यन्त सूक्ष्म है। यह मन्त्र-वाच्य देवता का कालसापेक्ष बाह्य स्थूल काल नहीं है। स्थूल काल बाह्यगत है। सूक्ष्म काल का अतिक्रमण होने पर स्थूल काल भी अतिक्रान्त हो जाता है।

अनुभव-स्थान—

'अकार' का हृदय में है।
'उकार' का कण्ठ में है।
'मकार' का तालु के मध्य में है।

१. 'बिन्दु' का भ्रूमध्य में, २. 'निरोधिनी' का ललाटान्त में, ३. 'नाद' का मूर्द्धा में, ४. 'शक्ति' का ३६ अंगुलरन्ध्रान्त में, ५. 'व्यापिनी' का त्वक् शेष में, एवं ६. 'समना' का केश-शेष में अनुभव होता है।

आन्तर जप और बाह्य जप में अन्तर यह है कि बाह्य जप में मन्त्र के प्रत्येक अक्षर का पृथक्-पृथक् उच्चारण होता है, किन्तु आन्तर जप में मन्त्राक्षरों का पृथक्-पृथक् उच्चारण नहीं होता, अपितु सभी का एक साथ उच्चारण होता है और वह भी नाद के रूप में तथा स्वयम्भू जप होता है।

मन्त्र-जप और अर्थभावन

पतञ्जलि कहते हैं— 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' (योगसूत्र)

आचार्य भास्कर राय ने वरिवस्यारहस्यम् के द्वितीय अंश एवं 'प्रकाश' में मन्त्र-जप की दिशा में मन्त्रार्थ-बोध को सर्वाधिक महत्त्व दिया है; वे कहते हैं—

यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।
अनग्नाविव शुष्केन्धो न तज्ज्वलति कर्हिचित्।।

नार्थज्ञानविहीनं शब्दस्योच्चारणं फलति।
भस्मनि वह्निविहीने न प्रक्षिप्तं हविर्ज्वलति।। (२.५४)

अर्थमजानानां नानाविधशब्दमात्रपाठवताम्।
उपमेयश्चक्रीवान् मलयजभारस्य वोढैव।। (२.५५)

मन्त्र का अर्थ जाने विना मन्त्र का जप ठीक उसी प्रकार व्यर्थ है, जिस प्रकार कि चन्दन के गुणों को न जानने वाला गदहा अपने ऊपर लदे चन्दन की लकड़ी को मात्र भारस्वरूप ही मानता है—

यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।

मन्त्रार्थों के भेद— मन्त्रार्थों के कुल पन्द्रह भेद कहे गये हैं और वे हैं—

१. प्रतिपाद्यार्थ	६. रहस्यार्थ	११. शाक्तार्थ
२. भावार्थ	७. महातत्त्वार्थ	१२. सामरस्यार्थ
३. सम्प्रदायार्थ	८. नामार्थ	१३. समस्तार्थ
४. निगर्भार्थ	९. शब्दरूपार्थ	१४. सगुणार्थ
५. कौलिकार्थ	१०. नामैकदेशार्थ	१५. महावाक्यार्थ

योगिनीहृदय में मात्र छः अर्थों का ही प्रतिपादन किया गया है।

श्रीविद्या के १५ अर्थ क्यों?— 'पञ्चदशी विद्या' के वर्णों की संख्यानुसार 'श्रीविद्या' के अर्थ हैं— 'महावाक्यार्थ इत्यर्थाः पञ्चदश्याः स्वसम्मिताः।' 'कादिविद्यायां सप्तत्रिंशद्वर्णाः स्फुटीकरिष्यन्ते, तत्सम्मिता अर्था इत्यर्थः।' चूँकि सम्पूर्ण विद्या में कुल १५ अक्षर हैं— 'क ए ई ल ह्रीं'-५, 'ह स क ह ल ह्रीं'-६ एवं 'स क ल ह्रीं'-४ (योग-१५); इसीलिये इस विद्या का नाम भी 'पञ्चदशी' या 'पञ्चदशाक्षरी' है। इसी दृष्टि से 'पञ्चदशी विद्या' के १५ अर्थ किये गये हैं—

अथातः पूर्णगायत्र्याः प्रतिपाद्योऽर्थ आदिमः।
भावार्थः सम्प्रदायार्थो निगर्भार्थस्तुरीयकः।।५७।।

कौलिकार्थो रहस्यार्थो महातत्त्वार्थ एव च।।
नामार्थः शब्दरूपार्थश्चार्थो नामैकदेशगः।।५८।।

शाक्तार्थः सामरस्यार्थः समस्तसगुणार्थकौ।
महावाक्यार्थ इत्यर्थाः पञ्चदश्याः स्वसम्मिताः।।

'जप' के साथ पञ्चावस्थायें भी संलग्न हैं। इनमें भी 'तुर्य' एवं 'तुर्यातीत अवस्था' सर्वोच्च है—

तुर्यातीतं सुखस्थानं नादान्तादिस्थितं प्रिये।
अत्रैव जपकाले तु पञ्चावस्थाः स्मरेद्बुधः।। (योगिनीहृदय)

मन्त्र के अवयवभूत अक्षरों का अर्थ 'भावार्थ' है।

सर्वकारणाकारणपूर्ण परमेश्वररूप मूल गुरु के मुख से अपने मन्त्र का उद्भव एवं उसका अवतरणक्रम या परम्परा का ज्ञान ही मन्त्र का 'सम्प्रदायार्थज्ञान' है।

परमेश्वर, गुरु एवं निज आत्मा का ऐक्यानुसन्धान ही 'निगर्भार्थ' है।
चक्र, देवता, विद्या, गुरु और साधक का ऐक्यानुसन्धान ही 'कौलिकार्थ' है।

मूलाधारस्थ कुण्डलिनीरूपा विद्या ही साधक की स्वात्मा है— इस प्रकार की भावना का नाम ही 'रहस्यार्थ' है।

निष्कल, अणु से अणुतर और महान् से महत्तर, निर्लक्ष्य, भावातीत, व्योमातीत परम तत्त्व के साथ प्रकाशानन्दरूप से विश्वातीत और विश्वमय निज गुरु-प्रबोधित निर्मल स्वभाव स्वकीय आत्मा का ऐक्यानुप्रवेश ही 'महातत्त्वार्थ' है।[१]

योगिनीहृदय में प्रतिपादित अर्थ-प्रकार— योगिनीहृदय में श्रीविद्या के मात्र छः अर्थों का ही प्रतिपादन किया गया है और वे छः अर्थ हैं— भावार्थ, सम्प्रदायार्थ, निगर्भार्थ, कौलिकार्थ, सर्वरहस्यार्थ एवं महातत्त्वार्थ। इनका विवेचन निम्नवत् है—

१. भावार्थ— अक्षरों में अनुगत अर्थ या अक्षरार्थ ही 'भावार्थ' है—

अक्षरार्थो हि भावार्थः केवलः परमेश्वरि। (मं०सं०-१६)
श्रीसौभाग्यविद्याऽवयवपञ्चदशाक्षराणामर्थो भावार्थः।। (अमृतानन्द)

यः केवलस्तात्पर्यादिनाऽनवगतोऽक्षराणां वृत्यैव लभ्योऽक्षरार्थोऽक्षरस्वभावलभ्य-त्वात्स भावार्थः। (सेतुबन्ध : भास्कर राय)

कूटत्रयात्मिकां देवीं समष्टिव्यष्टिरूपिणीम्।
आद्यां शक्तिं भावयन्तो भावार्थमिति मन्वते।।

षड्विधस्तं तु देवेशि कथयामि तवानघे।
भावार्थः सम्प्रदायार्थो निगर्भार्थश्च कौलिकः।।

तथा सर्वरहस्यार्थो महातत्त्वार्थ एव च।
अक्षरार्थो ही भावार्थः केवलः परमेश्वरि।।

(योगिनीहृदय)

---

१. 'तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि' (पृ०-२९०)

'अम्बा' (देवी), 'मन्त्र' एवं 'जगत्' के अभेद का प्रतिपादन करने वाला अर्थ ही 'भावार्थ' है—

तेनाम्बामनुजगतामभेद एवात्र भावार्थः।। (वरिवस्यारहस्यम्)

२. सम्प्रदायार्थ— जिस प्रकार 'कार्य' एवं 'कारण', 'वाच्य' एवं 'वाचक' तथा 'ब्रह्म' एवं 'जगत्' में कोई भेद नहीं है, उसी प्रकार 'जगत्' एवं 'विद्या' में भी कोई भेद नहीं है। यही 'सम्प्रदायार्थ' है—

जन्यजनकयोर्भेदाभावाद्वाच्यस्य वाचकेनापि।
ब्रह्मणि जगतो जगति च विद्याभेदस्तु सम्प्रदायार्थः।।८।।

सम्यग्गुरुशिष्यपारम्पर्यक्रमायातमर्यादानुसारेण दीयत इति सम्प्रदायार्थः।।
(भास्कर राय)

सम्यग् याथार्थ्येन कर्णे शिष्यस्य प्रदीयत इति सम्प्रदायः। (अमृतानन्द)

३. निगर्भार्थ— सर्वातिशायी सत्त्व परमशिव में एकात्मता या अन्य पदार्थों का अभाव, अपने दीक्षागुरु एवं परमशिव में अभेद तथा उस गुरु की अनुकम्पा से अपने एवं उस परमशिव में अभेद-दर्शन ही 'निगर्भार्थ' है—

परमशिवे निष्कलता तदभिन्नत्वं स्वदेशिकेन्द्रस्य।
तत्करुणातः स्वस्मिन्नपि तदभेदो निगर्भार्थः।।[१]

४. कौलिकार्थ— माता, विद्या, चक्र, स्वगुरु एवं स्वयं— इन पाँचों में भेदाभाव ही मन्त्र का 'कौलिकार्थ' है—

इत्थं माता विद्या चक्रं स्वगुरुः स्वयं चेति।
पञ्चानामपि भेदाभावो मन्त्रस्य कौलिकार्थोऽयम्।।१०२।।

५. रहस्यार्थ— कुण्डलिनी साक्षात् विद्या एवं माता से अभिन्न है। इससे अपने को अभिन्न देखना ही श्रीविद्या का 'रहस्यार्थ' है—

साक्षाद्विद्यैवैषा न ततो भिन्ना जगन्माता।
अस्याः स्वाभिन्नत्वं श्रीविद्याया रहस्यार्थः।।१-१०७।।

ईदृश्याः कुण्डलिन्या मातुर्विद्यायाः स्वस्य चाभेद इति रहस्यरूपोऽप्रकाश्योऽर्थ इत्यर्थः।।
(प्रकाश)

६. महातत्त्वार्थ— वाणी, मन एवं इन्द्रियों द्वारा अगम्य अर्थात् ३६ तत्त्वों से परे, महान् से भी महान्, सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्म, व्योम से ऊर्ध्ववर्ती, विश्व से अभिन्न, चित् एवं आनन्द से अभिन्न परब्रह्म में अपने-आपको उस ब्रह्म के साथ अभेद की प्राप्ति हेतु नियुक्त करना चाहिये। यही श्रीविद्या का 'महातत्त्वार्थ' है—

१. वरिवस्यारहस्यम्— 'स्वस्य गुरुद्वारा शिवगर्भे प्रवेशसम्पादकत्वादेतज्ज्ञानस्य विषयः शिव-गुर्वात्मैक्यं निगर्भार्थपदवाच्यम्।' (प्रकाश)

वागिन्द्रियैरगम्ये तत्त्वातीते महत्तरेऽणुतरे।
व्योम्नोऽप्युपरिस्थितिमतिविश्वाभिन्ने चिदानन्दे।।
ब्रह्मणि परे नियोज्यः स्वात्मा तदभेदसम्प्राप्त्यै।
एष महातत्त्वार्थः श्रीविद्यायाः शिवेनोक्ताः।।
(वरिवस्यारहस्यम्)

७. नामार्थ— यह 'श्रीविद्या' अपने घटक अक्षरों द्वारा व्यक्त अर्थ से अभिन्न है। इसका स्वरूप इसका प्रत्येक अक्षर है। श्रीविद्या का यही 'नामार्थ' एवं 'शब्दरूपार्थ' है—

तत्तद्वर्णार्थेयं तत्तद्वर्णस्वरूपेयम्।
इति तु श्रीविद्याया नामार्थः शब्दरूपार्थः।।१-११०।।

८. नामैकदेशार्थ— कल्याणी, एकाक्षरी, ईशित्री, ललिता आदि देवी के ३०० नामों का तात्पर्य मन्त्र के आद्यक्षरों द्वारा व्यक्त होता है। नाम के एकदेश (अंश) के ग्रहण द्वारा समस्त नाम के ग्रहण का बोध होता है। समस्त नाम का अर्थ नाम के एक अंश का अर्थ है। नाम के एकांश द्वारा समस्त नाम के अर्थाभिव्यञ्जन के उपर्युक्त सिद्धान्त को नामत्रिशती के प्रत्येक नाम में प्रयुक्त करने से तिथियों की संख्या के बराबर बिन्दु (१५ शून्य) एवं उनके पूर्व क्रमशः ८,६,७,२ एवं ३ (३२७६८०००, ०००, ०००, ०००, ०००) अर्थों के भेद हो जाते हैं।

कल्याण्येकाक्षर्यावीशित्री चापि ललिता च।
इत्थं नामत्रिशतीवाच्योऽर्थस्तत्तदक्षरस्यापि।।१११।।
नामैकदेशमात्रे नामग्रहणस्य लोकसिद्धत्वात्।
नामोपस्थितिगम्यः प्रोक्तो नामैकदेशार्थः।।
(वरिवस्यारहस्यम्)

तिथिमितबिन्दुगणोत्तरगजरसगिरिदस्रसंख्याका अर्थाः भवन्ति योगान्नाम्नो नामैकदेशस्य। (वरिवस्यारहस्यम्)

९. शाक्तार्थ— शाक्तों की मान्यता के अनुसार प्रत्येक अक्षर में शक्ति अधिष्ठित है। इन अक्षरों तथा वामा, इच्छा एवं अन्य शक्तियों में अभिन्नता है और यही है— 'शाक्तार्थ'।

अन्वयितव्योऽक्षरशः शक्तेः शाक्तैर्विभाव्यत्वात्।
वामेच्छादिशक्तिमयत्वोक्तेरेष शाक्तार्थः।।२-११८।।

१०. सामरस्यार्थ— 'क, ह, ल' एवं 'स' का अर्थ 'शक्ति' है। हल्लेखा (ह्रीं) का अर्थ शिव एवं शक्ति का सामरस्यस्वरूप 'परब्रह्म' है। उक्त तीनों कूटों में से प्रत्येक का अर्थ यह है कि 'शिव एवं शक्ति के सामरस्य के कारण ब्रह्म ही शिव एवं शक्ति दोनों है।' यही श्रीविद्या का 'सामरस्यार्थ' है—

कहयोर्लसयोरर्थौ शिवशक्ती शुद्धयोरचो: शक्ति:।
उभयो: समरसभावो हल्लेखाया: परं ब्रह्म।।

ब्रह्मैव शिव: शक्तिश्चेति प्रत्येककूटार्थ:।
शिवशक्तिसामरस्याद्विद्याया एष सामरस्यार्थ:।।

(वरिवस्यारहस्यम्-२.१२०)

११. समस्तार्थ— श्रीविद्या के अन्तर्गत आने वाले अनेक पदों एवं गुणों का समास तथा समस्त पुरुषार्थों के साधन का सारकथन ही 'समस्तार्थ' है—

बहूत्तरसमासयोगात् समस्तपुरुषार्थसाधनत्वोक्ते:।
संक्षेपात् सारोक्ते: श्रीविद्याया: समस्तार्थ:।।

(वरिवस्यारहस्यम्-२.१३३)

१२. सगुणार्थ— समस्त कलाओं से युक्त बह्म 'स क ल' है— यह तृतीय कूट का अर्थ है। इस प्रकार समस्त गुणगण के कथन द्वारा विद्या का 'सगुणार्थ' प्रतिपादित किया गया है—

सकलकलाभि: सहितं सकलं ब्रह्म तु तृतीयकूटार्थ:।
इत्थं गुणगणकथनाद्विद्याया एष सगुणार्थ:।।

(वरिवस्यारहस्यम्-२.१४०)

१३. महावाक्यार्थ— जीव एवं ब्रह्म के स्वरूप का लाक्षणिक वाक्यों द्वारा वर्णन करके उनका अभेद स्थिर करना ही 'महावाक्यार्थ' है—

एवमवान्तरवाक्यैर्जीवब्रह्मस्वरूपमभिधाय।
तदभेदो वर्णित इत्येष महापूर्ववाक्यार्थ:।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.१४०)

'जप' के साथ 'अर्थभावन' अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि इसके विना जप अपूर्ण रहता है। भास्कर राय कहते हैं कि 'पुरुषार्थों के आकांक्षी लोगों को अर्थज्ञान आवश्यक है। अर्थों के प्रति अनादरभाव रखने वालों को इष्टाप्ति नहीं होती; प्रत्युत उसके स्थान पर उन्हें अनर्थों का विघ्न कष्ट देता है'—

पुरुषार्थानिच्छद्भि: पुरुषैरर्था: परिज्ञेया।
अथानादरभाजां नैवार्थ: प्रत्युतानर्थ:।। (वरिवस्यारहस्यम्)

पञ्चदशी विद्या की जपांगस्वरूप अवस्थायें

जागृति अवस्था	स्वप्न अवस्था	सुषुप्ति अवस्था	तुरीय अवस्था	तुरीयातीत अवस्था

योगिनीहृदय में इसका स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

शून्यषट्कं तथा देवि ह्यवस्थापञ्चकं पुन:।।

विषुवं सप्तरूपञ्च भावयन् मनसा जपेत्।
अग्न्यादिद्वादशान्तेषु त्रींस्त्रीन् त्यक्त्वा वरानने।
शून्यत्रयं विजानीयादेकैकान्तरतः प्रिये।
शून्यत्रयात्परे स्थाने महाशून्यं विभावयेत्।।

जागृति अवस्था—

प्रबोधकरणस्याऽथ जागरत्वेन भावनम्।।

वह्नौ देवि ! महाजाग्रदवस्था त्विन्द्रियद्वयैः।
आन्तरैः करणैरेव स्वप्नमायावबोधकः।।

गलदेशे सुषुप्तिस्तु लीनपूर्वस्य वेदनम्।
अन्तःकरणवृत्तीनां लयतो विषयस्य तु।।

पूर्वार्णानां विलोकेन भ्रूमध्ये बिन्दु संस्थिता।।[1] (योगिनीहृदय)

पञ्चदशी विद्या— मन्त्र, मात्रा और उसका रहस्य— योगिनीहृदय में 'चतुःषष्टिस्तदूर्ध्वं तु द्विगुणं द्विगुणं ततः' इस प्रकार कहा गया है। अतः इस दृष्टि से उन्मनाकाल मात्रा का ५१२हवाँ भाग है (द्वादशोत्तरपञ्चशततमो भागः मात्रायाः कालः उन्मनाकालः) और मात्रा का काल ५१२ लवों की समष्टि है। 'मात्रा' से 'अमात्रा' की यात्रा ही प्रणव के अकार से 'महाबिन्दु' की यात्रा है— 'वैखरी' से 'परा' एवं 'परा' से 'सूक्ष्मा वाक्' की यात्रा है।

आचार्य भास्कर वरिवस्यारहस्यम् में कहते हैं कि 'ई, ए' एवं 'ह्री' तीन मात्राकाल वाले हैं (त्रिमात्रिक हैं)। अन्य वर्णों का उच्चारणकाल अर्धमात्रासहित मात्राकाल है। बिन्दु का काल अर्धमात्राकाल है। उत्तरवर्ती वर्णों का काल पूर्ववर्ती वर्णों का आधा होना चाहिये। वृत्तचन्द्रोदय में कहा गया है कि 'लवानां कालपीलूनां षट्पञ्चाशच्छतद्वयम्। मात्रैका' अर्थात् १ मात्रा २५६ लवों की होती है। अतः बिन्दु १२८ लवों की समष्टि है। योगिनीहृदय के मत में—

दीपाकारोऽर्धमात्रश्च ललाटे वृत्त इष्यते।
अर्धचन्द्रस्तथाकारः पादमात्रस्तदूर्ध्वके।।

वरिवस्यारहस्यम् के मतानुसार—

मध्येकालं बिन्दुर्दीप इवाभाति वर्तुलाकारः।
तदुपरि गतोऽर्धचन्द्रोऽन्वर्थः कान्त्या तथाकृत्या।। (भास्कर राय)

अर्थात् बिन्दु भाल के मध्य वृत्ताकाररूप में दीपवत् दीप्त है। उसके ऊपर अर्धचन्द्र दीप्ति एवं आकृति में अर्धचन्द्रमा के समान है।

'देशकालानवच्छिन्नं तदूर्ध्वं परमं महत्' द्वारा भी 'उन्मना' कालानवच्छेदक ही समर्थित है; किन्तु योगिनीहृदय के 'चतुःषष्टिः' कथन के अनुसार तो 'शक्ति' का ६४वाँ भाग ही 'मात्राभाग' है।

आचार्य भास्कर राय (वरिवस्यारहस्यम्) के अनुसार—

---

१. तुर्यरूपं तथा चात्र वृत्तार्धादेस्तु संग्रहः। चैतन्यव्यक्तिहेतोस्तु नादरूपस्य वेदनम्।।

बिन्दु	१२८ लव
अर्धचन्द्र	०६४ लव
नाद	०१६ लव
नादान्त	०८ लव
शक्ति	०४ लव
व्यापिका	०२ लव
समना	०१ लव

उन्मना कतिपय आचार्य उन्मना का काल नहीं मानते; किन्तु कुछ मानते भी हैं।

उन्मनाया: तु नास्त्येव काल:। (भास्कर) उन्मना में काल ही नहीं है ; अत: मात्रायें भी नहीं हैं; क्योंकि मात्रायें तो काल की होती हैं।

योगिनीहृदय के अनुसार—
'द्वादशोत्तरपञ्चशततमो भाग: उन्मनाकाल:' अर्थात् उन्मना का काल ५१२हवाँ भाग ।
मात्राकाल—
१.ह्रस्वस्य उच्चारण-कालो मात्रेत्युच्यते।। (अमृतानन्द)

लवो नाम काल परमाणु:।। (सेतुबन्ध)

लव या काल-परमाणु

नलिनीपत्रसंहत्या:
सूक्ष्मसूच्यभिवेधने ।
दले दले तु य: काल:
स कालो लवसंज्ञित:।।
अत: सूक्ष्मतम: कालो
नोपलभ्यो भृगूद्वह।

किसी सुई से यदि किसी कमल को भेद कर सुई को आर-पार कर दिया जाय तो प्रत्येक दल के भेदने में जो काल लगेगा, उसे ही 'लव' (कालपरमाणु) कहा जाता है।

कालपरमाणुर्लव इत्युच्यते। (भास्कर)

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो
द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो
व्यञ्जनं त्वर्धमात्रकम्।।

मात्रा— षट्पञ्चाशत् उत्तरशतद्वय-लवैरेका मात्रा। (भास्कर)
= २५६ लवों से 'एक मात्रा' का निर्माण होता है।

	मात्रा	लव (कालपरमाणु)
बिन्दु	१/२	१२८ लव
अर्धचन्द्र	१/२	०६४ लव
रोधिनी	१/२	०३२ लव
नाद	१/२	०१६ लव
नादान्त	१/२	०८ लव
शक्ति	१/२	०४ लव
व्यापिका	१/२	०२ लव
समना	१/२	०१ लव

उन्मना → उन्मना — ५१२हवाँ लव या मात्रा कालशून्य है।

मात्रायें

व्यञ्जन	१/२	मात्रायें
ह्रस्व	१	मात्रा
दीर्घ	२	मात्रायें
प्लुत	३	मात्रायें

व्यञ्जन
व्यञ्जनं त्वर्धमात्रकम् ।
मात्रा
२५६ लवों की एक समष्टि। (वरि०) (भास्कर)

भास्कर राय : सेतुबन्ध— 'मात्रा नाम ह्रस्वस्योच्चारणकाल:, स च षट्पञ्चाशदुत्तरशतद्वयलवैर्भवति = २५६।' 'मात्रा लघ्वक्षरस्य काल: ।' (वरिवस्यारहस्यम्)

मात्रा और उच्चारणकाल— मात्रा का मन्त्र से अभिन्न सम्बन्ध है। मात्राओं का यदि विवरण दिया जाय तो वह इस प्रकार है—

प्लुत-३, दीर्घ-२, ह्रस्व-१, व्यञ्जन-१/२, बिन्दु-१/२ तथा 'मात्रा' (स्वयमेव) = २५६ लवों की एक मात्रा।

मन्त्र-साधना 'मात्रा' से 'अमात्रा' की साधना है। मात्राओं का बाहुल्य ही जड़ता है। मात्राओं का ह्रास ही मन की, अवस्थाओं की, चाञ्चल्य एवं जड़ता की दीवारों को लगातार तोड़ता जाता है।

मात्राओं के ह्रास के तारतम्य में ही तदनुकूल काल का भी ह्रास होता चलता है और भौतिकता, बहिर्मुखता एवं जड़ता का भी उसी अनुपात में ह्रास होता चलता है तथा उसी अनुपात में चैतन्य का अधिकाधिक विकास होता जाता है।

नाद की अवस्थायें (श्रूयमाणता के आधार पर)

(अश्रुत)	(श्रुत)	(अश्रुत)
जिन अवस्थाओं में नाद श्रुतिगोचर नहीं होता। १. विक्षिप्तावस्था २. क्षिप्तावस्था ३. मूढ़ावस्था	नाद की वह अवस्था, जहाँ नाद श्रुतिगोचर होता है वह अवस्था 'एकाग्रावस्था' (ज्ञान की अवस्था) है।	जहाँ नाद श्रुतिगोचर नहीं होता, वह अवस्था चित्त की निरोधावस्था है। (जहाँ मन नहीं है, वहाँ नाद नहीं है। इस अवस्था में मन की वृत्ति नहीं रहती, केवल संस्कारमात्र से ही मन रहता है।)

प्रणव-(ॐकार)-स्वरूप महामन्त्र और उसके १२ अवयव

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
अ	उ	म	बिन्दु	अर्धचन्द्र	रोधिनी	नाद	नादान्त	शक्ति	व्यापिनी	समना	उन्मना
(जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्थाओं के द्योतक)			(शून्य)		(शून्य)		(शून्य)		(शून्य)		(शून्य) (महाशून्य, निराकार)

शून्य

अवान्तर शून्य	महाशून्य
(२,४,६,८,१०)	(६ठवाँ शून्य)

२,४,६,८,१०,१२ अवयव 'शून्य' कहलाते हैं।

नाद की अवस्थायें

तुरीयावस्था			तुरीयातीतावस्था				
अर्धचन्द्र	रोधिनी	नाद	नादान्त	शक्ति	व्यापिनी	समना	उन्मना

(मन और वाणी से अतीत अवस्थायें)

१. नाद का आविर्भाव ही 'तुरीयावस्था' का स्वरूप है।

२. स्वात्मचैतन्य की अभिव्यक्ति इसी 'नादतत्त्व' के विकास से होती है।

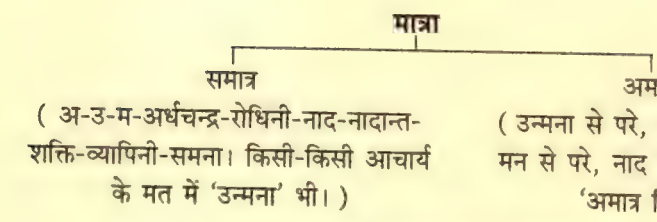

मात्रा और उसका रहस्य

मात्राओं का जन्म— मात्राहीन (अमात्र) शिवस्वरूप आत्मा से 'चित्कला' का आभास 'बिन्दु' (विशुद्ध सत्त्व) के दर्पण में पड़ता है और उसके कारण स्थिर मात्रा पर आघात होता है। परिणामत: 'एक मात्रा' विभक्त होकर 'अर्धमात्रा' के रूप में रूपान्तरित हो जाती है या परिणत हो जाती है।

एक मात्रा— इस पार्थिव स्थूल जगत् की अनुभूति मन की जिस मात्रा से होती है, उसे ही 'एक मात्रा' कहते हैं। समस्त जागतिक अनुभव मन की एक मात्रा से ही प्रारम्भ होते हैं। सामान्यत: मन एक मात्रा में नहीं रहा करता। मन के एक मात्रा में अवस्थित हो जाने पर साधक में चिद्रश्मि का सम्पात होता है और उससे अर्धमात्रा आदि की अवस्थाओं में पहुँचा जा सकता है। मात्राओं का बाहुल्य ही जड़ता का कारण है। क्षिप्त, विक्षिप्त एवं विमूढ़ चित्तवृत्तियों में चाञ्चल्य के कारण मात्राओं की संख्या बढ़ती जाती है।

'चिद्रश्मि के सम्पात' की अवस्था एक मात्रा एवं अर्धमात्रा के सन्धि की अवस्था है।

मात्रा और मन्त्र— चिद्रश्मि-सम्पात से एक मात्रा ऊपर की ओर टूटना प्रारम्भ करती है। एक मात्रा ही समस्त स्थूल जगत् का मध्यबिन्दु है; क्योंकि यह समस्त विराट् जगत् 'एक मात्रा' में ही अनेक स्तरों पर फैला हुआ है। मन की मात्रा का जितना विकास होता जाता है, उतना ही मन स्थूलतर, क्षुद्रतर एवं 'चिदालोक' से दूर होता जाता है। एक मात्रा नहीं; प्रत्युत 'अर्द्धमात्रा' आदि में प्रतिफलित चैतन्य ही 'मन्त्र' है। चूँकि उसका आधार चित् है; अत: इस स्तर के चैतन्य से जाग्रत् चित्त भी मन्त्र कहा गया है। 'मन्त्र' चिद्रश्मियुक्त है। चूँकि वैखरी स्तर की चेतना में या वैखरीभाव में चैतन्य अस्फुरित एवं गुप्त है; अत: इस स्तर का मन्त्र 'मन्त्र' नहीं है, क्योंकि— 'मन्त्राश्चिन्मरीचय: तद्वाचकत्वाद्वैखरीवर्णविलासभूतानां विद्यानां त्राणता।'

आचार्य वैखरी वर्ण की मन्त्रमयता स्वीकार नहीं करते। चूँकि यह चिद्रश्मि संयुक्त मन्त्र का वाचक है; अत: इस नाते इसे भी 'मन्त्र' मान लिया जाता है।

'पश्यन्ती वाक्' में मन्त्रसाक्षात्कार होता है और ऋषित्व की प्राप्ति होती है— ऋषयो मन्त्रद्रष्टार:।' यही आत्मा की 'अमृता कला' है— 'विन्देम देवतां वाचममृतामात्मन: कलाम्।'

'मध्यमा वाक्' में नादमय चिद्रश्मियाँ नित्य स्थित रहती हैं, किन्तु वे वैखरी वाक् में नहीं रहतीं। वैखरी भूमि में लक्ष्य नीचे की ओर— 'मूलाधार चक्र' की ओर रहता है, जब कि मध्यमा की भूमि में अन्तर या ऊर्ध्व की ओर पलट जाता है। 'मध्यमा' के एक छोर पर पाशव वाक् 'वैखरी' है तो दूसरे छोर पर दिव्य वाक् 'पश्यन्ती' स्थित है।

'पशुभाव' से 'दिव्यभाव' में यात्रा करने के लिये 'मध्यमा' एक सेतु है। 'मध्यमा भूमि' अपने को मन्त्र के रूप में प्रकट करने के कारण 'मन्त्रमयी भूमि' है।

बिन्दु— 'बिन्दु' मात्रा से मात्राहीन में यात्रा करने का एक मार्ग है। यहाँ त्रिपुटी एकाकार है अर्थात् ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान एकाकार है।

'बिन्दु' से पूर्व 'मकार' मात्रा है। इसके बाद (मकार के बाद) का उच्चार भ्रूमध्य में 'बिन्दु' का रूप धारण कर लेता है।

'बिन्दु' की अवस्था क्या है? अकार, उकार एवं मकार (स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण) के भेद जहाँ एकीभूत होकर अविभक्त रूप में अवतरित होते हैं, वही धरातल या अवस्था 'बिन्दु' है। ९ योगभूमियों में बिन्दु की भूमि प्रथम भूमि है। यहाँ वेद्य एवं ज्ञेय ही मुख्य है, न कि ज्ञाता। यह चिन्मय धरातल है। चिन्मयानुभूतियों में प्रथम चिन्मय अनुभूति 'बिन्दु' ही है। भावना की दृष्टि से चक्रों के तीन स्तर हैं—

१. सकल भावना : 'सकल चक्र' (अकुल से आज्ञा चक्र तक)।

२. सकल-निष्कल भावना : 'सकल-निष्कल चक्र' (बिन्दु से उन्मनी तक)।

३. निष्कल भावना : 'निष्कल चक्र' (महाबिन्दु)।

'बिन्दु' का उच्चारणकाल 'अर्धमात्रा' है। मन की जो लौकिक अवस्था है, उसके द्वारा एक मात्रा से अर्धमात्रा में पहुँचना अति दुष्कर है। एकाग्रता एवं निरोध की जो सन्धिस्थली है, वही 'अर्धमात्रा' है। मात्राओं के ह्रास का अन्तिम शिखर 'उन्मना' है और वहाँ न नाद है, न अवस्था है, न मन है, न मात्रा है और न ही काल है।

'बिन्दु' पूर्णिमा है, किन्तु यथार्थ पूर्णिमा 'षोडशी' (पञ्चदशी नहीं) है; क्योंकि यह अक्षुण्ण है, घटती-बढ़ती नहीं। बिन्दु से चिदालोक प्रतिबिम्बित है। बिन्दु में १५ कलायें हैं, १६हवीं कला नहीं है। षोडशी 'अमृत कला' है।

'उन्मना' में मन का सन्धान नहीं किया जा सकता। 'समना' तक ही मन है। 'उन्मना' मन की अतीतावस्था है। इसकी मात्रा १/५१२ है। अन्य आचार्यों की दृष्टि में यह मात्रा-हीन है । यहीं शब्दब्रह्म का अन्त होता है । ९ नादों में यही 'नवम नाद' एवं अन्तिम शून्य है ।

१/२५६वीं मात्रा को मन की सूक्ष्मतम मात्रा का उच्चारण माना जाता है। विश्व से समनापर्यन्त सूक्ष्म वर्ण का उच्चारणकाल अर्द्धमात्रा से एक मात्रा का १/५१२ भाग तक है। सूक्ष्मतम काल या कालपरमाणु 'लव' है। 'समना' में मात्र मनन रहता है, मनन का कोई विषय नहीं रहता; लेकिन 'उन्मना' में मनन भी नहीं रहता।

'चतु:षष्टिस्तदूर्ध्वं तु द्विगुणं द्विगुणं तत:' के अनुसार 'शक्तेश्चतु:षष्टितमो भाग: मात्राभाग:' सिद्ध होता है और 'व्यापिका' का मात्राभाग (अष्टाविंशत्युत्तरशततमो भाग:) १२८वाँ भाग सिद्ध होता है। इसके ऊर्ध्व-ऊर्ध्व में स्थित अन्य नादों के भागों का मात्रा-काल भी इसी आधार पर स्थित है, किन्तु योगिनीहृदय में लिखा गया है कि 'अर्धचन्द्र-स्तथाकार: पादमात्रस्तदूर्ध्वके।' अत: इसके अनुसार अर्धचन्द्र आदि का शक्तिपर्यन्त ४ अंश, ८ अंश, १६ अंश आदि भाग-विभाजन द्विगुणित काल-विभाजन सिद्ध होकर 'शक्ति' आदि के पूर्ववर्तियों का द्विगुणांश कालवत्व सिद्ध होता है। इसीलिये 'शक्त्यादीनां च मात्रांशो मनोन्मन्यास्तथोन्मनी' कहा गया है।

योगिनीहृदय में कहा गया है—

दीपाकारोऽर्धमात्रश्च ललाटे वृत्त इष्यते।
अर्धचन्द्रस्तथाकार: पादमात्रस्तदूर्ध्वके।। (चक्रसङ्केत-१.२९)

अर्धचन्द्र एवं रोधिनी की कलायें— अमृतानन्द के अनुसार दीपाकार, वर्तुलसन्निविष्ट (वृत्तसन्निवेश) भ्रुवों के ऊर्ध्व भाग में अवस्थित एवं अर्धमात्रा वाला (मात्रा के अर्धांश भाग वाला) 'अर्धमात्र' नाद 'बिन्दु' है। अमृतानन्द कहते हैं कि 'अर्धचन्द्र' बिन्दु का अर्धभाग है—

'अर्धचन्द्रो बिन्दोरर्धभाग:। तथाकारो दीपाकार एव, पादमात्रो मात्राकालस्य, चतुर्थ-भागोच्चारणकाल इत्यर्थ:। तदूर्ध्वके बिन्दोरूर्ध्वभागे। बिन्दूपरि देशे पादमात्रोच्चारणकालो दीपाकारोऽर्धचन्द्र इति।'

'रोधिनी' = 'ज्योत्स्नाकारा चन्द्रिकासमकान्ति, तदष्टांशा मात्राष्टांशोच्चारणकाला, त्र्यस्र-विग्रहा त्रिकोणाकारा रोधिनी।' स्वच्छन्दतन्त्र में भी कहा गया है—

अर्धचन्द्रस्तदूर्ध्वं तु रोधिनी तस्य चोपरि।
ज्योत्स्नाज्योत्स्नावती कान्ति: सुप्रभाविमलाऽपि च।।

अर्धचन्द्रस्थिता ह्येता: काला: पञ्च प्रकीर्तिता:।
सन्धिनी रोधिनी रोद्धा ज्ञानरोधा तमोपहा।
निरोधिका कला: पञ्च कथितास्तव सुन्दरि।।

ब्रह्मादिपरमेशानां परमाप्तिनिरोधनात्।
निरोधिकेति सा प्रोक्ता तस्या भेदा वरानने।।

'रोधिनी' का मात्राकाल (उच्चारणकाल) अष्टांश है— 'तदष्टांशा मात्राष्टांशोच्चारण-काला त्र्यस्रविग्रहा त्रिकोणाकारा रोधिनी।' (अष्टांशा द्वात्रिंशल्लवकाला:)

'नादान्त' (अमृतानन्द) 'मात्रा द्वात्रिंशत्तमांशोच्चारणकालो हलाकारादिविशेषितो नादान्त इत्यर्थ:।'

नादों का उच्चारणकाल— सेतुबन्ध में भास्कर राय कहते हैं कि 'शक्ति' का

मात्रांश है— 'चतु:षष्टिश्चतु:षष्टितमो मात्रांश:।' इसका काल चतुर्लवात्मक है। 'व्यापिका' का मात्रांश दो लव है। 'समना' का एक लव है। 'उन्मना' का उच्चारणकाल लव का अर्धभाग है— 'व्यापिकाया द्वौ लवौ, समनाया एको लव:, उन्मनायास्तु लवार्धात्मक: काल:। यथा समनाया: कालस्तथैवोन्मनीकाल इत्यर्थ:। मनोन्मनी समनाया एव संज्ञान्तरम्।'

भास्कर राय पुन: कहते हैं कि 'उन्मना' का कोई काल नहीं है— 'ततश्चोन्मनाया इह कालविधिर्नास्त्येव' (सेतुबन्ध)। भास्कर का कथन है कि 'द्विगुणं द्विगुणमिति न वीप्सा, किन्तु शक्तेरूर्ध्वं व्यापिकायां द्विगुणं ततो व्यापिकानन्तरं समनायां द्विगुणमिति प्रत्येकमन्वितं पदद्वयम्, मनोन्मन्या इत्यस्य समनापर्यन्तानामित्यर्थ:।' योगिनीहृदय (१.३४) में भी कहा गया है—

चतु:षष्टिस्तदूर्ध्वं तु द्विगुणं द्विगुणं तत:। शक्त्यादीनां तु मात्रांशो मनोन्मन्यास्तथोन्मनी।।

नाद और वर्ण

प्रश्न— क्या नाद एवं वर्णमाला के वर्ण अभिन्न हैं? क्या इसी दृष्टि से नादों को भी 'वर्ण' कह सकते हैं?

उत्तर— नहीं। भास्कर राय के अनुसार ये ९ नाद ककारादिक वर्णों की भाँति स्पष्टत: उच्चार्य नहीं हैं; प्रत्युत तन्त्री के स्वरों की भाँति श्रूयमाण हैं। इन्हें तन्त्र में 'ध्वनि' कहा गया है; अत: अर्धचन्द्र आदि को 'वर्ण' कहना संगत नहीं है। तालु आदि उच्चारण-स्थानों से ये अभिव्यंग्य नहीं हैं; इसलिये भी ये वर्ण नहीं हैं। 'त्रिषष्टिश्चतु:षष्टिर्वा वर्णा: शम्भुमते मता:' कहा गया है। इस प्रकार यद्यपि ६३, ६४ ध्वनियों को 'वर्ण' कहा गया है, किन्तु इन ९ विशिष्ट ध्वनियों को 'वर्ण' नहीं, 'नाद' कहना ही ठीक है।

बिन्द्वादिक नादों का स्वरूप क्या है? बिन्दु आदि नाद हैं क्या? ये सभी नाद सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतम काल से उच्चार्य ध्वनियाँ या वर्ण हैं। भास्कर राय वरिवस्यारहस्य में कहते हैं कि 'बिन्द्वादयो नवापि सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतमकालैरुच्चार्या ध्वनिविशेषा वर्ण-विशेषा वा।'[१]

हल्लेखा के अवयव—

हल्लेखायास्स्वरूपन्तु व्योमाग्निर्वामलोचना ।
बिन्द्वर्धचन्द्ररोधिन्यो नादनादान्तशक्तय:।।

(वरिवस्यारहस्यम्)

हल्लेखा : 'ह्रीं' के १२ अवयव

ह्	र्	ई	बिन्दु	अर्धचन्द्र	रोधिनी	नाद	नादान्त	शक्ति	व्यापिका	समना	उन्मना
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)	(९)	(१०)	(११)	(१२)

१. पूर्वमालिनी एवं उत्तरमालिनी या अक्षमाला की ध्वनियों को तो 'वर्ण' कहना समीचीन है, किन्तु बिन्दु, अर्धचन्द्र आदि ९ के समूह को 'नाद' कहना ही संगत है।

नौ नाद—

१. तुर्यातीत अवस्था के ५ नाद।
२.तुर्यावस्था के ३ नाद।
३.सुषुप्ति का १ नाद = ९ नाद।

बिन्दु से उन्मनापर्यन्त ९ नाद।

९ नाद—

१. उन्मना	४. शक्ति	७. रोधिनी
२. समना	५. नादान्त	८. अर्धचन्द्र
३. व्यापिका	६. नाद	९. बिन्दु

नाद के ९ भेद

(बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते)

बिन्दु (१) अर्धचन्द्र (२) रोधिनी (३) नाद (४) नादान्त (५)

शक्ति (६) व्यापिका (७) समना (८) उन्मना (९)

पञ्चदशी में स्थित वर्ण

प्रथम कूट (१८ वर्ण) मध्य कूट (२२ वर्ण) अन्तिम कूट (१८ वर्ण)

= कुल संख्या–५८

प्रथमतृतीयकूटेऽष्टादशवर्णात्मके मध्यकूटं तु चतुरधिकम्।

(भास्कर : वरिवस्यारहस्यम्)

यद्यपि मन्त्रशास्त्र में 'बिन्दु' को छोड़कर केवल ८ की समष्टि को ही 'नाद' कहा गया है, तथापि व्यवहारसौकर्यार्थ भास्कर राय ने बिन्दु को भी ९ नादों में सम्मिलित कर लिया है।

पञ्चदशी मन्त्रजपचिह्न

तुर्यातीत	महाबिन्दु	↓ ०	
तुर्यातीता-वस्था	उन्मनी	| ०ᴗ	
	समना	९ ०	
	व्यापिका	▽ᴗ ०	
	शक्ति	| ००	
	नादान्त	०|०	
तुर्यावस्था	नाद	०|०	
	रोधिनी	Vᴗ	
	अर्धचन्द्र	◡	
		पञ्चदशी मन्त्राक्षर	
सुषुप्ति	बिन्दु	०/०ᴗ	कमल दल
१.चक्र ललाट के मध्य सहस्रार	स्वप्न जागृति	ई र् ᴗ ह्	↓ ह्रीं १०००
	भूमि विष्णु भारती	ल क स	स क ल
२.भ्रूमध्य में आज्ञाचक्र		ह्रीं	२
	भूमि ब्रह्मा	ल ह	स्वप्न
३.कण्ठ में विशुद्धि चक्र			१६

योगिनीहृदय में महात्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र को मेरुसमुद्भूत कहा गया है—

भूमिश्चन्द्रः शिवो माया शक्तिः कृष्णाध्वमादनौ।
अर्धचन्द्रश्च बिन्दुश्च नवार्णो मेरुरुच्यते।
महात्रिपुरसुन्दर्या मन्त्रा मेरुसमुद्भवा।।

मात्रायें	
अकार	१
उकार	२
मकार	३
बिन्दु	१/२
अर्धचन्द्र	१/४
नाद	१/१६
निरोधिनी	१/८
नादान्त	१/३२
शक्ति	१/६४
व्यापिनी	१/१२८
समना	१/१२८
उन्मना	

	विष्णु भारती ब्रह्मा	क स ह	
४.हृदय में अनाहत चक्र			१२
	ई-मिथुन र्-रुद्राणी ह्-रुद्र	ह्रीं	
५.नाभि में मणिपूर चक्र			१०
	भूमि विष्णु	ल ई	
६.लिंग में स्वाधिष्ठान चक्र			०६
	भारती ब्रह्मा	ए क	
७.मूलाधार चक्र			

ॐकार की एकादश कलायें

ॐकार की ११ कलाओं के अनुभव के बाद ही उसके निष्कल अनुभव का उदय होता है। वही परमानुभूति है। ये दोनों अनुभूतियाँ मिलकर ही 'पूर्ण ब्रह्मविद्या' कही जाती हैं।

ॐकार की ग्यारहवीं कला की अनुभूति ही 'महामाया' या 'समना शक्ति' है। यही विशुद्धतम मन का स्वरूप है। इस अवस्था में मननात्मक बोध तो रहता है, किन्तु उसमें कोई विषय नहीं रहता। यहाँ मन्तव्यहीन मनन (अविकल्प) रहता है। इस अविकल्प मन के द्वारा ही इस अविकल्पात्मक शुद्ध मन का परिहार होता है। शुद्ध मन एकाग्रता के उच्च शिखर पर पहुँचते ही समाप्त हो जाता है। (मन का त्याग = जीव के संकुचित ज्ञान का प्रशमन। चिन्मात्र स्थिति। विशुद्ध कैवल्यावस्था = मन की इच्छाहीन अवस्था। फिर भी यह परमपद नहीं है।) पूर्णाहन्ता— विकास के लिए 'परा भक्ति' भी सहायक है,

जो कि भगवान् की नित्यसमवेता, स्वतन्त्रभूता, स्वरूपभूता 'उन्मना' शक्ति की उल्लासात्मिका अभिव्यक्ति है।

'बिन्दु' ईश्वर का वाचक है, ईश्वर है। 'बिन्दु' के ऊपर ही ललाट देश में 'अर्धचन्द्र' और उसके आगे 'निरोधिका' है। निरोधिका कला योगियों के ऊर्ध्व गति की प्रतिबन्धिका है। बिन्दु ज्योति अर्धचन्द्र एवं निरोधिकापर्यन्त व्याप्त है। 'बिन्दु' में ज्ञेय का प्राधान्य है। 'अर्द्धचन्द्र' में ज्ञेय का प्राधान्य अत्यल्प है। 'निरोधिका' में तो ज्ञेयप्राधान्य अत्यल्प मात्रा में भी नहीं है।

'बिन्द्वावरण' प्रथम आवरण है और इसमें तीन सूक्ष्म स्तर हैं। इसके अनन्तर मूल स्रोत ब्रह्मरन्ध्र या शक्तिस्थान की एवं प्रवाहित होकर पहले 'नाद' एवं फिर 'नादान्तभूमि' में पहुँचता है। 'बिन्दुतत्त्व' का ज्ञेयप्राधान्य 'निरोधिका' में शान्त हो जाता है। 'नादभूमि' में समस्त वाचकों या मन्त्रों की अभिन्नता का अनुभव पुष्कल मात्रा में होता है। 'बिन्दु' में वाच्य एवं वाचक का भेद हो जाने पर भी विभिन्न वाचकों के पारस्परिक भेद लुप्त नहीं होते, किन्तु 'नाद' एवं 'नादान्त' में जाकर वे भी लुप्त हो जाते हैं। यहाँ समस्त मन्त्रों की अभिन्नता दृष्टिगत होती है। इस भूमि के अधिष्ठाता 'सदाशिव' हैं। 'नादावरण' में पाँच एवं 'नादान्त' में एक सूक्ष्म स्तर है। 'नादान्त' का सुषुम्णा से सम्बन्ध है। जहाँ नाद का विश्राम होता है, उसी को 'ब्रह्मरन्ध्र' कहते हैं। यही देह का ऊर्ध्व छिद्र है। इसका भेदन अत्यन्त कठिन है। मूर्धा के मध्यदेश में 'शक्ति' का स्थान है। यहाँ श्वास-प्रश्वास के या प्राणायाम के संगम का कारण एक अनिर्वचनीय स्पर्शमय तीव्र आनन्द की अनुभूति है। यहाँ सृष्टि-प्रलय का द्वन्द्व नहीं है। यहाँ दिन-रात एकाकार है। 'शक्त्यावरण' में 'परा शक्ति' का भी एक स्तर है और इसका भेदन करके ही योगी 'व्यापिनी' (महाशून्य) में प्रवेश कर पाते हैं। यहाँ प्राणों का सञ्चरण नहीं है। यहाँ सुषुम्ना की क्रिया भी नहीं है। यहाँ महादिन भी नहीं है। यहाँ कलनात्मक काल साम्य रूप से अवस्थित है। 'महाशून्य' भी ॐकार की ही एक 'कला' है। इसमें पाँच अवान्तर कलायें हैं। 'महाशून्य' के बाद की अवस्था में 'महामाया' का साक्षात्कार होता है और इसके अनन्तर ही 'निष्कल पद' है।

'बिन्दु' में ज्ञेय और ज्ञान (वाच्य एवं वाचक) अभिन्न रूप में ज्योति के आकार में स्फुरित होते हैं।

प्रणव की प्राथमिक कलाओं में अ, उ, एवं म —इन तीन कलाओं के केन्द्र हृदय, कण्ठ एवं तालुमूल हैं। तालु तो 'मायाग्रन्थि' का स्थान है और हृदय तथा कण्ठ भी ग्रन्थिस्थान है।

१. 'बिन्दु' से 'समना' तक मात्रांश को जोड़ देने पर १ मात्रा होती है।
२. मायाजगत् में मन्त्र की मात्रायें ६ होती हैं।
३. मायातीत पद में मन्त्र की मात्रा १ होती है।

४. अकार की मात्रा १, उकार की मात्रा २ एवं मकार की मात्रा ३= सब मिलकर ६ मात्रायें हैं।

५. भागांश का विवरण—

अ, उ, म, बिन्दु, अर्धचन्द्र, निरोधिका, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी, समना = ११ कलायें।

नव नाद →

१.बिन्दु — १/२ मात्रा
२.अर्धचन्द्र — १/४ मात्रा
३.निरोधिनी — १/८ मात्रा
४.नाद — १/१६ मात्रा
५.नादान्त — १/३२ मात्रा
६.शक्ति — १/६४ मात्रा
७.व्यापिनी — १/१२८ मात्रा
८.समना — १/१२८ मात्रा
९.उन्मना (कालातीत है; अत: मात्रातीत भी है।)

प्राथमिक तीन भूमियाँ : अ, उ, म— भ्रूमध्य 'बिन्दुग्रन्थि' का स्थान है, जहाँ ज्योति के दर्शन होते हैं। यह ज्योति अ, उ, एवं म के मन्थन से उद्भूत उन्हीं का सारभूत तेज है। इन तीनों मात्राओं में जगत् के समस्त द्वैत, भेद एवं पृथक्त्व समाहित हैं। 'बिन्दु' उनका अविभक्त ज्ञानात्मक स्वरूप है। समस्त मायिक जगत् तो केवल 'अ, उ, म' कलाओं में ही है। जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति, स्थूल जगत्, पुर्यष्टक (लिंगशरीर) आदि सभी इन तीन कलाओं में ही प्रतिष्ठित हैं। १४ भुवनान्तर्गत ब्रह्माण्ड भी इसके भीतर है। मायाग्रन्थि का भेदन होने पर मायिक जगत् एवं माया का भी भेदन हो जाता है। इस अवस्था में द्रष्टा, दृश्य एवं दर्शन तीनों पृथक् हैं। माया का कार्य ही है— 'भेददर्शन'। 'बिन्दु' में अभेद के दर्शन होते हैं। यहाँ अनन्त भेद एवं अनन्त वैचित्र्य एकीभूत (अविभक्त) रूप में दृष्टिगत होता है। ज्योति-दर्शन का अर्थ है— 'अनन्त ज्ञेय पदार्थों का एक ज्ञान के आकार में आकारित होकर (बिन्दु पद में) दृष्टिगत होना'। यही ज्योतिस्वरूप बिन्दु 'ईश्वर'तत्त्व की अधिष्ठानभूमि है। ईश्वर 'योगीश्वर' है। 'बिन्दुदर्शन' अर्थात् अखिल स्थूल प्रपञ्च का साक्षात्कार। 'बिन्दुदर्शन' → त्रिकालदर्शित्व। बिन्दुसिद्धि = तृतीय नेत्र, दिव्य चक्षु का उन्मीलन। 'बिन्दु' से 'समना'पर्यन्त आठ पद 'आज्ञाचक्र' से 'सहस्रार' की कर्णिका तक प्रसृत हैं।

स्वच्छन्दतन्त्र (४ पटल) में प्रणव के अंग इस प्रकार बताये गये हैं—

अकारश्च उकारश्च मकारो बिन्दुरेव च।
अर्द्धचन्द्रो निरोधी च नादो नादान्त एव च।।२२५।।
कौण्डिली व्यापिनी शक्ति: समनैकादशी स्मृता।
उन्मना च ततोऽतीता तदतीतं निरामयम्।।२२६।।

अर्धचन्द्र की कलायें— ज्योत्स्ना, ज्योत्स्नावती, सुप्रभा, विमला, शिवा।
निरोधिका की कलायें— सन्धनी, रोधिनी, रौद्री, ज्ञानबोधा, तमोपहा।
नाद की कलायें— इन्धिका, दीपिका, रोचिका, मोचिका।
नादान्त की कलायें— ऊर्ध्वगा।
शक्ति की कलायें— सूक्ष्मा, सुसूक्ष्मा, अमृता, अमृतसम्भवा, व्यापिनी।
व्यापिनी की कलायें— व्यापिनी, व्योमरूपा, अनन्ता, अनाथा।
समना की कलायें— सर्वज्ञा, सर्वगा, दुर्गा, सवना, स्पृहणा एवं धृति।
अकार की कलायें— रजा, रक्षा, रति, पाल्या, काम्या, तृष्णा, मति, क्रिया, वृद्धि, माया, नाड़ी, भ्रामिणी, मोहिनी।
उकार की कलायें— तम मोहा, क्षुधा, निद्रा, मृत्यु, माया, भया, जरा।

सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी विभुः।
शक्ति ततो ध्वनिस्तस्मान्नादस्तस्मान्निरोधिका।
ततोऽर्द्धेन्दुस्ततो बिन्दुस्तस्मादासीत्परा ततः।। (शारदातिलक)

शब्दब्रह्ममयी कुण्डलिनी → ध्वनि → नाद → निरोधिका → अर्द्धेन्दु; फिर बिन्दु → परा → पश्यन्ती → मध्यमा → वैखरी।

प्रणव की मात्रायें— पद्मपाद (प्रपञ्चसारविवरण) के अनुसार प्रणव की निम्न सात मात्रायें होती हैं—

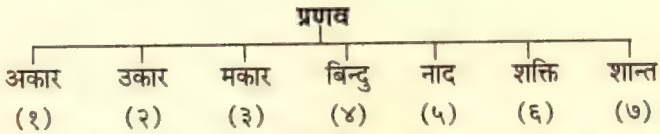

प्रणव के अंग (कलायें)— प्रणव के निम्न बारह (१२) अंग होते हैं—

१. अकार	४. बिन्दु	७. नाद	१०. व्यापिनी
२. उकार	५. अर्धचन्द्र	८. नादान्त	११. समना
३. मकार	६. रोधिनी	९. शक्ति	१२. उन्मना

ज्योत्स्ना ज्योत्स्नावती चैव सुप्रभा विमला शिवा।
अर्द्धचन्द्रकला ह्येताः सर्वज्ञपदसंस्थिताः।।३७।।
रुन्धनी रोधनी रौद्री ज्ञानबोधा तमोपहा।
निरोधिका कला ह्येताः सर्वदेवनिरोधिकाः।।३९।।
इन्धिका दीपिका चैव रोचिका मोचिका तथा।।४०।।
ऊर्ध्वगामिन्य इत्येताः कलाः नादसमुद्भवाः।।४१।।
सूक्ष्मा चैव सुसूक्ष्मा च ह्यमृतामृतसम्भवा।।४२।।
व्यापिनी चैव विख्याता शक्तितत्त्वसमाश्रिताः।। (नेत्रतन्त्र)

* * * * * * * * *

व्यापिनी व्योमरूपा च ह्यनन्ता नाथसंज्ञिता।
अनाश्रिता महेशानि व्यापिन्यास्तु कलाः स्मृताः।।

सर्वज्ञा सर्वगा दुर्गा सवना स्पृहणा धृतिः।
समना चेति विख्याता एताः शिवकलाः स्मृताः।। (नेत्रतन्त्र)

जो 'एक' है (एकाग्र मन की अवस्था है। एकाग्र मन एक मात्रा में अवस्थित रहता है), वह एक से दो रूपों में विभक्त होता है और इस प्रकार एक मात्रा से अर्ध मात्रा का उन्नयन होता है। एक में से दो अर्धमात्राओं का आविर्भाव होता है और उसके बाद लगातार नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी आदि सभी में से अपनी अर्धमात्रा आविर्भूत होती है।

'उन्मना' क्या है? मन का अभाव। एकमात्रिक मन से अर्द्धमात्र मन, चतुर्थांशमात्रिक मन, षोडशांशमात्रिक मन, द्वित्रिंशतांशमात्रिक मन, चतुःषष्टांशमात्रिक मन— सूक्ष्म से सूक्ष्मतर मनों की अवस्थायें हैं। मन का वह स्तर, जिसके आगे मन की यात्रा पूर्णतया रुक जाती है, वह है— १/५१२वाँ मात्रांश।

१/५१२वें मात्रांश के बाद 'उन्मना' आ जाती है। अर्द्धमात्रा को 'योगमाया' कहा गया है। उपासना की दृष्टि से 'श्रीचक्र' में प्रविष्ट होकर तत्त्वातीतावस्था में चलने के मार्ग के तीन चरण हैं— १. चतुष्कोण से त्रिकोण तक, २. बिन्दु से उन्मना एवं ३. महाबिन्दु।

मात्राओं के विवरण का सारांश

१. काल का परमाणु 'लव' है।

२. २५६ लवों से एक 'मात्रा' का गठन होता है। २५६ लव = १ मात्रा।

३. एक मात्रा लघु स्वर का उच्चारण-काल है।

४. योगिनीहृदय के अनुसार ५१२ लवों से एक मात्रा निर्मित होती है।

५. 'बिन्दु' का उच्चारणकाल अर्द्धमात्रा है।

६. इसके अनन्तर प्रत्येक 'नाद' की मात्रा पूर्ववर्ती नाद की आधी-आधी होती जाती है अर्थात् प्रत्येक का काल आधा-आधा होता जाता है।

७. 'उन्मना' को एक लव मानने पर 'बिन्दु' में २५६ लव या अर्धमात्रा होती है।

८. भास्कर के मतानुसार 'उन्मना' में काल का परिच्छेद नहीं है, 'समना' में ही काल का आरम्भ है।

९. योगिनीहृदय के मतानुसार 'उन्मना' से काल का आरम्भ होता है और 'उन्मना' के बाद काल नहीं है।

१०. किसी-किसी तन्त्र के मत से 'बिन्दु' की मात्रा १/२ है। 'अर्धचन्द्र' की मात्रा

१/४ है। 'निरोधिका' की मात्रा १/८ है। 'नाद' की मात्रा १/१६ है। 'नादान्त' तो नाद का ही पल्लवित रूप है।

११. 'शक्ति' की मात्रा १/३२ है। 'व्यापिनी' की मात्रा १/६४ है। 'समना' की मात्रा १/६४ है।

१२. 'उन्मना' अमात्र एवं कालास्पृष्ट है। इस मत में 'समना' + व्यापिनी = १/३२ मात्रायें हैं। उसके साथ 'शक्ति' का संयोग होने पर १/३२ + १/३२ (या १/१६) है। उसके साथ 'नाद' का योग होने से मात्रा हो जायेगी— १/८। उसके साथ 'निरोधिका' का योग होने से मात्रा हो जायेगी— १/४। 'अर्द्धचन्द्र' का योग होने से मात्रा हो जायेगी— १/२ और उसके साथ 'बिन्दु' की १/२ मात्रा का योग होने पर मात्रा की संख्या हो जायेगी— एक मात्रा।

इस मात्रा को छोड़कर 'प्रणव' के 'अकार' की मात्रा १, 'उकार' की मात्रा २ एवं 'मकार' की मात्रा ३ हो जायेगी तथा सभी मात्राओं का योग हो जायेगा— ६।

ग्रन्थ-सन्दर्भ

वेदों की प्राचीनतम एवं गुह्यतम रहस्यविद्याओं में अन्यतम, सिद्धियों के रत्नाकर एवं मोक्ष के अन्यतम साधन 'श्रीविद्या' में निहित 'श्री' शब्द शकार, रकार, ईकार एवं बिन्दु का कल्पवृक्ष है। यही 'षोडशी कला', भगवती त्रिपुरसुन्दरी, दश महाविद्याओं में षोडशी महाविद्या या श्रीविद्या भी है। त्रिपुरसुन्दरी, राजराजेश्वरी, ललिता, कामेश्वरी, त्रिपुरा, महात्रिपुरसुन्दरी, सुभगा, बालत्रिपुरसुन्दरी आदि नामों से इसी की उपासना की जाती है। आदि शङ्कराचार्य, भास्करराय, पुण्यानन्दनाथ आदि इसके परमोपासक रहे हैं। पौराणिक दृष्टि से इसके द्वादश सम्प्रदाय एवं द्वादश उपासक हैं, जिसका यन्त्र 'श्रीयन्त्र' कहलाता है। महाविद्याओं के दो कुलों– कालीकुल और श्रीकुल में से श्रीविद्या श्रीकुल से सम्बद्ध है। श्रीयन्त्र के मुख्यत: तीन सम्प्रदाय हैं– हयग्रीव सम्प्रदाय, आनन्दभैरव सम्प्रदाय और दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय। श्रीयन्त्र के अन्तरतम में स्थित 'बिन्दु' ही है– भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप, आसन एवं धाम और यही है– ब्रह्माण्ड, प्रकृत्यण्ड, मायाण्ड एवं शक्त्यण्ड का उद्भव-केन्द्र। सृष्टि के रेखात्मक चित्र के साथ-साथ अनन्त देवी-देवताओं, शक्तियों, रचनास्तरों, लोकों तथा आध्यात्मिक सूक्ष्ममण्डलों का निवासस्थान भी 'श्रीयन्त्र' ही है। देवी एवं उनके यन्त्र की आराधना का सर्वोत्तम भाव दिव्यभाव होता है।

अद्वैतवादी दर्शन में विश्वास रखने वाले श्रीसम्प्रदाय की अनुभूति एवं काम्य है– 'अहं देवी न चान्योऽस्मि'। श्रीविद्या-साधनापथ में भक्ति, ज्ञान एवं योग– तीनों ही स्वीकृत हैं। षट्चक्रवेधन-द्वारा मूलाधारस्थ कुलशक्ति को जागृत कर उसके वियुक्त प्रियतम 'अकुल' से उसका सम्मिलन कराना भी एक साधन-पथ है तथा 'ज्ञानोत्तरा भक्ति' के द्वारा विश्वात्मा का अपनी आत्मा के रूप में साक्षात्कार करना भी एक साधन-पथ है। ये दोनों ही पथ श्रीविद्या में स्वीकृत हैं। श्रीविद्या की साधना में 'बहिर्याग' से उत्कृष्टतर 'अन्तर्याग' का ही आत्मीकरण माना जाता है और महात्रिपुरसुन्दरी समस्त प्राणियों की आत्मा हैं। वे विश्वातीत भी हैं और विश्वमय भी। यथार्थत: तो वे 'कामेश्वर' भी हैं और 'कामेश्वरी' भी।

बैन्दवस्थान-स्थित सहस्रदल कमल में भगवती की पूजा ही आदर्श पूजा है। बैन्दव-पुर ही 'चिन्तामणि-गृह' है। सामयिकों के मत में इसी चिन्तामणि गृह में या सहस्रदल कमल में भगवती की पूजा की जानी चाहिये; न कि बाह्य पीठ आदि पर।

अङ्ग-उपाङ्गसहित श्रीविद्या और उसकी साधना का प्रतिपादक प्रकृत **श्रीविद्या-साधना** ग्रन्थ तज्जिज्ञासुओं एवं समुपासकों के लिये अवश्यमेव पठनीय, मननीय एवं संग्रहणीय है।

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

श्रीविद्या-साधना

(श्रीविद्या का साङ्गोपाङ्ग विवेचन)

डॉ० श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

महत्त्वपूर्ण तन्त्रशास्त्रीय प्रकाशन

* **तन्त्रसारः** (१-२ भाग) : परमहंस मिश्र
* **कुलार्णवतन्त्रम्** : परमहंस मिश्र
* **वर्णबीजप्रकाशः** : परमहंस मिश्र
* **तन्त्रालोकः** (१-५ भाग) : राधेश्याम चतुर्वेदी
* **स्वच्छन्दतन्त्रम्** (१-२ भाग) : राधेश्याम चतुर्वेदी
* **नेत्रतन्त्रम्** : राधेश्याम चतुर्वेदी
* **कामाख्यातन्त्रम्** : राधेश्याम चतुर्वेदी
* **रुद्रयामलम्** (१-२ भाग) : सुधाकर मालवीय
* **शारदातिलकम्** (१-२ भाग) : सुधाकर मालवीय
* **मन्त्रमहोदधिः** : सुधाकर मालवीय
* **लक्ष्मीतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण
* **तन्त्रराजतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण
* **त्रिपुरारहस्यम्** (१-२ भाग) : जगदीशचन्द्र मिश्र
  (ज्ञान एवं माहात्म्य खण्ड)
* **त्रिपुरार्णवतन्त्रम्** : जगदीशचन्द्र मिश्र
* **सर्वोल्लासतन्त्रम्** : एस० एन० खण्डेलवाल
* **नीलसरस्वतीतन्त्रम्** : एस० एन० खण्डेलवाल
* **भूतडामरतन्त्रम्** : एस० एन० खण्डेलवाल
* **सिद्धनागार्जुनतन्त्रम्** : एस० एन० खण्डेलवाल
* **अन्नदाकल्पतन्त्रम्** : एस० एन० खण्डेलवाल
* **गायत्रीमन्त्रार्थभास्करः** : गदाधर प्रसाद शर्मा
* **विज्ञानभैरवः** : बापूलाल आँजना
* **मन्त्र एवं मातृकाओं का रहस्य** : शिवशङ्कर अवस्थी
* **तन्त्रविज्ञान एवं साधना** : सीताराम चतुर्वेदी
* **पुरश्चर्यार्णवः** (मूलमात्रम्)
* **प्राणतोषिणी** (मूलमात्रम्)
* **श्रीदेवीरहस्यम्** (मूलमात्रम्)
* **बृहन्नीलतन्त्रम्** (मूलमात्रम्)
* **सप्तशतीसर्वस्वम्** : सरयू प्रसाद द्विवेदी

Text with English Translation—

* Kamakalavilasa : Dwivedi & Malviya
* Mahanirvana Tantra : M. N. Dutta
* The Shiva Samhita : S. C. Basu
* The Gheranda Samhita : S. C. Basu
* The Hatha Yoga Pradipika : P. Singh

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

३९१

श्रीविद्या-साधना

श्रीविद्या का साङ्गोपाङ्ग विवेचन

(द्वितीय भाग : ४-६ परिच्छेद)

लेखक

डॉ० श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

Dr. Shyama Kant Dwivedi

M.A. ,M.Ed.,
Ph.D., D. Litt.
Vyākarnāchārya

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक

© चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी-२२१००१

दूरभाष : २३३५२६३; २३३३४३१

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण २००५ ई०

मूल्य : १२००.०० (१-२ भाग)

प्रकृत मौलिक ग्रन्थ के विषयक्रम, रेखाचित्र, चित्र आदि का सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा स्वायत्तीकृत है।

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू० ए०, जवाहरनगर, बंगलो रोड

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली-११०००७

दूरभाष : २३८५६३९१

❖

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बडौदा भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी-२२१००१

दूरभाष : २४२०४०४

अक्षर-संयोजक

मुकेश कम्प्यूटर्स, वाराणसी

मुद्रक

ए० के० लिथोग्राफर्स, दिल्ली

श्रीविद्या का निहितार्थ

'श्रीविद्या' वेदों की प्राचीनतम एवं गुह्यतम रहस्य विद्याओं में से अन्यतम विद्या है। यह सिद्धियों का रत्नाकर एवं मोक्ष का अन्यतम साधन है। 'श्रीविद्या' श्री की विद्या है। इसमें निहित 'श्री' शब्द 'शकार, रकार, ईकार एवं बिन्दु' का कल्पवृक्ष है। यही 'षोडशी कला' भी है और भगवती त्रिपुरसुन्दरी भी। लक्ष्मीधर ने ठीक ही कहा है—

'षोडशी कला शकार-रेफ-ईकार-बिन्द्वन्तो मन्त्रः। एतस्यैव बीजस्य नाम श्रीविद्येति। श्रीबीजात्मिका विद्या श्रीविद्येति रहस्यम्।'

श्रीविद्या 'चन्द्रविद्या' है, चन्द्रकला 'अमृतकला' है, भगवती कुण्डलिनी 'अमृतलहरी' हैं और वे 'श्रीस्वरूपा' (त्रिपुरसुन्दरीस्वरूपा) हैं।

दश महाविद्याओं में एक महाविद्या षोडशी या श्रीविद्या भी है। इसकी 'त्रिपुरसुन्दरी, राजराजेश्वरी, ललिता, कामेश्वरी, त्रिपुरा, महात्रिपुरसुन्दरी, सुभगा, बालत्रिपुरसुन्दरी' आदि अनेक नामों से पूजा की जाती है। आदि शङ्कराचार्य, भास्करराय, पुण्यानन्दनाथ आदि परमोपासक रहे हैं। पौराणिक परम्परा की दृष्टि से इसके द्वादश सम्प्रदाय और द्वादश उपासक हैं। इनका यन्त्र 'श्रीयन्त्र' कहलाता है। दश या अट्ठारह महाविद्याओं के दो कुल हैं। उनमें से एक 'काली-कुल' है और दूसरा 'श्रीकुल'। श्रीविद्या श्रीकुल से सम्बद्ध है। इस श्रीयन्त्र के मुख्यतः तीन सम्प्रदाय हैं— हयग्रीव सम्प्रदाय, आनन्दभैरव सम्प्रदाय और दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय। श्रीयन्त्र के अन्तरतम में जो 'बिन्दु' होता है, वही है— भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप, आसन एवं धाम। यही है— ब्रह्माण्ड, प्रकृत्यण्ड, मायाण्ड एवं शक्त्यण्ड का उद्भव-केन्द्र। भगवती का श्रीयन्त्र समस्त सृष्टि का रेखात्मक चित्र तो है ही; साथ ही यह अनन्त देवी-देवताओं, शक्तियों तथा समस्त रचनास्तरों, लोकों एवं आध्यात्मिक सूक्ष्म मण्डलों का भी निवासस्थान है। देवी एवं उनके यन्त्र की आराधना यद्यपि 'पशु, वीर एवं दिव्य' तीन भावों से की जा सकती है; किन्तु दिव्यभाव सर्वोत्तम होता है। शाक्तों के तीन सम्प्रदाय प्रमुख हैं— कौलमार्ग, मिश्रमार्ग एवं समयमार्ग। आदि शङ्कराचार्य समय-

मार्गी थे। समयमार्गी शाक्त वेदों, पुराणों, सदाचारों एवं विधि-निषेधों में आस्था रखते हैं; किन्तु कौल इस लक्ष्मणरेखा को नहीं मानते।

'समयाचार' श्रीविद्या की आन्तर पूजा का प्रतिपादक है— 'समयाचारो नाम आन्तरपूजारतिः।' 'परमशिव' के साथ 'शक्ति' का या 'समय' के साथ 'समया' का सामरस्य कराना ही समयाचारियों का परम लक्ष्य है।

श्री सम्प्रदाय अद्वैतवादी दर्शन में विश्वास रखता है; अतः 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की अनुभूति ही उनका काम्य है।

श्रीविद्या के साधनापथ में भक्ति, ज्ञान एवं योग तीनों स्वीकृत हैं। षट्-चक्र-वेधन के द्वारा मूलाधारस्थ कुलशक्ति को जागृत करके उसके वियुक्त प्रियतम 'अकुल' से उसका सम्मिलन कराना भी एक साधन-पथ है तथा 'ज्ञानोत्तरा भक्ति' के द्वारा (ज्ञान और भक्ति का सामञ्जस्य करके) विश्वात्मा (भगवती ललिता) का अपनी आत्मा के रूप में साक्षात्कार करना भी एक साधन-पथ है। ये दोनों पथ श्रीविद्या में स्वीकृत हैं। श्रीविद्या की साधना में 'बहिर्याग' से उत्कृष्टतर 'अन्तर्याग' का ही आत्मीकरण माना जाता है। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी समस्त प्राणियों की आत्मा हैं। वे विश्वातीत भी हैं और विश्व-मय भी। यथार्थतः तो वे 'कामेश्वर' भी हैं और 'कामेश्वरी' भी।

बैन्दवस्थान में सहस्रदल कमल है और उसमें भगवती की पूजा आदर्श पूजा है। चन्द्रमण्डल से विगलित अमृत से सिक्त श्रीचक्ररूपी त्रिपुरा की पुरी में पूजा करना ही यथार्थ पूजा है। बैन्दवपुर ही 'चिन्तामणि गृह' है। सामयिकों के मत में इसी चिन्तामणि गृह में या सहस्रदल कमल में भगवती की पूजा की जानी चाहिये; न कि बाह्य पीठ आदि पर। 'समयिनां मते समयस्य सादाख्यतत्त्वस्य सपर्या सहस्रदलकमल एव न तु बाह्ये पीठादौ' कहकर लक्ष्मीधर ने भी इसी तथ्य की पुष्टि की है।

प्राक्कथन

वैदिक विद्याओं में 'श्रीविद्या' सर्वोच्च विद्या है। इसी का अपर रूप 'गायत्री मन्त्र' में स्फुरित हुआ है। देव्युपनिषद् एवं अथर्ववेद-सौभाग्यखण्ड इस विद्या को रहस्यात्मक आवरण या प्रतीकात्मक शब्दावली में इस प्रकार प्रकट करता है—

[१]कामो योनिः कामकला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया चपुरुच्यैषा विश्वमाता दिविद्योम्।।

तैत्तिरीयारण्यक श्रुति में श्रीयन्त्र का भी उल्लेख किया गया है—

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गे लोको ज्योतिषावृतः।।

शङ्कराचार्य के चारो पीठों में प्रारम्भ से आज तक श्रीयन्त्र एवं श्रीविद्या की अनवरत रूप में उपासना चली आ रही है; क्योंकि आद्य शङ्कराचार्य शैव होते हुये भी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के परमोपासक थे। हयग्रीव, अगस्त्य, दत्तात्रेय, दुर्वासा, परशुराम, गौड़पाद, शङ्कराचार्य, भास्करराय, उमानन्दनाथ एवं अमृतानन्दनाथ आदि आचार्यों ने श्रीविद्या के प्रतिपादक ग्रन्थों का प्रणयन तो किया ही; पराभट्टारिका राजराजेश्वरी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी या भगवती ललिता की उपासना भी की।

उत्तर भारत में श्रीविद्या एवं श्रीविद्या-सम्प्रदाय के प्रचलन की तो बात ही क्या; यहाँ तो सामान्यतः लोगों को इनका नाम भी ज्ञात नहीं है। इस विद्या की रहस्यात्मकता, उच्च स्तरीयता, अतिशय क्लिष्टता एवं अगम्यता के कारण समस्त उत्तर भारत में इसका प्रचार-प्रसार अवरुद्ध ही रहा और प्रायः लोग श्रीविद्या के नाम से भी अनजान रहे।

भगवती राजराजेश्वरी ललिता देवी का नाम 'त्रिपुरा' भी है; क्योंकि—

त्रिमूर्त्तिसर्गाच्च पुराभवत्वात् त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्याः।
लये त्रिलोक्या अपि पूरणत्वात्त्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम।।

सिद्धेश्वरीमत के अनुसार—

ब्रह्मा-विष्णु-महेशानैस्त्रिदेवैरर्चिता पुरा।
त्रिपुरेति तदा नाम कथितं दैवतैः पुरा।।

आचार्य भास्करराय की दृष्टि में 'त्रिपुरा' नाम की सार्थकता इसलिये है; क्योंकि—

---

१. 'अथर्वशीर्ष' में पाठान्तर : 'कामो योनिः कमला वज्रपाणि।'

'अथ त्रीणि पुराणि ब्रह्म-विष्णु-शिवशरीराणि यस्मिन् सः त्रिपुरः परशिवः, तस्य पुराणि सुन्दरी शक्तिः।'

ऋग्वेदीय त्रिपुरोपनिषद् के अनुसार 'त्रिपुरा' पद की सार्थकता निम्न तथ्यों के कारण है—

१. भगवत्ती त्रिपुरा तीन पुरों की अधीश्वरी हैं।
२. तीन पन्थ वाली हैं।
३. समस्त (त्रिलोक) एवं प्राणियों की जननी (जन्मदात्री) हैं।
४. वे 'अ-क-था' हैं।
५. वे अक्षरा हैं।
६. वे अजरा हैं।
७. वे पुराणी हैं।
८. वे देवों का अधिष्ठान हैं।

तिस्रः पुरस्त्रिप्रथा विश्वचर्षणी अत्राकथा अक्षरा सन्निविष्टा।
अधिष्ठायैनामजरा पुराणी महत्तरा महिमा देवतानाम्।।

'त्रिपुराविद्या' के ज्ञानाधिगम से साधक सिद्ध-संघ का अधिपति बन जाता है—

अथ वक्ष्ये परां विद्यां त्रिपुरामतिगोपिताम्।
यं ज्ञात्वा सिद्धिसन्धानामधिपो जायते नरः।। (शारदातिलक)

यह विद्या वाग्भवबीज, कामबीज एवं कामराजबीज के भेद से बीजत्रयात्मिका है—

वाग्भवं प्रथमं बीजं काम बीजं द्वितीयकम्।
तृतीयं कामराजाख्यं त्रिभिर्बीजैरितीरिता।। (शारदातिलक)

भगवती त्रिपुरा की 'पञ्चदशी विद्या' का परिचय इस प्रकार है—

पञ्चकूटात्मिका विद्या वेद्या त्रिपुरसुन्दरी।
ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्तिश्छन्दः पंक्तिः समीरितः।।

भगवती त्रिपुरा की उपासना वाममार्ग एवं दक्षिणमार्ग दोनों में प्रचलित है। आचार्य विद्यानन्द (अर्थ० में) कहते हैं कि इनकी प्रधान साधना दक्षिणमार्गानुष्ठिता है। आचार्य दीपकनाथ (त्रिपुरसुन्दरीदण्डक में) कहते हैं कि उनकी प्रधान साधना का मार्ग वाम-मार्ग है—'सुस्फुटं वाममार्गस्य सर्वोत्तमत्वं समुपदिश्यते।' इनमें वाममार्ग तो कौलमार्ग है और दक्षिणमार्ग समयमार्ग है। भगवती त्रिपुरा की उपासना कौलमार्ग, मिश्रमार्ग एवं समयमार्ग—तीनों में प्रचलित है।

दस महाविद्याओं में भगवती 'षोडशी' (महात्रिपुरसुन्दरी) तृतीया 'महाविद्या' हैं। दस महाविद्यायें निम्नाङ्कित हैं—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।।
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः।।

वामकेश्वरतन्त्र में इन्हीं भगवती त्रिपुरा देवी को 'त्रिविधा' कहा गया है, जो कि ज्ञान-शक्ति, क्रियाशक्ति एवं इच्छाशक्ति के रूपों में तथा त्रिदेवों के रूप में विभाजित है—

त्रिपुरा त्रिविधा देवी ब्रह्मविष्णवीशरूपिणी।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिरिच्छाशक्त्यात्मिका प्रिये।।

अन्त में मैं इस पुस्तक के वैचारिक केन्द्र में स्थित 'श्रीविद्या' की अधिष्ठात्री परदेवता के श्रीपादपद्मों में नमन करते हुये ऋषि दुर्वासा के शब्दों में निवेदन करना चाहता हूँ कि—

आताम्रार्कसहस्रदीप्तिपरमा सौन्दर्यसारैरलं
लोकातीतमहोदयैरुपयुता सर्वोपमागोचरैः।
नानानर्घ्यविभूषणैरगणितैर्जाज्वल्यमानाभितः
श्रीमातस्त्रिपुरारि सुन्दरि कुरु स्वान्ते निवासं मम।।

सीधी (म० प्र०)
कार्त्तिकपूर्णिमा-२०६१

श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

प्रस्तावना

भारतीय दर्शनों के आर्ष सूत्र-वाङ्मय पर दृष्टिपात किया जाय तो हमें उनमें तीन प्रकार की जिज्ञासायें दृष्टिगोचर होती हैं—

१. 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' (वेदान्तसूत्र) : बादरायण व्यास।

२. 'अथातो धर्मजिज्ञासा' (मीमांसासूत्र) : ऋषि जैमिनि।

३. 'अथातो शक्तिजिज्ञासा' (शक्तिसूत्र) : ऋषि हयग्रीव एवं ऋषि अगस्त्य।

उपर्युक्त तीनों सूत्रों की मानसपटल पर उपस्थिति होने के साथ ही यह स्पष्ट होता है कि जहाँ एक ओर बादरायण व्यास की जिज्ञासा का केन्द्र 'ब्रह्म' था तो दूसरी ओर ऋषि जैमिनि की जिज्ञासा का केन्द्र ब्रह्म न होकर 'धर्म' था। एक के ध्यान एवं उपासना का विषय निर्गुण, निराकार, निरञ्जन परात्पर सत्ता थी तो दूसरे के ध्यान एवं उपासना का विषय वेद एवं यज्ञ था। व्यास का 'वेदान्तदर्शन' यद्यपि निर्गुण परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करके उसके स्वरूप की मीमांसा करता रहा; किन्तु जैमिनि का 'मीमांसादर्शन' परमात्मा की सत्ता को अस्वीकार करते हुये स्वर्ग के साधनभूत वेद, धर्म, यज्ञ एवं यज्ञीय कर्म आदि की मीमांसा में रत रहा। एक की दृष्टि में विश्व के सृजन, पालन एवं संहार के लिये किसी परात्पर परमात्म सत्ता में विश्वास करना सर्वथा आवश्यक था, जबकि दूसरे को इन सृष्ट्यादिक व्यापारों के निष्पादन के लिये किसी भी परात्पर परमात्म सत्ता के अस्तित्व की आवश्यकता ही नहीं थी। इन दोनों ही दर्शनों की जिज्ञासाओं में किसी परात्पर, निरपेक्ष, सार्वभौम, नित्य एवं सर्वादिकारणभूता परा शक्ति के चिन्तन की कथमपि आवश्यकता नहीं थी। फलस्वरूप तान्त्रिकों ने वही कार्य किया, जिसे ब्रह्म-जिज्ञासुओं एवं धर्म-जिज्ञासुओं ने नहीं किया और इसीलिये उन तान्त्रिकों की जिज्ञासा का विषय परात्परा स्वातन्त्र्य शक्ति-समन्विता, अद्वितीया, सर्वादिकारणभूता, अजा, एका, ब्रह्मस्वरूपा एवं अवाङ्मनसगोचरा, अद्वैत महाशक्ति का अनुसन्धान बना; जिसके परिणामस्वरूप उनकी जिज्ञासा ने 'अथातो शक्तिजिज्ञासा' के रूप में आकार ग्रहण किया। इसी शक्ति को 'बह्वृचोपनिषद्' में कामकला, शृङ्गारकला, एका, सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी, परं ब्रह्म, आत्मा, ब्रह्मसंवित्ति, सच्चिदानन्दलहरी, चिन्मात्र, षोडशी, श्रीविद्या, सुन्दरी, बाला, अम्बिका, चामुण्डा, चण्डा, वाराही, सावित्री, सरस्वती, गायत्री और ब्रह्मानन्द कला कहा गया। 'भावनोपनिषद्' में इन्हें कामेश्वरी सदानन्दघना पूर्णा स्वात्मैक्यरूपा देवता एवं 'त्रिपुरातापिन्युपनिषद्' में भगवती त्रिपुरा, परमा विद्या, त्रिपुरा परमेश्वरी, त्रिपुरा शक्ति, महाकुण्डलिनी, कामाख्या, तुरीयरूपा, तुरीयातीता, सर्वोत्कटा, सर्वमन्त्रासनगता, पीठोपदेवतापरिवृता, सकलकलाव्यापिनी,

त्रिकूटा, त्रिपुरा, परमा माया, श्रेष्ठा, परा भगवती लक्ष्मी, परा वैष्णवी, चन्द्रमण्डलमध्यवर्तिनी चन्द्रकला, सप्तदशी, चैतन्यरूपिणी, सुन्दरी महामाया, सर्वसुभगा महाकुण्डलिनी, चित्कला एवं महात्रिपुरा आदि कहा गया। 'सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्' में इन्हें ही तुरीयरूपा, तुरीयातीता, सर्वोत्कटा, सर्वमन्त्रासनगता, पीठोपपीठ-देवतापरिवृता, चतुर्भुजा, श्रियं, हिरण्यवर्णा आदि कहा गया।

'त्रिपुरोपनिषद्' की उस 'एका स आसीत् प्रथमा सा', 'त्रिपुरातापिन्युपनिषद्' की 'सैवेयं भगवती त्रिपुरेति', 'बह्वृचोपनिषद्' की 'महात्रिपुरसुन्दरी, परब्रह्म, पञ्चदशाक्षरी महात्रिपुरसुन्दरी' एवं 'भावनोपनिषद्' की 'कुण्डलिनी ज्ञानशक्ति एवं इच्छाशक्तिर्महात्रिपुर-सुन्दरी' देवी एवं उनकी स्वात्मभूता 'श्रीविद्या' एवं 'श्रीचक्र' के स्वरूप की विवेचना ही शाक्तदर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय बना।

शाक्तदर्शन एवं शाक्तोपासना का आर्ष सूत्र है— 'अथातः शक्तिजिज्ञासा।'

ऋग्वेद की प्रथम ऋचा 'अग्निमीळे पुरोहितम्' से लेकर अथर्ववेद तक, संहिता से लेकर उपनिषद् तक, स्मृतियों से लेकर पुराणों तक, साङ्ख्य दर्शन से लेकर न्याय-वैशेषिक तक के समस्त दार्शनिक चिन्तनों में विश्व की आधारभूता परा सत्ता का विमर्शन पुरुषाकाररूप में ही किया गया है। कहीं उस सर्वानुस्यूत, सर्वाधार, सर्वव्याप्त, सर्वस्वरूप, सर्वाकार, सर्वात्मक एवं सर्वातीत परा सत्ता को 'ब्रह्म' कहा गया तो कहीं 'परमेश्वर'। कहीं उसे 'परमात्मा' कहा गया तो कहीं 'भगवान्'। कहीं 'परमशिव' कहा गया तो कहीं 'महाविष्णु'। प्रत्येक पुरुषाकार परा सत्ता के साथ उसकी शक्ति की भी कल्पना की गई और वही कल्पित शक्ति कहीं समवायिनी अभिन्न शक्ति के रूप में तो कहीं अचिन्त्य मायाशक्ति के रूप में, कहीं सत् रूप में तो कहीं असत् रूप में कल्पित की गई; लेकिन किसी ने भी उसे निरपेक्ष परात्पर परा सत्ता के रूप में कल्पित नहीं किया। वेदान्तसूत्रों की व्याख्या भी शक्तिवाद को मूल सिद्धान्त मान कर नहीं की गई।

यद्यपि वेदों में 'सरस्वती, ऊषा, अदिति, वाणी, रात्रि, गायत्री, सावित्री, राका, सिनीवाली, दुर्गा, त्रिपुरा, सुभगा, सुन्दरी, अम्बिका, चिति, श्रीविद्या, ललिता, श्री' आदि देवियों की परा शक्ति के रूप में कल्पना दृष्टिगोचर होती है; किन्तु दार्शनिक प्रस्थानों में 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' की भाँति 'अथातो शक्तिजिज्ञासा' के रूप में पृथक् दार्शनिक चिन्तन के रूप में उसे कोई स्थान नहीं मिला।

श्रीदेव्यथर्वशीर्ष (अथर्ववेद) में समस्त देवताओं द्वारा देवी से अपना परिचय देने के अनुरोध का उल्लेख है। सारे देवता पूछते हैं— हे महादेवी ! तुम कौन हो? : 'काऽसि त्वं महादेवीति'। देवी कहती हैं— 'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी, मत्तः प्रकृति-पुरुषात्मकं जगत्, शून्यञ्चाशून्यञ्च, अहमानन्दानानन्दौ, अहं विज्ञानाविज्ञाने, अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि, अहमखिलं जगत्, वेदोऽहमवेदोऽहम्, विद्याहमविद्याहम्, अजाहमन-जाहम्, अधश्चोर्ध्वञ्च तिर्यक्चाहम्।' आदि।

इन्हीं के विषय में देवताओं ने भी कहा कि— 'एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी। पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या। .....सैष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्रस्वरूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतीषि। विश्वरूपिणी, अज्ञेया, अनन्ता, अलक्ष्या, अजा, एका, मन्त्राणां मातृका, शब्दानां ज्ञानरूपिणी, ज्ञानानां चिन्मयातीता, शून्यानां शून्यसाक्षिणी।'

इस प्रकार शक्ति (नारी) को परात्पर परब्रह्म के रूप में स्थान तो मिल गया; किन्तु शक्तिवाद की सुदृढ़ स्थापना तो त्रिपुरोपनिषद्, त्रिपुरातापिन्युपनिषद्, देव्युपनिषद्, भावनोपनिषद्, सरस्वतीरहस्योपनिषद्, सीतोपनिषद्, बह्वृचोपनिषद्, सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् आदि; अगस्त्य के शक्तिसूत्र, हयग्रीव के शाक्तदर्शनम्, दत्तात्रेय की दत्तसंहिता, परशुराम के परशुरामकल्पसूत्र, त्रिपुरारहस्य, दुर्वासा के ललितास्तवरत्न, पराशम्भुस्तोत्र, त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र, सौभाग्यभास्कर, कालिकापुराण, देवीभागवतपुराण, ललितासहस्रनाम, सप्तशती, गौडपाद की सुभगोदयस्तुति, शङ्कराचार्य की सौन्दर्यलहरी, पुण्यानन्द के कामकलाविलास, अमृतानन्द एवं भास्कर के ग्रन्थों (दीपिका, सेतुबन्ध, वरिवस्यारहस्यम् आदि), अगस्त्य के शक्तिमहिम्नस्तोत्र एवं क्षेमराज के शक्तिसूत्र आदि ग्रन्थों के द्वारा ही हो पायी। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' की तरह 'अथातः शक्तिजिज्ञासा' प्रथम सूत्र के रूप में पहली बार हयग्रीव के 'शाक्तदर्शनम्' एवं अगस्त्य के 'शक्तिसूत्र' में ही अवस्थान [illegible] प्राप्त कर सका।

यहाँ वही शक्ति जिज्ञास्य है, जो मन्त्रों में 'मातृका', शब्दों में 'ज्ञान', ज्ञानों में 'चिन्मयातीता' एवं शून्यों में 'शून्यसाक्षिणी' है। देव्युपनिषद् में कहा भी गया है—

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी।।[१]

यहाँ वही जिज्ञास्य है, जो कामकला, शृंगारकला, परा शक्ति, शाम्भवी विद्या, कादि विद्या, हादि विद्या, सादि विद्या तथा प्रत्यक् चितिस्वरूपा महात्रिपुरसुन्दरी है[२] जो षोडशी, श्रीविद्या, पञ्चदशाक्षरी, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी कहलाती है[३] जो इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति एवं कुण्डलिनी तथा महात्रिपुरसुन्दरी है[४] जो कामेश्वरी, सदानन्दघना, पूर्णा एवं स्वात्मैक्यरूपा देवता है।[५]

यहाँ वही शक्ति जिज्ञास्य है, जिसकी उपासना में 'इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक ब्रह्मग्रन्थिमत् रसतन्तु ब्रह्मनाडी' ब्रह्मसूत्र हैं, 'चिदग्निस्वरूपपरमानन्द शक्तिस्फुरण' ही वस्त्र है, 'चिच्चन्द्रमयी सर्वाङ्गस्रवण' ही स्नान है, 'रक्तशुक्लपदैकीकरण' ही पाद्य है, 'स्वच्छस्वपरिपूरणानुस्मरण' ही गन्ध है, 'सच्चिदुल्काऽकाशदेहो' दीप है और 'मूलाधारादाब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रादामूलाधारपर्यन्तं गतागत रूप' प्रादक्षिण्य है।[६] यह साधना का वह उच्चतम स्तर है—

---

१. देव्युपनिषत्
२. बह्वृचोपनिषत्
३. बह्वृचोपनिषत्
४. बह्वृचोपनिषत्
५. बह्वृचोपनिषत्
६. भावनोपनिषत्

● जहाँ निरोध, उत्पत्ति, बन्धन, साधना, मुमुक्षता, मुक्ति, बद्ध, साधक, मुमुक्षु एवं मुक्त की अवधारणा भी मिथ्या हो जाती है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता।।[१]

● जहाँ ज्ञान-विज्ञान-तत्पर योगी धान्यार्थी की भाँति समस्त बाह्याडम्बरों का 'पलाल' की भाँति त्याग कर देता है—

पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद् ग्रन्थमशेषतः।[२]

● जहाँ आन्तर पूजा ही यथार्थ पूजा होती है—

'अतः समयिनामैहिकामुष्मिकफलसाधनोपायः आन्तरपूजेति समयमततत्त्वम्।'

(लक्ष्मीधरा)

● जहाँ मन्त्रों का पुरश्चरण, जप, बाह्य होम, बाह्य पूजा के लिये कोई स्थान नहीं है और हृत्कमल एवं सहस्रार में पूजा ही यथार्थ पूजा है—

'समयिनां मन्त्रस्य पुरश्चरणं नास्ति, जपो नास्ति, बाह्यहोमोऽपि नास्ति, बाह्यपूजा-विधयो न सन्त्येव। हृत्कमल एव सर्वं यावदनुष्ठेयम्।'

● जहाँ बाह्य पूजा निषिद्ध है; सनत्कुमारसंहिता में कहा भी गया है—

बाह्यापूजा न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभिः।

● जहाँ मन्त्र-जप-जपाङ्ग, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, द्रष्टा-दृश्य-दर्शन, ध्याता-ध्यान-ध्येय, उपासक-उपासना-उपास्य, साधक-साधना-साध्य, देवता, ऋषि, छन्द, वर्ण, नाद, शून्य, अवस्था, मन्त्रार्थ, जगत्, ग्रह, नक्षत्र, चक्र, राशि, शक्तिचक्र, गुरु एवं भगवती महात्रिपुर-सुन्दरी के मध्य स्थित सारे द्वैत ध्वस्त होकर पूर्ण सामरस्य की अनुभूति होती है।

● जहाँ शिव और शक्ति, भक्त और भगवान्, कुल एवं अकुल, षट्चक्र एवं श्रीचक्र, श्रीचक्र एवं शरीर, शिवचक्र एवं शक्तिचक्र, मूलाधार एवं सहस्रार, कुण्डलिनी एवं महाकुण्डलिनी आदि सभी अपनी-अपनी भेदात्मकता का त्याग करके अद्वैतभावापन्न होकर एक हो जाते हैं।

● जहाँ समग्र, सार्वभौम, सर्वव्यापक एवं नित्य सामरस्य ही पूर्ण उपलब्धि होती है।

● जहाँ कर्म-ज्ञान-भक्ति-उपासना एवं योग अपने-अपने भेद-भाव का त्याग करके गंगा-जमुनी संगम में रूपान्तरित होकर एक हो जाते हैं।

यह 'श्रीविद्या' ब्राह्मीभाव, ब्रह्माद्वैत एवं पञ्चकृत्यकारी परमशिव की विमर्शस्वरूपा आत्मशक्ति की साधना की संदेशवाहिका है। यहाँ पहुँचकर ज्ञान एवं योग एक हो जाते

---

१. त्रिपुरातापिन्युपनिषत् २. त्रिपुरातापिन्युपनिषत्

हैं तथा यहाँ ज्ञान एवं योग का प्राधान्य होते हुये भी 'भक्ति' की मन्दाकिनी ही सर्वाधिक पूज्या है। आचार्य उत्पलदेव कहते हैं—

न योगो न तपो नार्चाक्रमः कोऽपि प्रणीयते।
अमाये शिवमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका प्रशस्यते।।[१]

यहाँ पहुँचकर ज्ञानमार्गी, केवलाद्वैतवेदान्ती आचार्य शंकर भी अपनी ब्रह्मरूपता की अस्मिता भूलकर कह उठते हैं—

सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवैवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो वै तरङ्गः न तारङ्गो वै समुद्रः।।

यहाँ जगत् ब्रह्म एवं जीव से भिन्न 'विवर्त' नहीं है; प्रत्युत यहाँ यह परा शक्तिस्वरूप है, ब्रह्माभिन्न है और 'परिणाम' है—

'शिवादिक्षित्यन्तरूपेण परिणमत इत्यर्थः। यथा क्षीरं दध्याकारेण परिणमते, तथा चिच्छक्तिरेव सर्वाकारेण परिणमते ..... चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः।[२]

आचार्य भास्कर अपने वरिवस्यारहस्यम् में कहते हैं—

'स्वाभिमतः परिणामवाद एव स्फुटीकृतः।'

आचार्य शंकर ने भी इसकी पुष्टि की है। शक्तिसूत्र की व्याख्या में आचार्य क्षेमराज ने जगत् को शिव एवं शिवा से अभिन्न माना है—

'स्वात्मदेवताया एव सर्वत्र कारणत्वम्, चिदेव भगवती ..... स्वच्छस्वतन्त्ररूपा ..... जगदात्मना स्फुरति ..... कार्यकारणभावः, विश्वशरीरः शिवभट्टारक एव, श्रीपरमशिवः स्वात्मैक्येन स्थितं नानावैचित्र्यसहस्रैः स्फुरति; जगतः प्रकाशात्म्येनावस्थानम्।'

जगत् दुःख नहीं है; प्रत्युत शिव को आह्लादित करने वाला एवं उनके द्वारा संरचित आह्लादकारी चित्र है—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छातूलिकयात्मनि।
स्वयमेव समालोक्य प्रीणाति भगवान् शिवः।।

अगस्त्यकृत शक्तिसूत्र के अनुसार तो मुक्ति की प्रक्रिया एवं उसका स्वरूप इस प्रकार है—

'प्रथमं प्रकृतिं मनसा विभाव्य तामपि स्वात्मनि स्वात्मानं तस्यां मिथो विलाप्य तत एकोऽवशिष्यते। मुक्तः शुद्धः पूर्णः प्रत्यगात्मैव भवति प्रत्यगात्मैव भवति।'[३]

शिवसूत्रविमर्शिनी (आचार्य क्षेमराज) के अनुसार तो बन्धन एवं मुक्ति का स्वरूप निम्नानुसार है—

'आत्मन्यनात्मताभिमानरूपाख्यातिलक्षणाज्ञानात्मकं ज्ञानं केवलं बन्धो, यावदानात्मनि शरीरादावात्मताभिमानात्मकमज्ञानमूलं ज्ञानमपि बन्ध एव। शिवाभेदाख्यात्यात्मका ज्ञानस्वभावो-

---

१. शिवस्तोत्रावली
२. योगिनीहृदयदीपिका : अमृतानन्द
३. शक्तिसूत्र

ऽपूर्णम्मन्यतात्मकाणवमलसतत्वसङ्कुचितज्ञानात्मा बन्धः।'[१]

प्रत्यभिज्ञा भी मुक्ति है।

यहाँ आसन, कम्बल आदि बाह्य वस्तु नहीं हैं। यहाँ ३६ तत्त्व ही 'आसन' हैं। इसीलिये योगिनीहृदय में कहा भी गया है—

षट्त्रिंशत्तत्त्वपर्यन्तमासनं परिकल्प्य च।

शाक्तदर्शन के अनुसार जगत् चिन्मय एवं आनन्दमय है।[२]

भगवती हैं तो एक; किन्तु क्रीड़ा-व्यापार में अनेक बन जाती हैं—

त्वमेव तासां रूपेण क्रीडसे विश्वमोहिनी।

एका सती भगवती परमार्थतोऽपि
सन्दृश्यसे बहुविधा ननु नर्वकीव।

जगत् शक्ति की क्रीड़ा है।

यहाँ माना गया है कि जगत् परमाणुओं से नहीं; बल्कि इच्छा-ज्ञान-क्रिया, परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी से उत्पन्न होने के कारण मूलतः परमाण्वात्मक न होकर मातृकात्मक एवं शक्त्यात्मक है।

यहाँ गुरु बाह्य विग्रह नहीं; प्रत्युत भगवती स्वयं गुरु हैं—

त्वामिच्छाविग्रहां देवी गुरुरूपां विभावयेत्।[३]

यहाँ परमशिव, जगत्, चक्र, श्रीविद्या एवं भगवती से तादात्म्य प्राप्त कर लेना ही 'मुक्ति' है।

वर्ण, पद, मन्त्र (शब्दाध्व) एवं कला, तत्त्व तथा भुवन (अर्थाध्व) से ही जगत् की उत्पत्ति होती है। शिव एवं शक्ति ही 'शब्द' एवं 'अर्थ' हैं। शाब्दी सृष्टि से ही आर्थी सृष्टि का उदय हुआ है। अतः शाक्तदर्शन वर्ण, मन्त्र, नाद आदि की विवेचना पर अधिक चिन्तन करता है। 'जगत्' शब्द का विवर्त है; अतः मूल तत्त्व तो 'शब्द' ही है। शब्दों की मूल चेतना परा, पश्यन्ती और मध्यमा वाक् में अन्तःगर्भित है और भगवती स्वयं ही परा-पश्यन्ती-मध्यमास्वरूपा वर्णात्मिका एवं मन्त्रात्मिका हैं। चूँकि मन्त्र एवं यन्त्र तथा श्रीविद्या एवं देवतातत्त्व मूलतः अभिन्न हैं; अतः अद्वैत से प्रारम्भ की जाने वाली यह शाक्तोपासना तभी चरितार्थ होती है, जबकि उपासक सभी के साथ अपना सामरस्य स्थापित कर सके। शाक्तोपासना 'शक्ति' की उपासना है, स्वात्मस्वरूपा भगवती ललिता का साक्षात्कार है तथा 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की अद्वैतानुभूति है।

---

१. क्षेमराज : शिवसूत्रविमर्शिनी

२. योगिनीहृदय

३. योगिनीहृदय-१९८

श्रीचक्र में स्थित सर्वानन्दमय 'बिन्दुचक्र' सहस्रार का प्रतीक है और नि:शेष विश्व एवं विश्व की नि:शेष सत्ताओं के उद्भव का केन्द्र है। यहीं कामेश्वर एवं कामेश्वरी सामरस्यावस्था में परस्पर लीन हैं। यही स्थान 'आदि दम्पति' का राजशौध है।

'श्रीविद्या' एक रहस्यविद्या है। 'श्रीयन्त्र' चक्राधिपति यन्त्र है। श्रीविद्या, श्रीचक्र, श्रीदेवी, जगत्, साधक एवं साधना में ऐकात्म्य की अनुभूति ही श्रीविद्योपासना का उद्देश्य है।

मैंने इस ग्रन्थ में उपासना के क्रमिक सोपानों का विवेचन नहीं किया है और न तो मैंने इस दृष्टि से ही इसे प्रणीत किया है कि इसके आलोक में प्रात:काल से चतुर्थ याम (चतुर्थ सन्ध्या)-पर्यन्त अनुष्ठीयमान, साधना-सोपानों पर आरूढ़ होकर उपासना-यात्रा यथाक्रम निष्पादित की जा सके। अन्य बहुत-से ऐसे ग्रन्थ हैं, जो कि एतदर्थ द्रष्टव्य हैं।

इस ग्रन्थ के प्रणयन में मेरा मुख्य उद्देश्य 'श्रीसम्प्रदाय, श्रीविद्या, भगवती महात्रिपुर-सुन्दरी, मन्त्र, यन्त्र, श्रीयन्त्र, पीठ, देवता, ध्यान, भक्ति, भाव, पूजा, जप, न्यास, गुरु, दीक्षा' आदि तत्त्वों के मूल स्वरूप का उद्घाटन करना एवं उनमें अन्तर्निहित रहस्यात्मक बिन्दुओं की विवेचना करना है। इसमें दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना भी जान-बूझ कर छोड़ दी गई है और साथ ही श्रीविद्या, श्रीचक्र एवं श्रीदेवी (भगवती ललितादेवी) की साङ्गोपाङ्ग, क्रमिक उपासना के पृथुल कर्मकाण्डीय विधानों को भी चिन्तन का विषय नहीं बनाया गया है।

भगवती की उपासना के पूर्व उपासना के अङ्गों, उपाङ्गों, साधनों, अधिकारों, भावनात्मक स्तरों, मानसिक वृत्तियों एवं अपने आधिकारिक स्तरों का ज्ञान अत्यावश्यक है। इसी उद्देश्य को केन्द्र में रखकर मैंने इन बिन्दुओं पर सविस्तार प्रकाश डाला है। इसकी विवेचना इसलिये भी आवश्यक थी, क्योंकि श्रीसम्प्रदाय की उपासना में प्रयुक्त समस्त साधनतत्त्व अन्य उपासनाओं की तुलना में अधिक सूक्ष्म, रहस्यमय, प्रतीकात्मक, विशिष्टार्थ-गर्भित एवं अद्वैतात्मक है।

श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

चतुर्थ परिच्छेद

(अध्याय : २३-३३)

▼

यन्त्रतत्त्व

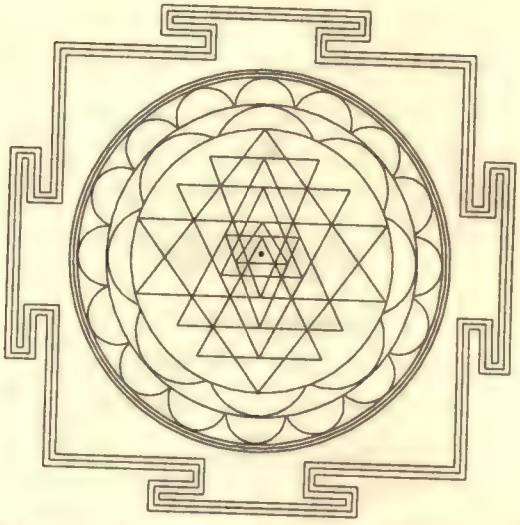

पाँच शक्तित्रिकोण ऊर्ध्वमुखी एवं चार शिवत्रिकोण अधोमुखी
श्रीयन्त्र : समयाचार मतानुयायियों द्वारा पूजित सृष्टिक्रम

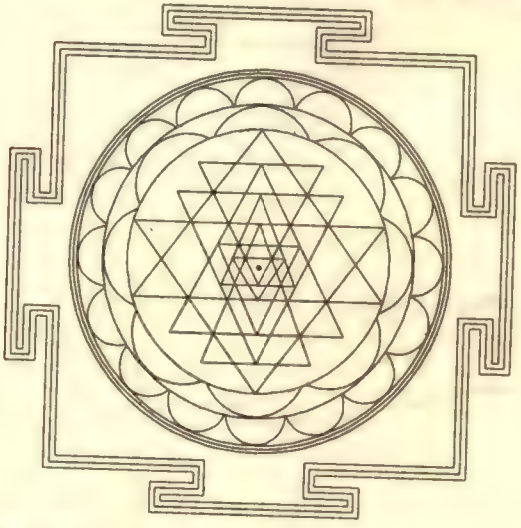

पाँच शक्तित्रिकोण अधोमुखी एवं चार शिवत्रिकोण ऊर्ध्वमुखी
श्रीयन्त्र : कौलाचार मतानुयायियों द्वारा पूजित संहारक्रम

॥ श्रीः ॥

चतुर्थ परिच्छेद

यन्त्रतत्त्व

सम्यक् शतक्रतून् कृत्वा यत्फलं समवाप्नुयात्।
तत्फलं लभते भक्त्या कृत्वा श्रीचक्रदर्शनात्।।
महाषोडशदानानि कृत्वा यल्लभते फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्।।

सार्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नात्वा यत्फलमश्नुते।
लभते तत्फलं भक्त्या कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्।। (यामल)

नवरन्ध्ररूपो देहो नवशक्तिमयं श्रीचक्रम्।
(भावनोपनिषद्)

त्रिखण्डं ते चक्रं शुचिरविशशाङ्कात्मकतया
मयूखैः षट्त्रिंशद्दशयुततया खण्डकलितैः।
पृथिव्यादौ तत्त्वे पृथगुदितवद्भिः परिवृतं
भवेन्मूलाधारात्प्रभृति तव षट्चक्रसदनम्।।
(गौडपादाचार्य : सुभगोदय-स्तुति)

नवयोन्यात्मकं चक्रं चिदानन्दघनं महत्।
चक्रं नवात्मकमिदं नवधा भिन्नमन्त्रकम्।।
(योगिनीहृदय)

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः।।
(योगिनीहृदय)

तच्छक्तिपञ्चकं सृष्ट्या लयेनाग्निचतुष्टयम्।
पञ्चशक्तिचतुर्वह्निसंयोगाच्चक्रसम्भवः ।।
(योगिनीहृदय)

त्रयोविंश अध्याय

यन्त्रतत्त्व

यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र— 'मन्त्र' के साधक विभिन्न ज्यामितिक रेखाओं के माध्यम से जो रचनायें निर्मित करते हैं, उन्हें 'यन्त्र' कहकर हम उनकी पूजा करते हैं। 'यन्त्र' का अर्थ है— संयमित या केन्द्रित करना। यन्त्र मूलत: विभिन्न शक्तिकेन्द्रों के मानचित्र के समान हैं, जो साधक को अभीष्ट शक्ति को उद्बुद्ध करने की साधना में सहायता प्रदान करते हैं। यन्त्र मन को संयत करके उसे केन्द्रित करने के एक प्रयास की संज्ञा है। जिस प्रकार केन्द्रित चेतना मन्त्र की सिद्धि में सहायक होती है, उसी प्रकार यन्त्र भी मन्त्रचैतन्य का सहायक बनकर साधक को कृतार्थ कर देता है।

'यन्त्र' और 'मन्त्र' दोनों चैतन्य-जागरण के साधन हैं। मन्त्रशास्त्र का विश्वास है कि यदि किसी शब्द के अर्थ का ध्यान किया जाय और उसके साथ चैतन्य का सम्पूर्ण योग साध लिया जाय तो वह अर्थ प्रकट हो जाता है। शरीर के विभिन्न विशिष्ट केन्द्र शक्ति के केन्द्र हैं। अभीष्ट-सिद्धि के लिए शक्ति पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। ध्यान के माध्यम से अभीष्ट देवता का आविर्भाव करके अभीष्ट-सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। शरीर के जिन-जिन केन्द्रों में शक्ति स्थित है, यदि उनका परिज्ञान भी हो तो तत्रस्थ शक्ति को उद्बुद्ध करने में सौकर्य होता है। उसके ध्यान में भी सौकर्य होता है। यन्त्र विभिन्न शक्ति-केन्द्रों के मानचित्र हैं, जो साधक की अभीष्ट शक्ति को उद्बुद्ध में सहायक होते हैं।

तन्त्र का अर्थ है— विस्तार। जब 'शक्ति' एक स्थान पर उद्बुद्ध हो जाय तब उसे सम्पूर्ण देह के विभिन्न केन्द्रों में प्रसारित करने की प्रक्रिया ही 'तन्त्र' है।[१]

केन्द्रीयकरण— सम्पूर्ण देह में व्याप्ति एवं चैतन्य का संयोग ही मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र के विशिष्ट कार्य हैं।

मन:संयोगपूर्वक की गई शब्दसाधना ही कबीर आदि का 'सुमिरन' है। यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र द्वारा जो चैतन्य-सम्पादन (मन्त्र-चैतन्य) निष्पादित होता है, वह है— मन्त्र; मन्त्र के अर्थ एवं देवता का साधक के साथ एकीकरण। सभी का लक्ष्य है— 'मन्त्रसिद्धि'। मन्त्र की स्वनिहित शक्ति, गुरु द्वारा सञ्चारित शक्ति या शक्तिपात, मान्त्रिक साधक की साधन-शक्ति —ये तीनों मिलकर ही मन्त्रसिद्धि प्रदान करते हैं।

यन्त्र के अंग– यन्त्र के निम्न अंग हैं—

बीजं प्राणं च शक्तिं च दृष्टिं वश्यादिकं तथा।
मन्त्रयन्त्राख्यगायत्री प्राणस्थापनमेव च।
भूतदिक्पालबीजानि यन्त्रस्याङ्गानि वै दश।।

---

१. सहज साधना।

इन्हीं दस अंगों से यन्त्र निर्मित होता है।

यन्त्रों में 'श्रीयन्त्र' या 'श्रीचक्र' का तो इतना अधिक महत्त्व है कि सम्यक् विधान-पूर्वक १०० यज्ञ करने पर जो फल प्राप्त होता है, वह अकेले श्रीचक्र के दर्शनमात्र से ही प्राप्त हो जाता है—

सम्यक् शतं क्रतून्कृत्वा यत्फलं समवाप्नुयात्।
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्।।

भगवती की उपासना में श्रीविद्या के तीन प्रकार बताये गये हैं— स्थूलोपास्ति, सूक्ष्मोपास्ति और परोपास्ति। इनमें से स्थूल उपासना श्रीचक्र की ही उपासना है। ललिता-सहस्रनाम में भगवती के सहस्रनाम का पाठ भी श्रीचक्र की पूजा के साथ ही करने का विधान किया गया है।

रूप और यन्त्र— यन्त्र तन्त्रसाधना का द्वितीय साधन है। प्रथम साधन है— 'मन्त्र' और द्वितीय साधन है— 'यन्त्र'। यन्त्र शब्द के तीन पक्ष हैं— आकृतिरूप (Form pattern), क्रियारूप (Function pattern) एवं शक्तिरूप (Power pattern)। यन्त्र के मुख्यत: तीन प्रकार हैं— वास्तविक (Realistic), सांकेतिक (Symbolic) एवं तात्त्विक (Ideal)।

इन तीनों के मूल में मौलिक (Basic) या स्वाभाविक यन्त्र रहता है।

यदि मुझे त्रिपुरसुन्दरी शक्ति का ध्यान करना है तो तन्त्र में उसका ध्यान-विधान है। 'बीज' मन्त्र है। यदि हमें उस शक्ति का सन्दर्शन करना है तो मुझे उसका सूक्ष्म शक्तिकूट या यन्त्र उपस्थित करना होगा। सूक्ष्म यन्त्र ही स्थूल यन्त्र का अधिष्ठान या कारण है। यदि सूक्ष्म यन्त्र श्रीयन्त्र है तो यह भी समझें कि—

क. शब्द की ओर से जो 'मन्त्र' करता है, वही

ख. रूप की ओर से 'यन्त्र' भी करता है।

ग. जिसका मन्त्र या यन्त्र है, उसे यन्त्र एवं मन्त्र पकड़ कर सामने ला देगा। 'यन्त्रम्' शब्द में 'यम्' यमन (Control) का वाचक है। कोई भी प्रस्तावित शक्तिक्षेत्र (Given power field) जिसके द्वारा एक निर्दिष्ट आकृति या Pattern या रूप ग्रहण करता है, उसे 'यन्त्र' कहते हैं। यमन (नियन्त्रण) के अनेक उद्देश्य होते हैं; अत: यन्त्र भी अनेक प्रकार के होते हैं।

मनु → मन्त्र। यम् → यन्त्र।

यदि किसी पदार्थ को स्थूल भाव से देखना हो तो उसके सूक्ष्म शक्तिकूट या यन्त्र की सहायता लेनी पड़ेगी। यदि हमें किसी फौलाद को चुम्बक बनाना हो तो हमें वैद्युतिक शक्ति-सम्पात या अन्य चुम्बक के संस्पर्श से फौलाद के Molecules को एक ऐसे शक्तिकूट में सजाना होगा, जिसके द्वारा फौलाद में भी Signes of force चुम्बक के

रीतिक्रम से दो ध्रुव (Poles) इधर-उधर प्रसारित हों। फौलाद चुम्बक बन चुका या नहीं? इसका प्रमाण तो इसी से प्राप्त होगा कि वह लोहे के चूर्ण को खींच रहा है या नहीं। वह मूल चुम्बक के सदृश है या नहीं। निष्कर्ष यह कि स्थूल यन्त्र प्राप्त करने के लिये सूक्ष्म यन्त्र को पहले पाना होता है।

विज्ञान के क्षेत्र में अन्वीक्षा-हेतु प्रयुक्त यन्त्रों को Apparatus Instrument कहते हैं। विचार के क्षेत्र में जिस यन्त्र का उपयोग किया जाता है, उसकी संज्ञा है— Calculus। इन्हीं दो यन्त्रों की सहायता से विज्ञान सृष्टि के अणुओं में जो मौलिक यन्त्र है, उसे पकड़ने का प्रयास कर रहा है। अणु के भीतर जो नाभि (न्यूक्लियस) एवं नेमि है, उसमें जो नाभि या केन्द्रनिष्ठ यन्त्र है, उसी में 'महाशक्तिव्यूह' है। यह शक्तियन्त्र ही वास्तविक वस्तु है। अणु की नाभि में एक शक्तिव्यूह है। अणु की नाभि भी बाह्यावरण (Shell of forces) ही है। सृष्टि-प्रवाह ने मूल से नीचे उतर कर अपनी व्यक्त शक्तिराशि को प्राणरूप से, मन के रूप से तथा चैतन्य एवं आनन्द के रूप से शक्ति के गुप्त राजमहल (यन्त्र) में सजा रक्खा है। प्राणादिक यन्त्र को प्राप्त करने पर ही उस शक्तिराशि का सन्धान सम्भव है।

यन्त्र— सृष्टि के सभी जड़-चेतन पदार्थों का स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण धरातलों पर जो रूपायन होता है, उसका मूल सूत्रधार है— 'अग्नि' या उसकी 'रूपतन्मात्रा'। इसीलिये अग्नितत्त्व (रूपायन) का यन्त्र से सम्बन्ध है। यन्त्र शब्द की 'र' (यं + त + रं = यन्त्र) अक्षर यही संकेतित करता है। 'यन्त्रम्' शब्द का 'त' अक्षर अमृत का बोधक है। 'त' (अमृत) सुसंगति (Harmony) का बोधक है।

यन्त्र के अंग— यन्त्र में तीन शक्तियाँ हैं— 'यं' = वायु = उपादान (स्पन्द), 'र' = अग्नितत्त्व = रूपायन एवं 'त' = अमृत = छन्द (Harmony) = सुसंगति।

यन्त्र का व्युत्पत्त्यात्मक अर्थ— यन्त्र शब्द 'यम्' धातु से निष्पन्न होता है (यन्त्र् + अच् अथवा यम् + त्र)। रोकना, निग्रह करना, संयम करना, नियन्त्रण करना, विस्तृत शक्ति को केन्द्रीभूत करना— 'यन्त्र्' धातु का अर्थ है। यन्तृ का अर्थ है— परिचालक। यन्त्रिन् का अर्थ है— नियन्त्रण करने वाला।

'मौलेक्यूल' और 'ऐटम' (यौगिक अणु एवं अणु) दोनों यन्त्र हैं; क्योंकि उन दोनों में अनन्त शक्तिभण्डार है, किन्तु उस शक्तिभण्डार को न्यूक्लियस के यन्त्र से इस प्रकार नियन्त्रित करके रक्खा गया है कि उसके एलेक्ट्रान अपनी कक्षायें छोड़कर बाहर निकलते हुए प्रलयंकारी ताण्डव नहीं मचा सकते।

(एक बीज को लें। यह भी एक 'यन्त्र' है। इसके भीतर एक पूर्ण वृक्ष (जड़, तना, शाखा, पत्ते, फूल, फल, ऊँचाई, लम्बाई, चौड़ाई, रूप, रंग, आन्तरिक व्यावर्तक गुण, बाह्य गुण, औषधीय गुण आदि) उत्पन्न करने की पूर्ण शक्ति सम्पीड़ित करके भरी

हुई है। इसी में जेनेटिक कोडिंग एवं पूर्ण जैवसंरचना भी निहित है। बीज एक सूक्ष्म यन्त्र है, किन्तु इस बीज की शक्तियों को नियन्त्रित करने वाला कोई और सूक्ष्म यन्त्र स्थित होगा और वही 'मूल यन्त्र' होगा।)

चक्र, केन्द्र एवं यन्त्र— प्रत्येक परमाणु के भीतर अनन्त शक्ति सन्निहित है और इस सुप्त शक्ति को जागृत एवं विकसित तथा कार्यक्षम बनाना ही 'साधना' का लक्ष्य है। यह शक्ति जहाँ बीजाकाररूप में स्थित है और जहाँ से यह बीजशक्ति पूर्णतया प्रकट होती है, उसी आधार का नाम है— यन्त्र। हमारे शरीर के मेरुदण्ड में जो विभिन्न चक्राकार केन्द्र हैं, वे भी यन्त्र ही हैं। हम विविध आन्तर केन्द्रों में मन को स्थिर करके अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर सकते हैं। जैसे कि यदि हम दर्शन-केन्द्र (Optic centre) में मन को स्थिर करें तो दूरदर्शन, सूक्ष्म दर्शन, दिव्य दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। सूर्य की विकीर्ण किरणें पेट्रोल को भी नहीं जला सकतीं, किन्तु 'लेंस' नामक यन्त्र में उन्हें संकेन्द्रित करने पर वे किसी भी वस्तु को जला सकती हैं। 'लेंस' सूर्यताप के केन्द्रीयकरण का यन्त्र है। क़र्णेन्द्रिय भी एक यन्त्र है। उसे विकसित करने पर दूरश्रवण की शक्ति आयत्त होती है। रसनेन्द्रिय भी एक यन्त्र है, उसे विकसित करने पर किसी भी स्वाद का (उस पदार्थ की अनुपस्थिति में भी) अनुभव किया जा सकता है। नासिकेन्द्रिय के यन्त्र को विकसित करने पर अनन्त सुगन्धों को आयत्त किया जा सकता है। विराट महाशक्ति का भी एक यन्त्ररूप है। यह आकृति, क्रिया एवं शक्तिविन्यास तीनों रूपों में स्थित है।

यन्त्र तो आदिम गुहा एवं पर्वतों में भी थे। मिस्र, बेबीलोन एवं मोहनजोदड़ो सभ्यता के समय भी यन्त्र थे। वैदिक यज्ञों, तान्त्रिक अनुष्ठानों आदि सभी में यन्त्र थे और हैं। अपनी पूँछ को मुख में डाल कर पड़ा रहने वाला साँप (कुण्डलिनी) भी सांकेतिक है। यह भी एक यन्त्र है। बाहर एक शक्ति की क्रीड़ा चल रही है। उस शक्ति की क्रीड़ा ने मेरे रेटिना, स्नायु, मस्तिष्क एवं मन को ज्ञात कराकर जिसे दिखाया, वही तो पेड़ का पत्ता है। बाहर 'ईथर' के स्थानविशेष में इस प्रकार शक्ति का विन्यास एवं विलास ही शक्तिकूट एवं शक्तिव्यूह है।

आज के वैज्ञानिक 'ईथर' पर विश्वास करना छोड़ चुके हैं, किन्तु शक्ति को कौन अस्वीकार कर सकता है? वस्तुमात्र में ही शक्तिमूर्ति एवं शक्तिविग्रह या शक्तिकूट विद्यमान है। ऋषिगण प्रत्येक वस्तु को शिव एवं शक्ति के रूप में देखते थे। वे प्रत्येक पदार्थ की शक्तिकूट मूर्ति एवं निरञ्जन 'शान्तं शिवमद्वैतं' मूर्ति पास-पास रखकर अभिन्नतया देखते थे; यही युगल मूर्ति है— अर्द्धनारी-नटेश्वर मूर्ति। 'हर्बर्ट स्पेन्सर' ने इस अचिन्त्य शक्ति को नमन भी किया है। वैज्ञानिक आज भी इसके स्वरूप से अनभिज्ञ हैं। प्रत्येक एटम के भीतर एक लीला, एक रसान्वेषण चल रहा है; किन्तु इसका ज्ञान गतिविज्ञान (Dynamics) को नहीं है। यह शक्ति स्वरूपत: शिव एवं रस से अभिन्न है। स्वाभाविक रूप का जो चरम भाव है, वह अभी विज्ञान की पहुँच के बाहर है।

प्रत्येक वस्तु के अन्तरतम में, उसकी गहराई में शक्तिविग्रह Systems of force या Stress system है। गहराई में देखने पर नाद, बिन्दु, कला के भी मूल में स्पन्द ही है। मूल 'स्पन्द' का स्थूल स्पन्दन भी विज्ञान को मान्य है।

'क्रेस्क्रोग्राफ' से पौधों के भीतरी सूक्ष्म व्यापार वसु ने देखा; लाखों गुना बढ़ाकर देखने पर ये दिखाई पड़े। किन्तु क्या इस अतीन्द्रिय का साक्षात्कार ही अन्तिम पड़ाव है? सेल के भीतर स्थित अणुओं (Molecules) की संहति से जिस सेल का गठन हुआहै, उस Molecules (आणविक) पदार्थ को भी देखना है। 'एलेक्ट्रान माइक्रो-स्कोप' से Molecules (यौगिक अणु) भी दिखाई पड़ने लगते हैं, किन्तु क्या यही चरम स्थिति है? Molecules को तोड़ने पर अणु दृष्टिगत होंगे। पत्तों की भाँति Molecules भी Atoms के संघात (व्यूह) हैं। शक्तिविन्यास से ही Molecules एवं Atoms की व्यूहरचना होती है। Physical Chemistry बताती है कि किस प्रकार यौगिक अणु (Molecules) में Atoms शक्तिविन्यास करके किस प्रकार व्यूह-रचना करते हैं। पत्ते के Cell में प्रोटोप्लाज्म (जैव पदार्थ) चक्कर काट रहे हैं।

Atom की अन्वीक्षा करने पर उसमें रूप, रस, गन्ध, शब्द आदि गौण लक्षण (Secondary qualities) नहीं मिलते। इनमें मात्र Primary qualities ही मिलता है। ये सावयव गुरुत्वविशिष्ट, गतिमान, परस्पर व्यावर्तक सूक्ष्म रेणुपुञ्ज मात्र रह गये हैं। Molecules में रंग है, किन्तु आगे Atoms में नहीं है। Molecules के बीच अणुओं ने शक्तिव्यूह की रचना भी की है। अणुओं (Atoms) का शक्तिव्यूह यौगिक अणु (Molecules) के शक्तिव्यूह (शक्ति-विन्यास) से अधिक सूक्ष्म एवं मौलिक है। अब तो Atom भी ठोस एवं मौलिक पदार्थ नहीं रह गया; क्योंकि उसके भी भीतर एक-एक अणु के बीच तड़िदणु ग्रहोपग्रह की भाँति चक्कर काट रहे हैं। Atom के भीतर की शक्ति असीम है, उसका वेग असीम है। इसकी शक्ति की तुलना विश्व की किसी भी शक्ति से करना असम्भव है। Atom एक निगूढ़ शक्तिव्यूह है।

तड़िदणु भी परिमित एवं सावयव हैं; अत: वहाँ भी शक्ति की क्रीड़ा चल रही है—एक नया संसार है। यह माना गया था कि ईथर के समुद्र में Electron चक्कर काट रहे हैं और एलेक्ट्रान ईथर की अवस्थाविशेष हैं, किन्तु अब वैज्ञानिक ईथर को भी अस्वीकार कर रहे हैं और Energy quanta, Four dimension continuum, Point event माने विना सब कुछ अपूर्ण ही रह जायगा।

शक्तिकूट मूर्ति (Stress system) रूपी यन्त्र के भीतर भी अनेक स्तरीय शक्ति-यन्त्र हैं—

१. पत्ते का स्थूल रूप भी एक प्रकार का शक्तिरूप है।

२. पत्ते के शिरा-प्रशिरा के मध्य रससञ्चार करने वाली भी एक शक्ति है।

३. Cell के मध्य प्रोटोप्लाज्म को चक्कर खिलाने वाली भी एक शक्ति है (इसी शक्ति

से पत्ते का बढ़ना, घटना, हरा होना एवं पीला पड़ना तथा झड़ना सभी कुछ होता है)।

४. पत्ते के मध्य यह व्यवस्था बनाये रखने, पत्ते को किसी पेड़विशेष का ही पत्ता बनाये रखने के लिए एक शक्तिव्यूह (Stress system, Constiuent forces) स्वीकार करना अपरिहार्य है। पत्ते की जीवनयात्रा चलाने हेतु शक्ति की जो व्यवस्था (शक्तिकूट) है, वही पत्ते का 'स्थूल यन्त्र' है। यही है— पत्ते का स्वाभाविक रूप।

चुम्बक के Signes of forces भी चरम तत्त्व नहीं हैं। इसके दो पोलों से शक्ति रेखायें इस प्रकार प्रसृत कैसे हुईं? चुम्बक के Signes of forces जो शक्तिकूट (यन्त्र) हमें दिखा रहे हैं, वह शक्तिकूट (यन्त्र) एक सूक्ष्मतर शक्तिकूट का कार्य है अर्थात् Dynamic frame (सचल चौखटा) एवं यौगिक अणु (मौलेक्यूल) समूह के मध्य जो शक्तिपिण्ड (Stresses) है, वही चुम्बक को दो ध्रुवों (Lines of force) से विशिष्ट यन्त्र बनाये हुये है; अन्यथा Stresses के न रहने पर चुम्बक मात्र पत्थर का टुकड़ा होता, न कि चुम्बक। चुम्बक के अभिव्यक्त गुणों (धर्मों) के मूल में इतस्ततः विक्षिप्त Lines of force को लेकर स्थित स्थूल यन्त्रमूर्ति है। Lines of force यदि इस प्रकार बिखरे न होते तो चुम्बक लोहे के चूर्ण को खींच ही न पाता।

क. स्थूल शक्तिकूट या यन्त्र स्थूल रूप एवं स्थूल धर्म का आश्रय या कारण है।

ख. सूक्ष्म शक्तिकूट या यन्त्र (यथा— Molecules) स्थूल शक्तिकूट या यन्त्र का आश्रय या कारण है।

परम यन्त्र— सूक्ष्म यन्त्र → स्थूल यन्त्र। सूक्ष्म शक्तिकूट → स्थूल शक्तिकूट। इसी कार्य-कारणशृंखला को पकड़कर अन्त में चरम (परम सूक्ष्म अधिष्ठान) या सूक्ष्मतम यन्त्र तक पहुँच पायेंगे। यही चरम अधिष्ठान या चरम यन्त्र है— 'प्रकृति' या 'प्रधान'। अणुओं के शक्तिकूट (यन्त्र) में ही यौगिक अणुओं के अधिष्ठान हैं।

'बिन्दु' ही सभी यन्त्रों का यन्त्र है। बिन्दु ही शक्तिकूट की या यन्त्र की मूल प्रकृति है। यन्त्र में दो तत्त्व प्रमुख हैं—

१. यं = वायुबीज = स्पन्द, स्पर्शतन्मात्रा, गति।

२. रं = अग्निबीज = रूपायन का मूल, रूपतन्मात्रा।

रूप बाहर का ही नहीं, प्रत्युत बाह्य एवं आन्तर दोनों। वायु द्वारा विश्वस्पन्द Cosmic stress स्पन्द रूप में वायु ने दिया उपादान Material, अग्नि निमित्त बना।

३. त = 'यन्त्रम्' में य, र, त— तीन तत्त्व हैं। तं = अमृत = इष्ट = श्रेय = प्रेय। उपादान + आकृति + छन्दस— तीनों महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। जहाँ जड़, प्राण या मन के रूप में व्यक्त सत्ताशक्ति सस्पन्दावस्था में है, वहीं किसी भी श्रेय-प्रेय की सिद्धि के लिये 'छन्दस्' के आश्रय में निर्दिष्ट रूपायण ही 'यन्त्र' है। वेदों ने 'छन्दस्' से सृष्टि होने का प्रतिपादन किया है।

४. मूल, आकृति या हल्लेखा ही स्वाभाविक रूप या यन्त्र है—

क. शब्दतन्मात्रा = मन्त्र का सम्बन्ध।
ख. रूपतन्मात्रा = यन्त्र का सम्बन्ध।
} 'तदभावे तदभावः तद्भावे तद्भावः।'

शक्ति का जो निरतिशय केन्द्रीय घनीभाव है, उसे 'बिन्दु' कहते हैं। बिन्दु की ही कोई सविशेष सृष्टि की ओर उन्मुख कारण यन्त्र के रूप में प्राथमिक अभिव्यक्ति की अवस्था का नाम है— 'हल्लेखा'। बिन्दु तो Cosmic casual potency (निखिल सृष्टि-बीज) है। शब्द की ओर से हल्लेखा की अनुकृति मायाबीज 'ह्रीं' है।

ह्रीं

१. हकार = शक्ति की नादावस्था।

२. रकार = जिस शक्ति के द्वारा शक्ति रूपायित होती है।

३. ईकार = मन्थनदण्ड, जिस धुरा का आश्रय लेकर रूपायण-क्रिया चलती है ।

४. अनुस्वार = नाद।

५. सभी के मूल में स्पन्द है।

६. समस्त पदार्थों की मूल वस्तु Energy या शक्ति नाद (या Continuum) बिन्दु (या Quantum) है एवं शक्ति की विभिन्न संस्था एवं व्यूह से ही विभिन्न पदार्थ होते हैं।

यन्त्रों के विभिन्न प्रकार

साधन राज्य में विभिन्न स्नायुकेन्द्र ही 'यन्त्र' हैं। इन यन्त्रों में प्राणशक्ति को चालित करके एवं मन को स्थिर करके अनेक अलौकिक कार्य साधित किये जाते हैं। श्रीकृष्ण के शरीर के समस्त यन्त्र पूर्ण विकसित थे। इसीलिये उनकी प्रत्येक इन्द्रिय में समस्त इन्द्रियों की शक्तियाँ विकसित थीं— 'अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति।'

जिस प्रकार अणुवीक्षण यन्त्र, दूरवीक्षण यन्त्र की सहायता से हम सूक्ष्म एवं दूरस्थ पदार्थों को देखते हैं, उसी प्रकार योगी एक-एक स्नायुकेन्द्र में प्राणशक्ति चालित करके वहाँ मन के स्थिरीकरण द्वारा अतीन्द्रिय तत्त्वों का प्रत्यक्षीकरण किया करते थे।

क. प्राणशक्ति को चालित करने की प्रणाली 'तन्त्रतत्त्व' (योगतत्त्व)।

ख. मनन शक्ति को केन्द्रीभूत करने की प्रणाली 'मन्त्रतत्त्व'।

ग. शरीर के समस्त स्नायुओं के विभिन्न केन्द्रों को जागृत करके अतीन्द्रिय शक्तियों का आयत्तीकरण 'यन्त्रतत्त्व' का विषय है।

१. हृदय भी एक यन्त्र है— हृदय में संयम करने से चित्त के स्वरूप का ज्ञान होता है— 'हृदये चित्तसंवित्' (३.३४)।

२. मूर्द्धा भी एक यन्त्र है— 'मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्' (३.३२)। मूर्द्धा की ज्योति में संयम करने से सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते हैं।

३. नाभिचक्र भी एक यन्त्र है— 'नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्' (३.२९)। नाभि-चक्र में संयम करने से शरीर के व्यूह (उसकी स्थिति) का ज्ञान होता है।

४. ध्रुव भी एक यन्त्र है— 'ध्रुवे तद्गतिज्ञानम्' (३.२८)। ध्रुव में संयम करने से ताराओं की गति का ज्ञान होता है।

५. सूर्य भी एक यन्त्र है— 'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्'। सूर्य में संयम करने से समस्त लोकों का ज्ञान होता है।

६. कण्ठकूप भी एक यन्त्र है— 'कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः' (३.३०)। कण्ठकूप में संयम करने से भूख-प्यास की निवृत्ति हो जाती है।

७. चन्द्रमा भी एक यन्त्र है— 'चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्' (३.२७)। चन्द्रमा में संयम करने से समस्त तारों के व्यूह (स्थितिविशेष) का ज्ञान होता है।

८. स्वार्थसंयम भी एक यन्त्र है— 'ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते' (३.३६)। सत्त्वपुरुषान्यताख्याति के द्वारा स्वार्थसंयम करने से—

१. श्रावण — दिव्य शब्दश्रवण,
२. वेदन — दिव्य स्पर्श का अनुभव,
३. आदर्श — दिव्य रूप का अनुभव,
४. आस्वाद — दिव्य रस का अनुभव,
५. वार्ता — दिव्य गन्ध का अनुभव— प्राप्त होता है।

९. पञ्चभूत भी यन्त्र हैं— 'ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च' (३.४५)। भूतों पर विजय प्राप्त करने से अणिमादिक अष्ट सिद्धियाँ कायसम्पत् की प्राप्ति एवं उन भूतों के धर्मों के बन्धन से मुक्ति प्राप्त होती है।

१०. चित्त भी एक यन्त्र है— 'बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः' (३.३८)। बन्धन के कारण की शिथिलता एवं चित्त की गति का सम्यक् ज्ञान होने से चित्त को दूसरे शरीर में प्रवेश करने की शक्ति प्राप्त होती है।

११. संस्कार भी यन्त्र है— 'संस्कारसाक्षात्कारात् पूर्वजातिज्ञानम्' (३.१८)। संयम के द्वारा संस्कारों का साक्षात्कार कर लेने पर पूर्वजन्मों का ज्ञान हो जाता है।

१२. चक्र भी यन्त्र है— मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, आज्ञा, बिन्दु, अर्द्धेन्दु, व्यापिनी, रोधिनी, शक्ति, समना, उन्मना, सहस्रार आदि सभी यन्त्र हैं। इनके ४, ६, १०, १२, १६, २ दल, लं, वं, रं, यं, हं, ओं आदि बीज; डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी आदि शक्तियाँ; कामाख्या, पूर्णगिरि, जालन्धर, उड्डीयान पीठ; पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन आदि तत्त्व; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश, सदाशिव शम्भु देवता— इन यन्त्रों के अंग हैं।

Atoms (अणु) भी एक सौर जगत् है। उनके भीतर भी तैजस् रेणुसमूह की शक्तिराशि क्रीड़ा कर रही है। अणु के यन्त्र (शक्तिकूट) के भीतर भी सूक्ष्मतर शक्ति-यन्त्र है। यह यन्त्र आणविक यन्त्र का भी कारण है। यन्त्र के भीतर यन्त्र, उसके भीतर यन्त्र और फिर उसके भी भीतर यन्त्र स्थित है। 'श्रीयन्त्र' को ही लें— वृत्त के भीतर वृत्त, उसके भीतर सूक्ष्म त्रिभुज, उसके भीतर पुनः त्रिभुज, उसके भीतर पुनः त्रिभुज का सातत्य।

विश्व के प्रत्येक पदार्थ के मध्य यन्त्र है और उस यन्त्र के मध्य भी यन्त्र है। सभी यन्त्र कार्य-कारण रूप से या अधिष्ठाता-अधिष्ठेय रूप से स्थित हैं।

बिन्दु एवं शक्तिकूट या मूल यन्त्र— यन्त्र का अर्थ है— Stresses या शक्तिकूट। भीतर का यन्त्र न रहने पर बाहर का यन्त्र भी अस्तित्व में नहीं रहेगा। पदार्थ का सबसे अधिक केन्द्रीय यन्त्र कौन है?

१. क्या यौगिक अणु-(Molecule)-सम्बन्धी यन्त्र? नहीं।

२. क्या अणु-(Atom)-सम्बन्धी यन्त्र? नहीं।

३. क्या कोश (कार्पसल Carpuscules) या एलेक्ट्रानसम्बन्धी यन्त्र? नहीं।

४. क्या ईथरसम्बन्धी यन्त्र? यह भी नहीं।

फिर वह कौन है? वह है— शक्ति की सूक्ष्मतमावस्था। यही है समस्त अवस्थाओं का कारण या अधिष्ठान।

५. शक्ति की यह केन्द्रीभूत या चरम (सूक्ष्मतम, परम कारण) अवस्था ही वह मूलाधिष्ठान है। इसी का नाम है— 'बिन्दु'। इसी बिन्दु का आश्रय लेकर ही समस्त शक्तियाँ क्रीड़ा कर रही हैं। समस्त यन्त्र इस बिन्दु की अभिव्यक्ति या उच्छूनावस्था हैं। बिन्दु चेतन-अचेतन, सजीव-निर्जीव, स्थूल-सूक्ष्म सभी यन्त्रों का यन्त्र है। यही शक्तिकूट या यन्त्र की मूलप्रकृति (कारण) है।

शैव-शाक्त ग्रन्थों में कहा गया है कि यन्त्र देवता का आसन है, उसका स्थूल शरीर है या देवता एवं समस्त विश्व का रेखात्मक सूक्ष्म ढाँचा है।

यन्त्र का शाब्दिक अर्थ— 'यन्त्र' शब्द में 'यं' वायुबीज है। वायु केवल हवा ही नहीं है, वह प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय आदि १० प्राण, ४९ मरुत, मन आदि पदार्थों को गतिमान रखने की आन्तर शक्ति आदि अनेक रूपों में व्याप्त है। 'वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' कहकर उपनिषदों में सर्वव्यापी सत्ता के सचल भाव को वायु की संज्ञा दी गयी है। उसकी यह सचलता देश-काल मात्र में ही नहीं, प्रत्युत विराट मन में काम, संकल्प, स्पन्द, चाञ्चल्य, क्षोभ आदि सभी में विद्यमान है। शाक्त तन्त्रों ने इसे ही 'स्पन्द' भी कहा। समस्त जड़ एवं चेतन सभी इसके अधिकार में हैं। यह स्पर्शतन्मात्रा भी तो है, क्योंकि वायु का गुण है— स्पर्श। मूल वस्तु निस्पन्द (गतिहीन) है। उसी का स्पन्दभाव या गतिस्वरूप वायु

है। 'यं' का अर्थसंकेत स्पन्द की ओर है। यं अर्थात् स्पन्द। इसीलिये वायु को श्रुतियों ने ब्रह्मा का एक रूप भी माना है, क्योंकि ब्रह्मा स्रष्टा है और सृष्टि के लिये गति एवं स्पन्द चाहिये।

'यन्त्रम्' में 'रं' मन्त्र भी है। 'रं' अग्निबीज है। अग्नि भी ब्रह्मा का एक रूप है। जिसके द्वारा रूपायन होता है, रूप या आकृति का निर्माण होता है या रूपान्तरण होता है, उसे कहते हैं— अग्नि। अग्नि का विशिष्ट गुण है— रूप।

यन्त्र, तन्त्र और मन्त्र— दूरवीक्षण यन्त्र को लें। उसके तीन तत्त्व दृष्टिगत होते हैं—

क. भौतिक ढाँचा (दूरवीक्षण) = यन्त्र।

ख. उसको केन्द्रगत करने (Focus) की प्रणाली = तन्त्र।

ग. मन को स्थिर करके देखना = मन्त्र।

भारतीय ऋषियों ने पिण्डस्थ प्रधान केन्द्रों (यन्त्रों) का आविष्कार किया। फिर उन यन्त्रों में प्राणशक्ति चालित करके वहाँ की गुप्त शक्ति को जागृत करने की प्रक्रिया का आविष्कार किया। इसके अनन्तर उन समस्त केन्द्रों (यन्त्रों) में मन को स्थिर करके भगवान् की अलौकिक शक्ति के प्रत्यक्षीकरण की पद्धति का आविष्कार किया गया। इन बाह्य यन्त्रों के प्रतीकों द्वारा भीतर के तत्त्वों में प्रवेश करने की व्यवस्था थी। यथा—

१. मूलाधार यन्त्र द्वारा — पृथ्वी तत्त्व में,

२. स्वाधिष्ठान यन्त्र द्वारा — जल तत्त्व में,

३. मणिपूरक यन्त्र द्वारा — अग्नि तत्त्व में,

४. अनाहत यन्त्र द्वारा — वायु तत्त्व में,

५. विशुद्धाख्य यन्त्र द्वारा — आकाश तत्त्व में,

६. आज्ञा यन्त्र द्वारा — मनस्तत्त्व में—

इनकी सिद्धि होने पर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश एवं मनस्तत्त्व पर विजय प्राप्त की जाती थी।

यन्त्र, तन्त्र और मन्त्र हमारी पूजा के अंग हैं।

'यन्त्र' हमारे देहस्थ (मेरुदण्ड में स्थित) चक्रविशेष हैं। इनमें साधनराज्य के अनेक तत्त्व बीज के रूप में स्थित हैं।

'तन्त्र' वह प्रक्रिया है, जिसके अवलम्बन द्वारा हम यन्त्रों के भीतर की गुप्त शक्ति को प्रकट करके नाना प्रकार की अलौकिक शक्तियों की सहायता से सृष्टि के रहस्य (भगवल्लीलारहस्य) के निगूढ़ रहस्यों को जान सकते हैं।

'मन्त्र' के सन्दर्भ में कहा गया है कि 'मननात् त्रायते यस्मात् तस्मात् मन्त्र उदाहृतः।' अर्थात् जिसके मनन द्वारा (चिन्तन एवं ध्यान द्वारा) संसारसागर से उत्तीर्ण होकर सांसारिक दुःखों से त्राण प्राप्त करता है, उसे मन्त्र कहते हैं।

मन्त्र के विभिन्न तत्त्व— प्रत्येक मन्त्र में निम्न तीन तत्त्व निहित हैं—

क. प्रणव या व्याहृति— परम तत्त्व के निकट जाना।

ख. बीज— परम तत्त्व का साक्षात्कार करना।

ग. देवता— लौटते समय अपने समस्त तत्त्वों को तद्भाव से परिभावित करना।

यन्त्रसाधना की आवश्यकता— यन्त्रों की पूजा के विना तत्सम्बद्ध देवता प्रसन्न नहीं होता; अत: समस्त देवताओं की पूजा में यन्त्र-पूजा का विधान है—

विना यन्त्रेण पूजायां देवता न प्रसीदति।
सर्वेषामपि देवानां यन्त्रे पूजा प्रशस्यते।।
(शाक्तानन्दतरङ्गिणी : उल्लास-१३)

स्वर्ण, रजत्, ताम्र, रौप्य, स्फटिक ६, ७, ५, ४, ३, २ या १ तोला लेकर अपने इष्टदेवता का यन्त्र निर्मित करके यन्त्र का संस्कार, यन्त्रस्नान, पञ्चगव्य-पञ्चामृतदान, स्वर्णपीठ पर यन्त्रस्थापना, अर्घ्यादि से पूजन, गायत्री मन्त्र द्वारा कुशाग्र से अभिमन्त्रण, मुद्रा-प्रदर्शन, न्यास आदि निष्पादित करना चाहिये।[१]

प्रणव शक्तिमान एवं शक्ति के रहस्यों का केन्द्र है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश का एकीकृत विग्रह है। ॐ में स्थित अर्द्धमात्रा 'शान्तं शिवं अद्वैतं' है। ॐ के अ, उ, म द्वारा स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण जगत् का भी बोध है। अर्धमात्रा इन सबसे परे है। ॐ सबसे परे तत्त्व है।[२]

१. शाक्तानन्दतरंगिणी।

२. मन्त्र के बीज या वृक्ष के बीजतत्त्व में वृक्ष के इतिहास, वृक्ष के माँ-बाप का इतिहास एवं उसके भविष्य का जीवन निहित है।

चतुर्विंश अध्याय

श्रीयन्त्र

श्रीयन्त्र का अर्थ— 'श्री' का यन्त्र = श्रीयन्त्र। नियमनार्थक 'यम्' धातु से 'यन्त्र' शब्द निष्पन्न होता है। यन्त्र = गृह (नियमन का घर)। श्रीविद्या का सन्धान उसके अपने घर 'श्रीयन्त्र' में ही सम्भव है। 'श्री' उपाय एवं उपेय दोनों है। (यस्य सत्त्वस्य या योनिस्तस्यां तत्परिमार्ग्यते' (वा० रा०) अर्थात् जिस प्राणी की जो योनि होती है, वह उसी में ढूँढ़ा जा सकता है।) यह विश्व ही श्रीविद्या का गृह है। पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड दोनों ही श्रीविद्या के निकेतन हैं। मायाण्ड, प्रकृत्यण्ड, शाक्ताण्ड आदि श्रीविद्या के आलय हैं।

१. श्रीयन्त्र ब्रह्माण्डाकार है— भैरवयामलतन्त्र में कहा गया है कि हे ईश्वरि ! त्रिपुरसुन्दरी का चक्र ब्रह्माण्डाकार है—

चक्रं त्रिपुरसुन्दर्या ब्रह्माण्डाकारमीश्वरि।

२. देह श्रीचक्रस्वरूप है— भावनोपनिषद में कहा गया है कि देह नवचक्रमय है— 'नवचक्रमयो देहः'। ९ चक्र तो श्रीयन्त्र के ही हैं, न कि शरीर के; अतः अर्थ यह निकला कि शरीर नवचक्रात्मक श्रीयन्त्र है।

३. श्रीयन्त्र सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय तीनों का शक्तिकेन्द्र है।

क. बिन्दुचक्र (शिव की मूल प्रकृति से निर्मित होने के कारण) प्रकृतिस्वरूप है।
ख. शेष आठ चक्र प्रकृति-विकृति दोनों हैं।
ग. श्रीचक्र त्रितयात्मक है।
घ. बिन्दु, त्रिकोण, अष्टार सृष्टिचक्र हैं।
ङ. दशारद्वय, चतुर्दशार स्थितिचक्र हैं।
च. अष्टदल, षोडशदल, भूपुर (चतुरस्र) संहारचक्र हैं।
छ. बिन्द्वादि भूपुरान्त चक्र = सृष्टिक्रम।
ज. भूपुरादि बिन्द्वन्त चक्र = संहारक्रम।

श्री— श्री का क्या अर्थ है? 'श्रयते या सा श्रीः' जो श्रयण करे, वही 'श्री' है। श्री का श्रयण व्यापार परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई हो ही नहीं सकता। जो नित्य परब्रह्म का आश्रयण करती है, वही 'श्री' है। ब्रह्म से उसकी शक्ति (श्री) अभिन्न है और उससे कभी पृथक् नहीं हो सकती। श्री के कारण ही ब्रह्म को अनन्त शक्ति (सृष्टि-स्थिति-पालन) वाला कहते हैं—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।।

परमात्मा विना शक्ति के तो स्पन्दित तक भी नहीं हो सकता। विना शक्ति के शक्तिमान का अस्तित्व कहाँ—

न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।।

श्री की विश्रमण अवस्था— परमशिव की यह श्रीरूपा शक्ति (विमर्श शक्ति) विश्रमणावस्था में (प्रलयावस्था में) ब्रह्मरूप से विराजमान रहती है। इस अवस्था में शक्ति का शक्तिमान से पृथक् अस्तित्व (विवेक) सम्भव नहीं है। यह ब्रह्म में लीन रहती है। इसी अवस्था में इसे 'महाबिन्दु' या 'परब्रह्म' कहते हैं। चूँकि ब्रह्म को अनन्त शक्ति प्रदान करने वाली यह शक्ति प्रलयकाल में ब्रह्म में लीन रहती है; अतः ब्रह्म के रहते हुये भी प्रलयकाल में सृष्टि नहीं हो पाती। शक्ति के लीन रहने से ब्रह्म अशक्त-सा हो जाता है। विमर्श शक्ति के सम्मुख हुये विना अनन्त शक्तिमान ब्रह्म में कोई शक्ति नहीं रहती, क्योंकि वह स्वरूपतः तो निर्गुण, निष्कल एवं निरञ्जन है। विश्रमणावस्थापन्न शक्ति के इसी स्वरूप का इस प्रकार से वर्णन किया गया है—

अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्तैकमूर्तिः।
गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकगम्या त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा।।

इस श्रीयन्त्र के स्वरूप का जिसे ज्ञान हो जाता है, वह मुक्त हो जाता है और महा-त्रिपुरसुन्दरीस्वरूप हो जाता है—

विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपः।

श्रीचक्र के तीन पुर हैं— सोमात्मक, सूर्यात्मक एवं अनिलात्मक। कहा भी है—

पुरत्रयञ्च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम्।

श्रीचक्र के तीन खण्ड हैं—

१. जाग्रत्	२. स्वप्न	३. सुषुप्ति
१. प्रमाता	२. प्रमेय	३. प्रमाण
१. सूर्य	२. चन्द्र	३. अग्नि।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी का रम्य राजमहल (श्रीयन्त्र) पुरत्रय, खण्डत्रय से युक्त है—

१. पुरत्रयञ्च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम्।
२. त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम्।

श्रीचक्र विश्वमय है। 'शब्दसृष्टि' की दृष्टि से मातृकामय भी है। श्रीचक्र ब्रह्माण्ड एवं पिण्डाण्ड दोनों है।

सृष्टि— १. शब्दसृष्टि (मातृकारूपा) : शब्दात्मिका।
२. अर्थसृष्टि (तत्त्वरूपा) : तत्त्वात्मिका।

मातृका के खण्डत्रय— १. स्वर = चान्द्र खण्ड।
(ब्रह्माण्ड में) २. स्पर्श = सौर खण्ड।
३. अन्तस्थ ऊष्म = आग्नेय खण्ड।

(पिण्डाण्ड में)— शिर, हृदय, मूलाधारान्त ३ भाग = तेजत्रयात्मक।
हाथ = मध्यभाग की शाखा।
पैर = अन्त्य भाग की शाखा।

श्रीचक्र— चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
शिवशक्त्यात्मकं ज्ञेयं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः।।

श्रीचक्र शिव-शक्ति का शरीर है— 'श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः'।

५ शक्तिचक्र + ४ शिवचक्र— श्रीयन्त्र।

इसके पुरत्रय हैं—

क. प्रमातृपुर— बिन्दु, त्रिकोण, अष्टार, अष्टदल (आग्नेयखण्ड = प्रमातृपुर)।
ख. प्रमाणपुर— दशारद्वय, चतुरस्र (सौरखण्ड)।
ग. प्रमेयपुर— चतुर्दशार, षोडशदल (चान्द्रखण्ड)।

श्रीयन्त्र इच्छा-ज्ञान-क्रिया एवं नाद-बिन्दु-कला के रूप में भी पुरत्रय से युक्त है।

मर्मस्थान— श्रीचक्र में २८ मर्मस्थान हैं।

सन्धिस्थान— श्रीचक्र में २४ सन्धियाँ हैं—

सन्धि = द्विरेखासङ्गमस्थानं सन्धिरित्यभिधीयते।
मर्म = त्रिरेखासङ्गमस्थानं मर्म मर्मविदो विदुः।।
सन्धि = मन्वश्रद्विदशाराष्टकोणवृत्तचतुष्टयम्।
मर्म = अष्टाविंशतिमर्माणि चतुर्विंशतिसन्धयः।।

अष्टदल-षोडशदल-मेखलात्रय-भूपुरत्रय शिवचक्रों का त्रिरेखासंगमस्थानत्वाभाव होने पर भी वाचनिका मर्म संज्ञा होती है।

नवयोनिचक्र— अन्तरतम बैन्दव चक्र से नौ त्रिकोण नवयोनिचक्र के नाम से आविर्भूत होते हैं। नवयोनिचक्र के नौ अवयव निम्नांकित हैं—

१. धर्म	४. अन्तरात्मा	७. प्रमाता जीव
२. अधर्म	५. परमात्मा	८. प्रमेय
३. आत्मा	६. ज्ञानात्मा	९. प्रमा

ये नवयोनिचक्र भीतर एवं बाहर चिदानन्दमय हैं। ये चैतन्यकलामय एवं पूर्णहन्ता-स्फुरणात्मक एवं आनन्दपूर्ण हैं। ये देश-काल एवं आकार से अपरिच्छिन्न हैं। बैन्दव चक्र, आभ्यन्तर एवं वैखरी वाङ्मय— ये नवयोनिचक्र बाह्य हैं।

नवयोनिचक्र ही श्रीचक्र के नव चक्रों के रूप में परिणत हो गये हैं। अन्तरतम से बाह्य की ओर प्रसृत होने वाले इन चक्रों की आख्या निम्नांकित है—

श्रीचक्र के विभिन्न चक्र—

१. महाबिन्दु (सर्वानन्दमय चक्र)।
२. त्रिकोण (सर्वसिद्धिप्रद चक्र)।
३. अष्टकोण (सर्वरक्षाकर चक्र)।
४-५. दशारद्वय— क. सर्वार्थसाधक चक्र, ख. सर्वरोगहर चक्र।
६. चतुर्दशार (सर्वाशापरिपूरक चक्र)।
७. अष्टदल कमल (सर्वसंक्षोभण चक्र)।
८. षोडशदलकमल (सर्वसौभाग्यदायक चक्र)।
९. तीन चतुरस्र (भूपुर = त्रैलोक्यमोहन चक्र)।

त्रिकोण के ३ स्पन्दनों से अष्टकोण का आविर्भाव होता है। यह त्रिकोण को वेष्टित करके रखता है।

दश कोण = १. आभ्यन्तर, २. बाह्य।

आभ्यन्तर दश कोण— नौ त्रिकोणों एवं बैन्दव के चारो ओर स्फुरणशील प्रकाशों से निर्मित है। इनसे 'य र ल व श ष ह ल क्ष'— इन दश वर्णों की स्फूर्ति होती है।

इन १० वर्णों से पृथिव्यादिक पञ्चभूत एवं गन्धादिक पञ्च तन्मात्राओं या भूतसूक्ष्म प्रकाशित होते हैं।

वर्ण शक्तिस्वरूप हैं, जबकि अर्थ शिवस्वरूप हैं। दश कोण प्रकाश-विमर्शमय हैं।

द्वितीय दश कोण (बाह्य दशार) आभ्यन्तर दश कोणों की छाया है। इसमें 'क' से 'ञ' तक १० वर्ण हैं। इनसे शब्दादि पाँच एवं वचनादि पाँच इन्द्रियार्थों का स्फुरण होता है। द्वितीय दशार— चतुर्दशार।

चतुर्दशार में १४ 'अर' हैं, जिनमें बैन्दव, त्रिकोण, अष्टकोण एवं प्रथम दशार की प्रभाचतुष्टय हैं। चतुर्दशार संवित्तिकरणात्मक १४ शक्तियों के रूप हैं— बाह्य इन्द्रियाँ १० एवं अन्तःकरणचतुष्टय। यहाँ 'ट' से 'भ' तक १४ वर्ण विद्यमान हैं। इसके पश्चात् आते हैं— अष्टदल एवं षोडशदल। इन दो कमलों के साथ तीन वृत्त हैं। इसके पश्चात् आते हैं— ४ चतुष्कोण या भूपुर। ये भी श्रीचक्र की बाह्य सीमा या बाह्य प्राचीर है।

श्रीचक्र का आविर्भाव— योगिनीहृदय में कहा गया है कि जब परमा शक्ति स्वेच्छा-पूर्वक अपनी स्फुरत्ता (विश्वसर्जनमेव परा शक्तेः स्फुरत्ता) का अवलोकन करती है, तभी चक्र का प्रादुर्भाव हो उठता है—

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः।।९।।

स्वान्तःसंहृत विश्व को सिसृक्षा द्वारा विश्वरूपिणी परमा शक्ति (विमर्शरूपिणी परा शक्ति) विश्वसृजन करती है और शिव? शिव तटस्थ या उदासीन रहता है; क्योंकि 'न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते'। विमर्शस्वरूपा यह शक्ति ही जगत् का निगिरण-उद्गिरण करती है—

स्वेच्छयैव जगत्सर्वं निगिरत्युद्गिरत्यपि। (आज्ञावतार)

अर्थात् 'सा देवी स्वेच्छया स्वनिष्ठां स्फुरत्तां यदा पश्यति तदा चक्रस्य विश्वाभिन्नस्य त्रिकोणादिचक्रस्य सम्भव उत्पतिर्भवतीत्यर्थः।'[१]

५ शक्तियों एवं ४ वह्नियों के संयोग से ही चक्रों का आविर्भाव होता है—

तच्छक्तिपञ्चकं सृष्ट्या लयेनाग्निचतुष्टयम्।
पञ्चशक्तिचतुर्वह्निसंयोगात् चक्रसम्भवः।।

(संयोग— चक्राविर्भाव। संयोग = ५ शक्ति + ४ वह्नि का सम्यक् योग = संयोग। शक्ति + वह्नि + संश्लेष = संयोगचक्रोत्पत्ति)।

श्रीचक्र का स्वरूप— यह नवयोन्यात्मक है—

नवयोन्यात्मकं चक्रं चिदानन्दघनं महत्।
चक्रं नवात्मकमिदं नवधा भिन्नमन्त्रकम्।। (योगिनीहृदय)

श्रीचक्र चिदानन्दघन है।

यन्त्र के अंग— यन्त्र के दश अंग होते हैं और वे निम्नांकित हैं—

१. बीज
२. प्राण
३. शक्ति
४. दृष्टि
५. वश्यादिक
६. मन्त्र
७. मन्त्रयन्त्राख्य गायत्री
८. प्राणस्थापन
९. भूत
१०. दिक्पाल बीज

बीजं प्राणं च शक्तिं च दृष्टिं वश्यादिकं तथा।
मन्त्रतन्त्राख्यगायत्री प्राणस्थापनमेव च।
भूतदिक्पालबीजानि यन्त्रस्याङ्गानि वै दश।। (यन्त्राङ्गदशक)

श्रीचक्र का चिदानन्दघनत्व क्या है? (चित् = चैतन्य कला। 'आनन्द' विश्वाहन्तापरिणाम, उससे घन (बाहर-भीतर सर्वत्र निबिड़), यथा— लवण) प्रथम त्रिकोण पश्यन्ती आदि त्रितयात्मक हैं। बाह्य चक्र वैखरीमय है। त्रिकोणत्रय रूप से यह नवात्मक है अर्थात् त्रैलोक्यमोहन आदि चक्रों के रूप में परिणत होकर नवात्मक है। त्रिकोण चक्र ही नवचक्रात्मक स्वरूप में परिणत हो जाता है।

इन्दुमण्डलात्मक श्रीचक्र का स्वरूप है क्या?

---

१. योगिनीहृदय (सेतुबन्ध : भास्कर)

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः।
चतुश्चत्वारिंशद्वसुदलकलात्रिवलय
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरणकोणाः परिणताः।। (सौन्दर्यलहरी)

श्रीचक्र के आवरण— श्रीचक्र के नौ आवरण होते हैं, जो कि निम्नवत् हैं—

१. भूपुर	४. चतुर्दशार कोण	७. अष्टकोण
२. षोडशदल पद्म	५. बहिर्दशार	८. त्रिकोण
३. अष्टदल पद्म	६. अन्तर्दशार	९. बिन्दु

श्रीयन्त्र अयोध्या है— तैत्तरीयारण्यक श्रुति में कहा गया है कि अष्टकोण, दशकोण, द्वितय, चतुर्दश कोण, अष्टपत्र, षोडशपत्र, त्रिवलय, त्रिरेखा आदि आठ चक्रों वाली ९ त्रिकोणात्मक (अर्थात् ९ द्वारों वाली) देवपूज्या, सोम-सूर्य-अनल से युक्त अयोध्या नाम की पुरी है। इसमें हिरण्मय कोष (सहस्रदल कमल) है, जिसकी ज्योति से स्वर्गलोक आच्छादित है—

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गे लोको ज्योतिषावृतः।।

श्रीचक्रपुरी ही अयोध्या नगरी है।

श्रीचक्र परमशिव का विश्राम-निलय है।

मूल चैतन्य के दो पक्ष (दो शक्तियाँ)

चैतन्य = शिव। चैतन्यभाव = शिव।	गति (गतिभाव = शक्ति)
(महाशक्ति का चैतन्यभाव)	(महाशक्ति का गतिप्रवाह = शक्ति)

बाह्य दिदृक्षा की उत्तरोत्तर उत्कटता— मूल चिति में अभिन्न रूप से स्थित चैतन्य + क्रिया (शिव + शक्ति) में भेद का प्रादुर्भाव एकाग्रता— भेद का शमन— दोनों धाराओं में सामरस्य की उत्तरोत्तर वृद्धि = अद्वैतभाव, भेदाभाव = ऐक्य।

श्रीचक्र भगवती महाशक्ति के क्रियाभाव का दिग्दर्शक है।

श्रीचक्र महाशिव का विश्रामस्थान है। इसमें महाशक्ति की गतिशक्ति— श्रीमहाविद्या का अखण्ड स्फुरण (स्पन्दन) भी प्रवाहित है। श्रीचक्र शिव के चैतन्यभाव एवं शक्ति के क्रियाशील गतिभाव या स्पन्द का मिथुनात्मक रूप अवस्थित है। श्रीचक्र में पञ्चविध साम्य— १. अवस्थानसाम्य, २. अधिष्ठानसाम्य, ३. अनुष्ठानसाम्य, ४. रूपसाम्य एवं ५. नामसाम्य— द्वारा सामरस्यापन्न शिवशक्ति दम्पति का एकात्मक मिथुन स्वरूप परमोपास्य माना जाता है। श्रीचक्र शिव-शक्ति का श्रीविग्रह है। इसके सतत् चिन्तन, मनन, निदिध्यासन एवं पूजन से अपने इष्टदेवता के साथ तादात्म्य एवं महामुक्ति दोनों प्राप्त

होती है। श्रीचक्र की उपासना या पूजा भगवती की ही पूजा का पर्याय है। विश्वरूप परा शक्ति स्वेच्छावश जैसे ही अपनी स्फुरत्ता का चिन्तन करती है, वैसे ही श्रीचक्र उत्पन्न हो जाता है।

श्रीचक्र पिण्डब्रह्माण्डैक्य का एक निदर्शन है। यहाँ आकर व्यष्टि और समष्टि दोनों एकीभूत हो जाते हैं। यह सृष्टिक्रम भी है और लयक्रम भी।

बिन्दु से आरम्भ करके बाह्योन्मुखी यात्रा पर जाने पर सृष्टि होती है, इसे ही सृष्टि-क्रम कहते हैं। यह भगवती त्रिपुरसुन्दरी (परमा शक्ति) की स्फुरत्ता का मार्ग है— सृष्टि की यात्रा है। बाहर के चक्र से आरम्भ करके भीतर की ओर यात्रा करने पर लय की यात्रा होती है। इसे लयक्रम कहते हैं।

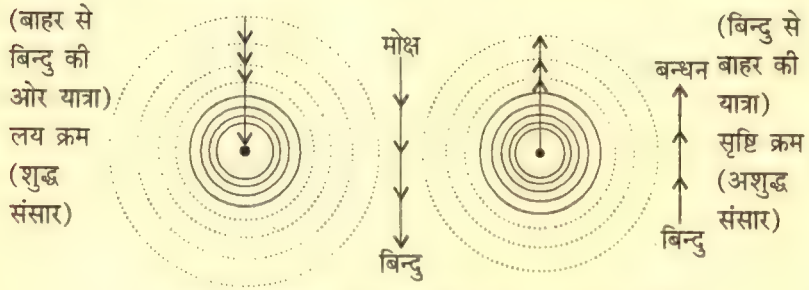

(बिन्दु से बाहर की ओर यात्रा : सृष्टि-क्रम : सृजन : बन्धन)
(बाहर से बिन्दु की ओर यात्रा : संहार-क्रम : प्रलय : मुक्ति)

पञ्चदशाक्षरात्मक मन्त्ररूप पञ्चदशी विद्या भी उसी प्रकार की (त्रिपुरा की ही) भाँति चिदानन्दस्वरूपिणी, विश्वात्मिका एवं विश्वोत्तीर्णा है। यह सूक्ष्मा त्रिपुरा सुन्दरी देवी है। तत्त्वविद् योगियों ने विद्या (पञ्चदशी विद्या) एवं वेद्य (त्रिपुरसुन्दरी देवी) दोनों में शाश्वतिक सामरस्य (अभेद) का प्रतिपादन किया है।

देवी मातृका एवं चक्रों से भी अभिन्न हैं। वितर्कातीतस्वरूप वाली महेशी देवी, जो कि पश्यन्ती आदि मातृकाओं के रूप में व्यक्त होने के कारण त्रिरूपात्मिका हैं और चक्र के रूप में परिणत हो गई हैं—

स्पष्टा पश्यन्त्यादि त्रिमातृकात्मा च चक्रतां याता।।

महेशी एवं चक्र में रञ्चमात्र भी भेद नहीं है—

चक्रस्यापि महेश्या न भेदलेशोऽपि भाव्यते विबुधैः।।

यही है— चक्र एवं देवी में अभेदात्मकता।

त्रिकोण, पश्यन्ती एवं अन्य वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका एवं परा शक्ति इस शक्तिचक्र का एक भाग है। इच्छा, ज्ञान, क्रिया एवं शान्ता उत्तरवर्ती भाग है। 'अ' एवं

'ह' व्यष्टि एवं समष्टि रूप में गृहीत किये जाने पर ग्यारह रूपों वाली पश्यन्ती का निर्माण करते हैं।

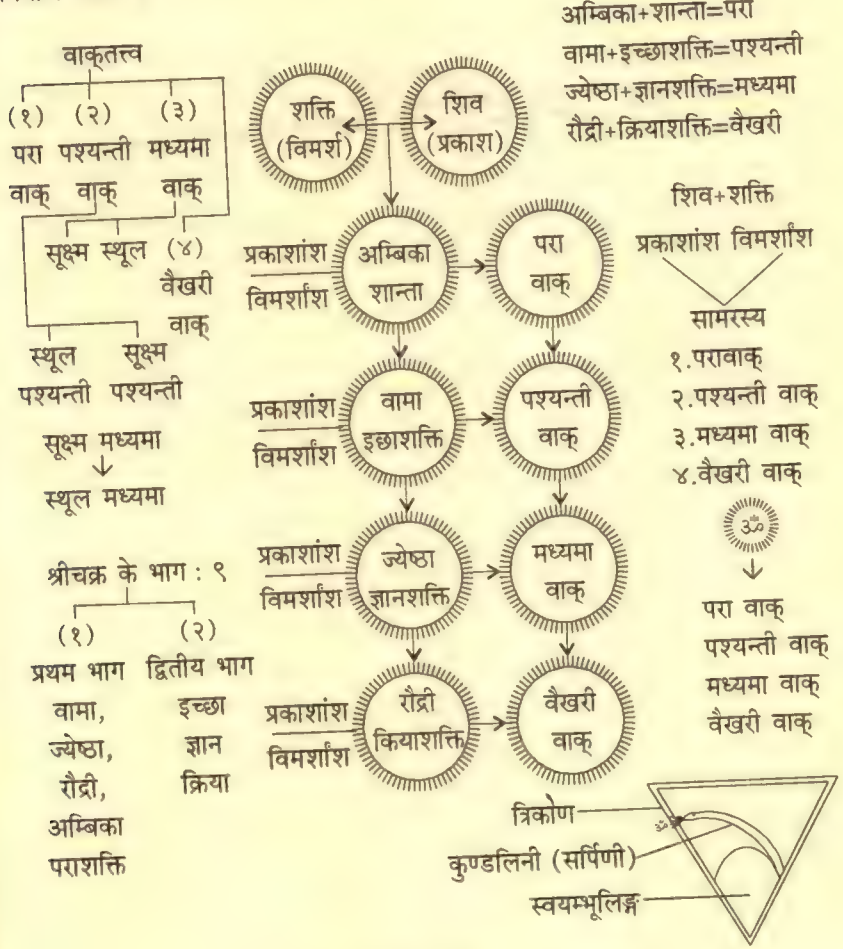

परा भूर्जन्म पश्यन्ती वल्ली गुच्छसमुद्भवा।
मध्यमा सौरभा वैखर्यक्षमाला जयत्यसौ।।
(सुभगोदयवासना)

१. इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता।

२. ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा मध्यमा वागुदीरिता।
ऋजुरेखामयी शृङ्गाटग्ररेखाकारा मध्यमा वागुदीरिता।।

३. क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा।।

श्रीचक्र एवं पिण्डस्थ यौगिक चक्रों में तादात्म्य—

१. त्रिकोण=आधार चक्र
२. अष्टकोण=स्वाधिष्ठान चक्र
३. दशार=मणिपूर चक्र
४. द्वितीय दशार=अनाहत चक्र
५. चतुर्दशार=विशुद्धि चक्र
६. शिवचक्रचतुष्टय=आज्ञाचक्र
७. बिन्दुस्थान चतुरस्र=सहस्रकमल

श्रीचक्र एवं श्रीयन्त्र में ऐकात्म्य है—

त्रिखण्डं ते चक्रं शुचिरविशशांकात्मकतया
मयूखैः षट्त्रिंशद्दशयुततया खण्डकलितैः।
पृथिव्यादौ तत्त्वे पृथगुदितवद्भिः परिवृतं
भवेन्मूलाधारात्प्रभृति तव षट्चक्रसदनम्।।
(गौड़पादाचार्य)

८. षोडशी कला का प्रतिफलन = आज्ञाचक्रगत चन्द्रमा की १५ कलायें। (८६)

सहस्रारस्थ चन्द्रमा नित्यकल है। कला सादाख्या कहलाती है। (८६)

भैरवयामल में श्रीचक्र एवं पिण्डस्थ चक्रों में अविनाभाव सम्बन्ध प्रतिपादित किया गया है और कहा गया है—

मूलाधारं तथा स्वाधिष्ठानं च मणिपूरकम्।
अनाहतं विशुद्ध्याख्यमाज्ञाचक्रं विदुर्बुधाः।।

तवाधारस्वरूपाणि कोणचक्राणि पार्वति।
त्रिकोणरूपिणी शक्तिः बिन्दुरूपश्शिवः स्मृतः।।

अविनाभावसम्बन्धः तस्माद्बिन्दुत्रिकोणयोः।
अधोमुखं चतुष्कोणं शिवचक्रात्मकं विदुः।।

अधोमुखानि चत्वारि त्रिकोणानि शिवात्मकानि।
शिवचक्राणि बाह्यानि तद्रूपेणावस्थितानि।।

कौलमत— ४ अधोमुख ४ त्रिकोण शिवात्मक हैं एवं ऊर्ध्वमुख ५ त्रिकोण शक्ति-त्रिकोण हैं। कौलमत में संहारक्रम से नवत्रिकोणात्मक श्रीचक्र का लेखन किया जाता है।[१]

योगिनीहृदय के चक्रसंकेत में श्रीचक्र की नव योनियों एवं ९ चक्रों का नाम इस प्रकार बताया गया है—

यस्य विज्ञानमात्रेण त्रिपुराज्ञानवान् भवेत्।
चक्रस्य नवधात्वं च कथयामि तव प्रिये।।७९।।

(क) आदिमं भूत्रयेण स्याद् द्वितीयं षोडशारकम्।
अन्यदष्टदलं प्रोक्तं मनुकोणमनन्तकम्।।८०।।

पञ्चमं दशकोणं स्यात् षष्ठं चापि दशारकम्।
सप्तमं वसुकोणं स्यान्मध्यत्र्यस्रमथाष्टमम्।।८१।।

---

१. लक्ष्मीधर : लक्ष्मीधरा।

नवमं त्र्यस्रमध्यं स्यात्तेषां नामान्यतः शृणु।

* * * * *

(ख) त्रैलोक्यमोहनं चक्रं सर्वाशापरिपूरकम्।।८२।।

सर्वसंक्षोभणं गौरि ! सर्वसौभाग्यदायकम्।
सर्वार्थसाधकं चक्रं सर्वरक्षाकरं परम्।।८३।।

सर्वरोगहरं देवि ! सर्वसिद्धिमयं तथा।
सर्वानन्दमयं चापि नवमं शृणु सुन्दरि।।८४।।

अत्र पूज्या महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी।
परिपूर्णं महाचक्रमजरामरकारकम्।।८५।।

श्रीचक्र से सम्बद्ध महाचक्रसंकेत, जो त्रिपुरा देवी से सम्बद्ध है, जीवन्मुक्ति प्रदान करता है। योगिनीहृदय में कहा भी गया है—

एवमेव महाचक्रसंकेतः परमेश्वरि।
कथितस्त्रिपुरादेव्याः जीवन्मुक्तिप्रवर्तकः।।

पिण्डस्थ षट् चक्रों एवं श्रीयन्त्र के नौ चक्रों में भी तादात्म्य है। मूलतः षट्चक्र एवं ९ चक्र एक ही हैं। महाबिन्दु दोनों का मूलाधार है।

नव चक्र एवं उनमें अधिष्ठित शक्तियाँ और उनका तादात्म्य— योगिनीहृदय के मन्त्रसंकेत में इनका विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

तासां नामानि वक्ष्यामि यथानुक्रमयोगतः।
तत्राद्या त्रिपुरा देवी द्वितीया त्रिपुरेश्वरी।।९।।

तृतीया च तथा प्रोक्ता देवी त्रिपुरसुन्दरी।
चतुर्थी च महादेवी देवी त्रिपुरवासिनी।।१०।।

पञ्चमी त्रिपुराश्रीः स्यात्षष्ठी त्रिपुरमालिनी।
सप्तमी त्रिपुरासिद्धिरष्टमी त्रिपुराम्बिका।।११।।

नवमी तु महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी।
पूजयेच्च क्रमादेता नवचक्रे पुरोदिते।।१२।।

ये नव देवियाँ (विद्यायें) नवचक्रेश्वरी कहलाती हैं। इनका न्यासक्रम 'एता विद्या नवचक्रेश्वर्यः पादाग्रादिष्वकुलादिषु स्वस्वस्थानेषु च स्वरूपेण भावनारूपेण क्रमेण न्यस्तव्या।' (सेतुबन्ध) के रूप में निर्धारित है।

ये चक्रेश्वरी देवियाँ आद्या शक्ति (शिवादि क्षित्यन्त समस्त जगत् की मूल कारण-भूता शक्ति) परशिव की विमर्श शक्ति से एकाकार हैं। मूलतः उनमें एवं आद्या विमर्श शक्ति में भेद नहीं है। 'परा पूजा' में शक्तियों की यह सामरस्यापन्नावस्था अनुसन्धेय है—

एवं नवप्रकाराद्या पूजाकाले तु पार्वति।
एकाकारा ह्याद्यशक्तिरजरामरणकारिणी।।

(योगिनीहृदय : मन्त्रसंकेत-१३)

चूँकि श्रीचक्र शिव-शक्ति के समायोग से आविर्भूत हुआ है और उसी प्रकार मन्त्र-राज भी— 'शिवशक्तिसमायोगाज्जनितो मन्त्रराजकः' (मन्त्रसंकेत-१७); अतः पूजा के समय श्रीचक्र एवं श्रीविद्या में तो अभेदात्मकता मानकर पूजा करनी ही चाहिये; साथ ही देवता, गुरु, मन्त्र, श्रीचक्र, कुण्डलिनी, नाद, शक्ति आदि सभी के साथ अपनी अभेदात्मकता की भावना करते हुये समस्त साधनायें अनुष्ठित करनी चाहिये। श्रीविद्या एवं श्रीचक्र भी मूलतः एकाकार हैं।

श्रीमन्त्र उभयात्मक है— १. शैवमार्ग, २. शक्तिमार्ग, ३. उभयात्मक—

कत्रयं हद्वयं चैव शैवो मार्गः प्रकीर्तितः।
शक्त्यक्षराणि शेषाणि ह्रींकार उभयात्मकः।।

(हकार = शिव। सकार = शक्ति। ह्रींकार = उभयात्मक)

'हंसः' शिवशक्त्यात्मक है; क्योंकि 'ह' शिव है और 'स' शक्ति है; अतः 'हंसः' परस्पर समरसापन्न शिव-शक्तिरूप है।

चक्र, मन्त्र, मातृका एवं अधिष्ठात्री शक्तियाँ परा शक्ति मातृका (परा मातृका = पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीरूप से सर्वव्याप्त) से अभिन्न हैं—

ज्ञातृज्ञानमयाकारमननान्मन्त्ररूपिणी ।
तेषां समष्टिरूपेण पराशक्तिस्तु मातृका।।

(योगिनीहृदय : मन्त्र-२०)

तेषां समष्टिरूपेण पराशक्तिं तु मातृकाम्।
कूटत्रयात्मिकां देवीं समष्टिव्यष्टिरूपिणीम्।।

(योगिनीहृदय : मन्त्र-२४)

यह एकाकारता ही तो श्रीविद्या का भावार्थ है। अतः नवचक्रार्चन एवं चक्रों की विभावना में एकाकारता प्राणतत्त्व है। शाक्त दर्शन सिद्धान्त एवं उपासना दोनों क्षेत्रों में अद्वैतवाद को लेकर चलता है।

श्रीचक्र एवं उनकी अधिष्ठात्री शक्तियों में भी तादात्म्य है।

षट्चक्रों एवं श्रीयन्त्र के नौ चक्रों में तादात्म्य

योगिनीहृदय में कहा गया है—

अकुलादिषु पूर्वोक्तस्थानेषु परिचिन्तयेत्।
चक्रेश्वरीसमायुक्तं नवचक्रं पुरोदितम्।। (मन्त्रसंकेत-८)

योगिनीहृदयदीपिका में अमृतानन्द कहते हैं— १. अकुले सुषुम्नामूलारुणसहस्रदलकमले त्रिपुराधिष्ठितं त्रैलोक्यमोहनचक्रम्। २. वह्नावाधारे चतुर्दलकमले त्रिपुरेश्यधिष्ठितं सर्वाशापरिपूरणं चक्रम्। ३. शाक्ते स्वाधिष्ठानस्थितषड्दलकमले त्रिपुरसुन्दर्यधिष्ठितं सर्वसंक्षोभणं चक्रम्। ४. नाभौ दशदलकमले त्रिपुरवासिन्यधिष्ठितं सर्वसौभाग्यदायकचक्रम्। ५. अनाहते द्वादशदलकमले त्रिपुराश्रीसमधिष्ठितं सर्वार्थसाधकं चक्रम्। ६. विशुद्धौ षोडशदलकमले त्रिपुरमालिन्यधिष्ठितं सर्वरक्षाकरं चक्रम्। ७. लम्बिकाग्रे तालुमूले अष्टदलकमले त्रिपुरासिद्ध्यधिष्ठितं सर्वरोगहरं चक्रम्। ८. भ्रुवोरन्तरे द्विदलकमले त्रिपुराम्बिकाधिष्ठितं सर्वसिद्धिप्रदं चक्रम्। ९. इन्दौ ललाटे बिन्दौ महात्रिपुरसुन्दर्यधिष्ठितं सर्वानन्दमयं चक्रं भावयेत्।

*** मूलाधार चक्र ***

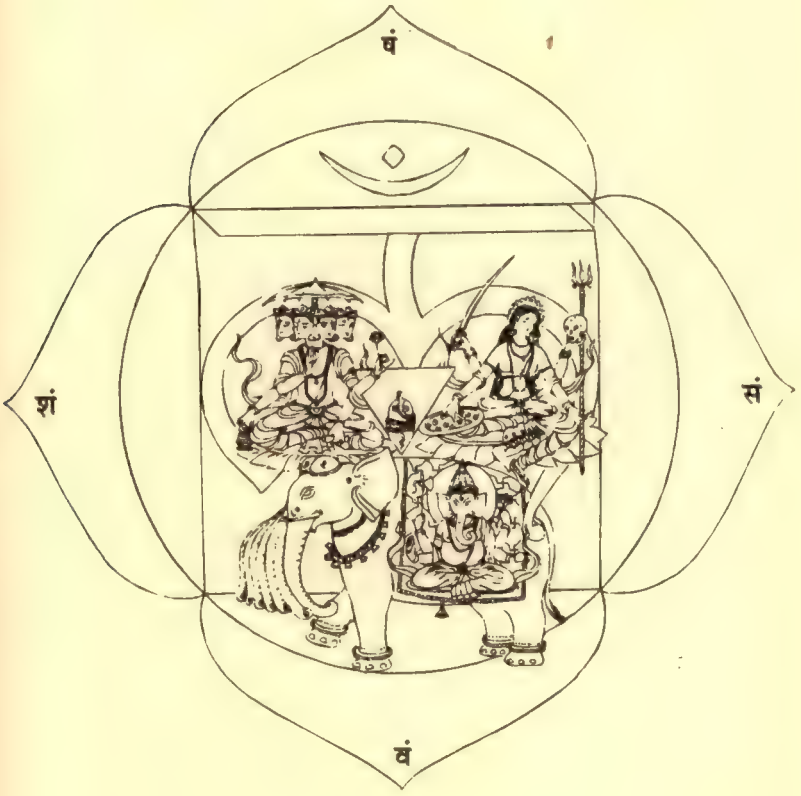

योनि की तीन रेखायें हैं— इच्छा, ज्ञान, क्रिया।

* स्वाधिष्ठान चक्र *

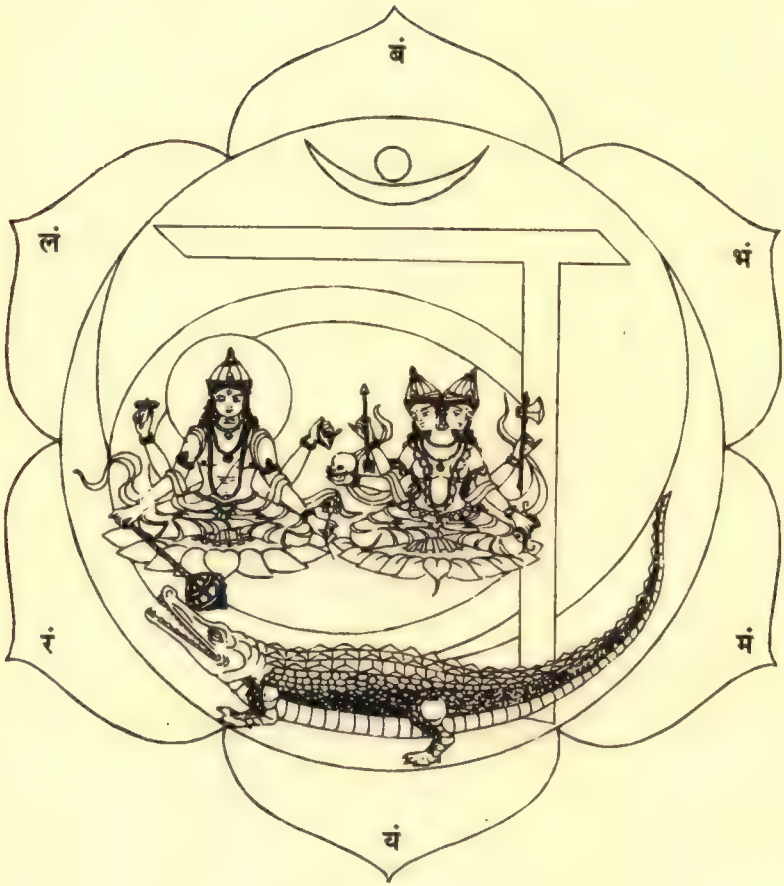

* मणिपूरक चक्र *

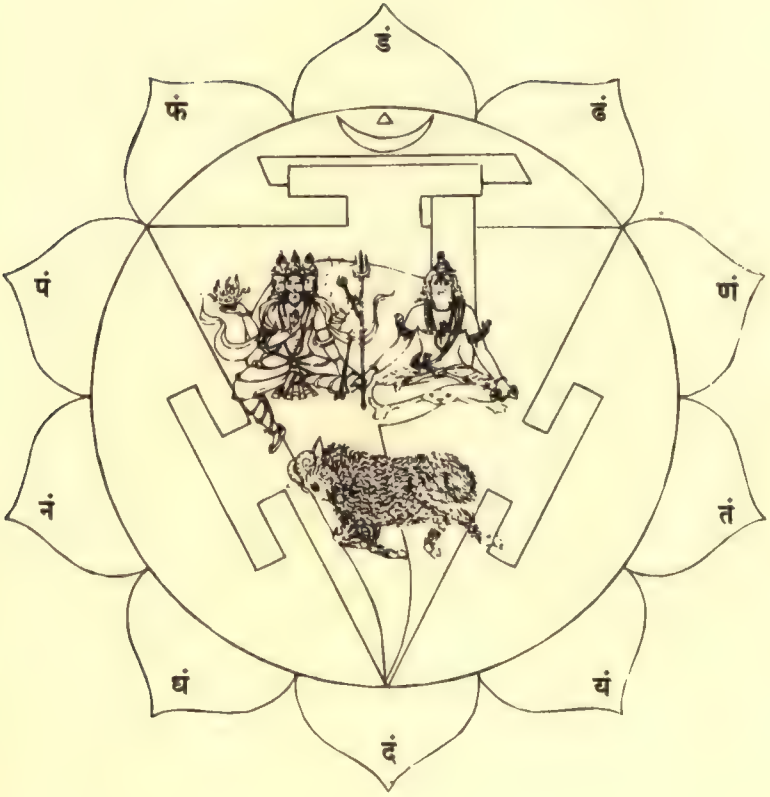

षट्चक्रों एवं श्रीचत्र के नौ चक्रों में तादात्म्य का विवरण

१. अकुल : सुषम्ना मूलारुण सहस्रदलकमल में त्रैलोक्यमोहन चक्र एवं भगवती त्रिपुरा अधिष्ठात्री शक्ति के रूप में अधिष्ठित हैं। इसी प्रकार—

२. वह्नि का आधार : चतुर्दल पद्म : त्रिपुरेशी : सर्वाशापरिपूरणचक्र।

३. शाक्त स्वाधिष्ठान : षड्दल पद्म : त्रिपुरसुन्दरी : सर्वसंक्षोभणचक्र।

४. नाभिस्थान : दशदल कमल : त्रिपुरवासिनी : सर्वसौभाग्यदायकचक्र।

५. हृदय : अनाहत चक्र : द्वादशदल कमल : त्रिपुराश्री : सर्वार्थसाधकचक्र।

६. कण्ठस्थान : विशुद्धाख्य चक्र : षोडशदल पद्म : त्रिपुरमालिनी : सर्वरक्षाकरचक्र।

७. तालुमूलस्थान : लम्बिकाग्र : अष्टदल कमल : त्रिपुरासिद्धि : सर्वरोगहरचक्र।

८. भ्रूमध्यस्थान : द्विदल कमल : त्रिपुराम्बिका : सर्वसिद्धिप्रदचक्र।

९. ललाटस्थान : बिन्दु : महात्रिपुरसुन्दरी : सर्वानन्दमयचक्र।

भास्कर राय 'सेतुबन्ध' में उपर्युक्त विवरण के आधार पर न्यास करने का विधान करते हुये कहते हैं—

'अकुलं विपुराधारस्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतं विशुद्धिरिन्द्रियोनिराज्ञा चेति नवस्थानेष्वपि क्रमेण तत्तत् विद्यान्ते तत्तत् चक्रेश्वरी तच्चक्रनामनी उल्लिख्य न्यसेत्। यथा— अं आं सौः त्रिपुरासहिताय त्रैलोक्यमोहनचक्राय नमः।' आदि।

न्यासपद्धति— 'पुष्पैर्वाऽनामया वापि मनसा वा न्यसेद्गुणम्।'

(दक्षिणामूर्तिसंहिता)

देवता के शरीर में न्यास पुष्पों से करना चाहिये। अपने अन्तःशरीर में न्यास मन से भी किया जा सकता है।

(भास्कर राय : सेतुबन्ध)

भगवती स्वयं चक्राकार रूप में परिणत होकर श्रीचक्र बन जाती हैं—

सेयं परा महेशी चक्राकारेण परिणमेद्यदा।
स्पष्टा पश्यन्तादि त्रिमात्रिकाला च चक्रतां याता।।

(कामकलाविलास)

* अनाहत चक्र *

* विशुद्धि चक्र *

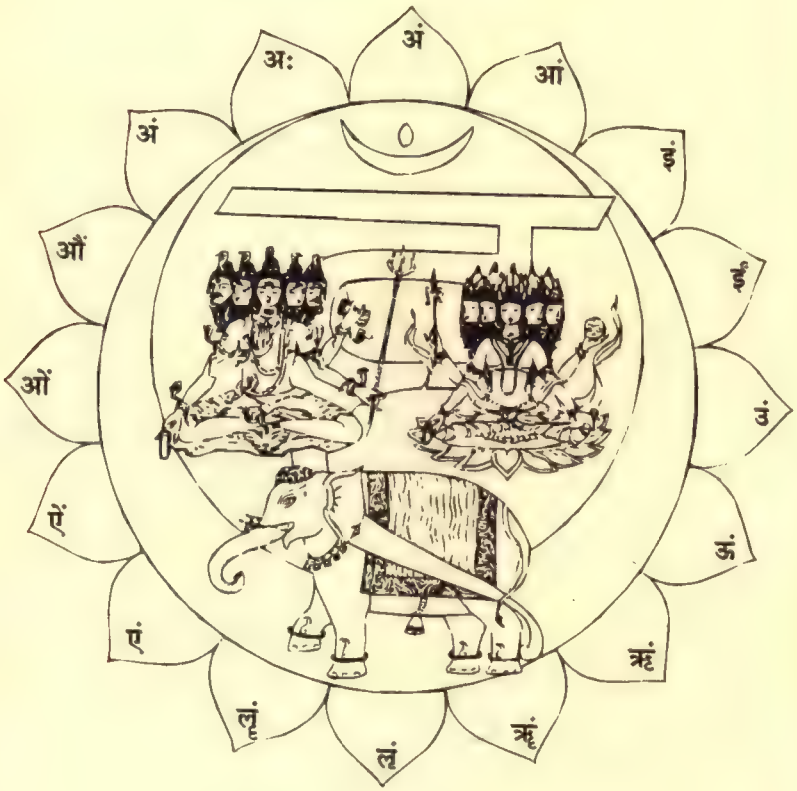

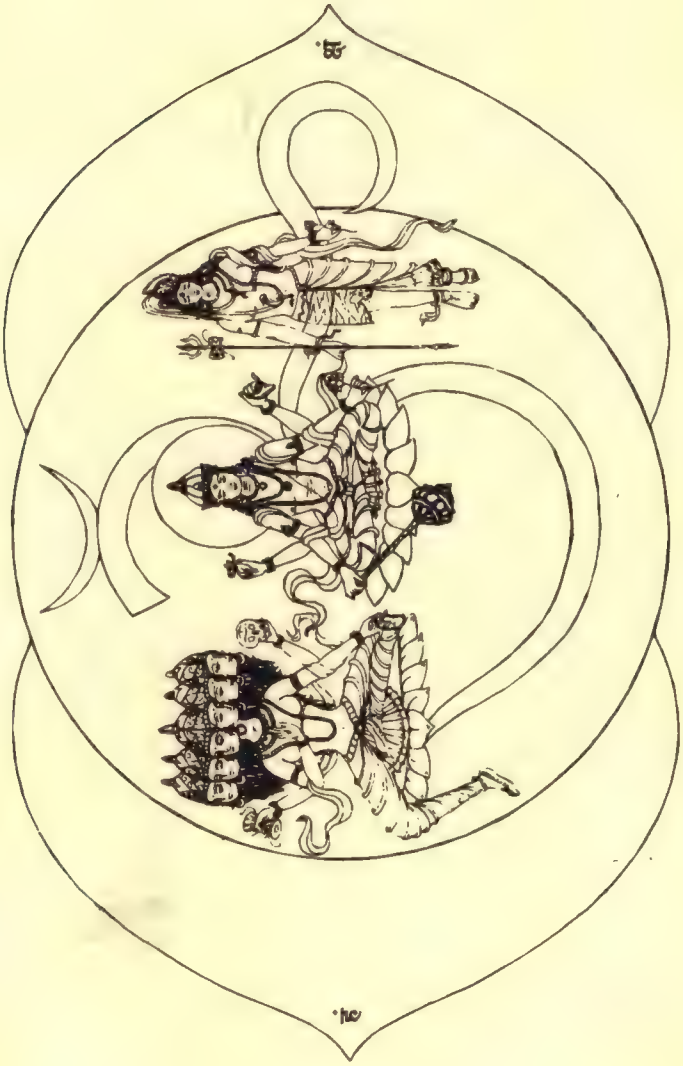

* आज्ञा चक्र *

* श्रीयन्त्र *

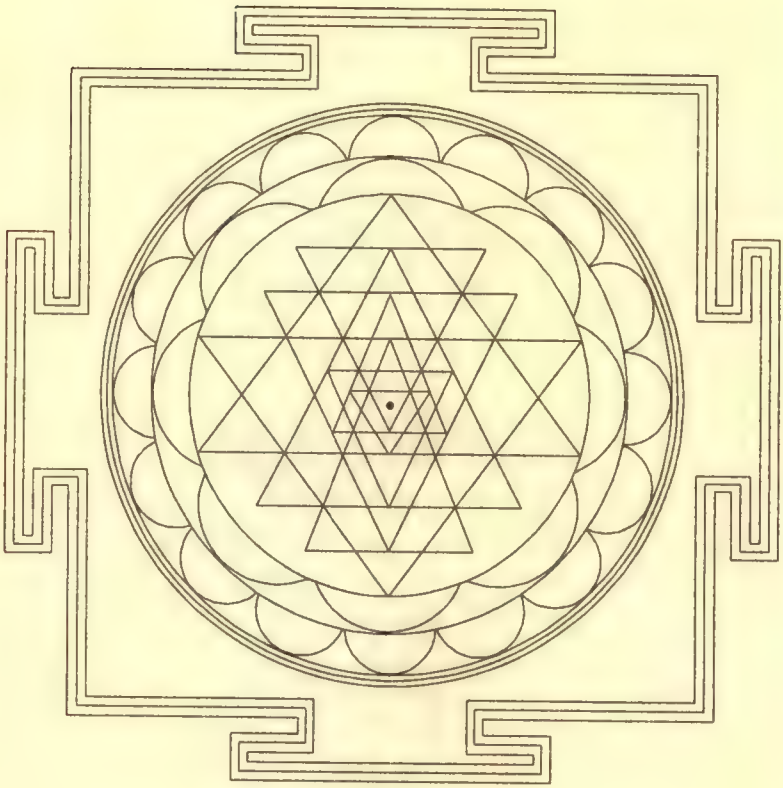

श्रीयन्त्र एवं षट्चक्र दोनों के ही अग्निखण्ड, सूर्यखण्ड एवं सोमखण्ड हैं; अतः दोनों में पर्याप्त साम्य है—

त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम्। (रुद्रयामल)

षट्चक्र का अग्निखण्ड मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान है; सूर्यखण्ड मणिपूर एवं अनाहत है तथा सोमखण्ड विशुद्धि एवं आज्ञाचक्र है; जैसा कि रुद्रयामल में कहा भी है—

अग्नीषोमात्मकं चक्रं अग्नीषोममयं जगत्।

श्रीयन्त्र में गुरुतत्त्व

(आदिगुरु का स्थान)

१. सहस्रदल पद्म।

२. श्रीचक्र में सहस्रार के समतुल्य सर्वानन्दमय चक्र के त्रिकोण-स्थित बिन्दु में सतयुग के गुरु चर्यानन्द नाथ एवं शक्ति कामेश्वरी तथा त्रेता के गुरु ऊर्ध्वदेवनाथ, द्वापर के गुरु षष्ठदेवनाथ, कलियुग के गुरु मित्रदेवनाथ श्रीपीठ-त्रिकोण के मध्य उड्डीयान श्रीपीठ में स्थित हैं।

* कुण्डलिनी *

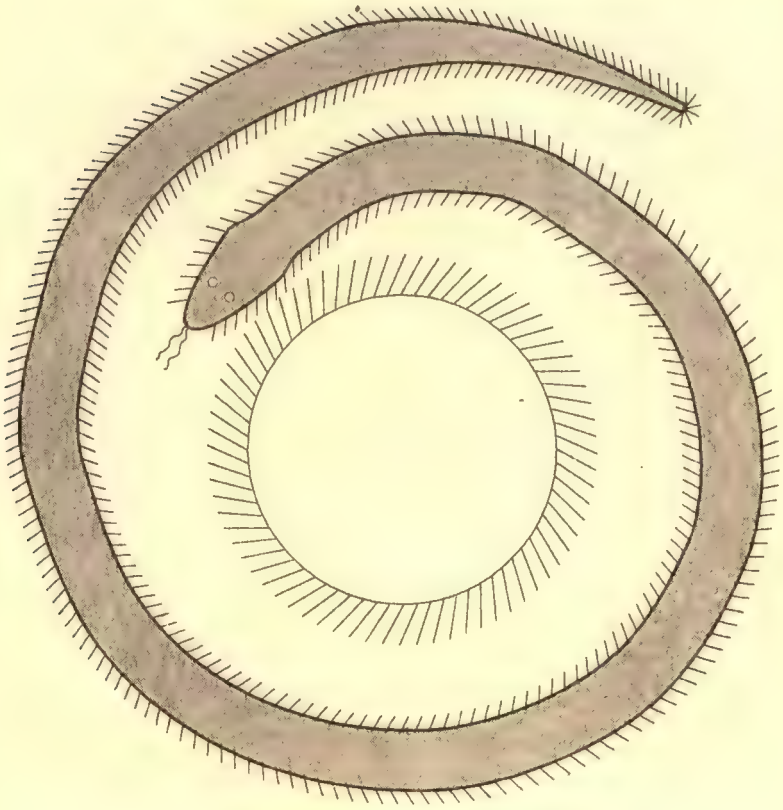

सहस्रार चक्र और श्रीचक्र अभिन्न है। श्रीचक्रस्थ गुरु हैं— चर्यानन्दनाथ, ऊर्ध्वदेव-नाथ, षष्ठदेवनाथ एवं मित्रदेवनाथ।

श्रीयन्त्र में स्थित हैं— **त्रेता** के गुरु वाग्भव पीठ के अधिष्ठाता हैं। इनका पीठ कामरूप पीठ है। ऊर्ध्वमुख त्रिकोण के ऊर्ध्व में स्थित बिन्दु : कामपीठ में कामेश्वरी स्थित है। गुरु का नाम है— ऊर्ध्वदेवनाथ। **द्वापर** युग के गुरु दक्षिण कोण में जालन्धर पीठ पर स्थित हैं। ये हैं— षष्ठदेवनाथ और शक्ति हैं— व्रज्रेश्वरी। कामराज बीज के अधिष्ठाता। **कलियुग** के गुरु का स्थान है— बिन्द्वात्मक सर्वानन्दमय चक्र। बिन्दुपीठ की अधीश्वरी (परा शक्ति का रूप) हैं— भगमालिनी और गुरु हैं— मित्रदेवनाथ। पीठ है— पूर्णगिरि पीठ, जिस पर मित्रदेवनाथ भगमालिनी के साथ आसीन हैं। गुरु : शक्ति बीज के अधिष्ठाता।

*** सहस्रार चक्र ***

नाड़ीयोग एवं चक्र— सनत्कुमारसंहिता में कहा गया है—

सूर्य एवं चन्द्रमा का देवयान एवं पितृयानस्वरूप इडा-पिंगला मार्ग द्वारा अहोरात्र-सञ्चरण होता रहता है। चन्द्रमा तो वाम नाड़ीमार्ग द्वारा सञ्चरण करता हुआ बहत्तर हजार नाड़ीमार्ग को अमृत से सींचता है। सूर्य दक्षिण नाड़ीमार्ग से सञ्चरण करता हुआ तदुत्क्षिप्त अमृतबिन्दुओं को पी लेता है।

जब चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों का आधारचक्र में समावेश होता है, तब अमावस्या तिथि होती है। उससे कृष्णपक्ष की तिथियाँ उत्पन्न होती हैं—

क. आधारचक्र में सूर्य-चन्द्र का समावेश— अमावस्या।

ख. अमावस्या— कृष्ण पक्ष की समस्त तिथियों का आविर्भाव।

अत: कुण्डलिनी शक्ति आधारकुण्ड में सूर्यकिरण के सम्पर्क से विलीन चन्द्रमण्डल के मध्य गलित होने वाले पीयूष से अपने को सन्तुष्ट (पूरित) करके सोती है।

स्वापावस्था ही कृष्णपक्ष है।

योगी जब भी समाहितचित्त होकर चन्द्रमा को चन्द्रस्थान में एवं सूर्य को सूर्य के स्थान में वायु के द्वारा निरुद्ध करने में सक्षम होता है, तब सूर्य एवं चन्द्र निरुद्ध होकर अमृत-सेचन एवं आहरणकार्य करने में अक्षम हो जाते हैं। तब वायु से प्रेरित स्वाधिष्ठानाग्नि के द्वारा अमृतकुण्ड के शुष्कीभूत होने के कारण कुण्डलिनी अपने आहार से वञ्चित होकर सोते से उठकर सुप्तोत्थित सर्पिणी की भाति फुफकारती हुई तीनों ग्रन्थियों का भेदन करके सहस्रदल कमल के मध्यवर्ती चन्द्रमण्डल को ड़सती है। इस सर्पिणी-दंशन से बहता हुआ अमृत आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमण्डल को आप्लावित करता है। उस नीचे झरते हुए अमृतप्रवाह से समस्त देह आप्लावित हो उठता है। उससे आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमा की १५ कलायें अस्तित्व में आती हैं और ये १५ कलायें अपने नीचे स्थित विशुद्धिचक्र का आश्रय लेकर चक्कर लगाती हैं।

सहस्रदल कमल में स्थित चन्द्रमण्डल ही बैन्दवस्थान है—

सहस्रदलकमलान्तस्थितचन्द्रमण्डलं बैन्दवस्थानम्।

उसकी कला ही चिन्मयी एवं आनन्दरूपी आत्मा कही जाती है—

तत्कल। चिन्मयी आनन्दरूपा आत्मेति गीयते।

वही त्रिपुरसुन्दरी भी है— 'सैव त्रिपुरसुन्दरी' (पृ०-८५)।

इस प्रकार सिद्ध होता है कि शुक्लपक्ष में ही कुण्डलिनी-प्रबोधन कर पाना सम्भव हो पाता है, न कि कृष्णपक्ष में।

शुक्लपक्ष की समस्त तिथियाँ पौर्णमासी कहलाती हैं।

कृष्णपक्ष की समस्त तिथियाँ अमावस्या में अन्तर्भूत हैं। केवल एक अमावास्या ही कृष्ण-कृष्ण के नाम से कही जाती है। अत: सिद्ध होता है कि—

क. आधारचक्र अन्धतामिस्र है— 'आधारमन्धतामिस्रम्'।

ख. स्वाधिष्ठान चक्र सूर्यकिरणों के सम्पर्क के कारण मिश्रलोक है।

ग. मणिपूर चक्र अग्निस्थान होने पर भी अपने स्थान में स्थित जल के कारण सूर्य-किरण के प्रतिबिम्ब के कारण मिश्रलोक है।

घ. अनाहत चक्र ज्योतिर्लोक है— 'अनाहतं ज्योतिर्लोकः'।

इस प्रकार अनाहत चक्रपर्यन्त लोक 'अनाहतचक्रपर्यन्तं ज्योतिस्तमोमिश्रको लोकः' है।

ङ. विशुद्धि चक्र चान्द्र लोक है— 'विशुद्धिचक्रं चान्द्रो लोकः'।

च. आज्ञाचक्र सुधा लोक है— 'आज्ञाचक्रं तु चन्द्रस्थानत्वात् सुधालोकः'।

इन दोनों लोकों में सूर्यकिरणों के सम्पर्क के कारण ज्योत्स्ना नहीं है।

छ. सहस्रदल कमल ज्योत्स्नामय लोक है— 'सहस्रकमलं तु ज्योत्स्नामय एव लोकः'। यहाँ स्थित चन्द्रमा नित्य कलायुक्त है— 'तत्र स्थितश्चन्द्रो नित्यकलायुक्तः'। चन्द्रबिम्ब ही श्रीचक्र है— 'चन्द्रबिम्बं श्रीचक्रम्'।

चतुर्दशार के देवता— अलम्बुसा, कुहू, विश्वोदरी, वरुणा, हस्तिजिह्वा, यशस्वती, अश्विनी, गान्धारी, पूषा, शंखिनी, सरस्वती, इडा, पिंगला, सुषुम्ना, सर्वसंक्षोभिणी आदि।

बहिर्दशार के देवता— प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त धनंजय— ये १० वायु सर्वसिद्धिप्रद बहिर्दशार के देवता है।[1]

शक्त्यष्टक— शीत, ऊष्ण, सुख, दुःख, इच्छा, सत्त्व, रज, तम ही वशिन्यादि शक्तियाँ हैं।

अष्ट शक्तियाँ— काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, पुण्य, पाप ही ब्राह्मी आदि अष्ट शक्तियाँ हैं।

षोडश शक्तियाँ— पृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकाश-श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-जिह्वा-घ्राण-वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ-विकार ही १६ शक्तियाँ हैं।

अष्ट शक्तियाँ— वचन-आदान-गमन-विसर्ग-आनन्द-हान-उपादान-उपेक्षा-बुद्धि अनंग कुसुमादि अष्ट शक्तियाँ हैं।

अणिमादिक सिद्धियाँ— नियति एवं शृंगारादिक नव रस ही अणिमादिक सिद्धियाँ हैं।

पञ्चबाण (पाँच पुष्पबाण)— शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध —ये पञ्च तन्मात्रायें ही मन, इक्षु, धनुष आदि पञ्च बाण हैं।

त्रिकोणाग्र देवता— अव्यक्त, महत्तत्त्व-अहंकार, कामेश्वरी-वज्रेश्वरी-भगमालिनी अन्तस्त्रिकोण के अग्र देवता हैं।

अधिदेवता— १५ तिथियों के रूप में काल का परिणामावलोकन ही पञ्चदश नित्यायें अधिदेवता हैं।

---

१. भावनोपनिषद २. भावनोपनिषद्

श्रीचक्र— ९ रन्ध्रों से युक्त शरीर ही श्रीचक्र है— 'नवरन्ध्ररूपो देहो नवशक्तिमयं श्रीचक्रम्'।

नवरत्नद्वीप— देह ही नवरत्नद्वीप है— 'देहो नवरत्नद्वीपः'।

कल्पतरु— शरीर की त्वचा आदि सात धातुओं से युक्त संकल्प ही कल्पतरु है।

उद्यान— तेजःकल्प ही उद्यान है— 'तेजःकल्पोद्यानम्'।

षड् ऋतुयें— जिह्वा द्वारा अनुभवगम्य मधुर-अम्ल-तिक्त-कषाय-लवण-कटु रस ही ६ ऋतुयें हैं।

पीठ— क्रियाशक्ति ही पीठ है— 'क्रियाशक्तिः पीठः'।

इच्छाशक्ति— इच्छाशक्ति महात्रिपुरसुन्दरी है— 'इच्छाशक्तिर्महात्रिपुरसुन्दरी'।

होता— ज्ञाता ही होता है— 'ज्ञाता होता'।

अर्घ्य— ज्ञान ही अर्घ्य है— 'ज्ञानमर्घ्यम्'।

हवि— ज्ञेय ही हवि है— 'ज्ञेयं हविः'।

श्रीचक्र का पूजन— ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय में अभेद की भावना ही श्रीचक्र का पूजन है।

कुण्डलिनी— ज्ञानशक्ति का गृह ही कुण्डलिनी है— 'कुण्डलिनी ज्ञानशक्तिर्गृहम्'।

पञ्चदशी मन्त्र के सकार से चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, राशि आदि उत्पन्न होते हैं। नित्या-षोडशिकार्णवतन्त्र में कहा भी गया है—

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीं राशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम्।।

'हं' बीज से आकाश की उत्पत्ति होती है— 'हकारादाकाशसम्भूतः'।

हकाराद्व्योमसम्भूतः ककारात्तु प्रभञ्जनः।
रेफादग्निः सकाराच्च जलतत्त्वस्य सम्भवः।
लकारात्पृथिवी जाता तस्मात्तन्मयी शिवा।।

भुवनेश्वरी बीज ईकार से १४ भुवनों की उत्पत्ति हुई है।

दशावतार विष्णुस्वरूप एकार वैष्णवी शक्तिरूप है।

'रं' बीजरूप रेफ परम ज्योतिर्मयी परा शक्ति है।

ककार सर्वकामप्रदायिनी कामदा शक्ति है।

अर्धचन्द्र विश्वयोनि का प्रतीक है।

बिन्दु महाकामेश्वरी का प्रतीक है।

बिन्दु ही सर्वानन्दमय चक्र है, जो कि ब्रह्म से अभिन्न है। इसी में महाकामेश्वर एवं महाकामेश्वरी का निवास है।

'तत्' पदवाच्य निर्गुण ब्रह्म महाकामेश्वर एवं 'त्वं' पदवाच्य संविद्रूप साक्षी महा-कामेश्वरी हैं और दोनों में अभेद एवं सामरस्य है। इस प्रकार ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान, अहन्ता एवं इदन्ता तथा प्रकाश एवं विमर्श में भी ऐक्य है।

भूमि बिन्दु चक्र एवं परापरातिरहस्ययोगिनी में भी वही ऐक्य है। वहीं तुरीयाम्बा का यजन है।

सर्वानन्दमय चक्र ही उड्डीयान पीठ है।

श्रीचक्र शक्तियों का आलय है। नित्याषोडशिकायें इसमें निवास करती हैं—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नित्याषोडशकं तव।
न कस्यचिन्मयाऽख्यातं सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।।

तत्रादौ प्रथमा नित्या महात्रिपुरसुन्दरी।
ततः कामेश्वरी नित्या नित्या च भगमालिनी।।

नित्या क्लिन्ना तथा चैव भेरुण्डा वह्निवासिनी।
महाविद्येश्वरी रौद्री त्वरिता कुलसुन्दरी।।

नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला।
ज्वालामालिनी चित्रूपा एता नित्यासु षोडश।।

प्रतिपत्प्रभृतौ देव्याः पौर्णमास्यन्तमर्चयेत्।
एकादिवृद्ध्या हान्या च दर्शान्तं देवि! विग्रहम्।।

षोडशनित्यायें श्रीचक्र की अंग हैं। १६ नित्यायें अष्टवर्गात्मक होने के कारण अष्टदल पद्म के अष्ट पत्रों में स्थित हैं। ये यथाक्रम अष्टकोण चक्र में प्रागादि कोण से आरम्भ करके एक-एक कोण में २-२ करके अन्तर्भूत हैं। इस प्रकार १६ नित्यायें अष्टकोणों में ८-८ के दो द्विकों के रूप में अन्तर्भूत हैं। ये नित्यायें १६ स्वरों के रूप में षोडशदल पद्म में स्थित हैं, किन्तु द्विदशारों में अन्तर्भूत हैं।

श्रीचक्र का निर्माण

सृष्टिक्रम	संहारक्रम
(बिन्दुचक्र से भूपुरपर्यन्त ९ चक्रों के निर्माण का क्रम)	(भूपुर से बिन्दुपर्यन्त। जीव की जाग्रतावस्था से लेकर मोक्ष तक दशाओं का दिग्दर्शक क्रम)

पञ्चविंश अध्याय

श्रीचक्र (श्रीयन्त्र) के नवयोन्यात्मक अवयव

१. महाबिन्दु— आकार (रक्तबिन्दु के भीतर गुप्त श्वेत बिन्दु), वर्ण (रंग), खण्ड (निर्गुण), चक्र (सृष्टि-स्थिति-संहार-समष्टि), वर्णाक्षर (क्ष' एवं 'म' की समष्टि), चक्रस्थ मूल शक्ति (परा शक्ति), चक्रेश्वरी (प्रकाश-विमर्शरूपिणी परा भट्टारिका), शरीर में अवस्थान (ब्रह्मरन्ध्र), शारीरचक्र (सहस्रदल कमल), अवस्था (तुरीयावस्था)।

२. बिन्दु (सर्वानन्दमय चक्र)— आकार (बिन्दु), वर्ण (बिन्दु), चक्र (सृष्टि-स्थिति-संहार) सृष्टिचक्र, अक्षर ('क्ष' वर्ण, मूल प्रकृति),चक्र की मूल शक्ति (ललिता), चक्रेश्वरी (श्री ललितामहाचक्रेश्वरी), योगिनी चक्र (परापर रहस्य योगिनी चक्र), मुद्रा (योनिमुद्रा), शरीरावयव (श्रद्धा), शरीरस्थान (भ्रूमध्य), शरीरचक्र (आज्ञाचक्र), अवस्था तुरीया (महाकारण)।

३. त्रिकोण (सर्वसिद्धिप्रदचक्र)— आकार (त्रिकोण), रंग (पीत), खण्ड (अग्निखण्ड), चक्र (सृष्टिचक्र), अक्षर ('म' वर्ण), चक्र की मूल शक्तियाँ (१. कामेश्वरी, २. वज्रेश्वरी, ३. भगमालिनी, मूल शक्ति के आयुध (बाण, धनुष, अंकुश), चक्रेश्वरी (त्रिपुराम्बा), योगिनीचक्र (अतिरहस्य योगिनी चक्र), मुद्रा (बीजमुद्रा), शरीरांग (अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार, ५ तन्मात्रायें), शरीरस्थान (लम्बिका), शरीरचक्र (इन्द्रयोनि = अष्टदल), अवस्था (सुषप्ति कारण)।

४. अष्टकोण (सर्वरोगहरचक्र)— आकार (अष्टकोण), रंग (हरा), खण्ड (अग्निखण्ड), चक्र (सृष्टिचक्र), अक्षर (य, र, ल, व, श, ष, स, ह), अग्निकला (१०), चक्र की मूल शक्तियाँ (८), चक्रेश्वरी (त्रिपुरा सिद्धा), योगिनीचक्र (रहस्ययोगिनी), मुद्रा (खेचरी), देहांग (शीत, उष्ण, सुख, दुःख, त्रिगुण) शरीरस्थान (कण्ठ), शरीरचक्र-विशुद्धचक्र (षोडशदल) १६ स्वर।

क. अग्निदलकला— १. धूमार्चिषी, २. ऊष्मा, ३. ज्वलिनी, ४. ज्वालिनी, ५. विस्फुलिङ्गिनी, ६. सुश्री, ७. सुरूपा, ८. कपिला, ९. हव्यवहा, १०. कव्यवहा।

ख. चक्रस्थ मूल शक्तियाँ— १. वशिनी, २. कामेश्वरी, ३. मोदिनी, ४. विमला, ५. अरुणा, ६. जयिनी, ७. सर्वेश्वरी, ८. कौलिनी।

५. अन्तर्दशार (सर्वरक्षाकरचक्र)— आकार (भीतर के दश कोण), रंग (काला), खण्ड (सूर्यखण्ड), चक्र (स्थितिचक्र), वर्ण (ट, ठ, ड, ढ़, ण, त, थ, द, ध, न), रुद्र की कला (१०), चक्र की मूल शक्तियाँ (१०), चक्रेश्वरी (त्रिपुरमालिनी), योगिनीचक्र (निगर्भ योगिनी चक्र), मुद्रा (महांकुश), देहस्थ अवयव (१०), शरीरचक्र (अनाहत) १२ दल।

क. देहस्थ अवयव— रेचक, पूरक, शोषक, दाहक, प्लावक, क्षारक, दारक, क्षोभक, मोहक, जृम्भक।

ख. शरीरचक्र (द्वादश दल)— क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ।

६. बहिर्दशार (सर्वार्थसाधक चक्र)— आकार (बाहर के दश कोण), रंग (लाल), खण्ड (सूर्यखण्ड), चक्र (स्थितिचक्र), अक्षर (१४), विष्णु की कलायें (१०), सूर्य की कलायें (१२), चक्र में स्थित मूल शक्तियाँ (१०), चक्रेश्वरी (त्रिपुराश्री), योगिनीचक्र (कुलोत्तीर्ण योगिनीचक्र), मुद्रा (उन्मादिनी मुद्रा), देहस्थ अवयव (१० प्राण), शरीरस्थ चक्र एवं शरीरस्थान।

क. वर्णाक्षर— प, फ, ब, भ, म, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ।

ख. विष्णु की कलायें— १. जरा, २. पालिनी, ३. शान्ति, ४. ईश्वरी, ५. रति, ६. कामिका, ७. वरदा, ८. ह्लादिनी, ९. प्रीता, १०. दीर्घा।

ग. सूर्य की कलायें— १. तपिनी, २. तापिनी, ३. धूम्रा, ४. मरीची, ५. ज्वालिनी, ६. रुचि, ७. सुषुम्ना, ८. भोगदा, ९. विश्वा, १०. बोधिनी, ११. धारिणी, १२. क्षमा।

घ. चक्र की मूल शक्तियाँ— १. सर्वसिद्धिप्रदा, २. सर्वसम्पत्प्रदा, ३. सर्वप्रियंकरी, ४. सर्वमंगलकारिणी, ५. सर्वकामप्रदा, ६. सर्वदुःखविमोचिनी, ७. सर्वमृत्युप्रशमनी, ८. सर्वविघ्ननिवारिणी, ९. सर्वाङ्गसुन्दरी, १०. सर्वसौभाग्यदायिनी।

ङ. देहस्थ अवयव— प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय।

च. शरीरस्थान एवं चक्र— नाभि, मणिपूर चक्र, १० दल : ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ— व्यञ्जन।

७. चतुर्दशार (सर्वसौभाग्यदायक चक्र)— आकार (१४ कोण), रंग (नीला), खण्ड (चन्द्र), चक्र (स्थितिचक्र), अक्षर (स्वर), ब्रह्मा की कलायें (१०), चक्र की मूल शक्तियाँ (१०), चक्रेश्वरी (त्रिपुरवासिनी), योगिनीचक्र (सम्प्रदाययोगिनी चक्र), मुद्रा (सर्ववशङ्करी मुद्रा), शरीरांग (१४ नाड़ियाँ), शरीरस्थान एवं चक्र (बस्ति-स्वाधिष्ठान)।

क. ब्रह्मा की कलायें— १. सृष्टि, २. ऋद्धि, ३. स्मृति, ४.मेधा, ५. कान्ति, ६. लक्ष्मी, ७. द्युति, ८. स्थिरा, ९. स्थिति, १०. सिद्धि।

ख. चक्र की मूल शक्तियाँ— १. सर्वसंक्षोभिणी, २. सर्वविद्राविणी, ३. सर्वाकर्षिणी, ४.सर्वाह्लादिनी, ५.सर्वसम्मोहिनी, ६. सर्वस्तम्भिनी, ७. सर्वजृम्भिणी, ८. सर्ववशंकरी, ९. सर्वरञ्जिनी, १०. सर्वोन्मादिनी, ११. सर्वार्थसाधिनी, १२. सर्वसम्पत्तिपूरिणी, १३. सर्वमन्त्रमयी, १४. सर्वद्वन्द्वकरी।

ग. देहस्थ अवयव— अलम्बुषा, कुहू, विश्वोदरी, वरुणा, हस्तिजिह्वा, यशस्वती,

अश्विनी, गान्धारी, पूषा, शंखिनी, सरस्वती, इडा, पिंगला, सुषुम्ना।

घ. शरीरस्थान एवं चक्र— स्वाधिष्ठान : षड् दल : ब, भ, म, य, र, ल, (६ व्यञ्जन)।

८. अष्टदल (सर्वसंक्षोभण चक्र)— आकार, रंग, खण्ड, चक्र, अक्षर, चक्र की मूल शक्तियाँ (८), चक्रेश्वरी (त्रिपुरसुन्दरी), योगिनीचक्र (गुप्ततर योगिनी चक्र), मुद्रा (सर्वाकर्षिणी), देहस्थ अवयव (८), शरीरस्थान : चक्र (गुदा : मूलाधार)।

क. चक्रस्थ मूल शक्तियाँ— १. अनंगकुसुमा, २. अनंगमेखला, ३. अनंगमदना, ४. अनंगमदनातुरा, ५. अनंगरेखा, ६. अनंगवेगिनी, ७. अनंगांकुशा, ८. अनंगमालिनी।

ख. देहस्थ अवयव— वचन, आदान, गमन, विसर्ग, आनन्द, हानि, उपेक्षा, बुद्धि।

ग. शरीरस्थान एवं चक्र— गुदा एवं मूलाधार। ४ दल। व, श, ष, स—४ व्यञ्जन।

९. षोडश दल (सर्वाशापरिपूरक चक्र)— आकार (१६ दल), रंग (पीत), खण्ड (चक्र), चक्र (संहार), वर्ण (स्वर), सदाशिव की कलायें (१६), चन्द्रमा की कलायें (१६), नित्यायें (१६), चक्रेश्वरी (त्रिपुरेशी), योगिनीचक्र (गुप्तयोगिनीचक्र), मुद्रा, देहस्थ अवयव (पञ्च तत्त्व, १० इन्द्रियाँ, मन), शरीरस्थान (गुदा से नीचे का देश), शरीरस्थ चक्र (कुल : षड् दल : नादसमन्वित)।

क. सदाशिव की १६ कलायें— १. निवृत्ति, २. प्रतिष्ठा, ३. विद्या, ४. शान्ति, ५. इन्धिका, ६. दीपिका, ७. रेचिका, ८. मोचिका, ९. परा, १०. सूक्ष्मा, ११. सूक्ष्मामृता, १२. ज्ञाना, १३. ज्ञानामृता, १४. आप्यायिनी, १५. व्यापिनी, १६. व्योमरूपा।

ख. चन्द्रमा की १६ कलायें— १. अमृता, २. मानदा, ३. पूषा, ४. तुष्टि, ५. पुष्टि, ६. रति, ७. धृति, ८. शशिनी, ९. चन्द्रिका, १०. कान्ति, ११. ज्योत्स्ना, १२. श्री, १३. प्रीति, १४. अंगदा, १५. पूर्णा, १६. पूर्णामृता।

ग. षोडश नित्यायें— १. कामेश्वरी, २. भगमालिनी, ३. नित्यक्लिन्ना, ४. भेरुण्डा, ५. वह्निवासिनी, ६. महावज्रेश्वरी, ७. शिवदूती, ८. त्वरिता, ९. कुलसुन्दरी, १०. नित्या, ११. नीलपताका, १२. विजया, १३. सर्वमंगला, १४. ज्वालामालिनी, १५. चित्रा, १६. ललिता महानित्या।

घ. चक्र में स्थित मूल शक्तियाँ— १. कामाकर्षिणी, २. बुद्ध्याकर्षिणी, ३. अहंकाराकर्षिणी, ४. शब्दाकर्षिणी, ५. स्पर्शाकर्षिणी, ६. रूपाकर्षिणी, ७. रसाकर्षिणी, ८. गन्धाकर्षिणी, ९. चित्ताकर्षिणी, १०. धैर्याकर्षिणी, ११. स्मृत्याकर्षिणी, १२. नामाकर्षिणी, १३. बीजाकर्षिणी, १४. आत्माकर्षिणी, १५. आत्माकर्षिणी, १६.शरीराकर्षिणी।

ङ. मुद्रा— सर्वविद्राविणी।

१०. भूपुर— आकार (भूपुर, चतुर्द्वार), रंग (हरा), चक्र (संहारचक्र), ईश्वर की कलायें (४), दिक्पाल (१०), सिद्धियाँ (१०), शक्तियाँ (८), चक्रस्थ

मूल शक्तियाँ (१०), चक्रेश्वरी (त्रिपुरा), योगिनीचक्र (प्रकटयोगिनी), सर्वसंक्षोभिणी, देहस्थ अंग (१८), शरीरस्थान : चक्र।

क. ईश्वर की चार कलायें— १. पीता, २. श्वेता, ३. अरुणा, ४. असिता।

ख. दश दिक्पाल— १. इन्द्र, २. अग्नि, ३. यम, ४. निर्ऋत्, ५. वरुण, ६. वायु, ७. कुबेर, ८. ईशान, ९. ब्रह्मा, १०. अनन्त।

ग. सिद्धियाँ— १. अणिमा, २. लघिमा, ३. महिमा, ४. ईशत्व, ५. वशित्व, ६. प्राप्ति, ७. मुक्ति, ८. इच्छा, ९. प्राकाम्य, १०. सर्वकामसिद्धि।

घ. अष्ट शक्तियाँ— १. ब्राह्मी, २. माहेश्वरी, ३. कौमारी, ४. वैष्णवी, ५. वाराही, ६. माहेन्द्री, ७. चामुण्डा, ८. महालक्ष्मी।

ङ. चक्रस्थ मूल शक्तियाँ— १. सर्वसंक्षोभिणी, २. सर्वविद्राविणी, ३. सर्वाकर्षिणी, ४. सर्ववशंकरी, ५. सर्वोन्मादिनी, ६. सर्वमहांकुशा, ७. सर्वखेचरी, ८. सर्वबीज, ९. सर्वयोनि, १०. सर्वत्रिखण्ड।

च. देहस्थ अवयव— नवरन्ध्रमय देह, त्वगादि सप्त धातु, षड् रस, इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शक्ति, अयमात्मा ब्रह्म।

छ. शरीरस्थान एवं चक्र— गुदा से अधःप्रदेश। अकुल (सहस्रदल कमल)।

इन समस्त चक्रों का श्रीचक्र के चक्रों के साथ तादात्म्य है। योगी अमृतानन्द योगिनीहृदयदीपिका में कहते हैं—

'आद्यं सहस्रारं विषुनामकं मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतं विशुद्धिलम्बिकाग्रं भ्रूमध्यञ्चेति नवसु स्थानेषु त्रैलोक्यमोहनादिसर्वानन्दमयान्तानि नवचक्राणि क्रमेण वर्तन्त इति ।'

श्रीयन्त्र का आविर्भाव— श्रीयन्त्र तो अनादिकालीन है; क्योंकि यह श्रीविद्या का यन्त्र है और श्रीविद्या वेदकाल या उससे पूर्व से चली आ रही है। त्रिपुरोपनिषद, त्रिपुर-तापनीयोपनिषद, भावनोपनिषद आदि ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं। परवर्ती काल में शंकराचार्य के परमगुरु आचार्य गौड़पाद, स्वयं आचार्य शंकर, उनके शिष्य सुरेश्वर, पद्मपाद, विद्यारण्य आदि वेदान्ती आचार्य भी श्रीविद्या के उपासक हुये। मीमांसकों में आचार्य खण्डदेव के शिष्य शम्भुभट्ट, भास्कर राय आदि आचार्य भी श्रीविद्या के उपासक हुये। महाप्रभु चैतन्यदेव द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय के सिद्धान्त के मूल में भी इसी साधना का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। किसी-किसी स्थल में इनका अर्द्धप्रच्छन्नभाव भी इसी उपर्युक्त देवी-पूजा की ओर स्पष्ट होता है। महाप्रभु श्री चैतन्य के नित्य संगी नित्यानन्द महाप्रभु भी श्रीविद्या के उपासक थे। शैवाचार्य अभिनवगुप्त आदि भी श्रीविद्या के उपासक थे। दश महाविद्या में षोडशी नाम की तृतीया महाविद्या श्रीविद्या ही है—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च सुन्दरी बगलामुखी।
धूमावती च मातङ्गी नामान्यन्यानि वै शिव !।।

देवी की उपासना समझने हेतु देवी के स्वरूपभूत श्रीचक्र या श्रीयन्त्र का सम्यक् रूप से समझना आवश्यक है। संक्षेप में कहा जाय तो पाँच शक्तिचक्ररूप अधोमुख त्रिकोण एवं चार शिवचक्ररूप ऊर्ध्वमुख त्रिकोण के संयोग से (सम्मिलित होने से) श्रीचक्र का निर्माण होता है।

श्रीयन्त्र के प्रादुर्भाव की दार्शनिक दृष्टि— योगिनीहृदय के चक्रसङ्केत में कहा गया है कि 'यदा विश्वरूपिणी सा परमा शक्तिः स्वेच्छया आत्मनः स्फुरत्तां पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः'—

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः।। (१.९)

योगिवर्य अमृतानन्द ने दीपिका में इसकी व्याख्या करते हुए कहा है 'यदा यस्मिन् काले प्राणिनामदृष्टवशात्स्वान्तःसंहृतविश्वसिसृक्षया सैव सा शक्तिर्विमर्शरूपिणी स्वेच्छया विश्वरूपिणी विश्वं सृजति, शिवस्तटस्थ उदासीनः। अत्र श्रुतिः—

न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।।

विश्वसर्जनमेव परा शक्तेः स्फुरत्ता, तस्याः सृष्टिरूपत्वात्। तदा षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मकविश्व-सृष्टिकाले चक्रस्य विश्वमयस्य परदेवताचक्रस्य सम्भवः।'

सारांश यह कि प्राणियों के अदृष्ट के कारण विमर्श शक्ति स्वान्तःसंहृत् विश्व की सृष्टि करने हेतु जैसे ही अपनी आत्मनिष्ठ स्फुरत्ता को देखती है, वैसे ही चक्र का आविर्भाव हो जाता है। इस सृष्टि-व्यापार में शिव सक्रिय नहीं होता; क्योंकि वह तो उदासीन एवं तटस्थ है। सृष्टि स्वयं शक्ति का रूपान्तर है और शक्ति सृष्टिरूपा है।

जिस प्रकार जगत् ३६ तत्त्वों से निर्मित है, उसी प्रकार श्रीचक्र भी ३६ तत्त्वों को अन्तर्गर्भित करके स्थित है। श्रीयन्त्र विश्व का संक्षिप्त संस्करण है। विश्व श्रीयन्त्र का बीजात्मक सूक्ष्म रूप है।

शान्ता और श्रीचक्र का आविर्भाव— भास्कर राय सेतुबन्ध में कहते हैं कि पूर्ववर्तिनी सृष्टि में जो प्राणी ज्ञानोदय न होने के कारण मुक्त नहीं हो पाते, वे प्राणी अदृष्ट तथा स्थूल-सूक्ष्म महाभूत (कार्पासबीज में पट की भाँति) प्रलयकाल में सूक्ष्म रूप से ब्रह्म में स्थित रहते हैं और समय आने पर वे सुप्तोत्थित प्राणी की भाँति अपने अदृष्टजन्य कर्म से अगली सृष्टि में कर्मभोग के लिये जन्म लेते हैं। इसी अदृष्ट या कर्मपरिपाक के समय भगवती में इच्छाज्ञानोभया स्वनिष्ठस्फुरत्ता की दिदृक्षा होती है। इसी की अभिव्यक्ति श्रुति में इस प्रकार की गई है—

१. तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय।
२. सोऽकामयत बहु स्याम।
३. तत्तपोऽकुरुत।

वह सत्ता स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया द्वारा (अपनी स्वाभाविक आत्मनिष्ठ, आत्मस्वरूपज्ञान, बल एवं क्रिया द्वारा) इच्छाभिन्न ईक्षण करती है। उसकी स्फुरत्ता ही क्रिया है— 'सेयं स्फुरत्तारूपा सृष्टिरेव क्रिया कृतिः' (सेतुबन्ध)। प्राथमिकी सिसृक्षारूपा वृत्ति (इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मिका प्राथमिकी वृत्ति) शान्ता उत्पन्न होती है। जब शान्ता का आविर्भाव होता है, तभी श्रीचक्र का भी आविर्भाव हो जाता है— 'प्राथमिकी वृत्तिरिच्छाज्ञान-क्रियात्मिका शान्तानाम्नो यदा जाता तदा तत्काल एव चक्रस्य सम्भवः 'इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिः' इति वचनेन विलम्बाभावात्।'

दीपिकाकार अमृतानन्द योगी पूछते हैं कि अक्रिय परमशिवतत्त्व से चक्र की उत्पत्ति सम्भव ही नहीं है, फिर चक्रोत्पत्ति हुई कैसे— 'ननु कथमक्रियातः परमशिवतत्त्वमयं चक्रं सम्भवति?' इसी का उत्तर देते हुए वे कहते हैं कि 'स्वान्तःसंहृतविश्वसिसृक्षया सैव परा शक्तिर्विमर्शरूपिणी स्वेच्छया विश्वरूपिणी विश्वं सृजति।'

सृष्टि-विधात्री यह कौन शक्ति है? यही शक्ति त्रिपुरा है— 'त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या ज्ञानादितः प्रिये।' भास्कर राय सेतुबन्ध में कहते हैं कि ज्ञान-इच्छा एवं क्रिया के पूर्व सृष्टिप्रागभाव की विनश्यदवस्थारूपा दशा त्रिपुरा शक्ति है। उसे ही स्मरण दिलाते हुये योगिनीहृदय में 'यदा सा परमा शक्तिः' वाक्य में 'सा' (वह शक्ति) संकेतित की गई है।

प्रलय काल में समस्त जीव इसी शक्ति में सोते रहते हैं—

सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति।
पुनश्च जन्मान्तरकर्मयोगात्स एव जीवः स्वपिति प्रबुद्धः।।

श्रीचक्र का शिव-शक्तिचक्रात्मक आविर्भाव— जिस श्रीचक्र का रेखात्मक या रेखाचित्ररूप में आविर्भाव होता है, उसके विषय में योगिनीहृदय (चक्रसंकेत) में कहा गया है—

तच्छक्तिपञ्चकं सृष्ट्या लयेनाग्निचतुष्टयम्।
पञ्चशक्ति-चतुर्वह्नि-संयोगाच्चक्रसम्भवः ।। (१.८)

क. शक्तिपञ्चक = स्वाभिमुखाग्रत्रिकोणशक्तिरुच्यते। (सेतुबन्ध)
ख. अग्निचतुष्टय = पराङ्मुखाग्रत्रिकोणमग्निरुच्यते। (सेतुबन्ध)
ग. संयोग : ५ शक्ति + ४ वह्नि का योग। (सेतुबन्ध)

= ५ शक्तिचक्र +४ शिवचक्र— 'श्रीचक्र'।

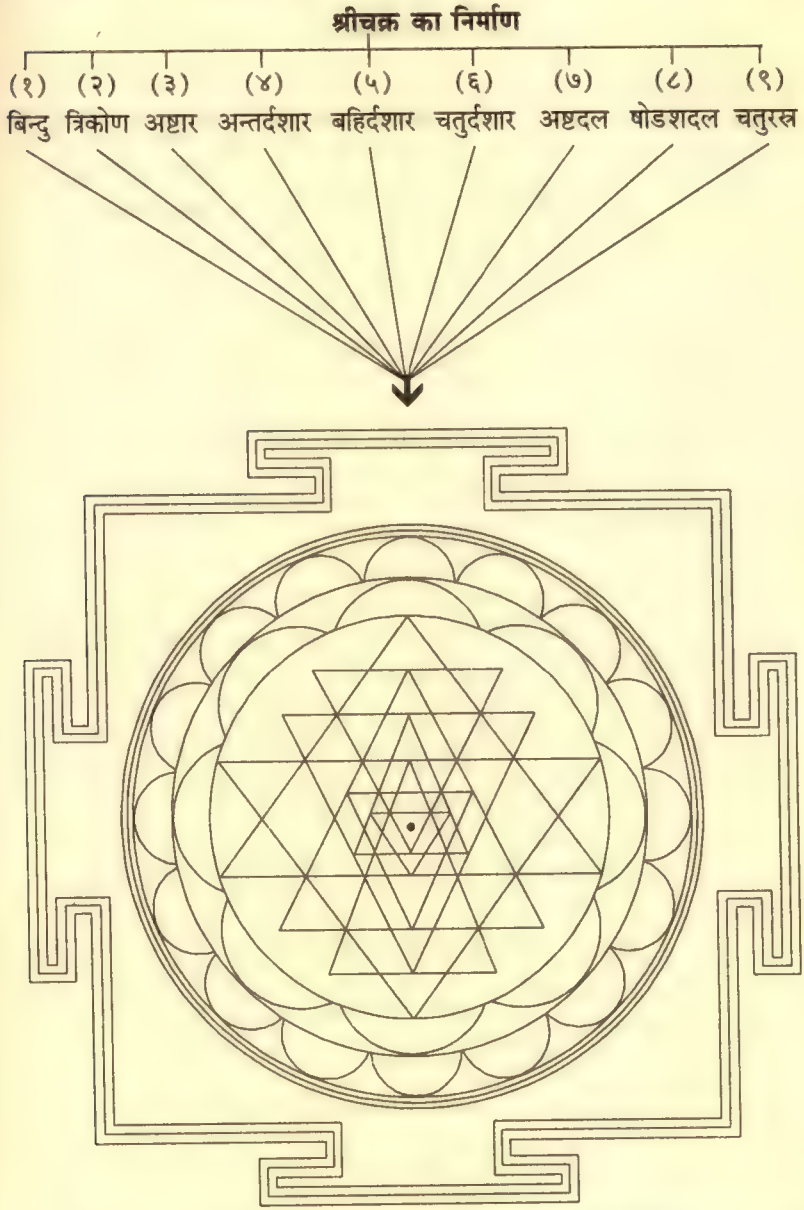

'सृष्टिक्रम' समयाचार मतानुयायियों द्वारा पूजित— ५ शक्तित्रिकोण ऊर्ध्वमुखी ४. शिव-त्रिकोण अधोमुखी।

श्रीचक्र के मुख्य ९ भाग हैं, जिन्हें ९ चक्र कहते हैं। श्रीचक्र के ४३ त्रिकोण हैं।

श्रीचक्र

१.चक्रं त्रिपुरसुन्दर्या ब्रह्माण्डाकारमीश्वरि = श्रीचक्र ब्रह्माण्डाकार है।
२.नवचक्रमयो देहः– (देह नव चक्रों से युक्त श्रीयन्त्र है।)
३.श्रीचक्र विश्वमय है।
४.श्रीचक्र मातृकामय है।
५.श्रीचक्र श्रीविद्यामय है।
६.श्रीचक्र त्रिपुरामय है।
७.श्रीचक्र तेजस्त्रयात्मक है।
८.श्रीचक्र सृष्टि-स्थिति-संहारात्मक है।
९.श्रीचक्र चान्द्र, सौर, आग्नेय है।
१०.श्रीचक्र पुरत्रयात्मक है।
११.श्रीचक्र इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक है।
१२.श्रीचक्र वामा-ज्येष्ठा-रौद्रीयुक्त है।
१३.श्रीचक्र नाद-बिन्दु-कलायुक्त है।

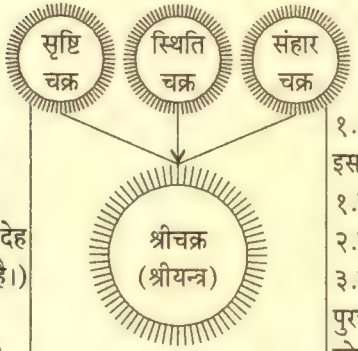

संहारक्रम के श्रीयन्त्र का स्वरूप

१.कौलाचारमतानुयायियों द्वारा पूजित
२.५ शक्तित्रिकोण अधोमुखी
३.४ शिवत्रिकोण ऊर्ध्वमुखी

सृष्टिक्रम के श्रीयन्त्र का स्वरूप

१.समयाचारमतानुयायियों द्वारा पूजित
२.५ शक्तित्रिकोण ऊर्ध्वमुखी
३.४ शिवत्रिकोण अधोमुखी।

श्रीचक्र

१.श्रीचक्र पुरत्रय से युक्त है। इसके पुरत्रय निम्नाङ्कित हैं—
१.प्रमातृपुर
२.प्रमाणपुर
३.प्रमेयपुर
पुरत्रयञ्च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम्।
२.श्रीचक्र शिवशक्त्यात्मक है। इसमें शिवचक्र एवं शक्तिचक्र स्थित है।
३.श्रीचक्र पिण्ड-ब्रह्माण्डमय एक साथ है।
४.श्रीचक्र शरीरचक्र एवं मातृकाचक्रमय भी है।
५.श्रीचक्र ३६ तत्त्वों से युक्त है।
६.श्रीचक्र आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व एवं शिवतत्त्व से युक्त है।

चक्रों के नाम	अधिष्ठात्री देवी
१. सर्वानन्दमय चक्र	महात्रिपुरसुन्दरी
२. सर्वसिद्धिप्रद चक्र	त्रिपुराम्बा
३. सर्वरोगहर चक्र	त्रिपुरसिद्धा
४. सर्वरक्षाकर चक्र	त्रिपुरमालिनी
५. सर्वार्थसाधक चक्र	त्रिपुराश्री
६. सर्वसौभाग्यदायक चक्र	त्रिपुरवासिनी
७. सर्वसंक्षोभणकारक चक्र	त्रिपुरसुन्दरी
८. सर्वाशापरिपूरक चक्र	त्रिपुरेशी
९. त्रैलोक्यमन चक्र	त्रिपुरा

श्रीचक्र

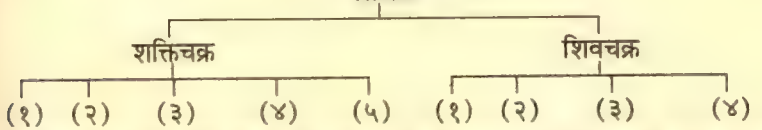

त्रिकोण अष्टार अन्तर्दशार बहिर्दशार चतुर्दशार बिन्दु अष्टदल षोडशदल भूपुर चतुरस्र

मातृका एवं तत्त्वों का सम्बन्ध				
क	ख	ग	घ	ङ
पृथ्वी	जल	तेज	वायु	आकाश
च	छ	ज	झ	ञ
गन्ध	रस	रूप	स्पर्श	शब्द
ट	ठ	ड	ढ	ण
पायु	उपस्थ	हाथ	पैर	वाक्
त	थ	द	ध	न
नाक	जिह्वा	आँख	त्वक्	कान
प	फ	ब	भ	म
प्रकृति	अहंकार	बुद्धि	मन	पुरुष

वाग्देवता

१. वशिनी
२. कामेश्वरी
३. मोदिनी
४. विमला
५. अरुणा
६. जयिनी
७. सर्वेश्वरी
८. कौलिनी

सर्वज्ञादि १० देवता

१. सर्वज्ञा
२. सर्वशक्ति
३. सर्वैश्वर्यप्रदा
४. सर्वज्ञानमयी
५. सर्वव्याधि विनाशिनी
६. सर्वाधारस्वरूपा
७. सर्वपापहरा
८. सर्वानन्दमयी
९. सर्वरक्षास्वरूपिणी
१०. सर्वेप्सित फलप्रदा

महाबिन्दु में सबका अन्तर्भाव

१. एक ही बिन्दु में श्रीचक्र के नवों चक्रों का अन्तर्भाव है।

२. एक ही सहस्रात्मक बिन्दु में शरीरस्थ षट् चक्रों का भी अन्तर्भाव है।

३. बिन्दु = मूलाधारादि चक्रों की समष्टि, जगत् की सृष्टि-स्थिति-संहार का कारण, शिव की शक्तिविशेष है।

४. वह एक होता हुआ भी सहस्रदल कमल के मध्य ४ द्वारों से निर्मित कर्णिका के मध्य चतुष्कोणात्मक शक्तितत्त्व के रूप में स्थित है।

५. उसके मध्य में नादरूप शिवतत्त्व है। वह भी ४ प्रकार का है।

६. यह बिन्दु दशधा विभक्त है—

दशधा भिद्यते बिन्दुरेक एव परात्मकः।
चतुर्धाधारकमले षोढाधिष्ठानपङ्कजे।
उभयाकाररूपत्वादितरेषां तदात्मना।।

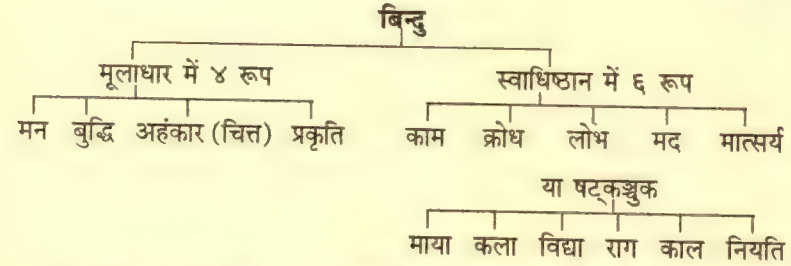

७. यही एक ही बिन्दु ४, ६ बनकर सभी चक्रों (मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि आज्ञा आदि) में व्याप्त हो जाता है।

१. सर्वसिद्धिप्रदा २. सर्वसम्पत्प्रदा ३. सर्वप्रियंकरी ४. सर्वमंगलकारिणी ५. सर्वकाम-प्रदा ६. सर्वसौभाग्यदायिनी ७. सर्वमृत्युप्रशमिनी ८. सर्वविघ्ननिवारिणी ९. सर्वांगसुन्दरी १०. सर्वदुःखविमोचिनी

चक्र

त्रिकोणमष्टकोणञ्च दशकोणद्वयं तथा।
चतुर्दशारञ्चैतानि शक्तिचक्राणि पञ्च च।।

* * * * *

बिन्दुश्चाष्टदलं पद्मं पद्मं षोडशपत्रकम्।
चतुरस्रञ्च चत्वारि शिवचक्राण्यनुक्रमात्।।

योगिनीहृदय इस बैन्दव चक्र एवं नवयोन्यात्मक श्रीचक्र को इस प्रकार प्रस्तुत करता है—

शून्याकाराद्विसर्गान्ताद्बिन्दोः प्रस्पन्दसंविदः।।१०।।

प्रकाशपरमार्थत्वात् स्फुरता लहरीयुताम्।
प्रसृतं विश्वलहरीस्थानं मातृत्रयात्मकम्।।११।।

बैन्दवं चक्रमेतस्य त्रिरूपत्वं पुनर्भवेत्।
धर्माधर्मौ तथात्मानौ मातृमेयौ तथा प्रमा।।१२।।

नवयोन्यात्मकं चक्रं चिदानन्दघनं महत्।
चक्रं नवात्मकमिदं नवधा भिन्नमन्त्रकम्।।१३।।

श्रीयन्त्र त्रितयात्मक है। यह त्रिपुरसुन्दरी का गृह है। इसके अनेक रूप हैं?

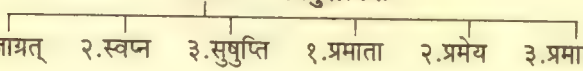

श्रीयन्त्र = त्रिखण्डात्मक

सूर्य चन्द्र अग्नि

श्रीयन्त्र शरीरयन्त्र के समतुल्य

१. पुरत्रयञ्च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम्।
२. त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम्।

श्रीचक्र = विश्वमय + मातृकामय। (ब्रह्माण्ड + पिण्ड दोनों है।)

सृष्टि— १. अर्थसृष्टि = तत्त्वात्मिका २. शब्दसृष्टि = मातृकात्मिका।

मातृका— १.चान्द्रखण्ड २. सौरखण्ड ३. आग्नेय खण्ड।

पिण्डाण्ड में शिर, हृदय एवं मूलाधारान्त भागत्रय = तेजस्त्रयात्मक। श्रीचक्र ५ शक्तिचक्र + ४ शिवचक्र से निर्मित होने से तेजस्त्रयात्मक है।

श्रीचक्र = (त्रितयात्मक रूपों में)

१.प्रमातृपुर (आग्नेय खण्ड) (बिन्दु, त्रिकोण, अष्टार, अष्टदल)
२.प्रमाणपुर (सौर खण्ड) (दशारद्वय, चतुरस्र)
३.प्रमेयपुर = (चान्द्रखण्ड) (चतुर्दशार : षोडशदल)

१.वामा २.ज्येष्ठा ३.रौद्री
१.नाद २.बिन्दु ३.कला
(इच्छा-ज्ञान-क्रियारूप में भी त्रितयात्मक)

सारांश—

श्रीचक्र

आग्नेयखण्ड (प्रमातृपुर) सौरखण्ड (प्रमाणपुर) चान्द्रखण्ड (प्रमेयपुर)

श्रीचक्र

सृष्टियुक्त = (बिन्दु, त्रिकोण, अष्टार) = सृष्टिचक्र (बिन्द्वादि भूपुरान्त चक्र = सृष्टिक्रम)

स्थितियुक्त = दशार-द्वय तथा चतुर्दशार = (स्थितिचक्र)

लययुक्त = अष्टदल, षोडशदल, भूपुर = संहारचक्र (भूपुरादि बिन्द्वन्तचक्र = संहारक्रम)

पिण्ड में सहस्रार

ऊर्ध्व सहस्रार (सुषुम्णा के दोनों भागों में स्थित। मध्य में ९ चक्र)
अधः सहस्रार
} ब्रह्मरन्ध्र में महाबिन्दु ही सहस्रार है।

श्रीचक्र + शरीरचक्र में पुष्कल साम्य है।

सहस्रार → नवचक्र → सहस्रार।

मन्त्र और चक्र में तादात्म्य

आधारादि षट्चक्रों की त्रिकोणादि षट्चक्रों के साथ एकता	बिन्दुस्थान का चतुरस्र सहस्रदल कमल के साथ तादात्म्य	बिन्दु एवं शिव में तादात्म्य	देवी एवं शिव में तादात्म्य	(लक्ष्मीधरा)

परमशिव

काश्मीरीय त्रिकदर्शन की अपनी दृष्टि इस प्रकार है— एक ही तत्त्वातीत परमशिव अन्तर्बाह्य सर्वत्र व्याप्त है। वह चिद्रूप होने के कारण 'चिति' भी कहा गया है। चिति ही परासंवित् है— 'चितिस्तुर्यातीतपदात्मिका परासंवित्' (तन्त्रालोक)। शिवसूत्र में कहा गया है— 'चैतन्यमात्मा'। यह चैतन्य परमार्थतः शिव ही है और विश्व की आत्मा है। आचार्य क्षेमराज ने शिवसूत्रविमर्शिनी में इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हुये कहा है— 'चैतन्यपरमार्थतः शिव एव विश्वस्य आत्मा। चैतन्यमुक्तं स एव आत्मा स्वभावः भावभावरूपस्य विश्वस्य जगतः। चैतन्यं विश्वस्य स्वभावः'। यह कहकर आचार्य क्षेमराज ने चैतन्य को आत्मा, परमशिव, जीव एवं जगत् सभी का स्वभाव घोषित किया है। चेतन एवं अचेतन, जड़ एवं अजड़ सभी को परमशिवरूप, चैतन्य एवं चैतन्यस्वभाव कहा है— 'जीवजडात्मनो विश्वस्य परमशिवरूपं चैतन्यमेव स्वभावः'। इस प्रकार शिवसूत्रों में चिति एवं परमशिव का नाम बताया गया है— आत्मा। सृष्टि के आदि में यही आत्मा विद्यमान थी।

शिव से लेकर पृथ्वीपर्यन्त सभी तत्त्वों का अवस्थान इसी चिति तत्त्व में है। यही परतत्त्व है। इसी परतत्त्व में षट्त्रिंशदात्मक जगत् विभासित है[१]— 'यत् परतत्त्वं तस्मिन् विभाति षट्त्रिंशदात्मजगत्' (परमार्थसारकारिका)। इसी कारण इसे परासंवित्, परमशिव एवं अनुत्तर आदि नामों से पुकारा गया है— 'अनुत्तरं न विद्यते प्रकृष्टमुत्तरं यतस्तदनुत्तरं चिद्धनम्' (परात्रिंशिकाविवृत्ति)। तथापि आत्मा के पूर्ण रूप को परिभाषाबद्ध करना सम्भव नहीं है— 'न विद्यते उत्तरं प्रश्नप्रतिवचोरूपं यत्र' (पत्रात्रिंशिकाविवृत्ति)। शैव दर्शन के अनुसार ये ही प्रकाश एवं विमर्श हैं। प्रकाश एवं विमर्श में अविनाभाव सम्बन्ध है— परस्पर अभिन्न है। ये एक-दूसरे से पृथक् नहीं हो सकते—

प्रकाशमानं न पृथक्प्रकाशात्स च प्रकाशो न पृथग्विमर्शात्। 'विज्ञानभैरवविवृत्ति'

प्रकाश आत्मा का स्वरूप है और विमर्श परमात्मा के स्वस्वरूप की संवेदना या प्रतीति है। विमर्श ही महेश्वरता की पूर्ण प्रतीति है— 'स एव विमर्शतत्त्वेन नियतेन महेश्वरः'।

अहम्— विमर्श तत्त्व परमशिव का पूर्ण 'अहं' कहा जाता है। प्रकाश शिवरूप है और विमर्श शक्तिरूप है। शिव एवं शक्ति का नित्य सामरस्य ही तो परमशिव है।

१. परमार्थ-सार कारिका (११)

जिस प्रकार स्फटिक एवं मणि प्रकाशस्वरूप तो हैं, किन्तु उन्हें अपनी सत्ता की प्रतीति (विमर्श) नहीं है; अत: वे जड़ हैं। इसी प्रकार विमर्श के विना प्रकाश भी जड़ हो जायगा। इसीलिये कहा गया है कि 'प्रकाशमानं न पृथक्प्रकाशात्स च प्रकाशो न पृथग्विमर्शात्'।

यह स्व (स्वकीय सत्ता, प्रत्यभिज्ञा, आत्मप्रतीति, अहं) की प्रतीति कराने वाला तत्त्व विमर्श, परमशिव का पूर्ण अहं है। विमर्श (शक्ति) शक्तिमान (शिव) से पृथक् नहीं है—

न शिव: शक्तिरहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी।
शिवशक्तस्तथा भावानिच्छया कर्तुमीहते।
शक्तिशक्तिमतोर्भेद: शैवे जातु न वर्ण्यते।।
(सोमानन्द : शिवदृष्टि)

शक्ति के द्वारा ही शिव शक्त (शक्तिमान) होते हैं और तभी वे कर्त्ता बन पाते हैं; शक्ति के विना नहीं।

शक्ति क्या है? आत्मारूपी शिव का विमर्श ही शक्ति है। शिव की स्वतन्त्र इच्छा ही स्वातन्त्र्य कहलाती है। यह इच्छा परोन्मुखी इच्छा नहीं है; क्योंकि शिव में परापेक्षा है ही नहीं और न तो अपने से अतिरिक्त कोई सत्ता ही है। शिव की इच्छा परोन्मुख न होकर आत्मस्वरूप में ही विश्रान्त रहती है।

स्वात्मविश्रान्ति— चूँकि आत्मा से अतिरिक्त कोई भी जड़-चेतन पदार्थ तो है ही नहीं; अत: परापेक्षा शून्य परमशिव स्वात्मविश्रान्त रहते हैं। उनकी यह स्वात्मविश्रान्ति ही उनका पूर्णानन्द है—

स्वात्मविश्रान्तिरेवैषा देवस्यानन्द उच्यते।
(मालिनीविजयवार्त्तिक)

शक्ति (विमर्श, स्वातन्त्र्य शक्ति) आत्मारूपी परमशिव का विमर्श है और इसी विमर्श से वह कर्तुं, अकर्तुं एवं अन्यथाकर्तुं व्यापारों में सक्षम है। विमर्श का यही स्वभाव है। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (भाग-२) में विमर्श की इसी अचिन्त्यशक्तिसम्पन्नता का वर्णन इस प्रकार किया गया है— 'विमर्शो हि सर्वंसह: परमपि आत्मीकरोति, आत्मानं च परीकरोति, उभयमेकीकरोति, एकीकृतं द्वयमपि न्यग्भावयति इत्येवं स्वभाव:'।

विश्वातीत एवं तत्त्वातीत अवस्था— सभी पदार्थ शक्ति-स्फार हैं और शक्ति परमशिव का हृदय है; अत: सभी पदार्थ प्रकाशस्वरूप एवं शिवस्वरूप है— 'प्रकाशो नाम यश्चायं सर्वत्रैव प्रकाशते'। परमशिव ही विश्वभाव से स्फुरित (प्रकाशित) हो रहा है। वह सर्वाकार है। वह विश्वात्मक तो है; किन्तु इसके साथ ही विश्वातीत भी है।

परमशिव अपने विमर्श का प्रकाशन विश्वरूप में करके भी अपने विश्वोत्तीर्ण स्वरूप

से रञ्चमात्र भी स्खलित नहीं होता—

१. विश्वमयत्वेऽप्यस्य स्वस्वरूपात्र प्रच्यावः।

२. अतएव अयं विश्वमयत्वेऽपि विश्वोत्तीर्णस्तदुत्तीर्णत्वेऽपि तन्मयः।

यह चिदात्मा ही विश्वोल्लास का कारण है— विश्वरूप है; फिर भी विश्वातीत है।

अपनी अभेद भूमिका में परमशिव तत्त्वातीत है और उसे न शिव कहा जा सकता है और न तो शक्ति। उसे न तो विश्वोत्तीर्ण कहा जा सकता है और न ही विश्वमय। उसकी कल्पना या भावना भी सम्भव नहीं है। वह एक ऐसी सामरस्यावस्था है, जिसमें शक्ति एवं शक्तिमान शब्दों की कल्पना सम्भव नहीं है। तत्त्वातीतावस्था 'अकथ्या' है— अन्तः-स्वानन्दगोचरामात्र है। जिस प्रकार अनन्त पत्रों, पुष्पों, शाखाओं वाला विशालकाय न्यग्रोध वृक्ष अपनी बीजावस्था में सामरस्यभाव से बीज में रहता है, तद्वत् ३६ तत्त्व समरसतापूर्वक परमशिव में रहते हैं।

आत्मानन्द में विश्रान्त, स्वान्तःस्थित, आत्मानन्द में सातिशय घूर्णमान परमशिव के आनन्दोच्छलन से सामरस्य की स्थिति में ही जब उसका स्वस्वरूप प्रकाशरूपता या विमर्शरूपता के प्रामुख्य से स्फुरित होता है तभी स्वस्वरूप में स्थित परमशिव के लिये शक्तिमान एवं उसके स्वभाव को शक्ति (या विश्वोतीर्ण और विश्वमय) शब्दों का व्यवहार सम्भव हो पाता है। अपनी विश्वोत्तीर्णावस्था में तो वह न्यग्रोधबीज के समान है—

यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।। (परात्रिंशिका)

उसका प्रथम स्पन्द ही शिवतत्त्व है—

यदयमनुत्तरमूर्तिर्निजेच्छयाखिलमिदं जगत्स्रष्टुम्।
पस्पन्दे स स्पन्दः प्रथमः शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञैः।।
(षट्त्रिंशत्तत्त्वसन्दोह)

चिन्मात्र स्वभाव पर शिव पूर्णता के कारण निराशंस होने पर भी स्वस्वातन्त्र्य की महिमा के कारण परानन्दचमत्कारतारतम्य द्वारा प्रथमतः 'अहं' इस प्रकार का परामर्श करके शक्तिदशा में अवस्थित (शयन करता हुआ) प्रस्फुरित होता है— 'चिन्मात्रस्वभावः पर एव शिवः पूर्णत्वात् निराशंसोऽपि स्वातन्त्र्यमाहात्म्याद्बहिरुल्लिलसिषया परानन्दचमत्कार-तारतम्येन प्रथममहमिति परामर्शतया शक्तिदशायामधिशयानः प्रस्फुरेत्'।[1]

आत्मविश्रान्ति एवं शुद्ध अहं— विश्वोत्तीर्णता शिव की प्रकाशरूपता है और विश्वमयता उसकी विमर्शरूपता है। शिवरूप की अभिव्यक्ति है— प्रकाश का विमर्श (बोध) पक्ष। शक्ति-रूप की अभिव्यक्ति है— विमर्श का प्रकाश। प्रकाश का विमर्श (बोध) है— शिव-रूप की अभिव्यक्ति। विमर्श का प्रकाश (अभिव्यक्ति) है— शक्ति-रूप की अभिव्यक्ति।

---

१. तन्त्रालोकटीका (भाग-६)

एक ही संवित्तत्त्व में शिवतत्त्व एवं शक्तितत्त्व का यह आभास अभेदभूमिका का आभास है। यह शिव अकृत्रिमाहमर्शप्रकाशैकघन भी विमर्श के कारण बनता है—

अकृत्रिमाहमामर्शप्रकाशैकघनः शिवः।
शक्त्या विमर्शवपुषा स्वात्मनोऽनन्यरूपया।।[१]

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में भी कहा गया है— 'प्रकाशस्य यदात्ममात्रविश्रमणमनन्योन्मुख-स्वात्मप्रकाशताविश्रान्तिलक्षणो विमर्शः सोऽहम् इति उच्यते'।

अर्थात् प्रकाशरूप शिव की अपनी आत्मा में ही स्फुरत्ता होने से इस तत्त्व के परप्रमाता शिव का जो अनन्योन्मुख स्वात्मप्रकाशपूर्ण पूर्णबोध (प्रत्यय) होता है, उसे ही शुद्ध अहं कहा जाता है। शिवतत्त्व के परप्रमाता का प्रत्यय मात्र 'अहं'रूप में ही व्यक्त होता है।

१. अनुत्तरप्रकाशपञ्चाशिका

षड्विंश अध्याय

श्रीयन्त्र और उसका स्वरूप

श्रीयन्त्र भगवती त्रिपुरसुन्दरी का यन्त्र है। यह श्रेष्ठतम यन्त्र होने के कारण यन्त्रराज कहलाता है। इस यन्त्र में समग्र ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एवं विकास दिखलाया गया है। यह यन्त्र मानवशरीर का भी प्रतीक है।

इस यन्त्र के सबसे भीतरी वृत्त में वृत्त के केन्द्रस्थ बिन्दु के चारो ओर नौ त्रिकोण हैं। उनमें पाँच त्रिकोण तो ऊर्ध्वमुखी हैं और चार त्रिकोण अधोमुखी हैं। अखोमुखी चार त्रिकोण शिव के द्योतक हैं और 'श्रीकण्ठ' कहलाते हैं तथा शेष पाँच त्रिकोण शक्ति के वाचक हैं और 'शिवयुवती' कहलाते हैं।

सारांश— अधोमुख ४ त्रिकोण = शिव के द्योतक = श्रीकण्ठ।
ऊर्ध्वमुख ५ त्रिकोण = शक्ति के द्योतक = शिवयुवती।

पाँच शक्तित्रिकोण ब्रह्माण्ड की दृष्टि से पञ्चमहाभूत, पञ्चतन्मात्रा, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय एवं पञ्च प्राण के द्योतक हैं।

मानवशरीर की दृष्टि से ये उपर्युक्त पाँच शक्तित्रिकोण त्वक्, अस्थि, असृक्, मांस, मेद एवं अस्थि के द्योतक हैं।

चार शिवत्रिकोण ब्रह्माण्ड की दृष्टि से चित्, बुद्धि, अहंकार एवं मन के प्रतीक हैं और ये ही पिण्ड की दृष्टि से मज्जा, शुक्र, प्राण एवं जीव के प्रतीक हैं।

सृष्टिक्रम के अनुसार निर्मित श्रीचक्र— इस श्रीयन्त्र में पाँच शक्तित्रिकोण ऊर्ध्वमुखी एवं चार शिवत्रिकोण अधोमुखी रहते हैं। समयमत के अनुयायी इसी यन्त्र की पूजा करते हैं। स्वामी शङ्कराचार्य समयमत के ही अनुवर्ती हैं।

संहारक्रम के अनुसार निर्मित श्रीचक्र— इस श्रीयन्त्र में पाँच शक्तित्रिकोण अधो-मुखी एवं चार शिवत्रिकोण ऊर्ध्वमुखी बने होते हैं। संहारक्रम के यन्त्र की पूजा कौलमत के अनुयायी करते हैं। कौलमतानुयायी काश्मीर सम्प्रदाय के हैं।

श्रीचक्रनिर्माण की दो पद्धतियाँ

(सृष्टिक्रम)	(संहारक्रम)
समयाचारमतानुयायियों	कौलमतानुयायियों द्वारा
द्वारा पूजित = सृष्टिक्रम	पूजित = संहारक्रम
५ शक्तित्रिकोण ऊर्ध्वमुखी	५ शक्तित्रिकोण अधोमुखी
४ शिवत्रिकोण अधोमुखी	४ शिवत्रिकोण ऊर्ध्वमुखी

इन्हीं त्रिकोणों से श्रीयन्त्र का निर्माण हुआ करता है—

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः।
त्रयश्चत्वारिंशद् वसुदलकलाब्जत्रिवलय-
त्रिरेखाभिः सार्धं तव भवनकोणः परिणताः।।

(सौन्दर्यलहरी : शङ्कराचार्य)

ये नौ त्रिकोण निराकार शिव की नौ मूल प्रकृतियों के द्योतक हैं। इन नौ त्रिकोणों के सम्मिश्रण से सैंतालीस त्रिकोण निर्मित होते हैं।

इसमें सबसे बाहर भूपुर है; फिर वृत्त के भीतर प्रथमावर्त में सोलह दलों का कमल (षोडशदल कमल) है तथा उसके भीतर के दूसरे वृत्त के भीतर चार दलों का कमल (अष्टदल कमल) है। ९ त्रिकोण शम्भु की ९ मूल प्रकृतियों के प्रतीक हैं।

९ त्रिकोण कौन-कौन से हैं? रुद्रयामलतन्त्र में इनका उल्लेख स्पष्टतया मिलता है, जो निम्नांकित है—

९ चक्र = शम्भु की ९ मूल प्रकृतियाँ—

१.बिन्दु
२.मूलत्रिकोण
३.अष्टत्रिकोणों का समूह
४.दस त्रिकोणों का समूह (दशार)
५.दस त्रिकोणों का समूह (दशार)
६.चौदह त्रिकोणों का समूह
७.अष्टदल कमल
८.षोडशदल कमल
९.भूपुर

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्ममन्वस्रनागदलसंयुतषोडशारम्।
वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च श्रीचक्रराजमुदितं परदेवतायाः।।

(रुद्रयामलतन्त्र)

ये नौ त्रिकोण ही नौ योनियाँ भी कहे जाते हैं।

चक्रों के नाम एवं अधिष्ठात्री देवी

१. बिन्दु तथा महाबिन्दु			सर्वानन्दमय चक्र : महात्रिपुरसुन्दरी	केन्द्रस्थ रक्तबिन्दु
२. त्रिकोण	सर्वसिद्धिप्रद	त्रिपुराम्बा	पीतवर्ण का त्रिकोण	विमर्शशक्ति, जीव का अहम्भाव
३. अष्टार	सर्वरोगहर	त्रिपुरसिद्धा	कृष्णवर्ण का त्रिकोण	पुर्यष्टक, कारणशरीर
४. अन्तर्दशार	सर्वरक्षाकर	त्रिपुरमालिनी	हरिद्वर्ण का त्रिकोण	इन्द्रियवासना (लिङ्गशरीर)

५. बहिर्दशार	सर्वार्थसाधक	त्रिपुराश्री	रक्तवर्ण का त्रिकोण	तन्मात्रा तथा पञ्चभूत
६. चतुर्दशार	सर्वसौभाग्य-दायक	त्रिपुरवासिनी	नीलवर्ण का त्रिकोण	जाग्रत् स्थूलशरीर
७. अष्टदल पद्म	सर्वसंक्षोभण	त्रिपुरसुन्दरी	गुलाबी रंग का त्रिकोण	अष्टारवासना
८. षोडशदल पद्म	सर्वाशा-परिपूरक	त्रिपुरेशी	पीतवर्ण का त्रिकोण	दशारद्वयवासना
९. भूपुर	त्रैलोक्यमोहन	त्रिपुरा	हरिद्वर्ण का बाह्यप्रदेश	बिन्दु+ त्रिकोण+ अष्टदल+ षोडशदल की समष्टि, प्रमातृपुर + प्रमाणपुर का सामरस्य

१. सर्वानन्दमय चक्र

इस चक्र का केन्द्रस्थ बिन्दु भगवती त्रिपुरसुन्दरी या ललिता का स्वस्वरूप है। यह बिन्दु नाद तथा बिन्दु ∴ = तीन बिन्दुओं के संयोग से निर्मित होता है। तन्त्र के ग्रन्थों में भगवती त्रिपुरा के धाम 'सुधासिन्धु' में स्थित मणिद्वीप का बार-बार उल्लेख आता है। यह बिन्दु उसी मणिद्वीप का प्रतीक है। मानव-हृदय में इसे हृत्पुण्डरीक कहते हैं। ध्यान-बिन्दूपनिषद् में इसी हृत्पुण्डरीक में इष्टदेव के ध्यान का विधान किया गया है। इसी मणि-द्वीप में निवास करने से मुक्ति प्राप्त होती है—

क. मणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः। (९.२.१९-शा० द०)

ख. सर्वलोकमणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः। (९.४.१४)

कल्पवृक्ष से परिवृत्त सुधासिन्धु में नीप या कदम्बवृक्षों से घिरा हुआ एक मणिमय मण्डप है। उस मण्डप में ही चिन्तामणिगृह है। इसी में ईशानी त्रिपुरसुन्दरी पर्यङ्क पर विराजमान है। शिव, सदाशिव, अमेहान उनके मञ्च, पर्यङ्क एवं उपबर्हण हैं तथा ब्रह्मदेव, हरि, रुद्र एवं ईश्वर उस मञ्च के पाये हैं।

शंकराचार्य ने सौन्दर्यलहरी (श्लोक-८) में इसका इस प्रकार से वर्णन किया है—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।

आचार्य लक्ष्मीधर ने लक्ष्मीधरा में कहा है कि सुधासिन्धु बैन्दवस्थान है— 'तत्र

योनिष्वध:स्थितशिवात्मकयोनिचतुष्कस्योपरि ऊर्ध्वस्थितशक्त्यात्मकयोनिपञ्चकाध:प्रदेशस्य बैन्दवस्थानस्य नाम सुधासिन्धुरिति'।

भैरवयामल (वामकेश्वर महातन्त्र के बहुरूपाष्टक विद्या) में सुधासिन्धु का सविस्तार चित्रण किया गया है और वह इस प्रकार है—

बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यः सुरद्रमाः।
तत्रैव नीपत्रेणी च तन्मध्ये मणिमष्टपम्।।

तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे।।

अतिरम्यतरे तत्र कशिपुश्च सदाशिवः।
भूतकाश्च चतुष्पादा महेन्द्रश्च पतद्ग्रहः।।

तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी।
शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्।।

तदुद्भूतामृतस्यन्दिपरमानन्दनन्दिता ।
कुलयोषित्कुलं त्यक्त्वा वरं वर्षणमेत्य सा।।

अमृत-समुद्र के मध्य नन्दनोद्यान में ही यह रत्नमण्डप है—

सुधाब्धौ नन्दनोद्याने रत्नमण्डपमध्यगाम्।

इसमें—

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहां त्रिलोचनाम्।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां श्रियम्।।

ध्यात्वा च हृद्गतं चक्रं व्रतस्थः परमेश्वरीम्।
पूर्वोक्तध्यानयोगेन चिन्तयन् जपमाचरेत्।।

इस स्वरूप वाली त्रिपुरसुन्दरी देवी का ध्यान करना चाहिये। देवीमन्दिर क्या है? इस प्रश्न पर लक्ष्मीधर कहते हैं कि 'त्रयश्चत्वारिंशत्त्रिकोणात्मक श्रीचक्र'।

इसी मणिद्वीप में शंकर से संयुक्त शक्ति निवास करती है। मणिद्वीप को श्रीचक्र में बिन्दु द्वारा प्रदर्शित किया गया है। प्रथम चक्र की अधिष्ठात्री देवी ललिता या त्रिपुरसुन्दरी अपनी आवरणदेवताओं के भेद से कहीं १६ नित्याओं में मुख्य, कहीं ८ मातृकाओं में श्रेष्ठ एवं कहीं ८ वशिनियों में श्रेष्ठ कही गई हैं।

यह भेद प्रस्तार-भेद (मेरुप्रस्तार, कैलासप्रस्तार, भूप्रस्तार) के कारण है। ये ही श्रीयन्त्र की उपासना के मुख्य प्रकार भी हैं।

बिन्दु एवं महाबिन्दु— यही समस्त ब्रह्माण्ड एवं समस्त सत्ताओं का मूल कारण है। यही है— महात्रिपुरसुन्दरी। यहाँ स्थित है— कामेश्वर-कामेश्वरी का सामरस्य। यहीं स्थित है— जगत् की मूल योनि एवं शिवभाव।

श्रीचक्र एवं देवी का अन्तस्सम्बन्ध— कामकलाविलास में कहा गया है कि 'सेयं परा महेशी चक्राकारेण परिणमेद्यदा'। सर्वोत्कृष्ट सर्वोपरि महासाम्राज्ञी चक्र के रूप में परिणत हो जाती है।

बिन्दुचक्र (पूर्णाहन्ता या शिवभाव)— प्रलयकाल में समस्त स्थूल-सूक्ष्म जगत् अपने परम कारण ब्रह्म में लीन हो जाने के कारण ब्रह्मस्वरूप में स्थित रहता है। जगत् की इस महासुषुप्ति की अवस्था को श्रीचक्र के सन्दर्भ में 'महाबिन्दु' कहा जाता है। इस अवस्था में प्रकाश-विमर्श, शक्ति-शक्तिमान जैसे व्यावर्तक शब्दों का व्यवहार भी अनुपपन्न रहता है और भास्य-भासक, स्रष्टव्य-स्रष्टृभाव, द्रष्टा-दृश्य-दर्शन, प्रमाण-प्रमेय-प्रमाता आदि कोई भी भाव शेष नहीं रह जाता। यही 'सुषुप्ति' या 'शिव का विश्रमण' कहलाता है— 'सुप्त्याह्वयं किमपि विश्रमणं शिवस्य'।

पूर्णाहन्ता— महाप्रलय की अवस्था में आदिविमर्शशक्ति जगत् को अपने कुक्षि में लीन करके विश्राम करती है और सिसृक्षा होने पर ब्रह्म के सम्मुख होकर ब्रह्म को अपने समक्ष करती है। परिणामतः (दोनों के दर्पणवत् निर्मल होने के कारण) दोनों परस्पर में प्रतिबिम्बित हो उठते हैं और तब शिवशक्त्यात्मक अहंविमर्श से युक्त आद्या शक्ति का आविर्भाव होता है। अपनी शक्ति में प्रतिबिम्बित ब्रह्म के भीतर शक्ति का प्रतिबिम्ब पड़ने से पूर्णाहम्भाव आविर्भूत होता है। यही समस्त सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय का कारण है। यही है— शब्दार्थ-सृष्टि का मूल बीज। वेदों में इसे ही नाम-रूप की अव्याकृत अवस्था कहा गया है।

कामकलाविलास में इसी अवस्था का इस प्रकार वर्णन किया गया है—

चित्तमयोऽहङ्कारः सुव्यक्तहार्णसमरसाकारः।
शिवशक्तिमिथुनपिण्डः कवलीकृतभुवनमण्डलो जयति।।

यही है— 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय'; ईक्षण, स्फुरण या आद्य विश्वसृजन। पूर्णाहम्भाव विमर्श ही विश्व की सृष्टि-स्थिति-प्रलय का कारण एवं शब्दार्थसृष्टि का बीज है। विमर्शशक्ति का भी यही स्वरूप है, जो विश्वाकार, विश्वप्रकाशन एव विश्वसंहार की अकृत्रिम अहंरूप स्फुरण है। नादानन्द कहते भी हैं— 'विमर्शो नाम विश्वाकारेण विश्व-प्रकाशेन विश्वसंहारेण वा अकृत्रिमोऽहमिति स्फुरणम्'।

'अहं' इस प्रकार का स्वाभाविक स्फुरण (ज्ञान) ही विमर्शशक्ति है। विमर्श (अहं)— जगत् की सृष्टि, स्थिति, प्रलय। पूर्णाहंभाव (शुद्धाहन्ता) ब्रह्मस्वरूप है। जिस प्रकार कोई भी व्यक्ति दर्पण के सामने उपस्थित होने पर ही अपना मुख देख सकता है, उसी प्रकार विमर्श शक्ति में प्रतिबिम्बित हुये विना आत्मा की स्पष्ट अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। अहम्भाव विमर्शमय है। अहं अर्थात् अ + ह + अनुस्वार = ३ वर्ण।

१. अकार— अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।

२. हकार— हकारोऽन्त्यकलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः।

३. अनुस्वार— बिन्दु। पूर्णाहन्ताभाव = शिवभाव : मोक्ष।

'मोचयति चोन्नमिताहमशात्' (मातृकाचक्रविवेक)

जीवपाश = पशुपाश = बन्धन। पूर्णाहन्ता— पशुपाश से मुक्ति— 'अहमिप्रलयं कुर्वन्निदमः प्रतियोगिनः'।

सम्पूर्ण विश्व इसी अहम्भाव में डूबा हुआ है। तान्त्रिकमत में अहम्भाव ही समस्त जगत् है।

निःशेष सृष्टि, स्थिति एवं सहांर से युक्त निःशेष जगत् को अपनी कुक्षि में अवस्थित करके जिस अहमाकार भाव से शक्ति अवस्थित रहती है, वही अहम्भाव 'बिन्दु' है और यही बिन्दु श्रीयन्त्र का सर्वस्व है।

महाबिन्दु और बिन्दु— महाबिन्दु से बिन्दु तक की जो यात्रा है, उसमें उन्मनी, समनी (अर्द्धबिन्दु तक की समस्त अवस्थायें) आदि जो नौ अवस्थायें आती हैं, उनके द्योतक नौ चक्र और हैं। इनका स्वपांश में काल के साथ योग है; किन्तु महाबिन्दु के साथ देश-काल का कोई योग नहीं है—

देशकालानवच्छिन्नं तदूर्ध्वं परमं महत्।
निसर्गसुन्दरं तत्तु परानन्दविघूर्णितम्।।

महाबिन्दु से बिन्दु तक के मध्य स्थित अवस्थायें योगिमात्रैकगम्य हैं; अतः बिन्दु (अहम्भाव) पर ही प्रकाश डालना उचित है।

बिन्दु (अहम्भाव) में बीजभाव से समस्त प्रपञ्च के समाविष्ट होने के कारण समस्त चक्र भी इसी के भीतर स्थित है; अतः बिन्दु चक्र ही सर्वाधिक प्रमुख चक्र है। बिन्दुचक्र में श्री कामेश्वर कामेश्वरी के साथ नित्य नित्यानन्दमग्न होकर विहार करते हैं; इसीलिये इस चक्र का अभिधान है— सर्वानन्दमय चक्र। भैरवयामल में कहा भी गया है—

कलाविद्यापराशक्ते.....।
.....श्री चक्राकाररूपिणी।।

तन्मध्ये बैन्दवस्थानं तत्रास्ते परमेश्वरी।
सदाशिवेन सम्पृक्ता सर्वतत्त्वातिगा सती।।

चक्र की उत्पत्ति कैसे हुई? 'चक्र' परमा शक्ति का अपनी स्फुरत्ता को देखने का परिणाम है—

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः।।

स्वेच्छावश विश्वरूप धारण करने वाली परमा शक्ति जब अपनी स्फुरत्ता का दर्शन करती है, तभी चक्र का आविर्भाव हो जाता है।

महाबिन्दु क्या है? प्रकाशैकस्वभाव परशिवभट्टारकरूप भास्कर की रश्मियों के समूह का विमर्शरूपी स्वच्छ दर्पण में प्रतिफलन होने से प्रतिप्रकाश द्वारा सुरम्य चित्तरूपी दीवार पर जो (प्रकाश) प्रकाशित होता है, उसे ही 'महाबिन्दु' कहते हैं— 'परशिवरविकरनिकरे प्रतिफलति विमर्शदर्पणे विशदे प्रतिरुचिरे कुड्ये चित्तमये निविशते महाबिन्दुः'।

(कामकलाविलास)

श्रीचक्र परदेवता का चक्र है, जिसका स्वरूप इस प्रकार है—

बिन्दु-त्रिकोण-वसुकोण-दशारयुग्म मन्वश्रनागदलसंयुतषोडशारम्।
वृत्तत्रिभूपुरयुतं परितश्चतुर्द्धा श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः।।

२. सर्वसिद्धिप्रद चक्र

यह चक्र श्रीचक्र में द्वितीय त्रिकोणात्मक चक्र है और इसका नाम है— सर्वसिद्धिप्रद चक्र। इसके तीनों कोण कामरूप पीठ, पूर्णगिरि पीठ एवं जालन्धर पीठ हैं। इनकी अधिष्ठात्री देवियाँ कामेश्वरी, वज्रेश्वरी एवं भगमालिनी हैं, जो सृष्टि की दृष्टि से प्रकृति, महत्तत्व एवं अहंकार हैं।

प्रकृतिसम्बन्धिनी विभिन्न दृष्टियाँ— सांख्यदर्शन एवं काश्मीरी शैव दर्शन की प्रकृतिसम्बन्धिनी दृष्टि भी भिन्न-भिन्न है। सांख्य दर्शन में प्रकृति जड़ है और पुरुष कर्तृत्व-विहीन होते हुये भी प्रकृति से निर्लिप्त है। काश्मीरी शैवदर्शन में अनन्त या स्वतन्त्रेश जीवों के कर्मों के अनुसार उन्हें सुख-दुःखादिक के भोगों का अनुभव कराने हेतु प्रकृति को क्षुब्ध करता है और तीनों गुण क्षुब्ध होकर जगद्व्यापार का विस्तार करते हैं—

ईश्वरेच्छावशात्क्षुब्धलोलिकं पुरुषं प्रति।
भोक्तृत्वाय स्वतन्त्रेशः प्रकृतिं क्षोभयेद्भृशम्।।

(तन्त्रालोक-६.९-२२५)

सांख्य दर्शन में प्रकृति एक मानी गई है, जबकि काश्मीरीय शैव दर्शन में प्रत्येक पुरुष की भिन्न-भिन्न प्रकृति होने के कारण भिन्न-भिन्न अनन्त प्रकृति स्वीकार की गई है। प्रकृति (गुणत्रय) → बुद्धितत्त्व → अहंकार।

प्रकृति का स्वरूप क्या है? इस विषय में अभिनव गुप्तपाद तन्त्रालोक (भाग-६.९-२१३) में कहते हैं—

एवं कलाख्यतत्त्वस्य किञ्चित्कर्तृत्वलक्षणे।
विशेषभागे कर्तृत्वं चर्चितं भोक्तृपूर्वकम्।।

विशेषणतया योऽत्र किञ्चिद्भागस्तदोत्थितम्।
वेद्यमात्रं स्फुटं भिन्नं प्रधानं सूयते कला।।

श्रीचक्र का सम्बन्ध शरीर के नौ धातुओं एवं शिव तथा शक्ति से भी है। इस अन्तः-सम्बन्ध के सम्बन्ध में कामिकागम में प्रतिपादन किया गया है।

क. शक्ति = त्वगसृङ्मांसमेदोस्थिधातवः शक्तिमूलकाः।
ख. शिव = मज्जाशुक्रप्राणजीवधातवः शिवमूलका।

देह = नवधातुरयं देहो नवयोनिसमुद्भवः।

(९ योनियाँ → नव धातुओं का जन्म)।

दशवीं योनि— दशमी योनिरेकैवपराशक्तिस्तदीश्वरी।।
दशवीं योनि = पराशक्ति।

लक्ष्मीधरा के अनुसार दशवीं योनि है— बैन्दवस्थान। उसकी ईश्वरी ही देह की भी ईश्वरी है। इस प्रकार समस्त जगत् शिव-शक्त्यात्मक है—

शिवशक्त्यात्मकं विद्धि जगदेतच्चराचरम्।।

(चर = पिण्डाण्ड। अचर = ब्रह्माण्ड)।

२५ तत्त्वों में भी शिव-शक्ति की अनुस्यूतता है—

एवं पिण्डाण्डमुत्पन्नं तद् ब्रह्माण्डाण्डमुद्भवौ।
पञ्चभूतानि शाक्तानि मायादीनि शिवस्य तु।
माया च शुद्धविद्या च महेश्वरसदाशिवौ।
पञ्चविंशतितत्त्वानि तत्रैवान्तर्भवन्ति ते।।

त्रिकोणचक्र (शक्ति या जीवभाव)

विवर्तवाद (मायावाद)— आद्य सिसृक्षाकाल में ही अक्रमसृष्टि प्रारम्भ। कणाद-मतानुयायी : 'इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिः'। कणादानुयायी क्रमसृष्टि का प्रतिपादन करते हैं।

विमर्शशक्ति सिसृक्षा के कारण बिन्दुरूप में प्रकट होती है—

विचिकीर्षुर्घनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुताम्।

विमर्शशक्ति → बिन्दु। बिन्दु में (वटबीज की भाँति) समस्त प्रपञ्च एवं ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान, द्रष्टा-दृश्य-दर्शन बीजात्मना स्थित हैं—

यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।।

विमर्श के बिन्द्वाकार से सृष्टि— अन्तर्लीन जगत् को अभिव्यक्त करने की इच्छा से बिन्दु में 'क्रिया → बिन्दु → त्रिकोण' रूप में परिवर्तित। बिन्दु → त्रिकोण। विमर्श → बिन्दु → त्रिकोण।

कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा।

सृष्टि— क. शब्दसृष्टि ख. अर्थसृष्टि।

भास्कर की दृष्टि में—

१. शब्दमयी सृष्टि ३. चक्रमयी सृष्टि
२. अर्थमयी सृष्टि ४. देहमयी सृष्टि (वरिवस्यारहस्यम्)

नैसर्गिकी विमर्शरूपा स्फुरत्ता शक्ति— परिणाम : उपर्युक्त चतुर्धा सृष्टि—

नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्तिः।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति।।४।।

सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा।
अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टिः।।५।।

१. अर्थमयी— शिवादिक्षित्यन्त षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपा।
२. शब्दमयी— परादिवैखर्यन्ता।
३. चक्रमयी— बिन्द्वादिभूगृहान्ता।
४. देहमयी— स्थूल, सूक्ष्म, कारणादिरूपा।

तान्त्रिकों के मत में शब्द ही अर्थसृष्टि का भी मूल है। प्रलयकाल में समस्त अर्थसमूह परा वाक् रूप शब्दब्रह्म में लीन हो जाते हैं और सृष्टिकाल में पुनः आविर्भूत हो जाते हैं—

विश्रान्तमात्मनि पराह्वयवाचि सुप्तौ।
विश्वं वमत्यथ विबोधपदे विमर्शः।। (मातृकाचक्रविवेक)

त्रिकोणात्मक सृष्टि— परा वाक् (मूल कारणस्वरूप एवं बिन्दुरूप) से ही पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरीरूप त्रितय से त्रिकोणात्मक शब्दसृष्टि होती है।

बिन्दु के भेद

कारणबिन्दु	कार्यबिन्दु
(परा वाक)	(पश्यन्ती वाक्, मध्यमा वाक्, वैखरी वाक्)
(शान्ता)	(वामा, ज्येष्ठा, रौद्री)
(अम्बिका)	(इच्छा, ज्ञान, क्रिया)

१. **अधिदैवत**– (अव्यक्त, मूल प्रकृति) **अधि**– (ईश्वर, हिरण्यगर्भ, विराट)
२. **अधिदैवत**– (कामरूप) (पूर्णगिरि, जालन्धर, उड्डीयान)
३. **अध्यात्म**– मूलाधारस्थ कुण्डलिनी शक्ति।

परा वाक् = बिन्दु तत्त्व का अध्यात्मरूप।

कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा।

१. कारणबिन्दु (परा वाक्) कार्यबिन्दु, २. पश्यन्ती, ३. मध्यमा।

१. रव : शब्दब्रह्म— अव्यक्त कारणबिन्दु जब पश्यन्ती आदि कार्यबिन्दुओं की

सृष्टि में संलग्न रहता है, तब उसी कारणबिन्दु को रव (शब्दब्रह्म) कहा जाता है। यही रव शब्दब्रह्म कहा जाता है—

स रवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति गीयते।

२. पश्यन्ती वाक्— निस्पन्द रवात्मक शब्दब्रह्म वक्ता की विवक्षा से प्रादुर्भूत व्यापार से संस्कारित होकर शरीरस्थ वायु के द्वारा नाभि में आता है और तब मनोमात्र-विमर्श से अ, क, च, ट, त, प, य आदि वर्णविशेषशून्य स्पन्दात्मक प्रकाशमात्र रहकर पश्यन्ती नामक कार्यबिन्दु कहलाता है।

३. मध्यमा वाक्— जब यह रवात्मक ब्रह्म पश्यन्ती वाक् का रूप ग्रहण करके शरीरस्थ वायु के द्वारा हृदय तक आ पहुँचता है तब वह निश्चयात्मिका बुद्धि से संयुक्त होकर अ, क, च, ट, त, प आदि वर्णविशेष के सहित स्पन्द से प्रकाशित होकर नादात्मक मध्यमा नाम कार्यबिन्दु कहलाता है।

४. वैखरी वाक्— जब यह रवात्मक शब्दब्रह्म मध्यमा वाक् का रूप धारण करके हृदयस्थ वायु से प्रेरित होकर मुख तक आ जाता है तब कण्ठ, तालु, दन्त, जिह्वा, ओष्ठ आदि मुखोच्चारणावयवों से संस्पृष्ट होकर दूसरों के श्रोत्रों को अ, क, च, ट, त, प आदि वर्णों के स्पष्ट प्रकाशरूप में बीजात्मक वैखरी वाक् कहलाता है।

प्रपञ्चसारतन्त्र में आचार्य शंकर ने इसी रहस्य को इस प्रकार उद्घाटित किया है—

मूलाधारात् प्रथममुदितो यश्च भावः पराख्यः
पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः।
व्यक्ते वैखर्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्णा-
बद्धस्तस्माद्भवति पवनप्रेरिता वर्णसंज्ञा।।

परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी का श्रवण-अधिकार—

१. परा— मन-बुद्धि दोनों से अतीत होने के कारण मन-बुद्धि दोनों का भेदन करके पूर्णाहम्भावप्राप्त परम योगी (ज्ञानी) को ही परा वाक् श्रुतिगम्य है।

२. पश्यन्ती— पश्यन्ती रव का केवल मन से सम्बन्ध होता है; अतः मन का भेदन करके जो योगी तुरीयावस्था में पहुँच चुका हो, वही योगी पश्यन्ती वाक् सुन सकता है।

३. मध्यमा— अव्यक्त मध्यमा रव का सम्बन्ध बुद्धि से होता है; अतः सभी बुद्धि-युक्त प्राणी अन्तर्जगत् में मध्यमा सुन सकते हैं।

४. वैखरी वाक् तो सभी प्राणी सुन सकते हैं।

परा वाक् = शब्द ब्रह्म = पूर्ण अहम्भाव + प्रकाशरूप।

परा वाक् → शब्द, मन्त्र, अर्थ, चक्र, देह आदि।

मुख से नीचे नाभिपर्यन्त के शब्दों को हम नहीं सुन सकते।

ज्ञानी शुद्ध परा वाक् रूप पूर्णाहम्भाव को ग्रहण करता है। समस्त मन्त्रों एवं कादि, हादि, षोडशी, पञ्चदशी, बाला, महात्रिपुरसुन्दरी, भुवनेवरी, काली आदि विद्याओं की माता परा वाक् है।

बिन्दुरूप परा वाक् की सर्वकारणरूपता—

१. परा वाक् → समस्त वाक्, समस्त ध्वनि, समस्त अक्षर, समस्त मन्त्र, समस्त ज्ञान।

२. परा वाक् → ३६ तत्त्व : ५ महाभूत, ५ तन्मात्रा, १० ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति, पुरुष, कला, अविद्या, राग, काल, नियति, माया, शुद्ध विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति, शिव।

३ परा वाक् → १. अर्थसृष्टि, २. शब्दसृष्टि, ३. चक्रसृष्टि एवं ४. देहसृष्टि।

३६ तत्त्व अर्थसृष्टि के अन्तर्गत हैं।

चूँकि बिन्दु ही सम्पूर्ण चक्र का केन्द्र है और बिन्दु से ही समस्त चक्रों का जन्म होता है; अतः परा वाक् ही चक्रसृष्टि का भी मूल कारण है। बिन्दु ही नवचक्रमय देह की भी सृष्टि का कारण है।

त्रिकोण— त्रिकोण ही योनिचक्र या शक्तिचक्र और जीव त्रिकोण या विसर्ग कहलाता है।

बिन्दु = शिव। तुरीयावस्था। त्रिकोण = जीव जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति ३ अवस्थायें तीन कोण हैं। अन्तर्मुख होकर जो शक्ति शुद्धाहन्तापूर्वक शिवरूप में विश्राम लेती है, वही शक्ति बहिर्मुख होकर जीवरूप में संसरण करती है। शिव एवं जीव की समष्टिरूपा यही शक्ति है— त्रिपुरा, महात्रिपुरसुन्दरी।

जिस प्रकार जीव एवं शिव पृथक्-पृथक् नहीं हैं, उसी प्रकार बिन्दु एवं त्रिकोण भी पृथक्-पृथक् नहीं है; क्योंकि बिन्दु कारण है और त्रिकोण कार्य है। कामकलाविलास में यही अद्वैत प्रतिपादित किया गया है—

आद्या कारणमन्या कार्यं त्वनयोर्यतस्ततो हेतोः।
सैवेयं नहि भेदस्तादात्म्यं हेतुहेतुमतोः।।

शक्ति के तीन रूप

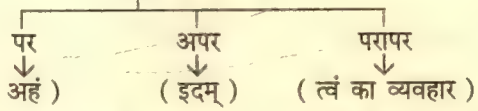

पर, अपर एवं परापर के द्वारा ही अहं, इदम् एवं त्वं का लौकिक व्यवहार प्रचलित है।

जब यह शक्ति परापेक्षा शून्य होकर प्रवृत्त होती है, तब पूर्णाहम्भाव से सोऽहं रूप विमर्श प्रकाशित करती है। यही शिवतत्त्व है।

जब यह शक्ति परापेक्षा विरत रहकर 'स इदम्' रूप अपूर्ण विमर्श के साथ विमर्शन करती है, तब शुद्ध विद्या कहलाती है। जब यह शक्ति 'स इदम्— अहमिदम्' इत्याकारक (दोनों भावों में समान रूप से उदासीन होकर) विमर्शन करती है, तब सदाशिव (महेश्वर) कहलाती है।

सदाशिव— सदाशिव 'अहमिदम्' विमर्श में 'इदं' का उल्लास होता है। शिवतत्त्व के इदमहम् विमर्श में अहं का उल्लास रहता है। शुद्ध विद्या में ग्राह्य-ग्राहक भाव सामानाधिकरण्य में रहते हैं— सामानाधिकरण्यं हि सद्विद्याहमिदंधियोः।

अशुद्ध विद्या = वैयधिकरण्य से इदं में ग्राह्य बुद्धि एवं अहं में ग्राहक बुद्धि का होना ही अशुद्ध विद्या (माया) है।

जब उक्त विलासत्रय सामानाधिकरण्यरूप शुद्ध विद्या से प्राप्त होते हैं तब शुद्ध विद्या ईश्वर एवं सदाशिव कहे जाते हैं; किन्तु जब वे विलासत्रय माया (अशुद्ध विद्या) से उत्पन्न होते हैं, तब 'मैं, तू एवं वह' बन जाते हैं।

बिन्दु से त्रिकोण— त्रिकोण शक्ति मातृ-मेय-मान, ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान, हरि-हर-हिरण्यगर्भ, इच्छा-ज्ञान-क्रिया, मन-बुद्धि-अहंकार एवं सतोगुण-रजोगुण-तमोगुण से संवलित हो जाती है। इस त्रिपुटीभाव से शून्य अकोणात्मक बिन्दु त्रिपुटी के अभिव्यक्त्यर्थ आकार ग्रहण करता है और एक ही बिन्दु त्रिकोण में विभक्त हो जाता है—

सेयं त्रिकोणरूपं माता त्रिगुणरूपिणी माता।[१] (कामकलाविलास)

इसी महात्रिकोण में श्री कामेश्वर एवं कामेश्वरी इच्छा आदि शक्तित्रितय के साथ निवास करते हैं—

इच्छादिशक्तित्रितयं पशोः सत्वादिसंज्ञकम्।
महत्त्र्यस्रं चिन्तयामि गुरुवक्त्रादनुत्तरात्।।

अकोणाकार, शून्यात्मक बिन्दु ही त्रिपुटी (ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान आदि) के प्रकटीकरण हेतु त्रिकोण स्वरूप धारण कर लेता है।

महाबिन्दु और बिन्दु— शास्त्रों में शब्द की जो चार अवस्थायें (भाव) बताई गई हैं, उनमें जो परा है, वह महाबिन्दु के विस्फोट के पूर्व की अवस्था है।[२]

• बिन्दु → ▽। बिन्दु → त्रिकोण।

१. महाबिन्दु— रक्तबिन्दु के भीतर गुप्त श्वेतबिन्दु है। इसका वर्ण श्वेत है, इसका स्थान ब्रह्मरन्ध्र है और चक्र की दृष्टि से इसका स्थान सहस्रदल कमल है। यह शरीरावस्था की दृष्टि से तुरीयातीता है और चक्र की मूल शक्ति के रूप में यह परा शक्ति है और चक्र की अधिष्ठात्री शक्ति के रूप में यह प्रकाशविमर्शरूपिणी परा भट्टारिका है।

---

१. कामकलाविलास २. सहज साधना

परबिन्दु का जब विस्फोट होता है तो यह तीन भागों में विभाजित हो जाता है, जो निम्न हैं— १. बिन्दु (शिव), २. बीज (शक्ति) एवं ३. नाद (शिव-शक्ति का संयोग, शिव-शक्ति का मैथुन, शिव-शक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध या एकता ही नाद है)। नाद क्रियाशक्ति है। इसी का सार कुण्डलिनी है; क्योंकि वह नादमयी है। नाद कुण्डलिनीमय है। शक्ति, नाद एवं बिन्दु के रूप मे होने वाले प्रथम विभाजन में जो नादतत्त्व है, वह शिव-शक्ति का योग या उनका मैथुन है।

सारांश— यह कि तीन बिन्दु निम्नांकित हैं—

१. सूर्य, २. चन्द्र एवं ३. अग्नि या १. सितबिन्दु : प्रकाश का प्रतिनिधि, २. शोणबिन्दु : विमर्श का प्रतिनिधि एवं ३. मिश्रबिन्दु : प्रकाश एवं विमर्श दोनों का प्रतिनिधि।[१]

शारदातिलक में कहा गया है—

१. आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादाद्बिन्दुसमुद्भवः।

सारांश यह कि सचिदानन्द सकल परमात्मा से शक्ति का आविर्भाव हुआ और शक्ति से नाद एवं नाद से बिन्दु का आविर्भाव हुआ।

२. भिद्यमानात्पराद्बिन्दोरव्यक्तात्मा रवोऽभवत्।
शब्दब्रह्मेति तं प्राहुः सर्वागमविशारदः।। (१.२)

इसमें प्रथम बिन्दु परबिन्दु कहा गया है। प्राणतोषिणी के मतानुसार परबिन्दु ही प्रथम बिन्दु है और शक्ति की एक अवस्था है।[२]

महाबिन्दु ही सदाशिव है, जिसके ऊपर चित्कला (चिच्छक्ति) स्वातन्त्र्यमयी होकर क्रीड़ा करती है। यह क्रीड़ा परा वाक् या परा मात्रा का विलास है। शुक्ल एवं रक्त बिन्दु (प्रकाश एवं विमर्श) से युक्त कामकलाक्षर के परस्पर संघट्ट से ही चित्कला की अभिव्यक्ति होती है। महाबिन्दु के स्पन्दन से तीनों विलीन बिन्दु पृथक्-पृथक् रूप में परिणत होकर महात्रिकोण का आकार धारण कर लेते हैं। इसी से शिव से पृथ्वीपर्यन्त ३६ तत्त्वों का आविर्भाव होता है।

महात्रिकोण का मध्यस्थ महाबिन्दु अभिन्न विग्रह शिव एवं शक्ति का आसन है। महाबिन्दु ही विश्व का हृदय है और विश्वातीत परमेश्वर या शिव-शक्ति का आविर्भाव स्थान या आसन है। महाबिन्दु के स्पन्दन से तीनों विलीन बिन्दु पृथक्-पृथक् रूप होकर रेखारूप बनकर महात्रिकोण का आकार धारण करते हैं।

वामकेश्वर तन्त्र में इस महात्रिकोण की विस्तृत व्याख्या की गई है।

---

१. शारदातिलक

२. बृहत् त्रिकोण सिसृक्षा का रूप है और कामकला का निर्माण करती है।

महात्रिकोण एवं वाक्चतुष्टय

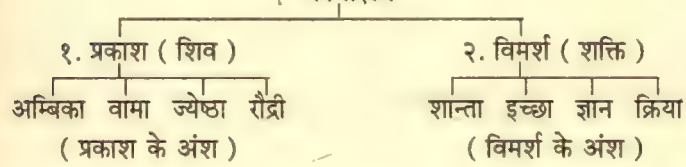

अम्बिका (प्रकाशांश) तथा शान्ता (विमर्शांश) की सामरस्यावस्था में शान्ता-भावापन्ना परा शक्ति परा वाक् कहलाती है। यह परा वाक ही आत्मस्फुरण की अवस्था है—

आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।
अम्बिकारूपमापन्ना परा वाक् समुदीरिता।। (योगिनीहृदय)

अर्थात् जिस समय वह परा शक्ति अपने स्फुरण को देखती है, उस समय वह अम्बिकारूप को प्राप्त हुई परा वाक् कही जाती है।

आत्मस्फुरण की अवस्था में समस्त विश्व बीजरूप में (अस्फुट रूप में) आत्म-सत्ता में वर्त्तमान रहता है। शान्ता से इच्छा का उदय होने पर अव्यक्त जगत् विश्वशक्ति के गर्भ से बाहर निकलता है।

इस समय वामा शक्ति के साथ इच्छा शक्ति तादात्म्य प्राप्त करती है, जिससे पश्यन्ती वाक् का आविर्भाव होता है।

सारांश यह कि अम्बिका एवं शान्ता की सामरस्यावस्था में परा शक्ति परा वाक् कहलाती है।

क. परा वाक् = आत्मस्फुरण की अवस्था। परा शक्ति की वह अवस्था जो अम्बिका एवं शान्ता की सामरस्यावस्था से युक्त है।

ख. पश्यन्ती वाक् = इच्छा शक्ति का वामा शक्ति के साथ सामरस्य।

ग. मध्यमा वाक् = ज्ञानशक्ति एवं ज्येष्ठा का सामरस्य।

घ. वैखरी वाक् = क्रिया शक्ति एवं रौद्री का सामरस्य।

ये चार वाक् (परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी) मिल कर ही मूल त्रिकोण या महायोनि का निर्माण करते हैं।

महात्रिकोण (महायोनि)—

१. इस त्रिकोण का केन्द्र या बिन्दु ही परा वाक् है। यह बिन्दु या केन्द्र नित्य स्पन्द-मय है।

२. इसकी वाम रेखा पश्यन्ती वाक् है।

३. इसकी दाक्षिण रेखा वैखरी वाक् है।

४. इसकी सरल अग्ररेखा (Bare) मध्यमा वाक् है। भूपुर से महाबिन्दुपर्यन्त समस्त विश्वचक्र ही महाशक्ति का विकास है। महाबिन्दु (मध्यस्थ बिन्दु) ही अभिन्न विग्रह शिव-शक्ति का आसन है। अकुल से महाबिन्दुपर्यन्त महामार्ग के भीतर जितने भी अवान्तर चक्र हैं, उनकी समष्टि ही विश्वचक्र है। मध्य त्रिकोण बिन्दु-विसर्गमय है। इस त्रिकोण के स्पन्दनों से अष्टकोण कल्पित होते हैं।

१. अकुल से आज्ञाचक्र तक के अंश = सकल।

२. आज्ञाचक्र से ऊपर बिन्दु से उन्मना तक के अंश = सकल निष्कल।

३. महाबिन्दु अंश = निष्कल।

१. सकल— मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धाख्य एवं आज्ञा चक्र। अग्नि, सूर्य एवं चन्द्रबिम्ब। मूलाधार में अग्निबिम्ब, अनाहत में सूर्यबिम्ब एवं विशुद्ध चक्र में चन्द्रबिम्ब।

२. सकल निष्कल— (आज्ञाचक्र के ऊपर) बिन्दु से उन्मनाभूमियों अर्थात् बिन्दु, अर्धचन्द्र, निरोधिका, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका (व्यापिनी), समना एवं उन्मना।

उन्मना तक पहुँचने पर काल की कलायें, तत्त्व, देवता एवं मन सभी निरुद्ध हो जाते हैं। ये ही रुद्रवक्त्र हैं और यह अन्तिम भूमि निराकार, शून्यमय एवं विश्वातीत है।

३. निष्कल— उपर्युक्त दूसरी अवस्था के बाद ही आती है— महाबिन्दु की अवस्था, जो कि निष्कल भूमि है। इसी की अपर संज्ञा है— सादाख्य, सदाशिवरूप आसन। इसी भूमिका पर तत्त्वातीत शिव एवं शक्ति की क्रीड़ा चलती है।

४. श्रीचक्र में प्रविष्ट होकर तत्त्वातीतावस्था में चलने के मार्ग में तीन विभाग हैं, जो निम्नवत् हैं—

क. चतुष्कोण से त्रिकोण तक— सकल मार्ग।

ख. बिन्दु से उन्मना तक— सकल निष्कल मार्ग।

ग. महाबिन्दु — निष्कल मार्ग।

भूपुर, षोडशदल, अष्टदल, चतुर्दश कोण, बाह्य दश कोण, आन्तर दश कोण, अष्टकोण, त्रिकोण— ये सुषुम्णा मार्ग में निम्नतम अकुल से आज्ञा चक्रपर्यन्त।

तत्वातीतावस्था में शिव-शक्ति का सामरस्य है। इस समय विश्व शक्ति के गर्भ में अन्तःसंहृत भाव से (शक्ति से अभिन्न) रहता है। जब परा शक्ति स्वेच्छया अपने स्फुरण का दर्शन करती है तभी विश्व की सृष्टि होती है। इस स्फुरण का दर्शन ही विश्वदर्शन है। विश्वदर्शन ही सृष्टि है। दृष्टि ही सृष्टि है।

शिव अग्निस्वरूप है। शक्ति सोमस्वरूप है। बिन्दु दोनों का सामरस्य है। बिन्दु = रवि या काम। क्षोभ (साम्यभंग) यानि सृष्टि का आरम्भ। साम्यावस्था में अग्नि + चन्द्र (रक्तबिन्दु + शुक्लबिन्दु) (अ + ह)। प्रकाशस्वरूप अग्नि के सम्बन्ध से विमर्शरूपा

शक्ति का स्राव; जैसे कि अग्निसंसर्ग से घृत पिघल जाता है; ठीक उसी प्रकार श्वेत + रक्तबिन्दुओं के मध्य से चित्कला का नि:सरण होता है।

यन्त्र और पीठ— देवता का यान्त्रिक रूप ही जगत् का रूप है। प्रत्येक यन्त्र में सबसे बाहर जो चतुष्कोण होता है, उसका नाम होता है— भूपुर। किसी भी मार्ग से उसमें प्रवेश करना ही साधनामार्ग है। इन सभी यन्त्रों के केन्द्र में स्थित बिन्दु ही अन्तिम भूमि है।

महात्रिकोण एवं पीठ— महात्रिकोण में चार पीठ हैं। प्रत्येक पीठ में ही विश्व का रूप भासमान होता है। स्वरूप से उसका भान बीजरूप से होता है और बाहर सृष्टिरूप से।

पीठतत्त्व— प्रकाश और विमर्श की मात्राओं का सामरस्य ही पीठ है।

क. अम्बिका + शान्ता शक्तियों का सामरस्य = कामरूप पीठ।

ख. कामरूप पीठ आधारस्थान में स्थित है। यह पीत वर्ण एवं चतुष्कोणात्मक है। इसका दूसरा नाम है— मन। जब इसमें बिन्दुचैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है तब उसे 'स्वयम्भू लिंग' कहते हैं।

यह पीठ महात्रिकोण का अग्रकोण है। त्रिकोण के अन्य दो कोण पूर्णगिरि पीठ एवं जालन्धर पीठ हैं। उनमें प्रतिफलित होने वाला चैतन्य 'इतर लिंग' एवं 'बाण लिंग' हैं। ये बुद्धि एवं अहंकार के ही अपर पर्याय हैं। ये हृदय एवं भ्रूमध्य में स्थित हैं। मध्यबिन्दु 'उड्डीयान पीठ' या 'श्रीपीठ' है; जो कि चित्तस्वरूप है। इनमें जो ज्योति प्रतिबिम्बित होती है, उसी का नाम है— परलिंग। परलिंग समस्त वर्णों से वेष्टित है। परलिंग ही परमपद से प्रथम स्पन्द रूप में उदित होता है।

शिव-शक्ति यामल का अहंपरामर्श ही पूर्णाहन्ता है। पूर्णाहन्ता या परा वाक् ही पश्यन्ती आदि तीन वाकों का रूप धारण करती है। परा वाक् प्रथमत: इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया का रूप धारण करता है और बाद में वह मातृका का रूप धारण करता है। सृष्टि के समस्त व्यापारों के मूल में प्रकाश एवं विमर्श दोनों ही की सत्ता रहती है। (परावाक— १. इच्छा-ज्ञान-क्रिया; २. मातृका)।

बिन्दु से महाबिन्दु की यात्रा— बिन्दु के बाद अर्धचन्द्र, अर्धचन्द्र से रोधिनी, रोधिनी से नाद, नाद से नादान्त, नादान्त से शक्ति, शक्ति से व्यापिका, व्यापिका से समना, समना से उन्मना एवं उन्मना से महाबिन्दु की यात्रा होती है।

महाबिन्दु— उन्मनी— समना— व्यापिका— शक्ति— नादान्त— नाद— रोधिनी— अर्धचन्द्र— बिन्दु इस यात्रा का द्वितीय मार्ग है।

महाबिन्दु एवं मानवपिण्ड के चक्र— सहस्रारस्थ बिन्दु ही १० भागों में विभाजित होकर मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान के १० दल बनाता है—

दशधा भिद्यते बिन्दुः एक एव परात्मकः।
चतुर्धाऽऽधारकमले षोढाऽधिष्ठानपङ्कजे।
उभयाकाररूपत्वादितरेषां तदात्मता।।

परम बिन्दु का दशधा विभाजन— मूलाधार ४ दल एवं स्वाधिष्ठान ६ दल (१० दल)। इस प्रकार परमबिन्दु की अभिव्यक्ति १० रूपों में होती है—

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के रूप में मूलाधार चक्र में चार रूपों में एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य के रूप में स्वाधिष्ठान चक्र में ६ रूपों। सहस्रार बिन्दु होता है— 'सहस्रारं बिन्दुर्भवति' (सुभोगदय)। इसीलिये इसे बैन्दवगृह कहते हैं— 'च ततो बैन्दवगृहम्'। इसी बिन्दु से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि हुई है—

तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषं स करणम्। (गौड़पादाचार्य)

सहस्रारस्थ बिन्दु (परबिन्दु) का अभिव्यक्ति-क्रम (सृष्टिक्रम)

सहस्रारस्थ परबिन्दु का १० रूपों में विभाजन—

अधिष्ठानाधारद्वितयमिदमेवं दलदलम्।
दशधा भिद्यते बिन्दुः एक एव परात्मकः।।

मूलाधार के ४ दलों के रूप में— मन, बुद्धि, चित्त, एवं अहंकार।

स्वाधिष्ठान के ६ दलों के रूप में— काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य।

परमबिन्दु और उसकी चक्रात्मक सृष्टि— मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र का जन्म सहस्रारस्थ परम बिन्दु से होता है। परम बिन्दु का दशधा विभाजन इस प्रकार होता है—

क.	१. मन	३. चित्त
	२. बुद्धि	४. अहङ्कार = मूलाधार चक्र।
ख.	१. काम	४. मोह
	२. क्रोध	५. मद
	३. लोभ	६. मात्सर्य = स्वाधिष्ठान चक्र।

मणिपूर चक्र का जन्म— मूलाधार के चार एवं स्वाधिष्ठान के छः दलों से मणिपूर चक्र का प्रादुर्भाव होता है। इसीलिये मणिपूर में दश दल होते हैं।

अनाहत चक्र का जन्म— मणिपूर चक्र के दश दल के साथ-साथ मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान को मिलाकर अनाहत चक्र की उत्पत्ति होती है। इसीलिये इस अनाहत चक्र में बारह दल होते हैं।

विशुद्धाख्य चक्र का जन्म— अनाहत चक्र के बारह एवं मूलाधार के चार दलों को मिलाकर विशुद्धाख्य चक्र का प्रादुर्भाव होता है। इस प्रकार यह विशुद्धाख्य चक्र सोलह दलों वाला कहलाता है।

आज्ञाचक्र का जन्म— दो दलों वाले आज्ञाचक्र का प्रादुर्भाव मूलाधार एवं स्वाधि-ष्ठान चक्र के संयोग से होता है। अतएव यह आज्ञाचक्र दो दलों वाला होता है।

निष्कर्ष यह कि—

क. सहस्रार में स्थित परमबिन्दु द्वारा प्रत्यक्ष रूप में अपनी अभिव्यक्ति मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र के रूप में होती है।

ख. छः चक्रों में मूल चक्र मात्र दो ही हैं— मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान।

ग. मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान से ही शेष चार चक्रों का निर्माण हुआ है।

इसीलिये कहा भी गया है—

दशधा भिद्यते बिन्दुः एक एव परात्मकः।
चतुर्धाऽधारकमले षोढाऽधिष्ठानपङ्कजे।।

जिन दश मानवीय वृत्तियों से परमबिन्दु की अभिव्यक्ति होती है, वे दश मानवीय वृत्तियाँ निम्नवत् हैं—

१. मन	३. चित्त	५. काम	७. लोभ	९. मद
२. बुद्धि	४. अहंकार	६. क्रोध	८. मोह	१०. मात्सर्य

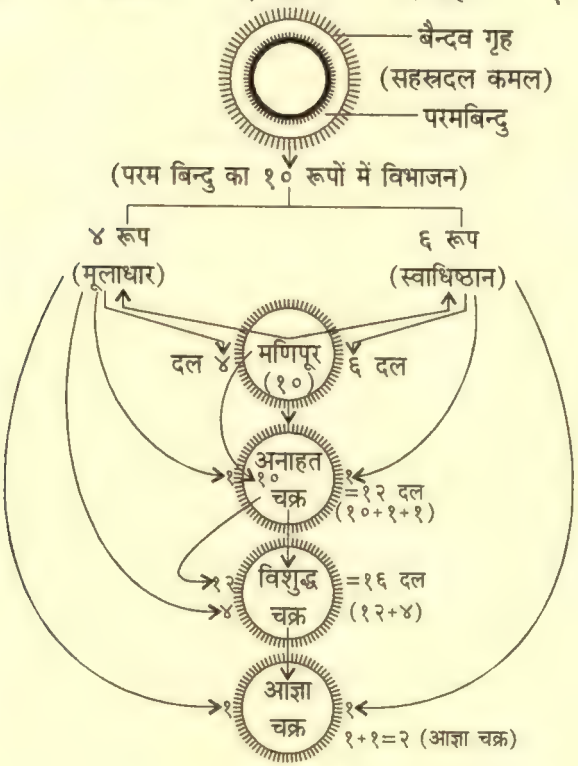

सहस्रारं बिन्दुर्भवति च ततो बैन्दवगृहम्।

१. तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषञ्च करणम्।
ततो मूलाधाराद्वितयमभवत्तद्दशदलम्।
सहस्राराज्जातं तदिति दशधा बिन्दुरभवत्।।
(आचार्य गौड़पाद : सुभगोदयस्तुति)

२. दशधा भिद्यते बिन्दुः एक एव परात्मकः।
चतुर्धाधारकमले षोढाऽधिष्ठानपङ्कजे।
उभयाकाररूपत्वादितरेषां तदात्मता।।

३. अतएव मूलाधारद्विके उत्तरकमलचतुष्कमन्तर्भूतमिति एकस्यैव बिन्दोः दशधात्वं नान्यथेति सिद्धम् (लक्ष्मीधरा) अर्थात् मूलाधारद्विक (मूलाधार + स्वाधिष्ठान), उत्तर कमलचतुष्क (मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि)।

आज्ञा के भीतर एक ही परम बिन्दु दशधा विभक्त होकर व्याप्त है।

जिस प्रकार षट्चक्र एवं श्रीचक्र में ऐकात्म्य है, उसी प्रकार श्रीचक्र के प्रत्येक चक्र के साथ अनेक तत्त्वों का सामरस्य है। जैसे कि—

श्रीचक्र

१. सर्वानन्दमय बिन्दुचक्र— सहस्रार में स्थित परमाकाश सर्वानन्दमय बिन्दुचक्र के समतुल्य है। यहीं भगवती आसीन है। यह स्थान देश-काल-आकार से शून्य है। यहीं पर भगवती त्रिपुरा कामेश्वर के वाम भाग अंक में नित्य निवास करती है। यही आद्य दम्पति है। इस एक ही रूप में गुरु एवं इष्टदेवता दोनों समाविष्ट हैं। सहस्रारस्थ चन्द्र-मण्डल में निवास करने वाली त्रिपुरा देवी की अन्तिम षोडशी कला उनका श्रेष्ठतम आवरण है। यही आदि दम्पति त्रिबिन्दु (तीन रूप) बनता है— मित्रेशनाथ— कामेश्वरी, उड्डीशनाथ— वज्रेश्वरी एवं षष्ठीशनाथ— भगमालिनी।

सत्-रज-तम (त्रिगुण), कामगिरि-उड्डीयान-पूर्णगिरि (पीठत्रय), दिव्य-सिद्ध-मानव (ओघत्रय), लोकत्रय आदि त्रिकों का उद्गम यही त्रिबिन्दु ही है।

२. अष्टार चक्र— त्रिकोण के विकास की अपनी परिणति अष्टार चक्र में होती है। यह सान्ध्य प्रकाश की रक्तिमा से मण्डित है। सूक्ष्मस्वरूपा एवं चिन्मयी वशिनी आदि वाणी की अधिष्ठात्री शक्तियाँ नित्य हैं। ये पूर्णाऽहंभाव प्रदान करती हैं और अपूर्णता के रोग को नष्ट करती हैं। इसीलिये इस चक्र का नाम है— सर्वरोगहर चक्र।

३. अन्तर्दशार चक्र— अष्टार से सम्बद्ध चक्र अन्तर्दशार है। इसमें दसों इन्द्रियों के विषयों की वृत्तियाँ स्थित हैं। यहाँ विद्युत्समा सर्वज्ञा आदि १० शक्तियाँ रहती हैं। इनकी कृपा अर्थात् ऐन्द्रिय विषयों पर विजय। विषयों के आक्रमण से रक्षा करने के कारण ही इस चक्र का नाम है— सर्वरक्षाकर चक्र।

४. बहिर्दशार चक्र— अन्तर्दशार के बाद आता है— बहिर्दशार। यह स्फटिकाभ, शुभ्र, निर्मल चक्र है। इसमें दसों इन्द्रियों के विषय कार्यरूप से निवास करते हैं। इस चक्र का नाम है— सर्वसिद्धिप्रद चक्र।

५. चतुर्दशार चक्र— इसमें मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, १० इन्द्रियाँ अर्थात् कुल चौदह शक्तियाँ निवास करती हैं। यह भी अरुण है। यह भगवती का अन्तःकरण है। इसे सर्वसौभाग्यदायक चक्र कहते हैं।

६. अष्टदल चक्र— इस अष्टदल चक्र में अव्यक्त तत्त्व, महत्तत्त्व, अहंकार एवं ५ महाभूतों की तन्मात्रायें रहती हैं। इस चक्र का नाम सर्वसंक्षोभण चक्र है।

७. षोडशार चक्र— इसमें पाँच महाभूत, १० इन्द्रियाँ एवं १६वाँ मन रहता है। षोडश स्वर प्रत्येक दल पर कामाकर्षिणी आदि नित्य षोडश कलाओं के प्रतीक हैं। इस चक्र का नाम है— सर्वाशापरिपूरक चक्र।

८. भूपुर— श्रीचक्र के ३ भूपुर हैं। प्रथम में त्रिखण्डा मुद्रा के सहित बालसूर्यवत् रत्तभ संक्षोभिणी आदि ९ मुद्रायें हैं। यह चिन्मयी संवित्स्वरूपिणी परा शक्ति के ही स्वरूप में स्थित है। इन्हीं मुद्राओं के रूप में अकुल, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, लम्बिका, आज्ञा की सहस्रार की शक्तियाँ हैं। इन्हीं में ९ नाथ स्थित हैं।

श्रीयन्त्र की उपासना के मुख्य प्रकार (प्रस्तारभेद)

मेरुप्रस्तार कैलासप्रस्तार भूप्रस्तार

१. सर्वानन्दमय (केन्द्रस्थ रक्तबिन्दु) चक्र— इसकी अधिष्ठात्री देवी ललिता या त्रिपुरसुन्दरी हैं। ये अपने आवरण-देवताओं के भेद से कहीं तो षोडश नित्याओं में मुख्य मानी जाती हैं, कहीं अष्ट मातृकाओं में श्रेष्ठतमा कही गई हैं और कहीं अष्टवशिनी देवताओं में श्रेष्ठतमा अधिनायिका कही गई हैं। यह भेद प्रस्तारभेद के कारण है।

२. सर्वसिद्धिप्रद (त्रिकोण चक्र)— यह पीत वर्ण के एक त्रिकोण से निर्मित है। इस त्रिकोण के तीनों कोण कामरूप, पूर्णगिरि एवं जालन्धर पीठ हैं। इसके मध्य में औडयाण पीठ है। तीनों पीठों की अधिष्ठात्री देवता कामेश्वरी, वज्रेश्वरी एवं भगमालिनी हैं, जो कि प्रकृति, महत्तत्त्व एवं अहंकाररूपा हैं।

३. सर्वरोगहर चक्र (अष्टकोण)— काले रंग के त्रिकोण वाले इस चक्र के आठ त्रिकोणों की अधिष्ठात्री देवता क्रमशः वशिनी, कामेश्वरी, मोहिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी एवं कौलिनी हैं। ये शीत, ऊष्ण, सुख, दुःख, इच्छा, सत्त्व, रज एवं तम की स्वामिनी हैं।

सर्वानन्दमय चक्र (प्रथम चक्र) बिन्दु, नाद एवं बिन्दु ७ — इन तीन बिन्दुओं के संयोग से निर्मित है। बिन्दु मणिद्वीप है। यही हृत्पुण्डरीक भी कहा गया है। मणिद्वीप (बिन्दु) में शंकर एवं शक्ति सामरस्ययुक्त रूप में रहते हैं।

तुर्यातीतावस्था महाबिन्दु उन्मनी समना व्यापिका शक्ति नादान्त ० ०ु ।ु ु०ु ०।० ०।ु	षट्चक्र-श्रीचक्र-अवस्थापञ्चक-श्रीविद्या-पीठ-वर्ण-शक्ति-नाथ-कूट-लिङ्ग आदि का सामरस्यात्मक अन्तःसम्बन्ध													'शक्तिकूट' १.सर्वरोगहर २.सर्वसिद्धिप्रद ३.सर्वानन्दमय
तुर्यावस्था नाद रोधिनी अर्धचन्द्र ०।० ⋁ु ु			सुषप्त्यवस्था बिन्दु ÷ु		साम रस्य	ब्रह्म	चर्या-नन्द	तुरीय	अम्बिका शान्ता तुर्या	ज्ञानात्मा	सर्व	ओड्याण	उत्तर	पर-लिङ्ग		१.अष्टार २.त्र्यक्ष ३.बिन्दु
१.सहस्रार	स्वप्न जागरण		१०० दल अमृतादि याकिनी (योगिनी) शुक्ल													
	भूमि विष्णु भारती				ज्ञेय	सोम	उड्डीश	सुषुप्ति	रौद्री क्रिया भगमा लिनी	परमात्मा	शिव	जालन्धर	पश्चिम	इतर-लिङ्ग	सोम कुण्ड-लिनी	'कामराजकूट' १.सर्वसौभाग्य २.सर्वार्थसाधक ३.सर्वरक्षाकर १.चतुर्दशार २.बहिर्दशार ३.अन्तर्दशार
२.भ्रूमध्य में आज्ञाचक्र			२ दल ह, क्ष। हस इत्यादि (अक्षर)। हाकिनी (योगिनी) मज्जा (धातु)													
	भूमि ब्रह्मा		स्वप्न													
३.कण्ठ में विशुद्धिचक्र			१६ दल अ-अः (अक्षर) अमृता-दि डाकिनी (यो-गिनी) त्वक् (धातु)												वैखरी	

	विष्णु भारती ब्रह्मा	क स ह		स्थिति	ज्ञान	सूर्य	षष्ठी-श	स्व-प्न	ज्येष्ठा-ज्ञाना वज्रेश्वरी	अन्त-रात्मा	विद्या	पूर्णा गिरि	दक्षिण	बाण लिङ्ग	सूर्य-कुण्ड-लिनी	'वाग्भवकूट' १.त्रैलोक्यमोहन २.सर्वाशापरिपूरक ३.सर्वसंक्षोभण १.भूपुर २.षोडशदल ३.अष्टदल
४.हृदयस्थान में अनाहतचक्र			१२ दल क-ठ (अक्षर) कालरात्र्यादि राकिनी (योगिनी) असृक् (धातु)												मध्यमा	
	ई-मिथुन र-रुद्राणी ह्-रुद्र	ह्रीं													वह्नि कुण्ड-लिनी	
५.नाभिस्थान में मणिपूरचक्र			१० दल ड-क (अक्षर) डामर्यादि लाकिनी (योगिनी) मास (धातु)												पश्यन्ती	
	विष्णु	ल ई		सृष्टि	ज्ञाता	अग्नि	मित्रेश	जागर	वामा,इच्छा कामेश्वरी	आत्मा	आत्म	काम गिरि	प्राक्	स्वयंभू लिङ्ग		
६.लिङ्गस्थान में स्वाधिष्ठानचक्र			६ दल ब-ल (अक्षर) बन्दिन्यादि काकिनी (योगिनी) मेद (धातु)													
	भारती ब्रह्मा	ए क														
७.गुदा से दो अंगुल ऊपर मूलाधारचक्र		▽	४ दल व-स (अक्षर) परदादि शकिनी (योगिनी) अस्थि (धातु)												परा वाक्	
			दल, अक्षर, परिवार, योगिनयाँ, धातु।	कृत्य	त्रिपुटी	चक्र	नाथ	अव-स्था	शक्ति	आत्मा	तत्त्व	पीठ	अन्वय	लिङ्ग	मातृका	

अक्षरों में तत्त्वों का समावेश तथा चक्रों से सम्बन्ध

		तत्त्व और उनकी किरणें						
चक्र	**वर्ण**	**पृथ्वी**	**जल**	**अग्नि**	**वायु**	**आकाश**	**मन**	**योग**
आज्ञा	ह	२८	२६	३१	२७	३६	३२	१८०
	क्ष	२८	२६	३१	२७	३६	३२	१८०
	योग	**५६**	**५२**	**६२**	**५४**	**७२**	**६४**	**३६०**
विशुद्ध	अ	२.५०	२.२५	३.८७५	३.३७५	४.५०	४	२२.५०
	शेष १५ स्वरों के किरणों की संख्या भी इसी प्रकार है। १६ स्वरों का योग नीचे दिया है—							
	योग	**५६**	**५२**	**६२**	**५४**	**७२**	**६४**	**३६०**
अनाहत	क	४.५०	४.७५	५	४.५०	६	५.२५	३०
	ख	४.५०	४.७५	५	४.५०	६	५.२५	३०
	ग	५	४.२५	५	४.५०	६	५.२५	३०
	घ	४.५०	४.२५	५.५०	४.५०	६	५.२५	३०
	ङ	४.५०	४.२५	५.५०	४.५०	६	५.२५	३०
	च	४.५०	४.२५	५.५०	४.५०	६	५.२५	३०
	छ	४.५०	४.२५	५.५०	४.५०	६	५.२५	३०
	ज	५	४.२५	५	४.५०	६	५.२५	३०
	झ	४.५०	४.२५	५	४.५०	६	५.५०	३०
	ञ	४.५०	४.२५	५	४.५०	६	५.५०	३०
	ट	५	४.२५	५	४.५०	६	५.५०	३०
	ठ	५	४.२५	५	४.५०	६	५.५०	३०
	योग	**५६**	**५२**	**६२**	**५४**	**७२**	**६४**	**३६०**
मणिपूर	ड	५.७५	५.२५	६.५०	५	७	६.५०	३६
	ढ	५.७५	५.२५	६.५०	५	७	६.५०	३६
	ण	५.७५	५.२५	६.५०	५	७	६.५०	३६
	त	५.७५	५.२५	६.५०	५	७	६.५०	३६
	थ	५.५०	५.२५	६	५.७५	७	६.५०	३६
	द	५.५०	५.२५	६	५.७५	७	६.५०	३६
	ध	५.५०	५.२५	६	५.७५	७	६.५०	३६
	न	५.५०	५.२५	६	५.७५	७	६.५०	३६

	वर्ण	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश	मन	योग
	प	५.५०	५	६	५.५०	८	६	३६
	फ	५.५०	५	६	५.५०	८	६	३६
	योग	**५६**	**५२**	**६२**	**५४**	**७२**	**६४**	**३६०**
स्वाधिष्ठान	ब	१०	८.५०	१०	९	१२	१०.५०	६०
	भ	९	९.५०	१०	९	१२	१०.५०	६०
	म	९	८.५०	११	९	१२	१०.७५	६०
	य	९	८.५०	१०	९	१२	१०.७५	६०
	र	९	८.५०	११	९	१२	१०.७५	६०
	ल	१०	८.५०	१०	९	१२	१०.७५	६०
	योग	**५६**	**५२**	**६२**	**५४**	**७२**	**६४**	**३६०**
मूलाधार	व	१४	१३	१५.५०	१३.५०	१८	१६	९०
	श	१४	१३	१५.५०	१३.५०	१८	१६	९०
	ष	१४	१३	१५.५०	१३.५०	१८	१६	९०
	स	१४	१३	१५.५०	१३.५०	१८	१६	९०
	योग	**५६**	**५२**	**६२**	**५४**	**७२**	**६४**	**३६०**

अष्टार (नवयोन्यात्मक) चक्र

ब्रह्माण्ड एवं पिण्डाण्ड ही श्रीचक्र है। इसमें बिन्दु तो शिव है और जीव त्रिकोण है। बिन्दु एवं त्रिकोण दोनों चेतन एवं जड़ तथा उभयात्मक विश्व के त्रिपुटीरूप हैं। बिन्दु एवं त्रिकोण दोनों चक्र जड़, चेतन एवं उभयात्मक विश्व के त्रिपुटीरूप, जड़-चेतनरूप, शिव-शक्तिरूप एवं चित् और चैत्य के पारस्परिक संश्लेष बोधित करते हैं। बिन्दु अन्तर्मुख विलास करने वाली महाशक्ति का अधिष्ठान है तथा त्रिकोण बहिर्मुख विलास करने वाली विमर्श शक्ति का अधिष्ठान है। 'इच्छामात्रं प्रभो सृष्टिः' के अनुसार यहाँ किसी क्रम की अपेक्षा नहीं है। चित् एवं चैत्य का सम्बन्ध जड़-चैतन्य दो भागों में विभक्त हो जाता है। शिव के चार तत्त्व— शिवतत्त्व, शुद्ध विद्यातत्त्व, ईश्वरतत्त्व एवं सदाशिव तत्त्व चार त्रिकोणों में फैल जाते हैं। जीव के चार तत्त्व— कला, राग, अविद्या एवं कञ्चुक शेष चार त्रिकोणों में फैल जाते हैं। ये दोनों मिलकर अष्ट त्रिकोण अष्टार हो जाते हैं। इस स्थिति में महाशक्ति महामाया का स्वरूप ग्रहण करके शिव एवं जीव दोनों की कलायें प्रदर्शित करती है—

चितिश्चैत्यं च चैतन्यं चेतनाद्वय कर्म च।
जीवः कला च देवेशि ! सूक्ष्मपुर्यष्टकं मतम्।।

अष्टारव्यपदेशोऽयं चिन्तिर्वाणौषणादिकम्।
सूक्ष्मं पुर्यष्टकं देव्या मतिरेषा हि गौरवी।।

१. बिन्दु : सर्वानन्दमय चक्र
२. त्रिकोण : सर्वसिद्धप्रद चक्र
३. अष्टकोण : सर्वरोगहर चक्र
४. अन्तर्दशार : सर्वरक्षाकर चक्र
५. बहिर्दशार : सर्वार्थसाधक चक्र
६. चतुर्दशार : सर्वसौभाग्यदायक चक्र
७. अष्टदल : सर्वसंक्षोभण चक्र
८. षोडश दल : सर्वाशापरिपूरक चक्र
९. भूपुर

शिव-शक्ति का प्रकाश अष्ट त्रिकोण में विभक्त होकर महा एक-एक त्रिकोण की एक-एक शक्ति वाग्देवता के रूप रूपान्तरित हो जाती है। मातृका-सृष्टि में (१) जीव-चतुरस्र— य, र, ल, व, (यवर्ग) के रूप में तथा (२) शिवचतुरस्र— श, ष, स, ह (शवर्ग) के रूप में अष्टार (अष्टकोणों) में प्रकाशित होते हैं। 'श' मध्य बिन्दु कूटाक्षर शिवतत्त्व (कूटतत्त्व) है। यवर्ग और शवर्ग की मातृका शक्तियाँ अष्ट त्रिकोण में आठ तत्त्वों की द्योतिका हैं। इस अष्टार में अवतरित होकर महाशक्ति जीव-शिव दोनों की समष्टि रूप हो जाती हैं और फिर अष्ट शक्तियों में विभक्त शीत-ऊष्ण, सुख-दुःख, स्वेच्छा, सत्-रज-तम का विश्व में सञ्चार करती हैं। इन अष्ट शक्तियों (वाग्देवताओं) के आठ नाम निम्नांकित हैं—

१. वशिनी
२. कामेश्वरी
३. मोदिनी
४. विमला
५. अरुणा
६. जयिनी
७. सर्वेश्वरी
८. कौलिनी

प्रमातृपुर— रक्तबिन्दु, त्रिकोण और अष्टकोण चक्र— ये तीनों मिलकर प्रमातृपुर एवं अग्निखण्ड कहलाते हैं। प्रमातृपुर विश्व की स्वप्नावस्था है। यह त्रयसमष्टि सृष्टि-द्योतक है।

१. बिन्दु— इच्छाशक्ति द्वारा सृष्टि सृष्टि के रूप का,
२. त्रिकोण— ज्ञानशक्ति द्वारा सृष्टि स्थिति के रूप का,
३. अष्टकोण— क्रियाशक्ति द्वारा सृष्टि संहार के रूप का द्योतक है।
४. अष्टकोण— क्रियाशक्तिरूप अग्निखण्ड है। यहाँ से अग्नि की १० कलायें विश्व में फैल जाती हैं। विश्व की सूक्ष्म रचना का श्रीगणेश हो जाता है। जीव-शिवा का साम्य भी भंग होने से ये पृथक्-पृथक् भासित होने लगते हैं। यहीं द्वैतारम्भ होता है।

महाशक्ति से मायाशक्ति प्रादुर्भूत होकर चैतन्य की शुद्ध पूर्णता को भंग करके देश-काल, जन्म-मरण, विषय-वासना के द्वन्द्वों को फैलाकर आत्माओं को संसरण चक्र में ड़ाल देती है। अतः सभी पूर्णता को प्राप्त होकर द्वैतभावापन्न हो जाते हैं।

महाशक्ति की इच्छा परा संवित् से समस्त प्रपञ्च का उदय है। निष्फल एवं निस्पन्द परम शिव-शक्ति के संयोग से विश्वातीत अवस्था का त्याग करके सकल रूप धारण

करके उन्मनी स्थिति में विश्वोत्पादक बन जाते हैं। यही शिव का आदिस्पन्द (शिवतत्त्व) है। फिर वह विश्वात्मक रूप ग्रहण करके समनी के स्तर पर विश्वोदय करते हैं। यही है— सदाशिव तत्त्व। सम्पूर्ण विश्व परा संवित् के रूपान्तरण द्वारा चित् (श्वेत बिन्दु की चैतन्यता), चिति (श्वेत बिन्दु की व्यापिनी शक्ति), चित्त (बाह्याभ्यन्तर में क्रियामय होना), चैतन्य (बाहर से लौट कर आन्तर बोध प्राप्त करना), चेतना (आन्तर बोध की दृढ़ धारणा), इन्द्रियकर्म (कर्म-ज्ञान की इन्द्रियों के व्यापार), शरीर (स्थूल देह की इन्द्रियों द्वारा तन्मात्राओं की अनुभूति करना) एवं कला (अग्नि-सूर्य-चन्द्रमा की कलायें)— इन अष्ट भूमिकाओं से व्याप्त हो जाता है। शरीर की सूक्ष्म क्रियाशील शक्तियाँ हैं— सतोगुणात्मक चन्द्रमा, तमोगुणात्मक अग्नि एवं रजोगुणात्मक सूर्य। चतुरस्र के दो प्रकार हैं— शिवचतुरस्र (चार तत्त्वों का चतुरस्र) एवं जीवचतुरस्र (कला, राग अविद्या आदि कञ्चुक)। इन दोनों के योग से अष्टार निर्मित होता है। यह शिव एवं जीव दोनों भावों को निष्पादित करने वाली सामग्री का उद्भावक है। यही है— तत्त्व-सृष्टि। शब्दसृष्टि में भी जीवचतुरस्र (यवर्ग) एवं शिवचतुरस्र (शवर्ग) को जन्म देने वाला अष्टार चक्र ही है।

श्रीचक्र में स्थित त्रिपुटि चक्र— त्रिपुटिचक्र का गति-संघर्षणभाव बाह्य योनि, कोण एवं दलों में प्रस्फुटित होते हैं।

श्रीचक्र की योनि— श्रीचक्र की मध्य योनि का तात्पय है— मूल इच्छाशक्ति का भाव। यह तमभाव है, जो कि कृष्ण वर्ण का है। यह 'मूल तमभाव' 'महाविष्णु तम' कहा जाता है।

मध्य योनि के दोनों ओर योनिज चतुष्कोण होते हैं।

तमज मूल क्रियाभाव— चतुष्कोणों में आस्फुरणायत्तीकरण— मूल रज (आदिनाथ शिव) + मूल सत्त्व (महादुर्गा) का उद्भव। मूल सत्त्व की प्रशान्त गति = सिद्ध योगियों एवं इन्द्र आदि के लिए भी अगम्य। मूल रज = स्पन्द के भाव का बोधक। ये तीन भाव शक्तियाँ = त्रिपुटिचक्र।

श्रीचक्र में स्थित मूल योनि (कारण) विश्वोद्भव का स्थान है। यह उद्भव स्थान (त्रिपुटि) तीन रूपों वाला है।

१. प्रथम ऊर्ध्व स्थित बिन्दु त्रिपुरा के मुख का बोधक है।

२. शेष दो त्रिपुरा के स्तनद्वय के बोधक हैं।

३. ये तीनों सूर्य, चन्द्र, अग्नि के बोधक हैं (किन्तु प्रतीकरूप में)।

४. ये तीनों परा बिन्दु की प्रकाश + विमर्श अवस्थाओं के नाम हैं। ये सृष्टिकाल में उद्भूत होती हैं। इनके चतुर्दिक ५ महाभूतों एवं ३ गुणों की द्योतिका नित्यायें (आवरण देवता) स्थित रहती हैं।

इस प्रकार श्रीचक्र सम्पूर्ण विश्वसत्ता, उसके सृजन, पालन, संहार एवं सृष्टि-स्थिति-प्रलय का द्योतक है। श्रीचक्र मातृकामय भी है; अतः इसमें शब्दसृष्टि और अर्थसृष्टि भी सन्निविष्ट है। मातृका के भी चन्द्र, सूर्य, अग्नि खण्ड हैं और श्रीचक्र के भी।

ॐकार (शब्दब्रह्म) के पाँच अवयव अ, उ, म, नाद एवं बिन्दु श्रीचक्र के क्रमशः सृष्टि, स्थिति, संहार, अनाख्या एवं भासा के प्रतीक या बोधक हैं। श्रीचक्र बाह्य सृष्टि एवं सूक्ष्म सृष्टि दोनों का द्योतक है।

महाबिन्दु

१. श्वेत बिन्दु ही महाबिन्दु है। यही चैतन्य ज्योतिर्लिंग, स्वयम्भू लिंग एवं कामरूप पीठ कहलाता है। यही अहं रूप में स्फुरित होता है।

२. महाबिन्दु जब क्रीड़ारत होता है, तब शिव-शक्ति का एकीभूत साम्य भंग हो जाता है और शक्ति शिव से पृथक् हो जाती है।

३. श्वेत बिन्दु-त्रिकोण में स्थित रक्त बिन्दु में प्रवेश कर जाता है। इससे महाशक्ति परा वाक् के रूप में व्यक्त हो जाती है।

४. महाशक्ति के परा वाक् के रूप में अपने को स्फुरित करने पर समस्त सूक्ष्म ब्रह्माण्ड ॐकार से गूँज उठता है। अतः सूक्ष्म ब्रह्माण्ड तुरीयातीतावस्था अतिक्रान्त करके तुरीयावस्था में पहुँच जाता है। समस्त ब्रह्माण्ड बिन्दुमय चैतन्य रूप ग्रहण कर लेता है।

इसी समय परा वाक् की भूमि में परा शक्ति अपने अन्तर्गर्भित विश्व के प्रति दिदृक्षु होती है। यह नित्य मण्डल समस्त विक्षोभों, अस्थैर्यों, अशान्तियों से रहित शान्तिमयावस्था है।

७. महाबिन्दु में स्थित शिव-शक्ति की कला शान्त्यतीत कला है। यहाँ शिवतत्त्व १० एवं शक्तितत्त्व ५ गुप्त भुवनमय है। इन्हीं १५ गुप्त भुवनों को बैन्दवपुर कहते हैं।

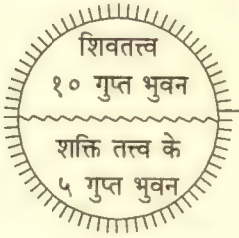

शिवतत्त्व के १० गुप्त भुवन

अनाश्रित अनाथ अनन्त व्योम व्यापिनी ऊर्ध्व मोचिनी रोचिका दीपिका दधिका

शक्तितत्त्व के गुप्त भुवन

शान्त्यतीत शान्ति विद्या प्रतिष्ठा निवृत्ति

अन्तः कलायें

शान्ति विद्या प्रतिष्ठा निवृत्ति

शान्तितत्त्व के १८ गुप्त भुवन

सदाशिवतत्त्व	ईश्वरतत्त्व	शुद्धविद्या
(१ भुवन)	(८ भुवन)	(९ भुवन)

८. महाबिन्दुरूपी तत्त्वातीतावस्था में परा वाक्, परा संवित् एवं निष्कल ब्रह्म अनिर्वचनीय हैं। इस समय महाशक्ति ब्रह्म में लीन रहती है और ब्रह्म अपने भीतर अपने को ही देखता रहता है।

अपने आप मात्र को देखना

स्थूल जगत् में बाह्यमुखी होकर शरीरात्म भावयुक्त निकृष्ट पशुदशा में अपने आप मात्र को स्वार्थी दृष्टि से देखना (पशु अवस्था)	तुरीयावस्था, मात्र अपने-आपको भीतर देखना = उच्चतम उपलब्धि (परम शिवावस्था)

९. निष्कल ब्रह्म के भीतर स्थित विश्व की स्मृति का जागरण → अहमस्मि का प्रकाशविमर्श चतुर्दिक प्रसृत। → निष्कल ब्रह्म का सकल ब्रह्म में रूपान्तरण। → इससे पार्थक्य भाव में शिव + शक्ति का पुनः सम्बन्ध → परा वाक् का नाद के रूप में उद्भव।

→ महाशक्ति का सिसृक्षावश इच्छाशक्तिमयी कामिनी बनकर स्पन्दित होना।

(भगवती की इच्छा = स्थूल, सूक्ष्म, कारण जगत् का बीज)।

१०. शक्ति की दो अवस्थायें— निष्कल : उन्मनी एवं समनी : सकल ब्रह्ममयी अवस्था।

उन्मनी : निष्कल ब्रह्म में लीन शक्ति की अवस्था। उन्मनी + समनी की सन्धि की अवस्था = नाद।

नाद का प्रकट होकर एक बिन्दु में रूपान्तरण → सृष्टि का आरम्भ।

११. महाबिन्दु में—

क. सत् के प्राधान्य से शिव-शक्ति सृष्टि के रूप में।

ख. नाद में रज की प्रधानतावश क्रियारूप में।

ग. बिन्दु के एकीकरण में तम की प्रधानता से विसर्ग हो जाते हैं।

१२. महाबिन्दु (श्वेत बिन्दु) रक्त बिन्दु में एवं रक्त बिन्दु विराट् रूप में रूपान्तरित हो उठते हैं।

१३. विराट् (नाद + बिन्दु के भीतर शक्ति की कलाओं की भिन्नता के कारण) चार रूपों में विभक्त हो जाता है— ब्रह्माण्ड, मूलाण्ड, मायाण्ड एवं शक्त्यण्ड।

भुवनों की संख्या—

शुद्ध तत्त्व में ३३ भुवन	५ तत्त्व
शुद्धाशुद्ध तत्त्व में २७ भुवन	७ तत्त्व
अशुद्ध तत्त्व में ६४ भुवन	२४ तत्त्व
कुल योग १२४ भुवन	**३६ तत्त्व**

बिन्दु

१. प्रलयोपरान्त जब श्वेत बिन्दु (महाबिन्दु) रक्त बिन्दु (बिन्दु) के रूप में रूपान्तरित हो जाता है तब समस्त आत्मायें क्रीड़ा के लिए जाग जाती हैं।

२. जब तक रक्त बिन्दु का प्रकटीकरण नहीं होता तब तक विश्व ब्रह्म में त्रिपुटीशून्य अवस्था में रहता है।

३. रक्त बिन्दु विश्व का परम बीज है। रक्त बीज अर्थात् विश्व विकास का प्रारम्भ। रक्त बिन्दु महाबिन्दु को अपने भीतर गुप्त कर लेता है। यही है— विश्वसृजन का प्रथम सोपान।

४. रक्त बिन्दु अर्थात् जगत् की मूल योनि।

५. रक्त बिन्दु ही महात्रिपुरसुन्दरी, षोडशी, कामेश्वरी, श्री, सुन्दरी एवं ललिता है।

६. बिन्दुचक्र के रक्त बिन्दु में बीजात्मना समस्त जगत् रहता है। अतः बिन्दुचक्र का ही प्राधान्य है।

७. बिन्दुचक्र में कामेश्वर के ही साथ भगवती कामेश्वरी भी नित्य नित्यानन्दमयी होकर विहार करती हैं। इसीलिये इस चक्र का नाम सर्वानन्दमय चक्र है। कालिकापुराण में कहा भी गया है—

सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति।
चित्तमयोऽहङ्कारः सुव्यक्तो हार्ण समरसाकारः।
शिवशक्तिमिथुनपिण्डः कवलीकृतभुवनमण्डलो जयति।।

८. प्रलयोपरान्त ब्रह्म में शक्ति के प्रतिबिम्बित होने पर पूर्णोऽहं का भाव विमर्श उदित होता है। यही भाव समग्र विश्व की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय का कारण है और यही है नाम-रूप की अव्याकृतावस्था।

९. यही विमर्श शक्ति है। तान्त्रिक नागानन्द कहते भी हैं— 'विमर्शो नाम विश्वाकारेण विश्वप्रकाशेन विश्वसंहारेण वा अकृत्रिमोऽहमिति स्फुरणम्'।

१०. अहं यह नैसर्गिक स्फुरत्ता ही विमर्श शक्ति है। यह शक्ति-सृष्टि-स्थिति-लय का कारण है।

११. पूर्ण अहंभाव (शुद्धाहन्ता) ही ब्रह्म है; किन्तु विमर्श शक्ति के दर्पण में प्रतिबिम्बित हुये विना आत्मा की स्फुट अभिव्यक्ति सम्भव नहीं होती।

१२. अहम्भाव विमर्शान्वित है। अहम्भावरूप शिव-शक्ति के 'अ' एवं 'ह' तथा ः ये तीन वर्ण हैं। इनमें 'अ' प्रकाशरूप, 'ह' विमर्शरूप एवं ं बिन्दुरूप है। इस बिन्दु के भीतर प्रकाश-विमर्श का सामरस्यात्मक चैतन्य पूर्णतः स्फुरित रहता है। यही कामपीठ भी कहा जाता है। इसी स्तर से बीजरूप विश्व नित्यमण्डल का आकार ग्रहण करने लगता है।

१३. बिन्दुमय परा वाक् से ही ॐकार— अ-उ-म के रूप में तीन वाणियों के रूप मे में, तीन लोकों के रूप में, तीन देवों के रूप में, सृष्टि-स्थिति-संहार के रूप में, तीन गुणों के रूप में एवं वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री के रूप में विकसित होता है।

१४. रक्त बिन्दु में शुद्धाशुद्ध तत्त्व के भीतर विद्या कला है, जिसके अन्तर्गत सात तत्त्व एवं सत्ताइस भुवन हैं—

मायातत्त्व में ८ भुवन हैं।
कालतत्त्व में २ भुवन हैं।
कलातत्त्व में २ भुवन हैं।
विद्यातत्त्व में २ भुवन हैं।
नियतितत्त्व में २ भुवन हैं।
रागतत्त्व में ५ भुवन हैं।
पुरुषतत्त्व में ६ भुवन हैं।

१५. विमर्श शक्ति ही सिसृक्षा हेतु बिन्दुरूप में उदित होती है। वही तीन रूपों में व्यक्त होती है—

कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा।

१६. बिन्दु तीन भागों (त्रिकोणों) में उदित होती है। बिन्दु त्रिकोणरूप में परिणत होता है या अपने रश्मिस्वरूप को त्रिकोणाकार प्रकट करता है—

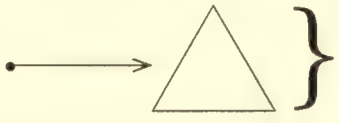

त्रिकोण इसी बिन्दु का बहिर्मुखी विकास है।

बिन्दुरूप परा वाक् से ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरीरूप त्रिपुटी के माध्यम से त्रिकोणात्मक शब्द-सृष्टि होती है। इस चतुष्टय को शान्ता, वामा, ज्येष्ठा एवं रौद्री आख्या प्राप्त है। इन्हें ही अम्बिका, इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया कहा जाता है।

१७. जब बिन्दु शक्तिनिरपेक्ष रहकर पूर्णाहंभाव से सोऽहं विमर्श को स्फुरित करती है, तब वह शिवतत्त्व कहलाती है।

बिन्दु त्रिकोण में विभक्त हो जाता है—

सेयं त्रिकोणरूपं याता त्रिगुणस्वरूपिणी माता।।

(कामकलाविलास-२५)

महाबिन्दु, बिन्दु एवं त्रिकोण— इन तीन चक्रों में क्रमशः तीन तत्त्वों में पाँच कलाओं के भीतर ३६ तत्त्व हैं—

१. महाबिन्दु : शुद्ध तत्त्व में : ५ तत्त्व : ३३ भुवन : शान्त्यतीत। शान्ति कला

२. बिन्दु : शुद्धाशुद्ध तत्त्व में : ७ तत्त्व : २७ भुवन : विद्याकला

३. त्रिकोण : अशुद्ध तत्त्व में : २४ तत्त्व : १६४ भुवन : प्रतिष्ठा। निवृत्तिकला

प्रकाशैकस्वभाव परशिवभट्टारकरूप सूर्य की रश्मियों के समूह का विमर्शरूपी स्वच्छ मुकुर में स्वस्वरूपावलोकनरूप प्रतिफलन होने के कारण प्रतिप्रकाश द्वारा सुरम्य चित्तरूपी दीवार पर महाबिन्दु प्रकाशित होता है।[१]

श्वेत एवं लोहित वर्ण वाले बिन्दुद्वय अन्योन्य प्रसरणशील शिव-शक्ति हैं, जो अपने पारस्परिक आनन्दोपभोग या गुप्त ऐकान्तिक पारस्परिक आनन्द क्रीड़ा में संकुचित एवं प्रसृत हो रहे हैं। वे शाब्दी एवं आर्थी सृष्टि के कारण हैं तथा परस्पर में प्रविष्ट होते हुये भी परस्पर परस्पर से पृथक् हो रहे हैं। बिन्दु, जो कि अहंकार का रूप है, श्वेत एवं लोहित बिन्दुओं का सामरस्य है। सूर्य काम है। काम इसलिये है; क्योंकि कमनीय है। कला बिन्दुद्वय है, जो कि चन्द्रमा एवं अग्नि में स्थित है।[२]

यह कामकला विद्या है, जो कि देवी के चक्रों के क्रम का वर्णन करती है। जो इसे जानता है, वह मुक्त एवं महासुन्दरीस्वरूप हो जाता है। सर्जनोन्मुख रक्त बिन्दु से नाद, ब्रह्मांकुरस्वरूप रव उद्भूत हुआ। उस ध्वनि से आकाश, अग्नि, जल, पृथ्वी एवं वर्ण-माला के अक्षर उत्पन्न हुये। फिर श्वेत बिन्दु से भी आकाश, वायु, जल एवं भूमि उत्पन्न हुये। अण्वादिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थों से लेकर ब्रह्माण्डपर्यन्त समस्त विश्व इन्हीं पाँच विकृतियों से उद्भूत हुये।[३]

प्रकाश-विमर्शात्मक बिन्दुद्वय में कोई भेद नहीं है। तद्वत् विद्या एवं देवता (वेदक एवं वेद्य) में भी रञ्चमात्र भेद नहीं है। वाक् एवं अर्थ दोनों परस्पर नित्य संयुक्त हैं और ये दोनों शिव-शक्तिमय हैं। शिव-शक्ति सृष्टि-स्थिति-लय के रूप में तीन रूपों में विभक्त हैं और तीन बीजों (वाग्भव, कामराज एवं शक्तिबीज) के रूप में अवस्थित हैं। ज्ञात, ज्ञान एवं ज्ञेय तीन बिन्दु एवं बीज के विभिन्न रूप हैं। तीनों बिन्दु तीनों धामों, तीनों

---

१. कामकलाविलास-४

२. कामकलाविलास-५-७

३. कामकलाविलास-७-१०

पीठों एवं तीनों शक्तियों के भेद से भी जाने जाते हैं। उनमें ही क्रमानुसार तीन लिंग एवं उसी प्रकार तीन मातृकायें भी स्थित हैं। अतः त्रिप्रकार शरीरिणी विद्या देवी हैं। वे ही तुरीय पीठ एवं समस्त भेदों की मूल हैं।[१]

भगवती त्रिपुरा (नित्या) मन्त्रस्थित पन्द्रह अक्षरों के स्वरूप वाली है और उसी रूप में ज्ञात है। यह नित्याओं द्वारा आच्छादित है। पन्द्रह नित्यायें तिथियों के आकार में स्थित हैं और तिथियाँ शिव-शक्ति का सामरस्य हैं। ये रात-दिन से युक्त हैं, श्रीविद्या के मन्त्र के वर्ण हैं और प्रकाश-विमर्श दो प्रकृतियों वाली हैं। श्रीचक्र समस्त शक्तियों से तादात्म्य रखता है। त्रैलाक्य आदि नव चक्रों में क्रमशः बिन्दु, कला, ज्येष्ठा, रौद्री, वामा, विषघ्नी, दूतरी, सर्वानन्दा, नव शक्तियाँ स्थित हैं। समस्त विश्व श्रीचक्रात्मक है। तीन बिन्दुओं द्वारा एवं व्यष्टि-समष्टि दोनों रूपों से स्वरों एवं व्यञ्जनों द्वारा निर्मित श्रीविद्या ३६ तत्त्वों से भी युक्त है और उनसे अतीत भी है तथा केवल रूप में अद्वितीय भी है।[२]

क्रोधभट्टारक ने भी श्रीचक्र एवं जगत् की एकात्मता स्वीकार की है—

श्रीचक्रं श्रुतिमूलकोशमथितं संसारचक्रात्मकम्।

श्रीचक्र की उत्पत्ति शिव + शक्ति (या शिवचक्र + शक्तिचक्र) के संयोग से होने के कारण श्रीचक्र शिवशक्त्यात्मक है—

तच्छक्तिपञ्चकं सृष्ट्या लयेनाग्निचतुष्टयम्।
पञ्च-शक्ति-चतुर्वह्नि-संयोगाच्चक्र-सम्भवः।। (वामकेश्वरतन्त्र)

श्रीचक्र कामकलात्मक है— 'चक्रं कामकलारूपप्रसारपरमार्थः'।

परा शक्ति = देवता एवं श्रीचक्र का सूक्ष्म रूप : 'अनयोस्सूक्ष्माकारा परैव सा स्थूल-योश्च कापि भिदा।' (कामकलाविलास-२१)

महेशी और श्रीचक्र में रञ्चमात्र भी भेद नहीं है। देवता एवं श्रीचक्र में भी स्थूल रूप से कोई भेद नहीं है। फिर भी देवी की मातृका के साथ, देवी की श्रीचक्र के साथ, देवी की श्रीविद्या के साथ, देवी की जगत् के साथ, देवी की गुरु के साथ, देवी की उपासक के साथ एवं देवी की शिव के साथ अभेदात्मकता एक अनुसन्धेय रहस्य है। भगवती के विभिन्न रूप ही तो परा, पश्यन्ती आदि वाक् तत्त्व हैं।

अष्टकोणों वाला चक्र, जो कि श, ष, स, एवं पवर्ग से मिलकर निर्मित होता है, मध्यकोण का विस्तार है। ये नौ कोण बिन्दु के साथ मिलकर 'दशक' का निर्माण करते हैं, जो कि चित् के प्रकाश से प्रकाशित है। इन प्राथमिक चार चक्रों के प्रकाश से बहिर्दशार चक्र संयुक्त है। १४ कोणों वाला यह चक्र प्रकट होता है, जिसमें 'अ' से प्रारम्भ कर अन्य चौदह स्वर स्थित हैं। परा, पश्यन्ती, स्थूल मध्यमा द्वारा ५१ अक्षरों वाली वैखरी उत्पन्न हुई। कवर्ग से आरम्भ होने वाले अक्षरों के ८ वर्ग, जो कि वैखरी शक्ति-

१. कामकलाविलास-११-१८ २. कामकलाविलास

रूपात्मक हैं, सर्वसंक्षोभण चक्र के दलों पर स्थित हैं। सर्वाशापरिपूरक (षोडशदल कमल) के दलों पर स्वरगण अंकित हैं। अष्टदल एवं षोडशदल के ऊपर स्थित तीन वृत्त बिन्दुत्रय से उद्भूत तेजस्त्रय के विकार हैं— सोम-सूर्य अग्न्यात्मक हैं। ये तीनों वृत्त भूपुर में स्थित हैं।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी देवी बिन्दुत्रय चक्र (सर्वानन्दमय चक्र) में आसीन हैं। वे कामेश्वर की क्रोड़ में स्थित हैं। उन्होंने चन्द्रमा की एक कला को अपने मस्तक पर आभूषण के रूप में स्थापित कर रक्खा है। वे अपने हाथों में पाश, अंकुश, इक्षुदण्ड एवं पाँच पुष्पबाण धारण कर रक्खी हैं। वे उदीयमान सूर्य की भाँति रक्तवर्णा हैं। चन्द्रमा, सूर्य एव अग्नि उनकी तीन आँखें हैं—

आसीना बिन्दुमये चक्रे सा त्रिपुरसुन्दरी देवी।
कामेश्वराङ्कनिलया कलया चन्द्रस्य कल्पितोत्तंसा।।३७।।

पाशांकुशेक्षुचापप्रसूनशरयञ्च काञ्चित् स्वकरा।
बालारुणारुणाङ्गी शशिभानुकृशानुलोचनं त्रितया।।३८।।

वही यह सर्वोत्कृष्ट, सर्वोपरि एवं महासाम्राज्ञी जब चक्र के रूप में परिणत हो जाती हैं तब उनके शरीरावयव आवरण देवता के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं—

सेयं परा महेशी चक्राकारेण परिणमेत् यदा।
तद्देहावयवानां परिणतिरावरणदेवतास्सर्वाः।।

वे कामेश्वर-कामेश्वरीरूप दम्पति तीन बिन्दुओं से विरचित त्रिकोण में स्थित हैं। वे जो कि अष्टकोणों वाले चक्र में रहती हैं, वशिनी आदि देवियाँ हैं, जो कि सूर्य की भाँति रक्तवर्ण की हैं। अष्टकोणात्मक चक्र देवी का अष्टात्मक सूक्ष्म शरीर है, जो कि चक्र है तथा जिसको आत्मा संवित् है— 'चक्रतनोस्संविदात्मनो देव्याः'।

सर्वरक्षाकर चक्र में स्थित निगर्भयोगिनी नामक शक्तियों का स्वरूप क्या है? उसकी शक्तियाँ सर्वज्ञ आदि रूपों को धारण करके आन्तर दशकोणात्मक चक्र में निवास करती हैं और शरत्कालीन चन्द्र के समान सुन्दर आकृति में सुशोभित होती हैं।[१]

सर्वरक्षाकर चक्र के बाह्यभूत एवं ऊपर स्थित पंक्ति के कोणों में वे प्रमुख योगिनियाँ स्थित हैं, जिसमें प्रथम सर्वसिद्धिप्रद है। वे देवी के ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय के विषय हैं और वे श्वेत तथा आभूषण-भूषित हैं। वे शक्तियाँ, जो १४ त्रिकोणों वाले चक्र में स्थित हैं, देवी के (मन एवं इन्द्रियों के) १४ करणों के प्रकाशक स्फुरण हैं। वे सान्ध्य सूर्य की भाँति रक्त वर्ण वाले वस्त्र पहनी हुई हैं। ये सम्प्रदाय योगिनियाँ हैं। अव्यक्त, महत्, अहंकार एवं पञ्चतन्मात्रायें अष्टदल कमल में नारी का रूप धारण करके अत्यन्त प्रकाशित रूप में निवास करती हैं और वे गुप्ततर योगिनियाँ कहलाती हैं।[२]

---

१. कामकलाविलास २. कामकलाविलास

त्वगादिक ७ धातुयें एवं आकार ब्राह्मी आदि ८ माताओं के रूप में व्यक्त होती हैं। वे भूपुर में निवास करती हैं। उसकी अणिमादिक सिद्धियाँ रमणीया तरुणी का रूप धारण करती हैं और अन्य विद्याओं द्वारा प्राप्त होती हैं।[१]

परम गुरुस्वरूप आदिनाथरूपी परम शवि, जो कि बिन्दु से एकीभूत हैं, परमानन्द का अनुभव करते हैं। ये वे ही हैं, जो अपनी विमर्श शक्ति के रूप में क्रमशः भिन्न हो गये हैं और कामेश का रूप धारण किये हुये हैं।[२]

गुरु शिव ने, जो कि उड्डीयान पीठ में निवास करते हैं, सत्ययुग के काल में अपनी शक्ति विमर्शरूपिणी कामेश्वरी को आत्मविद्या प्रदान किया। भगवती ललिता आत्मा ही हैं—

स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा।
लौहित्यं तद्विमर्शः स्यादुपास्तिरिति भावना।। (भावनोपनिषद्)

पञ्चभूत, विश्व, देवी एवं मूल विद्या अभिन्न हैं—

पञ्चभूतमयं विश्वं तन्मयी सा सदानघे।
तन्मयी मूलविद्या च तथा च कथयामि ते।।[३]

कुण्डलिनी श्रीविद्या एवं श्रीदेवी से अभिन्न है। इससे अपने को अभिन्न देखना श्रीविद्या का रहस्यार्थ है (वरिवस्यारहस्यम्)।

माता, विद्या, चक्र, स्वगुरु एवं साधक में अभेद है : कौलिकार्थ (वरिवस्यारहस्यम्-१०८)।

श्रीविद्या एवं चक्र अभिन्न हैं (वरिवस्यारहस्यम्-९६)।

श्रीविद्या एवं देवी में अभेद है (वरिवस्यारहस्यम्-९१)।

श्रीचक्र योगिनी (९४), नक्षत्र (९३), राशि (९५), विद्या (९६) एवं ग्रह (९२) से अभिन्न है (वरिवस्यारहस्यम्)।

ब्रह्म और जगत् तथा जगत् एवं विद्या में अभेद है (वरिवस्यारहस्यम्-८१)।

परमशिव एवं दीक्षागुरु तथा उपासक में अभेद है (वरिवस्यारहस्यम्-८२)।

त्रिपुरसुन्दरी गणेशी (८३), ग्रह (८४), नक्षत्र (८५), योगिनी (८६), राशि (८७), गणेश (८८), ग्रह (८९), राशि (९०), ग्रह (९२), नक्षत्र (९३), योगिनी (९४) एवं राशि (९५) हैं।[४]

श्रीविद्या एवं श्रीचक्र की एकता—

क. वाग्भव कूट का अर्थ— सूक्ष्म बुद्धि की विस्तृत व्याप्ति।

ख. कामराज कूट का अर्थ— शौर्य, धन, स्त्री, कीर्ति का आधिक्य।[५]

---

१. कामकलाविलास
२. कामकलाविलास
३. कामकलाविलास
४. वरिवस्यारहस्यम्
५. वरिवस्यारहस्यम्

देव्या रूपान्तरत्वेन विद्यायास्तदभेदतः।
गणेश-ग्रह-नक्षत्र-योगिनी-राशि-पीठता।। (वरिवस्यारहस्यम्)

एवं द्वादशसंख्यैर्घटनाच्चक्रस्य राशित्वम्। (९५)[१]

एवं षड्भिर्योगाच्छ्रीचक्रं योगिनीरूपम्। (९४)[२]

पाश, अंकुश, धनुष और बाण— ये ४ आयुध (कामेश्वर-कामेश्वरी के तेज से निर्मित) अष्टार में स्थित हैं। वामा-ज्येष्ठा-रौद्री तथा इच्छा-ज्ञान-क्रियामय त्रिकोण ही तीन प्रकार से विभक्त होकर दो शक्ति एवं एक वह्नि के संयोग से अष्टार चक्र बन जाता है और वही अष्टार चक्र त्रिधा विभक्त होकर वह्निशक्ति से नव चक्रात्मक बन जाता है। यह अष्टार चक्र ही श्रीचक्र है—

चितिचैतन्यञ्च चैतन्यं चेतनाद्वय कर्म च।
जीवः कला च देवेशि ! सूक्ष्मं पुर्यष्टकं मतम्।। (स्वच्छन्दतन्त्र)

युगल तेज ही अपने सूक्ष्मरूप पुर्यष्टक में विभक्त होकर वशिन्यादि देवताओं के रूप से अष्टार में अधिष्ठित हो जाता है।

अन्तर्दशार : सर्वरक्षाकर चक्र

जगत् की स्वप्नावस्था— जब विश्व अष्टभूमिका की स्थिति में रहता है, तभी उसकी उस स्वप्नावस्था के तन्मात्रात्मक शरीर के भीतर स्थित शरीरांगों में क्रिया-सञ्चार प्रारम्भ हो जाता है। यहीं अहं और इदम् पृथक्-पृथक् हो जाते हैं। अनल की १० कलायें विश्व के सूक्ष्मतन्मात्र शरीर में प्रसृत हो जाती हैं। अग्नि की ये अन्तःस्थित कलायें महाशक्ति की दश शक्तियों के रूप में दश त्रिकोणों (५ ज्ञानेन्द्रियाँ + ५ कर्मेन्द्रियाँ) में विश्व में सञ्चार हेतु चतुर्दिक प्रसृत हो जाती हैं। ये १० शक्तियाँ निम्नांकित हैं—

१. सर्वज्ञा
२. सर्वशक्ति
३. सर्वैश्वर्यप्रदा
४. सर्वज्ञानमयी
५. सर्वव्याधिविनाशिनी
६. सर्वाधारस्वरूपा
७. सर्वपापहरा
८. सर्वानन्दमयी
९. सर्वरक्षास्वरूपिणी
१०. सर्वेप्सितफलप्रदा

कामेश्वर एवं कामेश्वरी के तेजयुग्म इन्द्रियों के रूप से बिन्दु, त्रिकोण, अष्टाररूप में दशधा विभक्त हो जाते हैं। इस प्रकार शुद्ध आध्यात्मिक तन्मात्रात्मक लिंगशरीर उद्भूत हो उठता है। प्रकृति-विकृत्यात्मक उभयरूप अन्तर्दशार चक्र को स्थितिचक्र, प्रमाणपुर एवं सौरखण्ड कहते हैं। यह शुद्ध तत्त्व के अन्तर्गत विद्यातत्त्व है।

अन्तर्दशार एवं बहिर्दशार के द्वारा लिंगशरीर का उद्भव होता है।

---

१. वरिवस्यारहस्यम् २. वरिवस्यारहस्यम्

अन्तर्दशार के दश कोण १० इन्द्रियों से घटित हैं। सुभगोदय में कहा भी गया है—

अन्तर्दशार वसुधा ज्ञान कर्मेन्द्रियाणि च।
महात्रिपुरसुन्दर्या इति सञ्चिन्तयाम्यहम्।।

अष्टार चक्र में कामेश्वर-कामेश्वरी के रूप में जो तेजयुग्म वशिनी आदि या पुर्यष्टक (कारण) रूप में अवस्थित था, वहीं तेजोयुग्म अन्तर्दशार में इन्द्रियरूप से दशधा विभक्त हो जाता है और सर्वज्ञा, सर्वशक्ति, सर्वैश्वर्यप्रदा आदि शक्तियों के रूप से पूजित होता है। इसी का नाम है— सर्वरक्षाकर चक्र। इसकी रक्षा द्विविध इन्द्रियों से होती है, इसलिये भी इसका नाम सर्वरक्षाकर है।

बहिर्दशार चक्र : सर्वार्थसाधक चक्र

इन्द्रियरूप से दशधा विभक्त तेजयुग्म पुनः इन्द्रियों के विषयों के रूप में (पञ्च-तन्मात्रा एवं पञ्चभूत में) दशधा विभक्त होकर प्रकाशित होता है। यही दशधा विभाजन बहिर्दशार कहलाता है—

बाह्यो दशारभागोऽयं बुद्धिकर्माक्षगोचरः।

बहिर्दशार चक्र सर्वार्थसाधक चक्र के नाम से प्रख्यात है। इस चक्र में उक्त तेजो-युग्म ही दशधा विभक्त होकर सर्वसिद्धिप्रद आदि दश देवताओं के रूप में पूजित होता है। बहिर्दशार के चारो कोणों में चार मर्मस्थान हैं। इसके अन्तर्भाग में चार त्रिकोणों की भावना की जाती है। इन चार त्रिकोणों का एक चतुरस्र माना जाता है। इसके एक-एक कोण में प्रकृति, अहंकार, बुद्धि एवं मन— ये चार तत्त्व एवं प, फ, ब, म— ये चार मातृकामन्त्र हैं। मकार जीवरूप त्रिकोण में संलग्न है। अन्तर्दशार में टवर्ग एवं तवर्ग तथा बहिर्दशार में कवर्ग, चवर्ग— २० मातृकाबीज दोनों दशारों के बीस कोणों में स्थित है। इनमें चतुरस्रों के चार बीज मिला देने पर २४ वर्ण हो जाते हैं। इन २४ वर्णों में २-२ वर्णों के संयोग से एक ग्राह्य एवं दूसरा ग्राहक (बाह्य विषय + आभ्यन्तर तन्मात्रा और इन्द्रिय) से सूर्य की बारह कलाओं का निर्माण होता है। इनमें प + फ तथा ब + भ के संयोग से प्रकृति एवं मनरूप दो कलाओं का निर्माण होता है। ये चतुरस्र की प्रधान कलायें हैं। चतुरस्र बिम्बचक्र है और शेष १० कलायें इन्द्रिय-तन्मात्ररूप अवयव कलायें हैं। ये बिम्बचक्र की रश्मि के रूप में दशारद्वय में रहती हैं। इसी कारण दशारद्वय एवं चतुरस्र सौरखण्ड, प्रमाणपुर एवं जागरात्मक कहा जाता है।

जब अन्तर्दशार के विषय बहिर्दशार (इन्द्रियाँ) के तत्त्वों को अपनी व्याप्ति से आच्छन्न नहीं करते— जब विषय अपने-अपने निकट आभ्यन्तर रूप में विलीन रहते हैं, तब १० इन्द्रियाँ एवं पञ्चतन्मात्रायें, मन एवं पुरुष— १७ तत्त्वों का लिंगशरीर निर्मित होता है। मूल कारणस्वरूप सूक्ष्म बिन्दु बाह्य रूप में विकसित होकर इन्द्रिय बनकर लिंग-शरीर में परिणत हो जाता है। अन्ततः विकसित होते-होते स्थूल शरीर बन जाता है। इन्हीं अवस्थाओं की सूचना दशारद्वय देते हैं।

बहिर्दशारस्वरूप यह दशधा विभाजन विश्व का स्वप्नमय जागृतभाव है। इसे स्थिति-चक्र, सौरखण्ड एवं जागरात्मक प्रमाणपुर कहते हैं। शुद्धाशुद्ध तत्त्वान्तर्गत यह चक्र आत्मतत्त्व है। यहाँ माया प्रलयाकल भाव में स्थित है। प्रलयाकल भाव में विश्व के समस्त जीव अज्ञान एवं माया दोनों से आच्छादित होते हैं। यही से अज्ञानारम्भ होता है। यहाँ सृष्टि के उद्देश्य से माया, कला, राग, अविद्या आदि कञ्चुक संश्लिष्ट रहते हैं। पुरुषतत्व 'अहं' रूप में एवं 'इदम्' प्रकृति के रूप में यहाँ पृथक्-पृथक् रहते हैं।

यहाँ चक्रों में गुप्त विषयादिक प्रकट हो जाते हैं। यहाँ जड़-चेतन अपने-अपने लिये पृथक् हो जाते हैं।

चतुर्दशार चक्र

कामेश्वर-कामेश्वरीरूप तेजोयुग्म चतुर्दशार के १४ कोणों में विभक्त होकर सर्वसंक्षोभिणी आदि १४ शक्तियों के रूप में पूजित होता है। ये १४ शक्तियाँ पिण्डाण्ड में १० इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकाररूप अन्तःकरणचतुष्टय के साथ १४ करणों में वास करती हैं— 'चतुर्दशार वसुधाकरणानि चतुर्दश' (सुभगोदय)।

चतुर्दशार चान्द्रखण्ड एवं जड़ होने से 'सुषुप्तिपुर' कहलाता है। चौदह कोणों से १४ कलायें— स्वरवर्ग में अकार से औकार तक, ह्रस्व एवं दीर्घ मिलाकर १४ वर्ण होते हैं। अं एवं अः मिलाकर १६ स्वर उद्भूत होते हैं।

अष्टदल और षोडशदल

चतुर्दशार में विश्वसृजनार्थ ब्रह्मा की १० कलाओं का उदय होता है; वे निम्न हैं—

१. सृष्टि	५. कान्ति	८. स्थिरा
२. ऋद्धि	६. लक्ष्मी	९. स्थिति
३. स्मृति	७. युति	१०. सिद्धि
४. मेधा		

महामाया १४ त्रिकोणों— बिन्दुओं में विभक्त होकर १४ शक्तियों के रूप में १४ नाड़ियों का सञ्चार करती है, जो निम्न हैं—

१. अलम्बुषा	६. यशस्विनी	११. सरस्वती
२. कुहू	७. अश्विनी	१२. इडा
३. विश्वोदरी	८. गान्धारी	१३. पिंगला
४. वरुणा	९. पूषा	१४. सुषुम्ना
५. हस्तिजिह्वा	१०. शंखिनी	

इन उपर्युक्त १४ नाड़ियों से ७२००० नाड़ियाँ शाखा-प्रशाखा के रूप में फैल जाती हैं।

निःशेष श्रीचक्र बिन्द्वात्मक है। महाशक्ति के द्वारा बिन्दु से चतुर्दशार तक की कल्पना की गई है। चतुर्दशार तक अं-अः (अनुस्वार + विसर्ग) तक की पूर्ण मातृकासृष्टि

प्रादुर्भूत होती है। अष्टदल द्वारा विसर्ग का बहिर्भाव प्रारम्भ होता है। कामेश्वर-कामेश्वरीरूप तेजयुग्म बुद्धि के अष्टभेदों की अधिष्ठात्री अष्ट शक्तियों के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। अष्ट शक्तियाँ निम्नांकित हैं—

१. अनङ्गकुसुमा	५. अनङ्गरेखा
२. अनङ्गमेखला	६. अनङ्गवेगिनी
३. अनङ्गमदना	७. अनङ्गांकुशा
४. अनङ्गमदनातुरा	८. अनङ्गमालिनी

चूँकि समस्त विश्व शिव-शक्त्यात्मक है; अत: त्रिकोण से चतुर्दशार तक शक्तिचक्र शिवचक्र से गर्भित है। चतुर्दशार चक्र के बाहर निर्मित अष्टदल पद्म में अनङ्गकुसुमा आदि देवियों की पूजा की जाती है। उपर्युक्त तेजोमिथुन ही इन देवियों के रूप में उपासित होता है। इस चक्र की आख्या है— सर्वसंक्षोभण चक्र। तान्त्रिक दर्शन में क्षोभ का अर्थ है— सृष्टि। यह कारणरूप एवं सृष्टिकर्ता है। अष्टदल अष्टार चक्र के अन्तर्गत हैं; अत: आग्नेय खण्ड एवं प्रामातृपुर हैं। इसमें बिन्दुरूपी वह्नि दश कलायुक्त है। विसर्ग का बहिर्भाव पशुभाव के विकास का एवं बिन्दु का बहिर्भाव शिवभाव की वृद्धि का द्योतक है। मातृका में 'अं' (बिन्दु) के बाद विसर्ग 'अ:' आता है।

अष्टदल अव्यक्तादि अष्ट कारणों द्वारा घटित है—

वसुच्छदनपद्माङ्कदेशो यश्चक्रगो विभु:।
अव्यक्ताद्या: प्रकृतयो भूतात्मा निश्चिनोम्यहम्।।

षोडशदल कमल विसर्गरूप पंकज की १६ कलाओं से युक्त है। सुभगोदय में कहा भी गया है—

षोडशच्छदपद्माङ्कदेशो भूताक्षमानसम्।
विकारात्मकमापन्नं देव्या: सम्भावयाम्यहम्।।

इस चक्र में कार्याकर्षिणी आदि १६ शक्तियों के रूप में तेजोमिथुन की पूजा होती है। १६ स्वर ही इसके १६ दल हैं। इसका नाम सर्वाशापरिपूरक चक्र भी है। कार्याकर्षिणी, बुद्ध्याकर्षिणी, अहंकाराकर्षिणी, शब्दाकर्षिणी, स्पर्शाकर्षिणी, रूपाकर्षिणी, रसाकर्षिणी, गन्धाकर्षिणी, चित्ताकर्षिणी, धैर्याकर्षिणी आदि १६ नित्याओं की तृप्ति से समस्त आशायें पूर्ण होने के कारण ही इसे सर्वाशापरिपूरक चक्र कहते हैं। षोडशदल पद्म विश्वाधार श्रीचक्र का अन्तिम रूपान्तरण है। यहाँ ५ महाभूत, ११ इन्द्रियाँ, मनोविकार प्रकट हो जाते हैं और महाशक्ति की कामकला एवं शृंगारकला द्वारा विश्व एवं विश्वनिष्ठ पदार्थों का उद्भव हो जाता है।

भूपुर

षोडशदल कमल के बाहर चार वृत्तों से परे चार दिशायें हैं। इनकी सीमा हेतु त्रिरेखान्वित भूपुर (चतुरस्र) है। चतुरस्र १४ लोकों की सीमा है। विश्व और उसके

भीतर जो कुछ भी है, वह सब कुछ भूपुर में स्थित है। यहाँ षट्त्रिंशदात्मक समस्त जगत् या त्रिखण्डात्मक समस्त स्थूल विश्व प्रकट है।

मातृकाचक्रविवेक के अनुसार भूपुर गंगा-यमुना-संगमरूप तीर्थराज प्रयाग है—

तस्माच्चतुष्पदमिदं चतुरस्रविम्बं चिच्चैत्यनिर्जरसरिद्यमुना प्रयागः।

भूपुरात्मक तीर्थराज में चित्-चैत्यस्वरूपिणी दो नदियों का संगम होता है। इनमें से एक श्वेतवर्णा है तथा दूसरी कृष्णवर्णा। भूपुर है— जड़-चेतन एवं शिव तथा जीव की समष्टि। यहाँ महाशक्ति ब्रह्मलीन विश्व को साकार एवं स्थूल रूप में प्रस्तुत करके विशुद्ध प्रकाश को अन्तर्गर्भित (अन्तर्लीन) कर लेती है। यही आदि शक्ति का लय होता है। यहीं से आदि शक्ति का उद्भव होता है।

भूपुर चक्र में तेजोमिथुन की (अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, भुक्ति, इच्छा, प्राप्ति, सर्वकाम (मुक्ति)— इन १० सिद्धियों; ब्राह्मी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐन्द्री, चामुण्डा, महालक्ष्मी— इन आठ लोकमाताओं एवं त्रिखण्डा, सर्वसंक्षोभिणी, द्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्ववशंकरी, उन्मादिनी, महांकुशा, खेचरी, बीज एवं योनि— १० मुद्राओं के रूप में) पूजा की जाती है। इसे त्रैलोक्यमोहन चक्र कहते हैं। यही गंगा-यमुनासंगमरूप तीर्थराज प्रयाग भी कहा गया है।

भूपुर = चित् एवं चैत्यरूपी दो श्वेत एवं कृष्ण नदियों का संगम तीर्थराज प्रयाग है।
भूपुर = चतुरस्र चक्र (भूपुर) जड़-चेतन, शिव एवं जीव दोनों की समष्टि है।

बिन्दु एवं अष्टदल दोनों बिम्ब अपने-अपने प्रभाचक्र त्रिकोण एवं षोडशदल के साथ दशारचक्र के मध्य चतुरस्र के एक-एक कोण के रूप में परिणत हो जाते हैं। यह यन्त्र पूजापद्धति में सर्वप्रथम पूज्य माना जाता है।

यह भूपुर गंगा-यमुना वाला प्रयाग है— 'तस्माच्चतुष्पदमिदं चतुस्रबिम्बं चिच्चैत्य-निर्जरसरिद्यमुना प्रयागः (मातृकाचक्रविवेक)। यह पूजा में सबसे प्रथम पूजित है— 'अच्यं भवेत्प्रथमतोऽथ तदङ्गभूतचिच्चैत्यचक्रयजनं त्विति पूर्वतस्तत्' (मातृकचक्रविवेक) और वह पूजन दशारचक्र के मध्य में ही होता है। यह भी ध्यातव्य है कि—

क. समस्त चक्र महाबिन्दु में अन्तर्भूत हैं।

ख. जिस प्रकार एक ही बिन्दु में श्रीचक्रान्तर्गत ९ चक्र अन्तर्भूत हैं, उसी प्रकार एक ही सहस्रारात्मक बिन्दु में षट्चक्र भी अन्तर्भूत है।

ग. बिन्दु मूलाधारादि चक्रों की समष्टि, जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार का कारण शिव की शक्तिविशेष है। यद्यपि वह एक है, तथापि सहस्रदल कमल के मध्य चार द्वारों से निर्मित कर्णिका के मध्य चतुष्कोणात्मक शक्तितत्त्व के रूप में स्थित है। उनके मध्य में नादस्वरूप चतुष्टयात्मक शिवतत्त्व स्थित है। शिवशक्ति शब्दार्थ हैं; अतः कलात्मक हैं।

घ. बिन्दु १० भागों में विभक्त होकर पिण्ड का षट्चक्र बन जाता है।

सप्तविंश अध्याय

श्रीचक्र : एक स्वरूपात्मक विवेचन

श्रीचक्र भगवान् शिव एवं शक्ति दोनों का शरीर है। यह भगवती के बैठने का आसन है। यह पिण्ड, ब्रह्माण्ड, मायाण्ड, शाक्ताण्ड एवं शिवाण्ड का संक्षिप्ततम रेखाचित्र है। यह शिवचक्रों एवं शक्तिचक्रों के सम्मिलन से निर्मित असीम विश्व का एक मानचित्र है। यह ४ शिवचक्रों एवं ५ शक्तिचक्रों या ९ योनियों के संयोग से निर्मित शिव-शक्ति-यामल की एक रेखात्मक रचना है।

चन्द्रबिम्ब ही श्रीचक्र है— सनत्कुमारसंहिता में कहा गया है कि सहस्रारस्थ जो चन्द्रमा हैद्ध उसका बिम्ब ही श्रीचक्र है— 'चन्द्रबिम्बं श्रीचक्रम्' (लक्ष्मीधरा)। श्रीचक्र भगवती का आसन है या उनका यान्त्रिक स्वरूप है। श्रीविद्या का अभिधान चन्द्रकला है। आथर्वण शौनक शाखा में श्रीचक्र का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार किया गया है—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो लोको ज्योतिषाऽऽवृतः। यो वै तां ब्रह्मणो वेद। अमृतनावृतां पुरीम्। तस्मै ब्रह्म च ब्रह्मा च। आयुः कीर्तिं प्रजां ददुः। विभ्राजमानां हरिणीम्। यशसा संपरीवृताम्। पुरं हिरण्मयीं ब्रह्मा। विवेशापराजिता।।

अष्टचक्रा = अष्टकोण। दशकोणद्वितय। चतुर्दश कोण। अष्टपत्र। षोडशपत्र। त्रिवलय। त्रिरेखात्मक अष्टचक्र। नवद्वारा = ९ संख्या वाले त्रिकोणस्वरूप जो द्वार हैं, वे ही हैं— नवद्वारा। देवानां = इन्द्रादिक देवों की। पूः = श्रीविद्यानगर या देव = २५ तत्त्व, पू = अधिष्ठान।

श्रीचक्र भगवान् शिव एवं शक्ति का शरीर है— 'श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः'। चार शिवचक्रों एवं पाँच शक्तिचक्रों अर्थात् नौ चक्रों के योग से श्रीचक्र का निर्माण होता है। श्रीचक्र शिवशक्त्यात्मक है। शिव का अर्थ है— चतुर्योन्यात्मक अर्धचक्र। इन दोनों के योग से श्रीचक्र का संघटन होता है—

चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
शिवशक्त्यात्मकं ज्ञेयं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः।।

अष्टाचक्रानवद्वारा वाली ऋचा में पूः = सूर्य-चन्द्र-अग्नि = श्रीचक्र सोम-सूर्यानलात्मक है। अयोध्या = असाध्या। तस्यां = श्रीचक्ररूपी पुर में। हिरण्यमय = कोश। सहस्रदल कमलकोश। बैन्दवस्थान का सहस्रदल कमल कोश। ब्रह्मणः = ब्रह्मस्वरूपा भगवती के पुरी श्रीचक्ररूपा त्रिपुरा की पुरी। श्रीचक्र के तीन प्रस्तार है— १. मेरुप्रस्तार, २. कैलास-प्रस्तार एवं ३. भूप्रस्तार।[१]

---

१. श्रीचक्र के तीन प्रस्तार होते हैं, जो निम्नांकित हैं— १. मेरुप्रस्तार, २. कैलासप्रस्तार एवं ३. भूप्रस्तार। क. मेरुप्रस्तार = नित्याषोडशतादात्म्य। ख. कैलासप्रस्तार = मातृका-तादात्म्य। ग. भूप्रस्तार = वशिन्यादि तादात्म्य। (लक्ष्मीधरा)

आधार चक्र-स्वाधिष्ठान चक्र-मणिपूरक चक्र-अनाहत चक्र-विशुद्धचक्र-आज्ञा चक्र से संवलित यह श्रीचक्र त्रिखण्डात्मक है। इसके तीन खण्ड निम्नांकित हैं— १. सोम-खण्ड, २. सूर्यखण्ड एवं ३. अग्निखण्ड— 'श्रीचक्रं त्रिखण्डं सोमसूर्यानलात्मकम्'।

१. प्रथम खण्ड : मूलाधार-स्वाधिष्ठान चक्र = २ चक्र।
२. द्वितीय खण्ड : मणिपूरक-अनाहत चक्र = २ चक्र।
३. तृतीय खण्ड : विशुद्ध-आज्ञा चक्र = २ चक्र।

छः पिण्डस्थ चक्र अग्नि, सूर्य, चन्द्र की स्थिति।
प्रथम खण्ड : अग्निस्थान। यहीं रुद्रग्रन्थि स्थित है।
प्रथम खण्ड के ऊपर द्वितीय खण्ड : सूर्यस्थान। यहीं विष्णुग्रन्थि स्थित है।
द्वितीय खण्ड के ऊपर तृतीय खण्ड : चन्द्रस्थान। यहीं ब्रह्मग्रन्थि स्थित है।

तृतीय खण्ड के ऊपर सोम-सूर्य-अनल (सोमसूर्यानलात्मकं) : यहाँ अवरोहण क्रम गृहीत किया गया है अर्थात् यहाँ जो सोम-सूर्य-अनल का क्रम दिया गया है, वह अवरोहणक्रम के अनुसार है। यहाँ प्रथम खण्ड के ऊपर जो अग्नि स्थित है, वह अपनी ज्वालाओं द्वारा प्रथम खण्ड को आवृत्त किये रहती है। द्वितीय खण्ड के ऊपर जो सूर्य स्थित है, वह अपनी किरणों द्वारा समस्त द्वितीय खण्ड को आच्छादित किये रहता है। तृतीय खण्ड के ऊपर जो चन्द्र स्थित है, वह अपनी कलाओं से तृतीय खण्ड को आवृत्त किये रहता है।[१]

श्रीचक्र और षोडश नित्याओं का अङ्गाङ्गिभाव-सम्बन्ध भी है। षोडश नित्यायें अष्ट-वर्गात्मक अष्टदल पद्म के अष्ट पद्मपत्रों में स्थित है। अष्टकोण चक्र में प्रागादि कोण से प्रारम्भ करके एक-एक कोण में दो-दो की संख्या में स्थित होकर षोडश नित्यायें श्रीचक्र में अन्तर्भूत हैं।

ये नित्यायें १६ स्वरों के रूप में षोडशदल पद्म में स्थित हैं और दो दशारों में अन्तर्भूत हैं। इन नित्याओं के मध्य प्रथम नित्याद्वय त्रिकोण के बिन्दु के रूप में अवस्थित हैं। अवशिष्ट १४ नित्यायें मन्वश्र में अन्तर्भूत हैं— मेखलात्रय, भूपुरत्रय एवं बैन्दव त्रिकोण में अन्तर्भूत हैं। नित्याओं का श्रीचक्र में इसी प्रकार का अन्तर्भाव है।

श्रीचक्र और उसका कैलासप्रस्तार— सनन्दनसंहिता में सनन्दन ने ऋषियों को सम्बोधित करते हुये कहा गया है कि—

क. षोडश नित्यायें चन्द्रकला चक्रविद्या की अंगभूत हैं।

ख. ये १६ नित्यायें स्वरात्मक एवं पञ्चाक्षरी मन्त्रानुगत हैं।

ग. एकारादिभूत अंकाकार विसर्गात्मक सकार से संगृहीत जीव कलारूप है और बैन्दव स्थान में स्थापित है और उसी में अन्तर्भूत है।

---

१. लक्ष्मीधरा

घ. क से लेकर म वर्णपर्यन्त समस्त वर्ण पाशांकुश बीजयुक्त होकर अष्टार दशकोणद्वय में अन्तर्भूत हैं।

ङ. अवशिष्ट यकारादि नौ वर्ण दो आवृत्तियों के साथ मन्वश्र में चतुर्दश कोणों में अन्तर्भूत हैं।

च. अवशिष्ट वर्णचतुष्टय शिवचक्रचतुष्टय में अन्तर्भूत हैं। इसे ही कैलासप्रस्तार कहा गया है। इसी प्रकार नित्याओं का चक्रविद्या के साथ अंगत्व प्रतिपादित किया गया है (चन्दकला = चक्रविद्या)।

श्रीचक्र और उसका भूप्रस्तार— सनत्कुमारसंहिता में षोडश नित्याओं को चक्र-विद्या का अंग निरूपित किया गया है। उसमें कहा गया है—

क. श्रीचक्र की अंगभूत जो नित्यायें हैं, वे वशिन्यादि के साथ द्विक-द्विक में सम्मिलित होकर बैन्दव त्रिकोण का त्याग करके आठो कोणों में अन्तर्भूत हैं। उनके मध्य त्रिपुरसुन्दरी को अन्तर्भाव्य कल्पित करना चाहिये।

ख. अष्टवर्ग तो वशिनी आदि आठ अधिष्ठात्री देवियाँ हैं।

१६ नित्यायें, १२ योगिनियाँ, ४ गन्धाकर्षिणी आदि शक्तियाँ— ये सब मिलाकर ४४ होती हैं।

ग. यहाँ एक शक्ति को छोड़कर ४३ कोणों में (त्रयश्चत्वारिंशत् कोणों में) ४३ देवता अन्तर्भाव्य हैं। बैन्दवस्थान से नीचे गन्धाकर्षिणी आदि जो चारो द्वारों पर स्थित हैं, उनको श्रीचक्र के अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। इसे ही 'भूप्रस्तार' कहते हैं।

श्रीचक्र की उत्पत्ति एवं उसका संघटन— भैरवयामल, चन्द्रज्ञानविद्या में भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं—

१. श्रीचक्र का नवयोन्यात्मक स्वरूप एवं उसकी उत्पत्ति—

चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः।।

'शिवयोर्वपुः' श्रीचक्र शिव-शिव का अपना सम्मिलित शरीर है।

२. शक्तिचक्र—

त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणद्वयं तथा।
चतुर्दशारं चैतानि शक्तिचक्राणि पञ्च च।।

शिवचक्र—

बिन्दुश्चाष्टदलं पद्म पद्मषोडशपत्रकम्।
चतुरस्रं च चत्वारि शिवचक्राण्यनुक्रमात्।।

३. शक्तिचक्र एवं शिवचक्र में अविनाभाव सम्बन्ध—

त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम्।
दशारयोः षोडशारं भूगृहं भुवनाश्रके।।

शैवानामपि शाक्तानां चक्राणाञ्च परस्परम्।
अविनाभावसम्बन्धं यो जानाति स चक्रवित्।।

४. कोणचक्र—

त्रिकोणमष्टकोणञ्च दशकोणद्वयं तथा।
मनुकोणं चतुष्कोणं कोणचक्राणि षट्क्रमात्।।

१. आधार चक्र : महीतत्त्वात्मक : अग्नि की ५६ ज्वालायें।
२. मणिपूरक चक्र : उदकतत्त्वात्मक : (स्पोपरिस्थित) ५२ ज्वालायें।

इस प्रकार अग्नि की १०८ ज्वालायें हुई : ५६ + ५२ = १०८।

३. स्वाधिष्ठान चक्र : अग्नितत्त्वात्मक : सूर्य की ६२ ज्वालायें।
४. अनाहत चक्र : अनिलतत्त्वात्मक : ५४ किरणें।

सूर्य की ११६ किरणें होती हैं। वियत्तत्त्वात्मक विशुद्धि चक्र में चन्द्रमा की ७२ कलायें स्थित हैं। मनस्तत्त्वात्मक आज्ञाचक्र में ६४ चान्द्र कलायें स्थित हैं—

अष्टोत्तरशतं वह्नेः षोडशोत्तरकं रवेः।
षट्त्रिंशदुत्तरशतं चन्द्रस्य च विनिर्णयः।। (भैरवयामल)

सूर्य की किरणें मणिपूरक चक्र का त्याग करके स्वाधिष्ठान चक्र में प्रवेश करती हैं; क्योंकि सूर्य एवं अग्नि एक ही हैं तथा अग्नि भी सूर्य के अन्तर्भूत ही तो है। स्वाधिष्ठान एवं मणिपूरक चक्र के सूर्याग्निस्थान के मध्य अग्निस्थान में सूर्य का प्रवेश होता है तथा सूर्यस्थान में अग्नि का प्रवेश होता है। जगत् को दग्ध करने वाली अग्नि को शमित करने वाले संवर्त्तमेघात्मक सूर्यकिरणों से वर्षा हुआ करती है। सब मिलाकर चन्द्रमा की १३६ कलायें हैं।

सोम-सूर्य-अग्नि पिण्ड-अण्ड एवं समस्त ब्रह्माण्ड को आच्छादित किये हुये हैं। चूँकि पिण्ड-अण्ड एवं ब्रह्माण्ड तीनों एक हैं; अतः पिण्डाण्डवृत्ति ही ब्रह्माण्डावृत्ति है। सहस्रकमल पिण्ड एवं अण्ड दोनों को अतिक्रान्त करके स्थित है। यह ज्योत्स्नामय लोक है। यहाँ जो चन्द्रमा स्थित है, वह 'नित्यकल' है, अर्थात् उसकी कलाओं में क्षय-वृद्धि नहीं हुआ करती। 'आज्ञाचक्रोपरिस्थितश्चन्द्रः' कहकर जो चन्द्रमा की स्थिति आज्ञा-चक्र के ऊपर कही गई है, वह केवल चन्द्रमा की कलाओं के अवस्थानमात्र का सूचक है; न कि नित्यकल पूर्ण चन्द्र का। इसीलिये सुभगोदय में कहा गया है कि—

षोडश कलायें षोडश नित्याओं से युक्त हैं। उनमें शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष की प्रतिपदा आदि तिथियों का समावेश है (तदात्मकता है); अतः क्षय-वृद्धि दोनों विकारों का उनमें दुष्प्रभाव भी है। अतः शंका होती है कि सहस्रदल कमल में स्थित चन्द्रमा की कलाओं

में भी क्षय-वृद्धि होती होगी; किन्तु ऐसा है नहीं। षोडश चान्द्र कलायें षोडश नित्यात्मिका भी हैं और प्रतिपदा से पौर्णमासीपर्यन्त तिथियों की प्रवर्तिका भी हैं तथा कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से अमावस्यापर्यन्त तिथियों की भी प्रवर्तिका हैं और स्वात्मतिरोधान एवं स्वात्म-तिरोधानाभाव से उपहित हैं।

सहस्रदल कमल के चन्द्रमा में क्षय-वृद्धि नहीं होती— 'चन्द्रस्यापि सहस्रकमलगतस्य वृद्धिक्षयौ भवत एवेति' ऐसी शंका तो होती है; किन्तु 'चन्द्रमसः वृद्धिक्षयौ न भवतः' अर्थात् सहस्रारस्थ चन्द्रमा की कलाओं में क्षय-वृद्धि नहीं हुआ करती।

श्रीविद्या, जिसका अपर नामधेय (अन्य अभिधान) चन्द्रकला है, वह पञ्चदश तिथि-स्वरूपा है; अतः ३६० किरणें विवसात्मक है और उन्हीं से संवत्सर लक्षित है। वह कालशक्त्यात्मक संवत्सर प्रतिपत्तिस्वरूप होने के कारण तथा प्रजापति के जगत् का कर्ता होने के कारण किरणें भी जगत् की सृष्टि-स्थिति एवं लय की कारिका है। यही स्थिति अनन्त पिण्ड-अण्ड एवं ब्रह्माण्डों में वर्तमान है। ये किरणें इस ब्रह्माण्ड एवं पिण्डाण्ड में ३६० हैं। अनन्त कोटि पिण्डाण्ड-ब्रह्माण्डों में भी यही स्थिति है। इस प्रकार प्रत्येक ब्रह्माण्ड एवं प्रत्येक पिण्डाण्ड में ३६० (षष्ट्युत्तरत्रिंशतसंख्याक) किरणें स्थित हैं और इस प्रकार अनन्त किरणें (रश्मियाँ) प्रसृत हैं। ये रश्मियाँ सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि से संपृक्त हैं और भगवती के चरणों से उद्भूत हैं— सृष्टि-स्थिति-लय की शक्तियों से संवलित हैं और लोकों को प्रकाशित करती हैं।

भगवती के चरणकमलों की स्थिति— सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि भगवती के चरणकमलों से उद्भूत अनन्त कोटि रश्मियों के मध्य से कतिपय किरणों का आहरण करके भगवती के अनुग्रह से समासादित जगत्-प्रकाशन-सामर्थ्य से संसारों को प्रकाशित करते हैं। बैन्दवस्थान क्या है? 'सर्वलोकातिक्रान्तं चन्द्रकलाचक्रं बैन्दवस्थानमिति'।

समस्त लोकों के ऊपर स्थित चन्द्रकला चक्र ही बैन्दवस्थान है। वहीं भगवती के चरणकमल स्थित हैं। सौन्दर्यलहरी में जो यह कहा गया है कि—

क्षितौ षट्पञ्चाशद द्विसमधिकपञ्चाशदुदके
हुताशे द्वाषष्टिश्चतुरधिकपञ्चाशदनिले।
दिवि द्विषट्त्रिंशन्मनसि च चतुष्षष्टिरिति ये
मयूखास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुजयुगम्।।१४।।

उसका रहस्यार्थ यही है। इसकी पदयोजना इस प्रकार है—

हे भगवति ! ये मयूखाः क्षितौ षट्पञ्चाशत्, उदके द्विसमधिकपञ्चाशत् हुताशे द्वाषष्टिः, अनिले चतुरधिकपञ्चाशत्, दिवि द्विषट्त्रिंशत् मनसि चतुष्षष्टिः इति तेषामुपरि तव पादाम्बुजयुगं वर्तते।

श्रीचक्र और कला विद्या— भैरवयामल, चन्द्रज्ञानविद्या में महेश्वर गौरी से कहते हैं—

कलाविद्या परा शक्तेः श्रीचक्राकाररूपिणी।
तन्मध्ये बैन्दवस्थानं तत्रास्ते परमेश्वरि।।

सदाशिवेन सम्पृक्ता सर्वतत्त्वातिगा सती।
चक्रं त्रिपुरसुन्दर्याः ब्रह्माण्डाकारमीश्वरि।।

पञ्चभूतात्मकं चैव तन्मात्रात्मकमेव च।
इन्द्रियात्मकमेवञ्च मनस्तत्त्वात्मकं तथा।।

मायादितत्त्वरूपञ्च तत्त्वातीतञ्च बैन्दवम्।
बैन्दवे जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी।।

सदाशिवेन सम्पृक्ता तत्त्वातीता महेश्वरी।
ज्योतीरूपा पराकारा यस्या देहोद्भवाश्शिवे।।

किरणाश्च सहस्रञ्च द्विसहस्रञ्च लक्षकम्।
कोटिरर्बुदमेतेषां परा संख्या न विद्यते।।

तामेवानुप्रविश्यैव भाति लोकं चराचरम्।
यस्या देव्या महेशानि भासा सर्वं विभासते।।

तद्भासा रहितं किञ्चिन्न च यच्च प्रकाशते।
तस्याश्च शिवशक्तेश्च चिद्रूपायाश्चितिं विना।।

आन्ध्यमापद्यते नूनं जगदेतच्चराचरम्।
तेषामनन्तकोटीनां मयूखानां महेश्वरि।।

* * * * *

मध्ये षष्ट्युत्तरं तेऽमी त्रिंशतं किरणाश्शिवे।
ब्रह्माण्डं व्यश्नुवानास्ते सोमसूर्यानलात्मना।।

अग्नेरष्टोत्तरशतं षोडशोत्तरकं रवेः।
षट्त्रिंशदुत्तरशतं चन्द्रस्य किरणाश्शिवे।।

ब्रह्माण्डं भासयन्तस्ते पिण्डाण्डमपि शाङ्करि।
दिवा सूर्यस्तथा रात्रौ सोमो वह्निश्च सन्ध्ययोः।।

प्रकाशयन्तः कालांस्ते तस्मात्कालात्मकास्त्रयः।
षष्ट्युत्तरं च त्रिशतं दिनान्येव च हायनम्।।

हायनात्मा महादेवः प्रजापतिरिति श्रुतिः।
प्रजापतिर्लोककर्ता मरीचिप्रमुखान् मुनीन्।।

सृजन्त्येते लोकपालान् ते सर्वे लोकरक्षकाः।
संहारश्च हरायत्तः उत्पत्तिर्भवनिर्मिता।।

रक्षा तु मृडसंलग्ना सृष्टिस्थितिलये शिवः।
नियुक्तः परमेशान्या जगदेवं प्रवर्तते।।

श्रुति भी कहती है— 'तमेव मान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'।

श्रीचक्र के साथ पञ्चदशी मन्त्र एवं वर्णमाला का सामरस्य— श्रीचक्ररूप चन्द्रविम्ब में एक ही कला स्थित है; उसका नाम है— 'परमा कला श्रीचक्ररूपचन्द्रविम्बे एकैव कला सा परमा कला'। कहा भी गया है—

षोडशेन्दोः कला भानोः द्विर्द्वादश दशानले।
सा पञ्चाशत्कला ज्ञेया मातृकाचक्ररूपिणी।।

ये ५० कलायें ५० वर्णों से युक्त हैं और पञ्चदशाक्षरी मन्त्र में अन्तर्भूत हैं। आदि ककार एवं अन्तिम लकार (प्रत्याहृत) तन्मध्यवर्ती वर्णों का ग्राहक है। यही लकार परवर्ती अकार के द्वारा प्रत्याहृत होकर ५० वर्णों का ग्राहक होता है। इसी प्रत्याहार-ग्रहण के द्वारा ५० वर्णों से युक्त मातृका के ग्रहण में ककार-लकार के प्रत्याहार-ग्रहण की सार्थकता क्या है? तो उत्तर यह है कि ककारादि लकारान्त शब्दों का कला शब्द-वाच्यत्व गौण है; क्योंकि ये व्यञ्जन एवं स्वरों के अंग हैं। कलाओं का एवं स्वरों का प्रधानत्व है। गुणप्रधान भावप्रदर्शनार्थ प्रत्याहारद्वयाश्रयण अपेक्षित होता है— यह सनकादिक ऋषियों का मत है।

चारो अनुस्वार बिन्दु के लक्षक हैं। उस बिन्दु के द्वारा प्रतीयमान नाद संगृहीत है। इस प्रकार श्रीचक्र नाद-बिन्दुकलात्मक होने के कारण त्रिखण्डात्मक है।

सादाख्या कला नाद-बिन्दुकलातीता श्रीविद्या है— 'सादाख्या कला श्रीविद्यापरपर्याया नादबिन्दुकलातीता'। ये षोडश नित्याओं में अन्तर्भूत हैं।

स्वर १६ हैं; कादि तान्त वर्ण १६ हैं; थादि सान्त वर्ण १६ हैं; यह षोडश त्रिक (सोलह का त्रिकत्रय) षोडश नित्याओं में अन्तर्भूत है। हकाररूप आकाशबीज बैन्दवाकाश में निलीन हो जाता है। लकार अन्तस्थ स्वान्तर्भूत होने पर भी ककार से प्रत्याहारार्थ पुनः गृहीत होता है। जहाँ तक क्षकार की बात है तो यह तो ककार एवं षकार का मिश्रित रूपमात्र ही है। स्वरसमेत ककारादि सान्त वर्ण षोडश नित्याओं में अन्तर्भूत है।

अकार से प्रत्याहृत क्षकार अक्षमाला नाम से प्रख्यात है। अतः क्ष (क + ष) से समस्त मातृकाओं का द्योतन होता है। अतः अन्तिम खण्ड में 'सकलह्रीं' 'क' एवं 'ष' के योग से 'क्ष' शब्द निष्पन्न होता है। इस प्रकार 'सकलह्रीं' मन्त्र से समस्त मातृकाओं का ग्रहण होता है।

निष्कर्ष यह कि—
क. षोडश नित्याओं का मन्त्रगत षोडशवर्णात्मकत्व,
ख. षोडश वर्णों का पञ्चाशद्वर्णात्मकत्व,

ग. पञ्चाशद् वर्णों का सूर्य-चन्द्राग्निकलात्मकत्व,

घ. सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि के द्वारा त्रिखण्डत्व द्योतित होने से इनमें परस्पर सामरस्य एकरूपता या तादात्म्यभाव सिद्ध होता है। इससे ऐक्यचतुष्टय सिद्ध होता है।

श्रीचक्र एवं पञ्चदशी मन्त्र में ऐकात्म्य— इसी प्रकार श्रीचक्र एवं मन्त्र में भी ऐकात्म्य है। दस सम्बन्ध में सुभगोदय इस प्रकार कहता है—

१. पञ्चदशी में स्थित ह्रींकारत्रय एवं श्रीबीज शिवचक्रचतुष्टयात्मक त्रिकोण में बिन्दु रूप से अन्तर्भूत है।

२. 'सकलह्रीं' मन्त्र में सकल के वर्णत्रय द्वारा मातृका संगृहीत है। अक्षमालिका एवं मातृका दोनों श्रीचक्र में अन्तर्भूत हैं। यथा—

क. अन्तःस्थचतुष्टय और ऊष्मचतुष्टय— ये आठों वर्ण अष्टकोणात्मक हैं। कादि मावसाना वर्णों (पञ्चवर्गों के वर्णों) को छोड़कर शेष दशारयुग्म में अन्तर्भूत हैं।

ख. वर्गपञ्चक (कादि मान्त) अनुस्वार के साथ बिन्दु में अन्तर्भूत हैं।

ग. चतुर्दशार में १४ स्वर अन्तर्भूत हैं।

घ. अनुस्वार एवं विसर्ग का बिन्दु श्रीचक्र के बिन्दु में अन्तर्भाव है। इस प्रकार सुभगोदय ग्रन्थ के अनुसार पञ्चदशी मन्त्र श्रीचक्र एवं वर्णमाला में ऐकात्म्य है।

पूर्णोदयमत के अनुसार—

क. श्रीचक्र के तीन खण्ड हैं— सोमखण्ड, सूर्यखण्ड एवं अनलखण्ड। इसी प्रकार पञ्चदशाक्षरी मन्त्र के भी तीन खण्ड हैं।

ख. १६ चन्द्रकलायें इन्दुखण्ड में अन्तर्भूत हैं। यह इन्दुखण्ड भी इन्द्वात्मक यन्त्रखण्ड में अन्तर्भूत है।

ग. इस प्रकार सूर्य की २४ (चतुर्विंशति) कलायें सूर्यखण्ड में अन्तर्भूत हैं। यह खण्ड भी यन्त्रखण्ड में अन्तर्भूत है।

घ. इस प्रकार आग्नेय दस कलायें आग्नेय खण्ड में अन्तर्भूत हैं।

ङ. यह आग्नेय खण्ड भी यन्त्र के आग्नेय खण्ड में अन्तर्भूत है।

च. सुभगोदयनामक ग्रन्थ में नित्याओं का स्वरूप-विवेचन इस प्रकार किया गया है—

दर्शाद्याः पूर्णिमान्ताश्च कलाः पञ्चदशैव तु।
षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।।

अर्थात् दर्शाद्याः (पूर्णिमान्त तिथियाँ)। दर्शा (अमावास्या की अन्तर्भाविनी प्रतिपत्कला); उसके थोड़ा दिखाई पड़ने के कारण इसका नाम 'दर्शा' पड़ा है। दर्शाद्याः— दर्शा आद्या यासां ताः। पूर्णिमान्त (पूर्णिमा अन्तो यासां ताः) = पूर्णिमा में अन्त होने वाली।

दर्शाद्याः पूर्णिमान्त तिथियों के नाम इस प्रकार हैं—

१. दर्शा	३. दर्शता	५. सुदर्शना
२. दृष्टा	४. विश्वरूपा	६. आप्यायमाना

७. आप्यायमाना	१०. इरा	१३. पूरयन्ती
८. आप्याया	११. आपूर्यमाणा	१४. पूर्णा
९. सूनृता	१२. आपूर्यमाणा	१५. पौर्णमासी

दर्शा, दृष्टा, दर्शता आदि १५ कलाओं के यथाक्रम त्रिपुरसुन्दरी आदि १५ नित्यायें अधिदेवता हैं।

चिद्रूपात्मिका षोडशी कला सादाख्य तत्त्वस्वरूपा होने के कारण इसका कोई अन्य अधिदेवता नहीं है; क्योंकि यह स्वयमेव समस्त तिथियों की अधिदेवता है। इन सभी नित्याओं की अभिमानिनी देवता कामदेवमात्र हैं। अधिष्ठान देवता कामेश्वरी मात्र ही है और वह एक है। मूल विद्यागत १५ वर्णों की दर्शा आदि कलायें हैं। इन दर्शादि कलाओं का त्रिखण्डत्व सिद्ध है। इनका खण्डत्रय इस प्रकार है—

१. आग्नेय खण्ड : दर्शा, दृष्टा, दर्शता, विश्वरूपा, सुदर्शना।
२. सौरखण्ड : आप्यायमाना, आप्यायमाना, आप्याया, सूनृता, इरा।
३. चान्द्रखण्ड : आपूर्यमाणा, आपूर्यमाणा, पूरयन्ती, पूर्णा, पौर्णमासी।

इन कलाओं का नित्याओं के साथ ऐक्य है—

क. दर्शा कला शिवतत्त्वात्मिका है।
ख. दृष्टा कला शक्तितत्त्वात्मिका है।
ग. दर्शता कला मायातत्त्वात्मिका है।
घ. विश्वरूपा कला शुद्धविद्यातत्त्वात्मिका है।
ङ. सुदर्शना कला जलतत्त्वात्मिका है।

इस प्रकार आग्नेय खण्ड पञ्चतत्त्वात्मक है। यहाँ अग्नि अधिदेवता है। कामदेव सर्वत्र अधिदेवता है और कामेश्वरी सर्वत्र अधिष्ठात्री है।

च. आप्यायमाना कला तेजस्तत्त्वात्मिका है।
छ. आप्यायमाना कला वायुतत्त्वात्मिका है।
ज. आप्याया कला मनस्तत्त्वात्मिका है।
झ. सूवृता कला पृथिवीतत्त्वात्मिका है।
ञ. इरा कला आकाशतत्त्वात्मिका है।
ट. आपूर्यमाणा कला विद्यातत्त्वात्मिका है।

यह सौरखण्ड है; यहाँ देवता सूर्य है। कामदेव सर्वत्र अधिदेवता है। कामेश्वरी सर्वत्र अधिष्ठात्री देवता है।

ठ. आपूर्यमाणा कला, जो कि चन्द्रखण्ड में स्थित है, वह भी सौरखण्ड में अन्तर्भूत है।
ड. इरा कला एवं आपूर्यमाणा में ऐक्य है।
ढ. आपूर्यमाणा कला महेश्वरतत्त्वात्मिका है।

ण. पूरयन्ती कला परतत्त्वात्मिका है।

त. पूर्णा कला आत्मतत्त्वात्मिका है।

थ. पौर्णमासी कला सदाशिवतत्त्वात्मिका है।

यही सौम्यखण्ड है। यहाँ सोम (चन्द्रमा) ही अधिदेवता है। कामदेव सर्वत्र अधिदेवता है। कामेश्वरी सर्वत्र अधिष्ठात्री है।

द. नित्या कला सादाख्यतत्त्वात्मिका है।

ये सभी विशुद्धि चक्र (षोडशार) में प्रागादि क्रमानुसार १६ दिशाओं में परिभ्रमण करती हैं।

इस प्रकार सुभगोदय के अनुसार आज्ञा चक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमण्डल की ये १६ कलायें हैं।

ध. षोडशी कला का अवस्थान सहस्रदल कमल में है। वहाँ अवस्थित नित्या कलाओं का प्रभापटल षोडशार में स्फुरित होता है।

शिवश्शक्तिः कामः क्षितिरथ रविश्शीतकिरणः।
स्मरो हंसश्शक्रस्तदनु च परामारहरयः।।

सौन्दर्यलहरी (श्लोक-३२) के अनुसार—

१. शिवः = शिवतत्त्वात्मिका दर्शाख्या कला त्रिपुरसुन्दरी। उसकी प्रकृति ककार है। 'ककारः' यहाँ ककार लक्षित है।

२. शक्तिः = शक्तितत्त्वात्मिका दृष्टा कला। इसके द्वारा एकार लक्षित है।

३. कामः = (स्मर) कामदेव के द्वारा दर्शता कला का प्रतिनिधित्व है। काम एवं दर्शता कला से ईकार लक्षित है।

४. क्षितिः = 'लकारः क्षितितत्त्वं' अर्थात् क्षिति से लकार लक्षित है।

५. रविः = 'सूर्य' सूर्यखण्डात्मक होने के कारण हकार को लक्षित करता है।

६. शीतकिरणः = (चन्द्रमा) 'सकारः चन्द्रबीजं' शीतकिरण शब्द से सकार लक्षित है।

७. स्मरः = स्मर कामराजप्रकृतिभूत ककार को लक्षित करता है।

८. हंसः = (सूर्य) हकाराधिपति सूर्य है।

९. शक्रः = (इन्द्र) 'लकारः इन्द्रबीजं'। 'शक्र' शब्द से लकार लक्षित है।

१०. परा = (चन्द्रकला) इससे चन्द्रबीज 'सकार' लक्षित है।

११. मार = (कामराजबीज) कामराजबीज से ककार लक्षित है।

१२. हरिः = (इन्द्र) इससे लकार लक्षित है।

इस प्रकार मन्त्रगत वर्ण ककारादिक शिवादिक पद के लक्षक हैं। कहीं-कहीं लक्षितलक्षक हैं।

इस प्रकार १५ नित्याओं से युक्त पञ्चदशाक्षरी मन्त्र का सभी १५हों तिथियों में अनुष्ठान विहित है। पृथक् नित्यानुष्ठानों का तो प्रतिदिन पृथक् विधान नियत है। इसका रहस्य गुरुमुख से ही अवगन्तव्य है। कहा भी गया है—

दर्शाद्या: पूर्णिमान्ताश्च कला: पञ्चदशैव तु।। (श्रुति)

इयं वाव सरघा (तै. ब्रा. काठकशाखा-३.१०.१)

अर्थात् यह चन्द्रकला (सादाख्या) सरघा की भाँति मधुस्यन्दिनी अमृतस्यन्दिनी है; क्योंकि चन्द्र में सरघात्व है। तैत्तिरीय ब्राह्मण (३.१०.१) में कहा गया है कि 'तस्या अग्निरेव सारघं मधु' अर्थात् सरघा का अग्नि (अग्निस्थान) ही बैन्दवत्रिकोण सारघ (सरघोद्भूत) मधु है; क्योंकि वह सुधासिन्धुस्वरूप है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में ही पुन: कहा गया है कि 'या एता: पूर्वपक्षापरपक्षयो रात्रय:'। यहाँ सारघ मधु का उपचयापचय प्रकार कथित है। संज्ञानुवाक के इस वाक्य का अर्थ यह है कि पूर्वपक्षापरपक्षयो: = शुल्क-कृष्ण पक्ष की। रात्रय: = रात्रियाँ।

'ता मधुकृत:'। ता: = वे। वे रात्रियाँ मधु प्रदान करती हैं। (मधुकृत:) रात्रि में ही मधु का संग्रह (मधुमक्षिकाओं के द्वारा रात्रि में ही मधुसंग्रह किया जाता है— यह लोक प्रसिद्धि है)। रात्रि में ही श्रीविद्या का अनुष्ठान होता है, न कि दिन में। कहा भी है— 'रात्रावेव चन्द्रकलारूपाया: श्रीविद्याया: अनुष्ठानं न च दिवसे इति उपदेश:।' पूर्वपक्षरात्रय: = दर्शादिपौर्णमास्यान्त रात्रियाँ। कृष्णपक्ष की रात्रियों के नाम इस प्रकार हैं—

सुता सुन्वती प्रनुता सूयमानाऽभिषूयमाणा।
पीती प्रपा सम्पा तृप्तिस्तर्पयन्ती कान्ता।।

काम्या कामजाताऽऽयुष्मती कामदुघा।।

ये कृष्णपक्ष की रात्रियाँ हैं।

तन्त्रराजतन्त्र में कहा गया है कि त्रिकोण के भीतर स्थित केन्द्रीय बिन्दु कामेश्वर एवं कामेश्वरी का एकीकृत, संयुक्त या एकीभूत रूप है। इन्हें ही देवी त्रिपुरा या ललिता भी कहा जाता है, जो कि आत्मा है। कामेश्वर निरुपाधि परम संवित् हैं और कामेश्वरी उनकी शक्ति हैं। यह बिन्दु सबसे भीतरी चक्र 'सर्वानन्दमय चक्र' में है। बिन्दु के तीन प्रकार हैं— देवी का मुख एवं देवी के दो स्तन अर्थात् एक मुख एवं दो स्तन = ३। ये तीन बिन्दु हैं— सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि। ये ग्रहात्मक पिण्ड नहीं हैं; प्रत्युत सिसृक्षु परबिन्दु की प्रकाश एवं विमर्शनामक अपने विभिन्न पक्ष हैं। भगवती ललिता की पूजा श्रीविद्या का प्रमुख भाग है।

ललिता को ही 'आद्या' (या अंगी नित्या देवता) भी कहा गया है और उन्हें ही सत्, आनन्द एवं पूर्ण कहा गया है। उनके चारो ओर अंगदेवता (आवरणदेवता) १५ नित्यायें स्थित रहती हैं, जो कि ५ महाभूतों (अपने १५ गुणों से युक्त) या ३ गुणों

से युक्त महाभूतों का प्रतीक है। ललिता प्रकाशरूप शिव की विमर्शशक्ति हैं। भावनोपनिषद् (२८वाँ सूत्र) में कहा गया है कि अरुणिमा या लौहित्य विमर्श है— 'लौहित्यमेतस्य सर्वस्य विमर्श:'। 'सर्वस्य' का अर्थ है— कामेश्वर का (भास्कराचार्य)। ललिता साधकों की आत्मा है। राग एवं रक्तिमा (लाल रंग) दोनों अभिन्न हैं। कहा भी गया है— अपनी आत्मा ललिता देवी हैं। उनका शरीर ही विश्व है। वे विश्वविग्रहा हैं। रक्तिमा उनका विमर्श है और पूजा है— उस पर ध्यान लगाना।

त्रिपुराभैरवी या ललिता के तीन रूप हैं— स्थूल, सूक्ष्म एवं पर। उनकी पूजा के भी तीन प्रकार हैं— कायिक, वाचिक एवं मानसिक। इसे ही बाह्य याग, आन्तर याग एवं भावना की भी संज्ञा दी गई है।

साधक के शरीर को नवचक्रनिर्मित श्रीयन्त्र कहा गया है। श्रीचक्र की पूजा का उद्देश्य यह बताया गया है कि साधक ज्ञाता (होता), ज्ञान (अर्घ्य) एवं ज्ञेय (हवि) के साथ अभेद प्राप्त कर सके—

ज्ञाता स्वात्मा भवेज्ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं हविस्थितम्।
श्रीचक्रपूजनं तेषामेकीकरणमीरितम्।।

त्रिपुरातापिन्युपनिषद् कायिक एवं वाचिक कर्मों का एवं भावनोपनिषद् भावना एवं मानस कर्म का विधान करते हैं— 'ज्ञातृज्ञानं ज्ञेयानामभेदभावनम्'। सर जान वुडरफ ठीक ही कहते हैं— The object of worship of the Srichakra is the realisation of the inseperateness of ज्ञाता (होता), ज्ञान (अर्घ्य) और ज्ञेय (हवि)।

योगिनीहृदय और उसकी दृष्टि : एक विहंगमावलोकन

योगिनीहृदय पर लिखी गई टीकायें अनेक दृष्टियों पर आधृत हैं; यथा—
अमृतानन्दकृत दीपिका— हादिमत।
भास्करारायकृत सेतुबन्ध— कादिमत।

इस प्रकार यह एक ही ग्रन्थ कादिमत एवं हादिमत— दोनों ही दृष्टियों से विवेचित हुआ है। योगिनीहृदय के भी अनेक नामान्तर हैं; यथा— सुन्दरीहृदय एवं नित्याहृदय।

अमृतानन्दनाथ पुण्यानन्दनाथ के शिष्य थे। दोनों (गुरु-शिष्य) महान् योगी और परमहंस थे। अमृतानन्दनाथ ने योगिनीहृदय की दीपिका टीका के अतिरिक्त षट्त्रिंशत्तत्त्वसन्दोह एवं सौभाग्यसुभगोदय भी लिखा है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अज्ञानबोधिनी टीका एवं तत्त्व-दीपन (वेदान्तविषयक) ग्रन्थ भी लिखा है। ये काश्मीरी विद्वान् थे। इनके द्वारा उपर्युक्त वेदान्त का ग्रन्थ लिखा जाना प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता। ये काश्मीरी अमृतानन्दनाथ के लिखे प्रतीत नहीं होते।

भास्कर एवं अमृतानन्द के विचारों में प्रचुर वैषम्य है। भास्कर ने दीपिका का उद्धरण भी दिया है। कहीं-कहीं उसके मत से सहमति भी व्यक्त की है। तटस्थ मूल्यांकन

किया जाय तो अमृतानन्द प्राचीन वैचारिक परम्परा के अधिक निकट हैं, अपेक्षाकृत भास्करराय के।

योगिनीहृदय तीन पटलों में विभक्त है— चक्र, मन्त्र एवं पूजा। चक्र = त्रिपुराचक्र = श्रीचक्र।

ललिता के रूप— स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण-विश्व के रूप में।

चक्र— ९ त्रिकोण : ५ अधोमुख, ४ ऊर्ध्वमुख।

क. ५ अधोमुखी त्रिकोण = शक्ति का सृष्ट्यात्मक पक्ष।

ख. ४ ऊर्ध्वमुखी त्रिकोण = शक्ति का संहारात्मक पक्ष = शक्ति अग्नि।

चक्राविर्भाव = परमशिव की ओर से आत्माभिव्यक्ति की इच्छा द्वारा ही चक्र का आविर्भाव हुआ।

शिव-शक्ति = अग्नि + चन्द्रमा = अग्नि-चन्द्र-सामरस्य। जैसे अग्नि के सम्पर्क में आने पर घृत पिघल जाता है और बहने लगता है, उसी प्रकार अग्नि (प्रकाश = शिव) का सम्पर्क होने पर चन्द्रमा (शक्ति = विमर्श) पिघल कर प्रवाहित होने लगता है। दो बिन्दुओं शिव = अग्नि एवं शक्ति = चन्द्रमा के मध्य से जो यह निर्गत प्रवाह (Flow out) है, उसे ही कहते हैं— हार्धकला। काम, सूर्य और परमबिन्दु तीनों एक ही हैं। यही काम (सूर्य = परमबिन्दु) हार्धकला से समन्वित होने पर बैन्दवचक्र को जन्म देता है। यही बैन्दवचक्र समस्त परवर्ती स्पन्दनों या तरंगों (अर्थात् ३६ तत्त्वों एवं षट्त्रिंशदात्मक जगत्) का मूल कारण है।

बैन्दवचक्र भी त्रिकोणात्मक है। यह तीन मातृकाओं (पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी) से युक्त है। इसे बैन्दव चक्र इसलिये कहते हैं; क्योंकि यह मूल बिन्दु (तुरीय : चतुर्थ बिन्दु) से आविर्भूत होता है। मूल बिन्दु = ३ मातृकाओं की समष्टि = बिन्दुत्रय का एकीकृत रूप या सदाशिव (परमात्मा) है।

बैन्दवचक्र (सबसे भीतर का चक्र)— नवयोनिचक्र। नवयोनिचक्र ९ कोणों से निर्मित है। इस चक्र के तत्त्व या ९ योनियाँ निम्नांकित हैं— धर्म, अधर्म, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा, जीव, ग्राह्य (पदार्थ) एवं प्रमा (यथार्थ ज्ञान)। यह नवयोन्यात्मक चक्र आभ्यन्तर एवं उससे भी अतीत है। यह शुद्ध चैतन्य कला है अर्थात् शुद्ध चैतन्य एवं आनन्द है। यह पूर्णाहन्ता है— देश, काल एवं रूप से अतीत है।

नव योनियाँ वैखरी मातृकाओं से निर्मित हैं और चूँकि नव योनिचक्र बाहर है; अतः बैन्दवचक्र आभ्यन्तर माना गया है ।

नवयोनिचक्र ९ चक्रों के रूप में रूपान्तरित है। वे चक्र हैं—त्रैलोक्यमोहन, सर्वाशा-परिपूरक, सर्वसंक्षोभण, सर्वसौभाग्यदायक, सर्वार्थसाधक, सर्वसिद्धिप्रद, सर्वानन्दमय : त्रयात्मक भूपुर-षोडशदल पद्म-अष्टदल पद्म-चतुर्दशार-द्वादशार, त्रिकोण एवं परमबिन्दु (बिन्दु)।

बैन्दव (अन्तरतम चक्र) महाबिन्दु का द्योतक है और शिव-शक्ति के सामरस्य (सामञ्जस्य) का प्रतिनिधित्व करता है। यह त्रिकोण अम्बिका कहलाता है।

इसके ३ पार्श्व १५ स्वरों (अ से अं) एवं मध्य 'अः' से युक्त हैं। यह कामेश्वर एवं कामेश्वरी (प्रकाश-विमर्श, शिव-शक्ति) से अधिष्ठित है। ये कामेश्वर-कामेश्वरी यहाँ ऐसे आसीन हैं, मानों सदाशिव या महाबिन्दु पर आसीन हों।

मन्त्रसंकेत (योगिनीहृदय का द्वितीय पटल) में बताया गया है कि नवों चक्रों की पृथक्-पृथक् अधिष्ठात्री देवियाँ हैं। मन्त्र आत्मा की रश्मियाँ हैं— 'मन्त्राश्चिन्मरीचयः'। मन्त्र पर ध्यान देने पर ये रक्षा भी करते हैं। ये त्राणधर्मा हैं। न्यास का भी पुष्कल महत्त्व है। मन्त्रसंकेत छः प्रकार के हैं— भावार्थ, सम्प्रदायार्थ, निगर्भार्थ, कौलिकार्थ, सर्वरहस्यार्थ एवं महातत्त्वार्थ।

इस ग्रन्थ (योगिनीहृदय) का तृतीय पटल पूजासंकेत पर प्रकाश डालता है। भगवती की पूजा के तीन प्रकार बताये गये हैं— परा, परापरा एवं अपरा पूजा।

१. परा पूजा = परम शिव के साथ ऐकात्म्य स्वरूप पर ज्ञान ही परा पूजा है।

२. परापरा पूजा = यहाँ कर्म एवं ज्ञान का सांकर्य है। इससे भावना के द्वारा बाह्य चक्रों को आन्तर अभिन्न प्रकाश में खींचा जाता है। यह ज्ञान में कर्म का उन्मूलन है।

३. अपरा पूजा = (निकृष्टतम पूजा) यह बाह्य चक्रों एवं आवरणों की पूजा है। यह चतुष्कोण चतुर्दशार (सबसे बाह्य) से प्रारम्भ की जाती है और केन्द्रीय या बैन्दव चक्र तक अर्थात् सम्पूर्ण श्रीचक्र की पूजा की जाती है। इसमें सभी द्वारों, देवताओं आदि की पूजा का विधान है।

तन्त्रराजतन्त्र कादि, हादि, एवं कहादि— तीनों की पूजा-पद्धति एवं ध्यान-प्रक्रिया का प्रतिपादन करता है। ये मन्त्र 'क', 'ह' एवं 'कह' से प्रारम्भ होते हैं। क एवं ह के संयोग से कहादि निर्मित होता है। यह तन्त्र 'साहं', 'सोऽहं' की अनुभूति का उद्देश्य लेकर प्रवृत्त होता है। यह तन्त्र यह प्रतिपादित करता है कि हमारे शरीर का प्रत्येक तत्त्व एक दिव्य सत्ता है और हमारी सम्पूर्ण सत्ता अनेक Dynamic forces एवं देवताओं का अधिष्ठान है। प्रत्येक देवता का अपना पृथक् यन्त्र (चक्र), पृथक् मन्त्र एवं पृथक् ध्यान है। जैसे कि श्रीयन्त्र ललिता शक्ति का यन्त्र है। श्रीयन्त्र के ऊर्ध्ववर्ती त्रिकोण शिव के हैं एवं अधोवर्ती त्रिकोण शक्ति के हैं। ये त्रिकोण सृष्टि, स्थिति, रक्षा एवं संहार के प्रतिनिधि हैं और ब्रह्माण्ड के संक्षिप्त रूप हैं। प्रत्येक भक्त की साधना का लक्ष्य होता है कि वह गम्भीर एकाग्रता एवं गम्भीर ध्यान एवं जप के द्वारा शक्ति के साथ तादात्म्य प्राप्त कर सके। चक्र का केन्द्रीय बिन्दु 'बिन्दु' कहलाता है और यह शिव-शक्ति या कामेश्वर-कामेश्वरी के सामरस्य का द्योतक है।

इसमें दो क्रमों का वर्णन किया गया है— सृष्टिक्रम एवं संहारक्रम या लयक्रम।

बिन्दु पर ध्यान आकृष्ट करते हुये ऊर्ध्ववर्ती त्रिकोणों पर ध्यान आकृष्ट करना सृष्टि-क्रम है और भूपुर से बिन्दु की ओर ध्यानाकर्षण लयक्रम है। त्रिपुरा का मन्त्र है— 'हं श्रीं महात्रिपुरासुन्दरी नमः'।

प्रत्येक विचारतरंग (Thought wave) मस्तिष्क को प्रभावित करता है और प्रत्येक मानसिक स्पन्दन एवं शक्तिशाली संवेग (Emotions) आत्मा को प्रभावित करता है।

अष्टाविंश अध्याय

त्रिपुरतापिन्युपनिषत्प्रोक्त नवात्मक चक्रस्वरूप

क. श्रीचक्र का अनुलोमक्रम—

१. देवा ह वै भगवन्तमब्रुवन् महाचक्रनायकं नो ब्रूहीति सार्वकामिकं सर्वाराध्यं सर्वरूपं विश्वतोमुखं मोक्षद्वारं यद्योगिन उपविश्य परंब्रह्म भित्वा निर्वाणमुपविशन्ति।।१५।।

२. तान् होवाच भगवान् श्रीचक्रं व्याख्यास्याम इति।।१६।।

३. त्रिकोणं त्र्यश्रं कृत्वा तदन्तर्मध्यवर्तिमानयष्टिरेखामाकृष्य विशालं नीत्वाऽग्रतो योनिं कृत्वा पूर्वयोन्यग्ररूपिणीं मानयष्टिं कृत्वा तां सर्वोर्ध्वां नीत्वा योनिं कृत्वाऽऽद्यं त्रिकोणं चक्रं भगवती द्वितीयमन्तरालं भवति तृतीयमष्टयोन्यङ्कितं भवति।।१७।।

४. अथाष्टारचक्राद्यन्तविदिक्कोणाग्रतो रेखां नीत्वा साध्याद्याकर्षणबद्धरेखां नीत्वेत्येवमथोर्ध्वसम्पुटयोन्यङ्कितं कृत्वा कक्षाभ्य ऊर्ध्वगरेखाचतुष्टयं कृत्वा यथाक्रमेण मानयष्टिद्वयेन दशयोन्यङ्कितचक्रं भवति।।१८।।

५. अनेनैव प्रकारेण पुनर्दशारचक्रं भवति।।१९।।

६. मध्यत्रिकोणाग्रचतुष्टयाद्रेखाचतुष्टयाग्रकोणेषु संयोज्य तद्दशारांशतो नीतां मानयष्टिरेखां योजयित्वा चतुर्दशारं चक्रं भवति।।

७. ततोऽष्टपत्रसंवृतं चक्रं भवति, षोडशपत्रसंवृतं चक्रं भवति, पार्थिवं चक्रं चतुर्द्वारं भवति।।२१।।

८. एवं सृष्टियोगेन चक्रं व्याख्यातम्।।२२।। (त्रिपुरातापिन्युपनिषत्)

अन्य ग्रन्थों में श्रीचक्र के स्वरूप का इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

---

१. रुद्रयामल में श्रीचक्र को अग्नीषोमात्मक एवं सोमसूर्यानलात्मक कहा गया है। पूर्ण विवरण इस प्रकार दिया गया है—

पृश्नयो नाम मुनयः सर्वे चक्रसमाश्रयाः। सेवमानाश्चक्रविद्यां देवगन्धर्वपूजिताम्।।
अग्नीषोमात्मकं चक्रमग्नीषोममयं जगत्। अग्नावन्तर्बभौ भानुः अग्नीषोममयं स्मृतम्।।
त्रिखण्डमातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम्। त्रिकोणं बैन्दवं सौम्यमष्टकोणञ्च मित्रकम्।।
चक्रं चन्द्रमयं चैव दशारद्वितयं तथा। चतुर्दशारं वह्नेस्तु चतुश्चक्रञ्च भानुमत्।।
एतत्प्रसादादिन्द्राद्याः वसवोऽष्टौ मरुद्गणाः। ये ये समृद्धा लोकेस्मिन् त्रिपुराचक्रसेवकाः।।
पुरत्रयञ्च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम्। महालक्ष्म्याः पुरं चक्रं तत्रैवास्ते सदाशिवः।।

श्रीचक्र के प्रस्तारत्रय

मेरुप्रस्तार	कैलासप्रस्तार	भूप्रस्तार
(नित्याषोडशतादात्म्य)	(मातृकातादात्म्य)	(वशिन्यादिप्रस्तार)

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्मं मन्वश्रनागदलसंयुतषोडशारम्।
वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवताया:।।[१]

ख. प्रतिलोमक्रम से चक्रों की स्थिति और उनका स्वरूप—

१. नवात्मकं चक्रं प्रातिलोम्येन वा वच्मि। प्रथमं चक्रं त्रैलोक्यमोहनं भवति, साऽणिमाद्यष्टकं भवति, समात्रष्टकं भवति, ससर्वसंक्षोभिण्यादिदशकं भवति, सप्रकटं भवति, त्रिपुरयाऽधिष्ठितं भवति, ससर्वसंक्षोभिणीमुद्रया जुष्टं भवति।।२३।।

२. द्वितीयं सर्वाशापरिपूरकं चक्रं भवति, सकामाद्याकर्षिणी षोडशकं भवति, सगुप्तं भवति, त्रिपुरेश्वर्याऽधिष्ठितं भवति, सर्वविद्राविणीमुद्रया जुष्टं भवति।।२४।।

३. तृतीयं सर्वसंक्षोभणं चक्रं भवति, सानङ्गकुसुमाद्यष्टकं भवति, सगुप्ततरं भवति, त्रिपुरसुन्दर्याऽधिष्ठितं भवति, सर्वाकर्षिणीमुद्रया जुष्टं भवति।।२५।।

४. तुरीयं सर्वसौभाग्यदायकं चक्रं भवति, सर्वसंक्षोभिण्यादिद्विसप्तकं भवति, ससम्प्रदायं भवति, त्रिपुरवासिन्याऽधिष्ठितं भवति, ससर्ववशङ्करीमुद्रया जुष्टं भवति।।२६।।

५. पञ्चमं तुरीयान्तं सर्वार्थसाधकं चक्रं भवति, ससर्वसिद्धिप्रदादिदशकं भवति, सकलकौलं भवति, त्रिपुरामहालक्ष्म्याऽधिष्ठितं भवति, महोन्मादिनीमुद्रया जुष्टं भवति।।२७।।

६. षष्ठं सर्वरक्षाकरं चक्रं भवति, ससर्वज्ञत्वादिदशकं भवति, सनिगर्भं भवति, त्रिपुरमालिन्याऽधिष्ठितं भवति, महाङ्कुशमुद्रया जुष्टं भवति।।२८।।

७. सप्तमं सर्वरोगहरं चक्रं भवति, सवशिन्याद्यष्टकं भवति, सरहस्यं भवति, त्रिपुरसिद्ध्याऽधिष्ठितं भवति, खेचरीमुद्रया जुष्टं भवति।।२९।।

८. अष्टमं सर्वसिद्धिप्रदं चक्रं भवति, साऽऽयुधचतुष्टयं भवति, सपरापररहस्यं भवति त्रिपुराम्बयाऽधिष्ठितं भवति, बीजमुद्रया जुष्टं भवति।।३०।।

९. नवमं चक्रनायकं सर्वानन्दमयं चक्रं भवति, सकामेश्वर्यादित्रिकं भवति, सातिरहस्यं भवति महात्रिपुरसुन्दर्याऽधिष्ठितं भवति, योनिमुद्रया जुष्टं भवति।।३१।।

सङ्क्रामन्ति वै सर्वाणि छन्दांसि चक्राराणि तदेव चक्रं श्रीचक्रम्।।३२।।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषत्)

श्रीचक्र में ९ त्रिकोण हैं। भास्करराय इन्हें तीन शीर्षों में विभाजित करते हैं, जो कि सृष्टि, स्थिति एवं संहाररूपात्मक हैं। इस प्रकार प्रत्येक के निम्न तीन वर्ग बन जाते हैं—

१. सृष्टि-सृष्टि, सृष्टि-स्थिति, सृष्टि-संहार।

२. स्थिति-सृष्टि, स्थिति-स्थिति, स्थिति-संहार।

३. संहार-सृष्टि, संहार-स्थिति, संहार-संहार।

सोम को सृष्टि, सूर्य को स्थिति एवं अग्नि को संहार कहा गया है।

१. त्रैलोक्यमोहन चक्र— सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा।
२. सर्वाशापरिपूरक चक्र — सर्वविद्राविणी मुद्रा।
३. सर्वसंक्षोभण चक्र — सर्वाकर्षिणी मुद्रा।
४. सर्वसौभाग्यदायक चक्र — सर्ववशंकरी मुद्रा।
५. सर्वार्थसाधक चक्र— महोन्मादिनी मुद्रा।
६. सर्वरक्षाकर चक्र— महांकुश मुद्रा।
७. सर्वरोगहर चक्र— खेचरी मुद्रा।
८. सर्वसिद्धिप्रद चक्र— बीज मुद्रा।
९. सर्वानन्दमय चक्र (मन्त्रनायक)— योनि मुद्रा। (त्रिपुरातापिन्युपनिषत्)

एकोनत्रिंश अध्याय

श्रीचक्र और उसका रहस्यात्मक पक्ष

क. भावनोपनिषद् की दृष्टि— भावनोपनिषद् में कहा गया है कि श्रीचक्र नव चक्रों की समष्टि है, वह नवचक्रात्मक है— 'नवचक्ररूपं श्रीचक्रम्'।

शरीर एवं श्रीचक्र में अभिन्नता— आचार्य भास्करराय अपने भावनोपनिषद्भाष्य में कहते हैं कि अपनी देह नवचक्रात्मक (त्रैलोक्यमोहन आदि चक्रों से युक्त) श्रीचक्र से अभिन्न है— 'स्वकीयो देह एव त्रैलोक्यमोहनादिनवचक्रसमष्टिरूप-श्रीचक्राभिन्नः'।[१]

श्रीचक्र में जो अवान्तर चक्र हैं वे आवरणदेवता के स्थानों से व्यक्त होते हैं। नित्या-षोडशिकार्णव में इनका रहस्योद्घाटन अवश्य किया गया है; किन्तु तन्त्रराजतन्त्र में नहीं।
(भावनोपनिषद्, सूत्र-१०)

श्रीचक्र की पूजा— भावनोपनिषद् में कहा गया है कि ज्ञान अर्घ्य है, ज्ञेय हवि है, ज्ञाता होता है, और ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय में अभेदभावना ही श्रीचक्र की पूजा है— 'ज्ञान-मर्घ्यं ज्ञेयं हविः ज्ञाता होता ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम्'। (सूत्र-१०)

तन्त्रराजतन्त्र में भी कहा गया है—

ज्ञाता स्वात्मा भवेद् ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं हविः स्थितम्।
श्रीचक्रपूजनं तेषामेकीकरणमीरितम्।।

ज्ञान = घटादिक का ज्ञान। अर्घ्य = पूजासामग्री सम्बन्धी वस्तु। ज्ञेय = बाह्य विषयमात्र। ('ज्ञान' घटादिज्ञानपर। अर्घ्य' पूजासामग्रीपर। 'ज्ञेय' बाह्यविचारपर)।

समस्त इदन्ताविषयक वस्तुयें श्रुतियों में हविषट्क में सम्मिलित मानी जाती हैं। इसी में नैवेद्य भी गृहीत है।

अभेदभावना ही पूजा है— अहन्ताविषयक ज्ञाता पूजक एवं देवता चिद्रूपा है। स्वात्मा एवं चैतन्य तो अभिन्न है। ज्ञान-ज्ञातृ-ज्ञेय तीनों चिन्मात्र हैं; अतः तीनों में अभेदा-नुसन्धान विभावनीय है।

सांसारिक लोक-प्रणाली में तो विशेषार्घ्यरूप जलबिन्दु एवं नैवेद्य के समर्पण को ही पूजा कहा जाता है— 'देवतायां समर्पणरूपसम्बन्ध एव पूजा'; किन्तु प्रकृत प्रकरण में ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता तीनों के साथ चिति शक्ति के तादात्म्य सम्बन्ध का अनुसन्धान ही पूजा है। 'अभेदभावनं' (भावनोपनिषद्) का तात्पर्य यही है। (सूत्र-११)

---

१. भास्करराय : भावनोपनिषद्भाष्य— शरीर में २ नेत्र, २ कान, नाक के २ छिद्र, १ मुख (जिह्वा), १ पायु, १ उपस्थ—ये ९ छिद्र हैं। इसी प्रकार श्रीचक्र में भी ४ श्रीकण्ठ एवं ५ शिवयुवती चक्र— ये ९ प्रकृतिस्वरूप त्रिकोण हैं।

दश सिद्धियाँ : त्रैलोक्यमोहन चक्र— 'नियतिः शृङ्गारादयो रसा अणिमादयः' (भावनोपनिषद्) अर्थात् नियतिसहित शृंगार, वीभत्स, रौद्र, अद्भुत, भयानक, वीर, करुण एवं शान्त— ये नव रस ही त्रैलोक्य-मोहन के प्रथम बहिः चतुष्कोण पर स्थित अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्व, प्राकाम्य, भुक्ति, इच्छा, प्राप्ति एवं मुक्तिरूप दश सिद्धियाँ हैं।

'कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यपुण्यपापमया ब्राह्मयाद्यष्टशक्तयः'।।
(सूत्र-१२)

अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, पुण्य और पाप ही मध्य चतुष्कोणस्था ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा एवं महालक्ष्मी आठ मातृ-देवता हैं।

सर्वाशापरिपूरक चक्र— 'पृथिव्यापस्तेजोवाय्वाकाशश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्-पाणिपायूपस्थविकाराः'। (सूत्र-१३)

आशय यह है कि पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ एवं अन्य मनोविकार ही सर्वाशापरिपूरक (द्वितीयावरण) के १६ दलों पर स्थित कामाकर्षिणी, बुद्ध्याकर्षिणी, अहंकाराकर्षिणी, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धाकर्षिणी, चित्ताकर्षिणी, धैर्याकर्षिणी, स्मृत्याकर्षिणी, नामाकर्षिणी, बीजाकर्षिणी, आत्माकर्षिणी, अमृताकर्षिणी और शरीराकर्षिणीरूप १६ नित्या कला गुप्त योगिनियाँ हैं।

सर्वसंक्षोभण चक्र— 'वचनादानगमनविसर्गानन्दहानोपादानोपेक्षाबुद्धयोऽनङ्गकुसु-मादिशक्तयोऽष्टौ'। (सूत्र-१४)

अर्थात् बोलना, पकड़ना, जाना, मल-मूत्र का विसर्जन करना, मैथुन का आनन्द लेना, हान और उपादान एवं उपेक्षाबुद्धि ही सर्वसंक्षोभणसंज्ञक तृतीयावरण के आठ दलों पर स्थित अनंगकुसुमा, मेखला, मदना, मदनातुरा, रेखा, वेगिनी, अंकुशा एवं मालिनीरूप ८ गुप्ततर योगिनियाँ हैं।

चतुर्दशार चक्र— 'अलम्बुसाकुहुर्विश्वोदरीवरुणाहस्तिजिह्वायशस्वत्यश्विनीगान्धारी-पूषाशङ्खिनीसरस्वतीडापिङ्गलासुषुम्ना चेति चतुर्दशनाड्यः सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशारदेवताः'। (सूत्र-१५)

अलम्बुसा, कुहू, विश्वोदरी, वरुणा, हस्तिजिह्वा, यशस्वती, अश्विनी, गान्धारी, पूषा, शंखिनी, सरस्वती, इडा, पिंगला एवं सुषुम्ना— ये चौदह नाड़ियाँ ही चतुर्दश सर्व-सौभाग्यदायक (चतुर्थ चतुर्दशार आवरण) के १४ त्रिकोणों पर स्थित सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्वाह्लादिनी, सर्वसम्मोहिनी, सर्वस्तम्भिनी, सर्वजृम्भिणी, सर्ववशंकरी, सर्वरञ्जनी, सर्वोन्मादिनी, सर्वार्थसाधिनी, सर्वसम्पत्तिपूरिणी, सर्वमन्त्रमयी एवं सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी नाम वाली १४ सम्प्रदाययोगिनियाँ हैं।

बहिर्दशसार चक्र— 'प्राणापानव्यानोदानसमाननागकूर्मकृकरदेवदत्तधनञ्जयाः दश वायवः सर्वसिद्धिप्रदादिबहिर्दशारदेवताः'। (सूत्र-१६)

प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय— ये १० वायु ही बहिर्दशार चक्रगत पञ्चमावरण के १० त्रिकोणों पर स्थित सर्वसिद्धिप्रदा, सर्वसम्पत्प्रदा, सर्वप्रियंकरी, सर्वमंगलकरी, सर्वकामप्रदा, सर्वदुःखविमोचिनी, सर्वमृत्यु-प्रशमनी, सर्वविघ्ननिवारिणी, सर्वांगसुन्दरी एवं सर्वसौभाग्यदायिनी १० कुलोत्तीर्ण योगिनियाँ हैं।

'एतद्वायुसंसर्गकोपाधिभेदेन रेचकः पाचकः शोषको दाहकः प्लावकः इति प्राणमुख्यत्वेन पञ्चधा जठराग्निर्भवति'। (सूत्र-१७)

उक्त दस वायुओं के संसर्ग की उपाधि के भेद से जो रेचक, पूरक, शोषक, दाहक, प्लावक, पञ्च प्राणादि की अमृतरूपी, पालन करने वाली क्रियायें हैं और क्षारक, दारक, क्षोभक, मोहक, जृम्भक ५ क्रियायें (जो पालन नहीं करतीं) नागादि की क्रियायें हैं, जिनसे मनुष्यों का मोहक-दाहक, खाया-पीया, भक्ष्य, लेह्य, चोष्य और पेय चतुर्विध अन्तःभोज्यों का पाचन होता है।

'क्षारक उद्गारकः क्षोभको जृम्भको मोहक इति नागप्राधान्येन पञ्चविधास्ते मनुष्याणां देहगाः भक्ष्यभोज्यचोष्यलेह्यपेयात्मकं पञ्चविधमन्नं पाचयन्ति'। (सूत्र-१८)

अर्थात् क्षारक, उद्गारक, क्षोभक, जृम्भक एवं मोहक— इस प्रकार की जो नाग-प्रधान क्रियायें हैं, उनसे शरीरसम्बद्ध भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, पेयरूप पञ्चविधात्मक खाद्य सामग्रियों का पाचन हुआ करता है।

सर्वरक्षाकर अन्तर्दशार चक्र— 'एता दश वह्निकलाः सर्वज्ञाद्या अन्तर्दशारगा देवताः'। (सूत्र-१९)[१]

सर्वरक्षाकरसंज्ञक छठे अन्तर्दशार चक्र की सर्वज्ञा, सर्वशक्तिप्रदा, सर्वैश्वर्यप्रदा, सर्वज्ञानमयी, सर्वव्याधिविनाशिनी, सर्वाधारस्वरूपा, सर्वपापहरा, सर्वानन्दमयी, सर्वरक्षा-स्वरूपिणी एवं सर्वेप्सितफलप्रदा— ये १० वह्निकलायें निगर्भ योगिनियाँ हैं।

सर्वरोगहर अष्टार चक्र— 'शीतोष्णसुखदुःखेच्छाः सत्त्वरजस्तमोगुणाः वशिन्यादि-शक्तयोऽष्टौ'। (सूत्र-२०)

शीत, ऊष्ण, सुख, दुःख, इच्छा, सत्त्व, रजोगुण एवं तमोगुणसंज्ञक अष्टारचक्र सप्तमावरण के अष्ट त्रिकोणों पर स्थित वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयनी, सर्वेश्वरी और कौलिनी वाग्देवता अष्ट रहस्ययोगिनियाँ हैं ।

---

१. तन्त्रराजतन्त्र में भी १० वायुओं को सर्वार्थसाधकचक्र के देवताओं से अभिन्न बताया गया है—

नाड्यश्चतुर्दश प्रोक्ताः क्षोभिण्याद्यास्तु शक्तयः।
वायवो दश सम्प्रोक्ता सर्वसिद्ध्यादिशक्तयः।।

सर्वसिद्धिप्रद चक्र— 'अव्यक्तमहदहङ्काराः कामेश्वरी-वज्रेश्वरी-भगमालिन्योऽन्तस्त्रि-कोणगा देवताः'। (सूत्र-२५)

अव्यक्त, महत्तत्त्व एवं अहंकार ही तीनों कामेश्वरी, वज्रेश्वरी एवं भगमालिनी देवियाँ हैं। इनका स्थान सर्वसिद्धिप्रद (अष्टमावरण) के मध्य त्रिकोण के अग्र भागों पर है।

'पञ्चदशतिथिरूपेण कालस्य परिणामावलोकनं पञ्चदशनित्या 'श्रद्धाऽनुरूपाधिदेवता'। (भास्करभाष्य में अनुपलब्ध भावनोपनिषत्सूत्र)

काल के परिणाम को प्रदर्शित करनेवाली पञ्चदश तिथियाँ ही पञ्चदश नित्यायें हैं। श्रद्धानुरूपा बुद्धि ही देवता है।

यहाँ प्रयुक्त अव्यक्त, महद् एवं अहंकार शब्द सांख्य दर्शन के पारिभाषिक शब्द हैं और ये बुद्धि तथा प्रकृति के द्योतक हैं— 'अव्यक्ताहंकृतिमदाकाराः प्रतिलोमतः कामेश्व-र्यादिदेव्यः स्युः'।

तिथियों एवं नित्याओं में अभिन्नता— 'पञ्चदशतिथिरूपेण कालस्य परिणामा-वलोकनं पञ्चदशनित्याः'। (सूत्र-३३)

१५ तिथियों के रूप में काल का परिणामावलोकन ही १५ नित्यायें हैं।

प्रपञ्च के तीन भेद हैं— कालरूप, देशरूप एवं उभयरूप।

कालरूप प्रपञ्च क्या है? चन्द्रमण्डलनिष्ठ सादाख्य कला से अतिरिक्त दर्शा, दृष्टा, दर्शता (तै. ब्रा.-३.१०.१) आदि श्रुति-परिगणित १५ कलायें हैं। प्रतिपदा से पूर्णिमा तिथिपर्यन्त समस्त तिथियाँ कामेश्वरी आदि नित्याओं से अभिन्न हैं। सादाख्या ही ललिता हैं— 'सादैव तु ललिता'।

इस प्रकार के नित्य परिवर्तनशील कालरूप तिथिचक्र का आन्तर रूप ही श्रीचक्र में स्थित है, बाह्य रूप नहीं।

भूगोल की दृष्टि से यदि विचार करें तो उत्तर भाग में मेरु पर्वत स्थित है और उसके दक्षिण में जम्बू-प्लक्ष-शाल्मलि-कुश-क्रौंच-शाक-पुष्क नामक सप्त द्वीप स्थित हैं। उनके अन्तराल में वलयाकाराकारित लवण-इक्ष-सुरा-सर्पि-मधु-क्षीर के छः समुद्र स्थित हैं। पुष्क के बाहर मधुरोद सप्तम समुद्र है। उसके भी दक्षिण में परम व्योम है। इस प्रकार सोलह देवता स्थित हैं। उन मेरु से व्योमपर्यन्त रचनाओं में क्रमशः ललिता आदि नित्यायें युग के प्रथम वर्ष में स्थित हैं। द्वितीय वर्ष में वे जम्बूद्वीप से मेरुपर्यन्त चली जाती हैं। तृतीय वर्ष में लवणसागर से जम्बू द्वीपपर्यन्त में और इसी प्रकार क्रमशः १६वें वर्ष में परव्योम से मधुर समुद्रान्त देशों में ललिता आदि १६ नित्यायें स्थित होती हैं।

इस प्रकार १६-१६ वर्षों में नित्याओं की एक परिवृत्ति हुआ करती है । भूगोल के

१. 'श्रद्धानुरूपा धीर्देवता' इति पाठभेदः।

ऊपर-नीचे वलयित चन्द्रमा, बुध, शुक्र, रवि, भौम, गुरु एवं शनि की नक्षत्रकक्षायें आठ हैं और उसके अन्तराल में भी आठ हैं और इस प्रकार १६ देश कालचक्ररूप में स्थित उन स्थानों में देशपरिवृत्ति के विपरीतक्रम में १६ नित्यायें परिवर्तित होती हैं। इस चक्र के अन्तर में ही श्रीचक्र है, बाहर नहीं। इस प्रकार के त्रिविधात्मक चक्र का पारमार्थिक रूप नित्याचक्र ही है। ब्रह्मातिरिक्त सभी देशकालावच्छिन्न समस्त भेदरूप विराट प्रपञ्च नित्यारूपात्मकमात्र है।

नित्याओं का जगत् एवं स्वस्वरूप के साथ अभिन्नता— उन नित्याओं को अपनी आत्मा से अभिन्न रूप में ही ग्रहण करना चाहिये। कहा भी है—

अथ षोडशनित्यानां स्वात्मत्वे वासनां शृणु।
यया तन्मयतासिद्धिः प्रत्यक्षा भवति ध्रुवम्।।

तिथिरूपेण कालस्य परिणामावलोकनम्।
नित्याः पञ्चदशान्यास्स्युरिति प्रोक्तास्तु वासनाः।।

तन्त्रराजतन्त्र में इसकी सविस्तार विवेचना की गई है ।

'काल ही प्रपञ्च के रूप में परिणत हो जाता है' इस प्रकार की विभावना ही पञ्चदश नित्याओं की विभावना है। उनमें भगवती त्रिपुरसुन्दरी अभिन्न रूप से अवस्थित हैं।

वस्तुतः समस्त तिथियाँ इक्कीस हजार छः सौ श्वासों के रूप में काल ही विद्यमान है। भगवती ललिता उनकी समष्टि का विग्रह है। अन्य १५, चौदह सौ चालीस श्वासरूप हैं। आवरण-पूजा में यह पक्षद्वयात्मिका भावना विभावनीय है।

मनस्तम्भ हो जाने पर स्वात्ममात्र विश्रान्ति की अवस्था में श्वासस्तम्भ या देवता के रश्मिविलापन का विसर्जनकाल ही मन-पवन दोनों का स्तम्भकाल है।[१]

इस सम्पूर्ण विवेचना में अन्तश्चक्रभावना का निरूपण कादिमतानुगता है— 'कादिमते-नान्तश्चक्रभावनाः प्रतिपादिताः'। (सूत्र-३५)

काल के परिणाम को प्रदर्शित करने वाली १५ तिथियाँ १५ नित्यायें ही हैं। जहाँ तक श्रद्धानुरूप बुद्धिदेवता की बात है, उसमें सदानन्दाघना, परिपूर्ण स्वात्मारूप कामेश्वरी ही निवास करती है और वे तदात्मक रूप में अवस्थित हैं। इनका स्थान सर्वानन्दमय चक्र (नवमावरण) का बिन्दुस्थान है। इसे ही ललितामहात्रिपुरसुन्दरी परपरातिरहस्ययोगिनी कहते हैं।

भावनोपनिषद के अनुसार वाराही शक्ति पितृरूपा है— 'वाराही पितृरूपा'। कुरुकुल्ला बलिदेवता माता है— 'कुरुकुल्ला बलिदेवता माता' (सूत्र-४) और पुरुष ही सागर है— 'पुरुषार्थास्सागराः' (सूत्र-५)।

---

१. भास्कराय : भावनोपनिषद्भाष्य।

पिता-माता का रहस्यात्मक स्वरूप— 'वाराही पितृरूपा कुरुकुल्ला बलिदेवता माता'।[१] (सूत्र-४)

अपने शरीर में ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय एवं बुद्धि आदि में संक्रान्त जो पिता-माता के अंशविशेष हैं, वे अस्थि एवं मांसादिरूप हैं। उन्हें वाराही एवं कुरुकुल्ला के रूप में कल्पित करना चाहिये। पिता-माता : वाराही-कुरुकुल्ला : अस्थि-मांसादिरूपा। वाराही स्त्री अवश्य हैं, किन्तु उनका मुख पितृरूप है।

पुरुषार्थचतुष्टय का स्वरूप— 'भावनोपनिषदः पुरुषार्थस्सागराः'। (सूत्र-५)

इक्षु-घृत-क्षीर-मधु के सागर ही धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टय हैं। पश्चिम से उत्तरान्त दिशाओं में विद्यमान इक्षु-घृत-क्षीर एवं मधु के सभी समुद्र पुरुषार्थचतुष्टय का प्रतिनिधित्व करते हैं। तन्त्रराजतन्त्र में कहा भी गया है—

बलिदेव्यः स्वमायाः स्युः पञ्चमी जनकात्मिका।
कुरुकुल्ला भवेन्माता पुरुषार्थास्तु सागराः।।

कुरुकुल्ला बलिदेवता हैं। शक्तियों का व्यापार है। अतस्मिंस्तद् बुद्धि का जनन। ये उन्मार्गप्रवर्तिका हैं। मनोरमाकार का कथन है कि ये सभी माया हैं। श्रीसम्प्रदाय की समस्त उपासना के मुख्य आधार विद्या एवं श्रीचक्र हैं और इसके केन्द्र में स्थित हैं— भगवती महात्रिपुरसुन्दरी।

तन्त्रराजतन्त्र में श्रीचक्र का रहस्यात्मक विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

चक्रों के नाम	शक्तियाँ	भास्कररायकृत वर्गीकरण
१. त्रैलोक्यमोहन	भूपुर	सृष्टि-सृष्टि
२. सर्वाशापरिपूरक	षोडश दल	सृष्टि-स्थिति
३. सर्वासंक्षोभण चक्र	अष्टदल	सृष्टि-संहार
४. सर्वसौभाग्यदायक चक्र	चतुर्दशार	स्थिति-सृष्टि
५. सर्वार्थसाधक चक्र	बहिर्दशार	स्थिति-स्थिति
६. सर्वरक्षाकर चक्र	अन्तर्दशार	स्थिति-संहार
७. सर्वरोगहर चक्र	अष्टकोण	संहार-सृष्टि
८. सर्वसिद्धार्थप्रद चक्र	त्रिकोण	संहार-स्थिति
९. सर्वानन्दमय चक्र	बिन्दु	संहार-संहार

इन नौ चक्रों की योगिनियाँ निम्नांकित हैं—

१. प्रकट	४. सम्प्रदाया	७. रहस्या
२. गुप्त	५. कुलकौला	८. परापररहस्या
३. गुप्ततरा	६. निगर्भा	९. अतिरहस्या

१. भास्कराय : भावनोपनिषद्भाष्य।

नौ देवियों के नाम निम्नांकित हैं—

१. त्रिपुरा	४. त्रिपुरवासिनी	७. त्रिपुरसिद्धा
२. त्रिपुरेशी	५. त्रिपुरश्री	८. त्रिपुराम्बा
३. त्रिपुरसुन्दरी	६. त्रिपुरमालिनी	९. महात्रिपुरसुन्दरी

त्रिंश अध्याय

मानवशरीर और श्रीयन्त्र

मानवशरीर ब्रह्माण्ड की प्रतिमूर्ति है। जितनी शक्तियाँ या विभूतियाँ इस समस्त विश्व का सञ्चालन करती हैं, वे सभी सूक्ष्म रूप से पिण्डाण्ड (मानवशरीर) में भी विद्यमान है। तान्त्रिक उपासना का लक्ष्य है— अद्वैतसिद्धि। तान्त्रिक साधक विश्व एवं इष्टदेव की मूर्ति में भी अभेद मानते हैं— विश्व इष्टदेव का शरीर है। यन्त्रों के द्वारा इसी तादात्म्य की स्थापना की जाती है। विश्व, इष्टदेव एवं साधकशरीर— इन तीनों का यन्त्र से अभिन्न सम्बन्ध है; क्योंकि वह इन सभी का रेखात्मक चित्र है। आचार्य अगस्त्य 'शक्तिसूत्र' में कहते हैं— 'शरीरं श्रीचक्रम्'।

श्रीचक्र एवं शरीरचक्रों में ऐक्य

शरीरावयव	चक्र-नाम	दलसंख्या	श्रीचक्र के अवयवों के नाम
१. भ्रूमध्य	आज्ञाचक्र	द्विदल	बिन्दु,
२. लम्बिका	इन्द्रयोनि	अष्टदल	त्रिकोण
३. कण्ठ	विशुद्धि	षोडशदल	अष्टकोण
४. हृदय	अनाहत	द्वादशदल	अन्तर्दशार
५. नाभि	मणिपूर	दशदल	बहिर्दशार
६. बस्ति	स्वाधिष्ठान	षड्दल	चतुर्दशार
७. मूलाधार	मूलाधार	चतुर्दल	अष्टदल
८. तदधोदेश	कुल	षड्दल	षोडशदल
९. तदधोदेश	अकुल	सहस्रदल	भूपुर
१०. ब्रह्मरन्ध्र में स्थित महाबिन्दु सहस्रार है।			

समस्त चक्रों का महाबिन्दु में अन्तर्भाव है। जैसे कि एक ही बिन्दु में श्रीचक्र के नवों चक्रों का अन्तर्भाव है, उसी प्रकार एक ही सहस्रारात्मक बिन्दु में शरीरस्थ सभी षट् चक्रों का भी अन्तर्भाव है। बिन्दु, मूलाधार आदि चक्रों की समष्टि जगत् की सृष्टि-स्थिति एवं संहार का कारण शिव की एक शक्तिमात्र है। वह एक होकर भी सहस्रदल कमल के मध्य चार द्वारों से निर्मित कर्णिका के मध्य चतुष्कोणात्मक शक्तितत्त्व के रूप में स्थित है। उसके मध्य में नाद स्थित है और वह भी चार प्रकार का है। यह बिन्दु ही १० भागों में विभक्त होकर मूलाधार में चार एवं स्वाधिष्ठान में छः दलों के रूप में स्थित है।

१. षोडश दल + चतुर्दशार = स्वरमय।
२. दशारद्वय = 'क' से 'न' = २० वर्ण।
३. अष्टार = अन्तःस्थ + ऊष्मस्थ।
४. चतुरस्र = 'प' से 'म' पर्यन्त वर्णयुक्त।
५. अष्टदल = अ-क-च-ट-त-प आदि वर्गाष्टकमय।
६. बिन्दु = क्षकाररूप।
७. त्रिकोण = मकाररूप।

महाबिन्दु = क्षकार + मकार की समष्टि।

शरीरचक्र— कण्ठ में स्वर। हृदय में 'क' से 'ठ' पर्यन्त वर्ण। नाभि में 'ड' से 'क'। स्वाधिष्ठान में 'ब' से 'ल' पर्यन्त वर्ण। मूलाधार में 'व' से 'स'। आज्ञा में 'ह + क्ष' वर्ण। पाँच शक्तिचक्र = त्रिकोण, अष्टार, अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चतुर्दशार। चार शिव-चक्र = बिन्दु, अष्टदल, षोडश दल, भूपुर (चतुरस्र)।

एकत्रिंश अध्याय

मन्त्र-यन्त्र तथा चक्रों का अन्तस्सम्बन्ध

खण्डनाम	श्रीयन्त्र-भाग	सुषुम्नागत चक्र	मन्त्रकूट	मन्त्राक्षर
सोमखण्ड	चतुर्दशार- अष्टदल- षोडशदल	विशुद्ध-आज्ञा	शक्तिकूट	स्वर
सूर्यखण्ड	दशारद्वय	मणिपूर-अनाहत	कामराजकूट	कादि वर्ण
अग्निखण्ड	त्रिकोण-अष्टार	मूलाधार-स्वाधिष्ठान	वाग्भवकूट	यवर्गीय वर्ण
बैन्दवखण्ड	तीन वृत्त-भूपुर	सहस्रसार	अन्तिम तूर्य	नाद
बिन्दु (चक्र)	नाद	श्रीचक्र के भाग		
मूलाधार	परा	त्रिकोण		
स्वाधिष्ठान	पश्यन्ती	अष्टार		
मणिपूर (हृदय)	मध्यमा	दशारद्वय		
विशुद्ध	वैखरी	चतुर्दशार		
आज्ञा	नाद-नादान्त	शिवचतुष्कोण		
सहस्रार	नादबिन्दु- कलातीत	भगवती त्रिपुरसुन्दरी परासंवित्		

ऐक्य के प्रकार

मन्त्र-देवता यन्त्र-देवता पद्म-देवता कुण्डलिनी-देवता

मातृका-त्रिपुरा— भगवती मातृकास्वरूप हैं और मातृकायें भगवती का स्वरूप है। [१]१६ अक्षर = १६ नित्यायें।

हलो बिन्दुर्वर्गाष्टकमिददलं शाम्भववपुः।
चतुश्चक्रं शक्रस्थितमनुभयं शक्तिशिवयोः।। (सुभगोदयस्तुति)

---

१. त्रिखण्डे त्वन्मन्त्रे शशिसवितृवह्न्यात्मकतया।
स्वराश्चन्द्रे लीनाः सवितरि कलाः कादय इह।
यकाराद्या वह्नावथ कषयुगं बैन्दवगृहे।
निलीनं सादाख्ये शिवयुवति नित्यैन्दवकले।। (सुभगोदयस्तुति)

हल = बिन्दुस्थान (त्रिवृत्) है।
वर्गाष्टक = अष्टदल पद्म।
चार चक्र = शाम्भव शरीर। (सुभगोदयस्तुति)

'शरीरं त्वं शम्भोः'— तुम शम्भु का शरीर हो।

(श्रीचक्र भगवती का शरीर है और भगवती शम्भु का शरीर है)।

खण्ड	**मन्त्रभाग**	**यन्त्रभाग**	**छः कमल**	**कुण्डलिनी-भाग**	**कूटत्रय और भगवती का सम्बन्ध**
सोम खण्ड	शक्तिकूट	शिव के चार चक्र	आज्ञा एवं विशुद्ध चक्र	सोम कुण्डलिनी	चान्द्रखण्ड भगवती के कटि के नीचे का भाग
सूर्य खण्ड	कामकूट	चतुर्दशार तथा बहिर्दशार	हृदय तथा मणिपूर चक्र	सूर्य कुण्डलिनी	कामकला सौरखण्ड = भगवती के कण्ठ से कटिपर्यन्त प्रदेश
अग्नि खण्ड	वाग्भवकूट	अन्तर्दशार अष्टार सबिन्दु त्रिकोण	स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार	अग्नि कुण्डलिनी	वाग्भव कूट = आग्नेय खण्ड = भगवती का मुख

१५ कलायें = पञ्चदशाक्षरी विद्या के १५ अक्षरों से सम्बद्ध है

१६हवीं कला = शुद्ध चिति शक्ति। चिन्मात्र सत्ता, समाधिगम्या— भगवती महात्रिपुरसुन्दरी। प्रत्येक कला १६हवीं कला (स्थिर, अस्तोदयविनिर्मुक्त कला = षोडशी कला) का अंग है। प्रत्येक कला का पूजन सोलहवीं कला के ध्यानसहित किया जाता है। सहस्रार के मध्य में चन्द्रमण्डल ही बैन्दव स्थान है।

श्रीचक्र के ऐक्य

चतुर्धा ऐक्य— १. मातृका तथा मन्त्र का ऐक्य
२. मन्त्र तथा चक्र का ऐक्य
३. चक्र एवं नित्याओं का ऐक्य
४. नित्याओं तथा चक्र का ऐक्य।

षोढा ऐक्य— १. मन्त्र और मातृकाओं का ऐक्य
२. मातृका और श्रीचक्र का ऐक्य
३. मन्त्र और नित्याओं का ऐक्य
४. मातृका और नित्याओं का ऐक्य

५. मन्त्र और चक्र का ऐक्य
६. नित्याओं एवं चक्र का ऐक्य।

श्रीचक्र भगवती त्रिपुरसुन्दरी का शरीर है।

भगवती अक्षररूपिणी या मातृकास्वरूपा हैं; अत: श्रीचक्र एवं श्रीविद्या के अक्षरसमूह भी श्रीचक्र के साथ एकाकार हैं—

अक्षर	श्रीचक्र
क्ष (क्+ष्) = बैन्दवगृह : चन्द्रमा का स्थान। क्ष = आकाश (का वाचक)	शिवचक्र : भूपुर-वृत्तत्रय-षोडशदल-अष्टदल।
१. चार शिवचक्र : भूपुर-वृत्तत्रय-षोडशदल-अष्टदल।	दशारयुग्म (बीस वर्ण)
१४ = क-ख-ग-घ, च-छ-ज-झ, ट-ठ-ड-ढ,त-थ-द-ध, प-फ-ब-भ।	य-र-ल-व-श-ष-स-ह = 'अष्टार'। ङ-ञ-ण-न-म-अनुस्वार तथा विसर्ग = त्रिकोण एवं बिन्दु = 'बिन्दु'।

शरीर में स्थित मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूर-अनाहत-विशुद्धि-आज्ञा आदि चक्र श्रीचक्र के अवयवभूत हैं।

भूपुर-त्रिवृत्-षोडशदल-अष्टदल का समूह 'सृष्टिचक्र'; चतुर्दशार-बहिर्दशार एवं अन्तर्दशारों के समूह 'स्थितिचक्र' तथा अष्टार-त्रिकोण-बिन्दु के समूह 'संहारचक्र' हैं। उनकी समष्टि में द्वितीय बिन्दु 'अनाख्या चक्र' है तथा तृतीय बिन्दु 'भासा चक्र' है।

श्रीकल्प में इन पाँचों का क्रमश: स्वाधिष्ठान-मणिपूर-अनाहत-विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र में अन्तर्भाव माना गया है।

कालीक्रम में सृष्टिचक्र मूलाधार में स्वीकार किया गया है।

चतुर्भि: श्रीकण्ठै: शिवयुवतिभि: पञ्चभिरपि।

एवं— चतुर्भि: शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभि:।
नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपु:।।

की दृष्टि के अनुसार त्रिकोण-अष्टकोण-दशारद्वय-चतुर्दशार = पाँच शक्तिचक्र है तथा बिन्दु-अष्टदलकमल-षोडशदलकमल-चतुरस्त्रत्रय = चार शिवचक्र है। त्रिकोण से अष्ट-दल, अष्टार से षोडशदल, अन्तर्दशार-बहिर्दशार से भूपुर चतुर्दशार के साथ संश्लिष्ट है—

१. त्रिकोणमष्टकोणञ्च दशकोणद्वयं तथा।
चतुर्दशारं चैतानि शक्तिचक्राणि पञ्च च।। = शक्तिचक्र।

२. बिन्दुश्चाष्टदलं पद्मं पद्मं षोडशपत्रकम्।
चतुरस्त्रञ्च चत्वारि शिवचक्राण्यनुक्रमात्।। = शिवचक्र।

३. त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम्।
दशारयोः षोडशारं भूगृहं भुवनास्रके।। = परस्पराश्लेष।

पञ्चदशी विद्या में ककारत्रय तथा हकारद्वय शैवभाग है। ह्रींकार उभयात्मक एवं शेषाक्षर शक्त्यक्षर हैं।

कत्रयं हद्वयञ्चैव शैवो भागः प्रकीर्तितः।
शेषाणि शक्त्यक्षराणि ह्रींकार उभयात्मकः।।

श्रीचक्र में बिन्दु का स्थान

कौलचक्र (त्रिकोण के मध्य) समयचक्र (चतुष्कोण के मध्य)

'कौलचक्रे त्रिकोणमध्यगतो बिन्दुः। समयचक्रे चतुष्कोणमध्यगतो बिन्दुः'। कौलचक्र में कोणसंख्या नहीं होती; क्योंकि वह नवत्रिकोणात्मक है। नवों त्रिकोणों के मिलाने एवं मिलने से मर्म-सन्धियाँ आविर्भूत होती हैं।

द्वात्रिंश अध्याय
श्रीचक्र का अर्चन

सृष्टि-स्थिति-संहार के क्रम से चिन्तन करने पर श्रीचक्र के अर्चन में अधिकारवैविध्य है। कहा भी गया है—

स्थितिक्रमो गृहस्थस्य संहारो वनितो क्रमः।
ब्रह्मचारिण उत्पत्तिः स्त्रियः शूद्रस्य चेष्टतः।।

दक्षिणामूर्त्ति सम्प्रदाय— दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय में बिन्दु से प्रारम्भ करके भूपुरपर्यन्त अर्थात् सृष्टिक्रम से अर्चना की जाती है। स्थितिक्रम में भूपुर से आरम्भ करके अष्टारपर्यन्त और फिर बिन्दु से प्रारम्भ करके चतुर्दशारपर्यन्त पूजा की जाती है। संहारक्रम में भूपुर से आरम्भ करके बिन्दु-पर्यन्त अर्चना की जाती है। सारांश यह कि—

अर्चनाक्रम (श्रीचक्रार्चन)

सृष्टिक्रम	स्थितिक्रम	संहारक्रम
(बिन्दु से आरम्भ कर भूपुरपर्यन्त श्रीचक्र की अर्चना का साम्प्रदायिक क्रम)	(भूपुर से आरम्भ करके अष्टारपर्यन्त एवं फिर बिन्दु से आरम्भ करके चतुर्दशारपर्यन्त श्रीचक्र की अर्चना का साम्प्रदायिक क्रम)	(भूपुर से प्रारम्भ करके बिन्दुपर्यन्त श्रीचक्र की अर्चना का साम्प्रदायिक क्रम)

हयग्रीव एवं आनन्दभैरव सम्प्रदाय— हयग्रीव एवं आनन्दभैरव सम्प्रदाय के अर्चन-विधान में स्थितिक्रम में पहले बिन्दु, त्रिकोण, कामेश्वरी आदि नित्या गुरुपंक्ति का पूजन किया जाता है और फिर भूपुर से आरम्भ करके क्रमशः अष्टार, त्रिकोण आदि की पूजा की जाती है। शेष यथापूर्वार्चनवत् है।

बिन्दु से आरम्भ करके अष्टदलपर्यन्त 'सृष्टिचक्र', चतुर्दशार से आरम्भ करके अन्तर्दशारपर्यन्त 'स्थितिचक्र', अष्टार से प्रारम्भ करके बिन्दुपर्यन्त 'संहारचक्र' का विधान अर्थात् श्रीचक्र की त्रयात्मकता त्रिपुरा के त्रिपुरात्व की भी ज्ञापिका है। प्रधान नायिका के रूप में ललिता, राजराजेश्वरी, पराम्बा, त्रिपुरसुन्दरी ही मान्य हैं।

भूपुरवृत्त गुणत्रय, कालत्रय, अवस्थात्रय, लोकत्रय आदि के बोधक हैं। बिन्दु तुरीया एवं तुरीयातीतावस्था का बोधक है। पिण्ड-ब्रह्माण्ड का ऐक्य श्रीचक्र का ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड के साथ ऐक्य सूचित करता है। श्रीचक्र शब्दब्रह्म (ॐ) का प्रतीक है। अ-उ-म— प्रणव के नादबिन्दुत्रय = अवस्थाचतुष्टय, वाणीचतुष्टय तथा श्रीयन्त्र का सृष्टि-स्थिति-संहार श्रीचक्र में अन्तर्भूत है। कार्य-कारणातीत (पञ्चम स्वरूप) 'भासा' स्वयं श्रीचक्र का स्वरूप है।

श्रीचक्रार्चन

उत्तम अर्चन	मध्यम अर्चन	निम्नतम अर्चन
(निष्कल भावनात्मक)	(सकल-निष्कल भावनात्मक)	(सकल भावनात्मक)

अर्चन की भावना के प्रकार

निष्कल भावना	सकल-निष्कल भावना	सकल भावना

श्रीयन्त्र का पूजन— तन्त्रशास्त्र में श्रीयन्त्र के पूजन की दो विधियाँ हैं— बाह्य एवं आभ्यन्तर। बाह्य पूजा की पद्धति यह है कि प्रथमत: योग्य गुरु से दीक्षा लेकर शुभ मुहूर्त में श्रीयन्त्र का लेखन करना चाहिये। यन्त्र के लेखनोपरान्त गुरु-प्रोक्त षोढा न्यास एवं भूतशुद्धि से अपना शरीर पवित्र करके 'देवो भूत्वा यजेद्देवम्' के अनुसार यन्त्र के भागों में तत्तद् देवताओं का आवरणपूजन करना चाहिये। फिर गुरुपादुका का पूजन करना चाहिये। फिर बलि एवं पूजोपहार चढ़ाकर श्रीयन्त्र का विसर्जन कर देना चाहिये।

आभ्यन्तर पूजा का स्वरूप तन्त्रराजतन्त्र में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

ज्ञाता स्वात्मा भवेज्ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं हवि: स्मृतम्।
श्रीचक्रपूजनं तेषोमेकीकरणमीरितम्।।

अर्थात् ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय तथा होता, अर्घ्य एवं हवि— इन त्रिपुटियों में अभेदभावना ही आभ्यन्तर पूजा है ।

अधिकारभेद से भावना के भेद

सकल भावना	सकल-निष्कल भावना	निष्कल भावना

तत्र नित्योदिता पूजा त्रिभिर्भेदैर्व्यवस्थिता।
परा चाप्यपरा गौरि ! तृतीया च परापरा।।
(योगिनीहृदय-३.२०)

प्रथमाद्वैतभावस्था सर्वप्रसरगोचरा।
द्वितीया चक्रपूजा च सदा निष्पाद्यते मया।।
(योगिनीहृदय-३.३)

एवं ज्ञानमये देवि ! तृतीया तु परापरा।
उत्तमा सा परा ज्ञेया विधानं शृणु साम्प्रतम्।।
(योगिनीहृदय-३.४)

निष्कल भावना— उत्तम अधिकारियों के लिये निष्कल भावना का ही विधान है। इसमें केवल महाबिन्दु में ही बिन्दु आदि नव चक्रों के पारस्परिक भेद के विना निर्विषयक संविन्मात्र वाले (चित्स्वरूप) कामकला की भावना करनी पड़ती है। यही सर्वोत्तम साधना है।

सकल-निष्कल भावना— मध्य श्रेणी के साधकों के लिये बिन्दु से लेकर अर्द्धचन्द्र, पादचन्द्र, कलाचन्द्र, नादशक्ति, व्यापिका, रोधिनी, समना एवं उन्मना— नव चक्रों में श्री के उपर्युक्त नव चक्रों की ऐक्य भावना करना उत्तम है। यही है— सकल-निष्कल भावना।

सकल भावना— तृतीय श्रेणी के उपासक को श्रीयन्त्र के सामान्य विवेचन में कथित शरीर एवं चक्रों के साथ ऐक्य भावना करनी चाहिये। यही सकल भावना है। इस भावनाभेद से अधिकारी भी विज्ञान केवल, शुद्ध, अशुद्ध के भेद से तीन प्रकार के होते हैं।

समस्त चक्रों की एक महाबिन्दु में एवं एक बिन्दु में ही श्रीचक्र के नवों चक्रों का अन्तर्भाव है। एक ही महाबिन्दु ४ + ६ रूपों में विभाजित होकर समस्त पिण्डस्थ चक्रों में व्याप्त हो गया है।

श्रीचक्र के विवरण में मतभेद भी है। यथा—

क. कोई-कोई आचार्य षोडशदल पद्म के बाद वृत्तत्रय को भी अतिरिक्त चक्र मानते हैं; जैसे कि यामल में। इनके मतानुसार बिन्दु सर्वव्यापक चक्र है; अतः वह नव चक्रों में परिगणित नहीं है।

ख. कोई-कोई आचार्य चतुर्दशार के बाद एक मर्यादावृत्त और अष्टदल कर्णिका के लिये एक वृत्त एवं अष्टदल के बाद भी षोडशदल कर्णिका, फिर मर्यादावृत्त— इस प्रकार वृत्तत्रय बनाते हैं।

ग. कतिपय आयार्य मर्यादावृत्त न देकर केवल कर्णिकावृत्त ही देते हैं और षोडश-दल के बाद अतिरिक्त तीन वृत्त देते हैं।

घ. कतिपय आचार्य वृत्त देते ही नहीं।

ङ. चतुरस्रविषयक मतभेद—

अ. कोई-कोई आचार्य चार द्वारयुक्त चतुरस्र निर्मित करते हैं।

ब. कोई आचार्य तत्तद् दिशाओं में विभिन्न संख्याओं में दो द्वारयुक्त चतुरस्र बनाते हैं।

स. कोई-कोई चार रेखाओं का चतुर्द्वार एवं द्वादश द्वार भी बनाते हैं। अधिकांशतः लोग त्रिरेखात्मक चतुर्द्वारयुक्त चतुरस्र ही बनाते हैं। अतः बिन्दु से चतुर्दशार तक ही प्रधान यन्त्र माना जाता है; क्योंकि यथार्थ श्रीयन्त्र शिव-शक्ति का सम्पुटस्वरूप है। चतुर्दशार तक ही नव चक्रों का अन्तर्भाव है। इनमें त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार और चतुर्दशार (पाँच शक्तिचक्र) एवं बिन्दु, अष्टदल, षोडशदल एवं चतुरस्र (चार शिव-चक्र) अन्तर्भूत है। त्रिकोण में बिन्दु, अष्टार में अष्टदल, दोनों दशारों में षोडशार एवं चतुर्दशार में चतुरस्र अन्तर्भूत है—

त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम्।
दशारयोः षोडशारं भूगृहं भुवनास्त्रके।।

शैवानामपि शाक्तानाञ्चक्राणाञ्च परस्परम्।
अविनाभावसम्बन्धं यो जानाति स चक्रवित्।।

बिन्दु और त्रिकोण— नव योनियों से निर्मित श्रीचक्र का नवमावरण बिन्दुचक्र के मध्य स्थित है। यही समस्त विश्व के विकास का मूल है। परब्रह्मस्वरूपिणी त्रिपुरा देवी का यही प्रथम सगुण स्वरूप है। जब उनकी इच्छाशक्ति से यह फूलता है (उच्छून होता है) तब चने के समान अंकुरित होता है और तब यह त्रिकोण का रूप ग्रहण करता है। त्रिकोण के तीनों बिन्दु ही पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी के कारण हैं। बिन्दु एवं त्रिकोण के तीन बिन्दुओं से (चार बिन्दुओं से) कामकला का निर्माण होता है। इन्हीं तीन बिन्दुओं के वाचक 'बाला' के तीन बीज हैं। इन्हीं के अन्तर्गत गुणत्रय स्थित है। इसके पश्चात् वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका एवं पराशक्ति के पाँच शक्त्यात्मक त्रिकोण हैं। ये अधोमुखी हैं। इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शान्ता— ये चार त्रिकोण शिवात्मक त्रिकोण हैं और ऊर्ध्वमुखी हैं। इन्हीं नव त्रिकोणों से श्रीचक्र का निर्माण होता है।

कामकला, पराम्बिका त्रिबिन्दुमयी हैं। इन्हीं में ३६ तत्त्व एवं पञ्चदशी के ३६ अक्षर स्थित हैं। इसी पराम्बा के विकास से तीन गुणों का आविर्भाव होता है। परा वाक् बिन्दुस्वरूप है। यह वामा आदि शक्तियों के सृजनार्थ पश्यन्ती रूप धारण करता है। परा वाणी आगे नव त्रिकोणों में विकसित होकर मध्यमा बनती है। मध्यमा वाणी का स्थान अनाहत चक्र है। यहाँ योगी इन ध्वनियों का अनुभव करते हैं— चिणि, चिञ्चिणी, घण्टा, शंख, वीणा, वेणु, भेरी, मृदंग, मेघ = ९ नाद वाली सूक्ष्मा वाणी। 'अ' आदि स्वर एवं क-च-ट-त-प आदि व्यञ्जन ९ वर्ग (अ-ल-क-च-ट-त-प-य-श) वाले वर्ण स्थूल वर्ण हैं। इन सभी वर्गों की लिपि भूतलिपि है। सूक्ष्मा मध्यमा— स्थूला मध्यमा।

सारांश यह कि बिन्दु के विकास से त्रिकोण और त्रिकोण के विकास से अष्टकोण का उदय हुआ; जिसमें श-ष-स-प-फ-ब-भ-म— ये ८ अक्षर हैं। ये चक्रत्रय स्वप्रभाभास्वर है। ये तीनों चक्र तवर्ग, टवर्गमय अन्तर्दशार एवं कवर्ग, चवर्गमय बहिर्दशार चक्रों के रूप में परिणत हो जाते हैं। बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार एवं बहिर्दशार का विकास है— चतुर्दशार चक्र। इसके १४ दल अकार से ओकारपर्यन्त १४ स्वर हैं।

चतुर्दशार चक्र के बाद क-च-ट-त-प-य-शवर्गों से युक्त अष्टदल कमलचक्र है, जो कि वैखरी वाक् का व्यञ्जनात्मक स्वरूप है। षोडशदल चक्र १६ स्वरों से युक्त है।

श्रीचक्रार्चन

श्रीचक्र का अर्चन अधिकारभेद से भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है; इसीलिये कहा भी गया है—

स्थितिक्रमो गृहस्थस्य संहारो वनिनो यतेः।
ब्रह्मचारिण उत्पत्तिः स्त्रियः शूद्रस्य चेष्टतः।।

१. गृहस्थों के लिये स्थितिक्रम
२. संन्यासियों के लिये संहारक्रम
३. ब्रह्मचारियों के लिये सृष्टिक्रम।

श्रीचक्र का अर्चन-क्रम

सृष्टि क्रम | स्थिति क्रम | संहार क्रम

दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय में बिन्दु से आरम्भ करके भूपुरपर्यन्त अर्चनक्रम है। सृष्टिक्रम बिन्दु से भूपुरपर्यन्त है। भूपुर से प्रारम्भ करके अष्टारपर्यन्त, फिर बिन्दु से आरम्भ करके चतुर्दशारपर्यन्त (पूजन) स्थितिक्रम है।

भूपुर से आरम्भ करके बिन्दुपर्यन्त संहारक्रम है। यही अर्चन संहारक्रम का अर्चन कहलाता है।

श्रीचक्रार्चन के प्रमुख रूप

सृष्टिक्रम	संहारक्रम
(बिन्दु से भूपुर तक का क्रम)	(भूपुर से बिन्दुपर्यन्त का क्रम)

संहारक्रम के अनुसार श्रीचक्र शुद्ध सत्त्व-प्रधान मन है। श्रीचक्र का प्रत्येक अवयव (आवरण) और चक्र की शक्तियाँ (आवरण देवता) संहारक्रम के अनुसार मानसिक दशाओं एवं मन की वृत्तियों का निरूपण हैं। जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति (अवस्थात्रय) का निरूपण भूपुर, षोडशदल एवं अष्टदल से होता है। ये अनुभूतियाँ अशुद्ध हृदय वाले जीवों एवं मनुष्यों की होती हैं। ये अज्ञानावस्थायें हैं।

तन्त्रशास्त्र में श्रीयन्त्र का पूजन बाह्य एवं आभ्यन्तर दो क्रमों में अनुष्ठित है।

बाह्य पूजा का क्रम— श्रीयन्त्र का लेखन किया जाय, गुरु से दीक्षा लेकर शुभ मुहूर्त में उपासना की जाय; अन्यथा हानि की सम्भावना रहती है।

यन्त्रलेखन के बाद षोढ़ा न्यास आदि करके श्रीचक्रन्यास, भूतशुद्धि से शरीर शुद्ध करके 'देवो भूत्वा यजेद्देवम्' के अनुसार सम्बद्ध यन्त्रों में सम्बद्ध देवताओं का आवरण पूजन करना चाहिये। फिर गुरुपादुका का पूजन करना चाहिये। फिर पूजोपहार चढ़ाकर यन्त्र का विसर्जन करना चाहिये।

श्रीयन्त्र की आभ्यन्तर पूजा— तन्त्रराजतन्त्र में इस पूजा का विधान निम्न रूप से दिया हुआ है—

ज्ञाता स्वात्मा भवेज्ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं हविः स्मृतम्।
श्रीचक्रपूजनं तेषामेकीकरणमीरितम्।।

आभ्यन्तर पूजा का अर्थ है— ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, होता, अर्घ्य एवं हवि— इन त्रिपुटियों में अभेद भावना की स्थापना। यह भावना सकल भावना, सकल-निष्कल भावना एवं निष्कल भावना के रूप में तीन प्रकार की बताई गई है।

क. सर्वोत्तम पूजा— केवल महाबिन्दु में ही बिन्दु आदि नव चक्रों के पारस्परिक भेदों के विना निर्विषयक, चित्स्वरूप संविन्मात्रात्मक कामकला की भावना करना ही सर्वोत्तम पूजा है।

ख. मध्यश्रेणी के साधकों की पूजा— बिन्दु से अर्द्धचन्द्र, पादचन्द्र, कलाचन्द्र, नादशक्ति, व्यापिका, रोधिनी, समना, उन्मना आदि नव चक्रों में नव चक्रों की एकता स्थापित करना— दोनों में ऐक्य भावना करना मध्यम पूजा है। यही है— सकल-निष्कल भावना।

त्रयस्त्रिंश अध्याय

श्रीयन्त्र का महत्त्व

सौ यज्ञों का सम्यक् रूप से निष्पादन करने वाले साधक को जिन महान् फलों की प्राप्ति होती है, उन सभी फलों की प्राप्ति श्रीचक्र के दर्शनमात्र से हो जाती है। कहा भी है—

सम्यक् शतं कृतून्कृत्वा यत्फलं समवाप्नुयात्।
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्।।

श्रीयन्त्र (श्रीचक्र) श्रीदेवी (षोडशी = महात्रिपुर सुन्दरी = भगवती ललिता) का यन्त्र है। इसमें देवी की समस्त शक्तियाँ यन्त्रित या नियन्त्रित हैं। नव त्रिकोणों के समाश्लेष से आविर्भूत ४३ त्रिकोणों के समाहारस्वरूप इस महायन्त्र को ही नवयोनि यन्त्र भी कहते हैं। ९ योनियाँ हैं— धर्म, अधर्म, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा, जीव, ग्राह्य और प्रमा। समस्त देवों का यन्त्ररूप यह चक्रराज भगवती श्रीविद्या का अपना ही आयतन, मन्दिर, स्वस्वरूप या विशिष्ट अंश है।

संकेतात्मक भाषा में इसका स्वरूप इस प्रकार है—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्ममन्वस्रनागदलसंयुतषोडशारम्।
वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः।।

श्रीचक्र शिवा एवं शिव का शरीर है— 'श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः'। ब्रह्माण्डपुराण में कहा गया है कि चार शिवचक्रों एवं पाँच शक्तिचक्रों अर्थात् नव चक्रों के सम्मिलन से श्रीचक्र आविर्भूत होता है या गठित होता है और यह कामेश्वर एवं कामेश्वरी का शरीर है—

चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः।।

श्रीचक्र के दर्शन का फल यामल में इस प्रकार कहा गया है—

सम्यक् शतक्रतून् कृत्वा यत्फलं समवाप्नुयात्।
तत्फलं लभते भक्त्या कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्।।

महाषोडश दानानि कृत्वा यल्लभते फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्।।

सार्द्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नात्वा यत्फलमश्नुते।
तत्फलं लभते भक्त्या कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्।।

१०० यज्ञ करने, १६ महादान करने एवं ३ करोड़ ५० लाख तीर्थों में स्नान करने से जो फल मिलता है, वह फल श्रीयन्त्र का मात्र दर्शन करने से ही प्राप्त हो जाता है।

श्रीचक्र अहन्ता-इदन्ता का बीज और शिव-शक्ति का सामरस्य है—

अहन्तेदन्तयोर्बीजमविभाग-रसात्मकम् ।
शिवशक्तिमयं चक्रं विश्वाकारं भजाम्यहम्।। (सुभगोदयवासना)

यह रसात्मक है, अविभागात्मक है और विश्वाकार है।

भगवान् कामेश्वर शिव एवं भगवती कामेश्वरी शिवा के संयुक्त बिन्दु से ही श्रीचक्र का निर्माण हुआ है।

पिण्ड ब्रह्माण्ड का ही संक्षिप्त संस्करण है।

श्रीचक्रराज भगवती का अपना राजप्रासाद है और भगवती उसी में निवास करती हैं—

श्रीचक्रराजनिलया श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी।
श्रीशिवाशिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बिका।।
(ललितासहस्रनाम)

भगवती की पूजाक्रम में सर्वप्रथम पूजा श्रीचक्रराज की ही होती है—

क. प्रातः स्नात्वा विधानेन सन्ध्याकर्म समाप्य च।
पूजागृहं ततो गत्वा चक्रराजं समर्चयेत्।। (ललितासहस्राम)

ख. चक्राधिराजमभ्यर्च्य जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम्।
बिल्वपत्रैश्चक्रराजे योऽर्चयेल्ललिताऽम्बिकाम्।। (ललितासहस्रनाम)

ग. पद्मैर्वा तुलसीपुष्पैरेभिर्नामसहस्रकैः।
सद्यः प्रसादं कुरुते तत्र सिंहासनेश्वरी।। (ललितासहस्रनाम)

घ. श्रीचक्रे मां समभ्यर्च्य जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम्। (ललितासहस्रनाम)

भगवती यन्त्रात्मिका है; अतः यन्त्र भगवती का स्वस्वरूप है—

सर्वयन्त्रात्मिका सर्वतन्त्ररूपा मनोन्मनी।
महातन्त्रा महामन्त्रा महायन्त्रा महाऽसना।। (ललितासहस्रनाम)

सत्पात्र तो केवल वही साधक है, जो श्रीमन्त्रराज एवं श्रीचक्र का समर्चन करता है—

श्रीमन्त्रराजं यो वेत्ति श्रीचक्रं यः समर्चति।
यः कीर्तयति नामानि तं सत्पात्रं विदुर्बुधाः।।
(ललितासहस्रनाम)

महानवमी को जो श्रीदेवी की श्रीचक्र के मध्य अर्चना करता है, वह मुक्त हो जाता है—

महानवम्यां यो भक्तः श्रीदेवीं चक्रमध्यगाम्।
अर्चयेन्नामसाहस्रैस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता।।
(ललितासहस्रनाम)

जो पौर्णमासी तिथि पर रात्रि के समय श्रीचक्र में परदेवता की अर्चना करता है, वह तो स्वयं भगवती ललिता ही बन जाता है—

रात्रौ यश्चक्रराजस्थामर्चयेत् परदेवताम्।
स एव ललितारूपस्तद्रूपा ललिता स्वयम्।।

(ललितासहस्रनाम)

जो ललितासहस्रनाम के साथ श्रीचक्र का जीवन में एक बार भी अर्चन कर लेता है, उसके भाग्य तथा उसके पुण्यों के फल को स्वयं भगवान् महेश्वर भी वर्णित कर पाने में समर्थ नहीं हैं—

एभिर्नामसहस्रैस्तु श्रीचक्रं योऽर्चयेत्सकृत्।
तस्य पुण्यफलं वक्तुं न शक्नोति महेश्वरः।।

(ललितासहस्रनाम)

श्रीयन्त्र की सर्वात्मकता— श्रीचक्र सर्वोच्च चक्र होने के कारण चक्रराज कहलाता है। श्रीचक्र वह रचना है, जिसमें सभी देवता, समस्त शक्तियाँ, भगवान् कामेश्वर, कामेश्वरी, श्रीविद्या, अनन्त विश्व, छत्तीस तत्त्व, प्रकृति, महामाया, ईश्वर, सदाशिव, उन्मेष-निमेष, सृष्टि-स्थिति-संहार व्यापार, समस्त मन्त्र, मन्त्रेश्वर, मन्त्रमहेश्वर आदि सभी का निवास है।

श्रीचक्र शिव एवं शक्ति का अविनाभाव सम्बन्ध है। भगवती त्रिकोणरूपिणी शक्ति है और भगवान् बिन्दुरूप शिव हैं। इन दोनों का अविनाभाव सम्बन्ध ही श्रीचक्र है। जो ऐसा जानता है, वही श्रीचक्र के रहस्य को यथार्थ रूप में जानता है; अन्य लोग नहीं—

शैवानामपि शाक्तानां चक्राणां च परस्परम्।
अविनाभावसम्बन्धं यो जानाति स चक्रवित्।।

त्रिकोणरूपिणी शक्तिः बिन्दुरूपः परः शिवः।
अविनाभावसम्बन्धस्तस्माद् बिन्दुत्रिकोणयोः।।

श्रीचक्रराज एवं उपासक में अभेद— उपासक को श्रीचक्रन्यास के समय श्रीचक्रराज एवं अपने को अभिन्न मानना चाहिये—

शरीरं चिन्तयेदादौ निजं श्रीचक्ररूपकम्।
त्वगाद्याकारनिर्मुक्तं ज्वलत्कालाग्निसन्निभम्।।

इतना ही नहीं; उपासक को अपने को चर्म, अस्थि, मज्जा से निर्मित शरीरवान् न मान कर प्रथमकूट की भाँति प्रलयाग्नि के समान प्रज्वलित मानना चाहिये। 'ज्वलत्कालाग्निसन्निभम्' मानना चाहिये; क्योंकि श्रीविद्या के प्रथम कूट का स्वरूप यही है—

प्रलयाग्निनिभं प्रथमं मूलाधारादनाहतं स्पृशति।

(वरिवस्यारहस्यम्)

श्रीचक्रराज सर्वोत्पादक है— ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि देवता, सूर्य-चन्द्र-बृहस्पति आदि तारा एवं ग्रह, अश्विनी-भरणी आदि नक्षत्र, मेषादिक राशि, वासुकी-शेष आदि

नागराज, वरुण-वैनतेय आदि एवं मन्दार आदि वृक्ष, रम्भा आदि अप्सरायें, कपिलादिक सिद्ध, वसिष्ठादिक मुनिगण, कुबेरादिक यक्ष, किन्नर-गन्धर्व, विश्वेदेव, ऐरावतादि गजेन्द्र, उच्चैःश्रवा आदि अश्व, हिमालय-कैलास-मेरु आदि पर्वत, गंगादिक पुण्यतोया नदियाँ, समस्त समुद्र, समस्त पीठ, तीर्थ, देवता, शक्तियाँ, प्रकृत्यण्ड, ब्रह्माण्ड, मायाण्ड, शिवाण्ड, शक्त्यण्ड आदि नौ नाद, परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी आदि तथा समस्त मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र-सिद्धियाँ-चक्र आदि सभी कुछ का आविर्भाव श्रीचक्र से ही हुआ है। इसी में सृष्टि-स्थिति-विनाश-सृजन-संहार आदि सभी स्थित है। यही भगवती जगदम्बिका त्रिपुरसुन्दरी एवं भगवान् कामेश्वर का राजशौध भी है। यहीं से द्वैत-द्वैताद्वैत-अद्वैत, भेद-भेदाभेद-अभेद, सारे शब्द, सारे अर्थ, सारे तत्त्व, सारे शास्त्र, सारे मन्त्र, सारे चक्र, चक्रों की शक्तियाँ, इच्छा-ज्ञान-क्रिया आदि शक्तियाँ उद्भूत हुई हैं। यह सृष्टि का सबसे बड़ा मान-चित्र है। यह सृष्टि का सबसे बड़ा होने पर भी सबसे संक्षिप्त (संक्षिप्ततम) नक्शा है। यह समस्त सत्ताओं एवं शक्तियों का केन्द्र है।

मानवशरीर के रूप में श्रीचक्र— मानवपिण्ड के ब्रह्मरन्ध्र में बिन्दु, मस्तक में त्रिकोण, ललाट में अष्टकोण, भ्रूमध्य में अन्तर्दशार, कण्ठ में बहिर्दशार, हृदय में अन्तर्दशार, कुक्षियों में वृत्त, नाभि में अष्टदल, कटि में अष्टदलबहिर्वृत्त, स्वाधिष्ठान में षोडशदल, मूलाधार चक्र में बाह्य त्रिवृत्त, जानुओं में भूपुर की प्रथम रेखा, जंघा में भूपुर की द्वितीय रेखा एवं पैरों में भूपुर की तृतीय रेखा के रूप में स्थित है।

योगिनीहृदय में इस तथ्य की पुष्टि करते हुये कहा भी गया है—

त्रिपुरेशीमहायन्त्रं पिण्डात्मकमीश्वरि !।
यो जानाति स योगीन्द्रः स शम्भुः स हरिर्विधिः।।

पिण्डब्रह्माण्डयोर्ज्ञानं श्रीचक्रस्य विशेषतः।
ज्ञात्वा शम्भुफलावाप्तिः नाल्पस्य तपसः फलम्।।

श्रीचक्रराज पञ्चदशी विद्यात्मक भी है, श्रीविद्यास्वरूप भी है। योगिनीहृदय में श्रीयन्त्र एवं श्रीविद्या में सामरस्य भी सिद्ध किया गया है—

श्रीविद्या	श्रीयन्त्र
१. लकार	भूपुर
२. सकार	षोडशदल
३. हकार	अष्टविग्रहात्मक अष्टदल
४. (भुवनेश्वरीरूपात्मक) एकार	चतुर्दशार
५. एकार	बहिर्दशार
६. हल्लेखागत रकार	अन्तर्दशार

श्रीविद्या	श्रीयन्त्र
७. ककार	अष्टार
८. अर्धचन्द्र	त्रिकोण
९. नादरूपा अर्धमात्रा के साथ	त्रिकोणात्मिका योनि का आविर्भाव
१०. बिन्दु	बिन्दुचक्र (कामेश्वरस्वरूप एवं विश्वाधार चक्र)

अमृतानन्द योगी दीपिका में षट् चक्र एवं श्रीविद्या के नव चक्रों में सामरस्य दिखाते हुये दोनों में ऐक्य प्रतिपादित करते हैं—

१. सुषुम्ना के मूल में रक्तवर्ण के सहस्रदल कमल में त्रिपुराधिष्ठित त्रैलोक्यमोहन चक्र।

२. वह्नि के आधार चतुर्दल कमल में त्रिपुरेशी द्वारा अधिष्ठित सर्वाशापरिपूरण चक्र।

३. शाक्त स्वाधिष्ठानस्थित षड् दल कमल में त्रिपुरसुन्दरी से अधिष्ठित सर्वसंक्षोभण चक्र।

४. नाभि में स्थित दशदल कमल में त्रिपुरवासिनी से अधिष्ठित सर्वसौभाग्यदायक चक्र।

५. अनाहत के द्वादशदल कमल में त्रिपुराश्री से समधिष्ठित सर्वार्थसाधक चक्र।

६. विशुद्ध चक्र के षोडशदल कमल में त्रिपुरमालि से अधिष्ठित सर्वरक्षाकर चक्र।

७. तालुमूल में स्थित लम्बिकाग्र में (अष्टदल कमल में) त्रिपुरासिद्धि से अधिष्ठित सर्वरोगहर चक्र।

८. भ्रूमध्यस्थित आज्ञाचक्र के द्विदल कमल में त्रिपुराम्बिकाधिष्ठित सर्वसिद्धिचक्र।

लोक	श्रीयन्त्र
१. सत्य लोक	बिन्दुचक्र में
२. तपोलोक	त्रिकोणचक्र में
३. जनलोक	अष्टकोणचक्र में
४. महर्लोक	अन्तर्दशार चक्र में
५. स्वर्लोक	बहिर्दशार चक्र में
६. भुवर्लोक	चतुर्दशार चक्र में
७. भूलोक	प्रथम वृत्त में

अधोलोक	श्रीयन्त्र
१. अतल	अष्टदल में
२. वितल	अष्टदल के बाह्य वृत्त में
३. सुतल	षोडशदल कमल में
४. तलातल	वृत्तत्रय में

अधोलोक	श्रीयन्त्र
५. महातल	भूपुर की प्रथम रेखा में
६. रसातल	भूपुर की द्वितीय रेखा में
७. पाताल	भूपुर की तृतीय रेखा में

इसके अतिरिक्त ललाटप्रदेश में, बिन्दु में महात्रिपुरसुन्दरी से अधिष्ठित सर्वानन्दमय चक्र अधिष्ठित है—

अकुलादिषु पूर्वोक्तस्थानेषु परिचिन्तयेत्।
चक्रेश्वरीसमायुक्तं नवचक्रं पुरोदितम्।।

वह्नि-शाक्त-नाभि-अनाहत-विशुद्धि-लम्बिकाग्र-भ्रुवोन्तर-इन्दवो गृह्यन्ते। तुरोदितं चक्र-सङ्केतोदितं नवचक्रं चक्रेश्वरीसमायुक्तं नवचक्रेश्वर्यधिष्ठितं परिचिन्तयेत्।

श्रीचक्र में स्थित चक्रेश्वरी शक्तियों के नाम निम्नांकित हैं—

तत्राद्या त्रिपुरा देवी द्वितीया त्रिपुरेश्वरी।
तृतीया च तथा प्रोक्ता देवी त्रिपुरसुन्दरी।
चतुर्थी च महादेवी देवी त्रिपुरवासिनी।।
पञ्चमी त्रिपुराश्रीः स्यात्षष्ठी त्रिपुरमालिनी।
सप्तमी त्रिपुरासिद्धिरष्टमी त्रिपुराम्बिका।।
(योगिनीहृदय-२.९-११)

नवमी तु महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी।
पूजयेच्च क्रमादेता नवचक्रे पुरोदिते।।

ये ९ चक्रेश्वरी शक्तियाँ पूजाकाल में एकाकार रूप में अजरामरकारिणी आदि शक्ति-स्वरूप में उपस्थित होती हैं—

एवं नवप्रकाराद्या पूजाकाले तु पार्वति।
एकाकारा ह्याद्यशक्तिरजरामरकारिणी।।
(पटल-२, मं.सं.-१३)

समयमत के अनुसार श्रीचक्र की नव योनियाँ इस प्रकार हैं— मध्यत्रिकोण, अष्टार, अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चतुर्दशार, अष्टदल पद्म, षोडशदल पद्म, तीन वृत्त एवं भूपुर।

कौलमतानुसार श्रीचक्र में नव त्रिकोण होते हैं। उन्हें ही नव योनियाँ कहते हैं। नव त्रिकोणों में पाँच शक्तित्रिकोण निम्नाभिमुखी एवं चार शिवत्रिकोण ऊर्ध्वमुखी होते हैं।

संहारक्रम चक्रस्थिति का वह क्रम है, जिसमें शक्तित्रिकोण ऊर्ध्वमुख होते हैं और शिवत्रिकोण अधोमुख होते हैं।

षोडशदल पद्म चन्द्रमा का प्रतिनिधि है। चन्द्रमा का स्थान तो सहस्रार है अर्थात् चतुष्कोण सहस्रार है। उसके मध्य षोडशदल कमल चन्द्रमण्डल है, जो कि सुधा-समुद्र है। इसी सुधासागर के मध्य महामाया परमा शक्ति कुण्डलिनी निवास करती है। कौलमत के अनुसार मूलाधार चक्रस्थ योनिस्थान ही त्रिकोण है और वहीं कुण्डलिनी शक्ति निवास करती है। कौल मूलाधार में ही शक्ति का पूजन किया करते हैं। समयमार्ग में शक्ति का ध्यान मूलाधार चक्र में नहीं; प्रत्युत सहस्रार में किया जाता है। सहस्रार (चतुष्कोण) के मध्य में चन्द्रमण्डल स्थित है।

श्रीचक्र शिवचक्र एवं शक्तिचक्र का समवेत स्वरूप होने के कारण जहाँ शिव एवं शक्ति का प्रतीक है, वहीं निःशेष सृष्टि एवं जगत् का भी प्रतीक है। यह सृष्टि-स्थिति-संहार, सत्त्व-रज-तम, जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति, तुरीय-तुरीयातीत, प्रकाश-विमर्श, नाद-बिन्दु-कामकला, छत्तीस तत्त्व, परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी, व्यक्त-अव्यक्त, स्थूल-सूक्ष्म, कारण-कार्य सभी का प्रतीक है, सभी की अभिव्यक्ति है।

ब्रह्मा एवं इन्द्र आदि त्रिदेव तथा तैंतीस कोटि देवता, सूर्य-चन्द्र आदि ग्रह, अश्विनी आदि नक्षत्र, मेष आदि राशि, वसु आदि नाग, वरुण, वैतनेय एवं मन्दार आदि वृक्ष, रम्भा आदि अप्सरा, कपिल आदि सिद्ध, वसिष्ठ आदि मुनीश्वर, कुबेरप्रभृति यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, दैत्य, दानव, ऐरावत आदि गजेन्द्र, उच्चैःश्रवा आदि अश्व, हिमालय आदि पर्वत, गंगा आदि नदी, समस्त समुद्र, समस्त मानव, समस्त प्राणी, जड़-जंगम, समस्त नगर, समस्त राष्ट्र, समस्त लोक आदि सब कुछ श्रीचक्र से ही उत्पन्न हुये हैं।

श्रीचक्र की शरीरावयवों एवं पिण्डस्थ चक्रों में स्थिति— ब्रह्मरन्ध्र में बिन्दु, मस्तक में त्रिकोण, ललाट में अष्टकोण, भ्रूमध्य में अन्तर्दशार, कण्ठ में बहिर्दशार, हृदय में अन्तर्दशार, कुक्षि में वृत्त, नाभि में अष्टदल, कटि में अष्टदलबहिर्वृत्त, स्वाधिष्ठान में षोडशदल, मूलाधार में बहिस्त्रिवृत्त, जानुओं में भूपुर की प्रथम रेखा, जघनस्थल में द्वितीय रेखा, दोनों पैरों में भूपुर की तृतीय रेखा।

योगिनीहृदय में इसी महत्त्व को ध्यान में रखकर कहा भी गया था—

त्रिपुरेशी महायन्त्रं पिण्डात्मकमीश्वरि।
यो जानाति स योगीन्द्रः सं शम्भुः स हरिर्विधिः।।

पिण्डब्रह्माण्डयोर्ज्ञानं श्रीचक्रस्य विशेषतः।
ज्ञात्वा शम्भुफलावाप्तिः नाल्पस्य तपसः फलम्।।

इसी प्रकार मन्त्र एवं श्रीयन्त्र में भी ऐक्य है—

लकार का भूपुर के साथ, सकार का षोडशदल के साथ, हकार का अष्टदल के साथ, भुवनेश्वरीरूप एकार का चतुर्दशार के साथ, एकार का दशावतारात्मक बहिर्दशार

के साथ, हल्लेखागत रेफ का अन्तर्दशार के साथ, ककार का अष्टार के साथ, अर्धचन्द्र का त्रिकोण के साथ एवं तदन्तर्गत देवी के तत्त्वों का श्रीचक्र के साथ।

नादरूपा अर्धमात्रा के साथ त्रिकोण योनि उत्पन्न होती है। बिन्दु से बिन्दुचक्र की उत्पत्ति होती है। बिन्दुचक्र कामेश्वरस्वरूप है और साथ ही विश्वाधारस्वरूप भी है। श्रीविद्यान्तर्गत 'लं' बीज से पृथ्वी एवं उसके अन्तर्गत स्थित वृक्ष-पर्वत आदि की उत्पत्ति होती है। उससे ही इक्यावन पीठ, समस्त तीर्थ, गंगादिक नदियाँ तथा अन्य पुण्यक्षेत्रों का आविर्भाव होता है।

पञ्चम परिच्छेद

(अध्याय : ३४-४७)

उपासना तत्त्व

* उपासना-तत्त्व *

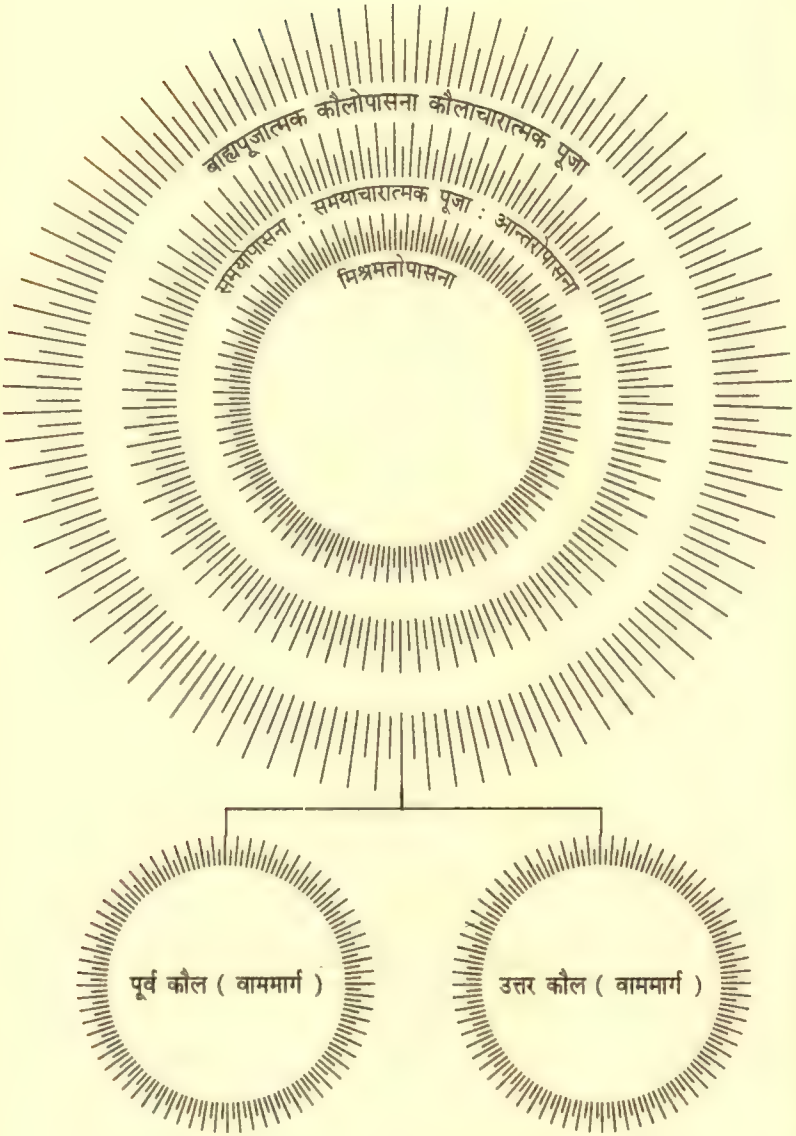
बाह्यपूजात्मक कौलोपासना कौलाचारात्मक पूजा
समयोपासना : समयाचारात्मक पूजा : आन्तरोपासना
मिश्रमतोपासना
पूर्व कौल (वाममार्ग)
उत्तर कौल (वाममार्ग)

॥ श्रीः ॥

पञ्चम परिच्छेद

उपासना तत्त्व

१. उपास्य कौन है?

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।

यच्चक्षुषा न पश्यन्ति येन चक्षूंषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणाः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।। (केनोपनिषद्)

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्।। (केनोपनिषद्)

२. पूजा का महत्त्व क्या है?

यावत्तत्परमं शान्तं न विजानन्ति सुन्दरि!
तावत्पूजा जपध्यानहोमलिङ्गार्चनादिकम्।

विदिते तु परे तत्त्वे सर्वाकारे निरामये।
क्व पूजा क्व जपो होम क्व च लिङ्गपरिग्रहः।। (प्रभाकौल)

३. बन्धन और मोक्ष की यथार्थ सत्ता क्या है?

न मे बन्धो न मोक्षो मे भीतस्यैता विभीषिकाः।
प्रतिबिम्बमिदं बुद्धेर्जलेष्विव विवस्वतः।।

(विज्ञानभैरवभट्टारक)

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना में बाह्याडम्बरों के लिये कोई स्थान नहीं है। सनत्कुमारसंहिता में कहा गया है—

बाह्यपूजा न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभिः।
सा क्षुद्रकला नृणां ऐहिकार्थैकसाधनात्।।

बाह्यपूजारताः कौलाः क्षपणाश्च कपालिकाः।
आन्तराराधनपरा वैदिका ब्रह्मवादिनः।।

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि स्वयं वामकेश्वरतन्त्र में भी बाह्य पूजा के स्थान पर आत्मपूजा की पुष्टि की गई है; इसीलिये अपने कथ्यों को इन प्रतीकात्मक भावों में व्यक्त किया गया है—

पाशाङ्कुशौ तदीयौ तु रागद्वेषात्मकौ स्मृतौ।
शब्दस्पर्शादयो बाणाः मनस्तस्याभवद्धनुः।।

वारणेन्द्रियचक्रस्थां देवीं संवित्स्वरूपिणीम्।
विश्वाहङ्कारपुष्पेण पूजयेत्सर्वसिद्धिभाक्।।

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि 'विधिः क्रियात्मको नादरणीयः' अर्थात् श्रीदेवी की उपासना में कायिकी उपासना मान्य नहीं है।

आचार्य शंकर द्वारा स्वीकृत समयाचार आन्तर पूजा की प्रक्रिया है।

कुलाचार बाह्य पूजा है; पर 'समयाचारो नाम आन्तरपूजारतिः। कुलाचारो नाम बाह्यपूजारतिरिति रहस्यम्'।

वियच्चक्र (श्रीचक्र) की पूजा के दो प्रकार हैं— दहराकाशज पूजा एवं बाह्याकाशज पूजा। कौल उपासक तो भूर्जपत्र-शुद्धपट-हेम-रजत् आदि पद्यतल के स्वरूप में स्थित पीठादिक बाह्य भाग में बाह्याकाशज पूजा करते हैं। दहराकाश (हृदयावकाश) में समय-मार्गी पूजा करते हैं।

भगवती सुधासिन्धु बिन्दुस्थान में निवास करती हैं और समयमार्गी वहीं उनकी उपासना करते हैं। भैरवयामल, वामकेश्वरतन्त्र में कहा गया है कि—

बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यः सुरद्रुमाः।
तत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्डपम्।।

तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे।।

तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी।।

यहाँ सुधासिन्धु बैन्दवस्थान को कहा गया है। देवीमन्दिर क्या है? ४३ कोणों वाला श्रीचक्र ही देवी का मन्दिर है— 'देवीमन्दिरं त्रयश्चत्वारिंशत् त्रिकोणात्मकं श्रीचक्रम्'। त्रिकोणात्मक श्रीचक्र का बैन्दवस्थान एक प्रमुख अंग है। यही सामयिकों की पूजा का स्थान है।

समयमार्ग सृष्टिमार्ग है। कौलचक्र में त्रिकोण के मध्य बिन्दु की उपासना होती है; किन्तु समयचक्र में चतुष्कोण में बिन्दु को स्थित मानकर उसकी वहीं पूजा की जाती है। लक्ष्मीधर ने कहा भी है— 'समयिनां मते समयस्य सादाख्यतत्त्वस्य सपर्या सहस्रदलकमल एव, न तु बाह्ये पीठादौ'।

इस उपासना में बाह्याचारों के लिए कोई स्थान नहीं है। इसीलिये लक्ष्मीधर सपर्या का अर्थ षोडशोपचार न मानकर, आत्मार्पणबुद्धि मानते हैं— 'षोडशोपचारव्यतिरेकेण आत्मार्पणबुद्ध्या त्याग एव सपर्यापर्यायः न तु स्वीकृतानाम्'।

समयमार्गी मन्त्र का पुरश्चरण करने का कोई विधान नहीं है; अतः 'समयिनां मन्त्रस्य पुरश्चरणं नास्ति'। इतना ही नहीं; यहाँ जप, बाह्य होम एवं बाह्य पूजा भी नहीं है— 'जपो नास्ति, बाह्यहोमोऽपि नास्ति। बाह्यपूजाविधयो न सन्त्येव'। यहाँ हृदय में ही सर्वानुष्ठान श्रेयस्कर माने जाते हैं। लक्ष्मीधर ने कहा भी है— 'हृत्कमल एव सर्वं यावदनुष्ठेयम्'।

चतुस्त्रिंश अध्याय

पूजातत्त्व : एक दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण

श्रीसम्प्रदाय एवं अन्य अद्वैतमार्गी शाक्तमार्गों में पूजा एवं पूजा के उपकरणों को भौतिक एवं बाह्य अर्थों में न ग्रहण करके प्रतीकात्मक एवं अद्वैतभावनापन्न दृष्टि से ग्रहण किया गया है और इसी अर्थ को तात्त्विक एवं पारमार्थिक माना गया है। पूजाविषयक इन दृष्टियों के विषय में कतिपय आचार्यों के मत निम्नांकित हैं—

विज्ञानभैरव की दृष्टि— विज्ञानभैरव ने पूजा के स्थूल अर्थ का त्याग करके उसके तात्त्विक स्वरूप की मीमांसा करते हुये कहा है कि निर्विकल्प परम व्योम अर्थात् चिदाकाश में बोध भैरव के प्रति दृढ़ आस्था या स्वात्म-स्वरूपबोध भैरव में विश्रान्ति प्राप्त कर लेना या उसी में लय हो जाना ही पूजा है—

निर्विकल्पे परे व्योम्नि सा पूजा ह्यादराल्लयः।

सङ्केतपद्धति का मत— सङ्केतपद्धति के अनुसार महिमामण्डित स्वात्मस्वरूप में परम प्रतिष्ठा अधिगत कर लेना ही पूजा है।

अभिनवगुप्त का मत— अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि में रूप, रस आदि विभिन्न बाह्य भाव-पदार्थों की देश-कालादिक अपरिच्छिन्न, निरुपाधिक, स्वतन्त्र, स्वच्छ भैरवाकार परसंवित् में (बोधभैरव में) प्रतिष्ठित हो जाना ही पूजा है—

पूजा नाम विभिन्नस्य भावौघस्यापि सङ्गतिः।
स्वतन्त्र-विमलानन्त-भैरवीय-चिदात्मना ।।

आचार्य उत्पल की दृष्टि— शिवस्तोत्रावली में आचार्य उत्पल ने पूजाविधि को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

ध्यानायास-तिरस्कार-सिद्धस्त्वत्स्पर्शनोत्सवः ।
पूजाविधिरिति ख्यातो भक्तानां स सदाऽस्तु मे।।

अर्थात् उच्चार, करण, ध्यान प्रभृति प्रयत्नज आणवप्रभृति उपायों की सहायता से सम्पन्न होने वाली विविध बाह्य विधियों का परित्याग करके अनुपाय क्रिया द्वारा सहज विधि से सम्पन्न होने वाला स्वात्मस्वरूप बोधभैरव का साक्षात्कार ही भक्त की वास्तविक पूजा-विधि है।

भट्टनारायण का मत— भट्टनारायण 'स्तवचिन्तामणि' में भगवान् से निवेदन करते हैं कि हे भगवन् ! मैं पुष्पादिक द्वारा तो नित्य आपकी पूजा करता ही हूँ; किन्तु आप मेरे लिये वह स्थिति लाइये कि जिससे मैं आपके समक्ष उस ज्ञानरूपी दीपक को लेकर उपस्थित हो सकूँ, जो कि मल से, अज्ञानरूपी तैल से सिञ्चित वासनारूपी वर्तिका

को, धर्माधर्मप्रभृति जागतिक परम्परा को आगे बढ़ाने वाले समस्त संस्कारों को जला देने वाला है अर्थात् भेद-बुद्धि को छोड़कर अद्वय स्वात्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होना ही यथार्थ पूजा है। पुष्पादिक उपचारों से की गई पूजा तो एक विकल्प व्यापारमात्र है।

विज्ञानभैरव का प्रश्नोत्तर— तात्त्विक दृष्टि से विचार करें तो कैसी पूजा? किसकी पूजा? विज्ञानभैरव में प्रश्न उठाया गया है कि परा देवी से संयुक्त परभैरव की जिन पुष्प, गन्ध, धूप आदि से पूजा की जाती है; किन्तु पूजक एवं पूज्य तो अभिन्न ही हैं और पूज्य, पूजन सामग्री एवं पूजक आदि के भेद एक ही तत्त्व के विभिन्न स्वरूप हैं। अतः इस प्रकार का पारमार्थिक बोध जाग्रत् होने पर किससे किसकी पूजा की जायगी? इन सभी के अभिन्न होने पर इस अद्वयनय में प्रदर्शित पूजा के अतिरिक्त पूज्य, पूजोपकरण, पूजा, पूजक आदि की परमार्थ दृष्टि से कोई सत्ता नहीं मानी जा सकती; अतः किसकी किसके द्वारा पूजा किया जाना सम्भव है—

यैरेव पूज्यते द्रव्यैस्तर्प्यते वा परापरः।
यश्चैव पूजकः सर्वः एवैकः क्व पूजनम्।।

प्रभाकौल का मत— प्रभाकौल में भी इसी सत्य की पुष्टि की गई है और कहा गया है कि जब तक उस परम शान्त परमार्थ पद को नहीं जान पाते, तभी तक तप, पूजा, जप, ध्यान, लिङ्गपूजा आदि कर्मकाण्ड सार्थक हैं; किन्तु उस निरामय, सर्वाकार परम तत्त्व के ज्ञात होने पर कैसी पूजा? कैसा जप? कैसा होम? एवं कैसा लिङ्गपरिग्रह?

यावत्तत्परमं शान्तं न विजानन्ति सुन्दरि!।
तावत्पूजा-जप-ध्यान-होम-लिङ्गार्चनादिकम् ।।

विदिते तु परे तत्त्वे सर्वाकारे निरामये।
क्व पूजा च जपो होमः क्व च लिङ्गपरिग्रहः।।

पूजा कोई कर्मकाण्डात्मक बाह्य विधान नहीं है; प्रत्युत यह शैवसमावेश, चिदैकात्म्य, परस्वरूप-परामर्श एवं शिवत्व भाव की प्राप्ति है।

आचार्य अभिनवगुप्तपाद कहते हैं कि तन्मय भाव से वस्तु का अर्पण ही अर्चन या पूजा है—

तत्रार्पणं हि वस्तूनामभेदेनार्चनं मतम्।

इसी प्रकार जब पदार्थ में सार्वरूप्य का अनुसन्धान हो जाता है तो वही ध्यान हो जाता है—

तथा सम्पूर्णरूपत्वानुसन्धिर्ध्यानमुच्यते।[१]

सम्पूर्ण के अनुसन्धान को निष्कम्प सम्पन्न करते हुये दृढ़ता के साथ अन्तर्जल्प करने वाले साधक की स्वात्मविमर्श की प्रक्रिया ही जप है।[२] वस्तुतः अन्तर्जल्प

१. तन्त्रालोक : आह्निक-१० २. तन्त्रालोक : आह्निक-१०

(योगयुक्त विमर्श) ही जप है—

सम्पूर्णत्वानुसन्धानमकम्पं दार्ढ्यमानयन्।
तथान्तर्जल्पयोगेन विमृषञ्जपभाजन्।।[१]

महनीय ऐकात्म्यानुभूति से अर्पित भाव-पदार्थों में वस्तुसत्ता एवं परमात्म सत्ता का भेद ही हविष्य या होम है—

तदर्पितानां भावानां स्वकभेदविलापनम्।
कुर्वंस्तद्रश्मिसद्भावं दद्याद्धोमक्रियापरः।।[२]

अर्थात् विमर्श-रश्मियों से एक प्रकार की याज्ञिक ज्वाला जाज्वल्यमान हो उठती है। उसमें उक्त हविष्य का अर्पण ही होम बन जाता है।

पूजा में जप एवं मन्त्र का विधान है; वे क्या हैं?

स्वाभाविक अहं-परामर्श में विश्रान्त योगी जो व्यवहार करता है या जो विमर्श या परामर्श करता है और प्रसार-प्रक्रिया पूर्ण करता है, वह सब उसका जप ही है। वह एक प्रकार से स्वात्मदेवता का नित्य आवर्तन करता है। उसका यह आवर्तन ही उसके लिये मन्त्र हो जाता है—

अकृत्रिमैतद् हृदयारूढो यत्किञ्चिदाचरेत्।
प्राण्याद्वा मृशते वापि स सर्वोऽस्य जपो मतः।।

कहा भी गया है कि कोई श्लोक, कोई कविता, कोई गाथा या कथोपकथन 'सोऽहं' के विमर्श-परिवेश करता है तथा उसे साक्षीभाव से देखता है तो वह सब मन्त्रात्मक हो जाता है—

श्लोकगाथादि यत्किञ्चिदादिमान्त्ययुतं यतः।
तस्माद्विदंस्तथा सर्वं मन्त्रत्वेनैव पश्यति।।

इसीलिये शिवसूत्रकार ने कहा था— 'कथा जपः' अर्थात् 'यो जल्पः स जपः'। ऐसे पूजक के ध्यान का स्वरूप क्या है?

अभिनवगुप्त कहते हैं कि ऐसा योगी, जो सृष्टि आदि पाँच प्रकार के कृत्यरूप स्वभाव में समाविष्ट होकर स्वेच्छा से बाहर-भीतर जो कुछ मेय-मानादि का आकलन करता है, वही उसका पारमार्थिक ध्यान है। विश्व का बाह्यान्तर सर्वविध विमर्श ध्यान से ही होता है। दशभुजादिरूप नियत ध्यान वास्तविक ध्यान नहीं है—

स देव स्वेच्छया सृष्टिस्वाभाव्याद्बहिरन्तरा।
निर्मीयते तदेवास्य ध्यानं स्यात्पारमार्थिकम्।।

भोगेच्छुकों के लिये नियताकार ध्यान एवं मुमुक्षुओं के लिये निराकार ध्यान ही श्रेष्ठ है—

---

१. तन्त्रालोक : आह्निक-१०
२. तन्त्रालोक : आह्निक-१०.११

साधकानां बुभुक्षुणां विधिर्निर्यातयन्त्रितः।
मुमुक्षूणां तत्त्वविदां स एव तु निरर्गलः।।

यथार्थ पूजकों के लिए नाद ही मन्त्र और स्थिति ही मुद्रा है— 'नादो मन्त्रः स्थिति-र्मुद्रा'। होमबोध की अग्नि में अपने समस्त भावों को भस्म करना ही अग्नि को तृप्ति देने वाला होम है।[१]

विज्ञानभैरव की दृष्टि— विज्ञानभैरव में कहा गया है कि देवताओं के पूजन में पुष्प एवं माला आदि के प्रयोग से उसमें एकाङ्गी आस्था उत्पन्न होती है। वह पूजा नहीं है। वस्तुतः निर्विकल्प महाव्योम में सादर लीन होना एवं संवित्साक्षात्कार करना ही यथार्थ पूजा है—

पूजा नाम न पुष्पाद्यैर्या मतिः क्रियते दृढ़ा।
निर्विकल्पे महाव्योम्नि सा पूजा ह्यादराल्लयः।।

अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि— जिस किसी भी इन्द्रियवृत्ति में जो कुछ भी अनियत और मन को आह्लादित करने वाली वस्तु उपस्थित होती हो, उसे यदि जागतिक ज्ञान के जड़ प्रकाश से विलक्षण ब्रह्म के शाश्वत तेज में योजित कर दिया जाय तो वही यथार्थ पूजोपकरण बन सकती है। इस प्रक्रिया में पदार्थ के बाह्य स्वरूप का परित्याग और पदार्थ के संविद्रूप का साक्षात्कार हो जाता है—

यत्किञ्चिन्मानसाह्लादि यत्र क्वापीन्द्रियस्थितौ।।

योज्यते ब्रह्मसद्माग्नि पूजोपकरणं हि तत्।
पूजा नाम विभिन्नस्य भावौघस्यापि सङ्गतिः।।

विभिन्न रूप-रस आदि से सम्बद्ध भावराशि का देश-काल आदि परिच्छेदकों से ऊपर उठकर स्वतन्त्र, निर्मल, अनन्त, शाश्वत शैव महाभावमयी संवित्ति से यदि संगति हो जाय तो वही पूजा बन जाती है— 'विभिन्नस्यापि रूपरसादेर्भावौघस्य देश-कालाद्यनवच्छिन्न-निरूपाधिपूर्णपरसंविदात्मना या सङ्गतिः एकीकारः सा पूजेति सम्भाव्यते' (विवेक)।

आचार्य अभिनवगुप्त ने ठीक ही कहा है कि जिस प्रकार कोई पुरुष सामने पड़े दर्पण में अपने मुख को प्रतिबिम्बित देखकर उसे अपना ही मुख मान लेता है, उसी प्रकार जप, ध्यान, पूजन एवं हवन आदि विकल्प के दर्पण में यदि अपने-आपको लय कर देता है तो उसी सन्दर्भ में वह भैरवीभाव से भूषित हो जाता है, तादात्म्य प्राप्त कर लेता है और तन्मयता में वह वही न रहकर शिवस्वरूप हो जाता है—

यथा पुरस्थे मुकुरे निजं वक्त्रं विभावयन्।
भूयो भूयस्तदेकात्मवक्त्रं वेत्ति निजात्मनः।।

---

१. सप्तेन्द्रियशिखाजालजटिले जातवेदसि।
बोधाख्ये भाववर्गस्य भस्मीभावोऽग्नितर्पणम्।।

तथा विकल्पमुकुरे ध्यानपूजार्चनात्मनि।
आत्मानं भैरवं पश्यन्नचिरात्तन्मयी भवेत्।।

तन्मयीभवन क्या है? अनुत्तर परमशिव भाव। कहा भी है—

तन्मयीभवनं नाम प्राप्तिः सानुत्तरात्मनि।

वामा, ज्येष्ठा एवं रौद्री में से एक, आत्मा और प्राण मिलकर 'प्राणस्पद' का निर्माण करते हैं; अतः प्राणायाम भी बाह्य क्रिया नहीं है; प्रत्युत इस शक्ति का साक्षात्कार करते हुये सुषुम्णा में सञ्चरित होकर चेतन बनना है और शिवत्व को प्राप्त करना है।

कुलार्णवतन्त्र की दृष्टि— पूजा में पुष्पार्पण का अर्थ क्या है? कुलार्णवतन्त्र में कहा गया है—

पुण्यसंवर्द्धनाच्चापि पापौघपरिहारतः।
पुष्कलार्थप्रदानाच्च पुष्प इत्यभिधीयते।।

पूजा में धूप का यथार्थ अर्थ क्या है? कुलार्णवतन्त्र में कहा गया है—

धूतशेष-महादोषपूतिगन्धप्रभावतः।
परमानन्दजननाद्धूप इत्यभिधीयते।।

पूजा में दीप का यथार्थ अर्थ क्या है? कुलार्णवतन्त्र में कहा गया है—

दीर्घाज्ञानमहाध्वान्ताहङ्कारपरिवर्जनात् ।
परतत्त्वप्रकाशाच्च दीप इत्यभिधीयते।।

पूजा में देवता किसे कहा गया है? कुलार्णवतन्त्र में कहा गया है—

देहमास्थाय भक्तानां वरदानाच्च पार्वति।
तापत्रयादिशमनाद्देवता परिकीर्तितः।।

पूजा क्या है? कुलार्णवतन्त्र में कहा गया है—

पूर्वजन्मानुशमनादपमृत्युनिवारणात् ।
सम्पूर्णफलदानाच्च पूजेति कथितं प्रिये।।

पूजा में अभिषेक का स्वरूप क्या है ? कुलार्णवतन्त्र में कहा है—

अलङ्कार इवाभाति कथनात् सेवनादपि।
कम्पानन्दादिजननादभिषेक इति स्मृतः।।

पूजा में न्यास के स्वरूप के विषय में कुलार्णवतन्त्र कहता है—

न्यायोपार्जितवित्तानामङ्गेषु विनिवेशनात्।
सर्वरक्षाकराद्देवि ! न्यास इत्यभिधीयते।।

पूजा में मन्त्र-स्वरूप के विषय में कुलार्णवतन्त्र कहता है—

मननात्तत्त्वरूपस्य देवस्यामिततेजसः।
त्रायते सर्वभयस्तस्मान्मन्त्र इतीरितः।।

मुदं कुर्वन्ति देवानां मनांसि तारयन्ति च।
तस्मान्मन्त्र इति ख्यातो दर्शितव्यः कुलेश्वरि।।

अनन्तफलदानाच्च क्षपिताशेषकल्मषः।
मातृकात्मतया लाभकरणादक्षमालिका।।

यमभूतादिसर्वेभ्यो भयेभ्योऽपि कुलेश्वरि।
त्रायते सततञ्चैव तस्मान्मन्त्र इतीरितः।।

समस्त पूजाओं के लक्ष्य दो हैं। उनमें प्रथम है— मलापसारण। मल क्या है? 'मलमज्ञानमिच्छन्ति संसाराङ्कुरकारणम्' अर्थात् अज्ञान एवं संसारांकुर-कारण ही मल है।

पूजा में आसन के विषय में कुलार्णवतन्त्र कहता है—

आत्मसिद्धिप्रदानाच्च सर्वरोगनिवारणात्।
नवसिद्धिप्रदानाच्च आसनं कथितं प्रिये।।

पूजा में दीप के विषय में कुलार्णवतन्त्र में इस प्रकार कहा गया है—

मोहध्वान्तप्रशमनात् क्षयार्तिविनिवारणात्।
दिव्यरूपप्रदानाच्च परतत्त्वप्रकाशनात्।।

ख्यातो मोक्षो दीप इति मोक्षमार्गैकसाधनः।

पूजा में उपासना (उपास्ति) क्या है? इस विषय में कुलार्णवतन्त्र कहता है—

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
समीपसेवा विधिना उपास्तिरिति कथ्यते।।

पूजा में अक्षत क्या है? कुलार्णवतन्त्र कहता है कि—

आत्मज्ञानप्रदानाच्च क्षपिताशेषकल्मषात्।
तदात्मकरणाद्देवि ! अक्षताः परिकीर्तिताः।।

पूजा में ध्यान के विषय में कुलार्णवतन्त्र में इस प्रकार कहा गया है—

यावदिन्द्रियसन्तापमनसा सन्नियम्य च।
स्वान्तेनाभीष्टदेवस्य चिन्तनं ध्यानमुच्यते।।

कुलार्णवतन्त्र में पूजा में गुरुतत्त्व के विषय में कहा गया है कि—

गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधत्वाद् गुरुरित्यभिधीयते।।

गुह्यागमात्मतत्त्वान्धनद्धानां बोधनादपि।
रुद्रादिदेवतारूपाद् गुरुरित्यभिधीयते।।

पूजा में नैवेद्य को स्पष्ट करते हुये कुलार्णवतन्त्र में कहा गया है कि—

चतुर्विधकुलेशानि द्रव्यञ्च षड्रसान्वितम्।
निवेदनाद् भवेत्तृप्तिर्नैवेद्यं समुदाहृतम्।।

यदि देवी के मन्त्र का जप करना है तो मन्त्र को अक्षरसमष्टि न मान कर शक्ति का प्रतीक मानना चाहिये, मन्त्र के रूप में शक्ति का अवतार मानना चाहिये; तभी मन्त्र की सार्थकता है; क्योंकि देवी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी हैं। ललितासहस्रनाम में कहा भी है—

सर्वेश्वरी सर्वमयी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी ।

यदि देवी के यन्त्र की पूजा करनी हो तो उसे भी कोई भौतिक रेखांकन नहीं मानना चाहिये; क्योंकि यन्त्र भगवती का ही रूप है, अतः यन्त्र को भी भगवती का ही रूप मानना चाहिये; जैसा कि ललितासहस्रनाम में कहा भी है—

सर्वयन्त्रात्मिका सर्वतन्त्ररूपा मनोन्मनी।

पञ्चत्रिंश अध्याय

भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना के दो भेद हैं— अन्तर्याग एवं बहिर्याग। पात्र आसन से आरम्भ करके शान्तिस्तव में अन्त होने वाला कर्मसमूह बहिर्याग होता है। नामाधाराद्राजदन्तान्त तेजस्तन्तु का विभावन ही अन्तर्याग है। इसे मानसी देवपूजा भी कहा जाता है।

भास्करराय ने सौभाग्यभास्कर (श्लोकसंख्या-४ की व्याख्या) में अन्तर्याग एवं बहिर्याग को इन शब्दों में निरूपित किया है—

'अन्तर्यागो नामधाराद्राजदन्तान्तं तेजस्तन्तोर्विभावनम्। मानसी देवी पूजा वा तस्य इतिकर्तव्यता। बहिर्याग: पात्रासादनादिशान्तिशान्तिस्तवान्त:कर्मसमूह:'।

अन्तर्याग के तीन प्रकार हैं— सकल, सकल-निष्कल एवं निष्कल। श्रीचक्र का विभावन भी त्रिविधात्मक है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना के योग्य तीन रूप हैं— स्थूल, सूक्ष्म एवं पर।

क. भगवती का स्थूल रूप— कर-चरण आदि शरीरावयवों एवं इन्द्रियों से युक्त शारीरिक रूप से कल्पित भगवती का रूप उनका स्थूल रूप है; जैसा कि नित्याषोडशिकार्णव (प्रथम) में वर्णित है—

ततः पद्मनिभां देवीं बालार्ककिरणारुणाम्।
जपाकुसुमङ्काशां दाडिमो कुसुमोपमाम्।।
पद्मरागप्रतीकाशं कुङ्कुमोदकसन्निभाम्।
स्फुरन्मुकुटमाणिक्यकिङ्किणीजालमण्डिताम्।।
कालालिकुलसङ्काशकुटिलालकपल्लवाम् ।
प्रत्यग्रारुणसङ्काशवदनाम्भोजमण्डलाम् ।।
किञ्चिदर्धेन्दुकुटिललाटमृदुपट्टिकाम् ।
पिनाकिधनुराकारसुभ्रुवं परमेश्वरीम्।।
आनन्दमुदितोल्लोललीलान्दोलितलोचनाम् ।
स्फुरन्मयूखसङ्घातविततस्वर्णकुण्डलाम् ।।
सुगण्डमण्डलाभोगजितेन्द्वमृतमण्डलाम् ।
विश्वकर्मादिनिर्माणसूत्रसुस्पष्टनासिकाम् ।।
ताम्रविद्रुमविम्बाभरक्तोष्ठीममृतोपमाम् ।
स्मितमाधुर्यविजितमाधुर्यरससागराम् ।।

अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिताम् ।
कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं मृणाललितैर्भुजैः ।। आदि।

ख. भगवती का सूक्ष्म रूप— भगवती सुन्दरी का द्वितीय रूप मानसी रूप है, जो शरीरावयवों से रहित मन्त्रात्मक रूप है, जो कि मात्र श्रवणेन्द्रिय-वागेन्द्रियगोचर है।

ग. भगवती का पर रूप— यह वासनात्मक, पुण्यात्मालभ्य, अन्तर्विभावनीय एवं आन्तर अनुभूतिगम्य है।

यद्यपि भगवती के तीन स्वरूपों की कल्पना की गई है; किन्तु मुख्यत: इसे द्विविधात्मक ही मानना चाहिये। इसके द्विविध स्वरूप हैं— रूपात्मक एवं अरूपात्मक।

रूपात्मक स्वरूप स्थूल रूपानुसन्धानात्मक है। अरूपात्मक स्वरूप पररूपानुसन्धानात्मक है और यही भगवती का चरम रूप है। यह जो पररूपानुसन्धानात्मक स्वरूप है। उसका उपयोग उपर्युक्त दोनों स्तरों पर होता है। भगवती के प्रथम रूप की उपासना बहिर्याग से की जाती है और उनके द्वितीय रूप की उपासना अन्तर्याग से निष्पादित की जाती है। आचार्य भास्कर का कथन है कि अन्तर्याग एवं बहिर्याग (रूपात्मक एवं अरूपात्मक स्वरूप की उपासना) मुख्यत: मानस व्यापार ही है, कोई बाह्य कर्मकाण्ड नहीं है।

त्रिपुरोपासना के विभिन्न मत (सम्प्रदाय)

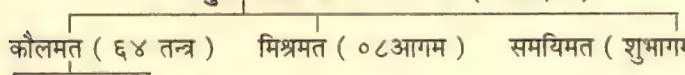

कौल एवं मिश्र मार्ग बाह्य पूजा वाले हैं—

मिश्रकं कौलमार्गञ्च परित्याज्यं हि शाङ्करि !।

आन्तर और बाह्य पूजा— आन्तर पूजन में समस्त क्रियायें मानसिक होती हैं और बाह्य पूजन में बाह्य सामग्रियों द्वारा पूजन किया जाता है। आन्तर पूजन को अन्तर्याग एवं बाह्य पूजन को बहिर्याग कहते हैं। बहिर्याग की साधना का अभ्यास किये विना अन्तर्याग होना अत्यन्त कठिन है। बहिर्याग के निम्न अंग हैं—

१. जप— महाशक्ति के किसी एक स्वरूप के बोधक मन्त्र का विधिवत् पुरश्चरणादि नियमानुसार जप करना।

२. होम— मन्त्र-जप के दशांश संख्या का हविर्द्रव्यों द्वारा अग्नि में हवन।

३. तर्पण— पञ्च द्रव्यों के उपयोग द्वारा अपने-अपने अधिकार के अनुसार सन्तर्पण करना।

४. मार्जन— संस्कारों का मार्जन।

५. ब्राह्म भोजन— न्याय एवं सत्य के द्वारा अर्जित धन से देवी के प्रसन्नतार्थ सुयोग्य ब्राह्मणों को भोजन कराना।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी की पूजा दो प्रकार से की जाती है— बहिर्यागात्मक पूजा एवं अन्तर्यागात्मक पूजा। सौभाग्यभास्कर में पूजा के दो प्रकार बताये गये हैं— अन्तर्याग एवं बहिर्याग। इनमें से अन्तर्याग के पाँच भेद होते हैं— पटल, पद्धति, वर्म, स्तोत्र एवं सहस्रनाम। साथ ही बहिर्याग के भी पाँच प्रकार कहे गये हैं— जप, होम, तर्पण, मार्जन एवं ब्राह्मणभोजन। इनका विवेचन निम्नवत् है—

१. पटल— मन्त्राक्षरों द्वारा मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा एवं सहस्रदल चक्र में देवी के स्वरूप की भावना करके चित्त को शक्तिसम्पन्न करना 'पटल' कहलाता है। देवी के स्वरूपबोधक मन्त्र के अक्षरों से पिण्ड के नाड़ीव्यूह में सविस्तार भावना का पटल बनाना।

२. पद्धति— उस मन्त्रपटल के द्वारा पञ्च या षोडश उपचारों से हृदयादि पीठ में देवी का पूजन करना 'पद्धति' कहलाता है।

३. कवच (वर्म)— इस प्रकार नाडियों एवं हृदयादि पीठस्थानों में पटल और पद्धति की रचना करने के बाद विद्या के अर्थात् इष्टमन्त्र के अक्षरों द्वारा स्थूल देह पर कवच की रचना करके देवी के अनेक नामों द्वारा पिण्ड की रक्षणभावना करना वर्म या कवच है।

४. स्तोत्र— इसके अनन्तर देवी के लघुस्तवी आदि रहस्यस्तोत्र का पाठ।

५. सहस्रनाम— रहस्यस्तोत्र के द्वारा देवी के अनेक गुणों में से विशेष ध्यान में रखने योग्य सहस्र गुणों के बोधक नामों के द्वारा आन्तर भूमिका में देवी को नमस्कार करना 'सहस्रनाम' कहलाता है।

आचार्य हयग्रीव ने शाक्तदर्शनम् के सोलहवें अध्याय के तृतीय पाद में दशाङ्गों का वर्णन किया गया है और कहा गया है—

१. जपेन्नित्यं दशाङ्गानि।

२. कवचहृदयसहस्रनामस्तवराजलहरीवेदपादस्तवावरणस्तवगीताथर्वशीर्षसूक्तान्यङ्गानि।

देवीकवच, देवीहृदय, देवीसहस्रनाम, स्तवराज, सौन्दर्यलहरी, वेदपादस्तव, आवरण-स्तव, गीता, अथर्वशीर्ष एवं अथर्वस्तव ।

पहले अन्तर्याग करके बाद में बहिर्याग करना चाहिये—

अन्तर्यागं विधायादौ बहिर्यागं समाचरेत्।

त्रिपुरसुन्दरी गायत्री का मन्त्र इस प्रकार है— 'सौस्तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्'।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी की श्रीविद्या की सिद्धि किसे होती है?

निष्कामानामेव श्रीविद्यासिद्धिः न कदाऽपि सकामानाम्। (श्रुति)

मोक्तुमिच्छसि चेद् ब्रह्मन् कामनोपासनं त्यज।
निष्कामाञ्चितधीवृत्त्या मामुपास्य विमोक्ष्यसे।। (स्मृति)

देव्योपासना और उसके अंग— भगवती त्रिपुरसुन्दरी की पूजा दो प्रकार से की जाती है— बहिर्याग और अन्तर्याग।

बहिर्याग तो पात्र, आसन, शान्तिस्तव आदि कर्मसमष्टि है और अन्तर्याग आधारचक्र से राजदन्तान्त तेजस्तन्तु की विभावना है। यह मानसी देवपूजा है। भास्कराय ने सौभाग्य-भास्कर में इसका उल्लेख इस प्रकार किया है— 'अन्तर्यागो नामधाराद्राजदन्तान्तं तेज-स्तन्तोर्विभावनम्। मानसी पूजा वा तस्य क्रम इतिकर्तव्यता। बहिर्याग: पात्रासनादि शान्ति-स्तवान्त: कर्मसमूह:। स एवाष्टाष्टकादिघटितो महायाग:'। भास्कराय कहते हैं कि इसका वरिवस्यारहस्य की 'प्रकाश' नामक (अपनी ही) टीका में मैंने सविस्तार वर्णन किया है। भगवती सुन्दरी की पूजा के प्रकारों का ललितासहस्रनाम में इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

अन्तर्यागक्रमश्चैव बहिर्यागक्रमस्तथा।
महायागक्रमश्चैव पूजाखण्डे प्रकीर्तिता:।।

वरिवस्यारहस्यम् में आन्तरिक एवं बाह्य अङ्ग— भास्कराय ने वरिवस्यारहस्यम् के द्वितीय अंश के १५९-१६१ क्रमांक के श्लोकों में श्रीविद्या के बाह्याङ्गों एवं आन्तर अङ्गों का वर्णन किया है। ये निम्नांकित हैं—

विद्यावर्णेयवोद्धार: कालस्तदुच्चार:।
उत्पत्तिस्थानं तद्यत्नो रूपं स्थितिस्थानम्।।

आकार: स्वं रूपं विभाव्यमर्थोऽन्तरङ्गाणि।
ऋषयश्छन्दोदैवतविनियोगा बीजशक्तिकीलानि।।

न्यासा ध्यानं नियमा: पूजादीनि बहिरङ्गाणि।
बाह्यान्यङ्गानि पुन: प्रायो लोके प्रसिद्धकल्पानि।।

श्रीविद्या के आन्तरिक अङ्ग— वरिवस्यारहस्यम् (प्रकाश) टीका के अनुसार इस विद्या के वर्णों की संख्या, उद्धार, काल (मात्रा), उच्चारण, स्थान, प्रयत्न, रूप, विभिन्न स्थितियाँ, आकार आदि श्रीविद्या के अङ्ग हैं।

श्रीविद्या के बाह्याङ्ग— वरिवस्यारहस्यम् (प्रकाश) टीका के अनुसार ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग, बीज, शक्ति, कीलक, न्यास, ध्यान, नियम, पूजा आदि श्री-विद्या के बाह्य अङ्ग हैं।

पूजा के अन्तर्गत पात्र-आसन से शान्तिस्तवपर्यन्त सभी अङ्ग— ये नित्यादिभेद से त्रिविध हैं और परादिभेद से भी त्रिविध हैं। केवलादिभेद से पञ्चविध हैं। 'आदि' शब्द होम, तर्पण आदि परिग्रह का वाचक है।

ऋषि = हयग्रीव आदि। छन्द = पंक्त्यादि। देवता = त्रिपुरसुन्दरी। विनियोग = इष्टार्थजनकत्व। बीज = वाग्भव आदि। शक्ति = परा आदि। कीलक = कामराज आदि।

न्यास = ऋष्यादि न्यासजाल। ध्यान = 'अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीम्' आदि। नियम = पुण्ड्रेक्षुदण्ड-भक्षण-वर्जन-संकल्पादिक।[१] वर्णसंख्या = ५८। उद्धार = 'क्रोधीशः श्रीकण्ठारूढः' आदि। काल = 'कालस्त्रिलवोनैकत्रिंशन्मात्रात्मकः' अर्थात् ३ लवों से ३१ मात्रा तक। उच्चार = 'एकलवोना ऊनत्रिंशन्मात्रा उच्चारणस्य' अर्थात् १ लव से २९ मात्रात्मक। उच्चारण = पञ्चदशी मन्त्र के वर्णों का उच्चारण। उत्पत्तिस्थान = कण्ठ, तालु आदि। यत्न = आन्तर एवं बाह्य। रूप = रूपादित्रय 'प्रलयाग्निनिभं' आदि द्वारा कहा गया है। 'स्वं रूपं व्यष्टिविभेदात्' द्वारा कथित। विभाव्य = अवस्थापञ्चक आदि। अर्थ = गायत्र्यर्थादिरूप। भास्करराय कहते हैं कि उपासकों के लिये ये बाह्याङ्ग एवं अन्तरङ्ग दोनों अत्यावश्यक हैं—

'एतानि बहिरङ्गत्वेनावश्यकानि' एवं 'इमान्यन्तरङ्गत्वादुपासकानामत्यावश्यकानि'।[२]

ऋषि = (ऋष = अपरोक्ष दर्शन)। 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः' (यास्क)। मन्त्रों के द्रष्टा ही 'ऋषि' कहलाते हैं। ये ऋषि 'स्मारकाः न तु कारकाः' अर्थात् ये मन्त्रों के स्मारक हैं, कारक नहीं हैं। ऋषियों ने साधनबल के द्वारा मन्त्र की साधन-प्रणाली का आविष्कार किया है, मन्त्रों का नहीं।

ऋषि-छन्द-देवता आदि के ज्ञान की महत्ता— गौतमीय तन्त्र, शाक्तानन्दतरङ्गिणी एवं अन्य शास्त्रों में कहा गया है कि इन तत्त्वों का ज्ञान न होने से मन्त्र फल प्रदान नहीं करते तथा ऐसा साधक पापभागी होता है—

क. ऋषिछन्दोऽपरिज्ञानान्न मन्त्रः फलदो भवेत्।
दौर्बल्यं याति मन्त्राणां विनियोगमजानताम्।। (गौतमीयतन्त्र)

ख. ऋषिछन्दोदेवतानां विन्यासेन विना यदि।
करोति साधको यच्च तत्सर्वं विफलं भवेत्।।
(शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

ग. अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयान् जायते तु सः।। (स्मृति)

मन्त्रजप के दस संस्कार भी होते हैं— जनन, दीपन, ताड़न, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, जीवन, तर्पण, गोपन एवं आप्यायन। इन्हीं दस संस्कारों से मन्त्र चैतन्य होता है और उसी से मन्त्र फलप्रद होते हैं। श्रीविद्या के विषय में तो तिथि-वार-नक्षत्र आदि का बन्धन नहीं है; किन्तु अन्य मन्त्रों के जप की सिद्धि हेतु इनका भी बन्धन है।

देवोपासना के पाँच अङ्ग हैं— कवच = देवता का शरीर, पटल = देवता का शिर, पद्धति = देवता के हाथ, सहस्रनाम = देवता का मुख और स्तोत्र = देवता का पैर। कहा भी है—

१. वरिवस्यारहस्यम् (प्रकाश)
२. वरिवस्यारहस्यम् (प्रकाश), श्लोक-१५९-१६१

पटलं पद्धतिर्वर्म तथा नामसहस्रकम्।
स्तोत्राणि चेति पञ्चाङ्गं देवतोपासनं स्मृतम्।।

कवचं देवतागात्रं पटलं देवताशिरः।
पद्धतिर्देवहस्तौ तु मुखं साहस्रकं स्मृतम्।
स्तोत्राणि देवतापादौ पञ्चाङ्गं सिद्धिदं स्मृतम्।।

पूजा करने के उपरान्त पटल, कवच, सहस्रनाम एवं स्तोत्र का पाठ करने से देवता की उपासना सर्वाङ्ग पूर्ण होती है। कोई भी अङ्ग छोड़ने से उपासना अङ्गहीन हो जाती है।

जिस पूजा एवं उपासना का उपदेश दिया गया है, उसका अद्वैत शैव-शाक्तनय में कोई यथार्थ महत्त्व नहीं है, क्योंकि पूजक जब स्वयं शिव है तो वह किसकी पूजा करे? क्या ब्राह्मीभाव की अद्वैत स्थिति में पूजा सम्भव है?

विज्ञानभैरव में कहा गया है कि पशुरूपी प्रमाता को जब भावना के माध्यम से पति-रूपी रुद्र प्रमाता (अनाश्रित शिव) की शक्ति में समावेश (तन्मयता) प्राप्त हो जाता है तब इस तन्मयीभाव को 'क्षेत्र' कहा जाता है। इस भैरवशास्त्र की अद्वय दृष्टि में पूज्य-पूजकभाव एवं तर्प्य-तर्पकभाव की द्वैतदृष्टि सम्भव ही नहीं है; क्योंकि इस स्थिति में तो पूजन-तर्पण आदि व्यापार भी अद्वय तत्त्व से भिन्न नहीं रह पायेंगे। इसीलिये विज्ञानभैरव में कहा गया भी है—

रुद्रशक्तिसमावेशस्तत्क्षेत्रं भावना परा।
अन्यथा तस्य तत्त्वस्य का पूजा कश्च तृप्यति।।

यैरेव पूज्यते द्रव्यैस्तर्प्यते वा परापरः।
यश्चैव पूजकः सर्वः स एवैकः क्व पूजनम्।।

इसी भाव एवं दृष्टि की पुष्टि प्रभाकौल में भी की गई है—

यावत्तत्परमं शान्तं न विजानन्ति सुन्दरि
तावत्पूजाजपध्यानहोमलिङ्गार्चनादिकम् ।
विदिते तु परे तत्त्वे सर्वाकारे निरामये
क्व पूजा क्व जपो होमः क्व च लिङ्गपरिग्रहः।।

कौलावली-प्रोक्त अन्तर्यजनविधान— अन्तर्याग करके ही बहिर्यजन करना चाहिये; क्योंकि अन्तर्याग किये विना कोई साधक बहिर्याग का अधिकारी नहीं होता। इसका विधान इस प्रकार है—

साधक अपने हृदय में सुधासागर का ध्यान करे और उसके मध्य स्वर्णबालुका वाले रत्नद्वीप की कल्पना करे। इस द्वीप के चारो ओर मनोहर पारिजात वृक्षों की भी भावना करनी चाहिये। इन वृक्षों के मध्य ५० अक्षरमय कल्पवृक्ष की, उसके मूल में शतयोजन विस्तीर्ण, ब्रह्माण्डमण्डल-व्याप्त एवं स्वर्णनिर्मित प्राचीर से युक्त चतुर्द्वारात्मक, रत्नजटित,

सूर्यवत् प्रकाशित तेजोमन्दिर की कल्पना करनी चाहिये। फिर कल्पना करनी चाहिये कि उसमें चामर, घण्टा एवं वितान आदि सुशोभित हो रहे हैं। सुगन्धित वायु एवं सुगन्धित गन्ध से समस्त वातावरण मादक बन गया है। उसके मध्य-स्थित रत्नमण्डित वेदिका पर स्वर्णतारों से निर्मित मनोहर छत्र तना हुआ है। वेदिका पर पीयूषपूरित महायन्त्र स्थापित है।

तदुपरान्त साधक को मनोभावना से षोडशदल कमल के प्रत्येक दल पर दक्षिणावर्त क्रम से पाद्य के तीन पात्र, अर्घ्य के तीन पात्र, आचमन के छः पात्र, मधुपर्क के तीन पात्र एवं भोग का एक पात्र स्थापित करना चाहिये। पात्रों को सहस्रार-निर्गत अमृत से, पीयूष से पूरित करके पीठपूजा करनी चाहिये। फिर सर्वोपरि भाग में पश्चिमाभिमुखी कमल का ध्यान करना चाहिये।

इस कल्पित पद्म के भीतर (यन्त्रराज के बिन्दु में) शिव-शक्तिसंयोग से स्रवित अमृतानन्द से आनन्दनिर्भर परिवारसहित स्वेष्टदेवता का आवाहन करके मानसोपचारों से उसे उत्तम द्रव्य अर्पित करना चाहिये।

प्रथमतः आसन देकर, स्वागत करके, कुशल-क्षेम पूछकर चरणों में पाद्य, शिर पर अर्घ्य एवं सहस्रदल भृङ्गार से आलम्बित नाल-नलिका से निःसृत परमामृतरूप जल को स्वर्णपात्र में लाकर भाव-पुष्पों से संयुक्त करके मुख में आचमन जल देना चाहिये। फिर मुख में मधुपर्क देकर आचमन कराये। चौबीस तत्त्वरूप गन्ध का अर्पण करना चाहिये और फिर स्वयम्भू कुसुम एवं कुंकुम तथा रक्तचन्दन निवेदित करना चाहिये। फिर धूप-दीप को सात एवं आठ भाव वाले पुष्पों से पूजित करके समर्पित करना चाहिये। फिर महादेवी को मनःकल्पित विविध नैवेद्य अर्पित करके तीन बार तर्पण करना चाहिये। तत्पश्चात् षडंग देवों, गुरुपंक्तियों एवं अंगदेवताओं का पूजन करके सर्वेष्टदेवता को स्नान कराना चाहिये।

प्रथम विधि— साधक अपने वामभाग में रत्नसिंहासन से मण्डित मण्डल कल्पित करके उस पर देवी को मनोभावना द्वारा कल्पित करके नाना गन्धों से समन्वित कल्पित करके सुगन्धित तैल देकर गन्ध-तोयसमन्वित स्वर्णकलशगत नाना तीर्थजल से परदेवता का स्नान कराकर कौशेय वस्त्रों से अंगों को मार्जित करके उसे रक्त वर्ण के कौशेय वसन पहनाये। साधक अपनी आँखों के तेजस् तत्त्व से शरीर पोंछे। कान के आकाशतत्त्व से वस्त्र की कल्पना करे। विधिवत् वन्दना करके नाना रत्नजटित कंघी से केशों का संस्कार करे। फिर साधक रत्नजटित रेशम के गुच्छों से वेणी ग्रथित करे। फिर ललाट पर तिलक लगाये और माँग में सिन्दूर लगाये। हाथों में नागेन्द्र-दन्तनिर्मित शंख एवं केयूर, कंकण एवं कटक देकर देवी को अलंकृत करे।

फिर चरणाब्जों की उँगलियों में नाना रत्नजटित अंगुलीयक, पैरों में नूपुर एवं कटि में करधन पहनाये। शिर को चूडामणि एवं सिर को रत्नजटित किरीट, कानों को ताटंक-कुण्डल, नेत्रों को कज्जल, नासाग्र को गजमौक्तिक, ग्रीवा को मणिमौक्तिक एवं ग्रीवापत्र, आनन्दहार एवं उँगलियों को रत्नजटित अँगुलीयकों से सुशोभित करे।

तदुपरान्त साधक समस्त अंगों में गन्ध-चन्दन एवं सिद्धक का लेप करे, ओष्ठों में काञ्चनाञ्चित कञ्चुली एवं आलक्तक लगाये। फिर साधक प्रवालजटित स्वर्णपादुका देकर रत्नजटित पालने पर बैठाकर मण्डप में लाकर पुनः पाद्यादिक से सेवा करके भगवती को गन्धादिक लगाकर भाव-पुष्पों से उसकी पूजा करे। तदुपरान्त अमाया, अनहंकार, अराग, अलोभ, अमद, अमोह, अदम्भ, अद्वेष, अक्षोभ, अमात्सर्य, १० भावपुष्पों एवं अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, दया, क्षमा एवं ज्ञानरूपी भावपुष्पों (१५ पुष्पों) से भगवती की पूजा करे।

इसके उपरान्त साधक कनेर, जपाकुसुम, द्रोण, चम्पा, नागकेशर, अपरा, कदम्ब एवं पारिजातपुष्पों की सुगन्धित माला एवं सप्तद्वीपसमुत्पन्न पुष्पों एवं विभिन्न जातीय पद्मों से निर्मित सुमेखला देवी को समर्पित करे।

इसके उपरान्त साधक कुण्डलोद्भव एवं वायुरूप धूप, सहस्रार की कर्णिका के पात्र में परमामृतरूप तैल, मूलाधारस्थ चिदग्नि का दीप, मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त सुषुम्नाहत वायु से उत्पन्न अनाहत नाद का घण्टा, षड्रसमय नैवेद्य, अम्बररूप चामर, सूर्यरूप दर्पण, चन्द्रमण्डलरूप उत्तम छत्र, सुधासमुद्ररूप मांसशैल, मत्स्यराशि, अनेकविध फल, सुपक्व घृताक्त एवं सुचारु चरु, घृताक्त परमान्न, भक्ष्य-भोज्य-चोष्य-लेह्य-पेय चर्वण पदार्थ समर्पित करके अर्घ्य जल से पुनः आचमन कराकर मूलाधारोत्थ वायु से बाह्य चक्र प्रदान करे। फिर साधक सत्त्व-रज गुणों से समन्वित कर्पूरचूर्णमिश्रित ताम्बूल रत्नपात्र में रखकर देवी को अर्पित करके पुनः उनका तर्पण करते हुये उनके अंगदेवताओं का पूजन-तर्पण करके पुनः देवी की पूजा करके और तर्पण समाप्त करके अन्तर्मातृका का जप करके उसे देवी को समर्पित करे तथा स्तुतिपाठ करे। तदुपरान्त साधक पुष्पशय्या बना कर उस पर देवी को आसीन करके मनरूपी नर्तक द्वारा नर्तन कराकर तालसंयुक्त सुरम्य संगीत द्वारा गीत सुनाकर देवी को सन्तुष्ट करे और इस प्रकार कामेश्वरसहित कामेश्वरी देवी और अपने में एकीभाव की भावना करके सिद्धि का अधिकार प्राप्त करे। यही है— अन्तर्यजन का विधान।

जो साधक मन से सहस्र रक्तकमल देवी को अर्पित करता है, वह सहस्रों कोटि तथा सैकड़ों कोटिकल्प देवीपुर में स्थित होकर फिर पृथ्वी पर पृथ्वीपति बन कर अवतीर्ण होता है। जो साधक भगवती को मन से भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक नैवेद्य अर्पित करने की आकांक्षा रखता है, वह दीर्घायु एवं सुखी होता है। जो मन से देवी की प्रदक्षिणा करता है, वह देवीधाम में निवास पाता है और नरकों के दर्शन से दूर रहता है। जो मन से भी देवी को नमन करता है, वह शिवलोक में वास पाकर महत्तम कहलाता है।

अन्तर्यजन की द्वितीय विधि— अन्तर्यजन की विधि भी है, जो इस प्रकार है— विशाल बुद्धि का साधक प्रथमतः गुरु का ध्यान करे और फिर हृदय में स्थित विमल पुष्कर तीर्थ या बिन्दुतीर्थ में स्नान करे। इससे पुनर्जन्मों का अन्त हो जाता है।

शरीर के भीतर ज्ञानरूपी जल से पूर्ण इड़ा-सुषुम्णारूपी नदियाँ बह रही हैं।

शिवतीर्थ इन दोनों नदियों में ब्रह्मरूप जल से जो स्नान करता है, उस साधक को गंगा-जल एवं पुष्करतीर्थ के जल की क्या आवश्यकता है? स्नान के बाद सन्ध्या करनी चाहिये। कुलनिष्ठों की सन्ध्या शिव-शक्तिसमायोग का काल है। सूर्य-चन्द्र-अग्नि के सम्मिलन से प्रवाहित परामृत से परदेवता का तर्पण करना चाहिये। यही है— दिव्यतर्पण। दिव्यार्घ्य भी पृथक् अर्घ्य है। ब्रह्मरन्ध्र के अधोभाग में जो चन्द्रमारूपी उत्तम पात्र है, उसे कलासार से पूर्ण करके उससे खेचरी का तर्पण करना चाहिये।

न्यास-विधान— न्यास की सिद्धि के लिये चतुर्दल 'आधारचक्र' में 'वं शं षं सं' (४ दल); लिङ्गमूलस्थ विद्युद्वर्ण 'स्वाधिष्ठान' में 'बं भं मं यं रं लं' (६ दल); नाभिस्थल स्थित मेघवर्ण दशदल 'मणिपूर' में 'डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं'; हृदयस्थित रक्तवर्ण द्वादशदल कमलरूप 'अनाहत' चक्र में 'कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं'; कण्ठस्थित धूम्रवर्ण षोडशदल 'विशुद्धा'ख्य चक्र में 'अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः' एवं भ्रूमध्यस्थित 'आज्ञा' चक्र में अर्थात् श्वेत वर्ण द्विदल पद्म में 'हं क्षं' वर्णों का न्यास करना चाहिये।

इन अन्तर्मातृकावर्णों का कण्ठच्छदक्रम से ध्यान करने के उपरान्त षडंग न्यास करना चाहिये, जिससे कि साधक देवीमय हो जाता है।

तान्त्रिक पूजाविधान

१. तर्पणविधि— विषयपुष्पों से तर्पण करके साधक को भगवती में तन्मय हो जाना चाहिये। तन्मयता ही वास्तविक न्यास है। साधक को देवी की 'सोऽहं' भाव से पूजा करनी चाहिये।

२. जपविधि— मूलाधारस्थ वर्णमाला द्वारा जप करना चाहिये। यह माला ५० मणियों से निर्मित और शिव-शक्तिरूपी सूत्र से ग्रथित है। इसकी अन्तिम कला 'मेरु, क्षं' है। प्रत्येक उच्चारण सबिन्दु करना चाहिये। इसके प्रत्येक वर्ण पर अपने इष्टमन्त्र का लोम-विलोमविधि से एकाग्र मन से जप करना चाहिये और जप के पूर्ण हो जाने पर स्वकल्पोक्त विधि से देवी को उसका फल समर्पित करना चाहिये। स्तुतियों द्वारा सभी का बार-बार समर्पण करना चाहिये।

३. होमविधि— होम करने से चिन्मयता आती है। साधक को चाहिये कि वह अपने को अपरिच्छिन्न अव्यय के रूप में कल्पित करे और साथ ही आत्मा, अन्तरात्मा एवं परम ज्ञानात्मा— इनका एकीभूत रूप ही चित्कुण्ड चतुरस्र है। आनन्दमय सुरम्य मेखला है और इसमें तीन बिन्दुमय तीन वलय हैं और अर्धमात्रा योनिरूप ब्रह्मानन्दमय है। साधक सर्वज्ञान-विजृम्भित परदेवमय संवित् अग्नि में स्थिरचित्त होकर हवन करे। 'अ' से 'क्ष' पर्यन्त वर्णमण्डित शब्दसमूह मातृका है। उसमें समस्त वर्ण हुत हैं। निः-शब्द ही ब्रह्म है।[१]

१. कौलावलीनिर्णय

हवनीय द्रव्य— कृत्याकृत्य, पाप-पुण्य, संकल्प-विकल्प, धर्माधर्म हव्य द्रव्य हैं। नाभिमण्डल में स्थित चिदग्नि में मनरूपी स्रुवा से निम्न मन्त्रों के आदि में मूलमन्त्र जोड़कर साधक यथाक्रम हवन करे—

१. नाभिमण्डलचैतन्यरूपाग्नौ मनसा स्रुचा।
ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम्।। (स्वाहा)

२. धर्माधर्महविर्दीप्तमात्माग्नौ मनस स्रुचा।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम्।। (स्वाहा)

३. प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी स्रुचा।
धर्माधर्मौ कलास्नेहपूर्णवह्नौ जुहोम्यहम्।। (स्वाहा)

४. अन्तर्निरन्तरनिबन्धनमेघमाने
मायान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ।। (स्वाहा)

५. कस्मिंश्चिद्द्युतमरीचिविकाशिभूमौ
विश्वं जुहोमि वसुधां दिशि वावसानम्।। (स्वाहा)

६. इदन्तु पात्रभरितं महोत्तापपरामृतम्।
पूर्णाहुतिमये वह्नौ पूर्णहोमं जुहोम्यहम्।। (स्वाहा)[1]

३. महा अन्तर्यजन विधि— यह ब्रह्मयज्ञस्वरूप है। ब्रह्मयज्ञ महायज्ञ है। इससे ब्रह्मज्ञानी साधक को अपने मन से ही मन को देखकर यह यज्ञ करना चाहिये।

जैसे समस्त नदियाँ सिन्धु में ही प्रविष्ट होकर लय हो जाती हैं, उसी प्रकार समस्त शरीर को महाशून्य में लय कर देना चाहिये। साधक ब्रह्मयज्ञ करके फिर सभी मन्त्रों का जप करे। आत्मा में किया गया यज्ञ ही सभी यज्ञों का फलदाता है।

कर्मयज्ञ, मनोयज्ञ एवं प्राणयज्ञ हुताशन हैं। ये समस्त यज्ञों का फल प्रदान करते हैं। ब्रह्मकर्ता के द्वारा ब्रह्माग्नि में ब्रह्मरूप हवि करके ब्रह्मसमाधि द्वारा ब्रह्म में ही मिलकर ब्रह्मत्व प्राप्त करना ब्रह्मयज्ञ है—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।

साधक को चाहिये कि अपने को ब्रह्म समझकर (अहं ब्रह्मास्मि की भावना करके) समस्त कार्यों को सम्पादित करता रहे।[2]

कौलावलीनिर्णय में अन्तर्यजन एवं बाह्य यजन का सविस्तार विवेचन किया गया है।

बहिर्यजनविधान— साधक को स्वेष्टदेवानुरूप स्वर्ण, रजत, ताम्र, अष्टधातु, शालिग्राम शिला आदि का 'यन्त्रराज' निर्मित करना चाहिये। श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन,

१. कौलावलीनिर्णय २. कौलावलीनिर्णय

काश्मीर-मृतिका या दर्पण में यन्त्र का निर्माण करना चाहिये। इसके अतिरिक्त भूर्जपत्र, स्फटिकखण्ड, रत्न या कुलशक्ति पर यन्त्र का निर्माण करना चाहिये। स्वयम्भू कुसुम, कुण्डगोलोत्थ द्रव्य, रोचना, अगर, केशर, कस्तूरी, श्वेत चन्दन से मिश्रित गन्ध से यन्त्रराज को लिखना चाहिये। श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन, अगर, कर्पूर, सिन्दूर, कस्तूरी, गोरोचन, लाक्षा, कुलगोलोद्भव, स्वयम्भू कुसुम या केशर— इन गन्धों से स्वर्ण-लेखनी से या रत्नजटित लेखनी से या पुष्प से या बेल के काँटों से स्वयं चक्रराज लिखे।

अपराजिता पुष्प, श्वेत-रक्त कनेर, अड़हुल एवं द्रोणपुष्प में देवी का निवास होता है। इन्हें यन्त्रराज के रूप में ग्रहण करके इनमें चण्डिका का पूजन किया जा सकता है।

यन्त्र की स्थापना— उत्तराभिमुखी होकर चक्र लिखना चाहिये। यन्त्र लिखकर उसे आसन पर समासीन करना चाहिये। शीशा, काँसा, राँगा, काठ के पीढ़े या दीवार पर यन्त्र कभी स्थापित नहीं करना चाहिये। प्रथमतः नीचे पुष्प रखकर ही यन्त्र की स्थापना करनी चाहिये। यन्त्र जिस पर स्थापित किया जाय, वह आधार भी सुगन्धित रहना चाहिये। साधक को चाहिये कि वह देवी से अपने को अभिन्न रूप में ध्यान करते हुये अपने शिर पर पुष्प रखे।[१]

भगवती के अन्तर्यजन में (समयमत के अनुसार) यद्यपि भगवती की पूजा बैन्दव-स्थान (चतुष्कोण) में करणीय है; किन्तु पुरश्चरणात्मक क्रिया में संवित्कमल में त्रिकोण को आरोपित करके सहस्रदल कमल से बैन्दवस्थानस्था कामेश्वरी को अवरोपित करके पुरश्चरण करना समयमतानुमोदित है।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना के मार्ग में जो भी बहिर्यजन स्वीकार्य है, उनमें से प्रत्येक के आदर्शस्वरूप को प्रतीक के रूप में ही स्वीकार किया गया है। यहाँ तक कि स्नान जैसी स्थूल क्रिया को भी प्रतीकात्मक दृष्टि से ही गृहीत क्रिया गया है। विज्ञानभैरव (२४९) में कहा गया है कि स्वतन्त्रानन्द चिन्मात्रसार स्वात्मारूपी जल में आवेशन ही स्नान है—

स्वतन्त्रानन्दचिन्मात्रसारः स्वात्मा हि सर्वतः।
आवेशनं तत्स्वरूपे स्वात्मनः स्नानमीरितम्।।

जहाँ तक याग की बात है तो याग कोई बाह्यावर्ती शारीरिक भौतिक व्यापार नहीं है; प्रत्युत समाधिजन्य आनन्द से सम्प्राप्त सन्तुष्टि ही 'याग' है—

यागोऽत्र परमेशानि तुष्टिरानन्दलक्षणा।
क्षपणात्सर्वपापानां त्राणात्सर्वस्य पार्वति।।

जहाँ तक पूजा की बात है तो वह क्या है? इसके विषय में अभिनवगुप्त तन्त्रालोक (४.१२१) में कहते हैं कि रूप-रस आदि विभिन्न बाह्य पदार्थों की देश-काल

१. कौलावलीनिर्णय (तृतीय उल्लास)

आदि से अपरिच्छिन्न, निरुपधिक, स्वतन्त्र, भैरवाकार परसंवित् से (बोधभैरव से) अभेदरूप में प्रतिष्ठा ही पूजा है—

पूजा नाम विभिन्नस्य भावौघस्यापि सङ्गतिः।
स्वतन्त्रविमलानन्तभैरवीयचिदात्मना ॥।

शक्तिमन्त्रं जपेद्रात्रौ विनापि पूजनं शुचिः।
विशेषतो निशीथे तु तत्रातिफलदो जपः।।

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-५ उल्लास)

भगवती की उपासना की विविध पद्धतियाँ

१. स्थूलोपासना— कर-चरण आदि अङ्गों का ध्यान, उसकी उपासना।
२. सूक्ष्मोपासना— मन्त्रात्मक उपासना।
३. परोपासना— वासनात्मक उपासना।

क. प्रथमा— स्थूलरूपानुसन्धानात्मिका (सरूपा)।
ख. चरमा (अरूपा)— पररूपानुसन्धानात्मिका।

बहिर्याग स्थूलोपासना का ही पर्याय है। इसका प्रथम रूप कामकला का ध्यान है। त्रिपुरा महोपनिषद् में कहा भी गया है—

द्वा मण्डला द्वा स्तना बिम्बमेकं मुखं चाधस्त्रीणि गुहसदनानि।
कामीं कलां काम्यरूपां विदित्वा नरो जायते कामरूपश्च काम्यः।।

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमध्यस्तस्य तदधो हकारार्द्धं ध्यायेत्।

बहिर्याग का द्रव्य ही इसका द्वितीय रूप है। त्रिपुरा महोपनिषद् में कहा भी गया है—

परिस्रुतं झषमाद्यां पलञ्च भक्तानि योनीः सुपरिष्कृतानि।
निवेदयन्देवतायै महत्यै स्वात्मीकृत्य सुकृतीसिद्धिमेति।।

बहिश्चक्र में भगवती की स्थापना और वहीं उसकी उपासना करने का निर्देश त्रिपुरा महोपनिषद् में किया गया है—

त्रिविष्टपं त्रिमुखं विश्वमातुर्नवरेखाः स्वरमध्यं तदीले।
बृहत्तिथीर्दशपञ्चादिनित्या सा षोडशी पुरमध्यं बिभर्ति।।

भगवती के ध्यान का जो सगुण रूप वर्णित किया गया है और जिसके आधार पर भगवती का ध्यान किया जाता है, उसे ही भगवती का स्थूल रूप एवं उसकी उपासना ही 'स्थूलोपासना' कही जाती है।

बहिर्याग (भास्करराय का मत)

भगवती के सगुण स्वरूप की उपासना	बहिश्चक्र की उपासना	कामकला की उपासना

बहिर्याग में पुंरूप या नारीरूप का ध्यान करना चाहिये; किन्तु नारी एवं पुंरूप दोनों ही समप्रधान है। इसमें मूल देवता के सगुण रूप का चिन्तन करना चाहिये तथा बहिश्चक्र की उपासना करनी चाहिये।

कुलार्णवतन्त्र के अनुसार भगवती के पररूप भी त्रिविध हैं— नारीरूप, पुरुषरूप एवं निष्कल रूप।

पुंरूपां वा स्मरेद्देवीं स्त्रीरूपां वा विचिन्तये।
अथवा निष्कलं ध्यायेत्सच्चिदानन्दलक्षणम्।।

भास्करराय के अनुसार परोपासना में निष्कल जप किया जाना चाहिये। आचार्य भास्कर-प्रतिपादित भगवती की सूक्ष्म उपासना (देवता के सूक्ष्म स्वरूप की उपासना)—

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमाताऽऽदिविद्या।।

देवता (देवी) **के तीन रूप** (भास्करराय : त्रिपुरामहोपनिषद्व्याख्या)

स्थूल	सूक्ष्म	पर
(देवता का ध्यानस्वरूप)	(मूलमन्त्रस्वरूप)	(पररूपोपासना—परदेवता = त्रिपुरा)

सगुण सरूप की उपासना = बहिर्याग। अरूपा उपासना = अन्तर्यागात्मक उपासना।

साधना के तीन रूप

बहिर्याग जप अन्तर्याग

श्रीविद्या के अन्तरङ्गावयव

मन्त्रों की वर्णसंख्या मन्त्रों का उच्चारण उत्पत्तिस्थान आकार स्वरूप अर्थभावना

क्रियोपासना

मन्त्रपूजा जप यन्त्रपूजा

श्रीविद्या के बहिरङ्ग अवयव

ऋषि छन्द देवता विनियोग बीज शक्ति कीलक न्यास ध्यान नियम पूजार्चनादि

उपासना (भास्करमत)

अन्तर्याग	बहिर्याग
सकल	सकल-निष्कल निष्कल (सेतुबन्ध)

सुन्दरी की उपासना (भास्करमत)

बहिर्याग	अन्तर्याग
(पात्र, आसन, शान्ति, स्तव आदि कर्मसमूह)	(मानसी देवपूजा, राजदन्त तक तेज-स्तन्तु का विभावन) (सौभाग्यभास्कर)

षट्त्रिंश अध्याय

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप और उनकी उपासना

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी को श्रुति (उपनिषद्) भी विभिन्न रूपों में देखती हुई उसको विविध स्वरूपाकारित मानती है। त्रिपुरामहोपनिषद् में उसे मदन्तिका, मानिनी, मंगला, सुभगा, सुन्दरी, शुद्धमत्ता, लज्जा, मति, तुष्टि, अरिष्टा, पुष्टा, लक्ष्मी, उमा, ललिता एवं लालपन्ती नामों से अभिहित किया गया है—

मदन्तिका मानिनी मङ्गला च सुभगा च सा सुन्दरी शुद्धमत्ता।
लज्जा मतिस्तुष्टिरिष्टा च पुष्टा लक्ष्मीरुमा ललिता लालपन्ती।।

पद्मपुराण में देवीतीर्थों की गणना करते हुये क्षेत्रविशेष के आधार पर देवी के निम्न नाम बताये गये हैं—

प्रयाग तीर्थ में 'ललिता देवी', लंका में 'मंगला', त्रिकूट में 'भद्रसुन्दरी', करवीर प्रदेश में 'महालक्ष्मी', विनायक देश में 'देवी', देवदास वन में 'पुष्टि', काश्मीर में 'मेधा', वत्सेश्वर में 'तुष्टि'।

मदन्तिका आदि १४ देवियाँ वाराणसी में स्थित विशालाक्षी आदि की बोधिका हैं। लाल-पन्ती = लालप्यमाना। १५ अक्षरों की १५ देवियाँ। शुद्धमत्ता = अथर्वणपाठ— सिद्धिमत्ता।[१]

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना पर प्रकाश डालते हुए त्रिपुरामहोपनिषद् में कहा गया है कि पूर्वोक्त परदेवता की उपासनाविधि को पूर्ण रूप से जान कर दीक्षापूर्वक उपासना स्वीकार करके अपने शरीर से अभिन्न श्रीचक्र में पीयूषीकृत परिस्रुत द्रव से तृप्त करते हुये भक्त जो इन्द्रियों के विषयों का निर्विकल्प रूप से भोग करते हैं, वे महदाकाश-पृष्ठ पर स्थित त्रिपुरा के धाम में निवास करते हैं।

इस श्रुति में अमृतीकरण संस्कार का वर्णन किया गया है। इसकी अधिष्ठात्री देवी सुधा देवी है। यह बात संवित् संस्कार मन्त्रवर्णों से ज्ञात होती है—

मन्त्रसंस्कारसंशुद्धं तदेवामृतमुच्यते।[२]

भगवती त्रिपुरा के उपासकों की सभी कामनाओं की पूर्ति होती है और अन्त में वे मोक्ष प्राप्त करते हैं। देवीभागवत में कहा भी गया है—

एवं सर्वगता शक्तिः सा ब्रह्मेति विविच्यते।
सगुणा निर्गुणा चेति द्विविधोक्ता मनीषिभिः।।

सगुणा रागिभिः पूज्या निर्गुणा तु विरागिभिः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां स्वामिनी सा निराकुला।

---

१. भास्करराय— त्रिपुरामहोपनिषद्भाष्य। २. रुद्रयामल ३. देवीभागवत

ददाति वाञ्छितानर्थानर्चिता विधिपूर्वकम्।।[३]

जिन्होंने श्रीविद्या की दीक्षा प्राप्त की है, उन्हें द्रव्ययुक्त पीठार्चन से निर्विकल्प वृत्ति के द्वारा सभी कामनाओं की भावना करनी चाहिये। 'इमां विज्ञाय' पद यही सूचित करता है। 'तर्पयन्तः' पद बहिर्यागविधि का निर्देश करता है। १२हवीं ऋचा में प्रयुक्त 'निवेदयन् स्वात्मीकृत्य' पदों द्वारा देवता से निवेदन एवं स्वात्मीकरण की जो समकालीनता प्रदर्शित की गई है, उससे दिव्य पानविधि से ही उक्त श्रुति का तात्पर्य बोधित होता है, वीरपान-विधि से नहीं। कहा भी गया है—

पानं तु त्रिविधं प्रोक्तं दिव्यवीरपशुक्रमैः।
दिव्यं देव्यग्रतः पानं वीरमुद्वासने कृतम्।।

यह पररूपोपास्ति का विधान है।[१]

सूक्ष्मरूपात्मक उपासनाविधि (पञ्चदशी विद्यात्मक)— भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की जो सूक्ष्म रूपोपासना है, उसके सन्दर्भ में त्रिपुरामहोपनिषद् में इस प्रकार उसके मन्त्र-स्वरूप को उद्घाटित किया गया है—

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या।।[२]

यहाँ कामराजोपासिता विद्या का उपदेश दिया गया है।

यह उपर्युक्त तान्त्रिक ऋचा गायत्री मन्त्र का बोधक है। आचार्य भास्करराय ने वरि-वस्यारहस्यम् में इसी के माध्यम से तान्त्रिकी पञ्चदशी विद्या का उद्घाटन किया है। चूँकि यह मन्त्र स्त्रीदेवतात्मक है; अतः इसे 'विद्या' कहा गया है। यह आदि विद्या गायत्री की उद्धारिका है।

त्रिपुरतापिन्युपनिषद् एवं भागवत— दोनों भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं। श्रीम-द्भागवत में कहा भी गया है—

सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि।
बुद्धिं यो नः प्रचोदयात्।।

काम एवं मातरिश्वा, चतुर्मुखवाचक अक्षर के कमला एवं योनि, पन्द्रह स्वरों के इन्द्र और वज्रपाणि, तृतीय अन्तःस्थ अक्षर के, गुहा एवं माया भुवनेश्वरीबीज के एवं 'अभ्र' पद उक्त मन्त्र के आद्यक्षर हकार एवं शेष पञ्चक (ह स स क ल) उसके स्वरूप के बोधक हैं।

यह आदिविद्या पुरुची (सनातनी) विश्वमाता (विश्वजनयित्री) है। योगिनीहृदय के सम्प्रदायार्थप्रकरण में मन्त्राक्षरों द्वारा विश्वोत्पत्ति के प्रसङ्ग में इसका सविस्तार वर्णन किया गया है। इस मन्त्र की दत्तात्रेय, अगस्त्य आदि ऋषियों ने मार्मिक व्याख्या की है और वरिवस्या-

१. भास्कर राय (त्रि० भाष्य) २. त्रिपुरामहोपनिषद (८)

रहस्यम् के माध्यम से भास्करराय ने भी इसकी पुष्कल विवेचना की है।

पञ्चदशी कादि विद्या के प्रत्येक अक्षर के अनुसार उनकी १६ शक्तियाँ हैं— मदन्तिका, मानिनी, मङ्गला, सुभगा, सुन्दरी, त्रिपुरा, सिद्धिमत्ता, लज्जा, मति, तुष्टि, इष्टा, पुष्टा, लक्ष्मी, उमा, ललिता और लालपन्ती।

अष्टम मन्त्र प्रकाशवती विश्वमातास्वरूपा आदिविद्या पर प्रकाश डालते हुये कहता है— कामः (ककार), योनिः (एकार), कामकला (ईकार), वज्रपाणि (इन्द्र = लकार), गुहा (ह्रीं), हसा (ह स), मातरिश्वा (ककार), अभ्र (हकार), इन्द्र (लकार), पुनर्गुहा (ह्रीं), सकला (सकल), मायया (ह्रीं)— यह प्रकाशवती विश्वमातास्वरूपा आदिविद्या है।[१] कादि विद्या के उपरान्त अग्रिम मन्त्र में 'लोपामुद्रा विद्या' पर प्रकाश डाला गया है।

लोपामुद्रा विद्या— इसमें कहा गया है कि कादि विद्या के छठे, सातवें एवं वह्निसारथि (मातरिश्वा = वायु) का मूलत्रिक (प्रथम अक्षरत्रय) के स्थान पर आदेश करने वाले साधक कथ्य (वाच्य पद) सर्वज्ञ कल्प के निर्माता कामेश्वर को प्रसन्न करके मुक्त हो जाते हैं (कल्पः शास्त्रे विधौ न्याये संवर्ते ब्रह्मणो दिने)। यही लोपामुद्रा विद्या है।

लोपामुद्रा विद्या के मूल त्रिक— मन्त्र के प्रथम अक्षरत्रय निकाल कर उनके स्थान पर छठा, सातवाँ एवं आठवाँ अक्षर रखकर जप करने वाले परमशिव का जप करते हुये मोक्ष के भागी होते हैं। वह परमशिव (काम) कामना करने वाला, विश्वकल्पना का अधिष्ठान (कवि), वेदप्रणेता (कथ्य) और वेद-ज्ञेय है।

परदेवता के तीन प्रकार के ध्यान विहित हैं। कुलार्णवतन्त्र में कहा भी गया है—

पुंरूपां वा स्मरेद्देवीं स्त्रीरूपां वा विचिन्तये।
अथवा निष्कलं ध्यायेत्सच्चिदानन्दलक्षणम्।।

यद्यपि परोपासना में निष्कल का जप करना चाहिये और बहिर्याग में पुंरूप या स्त्रीरूप का ध्यान करना चाहिये; क्योंकि स्त्री-पुंरूप की समप्रधानता का प्रतिपादन किया गया है; परन्तु सम्प्रदायानुसार ऐच्छिक विकल्प भी मान्य है।

सातवें मन्त्र (इमां ..... चाविशन्ति) में कहा गया था कि इस विद्या को जानकर (सुधारूपी) मदिरा से मदन्ती को उसकी पीठ (श्रीचक्र) में तृप्त (आह्लादित) करने वाले महान् पुरुष स्वर्ग के ऊपर वास करते हैं और त्रैपुर धाम में प्रवेश करते हैं—

इमां विज्ञाय सुधिया मदन्ती परिस्रुता तर्पयन्तः स्वपीठम्।
नाकस्य पृष्ठे महतो वसन्ति परं धाम त्रैपुरं चाविशन्ति।।

मनु, चन्द्र आदि १२ श्रीसम्प्रदाय के उपासकों द्वारा उपासित अन्य विद्याओं का त्रिपुरतापिनी उपनिषद् में जो उद्धार प्रदर्शित किया गया है, उसमें भी प्रकृति के इन्हीं दो

१. त्रिपुरामहोपनिषद्

रूपों की प्रधानता है। ज्ञानार्णवतन्त्र में द्वादश विद्याओं का उद्धार करके कहा गया है—

विद्याद्वयमिदं भद्रे देवानामपि दुर्लभम्।

कादि विद्या का उद्धार पहले हुआ है; अतः उसका प्राधान्य प्रतीत होता है। ब्रह्माण्ड पुराण में कहा भी गया है—

श्रीविद्यैव तु मन्त्राणां तन्त्रकादिर्यथा परा।

सभी विद्यायें अभेदात्मक हैं। आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी में इसका उद्धार विपरीत क्रम से दिखाया है। यहाँ अन्तर्याग का प्रकरण होने के कारण उसके अंगभूत जप का उल्लेख किया गया है।

उपासनायें तो तीनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। कहा भी गया है—

अन्तर्यागबहिर्यागौ गृहस्थः सर्वदाऽचरेत्।
चक्रराजार्चनं विद्याजपो नाम्नाञ्च कीर्तनम्।
भक्तस्य कृत्यमेतावदन्यदभ्युदयं विदुः।।

यहाँ केवल अन्तर्याग एवं जप को ही विशेष फलप्रद कहा गया है।

इसके अनन्तर स्थूलोपासना की विधि का निर्देश किया गया है और मूल देवता के सगुण रूप का चिन्तन करके बहिश्चक्र में उसकी स्थापना के लिये उसके स्थूल विशेष रूप का उपदेश अग्रिम दसवीं ऋचा में किया गया है।

इसमें कहा गया है कि नव रेखाओं वाले संहारचक्र में 'अः' स्वर का स्थान मध्य में है। इस त्रिमुख चक्र को त्रिपुरसुन्दरी का निवासस्थान समझकर मैं उसकी स्तुति करता हूँ। वह त्रिपुरसुन्दरी पन्द्रह तिथियों के पति (सूर्य) की भाँति श्रीचक्र के मध्य विसर्गस्वर (:) के स्थान पर आसीन है। तृतीय चरण से यह भी ध्वनितार्थ निकलता है कि दक्षिण-ऊर्ध्व और अधोरेखाओं में से पाँच-पाँच का नित्य पूजन किया जाना चाहिये।

आचार्य भास्कर कहते हैं कि त्रिकोण का तात्पर्य मध्यत्रिकोण है। विश्वमाता भगवती त्रिपुरसुन्दरी की पूजा इसी त्रिकोण में की जाती है। यह त्रिकोण कामेश्वरी आदि पन्द्रह नित्या देवताओं से परिवेष्टित है और इनकी पूजा ५-५ के क्रम से क्रमशः त्रिकोण की तीनों रेखाओं पर की जाती है। ज्ञानार्णवतन्त्र में लिखा भी गया है—

विभाव्य च महत्यस्त्रमग्रदक्षोत्तरक्रमात्।
रेखासु विलिखेत्पश्चात्पञ्च पञ्च क्रमेण ह।।

अकाराद्यानुकारान्तान्दक्षिणायां विचिन्तयेत्।
ततश्च पूर्वरेखायां दीर्घकर्णादिपञ्चकम्।।

विलिख्योत्तररेखायां शक्त्यादि विलिखेत्ततः।
अनुस्वारान्तं मध्ये च विसर्गे षोडशीं यजेत्।।

महात्रिपुरसुन्दरी और षोडशी कला— चन्द्रमा की वृद्धि-क्षयशालिनी कलायें पन्द्रह हैं। ये पन्द्रह कलायें पन्द्रह तिथियाँ हैं। इन्हें तन्त्रशास्त्र में 'दर्शाद्या: पूर्णिमान्ताश्च कला: पञ्चदशैव तु' से आरम्भ करके 'दर्शा दृष्टा दर्शता' (३.१०.१) इत्यादि नामों से तैत्तिरीय उपनिषद् में उल्लिखित किया गया है। इनकी कारणस्वरूपा एवं वृद्धि तथा क्षय से रहित जो सदाख्या है, वही षोडशी कला है। इसी षोडशी कला को (पन्द्रह नित्याओं का कारण होने से) आदि नित्या कहा गया है। वही भगवती महात्रिपुरसुन्दरी भी है। ये आदित्यस्वरूपा हैं और श्रीचक्र के मध्य स्थान को विभूषित करती हैं।

भगवती के स्थूल विशेष रूप को बोधित करने के लिये ही त्रिपुरामहोपनिषद् में निम्न मन्त्र पढ़ा गया है—

त्रिविष्टपं त्रिमुखं विश्वमातुर्नवरेखा: स्वरमध्यं तदीले।
बृहत्तिथीर्दशपञ्चादिनित्या सा षोडशी पुरमध्यं बिभर्ति।।

सप्तत्रिंश अध्याय

भगवती त्रिपुरसुन्दरी की पूजा (सपर्या) का आदर्श स्वरूप

आचार्य शंकर अपने सौन्दर्यलहरी में कहते हैं कि हे भगवति ! तेरी पूजा कोई पृथक् व्यापार बन कर जीवन में न आये; वह सावधि एवं निश्चित कालसापेक्ष न हो, प्रत्युत ऐसी हो, जिसमें मेरा बोलना ही जप बन जाय; समस्त व्यापार मुद्राविरचना बन जायँ; चलना-फिरना प्रदक्षिणा बन जायँ; खाना-पीना आहुति बन जायँ; मेरा सोना प्रणाम बन जाय; मेरे समस्त सुखोपभोग तेरे भोग-समर्पण बन जायँ और मेरे समस्त विलास तेरी पूजा-पद्धति बन जायँ—

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचनं
गतिः प्रादक्षिण्यं भ्रमणमशनाद्याहुतिविधिः।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदशा
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्।।

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि— सामयिकों के मत में समय-सादाख्य तत्त्व की सपर्या केवल सहस्र कमलमात्र में होती है, बाह्य पीठादिक में नहीं। जो-जो समयी योगीश्वर हुये हैं, जो जीवन्मुक्त हुये हैं, वे संसारयात्रा के समय भी सादाख्या तत्त्व का सततानुचिन्तन करते हुये 'जपो जल्पः शिल्पं' इत्यादि पद्धति से ही पूजा करते रहे हैं; ऐसे आत्मैकप्रवण, जीवन्मुक्त एवं सादाख्य समयपूजकों की सपर्या की यही सपर्या-पद्धति है— 'समयिनां मते समयस्य सादाख्यतत्त्वस्य सपर्या सहस्रदलकमल एव, न तु बाह्यपीठादौ। ये ये समयिनो योगीश्वराः जीवन्मुक्ताः संसारयात्रामनुवर्त्तमानाः सादाख्यतत्त्व-मनुचिन्तयन्तः आत्मैकप्रवणाः वर्त्तन्ते तेषां 'जपो जल्पशशिल्पम्' इत्यादिना सपर्याप्रकारो निरूपितः'।

सामयिकों की पूजा में प्राधान्य है— षड्विध ऐक्यानुसन्धान की। इसीलिये ये बाह्य पूजागत क्लेशों से दूर रहते हैं— 'ये तु समयिनो योगीश्वराः विजने गुहान्तरे वा बद्ध-पद्मासनाः निगृहेन्द्रियाः सादाख्यतत्त्वध्यानैकनिष्ठाः वर्त्तन्ते तेषां वक्ष्यमाणचतुर्विधषड्विधै-क्यानुसन्धानमेव भगवत्याः सपर्या इति'। चन्द्रज्ञानविद्या में कहा गया है—

सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणान् धारयन्तीं प्रपूजयेत्।।

यह साम्य इस प्रकार है— अधिष्ठानसाम्य, अवस्थानसाम्य, अनुष्ठानसाम्य, रूप-साम्य एवं नामसाम्य।

सामयिक षट्चक्रपूजा भी नहीं करते; क्योंकि उनकी पूजा सहस्र कमल की ही पूजा

होती है, अन्य नहीं— 'तेषां षट्चक्रपूजा न नियता, अपितु सहस्रकमल एव पूजा'। यह सहस्र कमलपूजा भी एक विशिष्ट विधान है। इसमें कैसी पूजा होती है? इसका समाधान इस प्रकार है— 'सहस्रकमलपूजानाम सहस्रकमलस्य बैन्दवस्थानत्वेन तन्मध्यगतचन्द्रमण्डलस्य चतुर आत्मना, तन्मध्यबिन्दो: पञ्चविंशतितत्त्वातीतषड्विंशात्मकशिवशक्तिमेलनरूपसादाख्यात्मना च अनुसन्धानम्। अतएव समयिमते बाह्याराधनं दूरत एव निरस्तम्। षोडशोपचाररूपपूजाङ्गकलापश्च ततोऽपि दूरत एव'।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की त्रिविधोपासना— श्रीपरशुरामकल्पसूत्र, योगिनीहृदय, त्रिपुरार्णव आदि त्रैपुरसिद्धान्त के ग्रन्थों के अनुसार भगवती की उपासना के तीन रूप हैं— स्थूल, सूक्ष्म एवं पर।

भगवती की उपासना के प्रकार— योगिनीहृदय के अनुसार भगवती की उपासना के तीन प्रकार हैं— परा (परोपासना), परापरा (सूक्ष्मोपासना) एवं अपरा (स्थूलोपासना)। इसी को स्थूल, सूक्ष्म एवं पर उपसना भी कही जाती है।

क. स्थूलोपासना में शास्त्रोक्त लक्षणों से युक्त गुरु से मन्त्रदीक्षा ग्रहण करके इष्टमन्त्र का विधिपूर्वक पुरश्चरणरूप में जप विहित पद्धति के अनुसार आह्निक प्रात:स्मरणादि, सन्ध्योपासना, सपर्या, भूतशुद्धि, प्राणायाम, मातृकान्यास एवं इष्टमन्त्रन्यास का निष्पादन किया जाता है।

मन्त्रन्यास से शरीर देवमय हो जाता है। बाह्यार्चन के द्वारा स्थूल शरीरस्थ 'आणव मल' का अपनोदन होता है और चाञ्चल्य का निराकरण होता है। स्थूलोपासना ही प्रकारान्तर से बहिर्याग एवं अपरा पूजा भी है। इससे सूक्ष्मोपासना एवं अन्तर्याग का अधिकार प्राप्त होता है।

ख. सूक्ष्मोपासना को ही परापरा पूजा भी कहा गया है। यही अन्तर्याग भी है। इसमें समस्त पूजन-व्यापार मानसिक होते हैं। मुख्यत: यह मानसिक जपविधान है। जिस प्रकार श्रीयन्त्र की बाह्य पूजा की जाती है, उसी प्रकार हृदय में श्रीयन्त्र का ध्यान करके उस पर विराजमान भगवती की मानसिक पूजा की जाती है। बाह्य पूजा में गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि जितनी वस्तुयें भगवती को समर्पित की जाती हैं, उन सभी वस्तुओं या पूजोपकरणों (सामाग्रियों) की मानसिक कल्पना करके हृदयस्थित भगवती को समर्पित किया जाता है— 'यद्यद्बाह्ये वक्ष्यमाणं तत्तदन्तरमाचरेत्'।

मानसिक पूजा या सूक्ष्मोपासना में पूजा के अंग एवं पूजा के उपकरणों की भावनात्मक या मानसिक रूप से विभावना की जाती है। इसमें जप भी मानसिक ही होता है, न कि वाचिक या उपांशु।

ज्ञानार्णव आदि तन्त्रग्रन्थ में 'आमूलाधारादाब्रह्मविलं विलसन्ती' द्वारा निर्देशित मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त कुण्डलिनी का ध्यान करके षट्चक्रों में श्रीयन्त्र के नवावरण के देवताओं की पूजा करने का निर्देश दिया गया है।

योगिनीहृदय (३.१११) के अन्तर्याग विधान में आदेश दिया गया है कि 'स्व-प्रथाप्रसराकारं श्रीचक्रं पूजयेत्सुधीः'। श्रीचक्र को अपने संवित् देवता का प्रसरण-व्यापार मान कर उसकी पूजा करनी चाहिये। अमृतानन्द योगी 'दीपिका' में कहते हैं कि श्रीचक्र और कुछ नहीं है; वह केवल अपने संवित् देवता के अन्तःकरण, अव्यक्त, महत् तत्त्व, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियाँ, उनकी विभिन्न वृत्तियाँ, उनके विषय, पुर्यष्टक, षोडश विकार धातुप्रपञ्च ही हैं। ये ही श्रीचक्र के रूप में स्फुरित होते हैं। उस श्रीयन्त्र को अपनी प्रथा का प्रसार मानकर उसकी मानसिक पूजा करना भी सूक्ष्म पूजा या परापर पूजा ही है। सेतु-बन्ध में भास्कारराय ने कहा भी है— 'स्वप्रथाप्रसराकारं परापरपूजालक्षणं स्मारितम्'।

अमृतानन्द योगी अपनी दीपिका में 'महामख' का जो विधान करते हैं, वह भी सूक्ष्मो-पासना का ही विधान है। 'मुख्याम्नायरहस्य' को उद्धृत करते हुये वे महामखात्मक पूजन का प्रतिपादन करते हैं, जिसका स्वरूप इस प्रकार है—

इन्द्रियग्रामसंग्राह्यैर्गन्धाद्यैरात्मदेवताम् ।
स्वाभेदेन समाराध्य ज्ञातुस्सोऽयं महामखः।।

अन्तर्याग की साधना में परिपक्वता आने पर साधक में एक नयी भावदशा का आविर्भाव हो जाता है, जिसमें वह सारे भोगों को अपनी इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करते हुये भी उसे भगवान् द्वारा गृहीत एवं उपभुक्त होता हुआ देखता है; अतः वह उनके द्वारा ही भगवान् की पूजा करता है और यही पूजापद्धति 'महामख' है। 'ज्ञातुस्सोऽयं महामखः' अर्थात् मैं अपनी इन्द्रियों द्वारा जो भी भोग्य पदार्थ ग्रहण कर रहा हूँ, वह स्वात्म देवता की पूजा ही है— यही भावात्मक वरिवस्या महायाग है। योगिनीहृदय में इसे ही परापरा पूजा कहा गया है। इसमें द्वैताद्वैतभाव का योग है। योगिनीहृदय द्वारा अनुसृत हादि विद्या-प्रक्रिया एवं ज्ञानदीपनविमर्शिनी में बहिर्याग एवं अन्तर्याग दोनों को साथ-साथ करने का विधान है। परापरा पूजा के स्तर पर सांसारिक कर्मों से वैराग्य एवं विषयों से वैराग्य होने लगता है।

'जप' प्रारम्भ में तो मानसिक जप के रूप में ग्राह्य है; किन्तु परापरा पूजा में चैतन्यी-करण द्वारा चेतन इष्ट मन्त्र का सुषुम्णा मार्ग में स्फुरित स्पन्द प्रारम्भ हो जाता है। इस जपप्रक्रिया में मन एवं प्राण दोनों ही का प्रभाव नहीं रहता। यह मन्त्र का सकल-निष्कल रूप है। चिरकालिक जपाभ्यासोपरान्त मन्त्र का सायास जप नहीं करना पड़ता; प्रत्युत वह अपने-आप होने लगता है। अपने-आप कण्ठ से जप होने लगना या हृदय में स्वतः स्फुरित होना ही जप की सहजावस्था है। साधक केवल इस नाम-जप का श्रवण करता रहता है। यही है— मन्त्रचैतन्य की दशा। शुद्ध विद्या का उदय ही है— मन्त्रचैतन्य। शिवसूत्र में कहा भी गया है— 'शुद्धविद्योदयाच्चक्रेशरत्वसिद्धिः'। यही है— मध्यम धाम में प्रवेश, सुषुम्णा नाड़ी का विकास एवं बाह्य क्रिया का अन्तर्यजनात्मक परिणमन।

बहिर्याग + अन्तर्याग— आणव + मायिक मलों की शुद्धि— सुषुम्णा नाड़ी का

विकास। इड़ा-पिङ्गला या वाम-दक्षिण मार्ग में प्राणापान का निरोध करने पर सुषुम्णा का विकास हो जाता है। 'प्राणापानसमौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ' कहकर कृष्ण ने मध्यविकास का ही उपदेश दिया है। इस स्थिति में नाद का आविर्भाव होता है, जो कि इष्टदेव के स्व-स्वरूप का परिणमन होता है—

आनन्दलक्षणमनाहतनाम्नि देशे नादात्मना परिणतं तव रूपमीशे।

इन्द्रियों का संयम करके अन्तर में नादोच्चारण करना चाहिये; क्योंकि यही यथार्थ जप है, न कि बाह्य जप—

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं प्रोच्चरेन्नादमन्तरम्।
एष एव जपः प्रोक्तः न तु बाह्यजपो जपः।।

इसी जप की तीव्रता से ही मन्त्रचैतन्य निष्पादित होता है। इससे कुण्डली-प्रबोध एवं षट्चक्रभेदन भी निष्पादित हो जाता है। इस स्थिति में विकसित सुषुम्णा में मन्त्र स्फुरित होकर सिद्ध हो जाता है।

मन्त्र जब तक मात्र वर्णात्मक रहते हैं, तब तक वे 'पशु' कहलाते हैं; लेकिन वे ही वर्णात्मक मन्त्र सुषुम्णा में प्रवेश करने के उपरान्त 'पशुपति' बन जाते हैं—

पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवला वर्णरूपिणः।
सौषुम्णे ध्वन्युच्चरिताः पतित्वं प्राप्नुवन्ति ते।। (हंसपारमेश्वर)

सुषुम्णा नाड़ी में सञ्चरित मन्त्र का एक बार का उच्चारण एक बार के सामान्य जप से श्रेष्ठतर होता है—

एकस्य मन्त्रनाथस्याप्यन्तर्बाह्योदितस्य च।
यदैक्यं तं जपं विद्धि लक्षसङ्ख्याधिकं मुने।।

स्पन्दकारिका में ठीक ही कहा गया है कि मन्त्र सुषुम्णा या आत्मा के बल को प्राप्त करके सर्वशक्तिसम्पन्न हो जाते हैं और साधक को सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिशाली बनाकर स्वयं उनके दास बन जाते हैं—

तदाक्रम्य बलं मन्त्राः सर्वज्ञबलशालिनः।
प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनः।।

योगिनीहृदय की दृष्टि— पूजा-प्रबोध से साधक जीवन का परम पुरुषार्थ— मोक्ष— जीवन्मुक्ति प्राप्त कर लेता है—

पूजासङ्केतमधुना कथयामि तवानघे।
यस्य प्रबोधमात्रेण जीवन्मुक्तः प्रमोदते।। (योगिनीहृदय)

इसी पूजा को योगिनीहृदय में तीन भागों में विभाजित कहकर प्रस्तुत किया गया है—

परा चाप्यपरा गौरि तृतीया च परापरा।

परा पूजा = प्रथमाद्वैतभावस्था सर्वप्रसरगोचरा'। यह अद्वैतभावावस्थित है। भास्करराय

सेतुबन्ध में कहते हैं कि इसमें द्वैतभान का अभाव रहता है— 'द्वैतभानसामान्याभावे परा'। दीपिका में अमृतानन्द कहते हैं कि यह 'चिल्लयलक्षणाद्वैतप्रथा परापूजा' है।

विज्ञानभैरव में परावस्था का लक्षण इस प्रकार बताया गया है—

यत्र यत्र मनो याति बाह्ये वाऽऽभ्यन्तरे प्रिये।
तत्र तत्र परावस्था व्यापकत्वात्क्व यास्यति।।

योगिनीहृदय के अनुसार तीनों पूजाओं के भिन्न-भिन्न स्वरूप इस प्रकार हैं—

क. परा पूजा : प्रथमाऽद्वैतभावस्था सर्वप्रसरगोचरा।

ख. अपरा पूजा : द्वितीया चक्रपूजा च सदा निष्पाद्यते मया।

ग. परापरा पूजा : एवं ज्ञानमये देवि ! तृतीया तु परापरा।

तीनों पूजाओं में उत्तम पूजा कौन है? इस विषय में कहा गया है कि—

उत्तमा सा परा ज्ञेया विधानं शृणु साम्प्रतम्।

सङ्केतपद्धति की दृष्टि—

न पूजा बाह्यपुष्पादिद्रव्यैर्या प्रथिताऽनिशम्।
स्वे महिम्नद्वये धाम्नि सा पूजा या परा स्थिता।।

अपनी महिमा से महिमान्वित अद्वयधाम में जो पूजा निष्पादित हो, वही यथार्थ पूजा होती है। पुष्पादिक बाह्य पदार्थानुष्ठित पूजा यथार्थ पूजा नहीं है। इसीलिये कहा गया है—

न पूजा बाह्यपुष्पादिद्रव्यैर्या प्रथितानिशम्।

यह परा पूजा सर्वोत्तम क्यों है? इस प्रश्न के समाधान में योगी अमृतानन्द अपनी दीपिका में कहते हैं कि इसके परत्व का कारण है इसका 'परमशिवाद्वैतप्रथात्मकत्व'। वे कहते भी हैं—

क. प्रथमा पूजा परा उत्तमा उच्यते।

ख. परमशिवाद्वैतप्रथात्मकत्वादितरपूजाभ्यामुत्तमत्वम्।

ग. अपरा द्वितीया पूजा भेदप्रथामात्रसारा बाह्यचक्रावरणार्चनारूपा अधमा।

घ. तृतीया पूजा परापरा। बाह्यस्यान्तरे धाम्न्यद्वये चिल्लयभावनामयी मध्यमा परापरात्मकत्वात्।

ङ. चक्रपूजा अपरा पूजा चतुरस्रादिबैन्दवान्तश्रीचक्रसदनावरणदेवतार्चनमपरा पूजा इत्यर्थः।

च. क्या अपरा पूजा त्याज्य है? नहीं; क्योंकि 'अभेदप्रतीत्यर्थमपरा पूजा सदा सर्वैरपि ज्ञानिभिः कार्या:'।

छ. अपरा के बाद परापरा पूजा निष्पाद्य है और उसका स्वरूप निम्नांकित है— 'एवं ज्ञानमये पूर्वोक्ताद्वैतभावनामये धाम्नि बाह्यस्य पृथगात्मकावरणार्चनारूपस्य कर्मणो ज्ञानमयता-विश्रान्तिस्तृतीया परापरा पूजा'। कहा भी गया है—

प्रकाशैकघने धाम्नि विकल्पप्रसरादिकान्।
निक्षिपेत्स्वार्चनद्वारा वह्नाविव घृताहुतीः।।

ज. द्वैतविलयाभ्यासदशायां परापरेति पूजा। (भास्करराय)

झ. सा प्रथमा पूजा परानाम्नी—

यत्र यत्र मनो याति बाह्ये वाऽऽभ्यन्तरे प्रिये।
तत्र तत्राक्षमार्गेण चैतन्यं व्यज्यते प्रभो।।

ञ. ज्ञानमये चिदेकस्वभावे ब्रह्मणि स्वस्यात्मनः प्रथा अभेदेन प्रस्फुरणं, सा तृतीया।

भास्करराय सेतुबन्ध में पूजा के तीन भेद करते हैं— उत्तमा (परा), मध्यमा (परापरा) एवं अधमा (अपरा) : परैवोत्तमा ज्ञेया। परापरा तु मध्यमा। अपरा त्वधमा। सारांश यह कि—

प्रथमाऽद्वैतभावस्था सर्वप्रचरगोचरा।
द्वितीया चक्रपूजा च सदा निष्पाद्यते मया।।

एवं ज्ञानमये देवि तृतीया तु परापरा।
उत्तमा सा परा ज्ञेया विधानं शृणु साम्प्रतम्।।

परा पूजा का स्वरूप— योगिनीहृदय में परा पूजा का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

महापद्मवनान्तस्थे वाग्भवे गुरुपादुकाम्।
आप्यायितजगद्रूपां परमामृतवर्षिणीम्।।

सञ्चिन्त्य परमाऽद्वैतभावनामृतघूर्णितः।
दहरान्तरसंसर्पन्नादालोकनतत्परः ।।

विकल्परूपसङ्कल्पविमुखोऽन्तमुखः सदा।
चित्कलोल्लासदलितसङ्कोचस्त्वतिसुन्दरः ।।

इन्द्रियप्रीणनद्रव्यैर्विहितस्वात्मपूजनः ।
न्यासं निर्वर्तयेद्देहे षोढा न्यासपुरस्सरम्।।

एवं योऽन्यस्तगात्रस्तु स पूज्यः सर्वयोगिभिः।
स एव पूज्यः सर्वेषां स स्वयं परमेश्वरः।।

एवं षोढा पुरः कृत्वा श्रीचक्रन्यासमाचरेत्।।

अमृतानन्द योगी कहते हैं कि 'विज्ञानभैरव की पूर्वोक्त दृष्टि के अनुसार श्रोत्र आदि इन्द्रियों के शब्दादि विषयों के अनुभव से जनित आनन्द का महानन्द के साथ समरसीकरण ही परा पूजा है— 'श्रोत्रादीन्द्रियविषयशब्दाद्यानुभवजनितेन महानन्देन समरसीकरणं परा पूजा इत्यर्थः।

भास्करराय भी सेतुबन्ध में यही दृष्टि प्रस्तुत करते हैं— 'इन्द्रियाणां प्रीतिजनकानि गन्धादीनि द्रवाणि तैरात्मरूपाया देवतायाः पूजनं विदध्यात्। तदुक्तं आम्नायरहस्ये—

इंन्द्रियद्वारसंग्राह्यैर्गन्धाद्यैरात्मदेवता ।
स्वाभावेन समाराध्य ज्ञातुः सोऽयं महामखः।।

योगिनीहृदयकार का अभिमत— परा पूजा को व्यापिका एवं समना के मध्य भाग में सहस्रदल कमल अत्यधिक दलसमूहों के कारण 'महापद्मवन' कहा गया है। ब्रह्म-रन्ध्र के नीचे अधोमुखस्थित सहस्र दलों से मण्डित जो सहस्रदल पद्म है, वही यहाँ 'वन' कहा गया है। स्वच्छन्दतन्त्र में भी इसे 'महापद्मवन' कहा गया है—

महापद्मवनं चैव समना तस्य चोपरि।
तस्यान्तःकर्णिकामध्ये तत्स्थे वाग्भवरूपिणी।।

उस सहस्रदल कमल को कर्णिका के मध्य में वाग्भवात्मक त्रिकोण स्थित है। उस त्रिकोण पर विश्वगुरु परमशिव की पादुका स्थित है— 'विश्वगुरोः परमशिवस्य पादुका' (अमृतानन्द)।

योगिनीहृदयप्रतिपादित परोपासना का स्वरूप— यहीं स्वनाथात्मिका अकुलामृत कुण्डलिनी भी स्थित है, जो कि परमामृत की वर्षा करती रहती है। उस अमृताप्लावित परमामृतवर्षिणी एवं जगद्रूपा अकुलामृत कुण्डलिनी के साथ साधक तादात्म्य एवं अद्वैत की भावना करे, दहराकाश में झंकृत नाद का आलोकन (विभावन) करे अर्थात् उनका श्रवण करे। वह विकल्पोत्पादक वार्त्ता कभी न करते हुये अन्तर्मुखी वृत्ति धारण करे, संकुचित चित्कला के उल्लास को प्रस्फुट करे एवं इन्द्रियों को आनन्द देने वाले द्रव्यों से आत्मपूजन करे तथा परमशिव के साथ अद्वैतभावना रखकर 'मैं भी शिव हूँ' इस प्रकार की समावेश दशा को प्राप्त करके शक्ति को अपनी आत्मा के रूप में विभावित करके परमाद्वैतभावनामृत पीकर आनन्दमग्न रहे।

उपासना द्विविधात्मिका है— साञ्जन और निरञ्जन। साञ्जन उपासना सांसारिक ऐश्वर्यों की प्राप्ति हेतु की जाती है; जबकि निरञ्जन उपासना निष्प्रयोजन, निष्काम एवं महत्तर उद्देश्यों के लिये निष्पादित की जाती है और उससे सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्व, शिवस्वरूपता की प्राप्ति होती है। शिवत्व की प्राप्ति ही पूर्ण ख्याति है, न कि सांसारिक तुच्छ एषणाओं की पूर्ति से प्राप्त यश-सम्मान आदि। कहा भी है—

ख्यातिमपूर्णां पूर्णख्यातिं समावेशदार्ढ्ययतः क्षपय।
सृज भुवनानि यथेच्छं स्थापय हर तिरय भासय च।।

'शिवोऽहं' समावेश की दृढ़ता से सिद्धिस्वरूप अपूर्णता का त्याग करके समस्त सिद्धियों की समष्टिरूप शिवत्व से सम्पन्न होकर सृजन, पालन आदि शक्तियों की प्राप्ति करने का चरम उद्देश्य रखना चाहिये। शाक्त समावेश से शाम्भव समावेश में प्रवेश करना चाहिये। यही सूक्ष्म से पर में प्रवेश है।

इस स्तर पर साधक पाप-पुण्य, कृत्य-अकृत्य, संकल्प-विकल्प, धर्म-अधर्मरूप हवि का मनरूप स्रुवा से सुषुम्ना मार्ग से स्वात्मरूप प्रदीप्त वह्नि में हवन करता रहता

है और अन्तर में चिरन्तन प्रज्ज्वलित ज्ञानरूपी संविदग्नि के रश्मियों की विकासभूमि में शिव से पृथ्वीपर्यन्त समस्त विश्वरूप हवि की आहुति देता रहता है—

सर्वभावभयभावमण्डलं विश्वभावमयशक्तिबर्हिषि।
जुह्वतो मम समोऽस्ति कोऽपरो विश्वमेधमययज्ञयाजिनः।।

धर्माधर्महविर्दीप्ते स्वात्मानौ मनसा स्रुचौ।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिं जुहोम्यहम्।।

अन्तर्निरन्तरनिरिन्धनमेधमाने मोहान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ।
कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकासभूमौ विश्वं जुहोमि वसुधादि शिवावसानम्।।

इसमें आत्मनिष्ठ अहन्ता में विश्वनिष्ठ इदन्ता का समावेश करते हुये महायज्ञ की पूर्णाहुति निष्पादित की जाती है। यह सोचा जाता है कि मैं अनादि वासनारूप इन्धन से प्रज्ज्वलित चिदग्निकुण्ड में हवि डाल रहा हूँ और मैं प्राण-बुद्धि-धर्म से अधिकृत जाग्रतादि अवस्थात्रय में मन-वचन एवं कर्म से हाथ-पैर-इन्द्रियों द्वारा स्मृत समस्त कर्मों को ब्रह्मार्पित करके स्वयं को भी उस तत्त्व में होम कर रहा हूँ— 'अहमेवाहं मा जुहोमि स्वाहा। इतः पूर्वं प्राण-बुद्धि-धर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा'।

परम सत्ता में अपनी व्यष्टि सत्ता का समर्पणरूप महायज्ञ स्वात्मचिन्तन में एवं चित् चमत्कार में परिणत हो जाता है। इस स्थिति में साधक के समस्त बाह्य कर्मानुष्ठान समाप्त हो जाते हैं। अन्दर एवं बाहर सर्वत्र चैतन्य आत्मतत्त्व ही प्रसृत दृष्टिगत होता है। इस स्थिति में ध्यान, जप, पूजा, स्तोत्रपाठ आदि विडम्बनामात्र बन जाते हैं। इस समय सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्व, पूर्णाहन्ता एवं शिवोऽहं की अनुभूति स्फुरित होती रहती है— 'अद्वयबोध-विमर्शसुरतः सन्नद्य शिवोऽस्मि शिवोऽस्मि शिवोऽस्मि'।

ब्राह्मी स्थिति के दृढ़ हो जाने पर ध्यान-पूजा-कथा आदि विडम्बनामात्र लगते हैं—

यत्र यत्र मिलिता मरीचयस्तत्र तत्र विभुरेव जृम्भते।
सत्सतां हि नियमावलम्बिनां ध्यानपूजाकथाविडम्बना।।

शाक्त परम्परा में भगवती की पूजा के स्थान

त्रिकोण मूलाधार : कौलमार्गी . समयमार्गी : चतुष्कोण सहस्रार

आचार्य गौड़पाद सुभगोदय स्तुति में कहते हैं—

त्रिकोणं ते कौलाः कुलगृहमिति प्राहुरपरे
चतुष्कोणं प्राहुः समयिन इमे बैन्दवमिति।
सुधासिन्धै तस्मिन्सुरमणिगृहे सूर्यशशिनो-
रगम्ये रश्मीनां समयसहिते त्वं विहरसे।।

ब्रह्मसूत्र वेदान्तदर्शन के 'जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेन्नेपासा त्रैविध्यादाश्रितत्वादिह तद्योगात्' (१.१.३१) की व्याख्या में कहा गया है कि 'सा चोपासना मानसक्रियाविशेषरूपा'।

भक्ति और उपासना— कुछ विद्वानों का यह कथन है कि देवताविषयक अनुराग ही उपासना है, किन्तु यह मत उपपन्न नहीं है; क्योंकि शाण्डिल्य के भक्तिसूत्र में परमात्मा में परानुरक्ति को भक्ति कहा गया है— 'अथातो भक्तिजिज्ञासा। सा परानुरक्तिरीश्वरे' (१.१-२)। 'भक्तिमान उपासीत' इन वाक्यों से तो भक्ति एवं उपासना में भेद का निर्देश किया गया है; अत: अनुराग को ही 'भक्ति' कहना समीचीन है। उपासना क्या है? अनुरागव्यावृत्त क्रिया ही 'उपासना' है और यह उपासना द्विविधात्मिका है— मन्त्र-जपरूपा उपासना और यन्त्र-पूजारूपा उपासना।

धातुपाठ से गृहीत अर्थानुसन्धान से जप क्रिया मानस क्रिया ही है। पूजा भी ध्यानादि रूप में विमर्शित होने पर मानस क्रियारूपा ही है। पूजा में उपचारसमर्पण में जो यह कल्पना की जाती है कि यह मेरा नहीं, भगवती का है 'भगवती मेरे जप को ग्रहण करें' इत्याकारक जप-समर्पण आदि संकल्परूपात्मक होने के कारण मानसिक ही हैं। इस तथ्य को सेतुबन्ध में प्रतिपादित भी किया गया है। उपासना यद्यपि मानस व्यापारमात्र है, तथापि बहिर्याग में बाह्य पदार्थों को पूजोपादानों के रूप में ग्रहण किया ही जाता है। यह उपचार पञ्चोपचार, षोडशोपचार, चतु:षष्टि उपचार आदि के रूप में प्रसिद्ध है।

अन्तर्याग तो मोक्ष प्रदान करता ही है, किन्तु बहिर्याग भी अपने तात्त्विक अर्थ में अन्तर्यागात्मक होने के कारण मोक्षप्रद है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना की एक विशेषता है और वह यह है कि यह निवृत्तिपरक, संन्यासात्मक, रागोन्मनमात्र नहीं है; प्रत्युत 'श्रीसुन्दरीसाधनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव'। बहिर्याग भोग तो प्रदान करता ही है, किन्तु यह मोक्षप्रद भी है।

आचार्य लक्ष्मीधर सौन्दर्यलहरी की टीका में कहते हैं—

क. देवयान एवं पितृयानस्वरूप इड़ा-पिङ्गला नाड़ियों के माध्यम से सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों अहर्निश सञ्चरण करते रहते हैं।

ख. चन्द्रमा वाम नाड़ी (इड़ा नाड़ी) के मार्ग से ७२ हजार नाड़ियों को अमृत से सिञ्चित करता है।

ग. सूर्य दक्षिण नाड़ी (पिङ्गला नाड़ी) के मार्ग से सञ्चरण करता हुआ उन उत्क्षिप्त अमृतबिन्दुओं का उपाहरण करता रहता है।

घ. जब चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों का आधारचक्र में समावेश होता है, तब अमावास्या तिथि का आविर्भाव होता है। इसी से कृष्णपक्ष की सभी तिथियों का आविर्भाव होता है।

ङ. अत: कुण्डलिनी शक्ति सूर्यकिरण के सम्पर्क से विलीन चन्द्रमण्डलमध्य से विगलित पीयूष से आपूरित आधारकुण्ड में सोती है। कुण्डलिनी की यह स्वापावस्था ही कृष्णपक्ष है।

च. जब योगी चन्द्रमा को उसके चन्द्रस्थान में एवं सूर्य को उसके अपने सूर्यस्थान

में वायु के द्वारा निरुद्ध कर देता है, तब चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों के अवरुद्ध होने के कारण अमृत-सेचन एवं अमृताहरण दोनों क्रियायें अवरुद्ध हो जाती हैं (चन्द्रमा का अमृतसेचन एवं सूर्य का अमृताहरण दोनों ही बन्द हो जाते हैं)।

छ. ऐसा होने पर वायु के द्वारा प्रेरित स्वाधिष्ठानाग्नि के द्वारा अमृतकुण्ड के शुष्क हो जाने पर भूखी कुण्डलिनी सोते से जागकर सर्प की भाँति फूत्कार करती हुई, ग्रन्थि-त्रय का भेदन करती हुई सहस्रदल कमल के मध्यवर्ती चन्द्रमण्डल को डसती है।

ज. कुण्डलिनी के द्वारा चन्द्रमा के डसे जाने पर चन्द्रप्रवाहित अमृतप्रवाह आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमण्डल को आप्लावित करता है और समस्त शरीर को अमृत से आप्लावित कर देता है।

झ. आज्ञाचक्र के ऊपर चन्द्रमा की पन्द्रह नित्या कलायें स्थित हैं। वे पन्द्रह नित्या कलायें अपने से नीचे स्थित विशुद्धि चक्र का आश्रय लेकर घूमती हैं (परिवर्तन करती हैं)।

महात्रिपुरसुन्दरी और आत्मा— सहस्रदल कमल के अन्तर में स्थित चन्द्रमण्डल ही बैन्दवस्थान है और उसकी कला चिन्मयी आनन्दरूपा आत्मा है। यही चिन्मयी आत्मा महात्रिपुरसुन्दरी है।

महात्रिपुरसुन्दरी सहस्रदल कमल में स्थित बैन्दवस्थान (चन्द्रमण्डल) की आनन्दात्मिका एवं आत्मस्वरूपा चित्कला है।

तिथियाँ और कलायें— चन्द्र की प्रथम कला का नाम है— प्रतिपदा। वह सूर्य-मण्डल से निकली है। वह कृष्णपक्ष में सूर्यमण्डल में प्रवेश कर जाती है। इसी प्रकार सूर्यमण्डल से निर्गता द्वितीया कला द्वितीया तिथि कही जाती है। कृष्णपक्ष में तो सूर्य-मण्डल में प्रविष्ट द्वितीया कला ही द्वितीया तिथि है। इसी प्रकार सभी तिथियों के उदय के विषय में समझना चाहिये।

जहाँ सूर्य-चन्द्रमा में पन्द्रह कलाओं का व्यवधान है, वह पौर्णमासी है।

पन्द्रहवीं कला में जहाँ सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों का अत्यन्त संयोग होता है, उसे अमावास्या कहते हैं।

कौलमत में तो चन्द्रकलात्मिका सोलह नित्याओं में से प्रतिदिन केवल एक का ही अनुष्ठान उचित है।

समयिमत में सभी नित्याओं का अनुष्ठान उचित है। पन्द्रह नित्यायें पन्द्रह तिथियों में अन्तर्भूत हैं; अत: षोडशी कला का तो पन्द्रहों तिथियों में अनुष्ठान होना चाहिये। नित्याषोडशिकार्णव में जो षोडश नित्याओं का प्रतिपादन किया गया है, वहाँ पन्द्रह तिथियाँ नित्याओं से तद्रूपता ग्रहण की हुई हैं। षोडशी व्यापिका है और अंग नित्या है। वहाँ प्रतिपदा को त्रिपुरसुन्दरी की कला के रूप में प्रस्तुत समझना चाहिये।

प्रतिपदा में त्रिपुरसुन्दरी कला, द्वितीया तिथि में कामेश्वरी कला, तृतीया तिथि में

भगमालिनी कला, चतुर्थी तिथि में नित्यक्लिन्ना कला, पञ्चमी तिथि में भेरुण्डा कला, षष्ठी तिथि में वह्निवासिनी कला, सप्तमी तिथि में महाविद्येश्वरी कला, अष्टमी तिथि में रौद्री कला, नवमी तिथि में त्वरिता कला, दशमी तिथि में कुलसुन्दरी कला, एकादशी तिथि में नीलपताका कला, द्वादशी तिथि में विजया कला, त्रयोदशी तिथि में सर्वमंगला कला, चतुर्दशी तिथि में ज्वाला कला एवं पञ्चदशी तिथि में मालिनी कला की स्थिति रहती है।

समस्त तिथियों में चिद्रूपा षोडशी कला की उपासना करनी चाहिये। आचार्य लक्ष्मीधर का कथन है कि प्रतिपदा तिथि में जिन त्रिपुरसुन्दरी की स्थिति की पुष्टि की गई है, वह चिद्रूपात्मिका नहीं है। चिद्रूपात्मिका मूल विद्या का अनुष्ठान भिन्न रूप में किया जाना चाहिये। आचार्य लक्ष्मीधर ने कहा है कि नित्याषोडशिकार्णव में पठित एकादशी तिथि नित्या नहीं है। यहाँ दूतीनिष्ठा अष्टमी रौद्री कही गई है। यहाँ प्रथमा की महात्रिपुर-सुन्दरी अंगिनित्या है और वही चिद्रूपा नाम वाली षोडशी कला है। शेष १५ तिथियों में अवस्थित नित्यायें अंगनित्यायें हैं; अत: प्रतिपदा आदि तिथियों में समाराधना उचित ही है।

रतिरहस्य के चन्द्रकलाधिकार के प्रथम श्लोक में कहा गया है—

अङ्गुष्ठे पदगुल्फजानुजघने नाभौ च वक्षःस्तने
कक्षाकण्ठकपोलदन्तवसने नेत्रालिके मूर्धनि।
शुक्लाशुक्लविभागतो मृगदृशामङ्गेष्वनावस्थिति-
रूर्ध्वाधोगमनेन वामपदत: पक्षद्वये लक्षयेत्।।

उपर्युक्त तिथिक्रम से ही नारियों के शरीरांगों में काम का विशेष निवास होता है। नन्दिकेश्वरमत भी इसी की पुष्टि करता है— 'एकारौकारयुक्ता हरिहरजहरा: पञ्चबाणा: स्मरस्य'। ये ही स्मर के पाँच कुसुमबाण के बीज हैं।

गोणीपुत्रकमत में कहा गया है—

मूर्धोर:स्थलवामदक्षिणकरे वक्षोगुहोहोरुद्वये।
नाभीगुह्यललाटजाठरकटीपृष्ठेषु तिष्ठत्यसौ।।

कक्षा श्रोणिभुजेषु च प्रतिपदं प्रारभ्य कृष्णामथ।
श्वेताया: प्रभृतिक्रमेण मदनो मूर्धानमारोहति।
अङ्गेष्वेषु मृगीदृशां मनसिजप्रस्तावनापण्डिता।।

मात्रा: षोडश चिन्तयन्ति बहलज्योति: स्फुलिङ्गाकृती: ।।

तिथि एवं नित्याओं के क्रम से उपासना करने पर कुण्डलिनी-प्रबोधकों, त्रिपुरोपासकों एवं दूतीयागानुष्ठाननिरत लोगों कोभोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त हो जाते हैं— 'भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव'।[१]

▼

१. नित्याषोडशिकार्णव की भूमिका : व्रजवल्लभ द्विवेदी।

अष्टात्रिंश अध्याय

जप और ध्यान तथा समयमत

मन्त्र और उसकी जपस्वरूप उपासना अनुपदात्मक है। समस्त धर्मों में जप एवं ध्यान के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। अर्थानुसन्धान के विना भी मन्त्र-जप का अनुष्ठान अखण्ड रूप से चलता आ रहा है। पतञ्जलि ने योगसूत्र में 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' (१.२८) कहकर अर्थभावनपूर्वक जप करने को ही विहित माना है। योगिनीहृदय में यह अर्थानुसन्धान (अर्थभावन) षड्विधात्मक कहा गया है। आचार्य भास्करराय ने तो वरिवस्यारहस्यम् नामक ग्रन्थ के द्वितीय अंश में मन्त्रों के पन्द्रह प्रकार के अर्थों का विवेचन किया हैं।

आचार्य भास्करराय का मत— वरिवस्यारहस्यम् में मन्त्र एवं उसके अर्थभावन को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है और कहा गया है कि कृष्णपक्ष की रात्रियों का आधार चक्र में अवस्थान है; क्योंकि ये अमावास्यात्मक हैं— 'एतासां कृष्णपक्षरात्रीणां आधारचक्रे एव अमावास्यात्मकतया अवस्थानात्'। सामयिकों का मत इससे पृथक् है।

सामयिक लोग शुक्ल पक्ष की रात्रियों का अनुष्ठानार्थ, सपर्यार्थ एवं उपासनार्थ ग्रहण करते हैं; क्योंकि शुक्ल पक्ष की रात्रियों में ही चान्द्रकला का सञ्चार होता है और इन्हीं रात्रियों में कुण्डलिनी-प्रबोधहेतु साधना की जाती है।

शुक्ल पक्ष की रात्रियों में ही कलायें होती हैं; अतः कलात्व मात्र शुक्ल पक्ष की रात्रियों में ही मानना चाहिये— 'शुक्लपक्षरात्रीणामेव कलात्वम्'। इसीलिये कहा गया है कि कुण्डलिनी का प्रबोधन रात्रि में ही करणीय है, दिन में नहीं— 'अतएव कुण्डलिनीप्रबोधो रात्रावेव न दिवा'।

शुक्ल पक्ष के दिनों के नाम— शुक्ल पक्ष के दिनों के नाम हैं— 'संज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं जानदभिजानत्। सङ्कल्पमानं प्रकल्पमानमुपकल्पमानमुपक्लृप्तम्। क्लृप्तम् श्रयो वसीय आयत् सम्भूतं भूतम्'।

कृष्ण पक्ष के दिनों के नाम— कृष्ण पक्ष में होने वाले दिनों के नाम हैं— 'प्रस्तुतं विष्टुतं संस्तुतं कल्याणं विश्वरूपं शुक्रममृतं तेजस्वितेजःसमिद्धम्। अरुणं भानुमन्मरीचि-मदभितपत्तपस्वत्'।

शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष के अहोरात्र के नाम का ज्ञान होने की फलश्रुति इस प्रकार है— 'स यो ह वा एता मधुवृषांश्च वेद। कुर्वन्ति हास्यैता अग्नौ मधु। नास्येष्टापूर्तं धयन्ति।'[१]

जो भी व्यक्ति इन मधुकृत रात्रियों एवं मधुवृष दिवसों को जानता है, उसके लिये ये अग्नि में (बैन्दवस्थान में) मधु (सुधासिन्धु) का निर्माण करती हैं। ऐसे ज्ञाताओं

---

१. तैत्तिरीय ब्राह्मण (३.१०.१०)

की इष्टापूर्त (वाञ्छितार्थपूर्ति) को ये रिक्त नहीं करतीं (न धयन्ति = न रिक्तीकुर्वन्ति)। जो इन्हें नहीं जानता, उसका अनिष्ट होता है— 'अथ यो न वेद। न हास्यैता अग्नौ मधु कुर्वन्ति। धयन्त्यस्येष्टपूर्वम्' (तैत्तिरीय ब्राह्मण-३.१०.१०)।

सारांश यह कि चन्द्रकलाविद्यानुष्ठान = मातृकामन्त्रैक्य (चन्द्रकलाविद्यानुष्ठानं नाम मातृकामन्त्रयोरैक्यम्'। मन्त्र एवं चक्र का ऐक्य, चक्र एवं नित्याओं का ऐक्य तथा नित्याओं एवं प्रतिपदादिक कलाओं का ऐक्य ही है— समयिमततत्त्व। इनके अनुष्ठान में शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष का तथा रात्रि एवं दिन का विवेक आवश्यक है।

दर्शादि पौर्णमास्यन्त कलाओं में ही चतुर्विध ऐक्यानुसन्धान करणीय है, न कि अमावास्या में। अमावास्या = कृष्ण पक्ष। अत: अमावास्या की ही भाँति शुक्ल पक्ष के दिनों में ही अनुष्ठान वर्णित है। मात्र अमावास्या को ही उपासना का निषेध किया गया है, न कि कि सम्पूर्ण कृष्ण पक्ष का। इसलिये सभी रात्रियों में (अमावास्या तिथि के अतिरिक्त) उपासना विधेय है, विहित है; किन्तु सभी दिनों में नहीं।

सूर्य तिथ्यात्मक है। चन्द्रकला विद्या सादाख्य तत्त्वात्मिका है। इस चन्द्रकला विद्या को ही श्रीविद्या भी कहा गया है— 'सादाख्यतत्त्वात्मिकाया: चन्द्रकलाविद्याया: श्रीविद्याऽपरनामधेया: पञ्चदशतिथ्यात्मिकाया:'। चन्द्रकला विद्या = श्रीविद्या = पञ्चदशतिथ्यात्मिका।

'जनको ह वैदेह: अहोरात्रै: समाजगाम' (तैत्तिरीय ब्राह्मण-३.१०.९) अर्थात् जनक (उत्पादक) = श्रीविद्या के ऋषि। विदेह ही वैदेह है। वैदेह = मन्मथ। अहोरात्रै: = अहोरात्रात्मकै: पञ्चदशाक्षरीमन्त्रवर्णै: दर्शादिपूर्णिमान्तकलात्मकै: समाजगाम, तं मन्त्रं आहृतवान्। जो मन्त्रों को आहृत करता है, उसे ही मन्त्र का ऋषि कहते हैं। आचार्य लक्ष्मीधर ने कहा भी है— 'यस्तु मन्त्रमाहरति स ऋषिरित्युच्यते'।[१]

कामदेव त्रिपुरा के उपासक हैं। उनका सम्प्रदाय भी है। कामराज विद्या, कादि विद्या से मन्मथ का अभिन्न सम्बन्ध है। वेदों में कहा भी गया है— 'स तं मणिमविन्दत्' (तै० ब्रा०-११.१) अर्थात् उस अनङ्ग मन्मथ ने उस प्रख्यात विद्यात्मक रत्न (मणि) को प्राप्त किया। 'अचेता यश्च चेतन:' यह अनङ्ग 'अनङ्ग' (अन्धा) होकर भी देखता है— 'अन्धो मणिमविन्दत्' (तै० ब्रा०-११.१)। इसी परचित्कलारूपा विद्या त्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र का ऋषि मन्मथ है। 'सोऽग्रीव: प्रत्यमुञ्चत्' (तै० आ०-११.१) अर्थात् अनङ्ग होने के कारण ग्रीवारहित उस अनङ्ग ने मणि (विद्यात्मक रत्न) के सम्पादन के फल को धारण किया (प्रत्यामोचनं कृतवान् = प्रत्यमुञ्चत)। 'सोऽजिह्वो असश्चत' (तै० आ०-१.११) वह अनङ्ग होने के कारण यद्यपि जिह्वारहित है, तथापि उसने अजिह्व होकर भी आस्वाद लिया (असश्चत = अचोषत = आस्वादितवान्)।

१. पुत्रो निर्ऋत्या वैदेह:। निर्ऋति (लक्ष्मी) का पुत्र। वैदेह = मन्मथ। अचेता यश्च चेतन: (ते० आ०-११.१)। अनङ्ग होने के कारण चेतोरहित; किन्तु सर्वभूतान्तर्यामित्व के कारण चेतन।

इन ऋचाओं का अर्थ निम्नानुसार है—

१. कामदेव ने इस श्रीविद्यारूप विद्यारत्न को अर्थात् पन्द्रह वर्णों वाले षोडशात्मक विद्यारत्न को नाना स्मृतियों, नाना पुराणों में एवं नाना अन्य ज्ञान की शाखाओं (विभागों) में विप्रकीर्ण देखा।

२. तदनन्तर उन्होंने विप्रकीर्ण इस पञ्चदशाक्षरी मन्त्र को देखकर उसका सीवन कर दिया।

३. फिर उन्होंने इन पन्द्रह वर्णों को तीन भागों में विभाजित कर तथा इसे खण्डत्रय में विभक्त करके त्रिपुरसुन्दरी आदि सोलह नित्याओं को उसमें अन्तर्भूत करके प्रतिपदा आदि सोलह तिथियों को भी उसमें अन्तर्भूत करके पञ्चदशवर्णात्मक मन्त्र को खण्डत्रय में विभक्त करके और फिर वहाँ सोम-सूर्य-अनिल, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, सत्त्व-रज-तम आदि समस्त तत्त्वों को व्यवस्था में ग्रथित करके जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्थाओं तथा सृष्टि-स्थिति-लय के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत करके श्रीविद्यात्मक चतुर्थ खण्ड में पन्द्रह कलाओं को अन्तर्भूत करके भुवनेश्वरी आदि नव योगिनी विद्याओं को त्रिक-त्रिक में विभाजित करके उन्हें एक-एक ह्रींकार में अन्तर्भूत करके सर्वभूतात्मक, सर्वमन्त्रात्मक, सर्वतत्त्वात्मक, सर्वावस्थात्मक, सर्वदेवात्मक, सर्ववेदार्थात्मक, सर्वशब्दात्मक, सर्वशक्त्यात्मक, त्रिगुणात्मक, त्रिखण्डात्मक, त्रिगुणातीत, सादाख्यापरपर्यायात्मक, षड्विंशशिवशक्तिसम्पुटपादात्मक स्वीकार करके पन्द्रह वर्णों में इस मूल विद्या को सी दिया। 'सोऽनङ्गुलिरावयत्' अंगुली से हीन होकर भी उस अनङ्ग, अग्रीव, अजिह्व, अनङ्गुलि, वैदेह, अचेता, चेतन, जनक, मन्मथ ने इस पञ्चदशाक्षरी मन्त्र को सी दिया (आवयत् = असीव्यत्)।

४. तदनन्तर उन्होंने उस स्यूत मन्त्रराज को अपने गले में धारण कर लिया (सोऽग्रीवः प्रत्यमुञ्चत्। प्रत्यमुञ्चत् = धृतवान्) अर्थात् ध्यानयोग से उसकी पूजा की।

५. तदनन्तर उन्होंने चान्द्र कला के अमृत का आस्वाद ग्रहण किया (सोऽजिह्वो असतश्चत। असतश्चत = आस्वादं कृतवान्)।

६. 'सः मन्मथः ऋषिः अस्य मन्त्रस्य' इस पञ्चदशाक्षरी मन्त्र के ये मन्मथ ही ऋषि हैं।

७. तैत्तिरीय आरण्यक (१.११) में कहा गया है कि 'नैतमृषिं विदित्वा नगरं प्रविशेत्'। इस ऋषि (श्रीविद्या के ऋषि कामदेव) को जानकर श्रीचक्रात्मक नगर में प्रवेश नहीं कर जाना चाहिये अर्थात् ऋषिज्ञान हो जाने के बाद श्रीचक्र की पूजा प्रारम्भ नहीं कर देनी चाहिये; क्योंकि इस उपासना में बाह्य पूजा निषिद्ध है।

८. बाह्य पूजा में ही ऋषि-छन्द आदि का ज्ञान आवश्यक होता है; आन्तर पूजा में नहीं; क्योंकि आन्तर पूजा तादात्म्यानुसन्धानात्मिका होती है। अतः उसमें ऋषि आदि का ज्ञान आवश्यक नहीं होता— 'बाह्यपूजां न कुर्यादिति निषेधविधिः। बाह्यपूजायामेव ऋषिच्छन्दःप्रभृतिज्ञानपूर्वकत्वम्। आन्तरपूजायां तादात्म्यानुसन्धानात्मिकायां ऋष्यादिज्ञानं नास्त्येव। उपयोगस्तु दूरत एव। अतो वस्तुसिद्धऋष्यादिपर्युदासमुखेन श्रीचक्रस्य बाह्यपूजनं त्रैवर्णिकैः न कर्तव्यमिति नियम्यते। उपयोगस्तु दूरत एव' (लक्ष्मीधर)।

सनत्कुमारसंहिता में भी कहा गया है—

बाह्यपूजा न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभिः।
सा हि क्षुत्रफला नृणामैहिकार्थैकसाधनात्।।

बाह्यपूजारताः कौलाः क्षपणाश्च कपालिकाः।
दिगम्बराश्चेतिहासा वामकास्तन्त्रवादिनः।।

आन्तराराधनपरा वैदिका ब्रह्मवादिनः।
जीवन्मुक्ताश्चरन्येते त्रिषु लोकेषु सर्वदा।।

आधारचक्रपूजक कौल, योषित्त्रिकोणपूजक क्षपणक, कापालिक, दिगम्बर, भैरवयामल को प्रमाण मानने वाले ऐतिहासिक, वामक तान्त्रिक (वामकेश्वर तन्त्र को प्रमाण मानने वाले)— ये सभी वेदबाह्य होते हैं। आन्तर पूजारत तो मात्र ब्रह्मवादी होते हैं, जो कि शुभागमपञ्चक को तत्त्वतः जानते हैं। आन्तर पूजा का विधान करते हुये तैत्तिरीय आरण्यक (१.११) में भी कहा गया है कि 'यदि प्रविशेत्। मिथौ चरित्वा प्रविशेत्' अर्थात् यदि वेदों को प्रमाण मान कर आन्तर पूजा के अन्तर्जगत् में साधनार्थ प्रवेश करने व आकांक्षी ही हो तो एकान्त में (मिथौ = रहस्ये) जाकर (अवगत्य—चर गतिभक्षणयोः) आन्तर पूजा करनी चाहिये (प्रविशेत्)।

अथवा— मिथिनीभूत शिव (मिथौ) के मेलन को जानकर उसका रहस्यानुसन्धान करना चाहिये (प्रविशेत = अनुसन्दधीतेति); क्योंकि एकान्त में ही विद्या फलवती होती है— 'एकान्ते एव विद्या फलति'।

'तत्सम्भवस्य व्रतम्' (तैत्तिरीय आरण्यक)। सम्भव = मन्मथ। चित्त से उत्पन्न होने के कारण मन्मथ को 'सम्भव' कहा गया है। व्रत = माहात्म्य। तत् = उसका। अर्थात् ऐकात्म्यानुसन्धान के समय सहायान्तर ग्राह्य नहीं होता। आशय यह कि—

मिथुन (शिव-शक्ति) को सम्पुटीकृत करके साधक को आन्तर साधना में प्रवेश करना चाहिये। अथवा मन्मथोपदिष्ट मन्त्र के अनुष्ठाता को अपने अनुष्ठान को अत्यन्त गोपनीय रखना चाहिये; क्योंकि यह रहस्य (गोप्य) विद्या है।

सामयिकों का पूजाविधान समस्त बाह्योपकरणों को निषिद्ध एवं अनुपयोगी मानता है। आचार्य लक्ष्मीधर लक्ष्मीधरा में कहते हैं कि—

सामयिकों के लिये मन्त्रों का पुरश्चरण निषिद्ध है— 'समयिनां मन्त्रस्य पुरश्चरणं नास्ति'।

सामयिकों के लिए जप का भी कोई विधान नहीं है— 'जपो नास्ति'।

सामयिकों के लिए बाह्य होम का भी कोई विधान नहीं है— 'बाह्यहोमोऽपि नास्ति'।

सामयिकों के लिए बाह्य पूजाविधियाँ निषिद्ध हैं— 'बाह्यपूजाविधयो न सन्त्येव'।

सामयिकों के लिए हृत्कमल का अनुष्ठान ही सब कुछ है—'हृत्कमल एव सर्वं यावत् अनुष्ठेयम्'।

सामयिकों की पूजा-पद्धति इस प्रकार है—

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचनं
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्।।
(सौन्दर्यलहरी-२७)

अर्थात् हे भगवति ! आत्मार्पणदृशा जपः जल्पः सकलमपि शिल्पं मुद्राविरचनं, गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणम्, अशनादि आहुतिविधिः संवेशः प्रणामः अखिलं सुखं मे यद्विलसितं च तव सपर्यापर्यायः भवतु।

आचार्य शंकर सौन्दर्यलहरी में कहते हैं कि मैं जो कुछ भी कृत्य करता हूँ, वह सब शम्भु की आराधना के अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं—

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विविधोपभोगरचनानिद्रासमाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरोः
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्।।

अभिनवगुप्त कहते हैं कि हे जगदम्बिके ! मेरे जीवन में मेरे समय का क्षुद्र से क्षुद्र भी कोई ऐसा काल नहीं रह गया है, जिसमें कि तुम्हारी स्तुति, जप, पूजा या ध्यान न हो—

स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता न खलु काचन कालकलास्ति मे।

षोडश नित्यायें षोडश तिथियों के रूप में भी स्थित हैं। ये श्रीचक्र में भी अङ्ग के रूप में स्थित हैं। ये नित्यायें निम्नवत् हैं—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नित्याषोडशकं तव।
न कस्यचिन्मयाऽख्यातं सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।।

तत्रादौ प्रथमा नित्या महात्रिपुरसुन्दरी।
ततः कामेश्वरी नित्या नित्या च भगमालिनी।।

नित्या क्लिन्ना तथा चैव भेरुण्डा वह्निवासिनी।
ज्वालामालिनि चिद्रूपाः एता नित्यास्तु षोडश।।

प्रतिपत्प्रभृतौ देव्याः पौर्णमास्यन्तमर्चयेत्।
एकादिवृद्ध्या हान्या च दर्शान्तं देविविग्रहम्।।

सनन्दनसंहिता में ऋषि सनन्दन ने ऋषियों से कहा है कि ये षोडश नित्यायें चन्द्रकला, चक्रविद्या की अङ्ग हैं। ये नित्यायें स्वरात्मक हैं, पञ्चदशाक्षरी मन्त्रानुगत हैं

और जीवकलारूपा हैं। ये बैन्दवस्थान में स्थापित हैं और उसी में अन्तर्भूत हैं।

अवशिष्ट यकारादिक नव वर्ण दो आवृत्तियों के साथ मन्वश्र में और शेष १४ कोणों में अन्तर्भूत हैं। अवशिष्ट वर्णचतुष्टय शिवचक्रचतुष्टय में अन्तर्भूत है। यही है— कैलास-प्रस्तार। इस प्रकार नित्याओं का चन्द्रविद्या के अङ्ग के रूप में प्रतिपादन किया गया है। नित्यायें तिथिरूपात्मिका हैं।

षोडश नित्याओं के प्रकृतिभूत अवयव ककारादि वर्ण हैं। ये षोडश नित्यायें शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ करके पौर्णमासी की अन्तिम तिथि तक स्थित हैं; अत: ये तिथ्यात्मक हैं। ये कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि से आरम्भ करके अमावास्य तिथि तक तिथियों के रूप में वर्तमान रहती हैं। इन्हें चान्द्रकला के नाम से भी जाना जाता है। चान्द्र कला प्रतिपदा आदि तिथियों के रूप में प्रसिद्ध हैं। जैसा कि ज्योतिषशास्त्र में कहा भी गया है—

प्रतिपन्नाम विज्ञेया चन्द्रस्य प्रथमा कला।
द्वितीयाद्या: द्वितीयाद्या: पक्षयो: शुक्लकृष्णयो:।।

अर्थात् चन्द्रमा की प्रथम कला का नाम 'प्रतिपदा' है। वही कलात्मिका प्रतिपदा सूर्यमण्डल से आविर्भूत होती है और कृष्णपक्ष में सूर्यमण्डल में प्रविष्ट हो जाती है। इसी प्रकार शुक्ल पक्ष में सूर्यमण्डल से निकलकर द्वितीया कला 'द्वितीया' तिथि बन जाती है। कृष्ण पक्ष में सूर्यमण्डल में प्रविष्टा द्वितीया कला द्वितीया तिथि बन जाती है। इसी प्रकार सर्वत्र ऊहनीय है। निष्कर्ष यह कि जहाँ सूर्य-चन्द्र दोनों में पन्द्रह कलाओं का व्यवधान है, वहाँ पौर्णमासी है और जहाँ पञ्चदशी कला में सूर्य-चन्द्र दोनों का अत्यन्त संयोग है, वहाँ अमावास्या है। इसलिये कौलमत में चन्द्रकलात्मिका षोडश नित्याओं का प्रतिदिन एक-एक का अनुष्ठान किया जाता है; किन्तु समयिमत में एक साथ सभी कलाओं का अनुष्ठान किया जाता है। षोडशी कला का पन्द्रहों तिथियों में अनुष्ठान सिद्ध होता है, क्योंकि यही १५हों नित्याओं का अन्तर्भाव है। यही सम्प्रदायक्रम है और दुर्विज्ञेय है।

१. प्रतिपदा को 'त्रिपुरसुन्दरी कला' का ध्यान करना चाहिये।
२. द्वितीया तिथि को 'कामेश्वरी कला' का ध्यान करना चाहिये।
३. तृतीया तिथि को 'भगमालिनी कला' का ध्यान करना चाहिये।
४. चतुर्थी तिथि को 'नित्यक्लिन्ना कला' का ध्यान करना चाहिये।
५. पञ्चमी तिथि को 'भेरुण्डा कला' का ध्यान करना चाहिये।
६. षष्ठी तिथि को 'वह्निवासिनी कला' का ध्यान करना चाहिये।
७. सप्तमी तिथि को 'महाविद्या-महावज्रेश्वरी कला' का ध्यान करना चाहिये।
८. अष्टमी तिथि को 'रौद्री कला' का ध्यान करना चाहिये।
९. नवमी तिथि को 'त्वरिता कला' का ध्यान करना चाहिये।

१०. दशमी तिथि को 'कुलसुन्दरी कला' का ध्यान करना चाहिये।
११. एकादशी तिथि को 'नीलपताका कला' का ध्यान करना चाहिये।
१२. द्वादशी तिथि को 'विजया कला' का ध्यान करना चाहिये।
१३. त्रयोदशी तिथि को 'सर्वमङ्गला कला' का ध्यान करना चाहिये।
१४. चतुर्दशी तिथि को 'ज्वाला कला' का ध्यान करना चाहिये।
१५. पञ्चदशी तिथि को 'मालिनी कला' का ध्यान करना चाहिये।

समस्त दिशाओं में चिद्रूपा षोडशी कला की उपासना की जानी चाहिये— 'सर्वासु तिथिषु चिद्रूपाख्या कला षोडशी उपास्या'।

१६. प्रतिपदा तिथि को जिस त्रिपुरसुन्दरी की वर्तमानता स्वीकार की जाती है, वह चिद्रूपात्मिका नहीं है; क्योंकि चिद्रूपात्मिका मूलविद्या भिन्न रूप में अनुष्ठित होती है।

१७. इन चन्द्रकलात्मिका षोडश नित्याओं का स्थान विशुद्धि चक्र एवं षोडशार है। वहाँ प्रागादि क्रम से षोडश नित्यायें उन कोणों में चक्कर लगाती हैं।

उसके नीचे स्थित द्वादशार चक्र में संवित्कमल में द्वादश सूर्यमण्डल प्रादक्षिण्य क्रम से चक्कर लगाते हैं। उन्हीं द्वादश सूर्यों का द्वादश मासों में अधिकार है।[1]

शक्ति के भेद— स्वच्छन्दतन्त्र के अनुसार निम्न सोलह भेद हैं—

१. अमृता	५. उमा	९. लृका	१३. ॐकारी
२. आकर्षिणी	६. ऊर्ध्वकेशिनी	१०. लृषा	१४. ओषधात्मा
३. इन्द्राणी	७. ऋद्धिदा	११. एकपदा	१५. दशाम्बिका
४. ईशानी	८. ऋषा	१२. ऐश्वर्या	१६. अक्षरा

चक्रों में श्रीविद्या की अनुस्यूतता—

१. मूलाधार चक्र में —	क ए	१०. रोधिनी —	
२. स्वाधिष्ठान चक्र में —	ई ल	११. नाद —	
३. मणिपूर चक्र में —	ह र ई	१२. नादान्त —	
४. अनाहत चक्र में —	ह स क	१३. शक्ति —	
५. विशुद्धिचक्र में —	ह ल	१४. व्यापिका —	
६. आज्ञा चक्र में —	स क ल	१५. समना —	
७. सहस्रार चक्र में —	ह्रीं	१६. उन्मनी —	
८. बिन्दु —		१७. महाबिन्दु —	
९. अर्धचन्द्र —			

१. सनत्कुमारसंहिता

प्रथम कूट

क	ए	तुर्य स्वर	ल	ह	रेफ	तुर्यस्वर
(ब्रह्म)	(भारती)	(ई)=विष्णु	(पृथ्वी)	(रुद्र)	(रुद्राणी)	(शान्ताम्बिकामिथुन)

प्रथम कूट में हल्लेखान्तर्गत कामकला

सपरार्धकला	बिन्दु	बिन्दुद्वय	सपराद्ध	
(तुरीय बिन्दु)	(मुख)	(कुच)	(योनि)	यही है वह्निकुण्डलिनी

द्वितीय कूट में वही सूर्यकुण्डली है एवं तृतीय कूट में वही सोमकुण्डलिनी है।

गुरु एवं देवता— शाक्तोपासना में गुरु का अत्यधिक महत्त्व है। भावनोपनिषद् का तो प्रथम सूत्र ही गुरुपरक है। वहाँ गुरु को शक्तिरूप कहा गया है— 'श्रीगुरुपरमकारणभूता शक्तिः'। कहा गया है कि गुरु की देह ही देवी की देह माननी चाहिये—

देव्या देहो यथा प्रोक्तो गुरुदेहस्तथैव च।
तत्प्रसादाच्च शिष्योऽपि तद्रूपः सम्प्रकाशते।।

वरिवस्यारहस्यम् (२.८२) के अनुसार गुरु और परमशिव में अभेद होता है—

परमशिवे निष्कलता तदभिन्नत्वं स्वदेशिकेन्द्रस्य ।

परदेवता, विद्या, चक्रराज, साधक एवं गुरु की एकता = कौलिकार्थ (भास्करराय)।

▼

एकोनचत्वारिंश अध्याय

भगवती त्रिपुरा की बहिर्यागात्मक उपासना

त्रिपुरामहोपनिषद् में भगवती की बहिर्यागात्मक पूजा का इस प्रकार विधान किया गया है—

क. परिस्रुतं झषमाजं पलञ्च भक्तानि योनीः सुपरिष्कृतानि।
निवेदयन्देवतायै महत्यै स्वात्मीकृत्य सुकृती सिद्धिमेति।।

(भास्करराय-प्रस्तुत पाठ)

(परिस्रुतं = मदिरा। झष = मत्स्य। नागरबेल। आजं = घी या अजा से सम्बद्ध फल या झषा = नागबला से उत्पन्न फल)।

ख. परस्रुतं झषमाजं फलं च भक्तानि योनीः सुपरिष्कृताश्च।
स्वात्मीकृते सुकृते सिद्धिमेति।।

(विष्णुतीर्थ-प्रस्तुत पाठ)

ग. परिस्रुतं झषमाजं पलं च भक्तानि योनिः सुपरिष्कृताश्च।
स्वात्मीकृते सुकृते सिद्धिमेति।।

(आड्यार लाइब्रेरी-संस्करण)

भगवती की स्थूलोपासना— साधक मदिरा, मत्स्य या नागरबेल एवं आज्य, पका चावल और योनियों को भली-भाँति स्वच्छ करके महादेवी को नैवेद्य के रूप में समर्पित करने एवं स्वकृत पुण्यों से सिद्धि प्राप्त करता है।

(परिस्रुत = मद्य। झष = मत्स्य। आज = बकरे का मांस, योनि = नारी की गुप्त इन्द्रिय आदि निषिद्ध एवं निन्द्य नामों को स्थूल रूप में ग्रहण न करके उनके प्रतीकात्मक अर्थों को गृहीत करने के लिये संकेतित किया गया है। परिस्रुतं = चन्द्रोद्भव अमृत का भी वाचक हो सकता है। कुण्डलिनी के जागरणोपरान्त साधक को जो मदमत्त करने वाला आनन्दानुभव होता है, उसको भी यह द्योतित करने वाला हो सकता है। यहाँ प्रयुक्त 'झषा-माजफल, भक्तानि' एवं 'योनि' पाठ क्रमशः कर्मफल, प्रारब्ध भोग एवं कारणभूता वासनायें अथवा विश्वयोनि अज्ञान अथवा अविद्या का भी वाचक हो सकता है।— स्वामी विष्णुतीर्थ)।

आचार्य भास्करराय द्वारा इस मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार भी की गई है—

परिस्रुत (मद्य), उसके पश्चात् मांस, उसके पश्चात् मत्स्य और उसके पश्चात् दृष्टादृष्ट संस्कारों से परिष्कृत योनियाँ महादेवी की सेवा में निवेदित करके और उसके अनन्तर स्वयं भी उनका सेवन करके भक्त यज्ञ के फल (सिद्धि) को प्राप्त करता है।

झष = मत्स्य। मत्स्य से पहले मद्य, फिर पल (मांस), तत्पश्चात् मत्स्य और तब भक्तानि अर्थात् वटक, चणक आदि अनेक प्रकार के अन्न तथा अन्त में योनि। 'योनि' पद यहाँ कुण्डलोद्भव का उपलक्षण है। इस तरह प्रथमत: मद्य, फिर मांस, फिर मत्स्य, फिर अन्न, फिर योनि— यह क्रम प्राप्त होता है। पञ्चमकारों का भी यही क्रम है। इनके स्थूल रूप में न मिलने पर इनके प्रतिनिधिभूत अनुकल्पों से भी पूजा की जा सकती है। इसके अनुसार 'नित्यक्रमं प्रत्यवममृष्टि:' (कल्पसूत्र) के अनुसार पूर्व-पूर्व तत्त्वों का अभाव होने पर उत्तरोत्तर तत्त्व सुलभ होने पर भी उन मुख्य तत्त्वों का ग्रहण नहीं करना चाहिये। तथापि प्रथममात्र के अभाव में भी चतुर्थ की नैवेद्य के लिये आवश्यकता होने के कारण सम्प्रदाय में केवल उसके ग्रहण किये जाने का क्रम पाया जाता है। परदेवता के तर्पण भर के लिये यदि पर्याप्त मात्रा में मुख्य तत्त्व सुलभ हो तो अनुकल्प से यजन नहीं करना चाहिये। 'सुपरिष्कृतानि' अर्थात् लौकिक पाकादि रूप से और वैदिक शाप-मोचनादिक रूप से सुसंस्कृत। 'सुकृती' अर्थात् बहिर्याग करने वाला साधक। 'स्वात्मीकृत्य' अर्थात् स्वयं भी खाकर।

वाममार्गी एवं कौल— भास्करराय शाक्त मत की वामाचार शाखा के कट्टर अनुयायी थे। काशी के पण्डितों ने (ग्रन्थकार नारायण भट्ट के नेतृत्व में) भास्करराय को शास्त्रार्थ करके यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया था कि उन्होंने पूजन की वाम-मार्गीय पद्धति अपनाकर बहुत बड़ी भ्रान्ति की है। शास्त्रार्थ भी हुआ, किन्तु शास्त्रार्थ करने वाले समुदाय में से ही (भास्कर के विपक्ष में शास्त्रार्थ करने वालों के मध्य से ही) विद्वान् संन्यासी कुंकुमानन्द सरस्वती ने पण्डितों से कहा कि भास्करराय को हतप्रभ करने का समस्त प्रयास व्यर्थ हो जायगा; क्योंकि साक्षात् श्रीदेवी ही उनकी वाणी द्वारा उत्तर दे रही हैं, तथापि ग्रन्थकार भट्टनारायण को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने इस कथन की पुष्टि में प्रत्यक्ष प्रमाण माँगा। तब उक्त संन्यासी ने अपने प्रमाण की पुष्टि में वाराणसी के उसी घटनास्थल (यागस्थली) में स्थित पात्र का कुछ जल हाथ में लिया (जिसमें भास्करराय ने श्रीदेवी को स्नान कराया था) और उससे नारायणभट्ट की आँखों को अभिषिक्त कर दिया। नारायणभट्ट को दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई और उन्होंने देखा कि भास्करराय के स्कन्धों पर विराजमान एवं उनके मुख से बोलती हुई श्रीदेवी उनकी आँखों के सामने उपस्थित हैं। नारायण भट्ट यह दृश्य देखकर चुपचाप लौट गये।

भास्करराय वाममार्गी शाक्त थे। वे कौलसाधक थे। उन्होंने अपनी पत्नी को श्रीविद्या की दीक्षा दी थी। काशी का चक्रेशमन्दिर, रामेश्वर का वज्रेश्वरमन्दिर आदि उन्हीं के द्वारा निर्मित कराये गये थे। उन्हें षोढ़ा न्यास सिद्ध था।

त्रिपुरामहोपनिषद्, जिसको आधार बनाकर यहाँ भगवती की उपासना प्रस्तुत की जा रही है और जिसकी व्याख्या भास्करराय ने की है, उसमें सोलह ऋचायें हैं। अष्टम ऋचा अथर्ववेद की शौनक शाखा एवं ऋग्वेद की सांख्यायन शाखा से सम्बद्ध है। इस ऋचा

में पञ्चदशाक्षर मन्त्र उपदिष्ट है। नवम ऋचा में हादिमत के अनुसार पञ्चदशाक्षर मन्त्र का वाग्भव कूट समाविष्ट है। प्रथम ऋचा में बिन्दुचक्र एवं 'अ क थ' (अकथ त्रिकोण), द्वितीय ऋचा में त्रिकोणात्मक और अष्टत्रिकोणात्मक दो चक्र— इस प्रकार प्रारम्भिक पाँच ऋचाओं में भगवती त्रिपुरसुन्दरी के पूजनयन्त्र श्रीचक्र की विवेचना की गई है। छठी ऋचा में समस्त देवताओं को त्रिपुरास्वरूप बताया गया है। सातवीं ऋचा भगवती के दर्शन एवं चौदहवीं ऋचा नारी-नर (शक्ति-शिव) की महत्ता पर प्रकाश डालती है। पन्द्रहवीं ऋचा भगवती के निर्गुण ध्यान के महत्त्व एवं उसके विधान पर प्रकाश डालती है।

त्रिपुरा के सगुण ध्यान का यागरूप में आत्मीकरण— त्रिपुरामहोपनिषद् की तेरहवीं ऋचा में कहा गया है कि—

सृण्येव सितया विश्वचर्षणिः पाशेन प्रतिबध्नात्यभीकान्।
इषुभिः पञ्चभिर्धनुषा च विध्यत्यादिशक्तिररुणा विश्वजन्या।।

अर्थात् जो इस में लोभबुद्धि या भोगबुद्धि से प्रवेश करते हैं, उनको प्राणिमात्र का शुभाशुभ जाननेवाली वह विश्वजननी आदिशक्ति तीक्ष्ण श्वेत पाश से बाँधकर धनुष एवं पाँच बाणों से विद्ध करती है।

भावार्थ यह है कि तृष्णाहीन साधकों को, जो कि वैध बुद्धि से साधनारत रहते हैं, जगज्जननी महात्रिपुरसुन्दरी उन्नति प्रदान करती है। कहा भी गया है—

विधिबुद्ध्यैव सेवेत तृष्णया चेत्स पातकी।
यैरेव पतनं द्रव्यैर्मुक्तिस्तैरेव चोदिता।
अभीकस्यानभीकस्येत्येवमेते व्यवस्थिता।।

यास्क के अनुसार सृणि के दो प्रकार हैं— भर्ता एवं हन्ता। यहाँ 'इव' पद का प्रयोग सगुण रूप की भक्तों के प्रति अनुग्रहशीलता एवं निर्गुण रूप की पारमार्थिकता का बोधक है।

चौदहवीं ऋचा का भाव यह है कि शर्करा के अंकुश से विश्व का आकर्षण करने वाली (देवी) पाश के द्वारा क्रूरता का दमन करती है एवं पाँच बाणों और धनुष से वह विश्वजननी आदिशक्ति अरुणा सबको नियन्त्रण में रखती है।

भगवती के चारो हाथों में अंकुश, पाश, पाँच बाण एवं धनुष हैं और उनका वर्ण रक्त है; अतः उनका नाम अरुणा है । अंकुश शर्करा का, बाण फूलों का और धनुष ईख का है। क्रोध अंकुश का, मोह पाश का, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धरूप पञ्चतन्मात्रायें पञ्च बाणों का और मन धनुष का प्रतीक है। मोह भी माधुर्योपेत है और क्रोध भी। मन आनन्दरसासिक्त है और पञ्चतन्मात्राओं में भी माधुर्य भरा हुआ है।

शक्ति (भग) **एवं शक्तिमान** (काम) **में ऐकात्म्य**— त्रिपुरामहोपनिषद् शक्ति एवं शक्तिमान में ऐकात्म्य मानता है। उसमें कहा गया है कि भग शक्ति है और भगवान्

कामेश हैं। दोनों सौभाग्यप्रदायक हैं, दोनों समप्रधान हैं तथा दोनों सत्त्वयुक्त एवं समान ओजस्वी हैं। उनकी शक्ति अजरा एवं विश्व का कारण है—

भग: शक्तिर्भगवान् काम ईश उभा दातारविह सौभगानाम्।
समप्रधानौ समसत्त्वौ समो तयो: समशक्तिरजरा विश्वयोनि:।।

भग अर्थात् ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान एवं विज्ञान— इन छ: गुणों के आधारभूत 'काम ईश' कामेश्वर एवं शक्ति देवी इस लोक में 'सौभगानाम्' धर्म-अर्थ-कामरूप विविध फलों के दाता हैं (उसी देवी की उपासना चाहे नारीरूप में की जाय या पुरुषरूप में; किन्तु फल एक ही समान प्राप्त होता है)। दोनों (कामेश्वर एवं कामेश्वरी) समान रूप से प्रधान हैं; क्योंकि कामेश्वरी का ध्यान करने में वह शिवांकाश्रित होने के कारण शिव को प्राधान्य देती है और शक्तिविरहित होने पर शिव के कुछ भी करने में असमर्थ होने के कारण शक्ति स्वयमेव प्रधान सिद्ध होती है। इस प्रकार दोनों ही 'समसत्त्व' अर्थात् समान सामर्थ्य वाले हैं, तथापि इन दोनों साम्यों में शक्ति (अजरा) जरारहित है और विश्वयोनि (संसारोत्पादिका) है; अत: प्रधान वही हुई। 'भग' षडैश्वर्य का अभिधान है। कहा भी गया है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशस: श्रिय:।
ज्ञानविज्ञानयोश्चैव षण्णां भग इतीरणा:।।

'भग' अर्थात् स्मृतियों में ईश्वर के शरीर पर घटित होने वाली समस्त धर्मराशि। यह धर्मसमूह = शक्ति है। उपास्या स्त्री देवता का यही स्वरूप है। पुरुषस्वरूप शिव एवं स्त्रीस्वरूप शक्ति में अभीष्टार्थप्रदायिका शक्ति एवं अन्योन्य गुणप्रधान भावों की समानता होते हुये भी जगत् के कर्तृत्व की दृष्टि से शक्ति ही प्रधान सिद्ध होती है। नारीरूप का ध्यान करने से ही इष्ट फल सिद्ध होता है। भागवत में कहा भी गया है—

शक्ति: करोति ब्रह्माण्डं सा वै पालयतेऽखिलम्।
इच्छया संहरत्येषा जगदेतच्चराचरम्।।

न विष्णुर्न हरो नेन्द्रो न ब्रह्मा न च पावक:।
नार्को न वरुण: शक्ता: स्वे स्वे कार्ये कथञ्चन।।

तया युक्ता हि कुर्वन्ति स्वानि कार्याणि ते सुरा।
कारणं सर्वकार्येषु प्रत्यक्षेणावगम्यते।।

शक्ति के विना तो शिव भी शव बन जाता है। कहा भी है—

शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जित:।
शक्तिहीनोऽपि य: कश्चिदसमर्थ: स्मृतो बुधै:।।

शिव एवं शक्ति में भेद— भास्करराय द्वारा त्रिपुरामहोपनिषद् की व्याख्या में कहा गया है कि शिव में फलदातृत्व की क्षमता तो है, किन्तु यह क्षमता शक्ति के अधीन होने

के कारण विलम्ब से फलदात्री होती है; जबकि शक्ति (फलदातृत्व हेतु किसी की भी अपेक्षा न होने के कारण) फल प्रदान करने में कोई विलम्ब नहीं करती। अत: नारीरूपा देवता का ही ध्यान करना उत्तम होता है।

उपासना द्वारा विश्वरूपत्व-प्राप्ति की प्रक्रिया— त्रिपुरामहोपनिषद् के पन्द्रहवें मन्त्र में भगवती की उपासना करने से साधक को प्राप्त होने वाली विश्वरूपता-सिद्धि का उल्लेख करते हुये कहा गया है कि—

परिस्रुता हविषा पावितेन प्रसङ्कोचे गलिते वै मनस्त:।
सर्व: सर्वस्य जगतो विधाता धर्ता हर्ता विश्वरूपत्वमेति।।

मन्त्र-संस्कार के द्वारा सुसंस्कृत हवि एवं मद्य के सेवन के कारण मन से संकोच के दूर हो जाने पर वह उपासक विश्वरूपत्व प्राप्त कर लेता है। वही ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव सभी कुछ हो जाता है।

मदिरा की हवि द्वारा अर्थात् आनन्दावेशरूपी हवि के द्वारा भावना करने से प्रसंकोच के गलित हो जाने पर (जीवभाव का त्याग करने पर) साधक उन्मनीभाव प्राप्त कर लेता है। कल्याणस्वरूप समस्त जगत् का विधाता, धर्ता एवं हर्ता उसको विश्वस्वरूप दृष्टिगोचर होने लगता है। इसी को विष्णुतीर्थ में इस प्रकार कहा गया है—

परिस्रुता हविषा भावितेन प्रसंकोचे गलिते वै मनस्क:।
शर्व: सर्वस्य जगतो विधाता धर्ता हर्ता विश्वरूपत्वमेति।।

उपर्युक्त का ही पाठान्तर आड्यार लाइब्रेरी संस्करण में इस प्रकार प्राप्त होता है—

परिसृता हविषा भावितेन प्रसंकोचे गलिते वै मनस्क:।
शर्व: सर्वस्य जगतो विधाता धर्ता हर्ता विश्वरूपत्वमेति।।

आचार्य भास्कर कहते हैं कि सगुण ध्यान की उपासना के अनन्तर उपनिषद् निर्गुण ध्यान के विषय में तो सब कुछ अकथ्य होने के कारण उससे प्राप्त होने वाले फल एवं उसको प्राप्त करने की विधि पर प्रकाश डालता हुआ पन्द्रहवाँ मन्त्र प्रस्तुत करता है।

कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग एवं भक्तिमार्ग में विलक्षण साधन-प्रणालियाँ निर्दिष्ट हुई हैं; अत: उनके दु:साध्य एवं चिरकालोपरान्त फलप्रद होने से इस उपनिषदोक्त पन्द्रहवीं ऋचा में समर्पित द्रव्यों के स्वीकार के द्वारा आवर्तमान उल्लासपरम्परा ही साधना-पद्धति है— यह सिद्ध होता है। कल्पसूत्र भी इसी का विधान करता है— 'आरम्भ-तरुण-यौवन-प्रौढ़-तदन्तोन्मन्यनवस्थोल्लासेषु प्रौढ़ान्तं समयाचार: तत: परं यथाकामीति'।

कुलार्णवतन्त्र में भी इस उल्लाससप्तक का विधान किया गया है। भास्करराय कहते हैं कि मन के विलीन हो जाने पर तथा निद्रा के भी दूर हो जाने पर जो ब्रह्मस्वरूपता प्राप्त होती है, उसे ही ज्ञान की सप्तम भूमिका कहा गया है। इसे ही योगीजन निर्विकल्पावस्था में अनुभव करते हैं। योगी लोग उन्मनोत्तर अनवस्थारूपोल्लास में इसकी अनुभूति

करते हैं। कहा भी गया है—

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे व्यवस्थितम्।
तस्याभिव्यञ्जकं द्रव्यं योगिभिस्तेन पीयते।।

कल्पसूत्र में भी गया है कि उसके अभिव्यञ्जक पञ्च मकार हैं; किन्तु उसी द्रव्य को यज्ञाङ्ग के रूप में ग्रहण न करने पर वे अपवित्र हो जाते हैं; अतः ऐसी स्थिति में उनका ग्रहण करने पर वे उस परदशा को उद्भावित नहीं कर पाते। मन्त्रों के द्वारा पवित्रीकृत एवं हविरूप में स्वीकृत द्रव्य ही समाधिदशा का उन्मेष कर पाते हैं। 'समयाचारस्मृति' में भी कहा गया है—

असंस्कृतं पशोः पानं कलहोद्वेगपापकृत्।
मन्त्रपूजाविहिनं यत्पशुपानं तदेव हि।।

पशुपानविधौ पीत्वा वीरोऽपि नरकं व्रजेत्।
संस्कृतं बोधजनकं प्रायश्चित्तं च शुद्धिकृत्।।

मन्त्राणां स्फुरणं तेन महापातकनाशनम्।
आयुः श्रीः कान्तिसौभाग्यं ज्ञानं संस्कृतपानतः।।

अष्टैश्वर्यं खेचरत्वं पतनं विधिवर्जितम्।
सौत्रामण्यां कुलाचारे मदिरां ब्राह्मणः पिबेत्।।

अन्यत्र ब्राह्मणः पीत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत्।।

किन्तु— परं प्राणः प्रगच्छन्तु ब्राह्मणो नार्पयेत्सुखम्।
ब्राह्मणो मदिरां दत्वा ब्राह्मण्यादेव हीयते।।

तन्त्रराजतन्त्र एवं शक्तिसङ्गमतन्त्र आदि में इन पञ्च द्रव्यों के उपयोग के विषय में निषेधात्मक वचन भी निर्दिष्ट हुये हैं। भास्करराय ने कौलोपनिषद् में भी इस विषय की सविस्तार विवेचना की है। उसमें कहा गया है—

अधिकारी व्यक्ति उक्त प्रकार के उल्लासों के द्वारा अन्तःकरण के अवच्छिन्न हो जाने पर (जीवात्मा की) अन्तःकरण उपाधि से सञ्जात संकोच से शून्य हो जाता है।

संकोच-राहित्य होने एवं ब्रह्मभावावस्थित होने पर फिर कुछ भी शेष प्राप्तव्य नहीं रह जाता।

द्रव्योल्लासाप्ति ही कृतार्थता का निकष नहीं है; प्रत्युत इसका निकष है— योग-सञ्जात समाधि।

जिस प्रकार प्राणायामादिक उपाय समाधि प्राप्त होने के बाद निरर्थक हो जाते हैं और विना प्राणायामादिक साधनों के ही सार्वकालिक 'सदोदित' समाधि अधिगत रहती है या जिस प्रकार वात्याचक्रान्दोलित जलयान से उतर जाने के बाद भी यात्री को चक्कर

आते रहते हैं, उसी प्रकार संस्कृत द्रव्यपान से सञ्जात उन्मनी अवस्था के अभ्यासानन्तर (कुछ दिनों बाद) विना द्रव्यपान के भी साधक को उसी उन्मनी दशा का अनुभव होता रहता है।

स्वात्मैकविषयक निर्विकल्प वृत्ति को उत्पन्न करने वाला द्रव्य 'मद' ही है। इसी-लिये मदोन्मत्त की बहुविधता इस प्रकार प्रतिपादित की गई है—

रमन्ते कामुका मत्ता मत्तः कुप्यति कोपनः।
गायन्ति गायका मत्ता मत्ता ध्यायन्ति कोपनः।।

अतः सर्वात्मकता के विवासार्थ योगी लोग भी इसकी सहायता लेते हैं।[1]

त्रिपुरामहोपनिषद् के अन्तिम मन्त्र में कहा गया है कि यह महोपनिषद् उस त्रिपुरा का है, जिसकी स्तुति अकार, उकार एवं मकार द्वारा की गई है। यह ऋक्, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद तथा अष्टादश विद्याओं का सारभूत है—

इयं महोपनिषत्त्रिपुराया यामक्षरं परमे गीर्भिरीट्टे।
एषर्ग्यजुः परमेतच्च सामे वायमथर्वेयमन्या च विद्योम्।।

भगवान् श्रीपरशुराम कल्पसूत्र में कहते हैं कि 'य इमां दशमखण्डीमहोपनिषदं महा-त्रैपुरसिद्धान्तसर्वस्वभूतामधीते सर्वेषु यज्ञेषु यष्टा भवति यं यं क्रतुमधीते तेन तेनास्य क्रतुनेष्टं भवतीति हि श्रूयते इत्युपनिषदिति शिवम्'।

त्रिपुरामहोपनिषद् के अनुसार यह उपनिषद् प्रणवस्वरूप भी है— 'वायमथर्वेयमन्या च विद्योऽम्'। इसके अन्त में 'ॐ ह्रीमों ह्रीमित्युपनिषत्' वाक्य है। 'ह्रीं' देवीप्रणव है। लक्ष्मी-धरा के अनुसार 'ह्रीं' का स्वर सामरस्य का स्वर है।

आचार्य लक्ष्मीधर ने मूलाधारादिक षट् चक्रों का त्रिकोण-अष्टकोण-दशार-अन्वश्र आदि के साथ सामरस्यस्थापन को साधना-मार्ग की भी एक ऊँची सीढ़ी माना है। नाद एवं बिन्दु का ऐक्य सिद्धि की महत्तर उपलब्धि है। नाद क्या है? नाद है— श्रीचक्र। बिन्दु हैं— ६ कमल। इनका ऐक्य ही नादबिन्द्वैक्य है। इन दोनों का ऐक्य ही है—

१. आधार : ४ दलः कर्णिका– त्रिकोणात्मिका।
२. स्वाधिष्ठानः ६ दलः कर्णिका– अष्टकोणात्मिका।
३. मणिपूर : १० दलः कर्णिका– दशकोणात्मिका।
४. अनाहत : १२ दलः कर्णिका– द्वितीय दशकोणात्मिका।
५. विशुद्धि : १६ दलः कर्णिका– चतुर्दशकोणात्मिका।
६. आज्ञाचक्र : २ दलः कर्णिका– अष्टकोण + षोडश कोण (२ कर्णिकायें)।

बैन्दवस्थान = चतुर्द्वारोपेत (कर्णिका के मध्य में)।

श्रीचक्र के साथ कमलों का एवं नाद के साथ बिन्दु का ऐक्य ऊपर बताया गया है।

---

१. भास्करराय

षट्चक्रों में ५० कलाओं का अन्तर्भाव है। चन्द्रखण्ड में स्वर है। सूर्यखण्ड में स्पर्श स्थित है। अग्निखण्ड में अन्त:स्थ एवं ऊष्म (हकाररहित) स्थित है। बैन्दव में 'ह + ळ' एवं 'क्ष' सर्वत्र स्थित है। मूलाधार आदि चक्रों में कलाओं का अन्तर्भाव है।

लक्ष्मीधरा के अनुसार 'कलायें' तिथ्यात्मक हैं। 'नित्यायें' कलात्मक हैं। 'कलायें' मूलमन्त्रगत पञ्चदशाक्षरात्मक हैं। 'त्रिखण्ड' सोम-सूर्य-अनलात्मक है। 'सोम-सूर्य-अनल' ग्रन्थित्रयात्मक हैं। 'ग्रन्थित्रय' मन्त्रगत ह्रींकारत्रयात्मक हैं। 'ह्रींकार' भुवनेश्वरीमन्त्रात्मक है। भुवनेश्वरी-मन्त्र मूलमन्त्रात्मक है। मूलमन्त्र चक्रैक्य होने से चक्रात्मक है। चक्रनवक एवं मूलाधारादिक ६ चक्रों तथा ब्रह्मग्रन्थि आदि में भी सहस्रकमलकर्णिका आदि के साथ तादात्म्य है। इस प्रकार कला एवं नाद में ऐक्य स्थित है।

श्रीविद्यासम्प्रदाय में मुक्ति का स्वरूप भी सामरस्यात्मक है। कुण्डलिनी शक्ति का सहस्रारस्थ परमशिव से सामरस्य, शरीर का श्रीचक्र के साथ सामरस्य, उपासक का उपास्य देवता के साथ सामरस्य, देहस्थ षट्चक्रों का श्रीचक्र के साथ सामरस्य एवं गुरु, देवता, उपासक, विश्व एवं श्रीविद्या के साथ सामरस्य ही भुक्ति है।

चत्वारिंश अध्याय

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की सरलतमा पूजा

ललितासहस्रनाम के अनुसार भगवती-पूजन-विधान— मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत ललिता-सहस्रनाम में भगवती के प्रीत्यर्थ जिस पूजा का विधान किया गया है, वह सरलतम है। आचार्य हयग्रीव ऋषि अगस्त्य से कहते हैं कि हे लोपामुद्रा के पति अगस्त्य ! सावधान मन से सुनो; सर्वप्रथम चक्राधिराज श्रीयन्त्रात्मक चक्र की बिल्वपत्रों, पद्मों या तुलसीपुष्पों से अर्चना करनी चाहिये, फिर पञ्चदशाक्षरी मन्त्र का जप करके अन्त में ललितासहस्रनाम का पाठ करना चाहिये। यदि कोई पूजा एवं जप करने में भी अशक्त हो तो वह मात्र ललितासहस्रनाम का ही पाठ करे—

चक्राधिराजमभ्यर्च्य जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम्।
जपान्ते कीर्तयेन्नित्यमिदं नामसहस्रकम्।।

यदि सम्भव हो तो निम्नलिखित पद्धति से भगवती की पूजा करनी चाहिये; इससे भगवती साधक के ऊपर सद्यः कृपा करतीं हैं—

बिल्वपत्रैश्चक्रराजे योऽर्चयेल्ललिताऽम्बिकाम्।
पद्मैर्वा तुलसीपुष्पैरेभिर्नामसहस्रकैः।।
सद्यः प्रसादं कुरुते तत्र सिंहासनेश्वरी।

किन्तु उपर्युक्त पद्धति से पूजा यदि न हो सके तो मात्र श्रीललितासहस्रनाम स्तोत्र का पाठ करना ही श्रेयस्कर होता है—

जपपूजाद्यशक्तोऽपि पठेन्नामसहस्रकम्।
चक्रराजार्चनं देव्या जपो नाम्नां च कीर्तनम्।।

ललितासहस्रनाम महास्तोत्र का परिचय— भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ने वाग्देवता वशिनी आदि को आज्ञा देते हुये कहा कि तुम लोग मेरी कृपा से उल्लसित वाग्विभूतियाँ बनी हुई हो, मेरे भक्तों को वाग्विभूति प्रदान करने के लिये विनियोजित की गई हो, मेरे श्रीचक्र के रहस्यों की ज्ञाता हो और मेरे नाम का नित्य जप करती हो; अतः मेरे सहस्र-नामांकित स्तोत्र की रचना करो। ललितासहस्रनाम वही सहस्रनामांकित महास्तोत्र है।

एक बार सिंहासनस्थ श्रीदेवी महात्रिपुरसुन्दरी ने सभी को अपनी सेवा करने का सुअवसर प्रदान किया। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की सेवा में करोड़ों ब्रह्मा-ब्रह्माणी, लक्ष्मी-नारायण एवं रुद्र-गौरियाँ उपस्थित हुईं; साथ ही साथ मन्त्रिणी, दण्डिनी आदि शक्तियाँ भी उपस्थित हुईं। दिव्यौघ, मानवौघ एवं सिद्धौघ भी आये और सभी ने भगवती ललिता के दर्शन किये। उस समय (ललितासहस्रनाम की प्रणेता) वशिनी आदि शक्तियों ने अपने आसन से उठकर भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का ललितासहस्रनाम स्तोत्र

से स्तवन किया, जिसे सुनकर भगवती ललिता अत्यन्त प्रसन्न हुईं। भगवती ललिता ने कहा कि मेरी आज्ञा से ही वाग्देवियों ने इस महास्तोत्र की (मत्प्रीत्यर्थ) रचना की है। तुम लोग भी मुझे प्रसन्न करने हेतु इसी स्तोत्र का पाठ किया करो तथा मेरे भक्तों में इसका प्रचार करो। यदि कोई भक्त मेरे इस महास्तोत्र का जीवन में एक बार भी पाठ कर लेता है तो वह मेरे लिये प्रेष्ठ बन जाता है और मैं उसके समस्त अभीष्टों को उसे प्रदान कर देती हूँ। इसकी प्रक्रिया निम्नानुसार है—

१. प्रथमतः श्रीचक्र में मेरी पूजा की जाय,

२. तत्पश्चात् पञ्चदशाक्षरी का मन्त्र जप किया जाय,

३. तदनन्तर मेरी तुष्टि हेतु ललितासहस्रनाम का कीर्तन (पाठ) किया जाय;

४. किन्तु यदि कोई मेरी अर्चना श्रीचक्र में न कर सके एवं मेरा पञ्चदशाक्षरी मन्त्र भी न जप सके, फिर भी वह (मुझे प्रसन्न करने हेतु) सहस्रनाम का कीर्तन अवश्य करे। ऐसा करने से भी मैं उसको उसके समस्त अभीष्ट प्रदान कर दूँगी—

मामर्चयतु वा मा वा विद्यां जपतु वा न वा।
कीर्तयेन्नामसाहस्रमिदं मत्प्रीतये सदा।।

मत्प्रीत्या सकलान् कामांल्लभते नात्र संशयः।
तस्मान्नामसहस्रं मे कीर्तयध्वं सदाऽऽदरात्।।

सहस्रनाम के पाठ की (विभिन्न प्रयोजनों हेतु) विभिन्न विधियाँ

क. सामान्य पाठ— भगवती का विधिवत् पूजन करके ध्यान, ऋषि, देवता, छन्द बीज, शक्ति, कीलक एवं विनियोगसहित स्तोत्र का तो पाठ करे ही; किन्तु 'ॐ' द्वारा सहस्रनामस्तोत्र को सम्पुटित करके भी उसका पाठ करना चाहिये।

ख. निष्काम पाठ— देवता-प्रीत्यर्थ निष्काम पाठ का विधान निम्नवत् है—

अ. सामान्य कल्प— जब भी समय मिल जाय, एक पाठ कर लिया जाय।

ब. मध्यम कल्प— प्रातः एवं सायं दोनों सन्ध्याओं में पाठ किया जाय।

स. उत्तम कल्प— प्रातः, मध्याह्न एवं सायं तीनों काल में पाठ किया जाय।

द. उत्तमोत्तम कल्प— प्रातः, मध्याह्न, सायं एवं अर्द्धरात्रि –इन चारो सन्ध्याओं में पाठ किया जाय। तुरीय सन्ध्या में किया पाठ सर्वश्रेष्ठ पाठ होता है। साथ ही साथ स्तोत्रान्त में फलश्रुति का पाठ भी आवश्यक होता है।

ग. सकाम पाठ— सकाम पाठ में पाठसंख्या पूर्वनिश्चित रहती है; अतः उतनी ही संख्या में पाठ करना चाहिये; न उससे ज्यादा, न कम। प्रथम एवं अन्तिम दो पाठों के अन्त में सम्पूर्ण फलश्रुति का पाठ अपरिहार्य होता है; लेकिन मध्य के पाठों में केवल नामावली का पाठ ही करणीय होता है—

आदौ पूर्णं तु सम्पठ्य तथैवान्ते महेश्वरि।
मध्ये नामानि पद्यानि पुरश्चर्या प्रकीर्तिता।।

उपर्युक्त क्रम ही पुरश्चरण एवं प्रयोग दोनों विधानों में भी निर्धारित है।

घ. विशेष तिथिगत कृत पाठ— संक्रान्ति, पूर्णिमा, शुक्ला नवमी, शुक्ला चतुर्दशी, शुक्रवार, अपनी जन्मतिथि, दीक्षातिथि आदि के दिनों में पाठ करने पर विशेष फल प्राप्त होता है।

सर्वाधिक पाठ-फल तो पूर्णिमा की तिथि पर चन्द्रविम्ब में पराम्बा का ध्यान करके उनकी पूजा करके पाठ करने से प्राप्त होता है। इसका फल सभी रोगों से मुक्ति एवं दीर्घायुष्य-प्राप्ति भी है।

स्तोत्रपाठ एवं पूजन हेतु विशिष्ट तिथियाँ एवं दिन— भगवती ललिता की पूजा हेतु विशिष्ट फलप्रद तिथियाँ एवं दिन हैं— शुक्रवार, पौर्णमासी, महानवमी, चतुर्दशी (शुक्लपक्ष), संक्रान्ति, अयन, विषुव एवं अपनी जन्मतिथि।

क. पौर्णमासी— प्रत्येक मास की पौर्णमासी तिथि को रात्रि के समय चन्द्रविम्ब में भगवती के अवस्थान की विभावना करके (उसमें संस्थित श्रीचक्रराज पर समासीन भगवती की कल्पना करके) भगवती की वहीं पूजा करनी चाहिये। इस पूजन से साधक स्वयं ललितास्वरूप बन जाता है—

प्रतिमासं पौर्णमास्यामेभिर्नामसहस्रकैः।
रात्रौ यश्चक्रराजस्थामर्चयेत् परदेवताम्।।

स एव ललितारूपस्तद्रूपा ललिता स्वयम्।
न तयोर्विद्यते भेदो भेदकृत् पापकृद्भवेत्।।

ख. महानवमी— भगवती की पूजा के लिये महानवमी की तिथि भी विशेष फलदायिनी होती है। इस तिथि को पूजा करने वाला पूजक मुक्त हो जाता है—

महानवम्यां यो भक्तः श्रीदेवीं चक्रमध्यगाम्।
अर्चयेन्नामसाहस्रैस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता।।

ग. शुक्रवार— दिनों में शुक्रवार का दिन भगवती ललिता के पूजन-अर्चन का विशेष दिन है; अतः यह दिन विशेष फलदायक है—

यस्तु नामसहस्रेण शुक्रवारे समर्चयेत्।
चक्रराजे महादेवीं तस्य पुण्यफलं शृणु।।

शुक्रवार के दिन भगवती के पूजन का फल है— सर्वकामनाओं की पूर्ति, सर्वसौभाग्य की सम्प्राप्ति, पुत्र-पौत्रादि की प्राप्ति के साथ ही साथ अन्य यथेप्सित भोगों की प्राप्ति एवं अन्त में ललिता-सायुज्य की प्राप्ति।

घ. पूर्णमासी— पूर्णमासी तिथि पर की गई भगवती की पूजा विशेष फलदायिनी होती है; जैसा कि कहा भी है—

कीर्तयेन्नामसाहस्रं पौर्णमास्यां विशेषतः।
पौर्णमास्यां चन्द्रविम्बे ध्यात्वा श्रीललिताम्बिकाम्।
पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पठेन्नामसहस्रकम्।।

इस पूर्णमासी तिथि पर की जाने वाली भगवती की पूजा का फल है— समस्त रोगों का नाश, दीर्घायुष्य की प्राप्ति। ज्वरार्त का शिरःस्पर्श करके सहस्रनाम का पाठ करने पर तत्काल ही उसका रोग दूर हो जाता है और शिर की पीड़ा भी तत्काल दूर हो जाती है।

ङ. भस्म— भस्म को ललितासहस्रनाम से अभिमन्त्रित करके (उसे छूकर स्तोत्र-पाठ करने के द्वारा) यदि किसी को दिया जाय तो उसके धारण करने मात्र से ही सारे रोग दूर हो जाते हैं।

च. जल— कुम्भस्थ जल को यदि सहस्रनाम से अभिमन्त्रित किया जाय और उस जल से ग्रह-गृहीत को अभिषिञ्चित किया जाय तो सारे ग्रह तत्क्षण ही नष्ट हो जाते हैं।

छ. सुधासागर में भगवती का ध्यान-पूजन— सुधासागर में ध्यान करके भगवती के सहस्रनाम का यदि पाठ किया जाय तो विष का नाश हो जाता है।

ज. पुत्रप्राप्ति— यदि किसी वन्ध्या नारी को भी सहस्रनामाभिमन्त्रित नवनीत खाने को दे दिया जाय तो उसे पुत्र की प्राप्ति अवश्य हो जाती है।

झ. वशीकरण— यदि किसी नारी को देवी के पाश से आबद्ध एवं अंकुश के द्वारा आकृष्ट होती हुई कल्पित करते हुये रात्रि में उसका ध्यान करके सहस्रनाम का पाठ किया जाय तो वह नारी अवश्य ही पास में आ जाती है; चाहे वह किसी अन्तःपुर में ही रहने वाली क्यों न हो।

ञ. राजा कां वशीकरण— भगवती के ध्यान में तल्लीन होकर तीन रात्रियों में ललितासहस्रनाम का पाठ करने पर तो विरोधोन्मुखी राजा भी दास की भाँति उपस्थित होकर एवं अपना समस्त राज्य तथा कोश समर्पित करके साधक का दास बन जाता है।

ट. सम्मोहन— प्रत्येक दिन ललितासहस्रनाम का पाठ करने वाले व्यक्ति का मुख देखने मात्र से लोकत्रय भी मोहित हो उठता है।

ठ. शत्रुनाश एवं अभीष्ट-प्राप्ति— जीवन में एक बार भी ललितासहस्रनाम का पाठ करने वाले व्यक्ति के समस्त शत्रुओं को शरभेश्वर नष्ट कर डालते हैं। इसी प्रकार इसके पाठ से अनेक अभीष्टों की प्राप्ति भी की जा सकती है।

तिथियों में नवमी, चतुर्दशी (शुक्ल पक्ष) एवं शुक्रवार तथा पौर्णमासी विशेष फलप्रदायिनी हैं।

संक्रान्ति, विषुव, अपनी तीन जन्मतिथियों एवं अयनों में भी की गई पूजासंयुक्ता पाठक्रिया विशेष फलदायिनी होती है—

संक्रान्तौ विषुवे चैव स्वजन्मत्रितयेऽयने।
नवम्यां वा चतुर्दश्यां सितायां शुक्रवासरे।
कीर्तयेन्नामसाहस्रं पौर्णमास्यां विशेषतः।।

पौर्णमास्यां चन्द्रविम्बे ध्यात्वा श्रीललिताम्बिका।
पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पठेन्नामसहस्रकम्।।

ड. अचल धनप्राप्ति— लगातार छः मासों तक भक्तिपूर्वक सहस्रनाम का पाठ करने से पाठक को स्थायी सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

यः पठेन्नामसहस्रं षण्मासं भक्ति-संयुतः।
लक्ष्मी चाञ्चल्यरहिता सदा तिष्ठति तद्गृहे।।

ढ. निष्कामोपासना— भगवती की निष्कामोपासना करने वाला साधक समस्त बन्धनों से मुक्ति पाकर ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर लेता है—

निष्कामः कीर्तयेद्यस्तु नामसाहस्रमुत्तमम्।
ब्रह्मज्ञानमवाप्नोति येन मुच्येत बन्धनात्।।

ण. सहस्रनाम स्तोत्र के पुरश्चरण की विधि— नियमपूर्वक इष्टदेवता के प्रीत्यर्थ कम से कम दश हजार पाठ का विधान है; परन्तु 'कलौ संख्या चतुर्गुणा' के नियमानुसार कलियुग में चालीस हजार पाठ करना चाहिये। हवनादिक यदि न भी कर सके, फिर भी यथाशक्ति दक्षिणासहित ब्राह्मणों को भोजन करा देने से भी पुरश्चरणविधि पूर्ण हो जाती है; जैसा कि कहा भी है—

विप्रसन्तोषणेनेव सर्वं सिद्ध्यति पार्वति ।

पुरश्चरणोपरान्त गुरु को सन्तुष्ट कर लेने पर पुरश्चरण की त्रुटियों का मार्जन हो जाता है।

त. श्रीप्राप्त्यर्थ प्रयोग— श्रीविद्योपासकों को यद्यपि 'श्री' (लक्ष्मी) स्वतः वरण करती है; फिर भी सहस्रनाम का पाठ करने वालों पर लक्ष्मी जी की विशेष कृपा रहती है। साधक को प्रत्येक नाम द्वारा पद्म, तुलसीदल या कदम्ब-करवीर-बन्धूक-चम्पकपुष्प या बिल्वपत्रों में से किसी एक से लगातार १०० दिनों तक भगवती की पूजा करनी चाहिये। भगवती के प्रत्येक नाम को चतुर्थ्यन्त करके उसके आदि में 'ॐ' और अन्त में 'नमः' लगाकर भगवती ललिता को पुष्पादिक अर्पित करना चाहिये। चतुर्थ्यन्त रूप इस प्रकार हैं—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीमात्रे नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीमहाराज्ञ्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीं सिंहासनेश्वर्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीं चिदग्निकुण्डसम्भूतायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीं देवकार्यसमुद्यतायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्री उद्यद्भानुसहस्राभायै नमः। आदि।

ललितासहस्रनाम में उपदिष्ट पूजाविधि एवं पूजोपकरण

१. प्रातः स्नान करके सन्ध्या-कर्म समाप्त करे।

२. तत्पश्चात् पूजा गृह में जाय।

३. वहाँ जाकर पञ्चोपचार से चक्रराज की पूजा करे।

४. सदैव भक्तिपूर्वक पूजा करे— 'समर्चयेत्सदा भक्त्या'।

५. सहस्रनाम का पाठ भी औपचारिक ढंग से नहीं; बल्कि अत्यन्त आदरपूर्वक सम्पन्न करे— 'कीर्तयेदिदमादरात्'।

६. ललितासहस्रनाम के मन्त्रों द्वारा श्रीचक्र की अर्चना करे— 'एभिर्नामसहस्रैस्तु श्रीचक्रं योऽर्चयेत्सुकृत्'।

७. पूजा के पुष्प होते हैं— पद्म, तुलसीपुष्प, कल्हार, कदम्बक, चम्पक, जाति, मल्लिका, करवीरक, उत्पल, बिल्वपत्र अथवा कोई भी सुगन्धित पुष्प— 'अन्यैः सुगन्धि-कुसुमैः केतकीमाधवीमुखैः'।

८. किन्हीं विशेष पुण्यवासरों में की गई पूजा अधिक फलप्रद होती है। स्तोत्र का पाठ नहीं; संकीर्तन किया जाना विशेष फलदायी होता है।

पूजा विना भक्ति के उचित नहीं होती— 'यः पठेन्नामसाहस्रं षण्मासं भक्तिसंयुतः'। भक्तिसमन्वित पूजा ही वरेण्य है।

नामों का पाठ नहीं कीर्त्तन करना चाहिये— 'यः कीर्त्तयति नामानि, भक्तो यः कीर्त्त-यन्नित्यमिदं नामसहस्रकम्, अकीर्त्तयन्निदं स्तोत्रं, नित्यं सङ्कीर्त्तनासक्तः, कीर्त्तयेत्पुण्यवासरे, न कीर्त्तयति नामानि, कीर्त्तनीयमिदं सदा'। तस्मात् नामानुकीर्तनं उक्त्वा कीर्तयेन्नामसाहस्रं रहस्यनामसाहस्रं यः कीर्त्तयति नित्यशः। क्षुद्र प्रयोजनों की सिद्धि के प्रसंग में 'पाठ' शब्द का प्रयोग हुआ है।

विष उतारने एवं नारी-वशीकरण के प्रसङ्ग में— 'यः पठेन्नामसाहस्रं, पठेन्नाम-सहस्रकम्'। राजा को वश में करने के सन्दर्भ में— 'त्रिरात्रं यः पठेच्छ्रीदेवीध्यानतत्परः'। एक बार पढ़ने पर 'सकृत् पठति भक्तिमान्', 'यो वाऽभिचारं कुरुते नामसाहस्रपाठके'। लक्ष्मीप्राप्त्यर्थ— 'यः पठेन्नामसाहस्रम्'। भारतीसिद्धिहेतु— 'त्रिवारं यः पठेन्नरः'। एक बार पढ़ने वाले के लिये— 'यस्त्वेकवारं पठति'। 'यः पठेन्नामसाहस्रं जन्ममध्ये सकृन्नरः'।

सारांश— ललितासहस्रनाम का पाठ (संकीर्तन) तुच्छ ऐहिक कार्यों के लिये वरेण्य नहीं है; क्योंकि वहाँ उसकी बार-बार आवृत्ति संकीर्त्तन न बन कर पाठ बन जायगी; जो कि अभीष्ट नहीं है; क्योंकि इस स्तोत्र का उद्देश्य आत्मदर्शन एवं ब्रह्मप्राप्ति है।

पौर्णमासी को रात्रि में चन्द्रविम्ब में स्थित श्रीचक्र में स्थित भगवती का पूजन सर्वोच्च पूजन है। महानवमी को श्रीचक्रगता देवी का पूजन अधिक प्रशस्त है। इसी प्रकार शुक्रवार के दिन एवं शुक्लपक्ष की चतुर्दशी के दिन पूजा अधिक प्रशस्त है।

जो श्रीविद्योपासक इस सहस्रनामस्तोत्र का पाठ नहीं करता, उससे देवी कभी प्रसन्न नहीं रहतीं—

यो भक्तो ललितादेव्याः स नित्यं कीर्तयेदिदम्।
नान्यथा प्रीयते देवी कल्पकोटिशतैरपि।।

जिन्हें सहस्रनाम के पाठ में संकीर्त्तन की एकाग्रता, आनन्दानुभूति, शरीरांगों का भगवन्नाम में सञ्चालन होने से सभी अंगों द्वारा (मानों) भगवान् की सेवा करने का भाव जाग्रत होता है, उनके द्वारा स्तोत्र पढ़ना मात्र पाठ है, संकीर्त्तन नहीं। उचित है— संकीर्त्तन, न कि पाठ।

▼

एकचत्वारिंश अध्याय

भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना : दास्यभाव

आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी में भगवती के प्रति जो प्रेम, निष्ठा एवं भक्ति व्यक्त की है, उसके मुख्यतः दो स्वरूप हैं— 'वात्सल्य भाव'— भगवती की माता के रूप में उपासना एवं 'दास्य भाव'— भगवती की स्वामिनी एवं अपने लिये दास के रूप में भावना करके की गई उपासना।

आचार्य शंकर ने अपनी उपासना का एक तृतीय रूप भी प्रस्तुत किया है और वह है— परोपासना। आचार्य शंकर दास्य भावोद्गार में भी डूबे हैं। वे कहते हैं—

भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा-
मितिस्तोतुं वाञ्छन्कथयति भवानि त्वमिति यः।
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीं
मुकुन्द-ब्रह्मेन्द्र-स्फुट-मुकुट-नीराजित-पदाम् ।।

सारांश यह कि 'हे भवानी ! तू मुझ इस दास पर भी अपनी करुणार्द्र दृष्टि डाल' इस प्रकार कोई मुमुक्षु स्तुति करते समय 'भवानि त्वं' (मैं तू हो जाऊँ) इस पद का ही उच्चारण कर पाता है कि उसी समय तू उसे सायुज्य पद प्रदान कर देती है। इस पद के लिये तो ब्रह्मा, विष्णु एवं इन्द्र भी मुकुटों के प्रकाश से तेरी नीराजना किया करते हैं'।

यह प्रेमरूपा भक्ति का एक उदाहरण है।

आचार्य शंकर कहते हैं कि हे भगवती ! हे समस्त लोकों की एकमात्र शरणस्थली देवी ! मात्र आपके चरण ही अभयदान एवं वरदान दोनों देने में सक्षम हैं— 'शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ'। स्वयं कामदेव भी अपना समस्त सामर्थ्य तेरे कृपाकटाक्ष-मात्र से ही प्राप्त कर पाये हैं— 'मपाङान्ते लब्ध्वा जगदिदमनङ्गौ विजयते'। वे भगवती से प्रार्थना करते हुये कहते हैं कि 'दवीयांसं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे'।

ज्ञानार्णव में अन्तर्यागात्मक उपासना-दृष्टि— ज्ञानार्णव के अनुसार मूलाधार चक्र से ब्रह्मबिलपर्यन्त व्याप्त, मृणाल के रेशे के समान सूक्ष्म, विद्युत्समूहात्मिका, अमृतकिरणों से शीतल, तेजोदण्डरूप 'परचिति' की कल्पना करनी चाहिये। फिर उस परम तेज में अर्थात् मूलाधार चक्र से अधोगत अकुल सहस्रार में भूपुरस्थित देवी का, उसके ऊपर विषुव नामक रक्त वर्ण के षड्दलात्मक पद्म में षोडशदल देवी का, मूलाधार पद्म के चार दलों में अष्टदल देवी का, षड्दलात्मक स्वाधिष्ठान चक्र में चतुर्दशार देवी का, षोडशदलात्मक विशुद्ध चक्र में अष्टार देवी का, लम्बिकाग्र में आयुध देवी एवं त्रिकोण देवी का तथा आज्ञाचक्र में बिन्दुगत देवी का ध्यान करना चाहिये। फिर उनके सबके आगे मन्त्रों से उन-उन आवरणों की पूजा करके देवी के वाम हस्त में पूजा

समर्पित करने की कल्पना करके श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी में ही उन-उन चक्रों को अपने-अपने अवयवों सहित विलीन हो जाने की कल्पना करके देवी के चरणों के मूल में स्थित जीवात्मा के साथ श्रीदेवी को हृदय में लाकर अपने अञ्जलिगत पुष्पों से उनकी पूजा करके फिर देवी के समक्ष पाँच देवियों के स्थिति की कल्पना करके यह सोचे कि वे चन्दनादिक उपचारों से भगवती की पूजा कर रही हैं और पञ्चोपचार मुद्राओं को प्रदर्शित कर रही हैं।

फिर देवी की नाकों में गन्धदेवता, कानों में पुष्पदेवता, नाभि में धूपदेवता, नयनों में दीपदेवता, जिह्वा में नैवेद्यदेवता— इस प्रकार क्रमशः इन सभी देवताओं को (देवी के) तत्तत् शरीराङ्गों में लयीभूत होते हुये कल्पना करके मूल विद्या का उच्चारण करते हुये जीवात्मा को श्रीदेवी के पादपद्मों में लयीभूत कल्पित करके, हृदयगत देवीरूप को देवी के चरणों सहित अत्यन्त ज्योतिर्मय रूप में कल्पित करके संक्षोभिणी आदि नव मुद्राओं की कल्पना करके साधक को निर्विचार हो जाना चाहिये (क्षण भर के लिये कुछ भी नहीं सोचना चाहिये)।

फिर स्वयं को देवी के द्वारा उत्प्रेरित हृदय वाला मानकर ज्योतिरूप में स्थित, परम-शिवज्योति से अभिन्न प्रकाशवाली, आकाशादि एवं विश्व की कारणभूता एवं अपनी आत्मा से अभिन्न रूप में स्थित परात्पर चैतन्य शक्ति (परचिति) को सुषुम्ना के मार्ग से ऊपर उठाकर ब्रह्मरन्ध्रान्वित एवं प्रकाशमान सहस्रदल से प्रवाहित होते हुये एवं नासापुट से बहिर्गत उस संविद् देवी को अपने पुष्प से युक्त अञ्जलि में लाकर 'ह्रीं श्रीं सौः श्रीललितायाः अमृतचैतन्यमूर्तिं कल्पयामि नमः' ऐसा कहना चाहिये। इसके बाद निम्नवत् ध्यान करना चाहिये—

ध्यायेन्निरामयं वस्तु जगत्त्रयविमोहिनीम्।
अशेषव्यवहाराणां स्वामिनीं संविदं पराम्।।

उच्चसूर्यसहस्राभां दाडिमीकुसुमप्रभाम्।
जपाकुसुमसङ्काशां पद्मरागमणिप्रभाम्।।

स्फुरत्पद्मनिभां तप्तकाञ्चनाभां सुरेश्वरीम्।
रक्तोत्पलदलाकारपादपल्लवराजिताम् ।। आदि ।।

* * * * *

इक्षुकोदण्डपुष्पेषु पाशाङ्कुशचतुर्भुजाम्।
सर्वदेवमयीमम्बां सर्वसौभाग्यसुन्दरीम्।।

सर्वतीर्थमयीं देवीं सर्वविद्यामयीं शिवाम्।
सर्वयागमयीं विद्यां सर्वदेवस्वरूपिणीम्।।

सर्वशास्त्रमयीं नित्यां सर्वागमनमस्कृताम्।
सर्वाम्नायमयीं देवीं सर्वायतनसेविताम्।।

सर्वानन्दमयीं ज्ञानगह्वरां संविदं पराम्।
एवं ध्यायेत्परामम्बां सच्चिदानन्दरूपिणीम्।।

इस ध्यान के बाद भगवती को अपनी लीला के कारण सौन्दर्यशाली शरीर धारण किये हुये कल्पित करके—

'ह् सैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः'

महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे।
सर्वभूतहिते मातः एह्येहि परमेश्वरि।।

श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकामावाहयामि नमः' कहना चाहिये तथा अणिमान्त नित्यादिकों को श्रीदेवी के समान वेषभूषायुधशक्तिचक्र से अलंकृत कल्पित करके ओघत्रय के गुरुमण्डल को वक्ष्यमाण आवरणों में स्थित रूप में कल्पित करके 'मूलं आवाहिता भव, मूलं संस्थापिता भव, मूलं सन्निधापिता भव, मूलं सन्निरुद्धा भव, मूलं सन्मुखी भव, मूलमवगुण्ठिता भव'— इन मन्त्रों से आवाहनादि मुद्रायें प्रदर्शित करनी चाहिये।

द्वाचत्वारिंश अध्याय

भावनोपनिषदोक्त भावनाप्रधान भगवती-पूजा

भावनोपनिषद् में भगवती की पूजा का जो विधान प्रस्तुत किया गया है, वह भावना-मूलक एवं मानसिक है। 'उसका स्वरूप मानसिक है' यह उपचार बाह्यपदार्थक न होकर मात्र मानसोपचारात्मक है। इसमें कहा गया है—

१. सलिलं सौहित्यकारणं सत्त्वं कर्त्तव्यमकर्त्तव्यमिति भावनायुक्त उपचारः।
२. अस्ति नास्तीति कर्त्तव्यता उपचारः।
३. बाह्याभ्यन्तःकरणानां रूपग्रहणयोग्यताऽस्तित्वत्यावाहनम्।
४. तस्य बाह्याभ्यन्तःकरणानामेकरूपविषयग्रहणमासनम्।
५. रक्तशुक्लपदैकीकरणं पाद्यम्।
६. उज्ज्वलदामोदानन्दासनं दानमर्घ्यम्।
७. स्वच्छं स्वतःसिद्धमित्याचमनीयम्।
८. चिच्चन्द्रमयीसर्वाङ्गस्रवणं स्नानम्।
९. चिदग्निस्वरूपपरमानन्दशक्तिस्फुरणं वस्त्रम्।
१०. प्रत्येकं सप्तविंशतिधा भिन्नत्वेनेच्छाज्ञानक्रियाऽऽत्मकब्रह्मग्रन्थिमद्रसतन्तुब्रह्मनाडी ब्रह्मसूत्रयम्।
११. स्वव्यतिरिक्तवस्तुसङ्गरहितस्मरणं विभूषणम्।
१२. स्वच्छस्वपरिपूरणानुस्मरणं गन्धः।
१३. समस्तविषयाणां मनसः स्थैर्येणानुसन्धानं कुसुमम्।
१४. तेषामेव सर्वदा स्वीकरणं धूपः।
१५. पवनावच्छिन्नोर्ध्वज्वलनसच्चिदुल्काऽऽकाशदेहो दीपः।
१६. समस्तयातायातवर्ज्यं नैवेद्यम्।
१७. अवस्थात्रयैकीकरणं ताम्बूलम्।
१८. मूलाधारादाब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रादामूलाधारपर्यन्तं गतागतरूपेण प्रादक्षिण्यम्।
१९. तुर्यावस्था नमस्कारः।
२०. देहशून्यप्रमातृतानिमज्जनं बलिहरणम्।
२१. सत्वमस्ति कर्तव्यमकर्तव्यमौदासीन्यनित्यात्मविलापनं होमः।
२२. स्वयं तत्पादुकानिमज्जनं परिपूर्णध्यानम्।

भावनोपनिषदोक्त पूजा का फल— भावनोपनिषद् में कहा गया है कि उक्त भावनोपदिष्ट पूजा का फल जीवन्मुक्ति देवात्मैक्यसिद्धि एवं कामनासिद्धि होती है और ऐसा साधक शिवयोगी कहलाता है— 'एवं मुहूर्त्तत्रयं भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति। तस्य देवताऽऽत्मैक्यसिद्धिः। चिन्तितकार्याण्ययत्नेति सिध्यन्ति। स एव शिवयोगीति कथ्यते'।

लक्ष्मीधर ने लक्ष्मीधरा में समयमत का निरूपण करते हुये कहा है कि समयमत में मात्र सहस्रदल कमल में ही भगवती की पूजा करनी चाहिये— 'समयिनां सहस्रकमलपर्यन्तं आन्तरपूजा कर्तव्या'। सूर्यमण्डल आदि के मध्य भगवती की पूजा नहीं करनी चाहिये, यद्यपि इसका विधान सुभगोदय में है।

भावनोपनिषद् की दृष्टि— भावनोपनिषद् के दो संस्करण प्राप्त होते हैं और दोनों ही पाठभेद की दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं। इसका एक संस्करण तो आड्यार लाइब्रेरी से (The Shakta Upanishad) के रूप में प्रकाशित हुआ है और दूसरा मैसूर विश्व-विद्यालय के ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट-मैसूर से प्रकाशित हुआ है। दोनों पाठभेद की दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं। मैसूर वाले संस्करण में भावनोपनिषद् के साथ ही साथ उस पर भास्करराय का भाष्य भी प्रकाशित है। आचार्य भास्कर ने भी भावनोपनिषद् के इस पाठभेद का उल्लेख किया है— 'तेनास्यामेवोपनिषदि शाखाभेदेन पाठभेददर्शनेऽपि'।

भावनोपनिषद् में भगवती त्रिपुरसुन्दरी की भावनामूलक उपासना का प्रतिपादन किया गया है। भावना की पद्धति से जो उपासना अनुष्ठेय है, उस भावनोपासना में 'तर्पण' का क्या अर्थ है? भावनोपनिषद् (मैसूर-संस्करण) में कहा गया है कि 'भावनाविषयाणाम-भेदभावना तर्पणम्' (सूत्र-३२)।

भास्करराय इसकी व्याख्या करते हुये कहते हैं कि यद्यपि पूजा के समस्त उपकरणों (गुरु से होमपर्यन्त) को भिन्न-भिन्न या पृथक्-पृथक् रूपों में कल्पित करके इनकी सहायता से भगवती की पूजा की जाती है; किन्तु उपकरणों की पृथक्-पृथक् सत्ता मानकर जो पूजा की जाती है, उससे उपकरणों में भेदबुद्धि तो बनी ही रहती है; अत: उसे उन्मूलित करने हेतु समस्त पदार्थों में परस्पर अभेदभावना रखना (भेद का अभेद द्वारा निगरण) या पदार्थों की निर्विकल्प तुरीयाखण्डविषयता का अनुभव करके और बाद में उसका भी त्याग करके स्वात्मामात्र के अवशिष्ट रह जाने की कल्पना या अनुभूति करना ही तर्पण वासना है।

यदि यह कहा जाय कि 'ताम्बूलमर्चना स्तोत्रं तर्पणञ्च नमस्क्रिया' में तो ताम्बूल + अर्चना + स्तोत्र 'नमस्क्रिया एवं तर्पण' पृथक्-पृथक् गिनाये गये हैं तो सभी एक कैसे हैं? तो इसका समाधान यह है कि यह भेदबुद्ध्यात्मक उपचार केवल आवरणदेवों के उपचार हैं। स्व से पृथक् इतर वस्तुओं की भेदबुद्धि को रोकना भी तर्पण कहा गया है—

एषामन्योन्यसैभेदभावनं तर्पणं स्मृतम्।

भावनोपनिषद्भाष्य में भास्करराय कहते हैं कि 'यावन्त: पदार्था: इह भाविता ये च भावयिष्यन्ते तेषां सर्वेषामपि परस्पराभेदभावनेन विषयतावैलक्षण्यप्रयुक्तभेदभावनस्यापि निगरणेन निर्विकल्पतुरीयाखण्डविषयतामापाद्य तस्या अपि त्यागेन स्वात्ममात्रावशेष: तर्पणवासना'।

'भावनाविषयाणामभेदभावना तर्पणम्' की व्याख्या इस प्रकार भी की जा सकती है— 'विषयाणामभेदभावना एव भावना, तदेव तर्पणम्'।

होमविषयक भावनोपनिषद्-दृष्टि— 'अहं त्वमस्तिनास्तिकर्त्तव्यमकर्त्तव्यमुपासितव्य-मिति विकल्पानामात्मनि विलापनं होमः'।

विज्ञानभैरव की दृष्टि—

महाशून्यालये वह्नौ भूताक्षविषयादिकम्।
हूयते मनसा सार्धं स होमश्चेतना स्रुचा।।

महाशून्य अर्थात् शून्यातिशून्य पदवी (महामाया शक्ति) का जिस परतत्त्वात्मक परभैरवस्वरूप वह्नि में विलयन हो जाता है, उस बोधभैरवरूप अग्नि में पञ्च महाभूतों, एकादश इन्द्रियों, पञ्च विषयों एवं भुवनतत्त्व आदि संकल्प-विकल्पात्मक सकल जगत् की चितिनामक स्रुवा से आहुति देना ही होम है।

स्वच्छन्दतन्त्र की दृष्टि—

एवं हृदयाम्बुजावस्थो यष्टव्यो भैरवो विभुः।
स बाह्याभ्यन्तरं कृत्वा पश्चाद्यजनमारभेत्।।

योगिनीहृदयदीपिका की दृष्टि— इस ग्रन्थ में निम्न श्लोक ग्रन्थान्तर से उद्धृत है—

धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्णावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्।। (ज्ञानार्णवतन्त्र)

नैदानैस्तर्पणैः सम्यग् विशुद्धैरमृतात्मभिः।
मदहन्तां करोमीदं विश्वं हव्यपुरस्सरम्।। (सुभगोदयवासना)

'श्रीमद्भगवद्गीता' के अनुसार ज्ञान से जलाई गई योगाग्नि में समस्त विषयों की आहुति देना ही होम माना गया है। इसी आत्मसंयमस्वरूप योगाग्नि में समस्त ऐन्द्रिय एवं प्राणिक कर्मों की आहुति देने को होम माना गया है—

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।।

'श्रीसुभगोदय' की दृष्टि में पराहन्तामय संविदग्नि में इदन्तास्वरूप हव्य की आहुति देना ही होम है—

पराहन्तामये संविदग्नौ संवेद्यतर्पणे।
इदन्तालक्षणं हव्यं जुहुयादबहिर्मुखः।।

'महार्थोदय' में इदन्ता को ही आहुति स्वीकार किया गया है, जिसे चैतन्य के मुख में डालना चाहिये। कहा गया है कि—

अथ हव्यमिदन्ताख्यं हावं हावं स्वचिन्मुखे।

मैं-तुम, है-नहीं है, करना चाहिये-नहीं करना चाहिये, उपासना के योग्य है— उपासना के योग्य नहीं है— आदि समस्त विकल्पों का आत्मा में विलापन ही होम है।

यही दृष्टि भावनोपनिषद् की भी है—'अहं त्वमस्तिनास्तिकर्त्तव्यमकर्त्तव्यमुपासितव्यमिति विकल्पानामात्मनि विलापनं होमः'। आशय यह है कि विकल्पों का आत्मा में विलापन ही होम है। विकल्प क्या हैं? इनके जनक कौन हैं? इनका प्रभाव क्या है? इनके निराकरण का फल क्या है? इन सभी शंकाओं का समाधान यह है कि मूलतः स्वभाव-परामर्श का नाम ही विकल्प है। इसके दो भेद हैं— नैश विकल्प और स्वच्छ विकल्प।

भेदों के द्वारा तत्त्व-सन्धान ही नैश विकल्प है और भेदों की सहायता लिये विना ही तत्त्वपरामर्श स्वच्छ विकल्प है। नैश या मायीय विकल्पों में स्नान, अर्चना, होम, ध्यान, जप, चक्रपूजा आदि परिगणित हैं। नैश (मायीय) विकल्पों के परामर्श द्वारा भी भेद से अभेद के मार्ग की यात्रा की जाती है और अभेदत्व प्राप्त किया जाता है। समस्त विश्व विकल्पों के बन्धनों से ही तो परिबद्ध है। स्पन्दप्रदीपिका में कहा भी है—

स्वविकल्पकृतैर्बन्धैर्बध्यते त्वनिशं जगत्।

'आत्मसप्तति' का मत तो यह है कि वस्तुतः 'बन्धन' नाम की कोई चीज है ही नहीं; फिर मुक्ति का क्या मतलब है? दोनों प्रत्ययों को मात्र विकल्प ने गढ़ा है। यथार्थतः बन्धन एवं मुक्ति दोनों का अस्तित्व नहीं है—

वस्तुस्थित्या न बन्धोऽस्ति तदभावान्न मुक्तता।
विकल्पघटितावेतावुभावपि न किञ्चन।।

बन्धन, बन्धनकर्त्ता एवं बद्ध— ये तीनों एक ही हैं। इन सभी को विकल्प ने गढ़ा है; क्योंकि ये सभी अपने विकल्प से ही बँधे हुये हैं और इसी विकल्प से समस्त जगत् बँधा हुआ है। स्पन्दप्रदीपिका में कहा भी गया है—

बन्धनं बन्धकृद्बध्यस्त्रिष्वप्येको न भिद्यते।
स्वविकल्पकृतैर्बन्धैर्बध्यते त्वनिशं जगत्।।

'नारदसंग्रह' के अनुसार जैसे भुना हुआ बीज अंकुरित नहीं होता, वैसे ही विकल्प-रहित चित्त भी पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है—

यथा सुभर्जितं बीजं नेह भूयः प्ररोहति।
विकल्पक्षीणचित्तस्य तथा भूयो न संसृतिः।।

विकल्प को छोड़कर कोई अन्य बन्धन ही नहीं है। विकल्पों का ताना-बाना एवं प्रपञ्चीकरण ही तो जगत् एवं बन्धन है—

सर्वो विकल्पः संसारो नान्यो बन्धो विकल्पतः।

'अभिनवगुप्तपाद' तन्त्रालोक में कहते हैं कि निर्विकल्प परामर्श के प्रसाद से ही शिव-तादात्म्य उपलब्ध होता है और उसके बाद होने वाले विकल्पों का कोई मूल्य नहीं रह जाता—

तत्प्रसादात्पुनः पश्चाद्भाविनोऽत्र विनिश्चयाः।
सन्तु तादात्म्यमापन्ना न तु तेषामुपायता।।

आचार्य भास्करराय 'मखिन' भावनोपनिषद्-भाष्य में कहते हैं कि श्रीचक्र में तो अनन्त शक्तियाँ हैं और यह विश्व-विकल्पों की जन्मदात्री है। कहा भी गया है—

अन्यास्तु शक्तयश्चक्रगामिन्यो यास्समन्ततः।
तास्तु विश्वविकल्पानां हेतवः समुदीरिता।।

विश्वात्मैक्य, शुद्धभैरवापत्ति एवं शिवोऽहं की अनुभूति के अनन्तर तो विकल्पों के विस्तार की स्थिति में भी साधक महेश्वर ही बना रहता है—

सर्वो ममायं विभव इत्येवं परिजानतः।
विश्वात्मनो विकल्पानां प्रसरेऽपि महेशता।।

किन्तु सामान्य जागतिक स्थिति में विकल्प बन्धन के केन्द्र हैं।

विकल्पों का स्वभाव ही है— भेदवादोत्पत्ति। विकल्प एवं भेद से अज्ञान और बढ़ता है। इसे ही 'अख्याति' (अज्ञान) भी कहते हैं। विवेक में जयरथ ने कहा भी है— 'विकल्पो हि भेदप्रथात्मकः स चैव अख्यातिरूपत्वादज्ञानम्'।

श्रीमन्त्रिशाटनशास्त्र में कहा गया है कि बौद्ध अज्ञान की निवृत्ति हो जाने पर विकल्पों का उन्मूलन हो जाता है और उससे साधक को मुक्ति प्राप्त हो जाती है। तन्त्रालोक में कहा भी है—

बौद्धज्ञाननिवृत्तौ तु विकल्पोन्मूलनाद् ध्रुवम्।
तदैव मोक्ष इत्युक्तं धात्रा श्रीमन्त्रिशाटने।।

इसीलिये कहा भी गया है—

विकल्पयुक्तचित्तस्तु पिण्डपाताच्छिवं व्रजेत्।
विकलहीनचित्तस्तु ह्यात्मानं शिवमव्ययम्।।

अभिनवगुप्तपाद भी यही कहते हैं—

विकल्पयुक्तचित्तस्तु पिण्डपाताच्छिवं व्रजेत्।
इतरस्तु तदैवेति शास्त्रस्यात्र प्रधानतः।।

इन्हीं दृष्टियों को मन में रखकर आचार्य भास्कर कहते हैं कि 'ईदृशविकल्पानामप्यात्मस्वरूपत्वमात्माविशेषविभावनमेव होमभावना'। भाव यह कि ये भेदप्रथात्मक अनन्त मनो-जात विकल्प भी जब आत्मस्वरूप में लयीभूत हो जाते हैं, तब उनको भी आत्मस्वरूप में विभावित करना ही 'होमभावना' है। कहा भी गया है— 'होमो विश्वविकल्पानां स्वात्म-न्यस्तमयो दृढम्'। तात्पर्य यह कि विकल्पों के निर्व्युत्थान विलापनपूर्वक उनके जन्मदाता शक्तिकदम्बस्वरूप देवताओं में विलीन हो जाने की भावना ही होम है और होम की इसी स्वरूप में भावना करनी चाहिये— 'विकल्पानां निर्व्युत्थानविलापनपूर्वकं

तद्धेतुकशक्तिकदम्बकस्य देवतायां विलीनतां भावयेदिति फलितार्थः'।

उपचार— भावनोपनिषद् कहता है कि 'भावनायाः क्रिया उपचाराः'। उपचार का अर्थ क्या है? भगवती ललिता को स्वात्मा से अभिन्न मानकर की गई धारावाहिक समस्त क्रियायें उपचार हैं— 'उक्तायाः स्वात्माभेदेन ललिताभावनायाः क्रियाः पुनः पुनः कणानि धारावाहिन्यो भावना इति यावत्'। तन्त्रराज में भी इसी भाव का प्रतिपादन पहले से ही किया गया है— 'उपचारश्चलत्वेऽपि तन्मयत्वाप्रमत्तता'। चलत्व = चाञ्चल्य।

भास्करराय कहते हैं कि उपचार-समर्पण-व्यापार में (गन्धादि समर्पण के समय) भेददृष्टि तो बनी ही रहती है, किन्तु अविरोधिनी उपचारभावना की स्वेच्छापूर्वक उद्भावना अवश्य करनी चाहिये; क्योंकि उपचार में यही भावना अन्तर्निहित है— 'उपचारसमर्पणस्य भेदघटितत्वेन यथास्थितगन्धादिभावनापक्षे पूर्वभावितस्य भेदस्य प्रमोषापत्तेस्तद्विरोधिनीरेवोपचार-भावनाः स्वेच्छया कल्पयेदिति भावः'।

तन्त्रराजतन्त्र की दृष्टि— चलत्व (चाञ्चल्य) के रहने पर भी स्थैर्यभावनात्मक अभेदभावना एवं ब्रह्ममयत्व के अंश में अप्रमाद (सावधानी रखना) के स्वरूप वाली विभावना ही उपचार है। भास्करराय कहते भी हैं— 'अभेदभावनास्थैर्याभावः (चलत्वं) तादृशस्वभावशीलत्वेऽपि ब्रह्ममयत्वांशे प्रमादाभावोऽतीवसावधानता यथा स्यात्तथा विभावना एवोपचार इति'।

भास्करराय कहते हैं कि अपनी इन्द्रियों की विषयोपभोगजनित समस्त आनन्दानुभूतियों की अपनी आत्मा के साथ अभेदानुसन्धानपूर्वक भावना करना ही सपर्या है— 'स्वात्माभेदे-नानुसन्धानं.....भावनया सपर्या'। सौन्दर्यलहरी में कहा भी गया है—

सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्।

अपने शरीर के अन्तर्गत पार्थिव-नाभस-वायवीय-तैजस भागों का चन्द्रमण्डल में स्थित अमृत एवं उसके मण्डल का जडभागापनयनपूर्वक सच्चिदानन्द मात्रावशेषस्वरूप ब्रह्ममयत्व का विभावन करना ही गन्ध-ताम्बूलान्त षड् उपचार है। नित्याहृदय में इस भाव का प्रतिपादन भी किया जा चुका है—

भवतीं त्वन्मयैरेव नैवेद्यादिभिरर्चयेत्।
पञ्चभूतमयं विश्वं तन्मयी सा सनातनी।।

आचार्य भास्कर का कथन है कि सामान्य उपचारों में तो भौतिक पदार्थ अहोरात्र काल आदि की अपेक्षा है, किन्तु भावनोपासना में द्रव्यों के भौतिक न होने एवं कालादिक नियमों की अपेक्षा न होने के कारण दूसरे उपचार ही कल्पित किये गये हैं— 'अन्य-थैवोपचाराः कल्पनीयाः'। ये उपचार इस प्रकार हैं—

१. **आसन**— अपनी महिमा में प्रतिष्ठित भावना ही यहाँ आसन है।

२. **पाद्य**— अस्ति-भाति-प्रियांशमात्र रूप वाला जल ही पादप्रक्षालन जल (पाद्य) है।

३. अर्घ्य— उसी सूक्ष्म प्रपञ्च का एकदेशत्वाविशेषाध्यस्तत्वेन परिकल्पना द्वारा उक्त रीति से मत-निरास ही अर्घ्य है।

४. आचमन— भावनारूप जल का भी कबलीकार ही आचमन है।

५. स्नान— सत्वचित्वानन्द के कारण समस्त अवयवों की अभेदरूप में भावना करना रूप जो जलसम्पर्क है, वही स्नान है।

६. वस्त्र— उन अवयवों में उक्त जलसम्पर्क से प्रसक्त वृत्तिविषयता का प्रच्छन्नभावन ही वस्त्र है।

७. आभरण— निर्विषयत्व निरञ्जन होने के कारण अनेक ब्रह्मलिङ्गभूत तदभिन्न विभावन ही आभरण है।

८. स्तोत्र— प्रकृतभावनाङ्ग मन्त्र में परा-पश्यन्ती आदि समस्त शब्दों की नाद द्वारा ब्रह्म में उपसंहारविभावना ही स्तोत्र है।

९. प्रदक्षिणा— चित्तवृत्तियों का विभिन्न विषयों में इतस्तत: दौड़ने एवं विषयगत जाड्य के निराकरणपूर्वक उनका ब्रह्म में विलापन करना ही प्रदक्षिणा है।

आड्यार लाइब्रेरी (मैसूर) से प्रकाशित भावनोपनिषद् के अनुसार उपचारों का स्वरूप निम्नलिखित है—

१. पादोदक के लिये समर्पित सलिल— ब्रह्मानन्दयोगिन के मतानुसार गुरु-मन्त्र-आत्मा देवता का सौहित्यकारण (एकीकरण) स्वरूप सत्त्व ही साधक का परम कर्तव्य है और इसकी विपरीत दृष्टि अकर्तव्य है— इस भावनायोग वाला उपचार ही सलिल है।

२. उपचार— मात्र ब्रह्म ही है और उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है— इस द्वैतग्रासात्मक अद्वैत ज्ञान की कर्तव्य बुद्धि ही उपचार है।

३. आसन— बाह्याभ्यन्तर इन्द्रियों एकरूपात्मक विषय को ग्रहण करना ही आसन है।

४. पाद्य— केवल कुम्भक द्वारा सुषुम्णा नाड़ी में प्रवेश करने के अनन्तर मूला-धार, भ्रूमध्य के ऊपर स्थित प्रत्यक पराभिधानात्मक रक्त-शुक्ल पदों का एकीकरण ही पाद्य है।

५. अर्घ्य— प्रत्यगभिन्न ब्रह्मस्वरूप एवं उज्ज्वलदामोदानन्द रूप से अखण्ड अव-स्थान ही साधक का कर्तव्य है— ऐसा निश्चय करके इसको अपने शिष्यों को प्रदान करना ही अर्घ्य है।

६. आचमनीय— जो स्वत:सिद्ध स्वच्छ हो, वही आचमनीय है। ब्रह्म के अति-रिक्त कोई स्वच्छ नहीं है। ब्रह्मग्रन्थि-विष्णुग्रन्थि-रुद्रग्रन्थि से अनुविद्ध रसनाड़ी सुषुम्णा ही स्वच्छ है; अत: ब्रह्म का अपर धाम है और उससे प्रवाहित स्वच्छ अमृत का पान ही आचमनीय है।

७. स्नान— सहस्रार के चेतन चन्द्र से युक्त केन्द्र से स्रवित अमृत का शरीर के समस्त अङ्गों पर स्रवण (टपकना) ही स्नान है।

८. **वस्त्र**— चिदग्निस्वरूप परमानन्द शक्ति का स्फुरण ही वस्त्र है।

९. **ब्रह्मसूत्र**— इच्छा-ज्ञान-क्रिया से युक्त एवं ब्रह्मग्रन्थिमय तन्तुस्वरूपा ब्रह्मनाड़ी ही ब्रह्मसूत्र है।

१०. **विभूषण**— अपने से अतिरिक्त वस्तुओं के सम्पर्क में न रहने का स्मरण बने रहना ही विभूषण है।

११. **गन्ध**— स्वच्छ स्वपरिपूरणानुस्मरण ही गन्ध है।

१२. **कुसुम**— मन के समस्त विषयों का स्थिरतापूर्वक अनुसन्धान ही कुसुम है।

१३. **धूप**— उसी को सदैव स्वीकार करना ही धूप है।

१४. **दीप**— योगकाल में प्राणपान एवं अग्नि की एकता से सुषुम्ना में सच्चिदानन्दात्मक एवं उल्कारूप आकाशदेह ही परम दीपक है। पवनच्छिन्न एवं ऊर्ध्व दिशा में प्रज्ज्वलित उल्का आकाशदेह ही दीप है।

१५. **नैवेद्य**— समस्त यातायात का निषेध ही नैवेद्य है। आत्मयात्रा छोड़कर शेष समस्त इन्द्रियों की विषय-पथ पर की जाने वाली यात्राओं का— आवागमन का— त्याग ही नैवेद्य है।

१६. **ताम्बूल**— तीनों अवस्थाओं का एकीकरण ही ताम्बूल है। तुर्यावस्था, जिसमें तीनों अवस्थाओं का एकीकरण हो जाता है, ताम्बूल है।

१७. **प्रादक्षिण्य**— मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त तथा ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधारपर्यन्त जो (चिति शक्ति की) यात्रा होती है, उसे ही प्रदक्षिणा कहा जाता है।

१८. **नमस्कार**— तुर्यावस्था (मैं तुरीयस्वरूप हूँ— यह बोध) ही नमस्कार है।

१९. **बलिहरण**— देह एवं शून्य की प्रमातृता का निमज्जन ही बलिहरण है।

२०. **होम**— सत्त्व-अस्ति-कर्तव्य-अकर्तव्य-औदासीन्य आदि सभी का नित्य चिरन्तन आत्मा में विलापन ही होम है। इस सूत्र का पाठान्तर भी मिलता है। दोनों पाठ इस प्रकार है—

क. आड्यार-संस्करण— सत्वमस्तिकर्तव्यमकर्तव्यमौदासीन्यनित्यात्मविलापनं होमः।

ख. मैसूर-संस्करण— अहं त्वमस्तिनास्तिकर्तव्यमकर्तव्यमुपासितव्यमिति विकल्पानामात्मनि विलापनं होमः।

२१. **ध्यान**— गुरु की पादुका में निमज्जित हो जाना ही परिपूर्ण ध्यान है।

भावनोपनिषद् का प्रथम सूत्र भी गुरुपरक है— 'श्रीगुरुः परमकारणभूता शक्तिः'। भावना का फल क्या है? भावना का फल है— जीवन्मुक्ति। उक्त समस्त उपचारों के साथ तीन मुहूर्त्तपर्यन्त भावनायुक्त होने पर ही साधक जीवन्मुक्त हो जाता है। जीवन्मुक्ति की स्थिति में साधक की आत्मा एवं इष्टदेवता में ऐक्य स्थापित हो जाता है। इतना ही नहीं; इस परदशा में साधक के समस्त चिन्तित एवं अभीष्ट कार्य सिद्ध हो जाते हैं। इसे ही शिवयोगी कहा जाता है— 'एवं मुहूर्त्तत्रयं भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति। तस्य देवताऽऽत्मैक्यसिद्धिः। चिन्तितकार्याण्ययत्नेन सिध्यन्ति। स एव शिवयोगीति कथ्यते।

आत्मपूजोपनिषद् के अनुसार मानसोपचार—

१. तस्य निश्चिन्तनं ध्यानम्— आत्मा का निरन्तर चिन्तन ही ध्यान है।
२. सर्वकर्मनिराकरणमावाहनम्— सभी कर्मों का त्याग कर देना ही आवाहन है।
३. निश्चलज्ञानमासनम्— निश्चल ज्ञान ही आसन है।
४. समुन्मनीभावः पाद्यम्— उन्मनीभाव ही पाद्य है।
५. सदामनस्कमर्घ्यम्— सदैव अमनस्क भाव धारण करना ही अर्घ्य है।
६. सदा दीप्तिराचमनीयम्— आत्मा की शाश्वत दीप्ति ही आचमन है।
७. वराकृतप्राप्तिः स्नानम्— वरदान की प्राप्ति ही स्नान है।
८. सर्वात्मकत्वं दृश्यविलयो गन्धः— सर्वात्मकस्वरूप दृश्य का विलय गन्ध है।
९. दृगविशिष्टात्मानः अक्षताः— अन्तर्चक्षुज्ञान ही अक्षत है।
१०. चिदादीप्तिः पुष्पम्— चित् तत्त्व का प्रकाश ही पुष्प है।
११. सूर्यात्मकत्वं दीपः— अपने को सूर्य समझना ही दीपक है।
१२. परिपूर्णचन्द्रामृतरसैकीकरणं नैवेद्यम्— पूर्ण चन्द्र के अमृत का एकीकरण ही अमृत है।
१३. निश्चलत्वं प्रदक्षिणम्— निश्चलता ही प्रदक्षिणा है।
१४. सोऽहम्भावो नमस्कारः— 'सोऽहं' का भाव ही नमस्कार है।
१५. परमेश्वरस्तुतिर्मौनम्— परमेश्वर की स्तुति ही मौन है।
१६. सदा सन्तोषो विसर्जनम्— सतत् सन्तुष्टि ही विसर्जन है।
१७. एवं परिपूर्णराजयोगिनः सर्वात्मकपूजोपचारः स्यात्।
१८. सर्वात्मकत्वं आत्माधारो भवति— सर्वात्मकत्व ही आत्मा का आधार है।
१९. सर्वनिरामयपरिपूर्णोऽहमस्मीति मुमुक्षूणां मोक्षैकसिद्धिर्भवति।

महामाहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्तपाद कहते हैं कि हे जगदम्बिके ! संसार में कौन-सा वाङ्मय ऐसा है, जो तुम्हारी स्तुति नहीं है? क्योंकि तुम्हारा समस्त शरीर समस्त शब्दसमूह है। हे देवि ! समस्त आकृतियों में आपके स्वरूप का ही दर्शन होता है। मेरे समय का क्षुद्रतम अंश भी तुम्हारी स्तुति, जप, पूजा या ध्यानरहित नहीं है। मेरे सम्पूर्ण जागतिक आचार-व्यवहार तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न रूपों के प्रति यथोचित रूप से व्यवहृत होने के कारण तुम्हारी पूजा के रूप में परिणत हो गये हैं—

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके ! सकलशब्दमयी किल ते तनुः।
निखिलमूर्तिषु मे भवदनवयो मनसिजासु बहिःप्रसरासु च।।

इति विचिन्त्य शिवे ! शमिताशिवे ! जगति जातमयत्नवशादिदम्।
स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता न खलु काचन कालकलास्ति मे।।

आचार्य शंकर भी इसी भावनोन्मुख उपासना या मानसोपचार का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि—

१. हे प्रभु शंकर ! तुम मेरी आत्मा हो।
२. भगवती पार्वती ही मेरी बुद्धि है।
३. प्राण ही मेरे सहचर हैं और शरीर ही मेरा घर है।
४. मेरी सारी उपभोग-सामग्री (भोजनादिक) तेरी पूजा है।
५. मेरी निद्रा ही समाधि है।
६. मेरा अपने चरणों द्वारा घूमना, चलना, टहलना आदि तुम्हारी प्रदक्षिणा है।
७. मेरे मुख से निकले सारे वाक्य तेरी पूजा के स्तोत्र हैं।
८. मै जो कुछ भी क्रियाकलाप निष्पादित करता हूँ, वे मेरे समस्त क्रियाकलाप तेरी आराधनमात्र हैं; इसके अतिरिक्त कुछ नहीं—

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम्।
पूजा ते विविधोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरः।
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भोः तवाराधनम्।।

सन्त कबीरदास की दृष्टि— मध्ययुगीन भारतीय आध्यात्मिक साधना के अग्रदूत महात्मा कबीरदास ने भी आठवीं शताब्दी के महान् आचार्य शंकर की परापूजा (मानस-पूजा) के भावों को ही प्रस्तुत किया है। भगवन्नाम, सुमिरन, पूजा और अद्वैतात्मक समत्व भाव की परिभाषा क्या है? उसका रहस्यात्मक अर्थ एवं स्वरूप क्या है? सन्त कबीर-दास कहते हैं—

कहूँ सो नाम, सुनूं सो सुमिरन जो कुछ करूँ सो पूजा।
गिरह-उद्यान एक सम देखूँ भाव मिटाऊँ दूजा।।

भगवान् की प्रदक्षिणा या परिक्रमा क्या है? भगवान् की सेवा क्या है और भगवान् को जो साष्टांग दण्डवत् किया जाता है, वह क्या है? उसका कबीर-भावित स्वरूप क्या है? कबीरदास जी कहते हैं—

जहँ जहँ जाउँ सोई परिकरमा, जो कछु करुँ सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत् पूजूँ और न देवा।।

यथार्थ पूजा तो वही है, जिसमें पृथक् से पूजा करने की आवश्यकता ही न पड़े; प्रत्युत साधक के समस्त व्यापार ही भगवान् की पूजा के अंग बन जायँ तथा काल का क्षुद्रतम से क्षुद्रतम अंश भी भगवान् की पूजा से पृथक् न रह जाय। इस विषय में आचार्य अभिनवगुप्तपाद कहते हैं— 'स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता न खलु काचन कालकलास्ति मे'। आचार्य शंकर इसे इस प्रकार व्यक्त करते हैं— 'यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्'। पूजा के विषय में सन्त कबीर इस प्रकार कहते हैं—

शब्द निरन्तर मनुआ राता मलिन वचन का त्यागी।
ऊठत-बैठत कबहुँ न विसरै ऐसी तारी लागी।।

आँख न मूँदूँ कान न रुँधूँ, काया-कष्ट न धारूँ।
खुले नैन मैं हँस हँस देखूँ, सुन्दर रूप निहारूँ।।

अर्थात् व्युत्थानावस्था और तुरीयावस्था में कोई भेद ही नहीं रह गया, जागतिक जीवन एवं साधना में कोई अन्तर ही नहीं रह गया और जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरीय-तुरीयातीत-बन्धन-मुक्ति-सामरस्य और जीवन्मुक्ति सभी परस्पर घुल-मिलकर एक हो गये।

इसी उपर्युक्त प्रकरण में आचार्य शंकर इस प्रकार प्रश्न करते हैं—

१. अखण्ड, सच्चिदानन्द और निर्विकल्पैकस्वरूप अद्वितीय भाव के स्थिर हो जाने पर किस प्रकार पूजा की जाय?
२. जो पूर्ण है, उसका आवाहन कहाँ किया जाय?
३. जो सबका आधार है, उसके आधार (आसन) के लिये कौन-सा आसन दिया जाय?
४. जो स्वयं स्वच्छ है, उसको पाद्य और अर्घ्य कैसे दें?
५. जो नित्य शुद्ध है, उसको आचमन के लिये जल कैसे दें?
६. निर्मल के लिये स्नान कैसा? विश्वोदर के लिये वस्त्र कैसा?
७. गोत्रशून्य एवं वर्णातीत को यज्ञोपवीत कैसा?
८. निर्लेप के लिये गन्ध कैसा? निर्वासनिक को पुष्प कैसा?
९. निर्विशेष को भूषादान कैसा? उसका शोभाकरण कैसा?
१०. निरञ्जन को धूप-दान कैसा? सर्वसाक्षी को दीप कैसा?
११. निजानन्दामृत से तृप्त को नैवेद्य कैसा?
१२. स्वप्रकाश, चित्स्वरूप, सूर्य-चन्द्रावभासक एवं विश्वानन्द को ताम्बूल-समर्पण कैसा?
१३. अनन्त की परिक्रमा कैसी? अद्वितीय को नमस्कार कैसा?
१४. वेदवाक्यों से भी जो अज्ञात है, उसका स्तवन कैसा?
१५. स्वयंप्रकाश एवं विभु की नीराजना कैसी?
१६. बाह्याभ्यन्तर-सर्वपूर्ण का विसर्जन कैसा?

आचार्य शंकर का कथन है कि ब्रह्मवेत्ताओं का सर्वदा एवं सभी अवस्थाओं में इसी प्रकार एकबुद्धि से भगवान् की परापूजा करनी चाहिये—

एवमेव परापूजा सर्वावस्थासु सर्वदा।
एकबुद्ध्या तु देवेश विधेया ब्रह्मवित्तमैः।।

आचार्य शंकर पूछते हैं—

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम्।
स्वच्छस्य पाद्यर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः।।

निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च।
अगोत्रस्य त्ववर्णस्य कुतस्तस्योपवीतकम्।।

निर्लेपस्य कुतो गन्धः पुष्पं निर्वासनस्य च।
निर्विशेषस्य का भूषा कोऽलङ्कारो निराकृतेः।।

निरञ्जनस्य किं धूपैर्दीपैर्वा सर्वसाक्षिणः।
निजानन्दैकतृप्तस्य नैवेद्यं कि भवेदिह।।

विश्वानन्दपितुस्तस्य किं ताम्बूलं प्रकल्प्यते।
स्वयंप्रकाशचिद्रूपो योऽसावर्कादिभासकः।। आदि ।।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के पञ्चपुष्पबाण— भावनोपनिषद् कहता है कि 'शब्दादितन्मात्राः पञ्चपुष्पबाणाः' (सूत्र-२१) अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धरूप पञ्चतन्मात्रायें ही भगवती के पञ्चपुष्पबाण हैं। चूँकि ये अभिमुख हैं और अन्त में परुष हैं; अत एव ये बाण से अभिन्न है। जो अविकृत मन है, वही पुण्ड्रेक्षुचाप है। मन विषयपरामर्शरूप इन्द्रियों का प्रेरक है।

धनुष— 'मन इक्षुधनुः' (भावनोपनिषत्सूत्र-२२) के अनुसार विकार-शून्य मन ही भगवती का इक्षु-धनुष है।

पाश— 'रागः पाशः' (भावनोपनिषत्सूत्र-२३)। राग क्या है? प्रश्न के उत्तर में भास्कराय कहते हैं कि 'रागः प्रीतिः षट्त्रिंशदन्तर्गता तत्त्वविशेषः न त्विच्छासामान्यम्।

यहाँ 'राग' शब्द का अर्थ प्रेम नही; अपितु ३६ तत्त्वों में जो पञ्चकञ्चुकान्तर्गत राग-तत्त्व है, उसे ही यहाँ राग कहा गया है और वही रागतत्त्व भगवती के हाथ में धृत 'पाश' है। इस प्रकार राग ही बन्धनप्रद भी है और 'राग' (प्रीति) भी; अतः 'राग' एवं 'पाश' दोनों को पर्यायरूप में स्वीकार किया गया है।

अंकुश— 'द्वेषोऽङ्कुशः' (भावनोपनिषत्सूत्र-२४)। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ने अपने हाथ में जो अंकुश धारण कर रक्खा है, वह द्वेष का प्रतीक है। प्रश्न उठता है कि क्या भगवती द्वेष को अपने आयुध के रूप में धारण करके उनका जगत् में प्रसार करती हैं? नहीं। इसका अर्थ तो यह है कि द्वेष उनका दास है और वे उसकी शासिका हैं; अतः वे उसका किसी भी प्रकार से उपयोग कर सकती हैं।

जिस प्रकार हाथी को वश में करने के लिये उसके गण्डस्थल पर अंकुश का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार भगवती भी द्वेष को नियन्त्रित, निवारित करने हेतु इसका प्रयोग करती हैं; इसीलिये इसे 'अंकुश' कहा गया है।[१] ललितासहस्रनाम में कहा भी गया है—

रागस्वरूप-पाशाढ्या क्रोधकाराङ्कुशोज्वला।
मनोरूपेक्षुकोदण्डा पञ्चतन्मात्रसायका।।

१. भास्करराय : 'द्वेषः क्रोधः तस्य द्वेष्यान्निवारकत्वादङ्कुशता'।

तन्त्रराजतन्त्र में भी कहा गया है—

.....मन्मात्राः पुष्पसायकाः।
मनो भवेदिक्षुधनुः पाशो राग उदीरितः।
द्वेषः स्यादङ्कुशः प्रोक्तो क्रमेण वरवर्णिनि।।

भगवान् कामेश्वर का स्वरूप— 'निरुपाधिका संविदेव कामेश्वरः' (भावनोपनिषत्सूत्र-२६)। उपाधिशून्य अर्थात् विशुद्ध चैतन्य (संवित्तत्त्व) एवं बिन्दुस्वरूपाकार तत्त्व ही कामेश्वरतत्त्व कहलाता है— 'उपाधिरहितं शुद्धं चैतन्यमेव बिन्दुरूपः कामेश्वरः'। 'संवित्कामेश्वरः स्मृतः'।

यहाँ मुख्य विशेष्या तो ललिता देवी हैं और विशेष्यतावच्छेदक कामेश्वर हैं। इन दोनों के रक्तचरण-शुक्लचरण ही रक्त-शुक्ल वर्ण हैं। उसी का स्थूल-सूक्ष्म-मिश्र चरणत्व त्रिविधात्मक है।[1]

भगवती ललिता का स्वरूप— 'सदानन्दपूर्णा स्वात्मैव परदेवता ललिता' (भावनोपनिषत् सूत्र-२७)। आशय यह कि भगवती त्रिपुरसुन्दरी अखण्ड रूप से नित्यानन्द से परिपूर्ण रहती हैं। वे अपनी आत्मा ही हैं। वे परात्पर देवता हैं। तन्त्रराजतन्त्र में कहा भी है—

स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा।
लौहित्यं तद्विमर्शः स्यादुपास्तिरिति भावना।।

पाठान्तर में भावनोपनिषद् में ही यह सूत्र भी प्राप्त होता है— 'तयोः कामेश्वरी सदानन्दघना पूर्णा स्वात्मैक्यरूपा देवता'।

जो संवित्तत्त्व है, वह निरुपाधिक है; किन्तु इसी निरुपाधिकत्व विशेषण के बल से उसके अंक में अवस्थित परदेवता की किञ्चिन्मात्र उपाधिवैशिष्ट्य के कारण भिन्नता मान कर उसके उपासस्यत्व का विधान किया गया है और उसी के सदृश ही आत्मा भी है। अपने से अभिन्न परदेवता ही ललिता देवी हैं। उन्हें ही 'सदानन्दपूर्णा' उपाधि से वर्णित किया गया है। उनका जो ललितात्व है, वह अन्तःकरणावच्छिन्न का ललितात्व नहीं है; क्योंकि वे तो उपासक कोटि के हैं और भगवती ललिता तो उपास्या हैं। इसीलिये उन्हें 'स्वात्मा' कहा गया है। अपनी (उपासक की) आत्मा अन्तर्यामी हैं। एक ही आत्मा अन्तःकरणोपाधिक होने से उपासक कही जाती है, किन्तु सत्त्व, चित्त्व एवं आनन्दत्वरूप धर्मत्रय से विशिष्ट होने पर उपास्या अर्थात् भगवती ललिता कहलाती है। धर्मत्रयविनिर्मुक्त, धर्मिमात्र एवं उपास्य देवता की आधारभूता शक्ति 'कामेश्वर' कहलाती है।[2] रत्नत्रयपरीक्षा में भी कहा गया है—

नित्यं निर्दोषगन्धं निरतिशयसुखं ब्रह्मचैतन्यमेकं
धर्मो धर्मीति भेदस्त्रितयमिति पृथग्भूय मायावशेन।
धर्मस्तत्रानुभूतिः सकलविषयिणी सर्वकार्यानुकूला
शक्तिः स्वेच्छादिरूपा भवति गुणगणस्याश्रयस्त्वेक एव।।

१. भास्करराय : भावनोपनिषद्भाष्य। २. भास्करराय : भावनोपनिषद्भाष्य (सूत्र-२७)।

कर्तृत्वं तत्र धर्मी कलयति जगतां पञ्चसृष्ट्यादिकृत्ये
धर्मः पुंरूपमाप्त्वा सकलजगदुपादानभावं बिभर्ति।
श्रीरूपं प्राप्य दिव्या भवति च महिषी स्वाश्रयस्यादिकर्तुः
प्रोक्तौ धर्मप्रभेदावपि निगमविदां धर्मिवद् ब्रह्मकोटी।।

विमर्श एवं लौहित्य का स्वरूप— 'लौहित्यमेतस्य सर्वस्य विमर्शः' (भावनोपनिषत्सूत्र-२८)। तन्त्रराजतन्त्र में भी कहा गया है—

स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा।
लौहित्यं तद्विमर्शः स्यादुपास्तिरिति भावना।।

सभी प्राणियों को अपने से प्रेम है। राग एवं लौहित्य— दोनों अभिन्नार्थक हैं और लौहित्य देवीनिष्ठ है; अतः सर्वप्राण्यानुगत है। तन्त्रराजतन्त्र में कहा गया है कि स्वात्मा ही विश्वविग्रहा ललिता देवी हैं और उनका विमर्श ही लौहित्य है। त्रिपुरसुन्दरी एवं कामेश्वर— इन दोनों का विग्रहात्मक स्थूल रूपद्वय सम्बन्ध कामेश्वराङ्कनिलयत्व पद के द्वारा व्यवह्रियमाण शिव-शक्ति का सामरस्यात्मक सम्बन्ध लाक्षाद्रव एवं पट के साथ जुड़े सम्बन्ध के समान सम्बन्ध हैं, संयोगादिक सम्बन्ध नहीं है। यह अयुतसिद्ध सम्बन्ध है, तादात्म्यरूप सम्बन्ध है, भेदघटित सम्बन्ध नहीं।[१]

उपासना के तीन रूप हैं— विग्रहादिपूजन : 'स्थूलरूप', मानस जप : 'सूक्ष्म पूजन' एवं भावना : 'पररूप'। कहा भी है— 'उपास्तेरपि त्रीणि रूपाणि, विग्रहादिपूजनं स्थूलरूपं मानसो जपस्सूक्ष्मं, एषा भावना परं रूपमिति'।[२]

सिद्धि का स्वरूप— 'अनन्यचित्तत्वेन च सिद्धिः' (भावनोपनिषत्सूत्र-२९) अर्थात् किसी लक्ष्य की ओर अनन्यचित्तत्त्व हो जाना ही 'सिद्धि' है। प्रत्येक आवरण में एक सिद्धि है, एक मुद्रा-विधान है और बहिर्याग में यह पूजा-विधान है भी। तन्त्रराजतन्त्र में भी कहा गया है—

सिद्धिस्त्वनन्यचित्तत्वं मुद्रा वैभवभावनम्।

उन-उन आवरणदेवों का अपने शरीर के अङ्गविशेष के साथ अभेद तो है; किन्तु उनकी आत्मा के साथ अनन्य सम्बन्ध होने की भावना ही उन-उन आवरणों में सिद्धि मानी गई है। 'एता मत्तो न भिद्यन्ते' ये मुझसे भिन्न नहीं है— इस प्रकार की निश्चयात्मिका बुद्धि ही सिद्धि है— 'एता मत्तो न भिद्यन्ते' इति बुद्धिरेव सिद्धिरिति यावत्।[३]

जीवन्मुक्ति— 'एवं मुहूर्त्तत्रितयं मुहूर्त्तद्वितयं मुहूर्त्तमात्रं वा भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति स एव शिवयोगीति गद्यते' (भावनोपनिषत्सूत्र-३४)। आन्तर एवं बाह्य सम्पूर्ण विश्व के विलापनपूर्वक स्वात्ममात्रावशेष भावना की अहर्निश धारावाहिकता की आवश्यकता को ध्वनित करते हुये किन्तु अशक्त साधकों में उत्तम, मध्यम एवं अधम साधककोटियों

१. भास्कराय।
२. भास्कराय : भावनोपनिषद्भाष्य
३. भावनोपनिषद्भाष्य

को देखते हुये कालनियम को तीन भागों में विभाजित करते हुये तीन मुहूर्त्त, दो मुहूर्त्त एवं मात्र एक मुहूर्त्त का उल्लेख किया गया है।

उस सूत्र में 'एवं' शब्द का उपयोग यह अर्थ ध्वनित करता है कि स्वात्ममात्रविषयिणी एवं श्वासस्तम्भसहिता निर्विकल्पक वृत्तिपूर्वक 'भावनापर' हो जाने पर व्यक्ति जीवन्मुक्त हो जाता है और शिवयोगी कहलाने लगता है।

'भावनापर' का अर्थ है— भावनेतर व्यापारशून्य साधक जब उक्त भावना में पर (आसक्त) हो जाता है और यह भावना उसमें धारावाहिक रूप में तरंगित होने लगे तभी उसे 'भावनापर' समझा जाय।[१] वेदत्रय बहिरंग कर्मों का प्रतिपादक है, जबकि अथर्वण वेद अन्तरंग कर्मों की प्रचुरता का ही प्रतिपादन करता है।[२] अतः 'य एवं वेद सोऽथर्वशिरोऽधीते'।[३]

उन संकल्पों का जो आधारभूत तेज है अर्थात् तेजस्वरूप मन ही कल्पकोद्यान है। 'मनो ज्योतिः' (तैत्तिरीयसंहिता-१.५.२) कहकर श्रुति ने भी संकल्प-विकल्पात्मक मन को ही तेजस्तत्त्व घोषित किया है।

ऋतुओं का स्वरूप— 'रसनया भाष्यमाना मधुराम्लतिक्तकटुकषायलवणरसाः षड् ऋतवः' (भावनोपनिषत्सूत्र-९)। जिह्वा के द्वारा अनुभूयमान मधुर, अम्ल, तिक्त, कटु कषाय, लवणनामक छः रस ही छः ऋतुयें हैं। तन्त्रराजतन्त्र में भी कहा गया है—

रत्नद्वीपो भवेद्देहो नवत्वं तु त्वगादिभिः।
सङ्कल्पाः कल्पतरवः स्वाधारा ऋतवः स्मृताः।।

तन्त्रराज में स्वाधारों को 'ऋतु' कहा गया है। स्वाधार क्या है? स्वाधार = डाकिनी आदि योगिनियाँ, जो कि छः चक्रों के आधार हैं, वे ही सुषुम्ना नाडी के अन्तर्गत षट्-चक्रों के रूप में आकारित दृष्टिगत होती हैं; अतः वे ही स्वाधार षट्चक्र हैं। सुषुम्ना के द्वारा इड़ा-पिङ्गला से युक्त चन्द्र-अर्कसंयोग से अनुमित एवं कलात्मक होने से तद्गत चक्रों में अमृतत्व संकेतित किया गया है।

मुद्रा का स्वरूप— 'आधारनवकं मुद्राशक्तयः' (भावनोपनिषत्सूत्र-१२) अर्थात् नौ मुद्राशक्तियाँ हैं— त्रैलोक्यमोहन चक्र के तृतीय चतुष्कोण की प्रकट योगिनियाँ (सर्व-संक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्ववशंकरी, सर्वोन्मादिनी, सर्वमहांकुशा, सर्व-खेचरी, सर्वबीजा एवं सर्वयोनिमुद्रा)।

मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूर-अनाहत-विशुद्धि-आज्ञा के ऊर्ध्व एवं नीचे दो सहस्रदल कमल हैं और एक लम्बिकाग्र है। इस प्रकार 'आधारनवक' स्थित है। इनके साथ संक्षो-भिणी आदि त्रिखण्डान्त मुद्राओं की अभिमानिनी शक्तियों का अभेद है।

योगिनीहृदय (कादिमतानुयायी ग्रन्थ) भी मुद्रा के देवताओं को शरीराववों में

---

१. भावनोपनिषद्भाष्य
२. भास्कारराय : भावनोपनिषद्भाष्य
३. भावनोपनिषत्सूत्र-३६

अवस्थित मानता है। भावनोपनिषत्सूत्र-११ 'नियति.....शक्तयः' की पुष्टि में तन्त्रराजतन्त्र में कहा भी गया है—

श्रीचक्रे सिद्धयः प्रोक्ता रसा नियतिसंयुताः।
ऊर्मयः पुण्यपापे च ब्राह्म्याद्या मातरः स्मृताः।।

पीठ का स्वरूप— 'क्रियाशक्तिः पीठम्' (भावनोपनिषद्) अर्थात् क्रियाशक्ति ही पीठ है।

ज्ञानशक्ति का स्वरूप— 'कुण्डलिनी ज्ञानशक्तिगृहम्' (भावनोपनिषद्) अर्थात् कुण्डलिनी ज्ञानशक्ति एवं गृहस्थानीय है।

इच्छाशक्ति का स्वरूप— 'इच्छाशक्तिर्महात्रिपुरसुन्दरी' (भावनोपनिषद्) अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी ही इच्छाशक्ति है।

भावनोपनिषत्सूत्र-१५ 'अलम्बुसा.....शक्तयः' में जिन नाड़ियों का उल्लेख किया गया है, उनका स्वस्वरूप निम्नानुसार है—

प्रागुक्तमूलाधारस्य मध्यस्थत्र्यस्रमध्यतः।
सुषुम्ना पृष्ठवंशाख्यवीणादण्डस्य मध्यगा।।

मूर्धनि ब्रह्मरन्ध्रान्ता नासाग्राद् द्वादशाङ्गुला।
तन्मूलात्पायुगा प्रोक्ताऽलम्बुसाख्या तु नाडिका।।

त्र्यस्राग्रादुत्थिता नाडी कुहूर्नाम ध्वजान्तगा।
तद्वामदक्षपार्श्वाभ्यां सविश्वोदरवारणे।।

जठरान्ता सर्वगा च प्रोक्ते तद्वदनन्तरे।
हस्तिजिह्वायशस्विन्यौ पादाङ्गुष्ठान्तविस्तृते।।

तथैवेडा-पिङ्गले द्वे नासारन्ध्रद्वयान्तगे।
गान्धारी च तथा पूषा नेत्रद्वयगते क्रमात्।।

तथैव कर्णगामिन्यौ शङ्खिनी च पयस्विनी।
जिह्वाग्रगा सरस्वत्याख्यैवं नाड्यश्चतुर्दश।।

मूलाधार में नाड़ियों का स्थितिक्रम—

मूलाधारे त्र्यस्रमध्ये सुषुम्नालम्बुसे उभे।
प्राक्प्रत्यगास्थिते अन्यास्त्रिकोणाग्रात्प्रदक्षिणा।।

लेखासु संस्थिता नाड्यः कुहूश्चैव तु वारणा।
यशस्विनी पिङ्गला च पूषानाम्नी पयस्विनी।।

सरस्वती शङ्खिनी च गान्धारी तदनन्तरम्।
इडा च हस्तिजिह्वा च ततो विश्वोदराभिधा।।

रन्ध्रपायुध्वजाशेषपत्रासानेत्रकर्णगाः ।
जिह्वाकर्णाक्षिनासाङ्घ्रिजठरान्ताश्चतुर्दश ।।

श्रीयन्त्र श्रीविद्या का प्रधान घटक है। श्रीयन्त्र का दो तरह से वर्णन किया जा सकता है— या तो बाह्य चक्र से आभ्यन्तर चक्र की ओर या आभ्यन्तर चक्र से बाह्य चक्रों की ओर। बाहर से भीतर का क्रम 'लयक्रम' है और भीतर से बाहर का क्रम 'सृष्टिक्रम' है। केन्द्रीय बिन्दु या कामेश्वर तथा कामेश्वरी का सामरस्यात्मक स्वरूप आत्मास्वरूपा ललिता या देवी त्रिपुरा हैं। कामेश्वर निरुपाधि परा संवित् है। कामेश्वरी उन्हीं की शक्ति हैं। यह बिन्दु सर्वानन्दमय चक्र में स्थित है।

'योनि' का अर्थ है— विश्व का गर्भ या विश्व का कारण। बिन्दु के तीन भेद हैं— शिव का मुख, भगवती के स्तन एवं सूर्य-चन्द्र-अग्नि। ललिता देवी विमर्शशक्ति हैं। ललिता ही प्रत्येक प्राणी की आत्मा हैं। रक्त वर्ण विमर्श है। श्रीचक्र के नवों चक्रों में महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा की जाती है।

गुरुतत्त्व— भावनोपनिषद् के अनुसार गुरु पर, अपर एवं परापर शक्तियों के आयत्तीकरण या साक्षात्कार का साधनमात्र नहीं है; प्रत्युत वह स्वयमेव समस्त कार्यों की आदिकारणभूता महाशक्ति है— 'श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः'। तन्त्रराजतन्त्र भी इसी दृष्टि की पुष्टि करता है—

गुरुराद्या भवेच्छक्तिः सा विमर्शमयी मता।
नवत्वं तस्य देहस्य रन्ध्रत्वेनावभासते।।

शिवसूत्रों में से एक सूत्र है— 'गुरुरुपायः' (गुरु उपाय है) अर्थात् गुरु उपेय (साध्य) नहीं, उपाय (साधन) है; किन्तु भावनोपनिषद् के अनुसार गुरु आदिकारण (सर्वकरणभूता) महाशक्ति है। शिवसूत्रवार्त्तिककार का कथन है कि 'गुरु परा शक्ति है'। यह परमात्मा की अनुग्रहात्मिका शक्ति है— 'गुरुरेव पराशक्तिरीश्वरानुग्रहात्मिका'। तन्त्रराजतन्त्र गुरु को आद्या शक्ति कहता है— 'गुरुराद्या भवेच्छक्तिः सा विमर्शमयी मता' अर्थात् गुरु विमर्शात्मिका आद्या शक्ति है। उसकी नवसंख्याक आकृति (अनेकरूपता) नवरन्ध्रात्मकता से परिपुष्ट होती है— 'नवत्वं तस्य देहस्य रन्ध्रत्वेनावभासते'। समस्त कार्यों का पूर्वभावी होने के कारण ही यह आद्या या सर्वकारणभूता कहा गया है— 'आद्या इति सर्वकारणभूता ..... कारणस्य कार्यपूर्वभावितेनाद्यत्वात्'। ईश्वरानुग्रह से जायमान विवेक ही समस्त संशयों का उच्छेदक, मन्त्रवीर्य का प्रकाशक एवं तात्त्विक पदार्थों को अवकाश प्रदान करने वाला होने के कारण विमर्शपद नाम वाला गुरु है।[१]

शिवसूत्रवार्त्तिक के अनुसार अकृत्रिम अहमामर्शस्वरूप के विग्रह के रूप में आद्यन्त अनुभूत होने के कारण गुरु परमेष्ठी के समान होने के कारण परमोपाय भी है—

अवकाशप्रदानेन सैव यायादुपायताम्।
अकृत्रिमाहमामर्शस्वरूपाद्यन्तवेदनात्।
परमेष्ठिसमत्वेन परमोपायता गुरोः।।

---

१. भास्कारराय : भावनोपनिषद्भाष्य

भावनोपनिषद्भाष्य के अनुसार गुरु के तीन रूप होते हैं— दिव्य, सिद्ध एवं मानव। इनमें से प्रत्येक गुरु के तीन-तीन भेद होने के कारण गुरु के कुल नौ भेद हैं। यह भेद प्रकाशानन्दनाथ, सुभगानन्दनाथ आदि के रूप में नौ रूपों वाला है। मालिनीतन्त्र में भी कहा गया है—

स गुरुर्मत्समः प्रोक्तो मन्त्रवीर्यप्रकाशकः।
आदिमान्त्यविहीनास्तु मन्त्राः स्युः शरदभ्रवत्।
गुरोर्लक्षणमेतावदादिमान्त्यं निवेदयेत्।।

उस विमर्शशक्तिरूप गुरु का देह नवरन्ध्रमय है। भावनोपनिषद् कहता भी है— 'तेन नवरन्ध्ररूपो देहः'।

तन्त्रराजतन्त्र में पठित 'गुरुराद्या भवेच्छक्तिः सा विमर्शमयी मता' वाक्य में जिस विमर्श-शक्ति का प्रयोग किया गया है, उसकी व्याख्या करते हुये भास्करराय कहते हैं कि 'विवेका-ख्यवृत्त्यवच्छिन्नचिच्छक्तिस्तु प्राणशक्तिविहारावसाना सुषुम्नाख्या नाड्येव विमर्शमयीत्युच्यते'। शिवसूत्रविमर्शिनी में आचार्य क्षेमराज भी गुरु को एक शक्ति के रूप में ही स्वीकार करते हैं— 'गुरुर्वा पारमेश्वरी अनुग्राहिका शक्तिः'। यह पारमेश्वरी अनुग्राहिका शक्ति ही गुरु है। श्रीमालिनीविजय में शक्तिचक्र एवं गुरुवक्त्र दोनों को पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया गया है— 'शक्तिचक्रं तदेवोक्तं गुरुवक्त्रं तदुच्यते'। श्रीमत्त्रिशिरोभैरव में भी कहा गया है— 'गुरोर्गुरुतरा शक्तिर्गुरुवक्त्रगता भवेत्'। गुरु एवं परमात्मा में अभिन्नता एवं मन्त्रवीर्य-प्रकाशात्मकता स्वीकार की गई है— 'स गुरुर्मत्समः प्रोक्तो मन्त्रवीर्यप्रकाशकः'। जो तात्त्विक अर्थों का उपदेश प्रदान करता है, वही गुरु है— 'गृणाति उपदिशति तात्त्विकमर्थमिति गुरुः'। गुरु मुद्रावीर्यमन्त्रवीर्यस्वरूप (व्याप्तिवान्) मार्गप्रदर्शक एवं साधनोपाय भी है। शिवसूत्रविमर्शिनी में कहा भी है— 'सोऽत्र व्याप्तिप्रदर्शकत्वेन उपायः'। उस विमर्शशक्ति का देहस्वरूप नवरन्ध्रमय है। जिह्वा, पायु, उपस्थ तथा दो नासारन्ध्र, दो चक्षु एवं दो कर्ण— ये ही नवरन्ध्र हैं। इसमें पायु एवं उपस्थ तो मोचनादिक (मल-मूत्रोत्सर्ग आदि) के साधन हैं तथा नासा-चक्षु एवं कर्ण ज्ञानोपाय होने से विमर्श-रूप हैं। ये अपने-अपने विषयों का विमर्शन करते रहते हैं।

भावनोपनिषद् भोगायतन एवं षाट्कौशिक शरीर को नवरन्ध्रात्मक स्वरूप में निरूपित करके एवं नवरन्ध्रों को प्रतीकार्थ में ग्रहण करके इनके द्वारा नव गुरुओं को द्योतित करता है— 'देहरन्ध्रनवत्वेन गुरोर्नवत्वं भासत'। ये गुरु हैं कौन? ये हैं नवरन्ध्रा-त्मक एवं देहगत नवनाथ— 'स्वदेहगतनवरन्ध्राणि नव नाथा इति यावत्'। इन नौ रन्ध्रों में श्रोत्रद्वय हैं— 'दिव्यौघ', चक्षुद्वय हैं— 'सिद्धौघ' एवं नासाद्वय हैं— 'मानवौघ'। 'इति सम्प्रदायः' कहकर आचार्य भास्कर इस व्याख्या को ऋषिपरम्परानुगत घोषित करते हैं; स्वेच्छाकल्पित नहीं।

इस विमर्शननवक की मूलभूता शक्ति मात्र सुषुम्ना नाड़ी है। रन्ध्रान्वित सुषुम्णा के

मूलभाग में श्रोत्रादिक नाड़ियों के मिलने से सुषुम्नावच्छिन्न चिच्छक्तिमात्र का ही उन-उन नाड़ियों द्वारा उन-उन विषयों का अवभासन किया जाता है।

'स्वदेहगतनवरन्ध्राणि नवनाथा इति यावत्' कहकर भास्करराय ने देह को नवनाथों का प्रतीक सिद्ध किया है। नव रन्ध्रों के कार्यभूत स्व-स्वविषय-विमर्शनवक समष्टि के साथ गुरु की अभेदता है। इसीलिये भास्करराय कहते हैं— 'रन्ध्रनवककार्यभूतस्वस्वविषय-विमर्शननवकसमष्टिं गुर्वभेदेन भावयेत्'।

कोई-कोई आचार्य श्रोत्रादिक अवयवों एवं उन-उन नाड़ियों की उन-उन नाथों के साथ अभेदात्मकता भी मानते हैं। भावनोपनिषद्भाष्य में कहा भी गया है— 'तेन नवरन्ध्र-रूपो देहः', 'देहो नवरत्नद्वीपः', 'नवचक्ररूपं श्रीचक्रम्'। इन तीनों सूत्रों में (अनेक बिन्दुओं के आधार पर) देह, नवरत्नद्वीप, श्रीचक्र, नव नाथ एवं नाडियों की एकात्मता की पुष्टि की गई है।

देह का स्वरूप— 'देहो नवरत्नद्वीपः' (भावनोपनिषत्सूत्र-६) अर्थात् देह नवरत्नद्वीप है। देह नवरन्ध्रात्मक एवं नवशक्तिमय श्रीचक्र है— 'नवरन्ध्ररूपो देहो नवशक्तिमयं श्रीचक्रम्'। इस प्रकार देह नवरत्नद्वीप एवं श्रीचक्र दोनों है। इसमें एक भगवती का मणिपूर (चिन्तामणिगृह) धाम है तथा दूसरा श्रीचक्र है। भावनोपनिषद् कहता है कि 'त्वगादिसप्तधातुरोमसंयुक्तः' अर्थात् त्वचा, रुधिर, मांस, अस्थि, मेद, शुक्र, लोम आदि जो नौ की संख्या है, वही नवरत्नात्मक खण्डनवक (नौ खण्डों की समष्टि) है।

इसका सम्प्रदायार्थ स्पष्ट करते हुये भास्करराय कहते हैं कि रस, मांस, रोम, त्वचा रुधिर, शुक्र, मज्जा, अस्थि एवं मेद— इन नव तत्त्वों तथा पुष्पराग, नील, वैडूर्य, विद्रुम, मौक्तिक, मरकत, वज्र, गोमेद एवं पद्मरागनामक नवरत्नों से निर्मित खण्डरूपों को प्रतीची आदि दिशाओं के मध्य कल्पित करना चाहिये।

कल्पवृक्ष का स्वरूप— 'सङ्कल्पाः कल्पतरवस्तेजःकल्पकोद्यानम्' (भावनोपनिषत्सूत्र-८ अर्थात् संकल्प ही भगवती की वाटिका के कल्पवृक्ष हैं और तेजस्तत्त्व ही वह कल्प-कोद्यान है।

मानसोत्पन्न संकल्पविशेष ही सन्तानादि कल्पवृक्ष हैं; क्योंकि संकल्पपुरस्सर (संकल्प-संवलित) कर्मप्रवृत्ति ही साधक को समस्त अभीष्ट प्रदान कराते हैं; अतः वे ही कल्पवृक्ष हैं।

त्रिचत्वारिंश अध्याय

महात्रिपुरसुन्दरी का पूजा-विधान एवं पूजाफल

त्रिपुरतापिन्युपनिषद् में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा-प्रक्रिया एवं पूजा के फल-स्वरूप प्राप्त होने वाले फल पर भी प्रकाश डाला गया है, जो निम्नवत् है—

श्रीचक में भगवती त्रिपुरसुन्दरी की पूजा-विधि— उक्त उपनिषद् में इस पूजा की पद्धति को स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि 'तस्य नाभ्यामग्निमण्डले सूर्याचन्द्रमसौ तत्रोङ्कार-पीठं पूजयित्वा तत्राक्षरं बिन्दुरूपं तदन्तर्गतव्योमरूपिणीं विद्यां परमां स्मृत्वा महात्रिपुर-सुन्दरीमावाह्य—

क्षीरेण स्नापिते देवि ! चन्दनेन विलेपिते।
बिल्वपत्रार्चिते देवि ! दुर्गेऽहं शरणं गतः।।

इत्येकचर्या प्रार्थ्य मायालक्ष्मीमन्त्रेण पूजयेदिति भगवानब्रवीत्'।

पूजा-फल— उक्त रीति से पूजा सम्पन्न करने का फल इस प्रकार बताया गया है— 'एतैर्मन्त्रैर्भगवतीं यजेत्। ततो देवी प्रीता भवति, स्वात्मानं दर्शयति। तस्माद्य एतैर्मन्त्रै-र्यजति स ब्रह्म पश्यति, स सर्वं पश्यति, सोऽमृतत्वञ्च गच्छति। य एवं वेदेति महोपनिषत्'।

भगवती की भक्त्युपासना— भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की तात्त्विकी उपासना तो ज्ञानमूलक एवं योगमूलक है, किन्तु उसमें भक्तितत्त्व का भी महत्त्व है। शक्तिसूत्र (प्र० ह०) में भक्ति की प्रशंसा करते हुये एक श्लोक उद्धृत किया गया है—

समाधिवज्रेणाप्यन्यैरभेद्यो भेदभूधरः।
परामृष्टश्च नष्टश्च त्वद्भक्तिबलशालिभिः।।

अर्थात् जो भेदरूपी पर्वत दूसरे लोगों (योगियों) के लिये समाधिरूपी वज्र से भी अभेद्य था, वही तुम्हारी भक्ति के बल से सम्पन्न जनों के द्वारा एकात्मानुभव से नष्ट कर दिया गया।

हयग्रीव द्वारा शाक्तदर्शनम् में परंज्योतिस्वरूपा, तुर्यदेहात्मिक, इच्छाधृतविग्रहा, शक्तिस्त्रिजननी, नेत्री, पराम्बा को भक्तिवश्या (सूत्र-१.४.६) कहा गया है। यद्यपि शाक्ताचार्य हयग्रीव यह मानते हैं कि 'अज्ञातरूपावरणमोचने ज्ञानमेव' (४.१.१८), 'ज्ञानेनाज्ञाननाशः' (४.१.१३), 'ज्ञानमावरणनाशाय' (४.३.९), 'योगी ज्ञानाधिकारी' (५.१.१), 'मूलाविद्यानाशद्वारा ब्रह्मप्राप्तिर्मुक्तिः' (५.१.८), 'मुक्तो ज्ञानी' (५.१.१३), 'ज्ञानेनाज्ञाननाशः' (५.१.१४), 'ज्ञानेन दुःखनिवृत्त्यानन्दप्राप्तिः' (५.१.१९); तथापि वे साधना के मूलाधार गुरु में नवरसात्मिका (५.३.२) भक्ति मानते हैं। ऋषि अगस्त्य शक्तिसूत्र (३६) में कहते हैं कि 'भक्तिर्दक्षिणा'। आचार्य शंकर कहते हैं—

रे मूढाः! किमयं वृथैव तपसा कायः परिक्लिश्यते
यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः किमितरे रिक्तीक्रियन्ते गृहाः।
भक्तिश्चेदविनाशिनी भगवती पादद्वयी सेव्यताम्
उन्निद्राम्बुरुहातपत्रसुभगा लक्ष्मीः पुरो धावति।।

मन्त्र वाक् है। देवी वाणी के रूप में परावाक् है। सृष्टि उसका विवर्त नहीं, परिणाम है। मन्त्र देवी का स्व-स्वरूप है।

पूजा का उद्देश्य देव-तादात्म्य— शक्तिदर्शन में देवी त्रिपुरसुन्दरी का सर्वोच्च स्थान है। भगवती त्रिपुरा के आराधकों (स्त्री-पुरुषों) की यही उद्देश्य एवं आकांक्षा होती है कि मैं भगवती के साथ तादात्म्य प्राप्त करके उनसे अभिन्न हो जाऊँ। भक्त भावना करता है कि 'अहं देवी न चान्योऽस्मि'। साधक को यह भी अभ्यास करना पड़ता है कि 'मैं नारी हूँ'। शाक्त मानते हैं कि परमात्मा नारीरूप है; अतः सभी का यह उद्देश्य है कि वे स्वयं भी नारी बन जायँ।

इस साम्प्रदायिक परम्परा में दीक्षा-विधि के द्वारा आराधना की जाती है। इस विधि के द्वारा देवी को प्राप्त करने के तीन चरण (साधन) हैं। उनमें प्रथम साधन है— ध्यान। महापद्मवन में शिवांक में आसीन भगवती का ध्यान करते हुये उनके विग्रह को आनन्द-मय, सर्वकारणभूत एवं आत्मा से अभिन्न रूप में कल्पित किया जाता है। द्वितीय साधन है— चक्र-पूजन। दीक्षा का द्वितीय चरण चक्रपूजा है। यह बाह्य याग या बाह्य पूजा है। अन्तिम तृतीय साधन है— धर्मग्रन्थानुशीलन एवं ज्ञानाप्ति।

इस साम्प्रदायिक परम्परा में चक्रपूजा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें भूर्जपत्र, रेशमी वस्त्र या स्वर्णपत्र पर नौ योनियों के मण्डल के मध्य एक योनि का चित्र बनाकर पूर्वकौल उसकी पूजा करते हैं, जबकि उत्तरकौल जीवित सुन्दरी की योनि की पूजा करते हैं। साथ ही ये कौलोपासक देवी को मांस, मधु, मदिरा, मीन आदि अर्पित करके उसका प्रसाद ग्रहण करते हैं।

पूजा-पद्धति की दृष्टि से शाक्तों के मुख्यतः दो वर्ग हैं— कौल एवं समयी। इन दोनों के साथ सामञ्जस्य स्थापित कर चलने वाले तीसरे वर्ग के साधक 'मिश्र' कहलाते हैं।

समयी साधक बाह्याचार, वामाचार, पञ्च मकार एवं कौलाचार से दूर रहते हैं। कौलों की पूजा में भैरवीचक्र के आरम्भ होने पर वर्णभेद नहीं रह जाता; किन्तु भैरवीचक्र से निवृत्त होते ही पुनः भिन्न-भिन्न वर्ण हो जाते हैं।[१]

समयमार्ग— समयमार्ग में श्रीविद्या की उपासना प्रचलित है। लक्ष्मीधर एवं भास्कर राय ने (लक्ष्मीधरा एवं ललितासहस्रनामभाष्य में) समयमार्ग की विशद् विवेचना की है।

समयमार्ग की उपासना का मूल लक्ष्य प्रसुप्ता कुलकुण्डलिनी शक्ति को योगविधि

१. रामकृष्णगोपाल भण्डारकर : 'वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत' (पृ.-१६६)।

से प्रबुद्ध करके उसका सहस्रारस्थ शिव के साथ सामरस्य (सम्मिलन) कराना है। इस परमोद्देश्य की पूर्ति दहराकाश के अवकाश में चक्र की कल्पना करके पूजाविधानात्मक समय नामक अन्तर्योग से सम्पन्न होती है। इसी कारण इस मार्ग को 'समयमार्ग' कहते हैं।

सहस्रचक्र में मध्य में एक चतुष्कोण चन्द्रमण्डल है, जो कि समयमतानुयायियों के अनुसार बिन्दुस्थान ही है; जबकि कौलों के तम से त्रिकोणस्वरूप मूलाधार चक्र में स्थित बिन्दु ही बिन्दुस्थान है या स्वयं त्रिकोण ही बिन्दुस्थान है।

बिन्दुस्थान— चतुष्कोण चन्द्रमण्डल ही समयानुयायियों का बिन्दुस्थान है; इस बैन्दवस्थान को ही सरघा एवं सुधासिन्धु आदि नामों से भी पुकारा गया है। सहस्रदल कमल के मध्य अवस्थित यही सुधासिन्धु समयी-साधकों का वह उपासना-केन्द्र है, जहाँ वे लोग भगवती समया एवं भगवान् समय (शम्भु) की आराधना करते हैं। समयमत में त्रिकोणादिक पूजा का बाह्याचार स्वीकृत नहीं है।

समया— शम्भु के साथ पाँच प्रकारों से समता रखने के कारण ही भगवती त्रिपुर-सुन्दरी समया कहलाती हैं— 'देव्या सह पञ्चविधं साम्यं याति इति समयः', शम्भुना पञ्चविधं साम्यं याति इति समस्या भगवती'।[१]

सारांश यह कि भगवती के साथ पञ्चविध समतायें रखने के कारण शम्भु का नाम 'समय' है और उन्हीं भगवान् समय (शम्भु) के साथ पञ्चविध साम्य रखने के कारण भगवती का नाम 'समया' है।

इस 'समय' के उपासक ही 'समयी' कहलाते हैं और उनका उपासनामार्ग ही 'समय-मार्ग' कहा जाता है। समप्रधान भावापन्न समया एवं समय में पञ्चविध साम्यों के प्रकार हैं— अधिष्ठानसाम्य, अवस्थानसाम्य, अनुष्ठानसम्य, रूपसाम्य एवं नामसाम्य।

अधिष्ठानसाम्य— समय एवं समया दोनों सम रूप से मूलाधारचक्र के अधिष्ठान हैं; अतः दोनों में अधिष्ठानसाम्य है।

अवस्थानसाम्य— समया एवं समय दोनों नृत्यशील हैं। समया का नृत्य 'लास्य' एवं समय का नृत्य 'ताण्डव' है। इस प्रकार नृत्य की समानधर्मिता दोनों में है; अतः दोनों में अवस्थानसाम्य है।

अनुष्ठानसाम्य— समय एवं समया दोनों मिलकर जगत् की सृष्टि का अनुष्ठान करते हैं। यह समानधर्मिता ही अधिष्ठानसाम्य है।

रूपसाम्य— समय एवं समया दोनों ही अरुण वर्ण के हैं। यह वर्णसाम्य ही रूप-साम्य है।

नामसाम्य— समय एवं समया दोनों को ही 'नवात्मा' कहा जाता है। नवात्मा का उभयसाम्य होना ही नामसाम्य कहलाता है।

---

१. भारतीय दर्शनों का समन्वय (पृ.-१५३)।

यह साम्य-विधान भिन्न-भिन्न प्रकारों से भी किया गया है और उसका कारण है— साधकों की अपनी-अपनी रुचि एवं भिन्न-भिन्न प्रकार की भक्ति।

समयी लोग आन्तर पूजा को ही स्वीकार्य मानने के कारण बाह्य पूजा को कोई महत्त्व नहीं देते। दक्षिणमार्ग एवं वाममार्ग की दृष्टि से भी सम्प्रदायभेद है। दक्षिणमार्गी समयाचारी होते हैं, जो कि वेद एवं धर्मशास्त्र के अनुयायी होते हैं; कौल वाममार्गी होते हैं और वे वेद तथा धर्मशास्त्र के विरोधी होते हैं। 'तारिणीपारिजात, ताराभक्तिसुधार्णव' आदि मैथिल ग्रन्थ दक्षिणमार्गी तारा के उपासकों के सर्वोच्च ग्रन्थ हैं; जबकि 'सौन्दर्यलहरी, ललितासहस्रनामभाष्य' आदि दक्षिणमार्गीय त्रिपुरसुन्दरी के उपासकों के सर्वोच्च ग्रन्थ हैं।

समस्त (दश) महाविद्याओं के उपासक वामाचार एवं दक्षिणाचार अर्थात् वाममार्ग एवं दक्षिणमार्ग में विभक्त हैं।[१]

कौल-दर्शन और समय-दर्शन में दृष्टि-वैषम्य— यद्यपि कौल और समयी दोनों ही भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के उपासक हैं; किन्तु दोनों में यथेष्ट दृष्टि-वैषम्य भी है। जैसे कि कौल मानते हैं कि कुण्डलिनी का जैसे ही प्रबोधन किया जाता है, उसी क्षण मुक्ति प्राप्त हो जाती है— 'कुण्डलिनीप्रबोधो यदा स्यात्तत्क्षमणमेव मुक्तिः कौलानाम्' (लक्ष्मीक्षर)। कौल सामयिकों की दृष्टि में 'क्षणमुक्त' हैं; जबकि सामयिक इसे स्वीकार नहीं करते।

कौल लोग भगवती की त्रिकोण में पूजा किया करते हैं और भैरवी चक्र को प्राप्त कर लेने पर वे आनन्दभैरव एवं आनन्दभैरवी दोनों की ही तादात्म्यभाव से पूजा करते हैं। बिन्दुपूजा के अवसर पर कौल भैरववत् दिगम्बर होकर पूजा करते हैं अर्थात् कौलिना- एवं कौल दोनों ही आवरणविहीन (नग्न) रूप में पूजा करते हैं; जबकि सामयिक इसे निषिद्ध मानते हैं।

कौलमत में त्रिकोण ही बिन्दुस्थान होता है और वहीं पर वे बिन्दु की पूजा करते हैं; जबकि समयी सहस्रार में बिन्दुपूजन करते हैं।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना के सम्प्रदाय— भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना के सम्प्रदाय के तीन सम्प्रदाय हैं— कौलसम्प्रदाय, मिश्रसम्प्रदाय एवं समय-सम्प्रदाय। इनमें से कौलसम्प्रदाय के दो भेद हैं, जो निम्नवत् हैं—

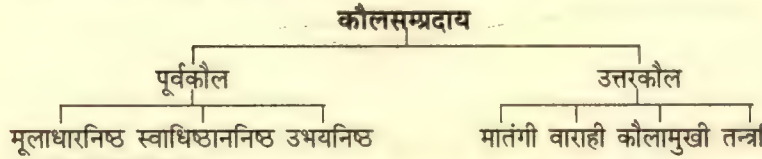

१. भारतीय दर्शनों का समन्वय (पृ.-१५२-१५४) पदोत्तिष्ठ कौल, महाकौल, मूल कौल, योगिनी कौल, सिद्ध कौल, वह्नि कौल, वृषणोत्थ कौल।

सहस्रदल कमल ही बैन्दवस्थान है; अत: उसके मध्य में चन्द्रमण्डल स्थित है, यह चतुरस्रात्मा है। उसके मध्य के बिन्दु में पञ्चविंशति तत्त्वातीत (२५ तत्त्वों अतीत) षड्विंशात्मक शिव-शक्तिमेलनरूप सादाख्य तत्त्व है।

उस चन्द्रमण्डलान्तर्गत स्थित सादाख्य तत्त्व का अनुसन्धान ही सहस्रदल कमल की पूजा है।

समयिमत में बाह्याराधन तो बहुत दूर की बात है। वह कथमपि मान्य नहीं है— 'अतएव समयिमते बाह्याराधनं दूरत एव निरस्तम्'।

षोडशोपचार पूजा-विधान तो समय-मत में और भी अधिक निषिद्ध है— 'षोडशोपचार-रूपपूजाङ्गकलापश्च ततोऽपि दूरत एव'।

ऐक्यचतुष्टय— आधार आदि षट्चक्रों का त्रिकोणादि (श्रीचक्र के अङ्ग) के साथ तादात्म्य है— 'आधारादिषट्चक्राणां त्रिकोणादिषट्चक्रत्वेन तादात्म्यम्'।

बिन्दुस्थान का चतुरस्र सहस्र कमल के साथ तादात्म्य है; क्योंकि शिव एवं बिन्दु दोनों में तादात्म्य है।

देवी एवं शिव में तादात्म्य है। इस प्रकार के तादात्म्यत्रय की स्थापना उपासना में भी आवश्यक है।

इसी प्रकार श्रीचक्र एवं मन्त्र में भी तादात्म्य है। इस प्रकार समयमत में (समयाराधन में) ऐक्यचतुष्टय स्वीकृत है।

भगवती का समाराधन— चतुर्विध ऐक्य ही भगवती का समाराधन है और यह सर्वसम्मत विधान है। कहा भी है— 'समयिनां चतुर्विधैक्यानुसन्धानमेव भगवत्या: समाराधनमित्येतत्सर्वसम्मतम्'। लेकिन जो लोग षोढ़ा ऐकात्म्य को समयाराधना-पद्धति मानते हैं, क्या उनकी दृष्टि भ्रमपूर्ण है? नहीं; वह भी समीचीन है। समस्त आगम कहते हैं कि भागवत तत्त्व नादबिन्दु कलातीत है। नाद के चार प्रकार है— परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी। इनमें से परा वाक् त्रिकोणात्मिका है। पश्यन्ती वाक् अष्टकोणचक्ररूपिणी है। मध्यमा वाक् द्विदशाररूपिणी है और वैखरी वाक् चतुर्दशाररूपिणी है। शिवचक्र भी इसी में अन्तर्भूत है। श्रीचक्र चतुश्चक्रात्मक है; क्योंकि 'चतुश्चक्रात्मकं श्रीचक्रं नादशब्दवाच्यम्'। चूँकि पराप्रभृति नाद एवं चक्र एकरूप हैं; अत: श्रीचक्र नाद की दृष्टि से चतुश्चक्रात्मक है।

बिन्दु का स्वरूप क्या है? षट्चक्र ही बिन्दु है— 'षट्चक्राणि मूलाधारस्वाधिष्ठान-मणिपूर-अनाहत-विशुद्धि-आज्ञानामक छ: चक्र ही बिन्दु हैं। कलायें संख्या में पचास या तीन सौ साठ हैं। भगवती त्रिपुरसुन्दरी नाद, बिन्दु एवं कला तीनों से अतीत हैं— 'एवं नादबिन्दुकलातीता भगवती'। सहस्रदल कमल बिन्द्वातीत है। यह बैन्दवस्थानात्मक है। इसका पर्याय 'सुधासिन्धु' एवं 'सरघा' है। त्रिपुरसुन्दरी भी नादातीता है— 'नादातीतत्वं तु त्रिपुरसुन्दर्यादिशब्दाभिधेयम्'।

ऐक्यचतुष्टय के साथ ही षोढा ऐक्य भी है। नाद, बिन्दु एवं कला का परस्परैक्यानुसन्धान ही षोढा ऐक्य है— 'नादबिन्दुकलानां परस्परैक्यानुसन्धानं षोढा भवति। षोढा ऐक्यमाहुः'।

इस प्रकार भगवती के षड्विध ऐक्य के अनुसन्धान द्वारा उनकी पूजा करने पर भगवती सादाख्य में विलीन हो जाती है; तदुपरान्त षड्विध ऐक्यानुसन्धान की महिमा से तथा गुरु के कटाक्षसञ्जात महावेध की महिमा से शीघ्र ही मूलाधार-स्वाधिष्ठानात्मक चक्रद्वय का भेदन करके वे मणिपूर चक्र में दर्शन देती हैं।

मणिपूर में भगवती के दर्शन हेतु जिस 'महावेध दीक्षा' का आश्रय लेना पड़ता है, वह इस प्रकार है—

क. अभ्यासदशा में गुर्वैकपरतन्त्र रहकर गुरुमुख से महाविद्या ग्रहण करके ऋषि-छन्द-देवता के साथ गुरूपदेश-विधि से मूल मन्त्र का शुष्क जप करके आश्वयुज शुक्ल पक्ष में 'महानवमी' शब्दाभिधेय अष्टमी तिथि को रात्रि के समय गुरु का पादोपसंग्रह करना चाहिये। उनकी महिमा से उस समय शिष्य मस्तक पर गुरु की कृपापाणि को प्राप्त करके तथा गुरु से मन्त्रोपदेश ग्रहण करके षट्चक्र पूजा का उपदेश प्राप्त करके षड्-विधैक्यानुसन्धान की शिक्षा प्राप्त करके शैव महावेध प्राप्त कर लेता है और उससे साधक सादाख्या तत्त्व के प्रकाश को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार की महावैधी दीक्षा प्राप्त कर लेने पर साधक को महादेवी मणिपूर में दर्शन देती है— 'एवं महावेधे जाते भगवती मणिपूरे प्रत्यक्षा भवति'। साधक को उनकी पूजा करनी चाहिये।

ख. मणिपूर में उन देवी की अर्घ्य-पाद्य-भूषण आदि के द्वारा पूजा करके भगवती को अनाहत चक्र के मन्दिर में ले जाकर और वहीं धूप-दीप-नैवेद्यादिक द्वारा पूजन करने के बाद हस्त-प्रक्षालन करके निवृत्त होने पर विशुद्धि चक्र में ले जाकर सिंहासन पर समासीन एवं अपनी सखियों से संलाप करने में संलग्न देवी को देखते हुये शुद्ध स्फटिक-सदृश मणियों से उनकी पूजा करनी चाहिये। यद्यपि मौक्तिकादिक शुद्ध स्फटिक-सदृश तो नहीं होता, किन्तु वहाँ षोडश दलगत षोडश चन्द्रकलायें तो इसी प्रकार निर्मल हैं। इस प्रकार विशुद्ध चक्र में देवी की पूजा करके उन्हें आज्ञा चक्र में लाकर देवी कामेश्वरी की समस्त नीराजना-विधियों से पूजा करके उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। उसके बाद शीघ्र ही वे विद्युल्लता की भाँति सहस्रकमल में प्रवेश करके सुधाब्धि में पाँच कल्पवृक्षों की छाया में मणिद्वीप (सरघा) के मध्य सदाशिव के साथ विहार करती हैं। तब तिरस्करिणी का प्रसार करके मन्दिर के समीप तब तक रहना चाहिये, जब तक कि भगवती मूलाधार चक्र में पुनः प्रत्यावर्तित नहीं हो जातीं। यही है— समयमत के तत्त्व का रहस्य।

देवी का स्थूल स्वरूप— हमारी पद्धति के अनुसार तो षड्विधैक्यानुसन्धान के बाद मूलाधार द्विक का भेदन करके मणिपूर चक्र में आह्लादित भगवती दशभुजा देवी (धनुष-बाण-पाश-अंकुश-वरदान-मुद्रा-अभयदान-पुस्तक-अक्षमाला एवं हाथ में वीणा धारण करके) दर्शन देती हैं। शंकर भगवत्पाद की दृष्टि में चतुर्विध ऐक्यानुसन्धान के

अनन्तर मणिपूर चक्र में भगवती का प्रत्यक्ष स्वरूप 'क्वणत्काञ्चीदामा' (सौन्दर्यलहरी) के अनुरूप होता है और ध्यानोपयोगी रूप चतुर्भुजी एवं धनुष-बाण-पाश-अंकुश धारण किये हुये दृष्टिगत स्वरूप वाला होता है। उनके मतानुसार भी भगवती उसी प्रकार दिखाई पड़ती हैं। मेरे समयमत के एकदेशी मत के अनुसार वे पाश-अंकुश-पुण्ड्र-इक्षु-चाप-पुष्प-बाण-जपमालिका-शुकाभय वरद मुद्रा धारण की हुई रहती हैं; किन्तु समयमत में दोनों ही रूप स्वीकृत हैं— 'उभयमस्माकं सम्मतमेव'।

कर्णावतंसस्तुति (कर्णसंस्तुति) में देवी के स्वरूप को इस प्रकार से बतलाया गया है—

भवानि श्रीहस्तैर्वहसि कणिपाशं सृणिमधो
धनुः पौण्ड्रं पौष्पं शरमथ जपस्रक्शुकवरम्।
अथ द्वाभ्यां मुद्रामभयवरदानैकरसिके
क्वणद्वीणां द्वाभ्यामुरसि च कराभ्यां च बिभृषे।।

समयमतावलम्बियों को भगवती का साक्षात् दर्शन होता है इनकी पूजा सहस्रकमलपर्यन्त आन्तर पूजा होती है— 'समयिनां प्रत्यक्षं परिदृश्यमाना आस्ते भगवती। समयिनां सहस्र-कमलपर्यन्तं आन्तरपूजा कर्तव्या'।

सहस्रकमल में तो तिरस्करिणी प्रसारपर्यन्त दर्शन ही समाराधन है। सुभगोदय में कहा भी गया है—

सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणहस्तां ध्यायेत्सुसाधकः।
त्रैलोक्यं मोहयेदाशु वरनारीगणैर्युतम्।।

कालिदास ने चर्चास्तुति में कहा है—

ये चिन्तयन्त्यरुणमण्डलमध्यवर्तिरूपं तवाम्ब नवयावकपङ्करम्यम्।
तेषां सदैव कुसुमायुधबाणभिन्नवक्षस्थला मृगदृशो वशगा भवन्ति।।

देवी की सपर्या-विधि— समयमत वालों के लिये बाह्य पूजा निषिद्ध होने के कारण सूर्यमण्डलान्तर्गत देवी-पूजन भी निषिद्ध होना चाहिये। यदि ऐसा कहा जाय तो उपपन्न नहीं है; क्योंकि ब्रह्माण्ड में स्थित पिण्डाण्ड के भीतर चन्द्र एवं सूर्य दोनों में ऐक्य है। ऐसा इसलिये कि सूर्य चन्द्रमा के कलामृतनिष्यन्द से ही उज्जीवित है। यदि कोई यह कहे कि चन्द्रकला विद्या का सूर्य से सम्पर्क होने के कारण तेज का तिरोधान हो जायगा तो यह भी उपपन्न नहीं है; अतः पिण्डाण्ड ब्रह्माण्ड में चन्द्रमा की एकता होने से चन्द्र-मण्डल के अन्तर्गत होने से चन्द्रकला विद्या का पूजन युक्तियुक्त ही है।

पूर्व में जो चन्द्रविम्बगत होने से देवी का पूजन निषिद्ध किया गया था, वह तो आन्तर चन्द्र के, जो कि आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित है तथा सहस्रकमलदल के भीतर स्थित है और जिसके चन्द्रकलामृत के निष्यन्द से उज्जीवन हुआ करता है, वहाँ पर

उसका पूजा-निर्बन्ध नहीं है। अत: पिण्डाण्ड ब्रह्माण्ड में स्थित चन्द्रमा का ऐक्य होने से ब्रह्माण्डस्थित चन्द्रमण्डल में भी पूजा-निर्बन्ध नहीं है।

देवी का आन्तर पूजन— भगवती की पूजा यदि हृदयकमल में की जाती है तो वह समस्त ऐहिक फल प्रदान करती है— 'एवं हृदयकमल एव समाराधिता भगवती ऐहिकानि कलानि सर्वाणि ददाति'। जब यह वशिनी आदि देवियों के साथ ध्यान की जाती है तब यह सारस्वत प्रदान करती है। 'मुखं बिन्दुं कृत्वा' इत्यादि के द्वारा ध्यान किये जाने पर यह ध्याता को तदनुरूप फल देती है। ऐहिक फल प्राप्त करने के लिये साधकों को चाहिये कि वे हृदयकमल में ही होमादिक एवं तर्पणादिक किया करे— 'हृदयकमले एव होमादिकं तर्पणादिकञ्च कार्यं ऐहिकफलसाधनमिति'।

आन्तर पूजा के विधान की अपरिहार्यता— चाहे ऐहिक फलाकांक्षा हो और चाहे आमुष्मिक, किन्तु सभी के लिये देवी की समाराधना प्रत्येक स्थिति में आन्तर ही होनी चाहिये— 'अत: समयिनां ऐहिकामुष्मिकफलसाधनोपाय: आन्तरपूजेति समयमततत्त्वम्'। तादात्म्यपूर्ण ध्यान से व्यतिरिक्त पूजा 'पूजा' है ही नहीं; क्योंकि कहा भी है— 'तादात्म्य-ध्यानव्यतिरेकेण पूजाया: असम्भवात्'। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि 'विधि: क्रियात्मको नादरणीय:'।

पूजा की प्रतीकात्मिका दृष्टि— भगवती के पूजन की बाह्य सामग्रियों का उपयोग न करके उनको कल्पना द्वारा कल्पित करके उन कल्पित सामग्रियों से किया गया भगवती का पूजन प्रतीकात्मक पूजन कहलाता है। वामकेश्वरतन्त्र में इस स्थूल पूजा को प्रतीकार्थ में ग्रहण करके कहा भी गया है—

पाशाङ्कुशौ तदीयौ तु रागद्वेषात्मकौ स्मृतौ।
शब्दस्पर्शादयो बाणा: मनस्तस्याभवद्धनु:।।

करणेन्द्रियचक्रस्था देवी संवित्स्वरूपिणीम्।
विश्वाहङ्कारपुष्पेण पूजयेत्सर्वसिद्धिभाक्।।

यही वास्तविक उपासना है। क्रियात्मक विधि कथमपि आदरणीय नहीं है— 'इय-मुपासना। विधि: क्रियात्मको नादरणीय:'।

'पिबेयं विद्यार्थी तव चरणनिर्णेजनजलम्' (सौन्दर्यलहरी) में 'चरणनिर्णेजनजलम्' वाक्य का प्रयोग करके आचार्य शंकर ने कौलमत के स्थान पर समयिमत का ही प्रतिपादन किया है; क्योंकि कौलमत में देवी सर्पिणी के रूप में अवस्थित मानी जाती है; अत: सर्पिणी का 'चरणनिर्णेजनजल' तो सम्भव ही नहीं है। चरणजिर्णेजनजलम् का अर्थ है— सहस्रदल कमल। कहा भी गया है— 'सहस्रकमल एव चरणनिर्णेजनजलमिति'।

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितै: ।
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहस:।।

सौन्दर्यलहरी के दशम श्लोक का यह अर्धभाग समयमत का ही प्रतिपादक है। साथ ही शेष अर्धभाग द्वारा कौलमत का प्रतिपादन किया गया है—

अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयम्।
स्वात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि।।

'पशु' एवं 'पाश' बन्धनरूप हैं। 'पश' बन्धने धातु से 'पशु' निष्पन्न होता है और पशु है— अविद्याबद्ध जीव 'पश बन्धने इत्यस्माद्धातोः पशुः अविद्याबद्धो जीवः'। पाश है— अविद्या (पाशः अविद्या)। तैत्तिरीयसंहिता (३.१.४) में कहा भी गया है— 'अदितिः पाशं प्रमुमोक्त्वेतन्नमः। पशुभ्यः पशुपतये करोमि'। अर्थात् अदितिमण्डलान्तर्गत बैन्दवी शक्ति (अदिति) अविद्याकृत बन्धन (पाश) से मुक्त करे; एतदर्थ मैं पशुपति को नमस्कार करता हूँ। आशय यह है कि अदिति पशुपति सदाशिव से युक्त होकर पाश-विमोचन करे, इसके लिये मैं सदाशिव को नमन करता हूँ। सौन्दर्यलहरी में शंकराचार्य भी कहते हैं कि 'चिरञ्जीवन्नेव क्षपितपशुपाशव्यतिकरः परानन्दाभिख्यं सरयति रसं त्वद्भ-जनवान्'। इसीलिये तैत्तिरीयसंहिता (६.१.३) में भी कहा गया है कि 'तस्मादुद्रः पशु-नामधिपतिः'।

जीवन्मुक्ति— 'चिरं जीवन्नेव क्षपितपशुपाशव्यतिकरः' जीवन्मुक्ति के सिद्धान्त को शंकराचार्य भी स्वीकार करते हैं। 'जीवन्मुक्त' अविद्यानिवृत्ति हो जाने पर भी कुलालचक्रभ्रमण न्याय से पार्थिव देह से सम्बद्ध रहते ही हैं। षष्टितन्त्रसप्तति में कहा भी गया है—

सम्यग्ज्ञानाधिगमाद्धर्मादीनामकारणप्राप्तौ ।
तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमवद्धृतशरीरः।।

भजन और मुक्ति— शंकराचार्य भजनवान को रसास्वाद एवं परानन्द का भोक्ता कहते हैं। यहाँ भजन क्या द्वैतभक्ति का द्योतक है? 'भजन' शब्द 'भज सेवायाम्' धातु से निष्पन्न होकर सेवा करने का बोधक है। सेवा तो बाह्य पूजा है। क्या शंकर को बाह्य पूजा में विश्वास है? आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि समयाचारी आचार्य शंकर द्वैतभक्त्यात्मक भजनरूप बाह्याचारों में विश्वास नहीं रखते थे; क्योंकि जिस 'भजन' शब्द का उन्होंने प्रयोग किया है, उसके दो भेद हैं— षट्चक्रसेवात्मक भजन और धारणात्मक भजन। जहाँ तक षट्चक्रात्मक भजन का प्रश्न है तो उसमें—

क. आधार-स्वाधिष्ठान चक्र का भजन तो निषिद्ध है; क्योंकि ये दोनों चक्र तामिस्र लोक हैं, अतः ये उपास्य नहीं हैं।

ख. मणिपूर से सहस्रदल कमल तक के सारे चक्र पूज्य अवश्य हैं।

ग. मणिपूरक चक्र की पूजा से सार्ष्टिरूपा मुक्ति प्राप्त होती है।

सार्ष्टि मुक्ति है— देवी के पुर के निकट पुरान्तर निर्मित करके सेवा करते हुये अवस्थान करना।

'सालोक्य' मुक्ति उन भक्तों को प्राप्त होती है, जो संवित्कमल की पूजा करते हैं।

सालोक्य मुक्ति है— देवी के पट्टन में निवास।

'सामीप्य' मुक्ति वे प्राप्त करते हैं, जो विशुद्धि चक्र की उपासना करते हैं। अंग-सेवकत्व ही सामीप्य है।

जो आज्ञाचक्र की उपासना करते हैं, वे 'सारूप्य' मुक्ति प्राप्त करते हैं। सारूप्य का अर्थ है— समानरूपत्व।

सारूप्य मुक्ति 'सायुज्य' मुक्ति से इसलिये भिन्न है; क्योंकि इस मुक्ति में साधक का स्वत्व भगवती में लय नहीं होता, प्रत्युत इसमें वह पृथक् शरीर धारण करके स्थित रहता है।

लक्ष्मीधर के अनुसार सार्ष्टि, सालोक्य, सामीप्य एवं सारूप्य मुक्ति ही गौणी मुक्ति है और सायुज्य मुक्ति को ही शाश्वती मुक्ति के नाम से जाना जाता है; जैसा कि सौन्दर्य-लहरी में कहा भी गया है— 'परं तु सायुज्यात्मिकैव शाश्वती मुक्तिः सहस्रकमलोपासकानामेवेति'। आशय यह कि सहस्रदल कमल की उपासना से प्राप्त परानन्द रस को प्राप्त कराने वाली मुक्ति ही सायुज्य मुक्ति कहलाती है।

परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान्।

भजन = सेवा : तव भजनं सेवा, द्विविधं भजनं— षट्चक्रसेवात्मकं धारणात्मकञ्च। षट्चक्र-भेदन से सुखस्वरूपा मुक्ति प्राप्त तो अवश्य होती है, फिर भी इससे प्राप्त होने वाला सुख तो सांसारिक प्राणियों द्वारा प्राप्त स्त्रीसंसर्गजन्य सुख के ही समतुल्य है; क्योंकि इस मुक्ति में परम सुख नहीं है, बल्कि यह क्षणिक है। इसी प्रकार इन मुक्तियों का भी परिणाम एवं स्वरूप है।

दुःखों के आत्यन्तिक उच्छेदन के उपरान्त सायुज्य मुक्ति के सिद्ध हो जाने पर उसमें शिव-शक्तिसम्पुट के अन्तर्भूत होने से तदात्मिका जो मुक्ति प्राप्त होती है, वही वास्तविक मुक्ति है। आचार्य लक्ष्मीधर की यही दृष्टि है।

निष्कर्ष यह कि प्रथमतः मूलाधार आदि षट्चक्रों का श्रीचक्र के त्रिकोण-अष्टकोण-दशारद्वितय मन्वस्र शिवचक्रों के साथ तादात्म्य प्रतिपादित किया गया है। नाद ही श्रीचक्र है और बिन्दु षट्चक्र है— 'नादोनाम श्रीचक्रम्। बिन्दुर्नाम षट्कमलगहनं वक्ष्यते'। षट्-चक्र एवं श्रीचक्र तथा नाद एवं बिन्दु का ऐक्य ही समयमत का प्रतिपाद्य सिद्धान्त है।

आधार चक्र : चतुर्दल : उसकी कर्णिका त्रिकोणात्मिका है।
स्वाधिष्ठान चक्र : षड्दल : उसकी कर्णिका अष्टकोणात्मिका है।
मणिपूर चक्र : दशदल : उसकी कर्णिका दशकोणात्मिका है।
अनाहत चक्र : द्वादशदल : उसकी कर्णिका द्वितीय दशकोणात्मिका है।
विशुद्धि चक्र : षोडशदल : उसकी कर्णिका चतुर्दशकोणात्मिका है।

—यहाँ तक शक्तिचक्र का प्रसार है।

आज्ञा चक्र : द्विदल : (अष्टकोणमेकत्र षोडशकोणमपरत्रेति द्विधा भिन्ना कर्णिका)

एक दल = अष्टकोण।

द्वितीय दल = षोडश कोण।

(द्विधा भिन्नं चतुरस्रप्रकृतिकं शिवचक्रचतुष्टयात्मकमाधारस्वाधिष्ठानात्मकञ्चेति प्रपञ्चितम्।)

वृत्तत्रय—

प्रथम वृत्त : 'रुद्रग्रन्थ्यात्मक' स्वाधिष्ठानान्त में।

द्वितीय वृत्त : 'विष्णुग्रन्थ्यात्मक' अनाहतान्त में।

तृतीय वृत्त : 'ब्रह्मग्रन्थ्यात्मक' आज्ञाचक्रान्त में।

इसके ऊपर चतुर्द्वारोपेत भूपुरत्रितय चारो द्वारों पर सोपानयुक्त है और वही है— सहस्रदलकर्णिका। इस कमल के १००० दल हैं। चतुर्द्वारोपेत कर्णिका के बीच बैन्दव-स्थान है। प्रासादन्याय से श्रीचक्र के कमलों की एकता अनुसन्धेय है। यही है— नादबिन्द्वैक्य।

इस षट्चक्र में ५० कलाओं का अन्तर्भाव है। इसमें चन्द्रखण्ड में स्वर शब्द है। सूर्यखण्ड में स्पर्श शब्द है। अग्निखण्ड में अन्तःस्थ एवं हकारवर्जित ऊष्म वर्ण है। बैन्द-वखण्ड में हकार लकार है। क्षकार सर्वत्र है। मूलाधार आदि कमलों के दलों में कलाओं का अन्तर्भाव है।

कलायें तिथ्यात्मक हैं। नित्यायें कलात्मक हैं। कलायें मूलमन्त्रगत पञ्चदशाक्षरात्मक हैं। पञ्चदशाक्षर त्रिखण्डात्मक है। त्रिखण्ड सोम-सूर्य-अनलात्मक हैं। सोम-सूर्य-अनल ग्रन्थित्रयात्मक हैं। ग्रन्थित्रय मन्त्रगत ह्रींकारत्रयात्मक है। ह्रींकार भुवनेश्वरीमन्त्रात्मक है। भुवनेश्वरी मन्त्र मूलमन्त्रात्मक है— 'कलानां तिथ्यात्मकत्वम्, नित्यानां कलात्मकत्वम्, कलानां मूलमन्त्रगतपञ्चदशाक्षरात्मकत्वम्, पञ्चदशाक्षराणां त्रिखण्डत्वम्, त्रिखण्डस्य सोमसूर्या-नलात्मकत्वम्, सोमसूर्यानलानां ग्रन्थित्रयात्मकत्वम्, ग्रन्थित्रयस्य मन्त्रगतह्रींकारत्रयात्मकत्वम्, ह्रींकारस्य भुवनेश्वरीमन्त्रत्वम्, भुवनेश्वरीमन्त्रस्य मूलमन्त्रान्तर्गतत्वम्, मूलमन्त्रस्य चक्रेणैक्यम्'।

चक्रनवक का मूलाधारादि षट्चक्रों में (ब्रह्मग्रन्थ्यादि त्रिक होने पर भी) सहस्रकमल-कर्णिका आदि से तादात्म्यभाव है। यही है— कला एवं नाद का ऐक्य।

भगवती की सपर्या (षोढैक्य)— षोढ़ा ऐक्य ही भगवती की सपर्या (पूजा) है। ऐक्य समष्टि इस प्रकार है—

१. नाद के साथ बिन्दु का ऐक्य।
२. बिन्दु एवं कला का ऐक्य।
३. कला का नाद के साथ ऐक्य।
४. कला के साथ बिन्दु का ऐक्य।
५. कला एवं नाद का ऐक्य।
६. श्रीविद्या का ५ के साथ ऐक्य।

यह षड्विध ऐक्य परम रहस्य है और गुरूपदेश से ही अवगन्तव्य है।

इस षोढ़ा ऐक्य के अनुसन्धान के अनन्तर ही दशभुजा भगवती श्रीविद्या मणिपूर चक्र में प्रत्यक्षतया दर्शन देती हैं। षोढैक्य द्वारा भगवती का साक्षात्कार एवं भगवती के साथ ऐक्यानुसन्धान ही भगवती की पूजा है— 'षोढैक्यानुसन्धानानन्तरं दशभुजा भगवती श्रीविद्याविस्रा मणिपूरे प्रत्यक्षं परिदृश्यमाना सपर्यया सन्निधेयेति ऐक्यानुसन्धानमेव सपर्येति वदतो ममाशयः'।

बिन्दुस्वरूप का विवेचन— बिन्दु क्या है? यह पहले ही बताया जा चुका है कि 'बिन्दुरिति मूलाधारादिचक्रषट्कम्' अर्थात् मूलाधारादि षट्चक्र ही बिन्दु है। यह बिन्दु शिव की शक्तिविशेष है, यह जगत् की उत्पत्ति एवं लय का कारण है, यह केवल एक ही है, यह सहस्रकमलान्तचतुर्द्वारात्मक कर्णिकामध्यगत चतुष्कोणात्मक शक्तितत्त्व है, उसके मध्य में ही नाद प्रतिष्ठित है। यह चतुर्विध है।

शिव एवं शक्ति शब्दार्थरूप होने के कारण कलात्मक हैं। अतः नाद एवं बिन्दु भी कलात्मक हैं। इसलिये दोनों का मेलनरूप जो नाद-बिन्दुकलातीत पद है, वही है— समयमत का रहस्य।

आचार्य गौड़पाद ने इस बिन्दु के दश प्रकार स्वीकार किये हैं। ग्रन्थान्तर में कहा भी गया है—

दशधा भिद्यते बिन्दुरेक एव परात्मकः।
चतुर्धाऽधारकमले षोढाऽधिष्ठानपङ्कजे।
उभयाकाररूपत्वादितरेषां तदात्मता।।

एक परम तत्त्व से ही जगत् की उत्पत्ति होती है। यह परम तत्त्व ही सहस्रारस्थ बिन्दु है। यह एकात्मक बिन्दु ही दशधा विभक्त होकर मूलाधार के चार एवं स्वाधिष्ठान के छः दलों (४ + ६ = १०) द्वारा दश दल बनते हैं। यह दश दल एक ही बिन्दु का दशधा प्रसार है। ये लयक्रम में पुनः सहस्रार पद्म में एकाकार हो जाते हैं।

मूलाधार में स्थित बिन्दु के चार प्रकार ही चार दल हैं और वे हैं— मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार (अन्तःकरणचतुष्टय)।

स्वाधिष्ठान में स्थित बिन्दु के छः प्रकार ही छः दल हैं और वे हैं— काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य। गौड़पाद ने इसकी पुष्टि करते हुये सुभगोदय स्तुति में कहा गया है—

अधिष्ठानाधारद्वितयमिदमेवं दशदलं
सहस्राराज्जातं मणिपुरमतोऽभूद्दशदलम्।
हृदम्भोजान्मूलान्नृपदलमभूत्स्वान्तकमलं
तदेवैको बिन्दुर्भवति जगदुत्पत्तिकृदयम्।।

सारांश यह कि एक ही बिन्दु मूलाधार कमल के पत्रचतुष्टय में तथा स्वाधिष्ठान

पद्म के षड्दलों में स्थित होकर अपने को दश रूपों में विभाजित करता है।

क. मूलाधार = चतुष्पत्र सरसिज।
ख. स्वाधिष्ठान = षड्दल सरसिज।
ग. मणिपूर = दशदल सरसिज।
घ. अनाहत = द्वादशदल सरसिज।
ङ. विशुद्धि = षोडशदल सरसिज।
च. आज्ञा = द्विदल सरसिज।

आधारपद्म के दलचतुष्टय हैं।

मन-बुद्धि-अहंकार-चित्त के भेद से बिन्दु चतुष्टयात्मक है। यह बिन्दु प्रकृत्यात्मक है, जगन्निर्माण का कारण है।

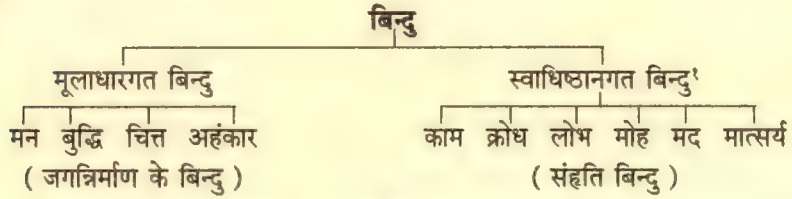

मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान का सर्वोत्पादकत्व—

१. मणिपूर चक्र— दश दल : मूलाधार के ४ बिन्दु + स्वाधिष्ठान के ६ बिन्दु। (मूलाधारात्मक एवं स्वाधिष्ठानात्मक मणिपूर चक्र)।

२. अनाहत चक्र— बारह दल : मणिपूरकप्रकृतिक (१० दल) एवं पूर्वकमलद्वय-प्रकृतिक (२ दल)।

३. विशुद्धि चक्र— सोलह दल : अनाहतप्रकृतिक (१२ दल) एवं आधारप्रकृतिक (४ दल) तथा मणिपूरप्रकृतिक (१० दल) एवं स्वाधिष्ठानप्रकृतिक (६ दल)।

४. आज्ञा चक्र— दो दल : आधार चक्रात्मक एवं स्वाधिष्ठान चक्रात्मक।

मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूर-अनाहत-विशुद्धि-आज्ञा— ये छः चक्र हैं और सहस्रार सबके अन्त में है। मणिपूर से लेकर आज्ञान्त चार कमल मूलाधार एवं स्वाधिष्ठानप्रकृतिक हैं। अतः मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान में ही उपर्युक्त मणिपूरादि चार चक्र अन्तर्भूत हैं।

एक परम बिन्दु से ही छः चक्रों की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार एक ही बिन्दु से १० की उत्पत्ति हुई है— यह सिद्ध है।

निष्कर्ष यह कि सहस्रार चक्र में एक बिन्दु अवस्थित है और इसी के कारण उसे 'बैन्दवगृह' कहा जाता है। इसी अद्वैत (एकात्मक) परम बिन्दु से सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति होती है।

परमबिन्दु या कारणबिन्दु— शक्ति का निर्गुणस्वरूप बिन्दुरूप है। कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार में परमशिव से मिलकर बिन्दुरूपा बन जाती है या कुण्डलिनी शक्ति

---

१. स्वाधिष्ठाने संहारः षड्बिन्दुकृतः। (पतञ्जलि)

सहस्रार में बिन्दुरूप में निवास करती है। उन्मनी अवस्था में यह बिन्दुरूपा है। इसी के कारण सहस्रार को बैन्दवगृह भी कहा जाता है। शक्ति का यह स्वरूप ही परमबिन्दु या कारणबिन्दु कहलाता है। यही बिन्दु समस्त प्रपञ्च की सृष्टि का कारण है। इसी कारण इसे कारणबिन्दु भी कहते हैं। मूल चक्र केवल दो ही हैं— मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान।

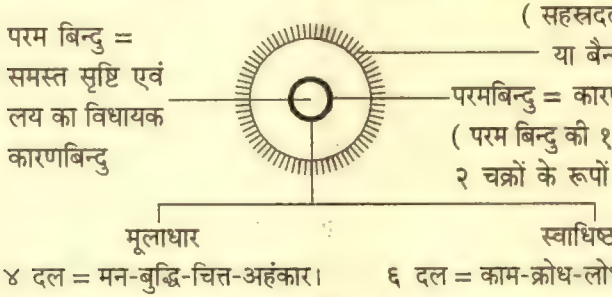

मणिपूरक चक्र में मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान का युग्म रूप विद्यमान है। मणिपूर चक्र से आज्ञा चक्र तक के सभी चक्र मूलाधार एवं स्वाधिष्ठानरूप हैं।

मणिपूरक चक्र (१० दल) ↓ अनाहत चक्र (१२ दल) ↓ विशुद्धि चक्र (१६ दल) ↓ आज्ञा चक्र (२ दल)

मणिपूरचक्र में दशधा विभक्त यह परम बिन्दु अपने दसों रूपों में विद्यमान रहता है, जबकि मूलाधार में ४ अंशों में एवं स्वाधिष्ठान में ६ अंशों में स्थित होता है।

१० दल मणिपूरक के। १ दल मूलाधार एवं १ दल स्वाधिष्ठान के = १०+१+१=१२ दल।

अनाहत चक्र के १२ एवं मूलाधार के ४ दल = १२+४=१६ दल।

मूलाधार का १ दल। स्वाधिष्ठान का १ दल = १+१+२ दल।

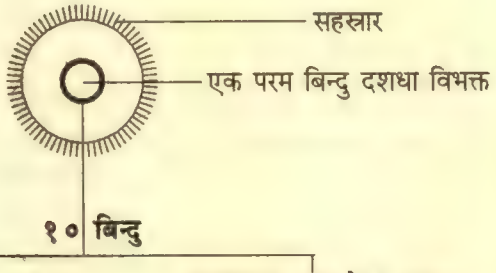

पिण्डस्थ चक्रों का रचना-तन्त्र

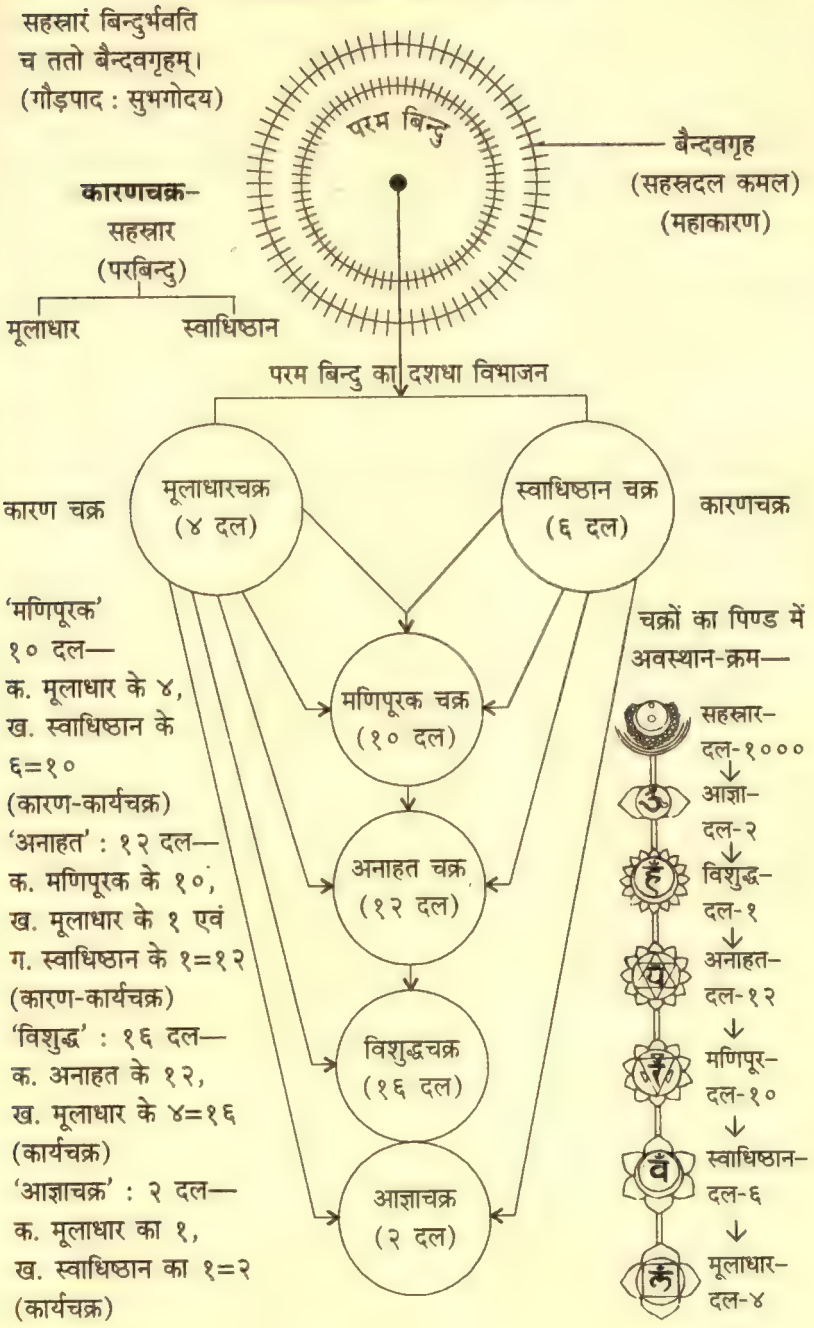

चक्रों की गणना— चक्रों के दलों की संख्या के आधार पर प्रत्येक चक्रों की संख्या इस प्रकार है—

चक्र = ६— कारणचक्र = २, कारण-कार्यचक्र = २ एवं कार्यचक्र = २ = ६।

मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र से सम्बद्ध तो सभी चक्र हैं; किन्तु कुछ दल की दृष्टि से प्रत्यक्षत: सम्बद्ध हैं और कुछ अप्रत्यक्षत:। प्रत्यक्षत: सम्बद्ध चक्र हैं— मणिपूर एवं विशुद्ध चक्र। (मूलाधार के ४ दल) मणिपूरक में ४ दल एवं विशुद्ध में ४ दल।

अप्रत्यक्षत: सम्बद्ध चक्र हैं— अनाहत एवं आज्ञाचक्र। अनाहतचक्र में मूलाधार की संख्या = १ एवं आज्ञा-चक्र में भी मूलाधार की संख्या = १।

कारणचक्र दो हैं— मूलाधार चक्र एवं स्वाधिष्ठान चक्र। कारणात्मक दल हैं— ६ + ४ = १० दल।

कारण-कार्यचक्र भी दो हैं— मणिपूरक चक्र एवं अनाहत चक्र।

कार्यचक्र भी दो हैं— विशुद्धचक्र एवं आज्ञाचक्र।

गौड़पाद : सुभगोदयस्तुति—
अधिष्ठानाधारं द्वितय-
मिदमेवं दशदलम्।
सहस्राराज्जातं मणिपुर-
मतोऽभूद् दशदलम्।।

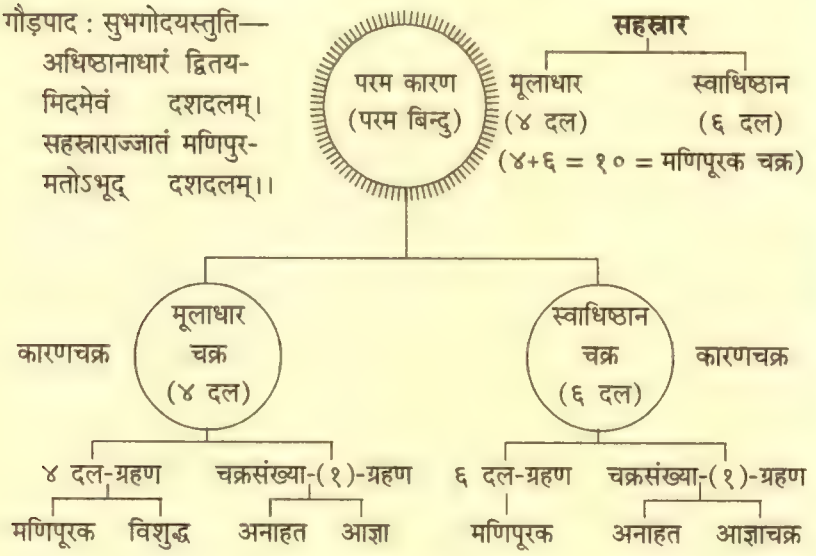

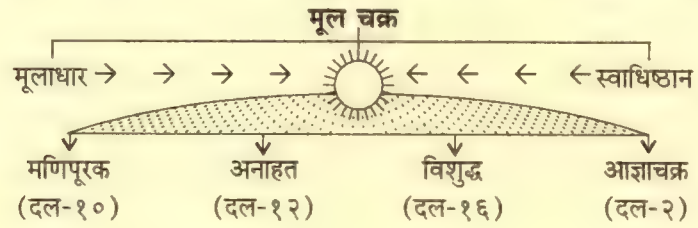

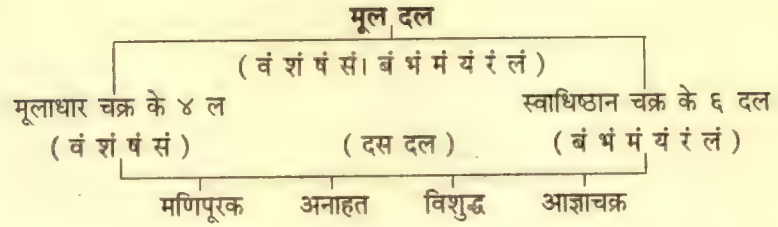

दश दल[1]

मूलाधार : स्वर्णिम वर्ण = ४ दल (वं शं षं सं)

स्वाधिष्ठान : अरुण वर्ण = ६ दल (बं भं मं यं रं लं)

इन्हीं दोनों चक्रों के मध्य में योनिस्थान है और इन्हीं दोनों चक्रों के मध्य में काम-रूप पीठ विद्यमान है। योनि ही कामाख्या पीठ है। कहा भी है—

योनिस्थानं द्वयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते। (गोरक्षशतक)
तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाक्षा सिद्धवन्दिता। (गोरक्षशतक)
योनिस्थाने तयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते। (योगमार्तण्ड[2])

योगमार्त्तण्ड में बताया गया है कि कामाख्या योनि के मध्य में ही पश्चिमाभिमुखी स्वयम्भू लिङ्ग स्थित है—

योनिमध्ये महालिङ्गं पश्चिमाभिमुखं स्थितम्।

मेढ़ से ऊपर एवं नाभि से नीचे खगाण्डवत् कन्दयोनि है, जिससे ७२००० नाड़ियाँ निकली हुई हैं। इसी कन्द के ऊर्ध्व भाग में कुण्डलिनी शक्ति अवस्थित है; जैसा कि योगमार्त्तण्ड में कहा भी है—

कन्दोर्ध्वं कुण्डली शक्तिरष्टधा कुण्डलीकृता।

१. मूलाधार चक्र (१)
२. स्वाधिष्ठान चक्र (१)
} २ दल → आज्ञाचक्र

सहस्रारं बिन्दुर्भवति च ततो बैन्दवगृहं
तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषञ्च करणम्।
ततो मूलाधाराद् द्वितयमभवत्तद्दशदलं
सहस्राराज्जातं तदिति दशधा बिन्दुरभवत्।।
(आचार्य गौड़पाद : सुभगोदयस्तुति)

---

१. 'चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानञ्च षड्दलम्।' (गोरक्षशतक)
२. 'आधारे ब्रह्मचक्रं त्रिधावर्तं भगमण्डलाकारन्तत्र मूलकन्दस्तत्र पावकाकारं ध्यायेत्, तत्रैव कामरूपपीठं सर्वकामप्रदं भवति।' (सिद्धसिद्धान्तपद्धति)

दशधा भिद्यते बिन्दु एक एव परात्मकः।
चतुर्धाऽऽधारकमले षोढाऽधिष्ठानपङ्कजे।
उभयाकाररूपत्वादितरेषां तदात्मता।। (लक्ष्मीधरा)

अतएव मूलाधारद्विके उत्तरकमलचतुष्कमन्तर्भूतमिति एकस्यैव बिन्दोः दशधात्वं नान्यथेति सिद्धम्। (लक्ष्मीधरा)

उत्तरकमलचतुष्क (मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध एवं आज्ञा) के भीतर एक ही परमबिन्दु दशधा विभक्त होकर स्थित एवं व्याप्त है। बिन्दु क्या है? मूलाधार आदि चक्र-षट्क ही बिन्दु है। यह शिव की वह शक्ति है, जो कि जगत् की उत्पत्ति एवं प्रलय का कारण है। वह केवल एक है।[१]

सहस्रदलकमल के अन्तर्गत चतुर्द्वारात्मक कर्णिका के मध्य स्थित चतुष्कोणात्मक शक्तितत्त्व है। उसके मध्य में स्थित शिवतत्त्व ही नाद है। यह चतुर्विधात्मक है। इन शिव एवं शक्तितत्त्वों में कलात्मकता उभयसामान्य है। यह बिन्दु दश प्रकार से विभाजित होकर स्थित होता है। लक्ष्मीधर कहते भी हैं— 'एक एव बिन्दुः मूलाधारगतचतुर्दलेषु चतुर्धा, स्वाधिष्ठानपद्मगतषड्दलेषु षोढा, एवं दशधा भिद्यते'। 'आधारपद्मस्य दलचतुष्टयं बिन्दुचतु-ष्टयात्मकम्' में पठित मूलाधर के चार बिन्दु हैं— मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार। इन्हीं चार बिन्दुओं से जगत् का निर्माण होता है।

स्वाधिष्ठान के छः बिन्दु हैं— काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य।

इस प्रकार दश बिन्दु कमलद्वयदलात्मक हैं।[२]

१० बिन्दु क्या हैं ? मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र के ४ एवं ६ (अर्थात् १०) दलों पर अंकित १० मातृकायें एवं उपर्युक्त मन की १० वृत्तियाँ हैं। षट्चक्रों में ५० कलाओं का अन्तर्भाव है। चन्द्रखण्ड में 'स्वर', सूर्यखण्ड में स्पर्श एवं अग्निखण्ड में अन्तःस्थ, हकारवर्जित ऊष्म वर्ण।

सारांश—

बिन्दु में हकार, ळकार एवं क्षकार सर्वत्र।

मूलाधार = मूल चक्र, स्वाधिष्ठान चक = मूल चक्र, मणिपूर = मूलाधारस्वाधिष्ठा-नात्मक, अनाहत = मणिपूरप्रकृतिक + पूर्वकमलद्वयप्रकृतिक, विशुद्धि पद्म = अनाहतचक्र-प्रकृतिक + आधारप्रकृतिक, आज्ञा-पद्म = आधार-स्वाधिष्ठानात्मक।

सहस्रार एवं श्रीयन्त्र में ऐक्य— पिण्डस्थ चक्र 'सहस्रार' एवं 'श्रीचक्र' दोनों अभिन्न हैं। आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि ये दोनों ही अमृतात्मक हैं और परस्पर अभिन्न हैं। यहीं पहुँचकर भगवती कुण्डलिनी सादाख्य तत्त्व (सदाशिव तत्त्व) को अतिक्रान्त करके परासंवित् स्वरूप धारण करती है—

१. लक्ष्मीधरा २. लक्ष्मीधरा

ततो गत्वा ज्योत्स्नामयसमयलोकं समयिनां
पराख्या सादाख्या जयति शिवतत्त्वेन मिलिता।
सहस्रारे पद्मे शिशिरमहसां बिम्बमपरं
तदेव श्रीचक्रं सरघमिति तद्वैन्दवमिति।।

इसी स्थान को 'सरघा, श्रीचक्र, सहस्रार, बैन्दवस्थान' आदि कहते हैं।

जो बिन्दु दशधा विभक्त होकर मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान में क्रमशः चार एवं छः दल बन जाता है, वही सृजन का केन्द्र है। जिस बिन्दुतत्त्व से सृजनारम्भ होता है, वह नाद से उत्पन्न होता है— 'आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादाद्बिन्दुसमुद्भवः'। यही सृष्टि का उत्स है। नाद में जो क्रियाशक्ति जागृत् होती है, बिन्दु में 'अहं' उसका निमेषस्वरूप है और 'इदं' उन्मेषस्वरूप है। 'इदं' सृष्टिरचना की सर्वप्रथमावस्था है। ईश्वर में यह 'इदं' (विश्वं) अन्तःकरणैकवेद्य होता है; क्योंकि उसमें इन्द्रिय-व्यापार तो होता नहीं, जिससे कि बाहर देखे। नाद एवं बिन्दु दोनों शक्ति की भिन्न-भिन्न अवस्थायें हैं। इसी में क्रिया-शक्ति का बीज अंकुरित होकर सृष्टिरचना की भूमि तैयार होती है। 'बिन्दु' शक्ति की उच्छूनावस्था है, घनीभूतावस्था है। शक्ति भी सिसृक्षावश सृष्टिरचना के समय घनीभूत हो उठती है— 'प्राणिकर्मणामपरिपाकदशायां तादृशकर्माभिन्नमायावच्छिन्नं ब्रह्म घनीभूत-मित्युच्यते'। कालवश कर्मों का परिपाक हो जाता है। परिपाक प्रागभाव को 'विचिकीर्षा' कहते हैं। परिपाकक्षण में माया वृत्ति उत्पन्न होती है। परिपक्व कर्माकार परिगणित माया-विशिष्ट ब्रह्म 'अव्यक्त' कहा जाता है और वही जगदंकुर कन्दरूप होने के कारण 'कारण-बिन्दु' कहलाता है। इसीलिये 'विचिकीर्षुघनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुता' कहा गया है। कारणबिन्दु → कार्यबिन्दु → नाद → बीजत्रय। इसे ही पर, सूक्ष्म एवं स्थूल कहा गया है। इसके तीन रूप हैं— चिदंश, अचिदंश एवं चित्-अचित् का मिश्रांश (कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा)। 'स बिन्दु नादबीजत्वभेदेन च निगद्यत' द्वारा इसी अवस्था को व्यक्त किया गया है। कारणबिन्दु अधिदैवत-अव्यक्त ईश्वर-विराट् या शान्ता-वामा-ज्येष्ठा-रौद्री, अम्बिका-इच्छा-ज्ञान-क्रिया। अधिभूत = कामरूप पीठ। पूर्णगिरिपीठ, जालन्धरपीठ, उड्डयानपीठ (नित्याहृदय)। सूक्ष्म बिन्दु = हिरण्यगर्भ।[१]

बिन्दुतत्त्व का त्रिधा विभाजन— कारणबिन्दु → कार्यबिन्दु → नाद → बीज : पर-बिन्दु, सूक्ष्म बिन्दु, स्थूल बिन्दु = विराट। शक्ति की अवस्थायें → उन्मनी, समनी। उन्मनी = निष्कल ब्रह्म में स्थित रहने वाली शक्ति। यह ब्रह्म में लीन रहती है। समनी शक्ति कला-युक्त होकर सकल ब्रह्ममयी होती है। चिद्रूपिणी शक्ति जब ब्रह्म में लीन होकर ब्रह्ममयी हो जाती है, तब ब्रह्मनिष्कल (तत्त्वातीत) हो जाती है; किन्तु जब ब्रह्ममयी शक्ति चैतन्य-रूपिणी होती है, तब ब्रह्म सकल हो जाता है। निष्कल एवं सकल— ये दोनों ब्रह्मस्वरूप नित्य हैं। जब शक्ति सिसृक्षावश घनीभूत हो उठती है,

१. सौभाग्यभास्कर

तब शक्ति की त्रिगुणात्मिका स्थिति— सकल ब्रह्म में चिद्रूपेण ज्ञानप्रधाना, नादतत्त्व में क्रियारूप से रज:प्रधाना और बिन्दुतत्त्व में घनीभूत होने के कारण तम:प्रधाना हो जाती है। सृष्टि के विकास में मूल तत्त्व शक्ति ही है, जो एक ओर चित् शक्ति तथा दूसरी ओर माया शक्ति के रूप में कार्य करती है। चैतन्यरूप में वह द्रष्टा विश्वोत्तीर्णा बन जाती है और मायिक रूप में दृश्या विश्वरूपिणी बन जाती है।[१]

लक्ष्मीधर का कथन है कि यद्यपि यह सत्य है कि कौलों के द्वारा द्विकानुसन्धान (मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान की पूजा) षट् कमलों की पूजा का फल प्रदान कर देगा, किन्तु कौलों में षड्विध ऐक्यानुसन्धान के अभाव के कारण कौलोपासक मणिपूर में भगवती का साक्षात्कार नहीं कर पाते। जैसा कि कहा भी है— 'कुलमार्ग एवेति न देव्या मणिपूरे सान्निध्यम्'।

कौलों में पञ्चविध मुक्ति की युक्तियों का भी अभाव है और उनमें नाद-बिन्दुकलातीतत्व भी असम्भाव्य है। जैसा कि कहा है— 'नादबिन्दुकलातीतत्वमप्यसम्भाव्यमेव'।

समयिमत में कार्यभूत चतुष्क चक्रानुसन्धान से ही कारणभूत कमलद्वयानुसन्धान का फल प्राप्त कर लिया जाता है। अतएव पञ्चविध साम्य की सिद्धि होने पर समय-समयिभाव प्रत्यक्ष रूप से परिदृष्ट हो जाता है। आशय यह कि समयमार्गियों को समय एवं समया (कामेश्वर-कामेश्वरी, शिव-पार्वती) का प्रत्यक्षीकरण हो ही जाता है और यही भगवत्पाद शंकराचार्य का मत है।

धारणात्मक भजन का स्वरूप— भजन के जो दो अर्थ दिये गये थे— षट्-चक्रात्मक सेवा एवं धारणात्मक सेवा, उनमें से षट्चक्रोपासना के विषय में चतुर्विध ऐक्य एवं षोढ़ा ऐक्यरूप सपर्या (भजन) का तो सविस्तार विवेचन किया गया; किन्तु धारणात्मक भजन का स्वरूप क्या है? यह अविवेचित ही रह गया। अत: अब यहाँ उसी का विवेचन किया जा रहा है।

आचार्यपाद शंकर ने कहा है कि 'धारणापरिज्ञानान्मुक्ति:'। धारणाओं को ३६० प्रकार का बताया गया है; किन्तु प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यह 'धारणा' है क्या? इस जिज्ञासा का शमन करने के लिये कहते हैं कि 'धारणा' नाद एवं कला के द्वारा कमलों में वायु का निरोध है— 'धारणानाम वायो: कमलेषु नादकलाभ्यां निरोध:'। यह निरोध छ: कमलों में षड्विध है और सप्तम कमल (सहस्रदल कमल) में समय के साथ सप्तविध है। एक-एक कमल में ५०-५० अर्थात् कुल ३६० धारणायें हैं और ये ही धारणायें नाद, बिन्दु एवं कला के साथ मिलायी जाने पर अनन्त प्रकार की हो जाती हैं। आधारादिक षट्चक्रों में धारणाओं का फल यथाक्रम मति-स्मृति-बुद्धि-प्रज्ञा-मेधा-प्रतिभा एवं संवित् के रूप में प्रतिफलित होता है।

---

१. सौभाग्यभास्कर

कालिदास ने कुलमत एवं समयमत का भेद 'सकलजननीस्तोत्र' में इस प्रकार निरूपित किया है—

चतुष्पत्रान्तष्षड्दलपुटभगान्तस्त्रिवलय-
स्फुरद्विद्युद्वह्निद्युमणिनियुताभद्युतिलते ।
षडस्रं भित्वाऽदौ दशदलमथ द्वादशदलं
कलास्रञ्च द्व्यस्रं गतवति नमस्ते गिरिसुते।।

आशय यह कि आज्ञाचक्र के अन्त में ब्रह्मग्रन्थिभेदन के समय विद्युन्नियुताभा है। स्वाधिष्ठान चक्र के अन्त में रुद्रग्रन्थिभेदन के समय वह्निनियुताभा है। अनाहत चक्र के अन्त में विष्णुग्रन्थिभेदन के समय द्युमणिनियुताभा है। षडस्र (मूधाधारगर्भित स्वाधिष्ठान) का भेदन करने के बाद दशदल मणिपूर चक्र का भेदन करके, फिर द्वादशकमल अनाहत चक्र का भेदन करके, फिर विशुद्धि चक्र (कलास्र) का भेदन करने के उपरान्त द्व्यस्र (आज्ञाचक्र) का भेदन करके सहस्रकमल में जाना चाहिये।

चतुष्पत्र मूलाधार स्वाधिष्ठान में अन्तर्भूत है। इसकी उपासना कौल किया करते हैं। समयी उपासक स्वाधिष्ठान का भेदन करके मणिपूर में प्रवेश कर देवी की उपासना करते हैं। यही है— समयमततत्त्व। पिण्डब्रह्माण्डैक्यानुसन्धान, षट्कमलानुसन्धान, पञ्चविध साम्यानुसन्धान एवं षड्विधैक्यानुसन्धान द्वारा पिण्डाण्ड ब्रह्माण्ड की भाँति अवभासित होने लगता है। अतः योगियों को चतुर्विधैक्यानुसन्धान अवश्य ही करना चाहिये; तत्पश्चात्—

पिण्डब्रह्माण्डयोक्यं लिङ्गसूत्रात्मनोरपि।
स्वापाव्याकृतयोरैक्यं क्षेत्रज्ञपरमात्मनोः।।

अर्थात् पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड का ऐक्य होने के पश्चात् लिङ्गशरीर एवं सूत्रात्मा में ऐक्य होना चाहिये। पुनः स्वाप (सुषुप्त्यवस्थापन्न साक्षी प्राज्ञ) एवं अव्याकृत (अविद्याशबलित ब्रह्म) का ऐक्य होना चाहिये और अन्त में क्षेत्रज्ञ (जीव) एवं परमात्मा (ब्रह्म) का ऐक्य होना चाहिये।

आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी में शाक्तसम्प्रदायगत कौलशाखा एवं समयशाखा दोनों के मतों का प्रस्तुतीकरण किया है। लक्ष्मीधर कहते हैं कि मैंने सौन्दर्यलहरी के इस श्लोक की कौल एवं समयमतों की दृष्टि से व्याख्या की है— 'अस्मिन् श्लोके सौन्दर्यलहर्या यावत्प्रमेयजातं समयसिद्धान्तरहस्यत्वेन कौलसिद्धान्तरहस्यत्वेन च प्रतिपादितमस्माभिः'।

शंकराचार्य की उपासना-दृष्टि— लक्ष्मीधर कहते हैं कि शंकराचार्य समयतत्त्व के मर्मज्ञ थे और उन्होंने १०० श्लोकों वाली सौन्दर्यलहरी में समयाभिधाना 'चन्द्रकला' का विवेचन किया है— 'इह खलु शङ्करभगवत्पूज्यपादाः समयमततत्त्ववेदिनः समयाख्यां चन्द्रकलां श्लोकशतेन प्रस्तुवन्ति'।[१]

१. भगवत्पादाचार्याः समयमतपारदृश्वानः समयाचारप्रवणाः समयरूपां भगवतीं स्तुवन्ति। समयाचारो नाम आन्तरपूजारतिः। कुलाचारो नाम बाह्यपूजारतिरिति।

भगवती का जब आन्तर पूजन किया जाय तब उस अवसर पर समयोपासकों को चाहिये कि वे तृतीय कमल में अनेक प्रकार के मणियों से खचित भूषणों को देवी को अर्पित करें। ऐसा करने से भगवती इस तृतीय चक्र 'मणिपूर' को मणियों से सम्पूरित कर देती हैं; इसीलिये इस चक्र का नाम मणिपूर चक्र है— 'यत्र स्थिता भगवती मणिभिस्तत्प्रदेशं पूरयति स देशो मणिपूरः'।

आचार्य शंकर और कुण्डलिनी— आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी में भगवती त्रिपुरसुन्दरी का पूजा-विधान प्रस्तुत करते हुये भगवती-कुण्डलिनी की उपासना का भी विधान किया है। इस सन्दर्भ में निम्न श्लोक ध्यातव्य है—

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।।

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि।।

(सौन्दर्यलहरी-९-१०)

भगवती के अन्तर्यजन एवं ध्यानोपासना में यह ध्यान करना चाहिये कि भगवती महात्रिपुरसुन्दरी मूलाधार में पृथ्वी एवं जलतत्त्व को, मणिपूर में अग्नितत्त्व को (जिसकी स्थिति स्वाधिष्ठान में है), हृदय में वायुतत्त्व को, ऊपर विशुद्ध चक्र में आकाशतत्त्व को एवं मन को भ्रूमध्य में— इस प्रकार समस्त कुलपथ (शक्तिमार्ग) का वेध करके सहस्रार पद्म में अपने पति के साथ एकान्त में विहार करती हैं।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी अपने दोनों चरणों के मध्य टपकती हुई अमृत-धाराओं की वर्षा से जगत् को सींचती हुई छहों आम्नायों से होती हुई या छहों चक्रों द्वारा सींचती हुई अपनी भूमि पर उतर कर एवं अपने-आपको सर्पिणी की भाँति साढ़े तीन कुण्डलों से आवेष्टित करके कुलकुण्ड में सोती हैं।

पूजा-विधान— तैत्तिरीय आरण्यक (१.११) में भगवती त्रिपुरसुन्दरी की पूजा के विषय में निर्देश दिया गया है कि 'नैतमृषिं विदित्वा नगरं प्रविशेत'। अर्थात् इस ऋषि कामदेव को विधिवत् जानकर भी नगर (श्रीचक्रात्मक नगर) में प्रवेश नहीं करना चाहिये; क्योंकि भगवती की पूजा में बाह्य पूजा नहीं करनी चाहिये। यही निषेधविधि है। यतः बाह्य पूजा में ही ऋषि, छन्द, अर्गला, न्यास, कीलक, स्तव आदि का विधान है; अतः वह यहाँ स्वीकार्य नहीं है। चूँकि आन्तर पूजा में तादात्म्यानुसन्धान प्रमुख है; अतः वहाँ ऋषि आदि का ज्ञान अनावश्यक है।

आन्तर पूजा— समयाचार में बाह्य पूजा निषिद्ध है। यहाँ केवल आन्तर पूजा ही स्वीकार्य है; अतः यहाँ ऋषि, छन्द आदि (बाह्य पूजापरक) तत्त्वों की कोई उपयोगिता नहीं है। पूजा के ये सभी बाह्याङ्ग समयमत में अस्वीकार्य या अग्राह्य हैं। 'नैतमृषिं विदित्वा नगरं प्रविशेत' में प्रयुक्त 'ऋषि' शब्द ऋषि-छन्द-पटल-पद्धति-बाह्य न्यास आदि सभी का उपलक्षक है और वह इन बाह्योपकरणों एवं बाह्याचारों का निषेध करता है।

सौन्दर्यलहरी के तैंतीसवें श्लोक की टीका आचार्य लक्ष्मीधर भी कहते हैं कि 'एवं ऋषिं मन्मथं विदित्वा नगरं श्रीचक्रात्मकं न प्रविशेत्, ऋषिज्ञानपूर्वकं श्रीचक्रात्मकं नगरं न पूजयेत्, बाह्यपूजा न कुर्यादिति निषेधविधिः। बाह्यपूजायामेव ऋषिच्छन्दःप्रभृतिज्ञान-पूर्वकत्वम्।

आन्तरपूजायां तादात्म्यानुसन्धानात्मिकायामृष्यादिज्ञानं नास्त्येव। उपयोगस्तु दूर एव।

अतो वस्तुसिद्धऋष्यादिपर्युदासमुखेन श्रीचक्रस्य बाह्यपूजनं त्रैवर्णिकैः न कर्तव्यमिति नियम्यते।

सनत्कुमारसंहिता में भी कहा गया है—

बाह्यपूजा न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभिः।
सा क्षुद्रफलदा नृणां ऐहिकार्थैकसाधनात्।।

बाह्यपूजारताः कौलाः क्षपणाश्च कपालिकाः।
दिगम्बराश्चेतिहासा वामकास्तन्त्रवादिनः।।

आन्तराराधनपरा वैदिका ब्रह्मवादिनः।
जीवन्मुक्ताश्चरन्येते त्रिषु लोकेषु सर्वदा।।

बाह्यपूजा-विधान में विश्वास रखने वाले उपासक हैं— कौल, क्षपण, कपाली, दिगम्बर, इतिहास में विश्वास रखने वाले या इतिहास को प्रमाण मानने वाले, वाममार्गी एवं तान्त्रिक। इनमें से कौल तो आधारचक्र की पूजा में ही निरत रहते हैं और क्षपण योषित्त्रिकोण की पूजा में ही अनुरक्त रहते हैं। दिगम्बर उपर्युक्त दोनों ही पूजाओं में निरत रहते हैं। इतिहासवादी भैरवयामल आदि को प्रमाण मानते हैं। वामक तन्त्रवादी अपनी एक पृथक् ही दृष्टि रखते हैं और बाह्य पूजा किया करते हैं तथा वामकेश्वरतन्त्र को प्रमाण मानते हैं। वे केवल चक्रपूजक हैं और वेद-बाह्य हैं। आन्तर पूजा तो मात्र शुभागमतत्त्ववेत्ता ब्रह्मवादी ही किया करते हैं— 'आन्तरपूजारताः ब्रह्मवादिनः शुभागमतत्त्ववेदिनः'।[१]

'यदि प्रविशेत्। मिथौ चरित्वा प्रविशेत्' (तैत्तिरीय आ०-१.१) आशय यह कि यदि प्रवेश करना ही है तो मिथ (एकान्त) में प्रवेश करे अर्थात् आन्तर पूजा करे— 'आन्तरपूजां कुर्यादित्यर्थः'। 'या मिथौ' अर्थात् मिथुनीभूत शिव-पार्वती दोनों के मेलन को जान कर प्रवेश करे। एकान्त में प्रवेश करने के अर्थ में भी ऐकात्म्यानुसन्धान की

१. आचार्य लक्ष्मीधर : लक्ष्मीधरा

दिशा में सहायान्तर अपेक्षित नहीं है; क्योंकि 'एकान्ते एव विद्या फलवती' ऐसा कहा गया है।

पूर्वोक्त में प्रमाण है तैत्तिरीय आरण्यक का यह वाक्य— 'तत्सम्भवस्य व्रतम्'। अर्थात् चित्तजात मन्मथ का यही व्रत (माहात्म्य) है कि वह सहायान्तर का परित्याग करके एकान्त में स्त्री-पुरुष संयोजनरूप है। अत: मन्मथोपदिष्ट मन्त्र का अनुष्ठान करने वाले को भी अपना विद्यानुष्ठान गुप्त रीति से ही करना चाहिये या मन्मथमिथुन (पति-पत्नी) को एकान्त में गया हुआ देखकर उन दोनों में एकान्त स्थल में प्रवेश करता है। इसी प्रकार शिव-शक्ति के सम्पुट को जानकर ही साधक को प्रवेश करना चाहिये।

तैत्तिरीय आरण्यक की 'पुत्रो निर्ऋत्या वैदेह:', 'जनको ह वैदेह:' आदि ऋचायें भी एक का ही अर्थात् एकान्त का ही प्रतिपादन करती हैं।[१]

सामयिकसम्मत पूजा की विशेषतायें— समयमतावलम्बियों की इस पूजा की प्रमुख विशेषताओं को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है—

१. इसमें मन्त्रों का पुरश्चरण नहीं किया जाता— 'समयिनां मन्त्रस्य पुरश्चरणं नास्ति'।

२. इसमें मन्त्रों के जप का भी विधान नहीं है— 'जपो नास्ति'।

३. इसमें जो भी अनुष्ठान किया जाता है, उसका स्थान मात्र हृदय (हृत्कमल— अनाहत चक्र) है, द्वादश कमलात्मक चक्र है— 'हृत्कमल एव सर्वं यावदनुष्ठेयम्'।

आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी के ३६वें श्लोक में इसका प्रतिपादन भी किया है—

तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता।
यमाराध्यन् भक्त्या रविशशिशुचीनामविषये
निरालोकेऽलोके निवसति हि भालोकभुवने।।

इस श्लोक का सामान्य अर्थ तो मात्र यह है कि 'हे भगवति ! मैं तेरे आज्ञाचक्र में स्थित करोड़ों सूर्य-चन्द्रों के अमित तेज से देदीप्यमान परमशिव की वन्दना करता हूँ, जिनका वाम पार्श्व पराचिति से एकीभूत है। जो मनुष्य उसकी सश्रद्धा उपासना करते हैं, वे उस प्रकाशमान लोक में निवास करते हैं, जो सूर्य-चन्द्र-अग्नि का विषय नहीं है या समस्त आतंकों से मुक्त है या सूर्य-चन्द्र-अग्नि का विषय न होने के कारण उनके प्रकाश से प्रकाशित नहीं है'।

इस श्लोक में पर चिति को वामांक में आसीन कराकर स्थित परमशिव की आराधना भ्रूमध्य में करने का विधान किया गया है और भगवती की काल्पनिक मूर्ति को भ्रूमध्य में ध्यान का विषय बनाने उपदेश दिया गया है, न कि बाह्योपचार पूजन का।

---

१. लक्ष्मीधर : लक्ष्मीधरा

भगवती के देह में पिण्ड-ब्रह्माण्ड समाविष्ट है। श्रीचक्र भगवती के शरीर का प्रतीक है। श्रीचक्र के षोडश और अष्टदलों में आज्ञाचक्र की भावना करके वहीं भगवती की समाराधना करने का भी यह श्लोक उपदेश देता है। यहाँ अपने शरीरस्थ चक्रों में ही ध्यान करने का विधान किया गया है।

'तवाज्ञाचक्रस्थं' में 'तव' शब्द के दो अर्थ हैं— १. वह स्थान, जहाँ भगवती प्रधानतया निवास करती हैं; अत: उसे उनका स्थान (तव = तुम्हारा) कहा गया है और २. साधक को देहाभिमान गलित करने हेतु कहा गया कि यह भ्रूमध्योपरि स्थित जीव का आज्ञाचक्र भी जीव का नहीं, भगवती का ही है। अर्थात् ध्येय भी भगवती है और ध्यान भी भगवत्कार है तथा ध्यान-स्थान भी भगवती का ही अपना धाम है। अत: साधक को 'मेरा' कहने के लिये कुछ भी शेष नहीं है; क्योंकि पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-आकाश सभी तो भगवती की ही परिणति हैं। सुषुम्ना में स्थित समस्त चक्र भी चिति-शक्ति के ही विभिन्न केन्द्र हैं; अत: भगवती के ही चक्र हैं—

सुषुम्नाद्यै कुण्डलिन्यै सुधायै चन्द्रमण्डलात्।
मनोन्मन्यै नमस्तुभ्यं महाशक्त्यै चिदात्मने।।

(योगशिखोपनिषद्)

सुषुम्ना भी चिदात्मिका महाशक्ति का ही रूपान्तर है।

आज्ञाचक्र को प्रधानता इसलिये दी गई है कि मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान अग्निमण्डल है तथा मणिपूर एवं अनाहत चक्र सूर्यमण्डल है। विशुद्ध एवं आज्ञाचक्र ही चन्द्रमण्डल के अन्तर्गत है और भगवती की आराधना चन्द्रमण्डल में एवं पूर्णिमा के चाँद में ही करने का विधान है; इसीलिये आज्ञाचक्र का विशेष रूप से आत्मीकरण किया गया है।

आचार्य लक्ष्मीधर का कथन है कि 'तवाज्ञाचक्रस्थं' में प्रयुक्त 'चक्र' शब्द भ्रूमध्य-मध्यान्तर्गत शिवचक्रचतुष्टय का बोधक है, न कि द्विदल पद्म का। साथ ही यह भी कि स्वाधिष्ठान के आगे अग्निमण्डल है एवं अनाहत चक्र के आगे सूर्यमण्डल है; किन्तु आज्ञाचक्र के आगे चन्द्रमण्डल है। अग्नि-सूर्य-चन्द्र की किरणें संख्या में ३६० हैं और वे आधारचक्र से लेकर आज्ञा चक्रपर्यन्त प्रसृत हैं। आज्ञाचक्र में स्थित चन्द्र से अन्य चन्द्र, जो कि सहस्रदल कमल में स्थित है, वह श्रीचक्रात्मक है, नित्यकल है और नित्य ध्येय है। इसी प्रसंग में आचार्य शंकर की सौन्दर्यलहरी का सत्ताईसवाँ श्लोक भी ध्यातव्य है—

जपो जल्प: शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना
गति: प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधि:।
प्रणाम: संवेश: सुखमखिलमात्मार्पणदृशा
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्।।

अर्थात् भगवती की यथार्थ उपासना में तो उच्चारण करना ही 'मन्त्र', हस्तविन्यासादि व्यापारनिचयात्मक कर्मकाण्ड 'मुद्रा', स्वयं का चलना-फिरना ही 'प्रदक्षिणा' स्वयं का

खाना-पीना 'आहुति' स्वयं का शयन 'प्रणाम' एवं समस्त सुखों के उपभोग में आत्म-समर्पण की दृष्टि ही सपर्या अर्थात् पूजा है। ठीक भी है; क्योंकि दुर्गासप्तशती (५. २६) में कहा भी गया है—

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

श्रीमद्भगवद्गीता (१५.१४) में भी कहा गया है—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।

आचार्य लक्ष्मीधर ने लक्ष्मीधरा में ठीक ही कहा है—

क. जल्पादीनां जपादिरूपता यथार्हं कल्पिता।

ख. एवं नयनोन्मीलननिमीलननिमेषोन्मेषाङ्गभङ्गजृम्भादीनां यथार्हं सपर्यापर्यायता ऊह्या।

ग. हे भगवति ! आत्मार्पणदृशा जपः शिल्पः, सकलमपि शिल्पं मुद्राविरचना, गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणं, अशनादि आहुतिविधिः, संवेशः प्रणामः, अखिलं सुखं मे यद्विलसितं च तव सपर्यापर्यायः भवतु।

घ. शब्दादीनां यादृच्छिकसम्भवेन सुखप्रादुर्भावे तत्सुखं मच्छेषं न भवति किन्तु सदाशिवायेत्यर्पणं सपर्यापर्यायः।

—'यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्' ही यथार्थ पूजा है, जिसमें बाह्या-चार के लिये कोई स्थान नहीं है।

ङ. शब्दादेः सुखकरस्य वस्तुनः षोडशोपचारव्यतिरेकेण आत्मार्पणबुद्ध्या त्याग एव सपर्यापर्यायः, न तु स्वीकृतानाम्।

—शब्दादिक यादृच्छिक सुखों के उत्पन्न होने पर यह समझना कि यह 'मेरे' एवं 'मेरे लिये' नहीं; प्रत्युत सदाशिव को अर्पित करने के लिये हैं— यह भाव ही पूजा या उपासना है। अर्थात् यहाँ बाह्य षोडशोपचार स्वीकृत नहीं है। सामयिकों के मत में समय (सादाख्य तत्त्व) की सहस्रदल कमल में पूजा करनी चाहिये, न कि बाह्य पीठ आदि में; जैसा कि आचार्य लक्ष्मीधर ने कहा भी है—

समयिनां मते समयस्य सादाख्यतत्त्वस्य सपर्या सहस्रदलकमल एव न तु बाह्ये पीठादौ। ये ये समयिनो योगीश्वरा जीवन्मुक्ताः संसारयात्रामनुवर्तमानाः सादाख्यतत्त्वमनुचिन्तयतः आत्मैकप्रवणाः वर्तन्ते, तेषां जपो जल्पशिल्पमित्यादिना सपर्याप्रकारो निरूपितः।

सारांश—

१. समयमतानुयायी सहस्रदल कमल में सादाख्य तत्त्व की पूजा करते हैं।

२. जो समयी योगी हैं और व्युत्थानात्मक सांसारिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं, वे

जीवन्मुक्त आत्मैकपरायण योगी 'जल्प ही जप है' आदि विधि से भगवती की पूजा करते हैं।

३. इसके अतिरिक्त जो विजन गुहान्तर में बद्धपद्मासनस्थ होकर इन्द्रियजय करके सादाख्य तत्त्व के ध्यान में एकनिष्ठ योगीश्वर हैं, वे चतुर्विध एवं षड्विध ऐक्यानुसन्धानात्मक पूजा करके ही भगवती की उपासना करते हैं— 'चतुर्विधषड्विधैक्यानुसन्धानमेव भगवत्याः सपर्या'।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों ही विधानों में कहीं भी भगवती की पूजा में बाह्य पूजा या तज्जन्य क्रिया-कलाप के निष्पादन का विधान नहीं है— 'बाह्यपूजायां तत्क्रियाकलापे च तत्सम्पादनायां च क्लेशो नास्ति समयिनामिति रहस्यम्' और यही इस सामयिक पूजा का रहस्य है।

४. चन्द्रज्ञानविद्या में भी कहा गया है—

सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणान् धारयन्तीं प्रपूजयेत्।।

आचार्य लक्ष्मीधर यह भी कहते हैं कि बाह्य पूजाप्रकार का जो उपदेश दिया भी गया है, वह समयैकदेशिमतमात्र ही है, सार्वभौम नहीं— 'बाह्यपूजाप्रकारकथनं तत्तु समयैकदेशिमतमिति'।

समयमत के अनुसार हृदयकमल में समाराधना करने पर भगवती शीघ्र प्रसन्न होती हैं; किन्तु यहाँ समाराधना के करने पर आराधक को ऐहिक फल ही प्राप्त होते हैं— 'एवं हृदयकल एव समाराधिता भगवती ऐहिकानि फलानि सर्वाणि ददाति। हृदयकले एव होमादिकं तर्पणादिकञ्च कार्यमैहिकफलसाधनमिति'। लेकिन उच्चतम उपलब्धियों के लिये तो सहस्रदल कमल में ही आराधना करनी चाहिये।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऐहिक एवं आमुष्मिक सभी प्रकार के फलों के प्राप्त्यर्थ साधकों को मात्र आन्तर पूजा ही करनी चाहिये; जैसा कि आचार्य लक्ष्मीधर ने कहा भी है— 'समयिनामैहिकामुष्मिकफलसाधनोपायः आन्तरपूजेति समयमततत्त्वम्'।

सूर्यमण्डल के अन्दर भगवती की पूजा का जो विधान किया गया है, वह सामयिकों को मान्य नहीं है— 'अत्र समयिनां बाह्यपूजानिषेधात्सूर्यमण्डलान्तर्गतत्वेन पूजनं निषिद्धम्'। यद्यपि इसका विधान सुभगोदय में 'सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्' के द्वारा किया गया है, तथापि समयमत में यह निषिद्ध है।

चतुश्चत्वारिंश अध्याय

श्रीदेवी का मन्दिर और उसका पूजन-विधान

भैरवयामल में भगवती त्रिपुरसुन्दरी के मन्दिर का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

तत्र चिन्तामणिमयं देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामन्त्रे महेशानोपबर्हणे।।

अतिरम्यतले तत्र कशिपुश्च सदाशिवः।
भूतकाश्च चतुष्पादा महेन्द्रश्च पतद् ग्रहः।
तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी।।

आचार्य शंकर ने इसी मन्दिर का निरूपण (सौन्दर्यलहरी में) करते हुये उसका स्वरूप 'सुधासिन्धोर्मध्ये.....चिदानन्दलहरी' के द्वारा इस प्रकार चित्रित किया है— एक अमृत का सागर है। उसके मध्य एक रत्नद्वीप है। उस रत्नद्वीप में कल्पतरु, सन्तान, हरिचन्दन, मन्दार एवं पारिजातनामक पाँच देववृक्षों से सुशोभित एक रमणीक वाटिका है। इस वाटिका के चतुर्दिक पुष्पराग (पद्मराग), गोमेद, वज्र, वैदूर्य, इन्द्रनील, मुक्ता, मरकत, विद्रुम एवं माणिक्य से निर्मित नौ रत्नप्राकार हैं। इनके मध्य सहस्रों स्तम्भों से सुशोभित एक माणिक्यमण्डप और अमृतवापी, आनन्दवापी एवं विमर्शवापी नाम वाली तीन वापियाँ हैं।

इसी वाटिका के भीतर एक रमणीक चिन्तामणिगृह है। उसके मुख्य द्वार पर एक रमणीय अर्गल (प्रवेशपथ) है। चिन्तामणिगृह की चारों दिशाओं में चार द्वार हैं— पूर्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, दक्षिणाम्नाय एवं उत्तराम्नाय कहलाते हैं।

चिन्तामणिगृह के मध्य मणिमय प्रदीपवलय से वेष्टित एक मणिजटित सिंहासन स्थित है। इस सिंहासन के चार चरण हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं रुद्रस्वरूप हैं। इसके फलक हैं— सदाशिव।

सिंहासन पर हंस के पंखों की मसृण लोमश शय्या बिछी है। उसके ऊपर कुसुम-पुष्प के रंग की चादर कौस्तुभ आस्तरण बिछा है। सिंहासन के ऊपर चन्द्रातप एवं चतुर्दिक मनोरम परदे लगे हुये हैं। यही दृश्य है— भगवती त्रिपुरसुन्दरी के श्रीपुर, श्रीनगर एवं श्रीदेवी के मन्दिर का। सौन्दर्यलहरी में इसी श्रीपुर का वर्णन आचार्य शंकर ने उपयुक्त 'सुधासिन्धोर्मध्ये' श्लोक के द्वारा किया है। दुर्वासाप्रणीत 'दुर्वासास्तवरत्न' एवं 'श्रीविद्यार्णवतन्त्र' में इस श्रीपुर का सविस्तार वर्णन किया गया है।

उड़ीसा के निवासीगण श्री जगन्नाथ जी के बड़े मन्दिर को श्रीमन्दिर तथा नीलचक्र को श्रीचक्र मानते हैं। आषाढ़ शुक्ल द्वितीया से नौ दिन तक जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा

एवं सुदर्शन यात्रा के कारण 'गुण्डिचा मण्डप' में रहने के बाद उनके न रहने के समय जगन्नाथ जी के बड़े मन्दिर को 'श्रीमन्दिर' कहते हैं; किन्तु गुण्डिचा मण्डप को कोई भी श्रीमन्दिर नहीं कहता; क्योंकि उस समय 'श्री' (महालक्ष्मी) को अपने साथ लिये विना ही श्रीजगन्नाथ रथयात्रा करते हैं। इतना ही नहीं; इस यात्रा के समय श्रीजगन्नाथ 'भील' जाति की नारियों द्वारा चढ़ाया गया नैवेद्य भी ग्रहण करते हैं।

इसके कारण रथयात्रा से प्रत्यावर्तित होने पर 'श्री' के द्वारा प्रवेशद्वार बन्द कर दिया जाता है और इस प्रकार मन्दिर में उनका प्रवेश निषिद्ध करके श्रीदेवी उन्हें दण्डित करती हैं। सारांश यह कि श्री या महालक्ष्मी के कारण ही जगन्नाथ के बड़े मन्दिर को श्रीमन्दिर कहा जाता है।

श्रीजगन्नाथ जी का श्रीमन्दिर ही श्रीयन्त्र है। मन्दिर की रत्नवेदी, जहाँ श्रीललिताम्बा अपने चतुर्भुज मूर्ति में आसीन हैं, श्रीयन्त्र अंकित है। श्रीललितासहस्रनाम में कहा भी गया है— 'चराचरजगन्नाथा चक्रराजनिकेतना'। इस चक्रराज में ४३ त्रिकोण हैं और श्रीजगन्नाथ जी के रथ के चक्रों की कुल संख्या भी ४३ ही है। ४३ त्रिकोण और ४३ रथचक्रसंख्या का विवरण इस प्रकार है—

चक्रराज श्रीयन्त्र में			**रथयात्रा के समय जगन्नाथपुरी के रथ में**		
मूलत्रिकोण	—	१	सुभद्रा के देवदलनरथ के चक्र	—	१२
अष्टार	—	८	बलभद्र के रक्तध्वजरथ के चक्र	—	१४
अन्तः एवं बहिर्दशार	—	२०	जगन्नाथ के नन्दिघोष	—	१६
चतुर्दशार	—	१४	भगवान् का सुदर्शन चक्र	—	१
योग	—	**४३**	**योग**	—	**४३**

काश्मीर के श्रीनगर नाम में 'श्री' शब्द इन्हीं श्रीदेवी को संकेतित करता है; क्योंकि काश्मीर शैव-शाक्त-उपासना का प्रमुख केन्द्र रहा है। सुन्दरी श्रीदेवी होने के कारण महालक्ष्मी भी है।

महात्रिपुरसुन्दरी एवं तारा के नित्य धाम में साम्य— भगवती तारा के नित्य धाम का स्वरूप निम्नावत् है—

एक सुधासागर है, जिसका ध्यान हृदय में करना चाहिये। उस सुधासागर के पुलिनों पर एवं आदि-मध्य-अन्त सर्वत्र स्वर्णबालुका है। इसी स्वर्ण-बालुका से मण्डित एक रत्नद्वीप है, जिसमें पारिजातवन (कल्पवृक्षारण्य) स्थित है। इसी पारिजातवन में रत्न-जटित दिव्य मन्दिर है—

स्वकीयहृदये ध्यायेत्सुधासागरमुत्तमम्।
रत्नद्वीपञ्च तन्मध्ये सुवर्णबालुकामयम्।।
पारिजातवनं तत्र रत्नानाञ्चापि मन्दिरम्।

सौन्दर्यलहरी में भगवती त्रिपुरसुन्दरी के भी नित्य धाम का इसी प्रकार वर्णन किया गया है—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।

भैरवयामल में भी इसी प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है—

बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यः सुरद्रुमाः।
तत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्टकम्।।

तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे।। आदि।

अथवा— सुधाब्धौ नन्दनोद्याने रत्नमण्टपमध्यगाम्।
बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहां त्रिलोचनाम्।।

भगवती तारा के धाम में महाश्मशान की स्थिति दोनों के मध्य एक व्यावर्तक बिन्दु है; क्योंकि भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के धाम में यह नहीं है। ताराधाम में महाश्मशान स्थित है। जैसा कि कहा भी है— 'श्मशानं तत्र सञ्चिन्त्य तत्र कल्पद्रुमं स्मरेत्'।

भगवती के मन्दिर की पूजा— श्रीभगवती की चतुश्चत्वारिंशन्मन्दिरपूजा में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव— इन पञ्चपादों तथा परमशिवस्वरूप मन्त्रफलक (पर्यंक) की निम्न प्रकार से पूजा होती है—

१. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ब्रह्ममयैकमञ्चपादाय नमः।
२. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं विष्णुमयैकमञ्चपादाय नमः।
३. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं रुद्रमयैकमञ्चपादाय नमः।
४. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ईश्वरमयैकपञ्चपादाय नमः।
५. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं परमशिवफलकाय नमः।

ललिता और पञ्चब्रह्म में तादात्म्य— इनमें प्रथम पञ्चदेव 'पञ्चब्रह्म' कहे गये हैं। इसीलिये ललितासहस्रनाम में भगवती के विभिन्न नामों में इसे भी परिगणित किया गया है; जैसे कि 'पञ्चब्रह्मस्वरूपिणी'। सौभाग्य भास्कर में भास्करराय इसकी व्याख्या करते हुये कहते हैं कि 'ब्रह्मादिसदाशिवान्तानां पञ्चानामपि ब्रह्मकोटावन्तर्भावात्पञ्चब्रह्मणां स्वरूपमस्याः'। तदुक्तं त्रिपुरासिद्धान्ते—

निर्विशेषमपि ब्रह्म स्वस्मिन् मायाविलासतः।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
इत्याख्यावशतः पञ्च ब्रह्मरूपेण संस्थितः।।

अर्थात् ब्रह्मा से सदाशिवपर्यन्त पञ्चदेवताओं की गणना ब्रह्मकोटि में ही होती है। त्रिपुरासिद्धान्त में कहा गया है कि निर्विशेष ब्रह्म अपनी माया के विलास से अपने-आप में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव नामों के वशीभूत बनकर पञ्चब्रह्मरूप से संस्थित है अर्थात् उक्त पाँचों के नाम भी ब्रह्म के ही नाम हैं। अत: श्रीललिता का नाम 'पञ्चब्रह्म-स्वरूपिणी' हुआ अर्थात् पञ्चब्रह्म भगवती के स्वस्वरूप ही हैं।

भगवती के नामों में उनका नाम है— 'पञ्चब्रह्मासनस्थिता' अर्थात् 'पञ्चभिर्ब्रह्मभिर्निर्मितं आसनं मञ्चकरूपं तत्र स्थिता'। अर्थात् उक्त पञ्चब्रह्मों से निर्मित मञ्चक (पर्यंक) रूप आसन पर स्थित। आचार्य शंकर ने भी अपने सौन्दर्यलहरी में कहा है—

शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयाम्।
भजन्ति त्वां धन्या: कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।

भैरवयामल एवं बहुरूपाष्टकतन्त्र में लिखा है कि चिन्तामणिमन्दिर में शिवाकार मञ्च (पर्यंक) बिछा हुआ है; उसके ऊपर महेशानरूप तकिया लगा हुआ है तथा सदाशिवरूपी पलंगपोश एवं आग्नेय से ईशान कोणपर्यन्त यथाक्रम ब्रह्मा आदि चार देवता पर्यंक के चार पाए हैं।

ब्रह्मादिक ऊर्ध्व में देवरूप में, निम्नभाग में स्तम्भरूप में एवं मध्यभाग में पुरुषरूप में स्थित हैं। ये चारो पुरुषाकार होने पर भी भगवती ललिता के ध्यान सें शक्तिभाव प्राप्त किये हुये हैं तथा नेत्र बन्द किये हुये हैं।

ब्रह्माण्डपुराण के ललितोपाख्यान में इसका सविस्तर वर्णन किया गया है। वहाँ कहा गया है कि श्रीललिताजी का मञ्च पञ्चब्रह्ममय है (पञ्च ब्रह्मों से निर्मित है)। मञ्च के चारो पैर दश हाथ ऊँचे एवं तीन हाथ की गोलाई लेकर निर्मित हैं। ये ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं ईश्वर देवता हैं। ये पञ्चदेवता पुरुषाकार होते हुये भी भगवती ललिता के ध्यान के कारण शक्तिभाव से आपन्न हैं और नेत्र बन्द किये हुये निश्चल स्थित हैं। ये चारो ही देव सायुध एवं सालंकार हैं। मध्य एवं ऊर्ध्व भागों में स्तम्भरूप से स्थित ये देवगण मध्य में पुरुषाकृति धारण कर स्वस्वरूप में अवस्थित हैं। उनके ऊपर भगवान् सदाशिव मञ्च-फलक के स्वरूप में स्थित हैं।

भगवती ललिता की सपर्या के समय मन्दिरपूजन में पञ्चब्रह्ममय मञ्चपादों की एवं सदाशिवमय मञ्चफलक की पूजा होती है। इनके आयुध एवं ध्यान भी यथावत् ही रहते हैं अर्थात् जिस देवता का जो ध्यान है, उसके अनुसार ही उसका ध्यान करना होता है।

भगवती ललिता का एक नाम यद्यपि 'पञ्चप्रेतासनासीना' (पाँच प्रेतों के आसन वाली) भी है, तथापि 'ब्रह्मासनस्थिता' नाम ही उनकी पूजा में लिया जाता है, 'पञ्चप्रेता-सनासीना' नहीं। 'प्रेत' शब्द की व्युत्पत्ति है— 'प्रकृष्टत्वेन इत: = गत:'। प्रेतात्मा अर्थात् मृतात्मा। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं ईश्वर की अपनी शक्तियाँ हैं— वामा, ज्येष्ठा, रौद्री और

अम्बिका। जब ये देवगण अपनी-अपनी शक्तियों से पृथक् रहते हैं, तब वे 'प्रेत' कहलाते हैं; क्योंकि शक्तिरहित प्रत्येक सत्ता 'शव' ही कही जाती है।

ज्ञानार्णवतन्त्र में ब्रह्मादि देवों को 'पञ्चप्रेत' कहे जाने के कारण के उत्तर में भगवान् शिव भगवती से कहते हैं कि 'ब्रह्मादि देवस्वरूप 'पञ्चप्रेत' सदा निश्चल हैं; क्योंकि ब्रह्मा स्रष्टा माने जाते हैं; किन्तु उनकी सृजन-शक्ति अपनी नहीं, प्रत्युत उनकी वामा शक्ति की है; अत: ब्रह्मा उससे रहित होने पर प्रेत बन जाते हैं'। यही अन्य देवताओं के प्रेतत्व का कारण है।[१] आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी में तो लिखा है कि शक्ति से रहित शिव हिल भी नहीं सकते—

शिव: शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त: प्रभवितुं।
न चेदेवं देवो न खलु कुशल: स्पन्दितुमपि।।

कहा गया है कि 'शिव' शब्द के 'शि' अक्षर में से यदि इकार (शक्ति) को निकाल दिया जाय तो जिस प्रकार मात्र 'शव' ही शेष रह जाता है, उसी प्रकार शिव से शक्ति के निकल जाने पर शिव मात्र शव ही रह जाते हैं।

मन्दिरपूजा का विधान— महायोगपद्धति में चतुश्चत्वारिन्मन्दिरमन्त्र निम्नवत् हैं— 'अमृताम्भोनिधये नम:। रत्नद्वीपाय नम:। नानावृक्षमहोद्यानाय नम:। कल्पवाटिकायै नम:। हरिचन्दनवाटिकायै नम:। सनतानवाटिकायै नम:। पारिजातवाटिकायै नम:। कदम्बवनवाटिकायै नम:। पुष्परागरत्नप्राकारायै नम:। पद्मरागरत्नप्राकारायै नम:। गोमेदरत्नप्राकारायै नम:। वज्ररत्नप्राकारायै नम:। वैडूर्यरत्नप्राकारायै नम:। इन्द्रनीलरत्नप्राकारायै नम:। मुक्तारत्नप्राकारायै नम:। मरकतरत्नप्राकारायै नम:। विद्रुमरत्नप्राकारायै नम:। माणिक्यरत्नप्राकारायै नम:। सहस्रस्तम्भमण्डपाय नम:। अमृतवापिकायै नम:। आनन्दवापिकायै नम:। बालातपोद्वाराय नम:। चन्द्रकोद्वाराय नम:। महाशृङ्गारपरिधायै नम:। महापद्माख्यै नम:। चिन्तामणिगृहराजाय नम:। पूर्वाम्नायमयपूर्वद्वाराय नम:। उत्तराम्नायमयोत्तरद्वाराय नम:। दक्षिणाम्नायमयदक्षिणद्वाराय नम:। पश्चिमाम्नायमयपश्चिमद्वाराय नम:। रत्नप्रदीपवलयाय नम:। महासिंहासनाय नम:। ब्रह्ममयैकमञ्चपादपाय नम:। विष्णुमयैकमञ्चपादपाय नम:। रुद्रमयैकमञ्चपादपाय नम:। ईश्वरमयैकमञ्चपादपाय नम:। सदाशिवमयमञ्चफलकाय नम:। हंसतूलतूलिकायै नम:। हंसकलमहोपधानाय नम:। कौस्तुभास्तरणाय नम:। महावितानकाय नम:। महाजनिकायै नम:'। —ये सभी नमोन्त वाङ्मय कमलापुर:सर मन्दिरमन्त्र हैं।

भगवती का पूजन— पूजा के चार प्रकार प्रचलित है— पञ्चोपचार, षोडशोपचार, चतुर्विंशत्युपचार और चतु:षष्ट्युपचार। इन चार प्रकारों में से किसी देवता के पाँच, किसी के सोलह और किसी के चौबीस उपचार प्रचलित हैं; किन्तु भगवती की पूजा चौंसठ उपचारों से की जाती है। यही भगवती का भजन (सेवा या पूजा) है। 'भजनित त्वां धन्या: कतिचन चिदानन्दलहरीम्' में 'भजन्ति' पद का भजन यही है।

१. ब्रह्माद्या: पञ्चापि वामादिस्वशक्तिविरहे सति कार्याक्षमत्वाद्वामांशेन प्रेता: तै: कल्पिते आसने मंचके आसीना।

आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी में भगवती के सुधासिन्धुस्थित मणिद्वीप, चिन्तामणि गृह, शिवाकार मञ्च, परमशिवपर्यंक आदि का वर्णन किया है—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटिपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।

भगवती की चौंसठ उपचारों से पूजा का विधान— भगवती की चतुःषष्ट्युपचारात्मक पूजा का विधान डिण्डिम भाष्य में इस प्रकार बताया गया है— 'आवाहनानन्तरं पाद्यं कल्पयामि नमः। अर्घ्यं कल्पयामि नमः'। इसी क्रम से 'आभरणावरोपणं, सुगन्धितैलाभ्यङ्गम्, मज्जनशालाप्रवेशनम्, मञ्चमण्डपमणिपीठोपवेशनम्, दिव्यस्नानार्थोद्वर्तनमुष्णोदकस्नानम्, कनककलशच्युततीर्थाभिषेव, धौतवस्त्रपरिमार्जनम्, अरुणदुकूलपरिधानम्, अरुणदुकूलोत्तरीयम्, आलेपमण्डपप्रवेशनम्, आलेपमण्डपमणिपीठोपवेशनम्, चन्दनागुरुकुङ्कुमशङ्कुमदमृगकर्पूर-कस्तूरीगोरोचनादिदिव्यगन्धेन सर्वविलेपनम्, केशभारस्य कालागुरुधूपम्, मल्लिकामालतीजाती-चम्पकाशोकशतपत्रपूगकुहलीपुन्नागकह्लारमुख्यसर्वर्तुकुसुममाला, भूषणमण्डपप्रवेशन्, भूषण-मण्डपमणिपीठोपवेशनम्, नवमणिमुकुटम्, शशिशकलसीमन्तसिन्दूरतिलककरम्, कालाञ्जम्, नीलीयुगलम्, नासाभरणम्, अधरयावकम्, प्रथमभूषणम्, कनकचिताकम्, पदकम्, महापदकम्, मुक्तावलीम्, एकावलीछन्नकेयूरयुगलचतुष्टयम्, वलयावलिम्, अर्मिकावलीम्, काञ्चीदाम, कटीसूत्रम्, सौभाग्याभरणम्, पादकटकम, रत्ननूपुरम्, पादाङ्गुलीयकम्, एककरे पाशम्, अन्य-करे अङ्कुशम्, इतरकरे पुण्ड्रेक्षुचापम्, अपरकरे पुष्पबाणान्, श्रीमणिमाणिक्यपादुके स्वसमान-वेषाभिरावरणदेवताभिः सह महाचक्राधिरोहणम्, कामेश्वराङ्कपर्यङ्कोपवेशनम्, अमृतासवचषकम्, आचमनीयम्, कर्पूरवीटिकाम्, आनन्दोल्लासविलासहासम्, मङ्गलारार्तिकम्, छत्रचामरयुगलम्, दर्पणतालवृन्तम्, गन्धपुष्पम्, धूपदीपनैवेद्यं कल्पयामि नमः— इति चतुःषष्ट्युपचारमन्त्राः'।

पञ्चचत्वारिंश अध्याय

मातृकाभेदतन्त्र के अनुसार त्रिपुरसुन्दरी-सपर्या

मातृकाभेदतन्त्र के सप्तम पटल में भगवती त्रिपुरा की आराधना का क्रम प्रस्तुत करते हुये कहा गया है कि भगवती त्रिपुरा की पूजा के पूर्व प्रातःकाल उठकर अपने गुरु का सम्यक् ध्यान करते हुये उनकी बहुत प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये।

श्रीगुरु का किस प्रकार ध्यान किया जाना चाहिये?— इस विषय में गुप्तसाधनतन्त्र में उपदिष्ट प्रक्रिया का अनुसरण करना चाहिये। इसके अनन्तर मन्त्र-जप की प्रक्रिया का अनुसरण करने की दिशा में सर्वप्रथम वाग्बीज, महामाया एवं विष्णुशक्ति का उच्चारण करना चाहिये और फिर आनन्दभैरव के मन्त्र 'ह स ख क्रें' का जप करना चाहिये। फिर उनकी शक्ति के मन्त्र का उच्चारण करते हुये 'ह सौः' का उच्चारण करना चाहिये। यही है गुरु एवं शक्ति का मन्त्र।

इसके अनन्तर वाग्बीज आदि उच्चारण करके अमुकानन्द नाथपूर्वक 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः' कहना चाहिये। वाग्बीज एवं भूतबीज का भी उच्चारण करना चाहिये तथा इसके साथ ही 'समर्पयामि' कहकर देवी को मन्त्र-अर्पण भी करना चाहिये।

इसके अनन्तर १०८ बार (अष्टोत्तरशत बार) अष्टाक्षर मन्त्र का जप करके और जप को देवता को समर्पित करके साञ्जलि अभिवादन करना चाहिये।

शक्तिरूपिणी गुरु की प्रयत्नपूर्वक पूजा करने की दिशा में उनके स्तोत्र-कवच आदि का पाठ करना चाहिये। इस गुरु-स्तोत्र को मातृकाभेदतन्त्र में निम्नवत् बताया गया है—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं परमगोपनम्।
यस्य श्रवणमात्रेण संसारान्मुच्यते नरः।।

नमस्ते देवदेवेशि ! नमस्ते हरपूजिते !।
ब्रह्मविद्यास्वरूपायै तस्यै नित्यं नमो नमः।।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जलशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

भवबन्धनपारस्य तारिणी जननी परा।
ज्ञानदा मोक्षदा नित्या तस्यै श्रीगुरवे नमः।।

श्रीनाथवामभागस्था सर्वदा सुरपूजिता।
सदा विज्ञानदात्री च तस्यै श्रीगुरवे नमः।।

सहस्रारे महापद्मे सदानन्दस्वरूपिणी।
महामोक्षप्रदा देवि तस्यै नित्यं नमो नमः।।

ब्रह्मविष्णुस्वरूपा च महारुद्रस्वरूपिणी।
त्रिगुणात्मस्वरूपा च तस्यै नित्यं नमो नमः।।

चन्द्रसूर्याग्निरूपा च सदाघूर्मितलोचना।
स्वनाथञ्च समालिङ्ग्य तस्यै नित्यं नमो नमः।।

इदं स्तोत्रं महेशानि यः पठेद्भक्तिसंयुतम्।
स सिद्धिं लभते नित्यं सत्यं सत्यं न संशयः।।

प्रातःकाले पठेद्यस्तु गुरुपूजापुरःसरम्।
स एव धन्यो लोकेस्मिन्देवीपुत्र इव क्षितौ।।

मातृकाभेदतन्त्र में ही गुरुकवच का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

स्तोत्रं समाप्तं देवेशि! कवचं शृणु सादरम्।
यस्य श्रवणमात्रेण वागीशसमतां व्रजेत्।।

श्रीगुरोः कवचस्यास्य सदाशिव ऋषिः स्मृतः।
तदाख्या देवता प्रोक्ता चतुर्वर्गफलप्रदा।।

क्लीं बीजं मे शिवः पातु तदाख्यातं ललाटकम्।
क्लीं बीजं चक्षुषोः पातु सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु।।

वकारं मे नितम्बं च रकारं जठरं तथा।
रींकारं पादयुगलं हसौः सर्वाङ्गे मेऽवतु।।

हसौर्लिङ्गं च लोमं च केशं च परिरक्षतु।
श्रीबीजं पातु पूर्वे च ह्रीं बीजं दक्षिणेऽवतु।।

श्रीं बीजं पश्चिमे पातु उत्तरे भूतसम्बरम्।
श्रीं पातु चाग्निकोणे तु तदाख्या नैर्ऋतेऽवतु।।

देव्यम्बा पातु वायव्यां शम्भो श्रीपादुकां तथा।
पूजयामि तथा चोर्ध्वं नमश्चाधः सदाऽवतु।।

इति ते कथितं कान्ते कवचं परमाद्भुतम्।
गुरुमन्त्रं पठित्वा च कवचं प्रपठेद्यदि।।

उपर्युक्त कवचपाठ के फल को मातृकाभेदतन्त्र में इस प्रकार बताया गया है—

स सिद्धः सुगुणः सोऽपि शिवः साक्षान्न संशयः।
पूजाकाले पठेद्यस्तु कवचं मन्त्रविग्रहम्।।

पूजाफलं लभेत्तस्य सत्यं सत्यं सुरेश्वरि!।
भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि।।

तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभां गतः।
विवादे जयमाप्नोति मम तुल्यो न संशयः।।

सहस्रारे भावयन् तं त्रिसन्ध्यं यः पठेद्यदि।
स एव सिद्धो लोकेऽस्मिन्निर्वाणपदमीहते।।

समस्तमङ्गलं नाम कवचं परमाद्भुतम्।
यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन।।

देयं शिष्याय शान्ताय चान्यथा पतनं भवेत्।
अभक्तेभ्योऽपि देविशि ! पुत्रेभ्योऽपि न दर्शयेत्।।

इदं कवचमज्ञात्वा दशविद्यां च यो जपेत्।
स नाप्नोति फलं तस्य परे च नरकं व्रजेत्।।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के सन्ध्याकालीन स्वरूप के विषय में मातृकाभेदतन्त्र में इस प्रकार बताया गया है—

ध्यायेच्च सुन्दरीं देवीं त्रिविधां बिन्दुरूपिणीम्।
प्रभाते च गुरुं देवीं मध्याह्ने च सदात्मिकाम्।।

सायाह्ने शक्तिरूपां च त्रिविधां बिन्दुरूपिणीम्।
पूजाकाले महादेवीं ध्यानानुरूपिणीं शिवाम्।।

वाग्भवेनेन्दुमाहेशीं शुक्लवर्णां विचिन्तयेत्।
शक्तिबीजस्वरूपां च स्वर्णवर्णं विचिन्तयेत्।।

प्रभाते शुक्लवर्णाभां मध्याह्ने ..... ।
साहाह्ने रक्तवर्णाभां भावयेत्साधकोत्तमः।।

..... महेशानि सन्ध्यां कुर्याद्विचक्षणः।
त्रिविधा परमा विद्या महाविद्या ..... ।।

पतिपूजां विना पूजां न गृह्णाति कदाचन।
अतः ..... आदौ लिङ्गं प्रपूजयेत्।।

पञ्चाक्षरं पञ्चवक्त्रं पूजयेद्बहुयत्नतः।
ततस्तु पूजयेद्देवीं त्रिपुरां मोक्षदायिनीम्।।

सारांश यह कि भगवती त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान प्रातःकाल में गुरुदेवी के रूप में, मध्याह्न काल में सदात्मिका के रूप में एवं सन्ध्याकाल में शक्ति के रूप में— इस प्रकार त्रिविध रूप से निष्पादित किया जाना चाहिये। वाग्भव मन्त्र के साथ शुक्लवर्णा देवी के रूप में इन्दु माहेशी का ध्यान करना चाहिये। शक्तिबीजस्वरूपा का ध्यान स्वर्णवर्णा देवी के रूप में करना चाहिये। देवी का ध्यान प्रभातकाल में शुक्लवर्णाभा के रूप में एवं

सायं-काल में रक्तवर्णाभा के रूप में करना चाहिये।

लिङ्गपूजा के विना भगवती अपनी पूजा स्वीकार नहीं करतीं— 'पतिपूजां विना पूजां न गृह्णाति कदाचन'।

ध्यान मुक्ति प्रदान करता है। प्रश्न यह उठता है कि कौन-सी मुक्ति यथार्थ मुक्ति है; क्योंकि जीवन एवं समस्त साधनाओं का लक्ष्य मुक्ति ही होती है। सार्ष्टि मुक्ति, सालोक्य मुक्ति, सामीप्य मुक्ति एवं सारूप्य मुक्ति— ये चारो मुक्तियाँ गौण हैं एवं मात्र बाह्य दुःखों को ही दूर करने वाली हैं। यथार्थ मुक्ति तो सायुज्य मुक्ति ही है।

त्रिकाचार्यों एवं स्पन्दसूत्रकारों ने जीवन्मुक्ति को ही यथार्थ मुक्ति की आख्या दी है। प्रत्यभिज्ञादर्शन 'प्रत्यभिज्ञा' को, पतञ्जलि 'स्वरूपावस्थान' को एवं सांख्य 'कैवल्य' को सर्वोच्च स्तर की मुक्ति मानते हैं; लेकिन आचार्य लक्ष्मीधर (शाक्त) सायुज्य मुक्ति को ही यथार्थ मुक्ति मानते हैं।

आचार्य शंकर कहते हैं कि 'धारणा परिज्ञानान्मुक्तिः' अर्थात् षट्चक्रों में नाद एवं कला के द्वारा वायु का निरोध ही धारणा है और उसके द्वारा ही मुक्ति प्राप्त होती है। लक्ष्मीधर कहते हैं कि सायुज्य ही मुक्ति है— 'परं तु सायुज्यात्मिकैव शाश्वती मुक्तिः'।

षट्चत्वारिंश अध्याय

योगसाधनात्मक भगवत्युपासना

तान्त्रिक योग के व्यावर्तक बिन्दुओं में उसकी विशिष्ट साधना ही षट्चक्रों की साधना है और भगवती को उनमें निवास करते हुये प्रतिपादित किया गया है। ललिता-सहस्रनाम में कहा भी गया है—

क. विशुद्धचक्रनिलयाऽऽरक्तवर्णा त्रिलोचना।

ख. अनाहताब्जनिलया श्यामाभवदनद्वया।

ग. मणिपूराब्जनिलया वदनत्रयसंयुता।

घ. स्वाधिष्ठानाम्बुजगता चतुर्वक्त्रमनोहरा।

षट्चक्रभेदन तान्त्रिक योग की क्रिया है। ललिताम्बा इसका उद्भेदन करने वाली कही गई हैं। इसके अतिरिक्त मूलाधारादिक चक्र तो योग-साधना के अङ्गमात्र हैं। भगवती त्रिपुरसुन्दरी का उनसे अभिन्न सम्बन्ध है। षट्चक्र भगवती के शरीराङ्ग हैं; साथ ही उन्हें भगवती का आवास भी कहा गया है। ललितासहस्रनाम में कहा गया है—

मूलाधारैकनिलया ब्रह्मग्रन्थिविभेदिनी।
मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रन्थिविभेदिनी।
सहस्राराम्बुजारूढा सुधासागराभिवर्षिणी।।

अर्थात् भगवती मूलाधार चक्र, मणिपूर चक्र, आज्ञा चक्र एवं सहस्रार चक्र की निवासिनी; ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि एवं रुद्रग्रन्थि का उद्भेदन करने वाली एवं अमृतसागर की वर्षा करने वाली महाकुण्डलिनी परा शक्ति हैं— 'महाशक्तिः कुण्डलिनी विसतन्तु-तनीयसी'। ललितासहस्रनाम के अनुसार वे कुलामृतैकरसिका, कुलसङ्केतपालिनी, कुलाङ्गना, कुलान्तःस्था, कौलिनी, कुलयोगिनी, अकुला, समयान्तःस्था एवं समयाचारतत्परा भी हैं।

भगवती योग का नादतत्त्व भी हैं; जैसा कि कहा भी गया है— 'नारायणी नादरूपा नामरूपविवर्जिता'। परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी आदि की धारणायें तान्त्रिक योग की धारणायें हैं और तान्त्रिक योग में ही इनकी साधनायें भी हैं।

ललितासहस्रनाम में भगवती त्रिपुरा को परा प्रत्यक्चितीरूपा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरीरूपा देवता कहा गया है—

परा प्रत्यक् चितीरूपा पश्यन्ती परदेवता।
मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका।।

उड्डीयान, जालन्धर, कामाख्या आदि पीठों की धारणायें भी तान्त्रिक योग में ही पाई जाती हैं, न कि पातञ्जल योग में। भगवती को इन पीठों की निवासिनी कहा गया है और

इन पीठों की साधना का निर्देश किया गया है। ललितासहस्रनाम के अनुसार भगवती 'प्राणेश्वरी प्राणदात्री पञ्चाशत्पीठरूपिणी' हैं तथा 'कामेश्वर प्राणनाडी कृतज्ञा कामपूजिता। शृङ्गाररससम्पूर्णा जया जालन्धरस्थिता। ओड्याणपीठनिलया बिन्दुमण्डलवासिनी' भी हैं।

'कौलमार्ग' योगाश्रित मार्ग है और 'कौल' कुण्डलिनीपूजक हैं। भगवती त्रिपुरसुन्दरी उनकी उपास्या हैं। ललितासहस्रनाम में कहा भी गया है— 'कुलकुण्डालया कौलमार्गतत्पर-सेविता'। शक्तिसूत्र में अगस्त्य कहते हैं कि 'अष्टाङ्गयोगैरिष्टार्थसिद्धिः'। आशय यह है कि समस्त इष्टार्थों की सिद्धि अष्टाङ्गयोग से हो जाती है।

तान्त्रिक योगियों की दृष्टि के अनुकूल ही भगवती त्रिपुरा के विषय में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि वे विभिन्न यौगिक चक्रों में विभिन्न आकार वाली विभिन्न देवियों का स्वरूप ग्रहण करके उसमें आसीन हैं। ललितासहस्रनाम में इनका विवेचन निम्न रूप से किया गया है—

विशुद्धचक्र में— विशुद्धचक्रनिलयाऽरक्तवर्णा त्रिलोचना।
खट्वाङ्गादिप्रहरणा वदनैकसमन्विता।।
पायसान्नप्रियात्वक्स्था पशुलोकभयङ्करी।
अमृतादिमहाशक्तिसंवृता डाकिनीश्वरी।।

अनाहतचक्र में— अनाहता निलया श्यामाभा वदनद्वया।
दंष्ट्रोज्वलाऽक्षमालादिधरा रुधिरसंस्थिता।।
कालरात्र्यादिशक्त्यौघवृता स्निग्धौदनप्रिया।
महावीरेन्द्रवरदा राकिण्यम्बास्वरूपिणी।।

मणिपूरचक्र में— मणिपूराब्जनिलया वदनत्रयसंयुता।
वज्रादिकायुधोपेता डामर्यादिभिरावृता।।
रक्तवर्णा मांसनिष्ठा गुडान्नप्रीतमानसा।
समस्तभक्तसुखदा लाकिन्यम्बास्वरूपिणी।।

स्वाधिष्ठानचक्र में— स्वाधिष्ठानाम्बुजगता चतुर्वक्त्रमनोहरा।
शूलाद्यायुधसम्पन्ना पीतवर्णाऽतिगर्विता।।
मेदोनिष्ठा मधुप्रीता बन्दिन्यादिसमन्विता।
दध्यन्नासक्तहृदया काकिनीरूपधारिणी।।

मूलाधारचक्र में— मूलाधाराम्बुजारूढा पञ्चवक्त्राऽस्थिसंस्थिता।

आज्ञाचक्र में— आज्ञाचक्राब्जनिलया शुक्लवर्णा षडानना।
मज्जासंस्था हंसवती मुख्यशक्तिसमन्विता।।
हरिद्रान्नैकरसिका हाकिनीरूपधारिणी।

सहस्रदलपद्म में— सहस्रदलपद्मस्था सर्ववर्णोपशोभिता।
सर्वायुधधरा शुक्लसंस्थिता सर्वतोमुखी।।
सर्वोदनप्रीतचित्ता याकिन्यम्बास्वरूपिणी।

समस्त योगों का मूलाधार प्राणतत्त्व है। प्राणायाम का मेरुदण्ड प्राण ही है। भगवती त्रिपुरसुन्दरी प्राणरूपिणी हैं। ललितासहस्रनाम में कहा भी गया है—

प्रत्यग्रूपा पराकाशा प्राणदा प्राणरूपिणी।

तान्त्रिक योग का परम लक्ष्य शिव-शक्ति का सामरस्यस्थापन है। भगवती त्रिपुरा सामरस्यस्वरूपा हैं— 'सत्यज्ञानानन्दरूपा सामरस्यपरायणा' एवं 'श्रीशिवशिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बिका'। योगियों ने ज्योतिर्ध्यान, ज्योतिःस्वरूप परमात्मा एवं ज्योति-साधना को महत्त्व दिया है। ललितासहस्रनाम में भगवती ललिताम्बा को 'परंज्योतिः परं धाम परमाणुः परात्परा' कही गई है।

भैरवयामल में कहा गया है कि 'शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्। तदुद्भूतामृतस्यन्दि परमानन्दनन्दिता। कुलयोषित्कुलं त्यक्त्वा परं वर्षणमेत्य सा' में 'शिवार्क' शब्द में 'शिवा' पद कुण्डलिनी शक्ति है। अर्कमण्डल (हृत्कमल) के ऊपर स्थित ब्रह्मद्वार को रोक कर सहस्रदल कमलस्थित इन्दुमण्डल को कुण्डलिनी डसती है। कुलयोषित् कुण्डलिनी शक्ति है। यह कुण्डलिनी-साधना तान्त्रिक योग की साधना है, जो कि शाक्त परम्परा की प्रधान साधना है।

एक ही परमबिन्दु दश भागों में विभाजित हो गया है—

दशधा भिद्यते बिन्दुरेक एव परात्मकः।
चतुर्धाऽधारकमले षोढाऽधिष्ठानपङ्कजे।
उभयाकाररूपत्वादितरेषां तदात्मता।।

एक ही बिन्दु मूलाधार चक्र में चार एवं स्वाधिष्ठान चक्र में छः दलों में स्थित होकर दशधा विभक्त हो गया है।

१. मूलाधार चक्र में (जगन्निर्माणात्मक तत्त्व) चारो दलों में मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकाररूप बिन्दुचतुष्टय स्थित हैं।

२. स्वाधिष्ठान चक्र के छः दलों में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्यरूप षड्बिन्दु (संहृति बिन्दु) स्थित हैं। पतञ्जलि ने कहा भी है— 'स्वाधिष्ठाने संहारषड्बिन्दुकृतः'।

३. मणिपूरक चक्र के दश (मूलाधार के ४ एवं स्वाधिष्ठान के ६) दलों में दश बिन्दु स्थित हैं।

४. अनाहत चक्र के द्वादश दलों में द्वादश बिन्दु स्थित हैं।

५. विशुद्धि चक्र के षोडश (अनाहत चक्र के १२ एवं आधारकमल के ४) दलों में षोडश बिन्दु स्थित हैं।

६. आज्ञा चक्र के (एक आधारचक्र एवं एक स्वाधिष्ठान चक्र वाले) दो दल दो बिन्दु स्थित हैं।

मणिपूरप्रभृति चक्रों से आज्ञा तक के चक्र ४ कमल = मूलाधार स्वाधिष्ठानप्रकृतिक चक्र।[१]

यद्यपि कौल द्विकानुसन्धान के फलस्वरूप षट्कमलानुसन्धान का फल प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु षड्विधैक्य के अभाव में मणिपूर में देवी का सान्निध्य प्राप्त नहीं होता। समयमार्गी चतुष्कानुसन्धान से ही कारणभूत कमलद्वय के अनुसन्धान से भगवती का सान्निध्य प्राप्त कर लेते हैं।

'धारणा' कमलों में वायु का नादकला द्वारा निरोध है। लक्ष्मीधर ने कहा भी है— 'धारणा नाम वायोः कमलेषु नादकलाभ्यां निरोधः'। वह छः कमलों में छः प्रकार से एवं सातवें कमल में सप्तविध है। एक-एक कमल में ५० और सब मिलाकर ३६० धारणायें हैं। धारणा के परिज्ञान से मुक्ति मिलती है— 'धारणापरिज्ञानान्मुक्तिः'। इन धारणाओं का सविस्तर विवेचन सुभगोदय में द्रष्टव्य है।

श्रीचक्रोपासना में योग के समस्त (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, सहस्रार आदि) चक्रों के साथ तादात्म्यभाव की कल्पना करनी पड़ती है। ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि एवं रुद्रग्रन्थि (योगदर्शन के प्रतिपाद्य विषय) का भी उद्भेदन करना पड़ता है। योगदर्शन-प्रतिपादित वाक्चतुष्टय (परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी) की श्रीविद्या के जप-विधान में साधना करनी पड़ती है और उन्हें श्रीविद्या, श्रीचक्र एवं श्रीदेवी में अवस्थित मान कर साधना करनी पड़ती है।

षट्चक्रभेदन का वर्णन पतञ्जलि के योगशास्त्र में कहीं भी नहीं है। यह तान्त्रिक योग की साधना है; किन्तु श्रीविद्या एवं श्रीचक्र की उपासना में उसकी सर्वत्र साधना करनी पड़ती है। 'अजपा जप' एवं 'मन्त्रयोग' पतञ्जलि के योग में कहीं भी उल्लखित नहीं है, किन्तु तान्त्रिक योग में है। भगवती की श्रीविद्यात्मक एवं श्रीचक्रात्मक साधना में उसकी भी साधना करनी पड़ती है और समस्त पिण्डस्थ एवं श्रीविद्या के नव चक्रों में इसकी 'हंसः' 'सोऽहं' की कल्पना करनी पड़ती है।

'प्राणायाम' का 'प्राणापानयोग' पतञ्जलियोग की तो नहीं, किन्तु तान्त्रिक योग की साधना अवश्य है और इसकी श्रीविद्या की उपासना में पद-पद पर आवश्यकता पड़ती है; क्योंकि शाक्तसाधना चरमोद्देश्य शक्ति का आयत्तीकरण या सुषुप्त शक्ति का जागरण हैं। चूँकि प्राणों के आयाम— प्राणापान योग के विना यह सम्भव ही नहीं है; अतः यह सुस्पष्ट है कि प्राणायाम की यौगिक साधना की भी श्रीविद्या की उपासना में पुष्कल महत्ता है।

'भूतशुद्धि' पतञ्जलि के राजयोग की तो नहीं, किन्तु तान्त्रिकयोग की एक अपरिहार्य

१. लक्ष्मीधरा

साधना है। श्रीविद्यासम्प्रदाय की साधना में इसका भी अत्यधिक महत्त्व है; क्योंकि जब तक पञ्चभूतों पर विजय नहीं की जाती, तब तक शक्ति (कुण्डलिनी शक्ति) का ऊर्ध्वा-रोहण होता ही नहीं। जब तक कुण्डलिनी शक्ति की ऊर्ध्व यात्रा सम्पन्न नहीं होती, तब तक चक्रगत मलिन वासनाओं का उन्मूलन नहीं होता और चक्रस्थ शक्तियों का जागरण न होने के कारण आत्मशक्ति का विकास भी नहीं होता। चिद्रश्मि का स्फार ही तो अन्त में आत्मजागृति के रूप में अवतरित होता है; अत: षट्चक्रवेधन, ग्रन्थित्रय का उद्भेद, वाक्चतुष्टय का विस्फोट, नादोत्थान, नादानुसन्धान, अजपा जप, धारणा, ध्यान, समाधि, आदि तत्त्वों का सन्निवेश श्रीसम्प्रदाय के दर्शन (दार्शनिक चिन्तन) एवं उपासना दोनों में सन्निविष्ट हैं।

हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग, राजयोग, अमनस्कयोग, हंसयोग, शून्ययोग, प्राणापान (गंगा-जमुना) योग, राजाधिराजयोग आदि समस्त योगशैलियाँ श्रीसम्प्रदाय के दार्शनिक चिन्तन एवं उपासना— दोनों में अन्तर्भुक्त हैं।

कुण्डलिनी शक्ति का भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का मूलाधार में सुषुप्त स्वरूप एवं महाकुण्डलिनी को सहस्रार में उनका जाग्रत् स्वरूप मानकर तथा कुण्डलिनी को वर्णा-त्मिका, नादात्मिका, मन्त्रात्मिका, चक्रात्मिका, श्रीविद्यात्मिका, चिदात्मिका मानकर श्रीसम्प्रदाय के योगियों ने योग की समस्त साधनाओं को अङ्गीकृत करके योग को पातञ्जल योग के चित्तवृत्तिनिरोधात्मक योग से पृथक् एक नया स्वरूप— कुलाकुल-सामरस्यात्मक, शिव-शक्ति-ऐक्यात्मक, सर्वचिन्मयात्मक, सर्वशिवशक्त्यात्मक— प्रदान किया।

सप्तचत्वारिंश अध्याय

हवनादि तत्त्व और भगवती की उपासना

(भगवती की प्रतीकात्मक पूजा)

स्वच्छन्दतन्त्र (२.१५४) में इस होम के स्वरूप का विवेचन इस प्रकार किया गया है—

एवं हृदयम्बुजावस्थो यष्टव्यो भैरवो विभुः।
स बाह्याभ्यन्तरं कृत्वा पश्चाद्यजनमारभेत्।।

योगिनीहृदयदीपिका में भी होम के इसी प्रतीकार्थ को ग्रहण करके कहा गया है—

धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्णावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्।।
नो दानैस्तर्पणैः सम्यग् विशुद्धैरमृतात्मभिः।
मदहन्तां करोमीदं विश्वं हव्यपुरस्सरम्।।

विज्ञानभैरव में भी कहा गया है—

महाशून्यालये वह्नौ भूताक्षविषयादिकम्।
हूयते मनसा सार्धं स होमश्चेतना स्रुचा।।

'महाशून्य' अर्थात् शून्यातिशून्य पदवी (महामाया शक्ति) का परभैरवस्वरूप जिस वह्नि में विलय हो जाता है, उस बोधभैरवरूप अग्नि में पञ्चमहाभूत, इन्द्रियाँ, उनके विषय, भुवनतत्त्व आदि की मन के साथ आहुति देना ही यथार्थ 'हवन' या 'होम' है। यह अद्भुत हवि चितिनामक पात्र में रखकर दी जाती है। इस चेतना में ही समस्त जागतिक पदार्थों को रखकर उनको बोधभैरवरूप अग्नि में लीन कर दिया जाता है, जिससे कि मात्र शुद्ध स्वात्मस्वरूप शेष रह जाता है और यही है— वास्तविक होम। सुभगोदय में कहा भी गया है—

पराहन्तामये संविदग्नौ संवेद्य तर्पणे।
इदन्तालक्षणां हव्यं जुहुयादबहिमुखः।।

भाव यह कि पराहन्तास्वरूप संविदग्नि में इदन्तारूप हव्य का हवन किया जाना ही यथार्थ हवन है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी यथार्थ होम का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया था—

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।।

महार्थोदय में भी कहा गया है कि—

अथ हव्यमिदन्ताख्यं हावं हावं स्वचिन्मुखे।
उल्लङ्घ्य मायामालिन्यं.....।।

विज्ञानभैरव में कहा गया है कि समाधि में अनुभूत आनन्द से उत्पन्न सन्तुष्टि ही योग है—

योगोऽत्र परमेशानि तुष्टिरानन्दलक्षणा।
क्षपणात्सर्वपापानां त्राणात्सर्वस्य पार्वति।।

'आसन' क्या है? इस विषय में योगिनीहृदय में कहा गया है कि क्षिति से शिव-पर्यन्त ३६ तत्त्व ही 'आसन' हैं। चैतन्य की रश्मियों के आधार होने के कारण श्रीचक्र ही आसन है। श्रीपराक्रम में कहा भी गया है—

क. षट्त्रिंशत्तत्त्वपर्यन्तमासनं परिकल्प्य च।
ख. हृत्सरोजान्तरे ध्यायन् पृथिव्यादि शिवान्तिकम्।
गुप्तादिवातकुसुमक्षेपेणाऽसनतां नयेत्।।

उपासना की निष्पत्ति अर्थात् प्रत्यगात्मत्व की प्राप्ति। आचार्य अगस्त्य शक्तिसूत्र में कहते हैं कि 'अहन्ता प्रकृतिः। प्रथमं प्रकृतिं मनसा विभाव्य तामपि स्वात्मनि स्वात्मानं तस्यां मिथो विलाप्य तत एकोऽवशिष्यते। मुक्तः शुद्धः पूर्णः प्रत्यगात्मैव भवति'।

▼

षष्ठ परिच्छेद

(अध्याय : ४८-६३)

▼

उपासना के मुख्य अङ्ग और उनका यथार्थ स्वरूप

* उपासना (पूजा) के मुख्याङ्ग और उनका यथार्थ स्वरूप *

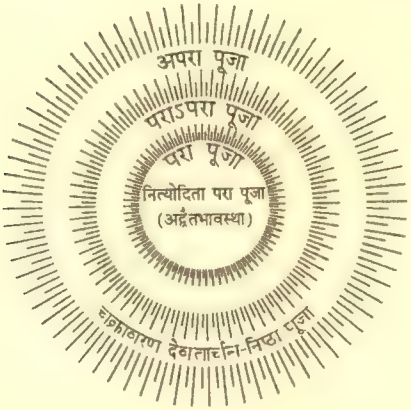

स्थूल से सूक्ष्म
की ओर
उन्मुख पूजा

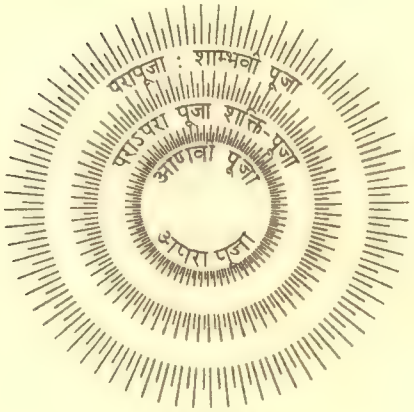

सूक्ष्म से स्थूल
की ओर
उन्मुख पूजा

मानसपूजा

॥ श्रीः ॥

षष्ठ परिच्छेद

उपासना के मुख्य अङ्ग और उनका यथार्थ स्वरूप

एवं मुहूर्त्तत्रयं भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति, तस्य देवताऽऽत्मैक्यसिद्धिः।

(भावनोपनिषत्)

१. इत्येकं परं ब्रह्मरूपं सर्वभूताधिवासं तुरीयं जानीते सोऽक्षरे परमे व्योमन्यधिवसति।

२. एतां तुरीयां श्रीकामराजीयामेकादशधा भिन्नामेकाक्षरं ब्रह्मेति यो जानीते स तुरीयं पदं प्राप्नोति।

३. निष्कलं निश्चलं शान्तं ब्रह्माहमिति संस्मरेत्।

४. न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।

५. यदा यात्यमनीभावस्तदा तत्परमं पदम्। (त्रिपुरातापिन्युपनिषत्)

६. स ब्रह्म पश्यति, स सर्वं पश्यति, सोऽमृतत्वं गच्छति।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषत्)

७. प्रथमं प्रकृतिं मनसा विभाव्य तामपि स्वात्मनि स्वात्मानं तस्यां मिथो विलाप्य तत एकोऽवशिष्यते। मुक्तः शुद्धः पूर्णः प्रत्यगात्मैव भवति प्रत्यगात्मैव भवति।

(अगस्त्य-शक्तिसूत्र)

८. इयं हयग्रीवविद्या ब्रह्मैक्यदायिनी। (हयग्रीव-शाक्तदर्शनम्)

९. विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपः। (कामकलाविलास)

१०. चिदानन्दलाभे देहादिषु चैत्यमानेष्वपि चिदैकात्म्यप्रतिपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्तिः।

(प्र० ह्र०-शक्तिसूत्र)

११.समाधि संस्कारवति व्युत्थाने भूयो भूयश्चिदैक्यामर्शात्रित्योदितसमाधिलाभः; तदा प्रकाशानन्दसारमहामन्त्रविर्यात्मकपूर्णाहन्तावेशात् सदा सर्वसर्गसंहारकारिनिजसंविद्देवताचक्रेश्वरताप्राप्तिर्भवतीति शिवम्। (शक्तिसूत्र)

उपासना के मुख्य अङ्ग और उनका यथार्थ स्वरूप

शाक्तोपासना अद्वैतोपासना है। अन्य उपासनायें द्वैतमूलक हैं; अतः वहाँ उपासना एवं साधना अपनी द्वैतमूलक दृष्टि के कारण जो अर्थ देती है, वही अर्थ एवं वही दृष्टि शाक्तोपासना में नहीं है। उन भक्ति-सम्प्रदायों में भक्ति विना भेद के सञ्चरित ही नहीं हो सकती; अपितु शाक्तोपासना में अद्वैत भक्ति की भी धारणा है। श्रीसम्प्रदाय में भी शाक्तोपासना के सारे आदर्श एवं समस्त अद्वैतमूलक दृष्टियाँ स्वीकृत हैं। शाक्तोपासना की दृष्टि को हृदयङ्गम करने के लिये उपासना एवं उसके समस्त अंगों के विषय में जो शाक्त दृष्टि है, उसे एवं उसके व्यावर्तक बिन्दुओं को भी पृथक् रूप से जान लेना आवश्यक है, जिससे कि शाक्तोपासना के अङ्गभूत मन्त्र, जप, ध्यान, पूजा, देवता, न्यास आदि तत्त्वों को शाक्तोपासना के सन्दर्भ में समझकर उसकी उपासना-पद्धति और विशेषताओं से अभिज्ञता प्राप्त की जा सके। इसी प्रयोजन से इस अध्याय को पृथक् रूप से जोड़ा गया है और इसमें देवतातत्त्व, पूजातत्त्व, भावतत्त्व, गुरुतत्त्व, दीक्षातत्त्व, प्राणतत्त्व, मन्त्रतत्त्व, जपतत्त्व, ध्यानतत्त्व, न्यासतत्त्व, पीठतत्त्व आदि की मीमांसा की गई है; साथ ही शाक्तोपासना में गृहीत योगसाधना, ज्ञानसाधना एवं भक्तिसाधना पर भी प्रकाश डाला गया है।

शाक्तोपासना में 'भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।' के आदर्श को लेकर नहीं चला गया है। यहाँ साधना, उपासना, पूजा एवं भक्ति के अपने पृथक् आदर्श हैं। यहाँ गौणी, अपरा एवं वैधी भक्ति अधमाधमा भक्ति मानी जाती है और नारद की प्रेमा भक्ति, भावभक्ति मान्य है, जो परम प्रेमरूपा एवं अमृतस्वरूपा है— 'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा।।२।। अमृतस्वरूपा च।।३।।' और जिसे पाकर साधक सिद्ध, अमृत, तृप्त, निःस्पृह, आप्तकाम तो हो ही जाता है; साथ ही—

१. यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति, न शोचति, न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति।।५।।
२. यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवति, आत्मारामो भवति।।६।।
३. यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति।।४।।

(नारदभक्तिसूत्र)

४. न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्।।

(श्रीमद्भागवत-११.१४.१४)

इसके अतिरिक्त इस भक्ति, उपासना एवं साधना में—

५. 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' का देहात्मविरोधी आत्ममूलक एवं अद्वैत संवित्

परामर्श तथा देवी के साथ अभेदात्मक सामरस्य भी अन्तर्निहित है।

६. यहाँ यह तो मान्य है कि—

ज्ञानस्य परमा भूमिर्योगस्य परमा दशा।
त्वद्भक्तिर्या विभो कर्हि पूर्णा मे स्यात्तदर्थिता।। (शिवस्तोत्रावली)

तथापि यह अभेद दृष्टि भी स्वीकृत है कि—

क्वचिदेव भवान् क्वचिद्भवानी सकलार्थक्रमगर्भिणी प्रधाना।
परमार्थपदे तु नैव देव्या भवतो नापि जगत्त्रयस्य भेदः।।

शाक्तोपासना की सूक्ष्म एवं तात्त्विक दृष्टि के कारण ही यहाँ—

१. तन्मयभाव से वस्तु का अर्पण ही पूजा है।

२. पदार्थों में सार्वरूप्य का अनुसन्धान ही ध्यान है।

३. साधक का स्वात्मविमर्श ही जप है।

४. ऐकात्म्यानुभूति के कारण वस्तु एवं परमात्मा के भेदरूप हविष्य का अर्पण ही होम है।[१]

१. अभिनवगुप्तपाद : तन्त्रालोक (१२ आह्निक)

अष्टाचत्वारिंश अध्याय

पूजातत्त्व और त्रिपुरोपासना

शाक्तोपासना मूलत: ज्ञान-प्रधान अद्वैतोपासना है, अद्वैत भाव की साधना है, सामरस्य का प्रयास है और 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की अभेदमूलक अनुभूति का अखण्ड अभ्यास है; अत: शाक्तोपासना के मार्ग में पूजा का अपना विशिष्ट स्वरूप भी है।

पूजा का लक्ष्य 'महाभाव' की प्राप्ति है। महाभाव ही पशुभाव, वीरभाव एवं दिव्य भाव में परिणत हो जाता है। इन परिणत भावों में दिव्य भाव ही श्रेष्ठतम भाव है। दिव्य भावापन्न पूजा ही आदर्श पूजा है।

दिव्य भाव द्वारा साधक भावातीतावस्था और गुणातीतावस्था में पहुँच जाता है। यह परिपक्व ज्ञानावस्था है। साधक, साध्य एवं जगत्— इन तीनों में ऐकात्म्य भाव का दर्शन करना, अपने शरीर के प्रत्येक अंग एवं विश्व के प्रत्येक अंश में इष्टदेवता के अवस्थान का साक्षात्कार करना और 'साऽहं' की अनुभूति में लय हो जाना ही दिव्य भाव है और इसी दिव्य भाव के अमृत से आर्द्र पूजा को यथार्थ पूजा माना गया है।

भाव-सम्बन्ध से पूजा के तीन स्तर कहे जा सकते हैं—

१. तमोगुणी साधक : पशुभाव की पूजा।

२. रजोगुणी साधक : वीरभाव की पूजा।

३. सतोगुणी एवं गुणातीत साधक : दिव्य भाव की पूजा।

दिव्य भाव का साधक गुणातीत परब्रह्म में लीन होकर ब्रह्मीभूत स्थिति में अवस्थित रहता है। यही पूजा का आदर्श भी है। शाक्तोपासना में भक्ति एवं ज्ञान अभिन्न हो जाते हैं।

शाक्तोपासना के मुख्यत: तीन भेद हैं और तीन आचार हैं— कुलाचार, मिश्राचार एवं समयाचार। इन तीनों में पूजा का वही अद्वैत भावापन्न स्वरूप ही आदर्श माना गया है। भगवती की पूजा का वरेण्य स्वरूप यही है।

आचार्य महेश्वरानन्द की दृष्टि— आचार्य महेश्वरानन्द ने महार्थमञ्जरी में पूजा के उपर्युक्त स्वरूप का ही प्रतिपादन किया है। महेश्वरानन्द कहते हैं—

'णिअ बलणि भालणच्चिअ वरिवस्सा सा अ दुल्लभा लोए।' अर्थात् 'निज बल निभालन' (आत्मशक्ति की प्रत्यभिज्ञा या आत्मशक्ति का साक्षात्कार) ही वरिवस्या (पूजा) है। इस पूजा में आत्मबल ही मन्त्र है। पूजा में ४ तत्त्वों का प्रयोग होता है— चार, राव, चरु और मुद्रा— 'चाररावचरुभिर्विभेदितैर्मुद्रया च यदुपासनम्'।

श्रीचिद्गगनचन्द्रिका में पूजा के ये ही चार मुख्यांग (मुख्य तत्त्व) बताये गये हैं।

(चार = समयाचार, राव = विमर्श, चरु = द्रव्य, मुद्रा = अङ्गन्यासादि अङ्ग)।

इन चारो पूजाङ्गों में राव या विमर्श ही पूजा का विशेषाङ्ग है— 'तत्र चतुर्ष्वपि पूजाक्रमेषु प्राधान्येन राव एवोपयुज्यते'। इसीलिये महेश्वरानन्द कहते हैं कि 'स्वस्वरूप-परामर्श ही परमा पूजा है'— तस्मात्स्वस्वरूपपरामर्श एव परमा पूजा'। गन्ध, पुष्प, दीपादि तो आडम्बरमात्र हैं— 'गन्धपुष्पधूपदीपादि आडम्बरमात्रमिति'। इस पूजा में देवता कौन है? 'स्वहृदयस्फुरत्तारूपः परमेश्वर एव देवता' अर्थात् अपने हृदय में स्फुरत्तारूपा जो महासत्ता स्थित है, वही देवता है।

श्रीपादुकोदय में भी इसी तथ्य की पुष्टि की गई है—

पूजा च स्वात्मभावेन देशिकेन्द्रविमर्शनम्।

श्रीमत् ऋजुविमर्शिनी में भी कहा गया है— 'पूजा विश्वस्य वेद्यस्य चिद्भूमिविश्रान्तिः' अर्थात् वेद्यरूप विश्व की चिद्भूमि में चिर विश्रान्ति ही पूजा है।

आचार्य महेश्वरानन्द कहते हैं कि सामान्य जनों की पूजा तो अत्यन्त सरल और सर्वसुलभ है; क्योंकि यह ताम्बूल, गन्ध, पुष्प आदि बाह्य द्रव्यों के समर्पण से अनुष्ठित होती है; किन्तु आत्मबल के निभालन से की जाने वाली पूजा दुर्लभ है और वही यथार्थ पूजा है—

निजबलनिभालनमेव वरिवस्या सा च दुर्लभा लोके।
सुलभानि विश्वपतेरासवताम्बूलगन्धपुष्पाणि।।

दवाग्नि को दीपक दिखाकर उसे प्रकाशित करना, बादलों को झरने के जल दिखा कर उन्हें तृप्त करना और आँधी को आँचल के पंखे की हवा से पंखा झलना जिस प्रकार व्यर्थ है, उसी प्रकार पूर्णतम एवं पूर्णकाम को भौतिक पदार्थों का नैवेद्य अर्पित करना भी है—

दीपार्पणं दवाग्नेः पर्जन्यस्य प्रपाजलोद्धारः।
वात्यायाश्च पटाञ्चलवीजनमेतत्तवाद्य नैवेद्यम्।।

ऋजुविमर्शिनी के अनुसार तो निर्विकल्प महाव्योम में की गई पूजा ही यथार्थ पूजा, न कि पुष्पादि से अनुष्ठित पूजा— 'निर्विकल्पे महाव्योम्नि सा पूजा ह्यादरात्लयः'। यह पूजा स्वात्मविलय नामक स्वविश्रान्ति लक्षण वाले स्वपरामर्श में पर्यवसित होती है। यह वह पूजा है, जहाँ कि द्वैतदृष्टिरूप जंगल ही (यज्ञ का) इन्धन है और मृत्यु ही वधार्थ लाया गया महापशु है—

यत्रेन्धनं द्वैतवनं मृत्युरेव महापशुः।
अलौकिकेन यज्ञेन तेन नित्यं यजामहे।।

महानयपद्धति में कहा गया है कि परम निरावरणस्वरूप आत्मा में साधक का जो दृढ़ परामर्श है, वही पूजन है—

परमनिरावरणात्मनि रूपे यो दृढ़तरः परामर्शः।
पूजनमेतदितीत्थं प्रभुणा निरणायि यद्यपि प्रकृतम्।।

परा पूजा ही यथार्थ पूजा है।

षट्त्रिंशोपचारानुगत भगवत्युपासना— यद्यपि किसी देवता की पाँच उपचारों से और किसी की १६ उपचारों से पूजा की जाती है; किन्तु भगवती त्रिपुरसुन्दरी की पूजा ३६ उपचारों से की जाती है।

तान्त्रिक पूजा का परमादर्श क्या है? यह भी विवेच्य है। तान्त्रिक साधना की दृष्टि से पूजा और जप किया जाय तो पूजातत्त्व का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लेने पर साधक अपने शिवत्व का अनुभव करके जीवन्मुक्ति के आनन्द का आस्वादन कर सकता है। तन्त्रशास्त्र में देवी की पूजा को साधारणतः उत्तम, मध्यम एवं अधमरूप तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है। इन प्रकारों में से उत्तम पूजा 'परा पूजा', मध्यम पूजा 'परापरा पूजा' एवं अधम पूजा 'अपरा पूजा' कही गई है। यह भी सत्य है कि अपरा पूजा (अधम पूजा) से भी निम्न कोटि की पूजा होती है। व्यवहार में प्रयुक्त पूजा 'अधमाधम पूजा' का प्रकार है।

वर्त्तमान काल में हममें से अधिकांश लोग भगवत्पूजा की अधम कोटि की पूजा के भी अधिकारी नहीं हैं। कारण यह है कि कुण्डलिनी शक्ति की सुषुप्ति को भंग किये विना जीव अनादि माया से आवृत्त ही रहता है; अतः उसे अधम पूजा में भी प्रवेशाधिकार प्राप्त नहीं हो पाता।

शाक्त पूजा-पद्धति में परा पूजा ही यथार्थ पूजा है। सुषुप्ता कुण्डलिनी शक्ति जब तक जाग नहीं जाती, तब तक चिन्मय सूक्ष्म जगत् में प्रवेश नहीं हो पाता और उसका द्वार भी नहीं खुल पाता। कुण्डलिनी ने ब्रह्मद्वार को ढक रक्खा है। समस्त बाह्य साधनायें द्वारमुक्ति की प्रयत्नमात्र हैं। निम्न कोटि की पूजा परम पूजा का अधिकार पाने के सोपानमात्र हैं।

पूज्य कौन है? जगत् की सृष्टि करने वाला, जगत् को अपने भीतर स्थित रखने वाला एवं प्रलयकाल में जगत् को अपने भीतर समेट लेने वाला परम तत्त्व ही पूज्य है और वह परम तत्त्व है— शक्ति। परम शिव की स्वरूपभूता 'विमर्श' नाम्नी जो परा शक्ति है, वही पूज्य है; क्योंकि उसके विना तो प्रकाशस्वरूप परम शिव भी प्रकाशित नहीं हो सकते—

वाग्रूपता चेदुत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती।
न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी।।

श्रीचक्र में भगवती त्रिपुरसुन्दरी की पूजा— त्रिपुरतापिन्युपनिषत् में भगवती त्रिपुरा का यन्त्र में पूजा करने का विधान इस प्रकार बताया गया है—

श्रीचक्र के नाभिमण्डल में स्थित अग्निमण्डल में सूर्य, चन्द्र एवं ॐकारपीठ की पूजा करके वहाँ बिन्दु-स्थित व्योमरूपिणी चित्सामान्यरूपिणी परमा विद्या का स्मरण करके और महात्रिपुरसुन्दरी का आवाहन करके—

क्षीरेण स्नापिते देवि ! चन्दनेन विलेपिते।
बिल्वपत्रार्चिते देवि ! दुर्गेऽहं शरणं गतः।।

इस मन्त्र से प्रार्थना करके मायालक्ष्मीमन्त्र से उनकी पूजा करनी चाहिये।

इस मन्त्र से भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का यजन करना चाहिये। इस प्रकार पूजा करने से देवी प्रसन्न होती है और दर्शन देती है। ऐसा यजन-कर्त्ता ब्रह्म-दर्शन करता है। वह सबका दर्शन करता है और अमृतत्व प्राप्त करता है—

'एतैर्मन्त्रैर्भगवतीं यजेत्। ततो देवी प्रीता भवति, स्वात्मानं दर्शयति। तस्माद्य एतैर्मन्त्रैर्यजति स ब्रह्म पश्यति, स सर्वं पश्यति, सोऽमृतत्वञ्च गच्छति'।[१]

यथार्थ पूजा तो ब्रह्मसद्भाव है, शिव में लय है, तत्त्वचिन्ता है और अद्वैतभाव में अवस्थान की सहजावस्था है। सारांश यह कि—

१. कोटि पूजा के तुल्य एक 'स्तोत्र' है।
२. कोटि स्तोत्रों के तुल्य एक 'जप' है।
३. कोटि जपों के तुल्य एक 'ध्यान' है।
४. कोटि ध्यानों के तुल्य एक 'लय' है। कहा भी है—

पूजाकोटिसमं स्तोत्रं स्तोत्रकोटिसमो जपः।
जपकोटिसमं ध्यानं ध्यानकोटिसमो लयः।।

उत्तम साधना—

१. तत्त्वचिन्ता ही 'उत्तम' साधना है।
२. जपचिन्ता 'मध्यम' साधना है।
३. शास्त्रचिन्ता 'अधमाधमा' साधना है—

उत्तमा तत्त्वचिन्ता स्याज्जपचिन्ता तु मध्यमा।
शास्त्रचिन्ताऽधमा ज्ञेया लोकचिन्ताऽधमाऽधमा।।

१. अवस्थाओं में सहजावस्था ही उत्तमावस्था है।
२. जपस्तुति अधमावस्था है।
३. होम-पूजा अधमाधमा पूजावस्था है—

उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यानधारणा।
जपस्तुतिः स्यादधमा होमपूजाऽधमाऽधमा।।

उपासनाओं के स्तरों में—

---

१. त्रिपुरतापिन्युपनिषत् (तृतीयोपनिषत्)

१. उत्तम स्तर ब्रह्मसद्भाव है।
२. मध्यम स्तर ध्यानभाव है।
३. स्तुति एवं जप का स्तर अधम है।
४. अधमाधम स्तर है— बाह्यपूजा। कहा भी है—

उत्तमो ब्रह्म सद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यमः।
स्तुतिर्जपोऽधमोभावो बाह्यपूजाऽधमाऽधमा।।

परम शिव के साथ अपनी अभेद भावना ही परापूजा है। द्वैतभावशून्य अपनी स्वरूपमहिमा में जो अपनी स्थिति है, वही यथार्थ पूजा है— 'स्वे महिम्न्यद्वये धाम्नि सा पूजा या परा स्थितिः'।[१] जो अद्वैत स्थिति है, वही परम शिवरूपी आत्मा की स्वमहिमा में है और वही अपनी अद्वैत स्थिति 'परापूजा' का स्वरूप है। साधक जब अपने को परिच्छिन्न 'सकल' (जीव) प्रमाता न मान कर 'परप्रमाता' के रूप में अनुभव करने लगता है, तभी वह शक्ति का श्रेष्ठ उपासक माना जाता है।

चिद्गगनचन्द्रिका में चार प्रकार का पूजा-विधान निर्दिष्ट हुआ है— चार, राव, चरु और मुद्रा। इनमें से श्रेष्ठ पूजा 'राव' को ही माना गया है। अपनी आत्मशक्ति या विमर्श को ही राव कहा गया है। चार, चरु और मुद्रा— ये क्रमशः आचारविशेष, द्रव्यविशेष एवं मूर्ति या वेशविशेष के पर्याय हैं और राव के ही उपकारक साधन हैं। राव अपने स्वरूप की अपरोक्षानुभूति का ही पर्याय है। इसे ही 'निजबलनिभालन' भी कहा गया है अर्थात् साधक की अपने हृदय की स्फुरत्ता ही देवतातत्त्व या परमेश्वर है। विश्वविक्षोभ की जो सहिष्णुता साधक में अभिन्न रूप में स्थित है, वही विमर्श शक्ति या बल है। उसकी आलोचना करना ही पूजा का रहस्य है। यह आत्मविमर्श या जीवन्मुक्ति ही भगवती की परा पूजा है।

संविदुल्लास में कहा गया है कि 'हे शम्भो ! तुम्हारे भक्तों के लिये विश्व ही तुम्हारी मूर्त्ति है, वैखरी वाणी ही तुम्हारी नाममाला है, स्वैरचार ही पूजा है, स्वेच्छा ही शास्त्र है और अपना स्वभाव ही मोक्ष है—

विश्वं मूर्त्ति वैखरी नाममाला यस्यैश्वर्यं देशकालातिलङ्घि।
त्वद्भक्तानां स्वैरचार्यः सपर्या स्वेच्छाशास्त्रं स्वस्वभावश्च मोक्षः।।

अर्थात् हे परमात्मा ! तुम्हारा ऐश्वर्य देश-काल द्वारा अनतिक्रम्य एवं अपरिच्छिन्न है—'यस्यैश्वर्यं देशकालातिलङ्घि'।

परा पूजा— यह पूजा की दुर्लभावस्था है। आचार्य अभिनवगुप्त कहते हैं कि संसार-चक्र से मुक्तप्राय एवं चित् शक्ति की अनुकम्पा का पात्र कोई महापुरुष ही इस पूजारहस्य को प्राप्त कर पाता है।

---

१. सङ्केतपद्धति

शंकराचार्य की परा पूजा का स्वरूप इस प्रकार है—

यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्।

ऋजुविमर्शिनी में कहा गया है कि गुरु की अपने आत्मा के रूप में भावना करना ही पूजा है। यह भी कहा गया है कि निर्विकल्प महाकाल में सादर लयीभाव प्राप्त करना ही पूजा है।

परा पूजा अद्वैत भावापन्न पूजा है। इसमें सम्पूर्ण इन्द्रिय-व्यापारों का आश्रय लेकर पूजा की जाती है। इस विशिष्टावस्था में बाहर या भीतर किसी भी विषय में मन की प्रवृत्ति होने पर भी उनमें संस्कार निर्मित नहीं होते; क्योंकि परमेश्वर की चैतन्य शक्ति ही इन्द्रियपथों द्वारा विषयों के रूप में प्रवाहित होती है। इस अवस्था के आयत्तीकरण से विषयों से अचित् भाव नष्ट हो जाता है और सर्वत्र अखण्ड चैतन्य की अद्वैतानुभूति होने लगती है और यही शाक्तों की परा पूजा है।

मध्यम या परापर पूजा— अद्वैतानुभूति अपने विशुद्ध स्वरूप में नहीं होती। फिर होती है। 'बाह्य जड़ पदार्थ आभ्यन्तरिक चिन्मयस्वरूप में या अद्वैतरूप में विलीन होते जा रहे हैं'— बाह्य पदार्थों के विषय में यह भावना ही मध्यम पूजा है। इस पूजा में अचिद् वस्तु चिद्वस्तु में लय हो जाता है। इसमें भावना प्रधान है; किन्तु परा पूजा में भावना भी अनावश्यक हो जाती है।

तन्त्रालोक में कहा गया है कि इन्द्रिय विशेष में स्थित मन की जो आह्लाद वृत्ति है, उसे ब्रह्म से जोड़ देना ही पूजा है।

अपरा पूजा— अधम पूजा या अपरा पूजा निम्न कोटि की पूजा का स्तर है। यह भेदज्ञान अर्थात् द्वैतभावापन्न पूजा की पद्धति है। सामान्य साधक इसी बाह्य पूजा से पूजा का आरम्भ करता है। चक्र पूजा को ही लें। सभी चक्रों का आरम्भ चतुष्कोण (मूलाधार चक्र) से एवं अन्त बिन्दु (सहस्रार) में होता है। सारे चक्र वासनाओं के विकास के विकासमात्र हैं। चक्रपूजा में अपने इष्टदेवता के आवरण के रूप में सभी देवों की पूजा की जाती है और यही है— अपरा पूजा। स्वयं परमेश्वर भी सर्वज्ञ होने पर भी महाशक्ति की अपरा पूजा करते हैं। इसी पूजा से अभेदज्ञान (यथासमय) प्रादुर्भूत हो जाता है।

इसी पूजा से साधक धीरे-धीरे मध्यम पूजा का अधिकार प्राप्त करते हैं। आवरणार्चनस्वरूपा, कर्मात्मिका, बाह्यमुखी इस अपरा (अधम) पूजा की भेदमयी दृष्टि ही क्रमशः ज्ञान एवं अद्वैत बोधस्वरूप में लयभाव प्राप्त कर लेती है। कर्म ज्ञान का स्वरूप धारण कर लेता है। यही मध्यम पूजा का आरम्भ या सूचना है। मध्यम पूजा क्या है?

जिस प्रकार अग्नि में घृताहुति प्रदान की जाती है, उसी प्रकार साधक मध्यम पूजा में अपनी विकल्पात्मक प्रकृति एवं स्वभाव को परमेश्वर की परम ज्योति में आहुति के रूप में निक्षिप्त कर देता है। इस साधना की परिपक्वावस्था में परा पूजा के द्वार अपने-

आप खुलने लगते हैं। शिवरूपी परम गुरु जब प्रसन्न होते हैं, तब सभी तत्त्व शुद्ध हो जाते हैं और सभी कुछ चिदात्मक रूप में अनुभूत होने लगता है।

परमेश्वर के साथ अद्वैतभाव की अनुभूति और तत्परिणाम से स्वाभाविक परम आनन्दोल्लास ही परापूजा का स्व-स्वरूप है।

कहा गया है कि स्वयं भगवान् शिव ने अपने को ही गुरु एवं शिष्य के रूप में विभाजित करके पार्वती को शिष्य एवं अपने को शास्ता (गुरु) के रूप में प्रस्तुत करते हुये ज्ञानपयस्विनी को प्रवाहित किया। इससे सिद्ध होता है कि 'ज्ञान' स्वयं शिव है, 'गुरु' ज्ञानस्वरूप है और 'शिष्य' भी ज्ञानस्वरूप है; अत: पूजा का आदर्श यही होना चाहिये कि वह अखण्ड, अद्वैत तथा चिदानन्दमय ज्ञान एवं सच्चिदानन्द परम शिव के साथ अद्वैत भाव प्राप्त करे; क्योंकि यही यथार्थ ज्ञान की चरितार्थता है और यही आदर्श पूजा है। इस परा पूजा में ही सप्तविध सामरस्य भी निहित रहते हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. आत्मा में सामरस्य
२. मन्त्र में सामरस्य
३. नाड़ियों में सामरस्य
४. शक्ति में सामरस्य
५. व्यापिनी में सामरस्य
६. समना में सामरस्य
७. तत्त्व में सामरस्य

उन्मना में प्रवेश से इन सप्तविध सामरस्यों से अन्तिम सामरस्य प्राप्त होता है। तत्त्व में सामरस्य ही सर्वोत्कृष्ट सामरस्य है। यह सामरस्य ही सर्वोत्तम 'गुरुपादुका' है। शिव भी गुरुपादुका हैं और शक्ति भी; किन्तु शिव-शक्ति का सामरस्य ही श्रेष्ठतम गुरु-पादुका है। गुरु है परम शिव एवं पादुकायें हैं— शिव एवं शक्ति तथा उनका सामरस्य।

अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि— अभिनवगुप्त अपने तन्त्रालोक (१२.९) में कहते हैं कि तन्मय भाव से वस्तु का अर्पण ही अर्चन या पूजा है—

तत्रार्पणं हि वस्तूनामभेदेनार्चनं मतम्।

एकोनपञ्चाशत् अध्याय

देवतातत्त्व और त्रिपुरोपासना

समस्त प्राणियों की आत्मा भगवती त्रिपुर-सुन्दरी हैं; अत आत्मपूजा ही देवता की पूजा है और आत्मा से बढ़कर कोई अन्य देवता नहीं है—

नहि नादात्परो मन्त्रो न देवः स्वात्मनः परः।
नानुसन्धेः परा पूजा न हि तृप्तेः परं फलम्।।

श्रीविद्या-सम्प्रदाय में देवता का अर्थ मात्र राजराजेश्वरी परा भट्टारिका भगवती महा-त्रिपुरसुन्दरी है। त्रिपुरा-सम्प्रदाय में जिन्हें कामेश्वरी कहा गया है, उन्हीं को श्रीसम्प्रदाय में सुन्दरी, महात्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरभैरवी, राजराजेश्वरी, षोडशी आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। वे ही भगवती ललिता देवी भी हैं। उनसे परतर कोई देवता नहीं है। वे ही जग-न्माता और परात्पर देवता हैं— 'न मातुः परमस्ति दैवतम्। देवता ललितातुल्या यथा नास्ति घटोद्भवः' (ललितासहस्रनाम)।

महेश्वरानन्द महार्थमञ्जरी में देवतातत्त्व की व्याख्या करते हुये कहते हैं कि—

१. जिस साधक का जैसा भाव एवं भावयोग होता है, उसी प्रकार के स्वरूप का उसका देवता भी होता है।

२. साधक के भावभावित देवता का जो स्वरूप होता है, उसी स्वरूप के अनुकूल उस देवता द्वारा फल भी प्रदान किया जाता है—

यो यस्य भावयोगस्तस्य खलु स एव देवता भवति।
तद्भावभाविता अभिलषितं तथा फलन्ति प्रतिमाः।।

महेश्वरानन्द परिमल में भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हुये कहते हैं कि 'अर्चकानां हि प्रमातृणामर्च्यभूता देवतानाम नान्या कादिदुपपद्यते। अपितु तेषां मध्ये यस्य यस्य स्वहृदय-स्फुरत्तालक्षणो भावः तस्य तस्य स एव देवता भवितुमर्हति न पुनर्मृदुपललोहपट्टकाष्ठा-प्रतिमादिस्वभावा'।

देवता का यथार्थ स्वरूप क्या है? आत्मा से बढ़कर अन्य कोई देवता नहीं है—

नास्ति नादात्परो मन्त्रो न देवः स्वात्मनः परः।
नानुसन्धेः परा पूजा न हि तृप्तेः परं फलम्।।

आत्मा से बढ़कर कोई देवता नहीं है और अपनी आत्मा ही विश्वविग्रहा भगवती ललिता देवी हैं— 'स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा'। महेश्वरानन्द भी कहते हैं कि 'स्वात्मरूपा सौभाग्यसंविन्मय्येव देवतेत्यत्र न किञ्चिद्वैमत्यम्। स्वात्मप्रकाश एव देवता। न देवः स्वात्मनः परः। यद्यद्रूपं कामयते तत्तद्देवतारूपं भवति'। इसीलिये कहा

गया है कि 'रूपं रूपं मघवान् बोभवीति रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। महाप्रकाश एव देवता, नान्यः कश्चित्'।

हृदय का स्फुरणस्वभाव ही देवता है— 'भावभेदस्य प्रकाशैकात्म्यपारिशेष्यात्सर्वस्यापि प्रपञ्चस्य एक एव हृदयस्फुरणस्वभावो देवतात्वेनाराध्यः। भावानां बाहुल्योपपादनद्वारा देवतात्वमुन्मीलितम्'।

प्रत्यभिज्ञा में भी गया गया है कि 'चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद्बहिः'। निष्कर्ष यह कि 'स्वात्मैव देवता इति निर्बन्धः' (परिमल)।

देवता मन्त्राङ्ग भी है। मन्त्र के नव तत्त्व बताये गये हैं, उनमें देवता भी एक है। कामधेनुतन्त्र के अनुसार देवतत्त्व, प्राणतत्त्व, बिन्दुतत्त्व, ज्ञानतत्त्व, शक्तितत्त्व, योनितत्त्व आदि नव तत्त्व की गये हैं।

शाक्तपरम्परा में देवी एवं श्रीसम्प्रदाय में भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही देवता हैं तथा ललिता परदेवता हैं; जैसा कि ललितासहस्रनाम में कहा भी गया है— 'रात्रौ यश्चक्रराज-स्थाम-र्चयेत् परदेवताम्'।

यह ललितास्वरूपा देवता कोई अन्य नहीं, प्रत्युत साधक की स्वयं की आत्मा-मात्र ही है— 'स्वात्मैव ललिता प्रोक्ता मनोज्ञा विश्वविग्रहा'। अपनी आत्मा ही भगवती ललिता हैं। 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' कहकर साधक को स्वयं देवता बनकर देवता की उपासना करने का विधान किया गया है; अतः शाक्तसाधना में देवोपासना अद्वैतोपासना ही है।

शाक्तानन्दतरङ्गिणी में कहा गया है कि साधक को ब्राह्म मुहूर्त्त-वेला में उठकर प्रातःकृत्य से निवृत्त होकर भगवती के साथ परम गुरु शिव का ध्यान करना चाहिये। फिर पञ्चभूतमय तत्त्वों द्वारा स्वेष्ट देवता की पूजा करनी चाहिये। फिर गुरु की पूजा करके गुरुमन्त्र का जप करना चाहिये। फिर वाग्भवबीज 'ॐ ऐं' (या अन्य में 'क्लीं') का जप करना चाहिये—

ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय चिन्तयेद्गुरुदैवतम्।
स्वमूर्द्धनि सहस्रारे शिवाख्यपरबिन्दुके।।

अर्थात् रात्रि के दो दण्ड शेष रह जाने पर ब्राह्म मुहूर्त्त में अपनी मूर्द्धा में शिव-बिन्दु सहस्रार में भगवती पराम्बा एवं भगवान् परम शिवरूप परम गुरु का ध्यान करना चाहिये। 'श्यामारहस्य' में कहा गया है कि पूजाविधान में मानसिक गन्ध-पुष्पादि समर्पित करते हुये ही वाग्भवमन्त्र का जप करना चाहिये— 'मनसा गन्धपुष्पाद्यैः सम्पूज्य वाग्भवं जपेत्'। इष्टदेव की स्तुति करनी चाहिये और 'तेजोरूपं समर्प्याथ स्तवेन तोषयेद् गुरुम्'।

नादबिन्दुयुक्त, अकथादि रेखा वाले, अलक्ष त्रय कोण वाले, सहस्रार महापद्म में स्थित, सृष्टि-स्थिति-लयात्मक परबिन्दु एवं उसकी परमा शक्ति (सार्धत्रिवलयाकारा, कोटिविद्युत्समप्रभा, परम कुण्डली) की पूजा करनी चाहिये, जो कि योनिरूपा, सनातनी

एवं नादात्मिका है— 'नादरूपेण सा देवी योनिरूपा सनातनी'। सहस्रार ही 'शिवपुर' है; अत: वहीं कल्पद्रुमाच्छादित रत्नवेदिका पर नानारत्नोपशोभित पर्यङ्क पर शब्दब्रह्मशरीरी सदाशिव एवं शक्ति की पूजा करनी चाहिये; किन्तु देवता को शब्दस्वरूप में कल्पित करना चाहिये— 'पद्ममध्ये स्थितं देवं निरीहं शब्दरूपवत्'; क्योंकि 'पादयोर्नूपुरं रम्यं शब्दब्रह्ममयं वपु:' कहा गया है। यहीं श्यामा कुण्डलिनी का भी ध्यान करना चाहिये; जैसा कि कहा भी गया है—

ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्गसंस्थिताम्।
श्यामां सूक्ष्मां सृष्टिरूपां सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम्।
विश्वातीतां ज्ञानरूपां चिन्तयेदूर्ध्वरूपिणीम्।।

जैसे ही वह शिव का मुखपद्म चूमती है और क्षण भर भी रमण करती है, वैसे ही लाक्षा रस की भाँति अमृत का स्राव होने लगता है। इसी अमृत से षट्चक्र के समस्त देवताओं की तृप्तिरूप पूजा करनी चाहिये और परदेवता का भी तर्पण करना चाहिये—

अमृतं जायते देवि ! तत्क्षणात्परमेश्वरि।
तदुद्भवामृतं देवि ! लाक्षारससमोपमम्।।

तेनामृतेन देवेशि ! तर्पयेत् परदेवताम्।
षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्याऽमृतधारया।।

तत्पश्चात् देवी को पुन: मूलाधार चक्र में लाना चाहिये और इसी देवी के आवागमनरूपी इसी यात्रा द्वारा मनोलय करना चाहिये— यातायातक्रमेणैव तत्र कुर्यान्मनोलयम्'।

मूलाधार में कुण्डली का प्रत्यावर्तन करने के बाद उसे सहस्रार में लाना चाहिये तथा शक्ति-शक्तिमान के सामरस्य का चिन्तन करना चाहिये—

रमित्वा शम्भुना सार्धं कुण्डली परदेवता।
मूलाधारान्महेशानि ! सहस्रारे समानयेत्।।

शम्भुगतां परां शक्तिमेकीभावं विचिन्तयेत्।
ध्यायेत् कुण्डलिनीं तत्र इष्टदेवस्वरूपिणीम्।।

भगवती को मूलाधार से स्वाधिष्ठान, स्वाधिष्ठान से मणिपूर, मणिपूर से अनाहत, अनाहत से आज्ञाचक्र, आज्ञाचक्र से बिन्दु, अर्धेन्दु आदि के यात्रापथ से सहस्रार में लाना चाहिये तथा उन जगन्मयी भुजङ्गरूपिणी देवी पराकुण्डलिनी का षट्चक्रों में ध्यान करना चाहिये। इससे ध्याता साक्षात् ब्रह्ममय हो जाता है; जैसा कि कहा भी है—

षट्चक्रे परमेशानि ! ध्यात्वा जगन्मयीं शिवाम्।
भुजङ्गरूपिणीं देवीं नित्यां कुण्डलिनीं पराम्।।

विषतन्तुमयीं देवीं साक्षादमृतरूपिणीम्।
अव्यक्तरूपिणीं दिव्यां ध्यानगम्यां वरानने।।

ध्यात्वा जप्त्वा च देवेशि ! साक्षाद् ब्रह्ममयो भवेत्।।

किन्तु इस ध्यान एवं जप में ध्यान का स्वरूप ध्याता-ध्येय का सामरस्य (एकीभाव) ही होना चाहिये; जैसा कि कहा भी गया है—

अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तः स्वभाववान्।।

परदेव्या हृदिस्थेन प्रेरितेन करोम्यहम्।
न मे किञ्चित्क्वचिद्वापि कृत्यमस्ति जगत्त्रये।।

भगवती कुण्डलिनी बीजत्रयात्मिका हैं; अतः वे अनेकरूपा हैं— तुरीया कुण्डलिनी, वह्निकुण्डलिनी, सूर्यकुण्डलिनी, चन्द्रकुण्डलिनी और तुर्यकुण्डलिनी। इनके ध्यान का विवेचन शाक्तानन्दतरङ्गिणी में इस प्रकार किया गया है—

तुरीया कुण्डलिनी का ध्यान— वे मूर्द्धा में नित्यानन्दस्वरूपपिणी हैं और मूल-देश में वाग्भवात्मिका हैं तथा द्रवित स्वर्ण के वर्ण वाली है।

वह्निकुण्डलिनी का ध्यान— ये बालार्कसदृश अरुण वर्ण की हैं, कोटि सूर्यों के प्रकाश के समान प्रकाशित हैं और हृदय में कामबीज के रूप में स्थित हैं।

सूर्यकुण्डलिनी का ध्यान— ये नित्यानन्दस्वरूपिणी हैं, करोड़ों चन्द्रों के समान भास्वर हैं तथा भ्रूमध्य में शक्तिबीज के रूप में स्थित हैं।

चन्द्रकुण्डलिनी का ध्यान— ये अमृतविग्रहा हैं, बीजत्रयमयी हैं और बिन्दुत्रयात्मिका हैं।

तूर्यकुण्डलिनी का ध्यान— ये ज्ञानविग्रहा हैं।

पूजाकाल— शक्तिमन्त्र का जप सदैव रात्रि में ही करना चाहिये; क्योंकि वह तभी अधिक सफल होती है। शाक्तानन्दतरङ्गिणी में कहा भी गया है—

शक्तिमन्त्रं जपेद्रात्रौ विनापि पूजनं शुचिः।
विशेषतो निशेथे तु तत्रातिफलदो जपः।।

रात्रौ पूजां सदा कुर्याद्रात्रौ सिद्धिर्न संशयः।
सफला रजनीपूजा दिव्यपूजा न निष्फला।।

समयातन्त्र में भी कहा गया है कि—

दिवा प्रपूजनं देवि यथोक्तफलदं भवेत्।
पूजनं लक्षगुणितं निशि नीरजलोचने।।

पूजा के प्रकार— वैसे तो देवता की पूजा के तीन प्रकार हैं— नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य; जैसा कि शाक्तानन्दतरङ्गिणी में कहा भी है—

'नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं पूजनं स्मृतम्', तथापि इनमें से शाक्तपरम्परा में नित्य पूजा ही वरेण्य मानी गई है और उसमें भी जो तादात्म्य, सामरस्य एवं देवी के साथ ऐकात्म्य प्रदान कर सके, वही पूजा वरेण्य मानी गई है।

देवताओं के शरीर की उत्पत्ति 'बीज' से होती है और मन्त्र उसी बीज से युक्त रहा करता है; जैसा कि शाक्तानन्दतरङ्गिणी (३.१७) कहता भी है—

देवतायाः शरीरं तु बीजादुत्पद्यते ध्रुवम्।
तत्तद्बीजात्मकं मन्त्रं जप्त्वा ब्रह्ममयो भवेत्।।

भगवती वर्णरूपिणी और जगदाधार हैं। इस सम्बन्ध में शाक्तानन्दतरङ्गिणी का निम्न (३.१८) वचन द्रष्टव्य है—

वर्णरूपेण सा देवी जगदाधाररूपिणी।

इसीलिए देवी के सूक्ष्म स्वरूप (सूक्ष्म ध्यान) को वहाँ मन्त्रमय कहा गया है—

सूक्ष्मं मन्त्रमयं देहं स्थूलं विग्रहचिन्तनम्।।

शाक्तानन्दतरङ्गिणी (३.२९) के अनुसार देवता (देवी) का स्वरूप (श्रीक्रम) आत्मारूप है—

आत्मानं चिन्तयेद्देवीं शक्तिमाद्यास्वरूपिणीम्।
मनसा वचसा चैव कायिकेन च चिन्तयेत्।।

देवता को अपनी आत्मा के रूप में ही कल्पित करना चाहिये—

ध्यायेच्च परमेशानि यथोक्तं ध्यानयोगतः।
देव्यात्मकं स्वमात्मानं भावयेद्यतमानसः।।

ध्यान के समय अपने में, गुरु में एवं देवता में ऐक्यानुसन्धान करना चाहिये—

तस्याऽन्यरूपं यद्यत्तत् स्वकीयमिति भावयेत्।
ऐक्यं सम्भावयेन्नित्यं स्वगुरुं देवतात्मनाम्।।

इतना ही नहीं; प्रत्युत अपने स्वेष्ट देवता के जितने भी रूप हैं, उन्हें भी अपना ही रूप मानना चाहिये—'स्वकीयमिति भावयेत्'।

भगवती (देवता) को सर्वदेवस्वरूप मानना चाहिये और उस परमानन्दस्वरूपिणी देवी के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहिये; जैसा कि शाक्तानन्दतरङ्गिणी में कहा भी गया है—

सर्वदेवमयीं देवीं सर्वदेवमयीं पराम्।
आत्मानं चिन्तयेद्देवीं परमानन्दरूपिणीम्।।

शाक्तानन्दतरङ्गिणी (३.२२) के अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि देवता को अपने से भिन्न मानने पर समस्त पूजा व्यर्थ हो जाती है—

मन्यन्ते ये च आत्मानं विभिन्नं परमेश्वरात्।
न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमः।।

देवताओं को यथार्थ तृप्ति उनके मन्त्र का जप करने से ही होती है—

जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति।

देवता के प्रसन्न होने पर मन्त्रसिद्धि अवश्य हो जाती है; जैसा कि कुलार्णवतन्त्र में कहा भी गया है—

देवता प्रीतिमापन्ने मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।

देवता (देवी) मातृका एवं शब्दब्रह्म है। इस विषय में ज्ञानार्णवतन्त्र कहता भी है—

अकारः प्रथमो देवी क्षकारोऽन्त्यस्ततः परम्।
अक्षमालेति विख्याता मातृकावर्णरूपिणी।
शब्दब्रह्मस्वरूपेयं शब्दातीतं तु जप्यते।।

श्रीसम्प्रदाय की इष्ट देवता त्रिपुरा है। 'त्रिपुरा' नाम क्यों है? इस जिज्ञासा के शमन हेतु सौभाग्यभास्कर में भास्करराय कहते हैं कि— 'त्रयात्मकं पुरं भूपुरं मण्डलकोण-रेखामन्त्रादिसमूहो वा यस्याः सा त्रिपुरा'।

त्रिविधा कुण्डली शक्तिस्त्रिदेवानां च सृष्टये।
सर्वत्रयं त्रयं यस्मात् तस्मात् तु त्रिपुरा मता।।

पञ्चाशत् अध्याय

गुरुतत्त्व और त्रिपुरोपासना

शाक्तदृष्टि में गुरुतत्त्व— गुरुतत्त्व शब्दब्रह्मरूप है। परब्रह्म उपेय है और शब्द-ब्रह्म उपाय—'शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति'। शब्दब्रह्म-सञ्जात चैतन्यशक्ति-सम्पूरित शब्द ही 'मन्त्र' है और यह मन्त्र ही गुरु है। शब्दब्रह्म से ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी वाणियों का उद्भव हुआ है। शब्दब्रह्म की मुख्यतः दो धारायें हैं— परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरीरूप वाक् धारा (मातृका-वर्ण-नाद) एवं सदाशिव से पृथ्वीपर्यन्त तत्त्व या षट्त्रिंशदात्मक जगत्। शब्दतत्त्व का विवर्त ही तो अर्थसृष्टि है— शब्द का विवर्त अर्थ (आर्थी सृष्टि) है; जैसा कि महावैयाकरण आचार्य भर्तृहरि ने अपने वाक्यपदीय में कहा भी है—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्त्ततेऽर्थभावेन प्रकिया जगतो यतः।।

अनादि और अनन्त शब्दनामक ब्रह्मतत्त्व ही अर्थरूप से विवर्त्तित होता है और जगत् की रचना करता है। 'वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे' कहकर भी इसी तथ्य की पुष्टि की गई है। वर्णमातृकायें भी शब्दब्रह्म का ही अंग हैं। वर्णमातृकायें योगिनी के रूप में सृष्टि-कार्य का निष्पादन करती हैं। वर्णों (मातृकाओं) की चिद्रश्मियाँ सूक्ष्म जगत् एवं कारणभूमि में कार्यरत हैं। नादस्थ ईश्वर के साथ वर्णमातृकायें योगिनी के रूप में सृष्टि-व्यापार का निष्पादन करती हैं। गुरु बिन्दु में, त्रिकोण में स्थित है। वह कामेश्वर-कामेश्वरीस्वरूप है।

शब्द के विवर्त्त ही अर्थ हैं— 'द' से 'झ' तक के वर्ण जलादि प्रकृत्यन्त तत्त्व हैं। 'छ' से 'अ' तक के वर्ण पुरुषादि मायापर्यन्त तत्त्व हैं। 'इ' से 'घ' तक के वर्ण शुद्ध विद्या, ईश्वर एवं सदाशिव के वाचक हैं। 'ग' से 'न' पर्यन्त सोलह वर्ण शिवतत्त्व के वाचक हैं एवं 'क' पृथ्वीतत्त्व का बोधक है।

उपर्युक्त मत मालिनीविजयोत्तरतन्त्र की उत्तरमालिनी वर्णमाला एवं उसके सृजन-व्यापार का है ('न' से 'क' में अन्त वर्णमाला)। उत्तरमालिनी नादि कान्त वर्णमालाक्रम का प्रतिपादन करती है।

पूर्वमालिनी (अकारादि क्षकारान्त— अक्षमाला) का प्रतिपादन परात्रिंशिका में किया गया है और उसके अनुसार—

१. 'अ' से 'अः' तक के १६ वर्ण शिवतत्त्व के वाचक हैं।

२. 'क' से 'ङ' तक के वर्ण पृथिव्यादिक पञ्चभूतों के वाचक हैं।

३. 'च' से 'ञ' तक के वर्ण गन्धादि पञ्च तन्मात्राओं के वाचक हैं।
४. 'ट' से 'ण' तक के वर्ण पादादि पञ्च कर्मेन्द्रियों के वाचक हैं।
५. 'त' से 'न' तक के वर्ण प्राणदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों के वाचक हैं।
६. 'प' से 'म' तक के वर्ण अहंकार, बुद्धि, प्रकृति एवं पुरुष के वाचक हैं।
७. 'श-ष-स-ह-क्ष' महामाया, विद्या, ईश्वर, सदाशिव एवं शक्ति के वाचक हैं।

मातृकाचक्रविवेक एवं तन्त्रालोक भी इसी मत को सम्पुष्ट करता है।

मन्त्र, मन्त्रेश्वर एवं मन्त्रमहेश्वर के रूप में गुरुतत्त्व—

विद्येश्वर (या मन्त्र)— ये प्रमाता अपने-आपको बोधरूप एवं कर्तृत्वरूप समझकर सर्वज्ञ एवं सर्वकर्तृत्वयुक्त होकर भी वेद्य जगत् को अपने से भिन्न मानते हैं— ऐसा ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में कहा गया है— 'ते (वेद्येश्वराः) हि शुद्धचिन्मात्रगृहीताहम्भावाः स्वतस्तु। भिन्नं वेद्यं पश्यन्ति यथा द्वैतवादिनामीश्वरः'।

आचार्य अभिनवगुप्त ने विद्येश्वर प्रमाताओं का अवस्थान 'विद्यापाद' में स्वीकार किया है। उन्होंने कहा है कि 'विद्यापादे च विद्येश्वरादीनामवस्थितिः' (परात्रिंशिकाविवरण)। ये विद्येश्वर ही 'मन्त्र-प्रमाता' या 'मन्त्र' भी कहलाते हैं।

मन्त्रेश्वर और मन्त्रमहेश्वर— विद्येश्वर प्रमाताओं से भी श्रेष्ठतर गुरुपद शुद्ध विद्या के भागी प्रमाताओं का है। शुद्ध 'अहं' के चिन्मात्ररूप अधिकरण जब 'इदम्' अंश से उन्मिषित होता है, तब जिन प्रमाताओं में इदन्ता का आन्तर अवभास अस्फुट रूप से प्रकट होता है, उन (सदाशिव तत्त्व में अवस्थित) प्रमाताओं को 'मन्त्रमहेश्वर' कहते हैं और जिनमें इस इदन्ता का अवभास स्फुट रूप से होता है, उन्हें 'मन्त्रेश्वर प्रमाता' कहते हैं और ये ईश्वरतत्त्व में अवस्थित रहते हैं।

मन्त्रेश्वर एवं मन्त्रमहेश्वर में भिन्नता यह है कि मन्त्रेश्वरों के शुद्ध विमर्श में 'इदम्' भाव स्फुट रहता है और मन्त्रमहेश्वरों के शुद्ध विमर्श में यह विमर्श अस्फुट रहता है।

क्षीयमाण आणवमल की चार अवस्थायें हैं— किञ्चिद् ध्वस्यमान, ध्वस्यमान, किञ्चिद् ध्वस्त एवं ध्वस्त। इन्हीं अवस्थाओं में स्थित हैं— मन्त्र, मन्त्रेश्वर।

मन्त्रमहेश्वर एवं शिव मन्त्रमहेश्वरप्रमाता से श्रेष्ठतर हैं— मात्र शिव। शिव में प्रमेयकल्पना का स्पर्श तक भी नहीं है। इनमें मात्र एक शुद्ध अहन्ता का ही विमर्श होता है। शिव सर्वथा शुद्ध प्रमाता हैं। शिव ही तो परमशिव हैं। मन्त्रों (विद्येश्वरों), मन्त्रेश्वरों एवं मन्त्रमहेश्वरों में स्वरूप-सङ्कोच अत्यन्त सूक्ष्म है। शिवप्रमाता में यह सङ्कोच पूर्णतः ध्वस्त हो जाता है। शिव पूर्णतः मलोत्तीर्ण एवं सर्वथा शुद्ध प्रमाता है। प्रमाता मुख्यतः सात हैं (आठवाँ शक्तिज प्रमाता भी मान लिया गया है)। ये सात हैं—

१. सत्य प्रमाता या परप्रमाता = 'शिव'।
२. शक्तिज अनाश्रित।

३. सदाशिव तत्त्वावस्थित प्रमाता = 'मन्त्रमहेश्वर'।[१]
४. ईश्वरतत्त्वावस्थित प्रमाता = 'मन्त्रेश्वर'।
५. शुद्ध विद्यातत्त्व में अवस्थित प्रमाता = 'मन्त्र'।
६. मायातत्त्व से ऊपर का प्रमाता (शुद्ध विद्या के नीचे का प्रमाता 'विज्ञानकल')
७. मायातत्त्व में स्थित प्रमाता = प्रलयाकल।

१. शाम्भवाः शक्तिजा मन्त्रमहेशा मन्त्रनायकाः।
मन्त्रा इति विशुद्धाः स्युरमी पञ्च गणाः क्रमात्।।[२]

'शक्तिजाः इति अनाश्रिताद्याः।' (तन्त्रालोक-टीका)

२. मुख्यत्वेन तु सप्तैव मातृभेदाः प्रकीर्तिताः।
३. तथा च शास्त्रे शिवादिसफलान्ताश्च शक्तिमन्तः सप्त।[३]

प्रमाता-श्रेणी (माया प्रमाता, परिमित प्रमाता, संकुचित प्रमाता) = 'सकल' जीव।

शिव (परप्रमाता), शक्तिज, (सदाशिव) मन्त्रमहेश्वर, (ईश्वर) मन्त्रेश्वर, (शुद्ध विद्या) मन्त्र, विज्ञानाकल (मायातत्त्व से ऊपर एवं विद्यातत्त्व से नीचे), प्रलयाकल (मायातत्त्वावस्थित प्रमाता), सकल (जीव) माया प्रमाता।

शुद्ध कैवल्यस्थिति सदाशिवावस्था से भिन्न है और परमशिव की अवस्था से भी भिन्न है। 'विज्ञानकैवल्य' मायोपरि है; किन्तु इसमें 'आणवमल' रहता है। मन्त्र एवं मन्त्रेश्वर के ज्ञान में विज्ञेय के साथ सम्पर्क रहता है। आत्मतत्त्व तो माया तक किन्तु विद्यातत्त्व से शक्ति तक का विस्तार विद्यातत्त्व है। उन्मना परा विद्या है।

मन्त्र मन्त्रेश्वर एवं मन्त्रमहेश्वर गुरु हैं। योगशास्त्र में पतञ्जलि ने ईश्वर को 'सर्वेषामेव गुरुः' कहा है।

ऋजुविमर्शिनी की दृष्टि— ऋजुविमर्शिनी में कहा गया है कि गुरु को अपनी आत्मा के रूप में भावित करना ही 'पूजा' है।

'विश्वगुरु' परमशिव और गुरुपादुका— सर्वानन्दमयचक्र के त्रिकोणबिन्दु में आदिगुरु अपनी शक्ति के साथ कामेश्वर-कामेश्वरी के रूप स्थित हैं।

गुरुपादुका दो प्रकार की है— पर गुरुपादुका एवं अपर गुरुपादुका। पुनः परा पादुका के तीन भेद बताये गये हैं— परमशिव (स्वप्रकाश), विमर्शशक्ति (शिवस्वरूपभूता आत्मशक्ति) एवं दोनों का सामरस्य। कहा भी है—

स्वप्रकाशशिवमूर्तिरेकिका तद्विमर्शतनुरेकिका तयोः।
सामरस्यवपुरिष्यते परा पादुका परशिवात्मनोः गुरोः।।

---

१. मालिनीविजयवार्तिक (१.९६०)
२. अभिनवगुप्त : तन्त्रालोक (६.९.५३-५४)
३. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी

गुरुपादुका— ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रदलान्वित शुभ्रवर्ण का एक अधोमुख कमल है। उसके मध्य निष्कला शक्ति है। इसके गर्भ में व्यापिनी नामक शक्ति या कला है। इसके द्वारा ऊपर से नीचे अमृत झरता रहता है। इस महा पद्मारण्य के ऊर्ध्व में समनारूपी तिरोधान शक्ति का अधिष्ठान है। मन की गति की यही अन्तिम लक्ष्मणरेखा है; इसके आगे मन की गति नहीं है। इसी अधोमुखी अकुल पद्म की कर्णिका में वाग्भव नामक त्रिकोण है। यहीं से परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी वाणियाँ प्रवाहित होती हैं। गुरु-पादुका इसी त्रिकोण में अवस्थित है। विश्वगुरु परमशिव की पादुका ही गुरुपादुका है।

शिवोक्त 'पादुकापञ्चक' में कहा गया है कि—

१. सहस्रार में स्थित ब्रह्मरन्ध्र में कुण्डली-विवर-काण्ड-मण्डित द्वादशार्ण सरसीरुह (श्वेत वर्ण वाला) द्वादशाक्षरयुक्त कमल है। इस पद्मकन्द की कर्णिका के पुट में शक्ति-पीठ है। शक्तिपीठ त्रिकोणात्मक है, जिसमें वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, (या अ, क एवं थ) रेखायें हैं। इस त्रिकोण के भीतर प्रत्येक कोण में और भी बिन्दु हैं, जिससे मण्डल निर्मित होता है।

२. उक्त त्रिकोण के मण्ड़ल में नाद-बिन्दु-संलग्न मणिपीठ है।

३. हंसपीठ के ऊपर नाद-बिन्दु के मध्य त्रिकोण है और वही गुरु का स्थान है। इसमें परमहंस स्थित है।

४. त्रिकोण में वामा अग्निरूपा, ज्येष्ठा चन्द्ररूपा एवं रौद्री सूर्यरूपा है। 'वामा' रेखा दक्षिण से उत्तर-पूर्व कोण तक, 'ज्येष्ठा' उत्तर-पूर्व से उत्तर-पश्चिम तक एवं 'रौद्री' उत्तर-पश्चिम से वामा रेखा में मिल जाती है। ये तीनों बिन्दु त्रिपुरा एवं त्रिपुरसुन्दरी के स्वरूप हैं।

५. गुरु के चरणकमल से लाख के रंग के समान अमृत निकलता रहता है— 'तत्र नाथचरणारबिन्दयोः कुङ्कुमासवपरीमन्दयोः।'

जो साधक गुरु के चरणकमल में अपनी आत्मा को लीन कर देता है, वह समस्त बन्धनों एवं पापों से मुक्त हो जाता है। 'मैं परमामृत सरोवर में उत्फुल्ल गुरु-चरणकमलों का जो कि शिव में स्थित हैं— भजन करता है।

आगम में कहा गया है कि स्वयं भगवान् शंकर ने ही विश्वकल्याणार्थ अपने को दो भागों में विभाजित कर लिया— गुरुरूप में एवं शिष्यरूप में। इससे भी सिद्ध है कि गुरु का आदर्श रूप है अखण्ड एवं चिद्रूप ज्ञान के स्वरूप— परमशिव। विना गुरुकृपा के चित्तविश्रान्ति सम्भव नहीं होती; भले ही करोड़ों शास्त्र क्यों न पढ़ लिये जायँ—

किमत्र बहुनोक्तेन शास्त्रकोटिशतेन च।
दुर्लभा चित्तविश्रान्तिर्विना गुरुकृपां पराम्।।

दुर्वासा कहते हैं कि भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही गुरु हैं—

कर्ताहन्पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वं गुरुः।।

गुरुतत्त्व— शैव-शाक्त-स्मार्त-वैष्णव-इस्लाम आदि सभी पन्थों में गुरु का सर्वातिशायी महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इस सम्बन्ध में ऋषि अगस्त्य ने 'शक्तिसूत्र' के दीक्षा-क्रम-विधान के प्रसंग में गुरु का महत्त्व प्रतिपादित करते हुये इस प्रकार कहा है—

१. जो दीक्षापर है, वह मनूपदेष्टा गुरु को ईश्वर की भाँति मानता है— 'यश्च दीक्षापरः, मनूपदेष्टारं गुरुमीशं मनुते'।

२. गुरु ही समस्त देवताओं की आत्मा है।

३. गुरु का शासन वेद के शासन के समान महनीय है।

४. गुरु के चरण पवित्र गंगा एवं पुण्यतोया मन्दाकिनी हैं।

५. गुरु की पूजा में ही समस्त देवी-देवताओं की पूजा अन्तर्निहित है।

६. गुरुमात्र का स्मरण कर लेने से समस्त देवों का स्मरण हो जाता है।

७. गुरु समस्त इन्द्रियसंयमी साधकों के शास्ता हैं।

८. यदि गुरु का दर्शन कर लिया तो यह मानना चाहिये कि मैंने समस्त देवताओं का दर्शन कर लिया।

९. गुरु ही संसार से उद्धार करने वाला है।

१०. वह तारक एवं संसारोत्तारक दोनों है।

११. यदि गुरु को सन्तुष्ट कर लिया तो मानना चाहिये कि मैंने समस्त देवताओं को सन्तुष्ट कर लिया।

१२. साधक का लक्ष्य तो आत्मा की ओर होना चाहिये; किन्तु उसका शिर गुरुचरणों में, कान गुरुवाक्यों में, आँखें गुरुदर्शन में, वाणी पञ्चदशी में, चित्त बीज (मन्त्र के बीज) में, कर तर्पण में तथा शरीर गुरु के श्रीपादुका के अर्चन में संलग्न होने चाहिये।

शरीर को ही श्रीचक्र के रूप में देखना चाहिये।[१]

आदि गुरु— गुरुरूप कामेश्वर एवं शिष्यारूपा कामेश्वरी सर्वानन्दमय चक्र के त्रिकोण में स्थित बिन्दु में अविनाभाव से स्थित हैं। वे ही आदिगुरु हैं। आगम की मान्यता है कि सर्वोच्च तत्त्व गुरुतत्त्व है। वही ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं परब्रह्म है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

भावनोपनिषद् में श्रीगुरु को परमकारणभूता शक्ति कहा गया है—

'श्रीगुरुः परमकारणभूता शक्तिः।'

गुरु की महत्ता का रहस्य— 'गुरुः साक्षात् परब्रह्म' कहने का कारण यह है कि गुरु कोई मांसल, मर्त्य एवं पाञ्चभौतिक शरीर नहीं है, प्रत्युत वह परब्रह्म है: क्योंकि 'स सर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्' (समाधिपाद-१.२६–पतञ्जलि)।

'भोजवृत्ति' में कहा गया है कि 'आद्यानां स्रष्टृणां ब्रह्मादीनामपि स गुरुरुपदेष्टा यतः

१. शक्ति सूत्र (१.२५)

स कालेन नावच्छिद्यते अनादित्वात्।'

'भावगणेशवृत्ति' में कहा गया है कि 'स एष ईश्वरः सर्वेषां हिरण्यगर्भादीनामपि गुरुरन्तर्यामिविधया ज्ञानचक्षुप्रदः।'

'नागोजिभट्टवृत्ति' में कहा गया है कि 'स एष ईश्वरः पूर्वेषां पूर्वसर्गोत्पन्नानामपि ब्रह्मविष्णुहरादीनामपि गुरुः स्रष्टाऽन्तर्यामिविधया वेदादिद्वारा ज्ञानचक्षुः, यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।'

'योगचन्द्रिका' में कहा गया है कि 'स ब्रह्मादीनामपि गुरुरुपदेष्टा यतः स कालेन नावच्छिद्यते अनादित्वात्।'

'योगवार्तिक' में कहा गया है कि 'पूर्वेषां पूर्वपूर्वसर्गाद्युत्पन्नानां ब्रह्मविष्णुमहेश्वरादीनामपि गुरुः पिताऽन्तर्यामीविद्यया ज्ञानचक्षुः।'

गुरु का यह सर्वोपरि महत्त्व क्यों है? कारण सुस्पष्ट है। आगम में कहा गया है कि स्वयं शिव ही गुरुविग्रह में स्थित होकर शम्भु-शक्ति-अनुवेधपूर्वक विश्वात्मा के रूप में शिष्य को दीक्षा देते हैं—

शिव एव तदा साक्षादास्थाय गुरुविग्रहम्।
दीक्षां करोति विश्वात्मा शम्भुशक्त्यनुवेधतः।।

इसीलिये 'स्वच्छन्दतन्त्र' में भी कहा गया है—

गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयं देवः सदाशिवः।
प्रश्नोत्तरपरैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयत्।।

गुरुओं की श्रेणी— आचार्य अभिनवगुप्तपाद ने तन्त्रालोक में गुरुओं की श्रेणियों का सविस्तार विवेचन किया है। उसमें कहा गया है कि सद्गुरु चार श्रेणियों में विभक्त हैं— सांसिद्धिक (अकल्पित), अकल्पित कल्पक, कल्पित एवं कल्पिताकल्पित।

सांसिद्धिक गुरु कौन कहलाता है? जिसमें 'सत्तर्क' स्वतः उत्पन्न हो जाय और जिसे गुरु एवं गुरुदीक्षा की अपेक्षा भी न हो, ऐसा सत्तर्कमण्डित साधक 'सांसिद्धिक' कहलाता है—

स तावत्कस्यचित्तर्कः स्वत एव प्रवर्तते।
स च सांसिद्धिकः शास्त्रे प्रोक्तः स्वप्रत्ययात्मकः।।
(तन्त्रालोक-४.४०)

इन्हें ही 'महामुनि' भी कहा गया है—

गुरुशास्त्रानपेक्षं च यस्यैतत्स्वयमुद्भवेत्।
स सांसिद्धिक इत्युक्तस्तत्त्वनिष्ठो महामुनिः।।

अर्थात् गुरु और शास्त्र की अपेक्षा किये विना जिस साधक में पारमेश्वर शक्तिपात हो जाता है, वह 'महामुनि' है। वह वस्तुतः तत्त्वनिष्ठ है और वही सांसिद्धिक कहलाने लगता है।

'किरणा संहिता' में कहा गया है कि परतत्त्व को जानने के तीन उपाय हैं— गुरु, शास्त्र एवं स्वयम्। इन तीनों में यथाक्रम उत्तरोत्तर श्रेष्ठतर हैं; क्योंकि गुरु शास्त्र का, शास्त्र ज्ञान का एवं ज्ञान संविदुल्लास का उपाय है; अतः सत्तर्क से स्वतः स्फूर्त ज्ञान वाला योगी ही सर्वोच्च गुरु है और वही सांसिद्धिक या अकल्पित गुरु भी कहलाता है। इन्हें 'सत्तर्क' से उद्भूत समस्त ज्ञान सद्विद्या की कृपा से (विना गुरु एवं गुरुदीक्षा के) प्राप्त हो जाता है—

स समस्तं च शास्त्रार्थं सत्तर्कादेव मन्यते।
शुद्धविद्या हि तन्नास्ति सत्यं यद्यन्न भासयेत्।।
सर्वशास्त्रार्थवेत्तृत्वमकस्माच्चास्य जायते।। (४.४५)

परमात्मा ही सर्वोच्च वास्तविक गुरु— आचार्य जयरथ ने तन्त्रालोक की टीका 'विवेक' में कहा है कि स्वयं परमात्मा ही आचार्यमूर्ति का आश्रय लेकर जीवों के पशुत्व एवं दुष्कृत-निवारण एवं उद्धार के लिये अवतरित होते हैं— 'परमेश्वर एव हि आचार्य-मूर्त्तिमाश्रित्य अशेषपाशौघविनिवर्तनं कुर्यात्'—

यस्मान्महेश्वरः साक्षात्कृत्वा मानुषविग्रहम्।
कृपया गुरुरूपेण मग्ना प्रोद्धरति प्रजा।।

अकल्पित या सांसिद्धिक गुरु— 'अकल्पित गुरु' के निम्न लक्षण हैं—

१. गुरु एवं दीक्षा की अपेक्षा से रहित होते हैं।
२. अपनी प्रतिभा के बल पर शास्त्राधिगम कर लेते हैं।
३. उनमें 'शुद्धविद्या' का उदय रहता है।

जो कल्पित गुरु किसी लोकोत्तर पारमार्थिक शास्त्रीय वस्तुरूप प्रमेय में अनुप्रवेश करके स्वयं गुरु की अपेक्षा के विना आकस्मिक बोध प्राप्त कर लेता है, वह कल्पिता-कल्पक गुरु कहलाता है—

यो यथाक्रमयोगेन कस्मिंश्चिच्छास्त्रवस्तुनि।।
आकस्मिकं ब्रजेद्बोधं कल्पिताकल्पितो हि सः।
तस्य योऽकल्पितो भागः स तु श्रेष्ठतमः स्मृतः।।
(तन्त्रालोक-४.७२-७३)

अकल्पित गुरु में स्वानुभव की मुख्यता रहती है। इनमें सर्त्तक स्वयं प्रवृत्त होता है। ये त्रिप्रत्यय ज्ञान (स्वात्म, शास्त्र एवं गुण) में स्वात्मज्ञान के अनुगामी होते हैं।

अकल्पित कल्पक गुरु— सांसिद्धिक होने पर भी जिनमें स्वयं उद्भूत ज्ञान पूर्ण नहीं रहता; अपितु उसके लिये किसी गुरु से दीक्षा लेकर जो गुरु 'मैं ही परमहंस हूँ'— इत्याकारक भावना से ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें 'अकल्पितकल्पक गुरु' कहते हैं।

चूँकि उनका ज्ञान सांसिद्धिक (गुरुप्रदत्त नहीं) रहता है; अतः वे अकल्पित होते

हैं; किन्तु उन्होंने आत्मभावना के बल से ज्ञान प्राप्त किया रहता है; अतः वे कल्पित भी होते हैं।[१]

कल्पित गुरु— कल्पित एवं कल्पिताकल्पित गुरुओं का ज्ञान (सत्तर्क) स्वयमेव उदित नहीं होता। इन्हें किसी अकल्पित या अन्य गुरु से दीक्षा लेकर ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। उससे उनमें 'शुद्ध विद्या' का उदय हो जाता है। इन्हें 'कल्पित गुरु' कहते हैं। इनमें समस्त पाशों को पूर्णतः काट देने की क्षमता नहीं होती।[२] भगवती महात्रिपुरसुन्दरी केवल गुरु ही नहीं; अपितु सम्पूर्ण गुरुमण्डल है—

सम्प्रदायेश्वरी साध्वी गुरुमण्डलरूपिणी।

कल्पिताकल्पित गुरु— कल्पित होने पर भी इनका बोध स्वतः प्रवृत्त होता है; अतः ये 'अकल्पित' भी होते हैं और इसीलिये इन्हें 'कल्पिताकल्पित' कहते हैं—

शास्त्रवित्स गुरुः प्राप्ते शास्त्रे प्रोक्तोऽकल्पितकल्पकः।।

(तन्त्रालोक, आ०-४.५१)

ज्ञानी गुरु— 'ज्ञानी गुरु' वे कहलाते हैं, जो ज्ञान तो दे सकते हैं; किन्तु 'भोग' या 'विज्ञान' नहीं दे सकते। वे ज्ञान देकर मुक्त तो कर सकते हैं; किन्तु विज्ञान प्रदान करके अधिकार नहीं दे सकते। ये ज्ञानी तो होते हैं; किन्तु योगी नहीं होते।

'सद्गुरु' उन्हें कहते हैं, जो योगी और ज्ञानी— भोग एवं मोक्ष दोनों दे सकने में समर्थ होते हैं।[३]

गुरुरूपी परमात्मा या गुरुदेह में अधिष्ठित परमात्मा अपनी क्रियाशक्ति के द्वारा (दीक्षा के माध्यम से) दिव्यज्ञानावरक अनादि मल का नाश करके जीव के पशुत्व का निकृन्तन करके उसमें सर्वज्ञत्व एवं सर्वकर्तृत्व का स्फुरण करते हैं।[४]

योगवाशिष्ठ का मत— योगवासिष्ठ के निर्वाणप्रकरण (१.१२८,१६१) में कहा गया है कि जो कृपापूर्वक दर्शन, स्पर्शन या शब्द के द्वारा शिष्य के देह में शिवभाव का आवेश करा सकता है, वही 'देशिक' या 'गुरु' है—

दर्शनात् स्पर्शनाच्छब्दात् कृपया शिष्यदेहके।
जनयेद्यः समावेशः शाम्भवं स हि देशिकः।।

नवचक्रेश्वरतन्त्र का मत— नवचक्रेश्वरकार कहते हैं कि जो पिण्ड, पद, रूप, एवं रूपातीत को सम्यक् रीति से जानते हैं, वे ही गुरु हैं और इनमें 'पिण्ड' कुण्डलिनी है, 'पद' हंस है, 'रूप' बिन्दु है और 'रूपातीत' निरञ्जन है—

पिण्डं पदं तथा रूपं रूपातीतं चतुष्टयम्।
यो वा सम्यग्विजानाति स गुरुः परिकीर्तितः।।

---

१. अभिनवगुप्तपाद (तन्त्रालोक)
२. तन्त्रालोक (आ०-४)
३. तन्त्रालोक (आ०-४)
४. तन्त्रालोक (आ०-४)

पिण्डं कुण्डलिनी शक्तिः पदं हंसः प्रकीर्तितः।।
रूपं बिन्दुरिति ज्ञेयं रूपातीतं निरञ्जनम्।।

स्वच्छन्दतन्त्र में भी यही श्लोक है; किन्तु उसमें अन्त में लिखा है— 'रूपातीतं हि चिन्मयम्।' सुन्दरदास ने ध्यान-प्रसङ्ग में भी इन्हें उल्लिखित किया है— पदस्थ। पिण्डस्थ। रूपस्थ। रूपातीत (ज्ञानसमुद्र)। मालिनीतन्त्र के अनुसार गुरु का एकमात्र लक्षण 'स्वभ्यस्त विज्ञान' है; न कि योगित्व।

गुरुओं के भेद-प्रभेद

सांसिद्धिक गुरु के भेद-प्रभेद— तन्त्रालोक के अनुसार सांसिद्धिक गुरु के मुख्य चार भेद होते हैं— निर्भित्तक, सर्वग, अंशग एवं सहभित्तिक। पुनश्च अंशग भी दो प्रकार के होते हैं— मुख्यांशग एवं अमुख्यांशग।

इन्हीं को 'अकल्पित गुरु' भी कहा गया है—

अकल्पितो गुरुर्ज्ञेयः सांसिद्धिक इति स्मृतः।।

(तन्त्रालोक-४.५१)

अकल्पितकल्पक के भेद— तन्त्रालोक के अनुसार अकल्पितकल्पक छः प्रकार के होते हैं—

१. उत्कृष्ट शक्तिपात वाले।
२. मध्य शक्तिपात वाले।
३. मन्द शक्तिपात के आधार में भेद वाले।
३. मन्त्राक्षरों का सुषुम्नापथ में प्रभविष्णु होने वाले—

सौषुम्ने ध्वन्यच्चरिताः प्रभुत्वं प्राप्नुवन्ति ते।

४. मन्त्राक्षरों को चिच्छक्ति के आन्तर सूत्र में ग्रथित करने वाले—

मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ ग्रथितानि विभावयेत्।
तामेव परमे व्योम्नि परमानन्दबृंहिते।।

५. चिच्छक्ति में स्थित मन्त्रों की अभिव्यक्ति से ही मन्त्रों की स्वात्माभिव्यक्ति करने वाले—

दर्शयत्यात्मसद्भावं पूजा होमादिभिर्विना।

६. सुषुम्ना में मन्त्रजप से ही मन्त्रार्थ एवं मन्त्र-चैतन्य की अभिव्यक्ति करने वाले—

मूलमन्त्रं जपेद्बुद्ध्या सुषुम्णामूलमध्यगम्।
मन्त्रार्थस्तस्य चैतन्यं जीवं ध्यात्वा पुनः पुनः।। (गौतमीय तन्त्र)

गुरु का सर्वातिशायित्व एवं उसका कारण— वास्तविक स्थिति तो यह है कि विना गुरु के मन भागता रहता है; अतः इस स्थिति में विना गुरु की सहायता के करोड़ों

कल्पों में भी मन्त्र जाग्रत् एवं सिद्ध नहीं रहता। इसीलिये कहा गया है—

मनोऽन्यत्र शिवोऽन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः।
न सिद्ध्यति वरारोहे कल्पकोटिशतैरपि।।

पशु-साधना में तो मन अन्यत्र है, शिव अन्यत्र है, शक्ति अन्यत्र है और प्राणवायु भी अन्यत्र है और जब तक ये चारो एकत्र न हो जायँ, तब तक मन्त्रसिद्धि कहाँ?

इसीलिये शास्त्रों में गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश, साक्षात् परब्रह्म आदि कहा गया है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवः महेश्वरः।
गुरुरेव परं तत्त्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः।। (माहेश्वरतन्त्र)

इसीलिये कहा गया है कि प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त की वेला में सर्वप्रथम गुरु का ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान करना चाहिये और मानसिक उपचारों से उनकी पूजा करनी चाहिये। माहेश्वरतन्त्र में कहा भी गया है—

प्रातरुत्थाय देवेशि ! ब्रह्मरन्ध्रे निजं गुरुम्।
ध्यात्वा पञ्चोपचारैश्च मानसैः पूजयेत्परम्।।

स्पन्दसूत्रकार की दृष्टि— मन्त्र की योजना आत्मबल के साथ होनी अनिवार्य है। स्पन्दसूत्र में कहा गया है कि 'प्रत्येक प्रकार के मन्त्र स्पन्दरूप आत्मबल के साथ तादात्म्य प्राप्त करने से ही सर्वज्ञता आदि माहेश्वर बलों को प्राप्त करके सुशोभित होते है। इन स्थितियों में वे मन्त्र किसी भी स्पृहणीय एवं अभीष्ट कार्य को साधिकार करने में प्रवृत्त होते हैं। जैसे कि वशीकृत इन्द्रियाँ—

तदाक्रम्य बलं मन्त्राः सर्वज्ञबलशालिनः।
प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनाम्।।

ये ही मन्त्र अन्ततोगत्वा शान्तरूप (शुद्ध संवित् रूप) एवं निरञ्जन (मायीय उपराग से रहित होकर) आराधक के चित्त के साथ-साथ चिदाकाश में ही लीन हो जाते हैं; क्योंकि समस्त मन्त्र शिवधर्मा या शिवस्वरूप हैं—

तत्रैव सम्प्रलीयन्ते शान्तरूपा निरञ्जनाः।
सहाराधकचित्तेन तेन ते शिवधर्मिणः।।

भट्टकल्लट ने भी स्पन्दकारिकावृत्ति में इसी की पुष्टि की है—

तद्बलं निरावरणचिद्रूपमधिष्ठाय मन्त्राः सर्वज्ञत्वादिना बलेन श्लाघायुक्ताः प्रवर्तन्तेऽनुग्रहादौ स्वाधिकारे।

तत्रैव स्वस्वभावव्योम्नि निवृत्ताधिकाराः प्रलीयन्ते, शान्तरूपाः, मायाकालुष्यरहिताः, सह साधकचित्तेन, अनेन कारणेन शिवसंयोजनास्वभावेन इति शिवात्मका उच्यन्ते।

मन्त्र साञ्जन, निरञ्जन (भोगरूप एवं मोक्षरूप) दोनों हैं। इन दोनों की सिद्धि केवल गुरु द्वारा ही सम्भव होती है।

मन्त्रसिद्धि का फल होता है— मन्त्र के देवता के साथ तादात्म्य—

अयमेवोदयस्तस्य ध्येयस्य ध्यायिचेतसि।
तदात्मतासमापत्तिरिच्छतः साधकस्य या।। (स्पन्दसूत्र-२.३१)

यह तदात्मता-समापत्ति भी गुरु के अनुग्रह से ही सिद्ध होती है।

आचार्य अभिनवगुप्त कहते हैं कि जिस किसी भी तरह हो, किन्तु गुरु की उपासना अनिवार्यतः करनी चाहिये। गुरु के सन्तुष्ट हो जाने पर शांकरी दीक्षा प्राप्त करके साधक समस्त शास्त्रों का रहस्य समझ जाता है। आराधना के अतिरिक्त अन्य उपायान्तर नहीं है। प्रयास करना चाहिये कि आपकी उपासना गुरु स्वीकार कर ले। आचार्य अभिनव कहते हैं—

येन केनाप्युपायेन गुरुमाराध्य भक्तितः।
तमाराध्य ततस्तुष्टाद्दीक्षामासाद्य शाङ्करीम्।।

गुरु को मनुष्य मानना भी पाप है; अतः इस पाप के लिये रौरव नरक का विधान किया गया है—

गुरौ मनुष्यबुद्धिञ्च मन्त्रे चाक्षरबुद्धिकाम्।
प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत्।। (ज्ञानार्णवतन्त्र)

गुरु की सर्वोच्च महिमा का कारण— ज्ञानार्णवतन्त्र में कहा गया है—

गुरौ सन्निहिते यस्तु पूजयेदन्यदेवताम्।
प्रयाति नरकं घोरं सा पूजा विफला भवेत्।।

गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।।

मन्त्रत्यागाद्भवेन्मृत्युर्गुरुत्यागाद् दरिद्रता।
गुरुमन्त्रपरित्यागद् रौरवं नरकं व्रजेत्।।

आगमकल्पद्रुम में कहा गया है कि गुरु चाहे विद्यावान हो, चाहे विद्याहीन; किन्तु वही देवता है और वही एकमात्र सदागति है—

अविद्यो वा सविद्यो वा गुरुरेव तु दैवतम्।
आमार्गस्थोऽपि मार्गस्थो गुरुरेव सदागतिः।।

दीक्षा का आधार गुरु है। जो गुरु से दीक्षा नहीं लेता, वह नरक जाता है। जप का मूल भी दीक्षा में निहित है और तप का भी। अतः जहाँ भी रहे, दीक्षा का आश्रय लेकर ही रहे—

दीक्षामूलं जपं सर्वं दीक्षामूलं परं तपः।
दीक्षामाश्रित्य निवसेद्यत्र कुत्राश्रमे वसन्।।

अदीक्षितोऽपि मरणे रौरवं नरकं व्रजेत्।
तस्माद्दीक्षां प्रयत्नेन सदा कुर्याच्च तान्त्रिकाम्।।

गुरु मन्त्र का भी आधार है। मन्त्र-दीक्षा भी गुरु ही देता है। विना गुरु के शिष्य मन्त्र में विन्यस्त चित् शक्ति का जागरण कैसे हो सकता है? विना चित् शक्ति के जागरण के 'मन्त्र' मृत वर्णों के पश्वाक्षरमात्र रह जायेंगे। इसीलिये कहा भी गया है—

पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवलं वर्णरूपिणः।

इन मन्त्राक्षरों के प्रभुत्व की अभिव्यक्ति तो इनके सुषुम्नामार्ग (मध्यमार्ग) में सञ्चरित होने पर ही सम्भव है—

सौषुम्ने ध्वन्युच्चरिताः प्रभुत्वं प्राप्नुवन्ति ते।। (गौतमीय तन्त्र)

मन्त्र चिच्छक्तिरूपी सूत्र में ग्रथित हैं और 'परमेव्योमन्' में परमानन्दसागर में हिलोरें ले रहे हैं। यदि गुरु इन वैखरीगत तथा चैतन्यहीन जड़ अक्षरों को चैतन्य प्रदान न करे तो इन मन्त्राक्षरों के चेतन होने, चैतन्यसूत्र में ग्रथित रहने तथा परमेव्योमन् में परमानन्दबृंहित होने की अनुभूति कौन करायेगा? मन्त्र अपने मूल रूप में मध्यमार्ग में चेतन रूप में ध्वनिरूप में स्थित हैं। अतः वहीं उनका जप करना सफल होता है और मध्यमार्ग में प्रवेश भी केवल गुरु की कृपा द्वारा ही सम्भव है। शास्त्रों में इस तथ्य की निम्न शब्दों द्वारा पुष्टि की गई है—

१. वर्णरूप मन्त्रों का 'पशुत्व'— पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवलं वर्णरूपिणः।

२. सुषुम्नापथ में मन्त्रों की सार्थकता— सौषुम्ने ध्वन्युच्चरिताः प्रभुत्वं प्राप्नुवन्ति ते।

भगवान् शिव स्वयं गुरु हैं—

गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयं देवः सदाशिवः।
पूर्वोत्तरपदैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयत्।। (स्वच्छन्दतन्त्र)

ग्रन्थ का ग्रन्थकार भी गुरु है— आचार्य लक्ष्मीधर ने सौन्दर्यलहरी के ३२वें श्लोक की व्याख्या करते हुये कहा है कि—

१. षोडशी परमा कला का उपदेश मात्र अपने सच्छिष्य को ही देना चाहिये; अन्य को नहीं। इस तत्त्व को मात्र गुरुमुख से ही प्राप्त करना चाहिये; क्योंकि यह गोपनीय है, प्रकाश्य नहीं है—

सच्छिष्यायोपदेष्टव्या गुरुभक्ताय सा कला।

२. जो मेरे ग्रन्थ का अध्ययन करके उस परमा कला को जान गये हों, उन्हें मेरा शिष्य माना जाना चाहिये; क्योंकि यह ज्ञान भी मेरी कृपा (मेरे अनुग्रह) के कारण ही सम्भव हुआ है।

३. यदि यह कहा जाय कि पादवन्दन, पादोपसंग्रहण, प्रणाम, अभिवादन, दण्डवत् आदि न करने वाले किसी अज्ञात व्यक्ति को शिष्य कैसे कहा जा सकता है, तो ऐसा कहना समीचीन नहीं है; क्योंकि यदि मेरे ग्रन्थ को पढ़कर कोई पाठक दूसरे गुरु के पास जाकर

षोडशी कला का ज्ञान प्राप्त करता है तो वह मेरा शिष्य नही है; किन्तु जो इसे गुर्वन्तर से भी नहीं जान पाते, उनके लिये तो उपदेश सम्भाव्य नहीं है। ऐसी अवस्था में उसकी इस जिज्ञासा के उपरान्त कि 'मेरा गुरु कौन है?' उन वर्त्तमान, वर्त्तिष्यमाण, जिज्ञासु लोगों के हम लोग ही गुरु हैं। उनके ऊपर हमारा अनुग्रह रहता है— 'तेष्वनुग्रहः कृतोऽस्माभिः।'

गुरु मनुष्य नहीं; प्रत्युत परमशिव है। गुरु के प्रति मनुष्य की धारणा, मन्त्र में अक्षर की धारणा एवं मूर्ति में प्रस्तर की धारणा एक पाप है और इसके लिये नरक जाना पड़ता है—

गुरौ मनुष्यबुद्धिञ्च मन्त्रे चाक्षरबुद्धिकाम्।
प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत्।।

गुरु देवता से भी बड़ा है; क्योंकि परम गुरु तो परमेश्वर है। अतः गुरु के समीप में रहने पर अन्य की पूजा करना नरक का कारण बनता है—

गुरौ सन्निहिते यस्तु पूजयेदन्यदेवताम्।
प्रयाति नरकं घोरं सा पूजा विफला भवेत्।।

गुरुतत्त्व के तीन पक्ष हैं— ग, उ एवं र। कहा भी गया है— 'गकारः सिद्धिदः प्रोक्तः। उकारः शम्भुरित्युक्तः। रेफः पापस्य दाहकः।' गुरु को इन्हीं तीनों से समवेत होने के कारण 'त्रितयात्मा' कहा गया है—

उकारः शम्भुरित्युक्तस्त्रितयात्मा गुरुः स्मृतः। (यामल)

भास्कर्राय की दृष्टि— भास्कर्राय सौभाग्यभास्कर (सौन्दर्यलहरी की टीका) में कहते हैं कि मोक्ष का मूल ज्ञान है, ज्ञान के मूल महेश्वर हैं, महेश्वर के मूल पञ्चाक्षर मन्त्र हैं और मन्त्र का मूल गुरुवाणी है—

मोक्षस्य मूलं यज्ज्ञानं तस्य मूलं महेश्वरः।
तस्य पञ्चाक्षरो मन्त्रो मूलमन्त्रं गुरोर्वचः।।

भास्कर्राय अपने शब्दों में कहते हैं कि 'मन्त्रणाद्यो मूलकारणं श्रीगुरुः सार्वभौमो जयति।'

गुरुप्रदत्त बीजमन्त्र शिष्य के शुद्ध ज्ञानशरीर का बीज है। यह बीजमन्त्र साधक के हृदयरूपी खेत में पड़कर 'विशुद्ध ज्ञानदेह' का रूप ग्रहण करता है। 'भावदेह' स्वभाव-देह है। भावसाधना इसी देह में निष्पन्न होती है। भाव की साधना स्वाभाविक साधना है। भावना-साधना के द्वारा (भावनायोग की सहायता से) भावदेह की रचना रागानुगा मार्ग से सम्भव है। भक्तिसाधना में मुख्य चार दशायें हैं— ज्ञान, वरण, प्राप्ति और अनुभव। इनका विकास गुरुशक्ति पाने पर शीघ्र होता है। 'भावदेह' में भावसाधना का परिपाक → भाव का पूर्ण परिपाक → प्रेम का उदय।

परम रसास्वाद ही भक्तिसाधना का चरम लक्ष्य है। गुरु अपनी दीक्षा द्वारा इसको त्वरित विकास की भूमि प्रदान करता है।

▼

एकपञ्चाशत् अध्याय

दीक्षातत्त्व और त्रिपुरोपासना

यामल के मत में दीक्षा शक्तिपात का एक ऐसा आध्यात्मिक दिव्य विधान है, जिसके द्वारा गुरु के माध्यम से शिष्य को दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है तथा पापक्षय होता है। दीक्षा में दो अक्षर है— 'द' या 'दी' तथा 'क्ष'। 'द' का अर्थ है— दिव्य ज्ञान प्रदान किया जाना और 'क्ष' का अर्थ है— पापों का क्षय होना। अत: दीक्षा, दिव्य ज्ञान की प्राप्ति एवं पापक्षय की एक शक्तिपातज तकनीक है—

दिव्यज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापक्षयं यत:।
तेन दीक्षेति लोकेऽस्मिन् कीर्तिता तनत्रपारगै:।। (यामल)

हजारों उपचारों से अर्चित एवं भक्ति से आसिक्त होने पर भी जो अर्चना अदीक्षितों द्वारा निष्पादित की जाती है, उसे देवगण कभी स्वीकार नहीं करते—

उपचारसहस्रारैस्त्वर्चितां भक्तिसंयुताम्।
अदीक्षितार्चनं देवा न गृह्णन्ति कदाचन।।

जो व्यक्ति अदीक्षित होता है, वह पशु होता है और उसके समस्त कर्म व्यर्थ हो जाते हैं—

कर्माखिलं वृथा यस्मात्तस्माददीक्षित: पशु:।

विना दीक्षा के मोक्ष भी सम्भव नहीं है—

विना दीक्षां न मोक्ष: स्यात्प्राणिनां शिवशासने।। (शा० त०)

आचार्य हयग्रीव यह मानते हैं कि जो व्यक्ति दीक्षित नहीं होता, वह मोक्ष प्राप्त करने के योग्य नहीं होता— 'नादीक्षितो मोक्षार्ह:' (१५.२-२)। दीक्षा प्राप्त कर लेने पर साधक शिवत्व प्राप्त कर लेता है— 'शिवत्वं लभते ध्रुवम्।' आचार्य हयग्रीव की मान्यता है कि जो साधक दीक्षित होता है, वही संस्कृत होता है; अन्य लोग तो असंस्कृत ही होते हैं।[१]

हयग्रीव के मतानुसार दीक्षा के पाँच भेद हैं—'समयविशेषमहाविशेषज्ञानभेदात्पञ्च।'

दीक्षा के भेद

समय	वैशेष	सामान्य ज्ञान	वैशेष ज्ञान	निर्वाण
(समय दीक्षित)	(वैशेष दीक्षित)	(सामान्य ज्ञान-दीक्षित)	(वैशेष ज्ञान-दीक्षित)	(राजयोगी ही निर्वाणदीक्षा का अधिकारी है।)

१. दीक्षित: संस्कृत:। नादीक्षितो मोक्षार्ह:। (१५.२-१-२)

ज्ञान-दीक्षा के भेद

सामान्य दीक्षा | विशेष दीक्षा | महाविशेष दीक्षा

दीक्षितों के भेद

नामनिष्ठ	कर्मनिष्ठ	मन्त्रनिष्ठ	ज्ञाननिष्ठ	योगनिष्ठ
(विशेषान्तं नामनिष्ठः)	(महाविशेषान्तं कर्मनिष्ठः)	(सामान्यज्ञानदीक्षान्तं मन्त्रनिष्ठः)	(विशेषज्ञाननिष्ठः)	

श्रेष्ठता का उत्तरोत्तर क्रम— समयदीक्षित → वैशेष दीक्षित → सामान्य ज्ञान दीक्षित → वैशेष ज्ञान दीक्षित → निर्वाण दीक्षित।

समय = मूल मन्त्रग्रहण ही समय है। समयदीक्षित = गृहीत मूलमन्त्र। महाविशेष = यन्त्रार्चन आदि विशिष्ट अर्चन। इसके बाद ही साधक इतिहास-पुराण (पञ्चम वेद) का अधिकारी बनता है। सामान्य ज्ञान दीक्षित = गृहीतपञ्चमवेदः।

१. 'पञ्चमवेदविचारात्मकं परोक्षं सामान्यम्।' (शाक्तदर्शनम्-१.१५.२.८)
२. 'सिद्धान्तविचारजं प्रकाशात्मकं ज्ञानं विशेषम्।' (शाक्तदर्शनम्-१५.२.९)
३. 'आत्मप्रकाशात्मकं महाविशेषम्।' (शाक्तदर्शनम्-१५.२.१०)
४. 'निर्वाणमपरोक्षम्।' (शाक्तदर्शनम्-१५.२.११)[१]

निर्वाणदीक्षित अपरोक्ष ज्ञानी ही मुक्त होता है और वह राजयोगी होता है—

निर्वाणदीक्षितापरोक्षज्ञानी मुक्तः। राजयोगिनः।

(शाक्तदर्शनम्-१५.४)

इनमें राजयोगी को व्यवहार एवं लौकिक कर्मों की अपेक्षा नहीं होती।

'दीक्षा' शिष्य को भोग एवं मोक्ष प्रदान करने की एक अनुग्रहात्मक आध्यात्मिक क्रिया है, जो गुरु शिष्य को प्रदान करता है। 'हंसविलास' में कहा गया है कि जहाँ शक्तिपात नहीं किया गया (दीक्षा द्वारा शक्तिपात नहीं किया गया), वहाँ सिद्धि सम्भव नहीं होती— 'यत्र शक्तिर्न पतति तत्र सिद्धिर्न जायते।' स्पष्ट है कि 'दीक्षा' शिष्य को मुक्ति दिलाने हेतु उस पर किये गये शक्तिपात का विधान है; क्योंकि विना शक्तिपात के मुक्ति समेंव ही नहीं है। इसीलिये दीक्षा का विधान किया गया है।

आचार्य शंकर की दृष्टि में दीक्षा का स्वरूप— आद्य शंकराचार्य ने प्रपञ्च-सारतन्त्र के पञ्चम पटल के प्रारम्भ में दीक्षा के स्वरूप का निरूपण करते हुये कहा है—

दद्याच्च दिव्यभावं क्षिणुयादुरितान्यतो भवेद्दीक्षा।
मननात्तत्त्वपदस्य त्रायते इति मन्त्रमुच्यते भयतः।।

---

१. विशेषं ज्ञाननिष्ठः। मन्त्रयोगी महाविशेषम्। हठयोगी च। निर्वाणं राजयोगी (१५.२-१६,१८,१९)।
समय— मूलमन्त्रग्रहणं समयः। विरजाकुङ्कुमतिलकपरं समयः।

दीक्षा के दो व्यापार हैं— दिव्यभाव का दान एवं दुरितों (दुष्कृतों) का क्षय। 'दाञ्' दाने एवं 'क्षि' क्षये धातुओं से दीक्षा शब्द निष्पन्न हुआ है।

दीक्षा सिद्धि प्रदान करने वाला एक सशक्त माध्यम भी है। शंकराचार्य कहते हैं—

येनोपलब्धेन समाप्नुवन्ति सिद्धिं परत्रेह च साधकेशाः।

शिवाग्रयोगीन्द्र ज्ञानशिवाचार्य की दृष्टि में दीक्षा का स्वरूप— ज्ञानशिवाचार्य की दृष्टि में दीक्षा की परिभाषा इस प्रकार है— 'दीक्षासामान्यलक्षणन्त्वागमिकनित्याद्यधिकारागमश्रवणाद्यधिकारान्यतरनिर्वर्तनसमर्थशिवव्यापारत्वम्।'

प्राथमी दीक्षा समयदीक्षा है— 'प्रथमं समयदीक्षा लब्धव्या।' समयदीक्षा अर्थात् शिवालय-परिचर्या, शिवपूजादिक। 'निर्वाणदीक्षा' तो आगमश्रवण-मननादि अधिकारसम्पादिका है। कहा भी गया है— 'समयदीक्षा विशेषदीक्षा च शिवालय-परिचर्या-शिवपूजादिनित्याद्यधिकारसम्पादिका। निर्वाणदीक्षा तु आगमश्रवणमननाद्यधिकारसम्पादिका।'

सप्तविध दीक्षा : शिवाग्र योगीन्द्र ज्ञानशिवाचार्य

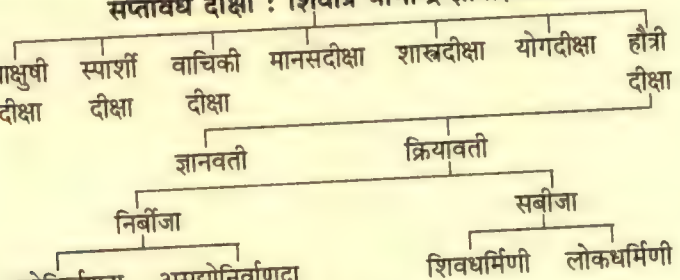

सबीजा = समयाचारसमर्थानां क्रियमाणा सबीजा।

क्रियावती दीक्षा के प्रकारान्तर से अन्य भेद

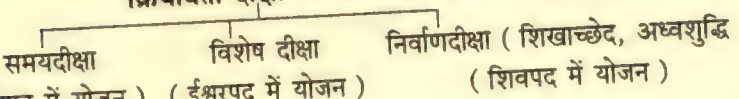

अध्व

↓ मन्त्र	↓ पद	↓ वर्ण	↓ भुवन	↓ तत्त्व	↓ कला
(११)	(८१)	(५०)	(२२४)	(३६)	(५)

शैवमत में वेधदीक्षा

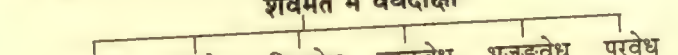

सांसिद्धिक साधकों को दीक्षा की आवश्यकता नहीं होती।

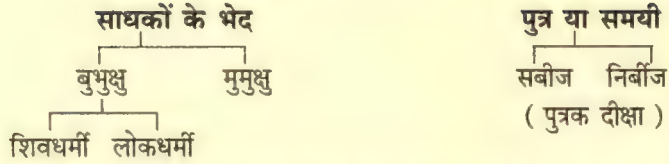

'ताराभक्तिसुधार्णव' के अनुसार शाक्तों की दीक्षा भी शैवों की ही भाँति है; यथा— शाक्ती, शाभवी एवं मान्त्री दीक्षा।

कलावती दीक्षा— 'शारदातिलक' के अनुसार क्रियावती, वर्णमयी, कलावती एवं वेधमयी दीक्षा।

हठयोगी व्यवहारसापेक्ष होते हैं। मन्त्रयोगियों के लिए व्यवहार नित्य आवश्यक होता है। ज्ञाननिष्ठ को महावैशेषाधिकार प्राप्त रहता है। नामनिष्ठ पूत एवं अपूत दोनों होते हैं और दोनों को सामान्य जप एवं पूजा का अधिकार होता है। दीक्षात्रय से पूत 'कर्मनिष्ठ' होता है। विशेष जापक 'मन्त्रनिष्ठ' कहलाते हैं। इन्हें होमादिक नित्य करने होते हैं; क्योंकि होमादिक जप के अंग हैं। मन्त्रनिष्ठों की विशेष दिवसों में विशेष पूजा हुआ करती है। होम-तर्पण आदि वैशेषी पूजा कहलाती है।

महावैशेषदीक्षितों को प्रतिमा, यन्त्रशिला आदि की नित्य पूजा करनी होती है। ज्ञान-निष्ठ जप, अर्चन, उपनिषद्, गीता के पाठ एवं उनके अर्थभावन में संलग्न रहते हैं। इन्हें भी विशेष दिनों विशेष पूजा करनी पड़ती है। इन्हें जप करना भी उचित है। मन्त्र-योगी मन्त्रयोग के अनुसर्त्ता एवं बिम्बार्चननिष्ठ होते हैं। हठयोगी भी व्यवहार में जप-पूजा में अनुरक्त रहते हैं; किन्तु राजयोगियों के लिये लौकिक व्यवहारगत विधान ऐच्छिक है; अनिवार्य नहीं। ज्ञानी स्वतन्त्र होता है और उसके लिये व्यवहार काम्य नहीं है। ज्ञानी के ज्ञान का स्वरूप निम्नांकित है—

अन्तःकरणवृत्त्यामारूढ़ब्रह्मप्रकाशो ज्ञानम्।

सावित्रीग्रहण 'वर्णदीक्षा' कहलाती है और अग्न्याधान 'वैशेषी दीक्षा' कहलाती है। सन्ध्याओं में उत्तम संख्या में मातृजप-ग्रहण 'महावैशेषी दीक्षा' है। अष्टसाधनों से ब्रह्मविचार करना 'ज्ञानदीक्षा' है। निदिध्यासन 'निर्वाणदीक्षा' है। अदीक्षित को दीक्षा देने का अधिकार नहीं है। दीक्षितों को भी वर्णधर्म का त्याग नहीं करना चाहिये।[१]

तन्त्र में वर्णधर्म त्याज्य माना गया है; किन्तु हयग्रीव के शाक्तदर्शन में कहा गया है कि 'दीक्षितैरपि न त्याज्या वर्णधर्माः।' दीक्षितों को अदीक्षितों की पूजा नहीं करनी चाहिये और तान्त्रिकों की तो कभी भी पूजा नही करनी चाहिये— 'न कदापि तान्त्रिकान्' (१६.२.२२)।

सामान्य जनों से तो सौर, वैष्णव एवं शैव भी श्रेष्ठतर हैं।[२]

१. शाक्तदर्शनम् २. शाक्तदर्शनम्

दीक्षित साधकों का चिह्न कुंकुम है, जो कि प्रवाल-मिश्रित होना चाहिये। भ्रूमध्य में कुंकुम धारण करना चाहिये। एतदर्थ भस्मगन्ध भी प्रयुक्त होता है। प्रतिदिन मन्त्र-सन्ध्योपासना करनी चाहिये। नामनिष्ठ को संकीर्तन-अर्चन सदा निष्पाद्य है। कर्मनिष्ठ द्वारा वर्ण-सन्ध्या गायत्रीजप के साथ 'मतसन्ध्या' जप-होम-तर्पण-वैश्वदेव-आतिथ्य आदि प्रतिदिन करने चाहिये— 'वर्णसन्ध्याजपवन्मतसन्ध्याजपार्चनानि नित्यम्।[1]

प्रतिदिन दशांगों का जप करना चाहिये। कवच, हृदय, सहस्रनाम, स्तवराज, लहरी (सौन्दर्यलहरी), वेदपादस्तव, आवरणस्तव, गीता, अथर्वशीर्ष एवं अथर्वस्तव दशाङ्ग कहे गये हैं।[2]

शुक्रवार को नक्तपूजा करनी चाहिये। यह पूजा निवेदन एवं अर्चनसापेक्ष है।

यद्यपि पुरश्चर्या आदि भी यज्ञ हैं; किन्तु 'ज्ञानयज्ञ' इनसे हजारगुना श्रेष्ठतर होता है— 'सहस्रगुणितं ज्ञानयज्ञम्' (१६.४.१५)।

औशनस भाष्यसहित ब्रह्मसूत्र का अध्ययन करने पर ही साधक वैशेषिक ज्ञान-दीक्षा का अधिकारी होता है; अन्य नहीं। वैशेषिक ज्ञानदीक्षा के दो प्रकार हैं— द्वैपायनब्रह्मसूत्राध्ययनयुता एवं शाक्ततत्त्वज्ञानावबोधयुता।

द्वैपायनकृत ब्रह्मसूत्र एवं शक्तिसूत्रों पर हयग्रीवकृत भाष्य के ऊपर शुक्राचार्य द्वारा किये गये भाष्य को 'औशनस भाष्य' कहते हैं।

दीक्षा : दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण

'दीक्षा' आत्मसंस्कार का नामान्तर है। आणव, मायीय एवं कार्ममलों या पाशों से जीवात्मा आच्छन्न है। इसके प्रभाव से उसके स्वभावसिद्ध पूर्णत्व का स्फुटन नहीं हो पाता। जीवात्मा शिवस्वरूप होने पर भी आणवमल के कारण स्वरूपगत संकोच से अपने को अपूर्ण मानता है। इसी के कारण शुभाशुभ वासनाओं के उन्मेष के फल-स्वरूप जन्म, आयु एवं भोगों का उदय होता है। यही 'कार्ममल' है। कर्म से ही पञ्च-कञ्चुक (कला, विद्या, राग, काल एवं नियति तथा इनकी समष्टिभूता माया) अस्तित्व में आते हैं। इन्हीं के द्वारा भोग्य पदार्थों का अनुभव होता है। यही 'मायीय मल' है। दीक्षा मलों का संस्कार या मल-निवृत्ति का साधन है। तन्त्र एवं मन्त्र के क्षेत्र में विना दीक्षा के प्रवेश करना ही निषिद्ध है—

अथ दीक्षां प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने।
यया विना नाऽधिकारस्तन्त्रे मन्त्रेऽपि च क्वचित्।।

(नीलतन्त्र-षष्ठ पटल)

---

१. शाक्तदर्शनम्

२. शाक्तदर्शनम् : 'कवच-हृदय-सहस्रनाम-स्तवराज-लहरी-वेदपादस्तवावरणस्तवगीताथर्वशीर्षसूक्तान्यङ्गानि' (१६.३.१८)

दीक्षा एक तप है और यह समस्त जगत् का मूल है—

दीक्षामूलं जगत्सर्वं दीक्षाऽपि परमं तपः।

(नीलतन्त्र- षष्ठ पटल)

साधक को चाहिये कि वह जहाँ कहीं भी निवास करे, वहाँ दीक्षा लेकर ही रहे; क्योंकि अदीक्षित होकर मरने से व्यक्ति को रौरव नरक की यातना भोगनी पड़ती है—

अदीक्षितोऽपि मरणे रौरवं नरकं व्रजेत्। (नीलतन्त्र)

इसीलिये कहा गया है—

तस्माद्दीक्षां प्रयत्नेन सदा कुर्याच्च तान्त्रिकीम्। (नीलतन्त्र)

कहते हैं कि कोटि जन्मों से अर्जित पाप भी दीक्षाग्रहण करने के काल से ही नष्ट हो जाते हैं—

कोटिजन्मार्जितं पापं ज्ञानाज्ञानकृतं चरेत्।
दीक्षाग्रहणमात्रेण पलायन्ते न संशयः।।

ब्रह्महत्या, स्वर्णस्तेय आदि घोर पातक एवं अन्य लाखों उपपातक दीक्षा द्वारा नष्ट हो जाते हैं—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्वर्णस्तेयादि पातकम्।
उपपातकलक्षाणि हन्ति दीक्षा ग्रहान्विता।। (नीलतन्त्र)

दीक्षा शक्ति। गन्धर्वतन्त्र में कहा गया है—

इयं दीक्षा सर्वतन्त्रे शक्तिर्या परिकीर्तिता।।(शाक्त०-२ उल्लास)

'दीक्षा' मल-संस्कार की एक आध्यात्मिक क्रिया है। दीक्षा के दो पक्ष हैं— दान और क्षपण—

दीयते ज्ञानसद्भावः क्षीयते पशुवासना।
दानक्षपणसंयुक्ता दीक्षा तेनेह कीर्तिता।।

अर्थात् जिसके द्वारा ज्ञान दिया जाता है और पशुवासना का क्षय होता है, ऐसी दान एवं क्षपणयुक्त क्रिया ही 'दीक्षा' है। यही दीक्षा का स्वरूप है। दीक्षा की निष्पत्ति से पाशों का प्रशमन (पाश-विच्छेद), शिवत्व की अभिव्यक्ति और मलोपेत आत्मा का संस्कार (मल-निवृत्ति) होता है।

दीक्षा द्वारा मलोपेत आत्मा का संस्कार किया जाता है। उससे मल-निवृत्ति होती है। परमात्मा अपनी क्रियाशक्तिस्वरूप दीक्षा के द्वारा पश्वात्मा को मुक्त करते हैं। सर्वज्ञत्व एवं सर्वकर्तृत्व का पूर्ण विकास ही तो 'मोक्ष' है। दीक्षा ही मुक्ति प्रदान करती है—

दीक्षैव मोचयत्यूर्ध्वं शैवं धाम नयत्यपि।

ज्ञान और क्रिया अभिन्न हैं। भगवान् की शक्ति अभिन्न ज्ञानक्रियात्मिका है। क्रिया शक्ति एक होकर भी व्यापार-भेद से तीन प्रकार की है— वामा, ज्येष्ठा एवं रौद्री।

वामा— जगत् की स्थिति, संरक्षण।

ज्येष्ठा— संहार।

रौद्री— पाप-विमोचन और अनुग्रह।

मल + वामा शक्ति के आवरणात्मक अधिकार की निवृत्ति तथा अनुग्रह → आत्मा में कैवल्योन्मुखी एवं अनिर्वचनीय भाव का उदय → परमात्मा द्वारा पश्वात्माओं के ज्ञान + क्रियाओं का आवरण-विच्छेद → पश्वात्मा में भी अनन्त ज्ञान + अनन्त क्रिया का प्रादुर्भाव। आणव + कार्म + मायीय मलों का क्षय → बन्धननिवृत्ति → जीव की शिवत्व में प्रतिष्ठा या जीव की शिव के रूप में प्रतिष्ठा।

तीव्रतम शक्तिपात → अनुपायक्रम द्वारा दीक्षा सम्पन्न होती है और क्षणमात्र में जीव मुक्त हो जाता है।

अल्प शक्तिपात → शाभवी दीक्षा, शाक्ती दीक्षा एवं आणवी दीक्षा दीक्षा के विना मुक्ति का अन्य कोई उपाय नहीं है।

वास्तविक दीक्षा है— आत्मसंस्काररूप आन्तर दीक्षा।

'दीक्षा' से बौद्ध अज्ञान की निवृत्ति तो नहीं होती; किन्तु बौद्ध ज्ञान से हो जाती है। बौद्ध ज्ञान → विकल्पों का विच्छेद + सद्योमुक्ति। विकल्पहीन चित्त की सद्योमुक्ति जीवन्मुक्ति है। विकल्प-निवृत्ति → देह रहने पर भी मुक्ति में बाधाभाव। पूर्णत्व-प्राप्ति का क्रम—

दीक्षा— पौरुष ज्ञान का अन्त— अद्वय आगम के श्रवण का अधिकार— बौद्ध ज्ञान का उदय— बौद्ध अज्ञान की निवृत्ति— जीवन्मुक्ति— भोगादि द्वारा प्रारब्ध का ध्वंस— देहत्यागानन्तर पौरुष ज्ञान का उदय— मोक्ष या परमेश्वरत्व की सम्प्राप्ति।

दीक्षा के भेद

१. समयी दीक्षा— दीक्षाओं में एक निर्दिष्ट क्रम तो है; किन्तु शिष्य की पात्रता के आधार पर यह क्रम भिन्न हो जाता है। एक ही क्रम सर्वत्र अनुसृत नहीं होता। दीक्षाओं में सर्वप्रथम 'समयदीक्षा' पर प्रकाश डाला जा रहा है। इस दीक्षा का वैशिष्ट्य निम्नांकित है—

१. समयी दीक्षा में समस्त पशु आत्माओं का समान अधिकार है।

२. इस दीक्षा में काल एवं आश्रम आदि का कोई नियम-प्रतिबन्ध नहीं है।

३. यदि आत्मा का अनादि मल थोड़ा भी पक्व हो जाय तो भगवान् की अनुग्रह-शक्ति मन्द रूप में जीव में प्रवेश करने लगती है।

४. गुरु के द्वारा शिष्य के मस्तक पर शिवहस्तार्पण ही इस दीक्षा का रहस्य है।

५. इस दीक्षा के अनन्तर गुरु-सेवा एवं विभिन्न देवी-देवताओं की आराधना का अधिकार प्राप्त हो जाता है और भक्ति का उन्मेष भी होने लगता है।

कर्म के फलों के भोग से कर्मों का क्षय तो होता है; किन्तु कर्म निःशेष नहीं हो सकते; क्योंकि कर्मसञ्चय भी चलता रहता है। अतः एतदर्थ दीक्षा आवश्यक है।

कालाग्नि रुद्र या काल तथा भगवान् की रौद्री शक्ति (क्रियाशक्ति) एवं दीक्षा सभी रौद्री शक्ति के विभिन्न रूप हैं। भगवान् की कालशक्ति भी रौद्री शक्ति ही है। दीक्षा भी भगवान् की क्रियाशक्ति का व्यापार है। यही शक्ति रौद्री शक्ति है।

६. समयदीक्षा प्राप्त होने पर साधक को होम-जप-पूजन-ध्यान आदि में योग्यता प्राप्त हो जाती है।

७. समयी की आत्मा 'चर्या' एवं 'ध्यान' से निर्मल होती है। 'चर्या' = गुरूपदिष्ट एवं शास्त्रोक्त आचारों का पालन। 'ध्यान' = योगाभ्यास।

८. समयी दीक्षा से साधक को पूर्णत्व की प्राप्ति कभी नहीं होती और भोग का लाभ भी प्राप्त नहीं होता; किन्तु 'ईश्वर पद' की प्राप्ति या 'अपरा मुक्ति' प्राप्त हो सकती है। पाश-शुद्धि से ऐश्वर्य-लाभ तो हो जाता है; किन्तु सम्पूर्ण पाशों का समुच्छेद नहीं हो पाता। अत: पूर्णत्व भी प्राप्त नहीं हो सकता।

९. समयी का संस्कार जात्युद्धार, द्विजत्व-प्राप्ति एवं रुद्रांशापत्ति के द्वारा होता है।

क. जात्युद्धार— भोग हेतु पश्वात्मा द्वारा प्राप्त भोगायतन शरीर से सम्बद्ध जाति का उत्कर्ष ही 'जात्युद्धार' है। इसके द्वारा साधक की पूर्ववर्ती जाति न रहकर भैरवीय या शिवमयी जाति हो जाती है। इसके बाद अपनी पूर्ववर्ती जाति बताना भी पातक माना जाता है। इस व्यापार के द्वारा देह के सूक्ष्मतम अंगसंस्थान में एक आमूल परिवर्तन हो जाता है।

ख. द्विजत्वापादन— जात्युद्धार के बाद द्विजत्वापादन-हेतु प्रयास आवश्यक है। इसमें मन्त्रशक्ति ही कार्य करती है।

● द्विजत्वापादन में मन्त्रों से ही देह की योनि, बीज, आहार, देश एवं भाव की शुद्धि करनी पड़ती है। मन्त्रशक्ति द्वारा योनि एवं बीज का शोधन करना चाहिये। इसके द्वारा देहगत अशुद्धि एवं शास्त्रोक्त आहार ग्रहण करने से आहार-शुद्धि करनी चाहिये और इसके लिये मन्त्र-साधना भी आवश्यक है; क्योंकि देहशुद्धि एवं भोजनशुद्धि पूर्व व्यापार से सम्भव नहीं हो पाती। दुष्टों की संगति से देश की अशुद्धि एवं असत्य कौटिल्यादि से भावाशुद्धि होती है। इनकी मलिनता दूर करने हेतु भी मन्त्रसाधन आवश्यक है। मन्त्राराधन से शुद्ध विद्या में जन्म प्राप्त करने पर अलौकिक द्विजत्व प्राप्त हो जाता है। इस दीक्षा के द्वारा एक ही जाति— शिवमयी (भैरवीय) जाति प्राप्त होती है। द्विजत्व प्राप्त होने पर 'उपवीत' दिया जाता है। समयी 'शिशु' कहलाता है; क्योंकि वह आध्यात्म जगत् में नया जन्म ग्रहण करता है।

'उपवीत'— 'उप' (आत्मा के समीप) 'वि' = विशेष अर्थात् मन्त्रसामर्थ्य से 'इत' अर्थात् सम्बद्ध होना ही उपवीतग्रहण है। उपवीत अनन्त मन्त्रों एवं देवताओं के शुद्ध विद्यारूप शक्तिसूत्र का प्रतिरूप है। भुवनाध्वा में ४८ संस्कारों के द्वारा द्विजत्वापादन किया जाता है।

● गर्भाधान से जन्मपर्यन्त जो ४० संस्कारों का विधान है, उसकी शक्ति से शिशु शुद्ध विद्या में जन्म लेता है और फिर उसके बाद अष्टगुणों के द्वारा उसका चैतन्य संस्कार करने का विधान है। ये ही हैं— ४८ संस्कार। ४८ संस्कार अर्थात् पूर्ण द्विजत्वसिद्धि।

ग. रुद्रांशापादन— रुद्रांश न होने तक रुद्र के ध्यान में एकाग्रता आ पाना सम्भव नहीं है। एतदर्थ गुरु के अनेक कर्तव्य हैं—

● गुरु शिष्य का 'प्रोक्षण' एवं 'तारण' करके ऊर्ध्वमार्गिक रेचक क्रिया द्वारा अपने शरीर से निर्गत होकर शिष्य-देह में प्रविष्ट होते हुये उसके हृदय तक पहुँचे। वहाँ पहुँचकर शिष्य के पुर्यष्टक को शिथिल करे (विश्लेषित करे)। इसके द्वारा जीव का शरीर के साथ एक सूक्ष्म सूत्र का सम्बन्धमात्र रह जाता है।

● इसके बाद गुरु पुर्यष्टक को पृथक् करके शुद्धोपादान से उसका अवगुण्ठन (आवरण) करे।

● फिर आकृष्ट करते हुये द्वादशान्त (मस्तक) में स्थापित करे।

● फिर जीव को सम्पुटित करके संहारमुद्रा से खींचकर ऊर्ध्व पूरक के द्वारा अपने हृदय में प्रत्यावर्तित हो जाना चाहिये और वहाँ कुम्भक के द्वारा स्वारस्य-सम्पादन करके (अपने साथ शिष्य का अभेदापादन करके) ऊर्ध्वोद्वेष्टन क्रम से रेचन करना चाहिये। इस रेचन के साथ शिष्य विश्व के निम्नतम देश से ऊर्ध्वतम प्रदेशपर्यन्त समस्त अध्वाओं में अधिष्ठित ६ देवताओं का त्याग कर दे। ये ६ देवता निम्नांकित हैं—

१. हृदय में ब्रह्मा	४. भ्रूमध्य में ईश्वर
२. कण्ठ में विष्णु	५. ललाट में सदाशिव
३. तालु में रुद्र	६. ब्रह्मरन्ध्र में शिव

● विश्व के अधिष्ठातृ कारणवर्ग से विश्लिष्ट हो जाने पर ईश्वरपद-प्राप्त्यर्थ ईश्वराराधन की योग्यता प्राप्त करनी पड़ती है।

● फिर भ्रूमध्य से जीव को लेकर सम्पुटित करके एवं संहारमुद्रा से उठाकर पुनः शिष्य के हृदय में स्थापित किया जाना चाहिये। यही है— समयी दीक्षा।

२. भोगदीक्षा (साधना दीक्षा)— समयी दीक्षा के अनन्तर 'पुत्रकादि' अन्यान्य दीक्षाओं का विधान है। समयी दीक्षा में अध्व-शुद्धि की आवश्यकता नहीं है; केवल दीक्षा द्वारा ही किसी अंश में पाश-शुद्धि सम्पादित हो जाती है।

फलाकांक्षी शिष्य भोग एवं मोक्षस्वरूप फल से भोगार्थी एवं मोक्षार्थी द्विविध प्रकार के होते हैं। मुमुक्षु के भी दो भेद है— पुत्रक और आचार्य। स्वप्रत्ययी शिष्यों को शिष्य की वासना के अनुकूल दीक्षा देनी चाहिये। गुरुप्रत्ययी साधकों को (गुरु का कर्तव्य है कि) भोगदीक्षा न देकर मोक्षदीक्षा दे।

३. शिवधर्मिणी दीक्षा— साधकों के दो भेद हैं— शिवधर्मी एवं लोकधर्मी। 'भोगदीक्षा' एवं 'भूतदीक्षा' के भी दो भेद होते हैं— शिवधर्मिणी एवं लोकधर्मिणी। इन दोनों को साधक दीक्षा कहते हैं। शिवधर्मिणी दीक्षा के अनुसार साधक को प्राप्त सिद्धियों के प्रकार इस तरह हैं— १. मन्त्रेश्वर पद की प्राप्ति, २. मन्त्रपद की प्राप्ति, ३. पिण्ड-सिद्धि + अवान्तर सिद्धि। यह साधक भोगास्वादनार्थ जिस भी लोक में जाता है वहाँ उसे अमर एवं स्थिर शरीर प्राप्त हो जाता है। प्रलयकाल में उस लोक के नष्ट न होने तक ये सिद्ध उसी स्थिर से रहा करते हैं। इसके साथ अवान्तर सिद्धियाँ भी उन्हें प्राप्त हो जाती हैं; यथा— खड्गसिद्धि, अञ्जनसिद्धि एवं पादुकासिद्धि। ये भी समयाचार के पालक होते हैं। ये मन्त्राराधक होते हैं। शिवधर्मी साधक यति एवं गृहस्थ दोनों होते हैं और आराध्य मन्त्र के आदेशानुसार ही समस्त कार्य करते हैं।

४. लोकधर्मिणी दीक्षा— इस सन्दर्भ में कहा गया है कि गुरु लोकधर्मी साधक को अपने इष्ट भुवनेश्वर के स्वरूप से युक्त करके उनके धर्म से युक्त करे या यदि वह मुक्तिकामी हो तो उसे शिव में आरोपित करके उनके धर्मों से युक्त करे। ये ऊर्ध्व गति और योजन क्रमशः साधक एवं गुरु के संकल्पानुसार हुआ करते हैं—

लोकधर्मिणमारोप्य मते भुवनभर्तरि।
तद्धर्मापादनं कुर्याच्छिवे वा भुक्तिकांक्षिणम्।।

इस दीक्षा के प्रभाव से सञ्चित (प्राक्तन) एवं आगामी कर्मों के अन्तर्वर्ती अशुभांश नष्ट हो जाते हैं। प्रारब्ध-भोगान्त में देह के नष्ट होने पर अणिमादिक-भोगार्थ गुरु ऊर्ध्व-लोक में भेज देते हैं। वहाँ भोगान्तोपरान्त भी भोग-तृप्ति न होने पर गुरु वासनानुरूप भोगार्थ ऊर्ध्वतर भुवन में भेज देते हैं। फिर शुभकर्म-भोग के अन्त में वैराग्योदय होने पर अन्तिम भोगस्थान से ही परमेश्वर के निष्कल स्वरूप में योजित कर दिया जाता है। यह योजना निष्कल ब्रह्म के साथ नहीं; प्रत्युत मायातीत विशुद्ध भुवनों के अधीश्वर के साथ होती है।

५. मोक्षदीक्षा : निर्बीज दीक्षा— मुमुक्षु की दीक्षा के ३ प्रकार हैं— सबीज, निर्बीज एवं सद्यः निर्वाणदायिनी। निर्बीज दीक्षा बालक, वृद्ध, स्त्री, व्याधिग्रस्त एवं मूर्खों के लिये है अर्थात् यह शास्त्रविचार में अक्षम लोगों के लिये है। इनके लिये समयाचार-पालन की भी आवश्यकता नहीं होती; बल्कि केवल गुरुभक्ति से ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है—

दीक्षामात्रेण मुक्तिः स्याद भक्तिमात्राद गुरोः सदा। (स्वच्छन्दतन्त्र)

इन साधकों के लिए गुरुभक्तिमात्र ही एक समय (शर्त) है; अन्य कोई नहीं है।

सद्यः निर्वाणदायिनी दीक्षा— यह दीक्षा मुमुर्षु अवस्था में ही देय है; क्योंकि यह दीक्षा दीप्ततम मन्त्र से सम्पन्न होने के कारण पाशत्रय का ध्वंस कर देती है। इस दीक्षा का प्रभाव है— शुद्धि एवं देहपात के अनन्तर परमपद की प्राप्ति—

दृष्ट्वा शिष्यं जराग्रस्तं व्याधिना परिपीडितम्।
उत्क्रमय्य ततस्त्वेन परतत्त्वे नियोजयेत्।।

अर्थात् गुरु को चाहिये कि वह शिष्य को जरा या व्याधि से ग्रस्त देखे तो शिष्य का शरीर से उत्क्रमण कराकर उसे परमतत्त्व में नियोजित करे।

सबीज दीक्षा— यह दीक्षा कष्टसहिष्णु एवं शास्त्रपारङ्गत शिष्यों को प्रदान की जाती है। ऐसे साधकों को शास्त्रनिर्दिष्ट समयाचार का सम्यक् रूप से पालन करना अनिवार्य है; अन्यथा वे शिवमयी सत्ता से अधःपतित हो कर कष्टापन्न हो जाते हैं।

६. क्रियादीक्षा— 'दीक्षा' क्रिया एवं ज्ञान के भेद से दो प्रकार की होती है। क्रियादीक्षा छः अध्वाओं के भेद से अनेक प्रकार की है; यथा—

कलादीक्षा	मन्त्रदीक्षा	पञ्चतत्त्वदीक्षा
तत्त्वदीक्षा	भुवनदीक्षा	त्रितत्त्वदीक्षा
पददीक्षा	षट्त्रिंशत्तत्त्वदीक्षा	एकतत्त्वदीक्षा
वर्णदीक्षा	नवतत्त्वदीक्षा	

क्रियात्मिका (या हौत्री दीक्षा = 'हूति') दीक्षा में होने वाली तत्त्वशुद्धि में भी ज्ञान ही प्रधान होता है। इसीलिये कहा गया है कि जिसे ज्ञान से तत्त्वशुद्धि की सम्यक् प्राप्ति नहीं होती, उसी के लिये क्रिया का विधान है—

यस्य ज्ञानान्न सम्प्राप्तिः क्रिया तस्य विधीयते।

३६ तत्त्वों को ९ तत्त्वों में परिणत कर सकने से नवतत्त्वदीक्षा से भी ३६ तत्त्वों की शुद्धि हो जाती है। ९ तत्त्व निम्नांकित हैं—

१. प्रकृति	४. काल	७. ईश्वर
२. पुरुष	५. माया	८. सदाशिव
३. नियति	६. विद्या	९. शिव

पञ्चतत्त्व— पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश।
तत्त्वत्रय— शिवतत्त्व, आत्मतत्त्व एवं मायातत्त्व।

ग्यारह क्रियादीक्षायें— कलादीक्षा-१, तत्त्वदीक्षा-४, एकत्वदीक्षा-१, पददीक्षा-१, मन्त्र-वर्ण-भुवनदीक्षा-३, एवं साधारण दीक्षा-१ = ११ दीक्षा।

११ दीक्षायें + ज्ञानदीक्षा-१ = १२ दीक्षायें।

पुत्रक की दीक्षा— सबीज, निर्बीज एवं सद्यः निर्वाणदायिनी = ३। १२ × ३ = ३६ दीक्षायें। आचार्यदीक्षाओं की संख्या = १२। ये मात्र सबीज होती हैं। अतः इनकी संख्या मात्र १२ है।

शिवधर्मी एवं लोकधर्मी साधक की दीक्षा— दोनों मिलाकर १२ + १२ = २४

होती हैं। समयी दीक्षा = ज्ञान द्वारा हृदयग्रन्थिप्रभृति का भेदन होने पर तथा क्रिया द्वारा ग्रन्थिभेद होने पर १ + १ = २ (दो प्रकार)।

कुल दीक्षायें = ३६ + १२ + २४ + २ = ७४ हैं।

शिष्यों के आशय में भिन्नत्व होने के कारण एक साधक के लिये किसी अध्वा का तो प्राधान्य रहता है; किन्तु अन्य अध्वाओं का गौणत्व रहता है। निष्कर्ष यह है कि दीक्षाओं के अनन्त प्रकार हैं—

यत्र यत्र हि भोगेच्छा तत्प्राधान्योपयोगतः।
अन्यान्तर्भावनातश्च दीक्षानन्तविभेदभाक्।।

इसी प्रकार 'तत्त्वाध्वा' में भी जब किसी तत्त्व का प्राधान्य होता है तब अन्य तत्त्वों का गौणत्व हो जाता है। ३६ तत्त्वदीक्षा की अपेक्षा नव तत्त्वदीक्षा का अधिकारी एवं गुरु श्रेष्ठतर है।

इसी प्रकार ९ तत्त्व से ५ तत्त्व, ५ तत्त्व से ३ तत्त्व एवं ३ तत्त्व से १ तत्त्वदीक्षा का अधिकार उच्च कोटि का है। एक तत्त्वदीक्षा के योग्य गुरु एवं शिष्य दोनों दुर्लभ हैं—

एकतत्त्वविधिश्चैव सुप्रबुद्धं गुरुं प्रति।
शिष्यगतभोगकाङ्क्षमुदितः शम्भुना यतः।।

निष्कर्ष यह कि ३६ तत्त्वों को ५ या ३ तत्त्वों में परिणत कर लेने पर ५ या ३ तत्त्वों की दीक्षा होती है।

'एकतत्त्वदीक्षा' में ३६ तत्त्वों की समष्टि रूप से एक तत्त्वरूप में ग्रहण किया जाता है। इसे ही 'बिन्दु' कहा जाता है। इसके शोधन से सभी तत्त्वों का शोधन हो जाता है। सकल + निष्कल अघोरेश्वरी-प्रभृति अनुष्ठान + लोकधर्मी साधक के वैचित्र्य + भौतिक नैष्ठिक तथा आचार्यों के भेद से दीक्षा के असंख्य भेद हैं।

पुत्रक की कला दीक्षा : कलादीक्षा

वागीश्वरी के गर्भ से जन्म लेने के कारण जिसके संसार का उपशम हो गया है, उसको 'पुत्रक' कहा जाता है।

संसारमण्डल (पृथ्वी से कलातत्त्व तक 'माया' का राज्य है और यही है— संसार-मण्डल) के बाद आता है— शुद्ध विद्या का राज्य। शुद्ध विद्या का नामान्तर है— वागीश्वरी। उसके गर्भ से जन्म लेने पर विशुद्ध भुवनों में अवस्थान एवं सञ्चार का अधिकार अधिगत हो जाता है। इस देह को 'बैन्दव देह' 'मन्त्रदेह' की प्राप्ति कहते हैं।

२१ अवान्तर संस्कारों द्वारा यह जन्म होता है। इसके बाद ५ संस्कार और किये जाते हैं, जिनसे पाश-विच्छेद किया जाता है। पाशनिवृत्ति + पाशसंस्कार → मुक्ति। शिवत्वयोजनार्थ १३ पदार्थों का ज्ञान भी आवश्यक है। दीक्षा → पाशक्षपण, शिवत्वा-भिव्यक्ति।

दीक्षा के दो पक्ष हैं— पाशक्षपण एवं शिवत्वयोजन।

पाशक्षपण के साधन ६ संस्कार हैं— अधिकार, भोग, लय, निष्कृति, विश्लेष तथा बैन्दव देह की प्राप्ति।

शिवत्वयोजन के १३ अंग हैं— ४ प्रमाण, प्राणसञ्चार, ६ अध्वाविभाग, हंसोच्चार, वर्णोच्चार, वर्णों द्वारा कारणों का त्याग, शून्य, सामरस्य, त्याग-संयोग-उद्भव, पदार्थभेदन, आत्मव्याप्ति, विद्याव्याप्ति एवं शिवव्याप्ति।

क्रियादीक्षा : शिवत्वयोजन— पाशशुद्धि के अनन्तर अभेद-सम्पादक योजनक्रिया आवश्यक है। चिदात्मा के निष्कल स्वरूप को आच्छादित करके सकल भाव को स्फुरित करने में संलग्न परमात्मा की अन्तरङ्ग शक्ति— 'मन्त्र' भेदज्ञान उत्पन्न करते हैं; अत: मन्त्र से भी निवेदन करना पड़ता है कि आप पशु को सकल भाव में परिणत न करें। योजन-व्यापार से ही जीवात्मा-परमात्मा में एकता स्थापित होती है और जीव परम शिवावस्था प्राप्त करने के योग्य हो पाता है। ज्ञान + योग का अभ्यासाभाव → योजन-व्यापार असम्भव।

सर्वप्रथम पुर्यष्टक के अहम्भाव का प्रशमन करना पड़ता है; अन्यथा परमात्मा के साथ योग असम्भव है। पुर्यष्टक स्वप्नावस्था में 'प्राण' तथा सुषुप्ति में 'शून्य' में स्थित होता है। कारणदेवताओं में पुर्यष्टक के अवयवों का अर्पण किये जा चुकने पर वृत्तियों का निरोध ही हो पाता है, भूमिशुद्धि नहीं हो पाती। भूमिशुद्धि के विना योजन की अङ्ग-भूत व्याप्तियाँ सम्भव नहीं हो पातीं।

प्राण एवं शून्य के प्रशमन के उपाय हैं— ज्ञान + योगादिक अन्त:क्रियायें। श्वासों का देशगत + कालगत परिणाम जानकर प्राण की आरोहण + अवरोहण क्रियाओं का तत्त्व जानना भी आवश्यक है। पूर्णत्वाधिगम के मार्ग के अध्वाओं के अतिक्रमण का भी ज्ञान आवश्यक है। अध्वातिक्रमण का साधन है— ऊर्ध्वनाद (हंसोच्चार)। हंसोच्चार का व्यापार दो प्रकार का होता है— स्वाभाविक एवं प्रयत्नज।

प्रयत्नज हंसोच्चार → उच्चार के प्रभाव से निष्कल मन्त्र के अङ्ग अ + उ + म आदि वर्ण ब्रह्मादिक कारणों तथा काल त्यागने में समर्थ हो जाते हैं। इन क्रियाओं से 'प्राण की शान्ति' हो जाती है।

शून्य प्रशमन की साधना— विषुवत् ज्ञान द्वारा मन्त्र + आत्मा + नाड़ी आदि में सामरस्य जानना आवश्यक है।

मन्त्रोच्चार के अङ्गभूत ('अ' से उन्मना तक के १२ प्रमेयों) अंगों का त्याग एवं संयोग सभी का जानना आवश्यक है।

विशुद्ध ज्ञान (मन्त्राभ्यासजन्य ज्ञान) + मुद्रा + भावयुक्त मन्त्र से ग्रन्थियों का भेदन भी आवश्यक है; क्योंकि अन्यथा पूर्वोक्त दशा का त्याग एवं उद्भव दोनों असम्भव हैं। पूर्वोक्त ज्ञान एवं योग का मूल है— भावप्राप्ति (सुदृढ़ धारणा + शब्दादि अनुभव) → विशुद्ध ज्ञान एवं योग की प्राप्ति। परिणाम → शून्योपशम।

इस दीर्घसाधना का फल → आत्मतत्त्व में अपनी विशुद्धावस्था का अनुभवरूप 'आत्मव्याप्ति', फिर विद्यातत्त्व के उन्मना में विश्रान्त होने पर 'विद्याव्याप्ति' तथा अन्त में शिवतत्त्व का परमशिव में समावेशस्वरूप 'शिवव्याप्ति' और इन तीनों द्वारा परतत्त्व-योजन का व्यापार निष्पादित होता है।

प्राण के दो भेद हैं— स्थूल एवं सूक्ष्म। स्थूल प्राण ३६ अंगुल परिमाण वाला है। सूक्ष्म प्राण में गति नहीं है। अध्वाओं की गति सूक्ष्म प्राण में है। प्राण में 'तत्त्वाध्वा' 'वर्णाध्वा' स्थित हैं। शब्द ध्वन्यात्मक प्राण ही तो है। मन्त्र भी प्राणों में ही प्रतिष्ठित हैं।

आचार्य अभिनवगुप्त की दृष्टि— आचार्य अभिनवगुप्त 'दीक्षा'तत्त्व में निहित दो शक्तियों या व्यापारों को प्रधान मानते हैं, जो 'ज्ञानसद्भाव का दान' एवं 'पशुवासना का क्षपण' है। कहा भी है—

दीयते ज्ञानसद्भावः क्षीयन्ते पशुवासनाः।
दानक्षपणसंयुक्ता दीक्षा तेनेह कीर्तिता।।(तन्त्रालोक-अ०-१)

मल, कर्म एवं माया नामक पाशों से बद्ध 'पशु' केवल पशुपति (शिव) या शक्ति के अनुग्रह से ही मुक्त हो जाता है। परा सत्ता का यह अनुग्रह ही 'दीक्षा' है। पशुपति पशुओं को पाशमुक्त करके स्वस्वरूप बना लेते हैं। यह स्वस्वरूपापत्ति ही परमेश्वर का अनुग्रह है। शिवसाधर्म्य की प्राप्ति ही जीवों की मुक्ति है। आत्मचैतन्य के प्रतिबन्धक अनादि मल की अपसारणा (निवारण) से ही परमेश्वरानुग्रह की पात्रता प्राप्त होती है; अन्यथा नहीं। 'दीक्षा' शक्तिपातजन्य होती है। 'दीक्षा' परमेश्वर की आराधना करने की पात्रता प्रदान करने की एक पद्धति है।

दीक्षा के प्रकार— दीक्षा के तो अनेक प्रकार हैं; यथा— 'स्पार्शी दीक्षा, हौत्री दीक्षा, कलावती दीक्षा, दृग्दीक्षा, वैधी दीक्षा' आदि; किन्तु यहाँ निम्न दीक्षात्रय पर ही प्रकाश डाला जा रहा है; जो निम्नांकित हैं—

१. समय दीक्षा २. विशेष दीक्षा ३. निर्वाण दीक्षा

समय दीक्षा— जब शुभ वासनाओं, सुकृतों एवं सुकृत-फलों के परिणामस्वरूप जीवात्मा की आत्मा के चैतन्य के प्रतिबन्धक एवं आत्मज्ञान के आवरक मल का थोड़ा-बहुत परिपाक होता है, तब मलपाक के कारण उसे मन्द शक्तिपात प्राप्त होता है। 'शक्ति-पात' ईश्वरानुग्रह का ही अभिधानान्तर है। इसकी मात्रा के तारतम्य में ही जीव की परमेश्वर के प्रति श्रद्धा, विश्वास, निष्ठा, भक्ति आदि का उदय होता है। इसी काल में प्राथमिक दीक्षा का अवसर आता है और उसे 'समय दीक्षा' या 'शिवहस्तार्पण' कहते हैं। इस दीक्षा के परिणामस्वरूप ही दीक्षित शिष्य में गुरु एवं देवों के प्रति भक्ति एवं पूजाभाव का उदय होता है।

यामल की दृष्टि— यामल में कहा गया है कि हजारों उपचारों से भी भक्ति-संवलित पूजा क्यों न की जाय; किन्तु परमात्मा अदीक्षित व्यक्ति का अर्चन स्वीकार ही नहीं करते—

उपचारसहस्रैस्तु अर्चितां भक्तिसंयुताम्।
अदीक्षितार्चनं देवा न गृह्णन्ति कदाचन।।(शा० त०-२.१६)

दीक्षा के दो पक्ष हैं— दान एवं क्षपण। 'दान' अर्थात् ज्ञानसद्भाव का दान और 'क्षपण' अर्थात् अखिल मलों का नाश। कहा भी है—

ददाति ज्ञानसद्भावं क्षपयत्यखिलं मलम्।
दानक्षपणधर्मत्वाद्दीक्षेति हि प्रकीर्तिता।।

विशेष दीक्षा— 'समय दीक्षा' के अनन्तर परमात्मा या गुरु दीक्षित शिष्य पर पूर्व की तुलना में अधिक शक्तिपात करते हैं। यही प्रवर्द्धित शक्तिपात की मात्रा 'विशेष दीक्षा' नाम से पुकारी जाती है। यह दीक्षा भक्ति के उच्च विचारों, प्रगाढ़ भावनाओं एवं विशेष भावों के उद्रेक में सहायक होती है। विशेष दीक्षा अर्थात् मन्त्रग्रहण, शिवलिङ्गार्चन अदि की पात्रता या अधिकार का उन्मेष। इसी दीक्षा-संस्कार से शिष्य वागीश्वरी के गर्भ से उत्पन्न होकर द्वितीय जन्म ग्रहण करता है। इस दीक्षा के द्वारा साधक के वागीश्वरी-पुत्र होने का सौभाग्य पाने के कारण साधक को 'पुत्रक' कहा जाता है।

'वागीश्वरी' कौन है? पृथ्वीतत्त्व से कलातत्त्वपर्यन्त प्रसृत 'मायाराज्य' (दृश्यमान जगत्) को अतिक्रान्त करके शुद्ध विद्याराज्य स्थित है। वही 'शुद्ध विद्या' ही वागीश्वरी है। इसी वागीश्वरी के गर्भ से जन्म ग्रहण करने से ही साधक शुद्ध धाम में अवस्थित होता है। यह अप्राकृत जन्म है। यह साधक का द्वितीय जन्म है। इसके जन्मदाता हैं— गुरु या आचार्य। 'स्वच्छन्दतन्त्र' के अनुसार यही द्वितीय जन्म 'बैन्दव देह' या 'मल देह' के नाम से प्रसिद्ध है।

भगवती ही यथार्थ 'दीक्षा' हैं। 'सकलजननीस्तव' में कहा गया है—

शिवस्त्वं शक्तिस्त्वं त्वमसि समया त्वं समयिनी।
त्वमात्मा त्वं दीक्षा त्वमयमणिमादिर्गुणगणः।।

परात्रिंशिका में दीक्षा की दृष्टि— परात्रिंशिका में कहा गया है कि तिल, घृत आहुति आदि बाह्योपकरणों से विवर्जित उस निर्वाणगामिनी तत्त्वज्ञानानुभूति को 'दीक्षा' कहते हैं, जिसका स्वरूप इस प्रकार है—

यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।।

एवं यो वेत्ति तत्त्वेन तस्य निर्वाणगामिनी।
दीक्षा भवत्यसन्दिग्धा तिलाज्याहुतिवर्जिता।।
(परात्रिंशिका, २४-२५)

अभिनवगुप्त (परात्रिंशिकाविवृत्ति) में कहते हैं कि 'ज्ञानदान' एवं 'मायाक्षपण'— ये दो तत्त्व दीक्षा के दो पक्ष हैं— 'ज्ञानदानमायाक्षपणलक्षणा चं तस्यैव दीक्षा'।

निर्वाणदीक्षा— उपर्युक्त दीक्षा के अनन्तर मल का परिपाक और अधिक हो जाने

के परिणामस्वरूप साधक को और अधिक शक्तिपात (अतितीव्र शक्तिपात) प्राप्त होता है, भागवत शक्ति का और अधिक सञ्चार होता है। तदनन्तर निर्वाणदीक्षा प्राप्त होती है। निर्वाणदीक्षा षाड्गुण्य का उन्मेष कराता है। इसके द्वारा साधक ईश्वर के छः गुणों को प्राप्त कर लेता है।

'कला' आदि षडध्वों की विशुद्धि से सभी पाशों का समूल उन्मूलन हो जाता है। इस प्रकार से दीक्षित जीव के पशुत्व की पूर्ण निवृत्ति के साथ साधक में शिवत्व की अभिव्यक्ति होती है। प्रथम एवं द्वितीय दीक्षा में जो पशुत्व दूर नहीं हो जाता, वह 'निर्वाण-दीक्षा' के द्वारा दूर हो जाता है।

विना दीक्षा के मुक्ति प्राप्त होना सम्भव नहीं है—

विना दीक्षां न मोक्षः स्यात्प्राणिनां शिवशासने।।

(शा० त०-२.१)

दीक्षाप्राप्त प्राणी शिवत्व प्राप्त कर लेता है—

दीक्षाविद्धस्तथा ह्यात्मा शिवत्वं लभते ध्रुवम्। (शा० त०-२.५)

'वीरतन्त्र' में कहा गया है कि न्यास, ध्यान, पूजन आदि नियम नारी के लिये नहीं; बल्कि केवल पुरुषों के लिये बनाये गये हैं।

पारमार्थिकी दीक्षा का स्वरूप इस प्रकार है— इसमें प्रथमतः ३६ तत्त्वों का शोधन करना चाहिये। यहाँ शोधक स्वयं परभैरव होते हैं और त्रिक ही करण होता है—

षट्त्रिंशच्छोधनीयानि शोधको भैरवः परः।
परं त्रिकं तु करणं दीक्षेयं पारमार्थिकी।।

निर्वाणदीक्षा का स्वरूप इस प्रकार है—

इयमेवामृतप्राप्तिरयमेवात्मनो ग्रहः।
इयं निर्वाणदीक्षा च शिवसद्भावदायिनी।।

निर्वाण दीक्षा = अमृत-प्राप्ति, आत्मग्रहण एवं शिवसद्भावप्रदायिनी अवस्था।

भौतिक दीक्षा एवं नैष्ठिक दीक्षा— साधक बुभुक्षु एवं मुमुक्षु के भेद से भी वर्गीकृत हैं। बुभुक्षओं की दीक्षा का नाम है— 'भौतिक दीक्षा'। भौतिक दीक्षा के प्रभाव-वश बुभुक्षु साधक शुद्ध विद्या के जगत् में विचित्र प्रकार के भुवनों एवं भोग्य पदार्थों को प्राप्त करते हैं।

'नैष्ठिक दीक्षा' ग्रहण करने वाले साधक तो विगतस्पृह होते हैं। उन्हें तो शिव-शक्तिमय परमेश्वर की साक्षात् प्राप्ति होती है। यह ईश्वर-प्राप्ति नैष्ठिक दीक्षा के कारण ही सम्भव हो पाती है। इन दीक्षाओं के अन्य भेद भी होते हैं; जैसे कि समय दीक्षा, विशेष दीक्षा, निर्वाण दीक्षा, भौतिक दीक्षा (बुभुक्षु), नैष्ठिक दीक्षा (मुमुक्षु)। पुनः भौतिक एवं नैष्ठिक दीक्षा भी शिवधर्मिणी एवं लोकधर्मणी के भेद से दो-दो प्रकार की होती है।

'शिवधर्मी साधक' इस दीक्षा के प्रभाव से मन्त्र-तन्त्रों का रहस्यवेत्ता हो जाता

है। यहाँ तक कि कतिपय साधक इस दीक्षा के प्रभाव से 'मन्त्र' एवं 'मन्त्रेश्वर' पद तक पहुँच जाते हैं।

'लोकधर्मिणी दीक्षा' में मन्त्राराधना की अनिवार्यता नहीं है। इसमें मन्त्रोपासना नहीं है। लोकधर्मी साधक फलाकांक्षासहित संसार में रहकर श्रुति-स्मृत्योपदिष्ट लोकोपयोगी इष्टापूर्त आदि शुभ कर्मों का सम्पादन करते हैं।

नैष्ठिक दीक्षा के तीन भेद होते हैं— सबीज दीक्षा, निर्बीज दीक्षा एवं सद्यःनिर्वाणक दीक्षा।

'निर्बीज दीक्षा' बालक, मूर्ख, स्त्री एवं व्याधिग्रस्त व्यक्तियों के उद्देश्य से है। यह उन व्यक्तियों के लिये है, जिनमें शास्त्रविचार एवं ब्रह्मचर्य-पालन की क्षमता नहीं होती। इनको समयाचारानुपालन की भी आवश्यकता नहीं होती। इस दीक्षा से वे गुरु की सेवा से भी अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेते हैं।

'सद्योनिर्वाण दीक्षा' मुमुक्षु साधकों के लिये होती है। यह दीक्षा अत्यन्त दीप्त मन्त्रों के द्वारा अनुष्ठित होती है। अतः अतीत, अनागत एवं प्रारब्ध— इन दोनों प्रकार के पाशों का मूलोच्छेदन करने में सक्षम होती है। साधक दीक्षोपरान्त शुद्ध हो जाता है और देहावसानोपरान्त परमपद प्राप्त कर लेता है।

'सबीज दीक्षा' कष्टसहिष्णु एवं विद्वानों के लिये होती है। ऐसे साधकों को विधिपूर्वक आचारों के पालन की अनिवार्यता होती है। नियमातिक्रम साधक को भ्रष्ट कर देता है।

तन्त्रसमाम्नाय में मुक्ति के भेद— मुक्ति के दो भेद हैं—अपरा एवं परा मुक्ति। पुनः अपरा मुक्ति सार्ष्टि, सालोक्य, सामीप्य एवं सारूप्य के भेद से चार प्रकार की होती है। परा (यथार्थ) मुक्ति को ही सायुज्य मुक्ति कहा जाता है।

सार्ष्टि मुक्ति = जगदम्बा के धाम के समीप कुटी बनाकर उनकी सतत् सेवा करना। यह मुक्ति मणिपूर चक्र के उपासकों को प्राप्त होती है।

सालोक्य मुक्ति = भगवती के मणिद्वीप आदि दिव्य लोकों में सतत् निवास करना। संवित् कमल के पूजकों को यही मुक्ति मिलती है।

सामीप्य मुक्ति = भगवती के समीप रहकर उनकी सेवा करना। विशुद्धि चक्र के उपासकों को यही मुक्ति प्राप्त होती है।

सारूप्य मुक्ति = भगवती के स्वस्वरूप की प्राप्ति।

सायुज्य मुक्ति = भगवती के साथ तादात्म्य प्राप्त करना। सहस्रदल पद्म में स्थित शिव एवं शक्ति की उपासना करने वालों को यही मुक्ति प्राप्त होती है। यह नैयायिकों के दुःखात्यन्ताभावरूप मुक्ति नहीं; प्रत्युत महासुखरूप विध्यात्मक मुक्ति है। शिव-शक्ति के साथ सामरस्य ही इसका पूजा-विधान है। तादात्म्यापत्ति ही इसका स्वस्वरूप है।

द्वापञ्चाशत् अध्याय

प्राणतत्त्व, प्राण-साधना एवं त्रिपुरोपासना

'कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद्' में कहा गया है कि यह प्राण ही ब्रह्म है। यह सम्राट् है। वाणी उसकी रानी है। कान उसके द्वारपाल हैं। नेत्र उसके अंगरक्षक हैं। मन उसका दूत है। इन्द्रियाँ उसकी दासियाँ हैं। देवों के द्वारा यह उपहार उस 'प्राणब्रह्म' को भेंट किये गये हैं—

'प्राणो ब्रह्मेति ह स्माह कोषीतकिस्तस्य ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो मनोदूतं वाक्परिवेष्ट्री चक्षुर्गात्रं श्रोत्रं संश्रावयितृ यो ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो मनोदूतं वेद दतवान्भवति यश्चक्षुगोप्तृमान्भवति यः श्रोतं संश्रावयितृ संश्रावयितृमान्भवति यो वाचं परिवेष्ट्री परिवेष्ट्रीमान्भवति।'

मैं ही प्राणरूप प्रज्ञा हूँ। मुझे ही आयु एवं अमृत जानकर उपासना करो। जब तक प्राण है तभी तक जीवन है। इस लोक में अमृत तत्त्व-प्राप्ति का आधार प्राण ही है—

'प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा। तं मायायुरमृतमित्युपास्स्वाऽयुः प्राणः प्राणो वा आयुः यावदस्मिञ्छरीरे प्राणो वसति तावदायुः प्राणेन हि एवमस्मिन् लोकेऽमृतत्वमाप्नोति।'

(शाखायन)

प्राण और मन का सम्बन्ध— जिस साधन के द्वारा प्राण बन्धनग्रस्त होता है, उसी से मन भी बन्धनग्रस्त होता है। जिस साधन से मन बद्ध होता है, उसी से मन भी बन्धनग्रस्त होता है। जिस साधन से मन बद्ध होता है, उसी से पवन भी परिबद्ध हो जाता है—

पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते।
मनश्च बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते।।

(प्राण-नियन्त्रण → मनोनिग्रह (मन पर नियन्त्रण), मन पर नियन्त्रण → प्राण पर नियन्त्रण) 'प्राण' मनोनिग्रह का एक साधन है। भगवती स्वयं प्राणस्वरूप हैं—

मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि। (सौन्दर्यलहरी)

योगवाशिष्ठ एवं हठयोगप्रदीपिका में कहा गया है कि चित्त का कारण प्राण है। चित्त के आधारस्तम्भ हैं— वासना एवं वायु (प्राणतत्त्व)।

हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः।
तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्तौ द्वावपि विनश्यतः।।

वासना का नाश → वायु का नाश, वायु का नाश → मन का नाश। मनोनिग्रह का अन्यतम साधन प्राण है—

नानाविधैर्विचारैस्तु न साध्यं जायते मनः।
तस्मात्तस्य जयः प्राणः प्राणस्य जय एव हि।। (योगबीज)

'मन' की डोरी 'प्राण' के हाथों में है— 'सोभ्यैतन्मनो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्रायनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते, प्राणबन्धनं हि सौम्य मन इति।' (मन कहीं भी जाय; किन्तु अन्यत्र आश्रय न पाने पर घूम-घाम कर प्राण का ही आश्रय ग्रहण करता है; क्योंकि मन प्राण से बँधा हुआ है)।

योगरहस्य में कहा गया है कि विचार एवं चिन्तन से मन साध्य नहीं है। प्राणजय से मन भी विजित हो जाता है—

चित्तं न साध्यं विविधैर्विचारैर्वितर्कवादैरपि वेदवादिभिः।
तस्मात्तु तस्यैव हि केवलं जयःप्राणो हि विद्येत न कश्चिदन्यः।।

हठयोग का मुख्य साधन प्राण ही है।

प्राण-साधना के परिणाम—

१. पापाग्नि को भस्मसात् करना (योगचूड़ामणि)।
२. संसारसागर से उद्धार (योगचूड़ामणि)।
३. धातु-मलों के नाश के समान इन्द्रियदोषों का नाश (मनु)।
४. इन्द्रियमलों का नाश (अमृतनादोपनिषद्)।
५. सर्व पापों से मुक्ति → ब्रह्मत्व की प्राप्ति (वायुपुराण)।

प्राणायाम की आवश्यकता क्या है? मलाकुल नाड़ियों में प्राण-प्रवाह (विना प्राणायाम के) हो ही नहीं पाता; अतः उन्मनीभाव या मन का विच्छेद कैसे सम्भव है?

मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव मध्यगः।
कथं स्यादुन्मनीभावः कार्यसिद्धिं कथं भवेत्?

इसीलिये सर्वप्रथम नाडीशोधन अपेक्षित है। एतदर्थ प्राणायाम करना अनिवार्य है—

तस्मादादौ नाड़ीशुद्धिः प्राणायामं ततोऽभ्यसेत्।

गोरक्षनाथ कहते हैं कि नाड़ी-शुद्धि के बाद ही योगी प्राण-संग्रहण में सक्षम हो पाता है—

शुद्धिमेति यदा सर्वं नाड़ीचक्रमलाकुलम्।
तदैव जायते योगी प्राण-संग्रहणे क्षमः।। (गोरक्षपद्धति)

हठयोगप्रदीपिका में स्वात्माराम मुनीन्द्र इसीलिये कहते हैं—

प्राणयामं ततः कुर्यान्नित्यं सात्त्विकया धिया।
यथा सुषुम्नानाड़ीस्था मलाः शुद्धिं प्रयान्ति च।।

(प्राणायाम → सुषुम्ना नाड़ी के मलों की शुद्धि।)

(नाड़ी शुद्ध हो जाने पर— शारीरिक कृशता एवं कान्तिवर्धन।)

प्राण के भेद— प्राण के दो भेद हैं— स्थूल प्राण एवं सूक्ष्म वर्धन। स्थूल प्राण → उच्चार-व्यापार। सूक्ष्म प्राण → वर्ण।

'आणवोपाय' में प्राणोच्चार भी एक उपाय माना गया है। प्राण, अपान आदि वायु का श्वास-प्रश्वास, छींक आदि वृत्तियाँ 'उच्चार' कहलाती हैं। प्राण के उच्चार के साथ उच्चारित वर्ण सकार-हकार हैं, जो कि वर्ण हैं। ये वर्णों एवं मन्त्रों का बोध कराते हैं।

'हं सः' मन्त्र श्वासोच्छ्वास के द्वारा (उन्हीं के रूप में) आविर्भूत होते हैं।

'प्राक् संवित्प्राणे परिणता' (कल्लट) के अनुसार संवित्तत्व सर्वप्रथम 'प्राण' के रूप में परिणत होता है (संवित् → प्राण)।

आगम कहता है कि संवित्स्वरूपा 'काली शक्ति' अपनी इच्छा से नाना रूपों में जब व्यक्त होने हेतु क्रियाशक्ति का रूप धारण करती है, तब क्रियाशक्ति का प्रथमोन्मेष 'प्राण-व्यापार' के रूप में ही होता है। यह प्राणशक्ति अपने पाँच रूपों (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान) में जीवों में व्याप्त है। इस क्रियाशक्ति के पूर्व भाग में 'कालाध्वा' एवं उत्तर भाग में 'देशाध्वा' स्थित है। कालाध्वा में पर, सूक्ष्म एवं स्थूलस्वरूप वर्ण, मन्त्र एवं पद की स्थिति है और देशाध्वा में कला, तत्त्व एवं भुवन स्थित है। समस्त षडध्वात्मक जगत् इस क्रियाशक्ति की अभिव्यक्ति है और इसमें सर्वत्र प्राणशक्ति का स्पन्दन गतिमान है। हृदय आदि स्थानों में स्पन्दमान प्राणशक्ति में चित्त को लय कर देना ही 'स्थानकल्पना' नामक आणवोपाय है।

प्राणशक्ति एवं प्राणकुण्डलिनी— प्राणशक्ति की भी आकृति कुण्डलिनी की भाँति कुटिल है; अतः इसे 'प्राणकुण्डलिनी' कहते हैं। जिस प्राणवायु का अपानवायु अनुगमन करती है, उसकी गति टेढ़ी-मेढ़ी है। प्राणशक्ति प्राण के अनुकूल घुमावदार (कुटिल) आकार धारण कर लेती है। प्राणशक्ति का एक घुमावदार आकार वाम नाड़ी इड़ा में एवं दूसरा पिङ्गला के नाम से दक्षिण नाड़ी में प्रवाहित होता है। इस तरह प्राण-शक्ति के दो वलय हुये। सुषुम्ना नाडी 'सार्ध' कहलाती है; अतः प्राणशक्ति भी सार्ध-वलया है। कुण्डलिनी में भी प्राणशक्ति है। हंस गायत्री (अजपा) का आधार भी यही प्राण-व्यापार है। प्राणशक्ति स्थूल एवं सूक्ष्मभेद से दो प्रकार की है। मूलाधार या हृदय में स्थित प्राणशक्ति यौगिक साधना द्वारा सुषुम्णापथ से द्वादशान्त तक जाते-जाते अत्यन्त सूक्ष्म होकर अन्त में 'प्रकाश' में विलीन हो जाती है। इसे ही 'पिपीलस्पर्श वेला' कहते हैं, जिसमें कि प्राण के ऊर्ध्वोत्थान के समय मूल कन्द आदि में चींटी चलने-जैसे संवेदना होती है। चिदाकाश में (साधक के) प्रवेश के समय प्राण एवं अपान सुषुम्णा में विलीन हो जाते हैं। इसका अनुभव आनन्दमय होता है।

प्राणस्पन्द का कारण— अभिनवगुप्त तन्त्रालोक (षष्ठाह्निक) में वामा, ज्येष्ठ

एवं रौद्री नामक शिव की शक्तियों में से एक आत्मा एवं प्राण की सम्मिलित शक्ति को प्राणस्पन्द का कारण मानते हैं—

प्रभुशक्तिरात्मा प्राणश्चेति त्रयः सम्मिलिताः प्राणस्पन्दं विदधीत्यर्थः।[१]

प्रभोः शिवस्य या शक्तिर्वामा ज्येष्ठा च रौद्रिका।
स तदन्यतमावात्मप्राणौ यत्नविधायिनौ।।[२]

प्राणसञ्चार का स्थान— प्राणसञ्चार कन्द से होता है या हृदय से? इस विषय में स्वच्छन्दतन्त्र कहता है कि प्राणसञ्चार कन्द से होता है; किन्तु उसकी संवेदना उस स्थान से नहीं होती—

नाभ्यधोमेढ्रकन्दे स्थिता वै नाभिमध्यतः।
तस्माद्विनिर्गता नाड्यस्तिर्यगूर्ध्वमधः प्रिये।।[३]

किन्तु स्वच्छन्दतन्त्र (७.२१) में ही इसे हृदय से भी माना गया है—

हृच्चक्रे तु समाख्याताः साधकानां हितावहाः।
प्राणो वै चरते तासु अहोरात्रविभागतः।।

निष्कर्ष— वस्तुतः कन्द से प्राण-व्यापार होता है। प्राणसञ्चार का मूल केन्द्र हृदय माना गया है; क्योंकि स्वेच्छाकृत प्रयत्न से इसकी संवेदना कन्द से नहीं; बल्कि हृदय से प्रतीत होती है—

वेद्ययत्नात्तु हृदयात्प्राणाचारो विभज्यते।।[४]

प्राणस्पन्द की उत्पत्ति

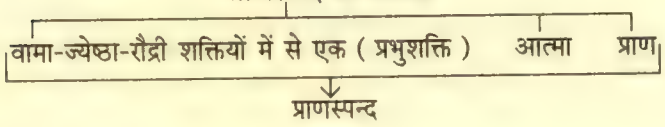

प्राण का महत्त्व—

- प्राणनावृत्ति का तादात्म्य संवित् तत्त्व से है। अभिनवगुप्तपाद तन्त्रालोक (६.१५) में कहते हैं—

प्राणनावृत्तितादात्म्यसंवित्खचितदेहजाम्।

- समस्त अध्वमण्डल प्राण में ही प्रतिष्ठित है—

यावान्समस्त एवायमध्वा प्राणे प्रतिष्ठितः।।[५]

- प्राण को 'परमेश्वरी' भी कहा गया है—

प्राणरूपायाः पारमेश्वर्याः क्रियाशक्तेः। (जयरथ)[६]

तन्त्रसार के अनुसार 'नाद नाड़ी' (क्रियाशक्तिप्रधान इडा नाड़ी), 'बिन्दु नाड़ी'

---

१. जयरथ : विवेक
२. तन्त्रालोक-६.५२
३. स्वच्छन्दतन्त्र-७.८
४. तन्त्रालोक-६.५१
५. तन्त्रालोक-६.२१
६. विवेक-६.२३

(ज्ञानप्रधान पिङ्गला नाड़ी) एवं 'उत्तम नाड़ी' (इच्छाशक्तिप्रधान सुषुम्णा नाड़ी) द्वारा प्राणाचार होता है।

● प्राण ही ब्रह्म है और इन्द्रियाँ उसकी दासी हैं। कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् में कहा गया है कि—

१. प्राण ब्रह्म है
२. मन उसका दूत है
३. नेत्र उसके अंगरक्षक हैं
४. कान उसके द्वारपाल हैं
५. इन्द्रियाँ उसकी दासी हैं
६. वाणी उसकी राजमहिषी है आदि-आदि।

'प्राणो ब्रह्मेति ह स्माह कोषीतकिस्तस्य ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो मनो दूतं वाक्परिवेष्ट्री चक्षुर्गात्रं श्रोत्रं संश्रावयितृ यो ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो मनो दूतं वेद दत्तवान् भवति यश्चक्षुः गोप्तृमान् भवति यः श्रोत्रं संश्रावयितृ संश्रावयितृमान् भवति यो वाचं परिवेष्ट्री परिवेष्ट्रीमाभवति।'

● प्राण 'मृत्युञ्जय' है। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि प्राण मृत्युञ्जय है और उसका उपासक भी मृत्युञ्जयी हो जाता है—

'सा वा एषा देवता दूर्नाम दूरं ह्यस्या मृत्युर्दूर ह वा अस्मान्मृत्युर्भवति य एवं वेद।'
(ब्रा०-३.९)

प्राण ने देवताओं के पापरूपी मृत्यु को हटाया। (३.१०)

'सा वा एषा दैवतैतासां देवतानां पाप्मानं मृत्युमपहत्याथैना मृत्युमत्यवहत्।'
(३.११)

प्राण ने देवताओं के अतिरिक्त वाणी को भी मृत्यु से मुक्त किया और यह वाग्देवता मृत्यु से मुक्त होकर अग्नि बन गया—

सोऽग्निरभवत्सोऽयमग्निः परेण मृत्युमतिक्रान्तो भवति।

प्राण ने प्राण का अतिवहन किया और जब उसे मृत्यु से मुक्त किया तो वह वायु बन गया।

प्राण ने चक्षु का अतिवहन किया और जब उसे मृत्यु से मुक्त किया तो वह आदित्य बन गया।

प्राण ने श्रोत्र का अतिवहन किया और मृत्यु से मुक्त होकर वह दिशा बन गया।

प्राण ने मन का अतिवहन किया और मृत्यु से मुक्त होकर वह चन्द्रमा बन गया।

● प्राण सभी इन्द्रियों की आत्मा या जीवन है। जो कुछ भी खाया जाता है, वह मात्र 'प्राण' से खाया जाता है—

'किञ्चान्नमद्यतेऽनेनैव।' (३.१७)

प्राण सर्वपोषक है। यहाँ तक कि देवताओं का भी पोषक है। (३.१२)

प्राण अङ्गों का रस है— 'प्राणो वा अङ्गानां रसः।' (३.१९)

प्राण ही बृहस्पति है। वाक् का पति होने से यह बृहस्पति है।
प्राण ब्रह्मणस्पति है; क्योंकि वह वाक् रूप ब्रह्म का पति है।
प्राण ही साम है; क्योंकि वाक् 'सा' है और प्राण 'अम्' है।
प्राण ही उद्गीथ है— 'एष उवा उद्गीथ प्राणो।' (३.२३)

बृहदारण्यकोपनिषद् के पाँचवें अध्याय के प्रथम ब्राह्मण में कहा गया है कि 'प्राण ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है।' जो इस प्रकार उपासना करता है, वह अपने ज्ञातिजनों से एवं अभीष्ट जनों में ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ हो जाता है— 'ॐ यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च स्वानां भवति प्राणो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च स्वानां भवति।'

बृहदारण्यकोपनिषद् के छठे अध्याय के प्रथम ब्राह्मण में कथा आती है कि समस्त देवों में अपनी श्रेष्ठता को लेकर विवाद छिड़ा। विवाद के समाधानार्थ ब्रह्मा जी ने कहा कि तुम देवों में से जिस देव द्वारा किसी का शरीर छोड़कर चले जाने पर वह शरीरी व्यक्ति अपने को अधिक पापी समझे, वही श्रेष्ठतम है।

बारी-बारी से वाणी, चक्षु, श्रोत्र, मन एवं रेतस् ने शरीर से उत्क्रमण किया, किन्तु शरीर जीवित रहा; लेकिन जैसे ही अन्त में प्राण ने उत्क्रमण करना चाहा तो सारी इन्द्रियाँ क्षुब्ध होकर निवेदन करने लगीं कि आप उत्क्रमण न करें; क्योंकि आपके विना हमलोग जीवित नहीं रह सकते।

● प्राण समस्त ज्ञानों की प्रतिष्ठा है। वेदों में एक उपाख्यान आता है, जिसमें ऋषि से प्रश्न किया जाता है कि किस एक के जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है— 'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातो भवति।' उसके उत्तर में ऋषि 'प्राण' का नामोल्लेख करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने इसे 'साइकिक कोर्स' कहा है, जो कि समष्टि प्राण है। 'प्राणमय कोश' का आधार यही प्राण है।

● प्राण प्रज्ञारूप है, आयु है, अमृत है, जीवन है और अमृतत्व का साधन है।

'शाङ्खायन' में इसी तथ्य की पुष्टि इन शब्दों द्वारा की गई है—
'प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा। तं मामायुरमृतमित्युपास्स्वाऽऽयुः प्राणः प्राणो वा आयुः यावदस्मिञ्छरीरे प्राणो वसति तावदायुः प्राणेन हि एवमस्मिन् लोकेऽमृतत्वमाप्नोति।'

● प्राण मनोनिग्रह का साधन है—

पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते।
मनसश्च बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते।।

चित्त के जन्म के दो ही कारण हैं— वासना और प्राण। इनमें से एक के नष्ट होते ही दूसरा स्वयमेव नष्ट हो जाता है—

हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः।
तयोर्विनष्टमेकस्मिंस्तौ द्वावपि विनश्यतः।। (हठयोगप्रदीपिका)

● प्राण बिन्दु-साधना या बिन्दु-रक्षा का भी अप्रतिम साधन है।

चले वाते चले बिन्दु बिन्दु र्निश्चते निश्चलो भवेत।
योगी स्याणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोध्येत।।

● प्राण मन का स्वामी है। जिस प्रकार सूत्रबद्ध पक्षी घूम-घाम कर अपने मूलाश्रय पर ही आ जाता है, उसी प्रकार मन कहीं भी जाय, आश्रय न पाने पर अन्ततः प्राण का ही आश्रय ग्रहण करता है—

'सौम्यैतन्मनो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते प्राणबन्धन हि सौम्य मन इति।' (छान्दोग्योपनिषद्-६.८.२)

● प्राण ही मन पर विजय पाने का अस्त्र है—

नानाविधैर्विचारैस्तु न साध्यं जायते मनः।
तस्मात्तस्य जयः प्राणः प्राणस्य जय एव हि।। (योगबीज)

चित्तं न साध्यं विविधैर्विचारैर्वितर्कवादैरपि वेदवादिभिः।
तस्मात्तु तस्यैव हि केवलं जयः प्राणो हि विद्येत न कश्चिदन्यः।।
(योगरहस्य)

● मनःस्थैर्य का भी एक ही साधन है और वह है प्राण-साधना—

हठिनामधिकस्त्वेकः प्राणायामपरिश्रमः।
प्राणायामे मनःस्थैर्यं स तु कस्य न सम्मतः।। (बोधसार)

● प्राणायाम पापों को भस्म कर देता है—

प्राणायामो भवेदेवं पातकेन्धनपावकः।
भवोदधिमहासेतुः प्रोच्यते योगिभिः सदा।। (योगचूड़ामणि)

तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायामपरो भवेत्।
सर्वपापविशुद्धात्मा परंब्रह्माधिगच्छति।। (वायुपुराण)

● प्राणायाम इन्द्रियों के समस्त दोषों को नष्ट कर देता है—

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषः प्राणस्य निग्रहात्।। (मनु०)

यथा पर्वतधातूनां दह्यन्ते धर्मनान्मलाः।
तथेन्द्रियकृता दोषः दह्यन्ते प्राणधारणात्।।
(अमृतनादोपनिषद्)

● प्राणायाम (प्राणशोधन) ही उन्मनीभाव का उन्नायक है—

मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव मध्यगः।
कथं स्यादुन्मनीभावः कार्यसिद्धिर्कथं भवेत्।।

● प्राण-साधना से ही नादानुसन्धान में साफल्य प्राप्त होता है। इसीलिये आचार्य शंकर ने 'योगतारावली' में कहा है—

सरेचपूरैरनिलस्य कुम्भैः सर्वासु नाडीषु विशोधितासु।
अनाहताख्यो बहुभिः प्रकारैरन्तः प्रवर्तेत सदा निनाद।।

ऋषि घेरण्ड ने योगसाधना के सात साधनों का उल्लेख किया है, उसमें एक साधन है— लाघव। लाघव की प्राप्ति का साधन ही है— प्राणायाम : 'प्राणायामाल्लाघवञ्च।'

ऋषि घेरण्ड यह भी कहते हैं कि प्राणायाम वह साधना है, जिससे साधक देवतुल्य हो जाता है—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य यद्विधिम्।
यस्य साधनमात्रेण देवतुल्यो भवेन्नरः।।

● प्राणायाम से प्रकाशावरण क्षीण होता है और धारणा की सिद्धि होती है। महर्षि पतञ्जलि ने प्राणायाम के दो लाभ बताये हैं— प्रकाशावरण की क्षीणता एवं धारणाओं में मन की योग्यता में वृद्धि—

'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।' (२.५२)
'धारणासु च योग्यता मनसः।' (२.५३)

योगभाष्यकार व्यास कहते हैं कि प्राणायाम करने से योगी के विवेकज्ञान के आवरक कर्म नष्ट हो जाते हैं। इससे मलों की शुद्धि हो जाती है और ज्ञान की वृद्धि होती है। इसलिए इससे बड़ा कोई तप भी नहीं है— 'तपो न परं प्राणायामात्ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्येति।'

● प्राण मन्त्रसिद्धि में सहायक है। योगिनीहृदय में मन्त्र-साधना के अङ्गभूत तत्त्वों में मन्त्राक्षर उच्चारण, अवस्था, शून्य, विषुव, नव चक्र एवं मन्त्रार्थ को परिगणित किया गया है।

प्राण और विषुव— उपर्युक्त सप्त विषुवों में 'प्राणविषुव' का भी उल्लेख है। 'प्राणविषुव' प्राण एवं मन इन दोनों के सामरस्य का विधान है—

योगः प्राणात्मनसा विषुवं प्राणासंज्ञितम्। (पूजासङ्केत)

अमृतानन्दनाथ दीपिका में कहते हैं— सप्तविषुवभावनां विवक्षन्नादौ प्राणविषुव-भावना.....प्राणस्य हकारात्मनो वाय्वात्मनो यष्टुर्मनसश्च संयोगः प्राणविषुवमित्युच्यते।'

शैवतन्त्र में भी कहा गया है— 'शिष्यात्मप्राणमनसां संयोगं प्राणकं विदुः।'

भास्करराय सेतुबन्ध में कहते हैं कि 'मूलाधारे ब्रह्मेति' यह कथन तो प्रसिद्ध ही है।

वहाँ जो 'रव' विद्यमान है, वह वायु एवं कुण्डलिनी के संयोग से व्युत्पन्न होता है। वही 'रव' नाभिपर्यन्त आकर पवन एवं मन से जुड़ जाता है और वही 'रव' हृदय में आकर पवन एवं बुद्धि से जुड़ जाता है। यही स्थानत्रय में परा, पश्यन्ती, मध्यमा नाम से विख्यात है।[1] इसे ही 'प्राणविषुव' कहते हैं।

प्राण या मारुत तो सुषुम्ना के अधःप्रान्त में भी स्थित है—

नयित्वा तं सुषुम्नाधः कन्दमूले च मारुतम्।[2]

भगवती कुण्डलिनी प्राणवायु के साथ ऊपर आरोहण करती हैं।

● प्राण संवित् तत्त्व की प्रथम परिणति है। आत्मा सर्वप्रथम प्राण के रूप में अवतरित होती है और इसीलिये कहा गया है कि 'प्राक् संवित प्राणे परिणता' अर्थात् संवित तत्त्व सर्वप्रथम प्राण के रूप में ही परिणत हुआ।

इसी प्राणतत्त्व से समस्त जगत् का विकास एवं विस्तार हुआ।

● प्राण ब्रह्माण्ड का संघटक तत्त्व है। समस्त ब्रह्माण्ड मूलतः दो पदार्थों से निर्मित हुआ है। वे तत्त्व हैं— आकाश और प्राण।

'आकाश' एक सर्वव्यापी एवं सर्वानुस्यूत सत्ता है। जिस किसी भी वस्तु का आकार है, जो कोई भी वस्तु कतिपय वस्तुओं के मिश्रण से उत्पन्न हुई है, वह इस आकाश तत्त्व से ही निर्मित हुई है।

आकाश ही वायुतत्त्व के रूप में परिणत होता है। यही तरल तत्त्व के रूप में आकार धारण करता है। यही पुनः ठोस आकार धारण करता है। यह आकाश ही सूर्य, पृथ्वी, तारा, धूमकेतु आदि के रूप में परिणत हो जाता है। सारे उद्भिज, अण्डज, पिण्डज और जरायुज अर्थात् संसार में जो कुछ भी है, सभी आकाश से ही उत्पन्न हुआ है। सृष्टि के आरम्भ में मात्र यही आकाश था।

अन्त में सारे जागतिक पदार्थ— ठोस, तरल एवं वाष्पीय पदार्थ आकाश में लय हो जाते हैं और सृष्टि के आरम्भ में पुनः इसी आकाश से समस्त ब्रह्माण्ड का आविर्भाव होता है।

प्रश्न यह उठता है कि किस शक्ति के प्रभाव से आकाश जगत् के रूप में परिणत होता है? प्राणशक्ति के प्रभाव से ही आकाश जगत् के रूप में परिणत होता है।

आकाश की भाँति प्राण भी जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण है और सर्वव्यापी तथा विक्षेपकारी तत्त्व है।

आकाश → जगत्— कल्प के आदि एवं अन्त में निःशेष सृष्टि आकाशरूप में

---

१. सौभाग्यभास्कर (वरिवस्यारहस्यम्)

२. स्वच्छन्दसंग्रह : षट्चक्र-वेधन में भी वायु की भूमिका है।

परिणत होती है और सृष्टि की समस्त शक्तियाँ प्राण में विलीन हो जाती हैं। नये कल्प में पुनः इसी प्राण से समस्त शक्तियों का विकास होता है।

इन्द्रियमार्गों (श्रोत्र, नासा, मुख आदि) या प्राणापान के मार्गों को रोक देने पर वायु ऊपर उठने लग जाता है। आधार से द्वादशान्त तक उठ रही यह प्राणशक्ति द्वादशान्त में प्रविष्ट होने पर स्वात्मस्वरूप की अनुभूति कराती है और 'पिपीलस्पर्शवेला' में आनन्दानुभूति कराती है—

सर्वस्रोतोनिबन्धेन प्राणाशक्त्योर्ध्वया शनैः।
पिपीलस्पर्शवेलायां प्रथते परमं सुखम्।।(विज्ञानभैरव-४३)

प्राणाध्वा (कालाध्वा)— प्राण सर्वव्यापी है; किन्तु वह स्फुट होता है मात्र हृदय में। शैवी शक्तियाँ— वामा, ज्येष्ठा एवं रौद्री प्राण से संयुक्त हो जाती हैं। प्राण में ही समस्त नक्षत्र है। प्राण विश्व का विस्तारक है। प्राण सूर्य है और अपान चन्द्रमा। प्राण के आक्रमण से चन्द्रमा एक-एक कला छोड़ता जाता है। अमावस्या को चन्द्रमा सूर्य में लय हो जाता है और तत्पश्चात् पुनः उदित होता है। चन्द्रमा की सोलह कलाओं में से पन्द्रह कलायें ही विलीन होती हैं; षोडशी कला विलीन नहीं होती। सूर्य जब चन्द्रमा को निगलता है तब चन्द्रमा अमृत छोड़ता है, जिसका पान कर राहु चन्द्रबिम्ब को छोड़ देता है।

प्राणोच्चार का विज्ञान एवं प्राण-प्रशमन

प्राण हृदय से प्रसूत होकर समना के स्थान ब्रह्मरन्ध्र तक यात्रा करता है। इसकी व्याप्ति ३६ अंगुल है। इस ३६ अंगुल सञ्चार में आना एवं जाना दोनों सम्मिलित है। इसी में प्राण का आरोह एवं अपान का अवरोह निहित है।

दिन— प्राणरूप सूर्य हृदय से उदित होकर ब्रह्मरन्ध्र में अस्त हो जाता है। यही 'दिन' है।

रात्रि— अपानरूप चन्द्रमा ब्रह्मरन्ध्र से उदित होकर हृदय में अस्त हो जाता है। यही 'रात्रि' है।

इस प्राणापानरूप रात-दिन में दो सन्ध्यायें होती हैं— प्रातःसन्ध्या (हृदय में अवस्थित) एवं सायंसन्ध्या (ब्रह्मरन्ध्र में अवस्थित)।

प्रश्वास— ब्रह्मरन्ध्र से हृदयपर्यन्त आने में अपान को जो समय लगता है, उसे 'प्रश्वास' कहते हैं।

निःश्वास— हृदय से ब्रह्मरन्ध्र तक चलने में प्राणों को जितना समय लगता है, उसे 'सोलह त्रुटि' या 'एक निःश्वास' कहते हैं।

प्रत्येक सन्ध्या एक-एक त्रुटिकाल रहती है। उससे प्राण एवं अपान दोनों को मिलाकर सवा दो अंगुल का सञ्चार रहता है।

प्राणसञ्चार क्रिया का अभ्यास तब तक आवश्यक है, जब तक कि परम तत्त्व का

ज्ञान न हो जाय। ज्ञान-विकास के तारतम्य में ही प्राणरूपी मन्त्र हृदय से उठकर ऊपर तक जाता है। परम तत्त्व का ज्ञान न रहने के कारण यह ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त उठकर फिर नीचे लौट आता है और ब्रह्मरन्ध्र का भेदन नहीं कर पाता।

प्राण पहले अट्ठारह अंगुल तक उठकर तालुस्थान में पहुँचता है। यह रुद्र या माया-ग्रन्थि का स्थान है। इस ग्रन्थि का भेदन न कर सकने के कारण यह मध्य नाड़ी द्वारा भ्रूमध्य में ईश्वरस्थान में जाता है। प्रथमत: अट्ठारह अंगुल प्राण तालुस्थान में ही रह जाता है। फिर भ्रूग्रन्थि का भेदन न हो सकने के कारण आगे का छ: अंगुल वहीं रह जाता है। यहाँ से बगल में प्रवाहित दो नाड़ियों द्वारा शेष बारह अंगुल प्राण ब्रह्मरन्ध्र तक जाता है; किन्तु शाक्त बल न रहने के कारण वह ब्रह्मरन्ध्र का भेदन नहीं कर पाता; अत: वह शेष बारह अंगुल वहीं रह जाता है और यही है— प्राण का अस्त होना।

इसके उपरान्त अपान क्रिया के अनन्तर इसका हृदयदेश से पुन: उद्गमन होता है और यह क्रिया निरन्तर गतिमान रहती है।

शाक्त बल प्राप्त होने से प्राण में सभी ग्रन्थियों में सञ्चार करने की क्षमता आ जाती है। परतत्त्व का ज्ञान हो जाने पर किसी भी ग्रन्थि में स्थित रहने पर भी प्राण बाधित नहीं होता, देहादि में प्रमातृभाव का उदय होकर वह उसके अधीन नहीं रह जाता। पर-ज्ञान → देहाभिमान का ध्वंस। प्राण के ऊर्ध्व सञ्चार की मात्रा जितनी होगी, उसी अनुपात में अज्ञान से ज्ञान का उदय और फिर ज्ञान-वृद्धि का एक निर्दिष्ट क्रम स्थापित हो जाता है।

'अबुध' = प्राणशक्ति के द्वारा प्रतिहत होकर नीचे की ओर (अज्ञान की अवस्था में) जाने वाला प्राणी 'अबुध' कहलाता है।

'बुध्यमान' = जिस समय हृदय में स्थित होकर प्राणी वहाँ से उठने लगता है, तब वह बुध्यमान अवस्था में स्थित माना जाता है। इस अवस्था में ज्ञानोदय होने लगता है।

'बुध' = जब प्राणी को उठते-उठते शक्ति प्राप्त हो जाती है तब उसे बुध (ज्ञानी) की अवस्था में अवस्थित माना जाता है।

'प्रबुद्ध' = शक्ति का बल हस्तगत करके तत्त्वारोहण की कुशलता प्राप्त कर लेने पर 'व्यापिनी' में पहुँचने पर 'प्रबुद्ध' की अवस्था प्राप्त कर लेता है। इस समय साधक को परम तत्त्व का आभास प्राप्त होने लगता है। इस समय मन:संस्कार का भी क्षय हो जाने के कारण साधक उन्मनाभाव प्राप्त कर लेता है। यह अवस्था ब्रह्मरन्ध्रभेदनोपरान्त की है। यह अवस्था काल, निवृत्त्यादि कलाओं, प्राणापान-सञ्चार, ३६ तत्त्व, ब्रह्मा-विष्णु-महेश (त्रिदेव) सभी से शून्य एवं अतीत है; वहाँ इनमें से किसी की भी पहुँच नहीं है। यह पराद्वयी परम शुद्धावस्था है। इसकी अनुभूति से जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है।

शून्य-प्रशमन— 'परम शून्य पद' परमशिव ही है। अन्य शून्य का त्याग करना पड़ता है। सात शून्यों में छ: शून्य गतिशील होने के कारण शून्य ही नहीं हैं। अत:

उनका त्याग करके सप्तम शून्य में लय प्राप्त करना चाहिये। यही 'परमपद' है। यह अवस्था-तीत चिद्रूप दशा है। यह भेदहीन है। यह अभावात्मक ही नहीं है; प्रत्युत विश्व-मय भी है; किन्तु समस्त भेदों से अतीत होने के कारण परम स्थिर एवं विश्वातीत है।

जिन छः शून्यों का त्याग किया जाता है, वे निम्नांकित हैं—

१. 'अधःशून्य' (जिस हृदय में प्रपञ्च का उन्मेष नहीं हुआ है)।

२. 'मध्य शून्य' (कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य, ललाट एवं ऊर्ध्व रन्ध्रस्थानों में अपने से अधोवर्ती प्रमेयों का उपशम हो जाने की दशा)।

३. 'ऊर्ध्वशून्य' (शक्तिस्थान। यहाँ नादान्तपर्यन्त सभी पाशों का क्षय हो जाता है)।

४-६. व्यापिनी, समना एवं उन्मना शून्य।

सप्तम शून्य के रूप को छोड़कर परमात्मा के छः स्थूल रूप हैं— भुवन, विग्रह ज्योति या बिन्दु, व्यापिनी या आकाश और नाद या शब्दमन्त्र।

उपर्युक्त ६ शून्य तो हेय हैं ही। परतत्त्व सप्तम शून्य है और अचल है। निम्नवर्ती शून्यों के अधिष्ठाता भी परमशिव हैं। वे ही परम शून्य हैं। सप्तम शून्य ही परम शून्य है। यहाँ प्रमेयादि प्रपञ्च से रहित होने के कारण इसे शून्य कहा जाता है।

शक्तिसूत्र में ऋषि अगस्त्य की दीक्षा-दृष्टि— शक्तिसूत्रकार कहते हैं कि दीक्षा एक दक्षिणा है और दीक्षा के द्वारा प्रत्येक प्राणी अपने कालुष्यों से मुक्त हो जाता है—

'दीक्षा दक्षिणा'।।३८।।

'दीक्षया कलुषान्मुच्यते'।।३९।।

प्राणायाम

अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि— साधक को चाहिये कि वह भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना में श्रीक्रम के विधानानुसार भूतशुद्धि एवं प्राणप्रतिष्ठा व्यापारों को समाप्त करके 'सौः' वर्ण के साथ मातृका वर्णों द्वारा (श्रीक्रमोक्त विधि द्वारा) बहिर्मातृका न्यास निष्पादित करके १६ बार पूरक, ६४ बार कुम्भक एवं ३२ बार रेचकसहित प्राणायाम करे। २० बार या १६ बार या १० बार या (इतना भी न हो सके तो कम से कम) ३ बार प्राणायाम करे। आचार्य जयरथ ने तन्त्रालोक की टीका 'विवेक' में यह कहा है कि प्राणायाम की प्रक्रिया द्वारा साधित प्राणापान की एकता के द्वारा जीव शिव बन जाता है—

शशिभास्करसंयोगाज्जीवस्तन्मात्रतां व्रजेत्।
अत्र ब्रह्मादयो लीना मुक्तये मोक्षकाक्षिणः।।

इसी प्राणापानैक्य की अवस्था में ब्रह्म आदि देवता लीन रहते हैं और इसके द्वारा मोक्षाप्ति की कामना करते हैं; किन्तु इसे मोक्ष का प्रधान कारण मानकर इसकी सिद्धि को ही सर्वोच्च उपलब्धि नहीं मान लेना चाहिये। तात्त्विक भूमि पर तो प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि भी व्यर्थ है—

तदेषा धारणाध्यानसमाधित्रितयी परम्।
संविदं प्रति नो कञ्चिदुपयोगं समश्नुते।। (तन्त्रालोक)

स्वात्मपरामर्श एवं स्वात्मसाक्षात्कार के मार्ग में ये मात्र उपाय हैं; न कि उपेय। इसी दृष्टि से अभिनवगुप्त ने इनको साध्य मानने का निषेध किया है। ये सभी साधन स्वात्म-पशमर्श के साधनमात्र हैं; अत: स्वात्मपरामर्श की संसिद्धि में ही इनकी चरितार्थता है, इसके आगे नहीं।

इसका यह अर्थ नहीं है कि काश्मीरक अभिनवगुप्त प्राणायाम को व्यर्थ मानते हैं; क्योंकि उन्होंने तन्त्रालोक के छठे आह्निक में स्वयं कहा है कि प्रभुशक्ति, आत्मशक्ति एवं प्राणशक्ति में से सिद्ध योगी कभी दो को प्रमुखता देते हैं और कभी तीन को—

त्रयं द्वयं वा मुख्यं स्याद्योगिनामवधानिनाम्। (६.५४)

प्राणायाम की सार्थकता एवं उसकी लक्ष्मण रेखा— साधना के क्षेत्र में सर्वोच्च साधना तो मन की साधना है; किन्तु मन को विना प्राण-विशुद्धि के साधा कैसे जा सकता है? प्राण अशुद्ध है तो मन भी अशुद्ध रहेगा; अत: मन की विशुद्धि या मनो-मारण के लिये प्राणायाम का संबल आवश्यक है; किन्तु हठयोगियों की भाँति प्राण-साधना या प्राणायाम को ही मूल साधना नहीं मान लेना चाहिये। इसी दृष्टि से अभिनव-गुप्तपादाचार्य ने तन्त्रालोक (चतुर्थ आह्निक) में स्पष्टत: कहा है—

तर्कप्रभृतयो ये च नियमा यत्तथासनम्।
प्राणायामाश्च ये सर्वमेतद्बाह्यविजृम्भितम्।। (४.८८)

'श्रीमद्वीरावली' ग्रन्थ में भी इसी दृष्टि की पुष्टि की गई है—

प्राप्ते च द्वादशे भागे जीवादित्ये स्वबोधके।
मोक्ष: स एव कथित: प्राणायामो निरर्थक:।। (४.९०)

तन्त्रालोक में ही अभिनवगुप्त पुन: कहते हैं—

प्राणायामो न कर्तव्य: शरीरं येन पीड्यते।
रहस्य वेत्ति यो यत्र स मुक्त: स च मोचक:।। (४.९१)

सत्यमेतन्महाप्राज्ञ प्राणायामो न कारणम्।

'रेचकादिप्राणायामो निरर्थक: तेन न कश्चिन्मोक्षलक्षणोऽर्थ:।'[१]

प्राणायाम से मोक्षाप्ति नहीं हो सकती; यत: प्राणायाम मोक्ष का साक्षात् कारण नहीं है; अत: उसका सर्वोच्च महत्त्व भी नहीं है।

▼

---

१. जयरथ : विवेक (तन्त्रालोक की टीका)

त्रयःपञ्चाशत् अध्याय

मन्त्रतत्त्व, मन्त्रसाधना और त्रिपुरोपासना

स्वात्मसंवित् का उल्लास : मन्त्र— महेश्वरानन्दनाथ 'परिमल' में कहते हैं कि मन्त्र अपने यथार्थ स्वरूप में स्वात्मसंवित् उल्लास के पर्यायमात्र हैं; क्योंकि आत्मा ही देवता है और देवता का उल्लास ही मन्त्र है। 'मन्त्राश्चिन्मरीचयः' कहकर आत्मा की किरणों को 'मन्त्र' कहने का भी यही अर्थ है।

मन्त्र और मन्त्री में अभेद मन्त्र-साधना की अनिवार्य शर्त है—

पृथङ्मन्त्रः पृथङ्मन्त्री न सिध्यति कदाचन।
ज्ञानमूलमिदं सर्वमन्यथा न प्रसिद्ध्यति।।

मन्त्र स्वात्मसंवित्स्वरूप है—

'स्वात्मसंवित्स्वरूपस्यैव मन्त्रशब्दार्थत्वम्।' (परिमल)

संवित् देवी : मन्त्र— स्वयं संवित् देवी ही मन्त्र हैं—

'सेयमेवंविधा भगवती संविद्देव्येव मन्त्रः।' (क्रमकेलि)

समस्त विश्व को क्रोडीकृत करके स्थित होने के कारण भी भगवती ही मन्त्र है—

'सर्वक्रोडीकारेण स्थितत्वाद्देव्येव मन्त्रः।'

वर्णों का समुदाय मन्त्र नहीं है; इसीलिये तो 'श्रीराजभट्टारक' में कहा भी गया है—

वर्णात्मको न मन्त्रो दशभुजदेहो न पञ्चवदनोऽपि।
सङ्कल्पपूर्वकोटौ नादोल्लासो भवेन्मन्त्रः।।

नाद का उल्लास : मन्त्र— विज्ञानभट्टारक में कहा गया है कि परभाव में जो भावना बार-बार की जाती है, उसमें निहित जप, स्तोत्र, जप्य, मन्त्र आदि सभी नादमात्र हैं—

भूयो भूयः परे भावे भावना भाव्यते हि या।
जपस्तोत्रं स्वयं नादो मन्त्रात्मा जप्य ईदृशः।।

इसीलिये कहा गया है कि जिह्वा से उच्चार्यमाण विशिष्ट वर्णसमुदाय मन्त्र नहीं हैं—

उच्चार्यमाणा ये मन्त्रा न मन्त्राश्चापि तान् विदुः।

गोरक्षनाथ (महेश्वरानन्द) कहते हैं कि 'मन्त्र' शब्द का मुख्यार्थ मात्र 'स्वात्मसंवित् स्वरूप' है—

'स्वात्मसंवित्स्वरूपस्यैव मन्त्रशब्दार्थत्वं मुख्यम्।'

आचार्य महेश्वरानन्द की दृष्टि— आचार्य महेश्वरानन्द की व्याख्या के अनुसार मन्त्र के तीन लक्षण हैं—

१. मननमयी निजविभवे।

२. निजसङ्कोचे भये त्राणमयी।

३. कवलितविश्वविकल्पाऽनुभूति: कापि मन्त्रशब्दार्थ:।। (महार्थमञ्जरी-४९)

आम्नायोक्त विचार भी इसी प्रकार के हैं—

'मननत्राणधर्माणो मन्त्रा:।'

महेश्वरानन्द की व्याख्या के अनुसार मन्त्र के दो व्यापार या धर्म हैं— मनन और त्राण। वे कहते हैं कि मन्त्रानुसन्धाता की (स्वेच्छागृहीत उपाधि के कारण) दो अवस्थायें हैं—

'मन्त्रानुसन्धातु: स्वेच्छामात्रेणोपाधिना विभव: सङ्कोच: इत्यवस्थाद्वयमस्ति।'

मन्त्रानुसन्धायक की अवस्थायें एवं मन्त्र

विभव	सङ्कोच
विश्व एवं विश्वातीत में सामरस्य प्राप्त करके 'पूर्णाहम्भावना' के द्वारा आत्म-विकास की अवस्था प्राप्त करना या 'पारमैश्वर्य' प्राप्त कर लेना ही 'विभव' है— 'मननमयी निजविभवे।'	विभव से शून्य एवं उसके विपरीत अपूर्णत्वाभिमान पाशव स्वभाव : 'पशुपति' से 'पशु' बन जाना।
इस आत्मविकास की अवस्था में जो उत्तरोत्तर ऊर्ध्ववर्ती मनन समुल्लसित होता है तथा जो परामर्शानुस्यूत स्वभावचमत्कार है, उसका उल्लास ही मनन है।	**मन्त्र**— सङ्कोचावस्था में त्राणधर्मा है। विभव के सङ्कोच से जीव को जो भय उत्पन्न होते है, उससे 'मन्त्र' त्राण करता है।

जो सङ्कोचात्मक पश्वावस्था है, उसे नष्ट करके एवं वैश्वात्म्यप्रथा द्वारा वेद्यरूपी ग्रास को कवलीकृत करने के बाद साधक के हृदय में जो भगवतीमयी उल्लासस्वरूपा स्वहृदैयकसंवेद्या विमर्श शक्ति की अनुभूति होती है, वही 'मन्त्र' है—

'वेद्यविक्षोभसर्वस्वग्रासविशृङ्खलोल्लासा याऽनुभूति: स्वहृदयैकसंवेद्या विमर्शशक्ति: सैव मन्त्र:।' (परिमल)

'मननमयी निजविभवे निजसङ्कोचे भये त्राणमयी कवलितविश्वविकल्पाऽनुभूति: कापि मन्त्रशब्दार्थ:।' (महार्थमञ्जरी-४९)

'गुरु' को कभी भी मनुष्य नहीं मानना चाहिये और 'मन्त्र' को कभी भी शब्दसमूह या अक्षरमात्र नहीं मानना चाहिये। साथ ही 'मूर्ति' को मात्र पत्थर नहीं मानना चाहिये; अन्यथा नरक जाना पड़ता है—

गुरौ मनुष्यबुद्धिञ्च मन्त्रे चाक्षरबुद्धिकाम्।
प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत्।। (ज्ञानार्णवतन्त्र)

मन्त्र-ग्रहण के बाद उस मन्त्र का कभी त्याग नहीं करना चाहिये। यदि कोई ऐसा करता है तो उसकी मृत्यु निश्चित है—

मन्त्रत्यागाद्भवेन्मृत्युर्गुरुत्यागाद्दरिद्रता।

(तन्त्रासार : ज्ञानार्णवतन्त्र)

समस्त मन्त्र प्रारम्भिक अवस्था में पशुभाव में स्थित रहते हैं। सुषुम्णा में स्थापित करने पर ही उनमें यथार्थ मन्त्रात्मकता या स्वप्रभुत्व आ पाता है; अन्यथा वे मृत वर्णमात्र होते हैं—

पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवलं वर्णरूपिणः।
सौषुम्ने ध्वन्युच्चरिताः प्रभुत्वं प्राप्नुवन्ति ते।। (गौतमीय)

गौतमीय में यह भी लिखा गया है कि मन्त्रार्थ ही मन्त्र की चेतनता है; अतः मन्त्रार्थ के विना मन्त्रजप व्यर्थ है—

मूलमन्त्रं जपेद्बुद्ध्या सुषुम्णामूलमध्यगाम्।
मन्त्रार्थस्तस्य चैतन्यं जीवं ध्यात्वा पुनः पुनः।। (गौतमीय)

मन्त्रजप कोई शारीरिक क्रिया नहीं है; प्रत्युत मानसिक एवं भावनात्मक साधना है। अतः मन्त्रोच्चारणमात्र ही नहीं; प्रत्युत उसके साथ-साथ भावयोग भी आवश्यक है; अन्यथा मन्त्र सिद्ध नहीं हो सकता—

मनोऽन्यत्र शिवोऽन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः।
न सिद्ध्यति वरारोहे ! कल्पकोटिशतैरपि।। (कुलार्णवतन्त्र)

मन्त्र के अपरिहार्य अंग हैं— मन्त्रचैतन्य, योनिमुद्रा और बीज। यदि इनका मन्त्र के साथ योग नहीं हो तो लाखों-करोड़ों वर्षों में भी सिद्धि सम्भव नहीं होती—

मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रा न वेत्ति यः।
शतकोटिजपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते।।

लुप्तबीजाश्च ये मन्त्रा न दास्यन्ति फलं प्रिये।
मन्त्राश्चैतन्यसहिताः सर्वसिद्धिकराः स्मृताः।।

चैतन्यरहिता मन्त्रा प्रोक्ता वर्णास्तु केवलम्।
फलं नैव प्रयच्छन्ति लक्षकोटिशतैरपि।। (कालसंहिता)

मन्त्रों का यथार्थ स्वरूप उनका चिच्छक्ति में ग्रथित स्वरूप है। वे परमव्योम में परमानन्द में निवास करते है; अतः मन्त्रों को इस स्वरूप में स्थापित करने पर ही सिद्धि हो पाती है—

जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्न संशयः। (शिव)

उपर्युक्त के अभाव में मन्त्र की सिद्धि सम्भव ही नहीं होती। चिच्छक्ति में अवस्थान ही मन्त्र का मूल स्वरूप होता है—

मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ ग्रथितानि विभावयेत्।
तामेव परमे व्योम्नि परमानन्दबृंहिते।।

मन्त्र अपने मौलिक स्वरूप में 'पूर्णाहन्तानुसन्ध्यात्मा' है, संसार का त्राणकर्ता है, मननधर्मा है—

पूर्णाहन्तानुसन्ध्यात्मा स्फूर्जन्मननधर्मत:।
संसारक्षयकृत्त्राणधर्मतो मन्त्र उच्यते।।

मन्त्र पर, सूक्ष्म एवं स्थूल तीन प्रकार के होते हैं। वर्णात्मक मन्त्रों में सतत् अनाहत नाद सञ्चरित होता रहता है। मन्त्रों में संवित् ही स्पन्दित है। मन्त्रजप के समय प्राणसाम्य आवश्यक है। चूँकि प्राण से स्पन्द एवं स्पन्द से भेद आविर्भूत होते हैं; अत: स्पन्द के अपर स्वरूप मन्त्र के लिये प्राणानुशासन आवश्यक है। मन्त्र के जप के लिये प्राणसाम्य आवश्यक है। प्राण में भी साम्यावस्था सुषुम्णा में होती है।

सम्पूर्ण वर्णों एवं मन्त्रों के पीछे एक अनाहत नाद ध्वनित है, जो अनवरत रूप से ध्वनित होता रहता है। प्राण जब सुषुम्णा में स्थिर हो जाता है, तब अन्य तत्त्व भी लयीभूत हो जाते हैं और केवल संवित् तत्त्व मात्र शेष रह जाता है। सभी वर्णों के पीछे एक अनाहत नाद ध्वनित है—

एको नादात्मको वर्ण: सर्ववर्णविभागवान्।
सोऽनस्तमितरूपत्वादनाहत इहोदित:।। (तन्त्रालोक)

मन्त्रों में संवित् ही स्पन्दित होता है। प्राणसाम्य से ही मन्त्र सिद्ध होता है। सुषुम्णा में प्राणसञ्चार लय का कारण है। मानस जप में प्राणशक्ति के उदय, संगम एवं शान्ति में जप किया जाता है। प्राणशक्ति के उदयस्थान— कुण्डलिनी स्थान, हृदयदेश, प्राण-शक्ति के शान्त होने का स्थान में— जप होता है। मन्त्र-जप में 'प्राण' दो बार चक्कर काटता है; क्योंकि प्राण का विकास एवं आकुञ्चन दोनों ही होता है।

मन्त्र-जप के स्थान— मन्त्र-जप के सात स्थान हैं— उदय, संगम, शान्त, प्राणापान-प्रवाह, अक्षनाड़ीचक्र के सूत्र, हृदय का 'हंस' नामक स्थान एवं सहस्रार। यही है— 'मानस जप' या 'अजपा जप'।

चैतन्य ही 'मन्त्र' के रूप में परिणत होता है। इसका विमर्श ही शुद्ध ज्ञान एवं क्रिया है। संवित का स्फुरण दो रूपों में होता है— क्षुब्ध स्फुरण (प्रमाण) एवं अक्षुब्ध स्फुरण (मन्त्र)।

भगवती का वर्णात्मक एवं मन्त्रात्मक स्वरूप तथा सृष्टि-विधान— परा-भट्टारिका, राजराजेश्वरी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी वर्णात्मिका एवं वर्णस्वरूपा हैं। उनके आत्मस्वरूप वर्णों से ही सृष्टि हुई है—

१. अकारादिविसर्गान्तं शिवतत्त्वम्।
२. कादिठान्तं धरादिनभोऽन्तं भूतपञ्चकम्।
३. चादिञान्तं गन्धादिशब्दान्तं तन्मात्रपञ्चकम्।

४. टादिणान्तं पादादिवागन्तं कर्माक्षपञ्चकम्।
५. तादिनान्तं घ्राणेन्द्रियश्रोत्रान्तं बुद्धिकरणपञ्चकम्।
६. पादिमान्तं मनोऽहङ्कारबुद्धिप्रकृतिपुरुषाख्यं पञ्चकम्।
७. वाय्वादिशब्दवाच्या यादयो वकारान्ता रागविद्या कलामायाख्यानि तत्त्वानि।[1]

वर्णों का मन्त्रों के साथ सम्बन्ध— वर्णों का मन्त्रों के साथ क्या सम्बन्ध है? इस विषय में अभिनवगुप्त कहते हैं कि वर्णों से ही 'मन्त्र' बनते हैं और मन्त्र परमेश्वर-रूपात्मक हैं। वे विकल्पसंविन्मय एवं मनन-त्राणरूप हैं—

मन्त्राः वर्णभट्टारकाः लौकिकपारमेश्वरादिरूपाः मननत्राणरूपाः विकल्पसंविन्मयाः।[2]

मन्त्रा वर्णात्मकाः सर्वे वर्णाः सर्वे शिवात्मकाः।

मन्त्र एवं जपसाधना का प्रयोजन— समस्त मन्त्र एवं जपसाधना का प्रयोजन शक्तिजागरण एवं आत्मसाक्षारात्मक मोक्ष है। मोक्ष तो स्वयं भगवती त्रिपुरा ही हैं; क्योंकि स्वरूप-प्रथन ही मोक्ष है और आत्मस्वरूप मात्र आत्मसंवित् है—

मोक्षश्च नाम नैवान्यः स्वरूप प्रथनं हि सः।
स्वरूपं चात्मनः संवित्.....।।

भगवती ललिता सभी प्राणियों की आत्मसंवित् हैं।

१. अभिनवगुप्तपाद : परात्रिंशिका विवृत्ति
२. अभिनवगुप्तपाद : परात्रिंशिका विवृत्ति

चतुःपञ्चाशत् अध्याय

जपतत्त्व, जप-साधना और त्रिपुरोपासना

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि यज्ञों में मैं जपयज्ञ हूँ— 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'। 'जप' है क्या? मन्त्र, मन्त्रार्थ, अवस्था, विषुव, नव नाद आदि अंगों के साथ मन्त्राक्षरों को चिच्छक्ति से ग्रथित करते हुये सुषुम्ना में उनका नादश्रवण करना ही यथार्थ मन्त्रजप है।

अभिनवगुप्त की दृष्टि— अभिनवगुप्त 'तन्त्रालोक' (१.९०) में कहते हैं कि परम कारण शिव का आत्मरूप ही 'जप' है। भावाभाव (प्राणापान आदि गत्यात्मक) पद की सीमा को अतिक्रान्त कर जाने की वह दशा, जहाँ चिदैक्य परामर्श हो, वही 'जप' है—

तत्स्वरूपं जपः प्रोक्तो भावाभावपदच्युतः।

जयरथ कहते हैं कि 'तस्य शिवस्य स्वरूपं परावाक्स्वभावम्' अर्थात् 'भूयोभूयः परामृश्यमानं जपः; अतएव भावाभावपदच्युतः पूर्वोक्तनीत्या तन्मध्यस्फुरत्संवित्परामर्श-मात्रसार इत्यर्थः।' 'प्रभाकौल' में कहा गया है—

यावत्तत्परमं शान्तं न विजानन्ति सुन्दरि!।
तावत् पूजाजपध्यानहोमलिङ्गार्चनादिकम्।।
विदिते तु परे तत्त्वे सर्वाकारे निरामये।
क्व पूजा क्व जपो होमः क्व च लिङ्गपरिग्रहः।।

अभिनवगुप्त 'तन्त्रालोक' में कहते हैं कि भैरवसमावेश 'ध्यान' से ही नहीं, 'जप' से भी होता है—

परं शिवं तु व्रजति भैरवाख्यं जपादपि।

आगम में भी कहा गया है—

भूयो भूयः परे भावः भावना भाव्यते हि या।
जपः सोऽत्र स्वयं नादो मन्त्रात्मा जप्य ईदृशः।।

अर्थात् बार-बार उस परम भाव में जो भावना भावित की जाती है, वही 'जप' है। विज्ञानभट्टारक में भी कहा गया है—

यैरेव पूज्यते द्रव्यैस्तर्प्यते वा परावरः।
यश्चैकः पूजकः सर्वः स एवैकः क्व पूजनम्।।

'श्रीपूर्वशास्त्र' में कहा गया है—

द्रवद्रव्यसमायोगात् स्नपनं तस्य जायते।
गन्धपुष्पादिगन्धस्य ग्रहणं यजनं स्मृतम्।।
षड्रसास्वादनं तस्य नैवेद्याय प्रजायते।
यमेवोच्चारयेद्वर्णा स जपः परिकीर्तितः।।

शिव का स्वात्मस्वरूप 'परा वाक्' है। परा वाक् का शाश्वत परामर्श ही 'जप' है। 'त्रिशरोभैरव' में कहा गया है—

परं शिवं तु व्रजति भैरवाख्यं जपादपि।
तत्स्वरूपं जपः प्रोक्तो भावाभावपदच्युतः।।

महेश्वरानन्द 'महार्थमञ्जरी' और 'परिमल' में भूपति का मत उल्लिखित करते हुये कहते हैं कि 'मन्त्र' तो साक्षात् भगवती है— 'सर्वक्रोडीकारेण स्थितत्वाद्देव्येव मन्त्रः' (भट्टश्रीभूपति) और 'जप' गुरु-देवता एवं मन्त्र में ऐक्यसन्धान करने की प्रक्रिया है— 'गुरुदेवतामनूनामैक्यं सम्भावयन् धिया शिष्यः इत्यभियुक्ता आचक्षते। एतेन जपो व्याख्यातः। जननपालनस्वभावतया हि 'जप' इत्युच्यते'। कहा भी गया है—

जनिपालनधर्मेण जपेनान्तर्मुखात्मना।

उपपादित मन्त्र-स्वरूप का परामर्श ही जप है— 'केवलमुपपादितमन्त्रस्वरूपपरामर्शो जप इत्युच्यते'। (परिमल)

जप के भेद— जप तीन प्रकार के होते हैं— अधम, मध्यम एवं उत्तम। उच्च वाणी में किया गया जप अर्थात् वैखरी जप : वाचिक जप 'अधम' जप कहलाता है। उपांशु जप को 'मध्यम' जप कहा जाता है और मानस जप को 'उत्तम' के नाम से जाना जाता है। कहा भी है—

उच्चैर्जपोऽधमः प्रोक्त उपांशुर्मध्यमः स्मृतः।
उत्तमो मानसो देवि ! त्रिविधः कथितो जपः।।

जप : एक दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण

अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि— अभिनवगुप्तपादाचार्य ने 'तन्त्रालोक' में जप के निम्न लक्षण बताये हैं—

१. परम कारण शिव का आत्मरूप ही 'जप' है।

२. भावाभाव (प्राणापानादि गत्यात्मक) पद की सीमा को अतिक्रान्त कर जाने की वह दशा, जहाँ चिदैक्य परामर्श हो, वही 'जप' है। अभिनवगुप्त कहते हैं—

भूयो भूयः परे भावे भावना भाव्यते हि या।
जपः सोऽत्र स्वयं नादो मन्त्रात्मा जप्य ईदृशः।।[१]

अर्थात् बार-बार उस परम भाव में जो भावना भावित की जाती है, वही 'जप' है। यह एक प्रकार से स्वयं नाद है। यह मन्त्रात्मक होता है। ऐसा परामर्श ही (नाद ही) जपने योग्य है।

शिव का स्वात्म रूप वस्तुतः परा वाक् है। परा वाक् का शाश्वत परामर्श ही 'जप' है।

इस परामर्शदशा में भावाभावात्मक पद में स्थिति नहीं रहती; प्रत्युत मध्यावस्थान

१. तन्त्रालोक (१.९०)

की दशा प्राप्त हो जाती है। भाव एवं भावाभाव दोनों की स्थिति संकोचात्मक होती है। साधक इसका त्रोटन करता है और मध्य में विराजमान हो जाता है। वही परसंवित् का अमृतपरामर्श होता है। यही 'जप' है[१]—

१. तस्य शिवस्य स्वरूपं परावाक्स्वभावमात्मरूपमर्थात् भूयो भूयः परामृश्यमानं जपः। अतएव भावाभावपदच्युतः पूर्वोक्तनीत्या तन्मध्यस्फुरत्संवित्परामर्शमात्रता इत्यर्थः।

२. तत्स्वरूपं जपः प्रोक्तो भावाभावपदच्युतः।।[२]

३. परं शिवं तु व्रजति भैरवाख्यं जपादपि।
तत्स्वरूपं जपः प्रोक्तो भावाभावपदच्युतः।।[३]

अर्थात् केवल ध्यान से ही नहीं, जप से भी भैरवरूप शिव में समावेश होता है और भावाभाव पद से ऊपर उठकर उसका परामर्श करना ही जप है।[४]

विज्ञानभैरव की दृष्टि— विज्ञानभैरव में भी उपर्युक्त दृष्टि की पुष्टि की गई है— 'जपः सोऽत्र स्वयं नादो मन्त्रात्मा जप्य ईदृशः'[५] किन्तु इसकी प्रक्रिया क्या है?— 'अहमेव परो हंसः शिवः परमकारणम्' (स्वच्छन्दतन्त्र-४.३९९)। इस प्रकार अहर्निश एवं स्वाभाविक रूप से प्रवर्तमान अपने प्राणमय अजपा स्वरूप का विमर्श 'सोऽहं हंसः' इस अनाहत नादस्वरूप शब्द की निरन्तर भावना ही 'जप' है। जो 'जप्य' (परमात्मा शिव) है, वह भी इस मन्त्र से पृथक् नहीं है— 'मन्त्रात्मा जप्य ईदृशः' (मन्त्र की आत्मा और जपनीय तत्त्व परमात्मा भी इसी जप के साथ (या मन्त्र के साथ) अभिन्न है); क्योंकि—

पृथङ्मन्त्रः पृथङ्मन्त्री न सिद्ध्यति कदाचन।

योगिनीहृदयदीपिका की दृष्टि— योगिनीहृदयदीपिका में कहा गया है कि इन्द्रियों की बहिर्मुख प्रवृत्ति को रोककर आन्तर अनाहत नाद की भावना करना ही 'जप' है; विकल्पात्मक नाना वर्णों के संघात से निर्मित मन्त्रों का बाह्य उच्चारण जप नहीं कहलाता—

संयमेन्द्रियसञ्चारं प्रोच्चरेन्नादमान्तरम्।
एष एव जपः प्रोक्तो न तु बाह्यजपो जपः।।[६]

शिवसूत्रकार एवं क्षेमराज की दृष्टि— शिवसूत्रकार का कथन है कि 'कथा ही जप है।' आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि 'अहमेव परो हंसः शिवः परमकारणम्' अर्थात् मैं ही परम हंस एवं आद्य कारणस्वरूप शिव हूँ। इस स्वच्छन्दतन्त्रोक्त अनुभूति की निरन्तरता के साथ— 'परहम्भावना' के साथ— 'महामन्त्रात्मकाकृतकाहंविमर्शारूढ़' जो भी आलाप होता है, उसमें स्वात्मदेवता के विमर्शन से युक्त जो अनवरत आवर्तनात्मा वाग्व्यवहार (आलाप) होता है, वह सब जप है[७]— 'स्वात्मदेवताविमर्शनवरतावर्तनात्मा

१. विवेक (जयरथ)
२. तन्त्रालोक (१.९०)
३. त्रिशिरोभैरव
४. त्रिशिरोभैरव
५. विज्ञानभैरव (श्रीकण्ठी संहिता, शिवसूत्रविमर्शिनी)
६. नित्याषोडशिकार्णव
७. शिवसूत्रविमर्शिनी।

जपो जायते'। इसी प्रसंग में आचार्य क्षेमराज ने विज्ञानभैरव के 'भूयो भूयः परे भावे.....जप्य ईदृशः' श्लोक को भी अपनी पुष्टि में उद्धृत किया है। आगे वे पुनः विज्ञान-भैरव के निम्न श्लोक को भी उद्धृत करते हैं—

सकारेण बहिर्याति हकारेण विशेत्पुनः।
हंसहंसेत्यतो मन्त्रं जीवो जपति नित्यशः।।

षट्शतानि दिवा रात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः।
जपो देव्याः विनिर्दिष्टः सुलभो दुर्लभो जडैः।।[१]

सारांश यह कि अहोरात्र में २१६०० बार जीवों द्वारा 'हंस' मन्त्र का अजपा जप किया जाता रहता है और यही अजपा जप एक स्वाभाविक जप है।

जयरथ (विवेक) ने कहा था कि शिव के परा वाक् स्वभाव, अनाहत नादमय स्वरूप का बार-बार परामर्श करना ही 'जप' कहलाता है और यह जप भाव एवं अभाव से निर्मुक्त तथा भावाभाव दशाओं के मध्य स्फुरित होने वाले संवित्स्वरूप का बोध है।[२]

अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि— अभिनवगुप्तपादाचार्य ने 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्ति-विमर्शिनी' में यह शंका उठाई है कि जप-सिद्धि तो शब्दों की आवृत्ति से ही होती है; किन्तु परा वाक् स्वभाव अनाहत नाद का जप कैसे किया जा सकता है?

वे इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार स्वात्मस्वरूप मात्र एक बार ही प्रकाशित होता है, बार-बार प्रकाशित नहीं होता, उसी प्रकार जप भी मात्र एक बार ही प्रत्यभिज्ञात होता है, बार-बार नहीं। अपनी प्राणशक्ति के इस स्वाभाविक एवं मन्त्रा-त्मक व्यापार की एक बार भी प्रत्यभिज्ञा कर ली जाय तो इस प्रत्यभिज्ञा हेतु बार-बार प्रयास नहीं करना पड़ता।[३]

नित्याषोडशिकार्णव की दृष्टि— नित्याषोडशिकार्णव (५.६) में कहा गया है कि श्रीचक्र का 'सकल' (सृष्टि-स्थिति-लयात्मक चक्र) या 'मध्य' (सनवयोनि चतुरस्रान्त सृष्टि-संहारात्मक चक्र) या 'बाह्य मध्य' (नवयोनि दशारद्वय चतुर्दशार चतुस्रान्त स्थिति चक्र) या इनमें से किसी एक चक्र को विधि-विधानपूर्वक अभ्यर्चित करके या हृदय में श्रीचक्र का ध्यान करके उसमें आसीन त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करके ध्यानयोग द्वारा मुद्राओं के साथ जप का आरम्भ करना चाहिये।[४]

चक्रमभ्यर्च्य विधिवत् सकलं परमेश्वरि !।
मध्यं वा केवलं देवि बाह्यमध्यगतञ्च वा।।

तदग्रसंस्थितो मन्त्री सहस्रं यदि वा जपेत्।
व्रतस्थः परमेशानि ततोऽनन्तफलं लभेत्।।

---

१. विज्ञानभैरव
२. जयरथ-विवेक
३. अभिनवगुप्तपाद : ईश्वर-प्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी
४. इस जप-विधान में श्रीचक्र, भगवती त्रिपुरा, ध्यान, मुद्रा आदि सभी को जप का अंग स्वीकार किया गया है।

ध्यात्वा वा हृद्गतं चक्रं तत्रस्थां परमेश्वरीम्।
पूर्वोक्तध्यानयोगेन सञ्चिन्त्य जपमारभेत्।।[1]

'पूर्वोक्तन्याससंयुक्तो, मुद्रासन्नद्धविग्रहः, मन्त्रविग्रहः, यन्त्रितः (चर्यापादोक्त क्रम द्वारा संयत) होकर जप करना चाहिये अर्थात् ये सभी मन्त्र के अङ्गभूत तत्त्व हैं।[2]

श्रीवैहायसी की दृष्टि— 'श्रीवैहायसी' नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि सन्धि-स्थल में नादोर्ध्व ध्वनि से बोधित जप करना चाहिये। जिस प्रकार सूत्र में मणि ग्रथित होते हैं, उसी प्रकार शक्ति के ताने-बाने से निर्मित मन्त्राक्षरों का ध्यान करना चाहिये। वह शक्ति परमव्योम में निवास करती है और परमामृत से समृद्ध है। उक्त रीति से जप करने पर ही मन्त्र स्वस्वरूप को प्रकट करता है, अपने आपको आवृत नहीं रखता; अन्यथा आवृत्त ही रखता है—

विषुवत्कं जपं कुर्यान्नादोर्ध्वध्वनिबोधितम्।
मन्त्राक्षराणि मणिवच्छक्तौ प्रोतानि भावयेत्।।

तामेव च परे व्योम्नि परमामृतबृंहिताम्।
दर्शयत्यात्मसद्भावमेवं मन्त्रो हुतिं विना।।[3]

श्रीकालपरा की दृष्टि— 'श्रीकालपरा' नामक ग्रन्त्र में कहा गया है कि मन्त्र का जप वर्णों की पुनरावृत्ति नहीं है; क्योंकि मन्त्र वर्ण नहीं आन्तर नाद हैं। संवित् तत्त्व मन्त्र बोधस्वरूप ही हैं; अतः नादात्मक मन्त्रजप के साथ संवित् तत्त्व की संलग्नता भी आवश्यक है; क्योंकि वही जप के द्वारा आत्मबोध कराती है—

शब्दो नादात्मकस्तस्मात् प्रत्ययेनोपबृंहितः।
मन्त्रबोधस्वरूपस्थमभिन्नो बोधयत्यपि।।[4]

हंसपारमेश्वर की दृष्टि— 'हंसपारमेश्वर' नामक ग्रन्थ में भी यही कहा गया है कि जिसे सामान्यतया 'मन्त्र' कहकर उसका जप किया जाता है, वह न तो मन्त्र है और न ही उसका जप वास्तविक जप है। मन्त्र के दो रूप हैं—

१. मन्त्र का पशुरूप— मुखोच्चारित, वैखरी वाक्-ग्राह्य वर्णरूप मन्त्र पशु है।

२. मन्त्र का पशुपतिरूप— सुषुम्णा मार्ग से उच्चारित मन्त्र ही यथार्थ मन्त्र हैं; वे पशुपतिस्वरूप हैं और उनका स्वाभाविक जप ही यथार्थ जप है। हंसपारमेश्वरकार कहते हैं—

पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवला वर्णरूपिणः।
सौषुम्णेऽध्वन्युच्चरिताः पतित्वं प्राप्नुवन्ति ते।।

स्पन्दप्रदीपिकाकार की दृष्टि— आचार्य उत्पल वैष्णव ने 'स्पन्दप्रदीपिका' में कहा है कि 'मन्त्र' अन्तर एवं बाह्य दोनों स्थानों में शुद्ध बोध के रूप में जब उदित होता

---

१. नित्याषोडशिकार्णव (५.४-६)
२. नित्याषोडशिकार्णव (५.७-१२)
३. श्रीवैहायसी
४. श्रीकालपरा

है, तभी वह यथार्थ मन्त्र है और उसका एक बार का भी जप लाख जप के समान होता है; क्योंकि वास्तविक जप यही है— 'एवं शुद्धबोधात्मकत्वेनान्तर्बाह्योदयादेकोऽपि जपो लक्षसङ्ख्याकः'।[१] इसीलिये कहा भी गया है—

एकस्य मन्त्रनाथस्याप्यन्तर्बाह्योदितस्य च।
यदैक्यं तं जपं विद्धि लक्षसङ्ख्याधिकं मुने।।

सङ्कर्षणसूत्रकार की दृष्टि— सङ्कर्षणसूत्र नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि मन्त्र प्रत्ययात्मक, स्वात्मैकनिष्ठ, चिद्रूप, भावाभाव-परिष्कृत, स्वसंवेदनसंवेद्य एवं प्रत्ययातीतगोचर हैं और यही उनकी योनि है—

स्वात्मैकनिष्ठं चिद्रूपं भावाभावपरिष्कृतम्।
स्वसंवेदनसंवेद्यं प्रकृत्यातीतगोचरम्।।

इयं योनिः स्मृता विप्र मन्त्राणां प्रत्ययात्मिका।[२]

सारांश यह है कि मन्त्र यथार्थतः चिद्रूप हैं, स्वात्मैकनिष्ठ हैं। 'मन्त्राश्चिन्मरीचयः' (मन्त्र आत्मा या चैतन्य की किरणें हैं) कहकर इसी तथ्य की पुष्टि भी की गई है; अतः जो अचिद्रूप बाह्य वर्ण हैं, वे न तो चैतन्याधिष्ठान हैं, न ही स्वात्मैकनष्ठ। वे न तो प्रकृत्यातीत हैं, न ही स्वसंवेदनसंवेद्य। अतः वे मन्त्र यथार्थ मन्त्र नहीं हैं और उनका जप भी यथार्थ जप नहीं है।

मन्त्र का स्वभाव, स्वरूप एवं तदनुरूप उनका जपक्रम— मन्त्र में चार तत्त्व मुख्य हैं— बीज, पिण्ड, पद और नाम। उनका धर्म है— मनन एवं त्राण। उनका बल है— निरावरण चित् तत्त्व का उल्लास (पराशक्ति का प्रत्यक्षीकरण)। उसी शक्ति को लेकर 'मन्त्र' सहज नादशक्ति से उद्बोधित होकर प्रदीप्त होते हैं। उनमें सर्वज्ञता आदि का बल आ जाता है। उनका प्रयोग करने पर मन्त्री अनुग्रह एवं निग्रह शक्तियों से युक्त हो जाते हैं और तब मन्त्र किङ्कर की भाँति मन्त्री की सभी आज्ञाओं का पालन भी करते हैं।

चिच्छक्ति के बल का स्पर्श न होने के कारण मन्त्र केवल जड़ वर्णमात्र (पशुमन्त्र) रह जाते हैं— 'अन्यथा तु प्रयत्नप्रयुक्ता अपि ते ये पूर्वोक्तसङ्कल्पत्वाद्या स्पन्दचिच्छक्तिबला स्पर्शात् केवलवर्णरूपमात्रारूपत्वान्मन्त्रपुत्रिकाकरणनिष्फचेष्टा भवन्ति। 'पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवला वर्णरूपिणः।'[३]

स्पन्दकारिकाविवृत्तिकार की दृष्टि— इसीलिये स्पन्दकारिकाविवृत्ति में आचार्य रामकण्ठ कहते हैं कि जिन तथाकथित मन्त्रों (मन्त्राक्षरों) ने परमेश्वर के साथ अभेदावस्था (अभिन्नावस्था, सामरस्य) नहीं प्राप्त किया है, वे उत्पत्ति एवं विनाशदोष से त्रस्त हैं। वे मन्त्र वर्णात्मक मात्र होने के कारण अचिन्त्य शक्ति का प्रदर्शन करना तो दूर रहा, एक

---

१. स्पन्दप्रदीपिका (उत्पल वैष्णव)
२. श्रीसङ्कर्षणसूत्र
३. स्पन्दप्रदीपिका (द्वि०-२६)

तिनके को भी टेढ़ा नहीं कर सकते— 'एते ह्यनासादितपरमेश्वराभेददशा उत्पादविनाशधर्मकवर्णमात्रात्मका तृणमपि कुब्जयितमशक्ता।'[१]

किन्तु ये ही मन्त्र परमेश्वर के साथ सामरस्य प्राप्त कर लेने पर कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथाकर्तुं आदि समस्त अप्रतिहत शक्तियों से युक्त हो जाते हैं— 'अप्रतिहतशक्तयो भवन्ति।'[२]

इसीलिये स्पन्दप्रदीपिका (स्पन्दसूत्र) में कहा भी गया है—

तदाक्रम्य बलं मन्त्रा सर्वज्ञबलशालिनः।
प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनाम्।।[३]

चूँकि समस्त भावों का समुद्भव आत्मा से ही है, संविद के आरोहण से ही परा, पश्यन्ती आदि वाणियों का भी उदय होता है, सम्पूर्ण विश्व संवित्-समन्वित है और संवित् के विना विश्व की सत्ता भी सम्भव नहीं है; अतः यदि 'मन्त्र' संविन्मय नहीं रहा तो वह मन्त्र 'मन्त्र' नहीं रहा और उसका जप 'जप' भी नहीं रहा। एक ही मन्त्रनाथ अन्तर एवं बाह्य दोनों में उदित होकर एक हो जाता है, बाह्य जिह्वा का व्यापारमात्र नहीं रह जाता और ऐसी स्थिति में जपा गया एक मन्त्र भी लक्ष संख्या से भी अधिक शक्तिशाली हो जाता है—

एकस्य मन्त्रनाथस्याप्यन्तर्वाह्योदितस्य च।
यदैक्यं तं जपं विद्धि लक्षसङ्ख्याधिकं मुने।।[४]

मन्त्रों के उदय के विषय में पुष्कल प्रकाश डाला जा चुका; अतः अब इसके लय के विषय में भी जानना चाहिये।

मन्त्र का उदय— सुषुम्णागत नाद से, संविदुल्लास से, शिव के साथ अभेद-प्रतिपत्ति से, मन्त्री एवं मन्त्रदेवता के अभेद से मन्त्र का उदय होता है।

मन्त्र का लय— साधक के चित्त में मन्त्र का लय होता है—

तदाक्रम्य बलं मन्त्राः सर्वज्ञबलशालिनः।
प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनः।। (स्पन्दसूत्र-२.२६)

तत्रैव सम्प्रलीयन्ते शान्तरूपा निरञ्जना।
सह साधकचित्तेन तेनैते शिवधर्मिणः।। (स्पन्दसूत्र-२.२७)

जहाँ से मन्त्रों का उदय होता है, वहीं वे लीन हो जाते हैं। 'तत्रैव' (उसी परम-कारण स्वस्वभाव शिव में)। वे लीन हो जाते हैं अर्थात परमशिव के साथ एकता प्राप्त कर लेते हैं— 'शिवे परमकारणे स्वस्वभावे सम्प्रलीयन्ते तदैक्यमुपगच्छन्ति'।[५]

---

१. स्पन्दकारिकाविवृत्ति (रामकण्ठाचार्य)
२. रामकण्ठाचार्य (स्पन्दकारिकाविवृत्ति)
३. स्पन्दसूत्र (२.२६)
४. जयाख्य संहिता
५. स्पन्दकारिकाविवृत्ति (रामकण्ठाचार्य)

मन्त्र सर्वज्ञ एवं सर्वकर्ता हैं— 'सर्वज्ञाः सर्वकर्तारः।' जो मन्त्रचेता होते हैं, उनके मन्त्रों का उदय एवं लय दोनों ही परमकारणस्वरूप शिव के साथ अभेदप्रतिपत्ति से ही होता है— 'मन्त्रचेतसोः उदयास्तमयदशयोः परमकारणाच्छिवाभेदः।'[१]

इस प्रकार तो शिव-शक्ति ही मन्त्रात्मक एवं साधक-चित्तात्मक होकर वर्णसङ्कल्प का रूप धारण करके उदित होती है और वही मन्त्र है— 'इति मन्त्रात्मकतया साधक-चित्तात्मकतया च शिवशक्तिरेव वर्णसङ्कल्पादिरूपधारिणी उदिता।'[२] जो अनासादित स्वस्व-भाव (आत्मबलस्पर्श से हीन) साधक हैं, उनमें यह शक्ति भेद (विभ्रम) उत्पन्न करके साधकों को नियतार्थ (मन्त्रसिद्धि) से वञ्चित कर देती है— 'अनासादितस्वस्वभावबल-स्पर्शप्रतिपत्तीनां साधकानां भेदविभ्रममुत्पादयन्ती नियतार्थसाधनाधिकाराय पर्यवस्यति।'[३] किन्तु यथार्थ मन्त्री तो विना नियत नियम-पालन एवं कर्तव्य-निष्पादन आदि के भी सर्वार्थसाधनाधिकारी हो जाते हैं— 'सर्वार्थसाधनाधिकारिणो भवन्ति तत्तदितिकर्तव्यता-साहित्यनियमाद्यपेक्षां विना।[४]' इसी से मन्त्रों को शिवधर्मी एवं स्वभावबलाक्रमणसिद्ध तथा वीर्यवान कहा गया है— 'स्वभावबलाक्रमणमेव सिद्धं स्वतो मन्त्राणां वीर्यं प्रत्यवभ्रष्टव्यं योगिना।'[५]

ये मन्त्र शक्तिमान स्वभाव में लीन हो जाते हैं; क्योंकि ये स्वस्वभाव के अनुगामी एवं शक्तिरूप हैं। 'तत्रैव' = स्वस्वभाव शक्ति में (लीन हो जाते हैं)।[६] मन्त्र भी सर्वज्ञ एवं सर्वकर्ता होते हैं।[७]

जप्य के साथ जापक की एकता, मन्त्रोपास्य के साथ मन्त्री का अभेद या मन्त्र एवं मन्त्री दोनों का अपने देवता के साथ अभेद-प्रतिपत्ति ही 'जप' का यथार्थ लक्षण है। 'श्रीकालपरा' नामक ग्रन्थ में कहा गया है—

१. पर अक्षर एक वृक्ष है और उसमें अनेक शक्तियाँ निहित हैं।
२. उनके विवर्त 'शक्ति' के रूप में वर्णाकार उद्भूत होते हैं।
३. ये ही शक्तियाँ वर्णविग्रह होकर प्राणियों के मुख से वर्णरूप में प्रकट होती हैं।

यदि वर्ण शक्तियाँ हैं तो मन्त्र का जप भी वर्णों का जप नहीं, शक्ति का जप (चिद्रूपा संवित् शक्ति से चेतन ध्वन्यात्मक वर्णों का जप) होना चाहिये, चैतन्योल्लासात्मक जप होना चाहिये, शक्त्यात्मक जप होना चाहिये; क्योंकि—

परार्क्षरतरोर्धातुर्नानाशक्तेर्विवर्तगाः ।
शक्तयो वर्णदेहेषु वक्त्राद्वर्णत्वमागताः।।[८]

शिवसूत्रकार एवं शिवसूत्रविमर्शिनीकार ने शिवसूत्र के द्वितीय उन्मेष में मन्त्र को

---

१. स्पन्दकारिकाविवृत्ति (रामकण्ठाचार्य)
२. स्पन्दकारिकाविवृत्ति (रामकण्ठाचार्य)
३. स्पन्दकारिकाविवृत्ति (रामकण्ठाचार्य)
४. स्पन्दकारिकाविवृत्ति (रामकण्ठाचार्य)
५. स्पन्दकारिकाविवृत्ति (रामकण्ठाचार्य)
६. उत्पलवैष्णव : स्पन्दप्रदीपिका
७. उत्पलवैष्णव : स्पन्दप्रदीपिका
८. श्रीकालपरा

'शाक्तोपाय' स्वीकार किया है और कहा है कि शाक्तोपाय तो वही हो सकता है, जो शक्तिप्राण या शक्त्यात्मक हो; अतः 'शक्ति' स्वयमेव मन्त्रवीर्यस्फाररूपा है— 'इदानीं शाक्तोपायः प्रदर्श्यते; तत्र शक्तिः मन्त्रवीर्यस्फाररूपा।' 'मन्त्र' क्या है? 'चित्तं मन्त्रः' अर्थात् चित्त ही मन्त्र है।[१] 'चित्त' क्या है?—

१. चेत्यते विमृश्यते अनेन परं तत्त्वमिति चित्तम्।

२. पूर्णस्फुरत्तासततत्त्वप्रासादप्रणवादिविमर्शरूपं संवेदनम्, तदेव मन्त्र्यते गुप्तम्।

३. अभेदेन विमृश्यते परमेश्वरूपमनेन इति कृत्वा मन्त्रः।[२]

सारांश यह कि परस्फुरत्तात्मक मननधर्मात्मकता एवं भेदमयसंसारप्रशमनात्मक त्राण-धर्मता ही मन्त्र का लक्षण है। मन्त्र 'विचित्रवर्णसङ्घट्टनामात्रकम्' ही नहीं हैं; प्रत्युत ये 'मन्त्र-देवताविमर्शपरत्वेन प्राप्ततत्सामरस्यम्' भी हैं।[३] क्योंकि इन लक्षणों से रहित मन्त्र 'मन्त्र' ही नहीं हैं—

उच्चार्यमाणा ये मन्त्रा न मन्त्राश्चापि तान्विदुः।
मोहिता देवगन्धर्वा मिथ्याज्ञानेन गर्विताः।।[४]

शक्ति ही मन्त्रों की आत्मा है; अतः उससे रहित मन्त्र निष्फल हैं—

मन्त्राणां जीवभूता तु या स्मृता शक्तिरव्यया।
तया हीना वरारोहे निष्फलाः शरदभ्रवत्।।[५]

जापक एवं जप, मन्त्री एवं मन्त्र में ऐक्य ही यथार्थ जप है; क्योंकि—

पृथङ्मन्त्रः पृथङ्मन्त्री न सिद्ध्यति कदाचन।
ज्ञानमूलमिदं सर्वमन्यथा नैव सिध्यति।।[६]

जप का स्वरूप— इन्हीं आत्मभूत तत्त्वों को ध्यान में रखकर आचार्य अभिनव गुप्तपाद ने तन्त्रालोक (आह्निक-१२) में कहा है—

सम्पूर्ण के अनुसन्धान को निष्कम्प करते हुये दृढ़ता के साथ अन्तर्जल्प करने वाले साधक की स्वात्म-विमर्श-प्रक्रिया ही 'जप' है।

अन्तर्जल्प (योगयुक्त विमर्श) ही 'जप' है।

सम्पूर्णत्वानुसन्धानमकम्पं दार्ढ्यमानयन्।
तथान्तर्जल्पयोगेन विमृषञ्जपभाजनम्।। (१२.१०)

अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि— आचार्य अभिनवगुप्त 'तन्त्रालोक' (आ०-४.१९४) में जप को पारिभाषित करते हुये कहते हैं कि स्वाभाविक अहंपरामर्श में विश्रान्त योगी जो भी व्यवहार करता है, जो विमर्श या परामर्श करता है और प्रसार-प्रक्रिया पूर्ण करता है, वह सब उसका 'जप' ही है। एक प्रकार से वह स्वात्म देवता का अनवरत आवर्तन

१. शिवसूत्र
२. क्षेमराज : शिवसूत्रविमर्शिनी
३. क्षेमराज : शिवसूत्रविमर्शिनी
४. सर्वज्ञानोत्तर
५. श्रीतन्त्रसद्भाव
६. श्रीकण्ठी संहिता

करता है। उसका यह आवर्तन उसके लिये मन्त्रस्वरूप होता है। कोई श्लोक, कोई कविता, कोई गाथा या कथोपकथन 'सोऽहं' के विमर्श-परिवेश में करता है तथा उसे साक्षीभाव से देखता रहता है, वह सब कुछ मन्त्रात्मक हो जाता है। इसीलिये 'शिवसूत्र' में कहा गया है कि 'कथा ही जप है।' कोई बात भी करे तो वह भी 'जप' ही हो जाता है। निष्कर्ष यह कि इस आदिमान्त्य मन्त्रपरामर्श से पीछे कहे जप आदि के समान ही शक्ति का सञ्चार होता है।

स्वाभाविक अहंपरामर्श में विश्रान्त योगी का विमर्श या परामर्श जप ही है—

अकृत्रिमैतद्धृदयारूढो यत्किञ्चिदाचरेत्।
प्राण्याद्वा मृशते वाऽपि स सर्वोऽस्य जपो मतः।।[१]

श्लोकगाथादि यत्किञ्चिदादिमान्त्ययुतं यतः।
तस्माद्विदंस्तथा सर्वं मन्त्रत्वेनैव पश्यति।।[२]

अकृतमाहम्परामर्शविश्रान्तो हि योगी तदनुवेधेन यत्किञ्चिद्वाह्यव्यवहारयोग्यं व्याहरेत् सोऽस्य सर्वो जपः। सर्वमेवास्य स्वात्मदेवताविमर्शानवरतावर्तनात्मत्वेन मन्त्ररूपतया परिस्फुरेत्।[३]

मन्त्रजप वर्ण एवं भगवती का अन्तःसम्बन्ध

'सर्वे वर्णाः शिवात्मकाः' अर्थात् समस्त वर्ण भगवत्स्वरूप हैं; अतः मन्त्रों का सम्बन्ध भगवती के परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी रूपों से है; किन्तु इन मन्त्रों का साक्षात् सम्बन्ध भगवती के सूक्ष्मतम रूपों— परा एवं पश्यन्ती वाक् से है। परा वाक् एवं पश्यन्ती वाक् ज्योतिर्मय एवं नादात्मक है। पश्यन्ती भूमि के ऊपर परा भूमि है, जहाँ भगवती अभेदात्मक रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। इसी रूप में उनका विमर्शन होता है— 'पश्यन्त्युपरि परा भूमिः भगवती यत्र सर्वमभेदेनैव भाति च विमृश्यते च। एतच्छक्तिभेदत्रयोत्तीर्णा तच्छक्त्यविभागमयी संविद्भगवती भट्टारिका परा अभिधेयम्। पश्यन्ती च परापराभट्टारिकासतत्त्वापरशक्तेरेव स्वात्मशक्तिर्दर्पणकल्पा यत्र तत्पराभट्टारिकास्वरूपमेव चकास्ति प्रतिबिम्बवत्।'[५]

जप एवं अर्थभावन— 'तज्जपस्त्वर्थभावनम्' (पातञ्जलयोगसूत्र)। स्वामी विवेकानन्द 'राजयोग' में कहते हैं—

1. The repetition of this 'om' and meditating on its meaning is the way.

2.Why should there be repetition? We have not forgotten the theory of 'samskaras' that the sum total of impressions live in the

१. तन्त्रालोक (४.१९४)
२. तन्त्रालोक (अभिनवगुप्त) : विवेक में उद्धृत
३. जयरथ-'विवेक' (श्लोक-१९४)
४. अभिनवगुप्त : परात्रिंशिकाविवृत्ति
५. परात्रिंशिकाविवृत्ति

mind. They become more and more latent but remain there and as soon as they get the right stimulus, they come out.

3. Molecular vibration never ceases. When the universe is destroyed, all the massive vibrations disappear; the sun, the moon, the stars and the earth melt down but the vibrations remain in the atoms. Each atom performs the same function as the big world do.

व्यास मुनि की व्याख्या— 'प्रणवस्य जपः प्रणवाभिधेयस्य चेश्वरस्य भावनम्। तदस्य योगिनः प्रणवं जपतः प्रणवार्थञ्च भावयतश्चित्तमेकाग्रं सम्पद्यते। तथा चोक्तम्—

स्वाध्यायाद्योगमासद्योगात्स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।।'

अर्थात् प्रणवाभिधेय ईश्वर का भावन (ध्यान) करना चाहिये। योगी के द्वारा प्रणव का जप करते समय प्रणव के अर्थभूत ईश्वर का भी ध्यान करने से चित्त एकाग्र हो जाता है। ॐकार के जप एवं ईश्वर की भावना (ध्यान) से परमात्मा का साक्षात्कार होता है। ('स्वाध्यायमामनेत्' अर्थात् जप का अभ्यास करना चाहिये = ईश्वरार्थभावनापूर्वक ॐकार का जप करना चाहिये। विना अर्थ जाने जप करना उचित नहीं है।) पतञ्जलि कहते हैं कि भावनपूर्वक जप से जीवात्मा के स्वरूप का दर्शन एवं विघ्नों का अभाव होता है— 'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तराया भावश्च।' (योगसूत्र-१.२९)।

वाचस्पति मिश्र की व्याख्या— भावन = बार-बार चित्त में निवेशन (तत्त्व-वैशारदी)। इसका फल क्या होगा?— 'तत ईश्वरः समाधिवत्फललाभेन तमनुगृह्णाति' (तत्त्ववैशारदी)।

विज्ञानभिक्षु की व्याख्या— 'योगवार्तिक' (विज्ञानभिक्षु) : प्रणवजपेन सह ब्रह्म-ध्यानं प्रणिधानम्, तच्च वाच्यवाचकभावं ज्ञात्वा कर्तव्यमिति।' 'प्रणवेन परंब्रह्म ध्यायीत नियतो यतिः।'

गरुडपुराण में प्रणवार्थ के अनेक भेदों का वर्णन किया गया है—

व्यक्ताव्यक्ते च पुरुषस्तिस्रो मात्राः प्रकीर्तिताः।
अर्धमात्रा परं ब्रह्म ज्ञेयमध्यात्मचिन्तकैः।।

प्रणवार्थ चिन्तन के दो प्रकार हैं। प्रथम प्रकार है— सर्वं खल्विदं ब्रह्म के रूप में और द्वितीय है— प्रकृति, उसके कार्य एवं उसके पुरुष के विवेचनपूर्वक प्रकृतिपुरुष-विवेक के बाद ब्रह्मचिन्मात्र आत्मचिन्तन। प्रकृति एवं पुरुष दोनों का विलापन करके अवशिष्ट ब्रह्म में अहम्भावानुभूति।

प्रणिधान → एकाग्रता → परमात्मसाक्षात्कार → पर वैराग्य → असम्प्रज्ञात योग।

भोजराज की दृष्टि— भोजराज 'भोजवृत्ति' में कहते हैं— 'तस्य सार्धत्रिमात्रस्य प्रणवस्य जपो यथावदुच्चारणं तद्वाच्यस्य चेश्वरस्य भावनं पुनःपुनश्चेतसि विनिवेशनमेकाग्रताया

उपाया:। अत: समाधिसिद्धये योगिना प्रणवो जप्यस्तदर्थश्च भावनीय इत्युक्तं भवति' (राजमार्तण्ड)।

भावगणेश की दृष्टि— भावगणेश 'प्रदीपिका' में कहते हैं— 'प्रणवस्य जप: प्रणवार्थस्य ब्रह्मणश्चिन्तनं धारणाध्यानसमाधिरूपं प्रणिधानमिति शेष:।'

जपंश्च प्रणवं नित्यं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
कोटिसूर्यसमं तेजो ध्यायेदात्मनि निर्मलम्।।

प्रणव का जप ध्यान का प्रथमाङ्ग है— 'प्रणवजपस्य प्राथमिकध्यानाङ्गत्वम्।'

नागोजी भट्ट की दृष्टि— नागोजी भट्ट 'योगवृत्ति' में कहते हैं— 'तस्य प्रणवस्य जप: तेन सहाचिन्त्यैश्वर्ययुक्तस्य तदर्थस्य परमात्मन: श्रद्धाद्यैर्भावनं ध्यानम्। वाच्यवाचकभावं ज्ञात्वा क्रियमाणं सर्वार्थदमुपासनम्। प्रणवे ब्रह्मविष्ण्वादिध्यानमपि तदन्तर्यामिचैतन्यम्।

वाचक = प्रणव। वाच्य = ईश्वर।

सदाशिवेन्द्रसरस्वती की दृष्टि— सदाशिवेन्द्र सरस्वती 'योगसुधाकर' में कहते हैं— 'तस्य प्रणवस्य यो जप: तस्मिन् दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारैस्तदर्थासङ्गचिद्रूपेश्वरभावना-पुर:सरं प्राधान्येन दृढमासेविते सति पश्चात् स्वत एवं वाग्व्यापाररूपे तस्मिन्प्रलीने वाचकस्य न्यग्भावात्तदर्थासङ्गचिद्रूपगोचरवृत्तिसन्तानरूपभावनायां दीर्घकालादिभिर्दृढ़मासेवितायाम्। तत: तत्प्रसादेन चित्तं निरोधाभिमुखं प्रत्यासत्त्यभावेनेश्वरं विश्रान्तिभूमितया लभमानं तत्तत्सा-दृश्यात्स्वस्वामिनमसङ्गं चिद्रूपमात्मानं स्मारयित्वा अविषयतया तमप्यलभमानं निरन्धि-नाग्निवत्स्वयं संस्कारावशेषं भवति। तत: प्रत्यक्चेतनाधिगम:।' (योगसुधाकर)

भास्कारराय का मत— भास्कारराय 'वरिवस्यारहस्यम्' में कहते हैं— 'नार्थज्ञान-विहीनं शब्दस्योच्चारणं फलति। भस्मनि वह्निविहीने न प्रक्षिप्तं हविर्ज्वलति। अर्थमजानानां नानाविधशब्दमात्रपाठवतामुपमेयश्चक्रीवान् मलयजभारस्य वो दैव।'

'यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य' अर्थात् जिस मन्त्र का जप किया जाता है, उसके अर्थ का ज्ञान न होने पर भी अर्थात् उसके अर्थ का चिन्तन किये विना ही यदि जप किया जाता है तो उसका यह शब्दोच्चारणमात्र ही होगा, न कि जप; अत: यह जप निष्फल रहेगा। विना अग्नि के ठण्ढ़ी पड़ी भस्म में हवि डालने पर यह कभी नहीं जलती। इसी प्रकार मन्त्र का अर्थ न जानने वाला जापक मन्त्र के अनेक शब्दों का पाठ करने पर भी उसी प्रकार का है जिस प्रकार कि चन्दन के भार को ढ़ोने वाला गधा भार को तो जानता है; किन्तु चन्दन के सुगन्धरूप गुण को नहीं जानता।

इसीलिये भास्कारराय कहते हैं कि पुरुषार्थचतुष्टय की आकांक्षा रखने वालों को मन्त्रों का अर्थ अवश्य जानना चाहिये; अन्यथा उनकी समस्त आकांक्षायें नष्ट हो जाती हैं—

पुरुषार्थानिच्छद्भि: पुरुषैरर्था: परिज्ञेया:।
अर्थानादरभाजां नैवार्थ: प्रत्युतानर्थ:।। (१.५६)

ये अर्थ कौन हैं? भास्कर्राय निम्न अर्थों का उल्लेख करते हैं—

१. भावार्थ	८. शब्दरूपार्थ
२. सम्प्रदायार्थ	९. नामैकदैशार्थ
३. निगर्भार्थ	१०. शाक्तार्थ
४. कौलिकार्थ	११. सामरस्यार्थ
५. रहस्यार्थ	१२. समस्तार्थ
६. महातत्त्वार्थ	१३. सगुणार्थ
७. नामार्थ	१४. महावाक्यार्थ

'योगिनीहृदय' में भी अनेक अर्थों की विवेचना की गई है। 'स्थाणुरयं भारहार: किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्' (निरुक्त-१.५.२) कहकर अर्थज्ञानशून्य जप को निरर्थक घोषित किया गया है।

स्वामी विवेकानन्द 'राजयोग' में कहते हैं कि ब्रह्माण्डों में जो कार्य होता है, प्रत्येक परमाणु भी वही कार्य करता है। चित्त में होने वाले सभी कम्पन अदृश्य अवयव बन जाते हैं; फिर भी परमाणु के कम्पन के समान उनकी सूक्ष्म गति अक्षुण्ण बनी रहती है और ज्यों ही उन्हें कोई उत्प्रेरक (Stimulus) मिलता है; वे पुन: बाहर आ जाते हैं। 'जप' अर्थात् बारम्बार उच्चारण का तात्पर्य यही है। ॐकार का जप करना एवं उसके अर्थ का मनन करना ही आन्तरिक सत्सङ्गति है। जप करो और उसके साथ शब्द के अर्थ का ध्यान करो। ऐसा करने से देखोगे कि हृदय में ज्ञानालोक आयेगा और आत्मा प्रकाशित हो जायेगी। 'ॐ' शब्द पर मनन तो करोगे ही; पर साथ ही उसके अर्थ पर भी मनन करो। समस्त संस्कारों की समष्टि हमारे मन में है। ये संस्कार क्रमश: सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होकर अव्यक्तीभाव धारण करते हैं। ये लुप्त नहीं होते। ये मन के भीतर ही विद्यमान रहते हैं और उत्प्रेरक मिलते ही प्रकाश में आ जाते हैं। परमाणु कम्पन कभी बन्द नहीं करता। संसार के नष्ट हो जाने पर भी सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पृथ्वी सभी के लयीभूत हो जाने पर भी कम्पन का प्रवाह कभी लुप्त नहीं होता; परमाणुओं में कम्पन बचा ही रहता है।

जप के अङ्ग— योगिनीहृदय के 'पूजासंकेत' में जप के अनेक अंग बताये गये हैं; जैसे कि शून्य, अवस्था, विषुव आदि। कहा भी गया है—

शून्यषट्कं तथा देवि ! ह्यवस्थापञ्चकं पुन:।।
विषुवं सप्तरूपञ्च भावयन् मनसा जपेत्।
अग्न्यादिद्वादशान्तेषु त्रींस्त्रीन् त्यक्त्वा वरानने।।
शून्यत्रयं विजानीयादेकैकान्तरत: प्रिये।
शून्यत्रयात्परे स्थाने महाशून्यं विभावयेत्।
प्रबोधकरणस्याऽथ जागरत्वेन भावनम्।।

वह्नौ देवि ! महाजाग्रदवस्था त्विन्द्रियद्वयैः।
आन्तरैः करणैरेव स्वप्नमायावबोधकः।।

गलदेशे सुषुप्तिस्तु लीनपूर्वस्य वेदनम्।
अन्तःकरणवृत्तीनां लयतो विषयस्य तु।।

पूर्वर्णानां विलोमेन भ्रूमध्ये बिन्दुसंस्थिता।
तुर्यरूपं तथा चात्र वृत्तार्धादेस्तु संग्रहः।।

चैतन्यव्यक्तिहेतोस्तु नादरूपस्य वेदनम्।

तुर्यातीतं सुखस्थानं नादान्तादिस्थितं प्रिये।।

(योगिनीहृदय-१७६-१८२)

त्रिविधात्मक मन्त्र-जप— तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों में मन्त्र-जप के तीन प्रकारों का उल्लेख किया गया है— वाचिक, उपांशु एवं मानस। पराख्य संहिता में वाचिक जप को भाष्य जप भी कहा गया है।

'भाष्य जप' (वाचिक जप) वह होता है, जो क्षुद्र सिद्धियों की प्राप्ति हेतु अन्य श्रवणात्मक जप किया जाता है।

'उपांशु जप' मध्यसिद्धियों के लिये किया जाता है। यह स्वसंवेद्य जप हुआ करता है और इसमें बहुत कम ध्वनि हुआ करती है।

'मानस जप' जप का वह प्रकार है, जिसमें किसी श्रेष्ठतम सिद्धि प्राप्त करने हेतु जप किया जाता है और इसमें मात्र हृदय से (मन से) जप किया जाता है तथा यह पराश्रव्य होता है। यह भी कहा गया है कि अधम मन्त्रों का जप 'वाचिक', मध्यम मन्त्रों का जप 'उपांशु' एवं उत्तम मन्त्रों का जप सदैव मानसिक होना चाहिये।[१]

'नित्याषोडशिकार्णव' में भी इस त्रिविध मन्त्रजप का उल्लेख किया गया है—

निगदेनोपांशुना वा मानसेनापि सुव्रते। (५.७)

विभिन्न प्रकार के जपों के विभिन्न फल—

१. उपांशु जप → लक्षगुणित अधिक फल।

२. मानस जप → कोटिगुणित अधिक फल।

निगदेन यदा जप्तं लक्षं चोपांशुना फलम्।
मानसेन महेशानि कोटिजापफलं लभेत्।। (पौष्करागम)

विधियज्ञाज्जपो यज्ञो विशिष्टा दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः।। (ऋजुविमर्शिनी)

तीनों जपों के लक्षण निम्नानुसार हैं—

१. मृगेन्द्रागम (चर्यापद) पराख्य संहिता

मानस जप— उच्चारो मनसा स्थानध्यानवर्णप्रकल्पनात्।
मानसो जप इत्युक्तो योगमार्गप्रवर्तक:।।

उपांशु जप— उपांशुर्निजकर्णैकगोचर: सिद्धिदायक:।

वाचिक जप— सुस्पष्टवचनोच्चारो वाचिक: सिद्धिदायक:।।

(सिद्धिनाथपाद)

यथार्थ मानस जप— संयमेन्द्रियसञ्चारं प्रोच्चरेन्नादमान्तरम्।
एष एव जप: प्रोक्तो न तु बाह्यजपो जप:।।

(सङ्केतपद्धति)

वास्तविक जप नादानुसन्धानात्मक होता है और यह बाह्य नहीं; प्रत्युत आन्तर जप होता है।

'विज्ञानभट्टारक' में कहा गया है कि परम भाव में बार-बार जो भावना की जाती है और जो नादगर्भित होता है, वही मन्त्रात्मा जप 'जप' है—

भूयो भूय: परे भावे भावना भाव्यते हि सा।
जप: सोऽत्र स्वयं नादो मन्त्रात्मा जप्य ईदृश:।।

'अजपा जप' सर्वोच्च जप है। यह भी मानस जप ही है।

जपांग : 'विषुव'— सप्त विषुवों का स्वरूप निम्नांकित है—

योग: प्राणात्ममनसां विषुवं प्राणसंज्ञितम्।।

आधारोत्थितनादे तु लीनं बुद्ध्यात्मरूपकम्।
संयोगेन वियोगेन मन्त्राणानां महेश्वरि!।।

अनहताद्याधारान्तं नादात्मत्वविचिन्तनम्।
नादसंस्पर्शनात्तस्य नाडीविषुवमुच्यते।।

द्वादशग्रन्थिभेदेन वर्णानामन्तरे प्रिये।
नादयोग: प्रशान्तन्तु प्रशान्तेन्द्रियगोचरम्।।

त्रैपुर दर्शन में जप के लक्षण— त्रैपुर दर्शन में जप का जो स्वरूप है, वह अवस्था-पञ्चक शून्यषट्क विषुवत् सप्तक-चक्रनवक विभावना-संवलित है। अर्थात् जप निम्न अंगों से पूर्ण होने पर ही 'जप' कहलाता है; अन्यथा यथार्थ जप नहीं कहलायेगा—

पाँच अवस्थायें— जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, तुरीयातीत।

छ: शून्य— स्वप्न, बिन्दु, रोधिनी, नादान्त, व्यापिनी, उन्मना।

सात विषुव— प्राणविषुव, मन्त्रविषुव, नाडीविषुव, प्रशान्तविषुव, शक्तिविषुव कालविषुव, तत्त्वविषुव।

नौ चक्र— सर्वानन्दमय, सर्वसिद्धिप्रद, सर्वरोगहर, सर्वरक्षाकर, सर्वार्थसाधक, सर्वाशापरिपूरक।

इसीलिये भास्करराय ने 'वरिवस्यारहस्यम्' में कहा भी है—

एवमवस्थाशून्यविषुवन्ति चक्राणि पञ्च षट् सप्त।
नव च मनोरर्थाश्च स्मरतोऽर्णोच्चारणं तु जपः।। (१.५२)

अर्थानुसन्धान एवं उत्तम अंगों से गर्भित जप ही यथार्थ जप है। वामकेश्वरतन्त्र में भी जप-काल में चक्रभावना, अवस्थापञ्चक आदि का विधान है।

प्राणविषुव = प्राण, आत्मा एवं मन का परस्पर योग ही 'प्राणविषुव' है।

मन्त्रविषुव = अभिव्यज्यमान नाद की जापक द्वारा अपनी आत्मा के रूप में भावना करना 'मन्त्रविषुव' है।

नाड़ीविषुव = मूल मन्त्र के द्वारा छः चक्रों एवं बारह ग्रन्थियों का क्रमशः भेद होने पर मध्य नाड़ी में नाद का स्पर्श होता है। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त बीजशिखरवर्ती नाद के उच्चारित होने पर 'नाड़ीविषुव' होता है।

प्रशान्तविषुव = नादान्तपर्यन्त मन्त्रावयवों की शक्ति में लयभावना 'प्रशान्तविषुव' है।

शक्तिविषुव = शक्ति के मध्य स्थित नाद का समनापर्यन्त चिन्तन 'शक्तिविषुव' है।

कालविषव = कालातीत उन्मना तक नाद का चिन्तन ही 'कालविषुव' है।

तत्त्वविषुव = उन्मना के ऊपर जाने पर (नाद के लीन होने पर) स्वतः स्वात्मदर्शन होने लगना ही 'तत्त्वविषुव' है।

बीजमन्त्र (प्रणव) के अवयव (अवस्थाओं सहित)— बीजमन्त्र के बारह अवयव होते हैं— जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति— इन तीन अवस्थाओं के द्योतक होते हैं— अ, उ और म— ये तीन अवयव। शेष दो तुरीय एवं तुरीयातीत अवस्था के द्योतक होते हैं— बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी, समना और उन्मना— ये नौ अवयव।

न्यासों के प्रकार और उनका परिचय

वैसे तो न्यासों की संख्या अपरिमेय है; किन्तु प्रमुख न्यास अट्ठाईस हैं, जो निम्नांकित हैं—

१. सृष्टि न्यास
२. स्थिति न्यास
३. ऋष्यादि न्यास
४. कामेश्वर्यादि न्यास
५. करन्यास
६. मूलविद्या न्यास
७. हृदयादि न्यास
८. षोडशाक्षरी न्यास
९. महाषोडशाक्षरी न्यास
१०. अक्षरन्यास
११. दिङ्न्यास
१२. संहार न्यास
१३. लघु षोढा न्यास
१४. सम्मोहन न्यास

१५. स्तोत्रन्यास (सप्तशती न्यास)
१६. मातृका न्यास
१७. अन्तर्मातृका न्यास
१८. बहिर्मातृका न्यास
१९. आत्मरक्षा न्यास
२०. वाग्देवता न्यास
२१. गणेश न्यास
२२. बहिश्चक्र न्यास
२३. अन्तश्चक्र न्यास
२४. ग्रहन्यास
२५. नक्षत्र न्यास
२६. राशि न्यास
२७. पीठ न्यास
२८. योगिनी न्यास

शरीरावयवों में जो अवयव क्रियाशक्ति की दृष्टि से सुषुप्त हैं, हृदयान्तराल में जो भावना शक्ति मूर्च्छित है, उनको जागृत करने हेतु प्रयुक्त इन न्यासों के अनेक प्रकार हैं; यथा—

मातृका न्यास : स्वर एवं व्यञ्जनों का होता है।

मन्त्र न्यास : पूर्ण मन्त्र, मन्त्र के समस्त पद एवं मन्त्र के प्रत्येक अक्षर का होता है।

देवता न्यास : साधक के शरीर के बाह्याभ्यन्तर के अवयवों में अपने इष्टदेवता एवं अन्य देवताओं को यथास्थान स्थापित करने का है।

तत्त्व न्यास : संसार के कार्य-कारण के रूप में परिणत एवं इनसे परे स्थित तत्त्वों का शरीर में यथास्थान न्यास किया जाता है।

ऋष्यादि न्यास : इसके छ: अंग होते हैं— शिर में ऋषि, मुख में छन्द, हृदय में देवता, गुह्यस्थान में बीज, पैरों में शक्ति एवं सर्वाङ्ग में कीलक।

पीठ न्यास : देवता के रहने योग्य स्थान को 'पीठ' कहते हैं; यथा— कामाख्या, श्रीशैल, उड्डीयान आदि। शास्त्रीय विधि द्वारा आसन-विशेष भी पीठ के रूप में परिणत हो जाते हैं। पीठन्यास के प्रयोग से साधक का शरीर और अन्त:करण शुद्ध होकर देवता के निवास के योग्य 'पीठ' बन जाते हैं। समन्त्रक एवं अमन्त्रक (पीठों के प्रकार) पीठों की अपेक्षा मन्त्रशक्ति, भावशक्ति, प्राणशक्ति एवं अचिन्त्य दैवी शक्ति के मिश्रण से निर्मित यह साधक का शरीररूप पीठ तथा पीठन्यास ही उत्तम है। यह बाह्यालम्बनापेक्षी नहीं है। इसमें जिन तत्त्वों का भी न्यास किया जाता है, वे सभी शरीर में ही स्थित हैं। मन्त्र के द्वारा इन्हें अव्यक्त से व्यक्त या सूक्ष्म से स्थूल धरातल पर अवतरित किया जाता है। यह साधक को देवता का (निवासयोग्य) पीठ बना देता है।

ग्रहन्यास, राशिन्यास, नक्षत्रन्यास, योगिनी न्यास, गणेशन्यास आदि न्यास के अन्य अनेक प्रकार हैं; विस्तारभय से यहाँ सबका परिचय देना सम्भव नहीं है।

शरीर के प्रत्येक अवयव में, शरीर के प्रत्येक चक्र में, शरीर के समस्त पीठों में, समस्त इन्द्रियों में एवं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार अर्थात् सम्पूर्ण अन्त:करणचतुष्टय में देवता, मन्त्र, देवी, मन्त्राक्षर, ऋषि, छन्द, इष्टदेवता आदि सभी का निवास साधक को देवमय, चक्रमय, देवतामय एवं मन्त्रमय बना देता है।

सत्ता के दो स्तर

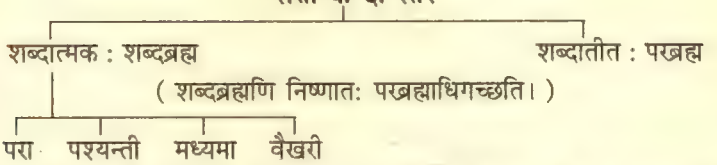

शब्दब्रह्म = परा वाक् → पश्यन्ती → मध्यमा → वैखरी = वैखरी विश्वविग्रहा।

परमात्मा की दो शक्तियाँ

समना (यह शक्तितत्त्व का आश्रय लेकर परमेश्वरेच्छावश सृष्टि करती है।), उन्मना (यह शिवतत्त्व का आश्रय लेकर परमात्मा की विमर्शहीन विश्वातीतावस्था की ओर उन्मुख रहती है।)

शब्द को पकड़कर ही मन्त्र के माध्यम से शब्दब्रह्म एवं उसके माध्यम से परब्रह्म की यात्रा करनी पड़ती है।

'जप' शब्दात्मक होता है, 'शब्द' ध्यन्यात्मक होता है, 'ध्वनि' नादात्मिका होती है और 'नाद' शब्दब्रह्मात्मक होता है।

जप के भेद— जप दो प्रकार के होते हैं— बाह्य और आन्तर। उनका विवरण इस प्रकार है—

जप

बाह्य जप	आन्तर जप : अप्रयत्नज जप
(जप में करने का भाव होना)	(स्वभाव का जप)
(कर्तारूप में अहम्भाव की विद्यमानता)	(जप अपने-आप होना, कर्तृभाव न होना)

बाह्य जप चार प्रकार का होता है— वाचिक, उपांशु, मानस एवं अजपा जप।

आन्तर जप तीन प्रकार से किये जाते हैं— हृदय में (मध्यमा मार्ग में प्रवेश का मार्ग या नाद का अपने-आप चलना। (मध्यमा भूमि में नादसहित मन्त्र स्वर्य ध्वनित होता है।), नाभि में एवं मूलाधार में।

मानस जप में भी कर्तृत्वाभिमान, जप करने का भाव, जप करने की संवेदना, श्वास पर ध्यान देकर अजपा जप का अनुसन्धान भी कर्तृत्वाभिमान से शून्य नहीं है; किन्तु विना प्रयास के 'हंसः/सोऽहं' का जप आन्तर जप हो जायेगा।

मध्यमा में प्रवेश के पूर्व बाह्य जप में नादश्रवण असम्भव होता है। बाह्य जप में मन्त्राक्षरों का पृथक्-पृथक् उच्चारण होता है।

आन्तर जप (आभ्यन्तर मन्त्रोपासना)—

संयमेन्द्रियग्रामं प्रोचरेन्नादमान्तरम्।
एष एव जप: प्रोक्तो न तु बाह्यजपो जप:।।

बाह्य जप प्रयत्नज जप है। इसमें मन्त्राक्षरों का पृथक्-पृथक् उच्चारण होता है। यह विकल्पमय है, यथार्थ मन्त्र नहीं। आन्तर जप नाद की प्रकटावस्था है।

नाद— हृदयकमल (हृदयाकाश) अर्थात् अनाहत प्रदेश में भगवती का आनन्दमय स्वरूप नादरूप में परिणत होकर चतुर्दिक संसर्पित होता रहता है। बहिर्मुखी मन इस नाद का सन्धान नहीं कर पाता।

नाद = 'भगवती शक्ति'।

विद्येश्वर गुरु के मुख से नि:सृत वाणी = 'मध्यमा वाक्'। इसका विस्तार हृदय से सहस्रार तक है। नौ नादों में यह प्रथम नाद है।

'बिन्दु' मात्रा से मात्राहीन की दिशा में जाने का द्वार है। यहाँ त्रिपुटी एकाकार है। यहाँ मात्राभंग के कारण अर्द्धमात्रा का भी उदय हो जाता है। यह भी मन्त्र का ही एक अंग है।

अर्द्धमात्रा आदि में प्रतिफलित चैतन्य ही 'मन्त्र' है।

प्रणवरूप मूल मन्त्र के अंग

बिन्दु अर्द्धचन्द्र रोधिनी नाद नादान्त शक्ति व्यापिनी समना उन्मना

- इनमें २, ४, ६, ८, १०, १२ 'शून्य' हैं।
- इनमें पाँच अवान्तर शून्य हैं और छठा 'महाशून्य' है।
- मन की मात्राओं में वृत्ति जड़ता बढ़ाती है।
- मन की जिस मात्रा से विश्व का अनुभव होता है, उसे एक मात्रा कहते हैं।
- मन प्राय: एक मात्रा में नहीं रहता।
- चिद्रश्मि सम्पात → मात्राओं का टूटना : चेतना की अधिक अभिव्यक्ति।

मन्त्रसाधना के अवयव

- ऋषि-छन्द-देवता-गुरु-न्यास-कवच-कीलक आदि अंग।
- मन्त्र।
- मन्त्रार्थभावना ('तज्जपस्तदर्थभावनम्'-पतञ्जलि)।
- ६ शून्य।
- ५ अवस्थायें— जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय एवं तुरीयातीत।
- ७ विषुव— प्राणविषुव, मन्त्रविषुव, नाडीविषुव, प्रशान्तविषुव, शक्तिविषुव, कालविषुव एवं तत्त्वविषुव।
- मन्त्रार्थ (वरिवस्यारहस्यम् में प्रोक्त अनेक मन्त्रार्थ) निगर्भार्थ, कौलिकार्थ, रहस्यार्थ, सम्प्रदायार्थ, भावार्थ महातत्त्वार्थ आदि।

● अन्तर्याग : महायाग।

मन्त्रसाधना— मात्रा से मात्राहीन की ओर यात्रा। मन की मात्रा को तोड़कर उसकी सूक्ष्म से सूक्ष्मतर मात्रा में अखण्ड एवं सतत् प्रयास → अमात्रक में स्थिति।

जपांग के रूप में जो प्रशान्तादि विषुव हैं, उनका स्वरूप इस प्रकार है—

नादयोगः प्रशान्तं तु प्रशान्तेन्द्रियगोचरम्।
वह्निमायां कलां चैव चेतनामर्धचन्द्रकम्।
रोधिनीनादनादान्तान् शक्तौ लीनान् विभावयेत्।।

विषुवं शक्तिसञ्ज्ञं तु तदूर्ध्वं नादचिन्तनम्।
तदूर्ध्वं कालविषुवमुन्मनान्तं महेश्वरि।।

मुनिचन्द्राऽष्टदशभिस्त्रुटिभिर्नादवेदनम् ।
चैतन्यव्यक्तिहेतुश्च विषुवं तत्त्वसंज्ञितम्।।

परं स्थानं महादेवि! निसर्गानन्दसुन्दरम्।
एवं चिन्तयमानस्य जपकालेषु पार्वति।।

सिद्धयः सकलास्तूर्णं सिद्ध्यन्ति त्वत्प्रसादतः।
एवं कृत्वा जपं देव्या वामहस्ते निवेदयेत्।।

जप के साथ ध्यान का सम्बन्ध अपरिहार्य है।

'ध्यान तत्त्व' साधना का प्राण है। इसीलिये आचार्य अमृतानन्द ने 'योगिनीहृदय-दीपिका' में कहते हैं— 'मनसि स्थिरे सति धारणा स्थिरा, तस्यां स्थिरायां तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्, विना ध्यानं पूजा निष्फला भवति।' इसलिये—

हुत्वा हुत्वा स्वयं चैवं सहजानन्दविग्रहः।
स्वप्रधा प्रसराकारं श्रीचक्रं पूजयेत् सुधीः।।

'श्रीपराक्रम' नामक ग्रन्थ में भी कहा गया है—

निवेद्य मस्तकस्थाय गुरवेऽर्घ्यं तदाज्ञया।
कल्पान्तहुतभुक्कल्पचिदग्नौ विश्वघस्मरे।।

मेदराशिमयं हव्यं वासनात्मोपदंशकम्।
व्यतिषङ्गेण स जुह्वज्ञपेदात्मानमामृशन्।।

अमृतानन्द योगी कहते हैं कि 'शिवादिभ्यो गुरुभ्यः शिवाभ्यश्च निवेद्य स्वात्माग्नौ हुत्वा ज्वलन् परमानन्दस्थिरधीर्भूयादित्यर्थः।' यहाँ ध्यान का स्वरूप निम्नानुसार है—

ध्यानं या निष्फला चिन्ता निराकारा निराश्रया।
न तु ध्यानं शरीरस्य मुखहस्तादिकल्पना।। (विज्ञानभैरव)

यहाँ का यज्ञ भी भावनाप्रधान है, जिसका स्वरूप भी ध्यानप्रधान है—

इन्द्रियद्वारसंग्राह्यैर्गन्धाद्यैरात्मदेवताम् ।
स्वभावेन समाराध्य ज्ञातुः सोऽयं महामखः।।

अर्थात् विज्ञानभैरव के निर्देशानुसार श्रोत्रेन्द्रिय आदि इन्द्रियों के विषय शब्दादि के अनुभव से जनित महानन्द द्वारा समरसीकरण करना ही परा पूजा है— 'विज्ञानभैरव-भट्टारकोक्तरीत्या श्रोत्रादीन्द्रियविषयशब्दाद्यानुभवजनितेन महानन्देन समरसीकरणं परा पूजा।'
(अमृतानन्द योगी : योगिनीहृदयदीपिका)

अमृतानन्द कहते हैं कि चैतन्य की रश्मियों का आधार होने के कारण श्रीचक्र ही देवी का परमासन है— 'षट्त्रिंशदिति षट्त्रिंशत्तत्त्वपर्यन्तं क्षित्यादिशिवान्तं तत्त्वसमुदाय-रूपमासनं परिकलप्य चिन्मरीचीनामाधारत्वादासनं श्रीचक्रम्।'

आसन के प्रकार

३६ तत्त्व — श्रीचक्र[१]

१. योगिनीहृदयदीपिका : अमृतानन्द।

पञ्चपञ्चाशत् अध्याय

ध्यानतत्त्व, ध्यान-साधना और त्रिपुरोपासना

ध्यान का स्वरूप— 'ध्यान' भगवती त्रिपुरसुन्दरी को प्राप्त करने का परम साधन है—

ध्यानगम्या परिच्छेद्या ज्ञानदा ज्ञानविग्रहा। (ललितासहस्रनाम)

'ध्यान' निश्चल बुद्धि है। इसमें आकारात्मक स्वरूप (संकोच) नहीं रहता। यह निराश्रित, स्वतन्त्र एवं पराश्रय-निरपेक्ष होता है। अनेकानेक इष्टों एवं उनके चित्रों में चित्रित मुखादिक शरीरावयवों की कल्पना ध्यान नहीं है। विज्ञानभैरव में कहा गया है—

ध्यानं या निश्चला बुद्धिर्निराकारा निराश्रया।
न तु ध्यानं शरीरस्य मुखहस्तादिकल्पना।।[1]

आचार्य जयरथ 'विवेक' में कहते हैं कि इस प्रकार का ध्याता साधक गतिरूप (गत्यात्मक) एवं अगतिरूप (स्थित्यात्मक) पूर्वोक्त चौदह स्थानों में से एक प्रकार से व्याप्तसदृश रहने की स्थिति बना चुका होता है। वह 'भैरव'रूप शिवसमावेश में स्थिर हो जाता है। भैरवसमावेश केवल ध्यान से ही नहीं, जप से भी प्राप्त होता है। १४ स्थान हैं— गति, स्थान, विकल्परूप स्वप्न, ज्ञानरूप जाग्रत, उन्मेषण, निवेषण, धावन, प्लवन, आयास, शक्तिवेदन, बुद्धि एवं उसके भेद, भाव, समस्त संज्ञायें और समस्त कर्म। ये १४ राम ही हैं।[2]

'शक्ति' मध्य नाड़ी के बीच बिसतन्तु के समान शोभायमान है। ध्याता उसी का ध्यान करता है। अन्तर्व्योमस्वरूपा उस देवी के द्वारा ही वह परम देव (शिव) प्रकाशित होता है—

मध्यनाडी मध्यसंस्थबिससूत्राभरूपया।
ध्यातान्तर्व्योमया देव्या तथा देवः प्रकाशते।।

आचार्य अभिनवगुप्तपाद 'तन्त्रालोक' (१२.९-११) में कहते हैं कि पूजा में अभेदानुभूति का ही महत्त्व होता है। अतः जब पदार्थ में सार्वरूप्य का अनुसन्धान हो जाता है तब वही ध्यान हो जाता है। तन्मयभाव से वस्तु का अर्पण एवं भेदाभाव ही पूजा है—

तत्रार्पणं हि वस्तूनामभेदेनार्चनं मतम्।
तथा सम्पूर्णरूपत्वानुसन्धिर्ध्यानमुच्यते।।

ध्यान के प्रकार— सामान्यतया ध्यान के दो प्रकार हैं : स्थूल और सूक्ष्म— 'स्थूलसूक्ष्मविभेदेन ध्यानं तु द्विविधं भवेत्।' 'सूक्ष्म ध्यान' में देवी को मन्त्रमय देह वाली माना जाता है— 'सूक्ष्मं मन्त्रमयं देहम्।' सूक्ष्मध्यान ज्ञानमय ध्यान है— सूक्ष्मं च प्रकृतं रूपं परं ज्ञानमयं स्मृतम्।[3]

---

१. तन्त्रालोक (प्रथम आह्निक) २. तन्त्रालोक (१.८९) ३. शाक्तानन्दतरङ्गिणी

'स्थूल ध्यान' का स्वरूप है— 'स्थूलं विग्रहचिन्तनम्।' अर्थात् शरीरावयवों से युक्त (सशरीर) देवता का ध्यान ही स्थूल ध्यान है।

भगवती— अरुणाभा भगवती के ध्यान का यह भी ध्यानविधान है—

अरुणाख्यां भगवतीमरुणाभां विचिन्तयेत्।
पाशाङ्कुशधरां देवीं धनुर्बाणधरां शिवाम्।।
वरदाभयहस्ताञ्च पुस्तकाक्षस्रगन्विताम्।
अष्टबाहुत्रिनयनां खेलन्तीममृताम्बुधौ।।
स करोत्येव शृङ्गाररसास्वादनलम्पटाम्।।[१]

'ध्यान' का स्वरूप क्या है? इस विषय में विज्ञानभैरव में इस प्रकार कहा गया है—

ध्यानं हि निश्चला बुद्धिर्निराकारा निराश्रया।
न तु ध्यानं शरीराक्षिमुखहस्तादिकल्पना।।

'ध्यै' चिन्तायाम् धातु से ल्युट् प्रत्यय लगाने पर 'ध्यान' शब्द निष्पन्न होता है।

'अमरौघप्रबोध' में कहा गया है कि अशेष वस्तु-विषय-व्यापारहीन मन की स्थिति ही 'ध्यान' है— 'तद्ध्यानं यदशेषवस्तुविषयव्यापारहीनं मनः।'[२]

'योगमार्तण्ड' में कहा गया है कि 'ध्यान' वह यौगिक प्रक्रिया है, जिससे अद्भुत ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, जबकि 'धारणा' से मनोधैर्य एवं 'समाधि' से मोक्ष की प्राप्ति होती है—

धारणायां मनोधैर्यं ध्यानादैश्वर्यमद्भुतम्।
समाधेर्मोक्षमाप्नोति त्यक्त्वा कर्म शुभाशुभम्।। (१०२)

बारह धारणाओं से एक 'ध्यान' निर्मित होता है। 'योगमार्तण्ड' में ही कहा गया है कि तत्त्व में निश्चल चित्तस्थिति को ही 'ध्यान' कहते हैं—

यस्तत्त्वे निश्चलं चेतः तद्ध्यानं च प्रचक्षते।

योगमार्तण्डकार ध्यान को इतना महत्त्वपूर्ण मानते हैं कि वे कहते हैं कि सहस्रों अश्वमेध यज्ञों एवं सैकड़ों वाजपेय यज्ञों के अनुष्ठान एवं निष्पादन से भी जो फल अधिगत होता है, वह फल ध्यानयोग की षोडशी कला का भी स्पर्श नहीं कर सकता—

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
एकस्य ध्यानयोगेन कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।

'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में गोरक्षनाथ कहते हैं कि परमाद्वैत का एक भाव है और वही 'आत्मा' कहलाता है। जो-जो वस्तु प्रतीत हो, उसमें आत्मस्वरूप की ही भावना करनी चाहिये। समस्त भूतमात्र में समदृष्टि, आत्मदृष्टि या आत्मस्वरूप की भावना ही 'ध्यान' है— 'अथ ध्यानमिति कश्चन परमाद्वैतस्य भावः स एवात्मेति यथा यद्यत्स्फुरति तत्तत्स्वरूप-

१. वामकेश्वरतन्त्र २. अमर प्रबोध (५५)

मेवेति भावयेत् सर्वभूतेषु समदृष्टिश्च इति ध्यानलक्षणम्।'

'योगसारसंग्रह' में विज्ञानभिक्षु कहते हैं कि किसी देशविशेष में वृत्त्यन्तराव्यवहित ध्येयाकारवृत्तिप्रवाह ही 'ध्यान' है— 'तत्र देशे ध्येयाकारवृत्तिप्रवाहो वृत्त्यन्तराव्यवहितो ध्यानम्।'

'ध्यानं निर्विषयं मनः' कहकर मन की निर्विषयता को भी 'ध्यान' की संज्ञा दी गई है।

महर्षि पतञ्जलि ने योगसूत्र (३.२) में प्रत्यय (ज्ञान) की एकतानता को 'ध्यान' नाम दिया है— 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।'

'राजमार्तण्ड' में भोजराज कहते हैं कि उस विशिष्ट देश में जहाँ चित्त लगा हुआ है, वहाँ प्रत्यय (ज्ञान) की जो एकतानता (विसदृश परिणाम-परिहार के माध्यम से) धारणा में अवलम्बनीकृत है, उसका आलम्बन के रूप में निरन्तर प्रादुर्भाव (प्रकटीकरण) ही 'ध्यान' है— तत्र तस्मिन्देशे यत्र धृतं तत्र प्रत्ययस्य ज्ञानस्य यैकतानता विसदृशपरिणाम-परिहारेण यदेव धारणायामलम्बनीकृतं तदालम्बनतयैव निरन्तरमुत्पत्तिः स ध्यानमुच्यते।'

'योगप्रदीप' में भावगणेश कहते हैं कि 'तत्र देशे चतुर्भुजादिध्येयाकारवृत्तिप्रवाहो ध्यानमित्यर्थः।' अर्थात् चतुर्भुज आदि का ध्येय आकारों में अपनी चित्तवृत्ति का जो प्रवाह है, वही 'ध्यान' है।

'योगवृत्ति' में नागोजी भट्ट कहते हैं कि 'तत्र देशे चतुर्भुजादिध्येयाकारवृत्तिप्रवाहो वृत्त्यन्तराव्यवहितो ध्यानमित्यर्थः। बुद्धिवृत्तौ वा तद्विवेकतश्चैतन्यचिन्तनम्। कारणोपाधावीश्वरचिन्तनमिति। द्वादशधारणाकालं च ध्यानम्।' वृत्त्यन्तराव्यवहित ध्येयाकार वृत्तिप्रवाह 'ध्यान' है तथा बारह धारणाओं का योग भी 'ध्यान' है।

'मणिप्रभा' में रामानन्द कहते हैं कि 'यत्र धारणाविजातीयवृत्तिपरिहारे यत्नापेक्षा भवति तत्रैव या प्रत्ययानां वृत्तीनामेकतानता यत्नमनसेक्ष्यैकविषयता तद्ध्यानमित्यर्थः।'

तद्रूपप्रत्ययैकाग्रसन्ततिश्चान्यनिस्पृहा ।
तद्ध्यानं प्रथमैरङ्गैः षड्भिर्निष्पाद्यते नृप।।

'योगसुधाकर' में सदाशिवेन्द्र सरस्वती कहते हैं कि 'तत्र यथोक्तदेशे प्रत्ययस्यैकतानता एकविषयप्रवाहः स च विच्छिद्य विच्छिद्य जायमानो ध्यानं भवति।'

व्यास जी ने 'योगभाष्य' में कहा है कि नाभिचक्र, हृदयपुण्डरीक, मूर्धा की ज्योति, नासिकाग्रभाग, जिह्वाग्र— इस प्रकार आन्तरिक देशों में ज्ञान की एकतानता ही 'ध्यान' है, उस धारणा वाले विषय में ध्येयरूप आलम्बन वाले (ध्येय पर ही केन्द्रित) एवं अन्य ज्ञानों से अस्पृष्ट ज्ञान की अविच्छिन्न तथा अभिन्न धारा ही ध्यान है— 'तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानतासदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्।'[१]

---

१. ध्येय का स्वभाववेश ही समाधि है— 'योगवार्तिक'।

तत्त्ववैशारदीकार कहते हैं कि 'धारणासाध्यं ध्यानम्, तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्, एकतानता एकाग्रता।'

'योगवार्तिक' में विज्ञानभिक्षु कहते हैं कि चिन्तन ही ध्यान है। 'गरुडपुराण' कहता है कि 'तस्यैव ब्रह्मणि प्रोक्तं ध्यानं द्वादशधारणा।। द्वादशप्राणायामकालेन धारितचित्तस्य कालावच्छिन्नं चिन्तनं ध्यानं प्रोक्तम्। ध्यानमेव ध्येयाकारनिर्भासं प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेण भवति।'

'शिवपुराण' में कहा गया है कि प्रगाढ़ भगवच्चिन्तन ही 'ध्यान' है। विक्षेपशून्य चित्त से जो इष्टदेव का पुनः पुनः चिन्तन किया जाता है, उसका नाम है— 'ध्यान'।

शिवपुराण की 'वायवीय संहिता' में कहा गया है कि—

● ध्येय में स्थित चित्त की जो ध्येयाकार वृत्ति होती है और मध्य में अन्य वृत्ति भेद नहीं उत्पन्न करती, उस ध्येयाकार वृत्ति का प्रवाह बने रहना ही 'ध्यान' है।

● ध्येय में स्थित चित्त की जो ध्येयाकार वृत्ति होती है और दोनों के मध्य द्वितीय वृत्ति अन्तर नहीं डालती; प्रत्युत उस वृत्ति की ध्येयाकार वृत्ति की प्रवहमानता ही ध्यान है।

'व्यासभाष्य' (३.१.२) में कहा गया है कि 'तस्मिन् देशे ध्येयावलम्बनस्य प्रत्ययैकतानतासदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापराममृष्टो ध्यानम्।'

ध्यान के प्रकार

'योगमार्तण्ड' के अनुसार ध्यान के दो प्रकार हैं— सगुण एवं निर्गुण (द्विधा भवति तज्ज्ञानं सगुणं निर्गुणन्तथा)।

'सन्त सुन्दरदास' के अनुसार ध्यान के चार प्रकार हैं— पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ एवं रूपातीत ध्यान।

ऋषि घेरण्ड का मत— जिस प्रकार 'नित्याषोडशिकार्णव' में ध्यान के तीन प्रकारों (विधाओं) का विवेचन किया गया है, उसी प्रकार घेरण्डसंहिता में भी किया गया है। 'घेरण्डसंहिता' के अनुसार ध्यान के तीन प्रकार हैं— स्थूल, ज्योति एवं सूक्ष्म (स्थूलं ज्योतिस्तथा सूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः)। घेरण्ड ऋषिप्रोक्त ध्यान के उपर्युक्त प्रकार तान्त्रिक ध्यान हैं और योगशास्त्र से सम्बद्ध हैं। ये तान्त्रिक दर्शन से सम्बद्ध ग्रन्थ के रूप में नही हैं।

स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं यथा।
सूक्ष्मं बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली परदेवता।। (घेरण्डसंहिता)

मूर्ति, तेज एवं बिन्दु— ध्यानयोग के में ये ही आलम्बन ध्यान के विभिन्न प्रकार हैं।

'राजयोग' में स्वीकृत ध्यान तीन हैं— विराट् ध्यान, ईशध्यान एवं ब्रह्मध्यान।

ब्रह्मध्यानं विराड् ध्यानं चेशध्यानं यथाक्रमम्।

ऋषि घेरण्ड का ध्यानयोग—

स्थूल ध्यान— किसी चेतन मूर्ति के रूप में सगुण, सावयव, विशिष्ट स्वरूप-संवलित देवता का अविच्छिन्न तैलधारावत् ध्येयाकार चिन्तन ही 'ध्यान' है। यह स्थूल-प्रकृतिक ध्यान है— 'स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तम्'।

ज्योतिर्ध्यान— यह तेजोमय ध्यान है— 'ज्योतिस्तेजोमयन्तथा' (उपदेश-६.१)।

सूक्ष्म ध्यान— यह बिन्द्वात्मक ध्यान है। इसका सम्बन्ध भगवती कुण्डली पर देवता से है, जो कि ब्रह्मस्वरूपा है—

सूक्ष्मं बिन्दुमयं ब्रह्मकुण्डली परदेवता।

स्थूल ध्यान की प्रथम प्रक्रिया— साधक कल्पना करे कि उसके हृदय में अमृत का समुद्र है और उसके मध्य सुरत्नवालुकामय रत्नद्वीप है। उसकी चारो दिशाओं में बहुपुष्पित नीम के पेड़ों से निर्मित निम्बोपवन की खाई-जैसा दुर्गात्मक प्राचीर है। ऐसा प्रतीत होता है, मानों निम्बोपवन ही दुर्ग की खाई है।

इसमें मल्लिका, मालती, चमेली, केशर, चम्पा, बकायन, स्थल कमल की सुगन्ध से दसों दिशायें सुगन्धित हो रही हैं। उसके मध्य यह ध्यान करना चाहिये कि एक मनोहारी कल्पतरु सुशोभित हो रहा है और उसकी चार शाखायें चार वेदों के रूप में सुशोभित हो रही हैं तथा भ्रमर एवं कोयल आदि गुञ्जार और सुमधुर कलरव कर रहे हैं। फिर वहाँ स्थिर होकर ध्यान करे कि कल्पतरु के नीचे महामाणिक्यों से निर्मित मण्डप स्थित है। फिर स्मरण करे कि उसके भीतर एक रत्नजटित एवं सुन्दर पर्यङ्क है और उस पर गुरुप्रोक्त विधि के अनुसार अपने इष्टदेवता के आसीन होने की कल्पना करे। उस देवताविशेष का जो रूप है, उसका जो भूषण है, उसका जैसा भूषण है, उन सभी से युक्त उस देवता के स्थूल स्वरूप का ध्यान करे।

स्थूल ध्यान की द्वितीय प्रक्रिया— ध्यानयोगी यह ध्यान करे कि ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रदल का एक कमल है और उस महापद्म की कर्णिका में द्वादश दलयुक्त एक पद्म स्थित है। यह द्वादशदल कमल श्वेतवर्णी, महातेजान्वित, द्वादश दलान्वित एवं यथाक्रम द्वादश बीजों से युक्त है। उसके द्वादश दल हैं— ह, स, क्ष, म, ल, य, र, यूं, ह, स, ख, फ्रें (ये इस क्रम से बीजमन्त्र हैं)।

यह भी ध्यान करे कि इस कर्णिका में अ, क, थ— ये तीन रेखायें हैं तथा इसके कोणों में ह, ल, क्ष अक्षर एवं उसके मध्य में ॐकार स्थित है।

योगी ध्यान करे कि वहाँ नादबिन्द्वात्मक एक मनोहर पर्यङ्क बिछा है, जिस पर एक हंसयुगल समासीन है तथा पादुका भी वर्तमान है। यहाँ यह ध्यान करे कि श्वेताम्बरी, शुक्ल गन्ध से सुगन्धित, त्रिलोचनी एवं द्विभुजी गुरु समासीन हैं। गुरुजी ने अपने गले में लाल रंग की माला धारण कर रक्खी है और लाल रंग की शक्ति से समन्वित हैं। ध्यानयोगी इसी स्वरूप के गुरु का ध्यान करे।

ज्योतिर्ध्यान की प्रथम प्रक्रिया— इस ध्यान से साधक आत्मा का साक्षात्कार करने लगता है— 'यद्ध्यानेन योगसिद्धिरात्मप्रत्यक्षमेव च।' इस ध्यान की प्रथम पद्धति इस प्रकार है—

मूलाधार चक्र में भुजङ्गाकाराकारित कुण्डलिनी शक्ति स्थित है। वहीं प्रदीपकलिका के आकार की आत्मा स्थित है। उसमें जो तेजोमय ब्रह्म स्थित है, उसका ध्यान करना चाहिये।

ज्योतिर्ध्यान की द्वितीय प्रक्रिया— भ्रुवद्वय के केन्द्र में तथा मन के ऊपर जो ॐकारमय तथा तेजावली-संवलित शिखा है, उसका ध्यान भी तेजोध्यान या ज्योतिर्ध्यान कहलाता है।

सूक्ष्म ध्यान की प्रक्रिया— ऋषि घेरण्ड अपने शिष्य चण्डकापालि से कहते है कि जिस योगी की कुण्डलिनी जागृत हो जाय, वह अत्यन्त भाग्यवान प्राणी होता है— 'बहुभाग्यवशाद्यस्य कुण्डली जागृता भवेत्।' वह कुण्डलिनी उस प्राणी की आत्मा के साथ मिलकर और आँखों के छिद्रों से निकलकर राजमार्ग में विहार करती है; किन्तु चञ्चल होने के कारण चक्षुगोचर एवं मनोगोचर नहीं हो पाती।

शाम्भवी मुद्रा का साधन कर उसका सतत् ध्यान करने पर उसका दर्शन भी हो जाता है। यही सूक्ष्म ध्यान कहलाता है।

ध्यानयोग— घेरण्ड ऋषि ने इन तीनों ध्यानपद्धतियों को समष्टि रूप में ध्यानयोग कहा है— 'इति ते कथितं चण्ड ! ध्यानयोगं सुदुर्लभम्'।

ध्यानत्रय की उत्कृष्टता का क्रम— 'स्थूल ध्यान' साधना की उत्कृष्टतम पद्धति है; किन्तु स्थूल ध्यान से १०० गुना उत्कृष्टतर 'तेजोध्यान' है और तेजोध्यान से लाख-गुना उत्कृष्टतर 'सूक्ष्म ध्यान' होता है—

स्थूलध्यानाच्छतगुणं तेजोध्यानं प्रचक्षते।
तेजोध्यानाल्लक्षगुणं सूक्ष्मध्यानं परात्परम्।।

इस ध्यानयोग से आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है—

इति ते कथितं चण्ड ! ध्यानयोगं सुदुर्लभम्।
आत्मा साक्षाद्भवेद्यस्मात्तस्माद्ध्यानं विशिष्यते।।

शिवसंहिता की यौगिक ध्यानप्रक्रिया या राजयोग— 'शिवसंहिता' में कहा गया है कि यदि ब्रह्मरन्ध्र में आधा क्षण भी मन ध्यानस्थ हो जाय तो प्राणी समस्त पापों से मुक्त होकर परम गति को प्राप्त कर लेता है।

जिस योगी का चित्त ब्रह्मरन्ध्र में लीन होने लगता है, वह अणिमा आदि समस्त सिद्धियों, गुणों का भोग कर शिव में लय प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्मरन्ध्र का ध्यान करने से इसका जो ज्ञान प्राप्त होता है, उससे वह साधक भगवान् का श्रेष्ठ बन जाता है तथा मुक्तिमार्ग का अधिकारी बनकर इस ज्ञान से दूसरों

को लाभान्वित कराकर उसका भी उद्धार कर देता है। 'ब्रह्मरन्ध्र' योगियों को परम प्रिय तो है ही; साथ ही इसका ज्ञान ब्रह्मादिक को भी कृच्छ्रलभ्य है।

सहस्रदल कमल के केन्द्र में स्थित 'योनिमण्डल' अद्भुत है। उसके नीचे के भाग में 'चन्द्रमण्डल' है, जिसका ध्यान करना चाहिये। इस चन्द्रमण्डल का ध्यान करने से ध्याता पृथ्वी पर सर्वाभिनन्दनीय हो जाता है।

शिर:स्थित कपाल के विवर में 'दुग्ध-महोदधि' को कल्पना करनी चाहिये तथा वहाँ स्थित प्रत्येक सहस्रदल कमल में चन्द्रमा का ध्यान करना चाहिये।

शिर में स्थित कपाल-विवर में षोडश कलापूर्ण एवं अमृतात्मक रश्मियों से संयुक्त 'हंस' नामक निरञ्जन का ध्यान करना चाहिये। इससे तीन दिनों के भीतर ही निरञ्जन का साक्षात्कार होता है।

इस उपर्युक्त ध्यान से भविष्यत् का ज्ञान हो जाता है, चित्त शुद्ध हो जाता है तथा पञ्चविध समस्त महापातक शीघ्र ही भस्म हो जाते हैं।

शिर:स्थित चन्द्र का दर्शन एवं ध्यान दोनों से ग्रह अनुकूल हो जाते हैं, उपद्रव नष्ट हो जाते हैं, रोग शान्त हो जाते हैं, समर में विजय प्राप्त हो जाती है, खेचरी-भूचरी सिद्ध हो जाती है और साधक सिद्ध हो जाता है। ऐसा साधक शिव के समान हो जाता है।

सहस्रार पद्म या 'कैलास' में स्थित शिव 'नकुल' कहलाते हैं। यह परम स्थान एवं हंसनिवास 'कैलास' है, जो ध्यान किये जाने पर समस्त व्याधियों को नष्ट कर देता है तथा चिरायु प्रदान करते हुये ध्याता को मृत्युञ्जयी बना देता है।

कुलाख्य परमेश्वर में चित्तवृत्ति के लगने पर समाधिसाम्य के द्वारा योगी निश्चल हो जाता है और जगत् विस्मृत हो उठता है। इसके ध्यान से विचित्र शक्तियाँ हस्तगत हो जाती हैं।

सहस्रदल कमल से क्षरित सुधा का पान करने से अमृतत्व की प्राप्ति होती है तथा कुण्डलिनी सहस्रकमल में विलीन हो जाती है। फिर चतुर्विधा सृष्टि भी परमात्मा में लीन हो जाती है। ऐसा ज्ञानोदय होने पर विषयाग्रहण होने पर चित्तवृत्ति विलीन हो जाती है। इसके फलस्वरूप योगी 'अखण्ड ज्ञानरूपी निरञ्जन' को प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्माण्ड के बहिर्भाग में स्वप्रतीक के विषय का ध्यान करना चाहिये और उसमें 'महच्छून्य' का ध्यान करना चाहिये, जो कि अनादि, अनन्त, मध्यरहित, कोटिसूर्यवत् देदीप्यमान एवं चन्द्रकोटिप्रतीकाश है। इसके ध्यान से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

इस शून्य का ध्यान करने से वर्ष भर के भीतर समस्त सिद्धियाँ हस्तगत हो जाती हैं। इस शून्य के ध्यान में क्षणपर्यन्त भी चित्त-स्थैर्य हो जाय तो वह यथार्थ योगी एवं भक्त बन जाता है। वह लोकत्रयपूजित तथा सर्वकल्मषसंघात से रहित हो जाता है,

उसका मृत्यु-संसारवर्त्म में परिभ्रमण नहीं होता। स्वाधिष्ठान मार्ग से उसका यत्नपूर्वक अभ्यास करना चाहिये।

शून्य का ध्यान करने से साधक अणिमादिक समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त कर लेता है। उसके ध्यान की महिमा शिव द्वारा भी अकथ्य है; केवल अनुभूतिगम्य है।[१]

देह में स्थित एवं चक्रों में समासीन देवता गरम वायु के ताड़न से काँपने लगते हैं और 'महामाया' कुण्डलिनी 'कैलास' नामक 'बिन्दु देश' में विलीन हो जाती है—

चक्रमध्ये स्थिता देवाः कम्पन्ते वायुताडनात्।
कुण्डल्यपि महामाया कैलासे सा विलीयते।।[२]

चाहे पिण्ड-स्थित चक्र हो या देवी-देवता हों या बाह्य अथवा आभ्यन्तर कोई अन्य पदार्थ हों, सभी ध्यान का विषय बनने पर एकाग्रता में वृद्धि करते हैं, मन को स्थिरता प्रदान करते हैं, चित्त की वृत्तियों को अन्तरोन्मुखी करते हैं और अन्ततः परमात्मा का साक्षात्कार कराते हैं।

'ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः' (२.२१), 'यथाभिभवध्यानाद्वा' (१.३९), 'तत्र ध्यानजमनाशयम्' (४.६) आदि योगसूत्र भी ध्यान को आध्यात्मिक साधना में अत्यन्तोपयोगी सिद्ध करते हैं।[३]

'मणिप्रभा' में कहा गया है कि 'इष्टं शिव-राम-कृष्णादिरूपं तदेव ध्यायेत्। तत्र लब्धस्थितिकमन्यत्रापि स्थितिं लभते।' 'योगचन्द्रिका' में भी कहा गया है कि 'यथाऽभिमते वस्तुनि बाह्ये आभ्यन्तरे नाडीचक्रादौ वा भाव्यमाने वेतसः स्थितिहेतुर्भवति।'

नागोजीभट्ट 'योगवृत्ति' में कहते हैं कि 'यदेवाऽभिमतं हरिहरमूर्त्त्यादि तदेव ध्यायेत्। तत्र लब्धस्थितिपदमन्यत्रापि स्थिरं भवति।'

भावगणेश 'योगवृत्ति' (दीपिका) में कहते हैं कि 'किं बहुना यदेवाभिमतं हृदि हरिहरमूर्त्यादिकं तदेवादौ ध्यायेत्। तस्मादपि ध्यानान्नियतस्थितिकं भवति।'

'राजमार्तण्ड' में भोजराज ने कहा है कि 'नानारुचित्वात्प्राणिनां यस्मिन् कस्मिन् वस्तुनि योगिनः श्रद्धा भवति, तस्य ध्यानेनापीष्टसिद्धिर्भवति।'

सारांश यह कि जिस साधक की जिस देवता, पदार्थ, वस्तु (आभ्यन्तर एवं बाह्य ध्येय पदार्थ) में रुचि हो, वह उसी पर ध्यान आकृष्ट करे। उससे एकाग्रता सिद्ध होने पर इसका उपयोग किसी भी उच्चतर उपलब्धि या लक्ष्य के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है।

'सांख्यप्रवचनसूत्र' में आसक्ति के अत्यय को 'ध्यान' का अभिधान दिया गया है—'रागोपहतिर्ध्यानम्' (सूत्र-१०)।

'भावनोपचयात् शुद्धस्य सर्वं प्रकृतिवत्' (सूत्र-२९) का आशय यह है कि गम्भीर

---

१. शिवसंहिता २. शिवसंहिता ३. योगसूत्र

ध्यान की शक्ति से शुद्ध स्वरूप पुरुष के पास प्रकृति की समस्त शक्तियाँ आ जाती हैं।

'ध्यान' मन की निर्विषयता है— 'ध्यानं निर्विषयं मनः।' 'ध्यान' चित्त की निश्चलता है, अखण्ड आनन्द एवं एकतान वृत्ति-प्रवाह है, तैलधारावत् नैरन्तर्य है, अविरत प्रवाहित एवं ध्येयाकारित चिन्तन है, मन की अविचल एकाग्रता है एवं प्रत्यय की एकतानता है— 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्' (योगसूत्र-३.२)।

देवी के ध्यान का विधान करते हुये शंकराचार्य 'सौन्दर्यलहरी' में कहते हैं—

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो
हरार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथफलाम्।
सः सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम्।।

अर्थात् साधक को चाहिये कि वह त्रिकोण के मध्य स्थित बिन्दुस्थान में भगवती के मुख का ध्यान करे अर्थात् बिन्दु को मुखस्थानीय मानकर वहाँ भगवती के सर्वा-तिशायी सौन्दर्य से मण्डित दिव्य मुख का ध्यान करे। उसके नीचे दो बिन्दु दायें-बायें मानकर उनमें उनके स्तनद्वय का ध्यान करे। कुचद्वय के नीचे देवी की योनि होने की कल्पना करे। मुख, स्तनद्वय एवं योनिरूप देवी के प्रधान अंगों में मारबीज (कामबीज) की कल्पना करके देवी के साथ अपनी तदात्मकता का ध्यान करे— 'साधकः त्रिकोणे बिन्दुस्थाने साध्यायाः कान्तायाः वक्त्रं ध्यात्वा तदधस्तात्तस्याः कुचयुगं ध्यात्वा, तत्कुचद्वयस्याधस्तात्तस्याः योनिं विचिन्त्य तत्र वक्त्रकुचद्वययोनिषु प्रधानाङ्गेषु मारबीजं सञ्चिन्त्य तया कान्तया आत्मनस्तादात्म्यं सम्पादयेत्।'[१] 'चतुश्शती' में भी कहा गया है—

बिन्दुं सङ्कल्प्य वक्त्रन्तु तदधस्तात्कुचद्वयम्।
तदधश्च हरार्धन्तु चिन्तयेत्तदधोमुखम्।।

तत्र कामकलारूपामरुणां चिन्तयेदिह।
ततस्तेनैव रूपेण निजरूपं विचिन्तयेत्।।

अन्यत्र यह भी कहा गया है कि—

बिन्दौ तद्वक्त्रमारोप्य तदधो बाहुयुग्मकम्।
तदधः कुचयुग्मं तु तदधो योनिमेव च।।

एतेषु पञ्चस्थानेषु पञ्चबाणान् विचिन्तयेत्।

पञ्चबाण बीज क्या हैं? मुख में, बाहुयुग्म में, कुच के मध्य एवं योनि के मध्य में यथाक्रम द्रां, द्रीं, क्लीं, ब्लूं— इस प्रकार ध्यान करना चाहिये। यही प्रयोग 'कामराज प्रयोग समय' भी कहा जाता है। अन्यत्र यह भी कहा गया है—

त्रिकोणे बैन्दवस्थाने अधोवक्त्रं विचिन्तयेत्।
बिन्दोरुपरिभागे तु वक्त्रं सञ्चिन्त्य साधकः।।

---

१. लक्ष्मीधरा-१९

तदुपर्येव वक्षोजद्वितयं संस्मरेद्बुधः।
तदुपर्येव योनिञ्च क्रमशो भुवनेश्वरीम्।
श्रीविद्यां कामराजञ्च विन्यस्याशु विमोहयेत्।।

'सनत्कुमारसंहिता' में मादनप्रयोग की दिशा में भी प्रयुक्त किया गया है।

ध्यान-पद्धति में देवी का ध्यान इस प्रकार भी बताया गया है कि हृत्कर्णिका के मध्य एक मनोहर सिंह स्थित है। सिंह के ऊपर एक रक्तकमल है, जिसके ऊपर शिव स्थित हैं तथा उनके ऊपर कामरूपिणी भगवती विराजमान हैं—

हृत्कर्णिकामध्ये ध्यायेत् सिंहं मनोहरम्।
सिंहोपरिस्थितं पद्मं रक्तं तस्योर्ध्वगः शिवः।
तस्योपरि महादेवी रमते कामरूपिणी।।[१]

श्वेत वर्ण के महादेव, रक्तकमलवत् ब्रह्मा, हरि एवं हर— ये महान् प्रकाशपुञ्ज ही उसके वाहन हैं।[२]

'वीरतन्त्र' में कहा गया है कि न्यास-ध्यान-पूजन आदि नियमों की बाध्यता से नारियाँ मुक्त हैं। उनको मात्र जप करने से ही मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं—

नियमः पुरुषे ज्ञेयो न योषित्सु कदाचन।
न न्यासो योषितां तत्र न ध्यानं न च पूजनम्।
केवलं जपमात्रेण मन्त्रः सिद्ध्यन्ति योषिताम्।।

हृत्पद्म में भगवती का ध्यान— 'परात्रिंशिका' में ध्यान का स्थान हृत्पद्म बताया गया है और कहा गया है—

आद्यन्तरहितं बीजं विकसत्तिथिमध्यगम्।
हृत्पद्मान्तर्गतं ध्यायेत्सोमांशं नित्यमभ्यसेत्।।

'सोमांश' अमृतांश है, जो कि हृत्कमल में स्थित है।

सुधासिन्धु में भगवती का ध्यान— भगवती के ध्यान का यह स्वरूप वरेण्य है। कल्पवृक्ष से परिवृत सुधासिन्धु में नीप (कदम्ब) वृक्षों से आच्छादित एक मणिमय मण्डप है। उस मण्डप में चिन्तामणिगृह है, जिसमें आनन्दभैरवी (ललिता) या त्रिपुर-सुन्दरी ईशानी निवास करती हैं। शिव, सदाशिव और महेशान उनके मञ्च, पर्यङ्क एवं उपबर्हण हैं तथा ब्रह्मदेव, हरि, रुद्र और ईश्वर उस मञ्च के पैर हैं—

बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यः सुरद्रुमाः।
तत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्डपम्।।

तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे।।

---

१. शाक्तानन्दतरङ्गिणी २. शाक्तानन्दतरङ्गिणी

अतिरम्यतरे तत्र कशिपुश्च सदाशिवः।
भृतकाश्च चतुष्पादा महेन्द्रश्च पतद् ग्रहः।।

तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी।
शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्।।

तदुद्भूताऽमृतस्यन्दिपरमानन्दनन्दिता ।
कुलयोषित्कुलं त्यक्त्वा परं वर्षणमेत्य सा।।

* * * * *

सुधाब्धौ नन्दनोद्याने रत्नमण्डपमध्यगाम्।
बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहां त्रिलोचनाम्।।

पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां श्रियम्।
ध्यात्वा च हृद्गतं चक्रं व्रतस्थः परमेश्वरीम्।
पूर्वोक्तध्यानयोगेन चिन्तयन् जपमाचरेत्।।

सुभगोदय के अनुसार भगवती का ध्यान— भगवती त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान सूर्यमण्डल के मध्य में करना चाहिये—

सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणहस्तां ध्यायेत्सुसाधकः।।

सूर्यमण्डल में भगवती का ध्यान— कालिदास 'चर्चास्तोत्र' में भगवती का ध्यान सूर्यमण्डल के मध्य करने का प्रतिपादन करते हैं—

ये चिन्तयन्त्यरुणमण्डलमध्यवर्ति रूपं तवाम्ब नवयावकपङ्करम्यम्।
तेषां सदैव कुसुमायुधबाणभिन्नवक्षस्थला मृगदृशो वशगा भवन्ति।।

'चन्द्रज्ञानविद्या' में भी भगवती का ध्यान सूर्यमण्डल के मध्य करने का निर्देश दिया गया है—

सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणान् धारयन्तीं प्रपूजयेत्।।

चन्द्रमण्डल में भगवती का ध्यान— 'ललितासहस्रनाम' में भगवती का ध्यान (मुख्यतः पौर्णमासी की तिथि पर) चन्द्रबिम्ब में करने का विधान किया गया है—

पौर्णमास्यां चन्द्रबिम्बे ध्यात्वा श्रीललिताम्बिकाम्।।

'महातन्त्रा महामन्त्रा महायन्त्रा महासना।
श्रीचक्रे मां समभ्यर्च्य जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम्।।'

कहकर भगवती का ध्यान श्रीचक्र में भी करने का निर्देश दिया गया है। भगवती का ध्यान सुधासिन्धु में भी करने का निर्देश दिया गया है—

चिन्तामणिगृहान्तस्था पञ्चब्रह्मासनस्थिता।
महापद्माटवीं संस्था कदम्बवनवासिनी।
सुधासागरमध्यस्था कामाक्षी कामदायिनी।।

भगवती का ध्यान समस्त मन्त्रों एवं मन्त्राक्षरों में भी करने का निर्देश दिया गया है—

सर्वेश्वरी सर्वमयी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी।
सर्वयन्त्रात्मिका सर्वतन्त्ररूपा मनोन्मनी।।

पिण्डस्थ चक्रों में भगवती का ध्यान— भगवती का ध्यान मूलाधारादिक धामों में भी करने का निर्देश दिया गया है—

मूलाधारैकनिलया ब्रह्मग्रन्थिविभेदिनी।
मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रन्थिविभेदिनी।।

आज्ञाचक्रान्तरालस्था रुद्रग्रन्थिविभेदिनी।
तटिल्लतासमरुचिः षट्चक्रोपरि संस्थिता।।

कुण्डलिनीस्वरूप में भगवती का ध्यान— भगवती मन्त्रात्मिका, वर्णात्मिका, नादात्मिका एवं ज्योतिःस्वरूपा हैं और कुण्डलिनीस्वरूपा भी हैं; अतः उनका ध्यान कुण्डलिनी के रूप में भी करने का उपदेश दिया गया है; क्योंकि भगवती कुण्डलिनी शक्ति हैं—

महाशक्तिः कुण्डलिनी बिसतन्तुतनीयसी।।

पञ्चदशी के मन्त्र एवं उसके समस्त कूट भी भगवती ही हैं; अतः उस स्वरूप में ही उनके ध्यान का विधान है; क्योंकि वे मूल मन्त्र हैं—

मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा।

अवतारोत्पादिका के रूप में भगवती का ध्यान— भगवती के विराट् स्वरूप में उनका विश्वमय, विश्वातीत स्वरूप तो है ही; साथ ही अवतारोत्पादिका स्वरूप भी है। इस स्वरूप का भी ध्यान करणीय है—

कराङ्गुलिनखोत्पन्ननारायणदशाकृतिः ।
महापाशुपतास्त्राग्निनिर्दग्धासुरसैनिकाः।।

कूटत्रय एवं कामकला के रूप में भगवती का ध्यान— पञ्चदशी मन्त्र का कूटत्रय भगवती का स्वयं का शरीर है; अतः उस रूप में ही भगवती के कूटस्वरूप का ध्यान भी वरेण्य है—

श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा ।
कण्ठाधः कटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी।
शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिणी ।।

भगवती 'कामकला' भी हैं; अतः उस रूप में भगवती वरेण्य हैं। वे कामकलारूपा कही गई हैं— काम्या कामकलारूपा कदम्बकुसुमप्रिया।

षट्पञ्चाशत् अध्याय
न्यासविद्या और त्रिपुरोपासना

न्यास : 'सोऽहमस्मि' की साधना— 'न्यास' अपने तन-मन में मन्त्र, ऋषि, मातृका एवं देवता की स्थापना का विधान है। 'न्यास' अपने शरीर में देवत्व का आधान है। यह उपासक का उपास्य के साथ तादात्म्यभाव, तद्रूपता, तत्स्वरूपता प्राप्त करने की एक पद्धति है। ध्याता की सर्वोच्च उपलब्धि प्रगाढ़ ध्यान नहीं है; अपितु ध्येयाकार बन जाना है। द्रष्टा की चरितार्थता दृश्याकार हो जाना है। ज्ञाता की साधना का सर्वोच्च फल ज्ञेयाकारता ग्रहण कर लेना है। देवता के उपासक की सर्वोच्च उपलब्धि देवता का अविरत ध्यान नहीं; अपितु देवता बन जाना है। जो देवता नहीं बन सका, वह देवता की उपासना का अधिकारी भी नहीं बन सकता। 'न्यास' इसी अधिकारवाद का विधायक है। यह इसी तद्रूपता की शैली है। यह देवोपासक को देवता बनाने की तान्त्रिक विधि है। यह 'सोऽहमस्मि' की अनुभूति की साधना है। इसीलिये 'गन्धर्वतन्त्र' में कहा गया है कि—

जो देवता हो, वही देवता की पूजा करे। जो देवता न बन पाया हो, वह देवता की पूजा न करे— 'देव एव यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत्।'

जो विष्णु न बन सका हो, यदि वह विष्णु की पूजा करता है तो उसकी समस्त पूजा व्यर्थ होती है— 'अविष्णुः पूजयेद्विष्णुः न पूजाफलभाग्भवेत्।' (वशिष्ठरामायण)

जो विष्णु बन कर विष्णु की पूजा करता है, वह साक्षात् महाविष्णु कहलाता है— 'विष्णुर्भूत्वाऽर्चयेद्विष्णुं महाविष्णुरिति स्मृतः।' (वशिष्ठरामायण)

भारत में भी यही कहा गया है—

नाविष्णुः कीर्तयेद्विष्णुं नाविष्णुर्विष्णुमर्चयेत्।
नाविष्णुः संस्मरेद्विष्णुं नाविष्णुर्विष्णुमाप्नुयात्।।

भविष्यपुराण में भी कहा गया है—

- नारुद्रः संस्मरेद्रुद्रं नारुद्रो रुद्रमर्चयेत्।
- नारुद्रः कीर्तयेद्रुद्रं नारुद्रो रुद्रमाप्नुयात्।
- नादेवी कीर्तयेद्देवीं नादेवी तां समर्चयेत्।

न्यास : देवतादात्म्य की साधना— 'न्यास' के द्वारा देवतात्मक बनकर ही देवता की पूजा करनी चाहिये—

न्यासात्तदात्मको भूत्वा देवो भूत्वा तु तं यजेत्।

न्यास की पद्धति साधक को देवतात्व प्रदान करती है; जैसा कि 'अग्निपुराण' एवं 'शाक्तानन्दतरङ्गिणी' में कहा भी गया है—

येनैव न्यासमात्रेण देववज्जायते नरः।

प्राणायाम, ध्यान एवं न्यासों द्वारा प्रथमत: साधक को देवशरीर प्राप्त करना चाहिये और तभी देवपूजा करनी चाहिये; जैसा कि कहा भी गया है—

प्राणायामैस्तथा ध्यानैर्न्यासैर्देवशरीरभृत्। (आग्नेयपुराण)
न्यासत्तदात्मको भूत्वा देवो भूत्वा तु यं यजेत्।। (भविष्यपुराण)

हम सर्वप्रथम ऋषिन्यास को लेते हैं, उसके अंगों का विवरण निम्नवत् है—

ऋषि— 'ऋषय: मन्त्रद्रष्टार: स्मारका न तु कारका:।' अर्थात् जो किसी मन्त्र के द्रष्टा हैं, स्मारक हैं, वे ही 'ऋषि' हैं। वे मन्त्रों के कारक नहीं, मात्र स्मारक हैं। ऋषियों ने ही तपोबल से मन्त्र की साधन-प्रणाली का आविष्कार किया।

छन्द— जिस प्रणाली द्वारा, जिस छन्द से, जिस भाव का कम्पन उत्पन्न करके अपने उद्देश्य की सिद्धि की, वही उस साधन-प्रणाली या मन्त्र का 'छन्द' है।

देवता— प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों में, विभिन्न स्तरों में चैतन्य परमात्मा किस प्रकार प्रकाशित एवं लीलारत है, यह 'देवता' तत्त्व के अन्तर्गत है। भगवच्चैतन्य के विभिन्न प्रतिबिम्ब (विभूति), विभिन्न लीलाभाव का ही नाम है— 'देवता'।

विनियोग— कौन-सी भावना किस भाव या उद्देश्य से अनुष्ठित हुई और उससे क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ, इसी का सूचक मन्त्रावयव 'विनियोग' होता है।

प्रथमत: साधक को निश्चित करना है कि उसका लक्ष्य क्या है? वह चाहता क्या है? फिर निश्चय करना होगा कि वह अभीष्ट लक्ष्य किसके जीवन में चरितार्थ हुआ? जिन्होंने अपने लक्ष्य में सर्वप्रथम सिद्धि प्राप्त की, वे ही इस साधनापद्धति के 'ऋषि' कहलाते हैं। जिस स्नायुकेन्द्र में वह शक्ति है, उस स्नायुकेन्द्र में उस शक्ति के प्रकाश एवं कार्यपद्धति को (उस स्नायुकेन्द्र में प्राणवायु एवं मनन शक्ति को एकाग्र करके तथा उस शक्ति को जागृत करके) प्राप्त करना ही उस साधनप्रणाली का 'देवतातत्त्व' है। फिर उस जाग्रत शक्ति को अपने लक्ष्यसिद्धि में नियुक्त करके अपने लक्ष्य को सिद्ध करना ही 'विनियोगतत्त्व' है। मन्त्र को उत्कीलित करके उसे जागृत करना ही 'उत्कीलन' है।

शरीर के विभिन्न स्थानों पर मातृका या मालिनी के वर्णों की स्थापना करना ही 'न्यास' है। वर्णस्थापना से आवेश उत्पन्न होता है—

इत्येषा मालिनी देवी शक्तिमत्क्षोभिता यत:।
कृत्यावेशात्तत: शाक्ती तनु: सा परमार्थत:।।

जो वर्णमाला शिवशक्ति-सघट्ट से आविर्भूत हुई है और जिसमें क्षुभित शक्ति विद्यमान है, वह प्रत्येक प्रकार की सिद्धि प्रदान कर सकती है।

देवता के अंग से निकली हुई चिद्रश्मियों का अपनी देह में सन्निवेश करना ही न्यासप्रक्रिया का उद्देश्य है। न्यास के द्वारा ही देवभाव प्राप्त होने से उपासना में अधिकार प्राप्त होता है। यह न्यासतत्त्व अत्यन्त जटिल एवं दुर्ज्ञेय है। तान्त्रिक साधना में न्यास

का कितना उच्च स्थान है, इस बात को प्रत्येक तान्त्रिक साधक जानता है।[१]

योगिनीहृदय (पूजासङ्केत) में कहा गया है—

न्यासं निर्वर्तयेद्देहे षोढा न्यासपुरःसरम्।
गणेशैः प्रथमो न्यासो द्वितीयस्तु ग्रहैर्मतः।।

नक्षत्रैश्च तृतीयः स्याद्योगिनीभिश्चतुर्थकः।
राशिभिः पञ्चमो न्यासः षष्ठः पीठैर्निगद्यते।।

षोढा न्यासस्त्वयं प्रोक्तं सर्वत्रैवापराजितः।
एवं यो न्यस्तगात्रस्तु स पूज्यः सर्वयोगिभिः।।

नास्त्यस्य पूज्यो लोकेषु पितृमातृमुखो जनः।
स एव पूज्यः सर्वेषां स स्वयं परमेश्वरः।।

षोढा न्यासविहीनं यं प्रममेदेष पार्वति।
सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति नरकं च प्रपच्यते।।

'षोढा न्यास' का तन्त्रशास्त्र में अत्यन्त महत्त्व है।

न्यास : अद्वैतभाव की भावना— 'न्यास' पिण्ड के ब्रह्माण्डीकरण की साधना है। यह मन्त्र एवं देवता के साथ तादात्म्य की साधना है। इसी कारण तान्त्रिकोपासना में न्यास एक आवश्यक अवयव है। इसके प्रयोग से साधना में साफल्य शीघ्र प्राप्त होता है। न्यास के प्रयोग से मन्त्रसिद्धि एवं देवसाक्षात्कार भी शीघ्र होता है। देवत्व की प्राप्ति भी न्यास-साधना द्वारा शीघ्र होती है।

न्यास का अर्थ है— स्थापन, उचित स्थान पर रखना, धरोहर-निक्षेप, अर्पण, पूजा की तान्त्रिक पद्धति के अनुसार देवता के भिन्न-भिन्न अंगों का ध्यान करते हुये मन्त्र पढ़कर उन पर विशेष वर्णों का स्थापन, किसी रोग या बाधा की शान्ति हेतु रोगी या बाधाग्रस्त मनुष्य के एक-एक अंग पर हाथ ले जाकर मन्त्र पढ़ने का विधान।

न्यास की आवश्यकता— 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' विधान के अनुसार साधक को भी देवता की भाँति अपने शरीर को देवमय, दिव्य एवं पुनीत बनाने की आवश्यकता है। शरीर अपवित्रता का साम्राज्य है; अतः 'पवित्रतम' (नामी और उसके नाम : देवता और उसके मन्त्र) को शरीर में बैठाने के लिये शरीर को भी पवित्र करना ही पड़ेगा। पवित्रीकरण की विधियों में से एक विधि 'न्यास' भी है। यह तन-मन की दिव्यीकरण-प्रक्रिया भी है।

न्यास : अद्वैतभाव की साधना— साधना का चरम लक्ष्य है— अद्वैतावस्थान। 'न्यास' अद्वैताप्ति की साधना की पृष्ठभूमि है। यह वर्ण, बीज, मन्त्र, ऋषि, छन्द, देवता, शक्ति, कीलक, दिशा, स्तोत्र, पिण्डस्थ चक्र, पीठ, गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी

---

१. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि।

राशि आदि के साथ अपनी अभेद-स्थापना का विधान है। यह देवता बनकर देवता की पूजा करने की पद्धति है।

न्यास : 'देवोऽहं' एवं 'विश्वतोऽहं' की अनुभूत्यात्मक साधना— न्यास के द्वारा साधक अपने शरीर में दिव्य शक्तियों की स्थापना करता है। इसके द्वारा वह अपने शरीराङ्गों में ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, कीलक, मन्त्राक्षर, मातृका (वर्णमाला), आसन (देव्यात्मासन, चक्रासन, सर्वमन्त्रासन, साध्य-सिद्धासन), वाग्देवता, चक्र (त्रैलोक्य-मोहन, सर्वाशापरिपूरक आदि) को; मूलाधार आदि में त्रिपुरा, त्रिपुरेश्वरी, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरवासिनी, त्रिपुरासिद्धा, त्रिपुराम्बा, महात्रिपुरसुन्दरी देवी तथा मन्त्रों को; बिन्दु, अर्द्ध-चन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना, उन्मना एवं ब्रह्मरन्ध्र में मन्त्रों को तथा शरीरस्थ पीठों एवं अग्निचक्र, सूर्यचक्र, सोमचक्र तथा परब्रह्मचक्र में आत्म-तत्त्व, विद्यातत्त्व, शिवतत्त्व तथा श्रीपादुका एवं कामेश्वरी, महावज्रेश्वरी, भगमालिनी, एवं महा-त्रिपुरसुन्दरी को स्थापित करके अपने को सर्वदेवतामय, सर्वचक्रमय, सर्वमन्त्रमय, सर्व-शक्तिमय, सर्वविद्यामय, सर्वपीठमय, सर्वनादमय एवं सर्वविश्वमय बनाते हुये 'यत्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' की अनुभूति करने का प्रयास करता है। चूँकि भगवती कुण्डलिनी वर्ण-मयी, मन्त्रमयी, नादमयी एवं ज्योतिर्मयी हैं; अत: साधक वर्णों के साथ अपनी एकता स्थापित करके भगवती कुण्डलिनी के वर्ण, मन्त्र, नाद एवं ज्योतिस्वरूप के साथ ही स्वयं भी उनके साथ तादात्म्य-स्थापन की साधना करता है। साधक 'गणेशन्यास' द्वारा शरीर के अन्दर एवं बाहर के सभी शरीरावयवों में गणेश की स्थापना करके शरीर को गणेशमय बना लेता है तथा इसी प्रकार अपने शरीराङ्गों में चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु (ग्रहों); भरणी, कृत्तिका आदि नक्षत्रों; डाकिनी, राकिणी, लाकिनी आदि योगिनियों तथा पीठों (कामरूप, नेपाल, पूर्णशैल, केदार, बद्री, ॐकार आदि पीठों) को अपने शरीराङ्गों में स्थित मानकर (या उनकी स्थापना करके) अपने को सर्वग्रहमय, सर्वराशिमय, सर्वनक्षत्रमय एवं सर्वपीठमय बनाता हुआ पिण्ड से ऊपर उठकर ब्रह्माण्ड या समग्र विश्व बना लेता है या पिण्ड से ब्रह्माण्ड बन जाता है।

यही न्यासविद्या या न्याससाधना का लक्ष्य भी है।

कतिपय न्यासों के उदाहरण

मातृका न्यास

'ॐ अस्य मातृकामन्त्रस्य ब्रह्मऋषिर्गायत्री छन्दो मातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि स्वरा: शक्तय: क्लीं कीलकं मातृकान्यासे विनियोग:।'

इस विनियोग के अनन्तर जल छोड़ दे तथा ऋष्यादि का न्यास करे—

१. शिर में 'ॐ ब्रह्मणे ऋषये नम:।'

२. मुख में 'ॐ गायत्रीच्छन्दसे नम:।'

३. हृदय में 'ॐ मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः।'
४. गुह्यस्थान में 'ॐ हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः।'
५. पैरों में 'ॐ स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः।'
६. सर्वांग में 'ॐ क्लीं कीलकाय नमः।'

इसके अनन्तर करन्यास करे—
ॐ अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः।
ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट्।
ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुम्।
ॐ ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्।
ॐ अं य रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं ञः अः करतलकरपृष्ठाभ्यामस्त्राय फट्।

इसके अनन्तर अङ्गन्यास करे—
ॐ अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः।
ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा।
ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्।
ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुम्।
ॐ ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः अस्त्राय फट्।

इसके अनन्तर अन्तर्मातृकान्यास करे—

हमारे शरीर में 'मूलाधार' आदि छः चक्र हैं। उनमें जितने कमलदल हैं, उतने ही अक्षरों का न्यास किया जाता है। एक प्रकार से यह षट् चक्रन्यास है। सम्प्रदायानुसार इसकी भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ हैं।

वैष्णवपद्धति के अनुसार अन्तर्मातृका न्यास

मूलाधार चक्र (स्वर्णाभ एवं चतुर्दलात्मक चक्र)— इसके चारो दलों पर निम्न अक्षरों का न्यास करना चाहिये—

१. ॐ वं नमः, २. ॐ शं नमः, ३. ॐ षं नमः, ४. ॐ सं नमः।

स्वाधिष्ठान चक्र (विद्युदाभ षड्दलात्मक चक्र)— इसके छः दलों पर निम्न अक्षरों का न्यास करना चाहिये—

१. ॐ बं नमः, २. ॐ भं नमः, ३. ॐ मं नमः, ४. ॐ यं नमः, ५. ॐ रं नमः, ६. ॐ लं नमः।

मणिपूरक चक्र (नाभिमूलस्थ नीलमेघाभ दशदलात्मक चक्र)— इसके दसों दलों पर निम्न अक्षरों का न्यास करना चाहिये—

१. ॐ डं नमः, २. ॐ ढं नमः, ३. ॐ णं नमः, ४. ॐ तं नमः, ५. ॐ थं नमः, ६. ॐ दं नमः, ७. ॐ धं नमः, ८. ॐ नं नमः, ९. ॐ पं नमः, १०. ॐ फं नमः।

अनाहत चक्र (हृदयस्थ, प्रवालाथ द्वादशदलात्मक चक्र)— इसके बारह दलों पर निम्न अक्षरों का न्यास करना चाहिये—

१. ॐ कं नमः, २. ॐ खं नमः, ३. ॐ गं नमः, ४. ॐ घं नमः, ५. ॐ ङं नमः, ६. ॐ चं नमः, ७. ॐ छं नमः, ८. ॐ जं नमः, ९. ॐ झं नमः, १०. ॐ ञं नमः, ११. ॐ टं नमः, १२. ॐ ठं नमः।

विशुद्ध चक्र (कण्ठस्थ, धूम्रवर्णाभ, षोडशदलात्मक चक्र)— इसके सोलह दलों पर निम्न अक्षरों का न्यास करना चाहिये—

१. ॐ अं नमः, २. ॐ आं नमः, ३. ॐ इं नमः, ४. ॐ ईं नमः, ५. ॐ उं नमः, ६. ॐ ऊं नमः, ७. ॐ ऋं नमः, ८. ॐ ॠं नमः, ९. ॐ ऌं नमः, १०. ॐ ॡं नमः, ११. ॐ एं नमः, १२. ॐ ऐं नमः, १३. ॐ ओं नमः, १४. ॐ औं नमः, १५. ॐ अं नमः, १६. ॐ अः नमः।

आज्ञा चक्र (भ्रूमध्यस्थ, चन्द्रवर्णाभ, द्विदलात्मक चक्र)— इसके दोनों दलों पर निम्न वर्णों का ध्यान करना चाहिये—

१. ॐ हं नमः, २. ॐ क्षं नमः।

सहस्रार (सहस्रदल पद्म, स्वर्णाभ, त्रिकोणमय चक्र)— इस चक्र में त्रिकोण का ध्यान करना चाहिये। इसके कोण पर ह, ल एवं क्ष अक्षर लिखे हुये हैं। इस त्रिकोण की तीनों रेखायें क्रमशः अ, क एवं थ से प्रारम्भ होती हैं। इसी त्रिकोण के मध्य में सृष्टि-स्थिति-लयसमन्वित बिन्दुरूप परमात्मा विराजमान है। इस प्रकार के ध्यान को अन्तर्मातृका न्यास कहते हैं।

बहिर्मातृका न्यास

इस न्यास से पूर्व मातृका सरस्वती का ध्यान किया जाता है, जो निम्नांकित है—

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोः यन्मध्यवक्षःस्थलाम्
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम् ।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजै-
र्बिभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये।।

अर्थात् पचास वर्णों के द्वारा जिनके मुख, बाहु, चरण, कटि और वक्षःस्थल पृथक्-पृथक् दृष्टिगत हो रहे हैं, सूर्य के समान द्योतित जिसके किरीट पर चन्द्रखण्ड शोभायमान है, जिसका वक्षःस्थल बहुत ऊँचा है, जो अपने करकमलों में मुद्रा, रुद्राक्ष-माला, सुधापूर्ण कलश एवं पुस्तक धारण किये हुये हैं, जिनके अंग से दिव्य ज्योति

विकीर्ण हो रही है; उन त्रिनेत्री वाग्देवता मातृका सरस्वती की मैं शरण ग्रहण करता हूँ। इस प्रकार सरस्वती देवी का ध्यान करने के पश्चात् न्यास करना चाहिये।

इस न्यास में उँगलियों एवं अँगूठों का प्रयोग किया जाता है। न्यास में जहाँ जितनी उँगलियों को मिलाना चाहिये, उसकी संख्या है— १. अंगुष्ठ, २. तर्जनी, ३. मध्यमा, ४. अनामिका, ५. कनिष्ठा।

ललाट में— ॐ अं नमः ३, ४; २. मुख पर— ॐ आं नमः २, ३, ४; ३. आँखों में— ॐ इं नमः, ॐ ईं नमः— १, ४। इसी प्रकार 'ॐ' एवं 'नमः' लगाकर अगले अंगों भी न्यास करना चाहिये।

४. कानों में— उं, ऊं १; ५. नासिका में— ऋं, ॠं १, ५; ६. कपोलों पर— ऌं, ॡं २, ३; ७. ओष्ठ में— एं ३; ८. अधर में— ऐं ३; ९. ऊपर के दाँतों में— ओं ४; १०. नीचे के दाँतों में— औं ४; ११. ब्रह्मरन्ध्र में— अं ३; १२. मुख में— अः ४; १३. दक्षिण हस्त के मूल में— अं ३, ४, ५ १४. केहुनी में— खं ३, ४, ५ १५ मणिबन्ध में— गं; १६. उँगलियों की जड में— चं; १७. उँगलियों के अग्रभाग में— डं; १८. इसी प्रकार वाम पाणि के मूल, केहुनी, मणिबन्ध, अँगुली के मूल एवं अङ्गुल्यग्र में— चं, छं, जं, झं, ञं; १९. दक्षिण पैर के मूल में, दोनों सन्धियों में, उँगलियों के मूल में, उनके अग्रभाग में— टं, ठं, डं, ढं, णं; २०. वाम पाद के उन्हीं पाँचों स्थानों में— तं, थं, दं, धं, नं; २१. दक्षिण पार्श्व में— पं; वाम में— फं; पृष्ठ में— बं (यहाँ उँगलियों की संख्या केहुनी वाली ही मान्य है); २२. नाभि में— १, ३, ४, ५; २३. पेट में— मं १ से ५; २४. हृदय में— यं; २५. दक्षिण स्कन्ध पर— रं; २६. गले के ऊपर— लं; २७. वाम स्कन्ध पर— वं; २८. हृदय से दाहिने हाथ तक— शं; २८. हृदय से बायें हाथ तक— षं; २९. हृदय से दाहिने पैर तक— सं; ३०. हृदय से बायें पैर तक— हं; ३१. हृदय से पेट तक— लं; ३२. हृदय से मुख तक— क्षं; ३३. हृदय से अन्त तक— हथेली से न्यास करना चाहिये।

संहारमातृकान्यास

बाह्य मातृकान्यास की समाप्ति के बाद संहारमातृकान्यास आरम्भ होता है। सर्व-प्रथम ध्यान करणीय होता है, जो निम्नांकित है—

अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटङ्कं विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम्।
अर्द्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दरामां वर्णेश्वरीं प्रणमतस्तनभारनम्राम्।।

अर्थात् जो चार कई कमलों में रुद्राक्षमाला, हरिणशावक, पत्थर फोड़ने की टांकी एवं पुस्तक धारण किये रहती हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, जिनके मुकुट पर अर्द्धचन्द्र स्थित है, जिनके शरीर का रंग लाल है, जो कमल पर आसीन हैं, जो स्तनों के भार से झुकी हुई हैं; उन वर्णेश्वरी को नमस्कार कीजिये।

बाह्य मातृकान्यास में अक्षरोच्चारण चार प्रकार से किया जा सकता है— १. केवल अक्षर, २. सबिन्दु अक्षर, ३. सविसर्ग अक्षर एवं ४. बिन्दु-विसर्गयुक्त अक्षर।

इन अक्षरों के पूर्व बीजाक्षर भी जोड़े जाते हैं। कामना-वैभिन्य के अनुसार बीजाक्षर भी बदल जाते हैं; यथा— वाक्सिद्ध्यर्थ 'ऐं', श्रीवृद्ध्यर्थ 'श्रीं', सर्वसिद्ध्यर्थ 'नमः', वशीकरणार्थ 'क्लीं' एवं मन्त्रप्रसादानार्थ 'अः' जोड़ा जाता है।

मन्त्रशास्त्र की मान्यता है कि मातृकान्यास के विना मन्त्रसिद्धि अत्यन्त दुष्कर है।

न्यास-पद्धति— बाह्य मातृकान्यास का अन्त होता है— 'ॐ लं नमः, ॐ क्षं नमः।' संहारमातृका न्यास की पद्धति में (बाह्य मातृकान्यास की जहाँ समाप्ति होती है— 'ॐ क्षं नमः' से) विपरीत क्रम से न्यास किया जाता है अर्थात् बाह्य मातृका न्यास जहाँ समाप्त होता है, वहीं से संहारमातृका न्यास प्रारम्भ होता है।

न्यासों में 'अन्तर्न्यास' केवल मन से किया जाता है। 'बहिर्न्यास' भी केवल मन से किया जाता है। बहिर्न्यास में तत्तत् स्थानों का स्पर्श किया जाता है। स्पर्श भी दो प्रकार के होते हैं— किसी पुष्प से या अँगुलियों से। उँगलियों द्वारा स्पर्श भी द्विविध है— अंगुष्ठ एवं अनामिका को मिलाकर एवं भिन्न-भिन्न अंगों के स्पर्शहेतु भिन्न-भिन्न उँगलियों के प्रयोग द्वारा। विभिन्न उँगलियों द्वारा किया गया न्यास इस पद्धति से करणीय होता है—

मध्यमा + अनामिका + तर्जनी से 'हृदय', मध्यमा + तर्जनी से 'सिर', अँगूठे से 'शिखा', दस उँगलियों से 'कवच', तर्जनी + मध्यमा + अनामिका से 'नेत्र' एवं तर्जनी + मध्यमा से करतलपृष्ठ का न्यास करणीय होता है। यदि देवता त्रिनेत्री हो तो तर्जनी + मध्यमा + अनामिका से एवं यदि देवता द्विनेत्री हो तो मध्यमा + तर्जनी से नेत्र में न्यास करना चाहिये।

'पञ्चाङ्गन्यास' में नेत्र को छोड़ दिया जाता है। वैष्णवों के लिये इसका क्रम भिन्न है। अंगुष्ठ छोड़कर सीधी उँगलियों से हृदय + मस्तक में न्यास करना होता है। अंगुष्ठ को अन्दर करके मुष्टि बाँधकर शिखा का स्पर्श किया जाता है। समस्त उँगलियों से कवच, तर्जनी + मध्यमा से नेत्र, नाराचमुद्रा से दोनों हाथों को ऊपर उठाकर अंगुष्ठ + तर्जनी द्वारा मस्तक के चतुर्दिक करतल ध्वनि करनी चाहिये। जहाँ अङ्गन्यास का मन्त्र प्राप्त नहीं होता, वहाँ देवता के नाम के प्रथमाक्षर से अङ्गन्यास करना चाहिये।

हमारे शरीर के प्रत्येक अवयव में, प्रत्येक इन्द्रिय में एवं अन्तःकरण आदि में देवता निवास करते हैं। हमें यह ध्यान रखते हुये अपने अन्तस्थल एवं बाह्य शरीर दोनों को दिव्य बनाना चाहिये। दिव्यतम परमात्मा का आसन भी दिव्य होना चाहिये। पवित्रतम इष्टदेव के लिये साधक का शरीररूपी घर भी पवित्र होना चाहिये। शक्तिमान शिव या शक्ति के आसीन होने हेतु साधक का शरीररूपी सिंहासन भी जागृत शक्ति, मान्त्रिक शक्ति, आत्मतेज, संविदुल्लास, प्रेम एवं भक्ति की आह्लादिनी शक्ति से देदीप्यमान होना

चाहिये; अन्यथा देवता अशुद्ध, अपवित्र, अचेतन, शक्तिशून्य तथा निस्तेज सिंहासन पर बैठेगा ही नहीं। शक्ति के इसी आयत्तीकरण, मानस के दिव्यीकरण, शरीराङ्गों के चैतन्यीकरण एवं सर्वाङ्गपूर्ण समस्त शरीर के पवित्रीकरण तथा देव-तादात्म्यीकरण के लिये ही तो यह समस्त न्यास-विद्या का विधान किया गया है।

अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि— अभिनवगुप्तपादाचार्य ने तन्त्रालोक (आह्निक-१५) में तत्त्वोदया न्यासविधि का उल्लेख करते हुये कहा है कि 'न्यासपञ्चक' सर्वाति-शायी महत्त्व के हैं, जो अङ्गवक्त्रन्यास, मातृकान्यास, त्रितत्त्वन्यास, अघोराष्टकन्यास एवं शिवसद्भाव न्यास के नाम से जाना जाता है।

अङ्गवक्त्रन्यास— नवात्मदेव (अघोर, घोर, घोर, घोरतर, सर्व, शर्व, रुद्र, तत्पुरुष, महादेव— इन आठ रूपों में स्थित शिव) के भेद से ही यह न्यास करना चाहिये। इसे 'तत्त्वोदय न्यास' कहते हैं।

१. शिष्य के अंगों में सर्वप्रथम पञ्चवक्त्रन्यास (ईशान, तत्पुरुष, सद्योजात, अघोर एवं वामदेव) करने से शिष्य में सदाशिव की विलक्षण शक्ति का उदय होता है। इस पद्धति में अंगों में तत्त्वों का ध्यान करना चाहिये। यथा— 'अघोर'– अग्नितत्त्व (रूप) का नेत्र में, 'वामदेव'– जलतत्त्व (रस) का रसना में, 'ईशान'– आकाशतत्त्व (शब्द) का कानों में, 'सद्योजात'– पृथ्वीतत्त्व (गन्ध) का सर्वांग में तथा 'तत्पुरुष'– वायु तत्त्व (स्पर्श) का शरीरांग त्वक् में न्यास करना चाहिये। इच्छाशक्ति में 'उन्मना' की प्रतिष्ठा होती है।

२. शक्ति-दृष्टि से न्यास का द्वितीय प्रकार— समना, नाद और बिन्दु शक्तियों का शाश्वत परामर्श होता है। शरीर के उत्तमांग में इनकी प्रतिष्ठा होती है।

३. शक्ति-दृष्टि के अन्तर्गत अनुग्रह, तिरोधान, संहार, स्थिति और सृष्टि की प्रथा प्रथित होती है।

४. ईश्वरतत्त्व की दृष्टि से महत्, रूपातीत, रूप, पद एवं पिण्ड का ध्यान करके पूर्वोक्त अंगों में न्यास करना चाहिये।

५. विद्यातत्त्व की दृष्टि से तुर्यातीत, तुर्य, सुषुप्ति, स्वप्न एवं जागृति का ध्यान करके न्यास करना चाहिये।

६. विद्यातत्त्व की दृष्टि से ही शाम्भवी शक्ति की बोधिनी, शोधिनी और आणवी शक्तियों का न्यास होता है। इसी से दीक्षा दीप्त होती है।

७. पुमर्थोपाय दृष्टि से ज्ञान, योग, क्रिया एवं चर्या का ध्यान मानसिक न्यास का विधान है।

८. हाकिनी, डाकिनी, शाकिनी, लाकिनी, राकिनी और काकिनी शक्तियों का चक्रों में ध्यान और न्यास होता है।

९. इन सभी के मध्य केन्द्रस्थ हृदय में आसीन परमेश्वर का न्यास अनिवार्यत: आवश्यक है।[१]

न्यासपञ्चक का द्वितीय न्यास— मातृकान्यास ही न्यासपञ्चक का द्वितीय न्यास है। 'तन्त्रालोक' के पञ्चदश आह्निक के श्लोकसंख्या ११६ से १२० तक मातृकान्यास का विवेचन किया गया है। इस सन्दर्भ में यह नियम द्रष्टव्य है—

मातृकां मालिनीं वाथ द्वितयं वा क्रमाक्रमात्।
सृष्ट्यप्ययद्वयै: कुर्यादेकैकं सङ्कशो द्विश:।। (१५.११६)

इससे तत्त्वों में स्फुटता आती है।

त्रितत्त्वनयास— शिव, विद्या (शक्ति) और आत्मा (नर) यही विश्व का नर शक्ति शिवात्मक मुख्य तत्त्वविभाग है। हृदय, शिखा और पद ही तीन कक्ष्यायें हैं। 'कक्ष्या' उत्तरीय, समानता एवं कक्षगत अंग या उत्तम स्थान को भी कहते हैं। शिखा में शिव का, हृदय में शक्ति का और पद में आत्मा अर्थात् नृतत्त्व का न्यास किया जाता है। यही है— त्रितत्त्वन्यास।[२]

अघोराष्टक न्यास— अघोर, ईशान, विद्या, माया, काल, नियति, पुरुष एवं प्रकृति को 'अघोराष्टक' कहते हैं। इसमें 'व्यापी' नामक नवात्मदेव का प्रकल्पन करने से यही 'नवात्मदेव न्यास' होता है (तन्त्रालोक, खण्ड प्रथम, आह्निक-१.११.१११)

शिवसद्भाव न्यास— अघोराष्टक न्यास में भी शिर, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुह्य, जानु और चरण— ये क्रमश: आठ अंग ही गृहीत हैं। इन्हीं अंगों में शिवसद्भाव का न्यास शिष्य को शिवमय बनाने में समर्थ होता है।

इस न्यासपञ्चक में प्रथमस्थानीय न्यास अङ्गवक्त्रन्यास होता है।[३]

जीवन्यास— 'कौलावलीनिर्णय' में 'जीवन्यास' का भी विधान प्रस्तुत किया गया है, जिसके अनुसार साधक देवता के जीव को निम्न मन्त्र से अपनी देह में स्थापित करता है। वह इसका स्थापन पुष्प या अनामा उँगली या मन से करता है। मन्त्र है— 'आं सोऽहं अमुष्या: प्राणा: इह प्राणा: अमुष्या: जीव इह स्थित: अमुष्या: सर्वेन्द्रियाणि अमुष्या: वाङ्मनश्चक्षुश्रोत्रघ्राणप्राणपदानि इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।' अथवा 'आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हंस: सोऽहं अमुकदेवताया: प्राणा: इह प्राणा: अमुकदेवताया: जीव इह स्थित:। अमुकदेवताया: सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि। अमुकदेवताया: वाङ्मनोचक्षु-श्रोत्रघ्राणपदानि इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।'

न्यास की चरितार्थता को जो देवमयता, देवसायुज्य, देवता के साथ तादात्म्य-प्राप्ति

---

१. अभिनवगुप्तपादाचार्य : 'तन्त्रालोक' आह्निक-१५
२. तन्त्रालोक
३ तन्त्रालोक

के रूप में निरूपित किया गया, वह उसका चरम आदर्श है और ठीक भी है क्योंकि—

उत्तमो ब्रह्मसद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यम:।
स्तुतिर्जपोऽधमो भावो बाह्यपूजाऽधमाधम:।।

ऋषिन्यास— ऋषिन्यास के छ: अंग हैं— ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति एवं कीलक।

'यामल' में कहा गया है कि ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति एवं कीलक पूजा तथा जप के अपरिहार्य अंग हैं और इनके विना की गई पूजा निष्फल होती है—

ऋषिच्छन्दो देवतानां विन्यासेन विना यदा।
जप्यते साधकोऽप्येष तत्र तत्र फलं लभेत्।। (७.१०१)

इन पूजांगों का स्थान भी निर्दिष्ट है; यथा— 'ऋषि' मूर्द्धा, 'छन्द' मुख, 'देवता' हृदय, 'बीज' गुह्यदेश, 'शक्ति' पैर और 'कीलक' सर्वांग—

ऋषिन्यासं मूर्ध्नि देशे छन्दं तु मुखपङ्कजे।
देवता हृदये चैव बीजं तु गुह्यदेशके।। आदि।

न्यासक्रिया का फल— न्यास करने से धन, यश, आयुष्य एवं कलि-कल्मष-नाश— इन चारों का लाभ प्राप्त होता है; यथा—

धनं यशस्यमायुष्यं कलकल्मषनाशनम्।
य: कुर्यान्मातृकान्यासं स एव श्रीसदाशिव:।।
(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-७.८८)

जो न्यास करता है, उसे साक्षात् 'सदाशिव' कहा गया है। विद्या-न्यास के फल के विषय में कहा गया है कि ऐसा साधक पशु होकर भी 'पशुपति' बन जाता है—

एवं न्यासकृत: साक्षात् पशु: पशुपति: स्वयम्।

न्यास में जो वर्ण-स्थापना की जाती है, उससे आवेश उत्पन्न होता है—

इत्येषा मालिनी देवी शक्तिमत्क्षोभिता यत:।
कृत्यावेशात्तत: शाक्ती तनु: सा परमार्थत:।। (तन्त्रालोक)

मालिनीन्यास की मालिनी में संहारशक्ति भी निहित है— 'संहारस्य मालिनी विमर्शिका।' (तन्त्रालोक)

सप्तपञ्चाशत् अध्याय

पीठतत्त्व और त्रिपुरोपासना

तन्त्रशास्त्र में कहा गया है कि पीठ-स्थान में जो जप, पूजा आदि साधनायें की जाती हैं, उनकी अत्यधिक महिमा है। पीठों में अनुष्ठित साधना आशु फलप्रदा एवं महासिद्धिप्रदा होती हैं। चूँकि प्रत्येक 'पीठ' चितिशक्ति के जागृत केन्द्र हैं, शक्ति के शरीराङ्ग हैं और प्रत्येक पीठ में भगवती संवित् शक्ति और साक्षात् भैरव विद्यमान हैं; अत: प्रत्येक पीठ भगवती का अपना स्वरूप ही है। आन्तर जगत् में स्थित सूक्ष्म पीठों (सूक्ष्म आत्मिक केन्द्रों) को जागृत करने के लिये बाह्य पीठों की साधना अत्यधिक सहायक होती है। साधना के लिये भगवान् (भगवती) के छ: रूप माने गये हैं— भुवन, विग्रह, ज्योति, रव, शब्द एवं मन्त्र।

जिन-जिन तीर्थों या स्थानों में भगवती निवास करती हैं, वे सभी स्थान देवीपीठ कहलाते हैं। सती के शरीराङ्गों से ५१ देवीपीठ निर्मित हुये। पीठों के दो प्रकार हैं— बाह्य एवं आन्तर पीठ। पीठोपासना भगवत्योपासना ही है; चाहे वह आन्तर पीठ हो या बाह्य पीठ।

विष्णु के चक्र से 'सती' के कटे अङ्ग जिस-जिस स्थान पर गिरे, उन सभी स्थानों पर 'पीठ' उत्पन्न हो गये, उन-उन पीठों में जगद्धात्री एवं ब्रह्मज्योतिस्वरूपिणी देवी ने 'पाषाण'-रूप ग्रहण कर लिया। साधकों की सिद्धि एवं मुक्ति के लिये वे प्रस्तरविग्रह बन कर वहीं नित्य विराजमान रहती हैं—

यत्र यत्र महादेव्या अङ्गप्रत्यङ्गपातनम्।
महाविष्णुश्चक्रपाणिश्चकार धरणीतले।।

तत्र तत्र जगद्धात्री भक्तानां मुक्तिहेतवे।
साधकानाञ्च सिद्ध्यर्थं नित्यं विहरति क्षितौ।।[१]

इन-इन पीठों में भगवान् शभु भी भैरवरूप धारण करके आसीन हो गये। वे साधकों के कल्याणार्थ एवं विश्वहितार्थ उन-उन पीठों में स्वयं भी भगवती की उपासना करते हैं—

तत्रैव भैरव: शम्भुर्नानारूपधर: स्थित:।
रथार्थं साधकानाञ्च हिताय जगतामपि।
उपासते स्वयं देवी करुणानिधिरीश्वर:।।

इस प्रकार प्रत्येक पीठ में उस पीठ की पीठाधीश्वरी एवं भैरव दोनों निवास करते है। अत: पीठ में पूजा करते समय उस पीठ की अधिष्ठात्री देवी के साथ ही साथ तत्रस्थ भैरव की भी पूजा करनी चाहिये; अन्यथा पीठस्थ पूजा भी निरर्थक हो जाती है—

---

१. योगिनीतन्त्र

अज्ञात्वा भैरवं पीठं शक्तिपीठञ्च शङ्कर।
प्राणनाथ ! न सिद्ध्येत्तु कल्पकोटिजपादिभिः।।

क्षेत्राधिपं विना देव ! पूजयेत् पीठदेवताम्।
भैरवैर्हीयते सर्वं जपपूजादिसाधनम्।।[१]

बाह्य एवं आन्तर पीठों में तादात्म्य— तान्त्रिक आचार्यों ने पीठों को स्थूल एवं भौतिक रूपों में बाहर स्थित मानकर भी सूक्ष्म धरातल पर उनका जब सन्धान किया तो आन्तर जगत् में भी उन्हें स्थित पाया तथा उन दोनों में अन्तःसम्बन्ध भी देखा और उसी अनुभव के आधार पर कहा कि कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर, उड्डीयान, वाराणसी मायावती, अयोध्या एवं काञ्ची आदि बाह्यवर्ती पीठ शरीर के अन्दर भी सूक्ष्म रूप में स्थित हैं—

मूलाधारे कामरूपं हृदि जालन्धरं तथा।
ललाटे पूर्णगिर्याख्यमुड्डियानं तदूर्ध्वके।।

वाराणसीं भ्रुवोर्मध्ये ज्वलन्तीं लोचनत्रये।
मायावतीं मुखवृत्ते कण्ठे मधुपुरीं ततः।।[२]

मूलाधार में 'कामरूप पीठ', हृदय में 'जलन्धर पीठ', ललाट के ऊपर 'उड्डियान पीठ', भ्रुवद्वय में 'वाराणसी पीठ', मुखविवर में 'मायावती पीठ' कटि में 'काञ्ची पीठ' एवं नाभि में 'अयोध्यापीठ' स्थित है।

पीठ, शरीर एवं श्रीचक्र में तादात्म्यभाव

आचार्य महेश्वरानन्द की दृष्टि— महार्थमञ्जरी में आचार्य महेश्वरानन्द ने कहा है कि 'पीठ' ही स्वशरीर है। इसी शरीररूपी पीठ में परमशिव का निवास है। इस पीठ में नौ कलायें या नौ शक्तियाँ हैं। इसमें पञ्चवाह शक्तियाँ हैं। भाल-नेत्र में सत्रह कलायें हैं। दाहिने नेत्र में बारह एवं बायें नेत्र में सोलह कलायें या शक्तियाँ हैं—

पीठे कला नव पञ्चैव पञ्चवाहपदव्याम्।
सप्तदश कालनेत्रे द्वादश षोडश चान्यनेत्रयोः।।

शरीर ही 'महापीठ' है। इसीलिये महेश्वरानन्द कहते हैं कि श्रीपीठ, पञ्चवाह, नेत्र-त्रय एवं वृन्दचक्र— इन सभी चक्रों का चिन्तन करना चाहिये— 'श्रीपीठपञ्चवाहनेत्रत्रय-वृन्दचक्राणि स्मरत' (३६)। महेश्वरानन्दनाथ चौतीसवीं गाथा में कहते हैं—

अण्डमये निजपिण्डे पीठे स्फुरन्ति करणदेव्यः।
प्रस्फुरति च परमशिवो ज्ञाननिधिस्तासां मध्ये।।

अर्थात् अण्डमय स्वशरीररूप पीठ में इन्द्रियों की शक्तियाँ स्फुरित होती हैं और उनके मध्य में शक्तिमान ज्ञाननिधि (प्रमाता) परमशिव ही अभिव्यक्त या इन्द्रियों के

१. तन्त्रचूड़ामणि २. बृहत्तन्त्रसार

प्रति अपनी शक्तिमत्ता प्रकट करते हुये प्रकाशित रहता है। व्यष्टिपिण्ड पृथिवी आदि पञ्चभूत विश्ववैचित्र्य ही 'अण्ड' है। अण्ड एवं पिण्ड में एकता है। ३६ तत्त्वों वाले अण्ड-रूप विश्व-वैचित्र्य में परमशिव अपनी शक्तिमत्ता प्रकाशित करता है। स्वशरीर उसका स्थान है और स्वात्मरूप परमेश्वर ही 'अन्तश्चक्रदेवता' है; किन्तु करण शक्तियाँ 'आवरणदेवता' हैं।

महेश्वरानन्द परिमल में कहते हैं कि 'पीठं हि नाम स्वशरीरभट्टारकमित्युक्तम्, तत्रैव परमेश्वरस्य पञ्चधा वहनात्।'

परमेश्वर की स्फुरण-धारायें (पाँच महाशक्तियाँ) ही पञ्चवाह हैं। परमेश्वर की पञ्च कलायें ही 'पञ्चवाह' हैं। ये ही हैं— व्योमवामेश्वरी, खेचरी, दिक्चरी, गोचरी और भूचरी। ये ही शक्तियाँ चिद्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया हैं। ये ही सूक्ष्मा, परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी भी हैं।

व्योम = व्योमवामेश्वरी, चिच्छक्ति।
खेचरी = बोधरूपा, नादात्मिका।
दिक्चरी = अन्तःकरणरूपी दिशाओं में सञ्चरणकारिणी, इच्छामयी, आनन्दशक्ति।
गोचरी = मन्त्रमयी शक्ति, बाह्येन्द्रियों में सञ्चरण करने वाली। यह ज्ञानमयी है।
भूचरी = विषयभूमि में सञ्चार करने वाली और क्रियामयी है।

'श्रीमहानयप्रकाश' में कहा गया है—

शिवशक्त्युभयोन्मेषसामरस्योद्भवं महत्।
वीर्यं तस्मादेह एव महापीठः समुद्गतः।।

'षट्कोणं यच्छरीरं संवित्पीठं त्रिकोणसाम्यं तत्' कहकर शरीर को ही 'पीठ' के रूप में स्वीकार किया गया है— 'स्वशरीरस्यैव पीठतयोपासनं प्राक्कर्तव्यम्' (परिमल)।

पीठ— शिव एवं शक्ति दोनों के उन्मेष-सामरस्य से 'पीठ' आविर्भूत होता है। देह ही महापीठ है। पीठोपासना भगवती की ही उपासना है।

पीठन्यास तत्त्व— शरीर के समस्त अंगों को देवी का पीठ मानकर (या आसन के रूप में कल्पित करके) साधक अपनी सम्पूर्ण सत्ता को (अपने को) देवीमय मानकर 'साऽहम्' (मैं वही देवी हूँ, जिसकी मैं आराधना करता हूँ) की भावना के साथ देवी के साथ पूर्ण तादात्म्यभाव स्थापित करे। यही पीठन्यास का निहितार्थ है—

ज्ञानात्मानं प्रविन्यस्य न्यसेत्पीठमनुत्तमम्।
एवं देहमये पीठे चिन्तयेदिष्टदेवताम्।।

अपने स्थूल देह को चिन्मय रूप में कल्पित करके पीठन्यास एवं मन्त्रविन्यास करना चाहिये। इस प्रकार के देहमय पीठ में ही अपने इष्टदेव का ध्यान करना चाहिये। इसी प्रकार मूलाधार चक्र को कामरूप पीठ मानकर वहाँ देवी कामाख्या एवं उमानन्द भैरव की पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार सभी चक्रों में देवी एवं भैरव उपास्य होते हैं।

पीठ की उत्पत्ति— महर्षि अङ्गिरा 'दैवी मीमांसादर्शन' के स्थितिपाद में कहते हैं कि पीठ का उदय प्राणमय कोष में होता है—

'पीठस्याविर्भावः प्राणमये।' (स्थितिपाद-१.१६)

सूक्ष्म दैवीराज्य → स्थूल मृत्युलोक का सञ्चालन।

दैवी शक्तियों का स्थूल जगत् में प्राकट्य कैसे हो? पञ्च कोषों में से अन्तमय कोष ही 'स्थूल प्रपञ्च' है। अन्य कोषों का सम्बन्ध दैवी राज्य से भी है। मृत्यूपरान्त प्राणमय कोष मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष एवं आनन्दमय कोष को लेकर लोकान्तर में चला जाता है और अन्नमय कोषस्वरूप मृत देह यहीं पड़ा रह जाता है। प्राणमय कोष ही स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों देहों में सम्बन्ध स्थापित करता है। प्राणमय कोष ही स्थूल मृत्युलोक एवं सूक्ष्म दैवी लोक के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है। समष्टि ब्रह्माण्ड और व्यष्टि पिण्ड— इन दोनों में परिव्याप्त प्राण में पीठ का आविर्भाव होता है।

प्राणमय कोष की सहायता से ही दैवी शक्ति के विकासक या देवों के आसन के लिये उपयोगी जो आवर्त बनता है, उसे ही 'पीठ' कहते हैं—

देव्याः शक्तेर्विकासस्य देवानामासनस्य वा।
उपयोगी जायतेऽसावावर्त्तः पीठ उच्यते।।

भगवान् सूर्य कहते हैं कि सूक्ष्म दिव्यलोक के साथ स्थूललोक का सम्बन्धस्थापन करने वाला प्राणमय कोष है। यदि कोई प्राणमय कोष में पीठस्थापन कर सके तो मेरी दैवी शक्ति का अनुभव कर सकता है—

सूक्ष्मेण दिव्यलोकेन स्थूललोकस्य देहिनः।
सम्बन्धकारको ज्ञेयः कोशः प्राणमयश्चरः।।

यदि प्राणमये कोशे पीठं स्थापयितुं क्षमः।
कथञ्चित् स हि मे शक्तिं दैवीमनुभवत्यसौ।।

पीठ : देवयोनियों का अधिष्ठान— प्राणमय कोष में पीठोत्पत्ति हो जाने पर वही पीठ देवयोनियों का अधिष्ठान बन जाता है। पीठ पर सभी प्रकार की देवयोनियाँ आकर अधिष्ठित होती हैं। देवयोनि में वसु, रुद्र, इन्द्र, ऋषि, पितृगण, प्रेत आदि सभी आते हैं। श्राद्धादि पीठ की सहायता से ही किये जाते हैं। उपासनाकाण्ड का भी पीठ से उतना ही सघन सम्बन्ध है। 'तदधिष्ठानं देवयोनेः' (१.१७) कहकर अंगिरा ऋषि ने 'पीठ देवयोनि का अधिष्ठान स्थान है' इसी तथ्य की पुष्टि की है।

पीठ के आविर्भाव की पद्धति— महर्षि अंगिरा कहते हैं कि दोनों शक्तियों के समन्वय से पीठ का आविर्भाव होता है (तदाविर्भावः शक्तयोः साम्यात्-१.१८)। संसार में दो शक्तियों का प्राधान्य है और उनका परस्पर संघर्ष भी है। वे हैं— आकर्षण शक्ति एवं विकर्षण शक्ति। अन्तर्जगत् में भी राग एवं द्वेष— इन्हीं के प्रतिनिधि हैं।

आकर्षण रजोमूलक है और राग भी रजोमूलक है। विकर्षण तमोमूलक है और द्वेष भी तमोमूलक है। राग एवं द्वेष का समन्वय → सत्त्वगुणमूलक तत्त्वज्ञान का उदय। प्राणमय जगत् में आकर्षण एवं विकर्षण का समन्वय → सत्त्वगुणमूलक एवं देवाधिष्ठानरूपी पीठ का आविर्भाव।

पीठों के प्रकार— 'स्मृतिशास्त्र' के अनुसार पीठोत्पादन की स्वाभाविक या अस्वाभाविक कौशलपूर्ण क्रिया का नाम ही 'चक्र' है। पीठ चार प्रकार के होते हैं— स्थावर पीठ; यथा— तीर्थादिक, सहज पीठ; यथा— नर-नारी के संगम में उत्पन्न, दैवी पीठ; यथा— इन्द्रलोक आदि एवं यौगिक पीठ; यथा— भगवद्विग्रह एवं यन्त्रादि में उत्पन्न।

पीठ शुद्धि और उसके उपाय— पवित्र तत्त्वज्ञान के यथाक्रम विकास से पीठ की आध्यात्मिक शुद्धि सम्पादित होती है। पीठ शुद्धि → सायुज्य। पीठशुद्धि के कारक हैं— तत्त्वज्ञान, देशशुद्धि, कालशुद्धि, मनःशुद्धि, क्रियाशुद्धि एवं द्रव्यशुद्धि।

जहाँ कहीं भी आकर्षण एवं विकर्षण शक्तिरूपिणी परस्पर द्वन्द्व शक्तियों का समन्वय या तो अपने-आप होता है या सुकौशलपूर्ण क्रिया से उत्पन्न किया जाता है, वहीं पीठ उत्पन्न हो जाता है।

पृथिवी चाहे सूर्यादि ग्रहों का पीठ हो, चाहे तीर्थादि का पीठ हो, चाहे स्त्री-पुरुष सम्बन्ध का पीठ हो, चाहे मूर्ति-यन्त्र-चित्र आदि में उपासनापीठ हो; इन सबमें ही उन्हीं आकर्षण एवं विकर्षण शक्तियों के समन्वय से ही अलौकिक पीठ का आविर्भाव होता है। आकर्षण-विकर्षणरूपी द्वन्द्व शक्तियों के समन्वय से प्राणकोष में पीठ का आविर्भाव होता है।

जिस पीठ में प्रेत, तामसिक असुर आदि दैवी शक्तियों का आविर्भाव होता है, उस पीठ में देवताओं का आविर्भाव नहीं हुआ करता। प्रेत, पितृ, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, पिशाच आदि सभी देवयोनियाँ हैं।

आकर्षण अपनी ओर खींचता है। विकर्षण अपने से दूसरी ओर धक्का देकर उसे दूर करती है; यथा— प्राण एवं अपान वायु। परमाणु भी आकृष्ट होकर सृष्टि करते हैं; किन्तु विकर्षित होकर प्रलय करते हैं। इसीलिये आकर्षण एवं विकर्षण शक्तियों को रजस्तमोमूलक कहा गया है— 'ते नु रजस्तमोमूले' (१.१९)।

पीठ सत्त्वमूलक होने पर ही आनन्दप्रद होते हैं— 'पीठमानन्दप्रदं सत्त्वप्राधान्यात्' (१.१०)।

पञ्चधा पीठ— सृष्टि के पञ्चधा होने से पीठ भी पाँच प्रकार के होते हैं— 'तत् पञ्चविधं सृष्टेः पञ्चविधत्वात् (१.२१)। ये पाँच भेद हैं— उपासना पीठ, पार्थिव पीठ, जीवयान्त्रिक पीठ, स्थूल यान्त्रिक पीठ एवं, सहज पीठ। इनमें से उपासना पीठ के सोलह भेद होते हैं। पार्थिव पीठ के देवमन्दिर, तीर्थ, उपास्य नदी, पर्वत, उपासना

मन्दिर आदि भेद होते हैं। जीवयान्त्रिक पीठ के तीन भेद होते हैं— कुमारीपूजा, बटुकपूजा एवं शवसाधन। सहजपीठ के दो भेद होते हैं— नर-नारी-संगम के समय पीठोत्पत्ति एवं सूर्य-चन्द्र-पृथिवी आदि ग्रहों का ग्रहपीठ। कहा भी गया है—

पीठमुत्पद्यते तस्मिन् कोशे तत्र प्रतिष्ठिते।
आविर्भवन्ति ये सर्वा शक्तयस्तत्र निश्चितम्।।

पीठतत्त्व का रहस्य

सामान्यतः जाग्रत एवं शक्ति-सम्पन्न स्थानों को 'पीठ' कहते हैं। सारे भारत में इक्यावन प्रसिद्ध देवीपीठ हैं। तन्त्रपीठ, विद्यापीठ एवं मन्त्रपीठ आदि का भी शास्त्रों में उल्लेख है। कामरूप, जालन्धर, पूर्णगिरि एवं उड्डीयान— ये चार पीठ प्रख्यात हैं। कामरूप पीठ से मत्स्येन्द्रनाथ एवं जालन्धर पीठ से शम्भुनाथ (अभिनवगुप्त के गुरु) सम्बद्ध थे।

कामरूप पीठ— जब परा शक्ति आत्मगर्भस्थ एवं अपने साथ एकीभूत विश्व को (प्रकाश को) देखने हेतु उन्मुख होती है, तब मात्रावच्छिन्न शक्ति एवं शिव साम्य-भावापन्न होकर एक बिन्दु के रूप में परिणत हो जाते हैं और इसके परिणामस्वरूप चैतन्य प्रतिफलित होकर ज्योतिर्लिङ्गरूप में व्यक्त हो उठता है। इसे ही तान्त्रिक शब्दावली में 'कामरूप पीठ' कहा जाता है और इस पीठ में अभिव्यक्त चैतन्य को ही 'स्वयम्भू लिङ्ग' कहा जाता है। यह शक्तिपीठ एक मात्रा शक्त्यंश एवं एक मात्रा शिवांश को समभाव में लेकर संघटित हुआ है। शक्ति एवं शिव के इस अंशद्वय को 'शान्ता शक्ति' एवं 'अम्बिका शक्ति' कहा जाता है।

इस 'कामरूप' नामक पीठ में महाशक्ति की अभिव्यक्ति 'परा वाक्' के नाम से है। शब्दराज्य का प्रारम्भ यहीं से होता है। यही ॐकार का चरम रूप या वेद का यथार्थ (तात्त्विक) स्वरूप है।

पूर्णगिरि पीठ— इसके अनन्तर ही 'शान्ता शक्ति' इच्छा के रूप में, शिवांश अम्बिका शक्ति 'वामा शक्ति' के रूप में आविर्भूत होती है। इन दोनों शक्तियों की पारस्परिक विषमता का निवारण होने पर जिस अद्वैत सामरस्य बिन्दु का आविर्भाव होता है, उससे उसके अनुरूप चैतन्य का स्फुरण होता है। इस बिन्दु को 'पूर्णगिरि पीठ' कहते हैं। यही 'पश्यन्ती वाक्' की अवस्था है।

परा शक्ति आत्मगर्भ में स्थित विश्वशिशु को कामरूप पीठ (या शब्द की प्रथम भूमि) में नित्य वर्तमान रूप में देखती है। इस स्तर पर अतीत एवं अनागत, निकट एवं विप्रकृष्ट का भेद नहीं है। यहाँ कार्य-कारणभाव भी नहीं है। यह नित्य मण्डल विक्षोभ, चाञ्चल्य एवं आवरण से शून्य है। यह शान्तिमय अवस्था है।

इसके अनन्तर इच्छाशक्ति के उन्मेष के साथ ही साथ शब्द के द्वितीय स्तर में सृष्टि का विकास होता है। इसे 'नित्यमण्डल' कहते हैं, जो कि शक्ति के गर्भ में स्थित बीज-

स्वरूप विश्व है। इस बीजभूत विश्व की इच्छाशक्ति के प्रभाव से जब शक्ति के गर्भ में एकदेश से सृष्टि होती है, तभी उसे 'सृष्टि' कहा जाता है। यहीं से काल का प्रभाव प्रारम्भ हो जाता है। यहीं से कार्य-कारणभाव भी प्रारम्भ हो जाता है।

जालन्धर पीठ— इसकी परावस्था में इच्छाशक्ति के उपराम होने पर 'ज्ञानशक्ति' का उन्मेष होता है। वहीं शिवांश ज्येष्ठा शक्ति के साथ अद्वैतभावापन्न होकर एक नव्य सामरस्य बिन्दु की सृष्टि करता है, जिसे 'जालन्धर पीठ' कहते हैं। इस सामरस्य बिन्दु से अभिव्यक्त चैतन्य 'इतर लिङ्ग' कहलाता है। शक्ति के इसी स्तर पर 'मध्यमा वाक्' का आविर्भाव होता है।

इसका प्रभाव यह है कि इस स्तर पर संसृष्ट जगत् तत्तद्भाव में स्थित है। स्थिति शक्ति के क्षीण होने पर आन्तर आकर्षण की तीव्रतावश संहार शक्ति की क्रिया आरम्भ होती है।

सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् की दृष्टि— चक्र एवं पीठ— 'कामरूप पीठ'।

आधारे ब्रह्मचक्रं त्रिरावृत्तं भङ्गिमण्डलाकारं तत्र मूलकन्दे शक्तिः पावकाकारं ध्यायेत्, तत्रैव कामरूपपीठं सर्वकामप्रदं भवति इत्याधारचक्रम्।

'उड्यान पीठ'—

द्वितीयं स्वाधिष्ठानचक्रं षड्दलं तन्मध्ये पश्चिमाभिमुख्यं लिङ्गं प्रवालाङ्कुरसदृशं ध्यायेत्, तत्रैवोड्याणपीठं जगदाकर्षणसिद्धिदं भवति।

'पूर्णगिरि पीठ'—

नवममाकाशचक्रं तत्र षोडशदलपद्ममूर्ध्वमुखं तन्मध्यकर्णिकात्रिकूटाकारं तन्मध्ये ऊर्ध्वशक्तितां परशून्यं ध्यायेत्, तत्रैव पूर्णगिरिपीठं सर्वेच्छासिद्धिसाधनं भवति।

चक्र	पीठ	
१. आधार चक्र	कामरूप पीठ।	पीठत्रय (सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्)
२. स्वाधिष्ठान चक्र	उड्याण पीठ।	
३. आकाश चक्र	पूर्णगिरि पीठ।	

योगमार्तण्ड की दृष्टि— योगमार्तण्ड में गोरक्षनाथ कहते हैं कि आधारचक्र एवं स्वाधिष्ठान चक्र के मध्य जो योनिस्थान है, उसमें ही कामरूप है। उसके मध्य में योनि (त्रिकोणाकार सुषुम्नामुखी योनि) है। इसे ही सिद्धों ने वन्दनीय 'कामाक्षा पीठ' कहा है—

आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम्।
योनिस्थाने तयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते।।

आधाराख्ये गुदास्थाने पङ्कजे यच्चतुर्दलम्।
तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दितः।। (गोरक्षशतक)

'कामाख्या योनि' के मध्य में पश्चिमाभिमुख महालिङ्ग स्थित है। उसके मस्तक में मणिवत् प्रदीप्त बिम्ब है—

योनिमध्ये महालिङ्गं पश्चिमाभिमुखं स्थितम्।

सिद्धसिद्धान्तपद्धति की दृष्टि— सिद्धसिद्धान्तपद्धति में कहा गया है कि मूलाधार में तीन बार गोल आकार में चारो ओर लिपटा हुआ त्रिकोण भगमण्डल के समान 'ब्रह्मचक्र' है। वहीं मूलकन्द है। वहीं अग्नि के आकार वाली शक्ति का ध्यान करना चाहिये। वहीं 'कामरूप पीठ' है, जिसके ध्यानमात्र से समस्त कामनाओं की सिद्धि होती है— 'तत्रैव कामरूपपीठं सर्वसर्वकामप्रदं भवति।'

द्वितीय 'स्वाधिष्ठान चक्र' है। उसके मध्य में पीछे की ओर मुख वाला (पश्चिमाभिमुख) प्रवालाङ्कुर के अग्र भाग के सदृश शिवलिङ्ग है। उसका ध्यान करना चाहिये। यहीं 'उड्डीयान पीठ' भी है। इस लिङ्ग का ध्यान करने से समस्त जगत् साधक की ओर खिंचकर चला आता है— 'तत्रैवोड्डीयानपीठं जगदाकर्षणं भवति।'

नवम आकाशचक्र है। (सहस्रार के ऊर्ध्व भाग में) एक ऊर्ध्वमुख सोलह दलों का पद्म है। उसकी कर्णिका में त्रिकूटाकार (त्रिकोणाकार) ऊर्ध्वमुखी शक्ति है। वह सच्चिदानन्दस्वरूपा निराकार शक्ति है और 'परम शून्य' है। इसका ध्यान करना चाहिये। यहीं 'पूर्णगिरि पीठ' है। यह समस्त पदार्थों से परिपूर्ण है। यहाँ समस्त सङ्कल्पों की सिद्धि होती है। इस पूर्णगिरि पीठ वाले आकाशचक्र का ध्यान करने से संसारजन्य भय की निवृत्ति हो जाती है और समस्त प्राणी वशीभूत हो जाते हैं— 'पूर्णगिरिपीठे सर्वेच्छासिद्धिर्भवति।'

१. चतुरस्र कामरूप पीठ	: भूतत्त्व	: भूमण्डल।	दीपिका
२. षड्बिन्दुयुक्त पूर्णगिरिपीठ	: वायुतत्त्व	: वायुमण्डल।	
३. अर्धचन्द्ररूप जालन्धर पीठ	: जलतत्त्व	: जलमण्डल।	
४. त्रिकोण ओड्याण पीठ	: तेजस् तत्त्व	: अग्निमण्डल।	

उड्डीयान पीठ— संहारशक्ति की क्रिया के आरम्भ होने की ही अवस्था में ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति के रूप में परिणत हो जाती है और शिवांश 'रौद्री शक्ति' के साथ साम्यभाव प्राप्त करती है। इसी को 'उड्डीयान पीठ' कहते हैं। इस बिन्दु से चित् शक्ति महातेजसम्पन्न 'परलिङ्ग' के रूप में अभिव्यक्त होती है। यही स्तर शब्द की 'वैखरी' नामक चतुर्थ भूमिका है। इसी वैखरी भूमि में क्षयिष्णु एवं नश्वर जगत् विद्यमान है।

वाक्तत्त्व और महात्रिकोण (शब्दत्रय)— प्रणव के अकार, उकार एवं मकार पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी वाक् हैं। परा वाक् → १. पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी। २. ब्रह्मा-विष्णु-महेश। ३. भूलोक-पाताललोक-स्वर्गलोक (लोकत्रय)। ४. भूत-वर्तमान-भविष्य (त्रिकाल)। 'परा वाक्' (तुरीय वाक्) ही सृष्टि का मूल है।

बिन्दुगर्भित 'महात्रिकोण' (विश्व-ब्रह्माण्ड का मूल उत्स) की तीन रेखायें पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी ही हैं।

महात्रिकोण की तीन रेखायें— १. पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी, २. सृष्टि-स्थिति-संहार (व्यापारत्रय), ३. वामा-ज्येष्ठा-रौद्री क्रिया, ४. ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र (शिवांशत्रय), ५. इच्छा-ज्ञान-क्रिया (शक्त्यंश)। इस 'महात्रिकोण' का मध्य बिन्दु 'परा वाक्' है। यह 'अम्बिका' एवं 'शान्ता'— इन दो शिवांश-शक्त्यंश का साम्याभावापन्न स्वरूप है। बिन्दु में शिव-शक्ति दोनों अंश है और त्रिकोण में भी दोनों है; फिर भी 'बिन्दु' प्रधानतया 'शिव' रूप में परिणत हो जाता है।

उड्डीयान, जालन्धर, पूर्णगिरि एवं कामरूप में परमात्मा अपने चरम कर्तव्यों की अभिव्यक्ति करता है; इसीलिये ये 'पीठ' कहलाते हैं।

प्राचीन काल में ये पीठ विद्याकेन्द्र माने जाते थे। 'श्रीशैल' या 'श्रीपर्वत' भी प्रधान पीठ था। नागार्जुन अन्तिम काल में यहीं से तिरोहित हुये थे। इन पीठों में तान्त्रिक साधना, प्रत्यक्षानुभव की शिक्षा दी जाती थी। नालन्दा, विक्रमशिला, उदन्तपुरी आदि शिक्षण केन्द्रों में भी इन पीठों का अनुकरण किया गया था।

अम्बिका और शान्ता शक्तियों की जहाँ समरसता है, वह 'प्रधान पीठ' है, वहाँ अलिङ्ग-अव्यक्त महाप्रकाश परम ज्योतिरूप में अभिव्यक्त होता है। इस पीठ का नाम है— 'परा वाक्'। जहाँ इच्छा, ज्ञान और क्रिया तथा वामा, ज्येष्ठा एवं रौद्री का सामरस्य हुआ है। वे स्थान भी 'पीठों' के रूप में परिणत हुये हैं।

तन्त्राम्नाय-सम्बद्ध पीठचतुष्टय— डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची ने Studies in Tantras नामक अपने ग्रन्थ में 'ब्रह्मयामल' के 'श्रोतोनिर्णय' नामक उन्तालीसवें पटल के आधार पर निम्न चार पीठों को प्रस्तुत किया है—

१. विद्यापीठ— भैरवाष्टक, यामलाष्टक विद्यापीठ से उद्भूत हुये।[१] 'जयद्रथयामल' भी इसी पीठ से सम्बद्ध था। योगिनीजाल, योगिनीहृदय, मन्त्रमालिनी, अघोरेशी, क्रीडा-घोरेश्वरी, अघोरेश्वरी, लाकिनीकल्प, मारीचि, महामारी उग्रविद्या, गणतन्त्र भी विद्यापीठ से सम्बद्ध थे।

२. मन्त्रपीठ[२]— स्वच्छन्दभैरवश्चण्डः क्रोधः उन्मत्तभैरवः।
ग्रन्थान्तराणि चत्वारि मन्त्रपीठं वरानने।।

३. मुद्रापीठ— वीरभैरव, चण्डभैरव, गुडकाभैरव, महाभैरव, महावीरेशा मुद्रापीठ से सम्बद्ध थे।

४. मण्डल पीठ।

'स्वच्छन्दतन्त्र' में भी चार पीठों का उल्लेख किया गया है—
चतुष्पीठं महातन्त्रं चतुष्टयकलोदयम्।

'स्वच्छन्दोद्योत' आचार्य क्षेमराज ने 'सर्ववीरवचन' का एक उद्धरण दिया है,

१. ब्रह्मयामल २. स्वच्छन्दतन्त्र

जिसके अनुसार भी मुद्रा, मण्डल, मन्त्र एवं विद्यापीठ है—

मुद्रामण्डलपीठं तु मन्त्रपीठं तथैव च।
विद्यापीठं तथैवेह चतुष्पीठा तु संहिता।।

'अर्थरत्नावली' में सङ्केतपद्धति का एक उद्धरण दिया गया है। उसके अनुसार तो ये पीठ इस प्रकार हैं— ओड्याण = आज्ञापीठ, पूर्णगिरि = मन्त्रपीठ, जालन्धर = विद्यापीठ, कामरूप पीठ = मुद्रापीठ।

इसमें ओड्याणादिक को आज्ञा, मन्त्रादिक पीठ कहा गया है। विभिन्न तान्त्रिक ग्रन्थों को अनेक विभागों में विभाजित करके उन उन विभागों या तन्त्रसमूहों के विशिष्ट वर्गों को किसी एक विशिष्ट पीठ से उत्पन्न बताया गया है और ये पीठ ही तन्त्रों के उस विशिष्ट समुदाय के उद्भावक स्वीकार किये गये हैं। यहाँ 'पीठ' का अर्थ हुआ— तन्त्रग्रन्थों के विशिष्ट समूहों के उद्भावक। इसके अनुसार तो समस्त तन्त्र-संहिता ही 'चतुष्पीठात्मक' है। महार्थमञ्जरी की 'परिमल' नामक व्याख्या में कहा गया है—

विद्येति मातृकांपीठं तत्पार्थिवमुदाहृतम्।
मण्डलं कुण्डलीपीठन्तदाप्यं परिकीर्तितम्।।

मन्त्रसंज्ञं क्रियापीठन्तैजसं तत्प्रकीर्तितम्।
ज्ञानपीठं तु मुद्राख्यं तद्वायव्यं सुरेश्वरि।

परेच्छामुखतो व्योमपीठत्वेनेह नादृतम्।।

विद्या, मन्त्र, ज्ञानादिक पीठ—

विद्यापीठ— मातृका पीठ एवं पार्थिव पीठ।
मण्डलपीठ— कुण्डली पीठ एवं जलीय पीठ।
मन्त्रपीठ— क्रियापीठ एवं तैजस पीठ।
ज्ञानपीठ— मुद्रापीठ एवं वायव्य पीठ।

तन्त्रालोक की टीका 'विवेक' में जयरथ कहते हैं— 'इह विद्यामन्त्रमुद्रामण्डलात्मतया चतुष्पीठं तावच्छास्त्रम्। तस्य मन्त्रमुद्रात्मनः पीठद्वयस्य सम्प्रदाय उक्तः। इदानीमत्रैवावशिष्टस्य विद्यामण्डलात्मनोऽप्यस्य सम्प्रदायं निरूपयति।'

ज्ञान, क्रिया, चर्या एवं प्रयोग तथा दक्ष, वाम, कौल आदि आगम विद्या, मन्त्र, मुद्रा, मण्डल के वाचक तो नहीं है? पीठचतुष्टयात्मकता की पुष्टि इस श्लोक से भी होती है—

विद्यापीठप्रधानं च सिद्धयोगीश्वरीमतम्।
तस्यापि परमं सारं मालिनीविजयोत्तरम्।। (३७.२४-२५)

आगमशास्त्र के स्रोतोविभाग एवं पीठविभाग दोनों हैं।

नित्याषोडशिकार्णव की दृष्टि— नित्याषोडशिकार्णव के प्रथम पटल के बारहवें

श्लोक में कहा गया है— 'कामपूर्णजकाराख्यश्रीपीठान्तर्निवासिनीम्।' कामरूपपीठ, पूर्णगिरिपीठ, जालन्धरपीठ एवं ओड्याणपीठ। शिवानन्द 'ऋजुविमर्शिनी' में कहते हैं कि ये पीठ जगत् के आधारभूत महाभूत चतुष्टयात्मक हैं अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु से सम्बद्ध हैं— 'तच्च पीठचतुष्टयमनिलानलसलिलपृथ्वीमयं समस्तजगदाधारभूतम्।' ये पीठ हैं क्या? शिवानन्द कहते हैं— 'पीठानि महासंविदुपलब्धिस्थानानि, तेषामन्तर्वासिनीं तत्तत्पीठनायिकां महासंविदं त्रिपुरानामधेयां ताम्।'

शिवानन्द के अनुसार 'पीठ' महासंविद् की उपलब्धि के स्थान हैं। इन पीठों में सम्बद्ध पीठनायिकायें रहती हैं; जो कि 'त्रिपुरा' कहलाती हैं। शास्त्रों में यागयोग्य स्थानों को 'पीठ' कहा गया है। इनके दो भेद हैं— बाह्य और आभ्यन्तर।

भगवान् शिव की इच्छाशक्ति भी पीठ कही गई है। समस्त जगत् का आधार होने के कारण उनका 'पीठ' कहा जाना उचित भी है। शक्तिपीठ से बिन्दुपीठ एवं नादपीठ आविर्भूत हुये।

सारांश यह कि मुख्य पीठ तीन हैं— शक्तिपीठ, बिन्दुपीठ एवं नादपीठ। इनमें से शक्तिपीठ कामरूप प्रथम पीठ है, जिसे 'कामरूपपीठ' कहा जाता है। बिन्दुपीठ वाम भाग (उत्तर भाग) में स्थित है और इसे 'उड्डीयानपीठ' कहा जाता है। नादपीठ दक्षिण भाग में स्थित है और इसे ही 'पूर्णगिरिपीठ' कहते हैं।

क. शक्तिपीठ से कौण्डलीपद के मध्य में शाक्त।

ख. बिन्दुपीठ से चतुष्कलमगोलकं बैन्दव।

ग. नादज = व्याप्ति से नीचे द्विरन्ध्र से ऊर्ध्व।

शाक्त = देवीकोट्ट, बैन्दव = उज्जयिनी, नादज = कुलगिरि (उपपीठ), ललनागर्त-वर्ती = शाक्त, पुरमध्य में बैन्दव, व्याप्ति के मध्य में नादज, ललना में पुण्ड्रवर्धन।

देह के बाहर स्थित पीठ— पुटमध्य में वारेन्द्र, व्याप्ति-मध्य में चैकाम्रसन्दोह, हृदम्भोज में दलाष्टक = क्षेत्राष्टक— प्रयाग, वरणा, अट्टहास, जयन्तिका, वाराणसी, कालिङ्ग, कुलूता एवं लाहुला।

हृत्कमल के अष्टदलों के अग्राष्टक = उपक्षेत्राष्टक— विरजा, ऐरुडिका, हाला, एलापूः, क्षीरिका, राजपुरी, मायापुरी, मरुदेश।

हृत्पद्मदल की सन्धियों में स्थित उपसन्दोहाष्टक— जालन्धर, नैपाल, कश्मीर, गर्गिका, हरम्लेच्छद्विग्वारवृत्ति कुरुक्षेत्र एवं खेटक।

देह के भीतर स्थित पीठ— देह में द्विपथ, त्रिपथ, चतुष्पथ के भेद से इनकी संख्या परिगणित की गई है।

१. वाम एवं दक्षिण भागों में स्थित नाडियों का वाह प्रथम।

२. परा शक्ति के साथ मेलन करने से द्वितीय।

३. शक्तिमान के लय से तृतीय।

चतुष्पथ = स्थानचतुष्टय, व्याप्ति के नीचे पिण्डस्थान में प्रथम, तालुमध्य में— द्वितीय, चूलिकाग्र में तृतीय और भ्रूमध्य में चतुर्थ। इनमें आणव, शाक्त एवं शाम्भव भेद भी हैं। यथा—

१. शाम्भव धाम : नासान्त-तालु-चूलिकाग्र : ३ स्थान।

२. शाक्त धाम : नाभि-कन्द-महानन्दा : ३ स्थान।

३. आणव धाम : भ्रूमध्य-कण्ठ-हृदय : ३ स्थान। ९ धाम

संवित्ति = सारे धामों का केन्द्र, सारे पीठों का केन्द्र। संविद → संविद् का परिणमन प्राण के रूप में होता है और इस रूप में वह समस्त शरीर में प्रतिष्ठित है।

योगी लोग शरीर से बाहर उन-उन विशिष्ट स्थानों में (अनुग्रह की आकांक्षा से) संविद् देवी की अभिव्यक्ति प्राप्त करते हैं और वे-वे स्थान 'बाह्य पीठ' कहलाते हैं।

पीठ-उपपीठ-सन्दोह के रूप में त्रिक। क्षेत्र-उपक्षेत्र-सन्दोह के रूप में पीठों के अतिरिक्त भी पीठ हैं, जो तैंतीस की संख्या में हैं। अर्धपीठ भी हैं।

तन्त्रालोक में पीठों के नाम एवं उनके स्थान शरीर के भीतर ही बताये गये हैं; यथा— शिखास्थान में अट्टहास, ब्रह्मविल में चरित्र, कानों में कौलगिरि, नासारन्ध्रों में जयन्तिका, भ्रुवद्वय में उज्जयिनी, मुख में प्रयाग, स्कन्धों में वाराणसी, ग्रीवा में विरजश्री पीठ, कन्द में गोश्रुति, उपस्थ में मरुकोश आदि।[१]

'माधवकुलग्रन्थ' में भी पीठों का विवेचन किया गया है। बौद्धों के 'हेवज्रतन्त्र' में जालन्धर, ओड्डियान, पौर्णगिरि, कामरूप पीठों के अलावा मालव, सिन्धुनगर, देविकोट, कर्मारपाटक, कुलटा, अर्बुद, गोदावरी, हिमाद्रि, हरिकेल, लवणसागर आदि उपपीठों, क्षेत्रों एवं उपक्षेत्रों का भी वर्णन किया है।

तन्त्रालोक में भी पीठ, उपपीठ, क्षेत्र, उपक्षेत्र, सन्दोह, उपसन्दोह आदि का वर्णन किया गया है। 'क्षेत्र' क्या है? 'क्षेत्र मेलापस्थानम्' (जयरथ—तन्त्रालोक : आह्निक-४)। मेलापक एवं उपमेलापकों का भी वर्णन किया गया है।

तन्त्रालोक एवं कौलज्ञाननिर्णय में पीठत्रय का वर्णन तो है, किन्तु उसमें जालन्धर पीठ को गणना में नहीं लिया गया है। हेवज्रतन्त्र के पीठचतुष्टय में इसको परिगणित किया गया है। सम्भवत: जालन्धर पीठ पश्चाद्वर्ती पीठ रहा होगा।

'साधनमाला' नामक बौद्ध तान्त्रिक ग्रन्थ में उड्डीयान, जालन्धर, कामरूप एवं श्रीहट्ट को परिगणित किया गया है। यहाँ 'उड्डीयान' को छोड़ दिया गया है।

---

१. तन्त्रालोक, आह्निक-२९

कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर और उड्डीयान— ये चारों पीठ सार्वत्रिक हैं। योगिनी हृदय एवं षोडशिकार्णव में भी इनका उल्लेख है। अर्थरत्नावली में 'ओजापूकास्पर्शपीठ' नामक पाँचवें पीठ का भी उल्लेख किया गया है। अर्थरत्नावली में उद्धृत 'उत्तरषट्कशास्त्र' में इन आठ पीठों का उल्लेख है— कामरूप, कोल्लगिरि, सोपार, उड्डियान, मलयगिरि, कुलान्तक, जालन्धर और देवीकोट्टा।

योगिनीहृदय (३.३७-४३) के पीठन्यासप्रसङ्ग में तथा 'प्रपञ्चसारप्रयोगक्रमदीपिका' में योगिनीन्यासविधि के प्रसङ्ग में इक्यावन पीठों को परिगणित किया गया है। इन्हीं इक्यावन पीठों को ज्ञानार्णवतन्त्र में भी गृहीत किया गया है; किन्तु यहाँ संख्या पचास बतलाई गई है।

राघवभट्ट द्वारा शारदातिलक की टीका में आठ पीठों को उल्लिखित किया गया है और उद्धृत श्लोक में चौंसठ पीठों का उल्लेख किया गया है।

सिद्धान्तागमों में २२४ भुवनों में अट्टहास, गोकर्ण, कुरुक्षेत्र, आम्रातकेश्वर, श्रीशैल आदि पीठों का भी उल्लेख है। सम्भवत: विभिन्न तान्त्रिक सम्प्रदायों के आचार्यों के आविर्भावस्थानों को भी पीठ के रूप में परिगणित कर लिया गया हो तथा बाद में उनका माहात्म्य होते जाने से उनको विस्मृत कर दिया गया हो और उनके स्थान में शैवों, शाक्तों के अन्य तीर्थ जोड़ दिये गये हों। इस समय तो ग्रन्थोल्लिखित पीठों की सम्पूर्ण संख्या ५०० से भी अधिक दृष्टिगत होती है।

पीठचतुष्टय और उनका स्वरूप— योगिनीहृदय के चक्रसंकेत में कहा गया है कि जो मूल शक्तियाँ शिवादि भूम्यन्त नामरूपात्मक विश्व की उनके अनभिव्यक्त रूप में बीजात्मना एवं अभिव्यक्त रूप में बाह्यावभासन के रूप में प्रकाशित (व्यक्त) करती हैं, वे अम्बिकाद्य शान्ताद्य चार हैं और परस्पर सामरस्यापन्न होने पर 'का, पू, जा, ओ' (कामरूप पीठ, पूर्णगिरि पीठ, जालन्धर पीठ एवं ओड्डियाण पीठ) कहलाती हैं—

भासनाद्विश्वरूपस्य स्वरूपे बाह्यतोऽपि च।
एताश्चतस्र: शक्त्यस्तु का-पू-जा-ओ इति क्रमात्।। (१.४१)

भास्करराय सेतुबन्ध में कहते हैं कि उपर्युक्त श्लोक में 'चतस्र:' शब्द इच्छा-ज्ञान-क्रिया-शान्ता, वामा-ज्येष्ठा-रौद्री-अम्बिका, पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी-परा— इन सभी शक्तियों का बोधक है।

निष्कर्ष यह कि कामरूप पीठ, पूर्णगिरि पीठ, जालन्धर पीठ एवं उड्डीयाण पीठ उक्त समस्त शक्तियों की अभिव्यक्तियाँ हैं, मूल शक्तियों के अवतार हैं, मूल शक्तियों की रहस्यमयी अभिव्यक्तियाँ हैं।

अमृतानन्द योगी 'दीपिका' में कहते हैं कि प्रकाश एवं विमर्श से एकीभूत एवं समरसीभूत चार शक्तियाँ ही कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर एवं ओड्याण पीठ के रूप

में परिणत हो गई हैं— 'प्रकाशविमर्शात्मतया समरसीभूता: पूर्वोक्ताश्चतस्र: शक्तय: कामरूप-पूर्णगिरि-जालन्धर-ओड्याणपीठरूपेण परिणता इत्यर्थ:।'

ये 'पीठ' कन्द, पद, रूप एवं रूपातीत में क्रमश: स्थित हैं। अत: 'पीठ' कन्द, पद, रूप एवं रूपातीत के भी अवतार हैं, अभिव्यक्तियाँ हैं, उनके स्वरूप हैं। योगिनी-हृदय में कहा गया है—

पीठा: कन्दे पदे रूपे रूपातीते क्रमात् स्थिता:।

कन्द = सुषुम्णा का मूल। कन्द = कन्दस्थ पिण्डाख्या कुण्डली। स्वच्छन्दतन्त्र में कहा गया है—

नयित्वा तं सुषुम्नाध: कन्दमूले च मारुतम्।
इच्छाज्ञानक्रियारूपां कुण्डलीं परमेश्वरीम्।
प्रसुप्तभुजगाकारां मातृकारूपिणीं शिवाम्।।

'पद' = हंस, 'रूप' = बिन्दु, 'रूपातीत' = निरञ्जनतत्त्व।

पिण्डं कुण्डलिनी शक्ति: पदं हंस: प्रकीर्तित:।
रूपं बिन्दुरिति ख्यातं रूपातीतं तु चिन्मयम्।। (स्वच्छन्दतन्त्र)

अत: अमृतानन्दनाथ स्वमत प्रकट करते हुये कहते हैं कि पीठ चार हैं— पिण्ड, पद, रूप एवं रूपातीत— 'पीठाश्चत्वार: पिण्डपदरूपरूपातीतशब्देन.....।' ये पीठ— आधार, हृदय, भ्रूमध्य एवं ब्रह्मरन्ध्र को भी लक्षित करते हैं— 'तत्स्थानान्याधारहृदयभ्रूमध्य-ब्रह्मरन्ध्राणि लक्ष्यन्ते।'

भास्करराय 'सेतुबन्ध' में इन पीठों का महाभूतों एवं चक्रों से भी सम्बन्ध जोड़कर उनका स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

पीठ	पञ्चभूत	चक्र	वर्ण
१. कामरूप	पृथ्वीतत्त्व	चतुरस्र	पीत
२. पूर्णगिरि	वायुतत्त्व	षड्विन्दु-लाञ्छित (वर्तुल धूम्रवर्ण)	धूम्र
३. ओड्याण	अग्नितत्त्व	त्रिकोण (रक्तवर्ण)	रक्त
४. जालन्धर	जलतत्त्व	अर्द्धचन्द्रमय	श्वेत

'पीठा: क्षितिपवनजलाग्निमण्डलरूपा:'। (भास्करराय-सेतुबन्ध)

'पृथिवीवायुसलिलतेजसां क्रमेण पीतधूम्रश्वेतरक्तवर्णत्वात्पीठानामपि त एव वर्णा:।'
(अमृतानन्द-दीपिका)

इस प्रकार यह विवरण सेतुबन्ध एवं दीपिका में समान ही है। योगिनीहृदय के अनुसार भी इन पीठों का यही स्वरूप है—

चतुरस्रं तथा बिन्दुषट्कयुक्तं च वृत्तकम्।
अर्धचन्द्रं त्रिकोणं च रूपाण्येषां क्रमेण तु।
पीतो धूम्रस्तथा श्वेतो रक्तो रूपं च कीर्तितम्।।

इन विभिन्न पीठों में निम्न लिङ्ग प्रतिष्ठित हैं—

स्वयम्भुर्बाणलिङ्गञ्च इतरं च परं पुनः।
पीठेष्वेतानि लिङ्गानि संस्थितानि वरानने।। (योगिनीहृदय)

स्वयम्भूलिङ्ग का स्वरूप—

हेमबन्धूककुसुमशरश्चन्द्रनिभानि तु।
स्वरावृत्तं त्रिकूटञ्च महालिङ्गं स्वयम्भुवम्।।
(योगिनीहृदय-१.४५)

बाणलिङ्ग का स्वरूप—

कादितान्ताक्षरोपेतं बाणलिङ्गं त्रिकोणकम्।
कदम्बगोलकाकारं थादिशान्ताक्षरावृतम्।।
(योगिनीहृदय-१.४६)

परलिङ्ग का स्वरूप—

सूक्ष्मरूपं समस्तार्णवृत्तं परमलिङ्गकम्।
बिन्दुरूपं परानन्दकन्दं नित्यपदोदितम्।।
(योगिनीहृदय-१.४७)

'सौभाग्यसुभगोदय' में इनका स्वरूप इस प्रकार विवेचित है—

पुनरेव कामपीठे तदग्रकोणे स्थिते मनोरूपे।
प्रतिफलितं तज्ज्योतिः स्वयम्भुलिङ्गं समाहितं सद्भिः।।

दक्षिणकोणेऽहंकृतिरूपे जालन्धरे तु संक्रान्तम्।
परधामबाणलिङ्गं जातं संक्रान्त्युपाधिभेदवशात्।।

मध्यत्रिकोणकोणे वामे श्रीपूर्णपीठमेतस्मिन्।
बुद्धिमये परतेजः प्रतिफलितं त्वितरलिङ्गतां यातम्।।

चित्तमये श्रीपीठे ज्योतिर्बिन्दौ यदस्य संक्रान्तम्।
प्रतिफलितं परधाम्नः परलिङ्गं तत्प्रकीर्त्यते प्राज्ञैः।।

योगिनीहृदय (चक्रसङ्केत) के अनुसार लिङ्गों का स्वरूप निम्नानुसार है—

स्वयम्भुर्बाणलिङ्गञ्च इतरं च परं पुनः।
पीठेष्वेतानि लिङ्गानि संस्थितानि वरानने।।

हेमबन्धूककुसुमशरच्चन्द्रनिभानि तु।
स्वरावृतं त्रिकूटञ्च महालिङ्गं स्वयम्भुवम्।।

कादितान्ताक्षरोपेतं बाणलिङ्गं त्रिकोणकम्।
कदम्बगोलकाकारं थादिशान्ताक्षरावृतम्।।

सूक्ष्मरूपं समस्तार्णावृतं परमलिङ्गकम्।
बिन्दुरूपं परानन्दकन्दं नित्यपदोदितम्।।

(योगिनीहृदय-१.४४-४७)

पीठस्थ एवं पिण्डस्थ ज्योतिर्लिङ्गों का स्वस्वरूप—

वर्ण	आकार : रूप	मातृका	लिङ्ग
हेमनिभ पीतवर्ण	बिन्दुत्रय कूटरूप (त्रिकूट)	अकारादि षोडशस्वरावृत	स्वयम्भूलिङ्ग
बन्धूक-कुसुम-सन्निभ रक्तवर्ण	त्रिकोण	कादि तान्ता-क्षरावृत	बाणलिङ्ग
शरच्चन्द्रनिभ श्वेतवर्ण	कदम्बगोलकाकार (कदम्बकुसुमगोलकरूप)	थादि शान्ता-क्षरावृत	इतरलिङ्ग
परतेजोरूप होने के कारण अवर्ण सूक्ष्म रूप अतीन्द्रियगोचर	बिन्दुरूप	समस्तार्णावृत	परलिङ्ग[१]

लिङ्ग का अर्थ क्या है? 'लीनं बाह्येन्द्रियागोचरं चिद्रूपमर्थं गमयन्तीति लिङ्गानि।' हमारी बाह्यमुखी इन्द्रियों से अगम्य एवं अतीत, चिद्रूप रहस्यात्मक अर्थों तक जो ले जाते हैं, वे गुप्त शक्तिकेन्द्र ही 'लिङ्ग' हैं। पीठों का स्वरूप क्या है? मन-बुद्धि-अहंकार-चित्त (अन्त:करणचतुष्टय) रूप वाले कामरूप आदि गुप्त केन्द्र, जो कि चित्तस्फुरण के आधार हैं, 'पीठ' कहे जाते हैं— 'मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तात्मकानि कामरूपादीनि चित्स्फुरत्ता-धारत्वात्पीठानि।' (अमृतानन्द : दीपिका)

परलिङ्ग— जहाँ तक परलिङ्ग के स्वरूप का प्रश्न है तो उसका स्वरूप निम्न प्रकार का है—

१. यह आदि क्षान्त (क्षान्तैकपञ्चाशत्) पञ्चाशत् अक्षरों से युक्त है (५० वर्णों से आवृत्त है)।

२. यह परानन्द कन्द है (अक्षरादिरूपा पश्यन्ती आदि शाखाओं से युक्त लता का आनन्दमय कन्द है)।

३. यह नित्य पदोदित है (चूँकि मातृकायें उत्पत्ति-विनाश से रहित हैं; अत: नित्य

---

१. दीपिका (अमृतानन्द)

हैं और पदोदित हैं। विश्वमुमुक्षु मन से प्राप्य होने के कारण तथा प्रथम स्पन्द रूप वाला होने से इसे पदोदित कहा गया है। यह प्रथम स्पन्द के रूप में उदित होता है)।[१]

'लिङ्ग' का अर्थ है— चिह्न। पीठों में स्थित कामरूप, पूर्णगिरि आदि जो पीठ हैं, वे 'लिङ्ग' इसलिये कहलाते हैं; क्योंकि ये लीन अर्थों को द्योतित करते हैं और मन-बुद्धि-अहंकार-चित्त के भी द्योतक हैं। साथ ही चित्स्फुरणा के मूलाधार भी हैं— 'लिङ्गानीतिपदेन लीनमर्थं गमयतीति व्युत्पत्त्या मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तानि चित्स्फुरणाधारत्वादुच्यन्ते।'[२]

४. यह लिङ्गरूप है।

५. यह सूक्ष्मरूप है। यह लिङ्गत्रय-समष्टिरूप है।

६. यह बिन्दुरूप है, बैन्दव चक्रवासनात्मक है। यह परानन्दकन्द है, परा मातृका का सारभूत है। यह पदोदित है अर्थात् मुमुक्षुओं के चित्त से उदित होता है।

७. वस्तुत: यह 'परलिङ्ग' रूपातीत है, तथापि स्वयम्भू आदि लिङ्गों के समष्टि रूप को द्योतित करने हेतु उन लिङ्गों के साधारण आधारों में, कन्द-पद-बिन्दुओं में भी असाध्योदय है— यही कहने हेतु बिन्दु-रूपादि विशेषणत्रय का इस प्रसंग में उपयोग किया गया है।[३]

ये चारो लिङ्ग बीजत्रययुक्त तुरीय विद्या के वाच्य रूप हैं। ये शक्तिचतुष्टय, मातृकाचतुष्टय, मध्यकोणचतुष्टय एवं पीठचतुष्टय से युक्त हैं। ये (सारे) बीजत्रययुक्त सकल मन्त्र के वाग्भव, कामराज एवं शक्तिबीजसमेत समष्टि रूप वाली तुरीय विद्या के वाच्य-रूप हैं। 'विद्या' तो वाचिका है, किन्तु ये सभी वाचक हैं। अत: विद्या चतुर्मयी (चतुष्टय-रूपिणी) है; क्योंकि वाच्य एवं वाचक तो अभिन्न हैं। ये 'कुलकौलमय' हैं। 'कुल' = मेयमातृ, 'कौल' = उनकी समष्टि के रूप में स्थित।[४]

भास्कर्राय कहते हैं कि त्रिकोण के अग्र, दक्ष एवं वाम कोणों के मध्य में इन चारो लिङ्गों की भावना करनी चाहिये। यहीं हेमवर्ण, पीतवर्ण, बन्धुजीवपुष्पवर्ण एवं रक्त वर्ण भावनीय है। (स्वरावृत = १६ स्वरों से युक्त, त्रिकूट = शिखरत्रय की भाँति बिन्दु-त्रयात्मक कूटवत्)।

ये चारों लिङ्ग बीजत्रय, कूटत्रय से युक्त 'सकल' (त्रयोदशाक्षरयुक्त तुर्य) मन्त्र के वाच्यरूप हैं और वाच्य तथा वाचक में अभेद होने के कारण दोनों अभिन्न हैं।[५] 'सकल' शब्द का अर्थ है— पञ्चदशाक्षरी मन्त्र। प्रत्येक साधना की प्रातिस्विक तीन वासनायें होती हैं; किन्तु पञ्चदशाक्षरी-साधक की तो तीनों की समष्टिरूप एक पृथक् इकाई होने से चतुर्थी वासना भी है— ऐसा समझना चाहिये।

---

१. अमृतानन्द : दीपिका-१.४

२. सेतुबन्ध-१.४७

३. सेतुबन्ध (भास्कर्राय मखिन)

४. दीपिका

५. भास्कर्राय : सेतुबन्ध-१.४४-४८

(कुल = सजातीय— 'सजातीयैः कुलं यूथम्'–अमरकोश)। साजात्य का अर्थ (इस प्रसंग में) एकज्ञानविषयत्व है। उसके द्वारा मातृ-मान-मेय, कौल, उनकी समष्टि अर्थात् तन्मय या तदभिन्न। इसी प्रकार जाग्रदादि अवस्थायें भी उनसे अभिन्न हैं। योगिनी-दीपिका (१.४८) में कहा गया है—

बीजत्रययुक्तस्य सकलस्य मनोः पुनः।
एतानि वाच्यरूपाणि कुलकौलमयानि तु।।

किन्तु पूर्वोक्त चक्रों की 'चतुरात्मता' का प्रतिपादन करके ग्रन्थकार उनमें निवास करने वाली अधिष्ठात्री देवी (बैन्दव गृहनिवासिनी देवी) के विषय में कहता है कि वह संवित् स्वरूप शक्ति अवस्थातीत है, विश्वोत्तीर्ण है, अनुत्तर प्रकाश है, सभी प्राणियों में आत्मा बन कर स्थित है—

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यतुर्यरूपाण्यमूनि तु।
अतीतं तु परं तेजः स्वसंविदुदयात्मकम्।। (१.४९)

लेकिन वह विश्वातीत के साथ-साथ विश्वमय भी है। उसकी आत्मभित्ति पर स्वेच्छा-तूलिका द्वारा विश्वरूप उल्लेख (चित्र) उसी के द्वारा अङ्कित किया गया है। यह देवी प्रकाशात्मा परशिव की निसर्गानन्दसुन्दर चैतन्य (चिद्विमर्शशक्ति) है—

स्वेच्छाविश्वमयोल्लेखखचितं विश्वरूपकम्।
चैतन्यमात्मनो रूपं निसर्गानन्दसुन्दरम्।।

कहा भी गया है—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छातूलिकयात्मनि।
स्वयमेव समालोक्य प्रीणाति भगवान् शिवः।।

प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में भी इसी तथ्य को सम्पुष्ट करते हुये कहा गया है—

१. 'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः।'

२. 'स्वेच्छया विश्वमुन्मीलयति।'

इसे ही निम्न श्लोक द्वारा भी सम्पुष्ट किया गया है—

निरुपादानसम्भारमभित्तावेव तन्वते।
जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने।।

परिणामवाद— जगत् भगवती ललिता देवी का 'परिणाम' है। यह न तो विवर्त या अध्यास है और न ही सांख्य का सत्कार्यवाद-व्युत्पन्न 'परिणाम' है; प्रत्युत 'अविकृत परिणाम' है। भगवती शिव से क्षितिपर्यन्त समस्त ३६ तत्त्वों से युक्त जगत् के रूप में परिणत हो जाती है; अतः षट्त्रिंशज्जगदात्म जगत् भगवती का एक परिणाम है; क्योंकि वह इसी रूप में परिणमित होती है— 'शिवादिक्षित्यन्तरूपेण परिणमत इत्यर्थः।'[१] जिस

१. अमृतानन्द योगी : दीपिका

प्रकार दूध दही के रूप में परिणमित होता है, उसी प्रकार चिच्छक्ति समस्त वैश्व आकारों के रूप में परिणमित हो जाती है।[१] विश्व उसी का चित्र है।[२]

पीठों का शरीर में इस प्रकार होता है— मूलाधारचक्र में = कामरूप पीठ, अनाहत-चक्र (हृदयस्थान) में = जालन्धरपीठ, ललाट प्रदेश में = पूर्णगिरिपीठ, ललाट के ऊर्ध्वदेश में = उड्डीयानपीठ, भ्रूमध्यप्रदेश में = वाराणसी पीठ, नयनत्रय में = ज्वालामुखी पीठ, मुखविवर में = मायावती पीठ, कण्ठ में = मधुपुर पीठ, नाभि = अयोध्यापीठ, कटिदेश में = काञ्ची पीठ।

मूलाधारे कामरूपं हृदि जालन्धरं तथा।
ललाटे पूर्णगिर्याख्यमुड्डियानं तदूर्द्धके।।
वाराणसीं भ्रुवोर्मध्ये ज्वलन्तीं लोचनत्रये।
मायावती मुखवृत्ते कण्ठे मधुपुरीं ततः।
अयोध्यां नाभिदेशे च कट्यां काञ्चीं विनिर्दिशेत्।।
दशैतानि प्रधानानि पीठानि क्रमतो विदुः।
ह्रस्वदीर्घस्वरैर्वर्गैर्नमोऽन्तैः क्रमतो न्यसेत्।। (बृहत्तन्त्रसार)

षट्चक्रों में शिव-शक्तियोग (शाक्तदर्शनम्)

पीठ-नाम	शिव	शक्ति	पीठ-दल
मूलाधार	स्वयम्भू	ब्रह्मशक्ति डाकिनी	०४
स्वाधिष्ठान	विष्णु-द्वितीय शिव	शाकिणी	०६
मणिपुर	रुद्र-तृतीय शिवरुद्र	लाकिनी	१०
अनाहत	ईशान-चतुर्थ शिव	काकिनी	१२
विशुद्ध	पञ्चम पीठ-सदाशिव	शाकिनी	१६
आज्ञा	षष्ठ शिव-परशिव 'ॐ'	हाकिनी	०२

'तन्त्रचूड़ामणि' के अनुसार दश महाविद्यापीठ निम्नवत् हैं—

१. भैरवी महाविद्या पीठ
२. षोडशी महाविद्यापीठ
३. छिन्नमस्ता महाविद्यापीठ
४. मातङ्गी महाविद्यापीठ
५. अम्बिका-महाकाली महाविद्यापीठ
६. बगला महाविद्यापीठ
७. कमला महाविद्यापीठ
८. भुवनेश्वरी महाविद्यापीठ
९. धूमावती महाविद्यापीठ
१०. इन नवों पीठों के भैरव हैं— उमानन्द।

१. यथा क्षीरं दध्याकारेण परिणमते तथा चिच्छक्तिरेव सर्वाकारेण परिणमते।
(दीपिका-१.५०)

२. विश्वमयोल्लेखो जगदात्मकं चित्रं तेन खचितम् (भास्कर)।

इक्यावन पीठों का इतिहास

छाया सती और इक्यावन पीठ— दक्ष के यज्ञ में अपने पति का अपमान देखकर सती ने 'छाया सती' को जन्म देकर उन्हें आज्ञा दी कि 'आप दक्ष के सहित पूरे यज्ञ का विध्वंस कीजिये। एतदर्थ आप यज्ञाग्नि में प्रवेश करें'— इतना कहकर सती अन्तरिक्ष में लुप्त हो गईं। छाया सती दक्ष को फटकार कर चित्कला रूप से यज्ञाग्नि में प्रवेश कर गईं। छाया सीता की क्रोधाग्नि से भद्रकाली उत्पन्न हो गईं। शिव ने इस समाचार को सुनकर वीरभद्र को भेजा। सती-मोह में शिव रोने लगे। आकाश से देवी ने कहा कि 'हे महेश्वर ! यज्ञ-ज्वलित मेरा रूप छाया सती का था। आप उनके शरीर को लेकर पूरी पृथ्वी पर भ्रमण करें। वह सती-देह टुकड़े-टुकड़े होकर स्थान-स्थान पर गिर जायगा। जहाँ-जहाँ ये शरीराङ्ग गिरेंगे, वे-वे स्थान पापनाशकारी 'महापीठ' बन जायेंगे— 'तत्र तद्धि महापीठं भवष्यित्यघनाशनम्।' जहाँ मेरी योनि गिरे, वहाँ यदि आप तपस्या करेंगे तो मुझे प्राप्त कर लेंगे।'

शिव ने दक्ष के भवन आकर रोते हुये छाया सती का शरीर उठाकर अपने शिर पर रख लिया और पृथ्वी पर नाचने लगे। वे ताण्डवनृत्य करते हुये पागल हो उठे। भगवान् विष्णु ने शिर पर धृत सती के शरीर को सुदर्शन से काटकर पृथ्वी पर गिराना प्रारम्भ किया। उन्हीं छाया सती के कटे हुये अङ्ग पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ गिरे, वे-वे स्थान इक्यावन 'महापीठ' बन गये। कामाक्षा में 'योनि' गिरी थी; इसीलिये कामाक्षा को श्रेष्ठतम महापीठ माना गया। वहाँ भगवती प्रत्यक्षत: साक्षात् रूप में निवास करती हैं—

यत्र साक्षाद्भगवती स्वयमेव व्यवस्थिता।

पीठ-संख्या— पीठसंख्या के विषय में नाना पुराणों के नाना मत हैं अर्थात् मत-वैभिन्य है। मत्स्यपुराण (अध्याय-१३), स्कन्दपुराण (अवन्तिखण्ड-रेवाखण्ड) आदि में पीठों का उल्लेख मिलता है। देवीभागवतपुराण में १०८ पीठों का उल्लेख प्राप्त होता है। कालिकापुराण (१८.४२-५१) में पीठों का विवरण मिलता है, जिसके अनुसार पीठों की स्थिति निम्नवत् है—

स्थान	देवी का छिन्न शरीराङ्ग	अधिष्ठात्री देवी
देवीकूट	पादयुग्म	योगनिद्रा 'महाभागा'
उड्डीयान	उरुयुग्म	कात्यायनी
कामरूप (कामगिरि)	योनिमण्डल	कामाख्या
कामरूप (कामगिरि)	नाभिमण्डल (गौहाटी में)	कामाख्या
जालन्धर	स्तनयुग्म स्वर्णहार	चण्डी
पूर्णगिरि	स्कन्ध	पूर्णेश्वरी

स्थान	देवी का छिन्न शरीराङ्ग	अधिष्ठात्री देवी
कामरूप के पूर्व सीमाप्रान्त	मस्तक	दिक्करवासिनी
याज्ञिक देश	पूर्व दिशा में शिव जहाँ-जहाँ गये	
आकाशगंगा	शरीर के छोटे टुकड़े	
जिन-जिन देशों में पैर आदि अंग गिरे	शिव का लिङ्गरूप धारण करके अवस्थान	

'रुद्रयामल तन्त्र' के अनुसार पीठों की संख्या दस है; वे हैं— कामरूप पीठ, जालन्धर पीठ, पूर्णगिरि पीठ, उड्डियान पीठ, वाराणसी पीठ, ज्वालामुखी पीठ, मायावती पीठ, मथुरा पीठ, अयोध्या पीठ एवं काञ्ची पीठ। 'कुब्जिकातन्त्र' बयालीस पीठ स्वीकार करता है— 'द्विचत्वारिंशत् पीठानि।' 'ज्ञानार्णवतन्त्र' पचास पीठ स्वीकार करता है। 'तन्त्रचूड़ामणि' में इक्यावन पीठों का उल्लेख किया गया है और यही मत सर्वमान्य है। इन्हीं का उल्लेख 'योगिनीतन्त्र' में भी किया गया है।

योगिनी तन्त्र— चक्रपाणि के सुदर्शनचक्र से छिन्न होकर सती का जो अङ्ग जहाँ गिरा, वहाँ वे ब्रह्मज्योतिस्वरूपिणी देवी भक्तों के कल्याणार्थ एवं मन्त्रसिद्धयर्थ प्रस्तरमयी होकर महापीठरूप से नित्य निवास करती हैं; साथ ही भगवान् शिव भी उन-उन महापीठों में भैरवमूर्ति धारण करके देवी की उपासना किया करते हैं—

उपासते स्वयं देवीं करुणानिधिरीश्वर।

तन्त्रचूड़ामणि के अनुसार विष्णुचक्र से छिन्न छाया सती के शरीर के इक्यावन टुकड़े इक्यावन महापीठों के रूप में आज भी विद्यमान हैं। इन पीठों में इक्यावन पीठाधिष्ठात्रियों को इक्यावन विद्या कहा जाता है।

पीठ : स्थान	सती का अंग	पीठ	देवी	भैरव	प्रचारक
हिङ्गुल : हिङ्गलाज	ब्रह्मरन्ध्र	कोट्टरी पीठ	दिगम्बरी कालीरूपी देवी कोट्टरा	भीमलोचन	ब्रह्मानन्द, ज्ञानानन्द
करवीर	नेत्रत्रय	महिष मर्दिनी पीठ	—	क्रोधीश भैरव	
सुगन्धा	नासिका	सुनन्द महापीठ	—	त्र्यम्बकभैरव	

पीठ : स्थान	सती का अंग	पीठ	देवी	भैरव	प्रचारक
काश्मीर	कण्ठ	महामाया पीठ	—	त्रिसन्ध्येश्वरी भैरव	क्षीरभवानी
काण्डा	जिह्वा	ज्वालामुखी	अम्बिका	उन्मत्तभैरव	
हिमालय	स्तन	जालन्धर महापीठ	त्रिपुरमाली	भीषणभैरव	
बिहार (वैद्यनाथ)	हृदय	हार्दपीठ	जय दुर्गा	वैद्यनाथभैरव	
उत्कल	नाभि	विरजा क्षेत्र	विमला	जगन्नाथभैरव	
त्रिपुरा	दक्षिण पाद	त्रिपुरसुन्दरी	त्रिपुरसुन्दरी	त्रिपुरेशी	इत्यादि

'योगिनीहृदय' नामक श्रीसम्प्रदाय के ग्रन्थ में पीठों का विवेचन इस प्रकार किया गया है— का, पू, जा, ओ।

एताश्चतस्रः शक्त्यस्तु कापूजाओ इति क्रमात्।
पीठाः कन्दे पदे रूपे रूपातीते क्रमात् स्थिताः।।

चतुरस्रं तथा बिन्दुषट्कयुक्तं च वृत्तकम्।
अर्धचन्द्रं त्रिकोणञ्च रूपाण्येषां क्रमेण तु।।

का = कामरूप पीठ, पू = पूर्णगिरि पीठ, जा = जालन्धर एवं ओ = ओड्याण।

अम्बिका, शान्ता आदि शक्तियाँ क्रम से परस्पर सामरस्यापन्न होकर कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर एवं ओड्याण पीठ का निर्माण करती हैं। ये प्रकाश एवं विमर्श से समरसीभूत होती हैं। अमृतानन्द 'दीपिका' में कहते हैं— 'अम्बिकाद्याः शान्ताद्याश्चतस्रः क्रमेण परस्परं सामरस्यमापन्नाः का-पू-जा-ओ इति क्रमादासन्। प्रकाशविमर्शात्मतया समरसीभूताः पूर्वोक्ताश्चतस्रः शक्तयः कामरूप-पूर्णगिरि-जालन्धर-औडयाणपीठरूपेण परिणताः।'

सौभाग्यसुभगोदय में कहा गया है—

पुनरेव कामपीठे तदग्रकोणे स्थिते मनोरूपे।
प्रतिफलितं तज्ज्योतिः स्वायम्भुलिङ्गं समाहितं सद्भिः।।

दक्षिणकोणेऽहंकृतिरूपे जालन्धरे तु संक्रान्तम्।
परधामबाणलिङ्गं जातं संक्रान्त्युपाधिभेदवशात्।।

मध्यत्रिकोणकोणे वामे श्रीपूर्णपीठमेतस्मिन्।
बुद्धिमये परतेजः प्रतिफलितं त्वितरलिङ्गतां यातम्।।

चित्तमये श्रीपीठे ज्योतिर्बिन्दौ यदस्य संक्रान्तम्।
प्रतिफलितं परधाम्नः परलिङ्गं तत्प्रकीर्त्यते प्राज्ञैः।।

पीठ पञ्चभूतात्मक हैं। 'सेतुबन्ध' में भास्कर कहते हैं कि 'पीठाः क्रमेण क्षिति-पवन-जलाग्निरूपाः।'—

१. भूतत्त्व : पीतवर्ण : कामरूप पीठ।
२. वायुतत्त्व : धूम्रवर्ण वर्तुल, षड्विन्दुलाञ्छित : पूर्णगिरिपीठ।
३. जलतत्त्व : अर्धचन्द्राकार, श्वेतवर्ण, जालन्धर पीठ।
४. अग्नितत्त्व : त्रिकोण, रक्त वर्ण : उड्डीयान पीठ।।

'स्वच्छन्दतन्त्र' में इसे इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

पिण्डं कुण्डलिनी शक्तिः पदं हंसः प्रकीर्तितः।
रूपं बिन्दुरिति ख्यातं रूपातीतं तु चिन्मयम्।।

कन्दः कुण्डलिनी शक्ति पदं हंसः प्रकीर्तितः।
रूपं बिन्दुरिति ख्यातं रूपातीतं तु निष्कलम्।।

कन्द = मूलाधार चक्र। पदं हंस = हृदय। रूपं = भ्रूमध्य। रूपातीत = ब्रह्मरन्ध्र।

पीठों का देवी से सम्बन्ध— सेतुबन्ध में कहा गया है कि पीठ तो देवी के अपने रूप हैं— 'बाह्यसृष्टौ कामरूपं, पूर्णगिरिर्जालरन्ध्रमौड्याणमिति पीठा, एतद्देवीरूपाः।' कालिका-पुराण आदि में भी यही कहा गया है।

'ललितासहस्रनाम' में कहा गया है कि भगवती त्रिपुरसुन्दरी पीठों में निवास करती है—

शृङ्गाररससम्पूर्णा जया जालन्धरस्थिता।
ओड्याणपीठनिलया बिन्दुमण्डलवासिनी।।

'वरिवस्यारहस्यम्' में कहा गया है कि मातृका वर्णों की जितनी संख्या है, उतने ही पीठ हैं। इस प्रकार कुल पचपन पीठ हैं—

यावन्मातृकमुदितान्येकसमेतानि पञ्चाशत्।
पीठानि पुनर्गणितान्योजापूकानि चत्वारि।।

गणपग्रहभादीनां शशिनिधितारर्तुसूर्यङ्ख्यानाम्।
मेलनतः पीठानि ज्ञेयान्येतेषु पञ्चपञ्चाशत्।।

'कामकलाविलास' में कहा गया है गुरु शिव ने, जो कि उड्डीयान पीठ में निवास करते हैं, उन्होंने सत्ययुग के काल में अपनी शक्ति विमर्शरूपिणी कामेश्वरी को आत्म-विद्या प्रदान किया—

आसीनः श्रीपीठे कृतयुगकाले गुरुश्शिवो विद्याम्।
तस्यै ददौ स्वशक्त्यै कामेश्वर्यै विमर्शरूपिण्यै।।

श्रीपीठ क्या है? श्रीपीठ मध्यत्र्यस्रान्तर्गत उड्डीयान पीठ है।

भगवती की उपासना के जितने भी साधन एवं मार्ग हैं, उन्हें परा, परापरा, अपरा (योगिनीहृदय : पूजासङ्केत) में वर्गीकृत करके उनके यथार्थ स्वरूप को समझना चाहिये। 'परापूजा' जो सर्वोच्च एकता या सामरस्य को अपना लक्ष्य बनाती है, यह सामरस्य— उपासक एवं परमशिव के मध्य स्थापित होता है। 'परापरापूजा' कर्म एवं ज्ञान दोनों की पृष्ठभूमि पर आधृत है और 'भावना' के द्वारा बाह्यवर्ती चक्रों को अपने अन्त:स्थ प्रकाश में लय करने अर्थात् उनके साथ तादात्म्य प्राप्त करने की पद्धति है। इसके माध्यम से उपासक कर्मों का त्याग करके ज्ञान के साथ तादात्म्य प्राप्त करता है। 'अपरापूजा' बाह्य चक्रों एवं आवरणादि की पूजा है, जो कि निम्नतमा पूजा मानी जाती है।

भास्कर्राय ने 'सौभाग्यभास्कर' में देवी के तीन रूप बताये हैं— करचरणादिविशिष्ट स्थूल रूप, पञ्चदशाक्षरीमय सूक्ष्मरूप एवं वासनामय पररूप।

भगवती का सूक्ष्म रूप भी त्रिविधात्मक है और वे तीन रूप हैं— सूक्ष्म, सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम रूप। इन्हीं को क्रमश: पञ्चदशाक्षरीमय, कामकला एवं कुण्डलिनी रूप कहा जाता है। इन्ही स्वरूपों के अनुसार भगवती की उपासना भी निष्पाद्य है।

'योगिनीहृदय' (पूजासङ्केत) में कहा गया है कि महासारविमर्शैकशरीरिणी संविदग्नि में भेदाभास का हवन करने पर सारे संसरण— आवागमन का मार्ग बन्द हो जाता है। अर्थात् यही यथार्थ उपासना होने के कारण यही मुक्ति का यथार्थ साधन है—

संविदग्नौ महासारे विमर्शैकशरीरिणि।
भेदाभासमिदं हव्यं जुहोम्य पुनरुद्भवम्।।

अष्टापञ्चाशत् अध्याय

भावतत्त्व और पुरोपासना

भावतत्त्व एव भावना— 'भावनोपनिषद्' (अथर्ववेद) में भगवती की पूजा का मुख्य तत्त्व 'भावना' माना गया है। भावनोपनिषद् में प्रयुक्त 'भावना' शब्द इसी अर्थ का द्योतक है। तन्त्र-साधना में भावतत्त्व अन्यतम तत्त्व है। 'भाव' क्या है? 'कौलावलीतन्त्र' में भाव तत्त्व की व्याख्या करते हुये कहा गया है—

भावस्तु मानसो धर्मः स हि शब्दः कथं भवेत्।
तस्माद्भावो न वक्तव्यो दिङ्मात्रं समुदाहृतम्।।

यथेक्षुगुड़माधुर्यं जिह्वया ज्ञायते सदा।
तथा भावो विभावश्च मनसा परिभाव्यते।।

भावों का विभाव जिह्वा-कथ्य नहीं है; केवल मानसग्राह्य है।

महाभाव एवं भावतत्त्व— एक ही 'महाभाव' तत्त्व अनेक भागों में विभाजित हो गया है। महाभाव के एकत्व ने भावों का नानात्व प्राप्त कर लिया है। 'महाभाव' तो एक दिव्य रस है और 'रस' तो परमात्मा है— 'रसो वै सः।' एक महाभाव ही उपाधि या विषय के भेदों से भक्ति, प्रेम एवं वात्सल्य आदि नाना रूपों में विभक्त हो गया है।

भाव जब प्रगाढ़ हो जाता है तब भावगत सारे भेदोपभेद महाभाव में ही विलीन हो जाते हैं। यह 'भाव' ही आनन्दघनसन्दोह परमात्मा है, भाव ही रसरूपात्मिका आत्मा है तथा भाव ही 'परम महान्' है—

एक एव महाभावो नानात्वं भजते यतः।
उपाधिभेदभावेन भावदेहो लयिष्यति।।

आनन्दघनसन्दोहः प्रभुः प्रकृतिरूपधृक्।
रसरूपः स एवात्मा स प्रभुः परमो महान्।।

इसीलिये 'कौलावलीतन्त्र' में कहा गया है कि यदि बहुत जप भी कर लिया जाय और बहुत हवन भी कर लिया जाय तो क्या? यह केवल शरीर को कष्ट देना मात्र ही होगा; क्योंकि विना भाव के तन्त्र-मन्त्र आदि कभी फलप्रद नहीं हो पाते। कौलावलीतन्त्र में इसी भाव की पुष्टि करते हुये कहा गया है—

बहुजापात्तथा होमात्कार्यक्लेशात्तु विस्तरात्।
न भावेन विना चैव तन्त्रमन्त्राः फलप्रदाः।।

भावों के भेद— 'रुद्रयामलतन्त्र' में कहा गया है कि जिस प्रकार शरीर के उत्तम, मध्यम एवं अधम— ये तीन भेद होते हैं; ठीक उसी प्रकार भावों के भी तीन भेद होते हैं—

दिव्यभाव (उत्तम), वीरभाव (मध्यम) एवं पशुभाव (अधम)। कहा भी गया है—

शरीरं त्रिविधं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम्।
तत्रैव त्रिविधं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम्।। (रुद्रयामलतन्त्र)

साधना में अधिकारभेद— ये तीनों भाव वस्तुत ज्ञान एवं निष्ठा के तीन स्तर हैं। सत्त्व-रज-तम से अनुविद्ध अवस्थायें ही दिव्य-वीर-पशु या उत्तम-मध्यम-अधम ज्ञानावस्थायें हैं। मानव-प्रकृति भी इसी प्रकार त्रिविधात्मक है। इसीलिये साधना-प्रणालियाँ भी त्रिविधात्मिका हैं। जिसकी जैसी प्रकृति होती है, उसी प्रकार की उसकी साधना भी होनी चाहिये; क्योंकि यदि साधक तामसिक प्रकृति का होने पर भी दिव्य भाव की साधना करता है तो उसका आगे विकास नहीं होगा इसी दृष्टि से तामसिक प्रकृति के साधकों के लिये 'पशुभाव', राजसिक प्रकृति के साधकों के लिये 'वीरभाव' एवं सात्त्विक प्रकृति के साधकों के लिये 'दिव्यभाव' प्रशस्त माने गये हैं; किन्तु साधना में उन्नति करने से साधक क्रमशः पशुभाव से वीरभाव एवं वीरभाव से दिव्यभाव की उपासक बन जाता है। इसके उपरान्त दिव्यभाव का साधक साधनोत्कर्ष के शृङ्ग पर आरूढ़ होने पर भावातीतावस्था में अवस्थित हो जाता है।

साधकों का साधना-सामर्थ्यबल उनका भावत्रय में आरूढ़ होने की अपनी क्षमतायें मात्र हैं। रुद्रयामलतन्त्र में ठीक ही कहा गया है—

शक्तिः प्रधानं भावानां त्रयाणां साधकस्य च।
दिव्यवीरपशूनाञ्च भावत्रयमुदाहृतम्।।

भावों में पौर्वापर्यक्रम-विधान— रुद्रयामलतन्त्र में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

आदौ भावं पशोः कृत्वा पश्चात्कुर्यादवश्यकम्।
वीरभावं महाभावं सर्वभावोत्तमोत्तमम्।
तत्पश्चादतिसुन्दरं दिव्यभावं महाफलम्।।

साधकोचित भावों का क्रम इस प्रकार है—

१. प्रथमतः तमोगुणात्मक पशुभाव ग्रहण करना चाहिये।

२. पशुभाव सिद्ध होने पर रजोगुणात्मक वीरभाव ग्रहण करना चाहिये।

३. वीरभाव के भी सिद्ध हो जाने पर अन्त में साधक को भावों में अन्तिम भाव सतोगुणात्मक दिव्यभाव ग्रहण करना चाहिये।

'रुद्रयामलतन्त्र' में कहा गया है कि जन्मना सभी 'पशु' ही हैं; उन्हें ज्ञानाप्ति हेतु वीरभाव की साधना करनी चाहिये—

सर्वे च पशवः सन्ति तलवद्भूतले नराः।
तेषां ज्ञानप्रकाशाय वीरभावः प्रकाशितः।।

वीरभाव के सिद्ध हो जाने पर साधक देवता बन जाता है—

वीरभावं सदा प्राप्य क्रमेण देवता भवेत्।

पशुभाव

जिन मनुष्यों के हृदय में अविद्या की घनतम छाया होने के कारण अद्वैतात्मक ज्ञान का स्वल्पावभास कभी नहीं होता, उनकी मानसिक अवस्था तामसिक मानी जाती है और यही अवस्था पशुभाव है। ये पशु भी द्विविध होते हैं— उत्तम एवं मध्यम। द्वैतबुद्धि होने से ये दो दोनों ही 'पशु' होते हैं; फिर भी अज्ञानाधकार में डूबे हुये पूर्ण अज्ञानी मनुष्य 'अधम पशु' एवं सत्कर्मपरायण भगवद्विश्वासी साधक उत्तम पशु होता है। तीन भावों में प्रथम भाव पशुभाव ही है—

पशुनां प्रथमं भावं वीरस्य वीरभावनम्।
दिव्यानां दिव्यभावस्तु तिस्रो भावास्त्रयः स्मृताः।।

(रुद्रयामल-२.६)

प्रातःकाल (अरुणोदयकाल) से रात्रि के आठ दण्ड तक 'पशुभाव' माना गया है (रुद्रयामल-२.१०)।

२. पशु-साधकों को प्रातःकाल उठकर सहस्रदल कमल में गुरु का ध्यान करना चाहिये। गुरु को अरुणोदय के सूर्य के समान महाप्रकाशवान भावित करना चाहिये। गुरु को महामहिमामण्डित, तेजोबिम्ब-समर्चित, महाशुभ्र एवं शुक्ल परिधानधारी, द्विनेत्री एवं आत्मज्ञावी रूप में सोचना चाहिये।

अन्तर्याग-विधि से उनकी पूजा करनी चाहिये।

'महानिर्वाणतन्त्र' के चतुर्थ अध्याय में कहा गया है कि कलियुग में तो पशुभाव एवं दिव्यभाव रह ही नहीं गये हैं; अतः कौलिक पूजा मात्र वीरभाव से करनी चाहिये। वीर-भाव ही कलियुग में सिद्धिप्रद है; क्योंकि 'पशुभावदिव्यभावौ स्वयमेव निवृत्तौ।'

पशुसाधकों के कर्तव्य हैं— पत्तियाँ एकत्रित करना, फूल-फल एवं जल लाकर रखना, शूद्रों को कभी न देखना एवं मन से भी कभी नारी का स्मरण न करना।

दिव्य साधक हृदय से पूर्ण शुद्ध, द्वन्द्वातीत (अपने प्रतिकूल या विरुद्ध व्यक्ति, वस्तुस्थिति से अप्रभावित अर्थात् सर्वत्र समदृष्टि भाव से युक्त), वीतराग, समस्त प्राणियों में समत्व बुद्धि रखने वाला एवं क्षमावान होता है। अतः ये दोनों कलियुग में मिलना सम्भव नहीं है; इसलिये कलियुग में वामाचारानुष्ठित, पञ्च मकारनिष्ठ वीरसाधना (वीरभाव) ही प्रशस्त है।

कौलावली निर्णय की दृष्टि— 'पशुभाव'—

- 'पशु'मन से भी कभी मत्स्य-भोजन एवं स्त्री का स्मरण न करे और परद्रव्य को लोष्ठवत् समझकर उसका स्पर्श भी न करे।
- पशुसाधक किसी नदी के तट, पर्वत, वन, मन्दिर, बिल्वमूल एवं विविक्त पुण्य क्षेत्र में ही निवास करे।

● कौटिल्य का सर्वथा त्याग करे। समाहितचित्त होकर शुभ्र वस्त्र वाले देवता का ध्यान करे। तीनों सन्ध्यायों में ध्यान, पूजन एवं जप करे।

● रात्रि के समय माला एवं यन्त्र का कभी भी स्पर्श न करे और भोजनोपरान्त मन्त्रोच्चारण न करे।

● सभी कार्यों के समय सदा मौन रहे।

● पर्वकाल में नारी-सम्भोग न करे।

● मैथुन, मैथुनप्रसङ्ग एवं उसकी गोष्ठी का त्याग करे।

● विना ऋतुकाल के अपनी स्त्री के साथ भी सहवास न करे।

● रात्रि में भोजन करे, कभी ताम्बूल न खाये।

● पुराणों, वेद-वेदाङ्गों का श्रवण करे।

● गुर्वादेश का अक्षरशः पालन करे।

● देवीभक्त रक्त वस्त्र न पहने। विष्णुतन्त्र में उपदिष्ट कल्पादि, अनुष्ठानादि करे।

● श्राद्ध, गोग्रास, सन्ध्यावन्दन, तीर्थस्नान, पीठस्थान, पीठस्थान-यात्रा एवं धर्माचरण में तत्पर रहे।

● अदीक्षित पशु को पूजास्थान में जाने का भी अधिकार नहीं होता। दीक्षित पशुओं को पूजा में तो जाने का अधिकार होता है; किन्तु गुरुत्व में अधिकार नहीं होता।

● तीन जन्म तक पशुभावना में दृढ़ रहने पर वह पशु 'वीर' बनता है और वीर बनने पर देवता बन जाता है। वीरभाव प्राप्त होने पर पशु को देवत्व प्राप्त हो जाता है।

भाव मन का एक धर्म है, वह शब्द नहीं है। भाव को कभी भी प्रकाशित नहीं करना चाहिये।

वीरभाव

साधना-क्रम में पशुभाव-सिद्धि होने पर साधक वीरभाव की भूमि पर पदार्पण करता है।

● वीरसाधक निर्द्वन्द्व हृदय होकर हृदय में 'कामकला शरीर' को धारण करके रात्रि में निरन्तर पूजा करे।

● वह अपने कुल को लेकर स्वयं भैरव का रूप धारण करके तथा कुलभैरवीरूप होकर उसके शरीर में न्यासविस्तार एवं नवयोन्यात्मक न्यास करे।

● प्रसूनतूलिका से, पुष्पान्वित एवं सौरभित कुलद्रव्य से यन्त्रनिर्माण करके कलश-स्थापनपूर्वक शक्ति की पूजा करे। मण्डल बनाकर एक घट की स्थापना करे, उस पर मन्त्र लिखकर और उसमें इष्टदेवता का ध्यान करके १०८ बार जप करे। उसे धेनुमुद्रा दिखाकर उसमें अमृत की कल्पना करे। अर्घ्यपात्र को तीन भागों में विभाजित करके एक से गुरु, दूसरे से कुल एवं तीसरे से देवता का तर्पण करे।

● साधक कुलरस का पान करके नानालङ्कारभूषित होकर आनन्दस्वरूप बनकर परमेश्वरी का पूजन करे। फिर विसर्जन करके कुल में योजना करे।

● लतालिङ्गन से साधक का शरीर अमृत से प्रक्षालित हो जाता है। मूलयोग करने पर उसमें आठ सहस्र करना चाहिये।

● जपान्त में हविर्द्रव्य से देवता का तर्पण करना चाहिये।

● तर्पणोपरान्त प्रदक्षिणा करता हुआ साधक कल्पोक्त विधि से देवी को प्रणाम करके स्तोत्र-पाठों से उन्हें सन्तुष्ट करे।

दिव्यभाव

● जिस साधक का देवता जिस वर्ण का हो, वह तद्वर्णमय, तत्तेज:पुञ्जपूरित स्वरूप में ही जगत को देखे। वह तत्तेजमय मूर्ति की कल्पना करे और फिर तत्तत् मूर्तिमय मन्त्रों से अपने को भी तन्मय समझे और सारे सांसारिक भावों, वस्तुओं को नारीमय माने।

● आठ से सोलह वर्ष की अवस्था को 'युवती' कहते हैं; अत: उसी में भाव प्रकाशित होता है और वही भाव परम श्रेष्ठ भाव है। इस कल्पित तेजोमयी मूर्ति को चरणों से सिरपर्यन्त दिव्य दृष्टि से बार-बार पान करे।

● साधक स्निग्ध अन्त:करण बन कर निर्विकार-स्वरूप रहे।

● साधक अपने सौन्दर्यपरिपूर्ण देवता के प्रत्येक अङ्ग (जानु, जघन, नाभि, वक्ष:-स्थल, पीन पयोधर, नयन, मुख, केशाग्र) एवं स्मिति का दिव्य भाव से अवलोकन करे और तत्पश्चात् स्थिर मन से कामकला का ध्यान करे।

● ध्यान-विरत होने पर साधक उस देवता के भावपूर्ण अमृत से अपने मुखादि को देवतामय कामकलास्वरूपवत् ध्यान करे अर्थात् कामकला के स्वरूप 'ईं' के बिन्दु को मुख, उसके नीचे के भाग को स्तनद्वय और उससे भी नीचे के भाग को नाभि से नीचे के शरीर का भाग समझे। यह कामकलास्वरूप सर्वार्थसाधक है। साधक अपने को सदैव कामकलास्वरूप ही माने।

● इसके अनन्तर साधक आधारचक्र में कनकाभ, मेढ्र (लिङ्ग)-स्थान में शिवाकार, नाभि में तरुणादित्यबिम्बाभ, हृदय में वह्निशिखाकार, उसके ऊर्ध्व सूर्यप्रभ, कण्ठ स्थान में घण्टा-वैडूर्यसन्निभ दीपशिखाकार, श्वासनलिका में चन्द्रबिम्बाभ, भ्रूमध्य में रत्नाभ और नेत्रों में विश्वतेजवत् रूप का ध्यान करे। साधक 'कामकला' के शरीर को धारण करके (स्पर्श करके या देखकर) कुलाकुल दोनों में 'कामकला' के रूप का चिन्तन करे।

● साधक अपने वाम भाग में किसी कामरूपिणी सुवेशी सुन्दरी को बैठाकर उसके शरीर में बिन्दु आदि से युक्त कामकला के रूप का ध्यान करके गन्ध, माला आदि के द्वारा उसकी पूजा करे और उसे कुलद्रव्य प्रदान करे। फिर उसे ताम्बूल देकर तथा स्वयं भी खाकर कौलिक एवं लौकिक कुलीन वृत्तान्त पूछे।

यदि साधक में भाव नहीं हुआ तो न्यासविस्तार, भूतशुद्धिप्रस्तार एवं पूजनादिक

सभी व्यर्थ हैं। विद्या की पूजा, मन्त्र-जप कौन नहीं करता? किन्तु कोई भी फल नहीं प्राप्त हो पाता; क्योंकि उन साधनाओं में भाव का अभाव रहता है।

जो साधक वीरभाव के परिपुष्ट हो जाने पर द्वैतभाव का त्याग करके अपने इष्ट-देवता में स्वास्तित्व को निमज्जित करके अद्वैतानन्दामृत का पान करके ब्रह्ममय बन जाता है, वही दिव्य कहलाता है और उसकी मानसिक अवस्था सात्त्विक होने के कारण 'दिव्यभाव' कहलाती है।

दिव्यभाव-साधक ब्रह्मज्ञ परमहंस होता है। 'कौलावलीतन्त्र' में कहा भी गया है—

प्रथमं दिव्यभावस्तु कथ्यते तन्त्रवर्त्मना।
यद्वर्णा देवता यत्र तत्तेजःपुञ्जपूरितम्।।

तेजोमयं जगत्सर्वं विभाव्य मूर्तिकल्पनम्।
तन्मूर्तिमयैर्मन्त्रैः स्वेन स्वेनैव वा पुनः।
आत्मानं तन्मयं दृष्ट्वा सर्वं भावं तथैव च।।

महेश्वरानन्द की दृष्टि— आचार्य महेश्वरानन्द ने 'महार्थमञ्जरी' में कहा है कि साधना में सर्वोच्च तत्त्व तो 'भावयोग' है; क्योंकि जिसका जैसा भाव होता है, उसी प्रकार का उसका देवता होता है—

यो यस्य भावयोगस्तस्य खलु स एव देवता भवति।

जैसा जिसका भावभावित देवता होता है, उसी स्वभाव एवं प्रकृति के अनुकूल ही वह फल प्रदान करता है—

तब्भावभाविआओ अहिलसिहं तह फलन्ति पडिमाओ।

शाक्त परम्परा में पूजा के परा, परापरा एवं अपरा भेद बताये गये हैं, उन सभी का भावों से सम्बन्ध है।

योगिनीहृदय की पूजाविधायिनी दृष्टि— नित्योदिता पूजा के तीन भेद हैं— परा, परापरा एवं अपरा।

तव नित्योदिता पूजा त्रिभिर्भेदैर्व्यवस्थिता।
परा चाप्यपरा गौरि तृतीया च परापरा।। (३.२)

प्रथम पूजा : प्रथमाद्वैतभावस्था सर्वप्रसरगोचरा।
द्वितीया पूजा : द्वितीया चक्रपूजा च सदा निष्पाद्यते मया।
तृतीया पूजा : एवं ज्ञानमये देवि ! तृतीया तु परापरा।
उत्तमा (परा पूजा) : उत्तमा सा परा ज्ञेया विधानं शृणु साम्प्रतम्।

परावस्था : यत्र यत्र मनो याति बाह्ये वाऽभ्यनतरे प्रिये।
तत्र तत्र परावस्था व्यापकत्वात् क्व यास्यति?

तत्र तत्राक्षमार्गेण चैतन्यं व्यज्यते प्रभो !।
तस्य तन्मात्रधर्मित्वाच्चिलयाद्धरिता स्थिता।।

चिल्लयलक्षणाद्वैत प्रथा ही परा पूजा है।

द्वितीया पूजा चक्रपूजा है। यह चक्रपूजा ही अपरा पूजा है— 'चतुरस्त्रादिबैन्दवान्तश्री-चक्रसदनावरणदेवतार्चनमपरा पूजा' (अमृतानन्द)। अपरा पूजा = भेदप्रथामात्रसारा, बाह्यचक्रावरणार्चनारूपा अधमा पूजा।

तृतीया पूजा परापरापूजा है। 'बाह्याभ्यन्तरे धाम्नि द्वये चिल्लयभावनामयी मध्यमा, परापरात्मकत्वात्। अपरा द्वितीया पूजा भेदप्रथामात्रसारा, बाह्यचक्रावरणार्चनरूपा, अधमा तृतीया पूजा परापरा।'

दास्यभक्ति का प्राधान्य

भक्ति-भावना की दृष्टि से शाक्तों ने भक्ति रस, शान्त रस एवं शृङ्गार रस का प्रयोग करते हुये भगवती को माता एवं अपने को पुत्र के रूप में प्रस्तुत किया है। दास्यभक्ति भी प्रचुर मात्रा में है।

त्रिकदर्शन, शैवदर्शन एवं शाक्तदर्शन आदि सभी आगमिक दर्शनों में मुख्यत: दास्य भक्ति को प्रामुख्य दिया गया है। भगवान् को प्रभु, पिता एवं गुरु के रूप में तथा भक्त को दास, पुत्र या शिष्य के रूप में ग्रहण किया गया है।

शाक्तदर्शन की विशेषता यह है कि यहाँ पितृभाव के स्थान पर मातृभाव को स्वीकार किया गया है— 'यन्मातापितरौ' (शक्तिसूत्र-१.८९), 'मातरं नारद:' (शक्तिसूत्र-१.१०३), 'स्त्रीसामान्ये मातृभाव:' (शाक्तदर्शनम्-४.३४), 'शक्तिस्त्रिजननी' (शाक्त-दर्शनम्-४.१), 'शक्तिरेव सर्वकारणमिति हयग्रीव:' (शाक्तदर्शनम्-३.४.२२)। भावत्रयी में दास्यभाव ही मूल है। अत: इसी का प्राधान्य है। 'शान्त रस' भक्ति की एक स्फुरणा-मात्र या स्फुरत्ता की अवस्था-मात्र है। शान्त रस का विकास होने पर वह दास्यभक्ति में परिणत हो जाता है। नारद ने मातृभाव का प्रतिपादन किया है।

त्रिकदर्शन में भी यह मातृ-पितृभाव का सम्बन्ध मान्य है। अभिनवगुप्तपाद 'श्री-परात्रिंशिकाविवृत्ति' के मङ्गलाचरण में कहते हैं—

विमलकलाश्रयाभिनवसृष्टिमहाजननी भरिततनुश्च पञ्चमुखगुप्तरुचिर्जनक:।
तदुभययामलस्फुरितभावविसर्गमयं हृदयमनुत्तरामृतकुलं मम संस्फुरतात्।।

जो सृष्टि-स्थिति-संहार का कारण है, जिसके भीतर ही यह विश्व स्थित है और जगत् का संहार हो जाने पर यह जहाँ जाकर विश्राम करता है, उस स्वात्मसंवित्तिस्वरूपा देवी की ही अभिनवगुप्त वन्दना करते हैं—

यस्यामन्तर्विश्वमेतद्विभाति बाह्याभासं भासमानं विसृष्टौ।
क्षीणे क्षीणेऽनुत्तरायां स्थितौ तां वन्दे देवीं स्वात्मसंवित्तिमेकाम्।।

शिवानन्द मुनि 'सौभाग्यहृदयस्तोत्र' में जगदम्बिका को 'माता' शब्द से सम्बोधित करते हुये कहते हैं—

अनाश्रितादिकालाग्निरुद्रान्तं चिरमद्भुतम्।
उन्मीलयसि मातस्त्वं प्रकाशवपुषि त्वयि।।

दुर्वासा-सम्प्रदाय के सूत्रधार ऋषि दुर्वासा 'त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र' के प्रथम श्लोक का प्रारम्भ ही भगवती के मातृरूप की वन्दना से करते हैं—

श्रीमातस्त्रिपुरे परात्परपरे देवि! त्रिलोकीमहा-
सौन्दर्यार्णवमन्थनोद्भवसुधाप्राचुर्यवर्णोज्वलाम् ।
उद्यद्भानुसहस्रनूतनजपापुष्पप्रभं ते वपुः
स्वान्तं मे स्फुरतु त्रिलोकनिलयं ज्योतिर्मयं वाङ्मयम्।।

और आगे फिर कहते हैं—

- तद्बीजं पदवाक्यमानजनकं श्रीमातृके ते परम्।
- भस्मीकृत्य विकल्पजालमखिलं मातःपदन्तद् व्रजेत्।
- दूरादेव निवर्तते परतरं मातःपदं निर्मलम्।
- विश्वं व्याप्य चिदात्मनाहमहमित्युज्रृम्भसे मातृके।
- श्रीमातस्त्रिपुरारिसुन्दरि कुरु स्वान्ते निवासं मम।
- रादीप्तं सुनितम्बबिम्बमरुणं ते पूजयाम्यम्बिके।
- श्रीमातः श्रयतां मदीयहृदयाम्भोजं सरोजालये।
- माल्यैरम्ब विलम्बितं सुशिखरं विभ्रच्छिरस्ते भजे।
- भालं नन्दनचन्दनेन जननि! ध्यायामि ते मङ्गलम्।
- मातस्ते विजयमहाङ्कुशसयोषान.....।
- सौन्दर्यं वपुषि प्रदेहि जगतामम्बेश्वरि श्रीशिवे।

एकोनषष्टि अध्याय

भक्तितत्त्व और त्रिपुरोपासना

'अनिवर्चनीयं प्रेमस्वरूपम्' कहकर भक्तिसूत्रकार ने भक्ति को प्रेमस्वरूप घोषित किया है। भगवती ललिता भी प्रेमस्वरूपा हैं— 'चित्कलानन्दकलिका प्रेमरूपा प्रियङ्करी' (ललितासहस्रनाम)। भगवती को भक्त साधक अत्यन्त प्रिय हैं। ललितासहस्रनाम में उन्हें भक्तों की कल्पलता कहा गया है— 'भक्तिमत्कल्पलतिका पशुपाशविमोचिनी।' भगवती ने स्वयं ही कहा है— 'मद्भक्तानां वाग्विभूतिप्रदाने विनियोजिता:; येन भक्तै: स्तुताया: मे सद्य: प्रीति:परा भवेत्।' उत्पलदेवाचार्य भी भक्ति को सर्वोच्च साधना मानते हैं—

न योगो न तपो नार्चाक्रम: कोऽपि प्रणीयते।
अमाये शिवमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका प्रशस्यते।।

भगवती को यदि सर्वाधिक प्रसन्न करना हो तो वे उनके भक्त बनकर उनकी स्तुति करें—

येन भक्तै: स्तुताया मे सद्य: प्रीति:परा भवेत्।

'ललितासहस्रनाम' में हयग्रीव अगस्त्य ऋषि से कहते हैं कि जो भक्तिशून्य है, वह भगवती के सहस्रनाम सुनने का भी अधिकारी नहीं है; अत: ऐसे भक्तिहीनों को इसे सुनाया न जाय—

ब्रूयाच्छिष्याय भक्ताय रहस्यमपि देशिक:।
भवता न प्रदेयं स्यादभक्ताय कदाचन।।

'गीतानिष्यन्द' में कहा गया है भक्ति का स्वरूप एकीभाव है—

न पादपतनं भक्तिर्व्यापिन: परमात्मन:।
भक्तिर्भावस्वभावानां तदेकीभावभावनम्।।

यह भी कहा गया है कि जो भक्तिभाव से (भक्त बनकर) भगवती का स्तवन करता है, वह भगवती के लिए प्रियतम साधक है। भगवती स्वयं कहती हैं—

इदं नामसहस्रं मे यो भक्त: पठते सकृत्।
स मे प्रियतमो ज्ञेयस्तस्मै कामान् ददाम्यहम्।।

जिनमें भाव या भक्ति नहीं है, उनकी साधना व्यर्थ है—

पूजा होम: क्रमश्चर्या व्रतं शास्त्रनिषेवणम्।
तपो ध्यानं जप: शौचं तत्त्वहीनस्य निष्फलम्।। (महार्थमञ्जरी)

इसीलिये तो महार्थमञ्जरी में किसी के मत का उल्लेख करते हुये कहा गया है—

देवान् यजन्ते कतिचिद्वयं तु स्वानन्दमुद्रैकमहासपर्या:।

भगवती की उपासना परा भक्ति के साथ की जानी चाहिये—

पूजयेत् परया भक्त्या आत्मानं च निवेदयेत्।
एवं यजनमाख्यातमग्निकार्येऽप्ययं विधिः।।

देवी के समक्ष अपने को समर्पित करते हुये ही साधक को पूजा करनी चाहिये। यही यजन का स्वरूप है—

यजेद्देवीं महेशानीं सप्तविंशतिमन्त्रिताम्।
ततः सुगन्धिपैष्पैस्तु यथाशक्त्या समर्चयेत्।।

मूर्धा, वक्त्र, हृदय, गुह्य आदि प्रदेशों का न्यास करके भगवती की पूजा सुगन्धित पुष्पादिपूर्वक भक्ति से करनी चाहिये।[1]

भगवती के नामश्रवण का भी अधिकार उसी को है, जो मातृभक्तिपरायण हो—

श्रीमातृभक्तियुक्ताय श्रीविद्याराजवेदिने। (ललितासहस्रनाम)

भगवती ने केवल भक्तों के हित के लिये ही ललितासहस्रनाम को मुक्त्यर्थ प्रदान किया है—

पुरा श्रीललिता देवी भक्तानां हितकाम्यया।

इसीलिये भक्तों के लिये सहस्रनाम को आवश्यक कहा गया है—

भक्तस्यावश्यकमिदं नामसाहस्रकीर्तनम्।

भक्ति-साधना— शाक्त आचार्य हयग्रीव अपने 'शाक्तदर्शन' में भक्तितत्त्व को भी साधना का अपरिहार्य अङ्ग मानते हुये कहते हैं कि— 'देवीमाहात्म्यग्रहणं भक्तिसंस्कारः; वर्णसंस्कारभूतो भक्तिसंस्कारार्हः' (१५.३.२.१)। गुरु-भक्ति के विना कुछ भी साध्य नहीं है। देवी की महिमा का श्रवण करके ही (भक्ति-संस्कृत होकर) गणपति-सिद्धि-बुद्धि नामक मन्त्ररूप मूलमन्त्र को ग्रहण कर पाना सम्भव हो पाता है। इस मूलमन्त्रग्रहण को 'समय' कहते हैं— 'मूलमन्त्रग्रहणं समयः' (१५.३)। मूलमन्त्र के ग्रहणानन्तर देवी का अर्चन 'विशेष' कहा जाता है। यहाँ भी जो विशिष्ट अर्चन (यन्त्रार्चन) निष्पादित किया जाता है, उसे ही 'महाविशेष' कहते हैं। इसमें मूर्तिपूजा का भी ग्रहण है— 'मुक्ताप्रवालगज-दन्तश्वेतार्केष्वेकमूर्तिपूजाग्रहणं महाविशेषः।' निरीक्षण-संस्कार द्वारा पञ्चम वेद (इतिहास-पुराण) को ग्रहण करना 'सामान्यज्ञानदीक्षा' है। इससे भी श्रेष्ठतर है— औशनस पुराण। इससे भी उत्तम है— देवीरहस्य। पुराणों में औशनस पुराण के बाद भागवत पुराण का ग्रहण श्रेष्ठतर है— 'भागवतपुराणम्' (१५.३.१३), 'तरमौशनसम्' (१५.३.१४) 'तमं रहस्यम्' (१५.३.१५)। वेदानुमोद ही विशेषज्ञानदीक्षा है (१५.३.१६)। महावाक्य-सिद्धान्त-ग्रहण ही वेदानुमोद है (२८)।

शाक्त-सिद्धान्तानुसार भृगु-याज्ञवल्क्य-गौतम-शक्तिज-बादर-हयग्रीव-प्रोक्त सिद्धान्तों में गणेश-सौर-शैव-वैष्णव-ब्राह्म एवं शाक्तदर्शन वेदानुमोदित है; किन्तु इनमें भी हय-

१. परात्रिंशिका

ग्रीवोक्त शाक्तदर्शन श्रेष्ठतम है। यही 'हयग्रीवविद्या' शाक्तसिद्धान्तदर्शन है— 'हयग्रीवविद्या शाक्तसिद्धान्तदर्शनम्' (१५.३.२६), 'हयग्रीवेण शाक्तम्' (१५.३.२५)।

शक्तिसूत्रकार अगस्त्य ने 'मातरं नारदः' (१.१०३) तथा 'यन्मातापितरौ' (१.८९) सूत्रों द्वारा भगवती की मातृभावना से उपासना करने का भी विधान किया है।

सौभाग्यहृदयस्तोत्र में मुनि शिवानन्द महात्रिपुरसुन्दरी को नमन करते हुये कहते हैं— 'सकलदुरितरोगध्वंसनानन्यकार्यं प्रतियजनविधानं सेव्यतां भक्तियुक्तैः।'

मूलादिबिलपर्यन्तं महात्रिपुरसुन्दरीम्।
या तनुस्ते तडित्प्रख्या तां भजे भवशातनीम्।।

क्रोधभट्टारक सम्प्रदाय के सूत्रधार ने त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की भक्तिभावित उद्गारों द्वारा गलदश्रु प्रार्थनायें की हैं—

श्रीमातस्त्रिपुरे ! परात्परतरे देवि ! त्रिलोकीनहा
सौन्दर्यार्णवमन्थनोद्भवसुधाप्राचुर्यवर्णोज्वलम् ।
उद्यद्भानुसहस्रनूतनजपापुष्पप्रभं ते वपुः
स्वान्ते मे स्फुरतु त्रिलोकनिलयं ज्योतिर्मयं वाङ्मयम्।।

आताम्रार्कसहस्रदीप्तिपरमा सौन्दर्यसारैरलं
लोकातीतमहोदयैरुपयुता सर्वोपमागोचरैः।
नानानर्घ्यविभूषणैरगणितैर्जाज्वल्यमानाभितः
श्रीमातस्त्रिपुरारिसुन्दरि ! कुरु स्वान्ते निवासं मम।।

आचार्य शंकर 'ललितापञ्चकम्' में कहते हैं—

प्रातर्वदामि ललिते तव पुण्यनाम कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति।
श्रीशाम्भवीति जगतां जननी परेति वाग्देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति।।

प्रार्तर्नमामि ललिताचरणारविन्दं भक्तेष्टदाननिरतं भवसिन्धुपोतम्।
पद्मासनादिसुरनायकपूजनीयं पद्माङ्कुशध्वजसुदर्शनलाञ्छनाढ्यम्।।

भक्ति का स्वरूप और त्रिपुरासिद्धान्त

'भक्ति' शब्द सेवा अर्थ में पठित 'भज्' धातु से निष्पन्न हुआ है। 'गीतानिष्यन्द' में कहा गया है कि भक्ति न तो साष्टाङ्ग दण्डवत है और न ही अन्य बाह्य क्रियायें है; प्रत्युत सर्वव्यापी भगवान् के साथ भावस्वभाव वाले भक्तों का एकीकरण ही भक्ति है—

न पादपतनं भक्तिर्व्यापिनः परमात्मनः।
भक्तिर्भावस्वभावानां तदेकीभावभावनम्।।

भक्ति-स्वरूप के विषय में भक्तिशास्त्र के आचार्यों के विविध मत इस प्रकार हैं—

पाराशर्य— पूजादिक में अनुराग ही भक्ति है— 'पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः।'

गर्गाचार्य— भगवत्कथा आदि में अनुराग ही भक्ति है— 'कथादिष्विति गर्गः।'

शाण्डिल्य— आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग ही भक्ति है और वह परमात्मा में अनुरक्ति का होना हैं— 'आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः; सा परानुरक्तिरीश्वरे।'

नारद— समस्त कर्मों को भगवान् को अर्पित करना एवं भगवान् का थोड़ा-सा भी विस्मरण होने पर व्याकुलता का अनुभव होने लगना ही भक्ति है— 'नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति।'

नारदपाञ्चरात्र— भक्तिभाव से परे अन्य कामनाओं का परिहार करके निर्मल चित्त से समग्र इन्द्रियों द्वारा भगवान् की सेवा करना ही भक्ति है—

सर्वोपाधिविनिर्मुक्ततत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेश हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते।।

रूपगोस्वामी— भगवान् और उसकी सेवा तथा उसके ध्यान से परे अन्य आकांक्षाओं से मुक्त होकर ज्ञान एवं कर्म आदि से अनवच्छिन्न रहकर भगवान् श्रीकृष्ण का आनुकूल्य दृष्टि सततानुशीलन करना ही भक्ति है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।(भक्तिरसामृतसिन्धु)

मधुसूदन सरस्वती— तैलधारावत् अविच्छिन्न रूप से द्रवित चित्त की सर्वेश्वर के विषय में धारावाहिकता-प्राप्त (तैलधारावत् अविच्छिन्न रूप से भगवदाकार) वृत्ति ही भक्ति है—

द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते।।

सारांश यह कि भगवदाकारा वृत्ति ही भक्ति है। भगवद्धर्म अर्थात् भगवद्गुण-श्रवणादि से द्रवीभूत चित्त की सर्वेश्वर के विषय में धारावाहिकता-प्राप्त वृत्ति तो भक्ति है ही; साथ ही इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि तैलधारावत् अविच्छिन्न रूप से द्रवित चित्त में स्थिर रूप से प्रविष्ट भगवदाकारता ही भक्ति है—

द्रुते चित्ते प्रविष्टा या गोविन्दाकारता स्थिरा।
सा भक्तिरित्यभिहिता विशेषस्त्वधुनोच्यते।। (भक्तिरसायन)

चित्तवृत्ति का अविच्छिन्न रूप से इष्टदेव में लगे रहना या भगवान् में निष्काम अनन्य प्रीति होना ही भक्ति है।

भक्तिरसामृतसिन्धु में आचार्य रूपगोस्वामी कहते हैं कि 'द्रवीभावपूर्विका मनसो भगवदाकाररूपा सविकल्पवृत्तिर्भक्तिरिति।'

भक्ति के सन्दर्भ में यह दृष्टि बहुत समीचीन नहीं है। इसकी सार्थकता केवल इतनी ही है कि भाव या भक्ति अपनी अभिव्यञ्जना चित्त को आधार बनाकर ही करती है। इसे

मन की वृत्ति कहना तो दूर रहा; महामाया की वृत्ति भी नहीं कहा जा सकता। यह तो अन्तरङ्गा, स्वरूपभूता आह्लादिनी शक्ति की ही एक वृत्तिविशेष है। इसी रूप में तान्त्रिकों के साथ-साथ सन्तों ने भी भक्ति को स्वीकार किया है।

भक्ति के इस तात्त्विक एवं आगम-सम्मत विवेचन के आलोक में 'अद्वैतभक्ति' या 'निर्गुण भक्ति' का समन्वय और सङ्गत व्याख्यान हो जाता है। कबीर कहते हैं—

मेरा मन सुमिरै राम कूँ मेरा मन रामहि आहि।
अब मन रामहि ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि।।

इससे अद्वैत भक्ति (अभेदोपासना) की व्यञ्जना होती है। इस स्तर पर उपासक एवं उपास्य का भेद समाप्त हो जाता है; क्योंकि—

यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परं पदम्।
तत्र तत्र परं ब्रह्म सर्वत्र समवस्थितम्।।

(सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत्-१९)

ज्ञान-भक्तिसामञ्जस्य— 'त्रिकदर्शन' एवं 'त्रिपुरासिद्धान्त' दोनों में अद्वैत दृष्टि के साथ मनोरम भक्तितत्त्व का सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। प्रत्यभिज्ञादर्शन में ज्ञान एवं भक्ति को पृथक्-पृथक् उपासना-पद्धतियाँ मानकर उनमें से एक की उपेक्षा एवं एक का आत्मीकरण नहीं किया गया है; प्रत्युत ज्ञान एवं भक्ति में समन्वय स्थापित करके दोनों को ही स्वीकार किया गया है। त्रिकदर्शन एवं त्रिपुरासिद्धान्त दोनों के अद्वैतवाद की यह विशेषता रही है कि यह न तो शुष्क ज्ञानमार्ग है और न ही ज्ञानहीन भक्तिमार्ग; प्रत्युत यह ज्ञान एवं भक्ति दोनों का समन्वयात्मक मार्ग है।

अद्वैतवादी (वेदान्ती) शङ्कराचार्य के केवलाद्वैतवाद की चरमावस्था में भक्ति के लिये कोई स्थान नहीं है; क्योंकि वेदान्ती शङ्कराचार्य की दृष्टि में भक्ति द्वैतमूलक है। अत: अद्वैतभाव में द्वैतात्मिका भक्ति के लिये कोई स्थान कैसे हो सकता है? ज्ञान की अद्वैता-वस्था में दो के लिये स्थान है ही कहाँ? जबकि भक्ति द्वैत (भक्त एवं भगवान्) को स्वीकार किये विना अस्तित्व में रह ही नहीं सकती। ज्ञानमार्ग में तो जीव एवं ईश्वर दोनों को 'मायारूपी कामधेनु का बछड़ा' कहा गया है— 'मायाया: कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभौ' (विद्यारण्य : पञ्चदशी)। अत: ईश्वर एवं भगवान् की भक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता।

भक्ति के दो रूप होते हैं— साधन भक्ति और साध्य भक्ति। इसमें जो साधन भक्ति (गौणी भक्ति) है, वह अज्ञानमूलक है। साध्य भक्ति में अद्वैत भक्ति को ग्रहण किया जाता है, जो कि नित्य तत्त्व है। नित्य सिद्ध ज्ञानभक्ति का आवरणभङ्गाविर्भूत समुन्मेष ही तो 'मोक्ष' है, जिसे कि त्रिकदर्शन (प्रत्यभिज्ञाहृदयम्) में चिदानन्दलाभ या पूर्णाहन्ता-चमत्कार कहा गया है—

१. मध्यविकासाच्चिदानन्दलाभ:। (प्रत्यभिज्ञाहृदयम्-१७)

२. चिदानन्दलाभे देहादिषु चेत्यमानेष्वपि चिदैकात्म्यप्रतिपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्तिः।
(प्रत्यभिज्ञाहृदयम्-१६)

३. मध्यविकासाच्चिदानन्दलाभः; स एव च परमयोगिनः समावेशसमापत्यादिपर्यायः समाधिः।

४. तदा प्रकाशानन्दसारमहामन्त्रवीर्यात्मकपूर्णाहन्तावेशात्सदा सर्वसर्गसंहारकारि-निजसंविद्देवताचक्रेश्वरत्वाप्राप्तिर्भवतीति शिवम्। (प्रत्यभिज्ञाहृदयम्-२०)

अहन्ता अकृत्रिमः स्वात्मचमत्कारः।
(प्रत्यभिज्ञाहृदयम्-क्षेमराज)

(चमत्कार = गीतादिक के रस एवं आत्मानन्द के निरापद आस्वादनजनित उत्साह को 'चमत्कार' कहा जाता है। निरपेक्ष स्वात्मा में विश्रान्ति को भी 'चमत्कार' कहा जाता है। रसनात्मक आस्वाद या 'चर्वणा' ही 'चमत्कार' है।)

चरम तत्त्व सच्चिदानन्द है। उसमें जो चिदंश है, वह ज्ञानभाव है; क्योंकि चित् तत्त्व (आत्मा, संवित्, प्रत्यक् चैतन्य) ज्ञानस्वरूप है और जो आनन्दांश है, वही भक्ति है। चिदंश 'शिवभाव' है और आनन्दांश 'शक्तिभाव' है। ये दोनों परस्पर मिश्रित या समवेत हैं, अपृथक् हैं। शक्तिभाव में भी शिवभाव एवं शिवभाव में भी शक्तिभाव विद्यमान रहता है; क्योंकि प्रकाशमय शिवभाव में ही विमर्शस्वरूपा शक्ति का विकासरूपात्मक विश्व प्रतिबिम्बित होता है। अतः शक्तिप्रधान अवस्था में भी शिवभाव रहता है तथा शिव-प्रधान अवस्था में भी शक्तिभाव रहता है; क्योंकि उस समय विश्व का बीजरूप जो शक्ति है, वह प्रकाश में निलीन रहती है। इन दोनों तत्त्वों की सामरस्यावस्था (जहाँ शिव एवं शक्ति दोनों साम्यावस्था में विद्यमान रहते हैं) को न तो 'शिव' कहा जा सकता है और न ही 'शक्ति' कहा जा सकता है। शिव, शक्ति एवं उनका सामरस्य— ये तीनों नित्य हैं। ये एक ही तत्त्व की विभिन्न दिशायें हैं। चूँकि चिदंश 'ज्ञानभाव' है और आनन्दांश 'भक्तिभाव' है; अत ज्ञान भक्ति की सामञ्जस्यावस्था है और 'भक्ति' एक शक्ति है।

केवलाद्वैतवादी आचार्य शङ्कर, जिन्होंने केवलाद्वैतवाद के प्रतिपादन में भक्ति को केवल प्रारम्भिक साधन के रूप में स्वीकार किया था और इसे अज्ञान का विजृम्भणमात्र स्वीकार किया था, उन्हीं शङ्कराचार्य ने शक्ति की उपासना के समय कहा था—

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः।।

समुद्र की तरङ्गें होती हैं, तरङ्गों का समुद्र नहीं होता। सारे भक्ति मिलकर भी भगवान् नही बन सकते; अतः भगवान् से भक्त होते हैं, भक्तों से भगवान् नहीं बना करते।

आचार्य शङ्कर कहते हैं कि 'शिवोऽहं' एवं 'अहं ब्रह्मास्मि' की अद्वैतात्मिका अनुभूति होने पर भी 'मैं तुम्हारा हूँ' (तवाहं) की अनुभति अर्थात् अभेदावस्था में भी तवाहं

का भाव बना रह सकता है। यद्यपि ज्ञानोन्मेष की अवस्था में 'अहं-त्वं' का भाव तिरोहित हो जाता है, तथापि परा भक्ति की अवस्था में अद्वैत के पयोधि में कल्पित द्वैतभाव की तरङ्गें उच्छलित रहती ही हैं। इस दशा में भक्ति का जो स्वरूप समुन्मिषित होता है, वह 'अद्वैतभक्ति' कहलाता है। 'बोधसार' नामक ग्रन्थ में नरहरि कहते हैं—

द्वैतं मोहाय बोधात्प्राक् प्राप्ते बोधे मनीषया।
भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।।

जाते समरसानन्दे द्वैतप्यमृतोपमम्।
मित्रयोरिव दम्पत्योर्जीवात्मपरमात्मनोः।।

यह भक्ति दास्यभाव की भक्ति है। यह अभेदावस्था में भी रसानन्दानुभूति हेतु कल्पित है।

आचार्य नारायणतीर्थ ने 'शाण्डिल्य भक्तिसूत्र' के भाष्य (भक्तिचन्द्रिका) में अद्वैत-भक्ति का सविस्तार विवेचन किया है।

'त्रिपुरारहस्य' के ज्ञानखण्ड (अध्याय-२० : श्लोक-३३-३४) में भी इसी अद्वैत भक्ति की पुष्टि करते हुये कहा गया है कि— प्रकाशात्मा परम तत्त्व को अपरोक्ष रूप में अपनी आत्मा से अभिन्न मानकर भी कतिपय भक्त उन भगवान् की प्रेमपूर्वक सेवा किया करते हैं। सेवा करने के लिये सेव्य-सेवकभाव आवश्यक है; किन्तु अद्वयावस्था में इस सेव्य-सेवकभाव की भेदप्रथा का इस अभेदानुभूति के साथ सामञ्जस्य कैसे स्थापित किया जा सकता है? इसके उत्तर में कहा गया है कि इस स्तर पर भेदभाव को स्वेच्छया गृहीत किया जाता है और उसके अवलम्बन से ही भक्तिसाधना की जाती है। यह भेद या द्वैत-कल्पना वास्तविक नहीं; प्रत्युत आहार्य है। जिस सामरस्यावस्था में परम तत्त्व साम्यस्वरूप है, वहाँ भला भेद कहाँ है?

अद्वैतभावनिष्ठ साधक को इस भेद-कल्पना का अवलम्बन लेने की आवश्यकता क्या है? क्योंकि कहा भी गया है—

अद्वैतं भावयेन्नित्यं द्वैतभावं न भावयेत्।
द्वैतभावनया नित्यं संसारो न निवर्तते।।

अद्वैतभावनिष्णातः संसारं नैव पश्यति।
तस्माद्द्वैतभावेन यः पश्यति स पश्यति।।[१]

इसका उत्तर केवल यह है कि शुष्क ब्रह्मज्ञान से आत्मा को रसानन्द एवं 'रसो वै सः' के रसात्मक स्वरूप का बोध नहीं हो सकता और परम तत्त्व मात्र 'सत्' एवं 'चित्' ही नहीं है, प्रत्युत आनन्द भी है; अतः सच्चिदानन्द के पूर्ण स्वरूप की अनुभूति करने हेतु साधक को ज्ञान (चित्) के अतिरिक्त आनन्द की भी अनुभूति करनी चाहिये। चूँकि

१. माहेश्वरतन्त्र (नारदपञ्चरात्र) : ज्ञानखण्ड

परमतत्त्व का आनन्द— परमात्मा की आह्लादिनी शक्ति ही 'भक्ति' है; अत: उसके बोध एवं उसकी अनुभूति के लिए अद्वैतावस्थान के बाद भी साधक को रसात्मक द्वैत की कल्पना करके अद्वैत से भी अधिक सुन्दर एवं अमृतोपम द्वैतभावात्मिका भक्ति का आश्रय ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि—

भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।
जाते समरसानन्दे द्वैतमप्यमृतोपम्।।[१]

इस भेदाहरणस्वरूप भक्तिभाव का आश्रय लेने का प्रयोजन है— स्वभाव के स्वरस की प्राप्ति। कहा भी गया है—

स्वभावस्य स्वरसतो ज्ञात्वापि स्वाद्वयं पदम्।
विभेदभावमाहृत्य सेव्यतेऽत्यन्ततत्परैः।।

ज्ञान के अनन्तर भी भक्ति रह सकती है। यह कैतवहीन (छद्मशून्य) होने के कारण भक्ति नहीं; अपितु 'सुभक्ति' है— 'यत्सुभक्तैरतिशयप्रीत्या कैतववर्जनात्।' यह अज्ञान-मूलक साधनभक्ति नहीं है, यह अद्वैतभावशून्य द्वैत नहीं है; प्रत्युत यह स्वार्थानु-सन्धान से अतीत (साधनभक्ति से परे) अद्वैतभक्ति है। अद्वैतभक्ति में जिस भेद की कल्पना की जाती है, वह कल्पित होती है और ज्ञान से परिपूर्ण रहती है। जो मात्र ज्ञाना-कांक्षी हैं, उनमें इसका उदय सम्भव भी नहीं है। इसका उदय स्वभावत: भक्तिप्रवण साधकों में ही सम्भव है; अत: समस्त अद्वैतवादियों को इसकी अनुभूति होती हो— यह सम्भव नहीं है।

भक्ति और ज्ञान पृथक्-पृथक् दो साधनोपाय एवं भिन्न-भिन्न मार्ग (ज्ञानमार्ग एवं भक्तिमार्ग) होते हुये भी अन्तत: अभिन्न ही हैं। साधना की चरमावस्था में ज्ञान एवं भक्ति दोनों एकाकार हो जाते हैं। ज्ञानी तो प्रारम्भ से ही 'अहं ब्रह्मास्मि' या 'शिवोऽहं शिवोऽहं' की साधना करते हुये ब्रह्म एवं शिव से तादात्म्य प्राप्त कर लेता है; किन्तु भक्त भी भगवान् के ध्यान में अपनी गम्भीर भावुकता (प्रगाढ़ भक्ति) के कारण भगवान् के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेता है और इसीलिये भक्ति में भी 'सारूप्य' एवं 'सायुज्य' मुक्ति के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। ज्ञान एवं भक्ति की इसी एकाकारता की अवस्था को 'पूर्णाहन्ता' या 'स्वात्मचमत्कार' कहा जाता है। जो ज्ञान की चरम सीमा है, वही भक्ति की भी पराकाष्ठा है। यही वह मूल केन्द्र है, जहाँ से ज्ञान एवं भक्ति दोनों की स्रोतस्विनियाँ प्रवाहित होती हैं। यह वह हिमालय है, जहाँ से एक ओर ज्ञान की गंगा प्रवाहित होती है तो दूसरी ओर भक्ति की पयस्विनी कालिन्दी प्रवाहित होती है; किन्तु दोनों अपने मूल केन्द्र हिमालय में जाकर एकाकार हो जाती हैं। यह समन्वय की भूमि है और द्वय का एकाकार मूल केन्द्र है— भक्ति और ज्ञान की, दो भिन्न-भिन्न सरिताओं का एकाकार मूलोद्गम है। चूँकि यह चरमस्थानीय भक्ति जिस द्वैत पर आश्रित है, वह यथार्थत: द्वैत है ही नहीं; अत: इसे 'अद्वैतभक्ति' का अभिधान प्राप्त है। यह जीवात्मा एवं परमात्मा का अद्वैतात्मक द्वैत है—

१. बोधसार (नरहरि)

जाते समरसानन्दे द्वैतमप्यमृतोपमम्।
मित्रयोरिव दम्पत्योर्जीवात्मपरमात्मनोः।।

यहाँ पहुँचकर विषात्मक द्वैत भी अमृत बन जाता है— 'द्वैतमप्यमृतोपमम्।'

'निष्कर्ष' यह कि अद्वैतज्ञानोत्पत्ति के अनन्तर जो निर्व्याजा, अहेतुकी प्रेमस्वरूपा अद्वैतभावाश्रिता भक्ति उदित होती है, वही है— पराभक्ति या अद्वैतभक्ति। इसी भक्ति को लक्ष्य में रखकर व्यास जी ने श्रीमद्भागवत में कहा है—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्थाऽप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः।। (१.७.१०)

अर्थात् ब्रह्मभूत एवं इस प्रकार अविद्या ग्रन्थि से शून्य मुनि भी भगवान् की अहेतुकी भक्ति करते हैं।

इसी बात को नरहरि ने 'बोधसार' में कहा है कि ज्ञानाविर्भाव के पूर्व द्वैत केवल मोहोत्पत्ति के लिये हुआ करता है; किन्तु ज्ञान का समुन्मेष होने पर भक्ति के उद्देश्य से जिस द्वैतभाव की कल्पना की जाती है, वह तो अद्वैत से भी अधिक मनोहर हुआ करता है। जिस प्रकार पति एवं पत्नी का पृथकत्व प्रेमातिशय के कारण अद्वैतभावापन्न करने के परिणामस्वरूप आनन्द का स्रोत बन जाता है, उसी प्रकार भक्ति के उद्देश्य से जो जीवात्मा एवं परमात्मा में भेद-भावना को कल्पित किया जाता है, वह जीव-ब्रह्म के एकरससुखाविर्भाव के समय मुक्तिसुख प्रदान करता है।

अनुभवसूत्र में अद्वैतभक्ति की दृष्टि— भक्ति के दो रूप हैं— द्वैत एवं अद्वैत। द्वैतभक्ति सांसारिकता एवं संसरण का प्रवर्धन करती है। यह 'प्रपञ्च नाम वाली' मिथ्या कल्पना है और क्लेशों को जन्म देती है—

द्वैतभक्त्या हि संसारवर्धनं भिन्नरूपतः। (४७)
द्वैतभक्तिः प्रपञ्चाख्या केनचित्कल्पिता मृषा। (४८)
न च द्वैतात्मिकां भक्तिं क्लेशहेतुप्रदायिनीम्। (४४)

अद्वैतभक्ति का स्वरूप इस प्रकार है—

१. यह मात्र भगवत्प्रसाद से प्राप्त होती है।
२. यह ज्ञानोत्तरा भक्ति है।
३. यह सर्वसिद्धिप्रदायिका है।
४. यह आत्मकल्पिता है; न कि आत्मसम्भवा या स्वयम्भू।
५. यह अद्वैतभावापन्न है, अद्वैतलक्षणा है।
६. यह संसार का विनाश करती है।
७. यह अचला, निर्विकल्पा एवं निरञ्जना है।
८. इसका प्रयोजन द्वैतभक्ति की निवृत्ति भी है।
९. यह निजनिर्वाणरूपिणी है।

१०. भक्ति सच्चिदानन्दरूपिणी, भुक्ति-मुक्तिफलप्रदायिनी शक्ति है।

११. भक्ति एवं शक्ति में कोई भेद है नहीं।

१२. शक्ति से प्रपञ्च की सृष्टि होती है और भक्ति से उसका विलय होता है।

१३. भक्ति के वैचित्र्य से शक्ति द्वारा आविर्भूत नामरूप नीरूप हो जाते हैं।

१४. भक्ति का स्वाभाविक गुण प्रपञ्च का संक्षय है। शक्ति अधोमुखी है, जबकि भक्ति ऊर्ध्वमुखी होती है।

१५. शक्ति मायोपहिता होती है; किन्तु भक्ति निर्माया होती है।

१६. समस्त तर्कों एवं प्रमाणों से सिद्ध है कि भक्ति शक्ति से अधिक गुणवती है।

१७. शक्ति से उपास्यत्व की एवं भक्ति से उपासकता की प्राप्ति होती है।

१८. शक्ति महेश्वरी है। यही विभक्त होकर भक्तिरूपिणी बन जाती है।

१९. शक्ति सवासना होती है; जबकि भक्ति निर्वासना होती है।

२०. शिव की सहधर्मिणी शक्ति स्वस्वातन्त्र्य-बल से दो रूपों में विभक्त है—माहेश्वरी शक्ति एवं भक्ति।

२१. आत्मारूपी क्षेत्र में बीजी महेश्वर द्वारा वपित भक्ति ही परा भक्ति है।

२२. यह अवधानात्मिका एवं अनुभवात्मिका होती है। यह स्वानुभवाकारा भक्ति आनन्दात्मिका होती है। यह आनन्दरूपिणी है। सामरस्य के प्रभाव से यह समरसात्मिका भी है।

इस भक्ति में जो द्वैतभाव निहित है, वह द्वैत है ही नहीं; क्योंकि यह भक्ति यथार्थत: अद्वैतपदारूढ़ा तथा अद्वैतलक्षणा है। अन्य प्रकार की भक्ति तो केवल कल्पित भक्ति है, यथार्थ भक्ति नहीं है—

अद्वैतपदारूढा या भक्तिरद्वैतलक्षणा।
सैवाद्वैताभिधा भक्तिरन्या केवलकल्पिता।। (८.४६)

यह भक्ति द्वैतभक्ति के निवृत्ति का लक्ष्य रखती है और गरीयसी तथा निर्वाणरूपा है—

द्वैतभक्तिनिवृत्तौ हि साक्षादद्वैतलक्षणा।
भक्तिर्गरीयसी भाति निजनिर्वाणरूपिणी।।

शिवमार्ग में योग, तप, अर्चा आदि किसी का भी उतना महत्त्व नहीं है, जितना कि भक्ति का—

न योगो न तपो नार्चाक्रम: काऽपि हि विद्यते।
अमाये शिवमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका प्रशस्यते।।

द्वैतभक्ति क्लेशप्रदायिनी है; अत: हेय है। अद्वैतात्मिका भक्ति ही सर्वसिद्धिप्रदा होने के कारण ग्राह्य है—

तस्मादद्वैतगां भक्तिमाश्रयेत् सर्वसिद्धिदाम्।
न च द्वैतात्मिकां भक्तिं क्लेशहेतुप्रदायिनीम्।। (८.४४)

भक्ति ही परमार्थदायिनी, परतत्त्ववेदिनी, भवदोषहारिणी एवं शिवभावकारिणी है—

भक्तिरेव परमार्थदायिनी भक्तिरेव परतत्त्ववेदिनी।
भक्तिरेव भवदोषहारिणी भक्तिरेव शिवभावकारिणी।। (८.८३)

भक्ति में जो दास्यभाव है, वही वरेण्य है—

नाहमनात्मा पश्चात्कोऽहं योऽहं पदस्थ आत्मा साक्षी।
सोऽहं तत्पतिशिवदासोऽहं दासोऽहमिति चरेदुपरि।। (८.८५)

ज्ञान से मोक्ष होता है— यह भी सत्य है; किन्तु भक्ति मोक्ष से भी ऊपर है—

ज्ञानादेव हि मोक्षः स्यान्मोक्षादुपरि शाम्भवी।
भक्तिर्गुरुतरा भाति स्वतन्त्रा निजलीलया।। (८.७७)

पुरुषार्थ तो चार ही हैं— धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष; किन्तु यदि कोई पञ्चम पुरुषार्थ है तो वह मात्र भक्ति ही है, अन्य नहीं—

पञ्चमः पुरुषार्थो हि भक्तिः शैवी सनातनी। (८.७८)

भक्ति शक्ति है। शक्ति एवं भक्ति में कोई अन्तर नहीं है।

भक्ति हो चाहे ज्ञान, कर्म हो चाहे योग; किन्तु साधना की परिणति इसी अनुभूति में होनी चाहिये कि—

यत्र यत्र मनो याति बाह्ये वाऽभ्यन्तरे प्रिये।
तत्र तत्र शिवावस्था व्यापकत्वात्प्रकाश्यते।। (योगिनीहृदय)

योगिनीहृदय में साधना की कृतार्थता (पूजासङ्केत के अन्त में) अहन्ता-इदन्ता के एकीकरण में बताई गयी है—

अहन्तेदन्तयोरैक्यं भावयन् विहरेत् सुखम्।
एतत्ते कथितं सर्वं सङ्केतत्रयमुत्तमम्।।

इसे तीनों सङ्केतों (मन्त्रसङ्केत, पाँच चक्रसङ्केत एवं पूजासङ्केत) का सार बताया गया है।

भक्ति : शक्ति की साधना— परमात्मा की शक्तियों में चित् शक्ति, आनन्दशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति मुख्य शक्तियाँ हैं। इनमें आनन्दशक्ति भक्ति का केन्द्र है। भक्ति परमात्मा की आह्लादिनी शक्ति है; अतः भक्ति-साधना शक्ति-साधना का साधना है।

भक्ति के लिये शक्ति का स्वीकरण अनिवार्य है। शाङ्कर अद्वैतवाद में शक्ति की स्वीकृति नहीं है; किन्तु तान्त्रिक समाम्नाय में स्वीकृति है। इसमें भक्ति का जो रूप प्राप्त होता है, उसके आलोक में सन्तों की भक्ति की तात्त्विक मीमांसा की जा सकती है। आगमविदों ने परमतत्त्व को द्वयात्मक अद्वय के रूप में स्वीकार किया है। इस अद्वय स्वरूप में दो तत्त्व अनुस्यूत हैं— स्वरूप एवं स्वरूप की शक्ति।

यह 'स्वरूप की शक्ति' ही चित् शक्ति है, जो कि स्वरूप के साथ अभिन्नतया

समवेत है। यही अन्तरङ्गा शक्ति है, आह्लादिनी शक्ति है, आनन्दात्मिका शक्ति है, सच्चिदानन्दमयी परा शक्ति है। 'भक्ति' वह अन्तरङ्गा आह्लादिनी शक्ति है, जो कि स्वरूप के आनन्द का आस्वाद ग्रहण करने के लिये अपने से पृथक् हो गई है।

महाभाव एवं भक्ति— 'भक्ति' ह्लादिनी शक्ति की एक विशेष वृत्ति है। ह्लादिनी शक्ति महाभावस्वरूपा है। अत: शुद्ध भक्ति स्वरूपत: महाभाव का अंश है। भावरूपा भक्ति महाभाव से ही स्फुरित होती है। इसीलिये भावोदय को साधन-दुष्प्राप्य माना गया है। जीव कृत्रिम साधना के मूल में रहता है। 'भक्ति' जीव का स्वभावसिद्ध धर्म नहीं है; क्योंकि महाभाव या ह्लादिनी शक्ति की वृत्ति होने के कारण 'भक्ति' स्वरूप-शक्ति के विलास एवं भगवत्स्वरूप के साथ संश्लिष्ट है। जीव कर्म कर सकता है; किन्तु भाव प्राप्त नहीं कर सकता; क्योंकि वह स्वरूपत: भावमय नहीं है। कर्म करते-करते भाव-जगत् से उसमें भाव का अनुप्रवेश हुआ करता है।

आगमों में परमतत्त्व को अद्वयात्मक मानकर उसकी निजा शक्ति के रूप में चिन्मयी शक्ति की परिकल्पना की गई है। सम्पूर्ण मध्यकाल इसी चिन्मयी निजा शक्ति की साधना में निरत है।

अद्वैत परमतत्त्व अपने लीलात्मक सृजन-विधान में अपने को सन्दंश, चिदंश एवं आनन्दांश में विभाजित-सा कर लेता है। उसमें अनुस्यूत उसकी अन्तरङ्गा शक्ति सन्दंश के साथ निरतिशय रूप में; चिदंश के साथ उससे कम, किन्तु घनतर रूप में एवं आनन्दांश के साथ उससे भी कम, किन्तु घनतम रूप में व्याप्त रहती है।

माया एवं मायिक जगत् में सन्दंश, जीव एवं जीवजगत् में चिदंश एवं भगव-द्धाम में आनन्दांश अभिव्यक्त एवं सक्रिय रहता है। इस घनतम आनन्दांश का प्रतिबिम्ब ही राग, प्रीति या भक्ति है।

इस प्रकार भक्ति आह्लादिनी शक्ति की ही एक वृत्तिविशेष है।

रागात्मिका एवं रागानुगा भक्ति— भाव और प्रेम में आन्तर सम्बन्ध है। भाव ही परिपक्व होकर प्रेम या भक्ति के रूप में परिणत हो जाता है। भाव ह्लादिनी शक्ति के वृत्तिविशेष का नामान्तर है और यही भक्ति का स्वरूप है। भाव का अवतरण प्रथमावस्था में अन्त:करण की वृत्ति के रूप में प्रतिफलित होता है; किन्तु यह अन्त:करण की वृत्ति नहीं है। अन्त:करण में प्रतिफलित होकर वह समस्त देह को अनुप्राणित करता है। भक्ति या भाव ही स्वरूपशक्ति है; किन्तु इस भक्ति का आश्रय स्वरूपशक्ति की वृत्ति नहीं; प्रत्युत तटस्थ शक्ति का कार्य है अर्थात् जीव है। अत: 'रागात्मिका' भक्ति जीव की नहीं होती; बल्कि जीव को तो 'रागानुगा' भक्ति की ही प्राप्ति होती है।

भक्ति : अन्त:करण की विशेष वृत्ति— भक्तिशास्त्रों में लिखा है कि भक्ति अन्त:करण की एक वृत्तिविशेष है; किन्तु यह पूर्णत: सत्य नहीं है। भक्तिशास्त्रों में भक्ति की

निम्न स्थूल परिभाषा दी अवश्य गई है—

आचार्य रूपगोस्वामी 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में कहते हैं कि 'द्रवीभावपूर्विका मनसो भगवदाकाररूपा सविकल्पवृत्तिर्भक्तिरिति।'

मधुसूदन सरस्वती 'भक्तिरसायन' में कहते हैं कि—

द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते।।

किन्तु यह बात पूर्णत सत्य नहीं है। इसकी सार्थकता केवल इतनी है कि भाव या भक्ति अपनी अभिव्यञ्जना चित्त को आधार बना कर किया करती है। इसे मन की वृत्ति कहना तो दूर, इसे महामाया की वृत्ति भी नहीं का जा सकता। यह तो अन्तरङ्गा, स्वरूप-भूता आह्लादिनी शक्ति की वृत्तिविशेष है। इसी रूप में इसे तान्त्रिकों एवं निर्गुणपन्थी सन्तों ने 'निर्गुण भक्ति' का नाम देकर स्वीकार किया था।

भक्ति के इस तात्त्विक एवं आगमसम्मत विवेचना के प्रकाश में अद्वैत भक्ति या निर्गुण भक्ति (निर्गुणपन्थी सन्तों की भक्ति : कबीरादिक की भक्ति) का समन्वय और सङ्गत व्याख्यान सहज हो जाता है। कबीर कहते हैं—

मेरा मन सुमिरै राम कूँ मेरा मन रामहि आहि।
अब मन रामुहि ह्वै रह्या सीस नवावौं काहि।।

यह अद्वैतभक्ति का निदर्शन है।

साध्य भक्ति एवं साधन भक्ति— भक्ति तत्त्वत: शक्ति है, न कि भक्तिसूत्रकारों की व्याख्या के अनुकूल वह 'पूजादिक में अनुराग' है, न 'कथादिक में प्रेम' है, न 'आत्मरति के अविरोधी विषय में आसक्ति' है, न 'भगवद्विरह' है और न ही 'हृषीकेश का अनु-शीलन' है। यद्यपि कहा यही गया है; यथा—

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।। (रूपगोस्वामी)

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेश हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते।। (नारदपाञ्चरात्र)

'नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणो परमव्याकुलतेति' (नारद) आदि।

भक्ति तो चिन्मयी निजा शक्ति है। साध्य भक्ति आगम-प्रतिपादित निजा शक्ति से अभिन्न है; अत: भक्ति तत्त्वत: 'शक्ति' ही है। इसीलिये सन्त नाभादास ने 'भक्तमाल' में कहा भी है—

भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम वपु एक।

निरुपाधिक स्वरूप में जिस प्रकार ये तीनों चिन्मय हैं, तद्वत् 'भक्ति' को भी चिन्मयी एवं भगवत्स्वरूपा मानना पड़ेगा। चरम भूमि पर यह भक्ति 'साध्य भक्ति' है, आह्लादिनी

शक्ति है और अन्त:करण या चित्त की भूमि पर वह रागात्मक मनोदशा के रूप में 'साधन भक्ति' है।

पार्थिव काया में रागवृत्ति उसी चिन्मयी महाशक्ति की प्रतिच्छाया है, उसका प्रति-बिम्ब है या प्रतिरूप या प्रतिकृति है। उस रागात्मक वृत्ति का ऊर्ध्वमुखी परिस्फुट स्वरूप 'साध्य भक्ति' चिन्मयी शक्ति ही है। 'चिदेव चित्त' कहकर आगम चित्त को भी चित् शक्ति का परिणमन मानता है। इसी चित्त में आह्लादिनी शक्ति का आनन्दांश अस्फुट रूप से व्यक्त होने पर 'साधन भक्ति' बन जाता है।

मध्ययुगीन भक्तों की सामान्य आस्था 'प्रेम पुमर्थो महान्' रही है। किसी-किसी ने आत्मतत्त्व या निजस्वरूप को 'परम प्रेमास्पद' स्वीकार किया है और किसी-किसी ने 'परमप्रेमात्मक' कहा है।

इन सन्तों ने प्रेम को पञ्चम पुरुषार्थ एवं साध्यरूप में स्वीकार किया है। यह 'प्रेम' है क्या? यह है— 'ह्लादिनीरसार प्रेम।' आह्लादिनी शक्ति के आनन्दरस का जो निर्यास या घनीभूत सार है, वही 'प्रेम' है।

चिद्वस्तु (परमात्मा) के अतिरिक्त किसी के प्रति अनुराग (प्रेम) नहीं होता। कहा भी है—

आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तारे कहि काम?
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम।।

साधन भक्ति एवं साध्य भक्ति— यथार्थ भक्ति 'साध्य भक्ति' ही है। 'साधनभक्ति' भक्ति-पद-वाच्य नहीं है। साधनभक्ति भक्ति का साधन होने के कारण ही 'भक्ति' संज्ञा पा जाती है; अन्यथा वह 'भक्ति' है ही नहीं। साधनभक्ति कर्तृत्वाभिमानलक्षणा है; जबकि साध्य भक्ति कर्तृत्व एवं कर्म से अतीत है। यह कर्मातीता है। 'भक्ति' प्रेम एवं भाव से सम्बद्ध है, न कि कर्म से। अत: यह कर्म-दुष्प्राप्या, तर्कातीता और प्रेमस्वरूपा है।

भजन का लक्ष्य है— भाव से प्रेम की ओर अग्रसर होना। भाव एवं प्रेम— दोनों आह्लादिनी शक्ति के नामान्तर हैं। आह्लादिनी शक्ति ही स्वरूपभूत आनन्द का आस्वादन करा पाने में समर्थ है। 'भक्ति' यथार्थ अर्थ में 'परा भक्ति' या 'साध्य भक्ति' ही है। यही आह्लादिनी शक्ति का स्वस्वरूप है। 'वैधी भक्ति' से 'रागानुगा भक्ति' इसीलिये श्रेष्ठ है कि वह स्वभाव-प्रेरित है और 'परा भक्ति' स्वभाव है। रागात्मिका भक्ति मूलरागानुविद्ध है। साधना के धरातल पर राग-भक्ति 'मूलराग' की छायामात्र है और रागात्मिका भक्ति मूलरागभक्ति है। प्रेमाभिव्यक्ति (भक्ति का उन्मेष) ही चरमोद्देश्य है।

प्रेम या भक्ति भगवान् की आह्लादिनी शक्ति होने के कारण तत्त्वत: 'शक्ति' ही है। प्रेम के आविर्भाव-काल में भाव शान्त हो जाता है और भक्त महाप्रेम में, स्वस्वरूप में प्रतिष्ठत हो जाता है। भाव या भक्ति की चरम परिणति रस एवं महाभाव के रूप में होती

है। रस एवं महाभाव परमात्मा की ह्लादिनी शक्ति का नामान्तरमात्र है।

त्रिपुरा, प्रत्यभिज्ञा, गौड़ीय वैष्णव, सूफी एवं मध्ययुगीन निर्गुण भक्ति के अनु-यायी सन्तों की भक्ति यही रसस्वरूपा भक्ति है।

ह्लादिनी शक्ति और भक्ति

विष्णुपुराण की दृष्टि— विष्णुपुराण में कहा गया है कि परमात्मा की अनन्त शक्तियों में उनकी 'परा' नाम्नी स्वाभाविकी शक्ति 'स्वरूप शक्ति' है। यह ज्ञान, बल एवं क्रिया के नाम से प्रख्यात है। पुराणों में इन्हें ही संविद्, सन्धिनी एवं ह्लादिनी शक्ति के नाम से पुकारा गया है; यथा—

ह्लादिनी सन्धिनी संवित्त्वय्येषा सर्वसंस्थितौ।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते।।

(विष्णुपुराण-१.१२.६८)

अर्थात् सर्वाधिष्ठानस्वरूप आपमें एक ही स्वरूपभूता शक्ति ह्लादिनी, संवित् एवं संधिनी— इन तीनों रूपों में वर्तमान है; किन्तु आप (परमात्मा) गुणवर्जित हैं अर्थात् माया के तीनों गुणों से परे हैं; अतः (मायिक जगत् के समान) ह्लादकारी, मिश्रित एवं तापकारी मायिक शक्ति आपमें स्थित नहीं है।

श्रीधरस्वामी कहते है कि ह्लादिनी (आह्लादकारिणी) स्वरूपभूता शक्ति, जो कि सर्वसंस्थितिरूपा (जिससे सबकी सम्यक् स्थिति है) है, आपमें स्थित है; किन्तु जीव में नहीं है। जीवों में जो त्रिविधा गुणमयी शक्ति है, वह आपमें नहीं है तथा वह आह्लादक-तापकरी मिश्रा है। 'सच्चिदानन्द' ह्लादिनी एवं संवित् शक्तियों से समाश्लिष्ट हैं; किन्तु जीव स्वारोपित अविद्या से आच्छादित होने के कारण क्लेशाकर है।

सर्वज्ञसूक्त की दृष्टि— विष्णुस्वामी 'सर्वज्ञसूक्त' में कहते हैं कि—

ह्लादिन्या संविदाऽऽश्लिष्टः सच्चिदानन्द ईश्वरः।
स्वाविद्यासंवृत्तो जीवः सङ्क्लेशनिकराकरः।।

स्वरूपशक्ति की छायारूपा इस मायाशक्ति के बन्धन से मुक्ति-प्राप्त्यर्थ भक्तियोग के द्वारा स्वरूपशक्ति का आश्रय प्राप्त करना आवश्यक है।

प्रीतिसन्दर्भ की दृष्टि— श्रीजीवगोस्वामी 'प्रीतिसन्दर्भ' (अध्याय-९५) में कहते हैं कि भगवान् में ही ह्लादिनी, सन्धिनी एवं संवित्— ये तीन शक्तियाँ अवस्थित हैं। विष्णुपुराण में कहा गया है कि 'हे भगवन् ! आप निर्गुण हैं। आपमें आह्लाद, क्लेश एवं मिश्रभाव नहीं है।' इस वाक्य में भगवान् की ह्लादिनी नामक स्वरूपा शक्ति आनन्द-रूपा है। इसी के द्वारा भगवान् जीवों को आनन्द देते हैं। यह शक्ति नित्या है। इसी की सर्वा-नन्दातिशायिनी नित्य वृत्ति भक्तवृन्द को प्रदत्त होने पर वह 'भगवत्प्रीति' कही जाती है। भगवान् भी इस प्रीति को भक्त में अनुभव करके उसे ग्रहण करते हैं। यह आनन्द सांख्य

एवं न्याय का जड़ आनन्द नहीं है और न तो निर्विशेषवादी के शक्ति-शक्तिमान की अभिन्नता से अनभिज्ञ लोगों का चिदेकानन्द ही है। ह्लादिनी शक्ति के द्वारा भगवान् जीव को अपना प्रीतिधर्म प्रदान करता है। यह शक्ति भगवान् को भी आनन्द प्रदान करती है। भगवान् इसके द्वारा आह्लादास्वादन करते हैं। इसी के द्वारा भगवान् जीवों को अपना प्रीतिधर्म प्रदान करते हैं।

श्रीजीवगोस्वामी 'भागवतसन्दर्भ' (१०३) में कहते हैं कि भगवान् जिस शक्ति के द्वारा सत्ता धारण करते एवं कराते हैं, वह देश-काल-द्रव्यादि की प्रकाशिका शक्ति 'सन्धिनी' शक्ति है।

जिस शक्ति के द्वारा भगवान् जानते एवं दूसरों को जानने की शक्ति प्रदान करते हैं, वह 'संवित्' शक्ति है, जो चित्प्रधान है।

जिस शक्ति के द्वारा भगवान् स्वत: आनन्द लेते हैं और दूसरों को आनन्द प्रदान करते हैं, वही शक्ति है— 'ह्लादिनी' शक्ति।

सारांश यह है की मूल परा शक्ति त्रिरूपात्मिका है। अंशत्रयस्वरूप शक्ति में अन्तर्निहित है।

भक्त विनोद ठाकुर की दृष्टि— भक्त विनोद ठाकुर 'गौराङ्गलीलास्मरणमङ्गलस्तोत्रम्' में कहते हैं कि— श्रीकृष्ण ह्लादिनी के प्रणय में सदा अनुरक्त रहते हैं। 'स्वरूपशक्ति'स्वरूपा ह्लादिनी शक्ति (राधा) श्रीकृष्ण को सम्पूर्ण चिदाह्लाद प्रदान करती है। ह्लादिनी एवं राधा महाभावस्वरूपा हैं। वे निज कायव्यूह में अष्टभावों को अष्ट सखियों के रूप में व्यक्त करती हैं। ये चिन्मया एवं जगद्रूप व्रज की नित्य सिद्धा सखियाँ हैं। कृष्ण ह्लादिनी के प्रणय-विकार में सदा परमानन्दमय रहते हैं। ह्लादिनी शक्ति के बल से मधुर रस का भावोदय होता है।

'भाव' है क्या? शुद्ध सत्त्वविशेषस्वरूप तत्त्व ही भाव है। भाव का द्वितीय नाम 'रति' है। इसे ही 'प्रेमाङ्कुर' कहते हैं। सर्वप्रकाशिका स्वरूप शक्ति की संवित् वृत्ति के साथ ह्लादिनी वृत्ति के मिलन का सार अंश ही है— भाव। ह्लादिनी वृत्ति के द्वारा वस्तु का आस्वादन होता है। इसकी वृत्ति में उस पारस्परिक सम्बन्धविषयक प्रीतिस्वरूपा ह्लाद की स्फुरणा होती है।

इसके सहयोग से भगवान् आह्लादित रहते हैं। वे इसके द्वारा जीवों को भी आह्लाद प्रदान करते हैं— 'रसो वै स:। रस ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।' वे स्वत: रस या आनन्द हैं। वेदों में भी भगवान् की स्वाभाविकी परा या स्वरूप शक्ति की तीन वृत्तियाँ कही गई हैं जो ज्ञान (संवित्), बल (सन्धिनी) एवं क्रिया (ह्लादिनी) हैं। अत: भगवान् की स्वरूपा शक्ति एवं उसकी तीनों वृत्तियाँ वैदिक ही हैं।

ज्ञानदेव की अकृत्रिमा भक्ति (अमृतानुभव)— योगिराज ज्ञानेश्वर ने अपने ग्रन्थ

'अमृतानुभव' में साङ्ख्य के द्वैतवाद, चार्वाकों के जड़वाद, बौद्धों के विज्ञानवाद एवं शून्यवाद तथा अज्ञानवाद का खण्डन करके अपने 'चिद्विलास' नामक मत का प्रतिपादन किया है। शाङ्कर अद्वैतवाद में प्रतिपादित अज्ञान का सिद्धान्त ज्ञानेश्वर को मान्य नहीं है और न तो उनकी भक्तिसम्बन्धिनी उपेक्षामयी दृष्टि ही।

ज्ञानेश्वर ने शाङ्कर अज्ञानवाद का खण्डन करके तथा यह प्रदर्शित करके कि संसार अज्ञान या अविद्या का कार्य नहीं है; प्रत्युत वह प्रभु के प्रेम एवं शक्ति की अभि-व्यक्ति है, आत्मक्रीडा है, चिद्वलास है, अकृत्रिमा भक्ति या स्वभावसिद्धा भक्ति के सिद्धान्त का मार्ग प्रशस्त किया।

ज्ञानेश्वर की दृष्टि में परमात्मा प्रेमस्वरूप है। यही सिद्धान्त ज्ञानेश्वर के तत्त्वज्ञान का मूल मन्त्र है। ज्ञानेश्वर के मतानुसार चरम प्रेम स्वयं ही द्रष्टा एवं दृश्यरूप में अभिव्यक्त होता है। परमात्मा का स्वगत प्रेम ही चरम सत्य है।

जगत् के रूप में जो कुछ भी भासमान हो रहा है, वह केवल आभासमात्र नहीं है; प्रत्युत परमात्मा के प्रेम की यथार्थ अभिव्यक्ति है। भक्ति या परमात्मा का स्वगत प्रेम अज्ञानी जीव अज्ञानजन्मा भावना नहीं है; प्रत्युत वह चरम तत्त्व की प्रकृति एवं हृदय है। यही मानवजीवन एवं जगत् का मूल उत्स है। परमात्मा अपने से प्रेम करते हैं अर्थात् परमात्मा मानव जाति एवं जगत् से प्रेम करते हैं, जो कि अपनी अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। परमात्म-प्रेम को हृदयङ्गम करना, उसकी अनुभूति करना एवं उसका आस्वादन करना ही जीवन का लक्ष्य है। यह अनुभूति ही अकृत्रिमा (स्वाभाविक) भक्ति है। ज्ञानेश्वर की दृष्टि में इसके समक्ष ज्ञान एवं योग की समाधि का आनन्द तुच्छ है। इस भक्ति का आस्वादन मुक्ति के आनन्द से भी अधिक मधुर है। इसीलिये इसे 'पञ्चम पुरुषार्थ' कहा जाता है। परमात्मा का मनुष्य के प्रति प्रेम ही परम पुरुषार्थ है।[१]

भावनोपनिषद् में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना में भावना को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है और कहा गया है कि 'एवं मुहूर्तत्रयं भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति। तस्य देवताऽऽत्मैक्यसिद्धिः। चिन्तितकार्याण्ययत्नेन सिध्यन्ति। स एव शिवयोगीति कथ्यते।'[२]

मधुसूदन सरस्वती भक्ति को 'परम पुरुषार्थ' भी मानते हैं— 'नवरसमिलितं वा कवलं वा पुमर्थं परममिह मुकुन्दे भक्तियोगं वदन्ति।' (भक्तिरसायन, उल्लास-१)

'भक्ति' पुरुषार्थचतुष्टय में अन्तर्भुक्त नहीं है; प्रत्युत यह स्वतन्त्र एवं परम पुरुषार्थ है।

मधुसूदन सरस्वती 'भक्तिरसायन' में कहते हैं कि विशुद्ध, वत्सल एवं प्रेयान्— ये तीन भक्तिरस हैं, जो रसान्तर से मिश्रित न होकर सर्वाङ्गपूर्ण हैं—

विशुद्धो वत्सलः प्रेयानिति भक्तिरसायनः।
रसान्तरामिश्रितास्ते भवन्ति परिपुष्कलाः।।

---

१. भक्ति अङ्क २. भावनोपनिषद्

शुद्धा, वत्सल एवं प्रेयोरति स्थायीभाव हैं; उन्हीं के ये तीनों रस हैं। विशुद्ध भक्ति का उदाहरण देखिये—

मृद्वीका रसिता सिता समशिता स्फीतं निपीतं पय:
स्वर्यातेन सुधाप्यधायि कतिधा रम्भाधर: खण्डित:।
सत्यं ब्रूहि मदीय जीव ! भवता भूयो भवे भ्राम्यता
कृष्णेत्यक्षरयोरयं मधुरिमोद्गार: क्वचिल्लक्षित:।। (जगन्नाथ)

अन्य रस रसान्तर-मिश्रित होने के कारण सर्वाङ्गपूर्ण नहीं है; सर्वाङ्गपूर्ण रस तो विशुद्ध, वत्सल एवं प्रेयान्— ये तीन भक्तिरस ही हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रस दो प्रकार के होते हैं— मिश्रित एवं असर्वाङ्गपूर्ण रस तथा अमिश्रित एवं सर्वांगपूर्ण रस। प्रथम मिश्रित रस के निम्न नौ भेद होते हैं—

१. शृंगार	४. वीर	७. वीभत्स
२. हास्य	५. रौद्र	८. अद्भुत
३. करुण	६. भयानक	९. शान्त

अमिश्रित एवं सर्वाङ्गपूर्ण रस तीन प्रकार के होते हैं— विशुद्ध, वत्सल एवं प्रेयान्।

अमिश्रित रति भी तीन प्रकार की होती है— शुद्धा रति, वत्सल रति एवं प्रेयो रति। कहा भी गया है—

शुद्धा च वत्सलरति: प्रेयोरतिरिति त्रयी।

ये तीनों अन्य स्थायीभावों से मिश्रित न होने के कारण 'अमिश्रित रति' कहलाते हैं—

भावान्तरामिश्रितत्वादमिश्रा रतिरुच्यते।

भक्ति रस तीन प्रकार का होता है— विशुद्ध, वत्सल एवं प्रेयान्। 'भक्तिरसायन' में कहा भी गया है—

विशुद्धो वत्सल: प्रेयानिति भक्तिरसास्त्रय:।
रसान्तरामिश्रितास्ते भवन्ति परिपुष्कला:।।

रसों के भेद— सङ्कीर्ण, सङ्कीर्णमिश्रित, केवल मिश्रित एवं शुद्ध।

शुद्ध रस— शुद्ध भक्ति, वत्सल भक्ति एवं प्रेयोभक्ति।

प्रश्न एवं समाधान— (प्रश्न) रसशास्त्र के आचार्य भरतमुनि आदि ने देवादि-विषया रति एवं निर्वेदादि सञ्चारियों को भाव माना है, रस नहीं माना है; फिर कृष्णविषया रति या भक्ति रस कैसे हो सकती है?

(समाधान) अन्य देवताओं से सम्बन्धित रति 'भाव' कही जा सकती है; क्योंकि वे मलिनसत्त्वप्रधान जीव अविद्या के कार्य होने से पूर्ण आनन्द के प्रकाशक नहीं हैं; किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण तो परमानन्दस्वरूप परमात्मा हैं; अत: उनके ऊपर यह सिद्धान्त लागू नहीं होता।

सामान्य देव रति की अपेक्षा भगवद्विषयिणी रति विलक्षण होती है। अत: उसे भाव न कह कर रस ही कहना चाहिये। मधुसूदन सरस्वती कहते हैं कि विभावों, अनुभावों और व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट होकर सुखरूप से व्यक्त होने वाला स्थायीभाव ही रस है।

मधुसूदन सरस्वती 'भक्तिरसायन' में कहते हैं कि ज्ञानयोग की अवधि भक्तियोग है— 'अस्य च ज्ञानयोगस्य भक्तियोगोऽवधि:।'

'भक्ति' की व्याख्या— 'भजनमन्त:करणस्य भगवदाकारतारूपं भक्तिरिति' अर्थात् अन्त:करण का भगवादाकार होना ही 'भक्ति' है।

'भज्यते सेव्यते भगवदाकारमन्त:करणं क्रियतेऽनयेति भक्ति:' अर्थात् अन्त:करण को जिसके द्वारा भगवदाकाररूप किया जाता है, वही भक्ति है। यह साधनभक्ति है, न कि साध्य भक्ति।

भक्ति के दो रूप हैं— फलरूपा एवं साधनरूपा। फलरूपा भक्ति के दो भेद हैं— दृष्ट एवं अदृष्ट फल।

भक्ति और ब्रह्मविद्या में भेद— मधुसूदन सरस्वती के अनुसार चित्त का द्रवीभाव हो जाने पर सविकल्पक वृत्ति के रूप से मन का भगवदाकार होना 'भक्ति' है और चित्त का द्रवीभाव हुये विना ही अद्वितीय आत्ममात्र का साक्षात्कार होकर निर्विकल्पक मनोवृत्ति का उदय 'ब्रह्मविद्या' है। इन दोनों के फलों में भी भेद है। भगवद्विषयक प्रेम का प्रकर्ष भक्ति का फल है और सम्पूर्ण अनर्थों के मूल अज्ञान की निवृत्ति हो जाना मात्र ब्रह्मविद्या का फल है— 'भगवद्विषकप्रेमप्रकर्षो भक्तिफलम्; सर्वानर्थमूलाज्ञाननिवृत्तिर्ब्रह्मविद्याफलम्।'

भक्ति की परिभाषा— मधुसूदन सरस्वती के अनुसार भगवद्धर्म (भगवद्गुणश्रवणादि) से द्रवीभूत हुये चित्त की सर्वेश्वर भगवान् में धारावाहिकता को प्राप्त अर्थात् तैलधारावत् अविच्छिन्न रूप से भगवदाकार वृत्ति ही भक्ति है—

द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते।।

वैसे तो काम-क्रोध आदि उद्दीपनों द्वारा द्रवावस्थानुगत चित्त की धारावाहिकी सर्वेश-विषयिणी वृत्ति (यथा— शिशुपाल की कृष्ण के प्रति क्रोध-द्वेषवृत्ति) भी भक्ति ही है; किन्तु भक्तिरसायन में उसी को वृत्ति माना गया है, जो भगवत्स्वरूपा, भगवदाकारा हो— 'भगवदाकारतेत्यर्थ:। तदाकारता एव सर्वत्र वृत्तिशब्दार्थोऽस्माकं दर्शने। सा भक्तिरित्यभिधीयते।'

द्रवीभाव के दो रूप— चित्त लाक्षा की भाँति ठोस है; किन्तु काम, क्रोध, लोभ, मोह, दया, प्रेम आदि द्रवीभूत हो जाता है। द्रवीभूत करने वाले तापक तत्त्व हैं— हर्ष, शोक, क्रोध, प्रेम आदि। भगवद्विषयक आसक्ति से चित्त पूर्ण रूप से द्रवित हो जाता है;

किन्तु सांसारिक विषयों से द्रवाभूत नहीं होता, केवल शिथिल होता है; यथा—

१. लोहा आग पर रखने पर द्रवीभूत हो उठता है।

२. लोहा धूप में रखने पर मात्र शिथिल हेाता है, द्रवीभूत नहीं होता।

भावना— भक्ति कर्माश्रित नहीं भावनाश्रित होती है। फिर यह 'भावना' है क्या? द्रवीभूत चित्त में वस्तु द्वारा ढाला गया जो उसका स्वस्वरूप है, वही संस्कार, वासना भाव या भावना कहा जाता है—

द्रुते चित्ते विनिक्षिप्तस्वाकारो यस्तु वस्तुना।
संस्कार-वासना-भाव-भावना-शब्दभागसौ ।।[1]

पूर्ण चित्तद्रुति होने पर वासना होती है (यथा— लाक्षा को पिघलाने पर जो रंग डाला जाएगा, वही लाक्षा का रंग हो जाएगा। यह वासना रूपात्मकता है) और शिथिल-भाव वासनावभास है, चित्तद्रुति या वासना नहीं है। 'वासना' को चित्त नहीं छोड़ता; बल्कि वासनाभास को छोड़ देता है। चित्तरूपी लाक्षा की द्रवावस्था में प्रविष्ट भगवदाकारता, भगवद्भाव का संस्कार स्थिर होता है। चित्त की द्रवावस्था 'प्रणय, अनुराग, स्नेह' आदि शब्दों से व्यक्त की जाती है।

द्रवीभाव के अन्य रूप— द्रवावस्था में प्रविष्ट भगवत्स्वरूप की प्रतीति तीन प्रकार से होती है—

१. प्रपञ्च को सत्य (भगवत्स्वरूप) समझना। आकाश, पृथ्वी, वृक्ष, समुद्र सभी को भगवान् का विग्रह मानकर उसे आनन्दभाव से प्रणाम करना। यह उत्तम प्रकार है।

२. प्रपञ्च को असत्य एवं मात्र भगवान् को सत्य मानना। यह मध्यम प्रकार होता है।

३. प्रपञ्च की असत् या सत् दोनों प्रकारों में से किसी भी प्रकार की अनुभूति न होना। यह निकृष्ट प्रकार होता है।[2]

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या भक्ति को चित्त-द्रुति कहा जा सकता है? 'भक्ति' शब्द से सभी प्रकार की परमेश्वरविषयिणी हृदय की द्रुतिवृत्ति का ग्रहण किया जाता है। प्रत्येक प्राणी की स्वेष्ट या प्रेष्ठ विषयों में चित्त-द्रुति तो होती ही है। जैसे कि बच्चे को देखकर पशुओं के स्तनों से दूध चूने लगता है। भागते हुये मृग को देखकर सिंह आदि की चित्त-वृत्ति क्रोधाविष्ट हो जाती है। पत्नी को देखकर पति की कामविषयिणी वृत्ति का जाग्रत होना भी चित्त-द्रुति ही है। रसशास्त्र की दृष्टि से इन द्रुत चित्तवृत्तियों को 'रस' नहीं कहा जा सकता। इन चित्त-द्रुतियों को 'भक्ति' भी नहीं कहा जा सकता; यत: चित्त-द्रुति तो प्राणिमात्र का स्वभाव है। मधुसूदन सरस्वती (भक्तिरसायन के प्रणेता) ने काम, क्रोध, भय, स्नेह, शोक, दया आदि को चित्त-द्रुति का साधन माना है—

काम-क्रोध-भय-स्नेह-हर्ष-शोक-दयादय: ।
तापकाश्चित्तजतुनस्तच्छान्तौ कठिनन्तु तत्।।

---

१. भक्तिरसायन २. भक्तिरसायन

केवल चित्त की द्रुति होना ही 'भक्ति' नही है। भक्ति है— अखण्डाह्लादप्रदायक, जगत्कारण, नित्य एवं कालातीत परमेश्वर के साथ चित्त का अखण्ड रूप से तादात्म्य, उसमें चित्त का लय, उसमें चित्त का तैलधारावत् अखण्ड प्रवाह।

श्रीमद्भागवतपुराण में कहा गया है कि जिस प्रकार गंगा अखण्ड रूप से समुद्र में प्रवाहित होती रहती है, उसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवणमात्र से मन की वृत्ति का अविच्छिन्न रूप में मुझ अन्तर्यामी के प्रति प्रवाहित होते रहना 'निर्गुण भक्ति' है—

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ।
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।।(३.२९.११-१२)

निष्कर्ष यह कि चित्तरूपी गंगा का परमात्मारूपी समुद्र में अखण्ड रूप से प्रवा-हित होते रहना ही 'भक्ति' है। मधुसूदन सरस्वती ने इस श्लोक को उद्धृत भी किया है। चित्त की परमात्मा में अखण्ड प्रवाहमयता ही भक्ति है।

चित्त की द्रुति न तो भक्ति है और न ही रस; क्योंकि रस की निष्पत्ति विभाव-अनुभाव-व्यभिचारीभाव के संयोग से होती है— 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।'

भक्ति और रस का अन्तःसम्बन्ध— भक्ति का आधार है— भाव और विना रस के भाव है ही नहीं। रस के विना भाव एवं भाव के विना रस रह ही नहीं सकते। यदि भक्ति भाव है तो वह रस भी है; क्योंकि—

न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः।
परस्परकृता सिद्धिरनयो रसभावयोः।।

साहित्यशास्त्र में नौ रस गिनाये गये हैं— शृङ्गार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त। भक्ति को देवादिविषयक रति मानकर इसे भाव माना गया है, न कि स्वतन्त्र रस। साहित्यशास्त्र के आचार्यों का कथन है कि वात्सल्य एवं भक्ति स्वतन्त्र रस नहीं हैं; क्योंकि इनके आधारभूत स्थायीभाव मौलिक नहीं हैं; प्रत्युत स्नेह के ही रूपान्तर हैं और स्नेह शृङ्गार रस का स्थायीभाव है। 'भक्ति' देवता-विषयक रतिभाव है, न कि रस।

मधुसूदन सरस्वती कहते हैं कि यदि भक्ति स्वतन्त्र रस नहीं है, केवल भाव है तब भी यह नौ रसों से मिला हुआ है; क्योंकि विना भाव के रस एवं विना रस के भाव रह ही नहीं सकते। अतः भक्ति नौ रसों से मिलित है—

नवरसमिलितं वा केवलं वा पुमर्थं।
परममिह मुकुन्दे भक्तियोगं वदन्ति।।

आचार्य रूपगोस्वामी का मत— आचार्य रूपगोस्वामी ने 'भक्तिरसामृतसिन्धु' एवं 'उज्ज्वलनीलमणि' नामक ग्रन्थ में भक्ति को एक स्वतन्त्र रस स्वीकार किया है। इनका

कथन है कि देवता-विषयक रति तो 'भाव' है; किन्तु श्रीकृष्णविषयक भक्ति 'रस' है; क्योंकि कृष्ण मात्र देवता नहीं, बल्कि साक्षात् ब्रह्म हैं। वे रसस्वरूप हैं— 'रसो वै सः।'

'प्रेमा भक्ति' एवं 'भाव भक्ति'— देवर्षि नारद ने प्रेमा भक्ति को भक्ति का आदर्श स्वीकार किया है और इसे परम प्रेमरूपा, अमृतस्वरूपा, निष्कामा, निरोधरूपा, अनन्या, कर्म-ज्ञान-योग-श्रेष्ठतरा, दैन्यरूपा, अभिमानशून्या, मोक्षदा, कृपाप्राप्या, भक्तभगवाना-भेदरूपा, वेदसन्यासरूपा, अनिर्वचनीया, असामान्यलभ्या, शान्तिरूपा एवं आनन्दरूपा कहा है।

नारदीया भक्ति 'स्वप्रमाणा' (सूत्र-५९), 'शान्तिरूपा' एवं 'आनन्दरूपा' (सूत्र-६०), 'सर्वसमर्पणपरा' (सूत्र-६५), 'भेदभावशून्या' (सूत्र-७२), 'एकनिष्ठा' (सूत्र-७९), 'अनन्यरूपा' (सूत्र-१०), 'परमव्याकुलतारूपा' (सूत्र-१९) एवं 'अखण्ड-भजनात्मिका' (सूत्र-३६) है।

यद्यपि भक्तिसूत्रकार नारद ने भक्ति के परा, गौणी और अन्य ग्यारह रूपों का उल्लेख किया है; किन्तु उन्होंने 'दास्य' एवं 'कान्ताभजनात्मक' भक्ति को ही प्रमुख स्थान देते हुये कहा है— 'त्रिरूपभङ्गपूर्वकं नित्यदासनित्यकान्ताभजनात्मकं वा प्रेमैव कार्यम्' (६६)। यहाँ प्रेम ही साधन है और प्रेम ही साध्य है।

भक्तिसूत्रकार नारद ने भक्ति के दो भेद किये है— परा भक्ति एवं गौणी भक्ति। परा भक्ति परमप्रेमरूपा, अमृतस्वरूपा एवं निरोधस्वरूपा (लौकिक-वैदिक समस्त कर्मों का त्याग कराने वाली) है— 'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा' (सूत्र-२) एवं 'अमृतस्वरूपा' (सूत्र-३)। इसे प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध, अमर एवं तृप्त हो जाता है, निष्काम अचिन्तक, अद्वेष्टा, अनासक्त, विषयवर्जित हो जाता है— 'यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति' (सूत्र-४), 'यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति।'

प्रेमा भक्ति के प्रेम की विशेषतायें[1]— नारद भक्तिसूत्र के अनुसार अनिर्वचनीयता, मूकस्वादनवत् अवाच्यता, गुणरहितता, कामनारहितता, प्रतिक्षण वर्द्धमानता, विच्छेद-शून्यता (अविच्छिन्नता), सूक्ष्मतरात्मकता, अनुभवरूपात्मकता, प्रेमास्पद को ही देखने, सुनने, अनवरत वर्णन करने, उसी के विषय में सतत बात करने एवं उसी का अखण्ड चिन्तन इत्यादि प्रेमा भक्ति के प्रेम की विशेषतायें हैं। यह प्रेम कर्म, ज्ञान एवं योग से भी श्रेष्ठतर है, फलरूपा है (साध्यभक्ति है, न कि साधनभक्ति)। यह वैधी और गौणी नहीं;

---

१. अनिर्वचनीयप्रेमस्वरूपम् (सूत्र-५१), मूकस्वादनवत् (सूत्र-५२), गुणरहितं कामना-रहितंप्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् (सूत्र-५४), तत्प्राप्य तदेवावलोक-यति तदेव शृणोति तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति (सूत्र-५५), सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्यो-ऽप्यधिकतरा (सूत्र-२५), फलरूपत्वात् (सूत्र-२६), सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा (सूत्र-२), सा न कामायमाना निरोधरूपत्वात् (सूत्र-७)। (नारदभक्तिसूत्र)

प्रत्युत प्रेमरूपा है, निष्काम प्रेम है, निरोधस्वरूपा है, अमृतस्वरूपा है, अनिर्वचनीया है, स्वप्रमाणा है, असामान्य-प्राप्या है।[१]

प्रेमरूपा भक्ति के भेद— 'नारदभक्तिसूत्र' में प्रेमा भक्ति को इन रूपों में विभक्त किया गया है— गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति, परमविरहासक्ति। यह प्रेमरूपा भक्ति एक होकर भी ग्यारह प्रकार की होती है।[२] इसे प्राप्त करके व्यक्ति उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध (शान्त) हो जाता है और आत्माराम बन जाता है— 'यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति' (सूत्र-६)। भक्ति का साधन ज्ञान है।[३]

साधन भक्ति एवं साध्य भक्ति— आगमिक साधनायें 'राग' को साधन बनाकर शक्ति-साधना की ओर प्रवृत्त हुई हैं तो श्रमण संस्कृति 'रागोन्मन' (राग-निवृत्ति) को साधन बनाकर साधना में प्रवृत्त हुई हैं। जिन्होंने 'रागदमन' को आदर्श माना, उन्होंने रागात्मिका वृत्ति को अन्तःकरण की एक वृत्ति स्वीकार किया और उसका दमन किया।

जिन्होंने 'राग' को भक्ति मान कर भी उसे अन्तःकरण की वृत्ति स्वीकार किया, उनकी दृष्टि में इसका 'परम पुरुषार्थ' होना सम्भव नहीं था; अतः उन्होंने इस रागमूलक आसक्ति को मात्र 'साधनभक्ति' के रूप में ही स्वीकार किया।

भक्ति के दो रूप हैं। पाञ्चभौतिक शरीर में अन्तःकरण की वृत्ति के रूप में जो रागात्मिका वृत्ति या भक्ति है, वह भक्ति का एक रूप है।

भक्ति का द्वितीय एवं तात्त्विक रूप तो चिन्मय परा सत्ता की आगमिक स्वस्वरूप-भूता शक्ति ही भक्ति है। यह 'साध्यभक्ति' है।

प्रथम भक्ति इसी चिन्मयी आह्लादिनी शक्ति की प्रतिच्छायामात्र है; अतः यह प्रथम भक्ति साधनभक्ति है। इसके द्वारा (प्रतिबिम्ब = प्रतिच्छाया के द्वारा) बिम्बस्वरूपा एवं मूलशक्त्यात्मिका भक्ति का सन्धान पाया जा सकता है।

क्या भक्ति आत्मतत्त्व से पृथक् है? यदि इसे पृथक् माना जाता है तो उसके द्वारा आत्मतत्त्व का ज्ञान होने पर आत्मतत्त्व तो स्वप्रकाश न होकर परप्रकाश हो जायेगा;

१. गुणमाहात्म्यासक्तिरूपासक्तिपूजासक्तिस्मरणासक्तिदास्यासक्तिसख्यासक्तिकान्तासक्तिवात्सल्यासक्त्यात्मनिवेदनासक्तितन्मयतासक्तिपरमविरहासक्तिरूपा एकधाऽप्येकादशधा भवति। (नारदभक्तिसूत्र-८२)

२. नारद ने गौणी भक्ति का भी उल्लेख किया है और उसके तीन भेद बतलाये हैं— सात्त्विकी, राजसी एवं तामसी अथवा आर्त, जिज्ञासु एवं अर्थार्थी— 'गौणी त्रिधा गुण-भेदादार्तादिभेदाद्वा' (नारदभक्तिसूत्र-५३)।

३. 'तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येके' (नारदभक्तिसूत्र-२८)। कतिपय आचार्यों का कथन है कि भक्ति और ज्ञान परस्पराश्रित हैं— 'अन्योन्याश्रयत्वमित्यन्ये' (नारदभक्तिसूत्र-२९)।

किन्तु यदि भक्ति को भी आत्मशक्ति मान लें तो यह आपत्ति दूर हो जायेगी; क्योंकि तब तो आत्मशक्ति द्वारा परमात्मशक्ति की प्रकाश्यता भी स्वप्रकाश्यता ही होगी, परप्रकाश्यता नहीं होगी। 'भक्त्या मामभिजानाति' कहकर श्रीकृष्ण ने भक्ति के इसी साध्यरूप (शक्ति-रूप) भक्ति की ओर इङ्गित किया था।

'ब्रह्मविद्यामार्ग' विद्यात्मिका वृत्ति → अविद्योन्मूलन → आत्मसाक्षात्कार।

'भक्तिमार्ग' स्वरूपशक्तिरूपा भक्ति (विमर्श) → प्रकाशस्वरूप की अनुभूति।
शक्ति → शक्तिमान का साक्षात्कार।

'ब्रह्मविद्यामार्ग' (ज्ञानमार्ग)— आत्मसाक्षात्कार के बाद सम्पूर्ण यात्रा समाप्त (आत्मानन्दानुभूति नहीं)।

'भक्तिमार्ग' शक्तिभक्ति → आत्मसाक्षात्कार (ज्ञानभूमि— अद्वैतभूमि) → कल्पित द्वैतभूमि → साध्यभक्ति = आत्मशक्तिरूपा भक्ति (अद्वैत की भूमि पर कल्पित द्वैत द्वारा भक्ति = शक्तिस्वरूपा भक्ति = परमात्मस्वरूपा चिन्मयी भक्ति)।

यह अद्वैत भक्ति (निर्गुण भक्ति) न तो अन्तःकरण की वृत्ति है और न ही माया या महामाया की वृत्ति है। शाक्त भक्ति को आत्मशक्ति के रूप में ही स्वीकार करके साध्य भक्ति के अनुयायी थे। त्रिपुरा एवं त्रिकमत की भक्ति भी यही है।

रामाश्रयी शाखा की रसिक धारा के अनुसार भगवती सीता राम की आत्मशक्ति होने के कारण उनके रसास्वाद का माध्यम है। सीता के विना ('रसो वै सः' के रूप में प्रतिष्ठित) रसस्वरूप राम की प्राप्ति ही सम्भव नहीं है। कृष्णाश्रयी शाखा में भक्ति के सोपान 'भाव' की परिणति 'महाभाव' में मानी गई है। यह महाभाव ही ह्लादिनी शक्ति-रूपा राधा (आत्मशक्ति) है। भक्ति अपने वास्तविक रूप में आगम-प्रतिपादित शक्ति है, परमात्मा की स्वस्वरूपा चिन्मयी शक्ति है।

आगमिकों ने भक्ति को शक्ति के रूप में स्वीकार करते हुये यह स्वीकार किया था कि भक्ति आत्मा की आत्मभूता स्वशक्ति है। भक्ति की उपासना शक्ति की उपासना है। शक्ति एवं शक्तिमान में सामरस्य होने के कारण शक्ति की साधना भी शक्तिमान की ही साधना है।

वेदान्त, मीमांसा, योग, साङ्ख्य, वैशेषिक न्याय आदि नैगमिक दर्शन शक्ति मानते ही नहीं और मानते भी हैं तो जड़ रूप में। आगमिक दर्शन शक्ति को चित्स्वरूपा एवं चिन्मयी मानते हैं। यही शक्ति अभेद, भेदाभेद एवं भेद— तीनों स्तरों पर अवरोहण करती है। यह चिन्मयी शक्ति नादस्वरूपा है, मातृकात्मिका है, सृष्टि के रूप में उसी का विस्तार-प्रसार है। यही शक्ति अवरोहण के अन्त में परिच्छिन्न जड़ पदार्थ की भाँति स्थित होकर प्रसुप्त कुण्डलिनी के रूप में मानवपिण्ड में स्थित है। इसका स्वाप, इसकी निद्रा ही मानव का आत्मविस्मरण है। यही भोग्य, अभोग्य, भोग एवं भोगायतन सभी रूपों में विभक्त है। यह विश्वबीज है। यही अपने स्वातन्त्र्य द्वारा निग्रह एवं अनुग्रह दोनों की

सम्पादिका है। अनुग्रह → आत्मस्मृति → आत्मप्रत्यभिज्ञा = शिवत्वभाव = स्वरूप का साक्षात्कार। शक्ति की सुषुप्ति → जीवात्मा की आत्मविस्मृति → अज्ञान (बन्धन)— परमेश्वरानुग्रह + गुरुकृपा + उपाय → प्रसुप्त शक्ति का जागरण। शक्ति → सृष्टि-स्थिति-प्रलय, बन्धन, मुक्ति। शक्ति नादात्मा स्वरूप में 'अ' से 'ह' तक सृष्टि में प्रसृत है। यही संहृत होकर अनुस्वार में प्रविष्ट होकर 'अहं' प्रत्याहार का निर्माण करती है। 'अहं' का तात्त्विक विमर्श ही 'पूर्णाहन्ता' है, चैतन्य शक्ति का स्फार है। इसकी प्रत्यभिज्ञा ही तान्त्रिकों का परम लक्ष्य है। यह विश्वात्मक भी है और विश्वातीत भी।

सृष्टि का ढाँचा नाद एवं वर्ण से निर्मित है। कुण्डलिनी प्रसुप्त नाद है। कुण्डलिनी शक्ति सर्ववर्णमयी, सर्वचक्रमयी एवं अर्थमयी है। कुण्डलिनी की वर्णात्मिका अभिव्यक्तियाँ पिण्डस्थ विभिन्न चक्रों के शक्तिकेन्द्र हैं। सृष्टि का मूल नाद जो ॐकार या प्रणव है, वह अनाहत नाद भी शक्ति ही है।

परम तत्त्व विश्वातीत एवं नि:शब्द तथा नि:स्पन्द है। उसकी शक्ति 'स्पन्द' है। 'स्पन्दता' शब्द का पर्याय है। स्पन्द गत्यात्मक तो है ही, नादात्मक एवं शब्दात्मक भी है। निस्पन्द → सामान्य स्पन्द, विशेष स्पन्द। 'सृष्टि' → सामान्य + विशेष स्पन्द की समष्टि। चरम तत्त्व में तो गति एवं विश्रान्ति का सामरस्य है। इसी नि:स्पन्द चरम तत्त्व से अपने भीतर ही स्फोट, शब्द एवं गति का उदय → 'परा वाक्' ही दर्शन करती हुई 'पश्यन्ती वाक्' बन जाती है। हृदय राज्य में 'मध्यमा' के भेदाभेद भूमि पर उतर कर यही वाक् शक्ति भेदभूमि में पदार्पण करके (शब्दार्थ की पृथकता को स्थापित करते हुये) 'वैखरी वाक्' बन जाती है। आज्ञाचक्र के बाद बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी, समना एवं उन्मना— ये भी शक्ति के ही विभिन्न रूप हैं।

महामाया (मायातीत माया) की सीमा को अतिक्रान्त करने पर तुर्यातीतावस्था की दो भूमियाँ आती हैं— उन्मनी एवं महाबिन्दु। सिसृक्षु परमात्मा की इच्छा एक प्रकार का स्पन्द या कम्पन है। उपनिषदों में इसे 'एजन' कहा गया है। शब्द और नाद इसी कम्पन के मूर्त रूप हैं। 'स्पन्द' शक्ति है, गति है; किन्तु यदि केवल गति ही रहे और स्थिति न रहे तो स्पन्द (कम्पन) सम्भव नहीं होगा: अत: गति के साथ स्थिति भी आवश्यक है।

'नाद' ही गति है, 'बिन्दु' ही स्थिति है, गति + स्थिति का ही परिणाम है— जगत्। सृष्टि के लिये गत्यात्मक 'नाद' एवं स्थित्यात्मक 'बिन्दु' दोनों आवश्यक हैं। यह प्रथम स्पन्दस्वरूप 'नाद' कौन था? ॐ ही प्रथम स्पन्द है, प्रथम नाद है, शक्ति की प्रथम अभिव्यक्ति है। यह ब्रह्माण्डव्यापी एवं कभी भी न रुकने वाला (अखण्ड ध्वनित) नाद प्रतिक्षण नित्यस्पन्दित है। अ, उ, म, बिन्दु, अर्द्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी, समना एवं उन्मना— अपनी इन १२ कलाओं से ॐकार पृथ्वी से लेकर शिवपर्यन्त समस्त तत्त्वों एवं भुवनों में व्याप्त है। नाद के सारे रूप शक्ति के ही रूप हैं।

भक्ति के विभिन्न प्रकार

नवधाभक्ति— भक्तिशास्त्र में 'नवधा भक्ति' का भी उल्लेख किया गया है, जो नौ प्रकार की है— श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य एवं आत्मनिवेदन।[१]

रूपगोस्वामी का भक्ति का विभाजन (भक्तिरसामृतसिन्धु)

कृष्णभक्ति के मुख्य स्थायी

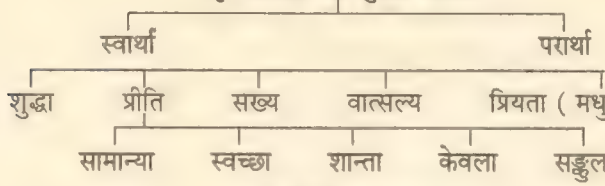

कृष्णरति के गौणस्थायी

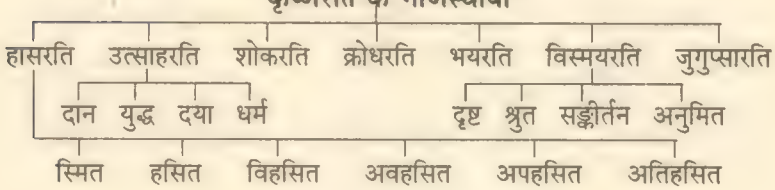

मुख्य भक्तिरस

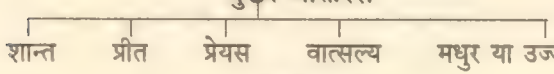

गौण भक्तिरस

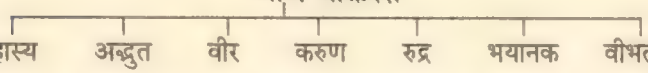

नारद की प्रेमरूपा भक्ति कर्म, ज्ञान एवं योग तीनों से श्रेष्ठतर है— 'सा तु कर्म-ज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा।' यह साधनरूपा नहीं, फलरूपा है (फलरूपत्वात्)। यह अमृत-स्वरूपा, निष्कामा, निरोधरूपा, अनन्यरूपा, अनिर्वचनीया, अवाच्या, शान्तिरूपा, परमानन्दरूपा (शान्तिरूपात्परमानन्दरूपाच्च), लोकचिन्ताविरक्ता, सर्वार्पणरूपा, दास्यभक्ति-कान्ताभक्तिप्रधाना एवं यम-नियमनिष्ठा है।

बोपदेवकृत भक्ति का विभाजन

भक्ति

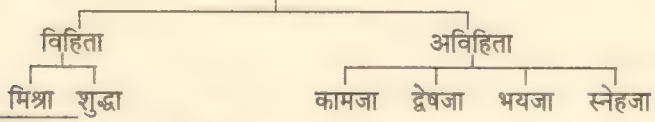

१. भक्तिरसायन (मधुसूदन सरस्वती)

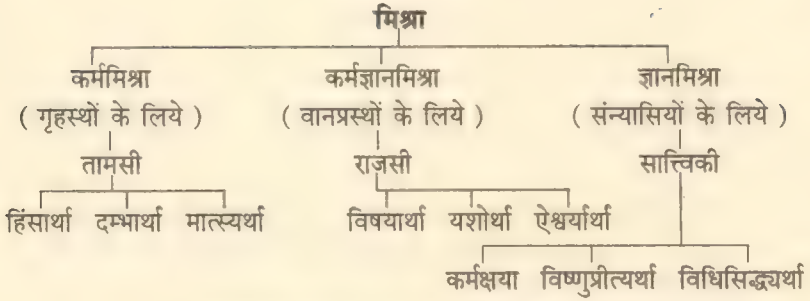

नारदभक्तिसूत्रविहित भक्ति के प्रकार

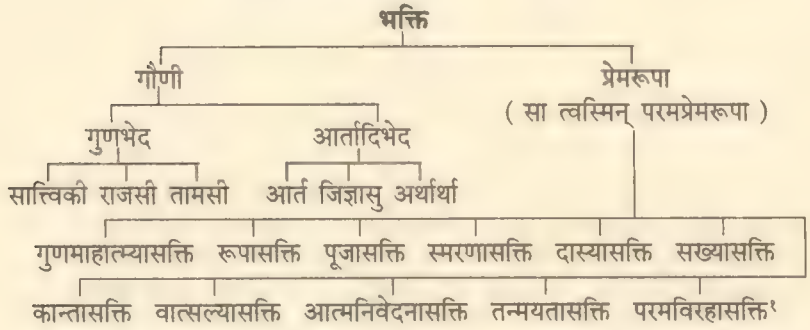

यह भक्ति श्रद्धा-विश्वासमूला है— 'य इदं ..... विश्वसिति श्रद्धत्ते स प्रेष्ठं लभते स प्रेष्ठं लभत इति' (नारदभक्तिसूत्र, सूत्र-८४)।

---

१. 'नारदस्तु तदर्पिताखिला-चारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति'। (नारदभक्तिसूत्र-१९)
— यथा व्रजगोपिकानाम्। (नारदभक्तिसूत्र-२१)

षष्टि अध्याय

मनस्तत्त्व, ज्ञानतत्त्व और ज्ञान-साधना

आचार्य गौड़पाद ने 'सुभगोदयस्तुति' में मनस्तत्त्व को ही साधना का मूल तत्त्व मानते हुये कहा है— 'मनस्तत्त्वं जित्वा नयनमथ नासाग्रघटितम्' आदि।

'मन ब्रह्म है।' तैत्तिरीयोपनिषद् (३-४) में कहा गया है कि उसने यह जाना कि मन ब्रह्म है (मनो ब्रह्मेति व्यजानात्)। आचार्य गौड़पाद मन पर विजय प्राप्त करने को साधना का मेरुदण्ड मानते हैं—

मनोमार्गं जित्वा मरुत इह नाडीगणजुषो।
निरुध्यार्कं सेन्दुं दहनमपि सञ्ज्वाल्य शिखया।।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी को मनस्तत्त्व, व्योमतत्त्व, वायुतत्त्व, अग्नितत्त्व एवं भूमि-तत्त्व आदि भी कहा गया है। भाव यह है कि भगवती मनस्तत्त्व के रूप में आज्ञाचक्र में स्थित मनस्तत्त्व हैं, आकाशतत्त्व में (विशुद्ध चक्र में) स्थित हैं आदि। मनस्तत्त्व भगवती का स्वस्वरूप ही है। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी स्वयं मनस्तत्त्व हैं। आचार्य शङ्कर सौन्दर्य-लहरी में कहते हैं—

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन विभृषे।।

योगिराज अरविन्द घोष की दृष्टि— 'मन' कोई स्वतन्त्र और मौलिक तत्त्व नहीं है; प्रत्युत ऋत्-चित् या अतिमानस की एक अन्तिम क्रियामात्र है; अत: जहाँ कहीं मन है, वहाँ अतिमानस भी अवश्य होगा। 'विश्वमन' को अपने निजी एकत्व का बोध रहता है; किन्तु उसे यह संवित् नहीं रहती कि उसका मूलाधार आत्मा में है।

'मन' स्वरूपत: ऐसी चेतना है, जो मित और सीमित करती है, अविभाज्य वस्तुओं के रूपों को काटती और अपने अन्दर इस भाँति समाये रखती है; मानो प्रत्येक एक पृथक् एक पृथक् अखण्ड हो। उसका कार्य है— अनन्तता को सदैव सान्त की अभि-धाओं में अनूदित करना, मापना, सीमित करना और खण्ड-खण्ड करना। वह सत्ता को समग्रों में काटता जाता है, नित्य लघुतर समग्रों में, अणुओं में और उन अणुओं को आदि परमाणुओं में काटता जाता है एवं उसकी चले तो वह उस आदि परमाणु को शून्यता में विलीन ही कर दे। जब अतिमानसिक क्रिया विभक्त मन को पराभूत, नीरव एवं निष्क्रिय कर देती है, तभी मन वस्तुओं के सत्य तक वापस जा सकता है।

अरविन्द की प्राणविषयक दृष्टि— प्राण एवं मन का सम्बन्ध है। प्राण एक अच्छा करण है; किन्तु बुरा स्वामी है। प्राण की हत्या नहीं करना है, उसे नष्ट नहीं करना है; प्रत्युत चैत्य एवं आध्यात्मिक नियन्त्रण के द्वारा विशुद्ध एवं रूपान्तरित करना है। प्राणसत्ता के चार भाग हैं—

१. प्रथम मनोमय प्राण है, जो प्राणसत्ता के भावों, कामनाओं, आवेगों, संवेदनाओं एवं अन्यान्य क्रिया को विचार, वाणी या अन्य रूप से मानसिक अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

२. भावात्मक प्राण द्वितीय प्राण है, जो प्रेम, हर्ष, शोक, घृणा एवं अन्यान्य प्रकार के विभिन्न हृद्गत भावों का अधिष्ठान है।

३. 'केन्द्रीय प्राण' महत्त्वाकांक्षा, गर्व, भय, प्रतिष्ठाकांक्षा, आकर्षण और विकर्षण जैसी सबलतर प्राणिक लालसाओं और प्रतिक्रियाओं, नाना प्रकार की कामनाओं एवं आवेगों आदि का अधिष्ठान है तथा अनेक प्राणिक शक्तियों का क्षेत्र है।

४. 'निम्नतर प्राण' अन्तिम एवं चतुर्थ प्राण है। यह छोटी-छोटी कामनाओं और हृद्गत भावों में ऐसी कामनाओं एवं भावों में व्यस्त रहता है, जो दैनिक जीवन के अधिकांश भाग का निर्माण करते हैं; यथा— भोजनेच्छा, कामवासना, लड़ाई-झगड़े, प्रतिष्ठा की इच्छा, निन्दा होने पर क्रोध, सभी प्रकार की तुच्छ इच्छायें, सामान्य पसन्द एवं नापसन्दगी आदि असङ्गत जमात।

मनस्तत्त्व— योगिराज अरविन्द घोष कहते हैं कि यदि हमें महत्तर गम्भीरतर एवं यथार्थ ज्ञान चाहिये तो मन को एक अन्य चेतना के लिये स्थान खाली करना होगा, जो मन का अतिक्रमण करके मन को परिपूर्ण करेगी या उससे आगे छलाँग लगाकर उसकी क्रियाओं को उल्टा मोड़ देकर सुधारेगी। मन तो मार्ग है। मन मञ्जिल नहीं है।

The Life Divine में श्री अरविन्द ने मनस्तत्त्व की सूक्ष्म मीमांसा की है और उसके स्थूल एवं दिव्य दोनों रूपों की व्याख्या की है।

श्री अरविन्द घोष का कथन है कि मन एक इन्द्रिय की तुच्छ सीमा तक ही यात्रा नहीं करता; प्रत्युत वह ऊर्ध्व चेतना में प्रविष्ट होकर उच्चतर मन, आलोकित मन, अधिमानस एवं अतिमानस तक की यात्रा करता है। मन का कार्य है— स्वयम्भू सद्वस्तु का कोई अङ्ग अनिर्दिष्ट रूप से काट लेना, माप को समग्र करना, फिर समग्र का अङ्गों में विश्लेषण करना। मन एक अखण्ड सार्वभौम, सर्वव्यापक एवं समष्टिभूत एकात्मक सत्ता है।

व्यावहारिक धरातल पर तो मन की खण्डित, एकदेशीय, मित व्याप्त, व्यष्टिगत एवं अनन्तरूपात्मक सत्ता अनुभव में आती है; क्योंकि जितने जीव हैं, सबके पृथक्-पृथक् मन हैं; किन्तु तत्त्वतः मन अखण्ड एवं सार्वभौम सत्ता है।

विचार-संक्रमण (Thought transference) में एक मनुष्य का विचार सुदूरस्थ

किसी भी व्यक्ति के पास पहुँच जाता है। यदि मन प्रत्येक प्राणी में पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र होता और जो मेरा मन है, उसका दूसरे मन के साथ कोई पारस्परिक सम्बन्ध नहीं होता तो मेरे मन की बात उस सुदूरस्थ व्यक्ति के मन तक विना किसी साधन के कैसे पहुँच जाती?

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि— सामान्यतया किसी के विचार दूसरे के पास सीधे नहीं पहुँच जाते; प्रत्युत विचार को आकाशतत्त्व के स्पन्दनों में परिणत होना पड़ता है। ये स्पन्दन पुन: दूसरे के मस्तिष्क में पहुँचते हैं। वहाँ पुन: इन स्पन्दनों का प्रेषक के अपने विचारों में रूपान्तर होता है और इस प्रकार प्रेषक का विचार ग्रहीता के पास पहुँचता है। यहाँ प्रथमत: विचार विश्लिष्ट होकर आकाशतत्त्व में मिल जाता है और फिर उसी का वहाँ संश्लेषण हो जाता है। इस प्रकार का चक्राकार कार्यक्रम चलता रहता है; किन्तु विचार-संक्रमण में इस प्रकार की कोई चक्राकार क्रिया नहीं होती। इसमें प्रेषक का विचार सीधा-सीधा दूसरे ग्रहीता के पास पहुँच जाता है। स्पष्ट है कि मन एक अखण्ड वस्तु है। मन विश्वव्यापी है। आपका मन, मेरा मन— ये सब विभिन्न मन उस समष्टि मन के अंशमात्र हैं; मानों समुद्र पर उठनेवाली छोटी-छोटी लहरें हैं और इस अखण्डता के कारण ही हम अपने विचारों को एकदम सीधे विना किसी माध्यम के आपस में संक्रमित कर सकते हैं।[१] हम सबके मन उस एक ही समष्टि मन के अंशमात्र हैं। जिसे एक ढेले का ज्ञान हो गया, उसने दुनिया की सारी मिट्ट जान ली। जो अपने मन को जानता है और स्वाधीन रखता है, वह दूसरों के मनों का रहस्य भी पहचानता है और उन पर अपनी हुकूमत भी चला सकता है।[२] एक आन्तरिक मन, एक आन्तरिक प्राण, एक आन्तरिक सूक्ष्म भौतिक सत्ता हमारे बाह्यतल के मन, प्राण या देह की अपेक्षा अपनी शक्यताओं में विशालतर है, अधिक सबल है। उसमें विश्वशक्तियों, विश्वगतियों और विश्व के पदार्थों के साथ अपरोक्ष सम्पर्क की, उनके अपरोक्ष अनुभव की और उनकी ओर सीधे उन्मीलन की, उन पर अपरोक्ष क्रिया करने की और व्यक्तिगत मन एवं प्राण को विस्तृत करने की सामर्थ्य है।[३]

▼

१. स्वामी विवेकानन्द : मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की सफलतायें।
२. स्वामी विवेकानन्द : मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की सफलतायें।
३. अरविन्द घोष : The Life Divine

एकषष्टि अध्याय

शाक्तदर्शन में ज्ञान का स्वरूप

अद्वैतवादी आचार्य शङ्कर ने ज्ञान का स्वरूप प्रस्तुत करते हुये कहा हैं— 'ब्रह्म सत्यम्, जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।'

शाक्तों ने शङ्कराचार्य के ज्ञानसिद्धान्त की मायावादी (विश्वमिथ्यात्व) दृष्टि को तो स्वीकार नहीं किया; किन्तु 'ब्रह्म सत्यम्' (शक्ति सत्यम्) तथा 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' (जीवः शक्त्येव नापरः) को अवश्य स्वीकार कर लिया। शाक्तों की दृष्टि में जगत् मिथ्या नहीं है; क्योंकि वह तो शक्तिस्फार है, शक्ति का परिणाम है, शक्ति का रूपान्तरण है; तथापि शाक्त भी अद्वैत वेदान्तियों की भाँति अद्वैतवाद के पक्षधर हैं। 'शाक्तदर्शनम्' की दृष्टि में—

१. सारे लिङ्गशरीर कर्म के बन्धन में बँधे हुये हैं। इस बन्धन का कारण मात्र अज्ञान है। अज्ञान के रज्जु से बँध कर प्रत्येक प्राणी कालचक्र का दासानुदास है।

२. ज्ञान से अज्ञान का नाश हो जाता है; किन्तु कर्मों के द्वारा अज्ञान का नाश कभी नहीं होता। उपासना से भी अज्ञान का नाश नहीं होता। निष्काम कर्मों द्वारा ही (बन्धनों के मूल कारण) मलों से विमुक्ति हो पाना सम्भव है। उपासना की कृतार्थता मात्र विक्षेपों को शान्त करने में है, न कि ज्ञानोदय में। अज्ञानावरणों के उन्मोचन में केवल ज्ञान ही सहायक है—

'कर्मबध्यो लिङ्गदेहः'। 'अज्ञानमयं कारणम्'। (शाक्तदर्शनम्-४.१.१०-११)
'अज्ञानेन कर्मबध्यो जीवः कालात्मकं चक्रं युञ्जति।' (शाक्तदर्शनम्-४.१.१२)
'ज्ञानेनाज्ञाननाशः। न कर्मणा। नोपासनेन'। (शाक्तदर्शनम्-४.१.१५)
'मलमोचने निष्काम कर्म। विक्षेपमुपासनम्। (शाक्तदर्शनम्-४.१.१७)
'अज्ञानरूपावरणमोचने ज्ञानमेव' (शाक्तदर्शनम्-४.१.१८)

३. मलों का नाश कर्मों से करना काम्य नहीं है,[१] तथापि कर्मकाण्ड का अनुष्ठान करने से मलों का नाश हो जाता है।[२]

४. उपासना का प्रयोजन केवल विक्षेपों को शान्त करना है।[३]

५. ज्ञान अज्ञानावरणों के नाश का सर्वोच्च उपाय है।[४]

६. स्वतः कर्मों का त्याग करना उचित नहीं; क्योंकि ज्ञानोदय होने पर कर्म स्वयमेव परित्यक्त हो जाते हैं।[५]

७. ज्ञान का अधिकारी केवल योगी होता है (क्योंकि वह केवल वाचिक ज्ञान का

---

१. मलनाशाय कर्म न काम्यम् (४.३.२)।
२. कर्मकाण्डं मलनाशाय।
३. उपासनं विक्षेपशान्त्यै।
४. ज्ञानमावरणनाशाय।
५. न स्वयं त्यजेत्कर्म। ज्ञानारूढेच्युतिं स्वयमेव (३.३.२)।

ज्ञानी नहीं होता; प्रत्युत ज्ञानस्वरूप प्रत्यक् चैतन्य की अपरोक्षानुभूतिरूप ज्ञान का ज्ञानी होता है)।[१]

'योगी' केवल उसे कहते हैं, जो निर्मल एवं निश्चल अन्तःकरण वाला होता है और उसका कर्तव्य आवरणभङ्गमात्र शेष रहता है।[२] यम से ध्यानपर्यन्त सप्ताङ्ग योगी के बाह्य साधनाङ्ग हैं। मुख्य साधनाङ्ग महावाक्य है।[३]

८. केवल मूलाविद्या के नाश होने पर भी ब्रह्मप्राप्तिरूप मुक्ति सम्भव है—
'मूलाविद्यानाशद्वारा ब्रह्मप्राप्तिर्मुक्तिः।' (शाक्तदर्शनम्-५.१.८)

९. वास्तविक ज्ञानी तो केवल वह है, जो मुक्त हो चुका हो— 'मुक्तो ज्ञानी' (शाक्तदर्शनम्-५.१.१३)। अविद्याजन्य ज्ञान भी 'ज्ञान' कहलाता तो है; किन्तु यह भेद-ज्ञान है; जबकि वास्तविक ज्ञान मात्र अभेदज्ञान है— 'अविद्याजन्यं भेदज्ञानम्' (शाक्तदर्शनम्-५.१.१५)।

१०. ज्ञान से अज्ञान का नाश तो होता ही है; साथ ही उससे दुःखों की निवृत्ति एवं आनन्दाप्ति भी होती है— 'ज्ञानेनाज्ञाननाशः' (५.१.१४)। ज्ञानेन दुःखनिवृत्त्यानन्दप्राप्तिः' (५.१.१८-१९)। ज्ञानी ही मुक्त होता है; किन्तु देहत्रय से ऊपर उठकर आत्मा को शक्ति के रूप में साक्षात्कृत करना भी उसके लिये आवश्यक है।[४]

११. सद्रूप आत्मा में ही यह बन्धनरूप अध्यास स्थित है और जगत् अपने व्यावहारिक तथा भेदात्मक स्वरूप में मात्र अध्यास के कारण है— 'सद्रूपात्मनि बन्धाध्यासः (१८), जगदध्यासेन (१९)। ज्ञान के द्वारा ही अध्यास का ध्वंस सम्भव हो पाता है।[५]

१२. जीवात्मा एवं परमात्मा में अभेद है—इत्याकारक ज्ञान ही ज्ञान है— 'जीवेशाभेदबोधकं ज्ञानम्' (५.४.२)।

१३. बहिर्मुखी प्राणियों में विषयों के प्रति इच्छा होती है; किन्तु ज्ञानियों को तो विषयों में भी समाधि की अनुभूति होती है।

१४ .जहाँ तक व्यावहारिक भेदात्मक जगत् है, वह तो रज्जु में सर्प की भाँति मिथ्या है— 'जगन्मिथ्या' (१५), 'न जगत् पारमार्थे' (१६), 'भात्यज्ञानेन रज्जुसर्पवत्' (१७)।

१५. जलाकाशवत् जीव है। मेघाकाशवत् ईश्वर है। घटाकाशवत् कूटस्थ है। ईश्वर कौन है? 'भुवनेश्वरी'— 'ईश्वरो भुवनेश्वरी' (६.१.१३)।

१६. विना ज्ञान के सिद्धि सम्भव नहीं है— 'न सिद्धिर्ज्ञानं विना' (७.१.११)। इस ऐक्यावबोधरूप ज्ञान का साधन महावाक्यों का मनन-निदिध्यासन है। आत्मा के

---

१. योगी ज्ञानाधिकारी।
२. निर्मलनिश्चलान्तःकरणोपेतो योगी। केवलावरणोपेतः।
३. बाह्यं सप्त। साक्षान्महावाक्यं मुख्यम्।
४. शाक्तदर्शनम् (५.१.२०)।
५. ज्ञानेनाध्यासनाशः (५.२.२०)।

अतिरिक्त सब कुछ मिथ्या है। सांसारिक ज्ञान के पूर्व भी आत्मा ही ब्रह्म है— ऐसी अनुभूति होती है; क्योंकि ब्रह्म एवं आत्मा में कोई भेद नहीं है।[१]

१७. अद्वैतभावनास्वरूप निर्विकल्प समाधि-समायुक्त साधक (स्थूल-सूक्ष्म-कारण) प्रपञ्चत्रय की वासनाओं से विरहित होकर स्वानन्दभवन (ब्रह्मलोक) में प्रवेश करते हैं।[२]

१८. जो ज्ञान दिव्य ज्ञान प्रदान कर सके, वही यथार्थ ज्ञान है। ज्ञानसिद्धि आनन्द से अभिन्न है। यह ज्ञान आनन्दभवन है और यह आनन्दभवन मात्र मणिद्वीप है[३] और इसी आनन्दभवनस्वरूप मणिद्वीप में निवास मुक्ति है।[४]

१९. जो अद्वैतावस्थानसमाधिस्थ है, वही ज्ञानी है। अद्वैतभावनारूप समाधि में स्थित योगी ही ज्ञानयोगी है। 'तत् + त्वं' पदार्थों के शोधन में पारङ्गत योगी ही ज्ञाननिष्ठ कहलाता है।

महावाक्यानुसार जो ज्ञान का उदय होता है, वही ज्ञान है; वाचक ज्ञान 'ज्ञान' नहीं है (११.१.१-४)। यह हयग्रीव विद्या ब्रह्मैक्यदायिनी है— 'इयं हयग्रीवविद्या ब्रह्मैक्य-दायिनी' (१८.४.२४)।

२०. जो लोग वेदविरुद्ध न भी हों तो भी यदि तन्त्रमार्ग में दीक्षित हैं तो वे ज्ञान-मार्गी नहीं है। वे भक्तिमार्गी तो हो सकते हैं; किन्तु ज्ञानमार्गी नहीं हो सकते। तन्त्रमार्ग केवल उपासनामार्ग है।

२१. विद्याओं में पञ्चदशी विद्या ही विद्या (मुख्य विद्या) है— 'विद्या पञ्चदशी' (१७.३.११)। ज्ञानवर्णी कभी भी तन्त्रमार्ग में दीक्षित नहीं हुआ करते।

२२. 'अन्तःकरणवृत्त्यामारूढब्रह्मप्रकाशो ज्ञानम्' (१६.१.५) अर्थात् अन्तःकरण की वृत्तियों में आरूढ़ ब्रह्म का जो प्रकाश है, वही 'ज्ञान' है। यही यथार्थ ज्ञान का स्वरूप है।

ईश्वरप्रत्यभिज्ञा में 'ज्ञान' का स्वरूप यह बताया गया है कि 'समस्त विश्वसत्तात्मक वैभव या समस्त जगत्-विस्तारूप वैभव मेरा ही है, मैं ही विश्वात्मा हूँ, मैं ही जगत् हूँ'— इस महेश्वरत्व की अनुभूति ही ज्ञान है अथवा 'प्रत्यभिज्ञा' ही ज्ञान है—

सर्वो ममाऽयं विभव इत्येवं परिजानतः।
विश्वात्मानो विकल्पानां प्रसरेऽपि महेशता।।

'मैं और ब्रह्म अभिन्न हैं तथा जगत् के भी ब्रह्म से अभिन्न होने के कारण मैं भी जगत् से अभिन्न हूँ, जगत् भी मेरा रूप है और ब्रह्म भी'— यही द्विमुखी 'प्रत्यभिज्ञा' ज्ञान है। यही त्रिकानुमोदित ज्ञान है।

▼

---

१. 'ऐक्यज्ञानसिद्ध्यै विचार्यो महावाक्यप्रबन्धः, आत्मातिरिक्तमिदं मिथ्या, ज्ञानात्पूर्वमपि आत्मा ब्रह्म, न भेदो ब्रह्मात्मनोः।' (शाक्तदर्शनम्-७.२-१६,१७,१९,२२)

२. शाक्तदर्शनम् (१०.३.१४)।

३. ज्ञानसिद्धिः सानन्दम्। तदानन्दभवनम्। तदानन्दं मणिद्वीप एव (१३)।

४. अतो मणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः (१०.४.१८)।

द्वाषष्टि अध्याय

शाक्तदर्शन में प्रतिपादित योग-साधना

कर्ममार्ग, भक्तिमार्ग एवं ज्ञानमार्ग अर्थात् इन तीनों ही मार्गों में योग स्वीकृत नहीं है।

शङ्कराचार्य के अद्वैतवादी ज्ञानमार्ग में तथा उनके शारीरक भाष्य में योग की साधना का कहीं भी प्रतिपादन नहीं किया गया है। भक्तिमार्ग में भी योगसाधना स्वीकृत नहीं है। इसी प्रकार की स्थिति मीमांसकों के कर्ममार्ग की भी है। इतना होने पर भी परमात्म-साक्षात्कार या स्वरूपावस्थान (निर्वाण, कैवल्य, मुक्ति या मोक्ष) की साधना में योग-साधना वैदिक, पौराणिक एवं सूत्रकाल से अद्याविध अविच्छिन्न धारा के रूप में अख-ण्डित स्वरूप में प्रवाहित होती चली आ रही है।

हयग्रीवोक्त योगसाधना की दृष्टि— शाक्त एवं शैव दोनों सम्प्रदायों ने अपने साधना-मार्ग में ज्ञान, भक्ति, कर्म, उपासना एवं योग सभी साधनों का उपयोग किया है। यद्यपि उन्होंने योग के दर्शन को (उसके दार्शनिक सिद्धान्तपक्ष को) तो स्वीकार नहीं किया; किन्तु उसकी साधना-पद्धति (अष्टाङ्ग योग) को स्वीकार कर लिया तथा इस दिशा में अपनी मौलिक स्थापनाओं द्वारा योग-साधनाओं के आयाम को और अधिक विस्तृत स्वरूप प्रदान किया।

यह ध्यातव्य बिन्दु है कि शाक्तों ने योगदर्शन को वेदबाह्य मानकर उसका त्याग कर दिया। उन्होंने सांख्य, पातञ्जल, कापिल, गाणप, सौर, शाक्त, (वाममार्गी शाक्त) शैव, पाशुपत, भैरव, पाञ्चरात्र, सात्त्वत, भागवत एवं षड्विध बौद्ध मतों को वेदबाह्य घोषित करके 'साङ्ख्य-पातञ्जल-कापिल-गाणप-सौर-शाक्त-शैव-पाशुपत-भैरव-पाञ्चरात्र-सात्वत-भागवत-बौद्धादीनि वेदबाह्यान्येव' (१८.२.३१)[1] इस वाक्य द्वारा यद्यपि इनको त्याज्य कहा है, तथापि साधना की योग-पद्धति को निश्चितरूपेण स्वीकार कर लिया है।

आचार्य हयग्रीव का मत—

कर्ममार्ग	: 'कर्मकाण्डं मलनाशाय।'	(४.४.७)
उपासनामार्ग	: 'उपासनं विक्षेपशान्त्यै:।'	(४.४.८)
ज्ञानमार्ग	: 'ज्ञानमावरणनाशाय।'	(४.४.९)
योगमार्ग	: 'विषयेभ्यश्चित्तवृत्तिनिरोधो योग:।'	(१३.२.१)
	'चित्तं पञ्च।'	(१३.२.२)

'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की अनुभूति ही शाक्तज्ञान का स्वस्वरूप है।

आचार्य हयग्रीव का योगमार्ग— आचार्य हयग्रीव ने 'शाक्तदर्शनम्' के त्रयोदश

---

१. शाक्तदर्शनम् (हयग्रीव)

एवं चतुर्दश अध्याय के अपने ४-४ पादों में (८ पादों में) तथा पञ्चदश अध्याय के प्रथम एवं द्वितीय पादों में योगसाधना का सविस्तार विवेचन किया है। उन्होंने १५वें अध्याय के तृतीय पाद में राजयोग, हठयोग, मन्त्रयोग, कर्मयोग, कर्मयोगी, ज्ञानयोगी, हठयोगी आदि की तुलना भी प्रस्तुत की है। इस प्रकार आचार्य हयग्रीव स्वीकार करते हैं कि शाक्तों के तान्त्रिक मार्ग में तथा भुवनसुन्दरी की उपासना में ज्ञान-भक्ति एवं योग का मणिकाञ्चन योग ही प्रशस्त है; न कि एकाङ्गी साधना।

योग-साधना की हयग्रीवोक्त विवेचना इस प्रकार है—

योगाधिकारी कौन है? चतुष्टयवैराग्यसम्पन्न ही योग का अधिकारी है— 'चतुष्टय-वैराग्यसम्पन्नो योगाधिकारी' (१३.१.१)।

वैराग्य योगी तीन प्रकार के होते हैं[1]— हठयोगी, मन्त्रयोगी एवं राजयोगी। इन्हें ही क्रमशः अष्टांग योगी, मन्त्रमार्गी एवं राजमार्गी भी कहा जाता है।[2] इन समस्त योगियों में राजयोगी सर्वोच्च होता है।

योग के ८ अङ्ग हैं— यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और सविकल्प समाधि।[3] यहाँ पर 'यम' का तात्पर्य पातञ्जल यम से नहीं लेना चाहिये। पतञ्जलि ने तो 'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः।' कहकर अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहरूप गुणों या व्रतों को यम में परिगणित किया है। पतञ्जलि और हयग्रीव का तुलनात्मक विवेचन निम्नवत् है—

पातञ्जल योगसम्मत 'यम' : अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह।

हयग्रीवोक्त 'यम' : सर्वं खल्विदं ब्रह्म (यह सब कुछ ब्रह्म ही है)— ऐसा मानकर इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण-त्याग करना ही यम है— 'सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति विषयेभ्य इन्द्रियनिग्रहो यमः' (१३.१.११)।

पातञ्जल योगसम्मत 'नियम' : 'शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः' (शौच-सन्तोष-तप-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधान ही नियम हैं)।

हयग्रीवोक्त 'नियम' : अन्तःकरण की वृत्तियों को जगत् से निगृहीत करके ब्रह्म को अपने चिन्तन का विषय बनाना ही नियम है— 'अन्तःकरणवृत्तिप्रपञ्चान्निगृह्य ब्रह्म-विषयीकरणं नियमः' (१३.१.१२)।

पातञ्जल योगसम्मत 'प्राणायाम' : आसन की सिद्धि होने के उपरान्त श्वास एवं

---

१. 'हठराजमन्त्रयोगीति।' (शाक्तदर्शनम्-१३.१.५)

२. 'हठमार्गादष्टाङ्गपरो हठयोगी', 'राजमार्गाद्राजयोगी', 'मन्त्रमार्गान्मन्त्रयोगी।' (शाक्तदर्शनम्-१३.१.६-८)

३. 'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसविकल्पसमाधयोऽष्टाङ्गानि योगस्य', 'राज-योगस्तमः।' (शाक्तदर्शनम्-१३.१.९-१०)

प्रश्वास की गति का रुक जाना ही प्राणायाम है— 'तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः' (योगसूत्र-२.४९)।

हयग्रीवोक्त 'प्राणायाम' : चित्तादिक सभी भावों को ब्रह्मभावन के द्वारा निरुद्ध करना ही प्राणायाम है— 'चित्तादिसर्वभावान् ब्रह्मभावनद्वारा निरोधः प्राणायामः' (शाक्तदर्शनम्-१३.१.१४)। राजयोग का प्राणायाम 'चतुर्थ प्राणायाम' कहलाता है, जिसमें बाहर-भीतर के विषयों का त्याग कर देने से अपने-आप प्राणायाम होने लगता है और यही है— चतुर्थ प्राणायाम ('बाह्याभ्यान्तरविषयापेक्षी चतुर्थः' (योगसूत्र : साधनपाद-२.५१)।

पातञ्जल योगसम्मत 'आसन' : सुखपूर्वक निश्चल रूप में बैठने का नाम ही आसन है— 'स्थिरसुखमासनम् (योगसूत्र-२.४३)।

हयग्रीवोक्त 'आसन' : सुखपूर्वक ब्रह्मचिन्तनप्रद स्थिति में आसीन होना ही आसन है— 'सुखेन ब्रह्मचिन्तनप्रदस्थितिरासनम्' (शाक्तदर्शनम्-१३.१.१३)।

पातञ्जल योगसम्मत 'पूरक-कुम्भक-रेचक' : उक्त प्राणायाम बाह्यवृत्ति (रेचक), आभ्यन्तरवृत्ति (पूरक) एवं स्तम्भवृति (कुम्भक) तीन प्रकार का होता है तथा वह देश, काल एवं संख्या द्वारा सम्यक् रूप से देखा जाता हुआ लम्बा एवं हल्का होता जाता है— 'बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसङ्ख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः' (योगसूत्र-२.५०)।

हयग्रीवोक्त 'पूरक' : 'मैं ब्रह्म हूँ'— इस प्रकार की वृत्ति ही पूरक है— 'अहं ब्रह्मेति वृत्तिः पूरकः' (शाक्तदर्शनम्-१३.१.१५)।

हयग्रीवोक्त 'रेचक' : 'अनात्मप्रपञ्च का निषेध ही रेचक है— 'अनात्मप्रपञ्चनिषेधो रेचकः' (शाक्तदर्शनम्-१३.१.१६)।

हयग्रीवोक्त 'कुम्भक' : अखण्डाकार निश्चल स्थिति ही कुम्भक है— 'अखण्डाकार-वृत्त्या निश्चलस्थितिः कुम्भकः' (शाक्तदर्शनम्-१३.१.१७)।

पातञ्जल योगसम्मत 'प्रत्याहार' : अपने विषयों के सम्बन्ध से रहित होने पर जो इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप में तदाकार-सा हो जाना है, वही प्रत्याहार है— 'स्वविषय-सम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः' (योगसूत्र-५४)।

हयग्रीवोक्त 'प्रत्याहार' : शब्दादि पञ्च महाविषयों में भी अपनी आत्मा का साक्षात्कार होने लगना ही प्रत्याहार है— 'शब्दादिविषयेष्वप्यात्मदर्शनं प्रत्याहारः' (शाक्तदर्शनम्-१३.१.१८)।

पातञ्जल योगसम्मत 'धारणा' : शरीर के बाहर या भीतर कहीं भी किसी एक देश में चित्त को ठहराना धारणा कहलाता है— 'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा' (योगसूत्र-३.१)।

हयग्रीवोक्त 'धारणा' : मनोगत विषयों में ब्रह्मदर्शन का अनुसन्धान करना ही धारणा है— 'मनोविषयेषु ब्रह्मदर्शनानुसन्धानं धारणा' (शाक्तदर्शनम्-१३.१.१९)।

पातञ्जल योगसम्मत 'ध्यान' : जहाँ भी चित्त को नियोजित किया जाय, स्थिर किया

जाय, उसी में वृत्ति का एक तार चलना ध्यान है— 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्' (योग-सूत्र-३.२)।

हयग्रीवोक्त 'ध्यान' : 'मैं ब्रह्म हूँ' इत्याकारक अखण्डाकार वृत्ति में निश्चल स्थिति की संज्ञा ध्यान है— 'अहं ब्रह्म इत्यखण्डाकारवृत्त्यां निश्चलस्थितिर्ध्यानम्' (शाक्तदर्शनम्-१३.१.२०)।

पातञ्जल योगसम्मत 'समाधि' : महर्षि पतञ्जलि ने समाधि को पारिभाषित करते हुये कहा है कि जब ध्यान में केवल ध्येयमात्र की ही प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य-सा हो जाता है तब वही ध्यान ही समाधि कहलाने लगता है— 'तदेवार्थ-मात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः' (योगसूत्र-३.३)।

हयग्रीवोक्त 'समाधि' : त्रिपुटी के राहित्य के कारण जो साधक में अखण्डाकार वृत्ति का उदय होता है, वही समाधि है— 'त्रिपुटीराहित्याखण्डाकारवृत्तिः समाधिः' (शाक्त-दर्शनम्-१३.१.२१)।

प्रत्याहार की अन्य दृष्टि से व्याख्या— इन्द्रियाँ जिन-जिन विषयों संलग्न हैं, उन्हें उन-उन विषयों से प्रत्याहृत करके स्थिर करना ही प्रत्याहार है— 'इन्द्रियाणां बलादाहरणं विषयेषु प्रत्याहारः' (शाक्तदर्शनम्-१४.३.१)।

प्रत्ययाहार की पद्धति है क्या? आचार्य हयग्रीव कहते हैं— प्राणायाम के बल से समस्त शरीर को वायु से परिपूरित करके शरीर के उन-उन स्थानों का वायु के द्वारा निरोध करना प्रत्याहार है— 'आपादतलमस्तकमनिलमापूर्य पादद्वयाधारनाभिहृत्कण्ठतालु-ललाटभ्रूमध्यमूर्ध्नि निरोधश्च' (शाक्तदर्शनम्-१४.३.२)।

धारण की मौलिक व्याख्या— आभ्यन्तर बीजस्मरणपूर्वक बाह्य भूतों में चित्त-संस्थापन ही धारणा है— 'बाह्यभूतानि क्रमेणाभ्यन्तरबीजानुस्मरणपूर्वं धारणं धारणा' (शाक्तदर्शनम्-१४.३.३)। पञ्चभूतों में पञ्चदेवों की स्थापना भी धारणा है— 'पञ्चभूतेषु पञ्चदेवान्।'

चक्र	भूत	गुण	देवता	वर्ण	
१. मूलाधार	पृथ्वी	गन्ध	गणपति	व-श-ष-स	
२. स्वाधिष्ठान	जल	रस	ब्रह्मा	—	योनिपीठ
३. मणिपूरक	अग्नि	रूप	विष्णु	डादि कान्त	उड्डीयान पीठ
४. अनाहत	वायु	स्पर्श	रुद्र	कादि ठान्त	
५. विशुद्धाख्य	आकाश	शब्द	महेश	षोडश स्वर	

'मूलवह्निशिखाग्रे मूलप्रकृतिः' मूलाधार में। (शाक्तदर्शनम्-१४.३.३)

मूलाधार में ही कुण्डलिनी भी रहती है—

'मूले कुण्डलिनी।' (शाक्तदर्शनम्-१४.३६)

मूलाधार में ही कामदायिनी पीठ है।

तालुमूल में जालन्धर पीठ है—

'तालुमूलं जालन्धरम्।' (शाक्तदर्शनम्-१४.४.१८)

आज्ञाचक्र (द्विदलात्मक) में सदाशिव निवास करते हैं—

'आज्ञा द्विदलम्।' 'सदाशिवः।' (शाक्तदर्शनम्-१४.३.२१-२२)

ब्रह्मरन्ध्र एवं सहस्रार अभिन्न हैं और उसमें परा शक्ति निवास करती है—

'ब्रह्मरन्ध्रसहस्रारम्।' (शाक्तदर्शनम्-१४.३.३२)

'देवता परा शक्तिः।' (शाक्तदर्शनम्-१४.३.२४)

१. सात्त्विकी : विष्णु देवता।

२. तामसी : रुद्र देवता।

— : शक्तिपुत्रव्यावहारब्रह्मगणपति।

३. राजसी : ब्रह्मा।

ब्रह्मरन्ध्र के नीचे स्थित षट्चक्रों में बीजमन्त्रों का ध्यान

१. मूलाधार में ॐकार का ध्यान : 'ॐकारमाधारे।'[१]

२. स्वाधिष्ठान में हकार का ध्यान : 'हकारं स्वाधिष्ठाने।'[२]

३. मणिपूर में रेफ का ध्यान : 'रेफं मणिपूरे।'[३]

४. अनाहत में ईकार का ध्यान : 'ईकारमनाहते।'[४]

५. विशुद्धि में (मकाररूप) बिन्दु का ध्यान : 'बिन्दुं विशुद्ध्याम्।'[५]

६. आज्ञाचक्र में (अनुरणनात्मक) ध्वनि का ध्यान : 'ध्वनिमाज्ञायाम्।'

७. ब्रह्मरन्ध्र में सतार माया का ध्यान : 'सतारं माया ब्रह्मरन्ध्रे।'

इस प्रकार के ध्यान से कुण्डलिनी का ऊर्ध्वोत्थान एवं अधोनयन किया जा सकता है— 'कुण्डलोर्ध्वनयनाधस्थापनात्मकं सकृद्ध्यानम्।'[६]

चक्र और उसके गुण—

१. मूलाधार : सत्त्वगुण।

२. नाभिचक्र : रजोगुण।

३. दृक्चक्र : तमोगुण।

४. ब्रह्मरन्ध्र : सत्त्वोद्रिक्त।

---

१. शाक्तदर्शनम्-१४.४.१

२. शाक्तदर्शनम्-१४.४.२

३. शाक्तदर्शनम्-१४.४.३

४. शाक्तदर्शनम्-१४.४.४

५. शाक्तदर्शनम्-१४.४.५

६. शाक्तदर्शनम्-१४.४.८

चक्र	देवता	नाद	संख्या
१. मूलाधार	गणपति	प्रणव	३०००
२. नाभिचक्र	ब्रह्मा	हकार	१००
३. हृदयस्थ अनाहतचक्र	विष्णु	रेफ	१००
४. दृगस्थ आज्ञाचक्र	रुद्र	ईकार	१००
५. ब्रह्मरन्ध्र	शक्ति	ह्रींकार	६००००

(शाक्तदर्शनम्-१५.१)

आचार्य हयग्रीव ने अपने 'शाक्तदर्शनम्' (१४.४.७-८) में कुण्डलिनी के ध्यानानन्तर समाधि की व्याख्या करके यह सिद्ध किया है कि कुण्डलिनी के ध्यान से समाधि की भी प्राप्ति होती है।

ध्यान— षट्चक्रों में गुणों, देवों, मन्त्राक्षरों की संख्या बताकर आचार्य हयग्रीव ने 'ध्यान' की विशिष्ट विवेचना की है। उनका कथन है कि समस्त चक्रों, उनके गुणों, अधिष्ठाता देवताओं, मन्त्राक्षरों आदि का ध्यान ही 'ध्यान' है— 'ध्यानमेतत्' (शाक्तदर्शनम्-१५.१.२२)। प्रत्येक चक्र में मन्त्राक्षरों की पूर्वोक्त संख्या में आवृत्तिरूप जो जप है, वही 'मन्त्रयोग' है (शाक्तदर्शनम्-१५.१.२०)।

समाधि— परमात्मा एवं जीवात्मा की एकता के प्रति जो संविदुत्पत्ति है, वही समाधि है— 'परजीवैकतां प्रति संविदुत्पत्तिः समाधिः' (शाक्तदर्शनम्-१४.४.९)।

जीवात्मा एवं परमात्मा में एकता की एकता का भावन ही समाधि है— 'ऐक्यभावनं समाधिः' (शाक्तदर्शनम्-१५.१.२३)।

जीवात्मा एवं परमात्मा में ऐक्यानुसन्धान ही समाधि है— 'ऐक्यानुसन्धानं समाधिः' (शाक्तदर्शनम्-१५.१.३३)।

आचार्य हयग्रीव ने 'मूलेन प्राणायामः' (शाक्तदर्शनम्-१५.१.२८) कहकर मन में मन्त्र-जप करते हुये प्राणायाम करने का निर्देश दिया है। उन्होंने प्रत्याहार को 'मन्त्रसन्ध्या' और धारणा को 'अर्चन' कहा है। सारांश यह कि आचार्य हयग्रीव का योगमार्ग पतञ्जलि के योगमार्ग के समान सम्प्रदायातीत साधना-प्रणाली के स्थान पर शक्ति-साधना की एक विशिष्ट सम्प्रदायानुगत योग-प्रणाली के रूप में प्रस्तुत हुआ है, जिसमें प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान सामान्य (समस्त सम्प्रदायों एवं साधन-पथों में ग्राह्य तथा सम्प्रदायविशेष की प्रणाली से परे) साधना-पद्धति के रूप में गृहीत न होकर एक विशिष्ट साधना के अनुकूल आकारित होकर नूतन कलेवर धारण करके प्रस्तुत हुआ है। जैसे कि 'प्राणायाम' को प्राणों का आयाममात्र नहीं; प्रत्युत मन्त्र-जप का अङ्ग बनाकर प्रस्तुत

किया गया। प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान— सभी मन्त्रसाधना के साधन के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।

'ध्यानं जपेन, मूलेन प्राणायामः' तथा 'ॐकारमाधारे, हकारं स्वाधिष्ठाने, रेफं मणिपूरे, ईकारमनाहते, बिन्दुं विशुद्धयां, ध्वनिमाज्ञायाम्' आदि निर्देशों द्वारा प्राणायामों, ध्यानों एवं चक्रों में मन्त्र-जप आवश्यक कर दिया है। यह पातञ्जल योग के प्राणायाम एवं ध्यान के स्वरूप से पृथक् योगस्वरूप है। यही बात 'आधारे प्रणवः, नाभौ हकारः, हृदि रेफः, दृशि ईकारः, ह्रीङ्कारो रन्ध्रे, त्रिसाहस्रसङ्ख्यान्तं वृत्तिराधारे, सहस्रं नाभौ, हृदि दृशि च, षट्साहस्रे रन्ध्रे, वृत्तिरेषा मन्त्रयोगः, एष एकः, ध्यानमेतत्' (शाक्तदर्शनम्- १५.१) सूत्रों द्वारा भी इसी तथ्य की पुष्टि की गई है।

तन्त्र के प्रति नव्य दृष्टि— वैसे तो सम्पूर्ण शाक्त सम्प्रदाय (चाहे वह 'कौल' हो, 'मिश्र' हो या 'समय' हो) तान्त्रिक है; तथापि आचार्य हयग्रीव ने शाक्तदर्शनम् में तन्त्र को निषिद्ध, अग्राह्य एवं त्याज्य माना है। यही दृष्टि 'समयाचार' या 'समयमार्ग' की भी है। हयग्रीव कहते हैं— 'न कदापि तान्त्रिकान्' (१६.२.२२); 'न कर्मवर्णत्रयजास्ताङ्कार्हाः' (१७.२.१); 'वामिनो निन्द्याः' (१७.२.४), 'मधुमांसबलिभगार्चनपरा वामिनः' (१७.२.५), 'मधुमांसवर्जितशूद्राऽवरास्तेभ्यः' (१७.२.७), 'प्रच्छन्ना वामिनः' (१७.२.८); 'मद्यं तीर्थं, शुद्धं मांसं, मद्यपात्रं पद्मं, रक्तलशुनं न्यासः, श्वेतं शुकः, दीक्षितो मद्यकर्ता, भैरवीचक्रस्थचाण्डालाद्या अपि ब्राह्मणाः, जारो योगी, योगिनी जारिणी रजस्वला पूजनीया— एवमादिसिद्धान्तपरा वामिनः निन्द्याः।'

आचार्य हयग्रीव तो यहाँ तक कहते हैं कि वेद से अविरुद्ध होने पर भी तन्त्र-दीक्षित ज्ञानमार्गी नहीं कहे जा सकते; भले ही वे ज्ञानी कहे जायँ या माने जायँ— 'वेदाविरोध-मार्गेणापि तन्त्रदीक्षिता न ज्ञानमार्गिणः (१), भक्तिमार्गिण इति (२)।

'उपासनं केवलं तन्त्रमार्गात् (१७.३.४), न ते महाशाक्ताः (९), श्रीशाक्ता इति, विद्या पञ्चदशी (२१), नाधिकारो ब्रह्मविद्यायाम् (१२), वामोत्तराः दीक्षितादीक्षितभेदात् शाक्ताः श्रैष्ठ्याः क्रमशः' (१५)— आदि सभी सूत्र वाममार्गी शाक्तों एवं शैवों को निन्द्य घोषित करके 'ब्रह्मविद्यामार्ग' को श्रेष्ठतम घोषित करते है और इस मार्ग को अद्वैतवादी होने का प्रतिपादन करते हैं— 'अद्वैतं ब्रह्मविद्यामार्गमेव' (१७.३.१६)।

इसी प्रकार आचार्य हयग्रीव ने साङ्ख्य, पातञ्जल, कापिल, गाणप, सौर, शाक्त, शैव, पाशुपत, भैरव, पाञ्चरात्र, सात्वत, भागवत एवं षड्विध बौद्धों एवं अन्य को वेदबाह्य मानकर उनको अग्राह्य माना है।

आचार्य हयग्रीव शाक्तों को भी हेय, त्याज्य, निन्द्य एवं वेदबाह्य मानते हैं; फिर भी शाक्तदर्शनम् में आचार्य हयग्रीव को रहस्यकर्ता, विद्याकर्ता, शाक्तगुरु एवं शाक्तपरमाचार्य कहा गया है—

१. 'हयग्रीवो रहस्यकर्ता विद्याकर्ता च शाक्तगुरुः' (१८.४.५)।
२. 'शाक्तपरमाचार्यो हयग्रीवः' (१८.४.१२)।
३. 'हयग्रीवरूपिणः शाक्ताचार्याः' (१८.४.१४)।

'शाक्तज्ञानी न पुनरावर्तते' (१८.४.१४) भी कहा गया है।

शाक्त सम्प्रदाय के गुरु— शाक्तों का गुरु ब्रह्मा-विष्णु आदि को बताया गया है और गुरुश्रेणी का विभाजन इस प्रकार करके उन्हें महिमान्वित भी किया गया है—

१. दिव्यौघ गुरु : 'दिवौको गुरवः— शिव, स्कन्द, ब्रह्मा, विष्णु— 'शिवस्कन्द-ब्रह्मेन्द्रविष्णवो दिवौको गुरवः शाक्तस्य' (१८.४.१)।
२. सिद्धौघ गुरु : दुर्वासा, औशनस, हयग्रीव, बादरि, नन्दी।
३. मानवौघ गुरु : सुमेध, दौर्ग आदि।
४. सिद्धान्त गुरु : हयग्रीव।
५. शाक्तवक्त्र गुरु : कुम्भज।
६. शाक्तपरमाचार्य : हयग्रीव।
७. मानवौघ : 'स्वगुरुमपि हयग्रीवरूपेण।'
८. हयग्रीव : पञ्चदेवात्मक।
९. पञ्चदेव : 'ब्रह्मविष्णुरुद्रस्कन्देन्द्राः पञ्च देवाः।'

अन्त में इस 'शाक्तदर्शनम्' को 'ब्रह्मैक्यदायिनी' भी कहा गया है— 'इयं हयग्रीव-विद्या ब्रह्मैक्यदायिनी' (१८.४.२४)। इतना ही नहीं; शाक्ताचार्य हयग्रीव ने अपने ग्रन्थ का नाम भी 'शाक्तदर्शनम्' रक्खा है; फिर शाक्तदर्शन को निन्द्य क्यों माना? तान्त्रिक होने पर भी उन्होंने तन्त्रमत को हेय क्यों माना? स्पष्ट है कि उनके काल में तन्त्र एवं शाक्त सम्प्रदाय (शाक्तमत) इतना दूषित हो गया रहा होगा कि अपने को उन भ्रष्ट तान्त्रिकों एवं शाक्तों से पृथक् दिखाने हेतु ही उन्होंने उनको निन्द्य एवं हेय माना। मध्ययुग में शाक्त इतने भ्रष्ट हो गये थे कि कबीर को उन्हें 'कुत्तों से भी ज्यादा अधम' कहना पड़ा। कबीर कहते हैं— 'साकत से सुनहा भला।' इन्हीं तथ्यों को दृष्टि में रखकर आचार्य हयग्रीव ने शाक्तमत को 'हयग्रीवविद्या' कहा, न कि 'शाक्तमत'। उन्होंने इसे 'हयग्रीव ब्रह्मविद्या' कहा।

▼

त्रय:षष्टि अध्याय

हयग्रीव-प्रतिपादित शाक्तदर्शन में योगस्वरूप की नव्य दृष्टि

ऋषिप्रवर हयग्रीव पातञ्जल योग के अष्टाङ्गों के स्वरूप से पूर्वपरिचित थे; फिर भी उन्होंने उन्हें नये अर्थ प्रदान करके प्रस्तुत किया और इस नव्य दृष्टि द्वारा योग का ज्ञान एवं अद्वैत वेदान्त के साथ सम्मिलन कराया। १३हवें अध्याय के प्रथम पाद में उन्होंने योग के आठों अङ्गों को जिन नये अर्थों को प्रदान करके पारिभाषित किया, उन्हीं आठ अङ्गों को उन्होंने उसी 'शाक्तदर्शनम्' के १३हवें अध्याय के तृतीय पाद में ही पुन: पारिभाषित करते हुये पतञ्जलिप्रतिपादित अर्थों में भी निरूपित किया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि आचार्य हयग्रीव यह कहना चाहते हैं कि ऋषि पतञ्जलि ने योग के जिन अष्टाङ्गों को जिन अर्थों के प्रकाश में देखा, वे स्थूल हैं और स्थूल दृष्टि से उन्हें इन अर्थों में भी गृहीत किया जा सकता है; किन्तु उनका यथार्थ अर्थ तो वही है, जिसमें उन्हें ब्रह्मदर्शन के प्रकाश में प्रत्यक्षीकृत किया जा सके और वे अर्थ मैंने दिये हैं। अत: वे ही ग्राह्य हैं।

पतञ्जलि ने 'यमों' में इन व्रतों को परिगणित किया— अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, तप तथा 'नियमों' में इन व्रतों की स्थिति माना— शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान।

आचार्य हयग्रीव ने इन सभी यमों-नियमों को भी अपने शाक्तदर्शनम् के तेरहवें अध्याय के तृतीय पाद में पारिभाषित किया है।[१]

आसन— आचार्य पतञ्जलि ने तो 'स्थिरसुखमासनम्' (२.४६) के अतिरिक्त

---

१. 'अहिंसाद्या: यमा: दश।
यज्ञव्यतिरिक्तविषयेषु हिंसावर्जनमहिंसा।
दृष्टश्रुतज्ञानोक्ति: सत्यम्।
पारकीयनिवृत्तिरस्तेयम्।
परस्त्रीवर्जनं ब्रह्मचर्यम्।
भूतानुज्ञा दया।
शत्रुमित्रैकस्थितिरार्जवम्।
शत्रुपीडायामपि क्षोभनिवृत्ति: क्षमा।
विज्ञाननिष्पत्तिर्धृति:।
त्रिभागोदरभोजनं मिताहार:।
स्वदेहमलमोचनं शौचम्।
सन्तोषाद्या नियमा दश।
यदृच्छालाभप्रीति: सन्तोष:।
श्रौतस्मार्तविश्वास आस्तिक्यम्।
सत्पात्रे दीयमानं दानम्।
शक्त्यर्चनमीश-पूजनम्।
व्रतै: शरीरशोषणं तप:।
कुत्सितकर्मलज्जा ह्री:।
वैदिकश्रद्धा नति:।
मन्त्राभ्यासो जप:।
व्रतदिवसेषु नियमस्थितिर्व्रत:।

(शाक्तदर्शनम्-१३.३.२-२२)

आसन के विषय में (अपने परिणामों एवं लाभों के अतिरिक्त) कुछ कहा ही नहीं; किन्तु आचार्य हयग्रीव ने १३हवें अध्याय के चतुर्थ पाद में इसका पृथक् रूप से भी विवेचन किया है। पतञ्जलि राजयोगी हैं; अत: उनकी दृष्टि में योगसाधना में आसनों का विशेष महत्त्व नहीं है। हयग्रीव भी 'राजयोगस्तम:' (१०) कहकर राजयोग को ही महत्त्व देते हैं; तथापि वे साधना में आसनों को महत्त्वहीन भी नहीं मानते। अत: वे इस पाद में पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, सुखासन का उल्लेख करके तथा उन्हें पारिभाषित करते हुये सम्भवत: यह बताना चाहते हैं कि राजयोग में भी इन आसनों का महत्त्व है।

चित्तवृत्तियों के सन्दर्भ में महर्षि पतञ्जलि का मत

पञ्च श्रेणी में विभक्त वृत्तियाँ

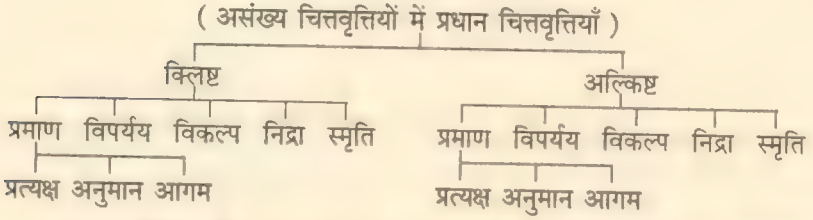

ये सभी क्लिष्ट और अक्लिष्ट के भेद से दो-दो प्रकार के होते हैं अर्थात् प्रमाण क्लिष्ट-प्रमाण अक्लिष्ट, विपर्यय क्लिष्ट-विपर्यय अल्किष्ट, विकल्प क्लिष्ट-विकल्प अक्लिष्ट, निद्रा क्लिष्ट-निद्रा अक्लिष्ट, स्मृति क्लिष्ट-स्मृति अक्लिष्ट। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम केवल एक-एक ही होते हैं अर्थात् क्लिष्ट के केवल क्लिष्ट और अक्लिष्ट के केवल अक्लिष्ट।

आचार्य हयग्रीवोक्त वृत्ति-विभाजन— आचार्य हयग्रीव ने चित्तवृत्तियों का विभाजन पतञ्जलि का अनुसरण करके नहीं किया। उनके अनुसार वृत्तियों का विभाजन इस प्रकार है—

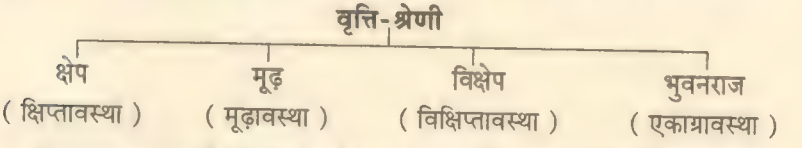

पातञ्जल सूत्रवृत्ति में नागेश भट्ट ने इन चित्तवृत्तियों का नामकरण इस प्रकार किया है— क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, निरुद्ध और एकाग्र। 'शाक्तदर्शनम्' के तेरहवें अध्याय के द्वितीय पाद में हयग्रीव कहते हैं— 'चित्तं पञ्च (२), क्षेपमूढयोर्नाधिकारो योगे (३), अभ्यासयोगमयो विक्षेप: (४), एकाग्रभूमिकामयो भुवनराज: (५)।

नाड़ीयोग— पातञ्जल योग में नाड़ीयोग का उल्लेख नहीं है। नाड़ीयोग तान्त्रिकों का अपना सन्धान है। हयग्रीवोक्त योग में नाड़ीमण्डल की विवेचना मिलती है, जो निम्नानुसार है—

१. सर्वोत्पत्ति का मूलाधार जो वह्निशिखाग्रग 'मूलाधार' चक्र है, उसी में नाड़ी-कन्द है, कुण्डलिनी है और व्यवहार ब्रह्मसाक्षी गजानन है।[१]

२. नाड़ियों की संख्या ७२००० है और उसमें मुख्य नाडियाँ १४ हैं। उनमें भी सर्वप्रमुख सुषुम्ना ब्रह्मनाड़ी स्थित है। कन्द के ऊर्ध्व में तो कुण्डलिनी शक्ति स्थित है; किन्तु समस्त नाड़ियों के मध्य में योगसिद्धिदा सुषुम्ना स्थित है।[२]

३. (हयग्रीव ने १४हवें अध्याय में कहा है)— सुषुम्ना के दोनों पार्श्वों में 'इड़ा-पिङ्गला' नाड़ियाँ स्थित हैं। पृष्ठभाग के पार्श्वों में 'कुहू' एवं 'सरस्वती' नाड़ियाँ स्थित हैं। इसी प्रकार 'गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी' आदि नाड़ियाँ भी स्थित हैं। कुहू-हस्तिजिह्वा के मध्य में 'विश्वोदरा', कुहू-यशस्विनी के मध्य में 'वरुणा', पूषा-सरस्वती के मध्य में 'यशस्विनी' और गान्धार-सरस्वती के मध्य में 'शंखिनी' स्थित है। 'इड़ा' वाम नासा के अन्त तक गई है। दक्षिण नासा के अन्त तक 'पिङ्गला' नाड़ी गई है। 'यश-स्विनी' वाम पादाङ्गुष्ठान्त, 'पूषा' वामाक्ष्यन्त, 'पयस्विनी' याम्यकर्णान्त, 'सरस्वती' जिह्वान्त, 'हस्तिजिह्वा' सव्यपादाङ्गुष्ठान्त, 'शंखिनी' सव्यकर्णान्त, 'गान्धारी' सव्यनेत्रान्त तथा 'विश्वोदरा' कन्दान्तर में स्थित है।

कुण्डलिनी शक्ति— पतञ्जलि के राजयोग में (योगसूत्र में) कुण्डलिनी शक्ति का कोई उल्लेख नहीं मिलता; किन्तु तान्त्रिक योग में मिलता है। आचार्य हयग्रीव की योग-पद्धति में भी इसका उल्लेख है; यथा—

१. 'तत्रैव कुण्डलिनी शक्तिः (१३.४.१०), कन्दोर्ध्वे कुण्डलिनी' (१३.४.१७)।

२. 'ब्रह्मरन्ध्रमुखं स्वमुखेन समावेष्ट्य कन्दपार्श्वेषु निरुध्य संस्थिता कुण्डलिनी' (१३.४.१)।

३. 'आधाररोधनेन वायुदीप्तो वह्नी रुहति कुण्डलीम्' (१४.२.१८)।

४. 'मूले कुण्डलिनी' (१४.३.६)।

नागेशभट्ट ने योगसूत्रवृत्ति में ब्रह्मनाड़ी को सुषुम्ना की शाखा कहा है; जबकि हयग्रीव ने उसे सुषुम्ना से अभिन्न माना है। अन्य ग्रन्थों में सुषुम्ना के भीतर स्थित अनेक नाड़ियों के भीतर ब्रह्मनाड़ी को माना गया है।

वृहदारण्यकोपनिषद् में ७२००० नाड़ियों का उल्लेख है। छान्दोग्योपनिषद् एवं काठकोपनिषद् में १०१ नाड़ियों का उल्लेख किया गया है।

प्राण-सञ्चार एवं प्राणविज्ञान— आचार्य हयग्रीव ने प्राण-सञ्चार एवं उसके

---

१. शाक्तदर्शनम् : 'वह्निशिखाग्रगो मूलाधारः (७), तस्मात्सर्वोत्पत्ति (८), तत्रैव कुण्डलिनी शक्ति (१०), व्यवहारसाक्षी गजाननः (११), आधारे नाडीकन्दम्' (१२)।

२. शाक्तदर्शनम् : 'नाड्यो द्विसप्ततिसहस्राणि (१३), चतुर्दश मुख्या (१४), सुषुम्ना ब्रह्मनाड़ी (१५), सुषुम्ना योगसिद्धिदा' (१८)।

विज्ञान पर भी प्रकाश डाला है; जबकि पतञ्जलि ने इस पर विशेष प्रकाश नहीं डाला तथा १० प्राणों का तो उल्लेख भी नहीं किया।

आचार्य हयग्रीव कहते हैं कि १० वायु हैं। वायु का सञ्चारक नाड़ीसमूह है। इनमें ५ मुख्य वायु (प्राण) हैं। इनमें भी प्राण एवं अपान प्रवर है— 'प्राणापानौ प्रवरौ।' इनमें भी प्राण तो पूज्य है— 'पूज्य: प्राण:' (१४.२.५)।

प्राणायाम— इन्हीं प्राणों एवं नाड़ियों की सहायता से प्राणायाम निष्पन्न किया जाता है। योगचूड़ामणि उपनिषद् में कहा गया है—

इडापिङ्गलासुषुम्ना: प्राणमार्गे च संस्थिता:।
सततं प्राणवाहिन्य: सोमसूर्याग्निदेवता:।।

हृदि प्राण: स्थितो नित्यमपानो गुदमण्डले।
समानो नाभिदेशे तु उदान: कण्ठमध्यग:।।

व्यान: सर्वशरीरे तु प्रधाना पञ्च वायव:।
उद्गारे नाग आख्यात: कूर्म उन्मीलने तथा।।

कृकर: क्षुत्करो ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे।
न जहाति मृतं वापि सर्वव्यापी धनञ्जय:।।

आचार्य पतञ्जलि ने प्राणायाम को मन्त्र के साथ नहीं जोड़ा; किन्तु आचार्य हयग्रीव ने तान्त्रिक विधान के अनुसार प्राणायाम के साथ मन्त्रयोग का भी सम्मिलन करा दिया। उनका कथन है कि 'रेचकपूरककुम्भकात्मक: प्राणायाम:' (१४.२.७) अर्थात् प्राणायाम के तीन अंग हैं— रेचक, कुम्भक एवं पूरक; किन्तु ये मात्र प्राणायाम के अङ्गमात्र नहीं हैं; प्रत्युत मन्त्रयोग के भी अङ्गस्वरूप या साधनस्वरूप हैं।

आचार्य हयग्रीव कहते हैं—

१. सोलह मात्राओं द्वारा हकारस्मरणपूर्वक प्राणाकर्षण ही 'पूरक' है—
'हकार-स्मरणपूर्वं कर्षणं षोडशमात्रै: पूरक:।'

२. चौंसठ मात्राओं द्वारा रेफ के साथ प्राणवायु को रोकना ही 'कुभक' है—
'रेफस्य चतु:षष्ट्या तु मात्रया कुम्भक:' (१४.२.१०)।

३. बत्तीस मात्राओं द्वारा ईकार के साथ प्राण का बहि:निस्सारण ही 'रेचक' है—
'ईकाररस्य द्वात्रिंशन्मात्रया रेचक:।'

पूरक : 'ह'। कुम्भक : 'रेफ'। रेचक : 'ई' = 'ह्रीं' मन्त्र। (ह्रीं = लक्ष्मी का मन्त्र)।
'वसिष्ठसंहिता' = १६ पूरक, ६४ कुम्भक एवं ३२ रेचक।

क्रम-व्युत्क्रम— मूलमन्त्र का जप। पूरक में वेदसंख्या = ४। कुम्भक में कला = १६। रेचक में वसु = ८; कहा भी गया है— 'पूरके वेदसङ्ख्या, कला कुम्भके, वसु रेचके' (शाक्तदर्शनम्-१४.२.१४-१६)।

अपानवायु का ऊर्ध्वगमन कष्टसाध्य होने पर भी आनन्दप्रद होता है— 'अपानोर्ध्वनयन आनन्दः' (१४.२.१७)।

पूरक-कुम्भक-रेचक करते समय हकार-रेफ एवं ईकार मन्त्राक्षरों का अनुरणन अनुभव में आना चाहिये।

'धारणे मूलमन्त्रजपः' (१४.२.१३) सूत्र में 'धारणे' शब्द योगसूत्रकार के 'चतुर्थ' शब्द का बोधक है, जिसमें बाहर एवं भीतर के विषयों का त्याग कर देने से अपने-आप ही इष्ट-चिन्तन में लयीभूत (काल + संख्या के ज्ञान के विना ही अपने-आप होने वाली) प्राण की गति अकस्मात् किसी देश रुक जाती है। यह स्वयम्भू प्राणायाम राजयोग का प्राणायाम है।[१]

इस प्राणायाम-विधान से ये निम्न परिणाम घटित होते हैं—

क. 'आधाररोधनेन वायुदीप्तो वह्नी रुहति कुण्डलीम्' (१८)।

ख. 'सुषुम्नाया वायुर्वह्निनोर्ध्वं गच्छति' (१९)।

ग. 'वायुर्जितः' (२०)।

घ. 'तेन चित्तशुद्धिः' (२१)।

चित्तशुद्धि ही प्राणायाम का प्रधान उद्देश्य है; किन्तु यदि 'ह्रीं' मन्त्र के साथ इसे निष्पादित किया जाय तो इसके द्वारा मन्त्रयोग भी सिद्ध हो जाता है। यही शाक्तदर्शनम् का निष्कर्ष है।

१. महामहोपाध्याय काशीनाथ वासुदेव अभ्यङ्कर : मिताक्षरा।

ग्रन्थ-सन्दर्भ

वेदों की प्राचीनतम एवं गुह्यतम रहस्यविद्याओं में अन्यतम, सिद्धियों के रत्नाकर एवं मोक्ष के अन्यतम साधन 'श्रीविद्या' में निहित 'श्री' शब्द शकार, रकार, ईकार एवं बिन्दु का कल्पवृक्ष है। यही 'षोडशी कला', भगवती त्रिपुरसुन्दरी, दश महाविद्याओं में षोडशी महाविद्या या श्रीविद्या भी है। त्रिपुरसुन्दरी, राजराजेश्वरी, ललिता, कामेश्वरी, त्रिपुरा, महात्रिपुरसुन्दरी, सुभगा, बालत्रिपुरसुन्दरी आदि नामों से इसी की उपासना की जाती है। आदि शङ्कराचार्य, भास्करराय, पुण्यानन्दनाथ आदि इसके परमोपासक रहे हैं। पौराणिक दृष्टि से इसके द्वादश सम्प्रदाय एवं द्वादश उपासक हैं, जिसका यन्त्र 'श्रीयन्त्र' कहलाता है। महाविद्याओं के दो कुलों– कालीकुल और श्रीकुल में से श्रीविद्या श्रीकुल से सम्बद्ध है। श्रीयन्त्र के मुख्यत: तीन सम्प्रदाय हैं– हयग्रीव सम्प्रदाय, आनन्दभैरव सम्प्रदाय और दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय। श्रीयन्त्र के अन्तरतम में स्थित 'बिन्दु' ही है– भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप, आसन एवं धाम और यही है– ब्रह्माण्ड, प्रकृत्यण्ड, मायाण्ड एवं शक्त्यण्ड का उद्भव-केन्द्र। सृष्टि के रेखात्मक चित्र के साथ-साथ अनन्त देवी-देवताओं, शक्तियों, रचनास्तरों, लोकों तथा आध्यात्मिक सूक्ष्ममण्डलों का निवासस्थान भी 'श्रीयन्त्र' ही है। देवी एवं उनके यन्त्र की आराधना का सर्वोत्तम भाव दिव्यभाव होता है।

अद्वैतवादी दर्शन में विश्वास रखने वाले श्रीसम्प्रदाय की अनुभूति एवं काम्य है– 'अहं देवी न चान्योऽस्मि'। श्रीविद्या-साधनापथ में भक्ति, ज्ञान एवं योग– तीनों ही स्वीकृत हैं। षट्चक्रवेधन-द्वारा मूलाधारस्थ कुलशक्ति को जागृत कर उसके वियुक्त प्रियतम 'अकुल' से उसका सम्मिलन कराना भी एक साधन-पथ है तथा 'ज्ञानोत्तरा भक्ति' के द्वारा विश्वात्मा का अपनी आत्मा के रूप में साक्षात्कार करना भी एक साधन-पथ है। ये दोनों ही पथ श्रीविद्या में स्वीकृत हैं। श्रीविद्या की साधना में 'बहिर्याग' से उत्कृष्टतर 'अन्तर्याग' का ही आत्मीकरण माना जाता है और महात्रिपुरसुन्दरी समस्त प्राणियों की आत्मा हैं। वे विश्वातीत भी हैं और विश्वमय भी। यथार्थत: तो वे 'कामेश्वर' भी हैं और 'कामेश्वरी' भी।

बैन्दवस्थान-स्थित सहस्रदल कमल में भगवती की पूजा ही आदर्श पूजा है। बैन्दव-पुर ही 'चिन्तामणि-गृह' है। सामयिकों के मत में इसी चिन्तामणि गृह में या सहस्रदल कमल में भगवती की पूजा की जानी चाहिये; न कि बाह्य पीठ आदि पर।

अङ्ग-उपाङ्गसहित श्रीविद्या और उसकी साधना का प्रतिपादक प्रकृत **श्रीविद्या-साधना** ग्रन्थ तज्जिज्ञासुओं एवं समुपासकों के लिये अवश्यमेव पठनीय, मननीय एवं संग्रहणीय है।

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी